शब्द २१४३५

["य" से "ह" तक]

हिंदी-शब्दसागर

अर्थात्

हिंदी भाषा का एक बृहत् कोश

[चौथा भाग]

संपादक

श्यामसुंदरदास बी० ए०

सहायक संपादक

रामचंद्र शुक्ल रामचंद्र वर्म्मा

भगवानदीन

प्रकाशक

काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा

१९२८

गणपति कृष्ण गुर्जर द्वारा श्रीलक्ष्मीनारायण प्रेस, काशी में मुद्रित ।

डाकव्यय अतिरिक्त

संकेताक्षरों का विवरण

अं० = अंगरेज़ी भाषा
अ० = अरबी भाषा
अनु० = अनुकरण शब्द
अने० = अनेकार्थनाममाला
अप० = अपभ्रंश
अयोध्या = अयोध्यासिंह उपाध्याय
अर्द्धमा० = अर्द्धमागधी
अल्पा० = अल्पार्थक प्रयोग
अव्य० = अव्यय
आनंदघन = कवि आनंदघन
इब० = इबरानी भाषा
उ० = उदाहरण
उत्तरचरित = उत्तररामचरित
उप० = उपसर्ग
उभ० = उभयलिंग
कठ० उप० = कठवल्ली उपनिषद्
कबीर = कबीरदास
केशव = केशवदास
कोंक० = कोंकण देश की भाषा
क्रि० = क्रिया
क्रि० अ० = क्रिया अकर्मक
क्रि० प्र० = क्रियाप्रयोग
क्रि० वि० = क्रियाविशेषण
क्रि० स० = क्रिया सकर्मक
क्व० = क्वचित्, अर्थात् इस का प्रयोग बहुत कम देखने में आया है
खानखाना = अब्दुर्रहीम खानखाना
गि० दा० या गि० दास = गिरिधरदास (बा० गोपालचंद्र)
गिरिधर = गिरिधरराय (कुंडलियावाले)
गुज० = गुजराती भाषा
गुमान = गुमान मिश्र
गोपाल = गिरिधरदास (बा० गोपालचंद्र)
चरण = चरणचंद्रिका
चिंतामणि = कवि चिंतामणि त्रिपाठी
छीत = छीतस्वामी
जायसी = मलिक मुहम्मद जायसी
जावा० = जावा द्वीप की भाषा
ज्यो० = ज्योतिष
डिं० = डिंगल भाषा
तु० = तुरकी भाषा
तुलसी = तुलसीदास
तोष = कवि तोष
दादू = दादूदयाल
दीनदयालु = कवि दीनदयालु गिरि
दूलह = कवि दूलह
दे० = देखो
देव = देव कवि (मैनपुरीवाले)
देश० = देशज
द्विवेदी = महावीरप्रसाद द्विवेदी
नागरी = नागरीदास
नाभा = नाभादास
निश्चल = निश्चलदास
पं० = पंजाबी भाषा
पद्माकर = पद्माकर भट्ट
पर्या० = पर्याय
पा० = पाली भाषा
पुं० = पुलिंग
पु० हिं० = पुरानी हिंदी
पुर्त्त० = पुर्त्तगाली भाषा
पू० हिं० = पूर्वी हिंदी
प्रताप = प्रतापनारायण मिश्र
प्रत्य० = प्रत्यय
प्रा० = प्राकृत भाषा
प्रिया = प्रियादास
प्रे० = प्रेरणार्थक
प्रे० सा० = प्रेमसागर
फ़० = फ़रासीसी भाषा
फ़ा० = फ़ारसी भाषा
बँग० = बँगला भाषा
बरमी० = बरमी भाषा
बहु० = बहुवचन
बिहारी = कवि बिहारीलाल
बुं० खं० = बुंदेलखंड बोली
बेनी = कवि बेनी प्रवीन
भाव = भाववाचक
भूषण = कवि भूषण त्रिपाठी
मतिराम = कवि मतिराम त्रिपाठी
मला० = मलायम भाषा
मलूक = मलूकदास
मि० = मिलाओ
मुहा० = मुहाविरा
यू० = यूनानी भाषा
यौ० = यौगिक तथा दो या अधिक शब्दों के पद
रघु० दा० = रघुनाथदास
रघुनाथ = रघुनाथ बंदीजन
रघुराज = महाराज रघुराजसिंह रीवाँनरेश
रसखान = सैयद इब्राहीम
रसनिधि = राजा पृथ्वीसिंह
रहीम = अब्दुर्रहीम खानखानाँ
लक्ष्मणसिंह = राजा लक्ष्मणसिंह
लल्लू = लल्लूलाल
लश० = लशकरी भाषा, अर्थात् हिंदुस्तानी जहाजियों की बोली
लाल = लाल कवि (छत्र-प्रकाशवाले)
लै० = लैटिन भाषा
वि० = विशेषण
विश्राम = विश्रामसागर
व्यंग्यार्थ = व्यंग्यार्थकौमुदी
व्या० = व्याकरण
व्यास = अंबिकादत्त व्यास
शं० दि० = शंकर दिग्विजय
शृं० सत० = शृंगार सतसई
सं० = संस्कृत
संयो० = संयोजक अव्यय
संयो० क्रि० = संयोज्य क्रिया
स० = सकर्मक
सबल० = सबलसिंह चौहान
सभा० वि० = सभाविलास
सर्व० = सर्वनाम
सुधाकर = सुधाकर द्विवेदी
सूदन = सूदन कवि (भरतपुरवाले)
सूर = सूरदास
स्त्रि० = स्त्रियों द्वारा प्रयुक्त
स्त्री० = स्त्रीलिंग
स्पे० = स्पेनी भाषा
हिं० = हिंदी भाषा
हनुमान = हनुमन्नाटक
हरिदास = स्वामी हरिदास
हरिश्चंद्र = भारतेंदु हरिश्चंद्र

❀ यह चिह्न इस बात को सूचित करता है कि यह शब्द केवल पद्य में प्रयुक्त है।
† यह चिह्न इस बात को सूचित करता है कि इस शब्द का प्रयोग प्रांतिक है।
‡ यह चिह्न इस बात को सूचित करता है कि शब्द का यह रूप ग्राम्य है।

रक्तराजि-संज्ञा स्त्री० [सं०] सुश्रुत के अनुसार एक प्रकार का कीड़ा जिसे सर्पपिका भी कहते हैं।

रक्तरेणु-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सिंदूर। (२) पुन्नाग।

रक्तरैवतक-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का खजूर का पेड़।

रक्तरोग-संज्ञा पुं० [सं०] वह रोग जो रक्त के दूषित होने से होता है। जैसे,—कुष्ट आदि।

रक्तला-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) काकतुंडी। कौवाठोंठी। (२) गुंजा। करजनी। घुँघची। रत्ती।

रक्तलोचन-संज्ञा पुं० [सं०] कबूतर।

रक्तवटी-संज्ञा स्त्री० [सं०] मसूरिका या चेचक का रोग। शीतला।

रक्तवरटी-संज्ञा स्त्री० [सं०] शीतला रोग। चेचक।

रक्तवर्ग-संज्ञा पुं० [सं०] अनार, ढाक, लाख, हल्दी, दारुहल्दी, कुसुम के फूल, मजीठ और दुपहरिया के फूल, इन सब का समूह। (ये सब रँगने के काम में आते हैं।)

रक्तवर्ण-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बीरबहूटी नामक कीड़ा। (२) लहसुनिया नग। गोमेद। (३) मूँगा। (४) कंपिल्लक। कमीला।

रक्तवर्णक-संज्ञा पुं० [सं०] लाल बटेर।

रक्तवर्मा-संज्ञा पुं० [सं० रक्तवर्मन्] मुरगा।

रक्तवर्द्धन-वि० [सं०] रक्त बढ़ानेवाला। रक्तवर्धक।
संज्ञा पुं० [सं०] बैंगन।

रक्तवर्षाभू-संज्ञा स्त्री० [सं०] लाल पुनर्नवा।

रक्तवल्ली-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) मजीठ। (२) दंडोत्पल नाम का पौधा। (३) नलिका। पयारी। (४) एक प्रकार की लता जिसे पित्ती कहते हैं।

रक्तवसन-संज्ञा पुं० [सं०] संन्यासी।

रक्तवात-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का वात रोग जिसे वातरक्त भी कहते हैं। वि० दे० "वातरक्त"।

रक्तवालुक-संज्ञा पुं० [सं०] सिंदूर।

रक्तबिंदु-संज्ञा पुं० [सं०] (१) रुधिर की बूँद। (२) रक्त अपामार्ग। लाल चिचड़ा। (३) रत्नों में दिखाई पड़नेवाला लाल दाग या धब्बा जो एक दोष माना जाता है। जैसे,—यदि हीरे में यह दोष हो, तो कहते हैं कि उसे पहननेवाले की स्त्री मर जाती है।

रक्तविद्रधि-संज्ञा पुं० [सं०] रक्त के प्रकोप से होनेवाला एक प्रकार का विद्रधि या फोड़ा जिसमें किसी अंग में सूजन होती है, और उसके चारों ओर काले रंग की फुंसियाँ हो जाती हैं।

रक्तविस्फोटक-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का रोग जिसमें शरीर में गुंजा के समान लाल लाल फफोले पड़ जाते हैं।

रक्तबीज-संज्ञा पुं० [सं०] (१) लाल बीजोंवाला दाड़िम। अनार। बीदाना। (२) रीठा। (३) एक राक्षस का नाम जो शुंभ और निशुंभ का सेनापति था। देवी भागवत में लिखा है कि युद्ध के समय इसके शरीर से रक्त की जितनी बूँदें गिरती थीं, उतने ही नए राक्षस उत्पन्न हो जाते थे। इसलिये चंडिका ने इसका रक्त पीकर इसे मार डाला था। यह भी कहा गया है कि महिषासुर का पिता रंभ दानव ही मर कर फिर रक्तबीज के रूप में उत्पन्न हुआ था।

रक्तबीजका-संज्ञा स्त्री० [सं०] तरदी नाम का एक कँटीला पेड़।

रक्तबीजा-संज्ञा पुं० [सं०] सिंदूरपुष्पी। सिंदूरिया।

रक्तवृंतक-संज्ञा पुं० [सं०] पुनर्नवा। गदहपूरना।

रक्तवृंता-संज्ञा स्त्री० [सं०] शेफालिका। निर्गुंडी।

रक्तवृष्टि-संज्ञा स्त्री० [सं०] आकाश से रक्त या लाल रंग के पानी की वृष्टि होना। कहते हैं कि ऐसी वृष्टि होने से देश में युद्ध, महामारी आदि अनेक अनिष्ट होते हैं।

रक्तव्रण-संज्ञा पुं० [सं०] वह फोड़ा जिसमें से मवाद न निकलकर केवल रक्त ही बहता हो।

रक्तशमन-संज्ञा पुं० [सं०] कमीला।

रक्तशालि-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का लाल रंग का चावल या शालि जिसे दाऊदखानी कहते हैं।

रक्तशालुक-संज्ञा पुं० [सं०] लाल कमल की जड़। भसींड़।

रक्तशाल्मलि-संज्ञा पुं० [सं०] लाल फूलवाला सेमल।

रक्तशासन-संज्ञा पुं० [सं०] सिंदूर।

रक्तशिग्रु-संज्ञा पुं० [सं०] लाल सहिंजन।

रक्तशीर्पक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) गंधा बिरोजा। (२) सारस।

रक्तशृंग-संज्ञा पुं० [सं०] हिमालय की एक चोटी का नाम।

रक्तशृंगिक-संज्ञा पुं० [सं०] विष। जहर।

रक्तशेखर-संज्ञा पुं० [सं०] पुन्नाग।

रक्तश्वेत-संज्ञा पुं० [सं०] सुश्रुत के अनुसार एक प्रकार का बहुत जहरीला बिच्छू।

रक्तष्ठीवि-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का बहुत ही घातक सन्निपात जिसमें मुँह से लहू जाता है, साँस और पेट फूलता है, जीभ में चकत्ते पड़ जाते हैं और उनमें से लहू निकलता है। यह रोग असाध्य माना जाता है।

रक्तसंकोच-संज्ञा पुं० [सं०] कुसुम का फूल।

रक्तसंज्ञक-संज्ञा पुं० [सं०] कुंकुम। केसर।

रक्तसंदेशिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] जोंक।

रक्तसंवरण-संज्ञा पुं० [सं०] सुरमा।

रक्तसर्षप-संज्ञा पुं० [सं०] लाल सरसों।

रक्तसार-संज्ञा पुं० [सं०] (१) लाल चंदन। (२) पतंग। (३) अमलवेत। (४) खैर। (५) वाराहीकंद। (६) रक्तबीजासन।

रक्तस्तंभन-संज्ञा पुं० [सं०] बहते हुए रक्त को रोकने की क्रिया।

रक्तस्राव-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शरीर के किसी अंग से रक्त का बहना या निकलना। खून जाना या गिरना। (२) घोड़ों

का एक रोग जिसमें उनकी आँखों में से रक्त या लाल रंग का पानी बहता है।
हंसा-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की रागिनी। (संगीत)
[र-संज्ञा पुं० [सं०] मिलावाँ।
क-संज्ञा पुं० [सं०] मूँगा।
ग-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मंगल ग्रह। (२) कमीला। (३) मूँगा। (४) खटमल। (५) केसर। (६) लाल चंदन।
गी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) मजीठ। (२) जीवंती। (३) कुटकी।
ड-संज्ञा पुं० [सं०] घोड़ों के अंडकोष में होनेवाला एक प्रकार का रोग।
बर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) संन्यासी, जो गेरुआ वस्त्र पहनता है। (२) लाल रंग का कपड़ा, विशेषतः रेशमी कपड़ा।
-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) पंचम स्वर की चार श्रुतियों में से दूसरी श्रुति का नाम। (संगीत) (२) गुंजा। घुँघची। (३) लाख। (४) मजीठ। (५) ऊँट-कटारा। (६) एक प्रकार की सेम। (७) लक्ष्मणा नामक कंद। (८) बच। (९) एक प्रकार की मकड़ी। (१०) कान के पास की एक शिरा या नस का नाम।
फार-संज्ञा पुं० [सं०] मूँगा।
क्त-संज्ञा पुं० [सं०] लाल चंदन।
वि० (१) रक्त लगा हुआ। (२) लाल रँगा हुआ।
द-संज्ञा पुं० [सं०] (१) चकोर। (२) सारस। (३) कबूतर। (४) भैंस। (५) साठ संवत्सरों में से अट्ठावनवें संवत्सर का नाम।
तिसार-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का अतिसार जिसमें लहू के दस्त आते हैं। इसमें रोगी को प्यास, दाह और मूर्च्छा होती है और गुदा पकी हुई जान पड़ती है।
धरा-संज्ञा स्त्री० [सं०] किन्नरी।
धार-संज्ञा पुं० [सं०] चमड़ा। त्वक्।
धिमंथ-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का अधिमंथ रोग जो रक्त के विकार से होता है।
पद-संज्ञा पुं० [सं०] बोल नामक गंध द्रव्य।
भ-संज्ञा पुं० [सं०] बीरबहूटी।
भा-संज्ञा स्त्री० [सं०] लाल जवा।
भिष्यंद-संज्ञा पुं० [सं०] भावप्रकाश के अनुसार आँखों का एक रोग जिसमें वे बहुत अधिक लाल हो जाती हैं, उनमें से लाल रंग का पानी निकलता है और आँखों के आगे लाल रेखाएँ दिखाई देती हैं।
भ्र-संज्ञा पुं० [सं०] लाल अभ्रक।
म्लान-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का पौधा जिसमें लाल रंग के फूल लगते हैं। वैद्यक में इसे कटु, उष्ण और वात, ज्वर, शूल, कास तथा श्वास आदि का नाशक माना है।
रक्तारि-संज्ञा पुं० [सं०] महाराष्ट्री नाम का क्षुप।
रक्तार्बुद-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्रकार का रोग जिसमें शरीर में पकने और बहनेवाली गाँठें निकल आती हैं। इसमें शरीर का रंग पीला पड़ जाता है। (२) शुक्र-दोष के कारण उत्पन्न होनेवाला एक रोग जिसमें लिंग पर काले फोड़े और उनके साथ लाल फुन्सियाँ निकल आती हैं।
रक्तार्म-संज्ञा पुं० [सं० रक्तार्मन्] एक प्रकार का रोग जिसमें आँख की कौड़ी पर मांस इकट्ठा होकर लाल कमल के रंग का कोमल मंडल बन जाता है।
रक्तार्श-संज्ञा पुं० [सं० रक्तार्शस्] बवासीर रोग का वह भेद जिसमें उसके मस्सों में से खून भी निकलता है। खूनी बवासीर। वि० दे० "बवासीर"।
रक्तालता-संज्ञा स्त्री० [सं०] मजीठ।
रक्तालु-संज्ञा पुं० [सं०] रतालू नामक कंद।
रक्तावरोधक-वि० [सं०] बहते हुए खून को रोकनेवाला।
रक्तावसेचन-संज्ञा पुं० [सं०] शरीर का खून निकलवाना। फ़स्द।
रक्ताशय-संज्ञा पुं० [सं०] शरीर के सात आशयों में से चौथा, जिसमें रक्त का रहना माना जाता है। वे कोठे जिनमें रक्त रहता है। जैसे,—फेफड़ा, हृदय, यकृत् आदि।
रक्ताशोक-संज्ञा पुं० [सं०] लाल अशोक का वृक्ष।
रक्ताश्वारि-संज्ञा पुं० [सं०] लाल कनेर।
रक्ति-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) अनुराग। प्रेम। (२) एक परिमाण जो आठ सरसों के बराबर होता है। रत्ती।
रक्तिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) घुँघची। रत्ती (२) आठ सरसों के बराबर एक परिमाण। रत्ती।
रक्तिम-वि० [सं०] ललाई लिए। सुर्खी मायल।
रक्तिमा-संज्ञा स्त्री० [सं०] ललाई। लाली। सुर्खी।
रक्तेक्षु-संज्ञा पुं० [सं०] लाल रंग का ऊख।
रक्तोत्पल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) लाल कमल। (२) शाल्मलि। सेमल।
रक्तोदर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) रोहू मछली। (२) सुश्रुत के अनुसार एक प्रकार का बहुत जहरीला बिच्छू।
रक्तोपदंश-संज्ञा पुं० [सं०] लहू के विकार से उत्पन्न गरमी या आतशक का रोग।
रक्तोपल-संज्ञा पुं० [सं०] गेरू नामक लाल मिट्टी।
रक्ष-संज्ञा पुं० [सं०] (१) रक्षक। रखवाला। उ०—तोरत फूल रक्ष रह तहाँ।—सबल। (२) रक्षा। हिफाज़त। रखवाली। (३) लाख। लाह। (४) छप्पय के साठवें भेद का नाम जिसमें ११ गुरु और १३० लघु मात्राएँ अथवा ११ गुरु और १२६ लघु मात्राएँ होती हैं।

संज्ञा पुं० [सं० रक्षस्] राक्षस। उ०—रक्ष यक्ष दानव देवन सों, अभय होहिं सब जागा।—रघुराज।

रक्षक—संज्ञा पुं० [सं०] (१) रक्षा करनेवाला। बचानेवाला। हिफाजत करनेवाला। (२) पहरेदार। (३) पालन करनेवाला।

रक्षण—संज्ञा पुं० [सं०] (१) रक्षा करना। हिफाजत करना। रखवाली। (२) पालने की क्रिया। पालन-पोषण। (३) रक्षक। रखवाला।

रक्षणकर्त्ता—संज्ञा पुं० [सं० रक्षणकर्तृ] रक्षा करनेवाला। रक्षक।

रक्षणारक—संज्ञा पुं० [सं०] मूत्रकृच्छ्र रोग।

रक्षणि—संज्ञा स्त्री० [सं०] त्रायमाणा लता।

रक्षणीय—वि० [सं०] जिसकी रक्षा करना उचित हो। रक्षा करने के योग्य।

रक्षन⊛—संज्ञा पुं० दे० "रक्षण"।

रक्षना ⊛—क्रि० स० [सं० रक्षण] रक्षा करना। हिफाजत रखना। सँभालना। बचाना।

रक्षपाल—संज्ञा पुं० [सं०] वह जो रक्षा करता हो। रक्षक।

रक्षमाण—वि० दे० "रक्ष्यमाण"।

रक्षस ⊛—संज्ञा पुं० [सं० रक्षस्] असुर। दैत्य। निशाचर।

रक्षा—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) आपत्ति, कष्ट या नाश आदि से बचाना। अनिष्ट से बचाने की क्रिया। रक्षण। बचाव।

यौ०—रक्षाबंधन।

(२) वह यंत्र या सूत्र आदि जो प्रायः बालकों को भूत-प्रेत, रोग या नजर आदि से बचाने के लिये बाँधा जाता है। (३) गोद। (४) भस्म। राख।

रक्षाइद⊛—संज्ञा स्त्री० [हिं० रक्ष + आइद (प्रत्य०)] राक्षसपन।

रक्षागृह—संज्ञा पुं० [सं०] वह स्थान जहाँ प्रसूता प्रसव करे। सूतिकागृह। ज़च्चाखाना।

रक्षाधिकृत—संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल का किसी नगर का वह अधिकारी जिसका काम उस नगर की रक्षा तथा शासन करना होता था।

रक्षापति—संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल का वह कर्मचारी जिसका काम नगर-निवासियों की रक्षा करना होता था।

रक्षापत्र—संज्ञा पुं० [सं०] (१) भोजपत्र। (२) सफेद सरसों।

रक्षापुरुष—संज्ञा पुं० [सं०] पहरेदार। संतरी।

रक्षापेक्षक—संज्ञा पुं० [सं०] (१) पहरेदार। संतरी। (२) अंतःपुर में पहरा देनेवाला संतरी। (३) अभिनय करनेवाला। नट।

रक्षाप्रदीप—संज्ञा पुं० [सं०] तंत्र के अनुसार वह दीपक जो भूत-प्रेत आदि की बाधा से रक्षा करने के लिये जलाया जाता है।

रक्षाबंधन—संज्ञा पुं० [सं०] हिंदुओं का एक त्यौहार जो श्रावण शुक्ला पूर्णिमा को होता है। इस दिन बहनें अपने भाइयों के और ब्राह्मण अपने यजमानों के दाहिने हाथ की कलाई पर अनेक प्रकार के गंडे, जिन्हें राखी कहते हैं, बाँधते हैं। सलोनो।

रक्षाभूषण—संज्ञा पुं० [सं०] वह भूषण या जंतर जिसमें किसी प्रकार का कवच आदि हो और जो भूत-प्रेत या रोग आदि से रक्षित रहने के लिये पहना जाय।

रक्षामंगल—संज्ञा पुं० [सं०] वह अनुष्ठान या धार्मिक क्रिया आदि जो भूत-प्रेत आदि की बाधा से रक्षित रहने के लिये की जाय।

रक्षामणि—संज्ञा पुं० [सं०] वह मणि या रत्न आदि जो किसी ग्रह के प्रकोप से रक्षित रहने के लिये पहना जाय।

रक्षारत्न—संज्ञा पुं० दे० "रक्षामणि"।

रक्षि, रक्षिक—संज्ञा पुं० [सं०] (१) बचानेवाला। रक्षक। (२) पहरेदार। संतरी।

रक्षिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] रक्षा। हिफाजत।

रक्षित—वि० [सं०] (१) जिसकी रक्षा की गई हो। रक्षा किया हुआ। हिफाजत किया हुआ। जैसे,—मैं आपकी पुस्तक बहुत ही रक्षित रखूँगा। (२) प्रतिपालित। पाला पोसा। (३) रखा हुआ।

रक्षिता—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) रक्षा। हिफाजत। (२) एक अप्सरा का नाम।

संज्ञा पुं० [सं० रक्षितृ] रक्षा करनेवाला।

रक्षी—संज्ञा पुं० [सं० रक्षस् + ई (प्रत्य०)] राक्षसों के उपासक। राक्षस पूजनेवाले। उ०—भूती भूतन यक्षी यक्षन। प्रेती प्रेतन रक्षी रक्षन।—गिरधर।

संज्ञा पुं० [सं० रक्षिन्] (१) रक्षा करनेवाला। रक्षक। (२) पहरेदार। चौकीदार।

रक्षोघ्न—संज्ञा पुं० [सं०] (१) हींग। (२) भिलावें का पेड़। (३) सफेद सरसों। (४) रखकर खट्टा किया हुआ चावल का पानी या माँड़।

रक्षोघ्नी—संज्ञा स्त्री० [सं०] वचा। बच।

रक्ष्य—वि० [सं०] रक्षा करने के योग्य। रक्षणीय।

रक्ष्यमाण—वि० [सं०] (१) जिसकी रक्षा की जा सके। (२) जिसकी रक्षा की जा रही हो।

रक्से ताऊस—संज्ञा पुं० [फ़ा०] (१) एक प्रकार का नाच, जिसमें पेशवाज़ के दो कोने दोनों हाथों से पकड़कर कमर तक उठा लिए जाते हैं, जिससे नाचनेवाले की आकृति मोर की सी बन जाती है। (२) एक प्रकार का नाच जिसमें घुटनों के बल होकर इतनी तेजी से घूमते हैं कि काछनी या पेशवाज़ का घेरा फैलकर चक्कर खाने लगता है।

रख, रखा-संज्ञा स्त्री० [हिं० रखना] पशुओं के चरने के लिये बचाई हुई भूमि। चरी।

रखटी-संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की ईख जिसके रस से गुड़ बनाया जाता है। लखड़ा।

रखड़ा-संज्ञा पुं० दे० "रखटी"।

रखना-क्रि० स० [सं० रक्षण, प्रा० रक्खण] (१) किसी वस्तु पर या किसी वस्तु के अंदर दूसरी वस्तु स्थित करना। ठहराना। टिकाना। धरना। जैसे,—टेबुल पर किताब रखना; थाली में मिठाई रखना; हाथ पर रुपए रखना; बरतन में अनाज रखना; दाँव पर रुपया रखना; गाड़ी पर असबाब रखना।

संयो० क्रि०—देना। –लेना।

(२) रक्षा करना। हिफाजत करना। बचाना। जैसे,—तुम आप तो अपनी चीज रखते नहीं; दूसरों को चोर बनाते हो। उ०—जाको राखे साइयाँ, मारि सके नहिं कोय। बाल न बाँका करि सकै, जो जग बैरी होय।—कबीर।

यौ०—रख-रखाव = रक्षा। हिफाजत।

(३) निर्वाह या पालन करना। बिगड़ने न देना। वृथा या नष्ट न होने देना। जैसे,—किसी की इज्जत रखना; किसी की बात रखना।

संयो० क्रि०—लेना।

(४) एकत्र करना। संग्रह करना। जोड़ना। संचित करना। जैसे,—कमा कमाकर रुपए रखना; ढूँढ ढूँढकर तसवीरें रखना।

संयो० क्रि०—चलना।—आना।—देना।—लेना।

(५) सपुर्द करना। सौंपना। (६) रेहन करना। बंधक में देना। जैसे,—घर के जेवर रखकर उन्हें कर्ज दिया था। (७) अपने अधिकार में लेना। अपने हाथ में करना। जैसे,—अभी यह रुपया हम रखते हैं। जब तुम्हें ज़रूरत हो, तब ले लेना।

संयो० क्रि०—लेना।

मुहा०—रख लेना = किसी की चीज उसे वापस न देना। दबा लेना। जैसे,—आपने मेरे लिये जो चीजें उनके पास भेजी थीं, वे सब उन्होंने रख लीं।

(८) पालन-पोषण, मनोविनोद या व्यवहार आदि के लिये अपने अधिकार में करना। अपनी अधीनता में लेना। जैसे,—गौ रखना; घोड़ा रखना; रंडी रखना; पहलवान रखना। (९) नियुक्त करना। तैनात करना। मुकर्रर करना। जैसे,—आपके काम के लिये मैंने अपने चार आदमी यहाँ रख दिए हैं। (१०) सकुशल जाने न देना। पकड़ या रोक लेना। जैसे,—दो डाकुओं को तो गाँववालों ने रखा। (११) आघात करना। चोट पहुँचाना। जड़ना। जैसे,—मुक्का रखना; थप्पड़ रखना। (१२) स्थगित करना। मुल्तवी करना। दूसरे समय के लिये टालना। जैसे,—यह बात-चीत कल पर रखो। (१३) उपस्थित न करना। सामने न लाना। जैसे,—यह सब झगड़ा अलग रखो। (१४) व्यवहार करना। धारण करना। जैसे,—आप सदा बढ़िया छड़ी रखते हैं। (१५) किसी पर आरोप करना। जिम्मे लगाना। मढ़ना। जैसे,—तुम सदा सब कसूर मुझ पर ही रखते हो।

मुहा०—हाथ रखना = ऐसी बात कहना जिससे कोई दबे, चिढ़े या एहसान माने। (किसी पर) रख कर कहना = किसी को सुनाने या चिढ़ाने के उद्देश से किसी दूसरे पर आरोपित करके कोई बात कहना। लक्ष्य बनाकर कहना।

(१६) ऋणी होना। कर्जदार होना। जैसे,—(क) हम क्या उनका कुछ रखते हैं, जो उनसे दबें! (ख) ये कभी किसी का एक पैसा नहीं रखते। (१७) मन में अनुभव या धारण करना। जैसे,—आशा रखना; विश्वास रखना। (१८) निवास कराना। डेरा कराना। ठहराना। जैसे,—हमने उन लोगों को धर्मशाला में रख दिया है। (१९) स्त्री (या पुरुष) से संबंध करना। उपपत्नी (या उपपति) बनाना। जैसे,—उसने एक औरत रख ली है। (२०) संभोग करना। प्रसंग करना। (बाजारू) (२१) गर्भ धारण करना। जैसे,—पेट रखना। (२२) पक्षियों आदि का अंडे देना। जैसे,—आपकी मुर्गी साल में कितने अंडे रखती है? (२३) अपने पास पड़ा रहने देना। बचाना। जैसे,—खा पीकर महीने में क्या रखते हो?

संयो० क्रि०—छोड़ना।

मुहा०—रखकर कहना = किसी बात का कुछ अंश बचाकर या छिपाकर शेष अंश कहना।

विशेष—संयुक्त क्रिया के रूप में इस शब्द का व्यवहार जिस क्रिया के आगे होता है, उससे सूचित होता है कि वह क्रिया किसी दूसरी क्रिया के पहले पूर्ण हो गई है या हो जानी चाहिए। जैसे,—मैंने उससे पहले ही कह रखा था कि तुम्हारे आने पर रुपया दे दे। मुहावरे के रूप में भी यह क्रिया दूसरी क्रियाओं के साथ लगती है।

रखनी-संज्ञा स्त्री० [हिं० रखना+ई (प्रत्य०)] वह स्त्री जिससे विवाह-संबंध न हुआ हो और जो योंही घर में रख ली गई हो। रखी हुई स्त्री। उपपत्नी। रखेली। सुरैतिन।

क्रि० प्र०—रखना।

रखला-संज्ञा पुं० दे० "रहकला"।

रखवाई-संज्ञा स्त्री० [हिं० रखना, या रखाना] (१) खेतों की रखवाली। चौकीदारी। (२) रखवाली की मजदूरी। चौकीदारी की मजदूरी। (३) चौकीदारी का टिकस। (४)

रखवाली करने की क्रिया या भाव । (५) रखने की क्रिया या ढंग । (६) रखने की मज़दूरी ।

रखवाना-क्रि० स० [हिं० रखना का प्रेर०] (१) रखने की क्रिया दूसरे से कराना । दूसरे को रखने में प्रवृत्त करना । (२) दे० "रखाना" ।

रखवारॐ†-संज्ञा पुं० [हिं० रखना + वार (प्रत्य०)] (१) रक्षा करनेवाला । रखवाला । (२) चौकीदार । पहरेदार ।

रखवारी†-संज्ञा स्त्री० दे० "रखवाली" ।

रखवाला-संज्ञा पुं० [हिं० रखना + वाला (प्रत्य०)] (१) रक्षा करनेवाला । रक्षक । (२) चौकीदार । पहरेदार ।

रखवाली-संज्ञा स्त्री० [हिं० रखना + वाली (प्रत्य०)] (१) रक्षा करने की क्रिया । हिफ़ाज़त । (२) रक्षा करने का भाव ।

रखशी†-संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का मद्य जिसे नैपाली आदि पहाड़ी पीते हैं ।

रखाई-संज्ञा स्त्री० [हिं० रखना + आई (प्रत्य०)] (१) रक्षा करने की क्रिया । हिफ़ाज़त । रखवाली । (२) रक्षा करने का भाव । (३) वह धन जो रक्षा करने के बदले में दिया जाय ।

रखान†-संज्ञा स्त्री० [हिं० रखना] चराई की भूमि । चरी ।

रखाना-क्रि० स० [हिं० रखना का प्रेर०] रखने की क्रिया दूसरे से कराना । दूसरे को रखने में प्रवृत्त करना ।

क्रि० अ० रखवाली करना । रक्षा करना । नष्ट होने से बचाना ।

रखार†-संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का पाटा जिसका व्यवहार बंबई प्रांत में जुता हुआ खेत बराबर करने के लिये होता है ।

रखियाॐ†-संज्ञा पुं० [हिं० रखना + इया (प्रत्य०)] (१) रक्षक । (२) रखनेवाला । उ०—रीसैं रिखयारि इंदुवदनी उदार सुर रूख की सी डार डोलै रंग रखियन मैं ।—देव ।

संज्ञा पुं० [हिं० राखी = रक्षा] गाँव के समीप का वह पेड़ जो पूजनार्थ रक्षित रहता है ।

रखियाना-क्रि० स० [हिं० राखी + इयाना (प्रत्य०)] (१) राख से बरतनों आदि को माँजना । (२) पकाए हुए खैर (कत्थे) को कपड़े में लपेटकर राख के अंदर इस अभिप्राय से रखना कि उसका पानी सूख जाय और कसाव निकल जाय । (तँबोली)

रखी-संज्ञा पुं० [सं० ऋषि] ऋषि । मुनि । (डिं०)

रखीराज-संज्ञा पुं० [सं० ऋषिराज] नारद ऋषि । (डिं०)

रखेड़िया†-संज्ञा पुं० [हिं० राख + एड़िया (प्रत्य०)] वह जो शरीर में केवल राख पोतकर साधु बना फिरे । ढोंगी साधु ।

रखेली-संज्ञा स्त्री० [हिं० रखना + एली (प्रत्य०)] बिना विवाह किए ही घर में रखी हुई स्त्री । रखनी । सुरेतिन । उपपत्नी ।

रखैया†-संज्ञा पुं० [हिं० रखना + ऐया (प्रत्य०)] (१) रखनेवाला । (२) रक्षा करनेवाला ।

रखौंड़ी†-संज्ञा स्त्री० [हिं० राखी = रक्षा] रक्षासूत्र । राखी । वि० दे० "राखी" ।

रखौत, रखौना‡-संज्ञा पुं० [हिं० रखना] पशुओं के चरने के लिये छोड़ी हुई ज़मीन । चरी ।

रखौनी†-संज्ञा स्त्री० दे० "राखी" ।

रगंड-संज्ञा पुं० [डिं०] हाथी का कपोल ।

रग-संज्ञा स्त्री० [फा०] (१) शरीर में की नस या नाड़ी । उ०—जीये रूह रहत में, जीये रूह रगन्न । जीये जो रउ सूरम ठंडउ चंद्र थनन्न ।—दादू ।

मुहा० - रग उतरना = (१) क्रोध उतरना । (२) हठ दूर होना । (३) आँत उतरना । रग खड़ी होना = शरीर की किसी रग का फूल जाना । रग चढ़ना = (१) क्रोध आना । गुस्सा आना । (२) हठ के वश होना । रग दबना = दबाव मानना । किसी के प्रभाव या अधिकार में होना । जैसे,—तुम्हारी रग उन्हीं से दबती है । रग फड़कना = किसी आनेवाली आपत्ति की पहले से ही आशंका होना । माथा ठनकना । रग रग फड़कना = शरीर में बहुत अधिक उत्साह या आवेश के लक्षण प्रकट होना । रग रग में = सारे शरीर में । जैसे,—पाजीपन तो तुम्हारी रग रग में भरा है ।

यौ०—रग-पट्ठा । रग-रेशा ।

(२) पत्तों में दिखाई पड़नेवाली नसें ।

रगड़-संज्ञा स्त्री० [हिं० रगड़ना] (१) रगड़ने की क्रिया या भाव । घर्षण । (२) वह हलका चिह्न जो साधारण घर्षण से उत्पन्न हो जाय ।

क्रि० प्र०—खाना ।—लगना ।

(३) कहारों की परिभाषा में, धक्का । (४) हुज्जत । झगड़ा । तकरार । (५) भारी श्रम । गहरी मेहनत ।

मुहा०—रगड़ पड़ना = अधिक परिश्रम उठाना पड़ना । जैसे,—उसे बहुत रगड़ पड़ी; इससे थक गया ।

रगड़ना-क्रि० स० [सं० घर्षण या अनु०] (१) किसी पदार्थ को दूसरे पदार्थ पर रखकर दबाते हुए बार बार इधर उधर चलाना । घर्षण करना । घिसना । जैसे,—चंदन रगड़ना ।

विशेष—यह क्रिया प्रायः किसी पदार्थ का कुछ अंश घिसने, उसे पीसने अथवा उसका तल बराबर करने के लिये होती है ।

(२) पीसना । जैसे,—मसाला रगड़ना; भाँग रगड़ना । (३) अभ्यास आदि के लिये बार बार कोई काम करना । (४) किसी काम को जल्दी जल्दी और बहुत परिश्रमपूर्वक करना । जैसे—इस काम को तो हम चार दिन में रगड़ डालेंगे । (५) तंग करना । दिक करना । परेशान करना । (६) स्त्री के साथ संभोग करना । प्रसंग करना । (बाज़ारू)

संयो० क्रि०—डालना। देना।

क्रि० अ० बहुत मेहनत करना। अत्यंत श्रम करना। जैसे,—अभी यहीं पड़े रगड़ रहे हैं।

रगड़वाना–क्रि० स० [हिं० रगड़ना का प्रेर० रूप] रगड़ने का काम दूसरे से कराना। दूसरे को रगड़ने में प्रवृत्त करना।

रगड़ा–संज्ञा पुं० [हिं० रगड़ना] (१) रगड़ने की क्रिया या भाव। घर्षण। रगड़। (२) निरंतर अथवा अत्यंत परिश्रम। बहुत अधिक उद्योग। (३) वह झगड़ा जो बराबर होता रहे और जिसका जल्दी अंत न हो। जैसे,—यह झगड़ा नहीं, रगड़ा है।

यौ०—रगड़ा झगड़ा = लड़ाई झगड़ा। बखेड़ा।

रगड़ान–संज्ञा स्त्री० [हिं० रगड़ना + आन (प्रत्य०)] रगड़ने की क्रिया या भाव। रगड़ा।

मुहा०—रगड़ान देना = रगड़ना। घिसना।

रगड़ी†–वि० [हिं० रगड़ा + ई (प्रत्य०)] रगड़ा करनेवाला। लड़ाई झगड़ा करनेवाला। झगड़ालू। जैसे,—मोरी एक न माने, कान्हा बड़ो रगड़ी। (गीत)

रगण–संज्ञा पुं० [सं०] छंदःशास्त्र में एक गण या तीन वर्णों का समूह जिसका पहला वर्ण गुरु, दूसरा लघु और तीसरा फिर गुरु होता है (ऽ।ऽ)। यह साधारणतः "र" से सूचित किया जाता है। इसके देवता अग्नि माने गए हैं। जैसे,—कामना। मामला। राम को।

रगत⊛–संज्ञा पुं० [सं० रक्त] रक्त। रुधिर। लहू। (डिं०)

रगदना–क्रि० स० दे० "रगेदना"।

रगदल⊛–वि० [हिं०] दुबड़ा।

रग पट्ठा–संज्ञा पुं० [फ़ा० रग + हिं० पट्ठा] (१) शरीर के भीतरी भिन्न भिन्न अंग।

मुहा०—रग पट्ठे से परिचित या वाकिफ होना = स्वभाव और व्यवहार आदि से परिचित होना। अच्छी तरह जानना। खूब पहचानना।

(२) किसी विषय की भीतरी और सूक्ष्म बातें।

रग़बत–संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) चाह। इच्छा। (२) प्रवृत्ति। रुचि।

रगर⊛†–संज्ञा स्त्री० दे० "रगड़"।

रगरा†–संज्ञा पुं० दे० "रगड़ा"।

रग रेशा–संज्ञा पुं० [फ़ा० रग + रेशा] (१) पत्तियों की नसें। (२) शरीर के अंदर का प्रत्येक अंग।

मुहा०—रग रेशे में = सारे शरीर में। अंग अंग में। रग रेशे से परिचित या वाकिफ होना = स्वभाव और व्यवहार आदि से परिचित होना। अच्छी तरह जानना। खूब पहचानना।

(३) किसी विषय की भीतरी और सूक्ष्म बातें।

रगवाना⊛†–क्रि० स० [हिं० रगाना का प्रेर० रूप] चुप कराना। शांत कराना। उ०—कुँवर कहूँ रोदन अति करहीं नहीं रगा रगवावैं।—रघुराज।

रगा†–संज्ञा पुं० [देश०] मोर।

रगाना†–क्रि० अ० [देश०] चुप होना। शांत होना।

क्रि० स० चुप कराना। शांत करना।

रगी–संज्ञा स्त्री० [देश०] (१) एक प्रकार का मोटा अन्न जो मैसूर में होता है। (२) दे० "रग्गी"।

संज्ञा पुं० दे० "रगीला"।

रगीला–संज्ञा पुं० [हिं० रग = जिद + ईला (प्रत्य०)] [स्त्री० रगीली] (१) हठी। जिद्दी। दुराग्रही। (२) पाजी। दुष्ट।

रगेद–संज्ञा स्त्री० [हिं० रगेदना] (१) दौड़ाने या भगाने की क्रिया। (२) पक्षियों आदि की संभोग की प्रवृत्ति या अवसर। जोड़ा खाने का मौका।

रगेदना–क्रि० स० [सं० खेट, हिं० खेदना] भगाना। खदेड़ना। निकालना। दौड़ाना।

संयो० क्रि०—देना।

रग्गा–संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का मोटा अन्न जो दक्षिण के पहाड़ों में होता है। रगी।

† संज्ञा स्त्री० अधिक वर्षा के उपरांत होनेवाली धूप, जो खेती के लिये लाभदायक होती है।

रघु–संज्ञा पुं० [सं०] (१) सूर्यवंशी राजा दिलीप के पुत्र का नाम जो उनकी पत्नी सुदक्षिणा के गर्भ से उत्पन्न हुए थे। ये अयोध्या के बहुत प्रतापी राजा और श्री रामचंद्र के परदादा थे। जब ये छोटे थे, तभी इनके पिता ने अश्वमेध यज्ञ किया था और यज्ञ के घोड़े की रक्षा का भार इन्हें सौंपा था। जब उस घोड़े को इंद्र ने पकड़ा, तब इन्होंने इंद्र को युद्ध में पराजित करके वह घोड़ा छुड़ाया था। सिंहासन पर बैठने के उपरांत इन्होंने विश्वजित् नामक यज्ञ किया था, जिसमें अपना सर्वस्व ब्राह्मणों को दे डाला था। महाराज अज इन्हीं के पुत्र थे। प्रसिद्ध रघुवंश के मूल पुरुष यही थे। (२) रघु के वंश में उत्पन्न कोई व्यक्ति।

रघुकुल–संज्ञा पुं० [सं०] राजा रघु का वंश।

विशेष—इस शब्द में चंद्र, मणि, नाथ, पति, पर, वीर आदि और उनके वाचक शब्द लगाने से श्री रामचंद्र का बोध होता है। जैसे,—रघुकुलचंद्र, रघुकुलमणि, रघुनाथ, रघुपति, रघुवर, रघुवीर इत्यादि।

रघुनंद–संज्ञा पुं० [सं०] श्रीरामचंद्र।

रघुनंदन–संज्ञा पुं० [सं०] श्रीरामचंद्र।

रघुनाथ–संज्ञा पुं० [सं०] श्रीरामचंद्र।

रघुनायक–संज्ञा पुं० [सं०] रघुकुलस्वामी, श्रीरामचंद्र।

रघुपति–संज्ञा पुं० [सं०] रघुवंश के स्वामी, श्रीरामचंद्र।

रघुराइ⊛–संज्ञा पुं० [सं० रघुराज] श्रीरामचंद्र।

रघुराज-संज्ञा पुं० [सं०] रघुकुल के राजा, श्रीरामचंद्र ।

रघुरायॐ-संज्ञा पुं० [सं० रघुराज] रघुवंश के राजा, श्रीरामचंद्र ।

रघुरैयाॐ-संज्ञा पुं० दे० "रघुराय" ।

रघुवंश-संज्ञा पुं० [सं०] (१) महाराज रघु का वंश या खानदान जिसमें रामचंद्र जी उत्पन्न हुए थे। उ०—तेहि अवसर भंजन महि भारा। हरि रघुवंश लीन्ह अवतारा।—तुलसी। (२) महाकवि कालिदास का रचा हुआ एक प्रसिद्ध महाकाव्य जिसमें महाराज दिलीप के समय से लेकर अग्निवंश तक का विवरण दिया हुआ है।

रघुवंशकुमार-संज्ञा पुं० [सं०] श्रीरामचंद्र ।

रघुवंशी-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जो रघु के वंश में उत्पन्न हुआ हो। (२) क्षत्रियों के अंतर्गत एक जाति। इस जाति के लोग महाराज रघु और रामचंद्र के वंश में उत्पन्न माने जाते हैं।

रघुवर-संज्ञा पुं० [सं०] रघुकुल-श्रेष्ठ, श्रीरामचंद्र ।

रघुवीर-संज्ञा पुं० [सं०] रघुकुल में वीर श्रीरामचंद्र जी।

रघूत्तम-संज्ञा पुं० [सं०] रघुकुल में श्रेष्ठ वा उत्तम, श्रीरामचंद्र ।

रघूद्वह-संज्ञा पुं० [सं०] रघुवंशियों में श्रेष्ठ, श्रीरामचंद्र ।

रघ्रती-संज्ञा पुं० [डिं०] संतोष । सब्र ।

रचक-संज्ञा पुं० [सं०] रचना करनेवाला । रचयिता । उ०—पालक संहारक रचक भक्षक रक्ष अपार । सब ही सबको होत है को जानै के बार ।—केशव ।

वि० दे० "रंचक" ।

रचना-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) रचने या बनाने की क्रिया या भाव । बनावट । निर्माण । उ०—(क) गढ़-रचना वरुनी अलक चितवन भौंह कमान ।—बिहारी । (ख) चलो, रंगभूमि की रचना देख आवें ।—लल्लूलाल । (२) बनाने का ढंग या कौशल । (३) बनाई हुई वस्तु । रची हुई चीज । सृजित पदार्थ । निर्मित वस्तु । उ०—(क) अद्भुत रचना विधि रची या में नहीं विवाद । विना जीभ के लेत दृग रूप सलोनो स्वाद ।—रसनिधि । (ख) तब श्रीकृष्णचंद्र जी ने सब को मोहित कर जो वैकुंठ की रचना रची थी, सो उठा ली ।—लल्लूलाल । (४) फूलों से माला या गुच्छे आदि बनाना । (५) बाल गूँधना । केश-विन्यास । (६) स्थापित करना । (७) उद्यम । कार्य्य । (८) वह गद्य या पद्य जिसमें कोई विशेष चमत्कार हो । उ०—वचननि की रचनानि सौं जो साधै निज काज ।—पद्माकर । (९) पुराणानुसार विश्वकर्मा की स्त्री का नाम ।

क्रि० स० [सं० रचन] (१) हाथों से बनाकर तैयार करना । बनाना । सिरजना । निर्माण करना उ०—(क) तपबल रचइ प्रपंच बिधाता । तप बल विष्णु सकल जग त्राता ।—तुलसी । (ख) इहाँ हिमाचल रचेउ बिताना । अति बिचित्र नहिं जाइ बखाना ।—तुलसी । (२) विधान करना । निश्चित करना । उ०—अस बिचारि सोचइ मति माता । सो न टरै जो रचइ बिधाता ।—तुलसी । (३) ग्रंथ आदि लिखना । उ०—गुनी और रिझवार ये दोउ प्रसिद्ध ह्वै जात । एक ग्रंथ के रचन सौं दोगुन जस सरसात । (४) उत्पन्न करना । पैदा करना । (५) अनुष्ठान करना । ठानना । उ०—(क) रति बिपरीति रची दंपति गुपुत अति मेरे जान मनि भय मनमथ नेजे तें ।—पद्माकर । (ख) तव एक-विंशति बार मैं बिन क्षत्र की पृथ्वी रची ।—केशव । (ग) सखि पान खवावत ही केहि कारण कोप पिया पर नारि रच्यौ ।—केशव । (६) आडंबर खड़ा करना । युक्ति या तदबीर लगाना । आयोजन करना । जैसे,—आडंबर रचना; उपाय रचना; जाल रचना । उ०—(क) रचि प्रपंच भूपहिं अपनाई । राम तिलक हित लगन धराई ।—तुलसी । (ख) रचि पचि कोटिक कुटिल पन कीन्हेसि कपट प्रबोध ।—तुलसी । (७) काल्पनिक सृष्टि करना । कल्पना करना । उ०—कबहुँ धेनु रचि पसरु चरावैं । कबहुँ भूप बनि नीति सिखावैं ।—रघुनाथ । (८) शृंगार करना । सँवारना । सजाना । कारीगरी करना । उ०—भूषण बसन आदि सब रचि रचि माता लाड़ लड़ावै ।—सूर । (९) तरतीब या क्रम से रखना । उ०—चहूँघा बेदी के विधिवत रची हैं अगिनि ये । बिछीं दर्भा नेरे अरु प्रजुल सोहैं समदि लै ।—लक्ष्मणसिंह ।

ॐ-मुहा०—रचि-रचि = बहुत होशियारी और कारीगरी के साथ (कोई काम करना) । बहुत कौशलपूर्वक ।

क्रि० स० [सं० रंजन] रँगना । रंजित करना । उ०—(क) मार्ग को झरोखे तक लाख के रंग से रच दिया ।—लक्ष्मणसिंह । (ख) रोचन रोरी रची मेंहदी नृप संभु कहैं मुकता सम पोत है ।—शंभु ।

क्रि० अ० [सं० रंजन] (१) अनुरक्त होना । उ०—(क) पर नारि से रचे हैं पिय ।—पद्माकर । (ख) जो अपने पिय रूप रची कवि राम तिन्हें रवि की छवि थोरी ।—हृदयराम । (ग) मोहि तोहि मेहँदी कहूँ कैसे बनै बनाइ । जिन चरनन सौं मैं रची तहाँ रची तू जाइ ।—रसनिधि । (घ) चिता न चित फीको भयो रची जु पिय के रंग ।—सूर । (२) रंग चढ़ना । रँगा जाना । रंजित होना । जैसे,—(क) तुम्हारे मुँह में पान खूब रचता है । (ख) उसके हाथ में मेहँदी खूब रचती है । उ०—(क) गान सरस अलि करत परस मद मोद रंग रचि ।—गुमान । (ख) जावकरचित अँगुरियन मृदुल सुठारी हो ।—तुलसी ।

रचयिता-संज्ञा पुं० [सं० रचयितृ] रचनेवाला । बनानेवाला । जैसे,—आप ही इस ग्रंथ के रचयिता हैं ।

पाइ सचिव सहेली धाइ सतानंद ल्याये सिय सिविका चढ़ाइ कै।—तुलसी। (ग) चले सीस धरि राम रजाई।—तुल्सी। (२) दे० "रज़ा"।

रजाइस‡-संज्ञा स्त्री० [अ० रज़ा + आइस (हिं० प्रत्य०)] आज्ञा। हुक्म।

रजाई-संज्ञा स्त्री० [सं० रजक = कपड़ा ?] एक प्रकार का जाड़े का ओढ़ना जिसका कपड़ा दोहरा होता है और जिसमें रूई भरी होती है। लिहाफ़।

संज्ञा स्त्री० [हिं० राजा + आई (प्रत्य०)] राजा होने का भाव। राजापन।

रजाना-क्रि० स० [सं० राज्य] (१) राज्य-सुख का भोग कराना। उ०—रूठ रही मन सों कह्यौ भूपति आनँद आज न याहि रुठाऊँ। माँगु कह्यौ बनवासदे रामहिं हौं अपने सुत राज रजाऊँ।—हृदयराम। (२) बहुत अधिक सुख देना। बहुत अच्छी तरह से रखना। जैसे,—वे अपने सभी संबंधियों को राज रजा रहे हैं।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग "राज" या "राज्य" शब्द के साथ ही होता है, अलग नहीं।

रज़ामंद-वि० [फ़ा०] जो किसी बात पर राज़ी हो गया हो। सहमत। जैसे,—अगर आप इस बात में रजामंद हों, तो यही सही।

रज़ामंदी-संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] राज़ी या सहमत होने का भाव। सहमति। स्वीकृति। जैसे,—जो काम होगा, वह आपकी रजामंदी से होगा।

रजाय‡-संज्ञा स्त्री० [अ० रज़ा] (१) आज्ञा। हुक्म। उ०—(क) चोरन उर करि शुद्ध अति जाहु सु दियो रजाय।—रघुराज। (ख) कोपि दसकंध तब प्रलय पयोद बोल्यो, रावन रजाय धाय आये यूथ जोरि कै।—तुलसी। (२) मरज़ी। इच्छा।

रजायस, रजायसु‡-संज्ञा पुं० [हिं० राजा अथवा अ० रज़ा + आयसु] आज्ञा। हुक्म। उ०—(क) भयो रजायस मारहु सूआ। सूर न आउ चाँद जहँ ऊआ।—जायसी। (ख) अब तो सूर शरण तकि आया, सोइ रजायसु दीजै। जेहि तें रहै ग्रसु भ्रम मेरो वहै मतो कछु कीजै।—सूर। (ग) जबै जमराज रजायसु तें तोहिं लै चलिहैं भट बाँधि नटैया।—तुलसी।

रजिया-संज्ञा स्त्री० [देश०] (१) अनाज नापने का एक मान जो प्रायः डेढ़ सेर का होता है। (२) काठ का वह बरतन जो इस मान का होता है।

रजिस्टर-संज्ञा [अं०] अँगरेजी ढंग की बही या किताब आदि जिसमें किसी मद का आय व्यय अथवा किसी विषय का विस्तृत विवरण, सिलसिलेवार या खानेवार, लिखा जाता हो।

रजिस्टरी-संज्ञा स्त्री० [अं०] (१) किसी लिखित प्रतिज्ञापत्र को कानून के अनुसार सरकारी रजिस्टरों में दर्ज कराने का काम।

विशेष—प्रायः सभी देशों में यह नियम है कि बैनामे दस्तावेज तथा इसी प्रकार के और सब कागज-पत्र लिखे जाने के उपरांत सरकारी रजिस्टरों में दर्ज करा लिए जाते हैं। इससे लाभ यह होता है कि उस कागज़ में लिखी हुई सब बातें बिल्कुल पक्की हो जाती हैं; और यदि कोई पक्ष उन बातों के विपरीत कोई काम करता है, तो वह न्यायालय से दंड का भागी होता है। यदि मूल कागज़ किसी प्रकार खो जाय, तो उसके बदले में आवश्यकता पड़ने पर रजिस्टरीवाली नकल से भी काम चल जाता है।

(२) चिट्ठी, पारसल आदि डाक से भेजने के समय डाकखाने के रजिस्टर में उसे दर्ज कराने का काम, जिसके लिये कुछ अलग फ़ीस या दाम देना पड़ता है।

विशेष—इस प्रकार की रजिस्टरी से यह लाभ होता है कि रजिस्टरी कराई हुई चीज़ खोने नहीं पाती; और यदि खो जाय, तो डाकखाना उसके लिये जिम्मेदार होता है। यदि पानेवाला किसी समय उस चिट्ठी या पारसल आदि के पाने से इन्कार करे, तो उसके विरुद्ध डाकखाने से रजिस्टरी का प्रमाण भी दिया जा सकता है।

रज़ीडंट-संज्ञा पुं० दे० "रेज़िडेंट"।

रज़ील-वि० [अ०] छोटी जाति का। नीच।

रज्जु-संज्ञा स्त्री० दे० "रज्जु"।

रजोकुल*-संज्ञा पुं० [सं० राजकुल] राजवंश। राजघराना। उ०—राजति राज रजोकुल में अति भाग सुहागिनि राज-दुलारी।

रजोगुण-संज्ञा पुं० [सं०] प्रकृति का वह स्वभाव जिससे जीवधारियों में भोग-विलास तथा दिखावे की रुचि उत्पन्न होती है। राजस। यह सांख्य के अनुसार प्रकृति के तीन गुणों में से एक है जो चंचल और भोग-विलास आदि में प्रवृत्त करनेवाला कहा गया है। वि० दे० "गुण"।

रजोगोत्र-संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार वशिष्ठ के एक पुत्र।

रजोदर्शन-संज्ञा पुं० [सं०] स्त्रियों का मासिक धर्म। रजस्वला होना।

रजोधर्म-संज्ञा पुं० [सं०] स्त्रियों का मासिक धर्म।

रजोरस-संज्ञा पुं० [सं०] अंधकार। अँधेरा।

रज्जु-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) रस्सी। जेवरी। उ०—यों घिवै को भय मयंद रेणु की रजु बटत।—तुलसी। (२) घोड़े की लगाम की डोरी। बाग-डोर। (३) स्त्रियों के सिर की चोटी।

रज्जुकंठ-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन आचार्य्य का नाम।

रज्जुदालक-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का जल-चर पक्षी जिसका मांस खाने का शास्त्रकारों ने निषेध किया है।

रज्जुवाल-संज्ञा पुं० [सं०] मनु के अनुसार एक प्रकार का पक्षी।

रझना†-संज्ञा पुं० [सं० रंधन या रंजन] रँगरेजों का वह पात्र जिसमें वे रँगे हुए कपड़े में का रंग निचोड़ते हैं।

रटंत-संज्ञा स्त्री० [हिं० रटना = अंत (प्रत्य०)] रटने की क्रिया का भाव। रटाई।

रटंती-संज्ञा स्त्री० [सं०] माघ मास के कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी जो एक पुण्य-तिथि समझी जाती है। इस दिन सूर्योदय के समय स्नान करने का बहुत माहात्म्य कहा गया है।

रट-संज्ञा स्त्री० [हिं० रटना] किसी शब्द को बार बार उच्चारण करने की क्रिया। जैसे,—तुमने तो "लाओ", "लाओ" की रट लगा दी है। उ०—(क) राम राम रटु विकल भुआलू।—तुलसी। (ख) केशव वे तुहि तोहि रटैं रट तोहिं हुती उनही की लगी है।—केशव। (ग) जैसी रट तोहिं लागी माधव की राधे ऐसी राधे राधे राधे रट माधवै लगी रहै।—पद्माकर।

क्रि० प्र०—मचाना।—लगना।—लगाना।

रटन-संज्ञा स्त्री० [हिं० रटना] रटने की क्रिया या भाव। रट।

*संज्ञा पुं० [सं०] कहना। बोलना।

रटना-क्रि० स० [अनु०] (१) किसी शब्द को बार बार कहना। उ०—(क) जानि यह केसोदास अनुदिन राम राम रटत रहत न डरत पुनरुक्ति को।—केशव। (ख) असगुन होहिं नगर पैसारा। रटहिं कुभाँति कुखेत करारा।—तुलसी। (२) जबानी याद करने के लिये बार बार उच्चारण करना। जैसे,—इन शब्दों का अर्थ रट डालो।

संयो० क्रि०—डालना।—लेना।

(३) बार बार शब्द करना। बजना। उ०—कटि तट रटति चारु किंकिनि रव अनुपम बरनि न जाई—तुलसी।

रठा†-वि० [?] रूखा। शुष्क। उ०—मेरी कही मान लीजे आजु मान माँगे दीजे चित हित कीजै तत तीजै रोस रठु है।—रघुनाथ।

रढ़ना*-क्रि० स० दे० "रटना"। उ०—जब पाहन भे बनबाहन से उतरे बनरा जै राम रढ़ैं।—तुलसी।

रढ़िया†-संज्ञा स्त्री० [देश० या राढ़ (देश) ?] एक प्रकार की देशी कपास जो साधारण कोटि की होती है।

रण-संज्ञा पुं० [सं०] (१) लड़ाई। युद्ध। जंग।

यौ०—रणस्थल। रणक्षेत्र। रणभूमि।

(२) रमण। (३) शब्द। (४) गति। (५) दुंबा नामक भेड़ा जिसकी दुम मोटी और भारी होती है।

रणक्षेत्र-संज्ञा पुं० [सं०] वह भूमि जहाँ युद्ध हो। लड़ाई का मैदान।

रणछोड़-संज्ञा पुं० [सं० रण + हिं० छोड़ना] श्रीकृष्ण का एक नाम। (जरासंध की चढ़ाई के समय श्रीकृष्ण रणभूमि त्याग कर द्वारका की ओर चले गए थे, इसी से उनका यह नाम पड़ा है।)

रणखेत*-संज्ञा पुं० दे० "रणक्षेत्र"।

रणन-क्रि० अ० [सं०] शब्द करना। बजना।

रणप्रिय-संज्ञा पुं० [सं०] (१) विष्णु। (२) बाज पक्षी। (३) खस।

रणभूमि-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्थान जहाँ युद्ध हो। लड़ाई का मैदान।

रणमंडा-संज्ञा स्त्री० [सं० रण + मंडन] पृथ्वी। (डिं०)

रणमत्त-संज्ञा पुं० [सं०] हाथी।

रणमुष्टि-संज्ञा पुं० [सं०] कुचिला।

रणरंक-संज्ञा पुं० [सं०] हाथी के बाहरी दोनों दाँतों के बीच का भाग।

रणरंग-संज्ञा पुं० [सं०] (१) लड़ाई का उत्साह। उ०—कुंभकरण दुर्मद रणरंगा।—तुलसी। (२) युद्ध लड़ाई। (३) युद्धक्षेत्र।

रणरण-संज्ञा पुं० [सं०] (१) व्यग्रता। घबराहट। व्याकुलता। (२) पछतावा। रंज।

रणरणक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) कामदेव का एक नाम। (२) प्रबल कामना। उत्कंठा। (३) व्यग्रता। घबराहट।

रणलक्ष्मी-संज्ञा स्त्री० [सं०] युद्ध की देवी जो विजय करानेवाली मानी जाती है। विजय-लक्ष्मी।

रणसिंघा-संज्ञा पुं० [सं० रण + हिं० सिंघा] तुरही। नरसिंघा। उ०—रणसिंहों का जो शब्द होता था, सो अति ही सुहावना लगता था।—लल्लूलाल।

रणसिंहा-संज्ञा पुं० दे० "रणसिंघा"।

रणवृत्ति-संज्ञा पुं० [सं०] सैनिक। योद्धा।

रणस्तंभ-संज्ञा पुं० [सं०] वह स्तंभ जो किसी रण में विजय प्राप्त करने के स्मारक में बनवाया जाता है। विजय का स्मारक।

रणस्थल-संज्ञा पुं० [सं०] लड़ाई का मैदान। रणभूमि।

रणस्वामी-संज्ञा पुं० [सं० रणस्वामिन्] (१) शिव। महादेव। (२) युद्ध का प्रधान संचालक या सेनापति।

रणहंस-संज्ञा पुं० [सं०] एक वर्ण वृत्त का नाम जिसके प्रत्येक चरण में सगण, जगण, भगण और रगण होते हैं। इसको 'मनहंस' 'मानहंस' और 'मानसहंस' भी कहते हैं।

रणांगण-संज्ञा पुं० [सं०] लड़ाई का मैदान। युद्ध-क्षेत्र।

रणि*-संज्ञा स्त्री० [हिं० रैन] रात्रि। रात। (डिं०)

रणेचर-संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु।

रणेश-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शिव। (२) विष्णु।

रणोत्कट-संज्ञा पुं० [सं०] (१) कार्त्तिकेय के एक अनुचर का नाम। (२) एक दैत्य का नाम।
वि० जो रण में सम्मिलित होने या रण ठानने के लिये उन्मत्त हो रहा हो।

रत-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मैथुन। प्रसंग। उ०—प्रिया को है बिम्बाधर मृदुल ज्यों पल्लव नयो। लियो धीरें धीरें रहसि रस मैंने रत समै।—लक्ष्मण। (२) योनि। (३) लिंग। (४) प्रेम। प्रीति।
वि० (१) प्रेम में पड़ा हुआ। अनुरक्त। आसक्त। (२) (कार्य आदि में) लगा हुआ। लिप्त। लीन। तत्पर।
⁎-संज्ञा पुं० [सं० रक्त, प्रा० रत्त] रक्त। खून। लहू। (डिं०)

रतकील-संज्ञा पुं० [सं०] कुत्ता।

रतगुरु-संज्ञा पुं० [सं०] पति। खसम। शौहर।

रतजगा-संज्ञा पुं० [हिं० रात+जागना] (१) किसी उत्सव या विहार आदि के लिये सारी रात जागकर बिता देना। (२) वह आनंदोत्सव जो रात भर होता रहे। (३) एक त्योहार जो पूर्वी संयुक्त प्रांत तथा बिहार आदि में भाद्रपद कृष्ण २ की रात को होता है। इसमें प्रायः स्त्रियाँ रात भर कजली आदि गाया करती हैं।

रतताली-संज्ञा स्त्री० [सं०] कुट्टनी।

रतन-संज्ञा पुं० दे० "रत्न"।

रतनजोत-संज्ञा स्त्री० [सं० रत्न+ज्योति] (१) एक प्रकार की मणि। (२) एक प्रकार का बहुत छोटा क्षुप जो काश्मीर और कुमाऊँ में अधिकता से होता है। इसके डंठल प्रायः डेढ़ बालिश्त तक लंबे होते हैं, जिनमें काहू के पत्तों के से, प्रायः चार अंगुल तक लंबे और कुछ अनीदार पत्ते और छोटे छोटे फूलों तथा फलों के गुच्छे लगते हैं। इसकी जड़ लाल रंग की होती है, जिससे लाल रंग निकाला जाता है और तेल आदि रँगे जाते हैं। वैद्यक में यह गरम, रूखा, पित्तघ्न, त्रिदोषनाशक तथा जीर्णज्वर, प्लीहा, शोथ आदि को दूर करनेवाली और मस्तिष्क को हानि पहुँचानेवाली कही गई है। इसके कई भेद होते हैं, जिनमें से एक के डंठल और पत्ते अपेक्षाकृत बड़े होते हैं; और एक छत्ते के आकार की होती है जिसकी पत्तियाँ बहुत छोटी होती हैं। वैद्यक के अनुसार इन सब के गुण भी भिन्न भिन्न होते हैं; और इनका व्यवहार औषध रूप में होता है। (३) बृहद्दंती। बड़ी दंती। वि० दे० "दंती"।

रतनाकर-संज्ञा पुं० (१) दे० "रत्नाकर"। (२) दे० "रतनजोत"।

रतनागर⁎-संज्ञा पुं० [सं० रत्नाकर] समुद्र। उ०—जनमि जगत जसु प्रगटिहु मातु पिताकर। सीय-रतन तुम उपजिहु भव-रतनागर।—तुलसी।

रतनागरभ-संज्ञा स्त्री० [सं० रत्नगर्भा] पृथ्वी। भूमि। (डिं०)

रतनार-वि० दे० "रतनारा"।

रतनारा-वि० [सं० रक्त, प्रा० रत्त+नाल=पीला सुरमा अथवा रत्न=माणिक+-आर (प्रत्य०)] कुछ लाल। सुर्खी लिए हुए। उ०—दुलरी कंठ नयन रतनारे मो मन चिते हरौरी।—सूर।
विशेष—इस शब्द का प्रयोग अधिकतर आँखों के लिये ही होता है।

रतनारी-संज्ञा पुं० [हिं० रतनार+ई (प्रत्य०)] एक प्रकार का धान। उ०—कपूर काट कजरी रतनारी। मधुकर ढेला जीरा सारी।—जायसी।
संज्ञा स्त्री० लाली। लालिमा। सुर्खी।
वि० दे० "रतनारा"।

रतनारीच-संज्ञा पुं० [सं०] (१) कामदेव। (२) कुत्ता। (३) आवारा। लंपट। बदचलन।

रतनालिया⁎†-वि० दे० "रतनारा"। उ०—आँखड़िया रतनालिया चेजा करूँ प्रताल। मैं तोहिं पूछौं माछली तूँ क्यों बंधी जाल।—कबीर।

रतनावली-संज्ञा स्त्री० दे० "रत्नावली"।

रतनिधि-संज्ञा पुं० [सं०] खंजन पक्षी। ममोला।

रतबंध-संज्ञा पुं० दे० "रतिबंध"।

रतमुहाँ⁎†-वि० [हिं० रत=लाल+मुँह] [स्त्री० रतमुहीं] लाल मुँहवाला। उ०—रायमुनी तुम्ह औ रतमुहीं। अलिमुख लाग भई फुल जुही।—जायसी।
संज्ञा पुं० बंदर।

रतवाँस†-संज्ञा पुं० [हिं० रात+वाँस (प्रत्य०)] हाथियों और घोड़ों का वह चारा जो उन्हें रात के समय दिया जाता है।

रतवाई†-संज्ञा स्त्री० [देश०] पहले दिन कोल्हू चलने पर उसका रस लोगों में बाँटने की प्रथा।

रतव्रण-संज्ञा पुं० [सं०] कुत्ता।

रतशायी-संज्ञा पुं० [सं० रतशायिन्] कुत्ता।

रतहिंडक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जो स्त्रियों को चुराता हो। (२) लंपट। आवारा। बदचलन।

रतांजली-संज्ञा स्त्री० [सं०] रक्तचंदन। लाल चंदन।

रतांदुक-संज्ञा पुं० [सं०] कुत्ता।

रता†-संज्ञा स्त्री० [देश०] भुकड़ी, जो अनेक वस्तुओं पर प्रायः बरसात के दिनों में या सीड़ की जगह में लग जाती है।

रताना⁎†-क्रि० अ० [सं० रत+आना (प्रत्य०)] रत होना। उ०—कीधौं स्याम हटकि हैं राख्यो कीधौं आपु रतान्यौ।—सूर।
क्रि० स० किसी को अपनी ओर रत करना।

रतायनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] वेश्या। रंडी।

रतालू-संज्ञा पुं० [सं० रक्तालु] (१) पिंडालु नामक कंद जिसका

व्यवहार तरकारी बनाने में होता है। (२) वाराहीकंद। गेंठी।

रति-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) कामदेव की पत्नी जो दक्ष प्रजापति की कन्या मानी जाती है। कहते हैं कि दक्ष ने अपने शरीर के पसीने से इसे उत्पन्न करके कामदेव को अर्पित किया था। यह संसार की सब से अधिक रूपवती और सौंदर्य्य की साक्षात् मूर्त्ति मानी जाती है। इसे देखकर सभी देवताओं के मन में अनुराग उत्पन्न हुआ था; इसलिये इसका नाम रति पड़ा था। जिस समय शिवजी ने कामदेव को अपने तीसरे नेत्र से भस्म कर दिया था, उस समय इसने बहुत अधिक विलाप करके शिवजी से यह वरदान प्राप्त किया था कि अब से कामदेव बिना शरीर के या अनंग होकर सदा बना रहेगा। यह भी माना जाता है कि यह सदा कामदेव के साथ रहती है। वि० दे० "कामदेव"। उ०—राधा हरि केरी प्रीति सब तें अधिक जानि रति रतिनाथ हूँ देखो रति थोरी सी।—केशव। (२) काम क्रीड़ा। संभोग। मैथुन। उ०—(क) रति जय लिखिवे की लेखनी सुरेख किधौं मीनरथ सारथी के नोदन नवीने हैं।—केशव। (ख) लाज गरब आरस उमग भरे नैन मुसकात। राति रमी रति देत कहि औरै प्रभा प्रभात।—बिहारी। (३) प्रीति। प्रेम। अनुराग। मुहब्बत।

क्रि० प्र०—करना।—जोड़ना।—लगाना।—होना।

(४) शोभा। छवि। उ०—चोटी में लपेटी एक मणि ही सुकादि दीन्ही दीजो राम हाथ जो बढ़ैया तेरी रति को।—हृदयराम। (५) सौभाग्य। खुशकिस्मती। (६) साहित्य में श्रृंगार रस का स्थायी भाव। नायक नायिका के मन में एक दूसरे के प्रति आकर्षण। नायक नायिका की परस्पर प्रीति या प्रेम। (७) वह कर्म्म जिसका उदय होने से किसी रमणीक वस्तु से मन प्रसन्न होता है। (जैन) (८) गुप्त भेद। रहस्य।

संज्ञा स्त्री० दे० "रत्ती"।

क्रि० वि० दे० "रती"। उ०—कत सकुचत निधरक फिरौ रतियौ खोरि तुम्हें न। कहा करौ जो जाहिं ये लगैं लगौंहैं नैन।—बिहारी।

*संज्ञा स्त्री० [हिं० रात] रात। रात्रि। रैन। उ०—सही रँगीले रति जगे जगी पगी सुख चैन। अलसौंहैं सौंहैं किये कहैं हँसौंहैं नैन।—बिहारी।

विशेष—केवल समस्त पदों में ही इस शब्द का इस रूप में व्यवहार होता है।

रतिक*†-क्रि० वि० [हिं० रती + क (प्रत्य०)] रत्ती भर। बहुत थोड़ा। जरा सा। उ०—नेरे चलि आय छलि मेरे मुख पंकज को परसी निसंक नहिं संक करै रतिको।—दीनदयाल।

रतिकर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) कामी। (२) एक प्रकार की समाधि।

वि० (१) जिससे आनंद की वृद्धि हो। (२) जिससे प्रेम की वृद्धि हो।

रतिकलह-संज्ञा पुं० [सं०] मैथुन। संभोग।

रतिकांत-संज्ञा पुं० [सं०] कामदेव।

रतिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] ऋषभ स्वर की तीन श्रुतियों में से अंतिम श्रुति। (संगीत)

रतिकुहर-संज्ञा पुं० [सं०] योनि। भग।

रतिकेलि-संज्ञा स्त्री० [सं०] भोगविलास। संभोग।

रतिक्रिया-संज्ञा स्त्री० [सं०] मैथुन। संभोग।

रतिगर†-क्रि० वि० [हिं० रात + गर ?] प्रातःकाल। बड़े तड़के। सवेरे।

रतिगृह-संज्ञा पुं० [सं०] योनि। भग।

रतिज्ञ-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जो रतिक्रिया में चतुर हो। (२) वह जो किसी स्त्री के मन में अपने प्रति प्रेम उत्पन्न करने में निपुण हो।

रतितस्कर-संज्ञा पुं० [सं०] वह जो स्त्रियों को अपने साथ व्यभिचार करने में प्रवृत्त करता हो।

रतिताल-संज्ञा पुं० [सं०] ताल के साठ मुख्य भेदों में से एक भेद। (संगीत)

रतिदान-संज्ञा पुं० [सं०] संभोग। मैथुन। उ०—रघुनाथ ऐसो भेस धरे प्रानप्यारो आयो प्रात कहूँ बसि राति दीन्हे रतिदान को।—रघुनाथ।

रतिदेव-संज्ञा पुं० [सं०] (१) विष्णु। (२) एक चंद्रवंशीय राजा का नाम जो सांकृति के पुत्र थे। (३) कुत्ता।

रतिधन-संज्ञा पुं० [सं०] वह अस्त्र जिससे दूसरे अस्त्रों का नाश होता हो।

रतिनाग-संज्ञा पुं० [सं०] सोलह प्रकार के रतिबंधों में से एक प्रकार का रतिबंध। (कामशास्त्र)

रतिनाथ-संज्ञा पुं० [सं०] कामदेव।

रतिनायक-संज्ञा पुं० [सं०] कामदेव। उ०—(क) न अंगै न भंगै जिय जानि सिलीमुख पंच धरे रतिनायक है।—तुलसी। (ख) काहे दुरावति है सजनी रतिनायक सायक एही कहे हैं।—मन्नालाल।

रतिनाह*-संज्ञा पुं० [सं० रतिनाथ] कामदेव।

रतिपति-संज्ञा पुं० [सं०] कामदेव।

रतिपद-संज्ञा पुं० [सं०] एक वृत्त का नाम जिसके प्रत्येक चरण में दो नगण और एक सगण (।।।, ।।।, ।।ऽ) होता है। उ०—न निसि घर तजि धरी। कबहुँ जग कुल नरी। धरति पद पर धरा। सुमतियुत सतिवरा।

रणोत्कट-संज्ञा पुं० [सं०] (१) कार्तिकेय के एक अनुचर का नाम। (२) एक दैत्य का नाम।

वि० जो रन में सम्मिलित होने या रन ठानने के लिये उन्मत्त हो रहा हो।

रत-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मैथुन। प्रसंग। उ०—प्रिया को है बिम्बाधर मृदुल त्यों पल्लव नयो। लियो धीरें धीरें रहसि रस मैंने रत समै।—लक्ष्मण। (२) योनि। (३) लिंग। (४) प्रेम। प्रीति।

वि० (१) प्रेम में पड़ा हुआ। अनुरक्त। आसक्त। (२) (कार्य आदि में) लगा हुआ। लिप्त। लीन। तत्पर।

*-संज्ञा पुं० [सं० रक्त, प्रा० रत्त] रक्त। खून। लहू। (डिं०)

रतकील-संज्ञा पुं० [सं०] कुत्ता।

रतगुरु-संज्ञा पुं० [सं०] पति। खसम। शौहर।

रतजगा-संज्ञा पुं० [हिं० रात+जागना] (१) किसी उत्सव या विहार आदि के लिये सारी रात जागकर बिता देना। (२) वह आनंदोत्सव जो रात भर होता रहे। (३) एक त्योहार जो पूर्वी संयुक्त प्रांत तथा बिहार आदि में भाद्रपद कृष्ण २ की रात को होता है। इसमें प्रायः स्त्रियाँ रात भर कजली आदि गाया करती हैं।

रतताली-संज्ञा स्त्री० [सं०] कुटनी।

रतन-संज्ञा पुं० दे० "रत्न"।

रतनजोत-संज्ञा स्त्री० [सं० रत्न+ज्योति] (१) एक प्रकार की मणि। (२) एक प्रकार का बहुत छोटा क्षुप जो काश्मीर और कुमाऊँ में अधिकता से होता है। इसके डंठल प्रायः डेढ़ बालिश्त तक लंबे होते हैं, जिनमें बालू के पत्तों के से, प्रायः चार अंगुल तक लंबे और कुछ कँगूरेदार पत्ते और छोटे छोटे फूलों तथा फलों के गुच्छे लगते हैं। इसकी जड़ लाल रंग की होती है, जिससे लाल रंग निकाला जाता है और तेल आदि रँगे जाते हैं। वैद्यक में यह गरम, रूखा, तिक्त, त्रिदोषनाशक तथा जीर्णज्वर, खाँसी, शोथ आदि को दूर करनेवाली और मस्तिष्क को हानि पहुँचानेवाली कही गई है। इसके कई भेद होते हैं, जिनमें से एक के डंठल और पत्ते अपेक्षाकृत बड़े होते हैं; और एक चने के आकार की होती है जिसकी पत्तियाँ बहुत छोटी होती हैं। वैद्यक के अनुसार इन सब के गुण भी भिन्न भिन्न होते हैं; और इनका व्यवहार औषध रूप में होता है। (३) बृहद्दंती। बड़ी दंती। वि० दे० "दंती"।

रतनाकर-संज्ञा पुं० (१) दे० "रत्नाकर"। (२) दे० "रतनजोत"।

रतनागर*-संज्ञा पुं० [सं० रत्नाकर] समुद्र। उ०—जननि जनक जसु प्रगटिहु भाइ दिवाकर। तीय-रतन तुम उपजिहु भव-रतनागर।—तुलसी।

रतनागरभा-संज्ञा स्त्री० [सं० रत्नगर्भा] पृथ्वी। भूमि। (डिं०)

रतनार-वि० दे० "रतनारा"।

रतनारा-वि० [सं० रक्त, प्रा० रत्त+आर=दैग्य युक्त प्रत्यय रत=रक्तिम+आर (प्रत्य०)] कुछ लाल। सुर्खी लिए हुए। उ०—तुम्हारी कंज नयन रतनारे मो मन चितै हरौरी।—सूर।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग अधिकतर आँखों के लिये ही होता है।

रतनारी-संज्ञा पुं० [हिं० रतनार+ई (प्रत्य०)] एक प्रकार का धान। उ०—कपूर काट कजरी रतनारी। मधुकर ढेला जीरा सारी।—जायसी।

संज्ञा स्त्री० ललाई। लालिमा। सुर्खी।

वि० दे० "रतनारा"।

रतनारीच-संज्ञा पुं० [सं०] (१) कामदेव। (२) कुत्ता। (३) आवारा। लंपट। बदचलन।

रतनालियाक्ष†-वि० दे० "रतनारा"। उ०—आँखड़िया रतनालिया चेजा करैं प्रनाल। मैं तोहिं पूछौं माढली हूँ क्यों बंधी जाल।—कबीर।

रतनावली-संज्ञा स्त्री० दे० "रत्नावली"।

रतनिधि-संज्ञा पुं० [सं०] खंजन पक्षी। ममोला।

रतबंध-संज्ञा पुं० दे० "रतिबंध"।

रतमुहाँ*†-वि० [हिं० रत=रक्त+मुँह] [स्त्री० रतमुहीं] लाल मुँहवाला। उ०—रायमुनी तुम्ह औ रतमुहीं। अलिमुख लाग भई फुल जुही।—जायसी।

संज्ञा पुं० बंदर।

रतयौंसा†-संज्ञा पुं० [हिं० रात+पौंस (प्रत्य०)] हाथियों और घोड़ों का वह चारा जो उन्हें रात के समय दिया जाता है।

रतवाई†-संज्ञा स्त्री० [देश०] पहले दिन कोल्हू चलने पर उसका रस लोगों में बाँटने की प्रथा।

रतवण-संज्ञा पुं० [सं०] कुत्ता।

रतशायी-संज्ञा पुं० [सं० रतशायिन्] कुत्ता।

रतहिंडक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जो स्त्रियों को चुराता हो। (२) लंपट। आवारा। बदचलन।

रतांजली-संज्ञा स्त्री० [सं०] रक्तचंदन। लाल चंदन।

रतांदुक-संज्ञा पुं० [सं०] कुत्ता।

रता†-संज्ञा स्त्री० [देश०] कुकुरी, जो अनेक वस्तुओं पर प्रायः बरसात के दिनों में या सीड़ की जगह में लग जाती है।

रताना*†-क्रि० अ० [सं० रत+आना (प्रत्य०)] रत होना। उ०—कौधौं ध्यान इहाँ है रावरो कौधौं आजु रतान्यौ।—सूर।

क्रि० स० किसी को अपनी ओर रत करना।

रतायनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] वेश्या। रंडी।

रतालू-संज्ञा पुं० [सं० रक्तालु] (१) पिंडालू नामक कंद जिसका

व्यवहार तरकारी बनाने में होता है। (२) वाराहीकंद। गेंठी।

रति-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) कामदेव की पत्नी जो दक्ष प्रजापति की कन्या मानी जाती है। कहते हैं कि दक्ष ने अपने शरीर के पसीने से इसे उत्पन्न करके कामदेव को अर्पित किया था। यह संसार की सब से अधिक रूपवती और सौंदर्य की साक्षात् मूर्त्ति मानी जाती है। इसे देखकर सभी देवताओं के मन में अनुराग उत्पन्न हुआ था; इसलिये इसका नाम रति पड़ा था। जिस समय शिवजी ने कामदेव को अपने तीसरे नेत्र से भस्म कर दिया था, उस समय इसने बहुत अधिक विलाप करके शिवजी से यह वरदान प्राप्त किया था कि अब से कामदेव बिना शरीर के या अनंग होकर सदा बना रहेगा। यह भी माना जाता है कि यह सदा कामदेव के साथ रहती है। वि० दे० "कामदेव"। उ०—राधा हरि केरी प्रीति सब तें अधिक जानि रति रतिनाथ हूँ देखो रति थोरी सी।—केशव। (२) काम क्रीड़ा। संभोग। मैथुन। उ०—(क) रति जय लिखिबे की लेखनी सुरेख किधौं मीनरथ सारथी के नोदन नवीने हैं।—केशव। (ख) लाज गरब आरस उमग भरे नैन मुसकात। राति रमी रति देत कहि औरै प्रभा प्रभात।—बिहारी। (३) प्रीति। प्रेम। अनुराग। मुहब्बत।

क्रि० प्र०—करना।—जोड़ना।—लगाना।—होना।

(४) शोभा। छवि। उ०—चोटी में लपेटी एक मणि ही सुकाढ़ि दीन्ही दीजो राम हाथ जो बढ़ैया तेरी रति को।—हृदयराम। (५) सौभाग्य। खुशकिस्मती। (६) साहित्य में श्रृंगार रस का स्थायी भाव। नायक नायिका के मन में एक दूसरे के प्रति आकर्षण। नायक नायिका की परस्पर प्रीति या प्रेम। (७) वह कर्म्म जिसका उदय होने से किसी रमणीक वस्तु से मन प्रसन्न होता है। (जैन) (८) गुप्त भेद। रहस्य।

संज्ञा स्त्री० दे० "रत्ती"।

क्रि० वि० दे० "रत्ती"। उ०—कत सकुचत निधरक फिरौ रतियौ खोरि तुम्हें न। कहा करौ जो जाहिं ये लगैं लगौंहैं नैन।—बिहारी।

*संज्ञा स्त्री० [हिं० रात] रात। रात्रि। रैन। उ०—सही रँगीले रति जगे जगी पगी सुख चैन। अलसौंहैं सौंहैं किये कहैं हँसौंहैं नैन।—बिहारी।

विशेष—केवल समस्त पदों में ही इस शब्द का इस रूप में व्यवहार होता है।

रतिक*†-क्रि० वि० [हिं० रत्ती+क (प्रत्य०)] रत्ती भर। बहुत थोड़ा। जरा सा। उ०—नेरे चलि आय छलि मेरे मुख पंकज को परसै निसंक नाहिं संक करै रतिकौ।—दीनदयाल।

रतिकर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) कामी। (२) एक प्रकार की समाधि।

वि० (१) जिससे आनंद की वृद्धि हो। (२) जिससे प्रेम की वृद्धि हो।

रतिकलह-संज्ञा पुं० [सं०] मैथुन। संभोग।

रतिकांत-संज्ञा पुं० [सं०] कामदेव।

रतिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] ऋषभ स्वर की तीन श्रुतियों में से अंतिम श्रुति। (संगीत)

रतिकुहर-संज्ञा पुं० [सं०] योनि। भग।

रतिकेलि-संज्ञा स्त्री० [सं०] भोगविलास। संभोग।

रतिक्रिया-संज्ञा स्त्री० [सं०] मैथुन। संभोग।

रतिगर†-क्रि० वि० [हिं० रात+गर ?] प्रातःकाल। बड़े तड़के। सवेरे।

रतिगृह-संज्ञा पुं० [सं०] योनि। भग।

रतिज्ञ-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जो रतिक्रिया में चतुर हो। (२) वह जो किसी स्त्री के मन में अपने प्रति प्रेम उत्पन्न करने में निपुण हो।

रतितस्कर-संज्ञा पुं० [सं०] वह जो स्त्रियों को अपने साथ व्यभिचार करने में प्रवृत्त करता हो।

रतिताल-संज्ञा पुं० [सं०] ताल के साठ मुख्य भेदों में से एक भेद। (संगीत)

रतिदान-संज्ञा पुं० [सं०] संभोग। मैथुन। उ०—रघुनाथ ऐसो भेस धरे प्रानप्यारो आयो प्रात कहूँ बसि राति दीन्हे रतिदान को।—रघुनाथ।

रतिदेव-संज्ञा पुं० [सं०] (१) विष्णु। (२) एक चंद्रवंशीय राजा का नाम जो सांकृति के पुत्र थे। (३) कुत्ता।

रतिघ्न-संज्ञा पुं० [सं०] वह अस्त्र जिससे दूसरे अस्त्रों का नाश होता हो।

रतिनाग-संज्ञा पुं० [सं०] सोलह प्रकार के रतिबंधों में से एक प्रकार का रतिबंध। (कामशास्त्र)

रतिनाथ-संज्ञा पुं० [सं०] कामदेव।

रतिनायक-संज्ञा पुं० [सं०] कामदेव। उ०—(क) न अंगैं न मांगै जिय जानि सिलीमुख पंच धरे रतिनायकु है।—तुलसी। (ख) काहे दुरावति है सजनी रतिनायक सायक एही कहे हैं।—मन्नालाल।

रतिनाह*-संज्ञा पुं० [सं० रतिनाथ] कामदेव।

रतिपति-संज्ञा पुं० [सं०] कामदेव।

रतिपद-संज्ञा पुं० [सं०] एक वृत्त का नाम जिसके प्रत्येक चरण में दो नगण और एक सगण (।।।, ।।।, ।।ऽ) होता है। उ०—न निसि घर तजि घरी। कबहुँ जग कुल नरी। धरति पद पर वरा। सुमति युत सनिवरा।

रतिपाश-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का रतिबंध जिसे रतिनाग भी कहते हैं। (कामशास्त्र)
रतिप्रिय-संज्ञा पुं० [सं०] कामदेव।
वि० जिसे मैथुन बहुत प्रिय हो। कामुक।
रतिप्रिया-वि० [सं०] (स्त्री) जिसे मैथुन बहुत प्रिय हो।
संज्ञा स्त्री० (१) तांत्रिकों के अनुसार शक्ति की एक मूर्त्ति का नाम। (२) दाक्षायिणी का एक नाम।
रतिप्रीता-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह नायिका जिसका रति में प्रेम हो। मैथुन से प्रसन्न होनेवाली स्त्री। कामिनी।
रतिबंध-संज्ञा पुं० [सं०] मैथुन या संभोग करने का प्रकार, जिसे आसन भी कहते हैं।
रतिभवन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) योनि। भग। (२) वह स्थान जहाँ प्रेमी और प्रेमिका मिलकर रतिक्रीड़ा करते हों। उ०—सपनेहूँ न लख्यो निसि में रतिभौन तें गौन कहूँ निज पी को।—पद्माकर।
रतिभाव-संज्ञा पुं० [सं०] (१) नायक-नायिका का परस्पर आकर्षण। स्त्री पुरुष का परस्पर प्रेम। दांपत्य भाव। (यह शृंगार रस का स्थायी भाव है।) (२) प्रीति। प्रेम। मुहब्बत। स्नेह।
रतिभौन॥-संज्ञा पुं० दे० "रतिभवन"।
रतिमंदिर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) योनि। भग। (२) मैथुनगृह। रतिभवन। उ०—रतिमंदिर के मनि पुंजनि मैं प्रतिबिंबनि आपने हेरो करै।—मन्नालाल।
रतिमदा-संज्ञा स्त्री० [सं०] अप्सरा।
रतिमित्र-संज्ञा पुं० [सं०] काम शास्त्र के अनुसार एक प्रकार का रतिबंध या आसन।
रतियाना॥†-क्रि० अ० [हिं० रति = प्रीति + आना (प्रत्य०)] प्रीति करना। प्रेम करना। अनुरक्त होना। उ०—राम नाम अनुराग ही जो रतियातो। स्वारथ परमारथ पथी तोहिं सब पतियातो।—तुलसी।
रतिरमण-संज्ञा पुं० [सं०] (१) कामदेव। (२) मैथुन। उ०—कै और सों रतिरमण इक धन ही के हेत। गनिका ताहि बखानिहहिं जे कवि सुमति निकेत।—पद्माकर।
रतिराइ॥-संज्ञा पुं० [सं० रतिराज] कामदेव।
रतिराज-संज्ञा पुं० [सं०] कामदेव।
रतिलील-संज्ञा पुं० [सं०] ताल के साठ मुख्य भेदों में से एक। (संगीत)
रतिलोल-संज्ञा पुं० [सं०] एक राक्षस का नाम।
रतिवंत-वि० [सं० रति + हिं० वंत (प्रत्य०)] सुंदर। खूबसूरत। उ०—कोदंड माही सुभट को को कुमार रतिवंत। को कहिये शशि ते दुखी कोमल मन को संत।—केशव।
रतिवर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) कामदेव। (२) वह भेंट जो किसी स्त्री को उससे रति करने के अभिप्राय से दी जाय।
रतिवर्द्धन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जिससे काम-शक्ति बढ़ती हो। (२) वैद्यक में एक प्रकार का मोदक जो गोखरू, असगंध, शतमूली, तालमूली और जेठी मधु आदि के योग से बनता है और जो पुष्टिकारक माना जाता है।
रतिवल्ली-संज्ञा स्त्री० [सं०] प्रेम। प्रीति। मुहब्बत।
रतिवाही-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का राग जिसका गान समय रात को १६ दंड से २० दंड तक है। यह संपूर्ण जाति का राग है और इसमें सब शुद्ध स्वर लगते हैं।
रतिशास्त्र-संज्ञा पुं० [सं०] वह शास्त्र जिसमें रति की क्रियाओं का विवेचन हो। कोकशास्त्र। काम-शास्त्र।
रतिसत्वरा-संज्ञा स्त्री० [सं०] सृक्का। असबरग।
रतिसमर-संज्ञा पुं० [सं०] संभोग। मैथुन।
रतिसाधन-संज्ञा पुं० [सं०] पुरुष की मूत्रेंद्रिय। लिंग। शिश्न।
रतिसुंदर-संज्ञा पुं० [सं०] कामशास्त्र के अनुसार एक प्रकार का रतिबंध।
रती॥†-संज्ञा स्त्री० [सं० रति] (१) कामदेव की पत्नी। रति। उ०—बात की बानी माँह भाव सो भवानी माँह केशोदास रति में रती की ज्योति जानवी।—केशव (२) सौंदर्य। शोभा। उ०—कहै पदमाकर पताका प्रेम पूरण की, प्रगट पतिव्रत की सौगुनी रती भई।—पद्माकर। (३) मैथुन। संभोग। उ०—दर्भ धरे तनया कर साथ विदर्भपती। अर्पन भू करिहै जबहीं तब होय रती।—गोपाल। (४) दे० "रति"।
†॥-संज्ञा स्त्री० [हिं० रत्ती] (१) घुँघची। गुंजा। (२) ढाई जौ या आठ चावल का मान। वि० दे० "रत्ती"।
वि० थोड़ा। कम। अल्प।
क्रि० वि० जरा सा। रत्ती भर। किंचित्। उ०—नाम प्रताप हंस पर छावै। हंसहिं भार रती महिं लागै।—कबीर।
रतुआ†-संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की घास जो बरसात के दिनों या ठंडी जगहों में अधिकता से होती है।
रतून†-संज्ञा पुं० [देश०] पेड़ी की ईख या गन्ना, जो एक बार काट लेने पर फिर उसी जड़ से निकलता है।
रतोपल॥†-संज्ञा पुं० [सं० रक्तोत्पल] लाल कमल। उ०—कहि कंकण नेक भए दृगं शीतल संपत देत रतोपल की।—हृदयराम।
संज्ञा पुं० [सं० रक्तोपल] (१) लाल सुरमा। (२) लाल खड़िया। (३) गेरू।
रतौंधी-संज्ञा स्त्री० [हिं० रात + अंधा] एक प्रकार का रोग जिसमें रोगी को संध्या होने के उपरांत, अर्थात् रात के

समय, बिलकुल दिखाई नहीं देता । उ०—पौरियै रतौंधी आवै सखी सबै सोय रहीं जागत न कोऊ परदेस मेरो वर है।—प्रतापनारायण।

रत्त॰-संज्ञा पुं० दे० "रक्त"।

रत्तक-संज्ञा पुं० [सं० रक्तक, प्रा० रत्त] ग्वालियर में होनेवाला एक प्रकार का पत्थर जो कुछ लाल रंग का होता है।

रत्ती-संज्ञा स्त्री० [सं० रक्तिका, प्रा० रत्तीश्र] (१) एक प्रकार का बहुत छोटा मान, जिसका व्यवहार सोने या ओषधियों आदि के तौलने में होता है। यह आठ चावल या ढाई जौ के बराबर होता है और प्रायः घुँघची के दाने से तौला जाता है। यह एक मासे का आठवाँ भाग होता है। (२) वह बाट जो तौल में इतने मान का हो। (३) घुँघची का दाना। गुंजा।

मुहा०—रत्ती भर = बहुत थोड़ा सा। जरा सा।

वि० बहुत थोड़ा। किंचित्।

॰-संज्ञा स्त्री० [सं० रति] शोभा। छवि। उ०—बत्ती बटि कसी पाग कत्ती सिर टेढ़ी लसै मढ़ी मुख रत्ती जैसे पत्ती जदुपति के।—गोपाल।

रथी-संज्ञा स्त्री० [सं० रथ] लकड़ी या बाँस का वह ढाँचा या संदूक आदि जिसमें शव को रखकर अंतिम संस्कार के लिये ले जाते हैं। टिकठी। विमान। अरथी।

रत्न-संज्ञा पुं० [सं०] (१) कुछ विशिष्ट छोटे, चमकीले, बहुमूल्य पदार्थ, विशेषतः खनिज पदार्थ या पत्थर, जिनका व्यवहार आभूषणों आदि में जड़ने के लिये होता है। मणि। जवाहिर। नगीना। जैसे,—हीरा, लाल, पन्ना, मानिक, मोती आदि।

विशेष—हमारे यहाँ हीरा, पन्ना, पुखराज, मानिक, नीलम, गोमेद, लहसुनियाँ, मोती और मूँगा ये नौ रत्न माने गए हैं। इसके अतिरिक्त पुराणों आदि में और भी अनेक रत्न गिनाए गए हैं, जिनमें से कुछ वास्तविक और कुछ कल्पित हैं। जैसे,—गंधशस्य, सूर्य्यकांत, चंद्रकांत, स्फटिक, ज्योतिरस, राजपट्ट, शंख, सीसा, भुजंग, उत्पल आदि। रत्न धारण करना हमारे यहाँ बहुत पुण्यजनक कहा गया है। ग्रहों आदि का उत्पात होने पर रत्न पहनने और दान करने का विधान है। वैद्यक में इन रत्नों से भी भस्म बनाई जाती है, और अलग अलग रत्नों की भस्म का अलग अलग गुण माना जाता है।

(२) माणिक्य। मानिक। लाल। (कविता में कभी कभी रत्न शब्द से मानिक का ही ग्रहण होता है।) (३) वह जो अपने वर्ग या जाति में सब से उत्तम हो। सर्वश्रेष्ठ। जैसे,—नर-रत्न, ग्रंथ-रत्न आदि। (४) जैनों के अनुसार सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान और सम्यक् चारित्र।

रत्नकंदल-संज्ञा पुं० [सं०] प्रवाल। मूँगा।

रत्नकर-संज्ञा पुं० [सं०] कुबेर का एक नाम।

रत्नकर्णिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] प्राचीन काल का कान में पहनने का एक प्रकार का जड़ाऊ गहना।

रत्नकीर्त्ति-संज्ञा पुं० [सं०] एक बुद्ध का नाम।

रत्नकूट-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक पर्वत का नाम। (२) एक बोधिसत्व का नाम।

रत्नकेतु-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक बुद्ध का नाम। (२) एक बोधिसत्व का नाम।

रत्नगर्भ-संज्ञा पुं० [सं०] (१) कुबेर का एक नाम। (२) समुद्र। (३) एक बुद्ध का नाम।

रत्नगर्भा-संज्ञा स्त्री० [सं०] पृथ्वी। भूमि। वसुंधरा।

रत्नगिरि-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बिहार के एक पहाड़ का प्राचीन नाम, जिस पर मगध देश की पुरानी राजधानी राजगृह बसी हुई थी। (२) वैद्यक में एक प्रकार का रस जो अभ्रक, सोने, ताँबे, गंधक और लोहे आदि से तैयार किया जाता है और जो ज्वर के लिये बहुत उपकारी माना गया है।

रत्नचंद्र-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक देवता जो रत्नों के अधिष्ठाता माने जाते हैं। (२) एक बोधिसत्व का नाम।

रत्नचूड़-संज्ञा पुं० [सं०] एक बोधिसत्व का नाम।

रत्नत्रय-संज्ञा पुं० [सं०] जैनों के अनुसार सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान और सम्यक् चरित्र, इन तीनों का समूह जो मनुष्य को उत्कृष्ट बनाने का साधन समझा जाता है।

रत्नदाम-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) रत्नों की माला। (२) गर्ग-संहिता के अनुसार सीता की माता और राजा जनक की स्त्री का नाम।

रत्नदीप-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक कल्पित रत्न का नाम। कहते हैं कि पाताल में इसी के प्रकाश से उजाला रहता है। (२) रत्न का दीपक।

रत्नद्रुम-संज्ञा पुं० [सं०] मूँगा।

रत्नद्वीप-संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार एक द्वीप का नाम।

रत्नधर-संज्ञा पुं० [सं०] धनवान्। अमीर।

रत्नधार-संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार एक पर्वत का नाम।

रत्नधारा-संज्ञा स्त्री० [सं०] पुराणानुसार एक नदी का नाम।

रत्नधेनु-संज्ञा स्त्री० [सं०] पुराणानुसार रत्नों की बनाई हुई वह गाय जो दान की जाती है। इस दान की गणना महादानों में की जाती है और इस प्रकार का दान करनेवाला गोलोक का अधिकारी समझा जाता है।

रत्नध्वज-संज्ञा पुं० [सं०] एक बोधिसत्व का नाम।

रत्ननाभ-संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु।

रत्ननिधि-संज्ञा पुं० [सं०] (१) खंजन पक्षी। ममोला। (२) समुद्र। (३) मेरु पर्वत। (४) विष्णु।
रत्नपरीक्षक-संज्ञा पुं० [सं०] वह जो रत्नों की परखना जानता हो। जौहरी।
रत्नपर्वत-संज्ञा पुं० [सं०] सुमेरु पर्वत का एक नाम।
रत्नपाणि-संज्ञा पुं० [सं०] एक बोधिसत्व का नाम।
रत्नपारखीश-संज्ञा पुं० [सं० रत्न+हिं० पारखी] रत्नों क पहचाननेवाला। जौहरी।
रत्नपीठ-संज्ञा पुं० [सं०] तांत्रिकों के अनुसार एक तीर्थ का नाम।
रत्नप्रदीप-संज्ञा पुं० [सं०] ऐसा रत्न जो दीपक के समान प्रकाशमान हो।
रत्नप्रभ-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार के देवता।
रत्नप्रभा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) पृथ्वी। (२) जैनों के अनुसार एक नरक का नाम।
रत्नबाहु-संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु।
रत्नमाला-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) राजा बलि की कन्या। वामन भगवान् को देखकर इसके मन में यह कामना हुई थी कि ऐसे बालक को मैं दूध पिलाऊँ। इसी लिये यह कृष्णावतार में पूतना हुई थी। (२) मणियों की माला या हार।
रत्नमाली-संज्ञा पुं० [सं० रत्नमालिन्] पुराणानुसार एक प्रकार के देवता।
रत्नमुकुट-संज्ञा पुं० [सं०] एक बोधिसत्व का नाम।
रत्नवती-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) पृथ्वी। भूमि। (२) राजा वीरकेतु की कन्या का नाम।
रत्नशाला-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) रत्नों के रखने का स्थान। (२) जड़ाऊ महल, जिसकी दीवारों में रत्न जड़े हों।
रत्नसंभव-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक ध्यानी बुद्ध का नाम। (२) एक बोधिसत्व का नाम।
रत्नसागर-संज्ञा पुं० [सं०] समुद्र का वह भाग जहाँ से प्रायः रत्न निकलते हों।
रत्नसानु-संज्ञा पुं० [सं०] सुमेरु पर्वत का एक नाम।
रत्नसू, रत्नसूति-संज्ञा स्त्री० [सं०] पृथ्वी।
रत्ना-संज्ञा स्त्री० [सं०] पुराणानुसार एक नदी का नाम।
रत्नाकर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) समुद्र। (२) मणियों के निकलने का स्थान। खान। (३) रत्नों का समूह। उ०—रत्नाकर के हैं दोऊ केशव प्रकाशकर अंबर विलास कुवलय हित मानिये।—केशव। (४) वाल्मीकि मुनि का पहले का नाम। (५) भगवान् बुद्ध का एक नाम। (६) एक बोधिसत्व का नाम।
रत्नागिरि-संज्ञा पुं० दे० "रत्नगिरि"।
रत्नाचल-संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार रत्नों का वह ढेर जो पहाड़ के रूप में लगाकर दान किया जाता है और जिसके दान करने से दाता स्वर्ग का अधिकारी समझा जाता है।
रत्नाद्रि-संज्ञा पुं० [सं०] एक पर्वत का नाम।
रत्नाधिपति-संज्ञा पुं० [सं०] कुबेर।
रत्नभूषण-संज्ञा पुं० [सं०] वह आभूषण या गहना जिसमें रत्न जड़े हों। जड़ाऊ गहना।
रत्नावली-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) मणियों की श्रेणी या माला। (२) एक रागिनी जो शास्त्रों में दीपक राग की पुत्रवधू कही गई है। (३) एक अर्थालंकार जिसमें प्रस्तुत अर्थ निकलने के अतिरिक्त ठीक क्रम से कुछ और वस्तु-समूह के नाम भी निकलते हैं। जैसे,—आदित सोम कहीं कबहूँ, कबहूँ कहीं मंगल औ बुध होते।
रत्नोत्तमा-संज्ञा स्त्री० [सं०] तांत्रिकों की एक देवी का नाम।
रत्नोल्का-संज्ञा स्त्री० [सं०] तांत्रिकों के अनुसार एक देवी का नाम।
रथंतर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक कल्प का नाम। (२) एक प्रकार का साम। (३) एक प्रकार की अग्नि।
रथ-संज्ञा पुं० [सं०] (१) प्राचीन काल की एक प्रकार की सवारी जिसमें चार या दो पहिए हुआ करते थे और जिसका व्यवहार युद्ध, यात्रा, विहार आदि के लिये हुआ करता था। शतांग। स्यंदन। गाड़ी। बहल। (२) शरीर, जो आत्मा की सवारी माना जाता है। (३) चरण। पैर। (४) तिनिस का पेड़। (५) विहार करने का स्थान। क्रीड़ा स्थल।
रथकल्पक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) प्राचीन काल का वह अधिकारी जिसकी अधीनता में राजाओं के रथ आदि रहते थे। (२) प्राचीन काल के धनवानों का वह प्रधान अधिकारी जो उनके घर आदि सजाता और उनके पहनने के वस्त्र आदि रखता था।
रथकार-संज्ञा पुं० [सं०] (१) रथ बनानेवाला। खाती। बढ़ई। (२) एक जाति जिसकी उत्पत्ति माहिष्य (क्षत्री से वैश्या में उत्पन्न) पिता और करिणी (वैश्य से शूद्रा में उत्पन्न) माता से मानी गई है। इसमें जनेऊ आदि संस्कार होते हैं।
रथकुटुंबिक-संज्ञा पुं० [सं०] वह जो रथ चलाता हो। रथवान। सारथी।
रथक्रांत-संज्ञा पुं० [सं०] संगीत में एक प्रकार का ताल।
रथक्रांता-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्राचीन जनपद का नाम।
रथगर्भक-संज्ञा पुं० [सं०] रथ के आकार की वह सवारी जिसे मनुष्य कंधे पर उठाकर ले चलते हों। जैसे,—पालकी, नालकी आदि।
रथगुप्ति-संज्ञा स्त्री० [सं०] रथ के किनारे लगा हुआ लकड़ी या लोहे का वह ढाँचा जो शस्त्र आदि से रक्षा के लिये होता था।
रथचरण-संज्ञा पुं० [सं०] चक्रवाक। चकवा।

रथचित्रा-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्राचीन नदी का नाम।
रथद्रु-संज्ञा पुं० [सं०] (१) तिनिश का पेड़। (२) बेंत।
रथपति-संज्ञा पुं० [सं०] रथ का नायक। रथी।
रथपर्य्याय-संज्ञा पुं० [सं०] (१) तिनिश का पेड़। (२) बेंत।
रथपाद-संज्ञा पुं० दे० "रथचरण"।
रथप्सा-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्राचीन नदी का नाम।
रथमहोत्सव-संज्ञा पुं० [सं०] रथ-यात्रा नामक उत्सव। वि० दे० "रथयात्रा"।
रथयात्रा-संज्ञा स्त्री० [सं०] हिंदुओं का एक पर्व या उत्सव जो आषाढ़ शुक्ल द्वितीया को होता है। इसमें लोग प्रायः जगन्नाथ, बलराम और सुभद्राजी की मूर्त्तियाँ रथ पर चढ़ाकर निकालते हैं। यह उत्सव बहुत प्राचीन काल से होता आया है; और पुरी में बहुत धूमधाम से होता है। बौद्ध और जैन लोगों में भी रथयात्रा का उत्सव होता है, जिसमें जिन या बुद्ध की सवारी निकाली जाती है।
रथवान्-संज्ञा पुं० [सं०] रथ हाँकनेवाला। सारथी।
रथवाह-संज्ञा पुं० [सं० रथवाह्] (१) रथ चलानेवाला। सारथी। (२) घोड़ा। उ०—राज तुरंगम बरनौं काहा। आने छोरि इंद्र-रथवाहा।—जायसी।
रथवाहक-संज्ञा पुं० [सं०] वह जो रथ हाँकता हो। सारथी।
रथवाहन-संज्ञा पुं० [सं०] रथ में का वह चौकोर ऊपरी ढाँचा जो पहियों के ऊपर जड़ा होता है।
रथशाला-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्थान जहाँ रथ रखे जाते हों। गाड़ीखाना। अस्तबल।
रथसप्तमी-संज्ञा स्त्री० [सं०] माघ शुक्ला सप्तमी। कहते हैं कि सूर्य्य इसी दिन रथ पर सवार होते हैं; इसी लिये इसका यह नाम पड़ा है।
रथसूत-संज्ञा पुं० [सं०] रथ हाँकनेवाला। सारथी।
रथांग-संज्ञा पुं० [सं०] (१) रथ का पहिया। (३) चक्र नामक अस्त्र। (४) चक्रवाक पक्षी। चकवा।
रथांगधर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) श्रीकृष्ण। (२) विष्णु।
रथांगपाणि-संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु।
रथांगवर्त्ती-संज्ञा पुं० [सं०] चक्रवर्त्ती सम्राट्।
रथांगी-संज्ञा स्त्री० [सं०] ऋद्धि नामक ओषधि।
रथाक्ष-संज्ञा पुं० [सं०] (१) रथ का पहिया या धुरा। (२) प्राचीन काल का एक परिमाण जो एक सौ चार अंगुल का होता था। (३) कार्त्तिकेय के एक अनुचर का नाम।
रथाग्र-संज्ञा पुं० [सं०] वह जो बहुत बड़ा योद्धा हो।
रथाभ्र-संज्ञा पुं० [सं०] बेंत।
रथावर्त्त-संज्ञा पुं० [सं०] एक तीर्थ का नाम।
रथिक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जो रथ पर सवार हो। रथी। (२) तिनिश का पेड़।

रथी-संज्ञा पुं० [सं० रथिन्] (१) वह जो रथ पर चढ़कर चलता हो। (२) रथ पर चढ़कर लड़नेवाला। रथवाला योद्धा।
यौ०—महारथी।
(३) एक हज़ार योद्धाओं से अकेला युद्ध करनेवाला योद्धा। उ०—पूरण प्रकृति सात धीर वीर हैं विख्यात रथी महारथी अतिरथी रण साजि के।—रघुराज।
वि० रथ पर सवार। रथ पर चढ़ा हुआ। उ०—रावन रथी बिरथ रघुबीरा। देखि बिभीषन भयउ अधीरा।—तुलसी।
संज्ञा स्त्री० [सं० रथ] वह ढाँचा जिस पर मुरदों को रखकर अंत्येष्टि क्रिया के लिये ले जाते हैं। रथी। टिकठी। ताबूत।
रथोत्सव-संज्ञा पुं० [सं०] रथ-यात्रा नामक उत्सव।
रथोद्धता-संज्ञा स्त्री० [सं०] ग्यारह अक्षरों का एक वर्णवृत्त जिसका पहला, तीसरा, सातवाँ, नवाँ और ग्यारहवाँ वर्ण गुरु और बाकी वर्ण लघु होते हैं। अर्थात् इसके प्रत्येक चरण में र, न, र, ल, ग (ऽ।ऽ ।।। ऽ।ऽ । ऽ) होता है। उ०—रानि। री लगत राम को पता। हाय ना कहहिं नारि आरता। धन्य जो लहत भागशुद्धता। धूरि हू अति शुची रथोद्धता।—छंदः प्रभाकर।
रथोरग-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन जाति का नाम जिसका उल्लेख महाभारत में है।
रथोष्मा-संज्ञा स्त्री० [सं०] पुराणानुसार एक नदी का नाम।
रथ्य-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह घोड़ा जो रथ में जोता जाता हो। (२) वह जो रथ चलाता हो। (३) चक्र। चाका। पहिया।
रथ्या-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) रथों का समूह। (२) रथ का मार्ग या लकीर। (३) रास्ता। सड़क। (४) चौक। आँगन। (५) नाली। नाबदान। उ०—कहँ देवसरि कलुष-बिनासी। कहँ रथ्या-जल अति मलरासी।—द्विज।
रद-संज्ञा पुं० [सं०] दंत। दाँत।
वि० [अ०] (१) नष्ट। खराब। रद्दी। (२) तुच्छ या निरर्थक। फीका। मात। उ०—सोहत धोती सेत में कनक बरन तन बाल। सारद बारद बीजुरी भा रद कीजत लाल।—बिहारी।
रदच्छद-संज्ञा पुं० [सं०] ओंठ। ओष्ठ।
रदछद*-संज्ञा पुं० [सं० रदच्छद] ओंठ। ओष्ठ। उ०—लोचन लोल कपोल ललित अति नासिक को मुक्ता रदछद पर।—सूर।
संज्ञा पुं० [सं० रदक्षत] रति आदि के समय दाँतों के लगने का चिह्न। उ०—पट की ढिग कत ढाँपियत सोभित सुभग सुबेख। हद रदछद छबि देखियत सद रदछद की रेख।—बिहारी।
रददान-संज्ञा पुं० [सं० रद+दान] (रति के समय) दाँतों से ऐसा दबाना कि चिह्न पड़ जाय। यह सात प्रकार की बाह्य

रनिवास–संज्ञा पुं० दे० "रनवास"।

रनीॐ–संज्ञा पुं० [सं० रण+ई (प्रत्य०)] वीर। योद्धा। रण करनेवाला। उ०—कलुप कलंक कलेस कोस भयो जो पदु पाय रावन रनी। सोइ पदु पाय बिभीपन भो भव-भूपन दलि दूपन-अनी। -तुलसी।

रनेत–संज्ञा पुं० [सं० रण+एत (प्रत्य०)] भाला। (डिं०)

रपट†–संज्ञा स्त्री० [अ० रब्त] अभ्यास। आदत। टेव।
क्रि० प्र०-करना।—डालना।—पड़ना।—होना।
संज्ञा स्त्री० [हिं० रपटना] (१) रपटने की क्रिया या भाव। फिसलाहट। (२) दौड़। (३) उतार, जिस पर से उतरते समय पैर न जम सकता हो। ढाल।।
संज्ञा स्त्री० [अं० रिपोर्ट] सूचना। इत्तला। उ०—आप केवल इतनी ही कृपा करें कि मेरे घड़ी जाने की रपट कोतवाली में लिखाते जायँ।—परीक्षागुरु।

रपटना†–क्रि० अ० [सं० रफन=सरकना। मि० फा० रफतन्] (१) नीचे या आगे की ओर फिसलना। जम न सकने के कारण किसी ओर सरकना। जैसे,—गीली मिट्टी में पैर रपटना। उ०—(क) वाहाँ जोरी निकसे कुंज तें रीझि रीझि कहैं बात। कुंडल झलमलात झलकत विवि गात चकाचौंध सी लागति मेरे इन नैननि आली रपटत पग नहिं ठहरात। राधा मोहन बने घन चपला ज्यों चमकि मेरी पूतरीन में समात। सूरदास प्रभु के वै वचन सुनहु मधुर मधु अब मोहिं भूली पाँच औ सात।—सूर। (ख) दै पिचकी भजी भीजी तहाँ परे पीछे गुपाल गुलाल उलीचैं। एक ही संग यहाँ रपटे सखि ये भये ऊपर वै भईं नीचे।—पद्माकर। (ग) हौं अलि आजु गई तरके वाँ महेस जू कालिंदी नीर के कारन। ज्यों पग एक बढ़ायो चहौं रपट्यौं पग दूसरो लागी पुकारन।—महेस। (२) शीघ्रता से और बिना ठहरे हुए चलना। बहुत जल्दी जल्दी चलना। झपटना। उ०—(क) प्रबल पावक बढ्यौ तहाँ ठाढ्यौ रपटि लपट भरे भवन भँडारी रहीं।—तुलसी। (ख) रपटत मृगन सरन मारे। हरित बसन सुंदर तनु धारे।—रघुराज। (ग) अनेक अग्ग वाहहीं कितेक मार छाँहहीं। किते परे कराहहीं हँकार सौं रपट्टहीं। -सूदन।
क्रि० स० (१) किसी काम को शीघ्रता से करना। कोई काम चटपट पूरा करना। जैसे,—थोड़ा सा काम और रह गया है; दो दिन में रपट डालेंगे।
संयो० क्रि०—डालना।—देना।
(२) मैथुन करना। प्रसंग करना। (बाजारू)

रपटाना–क्रि० स० [हिं० रपटना] (१) फिसलाना। सरकाना। (२) चटपट पूरा कराना। (३) रपटने का काम दूसरे से कराना।

रपट्टा†–संज्ञा पुं० [हिं० रपटना] (१) फिसलने की क्रिया। फिसलाव।
मुहा०—रपट्टा मारना=फिसलना।
(२) दौड़-धूप। झपट्टा।
मुहा०—रपट्टा लगाना या मारना=दौड़ना। झपटना। लपकना।
(३) झपट्टा। चपेट। उ०—अरे जो मैं एक संग प्रान छोड़ि कै न भाजती, तौ उनके रपट्टा में कब की आय जाती।—हरिश्चंद्र।

रपाती–संज्ञा स्त्री० [?] तलवार। (डिं०)

रपुर–संज्ञा पुं० [सं० हरिपुर] स्वर्ग। (डिं०)

रफ–वि० [अ०] (१) जो साफ़ और ठीक न हुआ हो, बल्कि किया जाने को हो। नमूने के तौर पर बना हुआ। (२) जो चिकना न हो। खुरदुरा।

रफते रफते–क्रि० वि० दे० "रफ्ता रफ्ता"।

रफल–संज्ञा स्त्री० [अं० राइफ़ल] विलायती ढंग की एक प्रकार की बंदूक। यह दो तरह की होती है। एक तो टोपीदार जिसमें बारूद उसके मुँह की ओर से भरी जाती है; और टोपी चढ़ाकर घोड़े से दागी जाती है। दूसरी ब्रिजलोडन कहलाती है और इसमें बीच में से कारतूस भरा जाता है।
संज्ञा पुं० [अं० रैपर] जाड़े में ओढ़ने की मोटी चादर जो प्रायः ऊनी होती है। गरम चादर।

रफ़ा–वि० [अ०] (१) दूर किया हुआ। मिटाया हुआ। समाप्त या पूरा किया हुआ। उ०—पर इस जरूरत को रफ़ा करने के लिये कभी कभी ऐसे पुरुष भी अपनी कमर कस बैठते हैं, जो इस काम के सर्वथा अयोग्य हैं।—द्विवेदी। (२) निवृत्त। शांत। निवारित। दबाया हुआ। जैसे,—झगड़ा रफ़ा करना। उ०—एक औरिउ है नफा हम सफा कीन विचार। रफ़ा संगहिं होय सब महिपाल को रन प्यार।—गोपाल।
यौ०—रफ़ा दफ़ा।

रफा दफा–वि० [अ०] (१) मिटाया हुआ। निबटाया हुआ। दूर किया हुआ। (२) शांत। निवृत्त। जैसे—मामला रफ़ा दफ़ा करना; झगड़ा रफ़ा दफ़ा करना।

रफीदा–संज्ञा पुं० [अ० रफ़ादा] (१) वह गद्दी जिसके ऊपर जीन कसा जाता है। (२) वह गद्दी जिसे लगाकर नानबाई तँदूर में रोटी चिपकाते हैं। काबुक। (३) गोल पगड़ी। (इस अर्थ में इस शब्द का प्रयोग विशेषतः अवज्ञा या अनादर प्रकट करने के लिये ही होता है।)

रफ़ू–संज्ञा पुं० [अ०] फटे हुए कपड़े के छेद में तागे भरकर उसे बराबर करना।
क्रि० प्र०—करना।—बनाना।—होना।

मुहा०—रफ़ू करना = कही हुई दो असंबद्ध या विपरीत बातों में सामंजस्य स्थापित करना। बात बनाना।

रफूगर-संज्ञा पुं० [फ़ा०] रफ़ू करने का व्यवसाय करनेवाला। रफ़ू बनानेवाला।

रफूगरी-संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] रफ़ू करने का काम। रफ़ूगरों का काम।

रफूचक्कर-वि० [अ० रफ़ू + हिं० चक्कर] चंपत। ग़ायब।

मुहा०—रफ़ूचक्कर बनना या होना = भाग जाना। चलता बनना। गायब हो जाना। जैसे,—वह देखते देखते रफ़ूचक्कर हो गया।

रफ़्तनी-संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] (१) जाने की क्रिया या भाव। (२) माल का बाहर भेजा जाना। माल की निकासी।

रफ़्तार-संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] चलने का ढंग या भाव। चाल। गति।

रफ़्ता रफ़्ता-क्रि० वि० [फ़ा०] धीरे धीरे। क्रम क्रम से। उ०—अवल मुसे यह गुज़रै ताल्लत करना जानि। रफ्ते रफ्ते और भी रहे मुखालिफ मान।—सूदन।

रब-संज्ञा पुं० [अ०] ईश्वर। परमेश्वर। उ०—(क) पीरा पैगंबरा दिगंबरा देखाई देत, सिद्ध की सिधाई गई रही बात रब की।—भूषण। (ख) अरन अन्यारे जे भरे अति ही मदन मजेज। देखे तुव इन वारये रब सुकराना भेज।—रसनिधि।

रबड़-संज्ञा पुं० [अं० रबर] (१) एक प्रसिद्ध लचीला पदार्थ जिसका व्यवहार गेंद, फ़ीता, पट्टी, बेलन आदि बहुत से पदार्थ बनाने में होता है। यह अनेक वृक्षों के ऐसे दूध से बनता है, जो पेड़ से निकलने पर जम जाता है। यह चिमड़ा और लचीला होता है। इसमें रासायनिक अंश कार्बन और हाइड्रोजन के होते हैं। यह २४८° की आँच पाकर पिघल जाता है और ६००° की आँच में भाप के रूप में उड़ने लगता है। आग पाने से यह भक से जलने लगता है। इस की लौ चमकीली होती है और इसमें से धूआँ अधिक निकलता है। अब इसमें गंधक का फूल या उड़ाई हुई गंधक मिलाकर इसे धीमी आँच में पिघलाकर २५०° से लेकर ३००° की भाप में सिद्ध करते हैं, तब इससे अनेक प्रकार की चीज़ें जैसे खिलौने, बटन, कंघी आदि बनाई जाती हैं, जो देखने में सींग या हड्डी की जान पड़ती हैं। इस पर सब प्रकार के रंग भी चढ़ाए जाते हैं। रबड़ अफ़रिका, अमेरिका और एशिया के प्रदेशों में भिन्न भिन्न पेड़ों के दूध से बनाया जाता है और वहाँ इससे अनेक प्रकार के उपयोगी पदार्थ बनाए जाते हैं। (२) एक वृक्ष का नाम जो वट वर्ग के अंतर्गत है। यह भारतवर्ष में आसाम, मनीपुर आदि हिमालय के आस पास के प्रदेशों तथा बरमा आदि में होता है। इसकी पत्तियाँ चौड़ी और बड़ी बड़ी होती हैं और इसका पेड़ ऊँचा और दीर्घाकार होता है। इसकी लकड़ी मजबूत और भूरे रंग की होती है। इसी के दूध से उपर्युक्त लचीला पदार्थ बनता है।

संज्ञा स्त्री० [हिं० रगड़] (१) व्यर्थ का श्रम। फ़जूल हैरानी। (२) गहरा श्रम। रगड़।

क्रि० प्र०—खाना।—पड़ना।

(३) तै करने के लिये अधिक दूरी। घुमाव। चक्कर। फेर। जैसे,—उधर से जाने में बड़ी रबड़ पड़ेगी।

रबड़ना-क्रि० स० [हिं० रपटना या सं० वर्त्तन, प्रा० वट्टन] (१) घुमाना। चलाना। (२) किसी तरल पदार्थ में कोई वस्तु (करछी आदि) डालकर चारों ओर फेरना। फेंटना।

क्रि० अ० घूमना। फिरना।

रबड़ी-संज्ञा स्त्री० [हिं० रबड़ना] औंटाकर गाढ़ा और लच्छेदार किया हुआ दूध जिसमें चीनी भी मिलाई जाती है। बसौंधी।

रबदा-संज्ञा पुं० [हिं० रबड़ना] (१) वह श्रम जो कहीं बार बार गमनागमन या पद-संचालन से होता है। (२) कीचड़।

मुहा०—रबदा पड़ना = खूब पानी बरसना। वृष्टि होना। उ०—जेहि चलते रबदे पड़ा धरती होइ बिहार। सो सावज घामैं जरै पंडित करौ बिचार।—कबीर।

रबर-संज्ञा पुं० दे० "रबड़"।

रबरी†-संज्ञा स्त्री० दे० "रबड़ी"।

रबाना-संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का छोटा डफ जिसमें मँजीरे भी लगे होते हैं और जिसे प्रायः कहार आदि बजाते हैं।

रबाब-संज्ञा पुं० [अ०] सारंगी की तरह का एक प्रकार का बाजा, जिसमें बजाने के लिये तार लगे होते हैं। उ०—(क) सब रग ताँत रबाब तन बिरह बजावै नित्त। और न कोई सुनि सकै कै साईं कै चित्त।—कबीर। (ख) बाजत बीन रबाब किन्नरी अमृतकुंडली यंत्र। सुरसर मंडल जलतरंग मिलि करत मोहनी मंत्र।—सूर। (ग) अरे बजावत कौन डिग हित रबाब के तार। जुरो जान है आइ कै बिरहिन को दरबार।—रसनिधि।

रबाबिया-संज्ञा पुं० [हिं० रबाब + इया (प्रत्य०)] वह जो रबाब बजाता हो। रबाब बजानेवाला।

रबी-संज्ञा स्त्री० [अ० रबीअ] (१) वसंत ऋतु। (२) वह फ़सल जो वसंत ऋतु में काटी जाती है। जैसे,—गेहूँ, चना, मटर आदि। उ०—जहाँ जायें कदम शरीफ़। न रहे रबी, न रहे खरीफ़। (कहावत)

रबील-संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का पक्षी जो पंद्रह सोलह अंगुल लंबा होता है। इसके डैने भूरे, सिर और छाती सफ़ेद, चोंच काली और पैर ख़ाकी रंग के होते हैं। यह हिमालय के किनारे गढ़वाल से आसाम तक पाया जाता है। यह झाड़ियों में घोंसला बनाता और अप्रैल से जून तक दो से पाँच तक अंडे देता है।

रब्त-संज्ञा पुं० [अ०] (१) अभ्यास । मश्क । मुहावरा । रपट ।
क्रि० प्र०—पड़ना ।—होना ।
(२) संबंध । मेल ।
यौ०—रब्त ज़ब्त = मेलजोल । घनिष्ठता । जैसे,—उनसे कुछ रब्त ज़ब्त पैदा करो, तो तुम्हारा काम हो जायगा ।

रब्ध-वि० [सं०] [स्त्री० रब्धा] आरंभ किया हुआ । शुरू किया हुआ ।

रब्य-संज्ञा पुं० दे० "रब" ।

रब्बा†-संज्ञा पुं० [फा० अराबा] (१) वह गाड़ी जिस पर तोप लादी जाती है । तोपखाने की गाड़ी । (२) वह गाड़ी या रथ जिसे बैल खींचते हैं ।

रब्बाब-संज्ञा पुं० दे० "रबाब" ।

रभस-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वेग । (२) हर्ष । (३) प्रेमोत्साह । (४) उत्सुकता । औत्सुक्य । (५) पूर्वापर या कारण-कार्य्य का विचार । (६) संभ्रम । (७) पछतावा । रंज । (८) वाल्मीकि रामायण के अनुसार अस्त्रों का एक संहार, अर्थात् शत्रु के चलाए हुए अस्त्र को निष्फल करने की विधि जो विश्वामित्र ने रामचंद्र जी को सिखलाई थी । (९) रामायण के अनुसार एक राक्षस का नाम ।

रभेणक-संज्ञा पुं० [सं०] महाभारत के अनुसार एक राक्षस का नाम । कहते हैं कि यह साँप के रूप में रहता था ।

रम-संज्ञा पुं० [सं०] (१) कामदेव । (२) लाल अशोक । (३) प्रेमी । (४) पति ।
वि० (१) प्रिय । (२) सुंदर । (३) आनंददायक । हर्षोत्पादक । (४) जिससे मन प्रसन्न हो ।
संज्ञा पुं० [अं०] एक प्रकार की शराब जो जौ से बनाई जाती है ।

रमक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) प्रेम-पात्र । कांत । प्रेमी । (२) उपपति । जार ।
संज्ञा स्त्री० [हिं० रमना ?] (१) झूले की पेंग । (२) तरंग । झकोरा । उ०—खेलत फाग भरी अनुराग सुहाग सनी सुख की रमकैं ।
संज्ञा स्त्री० [अ० रमक] (१) थोड़ा सा साँस जो मरते समय निकलने को शेष रह गया हो । अंतिम श्वास । (२) हलका प्रभाव । (३) स्वल्प भाग । बहुत थोड़ा अंश । (४) नशे का थोड़ा असर । जैसे,—ज़रा सी रमक मालूम हो रही है ।
वि० ज़रा सा । बहुत थोड़ा ।

रम-कजरा-संज्ञा पुं० [हिं० राम + काजल] एक प्रकार का धान जो भादों में पकता है । यह पकने पर काले रंग का होता है और मोटा धान माना जाता है । नेपाल की तराई में यह अधिकता से होता है । बगरी या बकी से इसके चावल कुछ लंबे होते हैं और कूटने पर सफेद रंग के निकलते हैं ।

रमकना-क्रि० अ० [हिं० रमना] (१) हिंडोले पर झूलना । हिंडोले पर पेंग मारना । उ०—कबहुँक निकट देखि वर्षा ऋतु झूलत सुरंग हिंडोरे । रमकत झमकत जनक सुता सँग हाव भाव चित चोरे ।—सूर । (२) झूमते हुए चलना । इतराते हुए चलना ।

रमचकरा†-संज्ञा पुं० [हिं० राम + चक्र] बेसन की मोटी रोटी ।

रमचा†-संज्ञा पुं० [हिं० चमचा] छोटी करछी । चमचा ।

रमज़ान-संज्ञा पुं० [अ०] एक अरबी महीने का नाम । इस महीने में मुसलमान रोज़ा रखते हैं ।

रमझोल†-संज्ञा पुं० दे० "रमझोला" ।

रमझोला-संज्ञा पुं० [डिं०] पैर में पहनने के घुँघरू । नूपुर ।

रमठ-संज्ञा पुं० [सं०] (१) हींग । (२) एक प्राचीन देश का नाम । (३) इस देश का निवासी ।

रमण-संज्ञा पुं० [सं०] (१) आनंदोत्पादक क्रिया । विलास । क्रीड़ा । केलि । (२) मैथुन । (३) गमन । घूमना । विचरना । (४) पति । (५) कामदेव । (६) जघन । (७) गधा । (८) अंडकोश । (९) सूर्य्य का अरुण नामक सारथी । (१०) एक वन का नाम । (११) एक वर्णिक छंद का नाम । इसके प्रत्येक चरण में तीन अक्षर होते हैं, जिनमें दो लघु और एक गुरु होता है । जैसे,—दुख क्यों । टरिहैं । हरि जू । हरिहैं ।
वि० (१) मनोहर । सुंदर । (२) जिसके मिलने से आनंद उत्पन्न हो । प्रिय । (३) रमनेवाला ।

रमणक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) जंबूद्वीप के अंतर्गत एक वर्ष या खंड का नाम । इसे रम्यक भी कहते हैं । वि० दे० "रम्यक" । (२) वीतहोत्र के पुत्र का नाम ।

रमणगमना-संज्ञा स्त्री० [सं०] साहित्य में एक प्रकार की नायिका जो यह समझकर दुःखी होती है कि संकेत स्थान पर नायक आया होगा, और मैं वहाँ उपस्थित न थी । उ०—छटी सपल्लव लाल कर लखि तमाल की डाल । कुँभिलानी उर साल धरि फूल माल ज्यों बाल ।—बिहारी ।

रमणा-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक शक्ति का नाम जो रामतीर्थ में है ।

रमणी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) नारी । स्त्री । (२) सुंदर स्त्री । (३) वाला या सुगंधवाला नामक गंध द्रव्य ।

रमणीक-वि० [सं० रमणीय] सुंदर । मनोहर । उ०—अति रमणीक कदंब छाँह रुचि परम सुहाई । राजत मोहन मध्य अवलि बालक की पाई ।—सूर ।

रमणीय-वि० [सं०] सुंदर । मनोहर ।

रमणीयता-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सुंदरता । (२) साहित्य-

दर्पण के अनुसार वह माधुर्य जो सब अवस्थाओं में बना रहे या क्षण क्षण में नवीन रूप धारण किया करे।

रमता-वि० [हिं० रमना=घूमना फिरना] एक जगह जमकर न रहनेवाला। घूमता फिरता। जैसे,—रमता जोगी।

रमति-संज्ञा पुं० [सं०] (१) नायक। (२) स्वर्ग। (३) कौवा। (४) काल। (५) कामदेव।

रमदी†-संज्ञा पुं० [हिं० राम+सं० भाग] एक प्रकार का जड़हन जो अगहन के महीने में पकता है। इसका चावल सालों तक रह सकता है।

रमन*-संज्ञा पुं० वि० दे० "रमण"।

रमनक-संज्ञा पुं० दे० "रमणक"।

रमनसोरा-संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की मछली जिसे कँवल-सोरा भी कहते हैं।

रमना-क्रि० अ० [सं० रमण] (१) भोग-विलास या सुख-प्राप्ति के लिये कहीं रहना या ठहरना। मन लगने के कारण कहीं रहना। उ०—(क) रमि रैन सबै अनतै बितई सो कियो इत आवन भोर ही को।—(ख) केशवदास सविलास तेरे मुख को सुवास सखी सुनि आरस ही सारसनि लै रही।—केशव। (२) भोग-विलास या रति-क्रीड़ा करना। उ०—(क) अधिवरणा अरु अंग घटि अंत्यज जन की नारि। तजि विधवा अरु पूजिता रमियहु रसिक विचारि।—केशव। (ग) राति कहूँ रमि आयो घरै डर मानै नहीं अपराध किये को।—पद्माकर। (३) आनंद करना। चैन करना। मजा उड़ाना। उ०—बहुँ भाग बाग तड़ाग। अब देखिये बड़ भाग। फल फूल सो संयुक्त। अलि यों रमैं जनु मुक्त।—केशव। (४) चारों ओर भरपूर होकर रहना। व्याप्त होना। भीनना। उ०—(क) आध्यात्मिक होइ आत्मा रमत याासों यह बलराम मुनि।—गोपाल। (ख) पाइ पूरण रूप को रमि भूमि केशव-दास।—केशव। (ग) मैं सिरजौं मैं मारहूँ मैं जारौं मैं खाऊँ। जल थल मैं ही रमि रह्यौं मोर निरंजन नाऊँ।—कबीर। (५) अनुरक्त होना। लग जाना। उ०—महादेव अवगुन भवन विष्णु सकल गुणधाम। जेहि कर मन रम जाहि सन तेहि तेहि सन काम।—तुलसी। (६) किसी के आस पास फिरना। घूमना। उ०—(क) कोई परै भँवर जल माँहीं। फिरत रमहिं कोइ देइ न थाँहीं।—जायसी। (ख) लसत केतकि के फूल फूल सों। रमत भौंर भरे रसमूल सों।—गुमान। (७) चलता होना। चल देना। गायब हो जाना। उ०—हाल उठी झाँली जली खपरा फूटम फूट। जोगी था सो रम गया, आसन रही भभूत।—कबीर।

संयो० क्रि०—देना।—जाना।

(८) आनंदपूर्वक इधर उधर फिरना। विहार करना। मनमाना घूमना। विचरना। उ०—(क) जे पद पद्म रमत वृंदाबन अहि सिर धरे अगनित रिपु मारे।—सूर। (ख) गोपिन सँग निसि सरद की रमत रसिक रसरासि। छहा छेह अति गतिन की सबन लखे सब पास।—बिहारी।

संज्ञा पुं० [सं० आराम या रमण] (१) वह हरा भरा स्थान जहाँ पशु चरने के लिये छोड़ दिए जाते हैं। चरागाह। उ०—इन जमना रमना उतै बीच जहानाबाद। तामैं बसने की करौ करौ न बाद बिवाद।—रसनिधि। (२) वह सुरक्षित स्थान या घेरा, जहाँ पशु शिकार के लिये या पालने के लिये छोड़ दिए जाते हैं और जहाँ वे स्वच्छंदतापूर्वक रहते हैं। (३) घेरा। हाता। (४) बाग। (५) कोई सुंदर और रमणीक स्थान।

रमनी*-संज्ञा स्त्री० दे० "रमणी"।

रमनीक*-वि० दे० "रमणीक"।

रमनीय*-वि० दे० "रमणीय"।

रमल-संज्ञा पुं० [अ०] एक प्रकार का फलित ज्योतिष जिसमें पासे फेंककर उसके बिंदुओं के अनुसार शुभाशुभ फल का अनुमान किया जाता है। यह शास्त्र पहले अरबी भाषा में था और मुसलमानों के साथ साथ भारतवर्ष में आया था। संस्कृत में भी पंडितों ने रमल विषयक अनेक ग्रंथ रचे हैं।

रमा-संज्ञा स्त्री० [सं०] लक्ष्मी।

विशेष—इस शब्द में कांत, पति, रमण आदि अथवा इनके वाची शब्द लगाने से विष्णु का अर्थ होता है। जैसे,—रमाकांत, रमापति, रमारमण।

रमाकांत-संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु।

रमाधव-संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु।

रमानरेश *-संज्ञा पुं० [हिं० रमा+नरेश=पति] विष्णु। उ०—जय जय करत सकल सुर नर मुनि जल में कियो प्रवेश। जाय पताल बाट गहि लीन्ही धरणी रमानरेश।—सूर।

रमाना-क्रि० स० [हिं० रमना का स० रूप] (१) अनुरंजित करना। अनुरक्त बनाना। मोहित करना। लुभाना। उ०—(क) अति पतिहिं रमावै चित्त भ्रमावै सौतिन प्रेम बढ़ावै।—केशव। (ख) महा कमनीय रमनीय रमनीय हू रमावै नर मन हूँ कै रूप रज रेहूँ कै।—देव। (ग) गोरस मथत नाद इक उपजत किंकिनि धुनि सुनि श्रवण रमावति। सूर श्याम अँचरा धरि ठाढ़े काम कसौटी करि देखरावति।—सूर। (२) अपने अनुकूल बनाना। उ०—जैसे माया मन रमै वैसे राम रमाय। तारा मंडल छाँड़ि कै जहँ केशव तहँ जाय।—कबीर। (३) ठहराना। रोक रखना। (४) संयुक्त करना। लगाना। जोड़ना।

मुहा०—राख रमाना=राख मलना। राख लपेटना। उ०—आँखी

जाकी महिमा कहत न आवै। सो गोपिन सग रास रमावै। सूर। विभूति वा भभूत रमाना=शरीर में भभूत लगाना। भभूत पोतना। उ०—अँसुअन की सेली गल में लगत सुहाई। तन धूर जमी सोइ अंग भभूत रमाई।—हरिश्चंद्र। मन रमाना=दुःखी या चिंतित मन को किसी प्रकार प्रसन्न करना। मन बहलाना।

रमानिवास-संज्ञा पुं० [हिं० रमा+निवास] लक्ष्मीपति, विष्णु। उ०—सो राम रमानिवास संतत दास बस त्रिभुवनधनी। मम उर बसउ सो समन संसृति जासु कीरति पावनी।—तुलसी।

रमारमण-संज्ञा पुं० [सं०] रमापति। लक्ष्मीपति। विष्णु।

रमाली-संज्ञा पुं० [फा० रमाली] एक प्रकार का बारीक और स्वादिष्ट चावल जो करनाल में होता है।

रमाबीज-संज्ञा पुं० [सं०] एक तांत्रिक मंत्र जिसे लक्ष्मीबीज भी कहते हैं। श्रीं।

रमावेष-संज्ञा पुं० [सं०] श्रीवास चंदन जिससे ताड़पीन नामक तेल निकलता है।

रमास-संज्ञा पुं० दे० "रवाँस"।

रमित*-वि० [हिं० रमना] लुभाया हुआ। मुग्ध। उ०—आवैं सुरतिय करि शृंगारा। रमित रहैं नृप करैं विहारा।—सबल।

रमी-संज्ञा स्त्री० [मलाय०] एक प्रकार की घास जो सुमात्रा आदि द्वीपों में होती है। यह रीहा के समान कागज और रस्सी आदि बनाने के काम में आती है। सुमात्रावाले इसे कलुई कहते हैं। पहले इसे कुछ लोग भ्रमवश रीहा ही समझते थे।

रमूज़-संज्ञा स्त्री० [अ० रम्ज़ का बहु०] (१) कटाक्ष। (२) सैन। इशारा। (३) पहेली। गूढ़ार्थ वाक्य। (४) श्लेष। (५) गुप्त बात। भेद। रहस्य। उ०—यों कहि मौन भये अज-नंदन कैकय राज रमूज सी पाई।—हनुमान।

रमेश-संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु।

रमेश्वर-संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु।

रमैती-संज्ञा स्त्री० [देश०] (१) किसानों की एक रीति जिसमें एक कृषक आवश्यकता पड़ने पर दूसरे के खेत में काम करता है और उसके बदले में वह भी उसके खेत में काम कर देता है। इसमें मजदूरी बच जाती है और काम के बदले में दूसरों के खेतों में काम कर देना होता है। इसे पूर्व में पैंठ और अवध के उत्तरीय भागों में हूँड़ कहते हैं। (२) वह नफरी या काम का दिन जो इस प्रकार कार्य्य करने में लगे।

क्रि० प्र०—करना।—देना।—लगाना।

रमैनी-संज्ञा स्त्री० [हिं० रामायण] कबीरदास के बीजक का एक भाग जिसमें दोहे और चौपाइयाँ हैं।

रमैया‡*-संज्ञा पुं० [हिं० राम + ऐया (प्रत्य०)] (१) राम। उ०—वहाँ सब संकट दुर्घट सोच तहाँ मेरो साहेब राखै रमैया।—तुलसी। (२) ईश्वर।

रम्माल-संज्ञा पुं० [अ०] रमल फेंकनेवाला। पासा फेंककर फलित कहनेवाला।

रम्य-वि० [सं०] [स्त्री० रम्या] (१) मनोहर। सुंदर। (२) मनोरम। रमणीय।

संज्ञा पुं० (१) चंपा का पेड़। (२) बक का पेड़। अगस्त। (३) परवल की जड़। (४) वीर्य्य। (५) अग्निध्र के एक पुत्र का नाम। (६) वायु के सात भेदों में एक, जो घंटे में चार से सात कोस तक चलती है।

रम्यक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) जंबू द्वीप के नौ खंडों या वर्षों में से एक। यह मेरु के दक्षिण और श्वेत पर्वत के उत्तर वायव्य कोण में माना गया है। कहते हैं कि यहाँ वट की जाति का एक वृक्ष होता है, जिसे खाकर यहाँ के लोग कई दिन तक रह सकते हैं। इसे रोहित भी कहते हैं। (२) महानिंब। बकायन।

रम्यक्षीर-संज्ञा पुं० [सं०] महानिंब। बकायन।

रम्यग्राम-संज्ञा पुं० [सं०] महाभारत के अनुसार एक गाँव का नाम।

रम्यपुष्प-संज्ञा पुं० [सं०] सेमल का पेड़।

रम्यफल-संज्ञा पुं० [सं०] कुचिला।

रम्यश्री-संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु।

रम्यसानु-संज्ञा पुं० [सं०] पहाड़ के शिखर पर की समतल भूमि। प्रस्थ।

रम्या-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) रात। (२) गंगा नदी। (३) स्थल पद्मिनी। (४) महेंद्रवारुणी। इंद्रायन। (५) लक्ष्मणा कंद। (६) मेरु की कन्या का नाम जो रम्य से ब्याही थी। (७) धैवत स्वर की तीन श्रुतियों में से अंतिम श्रुति का नाम। (८) एक रागिनी का नाम।

रम्यादि-संज्ञा पुं० [सं०] एक ऋषि का नाम।

रम्यामली-संज्ञा स्त्री० [सं०] भुईं आँवला।

रम्हाना-क्रि० अ० [सं० रंभण] गाय का बोलना। रँभाना। उ०—(क) तौ लगि गाय रम्हाय उठी कवि देव बधूनि मथ्यो दधि को घट।—देव। (ख) घौरिहूँ कोरियै आइ गई सु रम्हाइ के धाइ के लागी सुहावन।—देव।

रय*-संज्ञा पुं० [सं० रज] रज। धूल। गर्द। उ०—ठाकुर विराजैं जहाँ खेलैं सुत औरन के द्वारें ईंट खोवा रयो प्रभु पर दीजियो।—प्रियादास।

संज्ञा पुं० [सं०] (१) वेग। तेजी। उ०—यदु आनत है

के सब गुण रय के यासों रहत सुपाइ।—गुमान। (२) प्रवाह। (३) ऐल के छः पुत्रों में से चौथे पुत्र का नाम।
रयणपत-संज्ञा पुं० [सं० रजनीपति] चंद्रमा। (डिं०)
रयन॰†-संज्ञा स्त्री० दे० "रयनि"
रयना॰†-क्रि० अ० [सं० रंजन] (१) रंग से भिगोना। तराबोर करना। उ०—भरहिं अबीर अरगजा छिरकहिं सकल लोक एक रंग रये।—तुलसी। (२) किसी के प्रेम में मग्न होना। अनुरक्त होना। (३) संयुक्त होना। मिलना। उ०—(क) करिये युत भूषण रूप रयी। मिथिलेश सुता इक स्वर्णमयी।—केशव। (ख) ओंठ रचि रेख सविशेष शुभ श्री रये।—केशव।
रयनि॰-संज्ञा स्त्री० [सं० रजनी, प्रा० रयणी] रात्रि। निशा। रात।
रयासत-संज्ञा स्त्री० दे० "रियासत"।
रयिष्ठ-संज्ञा पुं० [सं०] (१) कुबेर का एक नाम। (२) अग्नि। (३) एक प्रकार का साम।
रय्यत†-संज्ञा स्त्री० [अ० रअय्यत] प्रजा। रिआया। रैयत। उ०—सुनि शत्रु मित्र की नृपचरित्र की रय्यति रावत बात।—केशव।
ररंकार-संज्ञा पुं० [सं० रकार] रकार की ध्वनि। उ०—रग रग बोलै रामजी रोम रोम ररंकार।—कबीर।
रर॰†-संज्ञा स्त्री० [हिं० ररना] रटन। रट। उ०—(क) धन सारस होइ रर मरी आप सु मेटहिं पंख।—जायसी। (ख) हारिय सार तिहिं पर अपार मुख मारु मारु रर।—सूदन।
ररक†-संज्ञा स्त्री० [अनु०] ररकने का भाव। कसक। साल। टीस।
ररकना†-क्रि० अ० [अनु०] कसकना। किरकिराना। सालना। पीड़ा देना। टीसना। उ०—सपने कि सौति फन्यो सोवत कि जागत ही जानी न परति रोम रोम ररकत है—देव।
ररना†-क्रि० अ० [सं० रटन, प्रा० रडन] लगातार एक ही बात कहना। बार बार कहना। रटना। उ०—(क) पिय पिय चातक ज्यों ररी मरै सेवाति पियास।—जायसी। (ख) हरि हरि हौं हा हा ररौ हरे हरे हरि रारि।—केशव। (ग) मदन ठ्यारत ही मदन सुयोधन ही द्रौपदी ज्यों गाढ़ै गुण तेरोई ररति है।—केशव।
ररिहा॰†-संज्ञा पुं० [हिं० ररना + हा (प्रत्य०)] (१) ररनेवाला। (२) ररुआ या करुआ नामक पक्षी जो उल्लू की जाति का है। (३) बार बार गिड़गिड़ाकर माँगनेवाला। माँगने की धुन लगानेवाला। भारी मंगन। उ०—द्वारे हौं भोर ही को आजु। रटत ररिहा आरि और न कौरही तें काजु।—तुलसी।

ररी-वि० [हिं० रार = झगड़ा] रार करनेवाला। झगड़ालू।
संज्ञा पुं० [हिं० ररना] (१) बहुत गिड़गिड़ाकर माँगनेवाला। भारी मंगन। (२) अधम। नीच। उ०—काम पड़ने पर अपने एक भाई को कह डालें कि तुम नीच हो, जाति में हेठे हो, ररी हो, पटकुल में नहीं हो।—बालकृष्ण भट्ट।
रलक-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन देश का नाम।
रलना॰†-क्रि० अ० [सं० ललन = क्षुब्ध होना] एक में मिलना। सम्मिलित होना। उ०—(क) माल रली भयली गर मैं कर दीन दयाल रली मुरली है।—दीनदयाल। (ख) चली पीठ दै दृष्टि फिरावति अँग आनंद रली।—सूर। (ग) कुंज ते कुंज रली रस पुंज मैं गुंजनि डोलति भौरी भई हैं।—सुंदर।
यौ०—रलना मिलना = घुलना मिलना। मिलना जुलना। एक हो जाना।
रलाना॰†-क्रि० स० [हिं० रलना का सक० रूप] एक में मिलाना। सम्मिलित करना।
रली-संज्ञा स्त्री० [सं० ललन = केलि, क्रीड़ा] (१) विहार। क्रीड़ा। उ०—खरी पातरी कान की कौन बहाऊँ बानि। आक कली न रली करै अली अली जिय जानि।—बिहारी। (२) आनंद। प्रसन्नता। उ०—विधिविधि कियो ब्याह बिधि बसुदेव मन उपजी रली।—सूर।
यौ०—रंगरली। रंगरलियाँ।
संज्ञा स्त्री० [देश०] चेना नामक अन्न।
रल्ल॰†-संज्ञा पुं० [हिं० रेला] रेला। हल्ला। उ०—(क) दल दक्खिनी करि रल्ल। मिलि गए लै भुज भल्ल।—सूदन। (ख) धरि धरि आयुध हत्थ गत्थ के गत्थ उछल्लिय। दै दै दिप्पनिसान करत आपुस में रल्लिय।—सूदन।
रल्लक-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का मृग।
रव-संज्ञा पुं० [सं०] (१) गुंजार। ध्वनि। नाद। उ०—(क) कूजत कल रव हंस गन गुंजत मंजुल भृंग।—तुलसी। (ख) कलहंस पिक सुक सरस रव करि गान नाचहिं अपसरा।—तुलसी। (२) आवाज। शब्द। (३) शोर। गुल।
संज्ञा पुं० ॰‡ [सं० रवि] सूर्य। उ०—पावते भरम भी न आवते जनक धाम जानहीं रूप देख पाई रव कैं।—हृदयराम।
संज्ञा पुं० [देश०] जहाज की चाल या गति। रुख। (लश०)
रवक-संज्ञा पुं० [देश०] रेंड़ नामक वृक्ष।
संज्ञा पुं० [सं०] वे मोती जो एक धरण (परिमान) में २० चढ़ते हों।
रवकना-क्रि० अ० [हिं० रमना = चलना] (१) उछल के आगे

बढ़ना। दौड़ना। लपकना। उ०—(क) सेमर खजूर जाय पूर रही धूर मग ताही के तुरंग तहाँ देख रवकत है।—हृदयराम। (ख) नैन मीन सरवर आनन में चंचल करत विहार। मानो कर्णफूल धारा की रवकत बारंबार।—सूर। (ग) लीने बसन देखि ऊँचे द्रुम रवकि चढ़नि बलवीर की।—सूर। (घ) परम सनेह बढ़ावत मातनि रवकि रवकि हरि बैठत गोद।—सूर। (२) उमगना। उछलना। उ०—यह अति प्रबल स्याम अति कोमल रवकि रवकि उर परते।—सूर।

रवण-संज्ञा पुं० [सं०] (१) काँसा नामक धातु। (२) रव। शब्द। (३) कोयल। (४) ऊँट। (५) विदूषक या भाँड़।

वि० (१) शब्द करता हुआ। (२) गरम। तप्त। (३) अस्थिर। चंचल।

रवणरेती—संज्ञा स्त्री० [हिं० रमण+रेती] गोकुल के समीप यमुना किनारे की रेतीली भूमि, जहाँ श्रीकृष्ण ग्वालों के साथ खेला करते थे।

रवताई*-संज्ञा स्त्री० [हिं० रावत+आई (प्रत्य०)] (१) राजा या रावत होने का भाव। (२) प्रभुत्व। स्वामित्व। उ०—धन सों खेल खेल सह पेमा। रवताइ औ कूसल खेमा।—जायसी।

रवथ-संज्ञा पुं० [सं०] कोयल।

रवन*-संज्ञा पुं० [सं० रमण] पति। स्वामी। उ०—पिय निठुर बचन कहे कारन कवन। जानत हौ सब के मन की गति मृदु चित परम कृपाल रवन।—तुलसी।

वि० रमण करनेवाला। क्रीड़ा करनेवाला। उ०—(क) राग रवन भाजन भवन शोभन श्रवण पवित्र।—केशव। (ख) मम मन मनहुँ मिलिंद रहत पास तव चरन के। करहु कृपा गोविंद राधारवन कृपायतन।—गोपाल।

रवना*-क्रि० अ० [सं० रमण] क्रीड़ा करना। रमण करना। उ०—जैसी रवै जयश्री करवालहिं। ज्यों अलिनी जलजात रसालहिं।—केशव।

क्रि० अ० [हिं० रव=शब्द] शब्द करना। बोलना।

‡ संज्ञा पुं० दे० "रावण" उ०—बहुतहिं अस गढ़ कीन्हेस जोवना। अंत भई लंकापति रवना।—जायसी।

रवनि, रवनी*-संज्ञा स्त्री० [सं० रमणी] (१) स्त्री। भार्या। पत्नी। उ०—(क) राज-रवनि गावत हरि को यश। रुदन करत सुत को समुझावति राखति श्रवणनि प्याइ सुधारस।—सूर। (ख) गर्भस्रवहिं अवनी रवनि सुनि कुठार गति घोर। परसु अछत देखउँ जियत बैरी भूप किसोर।—तुलसी। (२) रमणी। सुंदरी।

रवन्ना-संज्ञा पुं० [फ़ा० रवाना] (१) वह नौकर जो स्त्रियों के काम काज करने या सौदा सुलुफ़ लाने को ड्योढ़ी पर रहता है। (मुसल०) (२) वह कागज़ जिस पर रवाना किए हुए माल का ब्योरा होता है। (३) चुंगी आदि की वह रसीद या इसी प्रकार का और कोई प्रमाणपत्र जो किसी जानेवाली चीज़ के साथ रहता है। राहदारी का परवाना।

वि० दे० "रवाना"।

रवाँ-वि० [फ़ा०] (१) बहता हुआ। प्रवाहित। (२) जारी। चलता हुआ। (३) मश्क किया हुआ। घोटा हुआ। अभ्यस्त। (४) पैना। तेज़। चोखा। (शस्त्र आदि) (५) दे० "रवाना"।

रवाँस-संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का बोड़ा या लोबिया जिसकी तरकारी बनती है।

रवा-संज्ञा पुं० [सं० रज, प्रा० रअ=धूल] (१) किसी चीज़ का बहुत छोटा टुकड़ा। कण। दाना। रेज़ा। जैसे,—चाँदी का रवा; मिस्री का रवा।

मुहा०—रवा भर=बहुत थोड़ा। ज़रा सा।

(२) सूजी। (३) बारूद का दाना। (४) घुँघरुओं में शब्द करने के लिये डालने के छर्रे।

वि० [फ़ा०] (१) उचित। ठीक। वाजिब। (२) प्रचलित। चलनसार।

रवाज-संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] वह बात या कार्य्य जो किसी वंश, समाज या नगर आदि में बहुत दिनों से बराबर होता चला आया हो। परिपाटी। चाल। प्रथा। रस्म। चलन। रीति।

क्रि० प्र०—चलना।—पाना।—होना।

मुहा०—रवाज देना=प्रचलित करना। जारी करना। रवाज पकड़ना=धीरे धीरे प्रचार पा जाना। प्रचलित होना। जारी होना।

रवादार-वि० [फ़ा० रवा+दार (प्रत्य०)] (१) संबंध रखनेवाला। लगाव रखनेवाला। (२) शुभचिंतक। हितैषी।

वि० [हिं० रवा+फ़ा० दार] जिसमें कण या दाने हों। दानेदार। रवेवाला।

रवानगी-संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] रवाना होने की क्रिया या भाव। प्रस्थान। यात्रा।

रवाना-वि० [फ़ा०] (१) जिसने कहीं से प्रस्थान किया हो। जो कहीं से चल पड़ा हो। जो विदा या रुखसत हुआ हो। प्रस्थित। (२) भेजा हुआ।

रवानी-संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] (१) रवाँ होने का भाव। बहाव। प्रवाह। (२) बिदाई। रुखसती। (क०)

रवाब-संज्ञा पुं० दे० "रबाब"।

रवाबिया-संज्ञा पुं० [देश०] लाल बलुआ पत्थर।

संज्ञा पुं० दे० "रबाबिया"।

रवायत-संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) कहानी। किस्सा। (२) कहावत।

रया रवी-संज्ञा स्त्री० [फ़ा० रवा + अनु० रवी] (१) जल्दी। शीघ्रता। (२) भागाभाग। दौड़ादौड़।

रयासन-संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का वृक्ष जिसके बीज और पत्ते ओषधि के रूप में काम में आते हैं।

रवि-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सूर्य। (२) मदार का पेड़। आक। (३) अग्नि। उ०—योछे रवि नृप हवि यह लीजै। यथायोग्य निज रानिन दीजै।—विश्राम। (४) नायक। सरदार। (५) लाल अशोक का वृक्ष। (६) पुराणानुसार एक आदित्य का नाम। (७) एक पर्वत का नाम। (८) महाभारत के अनुसार धृतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम।

रविकर-संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य की किरण।

रविकांतमणि-संज्ञा पुं० [सं०] सूर्यकांत नामक मणि। वि० दे० "सूर्यकांत"।

रविकुल-संज्ञा पुं० [सं०] सूर्यवंश।

विशेष—इस शब्द के अंत में रवि, मणि आदि शब्द लगने से उसका अर्थ "रामचंद्र" होता है। जैसे,—रविकुल रवि, रवि कुल-मणि।

रविचंचल-संज्ञा पुं० [सं०] लोलार्क नामक तीर्थस्थल जो काशी में है। उ०—रविचंचल अरु मध्य-द्रुम बीच मु-वास विचारि। तुलसिदास आसन करे अवनि-सुता उर धारि।—सुधाकर।

रविचक्र-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सूर्य का मंडल। (२) सूर्य के रथ का पहिया। (३) फलित ज्योतिष में एक प्रकार का चक्र जो मनुष्य के शरीर के आकार का होता है और जिसमें यथा-स्थान नक्षत्र आदि रखकर बालक के जीवन की शुभ और अशुभ बातें जानी जाती हैं।

रविज-संज्ञा पुं० [सं०] शनैश्चर, जिसकी उत्पत्ति रवि या सूर्य से मानी जाती है।

रविजकेतु-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार के केतु या पुच्छल तारे जिनकी उत्पत्ति सूर्य से मानी गई है। कहते हैं कि इनका आकार प्रायः हार के समान और वर्ण सोने के समान होता है और ये पूर्व या पश्चिम दिशा में दिखाई देते हैं।

रविजा-संज्ञा स्त्री० [सं०] यमुना। कालिंदी।

रविजात-संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य की किरण।

रविजेंद्र-संज्ञा पुं० [सं०] जैनों के एक आचार्य्य का नाम।

रवितनय-संज्ञा पुं० [सं०] (१) यमराज। (२) सावर्णि मनु। (३) वैवस्वत मनु। (४) शनैश्चर। (५) सुग्रीव। (६) कर्ण। (७) अश्विनीकुमार।

रवितनया-संज्ञा स्त्री० [सं०] सूर्य की कन्या, यमुना। उ०—(क) गए स्याम रवितनया के तट अंग लसति चंदन की खोरी।—सूर। (ख) जमुना जल बिहरत नँदनंदन संग मिली सुकुमारि। सूर धन्य धरनी वृंदावन रवितनया सुख-कारि।—सूर।

रवितनुजा-संज्ञा स्त्री० [सं०] यमुना।

रवितीर्थ-संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार एक प्राचीन तीर्थ का नाम।

रविदिन-संज्ञा पुं० [सं०] रविवार। एतवार।

रविनंद, रविनंदन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) कर्ण। उ०—गुरुहि नाइ सिर भेंटि पुनि अति हित द्रोणकुमार। मग महँ मिलि रविनंदनहिं जात भए आगार।—सबल। (२) सुग्रीव। उ०—रविनंदन जब मिले राम को अरु भेंटे हनुमान। अपनी बात कही उन हरि सों बालि बड़ो बलवान।—सूर। (३) सावर्णि मनु। (४) वैवस्वत मनु। (५) शनि। (६) यम। (७) अश्विनीकुमार।

रविनंदिनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] यमुना। उ०—विधि निषेधमय कलिमल हरनी। कर्मकथा रविनंदिनि बरनी।—तुलसी।

रविनाथ-संज्ञा पुं० [सं०] पद्म। कमल।

रविपुत्र-संज्ञा पुं० दे० "रविनंदन"।

रविपूत⊛-संज्ञा पुं० दे० "रविनंदन"।

रविप्रिय-संज्ञा पुं० [सं०] (१) लाल कमल। (२) ताँबा। (३) लाल कनेर। (४) मदार। आक। (५) लकुच या लकुट नामक फल या उसका वृक्ष।

रविप्रिया-संज्ञा स्त्री० [सं०] पुराणानुसार देवी की एक मूर्ति।

रविबिंब-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सूर्य का मंडल। (२) माणिक्य। मानिक।

रविमंडल-संज्ञा पुं० [सं०] वह लाल मंडल या गोला जो सूर्य के चारों ओर दिखाई देता है। रविबिंब। उ०—(क) जयति घात संजात जयति रविमंडल ग्रासक।—विश्राम। (ख) रविमंडल जनु जाल काटि विधि धरे गगन गन।—गिरधर।

रविमणि-संज्ञा पुं० [सं०] सूर्यकांत मणि।

रविरत्न-संज्ञा पुं० [सं०] सूर्यकांत नामक मणि।

रविरत्नक-संज्ञा पुं० [सं०] माणिक्य। मानिक।

रविलोचन-संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु।

रविलोह-संज्ञा पुं० [सं०] ताँबा।

रविवंश-संज्ञा पुं० [सं०] सूर्यकुल।

रविवंशी-संज्ञा पुं० [सं०] सूर्यकुल में उत्पन्न। सूर्य्यवंशी।

रविवाण-संज्ञा पुं० [सं०] वह बाण जिसके चलाने से सूर्य का सा प्रकाश उत्पन्न हो। उ०—राग दायक विपरीत प्रमाणा। अंधकार औरहु रविबाणा।—रघुराजसिंह।

रविवार-संज्ञा पुं० [सं०] सप्ताह के सात दिनों या वारों में से एक जो सूर्य का वार माना जाता है और जो शनिवार के बाद तथा सोमवार के पहले पड़ता है। आदित्यवार। एतवार। उ०—फागुन वदि चौदस शुभ दिन औ रविवार सुहायो।—सूर।

रविवासर-संज्ञा पुं० [सं०] रविवार । एतवार ।

रविश-संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] (१) गति । चाल । (२) तौर । तरीक़ा । ढंग । (३) क्यारियों के बीच में चलने के लिये बना हुआ छोटा मार्ग ।

क्रि० प्र०—कटना ।—काटना ।

रविसंक्रांति-संज्ञा स्त्री० [सं०] सूर्य का एक राशि में से दूसरी राशि में जाना । सूर्य संक्रमण । वि० दे० "संक्रांति" ।

रविसंज्ञक-संज्ञा पुं० [सं०] ताँबा ।

रविसारथि-संज्ञा पुं० [सं०] अरुण ।

रविसुंदर-संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक में एक प्रकार का रस जो भगंदर के लिये बहुत उपकारी माना जाता है ।

रविसुअन-संज्ञा पुं० [सं० रविसूनु] (१) सूर्य के पुत्र, अश्विनीकुमार । उ०—किधौं रविसुअन मदन ऋतुपति किधौं हरिहर वेष बनाए ।—तुलसी । (२) दे० "रविनंदन" ।

रविसुत-संज्ञा पुं० दे० "रविनंदन" ।

रविसूनु-संज्ञा पुं० दे० "रविनंदन" ।

रवीषु-संज्ञा पुं० [सं०] कामदेव ।

रवैया†-संज्ञा पुं० [फ़ा० रविश या रवाँ] (१) चलन । चाल चलन । (२) तौर । तरीका । ढंग ।

यौ०—रंग रवैया = रंग ढंग । तौर तरीका ।

रशना-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) जीभ । (२) रस्सी । (३) करधनी । तागड़ी ।

रशनाकलाप संज्ञा पुं० [सं०] धागे आदि की बनी हुई एक प्रकार की करधनी जो प्राचीन काल में स्त्रियाँ कमर में पहनती थीं ।

रशनागुण-संज्ञा पुं० दे० "रशनाकलाप" ।

रशनोपमा-संज्ञा स्त्री० [सं०] रसनोपमा नामक अलंकार । वि० दे० "रसनोपमा" ।

रश्क-संज्ञा पुं० [फ़ा०] (१) किसी दूसरे को अच्छी दशा में देखकर होनेवाली जलन या कुढ़न । ईर्ष्या । डाह । (२) लज्जा । शरम । (क०)

रश्मि-संज्ञा पुं० [सं०] (१) किरण । (२) पलक के रोएँ । बरौनी । (३) घोड़े की लगाम । बाग ।

रश्मिकलाप-संज्ञा पुं० [सं०] मोतियों का वह हार जिसमें ६४ या ५४ लड़ियाँ हों ।

रश्मिकेतु-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक राक्षस का नाम । (२) वह केतु या पुच्छल तारा जो कृत्तिका नक्षत्र में स्थित होकर उदित हो । कहते हैं कि इसकी चोटी में धूआँ रहता है और इसका फल सातवें केतु के समान होता है ।

रश्मिक्रीड़-संज्ञा पुं० [सं०] रामायण के अनुसार एक राक्षस का नाम ।

रश्मिप्रभास-संज्ञा पुं० [सं०] एक बुद्ध का नाम ।

रस-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह अनुभव जो मुँह में डाले हुए पदार्थों का रसना या जीभ के द्वारा होता है । खाने की चीज़ का स्वाद । रसनेंद्रिय का संवेदन या ज्ञान ।

विशेष—हमारे यहाँ वैद्यक में मधुर, अम्ल, लवण, कटु, तिक्त और कषाय ये छः रस माने गए हैं और इनकी उत्पत्ति भूमि, आकाश, वायु और अग्नि आदि के संयोग से जल में मानी गई है । जैसे,—पृथ्वी और जल के गुण की अधिकता से मधुर रस, पृथ्वी और अग्नि के गुण की अधिकता से अम्ल रस, जल और अग्नि के गुण की अधिकता से कटु रस, वायु और आकाश के गुण की अधिकता से तिक्त रस और पृथ्वी तथा वायु की अधिकता से कषाय रस उत्पन्न होता है । इन छः रसों के मिश्रण से और छत्तीस प्रकार के रस उत्पन्न होते हैं । जैसे,—मधुराम्ल, मधुरतिक्त, अम्ललवण अम्लकटु, लवणकटु, लवणतिक्त, कटुतिक्त, तिक्तकषाय आदि । भिन्न भिन्न रसों के भिन्न भिन्न गुण कहे गए हैं । जैसे,—मधुर रस के सेवन से रक्त, मांस, मेद, अस्थि और शुक्र आदि की वृद्धि होती है; अम्ल रस जारक और पाचक माना गया है; लवण रस पाचक और संशोधक माना गया है; कटु रस पाचक, रेचक, अग्निदीपक और संशोधक माना गया है; तिक्त रस रुचिकर और दीप्तिवर्द्धक माना गया है; और कषाय रस संग्राहक और मल, मूत्र तथा श्लेष्मा आदि को रोकनेवाला माना गया है । न्याय दर्शन के अनुसार रस नित्य और अनित्य दो प्रकार का होता है । परमाणु रूप रस नित्य और रसना द्वारा गृहीत होनेवाला रस अनित्य कहा गया है ।

(२) छः की संख्या । (३) वैद्यक के अनुसार शरीर के अंदर की सात धातुओं में से पहली धातु ।

विशेष—सुश्रुत के अनुसार मनुष्य जो पदार्थ खाता है, उससे पहले द्रव स्वरूप एक सूक्ष्म सार बनता है, जो रस कहलाता है । इसका स्थान हृदय कहा गया है, जहाँ से यह धमनियों द्वारा सारे शरीर में फैलता है । यही रस तेज के साथ मिलकर पहले रक्त का रूप धारण करता है और तब उससे मांस, मेद, अस्थि, शुक्र आदि शेष धातुएँ बनती हैं । यदि यह रस किसी प्रकार अम्ल या कटु हो जाता है, तो शरीर में अनेक प्रकार के रोग उत्पन्न करता है । इसके दूषित होने से अरुचि, ज्वर, शरीर का भारीपन, कृशता, शिथिलता, दृष्टि-हीनता आदि अनेक विकार उत्पन्न होते हैं ।

पर्य्या०—रसिका । स्वेदमाता । चर्मांम्ल । चर्मसार । रक्तसार ।

(४) किसी पदार्थ का सार । तत्व । (५) साहित्य में वह आनंदात्मक चित्त वृत्ति या अनुभव जो विभाव,

अनुभाव और संचारी से युक्त किसी स्थायी भाव के व्यंजित होने से उत्पन्न होता है । मन में उत्पन्न होनेवाला वह भाव या आनंद जो काव्य पढ़ने अथवा अभिनय देखने से उत्पन्न होता है ।

विशेष—हमारे यहाँ के आचार्यों में इस विषय में बहुत मतभेद है कि रस किसमें तथा कैसे अभिव्यक्त होता है । कुछ लोगों का मत है कि स्थायी भावों की वास्तविक अभिव्यक्ति मुख्य रूप से उन लोगों में होती है, जिनके कार्यों का अभिनय किया जाता है (जैसे,—राम, कृष्ण, हरिश्चंद्र आदि); और गौण रूप से अभिनय करनेवाले नटों में होती है । अतः इन्हीं में ये लोग रस की स्थिति मानते हैं । ऐसे आचार्यों का मत है कि अभिनय देखनेवालों या काव्य पढ़नेवालों के साथ रस का कोई संबंध नहीं है । इसके विपरीत अधिक लोगों का यह मत है कि अभिनय देखनेवालों तथा काव्य पढ़नेवालों में ही रस की अभिव्यक्ति होती है । ऐसे लोगों का कथन है कि मनुष्य के अंतःकरण में भाव पहले से ही विद्यमान रहते हैं; और काव्य पढ़ने अथवा नाटक देखने के समय वही भाव उद्दीप्त होकर रस का रूप धारण कर लेते हैं । और यही मत ठीक माना जाता है । तात्पर्य यह कि पाठकों या दर्शकों को काव्यों अथवा अभिनयों से जो अनिर्वचनीय और लोकोत्तर आनंद प्राप्त होता है, साहित्य शास्त्र के अनुसार वही रस कहलाता है ।

हमारे यहाँ रति, हास, शोक, क्रोध, उत्साह, भय, जुगुप्सा, आश्चर्य और निर्वेद इन नौ स्थायी भावों के अनुसार नौ रस माने गए हैं, जिनके नाम इस प्रकार हैं—शृंगार, हास्य, करुण, रौद्र, वीर, भयानक, बीभत्स, अद्भुत और शांत। दृश्य काव्य के आचार्य शांत को रस नहीं मानते। वे कहते हैं कि यह तो मन की स्वाभाविक भावशून्य अवस्था है । निर्वेद मन का कोई स्वतंत्र विकार नहीं है । अतः वे रसों की संख्या आठ ही मानते हैं । और कुछ लोग इन नौ रसों के सिवा एक और दसवाँ रस "वात्सल्य" भी मानते हैं ।

(६) नौ की संख्या । (७) सुख का अनुभव । आनंद । मज़ा । उ०—(क) यह जानिए बरदीन । बिनु मद्य के रस लीन ।—केशव । (ख) जेहि बिनु जीव निकाम यह रस हीन दिन दिन अति.मई ।—तुलसी । (ग) ओठ रुचिये सौं भ्यो सुख सुवास रस रत । स्याम रूप मेंद्रसाल अलि नहिं अलि अलि उन्मत ।—मतिराम ।

मुहा०—रस भीजना या भीनना=(१) किसी कार्य का ऐसा उदय आना कि उसके द्वारा आनंद उत्पन्न हो । मजे का ढंग आना । (२) तरुणाई प्रकट होना । यौवन का आरंभ या संचार होना । उ०—ह्याँ इनके रस भीजत त्यों इत ह्याँ उनके मसि भीजत आवै ।—पद्माकर ।

(८) प्रेम । प्रीति । मुहब्बत ।

यौ०—रस रंग=(१) प्रेम के द्वारा उत्पन्न होनेवाला आनंद । मुहब्बत का मज़ा । (२) प्रेम-क्रीड़ा । केलि । रस रीति=प्रेम का व्यवहार । मुहब्बत का बरताव । उ०—(क) प्रीति की बधिक रसरीति को अधिक नीति निपुन विवेक है निदेस देसकाल को ।—तुलसी । (ख) और को जानै रस की रीति । कहाँ हौं दीन कहाँ त्रिभुवनपति मिले पुरातन प्रीति । अनुरागन तन निमिष न चितवत इती राज की नीति ।—सूर । (ग) इष्ट मिलै और मन मिलै मिलै सकल रस रीति ।—कबीर ।

(९) काम-क्रीड़ा । केलि । विहार । उ०—दुलित कपोल रद लुलित अधर रुचि रसना रसनि रस रस में रिसाति है ।—केशव । (१०) उमंग । जोश । वेग । जैसे,—(क) आजानबाहु परकाज रत स्वाभिमान रस रंग मय ।—गुमान । (ख) जय कारन प्रन किये करत रस रत लरकारन । स्याम अनुज बल धाम बने सँग सुभट हजारन ।—गोपाल । (११) गुण । सिफ़त । उ०—(क) सम रस समर सकोच बस विबस न ठिकु ठहराय । फिरि फिरि उझकति फिरि दुरति दुरि दुरि उझकति जाय ।—बिहारी । (ख) लिहुँ देवन की द्युति-सी दरसै गति सोषै त्रिदोषन के रस की ।—केशव । (१२) किसी विषय का आनंद । उ०—जो जो जेहि जेहि रस मगन, तहँ सो मुदित मन मानि ।—तुलसी । (१३) कोई तरल या द्रव पदार्थ । (१४) जल । पानी । (१५) वनस्पतियों या फलों आदि में का वह जलीय अंश जो उन्हें कूटने, दबाने या निचोड़ने आदि से निकलता है । जैसे,—ऊख का रस, आम का रस, तुलसी का रस, अदरक का रस । (१६) शोरबा । जूस । रसा । (१७) वह पानी जिसमें मीठा या चीनी घुली हुई हो । शरबत । (१८) वृक्ष का निर्यास । जैसे,—गोंद, दूध, मद आदि । (१९) लासा । लुआब । (२०) घोड़ों और हाथियों का एक रोग जिसमें उनके पैरों में से ज़हरीला पानी बहता है । (२१) वीर्य । (२२) राग । (२३) विष । ज़हर । (२४) गंधरस । (२५) शिलारस । (२६) पारा । (२७) हिंगुल । शिंगरफ़ । (२८) वैद्यक में धातुओं को फूँककर तैयार किया हुआ भस्म, जिसका व्यवहार औषध के रूप में होता है । जैसे,—रस सिंदूर । (२९) पहले खिंचाव का शोरा जो बहुत तेज और अच्छा होता है । (३०) आनंद स्वरूप ब्रह्म । (उपनिषद्) (३१) केशव के अनुसार रगण और सगण । उ०—रगण मगन को मित्र गनि यगन भगन को दास । उदासीन जग जानिये रससिसु केशवदास ।—केशव । (३२) बोल नामक

गंध द्रव्य। (३३) एक प्रकार की भेड़ जो गिलगित्त से उत्तर और पामीर में पाई जाती है। (३४) भाँति। तरह। प्रकार। रूप। उ०—एक ही रस दुनी न हरप सोक साँसति सहति।—तुलसी। (३५) मन की तरंग। मौज। इच्छा। उ०—तिनका बयारि के बस। ज्यौं भावै त्यौं उड़ाइ लै जाइ अपने रस।—स्वामी हरिदास।

रसक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) फिटकरी। (२) खपरिया। संगे बसरी।

रसककारवेल्लक-संज्ञा पुं० [सं०] पतला खपरिया। संगे बसरी।

रसक दर्दुर-संज्ञा पुं० [सं०] दलदार मोटा खपरिया या संगे बसरी।

रसकपूर-संज्ञा पुं० [सं० रसकर्पूर] सफेद रंग की एक प्रकार की प्रसिद्ध उप-धातु जिसका व्यवहार औषध में होता है। यह प्रायः ईंगुर के समान होता है; इसी लिये इसे कुछ लोग सफेद शिंगरफ भी कहते हैं। एक और प्रकार का रसकपूर होता है, जो वास्तव में पारे की सफेद भस्म होती है। इसका व्यवहार प्रायः यूनानी चिकित्सा में होता है और यह खुजली, उपदंश आदि में उपयोगी माना जाता है।

रसकर्म्म-संज्ञा पुं० [सं०] पारे की सहायता से रस आदि तैयार करने की क्रिया। (वैद्यक)

रसका-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का क्षुद्र कुष्ठ रोग।

रसकुल्या-संज्ञा स्त्री० [सं०] पुराणानुसार कुशद्वीप की एक नदी का नाम।

रसकेलि-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) विहार। क्रीड़ा। (२) हँसी ठट्ठा। दिल्लगी। मजाक।

रसकेसर-संज्ञा पुं० [सं०] कपूर।

रसकेसरी-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की रसौषध जो पारे, गंधक और लौंग आदि के मेल से तैयार की जाती है, और अरुचि, अग्निमांद्य, आमवात, विसूचिका आदि रोगों में उपयोगी मानी जाती है। (वैद्यक)

रसकोरा-संज्ञा पुं० [हिं० रस+कौर] रसगुल्ला नाम की मिठाई। उ०—हरिवल्लभ अरु रमा विलासे। रसकोरे घोरे रस खासे। रघुराज।

रसखर्पर-संज्ञा पुं० [सं०] खपरिया। संग-बसरी।

रसखीर-संज्ञा स्त्री० [हिं० रस+खीर] चीनी के शर्बत अथवा ऊख के रस में पकाए हुए चावल। मीठा भात।

रसगंध-संज्ञा पुं० दे० "रसगंधक"।

रसगंधक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) गंधक। (२) बोल नामक गंध द्रव्य। (३) रसौत। रसांजन। (४) हिंगुल। शिंगरफ। ईंगुर।

रसगत ज्वर-संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक के अनुसार शरीर की रस धातु में समाया हुआ ज्वर।

विशेष—कहते हैं कि ज्वर अधिक दिनों का हो जाने से शरीर के रस तक में पहुँच जाता है और उससे ग्लानि, वमन और अरुचि आदि होती है।

रसगर्भ-संज्ञा पुं० [सं०] (१) रसौत। रसांजन। (२) शिंगरफ। हिंगुल। ईंगुर।

रसगुनी †-संज्ञा पुं० [सं० रस+गुणी] काव्य या संगीत शास्त्र का ज्ञाता। उ०—श्री हरिदास के स्वामी स्यामाँ को मेरु सरस भयो और रसगुनी परे फीके—हरिदास।

रसगुल्ला-संज्ञा पुं० [हिं० रस+गोला] एक प्रकार की छेने की मिठाई जो गुलाब जामुन के समान गोल होती और शीरे में पड़ी हुई होती है।

रसग्रह-संज्ञा पुं० [सं०] जीभ।

रसघन-संज्ञा पुं० [सं०] आनंदघन, श्रीकृष्णचंद्र।

वि० जो बहुत अधिक स्वादिष्ट हो।

रसघ्न-संज्ञा पुं० [सं०] सुहागा।

रसछन्ना-संज्ञा पुं० [हिं० रस+छन्ना=छानने की चीज] [स्त्री० अल्पा० रसछन्नी] ऊख का रस छानने की चलनी।

रसज-संज्ञा पुं० [सं०] (१) गुड़। (२) रसौत। रसांजन। (३) शराब की तलछट। सुराबीज।

रसजात-संज्ञा पुं० [सं०] रसौत। रसांजन।

रसज्ञ-वि० [सं०] (१) वह जो रस का ज्ञाता हो। रस जाननेवाला। (२) काव्य-मर्मज्ञ। (३) रसायनी। (४) निपुण। कुशल। जानकार।

रसज्ञता-संज्ञा स्त्री० [सं०] रसज्ञ होने का भाव।

रसज्ञा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) गंगा। (२) जीभ।

रसज्येष्ठ-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मधुर या मीठा रस। (२) शृंगार रस।

रसडली-संज्ञा स्त्री० [हिं० रस+डली] एक प्रकार का गन्ना जिसका रंग पीलापन लिए हरा होता है और जो प्रायः बीजापुर और उसके आस पास बहुत होता है। रसवली।

रसतन्मात्रा-संज्ञा स्त्री० [सं०] पाँच तन्मात्राओं या महत्तत्वों में से चौथे तत्व जल की तन्मात्रा। (सांख्य) वि० दे० "तन्मात्र"।

रसता-संज्ञा स्त्री० [सं०] रस का भाव या धर्म्म। रसत्व।

रसतालेश्वर-संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक में एक प्रकार का रस जिसका व्यवहार कुष्ठ रोग में होता है। यह दांत, करंज, हलदी, भिलावें, घीकुआँर, गदहपूरना, गंधक, पारे और विडंग आदि के योग से बनाया जाता है।

रसतेज-संज्ञा पुं० [सं० रसतेजस्] रक्त। लहू। खून।

रसत्याग-संज्ञा पुं० [सं०] दूध, दही, घी, तेल, मीठा पकवान आदि स्वादिष्ट पदार्थों का त्याग करना, जो एक प्रकार का नियम या आचार माना जाता है। (जैन)

रसत्व-संज्ञा पुं० [सं०] रस का भाव या धर्म्म । रसता ।

रसद-वि० [सं०] (१) आनंददायक । सुखद । उ०—(क) रसद बिहारी बंदे वल्लभा राधिका निसदिन रंगरंगी ।—स्वा० हरिदास । (ख) रसद श्री हरिदास बिहारी अंग अंग मिलत अतन उद्योत करत सुरति आरंभटी ।—हरिदास । (२) स्वादिष्ट । मजेदार । जायकेदार ।

संज्ञा पुं० चिकित्सा करनेवाला । इलाज करनेवाला व्यक्ति ।

संज्ञा स्त्री० [फा०] (१) वह जो बँटने पर हिस्से के अनुसार मिले । बाँट । बखरा ।

मुहा०—हिस्सा रसद = बँटने पर अपने अपने हिस्से के अनुसार लाभ ।

(२) कच्चा अनाज जो पकाया न गया हो । भोजन बनाने के लिये अन्न आदि । गल्ला । (३) सेना का वह खाद्य पदार्थ जो उसके साथ रहता है ।

रसदा-संज्ञा स्त्री० [सं०] सफेद निर्गुंडी । सँभालू । सिंधुआर ।

रसदार-वि०[हिं० रस + दार (प्रत्य०)] (१) जिसमें किसी प्रकार का रस हो । रसवाला । जैसे,—रसदार आम, रसदार नीबू । (२) स्वादिष्ट । मजेदार ।

रसदालिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] पौंढ़ा । गन्ना ।

रसद्रावी-संज्ञा पुं० [सं० रसद्राविन्] मीठा जँबीरी नीबू ।

रसधातु-संज्ञा पुं० [सं०] (१) पारा । (२) शरीर की सात धातुओं में से रस नामक धातु । वि० दे० "रस" ।

रसधेनु-संज्ञा स्त्री० [सं०] पुराणानुसार गुड़ आदि की बनाई हुई वह गौ जो दान की जाती है ।

रसन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) स्वाद लेना । चखना । (२) ध्वनि । (३) जीभ । जबान । (४) कफ का एक नाम ।

वि० पसीना लानेवाला (औषध आदि)

संज्ञा पुं० [सं० रशना] रस्सा । (क्व०)

रसना-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) जिह्वा । जीभ । जबान ।

मुहा०—रसना खोलना = बोलना आरंभ करना । उ०—हीरामन रसना रस खोला । दै असीस करि अस्तुति बोला ।—जायसी । रसना तालू से लगाना = बोलना बंद करना । चुप होना । उ०—रसना तालू सों नहिं लावत पीवै पीव पुकारत ।—सूर ।

(२) न्याय के अनुसार रस या स्वाद, जिसका अनुभव रसना या जीभ से किया जाता है । (३) रास्ना या नागदौनी नाम की ओषधि । (४) गंधभद्रा नाम की लता । (५) करधनी । मेखला । (६) रस्सी । रज्जु । (७) लगाम । (८) चंद्रहार ।

क्रि० अ० [हिं० रस + ना (प्रत्य०)] (१) धीरे धीरे बहना या टपकना । जैसे,—छत में से पानी रसना । (२) गीला होकर या पसीजकर धीरे धीरे जल या और कोई द्रव पदार्थ छोड़ना या टपकाना । जैसे,—चंद्रकांत मणि चंद्रमा को देखकर रसने लगती है ।

मुहा०—रस रस या रसे रसे = धीरे धीरे । आहिस्ते आहिस्ते । शनैः शनैः । उ०—(क) रस रस सूख सरित सर पानी । ममता त्याग करहिं जिमि ज्ञानी ।—तुलसी । (ख) चंचलता अपनी तजिकै रस ही रस सों रस सुंदर पीजियो ।—परताप ।

(३) रस में मग्न होना । रस से पूर्ण होना । प्रफुल्लित होना । उ०—सूर प्रभु नागरी हँसति मन मन रसति बसत मन स्याम बड़े भागे ।—सूर । (४) तन्मय होना । परिपूर्ण होना । उ०—(क) चंपकली दल हूँ ते भली पर अंगुलि लाल की रूप रसे हैं ।—केशव । (ख) बाँके विभूषण प्रेम से जहाँ होंहि विपरीत । दरसन रस तन मन रसत गनि विभ्रम के गीत ।—केशव । (५) रसपान करना । रस लेना । स्वाद लेना । उ०—शिव पूजन हित कनक के कुसुम रसत अलिजाल । मदन नृपति जग जीत की बजी मनो करनाल ।—गुमान । (६) प्रेम में अनुरक्त होना । मुहब्बत में पड़ना । उ०—(क) किन सँग रसहु किन सँग बसहु किन सँग रचहु धमार ।—कबीर । (ख) सब गोपी रस रसीं राम किरपा द्विजरामो ।—सुधाकर ।

रसनाथ-संज्ञा पुं० [सं०] पारा ।

रसनापद-संज्ञा पुं० [सं०] नितंब । चूतड़ ।

रसनाभ-संज्ञा पुं० [सं०] रसांजन । रसौत ।

रसनायक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शिव । (२) पारा ।

रसनारद-संज्ञा पुं० [सं०] पक्षी, जिन्हें बोलने के लिये केवल जीभ ही होती है, दाँत नहीं होते ।

रसनिर्य्यास-संज्ञा पुं० [सं०] शाल का वृक्ष ।

रसनीय-वि० (१) स्वाद लेने योग्य । चखने लायक । (२) स्वादिष्ट । मजेदार ।

रसनेंद्रिय-संज्ञा स्त्री० [सं०] रसना, जिससे स्वाद या रस लिया जाता है । जीभ ।

रसनेत्रिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] मैनसिल ।

रसनेष्ट-संज्ञा पुं० [सं०] ऊख । गन्ना ।

रसनोपमा-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की उपमा जिसमें उपमाओं की एक शृंखला बँधी होती है और पहले कहा हुआ उपमेय आगे चलकर उपमान होता जाता है । यह "उपमा" और "एकावली" को मिलाकर बनाया गया है । इसे गमनोपमा भी कहते हैं । उ०—चंद्र सम मुख, मुख सम ऊँचो मन, मन सम कर, कर सम करी दान के ।

रसपति-संज्ञा पुं० [सं०] (१) चंद्रमा । उ०—रावपति रामापति रमापति रावापति रसपति रासपति रसापति रमरति ।

—केशव। (२) पृथ्वीपति। राजा। (३) पारा। (४) रस-राज, शृंगार रस।

रसपर्पटी-संज्ञा स्त्री० [सं०] वैद्यक में एक प्रकार का रस जो पारे को शोधकर बनाया जाता है और जिसका व्यवहार संग्रहणी, बवासीर, ज्वर, गुल्म, जलोदर आदि में होता है।

रसपाकज-संज्ञा पुं० [सं०] (१) गुड़। (२) चीनी।

रसपाचक-संज्ञा पुं० [सं०] भोजन बनानेवाला। रसोइया।

रसपुष्प-संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक में एक प्रकार की दवा जो गंधक, पारे और नमक से बनाई जाती है।

रसपूर्त्तिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) मालकँगनी। (२) शतावर।

रसप्रबंध-संज्ञा पुं० [सं०] (१) नाटक। (२) वह कविता, जिसमें एक ही विषय बहुत से परस्पर संबद्ध पद्यों में कहा गया हो।

रसफल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) नारियल का वृक्ष। (२) आँवला।

रसबंधकर-संज्ञा पुं० [सं०] सोम लता।

रसबंधन-संज्ञा पुं० [सं०] शरीर के अंतर्गत नाड़ी के एक अंश का नाम। (वैद्यक)

रसबत्ती-संज्ञा स्त्री० [हिं० रस ? + बत्ती] एक प्रकार का पलीता जिसका व्यवहार पुराने ढंग की तोपें और बंदूकें चलाने में होता था।

रसबरी-संज्ञा स्त्री० दे० "रसभरी"।

रसभरी-संज्ञा स्त्री० [अं० रैस्पबेरी] एक प्रकार का स्वादिष्ट फल, पकने पर जिसका रंग पीलापन लिए लाल हो जाता है। यह जाड़े के अंत में प्रायः बाजारों में मिलता है।

रसभव-संज्ञा पुं० [सं०] रक्त। खून। लहू।

रसभस्म-संज्ञा पुं० [सं०] भस्म किया हुआ पारा। पारे का भस्म।

रसभीना-वि० [हिं० रस + भीनना] [स्त्री० रसभीनी] (१) आनंद में मग्न। (२) आर्द्र। तर। गीला। उ०—शोभा सर लीन कुवलय रसभीन नलिन नवीन किधौं नैन बहु रंग हैं। —केशव।

रसभेद-संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक में एक प्रकार की औषध जो पारे से तैयार की जाती है।

रसभेदी-संज्ञा पुं० [सं० रसभेदिन्] वह पका हुआ फल जो रस आदि की अधिकता से फट जाय और जिसमें से रस बहने लगे।

रसमंडूर-संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक में एक प्रकार की रसौषध जो हड़ के योग से गंधक और मंडूर से बनाई जाती है और जिसका व्यवहार शूल रोग में होता है।

रसमर्दन-संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक में पारे को भस्म करने या मारने की क्रिया।

रसमल-संज्ञा पुं० [सं०] शरीर से निकलनेवाला किसी प्रकार का मल। जैसे,—विष्ठा, मूत्र, पसीना, थूक आदि।

रसमसा-वि० [हिं० रस + मस (अनु०)] [स्त्री० रसमसी] (१) रंग में मस्त। आनंदमग्न। अनुरक्त। उ०—खेलत अति रसमसे लाल रँग भीने हो। अतिरस केलि विशाल लाल रँग भीने हो।—सूर। (२) तर। गीला। उ०—दलदल जो हो रही है हरेक जा पै रसमसी। मर मर मिटा है मर्द तो औरत रही फँसी।—नज़ीर। (३) पसीने से भरा। श्रांत।

रसमाणिक्य-संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक में एक प्रकार की औषध जो हरताल से बनाई जाती है और जो कुष्ठ आदि रोगों में उपकारी मानी जाती है।

रसमाता#-संज्ञा स्त्री० [सं० रसमातृका] जीभ। रसना। ज़बान। (हिं०)

रसमातृका-संज्ञा स्त्री० [सं०] जीभ। जबान।

रसमारण-संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक में वह क्रिया जिससे पारा मारा या शुद्ध किया जाता है।

रसमाला-संज्ञा स्त्री० [सं०] शिलारस नामक सुगंधित द्रव्य।

रसमि#-संज्ञा स्त्री० [सं० रश्मि] (१) किरण। उ०—तो जू मान तजहुगी भामिनि रवि की रसमि काम फल फीको। कीजे कहा समय बिनु सुंदरि भोजन पीछे घँघवन घी को।—सूर। (२) आभा। प्रकाश। चमक। उ०—बसन सपेद स्वच्छ पेन्हे आभूषण सब हीरन को मोतिन को रसमि अछेव को।—रघुनाथ।

रसमुंडी-संज्ञा स्त्री० [हिं० रस + मुंडी ?] एक प्रकार की बँगला मिठाई।

रसमैत्री-संज्ञा स्त्री० [सं०] दो ऐसे रसों का मिलना जिनके मिलने से स्वाद में वृद्धि हो। दो रसों का उपयुक्त मेल। जैसे,—कड़ुआ और तीता; तीता और नमकीन; नमकीन और खट्टा आदि।

रसयोग-संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक में एक प्रकार की औषध।

रसरा†-संज्ञा पुं० [स्त्री० अल्पा० रसरी] दे० "रस्सा"।

रसराज-संज्ञा पुं० [सं०] (१) पारद। पारा। उ०—रावन सो रसराज सुभट रस रहित लंक खल दलतो।—तुलसी। (२) रसों का राजा, शृंगार रस। उ०—जनु विधुमुख छवि अमिय को रछक रख्यो रसराज।—तुलसी। (३) वैद्यक में एक प्रकार की औषध जो ताँबे के भस्म, गंधक और पारे को मिलाकर बनाई जाती है और जिसका व्यवहार तिल्ली और वरवट आदि में होता है। (४) रसांजन। रसौत।

रसरायक#-संज्ञा पुं० दे० "रसराज"।

रसरी†-संज्ञा स्त्री० [सं० रसना, प्रा० रसणा] रस्सी। डोरी।

रसल-वि० [सं० रस + ल (प्रत्य०)] जिसमें रस हो। रसवाला।

उ०—विमल रसल रसखानि मिलि भई सकल रसखानि। सोई नवरसखानि को चित चातक रस-खानि।—रसखान।

रसलह-संज्ञा पुं० [सं०] पारा।

रसवंत-संज्ञा पुं० [सं० रसवत्] रसिक। रसिया। प्रेमी। रसज्ञ। उ०—(क) रसवंत कवित्तन को रस ज्यों अच्छरान के ऊपर ह्वै झलकै।—मन्नालाल। (ख) सुजा के दिवान भगवंत रसवंत भये वृंदावनवासिन की सेवा ऐसी करी है।—नाभादास।

वि० जिसमें रस हो। रस भरा। रसीला।

रसवंती-संज्ञा स्त्री० [सं० रसवती] रसौत। रसांजन। उ०—रूमी रतनजोति रसवंती। रारे रँगमाटी रुदवंती।—सूदन।

रसवट-संज्ञा पुं० [हिं० रसना = पानी आना] वह मसाला जो नाव के छेदों में इसलिये भरा जाता है कि उनमें से पानी अंदर न आवे।

रसवत्-वि० [सं०] [स्त्री० रसवती] जिसमें रस हो। रसवाला।

संज्ञा पुं० वह काव्यालंकार जिसमें एक रस किसी दूसरे रस अथवा भाव का अंग होकर आवे। जैसे,—युद्ध में पड़े हुए वीर पति के लिये इस विलाप में—"हाँ, यह वही हाथ है जो प्रेम से आलिंगन करता था।" शृंगार केवल करुणा रस का अंग है।

रसवत-संज्ञा स्त्री० (१) दे० "रसौत"। (२) दे० "दारुहल्दी"।

रसवती-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) संपूर्ण जाति की एक रागिनी जिसमें सब शुद्ध स्वर लगते हैं। (२) रसोईघर।

वि० रसीली। रसपूर्ण। रसभरी।

रसवत्ता-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) रसयुक्त होने का भाव या धर्म्म। रसीलापन। (२) मिठास। माधुर्य्य। (३) सुंदरता। खूबसूरती।

रसवर्णक-संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक के अनुसार अनार का फूल, ढाक का फूल, कुसुम का फूल, लाख, हल्दी, मजीठ आदि कुछ विशिष्ट द्रव्य जिनसे रंग निकलता है।

रसवली-संज्ञा स्त्री० [हिं० रस + वली] एक प्रकार का गन्ना जिसे रसवल्ली भी कहते हैं। वि० दे० "रसवल्ली"।

रसवाई-संज्ञा स्त्री० [हिं० रस + वाई (प्रत्य०)] पहले पहल ऊख पेरने के समय होनेवाली कुछ विशिष्ट रीतियाँ या व्यवहार।

रसवाद-संज्ञा पुं० [सं०] (१) रस की बात। प्रेम या आनंद की बातचीत। रसिकता की बातचीत। उ०—(क) करति हो परिहास हमसों तजो यह रसवाद।—सूर। (ख) केशव औरनि सार असारनि सों रसवाद सबै हमसों है।—केशव। (२) मनोरंजन के लिये कहा सुनी। छेड़छाड़। झगड़ा। उ०—तुमहीं मिलि रसवाद बढ़ायो। अरहन दै दै मूँड़ लिरायो।—सूर। (३) बकवाद। उ०—सोवन दीजै न दीजै हमैं दुख यौंही कहा रसवाद बढ़ायो।—मतिराम।

रसवान्-संज्ञा पुं० [सं०] वह पदार्थ जिसमें ऐसा गुण या शक्ति हो कि जब उस पदार्थ के कण रसना से संयुक्त हों, उस समय किसी प्रतिबंधक हेतु के न रहने से विशेष प्रकार का अनुभव हो।

रसवास-संज्ञा पुं० [सं०] ढगण के पहले भेद (।ऽ) की संज्ञा।

रसवाहिनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] वैद्यक के अनुसार खाए हुए भोजन से बने सार पदार्थ को फैलानेवाली नाड़ी।

रसविक्रयी-संज्ञा पुं० [सं० रसविक्रयिन्] वह जो मदिरा बेचता हो। शराब बेचनेवाला।

रसविरोध-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सुश्रुत के अनुसार कुछ रसों का ठीक मेल न होना। जैसे,—तीते और मीठे में, नमकीन और मीठे में, कड़ुए और मीठे में रसविरोध है। (२) साहित्य में एक ही पद्य में दो प्रतिकूल रसों की स्थिति। जैसे,—शृंगार और रौद्र की, हास्य और भयानक की, शृंगार और बीभत्स की।

रसवेधक-संज्ञा पुं० [सं०] सोना।

रसशार्दूल-संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक में एक प्रकार रस जो अभ्रक, ताँबे, लोहे, मैनसिल, पारे, गंधक, सोहागे, जवाखार, हड़, और बहेड़े आदि के योग से बनता है। यह सूतिका रोग के लिये विशेष उपकारी माना जाता है।

रसशास्त्र-संज्ञा पुं० [सं०] रसायन शास्त्र।

रसशेखर-संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक के अनुसार एक प्रकार का रस जो पारे और अफीम के योग से बनता है और जो उपदंश आदि रोगों के लिये उपकारी माना जाता है

रसशोधन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) पारे को शुद्ध करने की क्रिया। (२) सुहागा।

रससंभव-संज्ञा पुं० [सं०] रक्त। लहू। खून।

रससंरक्षण-संज्ञा पुं० [सं०] पारे को शुद्ध करना, मूर्च्छित करना, बाँधना और भस्म करना ये चारों क्रियाएँ।

रससंस्कार-संज्ञा पुं० [सं०] पारे के मूर्च्छन, बंधन, मारण आदि अठारह प्रकार के संस्कार। (वैद्यक)

रससागर-संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार सात समुद्रों में से एक। कहते हैं कि यह प्लक्ष द्वीप में है और ऊख के रस से भरा है।

रससाम्य-संज्ञा पुं० [सं०] रोगी की चिकित्सा करने से पहले यह देखना कि शरीर में कौन सा रस अधिक और कौन सा कम है। (वैद्यक)

रससार-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मधु। शहद। (२) ऊख। (हिं०)

रससिंदूर-संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक में एक प्रकार का रस जो पारे और गंधक के योग से बनता है। इसे 'हरगौरी रस' भी कहते हैं।

रसस्थान-संज्ञा पुं० [सं०] शिंगरफ। हिंगुल। ईंगुर।
रसस्राव-संज्ञा पुं० [सं०] अम्लबेत। अमलबेद।
रसांगक-संज्ञा पुं० [सं०] धूप सरल का वृक्ष। श्रीवेष्ट।
रसांजन-संज्ञा पुं० [सं०] रसौत। रसवत।
रसा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) पृथ्वी। जमीन। (२) रास्ना। (३) पाठा। पाढ़ा। (४) शल्लकी। सलई। (५) कँगनी नाम का मोटा अन्न। (६) दाख। द्राक्षा। अंगूर। (७) मेदा। (८) शिलारस। लोहवान। (९) आम। (१०) काकोली। (११) नदी। (१२) रसातल। (१३) जीभ। रसना। जबान।
संज्ञा पुं० [हिं० रस] तरकारी आदि का झोल। शोरबा।
यौ०—रसेदार = जिसमें रसा या शोरबा हो। शोरबेदार।
रसाइन-संज्ञा पुं० दे० "रसायन"
रसाइनीक्ष-संज्ञा पुं० [हिं० रसायन + ई (प्रत्य०)] (१) रसायन विद्या जाननेवाला। (२) रसायन बनानेवाला। कीमियागर।
रसाई-संज्ञा स्त्री० [फा०] पहुँचने की क्रिया या भाव। पहुँच। जैसे,—आपकी रसाई बहुत दूर दूर तक है।
रसाखन-संज्ञा पुं० [सं०] मुरगा।
रसाग्रज-संज्ञा पुं० [सं०] रसांजन। रसौत।
रसाग्र्य-संज्ञा पुं० [सं०] (१) पारा। (२) रसांजन। रसौत।
रसाज्ञान-संज्ञा पुं० [सं०] भोजन करने पर भी उसके रस का अनुभव न करना। जैसे,—खट्टा या मीठा पदार्थ खाकर भी उसकी खटास या मिठास का अनुभव न करना। (वैद्यक)
रसाढ्य-संज्ञा पुं० [सं०] अमड़ा। आम्रातक।
रसाढ्या-संज्ञा स्त्री० [सं०] रास्ना।
रसातल-संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार पृथ्वी के नीचे के सात लोकों में से छठा लोक। कहते हैं कि इसकी भूमि पथरीली है और इसमें दैत्य, दानव तथा पाणि नाम के असुर, इंद्र के डर से, निवास करते हैं। वि० दे० "पाताल"।
मुहा०—रसातल में पहुँचाना = मटिया मेट कर देना। मिट्टी में मिला देना। बरबाद कर देना।
रसादार-वि० [हिं० रसा + दार (फा० प्रत्य०)] जिसमें झोल या शोरबा हो। शोरबेदार। (प्रायः तरकारी आदि के संबंध में बोलते हैं।)
रसाधार-संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य्य।
रसाधिक-संज्ञा पुं० [सं०] सुहागा।
रसाधिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] किशमिश।
रसाध्यक्ष-संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल का एक राजकर्मचारी, जो मादक द्रव्यों की जाँच पड़ताल और उनकी बिक्री आदि की व्यवस्था करता था।
रसापति-संज्ञा पुं० [सं०] पृथ्वीपति। राजा।

रसापायी-संज्ञा पुं० [सं० रसापायिन्] (१) वह जो जीभ से पानी पीता हो। (२) कुत्ता।
रसाभास-संज्ञा पुं० [सं०] (१) साहित्य में किसी रस की ऐसे स्थान में अवतारणा करना जो उचित या उपयुक्त न हो। किसी रस का अनुचित विषय में अथवा अनुपयुक्त स्थान पर वर्णन। जैसे,—गुरु पर किए हुए क्रोध या गुरुपत्नी से किए हुए प्रेम को लेकर यदि रौद्र या श्रृंगार रस का वर्णन हो, तो वह विभाव, अनुभाव आदि सामग्रियों से पूर्ण होने पर भी अनौचित्य के कारण रसाभास ही होगा। (२) एक प्रकार का अलंकार जिसमें उक्त ढंग का वर्णन होता है।
रसामग्न-संज्ञा पुं० [सं०] बोल नामक गंध द्रव्य।
रसामृत-संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक में एक प्रकार का रस जो पारे, गंधक, शिलाजीत, चंदन, गुडुच, धनिया, इंद्रजौ, मुलेठी आदि के योग से बनाया जाता है और रक्तपित्त तथा ज्वर आदि में उपकारी माना जाता है।
रसाम्ल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) अम्लवेतस्। अमलबेद। (२) चुक या चुक नाम की खटाई। (३) विषांबिल। वृक्षाम्ल।
रसाम्लक-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की घास।
रसाम्ला-संज्ञा स्त्री० [सं०] पलाशी नाम की लता।
रसायक-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की घास।
रसायन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) तक्र। मठा। (२) कटि। कमर। (३) विष। जहर। (४) वैद्यक के अनुसार वह औषध जो जरा और व्याधि का नाश करनेवाली हो। वह दवा जिसके खाने से आदमी बुड्ढा या बीमार न हो। (ऐसी औषधों से शरीर का बल, आँखों की ज्योति और वीर्य्य आदि बढ़ता है। इनके खाने का विधान युवावस्था के आरंभ और अंत में है। कुछ प्रसिद्ध रसायनों के नाम इस प्रकार हैं—विड़ंग रसायन, ब्राह्मी रसायन, हरीतकी रसायन, नागबला रसायन, आमलक रसायन आदि। प्रत्येक रसायन में कोई एक मुख्य ओषधि होती है; और उसके साथ दूसरी अनेक ओषधियाँ मिली हुई होती हैं।) (५) गरुड़। (६) वायविड़ंग। विड़ंग। (७) पदार्थों के तत्वों का ज्ञान। वि० दे० "रसायन शास्त्र"। (८) वह कल्पित योग जिसके द्वारा ताँबे से सोना बनना माना जाता है। (९) धातु विद्या जिसमें धातुओं को भस्म करने या एक धातु को दूसरी धातु में बदल देने आदि की क्रिया का वर्णन रहता है।
रसायनज्ञ-संज्ञा पुं० [सं०] रसायन क्रिया का जाननेवाला। वह जो रसायन विद्या जानता हो।
रसायनफला-संज्ञा स्त्री० [सं०] हर्रे। हड़। हरीतकी।
रसायनवर-संज्ञा पुं० [सं०] लहसुन।
रसायनवरा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) कँगनी। (२) काकजंघा।

रसायन विज्ञान-संज्ञा पुं० दे० "रसायन"।

रसायन शास्त्र-संज्ञा पुं० [सं०] वह शास्त्र जिसमें इस बात का विवेचन हो कि पदार्थों में कौन कौन से तत्व होते हैं और उन तत्वों के परमाणुओं में परिवर्त्तन होने पर पदार्थों में किस प्रकार का परिवर्त्तन होता है।

विशेष—इस शास्त्र का मुख्य सिद्धांत यह है कि संसार के सब पदार्थ कुछ मूल द्रव्यों के परमाणुओं से बने हैं। वैज्ञानिकों ने ७८ मूल द्रव्य या मूलभूत माने हैं, जिनमें से कुछ धातुएँ (जैसे,—सोना, चाँदी, ताँबा, लोहा, सीसा, राँगा, पारा आदि) हैं, कुछ दूसरे खनिज (जैसे,—गंधक, संखिया, सुरमा आदि) हैं और कुछ वायव्य द्रव्य (जैसे,—आक्सिजन, हाइड्रोजन, नाइट्रोजन आदि) हैं। इस शास्त्र के अनुसार यही ७८ मूल द्रव्य सब पदार्थों के मूल उपादान हैं, जिनके परमाणुओं के योग से संसार के सब पदार्थ बने हैं। प्रत्येक मूल द्रव्य में एक ही प्रकार के परमाणु होते हैं; और जब किसी एक प्रकार के परमाणुओं के साथ किसी दूसरे प्रकार के परमाणु मिल जाते हैं, तब उनसे एक नया और तीसरा ही द्रव्य तैयार हो जाता है। जो शास्त्र हमें यह बतलाता है कि कौन चीज़ किन तत्वों से बनी है और उन तत्वों में परिवर्त्तन होने का क्या परिणाम होता है, वही रसायन शास्त्र कहलाता है।

रसायनश्रेष्ठ-संज्ञा पुं० [सं०] पारा।

रसायनिक-वि० दे० "रासायनिक"।

रसायनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) वह औषध जो बुढ़ापे को रोकती या दूर करती हो। (२) गुडुच। (३) मकोय। काकमाची। (४) महाकरंज। (५) अमृत संजीवनी। गोरखदुद्धी। (६) मांसरोहिणी। (७) मजीठ। (८) कनफोड़ा नाम की लता। (९) सोंठ। (१०) सफेद निसोथ। (११) शंखपुष्पी। शंखाहुली। (१२) कंद गिलोय। (१३) नाड़ी।

रसाल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) ऊख। गन्ना। (२) आम। (३) कटहल। (४) कुंदुर तृण। (५) गोधूम। गेहूँ। (६) अम्लबेत। (७) शिलारस। लोबान। (८) बोल नामक गंध द्रव्य।

वि० [स्त्री० रसाला] (१) मधुर। मीठा। (२) रसीला। (३) सुंदर। मनोहर। (४) स्वादिष्ट। (५) मार्जित। शुद्ध।

संज्ञा पुं० [अ० रस्साम] कर। राजस्व। लगान। उ०—श्रीनगर नैपाल कुमिला के छितिपाल भेजत रसाल चौर गढ़ कुही बाज की।—भूषण। वि० दे० 'रिसाला'।

रसालय-संज्ञा पुं० [सं०] (१) आम का पेड़। (२) वह स्थान जहाँ आमोद प्रमोद किया जाय। (३) वह स्थान जहाँ अनेक प्रकार के रस आदि बनते हों। रसशाला।

रसालशर्करा-संज्ञा स्त्री० [सं०] गन्ने या ऊख के रस से बनाई हुई चीनी।

रसालस-संज्ञा पुं० [हिं० रसाल] कौतुक। उ०—समुझहिं मुमनि रसाल रसालस रमा रमन के। हरि प्रेरित यह भाव भाव नाचत मन मन के।—तुलसी सुधाकर।

रसालसा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) पौंड़ा। गन्ना। (२) गेहूँ। (३) कुंदुर नाम की घास।

रसाला-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) दही का बना हुआ शरबत। सिखरन। श्रीखंड। (२) दही मिला हुआ सत्तू। (३) प्राचीन काल की एक प्रकार की चटनी, जो दही, घी, मिर्च, शहद आदि को मिलाकर बनाई जाती थी। (४) दूब। (५) विदारीकंद। (६) दाख। (७) पौंड़ा। (८) जीभ।

संज्ञा पुं० दे० "रिसाला"।

रसालाम्र-संज्ञा पुं० [सं०] बढ़िया कलमी आम।

रसालिका-वि० स्त्री० [सं० रसालक] मधुर। मृदु। सरस। उ०—उर लसी सुतुलसी मालिका। तुलसी सुमति रसालिका।—गिरधर।

संज्ञा स्त्री० (१) छोटा आम। अँबिया। (२) ससला। सालसा।

रसालिहा-संज्ञा स्त्री० [सं०] शिवन।

रसाली-संज्ञा पुं० [सं० रसालिन्] (१) पौंड़ा। गन्ना। (२) बना।

संज्ञा स्त्री० [सं०] पौंड़ा। गन्ना।

रसालेक्षु-संज्ञा पुं० [सं०] पौंड़ा। गन्ना।

रसावर, रसावल-संज्ञा पुं० दे० "रसौर"। उ०—जीवन सुरति बटोरि डारि प्रभु नाम रसावर। निरमल कर द्विजराज जीवनहि एहि मनु डावर।—तुलसी सुधाकर।

रसाव-संज्ञा पुं० [हिं० रसना] (१) खेत को जोतकर और पाटे से बराबर करके कई दिनों तक यों ही छोड़ देना। (२) रसने की क्रिया या भाव।

रसाधा-संज्ञा पुं० [हिं० रस+धान (प्रत्य०)] ऊख का कच्चा रस रखने का मिट्टी का बरतन।

रसाये—संज्ञा पुं० [सं०] गंधा बिरोजा।

रसाशा-संज्ञा पुं० [सं०] मद्य पीने की क्रिया। शराब पीना।

रसाशी-संज्ञा पुं० [सं० रसाशिन्] वह जो मद्य पीता हो। शराबी।

रसाश्वासा-संज्ञा स्त्री० [सं०] पखाशी नाम की लता।

रसाष्टक-संज्ञा पुं० [सं०] पारा, इंगुर, कांतिसार लोहा, सोनामक्खी, रूपा मक्खी, वैक्रांत मणि और शंख इन आठ महारसों का समूह।

रसास्वादी-वि० [सं० रसास्वादिन्] [स्त्री० रसास्वादिनी] (१) रस चखनेवाला। स्वाद लेनेवाला। (२) आनंद या मज़ा लेनेवाला।

संज्ञा पुं० भौंरा । भ्रमर ।

रसाहू-संज्ञा पुं० [सं०] गंधा बिरोजा ।

रसाह्वा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सतावर । (२) रास्ना ।

रसिआउर†-संज्ञा पुं० [हिं० रस+चाउर=चावल] (१) ऊख के रस या गुड़ के शर्बत में पका हुआ चावल । (२) एक प्रकार का गीत जो विवाह की एक रीति में गाया जाता है। जब नई बहू ब्याहकर आती है, तब वह ऊख के रस या गुड़ के शर्बत में चावल पकाकर अपने पति तथा ससुराल के लोगों को परोसकर खिलाती है । उस समय स्त्रियाँ जो गीत गाती हैं, उसे भी 'रसिआउर' कहते हैं । उ०—गावहिं रसिआउर सब नारी । बजै मृदंग बीरत महारी ।—रघुराज ।

रसिश्रावर, रसिश्रावल-संज्ञा पुं० दे० "रसिआउर" ।

रसिक-संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० रसिका हिं० स्त्री० रसिकिनी] (१) वह जो रस या स्वाद लेता हो । रस लेनेवाला । (२) वह जिसे रस संबंधी बातों में विशेष आनंद आता हो । काव्य-मर्मज्ञ । सहृदय । (३) क्रीड़ा आदि का प्रेमी । आनंदी । रसिया । उ०—सूरदास रास रसिक बिनु रास रसिकिनी बिरह बिकल करि भई हैं मगन।—सूर । (४) वह जो किसी विषय का अच्छा ज्ञाता हो । मर्मज्ञ । (५) प्रेमी । भक्त । भावुक । सहृदय । (६) सारस पक्षी । (७) घोड़ा । (८) हाथी । (९) एक प्रकार का छंद ।

रसिकता-संज्ञा स्त्री० [सं] (१) रसिक होने का भाव या धर्म्म । (२) परिहास । हँसी ठट्ठा ।

रसिकबिहारी-संज्ञा पुं० [सं०] श्रीकृष्ण का एक नाम।

रसिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) दही का शरबत । सिखरन (२) ईख का रस । (३) जीभ । जबान । (४) शरीर में की धातु । रस । (५) मैना पक्षी ।

रसिकाई*-संज्ञा स्त्री० दे० "रसिकता" ।

रसिकेश्वर-संज्ञा पुं० [सं०] श्रीकृष्ण का एक नाम ।

रसित-वि० [सं०] (१) ध्वनि करता हुआ । बोलता हुआ। बजता हुआ । (२) बहता हुआ । रसता हुआ । थोड़ा थोड़ा टपकता हुआ। (३) रसयुक्त । (४) जिसके ऊपर मुलम्मा चढ़ा हो ।

संज्ञा पुं० [सं०] (१) ध्वनि । शब्द । उ०—रुचि नव नील पयोद रसित सुनि रुचिर मोर जोरी जनु नाचति ।—तुलसी । (२) अंगूर की शराब । द्राक्षासव ।

रसिया-संज्ञा पुं० [सं० रसिक, या रस+इया (हिं० प्रत्य०)] (१) रस लेनेवाला । रसिक । (२) एक प्रकार का गाना जो फागुन के मौसिम में ब्रज और बुंदेलखंड आदि में गाया जाता है ।

रसियाव-संज्ञा पुं० [हिं० रस+इयाव (प्रत्य०)]गन्ने के रस में पका हुआ चावल ।

रसी-संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की सज्जी जो बिहार और संयुक्त प्रांत में बनती है ।

*‡ संज्ञा पुं० दे० "रसिक" ।

रसीद-संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] (१) किसी चीज के पहुँचने या प्राप्त होने की क्रिया । प्राप्ति । पहुँच । जैसे,—पारसल भेजा है, उसकी रसीद की इत्तला दीजिएगा ।

मुहा०—रसीद करना=(१) (थप्पड़, मुक्का आदि) लगाना । जड़ना । मारना । जैसे,—थप्पड़ रसीद करूँगा, सीधा हो जायगा । (२) प्रविष्ट करना । घुसेड़ना । (बाजारू)

(२) वह पत्र जिस पर ब्योरेवार यह लिखा हो कि अमुक वस्तु या द्रव्य अमुक व्यक्ति से अमुक कार्य्य के लिये अमुक समय पर पाया। किसी चीज के पहुँचने या मिलने के प्रमाण रूप में लिखा हुआ पत्र । प्राप्ति का प्रमाणपत्र ।

विशेष—प्रायः जब किसी को कोई चीज या धन ऋण के रूप में, ऋण चुकाने के लिये अथवा और किसी मामले के संबंध में दिया जाता है, तब पानेवाला एक प्रमाणपत्र लिखकर देनेवाले को देता है, जिसमें यदि पानेवाला कभी उस चीज या धन की प्राप्ति से इनकार करे, तो उसके विरुद्ध प्रमाण के रूप में यही रसीद उपस्थित की जाय ।

मुहा०—रसीद काटना=किसी को रसद लिखकर देना।

क्रि० प्र०—देना ।—पाना ।—लिखना ।—लिखाना। आदि।

(३) पता । खबर । (क्व०) जैसे,—तुम तो किसी बात की रसीद ही नहीं देते ।

रसील-वि० दे० "रसीला"। उ०—मन रसील के सुधा स्वरूपा । आमय पीन हीन रस भूपा ।—रघुराज ।

रसीला-वि० [हिं० रस+ईला (प्रत्य०)] [स्त्री० रसीली] (१)रस में भरा हुआ । रस युक्त । (२) स्वादिष्ट । मज़ेदार । (३) रस लेनेवाला । आनंद लेनेवाला । (४) भोग-विलास का प्रेमी । व्यसनी । (५) बाँका । छबीला । सुंदर ।

रसीलापन-संज्ञा पुं० [हिं० रसीला+पन (प्रत्य०)] रसीला होने का भाव या धर्म्म ।

रसुन-संज्ञा पुं० [सं०] लहसुन ।

रसूम-संज्ञा पुं० [अ०] (१) रस्म का बहुवचन । (२) नियम । कानून । (३) वह धन जो किसी को किसी प्रचलित प्रथा के अनुसार दिया जाता हो । नेग । लाग । (४) वह धन जो राज्य को कोई काम करने के बदले में राजकीय नियमों के अनुसार दिया जाता हो ।

यौ०—रसूम अदालत ।

(५) वह धन जो जमींदार को किसानों की ओर से नज़राने या भेंट आदि के रूप में दिया जाता है ।

रसूम अदालत-संज्ञा पुं० [अ०] वह धन जो अदालत में कोई मुकदमा आदि दायर करने के समय कानून के अनुसार सरकारी व्यय के रूप में दिया जाता है। कोर्ट फीस। स्टांप।

विशेष—भिन्न भिन्न कामों या मुकदमों की मालियत के लिये धन की संख्या कानून के द्वारा निर्धारित होती है; और मुकदमा दायर करनेवाले को उतने धन का सरकारी कागज या स्टांप खरीदना पड़ता है तथा उसी कागज पर अपना दावा दायर करना होता है। बैनामा या दानपत्र आदि लिखने के लिये भी इसी प्रकार रसूम अदालत लगता है।

रसूल-संज्ञा पुं० [अ०] वह जो अपने आपको ईश्वर का दूत कहता हो और सर्वसाधारण में माना जाता हो। पैगंबर। जैसे,—मुहम्मद साहब खुदा के रसूल थे।

रसूली-संज्ञा स्त्री० [अ० रसूल+ई (प्रत्य०)] (१) एक प्रकार का गेहूँ। (२) एक प्रकार का जौ। (३) एक प्रकार की काली मिट्टी।

वि० रसूल-संबंधी। रसूल का।

रसेंद्र-संज्ञा पुं० [सं०] (१) पारद। पारा। (२) राजमाष। लोबिया। (३) एक प्रकार की रसौषध जो जीरा, धनियाँ, पीपल, शहद, त्रिकुट और रससिंदूर के योग से बनती है।

रसेंद्रवेधक-संज्ञा पुं० [सं०] सोना।

रसेश्वर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) पारा। (२) एक दर्शन का नाम जो छः दर्शनों में नहीं है। इस दर्शन में पारे को शिव का वीर्य और गंधक को पार्वती का रज माना है। इनके १८ संस्कार लिखे हैं और इनके उपयोग से व्याधिनाश, जीवनत्राण और खेचरत्वादि माना है। इनके दर्शन और स्पर्श में महत्पुण्य बतलाया है और कहा गया है कि शरीर का आरोग्य होना परमावश्यक है; क्योंकि शरीर के बिना पुरुषार्थ नहीं हो सकता; और पुरुषार्थ के बिना मोक्ष की प्राप्ति असंभव है। (३) एक रसौषध जो पारे, गंधक, हरताल और सोने आदि के योग से तैयार होती है।

रसेसर-संज्ञा पुं० [सं० रसेश] रसिक शिरोमणि, श्रीकृष्ण।

संज्ञा पुं० [सं० रसेश्वर] पारा।

रसोइया-संज्ञा पुं० [हिं० रसोई+इया (प्रत्य०)] रसोई बनानेवाला। भोजन बनानेवाला। रसोईदार। सूपकार।

रसोई, रसोई-संज्ञा स्त्री० [हिं० रस+औई (प्रत्य०)] (१) पका हुआ खाद्य पदार्थ। बना हुआ भोजन।

यौ०—कच्ची रसोई = दाल, भात, रोटी आदि भोजन जो घी या दूध में न पका हो और जो हिंदू लोग चौके के बाहर या किसी दूसरे के हाथ का बना हुआ नहीं खाते। सखरा। पक्की रसोई = पूरी, पकवान, मिठाई आदि जो घी या दूध में पका हो और जो चौके के बाहर और अन्य किसी के हाथ की भी खाई जा सकती है। निखरी।

मुहा०—रसोई चढ़ना = भोजन पकना। खाना बनना। रसोई तपना = भोजन पकाना। खाना बनाना। उ०—(क) जो पुरुषारथ ते कहूँ संपति मिलति रहीम। पेट लागि वैराट घर तपत रसोई भीम।—रहीम। (ख) यह गिरिधर कविराय आपकी तपै रसोई।—गिरिधर।

क्रि० प्र०—करना।—जीमना।—पकाना।—बनाना, आदि।

(२) वह स्थान जहाँ भोजन बनता हो। चौका। पाकशाला। उ०—अनुमति चली रसोई भीतर तबहिं ग्वालि इक छींकी।—सूर।

रसोईखाना-संज्ञा पुं० दे० "रसोईघर"।

रसोईघर-संज्ञा पुं० [हिं० रसोई+घर] वह स्थान जहाँ भोजन पकाया जाता हो। खाना बनाने की जगह। पाकशाला। चौका।

रसोईदार-संज्ञा पुं० [हिं० रसोई+फा० दार (प्रत्य०)] [स्त्री० रसोईदारिन] वह जो रसोई बनाने के काम पर नियुक्त हो। भोजन बनानेवाला। रसोइया।

रसोईदारी-संज्ञा स्त्री० [हिं० रसोईदार+ई (प्रत्य०)] (१) रसोई करने का काम। भोजन बनाने का काम। (२) रसोईदार का पद।

रसोईबरदार-संज्ञा पुं० [हिं० रसोई+फा० बरदार] भोजन ले जानेवाला। भोजनवाहक।

रसोत-संज्ञा स्त्री० दे० "रसौत"।

रसोदर-संज्ञा पुं० [सं०] हिंगुल। शिंगरफ।

रसोद्भव-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शिंगरफ। ईंगुर। (२) रसौत।

रसोद्भूत-संज्ञा पुं० [सं०] रसौत।

रसोन-संज्ञा पुं० [सं०] लहसुन।

रसोपल-संज्ञा पुं० [सं०] मोती।

रसोयऌ†-संज्ञा स्त्री० [हिं० रसोई] रसोई। भोजन। उ०—आवहु बस रात घर बेगहि करो रसोय।—जायसी।

रसौंत-संज्ञा स्त्री० दे० "रसौत"।

रसौत-संज्ञा स्त्री० [सं० रसोद्भूत] एक प्रकार की प्रसिद्ध औषध जो दारुहल्दी की जड़ और लकड़ी को पानी में औटाकर और उसमें से निकले हुए रस को गाढ़ा करके तैयार की जाती है। इसके लिये पहले दारुहल्दी का काढ़ा तैयार करते हैं और तब उसमें उसके बराबर ही गौ या बकरी का दूध डालकर दोनों को पकाकर बहुत गाढ़ा अवलेह तैयार करते हैं। यही अवलेह अक्सर बाजारों में रसौत के नाम से बिकता है। रसौत कालापन लिए भूरे रंग की होती और पानी में सहज में घुल जाती है। इसका स्वाद कड़ुआ

होता है और इसमें से एक विलक्षण गंध निकलती है, जो अफीम की गंध से कुछ मिलती जुलती होती है। इसका व्यवहार प्रायः आँखों पर लगाने और घावों का विकार दूर करने में होता है। वैद्यक में यह चरपरी, गरम, रसायन, कड़वी, शीतल, तीक्ष्ण, शुक्रजनक, नेत्रों के लिये अत्यंत हितकारी तथा कफ, विष, रक्तपित्त, वमन, हिचकी, श्वास और मुख रोग को दूर करनेवाली मानी गई है।

पर्य्या०—रसगर्भ। तार्क्ष्यशैल। रसोद्भूत। रसाग्रज। कृतक। बालभैषज्य। रसराज। अग्निसार। रसनाभि।

रसौता-संज्ञा पुं० दे० "रसौती"।

रसौती-संज्ञा स्त्री० [देश०] धान की वह बोआई जिसमें खेत जोतकर वर्षा होने से पहले ही बीज डाल दिया जाता है।

रसौर-संज्ञा पुं० [हिं० रस+और (प्रत्य०)] ऊख के रस में पके हुए चावल।

रसौली-संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का रोग जिसमें आँख के ऊपर भँवों के पास बड़ी गिल्टी निकल आती है।

रस्ता-संज्ञा पुं० दे० "रास्ता"।

रस्तोगी-संज्ञा पुं० [देश०] वैश्यों की एक जाति।

रस्म-संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) मेलजोल। बरताव।

यौ०—राह रस्म = मेलजोल। व्यवहार। घनिष्टता।

(२) रिवाज। परिपाटी। चाल। प्रथा।

रस्मि*-संज्ञा स्त्री० दे० "रश्मि"।

रस्य-संज्ञा पुं० [सं०] (१) रक्त। खून। लहू। (२) शरीर में का मांस।

रस्या-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) रास्ना। (२) पाठा। पाढ़ी।

रस्सा-संज्ञा पुं० [सं० रसना, प्रा० रसणा, हिं० रसरा] [स्त्री० अल्पा० रस्सी] (१) बहुत मोटी रस्सी जो कई मोटे तागों को एक में बटकर बनाई जाती है।

विशेष—आज कल प्रायः जहाजों आदि के लिये तथा और बड़े बड़े कामों के लिये लोहे के तारों के भी रस्से बनने लगे हैं।

(२) जमीन की एक नाप जो ७५ हाथ लंबी और ७५ हाथ चौड़ी होती है। इसी को बीघा कहते हैं। (३) घोड़ों के पैर की एक बीमारी।

रस्सी-संज्ञा स्त्री० [हिं० रस्सा] (१) रूई, सन या इसी प्रकार के और रेशों के सूतों या डोरों को एक में बटकर बनाया हुआ लंबा खंड जिसका व्यवहार चीजों को बाँधने, कूएँ से पानी खींचने आदि में होता है। डोरी। गुण। रज्जु। (२) एक प्रकार की सब्जी।

रस्सीबाट-संज्ञा पुं० [हिं० रस्सी+बटना] रस्सी बटनेवाला। डोरी बनानेवाला।

रहँकला-संज्ञा पुं० [हिं० रथ+कल] (१) एक प्रकार की हलकी गाड़ी। (२) तोप लादने की गाड़ी। उ०—बान रहँकला तोप जँजालैं। सहसनि सुतरनाल हथनालैं।—लाल। (३) रहँकले पर लदी हुई छोटी तोप। उ०—तिमि घरनाल और करनालैं सुतुरनाल जंजालैं। गुरगुराब रहँकले भले तहँ लागे विपुल वयालैं।—रघुराज।

रहँचटा-संज्ञा पुं० [हिं० रस+चाट] प्रीति की चाह। मनोरथ सिद्धि की अभिलाषा। चसका। लिप्सा उ०—(क) बनक मढ़े कोठे चढ़े छैल छबीले स्याम। खरी चौहटे में अरी चढ़ी रहँचटे बाम।—रामसहाय। (ख) कन दैबो सौंप्यो ससुर बहू थुरहथी जानि। रूप रहँचटे लगि लग्यो माँगन सब जग आनि।—बिहारी। (ग) ज्यों ज्यों आवत निकट निसि त्यों त्यों खरी उताल। झमकि झमकि टहलैं करै लगी रहँचटे बाल।—बिहारी।

रहँट-संज्ञा पुं० [सं० आरघट्ट, प्रा० अरहट्ट] कूएँ से पानी निकालने का एक प्रकार का यंत्र। इसमें कूएँ के ऊपर एक ढाँचा रहता है जिसमें बीचो बीच पहिए के आकार का एक गोल चरखा लगा होता है, जो कूएँ के ठीक बीच में रहता है। इस चरखे पर घड़ों आदि की एक बहुत लंबी माला, जिसे "माल" कहते हैं, टँगी रहती है। यह माला नीचे कूएँ के पानी तक लटकती रहती है और इसमें बहुत सी हाँड़ियाँ या बाल्टियाँ बँधी रहती हैं। जब बैलों के चक्कर देने से चरखा घूमता है, तब जल से भरी हुई हाँड़ियाँ या बाल्टियाँ ऊपर आकर उलटती हैं, जिससे उनका पानी एक नाली के द्वारा खेतों में चला जाता है, और खाली हाँड़ियाँ या बाल्टियाँ नीचे कूएँ के पानी में चली जातीं और फिर भर कर ऊपर आती हैं। इस प्रकार थोड़े परिश्रम से अधिक पानी निकलता है। पश्चिम में इसकी बहुत चाल है। उ०—(क) बिरह बिषम बिष बेलि बढ़ी उर तेइ सुख सकल सुभाय दहे री। सोइ सींचिबे लगि मनसिज के रहँट नैन नित रहत नहे री।—तुलसी। (ख) लागी घरी रहँट की सींचहिं अमृत बेलि।

रहँटा-संज्ञा पुं० [हिं० रहँट] सूत कातने का चर्खा। उ०—कहै कबीर सूत भल काता। रहँटा न होय, मुक्ति को दाता।—कबीर।

रहँटी†-संज्ञा स्त्री० [हिं० रहँटा] (१) कपास ओटने की चरखी। (२) रुपया उधार देने का एक ढंग, जिसमें प्रति मास कुछ रुपया वसूल किया जाता है। इसे संयुक्त प्रांत में हुंडी कहते हैं।

रहचटा-संज्ञा पुं० दे० "रहँचटा"।

रहचह-संज्ञा स्त्री० [अनु०] चिड़ियों का बोलना। चहचहाहट। उ०—सारौ सुआ जो रहचह करहीं। कुरहि परेवा औ करबरहीं।—जायसी।

रहठा-संज्ञा पुं० [?] अरहर के पौधे के सूखे डंठल। कड़िया।

रहन-संज्ञा स्त्री० [हिं० रहना] (१) रहने की क्रिया या भाव।
यौ०—रहन सहन = चाल ढाल। तौर तरीका।
(२) रहने का ढंग। व्यवहार। आचार।
उ०—जाकी रहनि कहनि अनमिल, सखि, कहत समुझि अति थोरे।—सूर।

रहनसहन-संज्ञा स्त्री० [हिं० रहना + सहना] जीवन निर्वाह का ढंग। गुजर-बसर का तरीका। तौर। चाल ढाल।

रहना-क्रि० अ० [सं० राज = विराजना, सुशोभित होना; पु० हिं० राजना] (१) स्थित होना। अवस्थान करना। ठहरना। जैसे,—अगर कोई यहाँ रहे, तो मैं यहाँ से ही आऊँ। (२) स्थान न छोड़ना। प्रस्थान न करना। न जाना। रुकना। थमना।
मुहा०—रह चलना या जाना = प्रस्थान करने का विचार छोड़ देना। रुक जाना। ठहर जाना। उ०—रहि चलिए सुंदर रघुनायक। जो सुत तात बचन पालन रत जननिउ तात मानिबे लायक।—तुलसी।
(३) बिना किसी परिवर्त्तन या गति के एक ही स्थिति में अवस्थान करना। उ०—नीके हैं छींके छुए ऐसे ही रह नारि।—बिहारी।
मुहा०—रहने देना = (१) जिस अवस्था में हो, उसी में छोड़ देना। हस्तक्षेप न करना। (२) जाने देना। कुछ ध्यान न देना। रहा जाना = शांति या स्थिरतापूर्वक अवस्थान करने में समर्थ होना। संतुष्ट होना। उ०—(क) सूपथ उदर भरत रहा न जाई।—रघुराज। (ख) अब तो चपला से न रहा गया; वह केतकी का सोंटा पकड़ने को दौड़ी। (ग) पिता को आते देख राजकुमार से न रहा गया। वे तुरंत आगे बढ़े और निकट पहुँचकर सादर प्रणाम किया।—देवकीनंदन।
विशेष—इस अर्थ में अधिकतर प्रयोग 'नहीं' के साथ होता है।
(४) निवास करना। बसना। जैसे,—आप कई पीढ़ियों से कलकत्ते में रहते हैं। (५) कुछ दिनों के लिये ठहरना या टिकना। अस्थायी रूप से निवास करना। उ०—पुहि नैहर रहना दिन चारी।—जायसी। (६) किसी काम में ठहरना। कोई काम करना बंद करना। थमना। उ०—रहो रहो, मेरे लिये क्यों परिश्रम करती हो।—लक्ष्मण। (७) चलना बंद करना। रुकना। उ०—हाँ, दर ही से तो सिमट सिमट चलना है रह रह कर।—प्रतापनारायण। (८) विद्यमान होना। उपस्थित होना। जैसे,—हमारे रहते कोई ऐसा नहीं कर सकता।
मुहा०—किसी के रहते = किसी की विद्यमानता में। मौजूदगी में।
(९) चुपचाप समय बिताना। कुछ न करना। उ०—(क) स्वाही बारन तें गई मन तें भई न दूर। समुझि चतुर चित बात यह रहत बिसूर बिसूर।—रसनिधि। (ख) धाम बिचारि समुझि कुछ रहई। सो बिनिह निज मुनि अस कहई।—तुलसी।
मुहा०—रह जाना = (१) कुछ कार्रवाई न करना। जैसे,—तुम्हारे लिहाज से हम रह गए; नहीं तो एक चपत देते। (२) सफल न होना। लाभ न उठा सकना। जैसे,—सब पा गए, तुम रह गए।
(१०) नौकरी करना। काम काज करना। उ०—उसने जवाब दिया—मैं मालिन हूँ; यह नहीं कह सकती कि किसके यहाँ रहती हूँ और ये फूल के गहने किसके वास्ते लिए जाती हूँ।—देवकीनंदन। (११) स्थित होना। स्थापित होना। जैसे,—दूसरे ही महीने उसे पेट रहा। (१२) समागम करना। मैथुन करना। उ०—जिमि कुलीन तिय साधु सयानी। पति देवता करम मन बानी। रहइ करम बस परिहरि नाहू। सचिव हृदय तिमि दारुन दाहू।—तुलसी। (१३) जीवित रहना। जीना। उ०—रहने कौन अधार दुसह दुर्ग पिय बिरह भी। कर न लागते प्यार ध्यान गम्भीरा नैन जो।—रसनिधि। (१४) बचना। छूट जाना। अवशिष्ट होना। उ०—(क) कीन्हेसि जियन सदा सब चहा। कीन्हेसि मीचु न कोई रहा।—जायसी। (ख) और जो बातें अनजानी से कहने को रह गई थीं, उनको भी उसी भाँति धीरे उसने उससे कहा।—अयोध्या। (ग) रकत माँस जरि जाय रहै एक हाड़ की ठट्ठी।—गिरधर। (घ) मैं प्रभु आज्ञा सहित दिवस रहा भरि याम।—तुलसी।
यौ०—रहा सहा = बचा बचाया। अवशिष्ट। थोड़ा जो बाकी था। जैसे,—तुम्हारे चले जाने से उनका रहा सहा उत्साह भी जाता रहा।
मुहा०—(अंग आदि का) रह जाना = थक जाना। शिथिल हो जाना। जैसे,—(क) लिखते लिखते हाथ रह गया। (ख) चलते चलते पैर रह गए। रह जाना = (१) पीछे छूट जाना। जैसे,—मेरी छड़ी वहीं रह गई है। (२) अधिकार होना। खर्च या व्यवहार से बचना। जैसे,—मेरे पास यही पुस्तक रह गई है।
विशेष—अवस्थान-सूचक इस क्रिया का प्रयोग बहुत व्यापक है। प्रधान क्रिया के अतिरिक्त यह और क्रियाओं के साथ संयुक्त होकर भी आती है। जैसे,—आ रहा है, जा रहते हैं।
संज्ञा पुं० गौर, बाघ आदि के रहने का स्थान। बन का वह विभाग जहाँ गौर, बाघ आदि के रहने की माँदें हों। इसे 'रमना' भी कहते हैं।

रहनि-संज्ञा स्त्री० [हिं० रहना] (१) आचरण। चाल ढाल। रहन। उ०—सोइ बिबेक सोइ रहनि प्रभु हमहिं कृपा करि

देहु।—तुलसी। (२) प्रेम। प्रीति। लगन। उ०—जौ पै रहनि राम सों नाहीं। तौ नर खर कूकर सूकर सम जाय जियत जग माहीं।—तुलसी।

रहनी-संज्ञा स्त्री० दे० "रहनि"।

रहम-संज्ञा पुं० [अ०] करुणा। दया। (२) अनुकंपा। अनुग्रह।

यौ०—रहमदिल = दयालु। कृपालु।

संज्ञा पुं० [अ० रह्म] गर्भाशय।

रहमत-संज्ञा स्त्री० [अ०] कृपा। दया। मेहरबानी।

रहमान-वि० [अ०] बड़ा दयालु।

संज्ञा पुं० परमात्मा का एक नाम। (मुसल०)

रहर, रहरी†-संज्ञा स्त्री० दे० "अरहर"।

रहरू-संज्ञा स्त्री० [प० हिं० रिढना = घसिटना] छोटी देहाती गाड़ी, जिसमें किसान लोग पाँस या खाद ढोते हैं।

रहरुद्भाव-संज्ञा पुं० [सं०] (१) संसार के झगड़ों को छोड़कर एकांत स्थान में निवास करना। (२) वह जो इस प्रकार संसार को छोड़कर एकांत में निवास करता हो।

रहरेठा †-संज्ञा पुं० [हिं० अरहर] अरहर के सूखे डंठल। कड़िया। रहठा।

रहल-संज्ञा स्त्री० [अ०] एक विशेष प्रकार की छोटी चौकी जिस पर पढ़ने के समय पुस्तक रखी जाती है। इसमें दो छोटी छोटी पटरियाँ बीच में एक दूसरी को काटती हुई लगी रहती हैं और इच्छानुसार खोली या बंद की जा सकती हैं। खुलने पर इनका आकार × हो जाता है। उ०—रघुनाथ भावते को पानदान भरि धर्‌यो, धरी पोथी आय ल्याय कोक की रहल में।—रघुनाथ।

रहलू*†-संज्ञा स्त्री० दे० "रहरू"।

रहवाल-संज्ञा स्त्री० [फ़ा० रहवार] घोड़े की एक चाल।

रहस्-संज्ञा पुं० [सं०] (१) गुप्त भेद। छिपी बात। (२) आनंदमय लीला। क्रीड़ा। खेल। (३) आनंद। सुख। उ०—(क) मिले रहस चाहिय भा दूना। कत रोवहु जो मिला बिछूना।—जायसी। (ख) जुवति जूथ रनिवास रहस बस यहि बिधि। देखि देखि सियराम सकल मंगल निधि।—तुलसी। (४) योग, तंत्र या और किसी संप्रदाय की गुप्त बात। गूढ़ तत्त्व। मर्म। (५) एकांतता। एकांत स्थान।

रहस-संज्ञा पुं० [सं०] (१) समुद्र। (२) स्वर्ग।

रहसना-क्रि० अ० [हिं० रहस + ना (प्रत्य०)] आनंदित होना। प्रसन्न होना। उ०—(क) एहि अवसर मंगलु परम सुनि रहसेउ रनिवास।—तुलसी। (ख) भोग करत बिहँसैं रहसाई।—जायसी। (ग) एहि बिधि रहसत बिलसत दंपति हेतु हिये नहिं थोरे।—सूर। (घ) सारो सुवा महर कोकिला। रहसत आय पपीहा मिला।—जायसी। (ङ) वर दुलहिनहिं बिलोकि सकल मन रहसहिं।—तुलसी।

रहसबधावा-संज्ञा पुं० [हिं० रहस + बधाई] विवाह की एक रीति जिसमें नव विवाहिता वधू को वर अपने साथ जनवासे में लाता है। वहाँ सब गुरु जन उस समय वधू का मुख देखते हैं और उसे वस्त्र, भूषणादि उपहार देते हैं।

रहसि *-संज्ञा स्त्री० [सं० रहस्] गुप्त स्थान। एकांत स्थान। उ०—(क) सुनि बल मोहन बैठ रहसि में कीन्हों कछू बिचार।—सूर।

रहसू-संज्ञा स्त्री० [सं०] व्यभिचारिणी। पुंश्चली। बदचलन औरत।

रहस्य-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह बात जो सब को बतलाई न जा सकती हो। गुप्त भेद। गोप्य विषय। (२) भीतर की छिपी हुई बात। मर्म या भेद की बात। (३) वह जिसका तत्त्व सहज में या सब की समझ में न आ सके। उ०—यह रहस्य काहू नहिं जाना। दिनमनि चले करत गुनगाना।—तुलसी।

क्रि० प्र०—खुलना।

(४) हँसी ठट्ठा। मजाक।

वि० (१) सब को न बताने योग्य। गोपनीय। (२) जो एकांत में हुआ हो। जो छिपाकर हुआ हो।

रहस्या-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) महाभारत के अनुसार एक प्राचीन नदी का नाम। (२) रहना। (३) पाठा। पाढ़ी।

रहाई-संज्ञा स्त्री० [हिं० रहना] (१) रहने की क्रिया या भाव। (२) कल। चैन। आराम। उ०—सीस ते पूँछि लौं गात गर्‌यो पै हसे बिन ताहि परै न रहाई।

रहाऊ †-संज्ञा स्त्री० [देश०] गीत में का पहला पद। टेक। स्थायी। (यह शब्द अधिकतर पंजाब में बोला जाता है।)

रहाट-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जो किसी प्रकार की सलाह देता हो। (२) मंत्री। अमात्य। (३) प्रेतात्मा।

रहाना*-क्रि० अ० [हिं० रहना] (१) होना। उ०—(क) भोजन मोर कपोत रहायो। ताको तैं कर्‌यो गोद छिपायो।—विश्राम। (ख) मंदिर तिनकर जहाँ रहावा। तेहि द्रुम तरे बधिक जय आवा।—विश्राम। (२) रहना। उ०—नीम करुवापन ना तजै जल में सदा रहाय।—कबीर।

रहावन †-संज्ञा स्त्री० [हिं० रहना + आवन (प्रत्य०)] वह स्थान जहाँ गाँव भर के सब पशु एकत्र होकर खड़े हों। रहुनिया। उ०—कान्ह कुँवर सब सखन संग मिलि ठाढ़े जुरे रहावन। देखी तौ लौं कुँवरि लाडिली अरु सखियन की आवन।—हंसराज।

रहा सहा-वि० [हिं० रहना + सहा अनु०] बचा खुचा। बचा बचाया। जो थोड़ा सा बच रहा हो। उ०—(क) हिंदुओं

का दिल रहा सहा और भी टूट गया।—शिवप्रसाद। (ख) उसी प्रतापी ब्रिटिश राज्य के अधीन रहकर भारत रही सही हैसियत भी खो दे।—बालमुकुन्द गुप्त।

रहित-वि० [सं०] बिना। बगैर। हीन। जैसे,—(क) आपकी बातें प्रायः अर्थ-रहित हुआ करती हैं। (ख) वे इन सब दोषों से रहित हैं। (ग) पुरुषार्थ रहित होकर जीवन नहीं बिताना चाहिए।

रहिला†-संज्ञा पुं० [?] चना। उ०—रहिमन रहिला की भली जो परसै मन लाय। परसत मन मैला करै सो मैदा बहि जाय।—रहिमन।

रहीम-वि० [अ०] रहम करनेवाला। कृपालु। दयालु।
संज्ञा पुं० [अ०] (१) रहीम खाँ खानखानाँ का उपनाम जो वे अपनी कविता में रखते थे। (२) ईश्वर का एक नाम। (मुसलमान)

रहुआ†-संज्ञा पुं० [हिं० रहना] किसी दूसरे के यहाँ केवल रोटियों पर रहनेवाला मनुष्य। टुकड़हा। रोटी तोड़। उ०—कह गिरधर कविराय कहत साहेब मे रहुआ। तुम नीचे फल बेलि वृक्ष हम ऊँचे महुआ।—गिरधर।

रहूगण-संज्ञा पुं० [सं०] (१) आंगिरस् गोत्र के अंतर्गत एक शाखा या गण। (गौतम ऋषि इसी वंश के थे।) (२) इस वंश का मनुष्य।

राँक†-वि० दे० "रंक"। उ०—राँकनि नाकप रीझि करै तुलसी जग जो जुरै जाँचक जोरो।—तुलसी।

राँकड़†-संज्ञा स्त्री० [हिं० रंक] एक प्रकार की भूमि जिसमें बहुत कम अन्न पैदा होता है। ऐसी भूमि बहुधा कँकरीली और ऊँची नीची हुआ करती है।

रांकव-संज्ञा पुं० [सं०] मृगों के रोएँ से बना हुआ कपड़ा आदि।

राँग-संज्ञा पुं० दे० "राँगा"।

राँगड़ी-संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का चावल जो पंजाब में पैदा होता है।

राँगा-संज्ञा पुं० [सं० रंग] एक प्रसिद्ध धातु जो बहुत नरम और रंग में सफेद होती है। यह पीटकर पत्तर के रूप में की जा सकती है। यह प्रायः कई दूसरे पदार्थों के साथ पहाड़ों की दरारों तथा नदियों के किनारे पाई जाती है। यह भारत में केवल बरमा में मिलती है, और मलाया प्रायद्वीप तथा आस्ट्रेलिया आदि में बहुत मिलती है। यह बहुत साधारण आँच पाकर भी गल जाती है, इसी लिए इस का व्यवहार प्रायः फूल और भरत आदि मिश्रित धातुएँ बनाने में होता है। ताँबे के बरतनों पर इसी धातु से कलई की जाती है जिससे इसे 'कलई' भी कहते हैं। वैद्यक में इसे कटु, तिक्त, शीतल, कषाय, लवण रस और मेह, कृमि, पांडु तथा दाह आदि का नाशक, कांतिवर्द्धक और रसायन माना है। इसे शोधकर और भस्म बनाकर अनेक प्रकार के रोगों में देते हैं।
पर्य्या०—रंग। वंग। त्रपु। नाग। त्रपुस। मधुर। हिम। पूतिगंध। गुरुत्व। स्वर्णज। कुरूप्य। समर। नागजीवन। चक्र। स्वेत।

राँच@†-अव्य० दे० "रंच"। उ०—झूठ बोल थिर रहै न राँचा। पंडित सोई बेद मत साँचा।—जायसी।

राँचना@†-क्रि० अ० [सं० रंजन] (१) अनुरक्त होना। प्रेम करना। चाहना। उ०—(क) मन काँधे माँधे वृथा राँधे राँधे राम।—बिहारी। (ख) मन जाहि राँचो मिलहि सो बर सहज सुंदर साँवरो।—तुलसी। (२) रंग पकड़ना।
क्रि० स० [सं० रंजन] रंग चढ़ाना। रँगना। उ०—जो मजीठ औटै बहु आँचा। सो रँग जनम न डोलै राँचा।—जायसी।

राँजना†-क्रि० स० [सं० रंजन] काजल लगाना। (आँख में)
क्रि० स० रंजित करना। रँगना।
क्रि० स० [हिं० राँगा] फूटे हुए बरतन को राँगे से जोड़ना। राँगे से टाँका लगाना।

राँटा†-संज्ञा पुं० [देश०] टिटिहरी। चिड़िया। टिट्टिभ। उ०—सिही ते रसीली जीली राँटे हू की रट लीन्ही, स्यार तें सवाई भूलभामनी ते आगरी।—केशव।
संज्ञा पुं० दे० "रहँटा"।

राँटी-संज्ञा स्त्री० [देश०] चोरों की सांकेतिक भाषा।

राँड़-वि० स्त्री० [सं० रंडा] (१) जिसका पति मर गया हो और पुनर्विवाह न हुआ हो। विधवा। बेवा। (२) रंडी। वेश्या। कसबी। (व०)
क्रि० प्र०—करना।—रहना।

राँढ़-संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का चावल जो बंगाल में अधिकता से होता है।

राँड़ना†-क्रि० स० [सं० रुदन] विलाप करना। रोना। उ०—कोई औगुन मन बसा चित तें धरा उतार। दादू पति बिन सुंदरी राँडै घर घर बार।—दादू।

राँध-संज्ञा पुं० [सं० पार्श्व = दूसरी ओर] (१) निकट। पास। समीप। उ०—(क) अनु रानी ही रहौं राँधा। कैसे रहउँ बचा कर बाँधा।—जायसी। (ख) एहि डर राँध न बैठौं मकु साँवरि होइ जाउँ।—जायसी। (२) पड़ोस। पासई। बगल।
यौ०—राँध पड़ोस, राँध पड़ोसी।

राँधना-क्रि० स० [सं० रंधन] (भोजन आदि) पकाना। पाक करना। जैसे,—दाल राँधना, चावल राँधना। उ०—विविध प्रकार का आमिष राँधा।—तुलसी।

राँधपड़ोस†-संज्ञा पुं० [हिं० राँध = पास + पड़ोस] आसपास। पड़ोस। पार्श्व का स्थान। प्रतिवेश।

राँपी-संज्ञा स्त्री० [देश०] पतली खुरपी के आकार का मोचियों का एक औज़ार जिससे वे चमड़ा तराशते, काटते और साफ करते हैं।

राँभना-क्रि० अ० [सं० रंभण] (गाय का) बोलना या चिल्लाना। बँबाना। उ०—(क) तब पृथ्वी दुःख पाय घबराय गाय रूप बनाय राँभती राँभती देवलोक में गई।—लल्लू। (ख) तमचुर खगरोर सुनहु बोलत बनराई। राँभति गो खरिकन में बछरा हित धाई।—सूर।

राआ ✽†-संज्ञा पुं० दे० "राजा"।

राइ-संज्ञा पुं० [सं० राजा, प्रा० राया] छोटा राजा। राय। सरदार। उ०—(क) पउरिहि पउरि सिंह गढ़ि काढ़े। डरपहिं राइ देखि तिन्ह ठाढ़े।—जायसी। (ख) राम से रहीम रनछोर राइ राने हैं।—सूदन। वि० दे० "राय"।

राई-संज्ञा स्त्री० [सं० राजिका, प्रा० राइआ] (१) एक प्रकार की बहुत छोटी सरसों। (२) बहुत थोड़ी मात्रा या परिमाण।

मुहा०—राई भर = बहुत थोड़ा। राई रत्ती करके = छोटी से छोटी रकम या तौल के हिसाब से। राई नोन उतारना = नजर लगे हुए बच्चे पर उतारा करके राई और नमक को आग में डालना, जिससे नजर के प्रभाव का दूर होना माना जाता है। राई से पर्वत करना = थोड़ी बात को बहुत बड़ा देना। राई काई करना = टुकड़े टुकड़े कर डालना। राई काई होना = टुकड़े टुकड़े होना। उ०—अर्जुन ने ऐसे पवन बाण मारे कि बादल राई काई हो यों उड़ गये, जैसे रूई के पहल पवन के झोंके से।—लल्लू। तेरी आँखों में राई नोन = ईश्वर करे, तेरी बुरी डीठ मुझे न लगे। राई से पर्वत करना = छोटी बात को बहुत बड़ा देना। उ०—अविगति गति जानी न परै। राई ते पर्वत करि डारै राई मेरु करै।—सूर। राई लोन उतारना = दे० "राई नोन उतारना"। उ० —(क) हिरण्याक्ष अरु हिरनकशिपु भट आदिक जेइ संहार्‌यो। ताहि प्रेत बाधा बारन हित राई लोन उतार्‌यो।—रघुराज। (ख) कबहूँ अँग भूषण बनावति राई लोन उतारि।—सूर। (ग) यशुमति माय धाय उर लीन्हों राई लोन उतारो।—सूर।

✽† संज्ञा स्त्री० [हिं० राय] राय होने का भाव। राजापन। राजश्री।

राइता-संज्ञा पुं० दे० "रायता"।

राइफल-संज्ञा स्त्री० [अं०] घोड़ेदार बंदूक। बड़ी बंदूक।

राइरंगा †-संज्ञा पुं० दे० "रामदाना"।

राउ ✽-संज्ञा पुं० [सं० राजा, प्रा० राय, राव] राजा। नरेश। उ०—राउ सुपित आहि सो पहिचाना। देखि सुवेष महामुनि जाना।—तुलसी।

राउत †-संज्ञा पुं० [सं० राज + पुत्र, प्रा० राअउत्त] (१) राजवंश का कोई व्यक्ति। (२) क्षत्रिय। (३) वीर पुरुष। बहादुर। उ०—राउ राउत होत फिरि कै जूझे।—तुलसी।

राउर ✽†-संज्ञा पुं० [सं० राज + पुर, प्रा० राय + उर] राजाओं के महल का अंतःपुर। रनवास। जनानखाना। उ०—(क) जब राउर में रघुनाथ गये। बहुधा अवलोकत शोभ भये।—केशव। (ख) भयो कुलाहल अवध अति सुनि नृप राउर सोर।—तुलसी। (ग) गे सुमंत तब राउर माहीं। देखि भयावन जात डेराहीं।—तुलसी।

वि० श्रीमान् का। आपका। उ०—(क) जो राउर आयसु मैं पाऊँ। (ख) सब कर हित रुख राउर राखे।—तुलसी।

राउल ✽†-संज्ञा पुं० [सं० राजकुल] (१) राजकुल में उत्पन्न पुरुष। (२) राजा।

राकस ✽†-संज्ञा पुं० [सं० राक्षस] [स्त्री० राकसिन] राक्षस। उ०—(क) राकस बंस हमें हतने सब। काज कहा तिनसों हमसे अब।—केशव। (ख) राजै बहा रे राकस जानि बूझि बौरासि।—जायसी। (ग) कीन्हेसि राकस भूत परेता।—जायसी।

राकसगदा-संज्ञा पुं० [हिं० राकस + गदा] कदंब नाम की बेल और उसकी जड़ जो पंजाब, सिंध, गुजरात और लंका में पाई जाती है। इसकी जड़ ओषधि के काम में आती है। इसके खाने से दस्त और कै होती है। गर्मी के रोगी को इसका रस पिलाया जाता है और गठिया के रोगी की गाँठ पर इसका लेप चढ़ाया जाता है।

राकसताल-संज्ञा पुं० [हिं० राकस + ताल] तिब्बत में कैलास के उत्तर ओर की एक झील का नाम, जिसे रावण ह्रद और मान तलाई भी कहते हैं।

राकसपत्ता-संज्ञा पुं० [हिं० राकस = राक्षस + हिं० पत्ता] जंगली कुँवार जिसे काण्टल और बबूर भी कहते हैं।

राकसिनि ✽†-संज्ञा स्त्री० [हिं० राकस] राक्षसी। निशाचरी। उ०—खायो हुतो तुलसी कुरोग राँड राकसिनि, केसरी किसोर राखे बीर बरियाई है।—तुलसी।

राका-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) पूर्णिमा की रात। (२) पूर्णमासी। (३) खुजली का रोग। (४) वह स्त्री जिसको पहले पहल रजोदर्शन हुआ हो। (५) चंद्रमा। (डिं०)

राकापति-संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा।

राकेश-संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा।

राक्षस-संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० राक्षसी] (१) निशाचर। दैत्य। असुर। (२) कुबेर के धन-कोश के रक्षक। (३) कोई दुष्ट प्राणी। (४) साठ संवत्सरों में से उनचासवाँ संवत्। (५) वैद्यक में एक रस जो पारे और गंधक के योग से बनता है। यह रस पेट की बादी दूर करता और भूख बढ़ाता

है। (९) एक प्रकार का विवाह जिसमें कन्या के लिये युद्ध करना पड़ता है।

राख-संज्ञा स्त्री० [सं० रक्षा ?] किसी बिलकुल जले हुए पदार्थ का अवशेष। भस्म। खाक। जैसे,—कोयले की राख।

राखना@†-क्रि० स० [सं० रक्षण] (१) रक्षा करना। बचाना। उ०—(क) जाको राखै साइयाँ मारि न सकिहै कोइ।—कबीर। (२) जो हठ राखै धरम की तेहि राखै करतार। (३) पेड़ या फसल को जानवरों या चिड़ियों के खाने या लोगों के लेने से बचाना। रखवाली करना। उ०—खेत खरी राखे खरी खरे उरोजन बाल।—बिहारी। (४) छिपाना। कपट करना। उ०—कछु तेहि ते पुनि मैं नहिं राखा। समुझइ खग खग ही की भाखा।—तुलसी। (५) रोक रखना। जाने न देना। ठहराना। उ०—जागबलिक मुनि परम बिबेकी। भरद्वाज राखे पद टेकी।—तुलसी। (६) आरोप करना। बताना। उ०—तहाँ वेद अस कारन राखा। भजन प्रभाव भाँति बहु भाखा।—तुलसी। (७) दे० "रखना"।

राखी-संज्ञा स्त्री० [सं० रक्षा] वह मंगल सूत्र जो कुछ विशिष्ट अवसरों पर, विशेषतः श्रावणी पूर्णिमा के दिन ब्राह्मण या और लोग अपने यजमानों अथवा आत्मीयों के दाहिने हाथ की कलाई पर बाँधते हैं। रक्षाबंधन का डोरा। रक्षा।

संज्ञा स्त्री० दे० "राख"।

राग-संज्ञा पुं० [सं०] (१) किसी इष्ट वस्तु या सुख आदि को प्राप्त करने की इच्छा। प्रिय या अभिमत वस्तु को प्राप्त करने की अभिलाषा। प्रिय या सुंदर वस्तु की ओर आकर्षण या प्रवृत्ति। सांसारिक सुखों की चाह।

विशेष—पतंजलि ने इसे पाँच प्रकार के क्लेशों में से एक प्रकार का क्लेश माना है। उनके मत से जो व्यक्ति सुख भोगता रहता है, उसकी प्रवृत्ति और अधिक सुख प्राप्त करने की ओर होती है; और इसी प्रवृत्ति का नाम उन्होंने राग रखा है। इसका मूल अविद्या और परिणाम क्लेश है।

(२) क्लेश। कष्ट। पीड़ा। तकलीफ़। (३) मत्सर। ईर्ष्या। द्वेष। (४) अनुराग। प्रेम। प्रीति। उ०—सो जन जगत जहाज है, जाके राग न द्वेष।—तुलसी। (५) चंदन, कपूर, कस्तूरी आदि से बना हुआ अंग में लगाने का सुगंधित लेप। अंगराग। उ०—कौन करै होरी कोई गोरी समुझावै कहा, लागी को राग लाग्यो जिय सों विराग सों। केसर सी केसर कपूर लाग्यो काठ राम गात सो गुलाब लाग्यो अरगजा आग सों।—पद्माकर। (६) एक वर्ण वृत्त जिसके प्रत्येक चरण में १३ अक्षर (र, ज, र, ज और ग) होते हैं। (७) रंग, विशेषतः लाल रंग। जैसे,—लाख आदि का। (८) मन प्रसन्न करने की क्रिया। रंजन। (९) राजा। (१०) सूर्य। (११) चंद्रमा। (१२) पैर में लगाने का अलक्त।

(१३) संगीत में षड्ज आदि स्वरों, उनके वर्णों और अंगों से युक्त वह ध्वनि जो किसी विशिष्ट ताल में बैठाई हुई हो और जो मनोरंजन के लिये गाई जाती हो। किसी खास धुन में बैठाए हुए स्वर जिनके उच्चारण से गान होता हो।

विशेष—संगीत-शास्त्र के भारतीय आचार्यों ने छः राग माने हैं; परंतु इन रागों के नामों के संबंध में बहुत मतभेद है। भरत और हनुमत के मत से ये छः राग इस प्रकार हैं—भैरव, कौशिक (मालकोस), हिंडोल, दीपक, श्री और मेघ। सोमेश्वर और ब्रह्मा के मत से इन छः रागों के नाम इस प्रकार हैं—श्री, वसंत, पंचम, भैरव, मेघ और नट-नारायण। नारद-संहिता का मत है कि मालव, मल्लार, श्री, वसंत, हिन्डोल और कर्णाट ये छः राग हैं। परंतु आज कल प्रायः ब्रह्मा और सोमेश्वर का मत ही अधिक प्रचलित है। स्वर-भेद से राग तीन प्रकार के कहे गए हैं—(१) संपूर्ण, जिसमें सातों स्वर लगते हों; (२) षाड़व, जिसमें केवल छः स्वर लगते हों और कोई एक स्वर वर्जित हो; और (३) ओड़व, जिसमें केवल पाँच स्वर लगते हों और दो स्वर वर्जित हों। मतंग के मत से रागों के ये तीन भेद हैं—(१) शुद्ध, जो शास्त्रीय नियम तथा विधान के अनुसार हो और जिसमें किसी दूसरे राग की छाया न हो; (२) सालंक या छायालग, जिसमें किसी दूसरे राग की छाया भी दिखाई देती हो, अथवा जो दो रागों के योग से बना हो; और (३) संकीर्ण, जो कई रागों के मेल से बना हो। संकीर्ण को 'संकर राग' भी कहते हैं। ऊपर जिन छः रागों के नाम बतलाए गए हैं, उनमें से प्रत्येक राग का एक निश्चित सरगम या स्वर-क्रम है, उसका एक विशिष्ट स्वरूप माना गया है; उसके लिये एक विशिष्ट ऋतु, समय और पहर आदि निश्चित हैं; उस के लिये कुछ रस नियत हैं; तथा अनेक ऐसी बातें भी कही गई हैं, जिनमें से अधिकांश केवल कल्पित ही हैं। जैसे, माना गया है कि अमुक राग का अमुक द्वीप या वर्ण पर अधिकार है, उसका अधिपति अमुक ग्रह है, आदि। इसके अतिरिक्त भरत और हनुमत के मत से प्रत्येक राग की पाँच पाँच रागिनियाँ और सोमेश्वर आदि के मत से छः छः रागिनियाँ हैं। इस अंतिम मत के अनुसार प्रत्येक राग के आठ आठ पुत्र तथा आठ आठ पुत्र-वधूएँ भी हैं। (वि० दे० "रागिनी" (४)।) यदि वास्तविक दृष्टि से देखा जाय, तो राग और रागिनी में कोई अंतर नहीं है। जो कुछ अंतर है, वह केवल कल्पित है। हाँ, रागों में रागिनियों की अपेक्षा कुछ विशेषता और प्रबलता अवश्य होती है और रागिनियाँ उनकी छाया से युक्त जान पड़ती हैं। अतः इन रागिनियों को रागों के अंतर्गत भेद कह सकते हैं। इनके सिवा और भी बहुत से राग हैं, जो कई

रागों की छाया पर अथवा मेल से बनते हैं और "संकर राग" कहलाते हैं। शुद्ध रागों की उत्पत्ति के संबंध में लोगों का विश्वास है कि जिस प्रकार श्रीकृष्ण की वंशी के सात छेदों में से सात स्वर निकले हैं, उसी प्रकार श्रीकृष्णजी की १६०८ गोपिकाओं के गाने से १६०८ प्रकार के राग उत्पन्न हुए थे; और उन्हीं में से बचते बचते अंत में केवल छः राग और उनकी ३० या ३६ रागिनियाँ रह गईं। कुछ लोगों का यह भी मत है कि महादेवजी के पाँच मुखों से पाँच राग (श्री, वसंत, भैरव, पंचम और मेघ) निकले हैं और पार्वती के मुख से छठा नटनारायण राग निकला है।

मुहा०—अपना राग अलापना = अपनी ही बात कहना। अपना ही विचार प्रकट करना, दूसरों की बातों पर ध्यान न देना।

रागचूर्ण-संज्ञा पुं० [सं०] (१) कामदेव। (२) खैर का पेड़।

रागच्छन्न-संज्ञा पुं० [सं०] (१) कामदेव। (२) रामचंद्र।

रागना‡-क्रि० अ० [सं० रागः] (१) अनुराग करना। अनुरक्त होना। (२) रँग जाना। रंजित होना। (३) निमग्न हो जाना। उ०—सोमक स्याम करम रस रागि।—गोपाल।

क्रि० स० [सं० राग] गाना। अलापना। उ०—(क) या अनुराग की फाग लखो जहँ रागती राग किशोर किशोरी।—पद्माकर। (ख) पँधी लंबित सतलरी पुही प्रेम रँग ताग। मनौ विपंची काम की रागति पंचम राग।—गुमान। (ग) गहि कर बीन प्रवीन तिय राग्यो राग मलार।—बिहारी।

रागपुष्प-संज्ञा पुं० [सं०] बंधुजीव नामक पुष्प या उसका पौधा। गुलदुपहरिया।

रागपुष्पी-संज्ञा स्त्री० [सं०] जवा।

रागभजन-संज्ञा पुं० [सं०] एक विद्याधर का नाम।

रागरज्जु-संज्ञा पुं० [सं०] कामदेव।

रागलता-संज्ञा स्त्री० [सं०] कामदेव की स्त्री, रति।

रागषाड़व-संज्ञा पुं० [सं०] (१) प्राचीन काल का एक प्रकार का खाद्य-पदार्थ जो अनार और दाख से बनता था। (२) आम का मुरब्बा।

रागसारा-संज्ञा स्त्री० [सं०] मैनसिल।

रागांगी-संज्ञा स्त्री० [सं०] मजीठ।

रागान्वित-वि० [सं०] (१) जिसे राग या प्रेम हो। (२) जिसे क्रोध हो।

रागारु-वि० [सं०] जो किसी को कुछ देने की आशा बँधाकर भी न दे।

रागाशनि-संज्ञा पुं० [सं०] बुद्धदेव।

रागिनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) विदग्धा स्त्री। (२) मेना की बड़ी कन्या का नाम। (३) जयश्री नाम की लक्ष्मी। (४) संगीत में किसी राग की पत्नी या स्त्री। वि० दे० "राग"। हनुमत और भरत के मत से प्रत्येक राग की पाँच पाँच रागिनियाँ और सोमेश्वर आदि के मत से छः छः रागिनियाँ हैं। परंतु साधारणतः लोक में छः रागों की छत्तीस रागिनियाँ ही मानी जाती हैं। इस अंतिम मत के अनुसार प्रत्येक राग की रागिनियाँ इस प्रकार हैं—

श्रीराग की भार्य्याएँ या रागिनियाँ—मालश्री, त्रिवणी, गौरी, केदारी, मधुमाधवी और पहाड़ी। वसंत राग की रागिनियाँ—देशी, देवगिरि, वैराटी, टौरिका, ललिता और हिंडोल। पंचम राग की रागिनियाँ—विभास, भूपाली, कर्णाटी, पठहंसिका, मालवी और पटमंजरी। भैरव राग की रागिनियाँ—भैरवी, बंगाली, सैंधवी, रामकेली, गुर्ज्जरी और गुणकरी। मेघ राग की रागिनियाँ—मलारी, सैरिटी, सावेरी, कौशिकी, गांधारी और हरशृंगार। नटनारायण की रागिनियाँ—कामोदी, कल्याणी, आभीरी, नाटिका, सारंगी और हम्मीरी। अन्य मत से रागों की रागिनियाँ इस प्रकार हैं। भैरव—मध्यमादि (मधुमाधवी), भैरवी, बंगाली, वरारी और सैंधवी। मालकोस—टोड़ी, खंबावती, गौरी, गुणकरी और ककुभा। हिंडोल—बिलावली, रामकली, देसाख, पटमंजरी और ललित। दीपक—केदारी, करणाटी, देसी टोड़ी, कामोदी और नट। श्री—वसंत, मालवी, मालश्री, असावरी और धनाश्री। मेघ—गौड़मलारी, देसकार, भूपाली, गुर्जरी और श्रीरंक। कुछ लोगों के मत से रागिनियों के उक्त नामों में मतभेद भी है। इन छत्तीस रागिनियों के अतिरिक्त और भी सैकड़ों रागिनियाँ हैं, जो प्रायः कई रागों और रागिनियों के मेल से बनती हैं और जिन्हें संकर रागिनी कहते हैं।

रागी-संज्ञा पुं० [सं० रागिन्] [स्त्री० रागिनी] (१) अनुरागी। प्रेमी। (२) मड़ुवा या मकरा नामक कदन्न। (३) छः मात्रावाले छंदों का नाम। (४) अशोक वृक्ष।

वि० (१) रँगा हुआ। (२) लाल। सुर्ख। उ०—सुभाई जहाँ देखिये वक रागी।—केशव। (३) विषय वासना में फँसा हुआ। विषयासक्त। विरागी का उलटा। उ०—पय पावनि बन भूमि भलि सैल सुहावन पीठि। रागिहि सीठि बिसेषि थलु विषय विरागिहि मीठि।—तुलसी। (४) रंजन करनेवाला। रँगनेवाला।

‡छ संज्ञा स्त्री० [सं० राज्ञी] राजा की पत्नी। रानी। उ०—तौ लग संग विभीषण के कर राज दुहाँ गइ है परागी।—राम।

राघव-संज्ञा पुं० [सं०] (१) रघु के वंश में उत्पन्न व्यक्ति। (२) श्रीरामचन्द्र। (३) दशरथ। (४) अज। (५) समुद्र में रहनेवाली एक प्रकार की बहुत बड़ी मछली।

राचना छ-क्रि० स० [हिं० रचना] रचना। बनाना। उ०—(क) ये भूनै अग राचिया साईं नूर निनार। तब

में सारा सुख भोग लिया। (५) देश। जनपद। उ०—एक राज महँ प्रगट जहँ द्वै प्रभु केशवदास। तहाँ बसत है रैनि दिन मूरतिवंत विनाश।—केशव।

संज्ञा पुं० [सं० राजन्] (१) राजा। (२) वह कारीगर जो ईंटों से दीवार आदि चुनता और मकान बनाता है। थवई। राजगीर।

राज़—संज्ञा पुं० [फा०] रहस्य। भेद। गुप्त बात।

राजक—वि० [सं०] दीप्तिकारक। चमकनेवाला।

संज्ञा पुं० (१) राजा। (२) काला अगर।

राजकथा—संज्ञा स्त्री० [सं०] इतिहास। तवारीख।

राजकदंब—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का कदंब जिसके फल बड़े और स्वादिष्ट होते हैं।

राजकन्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) राजा की पुत्री। (२) केवड़े का फूल।

राजकर—संज्ञा पुं० [सं०] वह कर जो प्रजा से राजा लेता है। राजा को मिलनेवाला महसूल। खिराज।

राजकर्कटी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की ककड़ी।

राजकर्ण—संज्ञा पुं० [सं०] हाथी का सूँड़।

राजकर्त्ता—संज्ञा पुं० [सं० राजकर्तृ] जो पुरुष दूसरे को राजसिंहासन पर बैठाता है। किसी को राजगद्दी पर यथेच्छ बैठाने और उतारने की शक्ति रखनेवाला पुरुष।

राजकला—संज्ञा स्त्री० [सं०] चंद्रमा की सोलह कलाओं में से एक कला का नाम।

राजकशेरु—संज्ञा पुं० [सं०] भद्रमोथा। नागरमोथा।

राजकीय—वि० [सं०] राजा या राज्य से संबंध रखनेवाला। राज्य संबंधी। जैसे,—राजकीय घोषणा।

राजकुँअर‡†—संज्ञा पुं० [सं० राजकुमार] [स्त्री० राजकुँअरि, राजकुँआरी] राजकुमार। उ०—लख्यो सुमन्त्र यह संन्यासी। राजकुँअर कियो भेस उदासी।—सूर।

राजकुमार—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० राजकुमारी] राजा का पुत्र।

राजकुलक—संज्ञा पुं० [सं०] परवल की लता।

राजकुष्मांड—संज्ञा पुं० [सं०] बैंगन।

राजकोल—संज्ञा पुं० [सं०] बड़ा बेर।

राजकोलाहल—संज्ञा पुं० [सं०] संगीत में ताल के साठ मुख्य भेदों में से एक।

राजकोशातक—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का नेनुआ जो बहुत बड़ा होता है। घीया-तरोई।

राजक्षवक—संज्ञा पुं० [सं०] राई।

राजखर्जुरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] पिंड खजूर।

राजगद्दी—संज्ञा स्त्री० [हिं० राजा + गद्दी] (१) राजसिंहासन। राजा के बैठने का आसन। (२) राज्याभिषेक। राज्यारोहण। (३) राज्याधिकार। उ०—राजा ययाति प्रसन्न हो बोला कि तेरे कुल में राजगद्दी रहेगी।—लल्लू।

राजगवी—संज्ञा स्त्री० [सं०] गाय की जाति का एक पशु।

राजगिरि—संज्ञा पुं० [सं०] (१) मगध देश के एक पर्वत का नाम। (२) बथुआ। (३) दे० "राजगृह"।

राजगी†—संज्ञा स्त्री० [हिं० राजा + गी (प्रत्य०)] राजा का पद।

राजगीर—संज्ञा पुं० [सं० राज + गृह] मकान बनानेवाला कारीगर। राज। थवई।

राजगीरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० राजगीर + ई (प्रत्य०)] राजगीर का कार्य्य या पद।

राजगृह—संज्ञा पुं० [सं०] (१) राज-प्रासाद। राजा का महल। (२) एक प्राचीन स्थान का नाम जो विहार में पटने के पास है। इसे प्राचीन काल में गिरिव्रज कहते थे। महाभारत के अनुसार यहाँ मगध की राजधानी थी, जिसे कुश के पुत्र वसु ने शोण और गंगा के संगम पर पाँच पहाड़ियों के बीच में बसाया था। महाभारत के समय में यह जरासंध की राजधानी थी। महाभारत में उन पाँच पर्वतों का नाम वैहार, वराह, वृषभ, ऋषिगिरि और चैत्यक लिखा है। वायुपुराण में इन्हीं पाँचों का नाम वैभार, गिरिव्रज, रत्नकूट, रत्नाचल और विपुल लिखा है। शोणिक ने विपुलगिरि के उत्तर, जिसे महाभारत के समय चैत्यक कहते थे, सरस्वती नामक एक छोटी सी नदी के पूर्व में नवीन राजगृह बसाया था। इसी को अब राजगिरि कहते हैं। यह शोणिक महावीर तीर्थंकर के काल में था और उनका प्रधान भक्त था। महात्मा बुद्ध के समय में यहीं बिंबसार की राजधानी थी। इन पहाड़ों पर अपने अपने समय में महावीर और गौतम बुद्ध ने निवास और उपदेश किया था तथा बौद्धों का प्रथम संघ यहीं पर संघटित हुआ था; और यहीं पर महाकाश्यप ने त्रिपिटक का प्रथम संग्रह किया था। यहाँ बौद्धों और जैनियों के अनेक मंदिर, स्तूप और चैत्यादि हैं। प्राचीन नगर के भग्नावशेष इसमें अब तक देखे जाते हैं। यहाँ अनेक प्राचीन अभिलेख भी मिले हैं। यह स्थान बौद्धों, जैनों और हिंदुओं का प्रधान तीर्थस्थान है।

राजग्रीव—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की मछली।

राजघ—वि० [सं०] राजा को मारनेवाला। राजा की हत्या करनेवाला।

वि० तीक्ष्ण। तेज।

राजचंपक—संज्ञा पुं० [सं०] पुन्नाग का फूल। सुलताना चंपा।

राजचिह्नक—संज्ञा पुं० [सं०] शिश्न। उपस्थ।

राजचूड़ामणि—संज्ञा पुं० [सं०] ताल के साठ भेदों में से एक। (संगीत)

राजजंबू-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बड़ा जामुन। फरेंदा। (२) पिंड खजूर।

राजजीरक-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का जीरा।

राजत-वि० [सं०] रजत का बना हुआ। चाँदी का।
संज्ञा पुं० रजत। चाँदी।

राजतरंगिणी-संज्ञा स्त्री० [सं०] कल्हण कृत काश्मीर का एक प्रसिद्ध इतिहास ग्रंथ जो संस्कृत में है और जिसमें पीछे कई पंडितों ने वृत्तांत बढ़ाए। इसकी रचना अब तक होती जाती है।

राजतरु-संज्ञा पुं० [सं०] (१) कर्णिकार का वृक्ष। कनियारी। (२) आरग्वध। अमलतास।

राजतरुणी-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का कुब्जक या सफेद गुलाब जिसका फूल सेवती से बड़ा होता है। इसकी लता टट्टियों पर चढ़ाई जाती है। फूलों की गंध मंद और मीठी होती है। वैद्यक में इसे कफकारक, हृद्य और चाक्षुष्य माना है और इसका स्वाद कसैला लिखा गया है। बड़ी सेवती।

पर्य्या०—महासहा। वर्णपुष्प। अम्लान। अम्लातक। सुवर्णपुष्प।

राजता-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) राजा होने का भाव। (२) राजा का पद।

राजताल-संज्ञा पुं० [सं०] सुपारी का पेड़।

राजतिमिश-संज्ञा पुं० [सं०] तरबूज़।

राजतिलक-संज्ञा पुं० [हिं० राज+तिलक] (१) राज सिंहासन पर किसी नए राजा के बैठने की रीति। राज्याभिषेक। उ०—नृपति युधिष्ठिर राजतिलक दै मारि दुष्ट की भीर। द्रोण कर्ण अरु शल्य मुक्त करि मेटी जग की पीर।—सूर। (२) नए राजा के गद्दी पर बैठने का उत्सव।

राजतैमिर-संज्ञा पुं० [सं०] राजतिमिश। तरबूज।

राजत्व-संज्ञा पुं० [सं०] (१) राजा का भाव या कर्म। (२) राजा का पद।

राजदंड-संज्ञा पुं० [सं०] (१) राजशासन। (२) वह दंड जिसका विधान राजा के शासन के अनुसार हो। वह दंड जो राजा की आज्ञा के अनुसार दिया जाय।

राजदंत-संज्ञा पुं० [सं०] दाँतों की पंक्ति के बीच का वह दाँत जो और दाँतों से बड़ा और चौड़ा होता है। ऐसे दाँत ऊपर और नीचे की पंक्तियों के बीच में होते हैं। कोई कोई ऊपर की पंक्ति में सामने के दो बड़े दाँतों को भी राजदंत मानते हैं; पर अन्य लोग दोनों पंक्तियों में बीच के दो दो दाँतों को राजदंत कहते हैं। चौका।

राजदूत-संज्ञा पुं० [सं०] वह पुरुष जो एक राज्य की ओर से किसी अन्य राज्य में संधि या विग्रह संबंधी अथवा अन्य नैतिक कार्य संपादन करने के लिये या किसी प्रकार का सँदेसा देकर भेजा जाता है। चाणक्य का मत है कि मेधावी, वाक्पटु, धीर पर, चित्तोपलक्षक तथा यथोक्तवादी पुरुष को राजदूत नियत करना चाहिए। प्राचीन काल में आवश्यकता पड़ने पर ही राजदूत एक राज्य से दूसरे राज्य में भेजे जाते थे; पर पश्चिमी देशों में यह प्रथा है कि मित्र राज्यों में राजाओं के राजदूत परस्पर एक दूसरे के यहाँ रहा करते हैं और उन्हों के द्वारा सारा कार्य्य संपादित होता है। दो राज्यों के बीच युद्ध छिड़ने पर दोनों एक दूसरे के यहाँ से अपने अपने राजदूत बुला लेते हैं।

राजदूर्वा-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की दूब जिसकी पत्तियाँ, कांड आदि स्थूल और बड़े होते हैं।

राजदृषद्-संज्ञा स्त्री० [सं०] जाँता। चक्की।

राजदेशीय-वि० [सं०] राजा से कुछ ही कम। राजा के तुल्य। राजकल्प।

राजद्रुम-संज्ञा पुं० [सं०] आरग्वध वृक्ष। अमलतास।

राजद्रोह-संज्ञा पुं० [सं०] राजा या राज्य के प्रति किया हुआ द्रोह। वह कृत्य जिससे राजा या राज्य के नाश या अनिष्ट की संभावना हो। बगावत। जैसे,—प्रजा या सेना को राजा या राज्य से लड़ने के लिये भड़काना।

राजद्रोही-वि० [सं० राजद्रोहिन्] राजद्रोह करनेवाला। बागी।

राजद्वार-संज्ञा पुं० [सं०] (१) राजा का द्वार। राजा की ड्योढ़ी। (२) *विचारालय। न्यायालय।*

राजधत्तूरक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्रकार का धतूरा जिसके फूल कई आवरण के होते हैं। (२) कनक धतूरा।

राजधर्म-संज्ञा पुं० [सं०] (१) राजा का कर्त्तव्य या धर्म। जैसे,—प्रजा का पालन, शत्रु से देश की रक्षा, लूट पाट या उपद्रव आदि का निवारण। (२) महाभारत के शांति पर्व के एक अंश का नाम जिसमें राजा के कर्त्तव्यों का वर्णन है।

राजधर्म्मा-संज्ञा पुं० [सं० राजधर्मन्] महाभारत के अनुसार कश्यप के एक पुत्र का नाम जो सारसों का राजा था।

राजधानी-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह प्रधान नगर जहाँ किसी देश का राजा या शासक रहता हो। किसी प्रदेश का वह नगर जहाँ उस देश के शासन का केंद्र हो। जैसे,—भारत की राजधानी दिल्ली, पंजाब की राजधानी लाहौर, इंगलैंड की राजधानी लंदन।

राजधान्य-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का धान जिसे श्यामा धान भी कहते हैं।

राजधुस्तूरक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्रकार का धतूरा जिसके फूल बड़े और कई आवरण के होते हैं।

पर्य्या०—राजधूर्त। महाशठ। मिश्रेण पुष्पक। भ्रांत। राजस्वर्ण।

(२) कनकधतूरा।
राजनय-संज्ञा पुं० [सं०] राजनीति।
राजना ॐ-क्रि० अ० [सं० राजन = शोभित होना।] (१) विराजना। उपस्थित होना। रहना। उ०—(क) कीन्ही केलि बहुत बल मोहन भुव को भार उतारेउ। प्रगट ब्रह्म राजत द्वारावति बेद पुरान उचारेउ।—सूर। (ख) मंदिर महँ सब राजहिं रानी। सोभा शील तेज की खानी।—तुलसी। (ग) पुरुजित् अरु पुरुमित्र महीप। राज्यो रन रथ जोरि समीप।—गोपाल। (२) शोभित होना। सोहना। उ०—(क) आप जगदीश्वर ह्वै जग में विराजमान्, हौं हू तो कवीश्वर ह्वै राजते रहत हौं।—पद्माकर। (ख) बहु राजत हैं गजराज बड़े। नभ आवत विद्ध मनो उमड़े।—गुमान। (ग) वा दिन भाजे मुखन की तुम नासी मुसुकाइ। ते राजे यह सुनि उठी सुमना सी विकसाइ।—शृं० स०।
राजनामा-संज्ञा पुं० [सं० राजनामन्] पटोल। परवल।
राजनीति-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह नीति जिसका अवलंबन कर राजा अपने राज्य की रक्षा और शासन दृढ़ करता है। इसके प्रधान दो भेद हैं—एक तंत्र और दूसरा आवाप। वह नीति जिसके द्वारा अपने राज्य में सुप्रबंध और शांति स्थापित की जाय, तंत्र नीति कहलाती है; और जिसके द्वारा परराष्ट्रों से संबंध दृढ़ किया जाय, वह आवाप कहलाती है। स्वराज्य में प्रजाओं का समाचार और उनकी गति का पता देने के लिये राजा को चर से काम लेना पड़ता है; और पर-राष्ट्रों में स्वराष्ट्र के स्वत्व; वाणिज्य, व्यापारादि की रक्षा तथा उनकी गतियों का पता देने के लिये दूत रहते हैं। इन दूतों और चरों से राजा स्वराष्ट्र और परराष्ट्र की गति, चेष्टा आदि का पता लगाकर अपनी शक्ति और स्वत्व की समुचित रक्षा करता है। प्राचीन ग्रंथों में आवाप के छः मुख्य भेद किए गए हैं, जिनको षड्गुण भी कहते हैं। उनके नाम ये हैं—संधि, विग्रह, यान, आसन, द्वैधीकरण और संश्रय। ये षड्नीति के नाम से भी प्रसिद्ध हैं। राजनीति के चार और अंग कहे गए हैं—साम, दान, दंड और भेद।
राजनीतिक-वि० [सं०] राजनीति संबंधी। जैसे,—राजनीतिक आंदोलन, राजनीतिक सभा।
राजनील-संज्ञा पुं० [सं०] मरकत मणि। पन्ना।
राजन्य-संज्ञा पुं० [सं०] (१) क्षत्रिय। (२) अग्नि। (३) खिरनी का पेड़। (४) राजा।
राजन्यबंधु-संज्ञा पुं० [सं०] क्षत्रिय।
राजपंथ ॐ-संज्ञा पुं० दे० "राजपथ"। उ०—सुनु ऊधो! निर्गुन-कंटक में राजपंथ क्यों रूँधो?—सूर।
राजपटोल-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का पटोल या परवल जिसके फल बड़े होते हैं। फागुन चैत के महीनों में इसकी डालियाँ काटकर खेतों में दो दो हाथ की दूरी पर पंक्तियों में नाली खोदकर लगाई जाती हैं और उनमें पानी दिया जाता है। यह बैसाख जेठ से फूलने लगता है और इसकी फसल वर्षा ऋतु के मध्य तक रहती है। फल देखने में लंबे, बड़े और खाने में कुछ कम स्वादिष्ट होते हैं। इसे प्रति वर्ष खेतों में लगाने की आवश्यकता होती है। बिहार प्रांत में इसकी खेती अधिक होती है। इसे पूरबी या पटने का परवल भी कहते हैं।
राजपट्ट-संज्ञा पुं० [सं०] चुंबक पत्थर।
राजपट्टिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] चातक पक्षी।
राजपति-संज्ञा पुं० [सं०] राजाओं का राजा। सम्राट्।
राजपत्नी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) राजा की स्त्री। रानी। (२) पीतल (धातु)।
राजपथ-संज्ञा पुं० [सं०] वह चौड़ा मार्ग जिस पर हाथी, घोड़े, रथ आदि सुगमता से चल सकते हों। राजमार्ग। बड़ी सड़क।
राजपद्धति-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) राजपथ। (२) राजनीति।
राजपर्णी-संज्ञा स्त्री० [सं०] प्रसारिणी नाम की लता।
राजपलांडु-संज्ञा पुं० [सं०] लाल प्याज़। वि० दे० "प्याज"।
राजपाल-संज्ञा पुं० [सं०] वह जिससे राजा या राज्य की रक्षा हो। जैसे,—सेना आदि।
राजपीलु-संज्ञा पुं० [सं०] महापीलु नाम का वृक्ष।
राजपुत्र-संज्ञा पुं० [सं०] (१) राजा का पुत्र। राजकुमार। (२) एक वर्णसंकर जाति का नाम। पुराणों में इस जाति की उत्पत्ति क्षत्रिय पिता और करण माता से लिखी है। (३) बड़े आम का एक भेद। (४) बुध ग्रह।
राजपुत्रक-संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० राजपुत्रिका] (१) राजकुमार। (२) दे० "राजपुत्र"।
राजपुत्रा-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह (स्त्री) जिसका पुत्र राजा हो। राजा की माता। राजमाता।
राजपुत्रिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) राजकन्या। (२) सफेद जुही। (३) शरारि नामक पक्षी। (४) पीतल।
राजपुत्री-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) कड़ुआ कद्दू। कडुतुंबी। (२) रेणुका। (३) जाती। जाही फूल। (४) छछूँदर। (५) मालती। (६) राजकन्या।
राजपुरुष-संज्ञा पुं० [सं०] राज्य का कोई अफसर या कार्यकर्ता। राजकर्मचारी।
राजपुष्प-संज्ञा पुं० [सं०] (१) नागकेसर का पेड़। (२) कनक चंपा।
राजपुष्पी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) वन मल्लिका। (२) जाती पुष्प। (३) करुणी का फूल जो कोंकण में होता है।

राजपूजित-संज्ञा पुं० [सं०] वे श्रेष्ठ ब्राह्मण जिनका सत्कार राज्य की ओर से होता हो और जो जीविका आदि के लिये प्रजावर्ग के आश्रित न हों।

राजपूज्य-संज्ञा पुं० [सं०] सोना।

राजपूत-संज्ञा पुं० [सं० राजपुत्र] (१) दे० "राजपुत्र"। (२) राजपूताने में रहनेवाले क्षत्रियों के कुछ विशिष्ट वंश जो सब मिलाकर एक बड़ी जाति के रूप में माने जाते हैं।

विशेष—"राजपूत" शब्द वास्तव में "राजपुत्र" शब्द का अपभ्रंश है और इस देश में मुसलमानों के आने के पश्चात् प्रचलित हुआ है। प्राचीन काल में राजकुमार अथवा राजवंश के लोग "राजपुत्र" कहलाते थे; इसी लिये क्षत्रिय वर्ग के सब लोगों को मुसलमान लोग "राजपूत" कहने लगे थे। अब यह शब्द राजपूताने में रहनेवाले क्षत्रियों की एक जाति का ही सूचक हो गया है। पहले कुछ पाश्चात्य विद्वान् कहा करते थे कि "राजपूत" लोग शक आदि विदेशी जातियों की संतान हैं और वे क्षत्रिय तथा आर्य्य नहीं हैं। परंतु अब यह बात प्रमाणित हो गई है कि राजपूत लोग क्षत्रिय तथा आर्य्य हैं। यह ठीक है कि कुछ जंगली जातियों के समान हूण आदि कुछ विदेशी जातियाँ भी राजपूतों में मिल गई हैं। रही शकों की बात, सो वे भी आर्य्य ही थे, यद्यपि भारत के बाहर बसते थे। उनका मेल ईरानी आर्य्यों के साथ अधिक था। चौहान, सोलंकी, प्रतिहार, परमार, सिसोदिया आदि राजपूतों के प्रसिद्ध कुल हैं। ये लोग प्राचीन काल से बहुत ही वीर, योद्धा, देशभक्त तथा स्वामिभक्त होते आए हैं।

राजपूताना-संज्ञा पुं० [हिं० राजपूत] राजस्थान नामक प्रदेश जो भारत के पश्चिम में और पंजाब के दक्षिणी भाग में है। जयपुर, जोधपुर, बीकानेर आदि राज्य इसी के अंतर्गत हैं।

राजप्रकृति-संज्ञा स्त्री० [सं०] राजपुरुष।

राजप्रिय-संज्ञा पुं० [सं०] (१) राजपलांडु। (२) करुणी का फूल जो कोंकण में उत्पन्न होता है।

राजप्रिया-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) दे० "राजप्रिय"। (२) एक प्रकार का धान जो लाल रंग का होता है और जिसका चावल सफ़ेद तथा स्वादिष्ट होता है। तिलवासिनी।

राजप्रेष्य-संज्ञा पुं० [सं०] राजा या राज्य का नौकर। राजकर्मचारी।

राजफणिज्झक-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की नारंगी।

राजफल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) परोल। परवल। (२) बड़ा आम। (३) खिरनी।

राजफला-संज्ञा स्त्री० [सं०] राजजंबू। जामुन।

राजफलगु-संज्ञा पुं० [सं०] काकोदुंबर। कठूमर। कठगूलर।

राजबदर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) पैवंदी या पेउँदी बेर। (२) रक्तामलक। लाल आँवला। (३) लवण। नमक।

राजबला-संज्ञा स्त्री० [सं०] प्रसारिणी लता।

राजबाड़ी-संज्ञा स्त्री० [सं० राजवाटिका] (१) राजा की वाटिका। (२) राजभवन। राजमहल।

राजबाहा-संज्ञा पुं० [हिं० राज + बहना] प्रधान या बड़ी नहर जिससे अनेक छोटी छोटी नहरें खेतों को सींचने के लिये निकाली जाती हैं।

राजभंडार-संज्ञा पुं० [सं० राजभांडार] राज्य या राजा का खजाना। राजकोश।

राजभक्त-वि० [सं०] जिसमें राजा या राज्य के प्रति भक्ति हो। राजा का भक्त।

राजभक्ति-संज्ञा स्त्री० [सं०] राजा या राज्य के प्रति भक्ति या प्रेम।

राजभट्टिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का जल पक्षी। गोभंडीर। पकरीट। हायुग्री।

राजभद्रक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) फरहद का पेड़। पारिभद्रक। (२) नीम। निंब। (३) कुड़ा। कुष्ठ। (४) कुँदरू। (५) सफेद आक।

राजभवन-संज्ञा पुं० [सं०] राज-प्रासाद। राजा का महल।

राजभूय-संज्ञा पुं० [सं०] राजत्व। राज्य।

राजभृत्-संज्ञा पुं० [सं०] राजा का वेतनभोगी भृत्य।

राजभोग-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का महीन धान जो अगहन में होता है। उ०—राजभोग औ रानी काजर। भाँति भाँति के सीझे चावर।—जायसी।

राजभोग्य-संज्ञा पुं० [सं०] (१) जावित्री। (२) पयार। चिरौंजी। (३) एक प्रकार का धान।

राजमंडल-संज्ञा पुं० [सं०] ऐसे राजाओं का राज्य जो किसी राज्य के आस पास हो। किसी राज्य के आस पास या चारों ओर के राज्य। नीतिशास्त्र में बारह प्रकार के राजमंडल माने गए हैं—अरि, मित्र, उदासीन, विजिगीषु, पार्ष्णिग्राह, आक्रंद, विजिगीषु का पुरःसर और पश्चाद्वर्ती, पार्ष्णिग्रहसार, आक्रंदसार, अरिसम, मित्रसम और मध्यम।

राजमंडूक-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का मेढक जो बहुत बड़ा होता है।

पर्य्या०—महामंडूक। पीताभ। वर्षाघोष। महोरय।

राजमराल-संज्ञा पुं० [सं०] राजहंस।

राजमहल-संज्ञा पुं० [हिं० राज + महल] (१) राजा का महल। राजप्रासाद। (२) एक पर्वत का नाम जो बंगाल में संथाल परगने के पास है। यह पर्वतमाला समुद्र से दो हजार फुट ऊँची है। यहाँ मुगल साम्राज्य काल के बने अनेक प्रासाद, मसजिदें, भवन आदि विद्यमान हैं।

राजमात्र–वि० [सं०] जो नाम मात्र का राजा हो।

राजमार्ग–संज्ञा पुं० [सं०] राजपथ। चौड़ी सड़क।

राजमाष–संज्ञा पुं० [सं०] बड़ा उरद जो नीले या काले रंग का होता है। वैद्यक में इसे रुचिकर, रूक्ष, लघु, वातकारक और बल तथा शुक्र का बढ़ानेवाला लिखा है। वि० दे० "उरद"।

पर्य्या०—नीलमाष। नृपमाष।

राजमाष्य–संज्ञा पुं० [सं०] वह खेत जिसमें माष बोया जाता हो। मसार।

राजमुद्ग–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का मूँग। यह सुनहले रंग का होता है और खाने में अधिक स्वादिष्ट होता है।

राजमुनि–संज्ञा पुं० [सं०] राजर्षि।

राजमृगांक–संज्ञा पुं० [सं०] एक मिश्र रस का नाम जो यक्ष्मा रोग में दिया जाता है। इसके बनाने की विधि यह है। सोने को उतनी ही चाँदी, और उससे दूने मैनसिल, गंधक हरताल तथा तिगुने रस सिंदूर के साथ मिलाकर एक कौड़ी में भर देते हैं। फिर बकरी के दूध में सुहागा पीसकर उससे कौड़ी का मुँह बंद कर देते हैं। फिर उसे मिट्टी के बरतन में भरकर गजपुट से फूँक देते हैं। ठंढा होने पर उसे निकालकर पीस डालते हैं। कुछ लोग चाँदी की जगह ताँबा और रससिंदूर की जगह चौगुना पारा डालकर भी यह रस बनाते हैं। यह रस चार रत्ती की मात्रा में खाया जाता है। इसका अनुपान घी, मधु या पीपल और मिर्च है।

राजयक्ष्मा–संज्ञा पुं० [सं० राजयक्ष्मन्] क्षयी। यक्ष्मा। क्षय रोग। तपेदिक्। वि० दे० "क्षय"।

राजयक्ष्मी–वि० [सं० राजयक्ष्मिन्] जिसे राजयक्ष्मा रोग हुआ हो। क्षय रोग से पीड़ित।

राजयान–संज्ञा पुं० [सं०] (१) पालकी। (२) वह सवारी जो राजा के लिये हो। (३) राजा की सवारी का निकलना। राजा का जलूस।

राजयोग–संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह प्राचीन योग जिसका उपदेश पतंजलि ने योगशास्त्र में किया है। इसमें यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि नामक अष्टांग का यथाक्रम अभ्यास किया जाता है। इसे अष्टांग योग भी कहते हैं। वि० दे० "योग"। (२) फलित ज्योतिष के अनुसार ग्रहों का ऐसा योग जिसके जन्मकुंडली में पड़ने से मनुष्य राजा या राजा के तुल्य होता है। यवनाचार्य्य के मत से पाप ग्रहों का जन्म समय स्वस्थानभागी होकर उच्च होना राजयोग है। पर जीवशर्मा का मत है कि मंगल, शनि, सूर्य्य और बृहस्पति में से किसी तीन ग्रहों का अपने स्थान में उच्च पड़ना राजयोग है।

राजयोग्य–संज्ञा पुं० [सं०] चंदन।

राजरंग–संज्ञा पुं० [सं०] चाँदी।

राजरथ–संज्ञा पुं० [सं०] राजा का रथ।

राजराज–संज्ञा पुं० [सं०] (१) राजाओं का राजा। अधिराज। (२) कुबेर। (३) चंद्रमा।

राजराजेश्वर–संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० राजराजेश्वरी] (१) राजाओं का राजा। अधिराज। (२) एक रसौषध का नाम जिसका प्रयोग दाद, कुष्ठ आदि रोगों में होता है।

विशेष – पारे, गंधक और हरताल के साथ ताँबे को मिलाकर भँगरैया के रस में एक दिन खरल करके उसमें त्रिफला, गुड़ुच, बकुची सम भाग मिलाकर दो दो रत्ती की गोलियाँ बनाई जाती हैं और दो तोले मधु या घी के साथ खाई जाती हैं।

राजराजेश्वरी–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) दस महाविद्याओं में से एक का नाम। भुवनेश्वरी। (२) राजराजेश्वर की पत्नी। महारानी।

राजरीति–संज्ञा पुं० [सं०] काँसा। कसकुट।

राजरोग–संज्ञा पुं० [हिं० राजा + रोग] (१) वह रोग जो असाध्य हो। जैसे,—यक्ष्मा, श्वास इत्यादि। (२) राजयक्ष्मा। क्षय रोग।

राजर्षि–संज्ञा पुं० [सं०] वह ऋषि जो राजवंश या क्षत्रिय कुल का हो। क्षत्रिय ऋषि। जैसे,—राजर्षि विश्वामित्र।

विशेष—ऋषि सात प्रकार के कहे गए हैं – देवर्षि, ब्रह्मर्षि, महर्षि, परमर्षि, राजर्षि, कांडर्षि और श्रुतर्षि। इनमें से अंतिम दो वेद के द्रष्टा हैं।

राजल–संज्ञा पुं० [हिं० राजा + ल (प्रत्य०)] एक प्रकार का धान जो अगहन में पककर काटने योग्य होता है।

राजलक्षण–संज्ञा पुं० [सं०] सामुद्रिक के अनुसार वे चिह्न या लक्षण जिनके होने से मनुष्य राजा होता है।

राजलक्ष्मा–संज्ञा पुं० [सं० राजलक्ष्मन्] (१) राजाओं के चिह्न। राजचिह्न। (२) युधिष्ठिर। (३) वह मनुष्य जिसमें सामुद्रिक के अनुसार राजाओं के लक्षण हों। राजलक्षण से युक्त पुरुष।

राजलक्ष्मी–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) राजश्री। राजवैभव। (२) राजा की शोभा।

राजवंश–संज्ञा पुं० [सं०] राजा का कुल। राजकुल।

राजवंश्य–वि० [सं०] राजा के वंश में उत्पन्न। जो राजकुल में उत्पन्न हुआ हो।

राजवर्चस्–संज्ञा पुं० [सं०] (१) राजशक्ति। (२) राजपद।

राजवर्त्म–संज्ञा पुं० [सं० राजवर्त्मन्] बड़ी और चौड़ी सड़क। राजमार्ग। राजपथ।

राजवला–संज्ञा स्त्री० [सं०] गंधप्रसारिणी। गंधपसार। प्रसारिणी।

राजवल्लभ–संज्ञा पुं० [सं०] (१) खिरनी। (२) बड़ा आम।

(३) बड़ा बेर। पेउँदी बेर। (४) एक मिश्र रसौषध जो शूल, गुल्म, ग्रहणी, अतीसार आदि में दी जाती है।

राजवल्ली-संज्ञा स्त्री० [सं०] करेले का पेड़।

राजवसति-संज्ञा स्त्री० [सं०] राजा का महल। राजभवन।

राजवारुणी-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का मद्य। अर्क प्रकाश के अनुसार यह सोंठ, पीपल, पिपलामूल, अजवायन और काली मिर्च को उनकी तौल से तिगुने अम्लवर्ग और चौगुने मधुजातीय और इक्षुजातीय रसों में मिलाकर खींचा जाता है।

राजवाह-संज्ञा पुं० [सं०] घोड़ा।

राजवाह्य-संज्ञा पुं० [सं०] हाथी।

राजवि-संज्ञा पुं० [सं०] नीलकंठ।

राजविजय-संज्ञा पुं० [सं०] संपूर्ण जाति का एक राग।

राजविद्या-संज्ञा स्त्री० [सं०] राजनीति।

राजविद्रोह-संज्ञा पुं० [सं०] बगावत। राजविप्लव। वि० दे० "राजद्रोह"।

राजविद्रोही-संज्ञा पुं० [सं० राजविद्रोहिन्] वह जो राजा या राज्य के प्रति विद्रोह करे। बागी।

राजविनाद-संज्ञा पुं० [सं०] एक ताल का नाम। (संगीत)

राजवीजी-वि० [सं०] राजवंशी।

राजवीथी-संज्ञा स्त्री० [सं०] राजमार्ग। राजपथ। चौड़ी सड़क।

राजवृक्ष-संज्ञा पुं० [सं०] (१) आरग्वध का वृक्ष। उरगा का पेड़। अमलतास। (२) पयार का पेड़। (३) लंका का भद्रचूड़ नामक वृक्ष। (४) स्योनाक वृक्ष। सोना पाढ़ी।

राजशण-संज्ञा पुं० [सं०] पटसन।

राजशफर-संज्ञा पुं० [सं०] हिलसा मछली।

राजशाक-संज्ञा पुं० [सं०] वास्तुक शाक। बथुआ।

राजशाकनिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] राजशाक। वास्तूक। बथुआ।

राजशालि-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का जड़हन धान जिसे राजभोग्य या रायभोग भी कहते हैं। इसका चावल बहुत महीन और सुगंधित होता है।

राजशिंबी-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की सेम जो चौड़ी, और गूदेदार होती है। यह खाने में स्वादिष्ट होता है। इसे घीयासेम भी कहते हैं। इसकी दो जातियाँ होती हैं—एक काली और दूसरी सफेद। इसमें और सामान्य सेम में यह भेद है कि यह उससे अधिक चौड़ी होती है और लंबाई में बहुत नहीं बढ़ती।

राजशुक-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का तोता जो लाल रंग का होता है। इसे नूरी कहते हैं।

पर्य्या०—प्राज्ञ। शतपत्र। नृपप्रिय।

राजशुकज-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का धान।

राजश्री-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) राजलक्ष्मी। राजवैभव। राजा का ऐश्वर्य। (२) राजा की शोभा।

राजसंसद्-संज्ञा पुं० [सं०] (१) राजसभा। (२) वह धर्माधिकरण जिसमें राजा स्वयं उपस्थित हो। स्वयं राजा का दरबार।

राजस-वि० [सं०] [स्त्री० राजसी] रजोगुण से उत्पन्न। रजोगुणोद्भव। रजोगुणी। जैसे,—राजस यज्ञ, राजस दान, राजस ज्ञान, राजस बुद्धि आदि। वि० दे० "गुण"।

संज्ञा पुं० आवेश। क्रोध। उ०—जो चाहै चटकन हटै मैलो होय न मित्त। रज राजस न छुवाइये नेह चीकने चित्त।—बिहारी।

राजसत्ता-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) राजशक्ति। (२) वह सत्ता जो किसी देश या जाति के भरण-पोषण, वर्द्धन और रक्षण के लिये स्थापित की जाती है।

राजसफर-संज्ञा पुं० [सं०] हिलसा मछली।

राजसभा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) राजा की सभा। दरबार। (२) वह सभा जिसमें अनेक राजा बैठे हों। राजाओं की सभा।

राजसमाज-संज्ञा पुं० [सं०] (१) राजाओं का दरबार या समाज। राजमंडली। (२) राजा लोग। उ०—राजसमाज कुसाज कोटि कटु कलपत कलुष कुचाल नई है।—तुलसी।

राजसर्प-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का बड़ा साँप।

पर्य्या०—भुजंगभोजी।

राजसर्षप-संज्ञा पुं० [सं०] राई।

राजसायुज्य-संज्ञा पुं० [सं०] राजत्व।

राजसारस-संज्ञा पुं० [सं०] मयूर। मोर।

राजसिंहासन-संज्ञा पुं० [सं०] राजा के बैठने का सिंहासन। राजगद्दी।

राजसिक-वि० [सं०] रजोगुण से उत्पन्न। राजस।

राजसिरी *-संज्ञा स्त्री० [सं० राजश्री] राजश्री। राजलक्ष्मी। उ०—(क) केशव ये मिथिलाधिप हैं जग में जिन कीरति बेलि बई है। दान कृपान विधानन सों सिगरी बसुधा जिन हाथ लई है। अंग छ सातक आठक सों भव तीनहुँ लोक में सिद्ध भई है। वेद त्रयी अरु राजसिरी परिपूरणता शुभ योग भई है।—केशव। (ख) लाल मणीन रची मुखवारी। राजसिरी जावक अनुहारी। फैलि रही किरणें अति तासू। केसरि फूलि रही सविलासू।—गुमान।

राजसी-वि० [हिं० राजा] राजा के योग्य, बहुमूल्य या भड़कीला। राजाओं की सी शानवाला।—जैसे,—उनका ठाठ बाट सदा राजसी रहता है।

वि० स्त्री० [सं०] जिसमें रजोगुण की प्रधानता हो। रजोगुणमयी। जैसे, राजसी प्रकृति।

संज्ञा स्त्री० दुर्गा ।

राजसूय-संज्ञा पुं० [सं०] एक यज्ञ का नाम । इस यज्ञ के करने का अधिकार केवल ऐसे राजा को होता है, जिसने वाजपेय यज्ञ न किया हो । यह यज्ञ करने से राजा सम्राट् पद का अधिकारी होता है । यह यज्ञ बहुत दिनों तक होता है और इसे अनेक यज्ञों और कृत्यों की समष्टि कहना ठीक है । शतपथ ब्राह्मण के अनुसार इष्टि, पशु, सोम और दार्वी होम इसके प्रधान अंग हैं।इसका प्रारंभ पवित्र नामक सोमयाग से होता है और सौत्रामणी से इस की समाप्ति होती है । इसके बीच में दस संसृप,अभिषेचनीय,सरस्वती, दिग्विजय, बृहस्पतिसवन, ब्रह्मविधान, द्यूत क्रीड़ा आदि अनेक कृत्य होते हैं । इसमें ऋत्विज् लोग एक ऊँचे मंच पर व्याघ्रचर्म बिछाकर और उस पर सिंहासन रखकर राजा को अभिषेक कराके कर बैठाते हैं और चारों ओर से उसे घेरकर प्रशस्ति सुनाते हैं । फिर राजा उन्हें दक्षिणा देकर दिग्विजय के लिये प्रस्थान करता है; और उसके लौटने पर फिर उसे मंच पर बैठाकर प्रशस्ति गान होता है । तदनंतर सभा में द्यूत क्रीड़ा होती है; और अंत को सौत्रामणी याग के बाद कृत्य समाप्त होता है । प्राचीन काल में केवल बड़े बड़े राजा यह यज्ञ करते थे ।

राजसूयिक-वि० [सं०] राजसूय यज्ञ संबंधी ।

राजसूयी-संज्ञा पुं० [सं० राजसूयिन्] राजसूय यज्ञ करनेवाला पुरोहित ।

राजसूयेष्टि-संज्ञा स्त्री० [सं०] राजसूय यज्ञ ।

राजस्कंध-संज्ञा पुं० [सं०] घोड़ा ।

राजस्तंब-संज्ञा पुं० [सं०] [वि० राजस्तंबायन, राजस्तंबि] एक ऋषि का नाम ।

राजस्थलक-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन स्थान का नाम ।

राजस्थली-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्राचीन जनपद का नाम ।

राजस्थान-संज्ञा पुं० [सं०] राजपूताना । वि० दे० "राजपूताना" ।

राजस्व-संज्ञा पुं० [सं०] भूमि आदि का वह कर जो राजा को दिया जाय । राजधन ।

राजस्वर्ण-संज्ञा पुं० [सं०] राजधस्तूरक । राजधतूरा ।

राजस्वामी-संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु ।

राजहंस-संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० राजहंसी] (१) एक प्रकार का हंस जिसे सोना पक्षी भी कहते हैं । यह प्रायः झुंड बाँधकर उड़ता है और झीलों के किनारे रहता है । इसके अनेक भेद हैं । इसके पैर और चोंच लाल रंग की होती हैं । यह अगहन पूस में उत्तरीय भारत में उत्तर के ठंढे प्रदेशों से आता है । (२) एक संकर राग का नाम जो मालव, श्रीराग और मनोहर राग के मेल से बनता है ।

राजहर्म्य-संज्ञा पुं० [सं०] राजप्रासाद ।

राजहार-संज्ञा पुं० [सं०] वह पुरुष जो यज्ञों में सोम रस लाता है ।

राजहासक-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की मछली जिसे कतला कहते हैं ।

राजा-संज्ञा पुं० [सं० राजन्] [स्त्री० राज्ञी, रानी] (१) किसी देश, जाति या जत्थे का प्रधान शासक जो उस देश, जाति या जत्थे को नियम से चलाता, उनमें शांति रखता तथा उसकी और उसके स्वत्वों की, दूसरों के आक्रमण से, रक्षा करता है ।

विशेष—महाभारत से पता चलता है कि पहले मनुष्यों में न तो कोई शासक था और न दंडकर्त्ता । सब लोग धर्मपूर्वक मिल जुलकर रहते थे और आपस में एक दूसरे की रक्षा करते थे। इस प्रकार उन्हें न तो किसी शासन की आवश्यकता होती थी और न शासक की। पर यह सुव्यवस्था बहुत दिनों तक न रह सकी । लोगों के चित्त में विकार उत्पन्न हो गया, जिससे वे कर्त्तव्य पालन में शिथिल हो गये । उनमें सहानुभूति न रही और लोभ, मोह आदि कुवासनाओं ने उन्हें घेर लिया । सब लोग विषय-वासना में ग्रस्त हो गए और वैदिक कर्म-कांड का लोप हो गया । इससे स्वर्ग में देवता घबराए और दौड़े हुए ब्रह्मा जी के पास पहुँचे । ब्रह्मा जी ने उन्हें आश्वासन दिया और मनुष्यों के शासन की व्यवस्था के लिये एक लाख अध्यायों का एक बृहद् ग्रंथ बनाया। देवता लोग उस ग्रंथ को लेकर विष्णु के पास पहुँचे और उनसे प्रार्थना की कि आप किसी ऐसे पुरुष को आज्ञा दीजिए, जो मनुष्यों को इस शास्त्रानुसार चलावे । विष्णु भगवान् ने उस शास्त्र के अनुसार शासन करने के लिये राजा की सृष्टि की। किसी किसी पुराण के अनुसार वैवस्वत मनु और किसी के अनुसार कर्दम जी के पुत्र अंग मनुष्यों के पहले राजा हुए। पूर्व काल में मनुष्यों की इतनी अधिकता न थी और न उनकी इतनी घनी बस्तियाँ थीं। एक कुल में उत्पन्न लोगों की संख्या बढ़ते बढ़ते बहुत से जत्थे बन गए थे, जो अपने कुल के सब से श्रेष्ठ या वृद्ध के शासन में रहते थे । वह शासक प्रजापति कहलाता था और शेष लोग प्रजा अर्थात् पुत्र । वेदों में भरत, जमदग्नि, कुशिक आदि जातियों के नाम आए हैं, जिनमें पृथक् पृथक् प्रजापति थे । इनमें से अनेक जातियाँ पंजाब आदि प्रान्तों में बस गईं और कृषि-कर्म करने लगीं । पहले तो उनमें पृथक् पृथक् प्रजापति थे; पर धीरे धीरे जन-संख्या बढ़ती गई और अनेक देश उनसे भर गए। ऐसे आर्य्यों को शालीन कहा है। फिर उनमें प्रजापतियों से काम न चला और भिन्न भिन्न देशों में शांति स्थापित करने और दूसरे देशों के आक्रमण से अपनी रक्षा

करने के लिये प्रजापति से अधिक शक्तिमान् एक शासक की नियुक्ति की आवश्यकता पड़ी। पहले पहल यह प्रथा भरत-जाति में चली थी; इसी लिये राजसूय यज्ञ में "भोः भारताः अयं वः सर्वेषां राजा" कहकर राजा को राजसिंहासन पर बैठाया जाता था। पहले यह राजा प्रजाओं के द्वारा प्रतिष्ठित होता था, और प्रजा का अहित करने पर लोग उसे पदच्युत भी कर देते थे। वेणु आदि राजाओं का पदच्युत होना इसका उदाहरण है। जब उन शालीनों में वर्णव्यवस्था स्थापित हो गई, तब राजा का पद पैतृक हो गया और उसकी शक्ति सर्वोपरि मानी गई। मनु ने राजा को अग्नि, वायु, सूर्य्य, चंद्र, यम, कुबेर, वरुण और महेंद्र या इंद्र की मात्रा या अंश से उत्पन्न लिखा है और उसे चारों वर्णों का शासक कहा है। ज्यों ज्यों प्रजाओं की शक्ति घीनी पड़ने लगी, त्यों त्यों राजा का अधिकार सर्वोपरि होता गया और अंत में वह देश या राज्य का एकाधिपति स्वामी हो गया। दूसरे वर्ग के आर्य्यों में, जो इधर उधर जत्थे या गण बाँधकर चलते फिरते रहते थे और जिन्हें व्रात्य या यायावर कहते थे, प्रजापति की प्रथा बनी रही और वही प्रजापति गणनाथ बन गया। ऐसे आर्य्यों में न तो वर्ण की ही व्यवस्था थी और न उनमें राजा का एकाधिपत्य ही हुआ। उनमें प्रजापति राजा तो कहलाने लगा, पर वह सारा काम गण की सम्मति से करता था। ऐसे व्रात्य आर्य्य कोशल, मिथिला और बिहार आदि प्रांतों से आकर बसे थे और उपनिषद् या ब्रह्मविद्या के अभ्यासी थे। मिथिला के राजा जनक इन्हीं यायावर आर्य्यों में थे और वहाँ के क्षत्रिय भी ब्रह्मज्ञान के उपदेष्टा थे। इन से लिच्छवि लोगों में गण की प्रथा महात्मा बुद्धदेव के काल तक प्रचलित थी, इसका पता त्रिपिटक से चलता है। बादशाह। अधिराज। प्रभु।

पर्य्या०—नृपति। पार्थिव। भूप। महीक्षित्। भूभृत्। पार्थ। भाभि। नाराज। महींद्र। नरेंद्र। दंडधर। स्कंध। भूभुज्। प्रभु। अर्थपति।

विशेष—बहुत से शब्दों के साथ समस्त होकर यह शब्द आकार की बड़ाई या श्रेष्ठता सूचित करता है। जैसे,—राजदंत, राजमाष, राजशुक, राजशालि इत्यादि।

(२) अधिपति। स्वामी। मालिक। (३) एक उपाधि जिसे अँग्रेज़ी सरकार बड़े रईसों, ज़मींदारों या अपने कृपापात्रों को प्रदान करती है। जैसे,—राजा राममोहन राय। राजा शिवप्रसाद। (४) धनवान् या समृद्धिशाली पुरुष। (५) प्रेमपात्र। प्रिय व्यक्ति। (बाज़ारू)

राजाग्नि—संज्ञा स्त्री० [सं०] राजा का कोप।

राजाज्ञा—संज्ञा स्त्री० [सं०] राजा की आज्ञा।

राजातन—संज्ञा पुं० [सं०] चिरौंजी का पेड़। पयार।

राजात्यवर्त्तक—संज्ञा पुं० [सं०] लाजवर्द पत्थर। राजावर्त्त।

राजादन—संज्ञा पुं० [सं०] (१) क्षीरिका। खिरनी। (२) पयार। चिरौंजी। (३) टेसू।

राजादनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] क्षीरिणी। खिरनी।

राजाद्रि—संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक पर्वत का नाम। (२) एक प्रकार का अदरक। बड़ा अदरक। बवोंदा।

राजाधिकारी—संज्ञा पुं० [सं०] वह जो न्यायालय में बैठकर न्याय करता हो। विचारपति।

राजाधिदेव—संज्ञा पुं० [सं०] शूर जाति का एक क्षत्रिय वीर।

राजाधिदेवी—संज्ञा स्त्री० [सं०] शूरसेन की एक कन्या का नाम।

राजाधिराज—संज्ञा पुं० [सं०] राजाओं का राजा। शाहंशाह। बड़ा बादशाह।

राजाधिष्ठान—संज्ञा पुं० [सं०] (१) राजधानी। (२) वह नगर जहाँ राजा का प्रासाद हो।

राजाध्व—संज्ञा पुं० [सं० राजाध्वन्] राजपथ। राजमार्ग। चौड़ी सड़क।

राजानक—संज्ञा पुं० [सं०] छोटा राजा। सामंत राजा।

राजान्न—संज्ञा पुं० [सं०] (१) राजा का अन्न। (२) एक प्रकार का शालि धान जो अंध्र देश में उत्पन्न होता है।

पर्य्या०—राजार्ह। नृपान्न। दीर्घशूकक। राजधान्य। राजेष्ट। दीर्घशूकक।

राजाभियोग—संज्ञा पुं० [सं०] राजा का अपनी प्रजा पर दबाव डालकर उसकी इच्छा न रहने पर भी उसे कोई काम करने के लिये बाध्य करना। राजा का प्रजा से ज़बरदस्ती कोई काम कराना।

राजाम्र—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का आम जो सामान्य आमों से बड़ा होता है और जिसमें गूदा अधिक और गुठली छोटी होती है। इसके पेड़ों से क़लम उतारी जाती है, जो छोटी होने पर भी अच्छे और बड़े फल देती है। इसके फल पकने पर मीठे होते हैं और सामान्य आमों की अपेक्षा उनमें रेशा कम होता है। बंबई, लँगड़ा, मालदह, सफेदा आदि इसी जाति के आम हैं। वैद्यक में इसे पित्तवर्धक और पकने पर बल-वीर्य्यप्रद माना है।

पर्य्या०—राजफल। स्वराम्र। कोकिलोत्सव। कामेष्ट। नृपवल्लभ।

राजाम्ल—संज्ञा पुं० [सं०] अम्लवेतस। अमलबेद।

राजार्क—संज्ञा पुं० [सं०] श्वेत मंदार। सफेद फूल का आक।

राजार्ह—संज्ञा पुं० [सं०] (१) अगर। अगर। (२) कपूर। (३) जंबू वृक्ष। जामुन का पेड़।

वि० राजा के योग्य।

राजार्हण-संज्ञा पुं० [सं०] (१) संभ्रमसूचक उपहार । भारी उपहार । (२) राजा का दान ।
राजालाबु-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का लौआ या कद्दू जो आकार में बड़ा और खाने में मीठा होता है ।
राजालुक-संज्ञा पुं० [सं०] मूली ।
राजावर्त्त-संज्ञा पुं० [सं०] लाजवर्द नामक रत्न । यह उपरत्न माना गया है । वैद्यक में इसे मधुर, स्निग्ध और पित्तनाशक कहा है ।
राजासंदी-संज्ञा स्त्री० [सं०] काठ की चौकी या पीढ़ा जिस पर यज्ञों में सोम रखा जाता था ।
राजासन-संज्ञा पुं० [सं०] राजाओं के बैठने का आसन । सिंहासन । तख्त ।
राजाहि-संज्ञा पुं० [सं०] दो मुँहा साँप ।
राजि-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) पंक्ति । अवली । कतार । (२) रेखा । लकीर । (३) राई ।
संज्ञा पुं० ऐल के पौत्र और आयु के एक पुत्र का नाम ।
राजिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) केदार । क्यारी । (२) राई । (३) राजि । पंक्ति । (४) रेखा । लकीर । (५) लाल सरसों । (६) महुआ । (७) कृष्णोदुंबर । कठगूलर । कठूमर । (८) एक परिमाण । (९) एक प्रकार का क्षुद्र रोग जिसमें सरसों के बराबर छोटी छोटी फुंसियाँ निकलती हैं । यह रोग अधिक धूप लगने और गर्मी के कारण हो जाता है ।
राजिकाचित्र-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का साँप जिसके ऊपर सरसों की तरह छोटी छोटी बुँदकियाँ होती हैं ।
राजित-वि० [सं०] (१) जो शोभा दे रहा हो । फबता हुआ । शोभित । (२) विराजा हुआ । मौजूद ।
राजिफला-संज्ञा स्त्री० [सं०] चीना ककड़ी ।
राजिमान्-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का साँप ।
राजिल-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का साँप जिसके ऊपर सीधी रेखाएँ होती हैं ।
राजिलफला-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का खरबूज़ा या ककड़ी ।
राजिव-संज्ञा पुं० [सं० राजीव] कमल । उ०—राजिवनयन धरे धनु सायक । भगत-विपति-भंजन सुखदायक ।—तुलसी ।
राजी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) पंक्ति । श्रेणी । कतार । (२) राई । (३) लाल सरसों ।
राज़ी-वि० [अ०] (१) कोई कही हुई बात मानने को तैयार । अनुकूल । सम्मत । उ०—अब इतराजी मत करै, मुख नित राजी राख । जब रस ज्यों चाहै लियो सुरँग हिये अभिलाख ।—रसनिधि ।
क्रि० प्र०—करना ।—रखना ।—होना ।
(२) नीरोग । चंगा । (३) खुश । प्रसन्न । उ०—ताजी गतिन ये तब तें सीखे लैन । गाहक मन राजी करैं बाजी तेरे नैन ।—रसनिधि ।
क्रि० प्र०—रखना ।
(४) सुखी ।
यौ०—राज़ी खुशी = सही सलामती । कुशल आनन्द ।
‡ संज्ञा स्त्री० रज़ामंदी । अनुकूलता । उ०—हम सब प्रजा चलहिं नृप राजी । यथा सूत प्रेरित रथ बाजी ।—गोपाल ।
राज़ीनामा-संज्ञा पुं० [फ़ा०] (१) वह लेख जिसके द्वारा अभियोगी और अभियुक्त, या वादी और प्रतिवादी परस्पर एकमत या अनुकूल होकर अभियोग या वाद को न्यायालय से उठा लें अथवा एक मत हो जायँ और तदनुसार ही न्यायालय को व्यवस्था देने के लिये उससे प्रार्थना करें । (२) स्वीकार पत्र ।
राजीफल-संज्ञा पुं० [सं०] परवल । पटोल ।
राजीव-संज्ञा पुं० [सं०] (१) रैया मछली । (२) एक प्रकार का मृग जिसकी पीठ पर धारियाँ होती हैं । (३) हाथी । (४) सारस पक्षी की एक जाति । (५) नीलपद्म । नील कमल । (६) कमल । जैसे,—राजीव लोचन ।
वि० जिस पर धारियाँ हों । धारीदार ।
राजीवगण-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का मात्रिक छंद जिसके प्रत्येक चरण में अठारह मात्राएँ होती हैं और नौ नौ मात्राओं पर विराम पड़ता है । इसमें तुकांत में गुरु लघु का कोई विशेष नियम नहीं है । इसे माली भी कहते हैं ।
राजीविनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का कमल । कमलिनी ।
राजुक—संज्ञा पुं० [सं०] मौर्य्य काल का एक राजकर्मचारी, जो एक प्रांत का प्रबंध करता था ।
राजुद्दल-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का वृक्ष ।
राजेंद्र-संज्ञा पुं० [सं०] (१) राजाओं का राजा । बादशाह । (२) राजगिरि नामक पर्वत । राजाद्रि ।
राजेय-संज्ञा पुं० [सं०] पटोल । परवल ।
राजेश्वर-संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० राजेश्वरी] राजाओं का राजा । राजेंद्र । महाराज ।
राजेष्ट-संज्ञा पुं० [सं०] (१) राजान्न नामक धान । (२) राजभोग्य । (३) लाल प्याज ।
राजेष्टा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) केला । (२) पिंड खजूर ।
राजोपकरण-संज्ञा पुं० [सं०] राजाओं के लक्षण या उनके साथ रहनेवाला सामान । राजचिह्न । जैसे,—झंडा, निशान, नौबत आदि ।
राजोपजीवी-संज्ञा पुं० [सं० राजोपजीविन्] (१) राजकर्मचारी । राज्य का नौकर । (२) वह पुरुष जिसकी जीविका राजा की सेवा करने से चलती हो ।

राज्योपसेवी-संज्ञा पुं० [सं०] राजा का सेवक।

राज्ञी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) रानी। राजमहिषी। (२) मत्स्य पुराण के अनुसार सूर्य्य की पत्नी का नाम। संज्ञा। (३) काँसा। (४) नील का वृक्ष। नीली।

राज्य-संज्ञा पुं० [सं०] (१) राजा का काम। शासन।

क्रि० प्र०—करना।—देना।—पाना।—होना।

विशेष—शास्त्रों में राजा, अमात्य, दुर्ग, राष्ट्र, कोष, दंड या बल और सुहृत् ये सातो राज्य की प्रकृतियाँ मानी गई हैं।

(२) वह देश जिसमें एक राजा का अधिकार और शासन हो। बादशाहत। जैसे,—नैपाल का राज्य, काबुल का राज्य।

विशेष—कहीं कहीं एक लाख गाँवों के समूह को भी राज्य कहा है।

पर्य्या०—मंडल। जनपद। देश। विषय। राष्ट्र।

राज्यता-संज्ञा स्त्री० [सं०] राजता।

राज्यच्युत-वि० [सं०] जो राजसिंहासन से उतार या हटा दिया गया हो। राज्यभ्रष्ट।

राज्यच्युति-संज्ञा स्त्री० [सं०] राजा का राजसिंहासन से उतार दिया जाना।

राज्यतंत्र-संज्ञा पुं० [सं०] राज्य की शासन प्रणाली।

राज्यद्रव्य-संज्ञा पुं० [सं०] वह उपकरण जिसकी आवश्यकता राज्याभिषेक में पड़ती है। राजतिलक की सामग्री।

राज्यधर-संज्ञा पुं० [सं०] राज्यपालन। शासन।

राज्यधुरा-संज्ञा स्त्री० [सं०] राज्यशासन।

राज्यप्रद-वि० [सं०] राज्य देनेवाला। जिससे राज्य मिलता हो।

राज्यभंग-संज्ञा पुं० [सं०] राज्य का नाश। राज्य का ध्वंस।

राज्यलक्ष्मी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) राजश्री। (२) विजय-गौरव। विजय-कीर्त्ति।

राज्यलोभ-संज्ञा पुं० [सं०] बहुत बड़ा लोभ। उच्च आशा। उच्चाकांक्षा।

राज्यव्यवस्था-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह नियम या व्यवस्था जिसके अनुसार प्रजा के शासन का विधान किया जाता हो। राज्यनियम। नीति। कानून।

राज्यस्थायी-संज्ञा पुं० [सं० राज्यस्थायिन्] राजा। शासक।

राज्यांग-संज्ञा पुं० [सं०] राज्य के साधक अंग जिन्हें प्रकृति भी कहते हैं। शास्त्रों में प्रधान प्रकृतियाँ सात मानी गई हैं। यथा—राजा, अमात्य, राष्ट्र, दुर्ग, कोष, बल और सुहृत्।

राज्याभिषिक्त-वि० [सं०] जिसका राज्याभिषेक हुआ हो।

राज्याभिषेक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) राजसिंहासन पर बैठने के समय या राजसूय यज्ञ में राजा का अभिषेक, जो वेद के मंत्रों द्वारा पवित्र तीर्थों के जल और ओषधियों से कराया जाता है। (२) किसी नए राजा का राजसिंहासन पर बैठना या बैठाया जाना। राजगद्दी पर बैठने की रीति। राज्यारोहण।

राज्योपकरण-संज्ञा पुं० [सं०] राजचिह्न।

राट्-संज्ञा पुं० [सं०] (१) राजा। बादशाह। (२) श्रेष्ठ व्यक्ति। सरदार। (३) किसी बात में सब से बड़ा पुरुष। जैसे,—धूर्तराट्। उ०—सोहै भटराट विराट प्रभु परम बिमुख रन मुख करत।—गोपाल।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग प्रायः यौगिक शब्दों के अंत में होता है।

राटुल, रातुल-संज्ञा पुं० [अ० रतल = एक तौल] वह बड़ा तराजू जो लट्ठा गाड़कर लटकाया जाता है और जिसमें लोहा, लकड़ी इत्यादि मनों की तौल से तौली जाती है।

राठ@-संज्ञा पुं० [सं० राष्ट्र] (१) राज्य। (२) राजा।

राठवर-संज्ञा पुं० दे० "राठौर"।

राठौर-संज्ञा पुं० [सं० राष्ट्रकूट] दक्षिण भारत का एक प्रसिद्ध राजवंश।

राड़-वि० [?] (१) नीच। निकम्मा। उ०—(क) लरि गयंद लै चलत भजि स्वान सुखानो हाड़। गज गुन मोल अहार बल महिमा जान कि राड़।—तुलसी। (ख) कागा करँक ढँढोरिया मूठिक रहिया हाड़। जिस पिंजर बिरहा बसै माँस कहाँ रे राड़।—कबीर। (ग) बिष्टा का चौका दिया हाँड़ी सीझै हाड़। छूति बचावै चाम की तिनहू का गुरु राड़।—कबीर। (घ) रावन राड़ के हाड़ गढ़ैंगे।—तुलसी। (२) कायर। भगोड़ा। उ०—राँड़उ राउत होत फिरि कै जूझै।—तुलसी।

यौ०—राड़ रोर।

राड़ा-संज्ञा पुं० [देश०] सरसों। सर्षप।

राढ़-वि० दे० "राड़"।

‡ संज्ञा स्त्री० [सं० राटि = लड़ाई।] रार। झगड़ा। उ०—उन्हीं के किये सब धंधा गंदा हुआ। वह देतीं तो यह राढ़ क्यों बढ़ती।—दुर्गाप्रसाद मिश्र।

राढ़ा-संज्ञा पुं० [सं० राढ़ि] बंग देश के उत्तर भाग का पुराना नाम।

संज्ञा स्त्री० एक प्रकार की कपास।

संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) कान्ति। दीप्ति। (२) शोभा। छवि।

राढ़ि-संज्ञा पुं० [सं०] बंग देश के उत्तरी भाग का नाम। उ०—खेलत जीत्यो जिन राढ़ि देश।—कर्पूरमंजरी।

राढ़ी-संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की मोटी घास।

राणा-संज्ञा पुं० [सं० राट्] [स्त्री० राणी] राजा।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग राजपूताने की उदयपुर आदि कुछ विशेष रियासतों के राजाओं के लिये होता है। नैपाल के सरदार भी राणा कहलाते हैं।

रातंग-संज्ञा पुं० [डिं०] गीध। गिद्ध।

रात-संज्ञा स्त्री० [सं० रात्रि] समय का वह भाग जिसमें सूर्य का प्रकाश हम तक नहीं पहुँचता। संध्या से प्रातःकाल तक का समय। दिन का उलटा।
पर्य्या०—रजनी। निशा। शर्वरी। निशि। विभावरी।
मुहा०—रात दिन = सर्वदा। सदा। हमेशः।
यौ०—रात राजा = उल्लू।

रातड़ी, रातरी ‡-संज्ञा स्त्री० [सं० रात्रि] रात। उ०—राम सनेही कारने रोय रोय रातड़ियाँ।—कबीर।

रातना*-क्रि० अ० [सं० रक्त प्रा० रत्त + ना (हिं० प्रत्य०)] (१) लाल रंग से रँग जाना। लाल हो जाना। (२) रँग जाना। रंगीन होना। उ०—रँग राते बहु चीर अमोला।—जायसी। (३) अनुरक्त होना। आशिक होना। उ०—(क) जाहि जो भजै सो तांहि रातै। कोउ कछु कहै सब निरस बातें।—सूर। (ख) रँग राती राते हिये प्रीतम लिखी बनाय। पाती काती बिरह की छाती रही लगाय।—बिहारी। (ग) जिनकर मन इन सन नहिं राता। तिन जग बंचित किये बिधाता।—तुलसी।

राता*-वि० [सं० रक्त, प्रा० रत्त] [स्त्री० राती] (१) लाल। सुर्ख। उ०—(क) बन बाटनि पिक बटपरा तकि बिरहिनि मत मैन। कुहौ कुहौ कहि कहि उठै करि करि राते नैन।—बिहारी। (ख) भृकुटी कुटिल नैन रिस राते।—तुलसी। (२) रँगा हुआ।

राति-संज्ञा स्त्री० दे० "रात"।

रातिचर*-संज्ञा पुं० [हिं० राति + सं० चर] निशचर। राक्षस।

रातिब-संज्ञा पुं० [अ०] (१) पशुओं का दैनिक भोजन। (२) हाथियों आदि का खाना।
क्रि० प्र०—खाना।—देना।—पाना।—मिलना।

रातुल-वि० [सं० रक्तालु, प्रा० रत्तालु] सुर्ख रंग का। लाल। उ०—उर मोतिन की माला री पहिरे रातुल चीर, वारे कन्हैया।—सूर।

रातैल-संज्ञा पुं० [हिं० राता + ऐल (प्रत्य०)] लाल रंग का एक छोटा कीड़ा जो जुआर को हानि पहुँचाता है।

रात्रि-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) उतना समय जितने समय तक सूर्य का प्रकाश न देख पड़े। संध्या से लेकर प्रातःकाल तक का समय। सूर्यास्त से सूर्योदय तक का समय। रात। निशा।
यौ०—रात्रिंदिवा = रातदिन। सदा।
(२) हलदी। (३) पुराणानुसार क्रौंच द्वीप की एक नदी का नाम।

रात्रिक-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का विच्छू।

रात्रिकार-संज्ञा पुं० [सं०] (१) चंद्रमा। (२) कपूर।

रात्रिचर, रात्रिचारी-संज्ञा पुं० [सं०] राक्षस। निशचर।
वि० रात के समय विचरनेवाला।

रात्रिज-संज्ञा पुं० [सं०] नक्षत्र, तारे आदि।

रात्रिजागर-संज्ञा पुं० [सं०] कुत्ता।

रात्रितिथि-संज्ञा स्त्री० [सं०] शुक्ल पक्ष की रात।

रात्रिनाशन-संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य्य।

रात्रिपुष्प-संज्ञा पुं० [सं०] कमल।

रात्रिबल-संज्ञा पुं० [सं०] राक्षस।

रात्रिभट-संज्ञा पुं० [सं०] राक्षस।

रात्रिमणि-संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा।

रात्रिराग-संज्ञा पुं० [सं०] अंधकार। अँधेरा।

रात्रिवास-संज्ञा पुं० [सं० रात्रिवासस्] (१) अंधकार। अँधेरा। (२) रात के समय पहनने का वस्त्र।

रात्रिविग-संज्ञा पुं० [सं०] प्रभात। तड़का।

रात्रिवेद-संज्ञा पुं० [सं०] कुक्कुट। मुरगा।

रात्रिसाम-संज्ञा पुं० [सं० रात्रिसामन्] एक प्रकार का साम।

रात्रिसूक्त-संज्ञा पुं० [सं०] ऋग्वेद के एक सूक्त का नाम।

रात्रिहास-संज्ञा पुं० [सं०] कुमुद। कूईं।

रात्रिहिंसक-संज्ञा पुं० [सं०] राजाओं के अंतःपुर का पहरेदार।

रात्री-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) रात। (२) हलदी।

रात्र्यंध-संज्ञा पुं० [सं०] (१) जिसे रात को न दिखाई देता हो। जिसे रतौंधी का रोग हो। (२) वे पक्षी और पशु जिन्हें रात को न दिखाई पड़ता हो। जैसे,—कौआ, बंदर।

राथकार्य्य-संज्ञा पुं० [सं०] वह जो रथकार ऋषि के गोत्र में उत्पन्न हो।

राद्ध-वि० [सं०] (१) पका हुआ। राँधा हुआ। (२) सिद्ध। ठीक किया हुआ। (३) पूरा किया हुआ।

राद्धांत-संज्ञा पुं० [सं०] सिद्धांत। उसूल।

राद्धि-संज्ञा स्त्री० [सं०] सिद्ध होने का भाव। सफलता। सिद्धि।

राध-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वैशाख मास। (२) धन। संपत्ति।
संज्ञा स्त्री० [देश०] पीब। मवाद।

राधन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) साधने की क्रिया। साधना। (२) मिलना। प्राप्ति। (३) संतोष। तुष्टि। (४) वह वस्तु जिससे कोई कार्य्य किया जाय। साधना।

राधना-*†क्रि० स० [सं० आराधना] (१) आराधना करना। पूजा करना। उ०—साधो कहा करि साधन ते जौ पै राधो नहीं पति पारवती को।—तुलसी। (२) सिद्ध करना। पूरा करना। (३) काम निकालना। साधना।

राधा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) वैशाख की पूर्णिमा। (२) प्रीति। अनुराग। प्रेम। (३) धृतराष्ट्र के सारथी अधिरथ की पत्नी का नाम जिसने कर्ण को पुत्रवत् पाला था। इसी कारण

से कर्ण का एक नाम 'राधेय' भी था। (४) वृषभानु गोप की कन्या और श्रीकृष्ण की प्रेयसी।

विशेष—श्रीमद्भागवत में राधा का कोई उल्लेख नहीं है। पर ब्रह्मवैवर्त्त, देवीभागवत आदि में राधा का वर्णन मिलता है। इन पुराणों में राधा के जन्म और जीवन के संबंध में भिन्न भिन्न कथाएँ दी गई हैं। कहीं लिखा है कि ये श्रीकृष्ण के बाएँ अंग से उत्पन्न हुई थीं और कहीं गोलोकधाम के रासमंडल में इनका जन्म लिखा है। यह भी कहा जाता है कि ये जन्म लेते ही पूर्ण वयस्का हो गई थीं। श्रीकृष्ण के साथ इनका विवाह नहीं हुआ था, यद्यपि गर्गसंहिता आदि कुछ इधर के ग्रंथों में विवाह की कथा भी रख दी गई है। सब जगह श्रीकृष्ण के साथ इनकी मूर्त्ति और नाम रहता है। इनके नाम के साथ ईश या स्वामी वाचक शब्द लगाने से श्रीकृष्ण का बोध होता है।

(५) एक वृत्त का नाम जिसके प्रत्येक चरण में रगण, तगण, मगण, यगण और एक गुरु सब मिलकर १३ अक्षर होते हैं। जैसे,—कृष्ण राधा कृष्ण राधा कृष्ण राधा गा। (६) विशाखा नक्षत्र। (७) बिजली। (८) आँवला। (९) विष्णु-क्रांता लता।

राधाकांत-संज्ञा पुं० [सं०] श्रीकृष्ण।

राधाकुंड-संज्ञा पुं० [सं०] गोवर्द्धन के निकट का एक प्रख्यात सरोवर।

राधातंत्र-संज्ञा पुं० [सं०] एक तंत्र का नाम जिसमें मंत्रों आदि के अतिरिक्त राधा की उत्पत्ति का भी रहस्यपूर्ण वर्णन है।

राधावल्लभ-संज्ञा पुं० [सं०] श्रीकृष्ण।

राधावल्लभी-संज्ञा पुं० [सं०] वैष्णवों का एक प्रसिद्ध संप्रदाय। वि० दे० "वैष्णव"।

राधाष्टमी-संज्ञा स्त्री० [सं०] भादों सुदी अष्टमी।

राधिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) वृषभानु गोप की कन्या, राधा। वि० दे० "राधा" (४)। (२) एक मात्रिक छंद जिसके प्रत्येक चरण में १३ और ९ के विश्राम से २२ मात्राएँ होती हैं। लावनी इसी छंद में होती है। जैसे,—सब सुधि बुधि गइ क्यों भूल, गई मति मारी। माया को चेरो भयो, भूलि असुरारी। कटि जैहैं भव के फंद, पाप नसि जाई। रे सदा भजौ श्रीकृष्ण, राधिका माई।

राधेय-संज्ञा पुं० [सं०] (धृतराष्ट्र के सारथी अधिरथ की पत्नी राधा द्वारा पालित) कर्ण।

राध्य-वि० [सं०] आराधना करने के योग्य। आराध्य।

रान-संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] जंघा। जाँघ। उ०—लाइ लेर चीसक की रानें। चकाचकी हाथिन सों ठानें।—लाल।

रानतुरई-संज्ञा स्त्री० [हिं० रानी + तुरई] कडुई तरोई।

राना-संज्ञा पुं० दे० "राणा"।

रानापति-संज्ञा पुं० [हिं० राणा + पति] सूर्य्य (चित्तौर के राणा सूर्य्यवंश के माने जाते हैं।)

रानी-संज्ञा स्त्री० [सं० राज्ञी, प्रा० राणी] (१) राजा की स्त्री। राजा की पत्नी। (२) स्वामिनी। मालकिन। जैसे,—मधुमक्खियों की रानी। (३) स्त्रियों के लिये आदर-सूचक शब्द।

रानीकाजर-संज्ञा पुं० [हिं० रानी + काजल] एक प्रकार का धान। उ०—रामभोग औ रानीकाजर। भाँति भाँति के सीझे चावर।—जायसी।

रापती-संज्ञा स्त्री० [देश०] एक छोटी नदी जो नैपाल के पहाड़ से निकलकर गोरखपुर के निकट सर्यू में गिरती है।

रापरंगाल-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का नृत्य। उ०—यश्चैक पादेन सहैवानु पतेत्पदि। द्वितीयोऽपि तदा रापरंगालं तद्विदो विदुः।—केशव।

रापी-संज्ञा स्त्री० [हिं० राँपी] चमारों का राँपी नाम का औज़ार जिससे वे चमड़ा साफ करते और काटते हैं। उ०—असकहि रापी ताहि की तामें दियो छुवाइ। सुरी कंचन कै भई तेहि गुण दियो दिखाइ।—रघुराज।

राब-संज्ञा स्त्री० [सं० द्रावक = मोम] आँच पर औटाकर खूब गाढ़ा किया हुआ गन्ने का रस जो गुड़ से पतला और शीरे से गाढ़ा होता है। इसी को साफ करके खाँड़ बनाई जाती है।
संज्ञा स्त्री० [देश०] नाव में वह बड़ी लकड़ी जो उसकी पेंदी में लंबाई के बल एक सिरे से दूसरे सिरे तक होती है। पहले यही लकड़ी लगाकर तब उस पर से महारा चढ़ाते हैं।

राबड़ी-संज्ञा स्त्री० [हिं० राब + ड़ी (प्रत्य०)] औटा कर गाढ़ा किया हुआ दूध। बसौंधी। रबड़ी।

राबना-क्रि० स० [सं०] खेत में खाद देने की एक विशेष प्रणाली। इसमें पहले खेत में खाद, सूखी पत्तियाँ और टहनियाँ आदि रखकर जला देते हैं; फिर उनकी राख समेत जमीन को एक बार जोत देते हैं। यही राख खेत में खाद का काम देती है।

राम-संज्ञा पुं० [सं०] (१) परशुराम जो विष्णु के अंशावतार माने जाते हैं। वि० दे० "परशुराम"। (२) कृष्ण के बड़े भाई बलराम या बलदेव। वि० दे० "बलराम"। (३) सूर्य्यवंशी महाराज दशरथ के पुत्र जो दस अवतारों में से एक माने जाते हैं। वि० दे० "रामचंद्र"।

मुहा०—राम शरण होना = (१) साधु होना। विरक्त होना। (२) मर जाना। परलोकवासी होना। उ०—राम राम कहि राम सिय राम शरण भए राउ।—तुलसी। राम जाने = (१) मुझे नहीं मालूम। ईश्वर जाने। (२) यदि मैं झूठ कहता होऊँ तो उसके साक्षी भगवान् हैं (एक शपथ)। राम राम करना =

=(१) अभिवादन करना। प्रणाम करना। (२) भगवान् का नाम जपना। राम नाम सत्य है=एक वाक्य जिसका प्रयोग कुछ हिंदू जातियों में मृतक को श्मशान ले जाने के समय होता है और जिससे संसार की असारता और मिथ्यात्व तथा ईश्वर की सत्यता का बोध होता है। राम राम करके=बड़ी कठिनता से। किसी प्रकार। उ०—राम राम करके अभी बासमती से पीछा छूटा है; फिर यह विपत कहाँ से आई।—अयोध्या। राम राम होना=भेंट होना। मुलाकात होना। उ०—कैसे ह्वैहै दई मेरे आनंद की जई राम, भई राम राम आज नई राम राम सों।—रामकवि। राम राम हो जाना=मर जाना। गत हो जाना। उ०—तौ लौं रहे प्राण दशरथ जू के नीके, पाछे राम नाम लेत राजा राम राम ह्वै गयो।—रामकवि। (४) तीन की संख्या। (५) ईश्वर। भगवान्। (६) एक मात्रिक छंद जिसमें ९ और ८ के विराम से प्रत्येक चरण में १७ मात्राएँ होती हैं और अंत में यगण होता है। जैसे,—सुनिये हमारी, विनय मुरारी। दीजै हमारी, विपत्ति टारी। (७) वरुण। (८) घोड़ा। (९) अशोक वृक्ष। (१०) रति। (११) बथुआ (साग)। (१२) तेजपत्ता।

रामअंजीर-संज्ञा स्त्री० [हिं० राम+फा० अंजीर] पाकर वृक्ष। पकरिया।

रामकजरा-संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का धान जो अगहन में तैयार होता है।

रामकपास-संज्ञा स्त्री० [हिं० राम+कपास] देवकपास। नरमा। वि० दे० "नरमा"।

रामकली-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक रागिनी जो भैरव राग की स्त्री मानी जाती है। इसके गाने का समय प्रातःकाल १ दंड से ५ दंड तक है। यह संपूर्ण जाति की रागिनी है और इसमें ऋषभ तथा निषाद कोमल लगते हैं।

रामकाँटा-संज्ञा पुं० [हिं० राम+काँटा] एक प्रकार का बबूल।

रामकेला-संज्ञा पुं० [हिं० राम+केला] (१) एक प्रकार का बढ़िया केला जिसके पेड़ का तना, फूल आदि गहरे लाल रंग के होते हैं। इसका फल कुछ पतला और प्रायः एक बालिश्त लंबा होता है। यह बंबई प्रांत की ओर अधिकता से होता है और बंगाल के केलों से आकार प्रकार में बिलकुल भिन्न होता है। (२) एक प्रकार का बढ़िया आम जो बंगाल और मिथिला में होता है।

रामक्षेत्र-संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार दक्षिण देश का एक प्राचीन तीर्थ।

रामखंड-संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार एक प्राचीन तीर्थ।

रामगंगा-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक छोटी नदी जो पीलीभीत के निकट से निकलकर कन्नौज के आगे गंगा में मिलती है।

रामगिरि-संज्ञा पुं० [सं०] नागपुर ज़िले की एक पहाड़ी जिसका वर्णन कालिदास जी ने अपने मेघदूत में किया है। आजकल इसे रामटेक कहते हैं।

विशेष—कुछ लोग चित्रकूट को रामगिरि मानते हैं। पर मेघदूत में जो स्थिति दी हुई है, उससे वह नागपुर ही के पास होना चाहिए।

रामगिरी-संज्ञा स्त्री० दे० "रामकली"।

रामगीती-संज्ञा पुं० [सं०] एक मात्रिक छंद जिसके प्रत्येक चरण में ३६ मात्राएँ होती हैं। जैसे,—यहि भाँति बरणे सुभट गण कहँ जीति लव रणधीर।

रामचंद्र-संज्ञा पुं० [सं०] अयोध्या के राजा इक्ष्वाकुवंशी महाराज दशरथ के बड़े पुत्र जो ईश्वर या विष्णु भगवान् के मुख्य अवतारों में माने जाते हैं और जिनकी कथा रामायण में वर्णित है।

विशेष—इनका जन्म कौशल्या के गर्भ से हुआ था और इन्होंने वशिष्ठ मुनि से शिक्षा पाई थी। जब ये बालक थे, तभी विश्वामित्र मुनि इन्हें अपने यज्ञ की रक्षा के लिये अपने साथ वन में ले गए थे, जहाँ इन्होंने अनेक राक्षसों का वध किया था। जब यज्ञ समाप्त हो गया, तब ये अपने छोटे भाई लक्ष्मण और गुरु विश्वामित्र के साथ राजा जनक के यहाँ सीता के स्वयंवर में गए थे। वहाँ इन्होंने शिवजी का धनुष तोड़कर सीता का पाणिग्रहण किया था। जब ये लौटकर अयोध्या आए, तब राजा दशरथ इनका अभिषेक करके इन्हें राजगद्दी देना चाहते थे; पर रानी कैकेयी के कहने से उन्होंने इन्हें चौदह वर्षों तक वन में रहने के लिये भेज दिया। जब ये वन जाने लगे, तब इनकी स्त्री सीता और इनके छोटे भाई लक्ष्मण भी इनके साथ हो लिये। इनके वन जाने पर पीछे इनके दुःखी पिता दशरथ की मृत्यु हो गई। कैकेयी अपने पुत्र भरत को सिंहासन पर बैठाना चाहती थी; पर भरत ने स्पष्ट कह दिया कि यह राज्य मेरे बड़े भाई रामचंद्र का है; और मैं इसे ग्रहण नहीं कर सकता। पीछे भरत रामचंद्र को समझा बुझाकर लाने के लिये वन में भी गए; पर रामचंद्र ने कह दिया कि मैं पिता की आज्ञा से चौदह वर्षों के लिये वन में आया हूँ। और जब तक यह अवधि पूरी न हो जायगी, तब तक मैं लौटकर अयोध्या नहीं चल सकता। इस पर भरत ने इनके खड़ाऊँ ले जाकर और सिंहासन पर स्थापित करके इनकी ओर से इनकी अनुपस्थिति में शासन करने लगे। वनवास काल में रामचंद्र अनेक वनों और पर्वतों पर और ऋषियों आदि के आश्रमों पर घूमा करते थे। दंडकारण्य में एक बार लंका का राजा रावण आकर छल से सीता को हर ले गया। इस पर इन्होंने बहुत से वानरों आदि को साथ लेकर लंका

पर चढ़ाई की और युद्ध में रावण तथा उसके साथी राक्षसों को मारकर और उसका राज्य उसके छोटे भाई विभीषण को देकर अपनी स्त्री सीता को अपने साथ ले आए। वनवास की अवधि पूरी हो गई थी; इसलिये ये सीधे अयोध्या चले आए और वहाँ जाकर सुख से राज्य करने लगे। इनका शासन प्रजा के लिये इतना अधिक सुखद था, कि अब तक लोग इनके राज्य को आदर्श समझते हैं; और अच्छे राज्य की उपमा "राम राज्य" से देते हैं।

रामचक्का†-संज्ञा पुं० [सं० राम + चक्र] (१) बरा नामक पकवान जो उड़द की पीठी का बनता है। (२) बड़ी और मोटी रोटी जो किसान लोग खाते हैं। लिट्टी। बाटी।

रामजननी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) रामचंद्र की माता, कौशल्या। (२) बलराम की माता। (३) रेणुका।

रामजना-संज्ञा पुं० [हिं० राम + जना = उत्पन्न] (१) एक संकर जाति जिसकी कन्याएँ वेश्या वृत्ति करती हैं। कई बातों में यह जाति गंधर्व जाति से मिलती जुलती होती है, पर साधारणतः उससे नीची समझी जाती है। इस जाति के लोग प्रायः राजपूताने, संयुक्त-प्रांत तथा बिहार में पाए जाते हैं। (२) वह जिसके माता-पिता का पता न हो। वर्ण-संकर।

रामजनी-संज्ञा स्त्री० [हिं० राम + जना = उत्पन्न] (१) रामजना जाति की स्त्री। (२) वेश्या। रंडी। (३) वह स्त्री जिसके पिता का पता न हो। उ०—रामजनी सन्यासिनी पटु पटवा की बाल। केशव नायक नायिका सखी करहिं सब काल।—केशव।

रामजमानी-संज्ञा पुं० [सं० राम + जवानी (अजवायन)] एक प्रकार का बहुत बारीक चावल।

रामजयंती-संज्ञा स्त्री० [सं०] देवी की एक मूर्ति का नाम।

रामजामुन-संज्ञा पुं० [हिं० राम + जामुन] मझोले आकार का एक प्रकार का जामुन का वृक्ष, जो प्रायः सारे उत्तरी और पूर्वी भारत तथा बरमा और लंका में होता है। इसके फल बहुत बड़े बड़े और स्वादिष्ट होते हैं। इसकी लकड़ी यद्यपि साधारण जामुन की लकड़ी के समान उत्तम नहीं होती, तो भी इमारत तथा खेती के औज़ार बनाने के काम में आती है। यह छोटी नदियों के किनारे अधिकतर होता है।

रामजौ-संज्ञा पुं० [सं० राम + हिं० जौ] एक प्रकार की जई जिसके दाने साधारण जौ से कुछ बड़े होते हैं।

रामझोल-संज्ञा स्त्री० [सं० राम + हिं० झूलना] पाज़ेब। पायल।

रामटेक-संज्ञा पुं० [हिं० राम + टेक = टेकरी (पहाड़ी)] नागपुर ज़िले की एक पहाड़ी जहाँ रामचंद्र का एक मंदिर है। यह एक तीर्थ-स्थान माना जाता है। वि० दे० "रामगिरि"।

रामटोड़ी-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक संकर रागिनी जिसमें गांधार कोमल और शेष सब स्वर शुद्ध लगते हैं।

रामठ-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बृहत्संहिता के अनुसार एक देश जो पश्चिम में है। (२) इस देश का निवासी। (३) हींग। (४) अखरोट का वृक्ष। (५) मैनफल। (६) चिचड़ा।

रामठी-संज्ञा स्त्री० [सं०] हींग।

रामणीयक-संज्ञा पुं० [सं०] रमणीयत्व। मनोहरता।

वि० रमणीय। मनोहर।

रामतरुणी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सेवती। (२) सीता जी।

रामतरोई-संज्ञा स्त्री० [हिं० राम + तरोई या तुरई] भिंडी नामक फली जिसकी तरकारी बनती है।

रामता-संज्ञा स्त्री० [सं०] राम का गुण। राम-पन। उ०—भाजु राम रामता निहारीं। नेकु शंक मन महँ नहिं धारीं।—रघुराज।

रामतापनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक उपनिषद् का नाम जो प्राचीन उपनिषदों में नहीं है, बल्कि एक सांप्रदायिक पुस्तक है।

रामतारक-संज्ञा पुं० [सं०] राम जी का मंत्र जो रामोपासक लोग जपते हैं। कहते हैं कि काशी में जो लोग मरते हैं, उन्हें शिव जी इसी मंत्र का उपदेश करते हैं, जिसके प्रभाव से उनकी मुक्ति हो जाती है। यह मंत्र इस प्रकार है।—रां रामायनमः।

रामति*†-संज्ञा स्त्री० [हिं० रमन = घूमना फिरना] भिक्षा के लिये इधर-उधर घूमना। भिक्षुकों की फेरी।

रामतिल-संज्ञा पुं० [सं० राम + तिल] एक प्रकार का तिल।

रामतीर्थ-संज्ञा पुं० [सं०] रामगिरि नामक स्थान। रामटेक।

रामतुलसी-संज्ञा स्त्री० दे० "रामा तुलसी"।

रामतेजपात-संज्ञा पुं० [हिं० राम + तेजपात] तेजपात की जाति का एक प्रकार का वृक्ष जो पूर्वी बंगाल, बरमा और अंडमन टापू में अधिकता से होता है। इसके पत्तों का व्यवहार तेजपत्ते के समान होता है और लकड़ी संदूक तथा तख्ते आदि बनाने के काम में आती है।

रामत्व-संज्ञा पुं० [सं०] राम का भाव। रामता। राम-पन।

रामदल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) रामचंद्र जी की बंदरोंवाली सेना, जिसके नीचे लिखे १८ मुख्य यूथप थे—(१) लक्ष्मण, (२) सुग्रीव, (३) नील, (४) नल, (५) सुखेन, (६) जामवंत, (७) हनुमान, (८) अंगद, (९) केशरी, (१०) गवय, (११) गवाक्ष, (१२) गज, (१३) विभीषण, (१४) द्विविद, (१५) तार, (१६) कुमुद, (१७) शरभ और (१८) दधिमुख। (२) कोई बड़ी और प्रबल सेना जिसका मुकाबला करना कठिन हो।

रामदाना-संज्ञा पुं० [सं० राम + हिं० दाना] (१) मरसे या चौलाई की जाति का एक पौधा जिसमें सफ़ेद रंग के एक प्रकार के बहुत छोटे छोटे दाने लगते हैं। ये दाने कई प्रकार से खाए जाते हैं और इनकी गिनती "फलाहार"

में होती है। पहाड़ों में यह बैसाख जेठ में बोया और कुआँर में तैयार हो जाता है; पर उत्तरी, पश्चिमी तथा मध्य भारत में यह जाड़े के दिनों में भी होता है। कहीं कहीं बागों में भी शोभा के लिये इसके पौधे लगाए जाते हैं। (२) एक प्रकार का धान।

रामदास-संज्ञा पुं० [सं०] (१) हनुमान। (२) एक प्रकार का धान। (३) दक्षिण भारत के एक प्रसिद्ध महात्मा जो छत्रपति महाराज शिवा जी के गुरु थे और जिन्हें लोग स्वामी रामदास या समर्थ रामदास भी कहते हैं।

विशेष—स्वामी रामदास का जन्म शक सं० १५३० की रामनवमी के दिन गोदावरी के तट पर जंबू नामक स्थान में एक ब्राह्मण के घर हुआ था। पहले इनका नाम नारायण था। ये बाल्यावस्था से ही बहुत रामभक्त थे। कहते हैं कि जब ये आठ ही वर्ष के थे, तब एक बार रामचंद्र जी ने इन्हें दर्शन देकर कहा था कि तुम म्लेच्छों का नाश करके धर्म को दुर्दशा से बचाओ और उसे पुनः स्थापित करो। तभी से इनके मन में वैराग्य उत्पन्न हुआ, जिसे दूर करने के लिये माता पिता ने इनका विवाह करना चाहा। पर ये विवाह मंडप से उठकर भाग गए और नासिक के पास की एक गुफा में जाकर तपस्या करने लगे। फिर बहुत दिनों तक इधर उधर तीर्थयात्रा करते रहे। उस समय तक दक्षिण भारत में इनकी साधुता की बहुत प्रसिद्धि हो चुकी थी जिसको सुनकर शिवाजी इनके दर्शन के लिये आए और तब से इनके परम भक्त हो गए। महाराज शिवाजी प्रायः सब कामों में इनसे परामर्श और आज्ञा ले लिया करते थे। कहते हैं कि इन्होंने अपने जीवन में अनेक विलक्षण चमत्कार दिखाए थे। इनकी मृत्यु शक सं० १६०३ के माघ मास में हुई थी। इनके उपदेशों और भजनों का दक्षिण भारत के अब तक बहुत अधिक प्रचार है।

रामदूत-संज्ञा पुं० [सं०] हनुमान जी।

रामदूती-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) एक प्रकार की तुलसी।

पर्य्या०—पर्वपुष्पी। विशल्या। सूक्ष्मपर्णी। भवान्याह्वा। (२) नागदंती। नागदौन। (३) नागपुष्पी।

रामदेव-संज्ञा पुं० [सं०] (१) रामचंद्र। (२) एक संप्रदाय जो राजपूताने में प्रचलित है और जिसके अधिकांश अनुयायी चमार आदि अस्पृश्य जातियों के लोग हैं।

रामधनुष-संज्ञा पुं० [सं०] इंद्रधनुष।

रामधाम-संज्ञा पुं० [सं०] साकेत लोक जहाँ भगवान् नित्य राम रूप में विराजमान माने जाते हैं।

रामनतुआ-संज्ञा पुं० [हिं० राम+नतुआ] (१) घीया। (२) कद्दू। लौकी। लौआ।

रामनवमी-संज्ञा स्त्री० [सं०] चैत्र सुदी नवमी जिस दिन राम जी का जन्म हुआ था। इस दिन हिंदू राम-जन्म का उत्सव मनाते और व्रत रखते हैं।

रामना*‡-क्रि० अ० [सं० रमण] घूमना। फिरना। विचरना। उ०—(क) एक समय कहुँ रामत माहीं। पर्यौ अकेल रहेउ कोउ नाहीं।—रघुराज। (ख) एक समय रामन हितै कीन्ह्यौ कहूँ पयान।—रघुराज।

रामनामी-संज्ञा पुं० [हिं० राम+नाम+ई (प्रत्य०)] (१) वह चादर, दुपट्टा या धोती आदि जिस पर "राम राम" छपा रहता है और जिसका व्यवहार राम के भक्त लोग इसलिये करते हैं जिसमें राम का नाम हर दम आँखों के सामने रहे।

विशेष—इसी प्रकार कुछ कपड़ों पर कृष्ण या शिवा का नाम भी छपा रहता है।

(२) गले में पहनने का एक प्रकार का हार जो प्रायः सोने का होता है। इसमें छोटे छोटे कई टिकड़े या पान आदि होते हैं, जो आपस में एक दूसरे के साथ जंजीर के कई छोटे छोटे टुकड़ों या लड़ों से जड़े होते हैं। इसके बीच में प्रायः एक पान होता है, जिसमें "राम" शब्द, किसी देवता की मूर्त्ति अथवा चरण-चिह्न अंकित होता है और जो पहनने पर छाती पर लटकता रहता है। इसी के कारण इसे रामनामी कहते हैं।

रामनौमी-संज्ञा स्त्री० दे० "रामनवमी"।

रामपात-संज्ञा पुं० [हिं० राम+पत्र] नील की जाति की एक प्रकार की झाड़ी जो आसाम देश में होती है और जिसकी पत्तियों तथा छाल से वहाँ के लोग रंग बनाते हैं।

रामपुर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) स्वर्ग। वैकुंठ। (२) अयोध्या।

रामफल-संज्ञा पुं० [हिं० राम+फल] शरीफा। सीताफल।

रामबँटाई-संज्ञा स्त्री० [हिं० राम+बाँटना] वह विभाग जिसमें आधा एक व्यक्ति और आधा दूसरे व्यक्ति को मिले। आधे आध की बँटाई।

विशेष—यह न्याययुक्त होती है, इसी से इसे राम बँटाई कहते हैं।

रामबबूल-संज्ञा पुं० [हिं० राम+बबूल] एक प्रकार का बबूल या कीकर जो गुजरात, झंग और झेलम में अधिकता से होता है। इसकी डालियाँ सरो की डालियों की तरह तने से सटी रहती हैं। इसी लकड़ी कम मजबूत होती है। इसे काबुली कीकर भी कहते।

रामबाँस-संज्ञा पुं० [हिं० राम+बाँस] (१) एक प्रकार का मोटा बाँस जो प्राय पालकी के डंडे बनाने के काम में आता है। (२) केतकी या केवड़े की जाति का एक पौधा जिसके पत्ते नीले और खाँड़े की तरह दो ढाई हाथ लंबे होते हैं।

भिन्न भिन्न प्रतियों में इतना अधिक अंतर होना स्वाभाविक भी है। बहुत कुछ इसी रामायण के आधार पर और स्थान स्थान पर अन्यान्य रामायणों की सहायता लेकर गोस्वामी तुलसीदास जी ने "रामचरितमानस" नामक जो प्रसिद्ध भाषा काव्य लिखा है, उसका बोध भी इस "रामायण" शब्द से होता है। वाल्मीकि कृत रामायण के अतिरिक्त अध्यात्मरामायण, अग्निवेश रामायण आदि जो कई रामायण हैं, वे सांप्रदायिक हैं।

रामायणी-वि० [सं० रामायणीय] रामायण संबंधी। रामायण का। संज्ञा पुं० [सं० रामायण+ई (प्रत्य०)] (१) वह जो रामायण का विशेष रूप से जानकार और पंडित हो। (२) वह जो रामायण की कथा कहता हो।

रामायन-संज्ञा पुं० दे० "रामायण"।

रामायुध-संज्ञा पुं० [सं०] धनुष।

रामावत-संज्ञा पुं० [सं०] वैष्णव आचार्य्य रामानंद का चलाया हुआ एक प्रसिद्ध संप्रदाय जिसके अनुसार मनुष्य ईश्वर की भक्ति करके सांसारिक संकटों तथा आवागमन से बच सकता है। यह भक्ति राम की उपासना से प्राप्त हो सकती है और इस उपासना के अधिकारी मनुष्य मात्र हैं। जाति पाँति का भेद इसमें किसी प्रकार का अवरोध उपस्थित नहीं कर सकता।

रामिल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) रमण। (२) कामदेव। (३) स्वामी। पति। (४) वह जिससे प्रेम किया जाय। प्रेमपात्र।

रामी-संज्ञा स्त्री० [सं० रामा] काँस नामक घास।

रामेश्वर-संज्ञा पुं० [सं०] दक्षिण भारत में समुद्र के तट पर स्थापित एक शिवलिंग जिसके विषय में यह प्रसिद्ध है कि इसे रामचंद्र जी ने लंका का पुल बाँधने के समय स्थापित किया था। यह भारत के चार मुख्य और सब से बड़े तीर्थों में से एक तीर्थ है।

रामेषु-संज्ञा पुं० [सं०] (१) रामशर। (२) एक प्रकार की ईख।

रामोद-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन ऋषि का नाम।

रामोपनिषद्-संज्ञा स्त्री० [सं०] अथर्ववेद के अंतर्गत एक उपनिषद् का नाम।

राम्या-संज्ञा स्त्री० [सं०] रात्रि। रात।

राय-संज्ञा पुं० [सं० राजा, प्रा० राया] (१) राजा। (२) छोटा राजा या सरदार। सामंत। उ०—सब राजा रायन कै बारी। बरन बरन पहिरे सब सारी।—जायसी। (३) सम्मान की एक उपाधि।

यौ०—राय बहादुर। राय साहब।

विशेष—किसी किसी शब्द के पहले लगकर यह श्रेष्ठता या बड़ाई भी सूचित करता है, जैसे,—राय करौंदा, राय मुनिया। (४) भाट। बंदीजन। (५) गंधर्वों की उपाधि। (६) दे० "रायबेल"। उ०—पीपल रूना फूल बिन फल बिन रूनी राय। एकाएकी मानुषा टप्पा दीया जाय।—कबीर।

संज्ञा स्त्री० [फा०] सम्मति। अनुमति। मत। सलाह।

क्रि० प्र०—देना।—लेना।—ठहराना।

मुहा०—राय कायम करना = किसी विषय में मत निश्चित करना। सम्मति स्थिर करना। निर्णय करना।

रायकरौंदा-संज्ञा पुं० [हिं० राय = बड़ा + करौंदा] बड़ा करौंदा जिसके फल छोटे बेर के बराबर, सफ़ेद और गुलाबी रंग मिले बहुत सुंदर होते हैं।

रायकवाल-संज्ञा पुं० [देश०] वैश्यों की एक जाति।

रायज-वि० [अ०] जिसका रवाज हो। जो व्यवहार में आ रहा हो। प्रचलित। चलनसार।

रायता-संज्ञा पुं० [सं० राजिकाक्त] दही या मठे में उबाला हुआ साग, कुम्हड़ा, लौआ या बुँदिया आदि जिसमें नमक, मिर्च, जीरा आदि मसाले पड़े रहते हैं। उ०—पानौरा रायता पकौरी। डुभकौरी मुँगछी सुठि सौंरी।—सूर।

राय बहादुर-संज्ञा पुं० [हिं० राय + फा० बहादुर] एक प्रकार की उपाधि जो भारत की अँगरेजी सरकार की ओर से रईसों, जमींदारों तथा सरकारी कर्मचारियों आदि को दी जाती है।

रायबेल-संज्ञा स्त्री० [हिं० राय + बेल] एक प्रकार की लता जिसमें बहुत ही सुंदर और सुगंधित दोहरे फूल लगते हैं।

रायभोग-संज्ञा पुं० [सं० राजभोग] (१) एक प्रकार का धान। राजभोग। उ०—रायभोग औ काजर रानी। झिनवा रुद औ दाउदखानी।—जायसी।

रायमुनी-संज्ञा स्त्री० [हिं० राय + मुनिया] लाल नामक पक्षी की मादा। सदिया। रायमुनिया।

रायरायान-संज्ञा पुं० [हिं० राय + राय + फा० आन (प्रत्य०)] (१) राजाओं के राजा। राजाधिराज। (२) मुगलों के समय की एक उपाधि जो प्रायः रईसों, जमींदारों और राजकर्मचारियों आदि को दी जाती थी।

रायरासि-संज्ञा स्त्री० [सं० राजराशि] राजा का कोष। शाही खज़ाना। उ०—भई मुदित सब ग्राम बधूटी। रंकन्ह रायरासि जनु लूटी।—तुलसी।

रायल-वि० [अं०] (१) राजकीय। शाही। (२) छापने की कलों तथा कागज की एक नाप जो २० इंच चौड़ी और २६ इंच लंबी होती है।

रायसा-संज्ञा पुं० [सं० रहस्य] वह काव्य जिसमें किसी राजा का जीवन चरित्र वर्णित हो। रासो। जैसे,—पृथ्वीराज रायसा।

राय साहब-संज्ञा पुं० [राय + फा० साहब] एक प्रकार की पदवी

जो भारत की अँगरेजी सरकार की ओर से रईसों और राजकर्मचारियों आदि को दी जाती है।

रार-संज्ञा पुं० [सं० राटि, प्रा० राड़ि=लड़ाई] झगड़ा। टंटा। हुज्जत। तकरार। उ०—खंजन जुग मानो करत लराई की सुझावत रार।—सूर।

क्रि० प्र०—करना।—ठानना।—मचाना।

संज्ञा स्त्री० दे० "राल"।

राल-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) एक प्रकार का बहुत बड़ा सदा-बहार पेड़ जो दक्षिण भारत के जंगलों में होता है। इसकी लकड़ी किसी काम की नहीं होती; पर इसका निर्यास बहुत काम का होता है, जो "राल" के नाम से बाजारों में मिलता है। यह निर्यास दो प्रकार का होता है—सफेद और काला। जब वृक्ष प्रायः दो वर्ष का होता है, तब उसके तने में जगह जगह काट देते हैं, जहाँ से चैत से अगहन तक निर्यास निकला करता है। यह निर्यास प्रायः दस वर्ष तक निकलता रहता है। इसका व्यवहार प्रायः वार्निश आदि के काम में होता है; और कुछ औषधों में भी इसका प्रयोग होता है। (२) इस वृक्ष का निर्यास। धूना। धूप।

संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का कंबल।

संज्ञा स्त्री० [सं० लाला] (१) वह पतला लसदार थूक जो प्रायः बच्चों और कभी कभी बुड्ढों के मुँह से आप से आप बहा करता है। दाँतों की पीड़ा आदि में कोई कोई दवा लगाने पर भी यह मुँह से निकलकर गिरने लगती है। लार।

मुहा०—राल गिरना, चूना या टपकना=किसी पदार्थ को देखकर उसे पाने की बहुत इच्छा होना। मुँह में पानी भर आना। जैसे,—जहाँ कोई अच्छी चीज दिखाई दी कि तुम्हारे मुँह से राल टपकी।

(२) चौपायों का एक रोग जिसमें उन्हें खाँसी आती है और उनके मुँह से पतला लसदार पानी गिरता है।

राली-संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का बाजरा जिसके दाने बहुत छोटे होते हैं। यह प्रायः संयुक्त प्रांत और बुंदेलखंड में होता है। यह फागुन चैत में बोया जाता है और बैसाख में तैयार होता है।

राव-संज्ञा पुं० [सं० राजा, प्रा० राय] (१) राजा। (२) सरदार। दरबारी। (३) भाट। बंदीजन। (४) कच्छ और राजपूताने के कुछ राजाओं की एक पदवी। (५) श्रीमंत। अमीर। धनाढ्य।

संज्ञा पुं० [सं०] ध्वनि। शब्द। गुंजार।

संज्ञा पुं० [देश०] छोटे आकार का एक पेड़ जिसकी लकड़ी कुछ ललाई लिए, चिकनी और मजबूत होती है। यह हिमालय की तराई में हजारे और शिमले से भूटान तथा शिकम तक होता है। इसकी लकड़ी की प्रायः छड़ियाँ बनाई जाती हैं।

रावचाव-संज्ञा पुं० [हिं० राव=राजा+चाव] (१) नृत्य गीत आदि का उत्सव। राग रंग। (२) प्यार। लाड़। दुलार।

रावट†-संज्ञा पुं० [हिं० रावल] महल। राजभवन।

रावटी-संज्ञा स्त्री० [हिं० रावट] (१) कपड़े का बना हुआ एक प्रकार का छोटा घर या डेरा जिसके बीच में एक बँडेर होती है और जिसके दोनों ओर दो ढालुएँ परदे होते हैं। यह बड़े खेमों के साथ प्रायः नौकरों आदि के ठहरने के लिये रखी जाती है। छौलदारी। (२) किसी चीज का बना हुआ छोटा घर। उ०—जिहिं निदाघ दुपहर रहै भई माह की राति। तिहिं उसीर की रावटी खरी आवटी जाति।—बिहारी। (३) बारहदरी।

रावण-वि० [सं०] जो दूसरों को रुलाता हो। रुलानेवाला।

संज्ञा पुं० लंका का प्रसिद्ध राजा जो राक्षसों का नायक था और जिसे युद्ध में भगवान् रामचंद्र ने मारा था।

विशेष—एक बार लंका में राक्षसों के साथ विष्णु का घोर युद्ध हुआ था जिसमें राक्षस लोग परास्त होकर पाताल चले गए थे। उन्हीं राक्षसों में सुमाली नामक एक राक्षस था, जिसकी कैकसी नाम की कन्या बहुत सुंदरी थी। सुमाली ने सोचा कि इसी कन्या के गर्भ से पुत्र उत्पन्न करा के विष्णु से बदला लेना चाहिए; इसलिये अपनी कन्या को पुलस्त्य के लड़के विश्रवा के पास संतान उत्पन्न कराने को भेजा। विश्रवा के वीर्य्य से कैकसी के गर्भ से पहला पुत्र यही रावण हुआ जिसके दस सिर थे। इसका रूप बहुत ही विकराल और स्वभाव बहुत ही क्रूर था। इसके उपरांत कैकसी के गर्भ से कुंभकर्ण और विभीषण नाम के दो और पुत्र तथा शूर्पणखा नाम की एक कन्या हुई। एक दिन अपने वैमात्रेय कुबेर को देखकर रावण ने प्रतिज्ञा की कि मैं भी इसी के समान संपन्न और तेजवान् बनूँगा। तदनुसार वह अपने भाइयों को साथ लेकर घोर तपस्या करने लगा। दस हजार वर्ष तक तपस्या करने के उपरांत भी मनोरथ सिद्ध होता न देखकर इसने अपने दसों सिर काटकर अग्नि में डाल दिए। तब ब्रह्मा ने प्रसन्न होकर इसे वर दिया कि दैत्य, दानव, यक्ष आदि में से कोई तुम्हें मार न सकेगा। तब सुमाली ने रावण से कहा कि अब तुम लंका पर अधिकार करो। उस समय लंका पर कुबेर का अधिकार था। रावण का बहुत ज़ोर देखकर विश्रवा की आज्ञा से कुबेर तो लंका छोड़कर कैलास चले गए और रावण ने लंका पर अधिकार कर लिया और मय दानव की कन्या मंदोदरी से विवाह कर लिया। इसी मंदोदरी के गर्भ से मेघनाद का जन्म हुआ। ब्रह्मा के वर के प्रभाव से रावण ने तीनों लोक

जीत लिए और इंद्र, कुबेर, यम आदि को परास्त कर दिया। अब इसका अत्याचार बहुत बढ़ गया। यह सब को बहुत सताने लगा और लोगों की कन्याओं तथा पत्नियों को हरण करने लगा। एक बार सहस्त्रार्जुन ने इसे युद्ध में परास्त करके क़ैद कर लिया था; पर पुलस्त्य के कहने पर छोड़ दिया। बाली से भी यह एक बार बुरी तरह परास्त हुआ था। जिस समय भगवान् रामचंद्र अपने साथ लक्ष्मण और सीता को लेकर दंडकारण्य में वनवास का समय बिता रहे थे, उस समय यह सीता को एकांत में पाकर छल से उठा लाया था। तब रामचंद्र ने समुद्र पर सेतु बाँधकर लंका पर चढ़ाई की और इसके साथ घोर युद्ध करके अंत में इसे मार डाला और इसके अत्याचार से पृथ्वी की रक्षा की।

पर्य्या०—पौलस्त्य। दशकंधर। दशानन। राक्षसेंद्र।

रावणगंगा-संज्ञा स्त्री० [सं०] पुराणानुसार सिंहल द्वीप की एक नदी का नाम।

रावणारि-संज्ञा पुं० [सं०] रावण को मारनेवाले, रामचंद्र।

रावणि-संज्ञा पुं० [सं०] (१) रावण का पुत्र। (२) मेघनाद।

रावत-संज्ञा पुं० [सं० राजपुत्र, प्रा० राय+उत्त] (१) छोटा राजा। (२) शूर। वीर। बहादुर। (३) सेनापति। बड़ा योद्धा। (४) सामंत। सरदार।

रावन-संज्ञा पुं० दे० "रावण"।

रावनगढ़-संज्ञा पुं० [हिं० रावण+गढ़] लंका।

रावनाळ-क्रि० स० [सं० रावण=रुलाना] दूसरे को रोने में प्रवृत्त करना। रुलाना। उ०—इहाँ भँवर मुख बात हिलावसि। उहाँ सुरुप्र कहँ हँसि हँसि रावसि।—जायसी।

राव बहादुर-संज्ञा पुं० [हिं० राव+फा० बहादुर] एक प्रकार की उपाधि जो भारत की अँगरेज़ी सरकार प्रायः दक्षिण भारत के रईसों आदि को देती है।

रावर-संज्ञा पुं० [सं० राजपुर+प्रा० राय+उर] रनिवास। राजमहल। अंतःपुर। उ०—(क) रावर में नृप बोलि लिये गुनि। ठाढ़ किये परदा तट छै मुनि।—केशव। (ख) रावण जैहै गृद बल, रावर लुटै बिशाल। मंदोदरी कहोरियो, अरु रावण को काल।—केशव।

वि० [हिं० राउ+कर (विभक्ति)] [स्त्री० राउरी] आपका। भवदीय। उ०—(क) टूट्यो सो न जुरैगो सरासन महेस जू को रावरी पिनाक में सरीकता कहाँ रही।—तुलसी। (ख) जौ राउर अनुसासन पावौं। कंदुक इव ब्रह्मांड उठावौं।—तुलसी।

रावरखा-संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का बहुत बड़ा और ऊँचा पेड़ जो हिमालय में १२००० फुट की ऊँचाई तक होता है। इसकी छाल बहुत सफ़ेद और चमकीली होती है। इसकी लकड़ियों से पहाड़ी मकानों की छतें और छाल से झोपड़ियाँ छाई जाती हैं। इसकी पत्तियाँ प्रायः चारे के काम में आती हैं। बुरूल।

रावरा-सर्व० दे० "रावर"।

रावल-संज्ञा पुं० [सं० राजपुर, हिं० राउर] अंतःपुर। राजमहल। रनिवास। उ०—भये बिन भोर बधू शोर करि रोइ उठी, भोइ गई रावल में सुनी सासु भाषिये।—प्रियादास।

संज्ञा पुं० [प्रा० राउल] [स्त्री० रावलि, रावली] (१) राजा। उ०—चेतत रावल पावन खेड़ा सहजहि मूळै बाँधै। ध्यान धनुष धारि ज्ञान बान बल योग सार सर साधै।—कबीर। (२) राजपूताने के कुछ राजाओं की उपाधि। (३) प्रधान। सरदार। (४) एक प्रकार का आदरसूचक संबोधन। उ०—(क) रावल जी, डेवढ़ी के भीतर न जाना।—हरिश्चंद्र। (ख) 'रावलि कहा है'? 'किन कहत हौ काते'? 'अरी, रोष तज' 'रोष के कियो मैं का अचाहे की'?—पद्माकर। (५) श्रीबदरीनारायण के प्रधान पंडे की उपाधि। (६) मथुरा के पास के एक गाँव का नाम। कहते हैं कि यहीं राधिका का जन्म हुआ था।

राव साहब-संज्ञा पुं० [हिं० राव+फा० साहब] एक प्रकार की उपाधि जो भारत तथा अँगरेजी सरकार की ओर से दक्षिण भारत के रईसों आदि को दी जाती है।

रावी संज्ञा स्त्री० [सं० ऐरावती] पंजाब की पाँच नदियों में से एक प्रसिद्ध नदी जो हिमालय से निकलकर प्रायः दो सौ कोस बहती हुई मुलतान से बीस कोस ऊपर चनाब में में मिलती है।

राशि-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) एक ही तरह की बहुत सी चीज़ों का समूह। ढेर। पुंज। जैसे,—अन्न की राशि।

क्रि० प्र०—लगना।—लगाना।

(२) किसी का उत्तराधिकार। जा-नशीनी।

मुहा०—राशि बैठना=गोद बैठना। दत्तक पुत्र होना।

(३) क्रांतिवृत्त में पड़नेवाले विशिष्ट तारा समूह जिनकी संख्या बारह है और जिनके नाम इस प्रकार हैं—मेष, वृष, मिथुन, कर्क, सिंह, कन्या, तुला वृश्चिक, धन मकर, कुंभ और मीन।

विशेष—आकाश में पृथ्वी जिस मार्ग से होकर सूर्य्य की परिक्रमा करती है, वह क्रांतिवृत्त कहलाता है। परंतु पृथ्वी पर से देखने पर साधारणतः यही जान पड़ता है कि सूर्य्य ही उस क्रांतिवृत्त पर होकर चलता और पृथ्वी की परिक्रमा करता है। इस क्रांतिवृत्त पर दोनों ओर प्रायः ८० अंश तक अनेक तारा-समूह फैले हुए हैं। इनमें से प्रत्येक तारा-समूह में से होकर गुज़रने में सूर्य्य को प्रायः एक मास लगता है। इसी विचार से समस्त क्रांतिवृत्त बराबर बराबर बारह भागों में बाँट दिया गया है, जिन्हें राशि कहते हैं। प्रत्येक

तारा-समूह की आकृति के अनुसार ही उसका नाम भी रख लिया गया है और उसमें के तारे भी गिन लिए गए हैं। जैसे,—मेप कहलानेवाली राशि का आकार भी मेप या भेड़े के समान है और उसमें ६६ तारे हैं। इसी प्रकार १४१ तारों के एक समूह का आकर वृष या बैल का सा है; और इसी लिये उसे वृष कहते हैं। फलित ज्योतिप में भिन्न भिन्न राशियों के भिन्न भिन्न स्वरूप, वर्ण, स्वभाव, गुण, कार्य्य, अधिपति देवता आदि दिए गए हैं और उनमें से प्रत्येक में जन्म लेने का अलग अलग फल कहा गया है। विद्वानों का अनुमान है कि राशि-विभाग भारतीय आर्य्यों के प्राचीन ज्योतिप में नहीं था, केवल नक्षत्र-विभाग था। राशि-विभाग बाबुलवालों से लिया गया है। वैदिक साहित्य में राशियों के नाम नहीं हैं, केवल नक्षत्रों के नाम हैं। वि० दे० "नक्षत्र"।

मुहा०—राशि आना = अनुकूल होना। मुआफिक होना। राशि मिलना = (१) दो व्यक्तियों का एक ही राशि में जन्म होना। (२) मेल मिलना। पटरी बैठना।

राशिचक्र-संज्ञा पुं० [सं०] मेप, वृष, मिथुन आदि राशियों का चक्र या मंडल। ग्रहों के चलने का मार्ग या वृत्त। भचक्र। वि० दे० "राशि"।

राशिनाम-संज्ञा पुं० [सं० राशिनामन्] फलित ज्योतिप के अनुसार किसी व्यक्ति का वह नाम जो उसके जन्म समय की राशि के अनुसार होता है। यह व्यक्ति के उस नाम से भिन्न होता है, जिससे वह लोक में प्रसिद्ध होता है। (लोग प्रायः अपना राशिनाम नहीं लेते। इस नाम का व्यवहार धर्म्मकार्य्यों और ज्योतिप संबंधी गणनाओं ही में होता है।)

राशिप-संज्ञा पुं० [सं०] किसी राशि का स्वामी या अधिपति देवता।

राशिभाग-संज्ञा पुं० [सं०] किसी राशि का भाग या अंश। भगांश। (ज्योतिप)

राशिभोग-संज्ञा पुं० [सं०] (१) किसी ग्रह का किसी राशि में कुछ समय तक रहना। (२) उतना समय जितना किसी ग्रह को किसी राशि में रहने में लगता है। वि० दे० "राशि"।

राशी-संज्ञा स्त्री० दे० "राशि"।
वि० [अ०] रिशवत खानेवाला। घूसखोर।

राष्ट-संज्ञा पुं० [?] फारसी संगीत में १२ मुकामों में से एक।

राष्ट्र-संज्ञा पुं० [सं०] (१) राज्य। (२) देश। मुल्क। (३) प्रजा। (४) पुराणानुसार पुरूरवा के वंशज काशी के पुत्र का नाम। (५) वह बाधा जो संपूर्ण देश में उपस्थित हो। ईति।

राष्ट्रक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) राज्य। (२) देश।
वि० राष्ट्र संबंधी। राष्ट्र का।

राष्ट्रकर्पण-संज्ञा पुं० [सं०] राजा या शासक का प्रजा पर अत्याचार करना।

राष्ट्रकूट-संज्ञा पुं० [सं०] दक्षिण भारत का एक प्रसिद्ध क्षत्रिय राजवंश जो आजकल राठौर नाम से प्रसिद्ध है। वि० दे० "राठौर"।

राष्ट्रगोप-संज्ञा पुं० [सं०] (१) राजा। (२) राजा का प्रतिनिधि कोई बड़ा शासक।
वि० राज्य की रक्षा करनेवाला।

राष्ट्रतंत्र-संज्ञा पुं० [सं०] राज्य का शासन करने की प्रणाली।

राष्ट्रपति-संज्ञा पुं० [सं०] (१) किसी राष्ट्र का स्वामी। (२) आधुनिक प्रजातंत्र शासनप्रणाली में वह सर्वप्रधान शासक जो बहुमत से, राजा के समान शासन का सब काम करने के लिये, चुना जाता है।

राष्ट्रपाल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) राजा। (२) कंस के आठ भाइयों में से एक भाई का नाम।

राष्ट्रभृत्-संज्ञा पुं० [सं०] (१) राजा। (२) शासक। (३) राजा भरत के एक पुत्र का नाम। (४) प्रजा। रिआया।

राष्ट्रभृत्य-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जो राज्य की रक्षा या शासन करता हो। (२) प्रजा।

राष्ट्रभेद-संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन राजनीति के अनुसार वह उपाय जिसके द्वारा किसी शत्रु राजा के राज्य में उपद्रव या विद्रोह खड़ा किया जाता है।

राष्ट्रवर्धन-संज्ञा पुं० [सं०] राजा दशरथ और रामचंद्र के एक मंत्री का नाम।

राष्ट्रवासी-संज्ञा पुं० [सं० राष्ट्रवासिन्] [स्त्री० राष्ट्रवासिनी] (१) राष्ट्र में रहनेवाला। (२) परदेसी। विदेशी।

राष्ट्रविप्लव-संज्ञा पुं० [सं०] राज्य में होनेवाला विप्लव। विद्रोह। बलवा।

राष्ट्रांतपालक-संज्ञा पुं० [सं०] राज्य की सीमा की रखवाली करनेवाला।

राष्ट्रिक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) राजा। (२) प्रजा।
वि० राष्ट्र संबंधी। राष्ट्र का।

राष्ट्रिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] कंटकारि। भटकटैया।

राष्ट्रिय-संज्ञा पुं० [सं०] (१) राष्ट्र का स्वामी, राजा। (२) प्राचीन संस्कृत नाटकों की भाषा में राजा का साला।

राष्ट्री-संज्ञा पुं० [सं० राष्ट्रिन्] (१) राज्य का अधिकारी, राजा। (२) प्रधान शासक।
संज्ञा स्त्री० [सं०] रानी। राजपत्नी।

राष्ट्रीय-संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन नाटकों की भाषा में, राजा का साला।
वि० राष्ट्र संबंधी। राष्ट्र का। विशेषतः अपने राष्ट्र या देश से

संबंध रखनेवाला। जैसे,— (क) यह ग्रंथ राष्ट्रीय भावों से पूर्ण है। (ख) आपको अपना राष्ट्रीय वेश धारण करना चाहिए।

रास-संज्ञा पुं० [सं०] (१) कोलाहल। शोरगुल। हल्ला। (२) संज्ञा स्त्री० गोपों की प्राचीन काल की एक क्रीड़ा जिसमें वे सब घेरा बाँधकर नाचते थे।

विशेष—कहते हैं कि इस क्रीड़ा का आरंभ भगवान् श्रीकृष्ण ने एक बार कार्त्तिकी पूर्णिमा को आधी रात के समय किया था। तब से गोप लोग यह क्रीड़ा करने लगे थे। पीछे से इस क्रीड़ा के साथ कई प्रकार के पूजन आदि मिल गए और यह मोक्षप्रद मानी जाने लगी। इस अर्थ में यह शब्द *प्रायः स्त्रीलिंग बोला जाता है।*

यौ०—रासमंडल।

(३) एक प्रकार का नाटक जिसमें श्रीकृष्ण की इस क्रीड़ा तथा दूसरी क्रीड़ाओं या लीलाओं का अभिनय होता है।

यौ०—रासधारी।

(४) एक प्रकार का चलता गाना। (५) शृंखला। जंजीर। (६) विलास। (७) लास्य नामक नृत्य। (८) नाचनेवालों का समाज।

संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) घोड़े की लगाम। बागडोर।

मुहा०—रास कड़ी करना = घोड़े की लगाम अपनी ओर खींचे रहना। रास में लाना = अधिकार में लाना। वशीभूत करना।

संज्ञा स्त्री० [सं० राशि] (१) ढेर। समूह। (२) ज्योतिष की राशि। वि० दे० "राशि"। (३) एक छंद का नाम जिसके प्रत्येक चरण में ८+८+६ के विराम से २२ मात्राएँ और अंत में सगण होता है। (४) जोड़। (५) चौपायों का झुंड। (६) एक प्रकार का धान जो अगहन में तैयार होता है। इसका चावल सैकड़ों वर्षों तक रखा जा सकता है। (७) गोद। दत्तक।

मुहा०—रास बैठाना या लेना = गोद बैठाना। दत्तक लेना।

(८) सूद। ब्याज।

रासक-संज्ञा पुं० [सं०] नाटक का एक भेद जो केवल एक अंक का होता है और जिसमें केवल पाँच नट या अभिनय करने-वाले होते हैं। यह हास्य रस का होता है, और इसमें सूत्र-धार नहीं होता। इसमें नायिका चतुर तथा नायक मूर्ख होता है।

रासचक्र-संज्ञा पुं० दे० "राशिचक्र"।

रासताल-संज्ञा पुं० [सं०] १३ मात्राओं का एक ताल जिसमें ८ आघात और ५ खाली होते हैं। इसके मृदंग के बोल

यह हैं—कता धता केटे तागू धा केटे धन् गदि घेने नागे देत तेरे केटे कड़ान्। धा।

रासधारी-संज्ञा पुं० [सं० रासधारिन्] वह व्यक्ति या समाज जो श्रीकृष्ण की रासक्रीड़ा अथवा अन्य लीलाओं का अभिनय करता है। (ये लोग एक प्रकार के व्यवसायी होते हैं जो घूम घूमकर इस प्रकार के अभिनय करते हैं। इनके नाटक में गीत, वाद्य, नृत्य और अभिनय आदि सभी होते हैं।)

रासन-वि० [सं०] स्वादिष्ट। जायकेदार।

संज्ञा पुं० स्वाद लेना। चखना।

रासनशीन-वि० [सं० राशि + फ़ा० नशीन] गोद बैठाया हुआ। दत्तक। मुतबन्ना।

रासना-संज्ञा पुं० [सं०] रास्ना नाम की लता जिसका व्यवहार ओषधि के रूप में होता है। वि० दे० "रास्ना"।

रासनृत्य-संज्ञा पुं० [सं०] गति के अनुसार नृत्य का एक भेद।

रासपूर्णिमा-संज्ञा स्त्री० [सं०] मार्गशीर्ष की पूर्णिमा जिस दिन श्रीकृष्ण ने रास क्रीड़ा आरंभ की थी।

रासभ-संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० रासभी] (१) गर्दभ। गधा। गदहा। खर। उ०—(क) विपति मोरि को प्रभुहि सुनावा। पुरोडास चह रासभ खावा।—तुलसी। (ख) गैयर मेटि चढ़ावत रासभ प्रभुता मेटि करत हिनती।—सूर। (२) अश्वतर। खच्चर। (३) एक दैत्य जिसे ब्रज के ताल वन में बलदेव जी ने मारा था। यह गर्दभ के रूप में ही रहा करता था।

रासभूमि-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्थान जहाँ रासक्रीड़ा होती हो। रास करने का स्थान।

रासमंडल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) श्रीकृष्ण के रास क्रीड़ा करने का स्थान। (२) रास क्रीड़ा करनेवालों का समूह या मंडली। रास करनेवालों का वृत्ताकार समूह। उ०— रासमंडल बने स्याम स्यामा। नारि दुहुँ पास गिरिधर बने दुहुनि बिच सहस शशि बीस द्वादश उपमा।—सूर। (३) रासधारियों का अभिनय। (४) रासधारियों का समाज।

रासमंडली-संज्ञा स्त्री० [सं०] रासधारियों का समाज या टोली।

रासयात्रा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) पुराणानुसार एक प्रकार का उत्सव जो शरद् पूर्णिमा को होता है। (२) शाक्तों का एक उत्सव जो शक्ति के उद्देश्य से चैत्र की पूर्णिमा को होता है।

रासलीला-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) वह क्रीड़ा या नृत्य जो श्रीकृष्ण ने गोपियों को साथ लेकर शरत् पूर्णिमा को आधी रात के समय किया था। (२) रासधारियों का कृष्ण-लीला संबंधी अभिनय।

रासविलास-संज्ञा पुं० [सं०] रासक्रीड़ा।

रासबिहारी-संज्ञा पुं० [सं०] श्रीकृष्णचंद्र।

रासायन-वि० [सं०] रसायन संबंधी। रसायन का।

रासायनिक-वि० [सं०] (१) रसायन शास्त्र संबंधी। (२) रसायन शास्त्र का ज्ञाता।

रासायनिकशाला-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्थान जहाँ रसायन शास्त्र संबंधी परीक्षाएँ या प्रयोग होते हों।

रासि-संज्ञा स्त्री० दे० "राशि"।

रासी-संज्ञा स्त्री० [देश०] (१) तीसरी बार खींची हुई शराब जो सब से निकृष्ट समझी जाती है। (२) सज्जी।
वि० नकली या खराब। जैसे,—रासी तार।
संज्ञा स्त्री० दे० "राशि"।

रासु⊛†-वि० [फा० रास्त] (१) सीधा। सरल (२) ठीक। उ०—भूले तैं कर तार के रागु न,आवै रासु। यहै समुझ कै राख नैं मन करतारैं पासु।—रसनिधि।

रासेरस-संज्ञा पुं० [सं०] (१) गोष्ठी। (२) रास क्रीड़ा। (३) शृंगार। (४) उत्सव। (५) हँसी मज़ाक। ठट्ठा। चुहल।

रासेश्वरी-संज्ञा स्त्री० [सं०] राधा।

रासो-संज्ञा पुं० [सं० रहस्य] किसी राजा का पद्यमय जीवनचरित्र, विशेषतः वह जीवन-चरित्र जिसमें उसके युद्धों और वीरता आदि का वर्णन हो। जैसे,—पृथ्वीराज रासो, खुमान रासो, हम्मीर रासो।

रास्त-वि० [फ़ा०] (१) सीधा। सरल। (२) सही। दुरुस्त। ठीक। (३) उचित। वाजिब। (४) अनुकूल। मुताबिक।

रास्तगो-वि० [फा०] सच बोलनेवाला। सत्यवक्ता।

रास्तबाज़-वि० [फ़ा०] सच्चा। निष्कपट। ईमानदार।

रास्तबाज़ी-संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] सचाई। सत्यता। ईमानदारी।

रास्ता-संज्ञा पुं० [फ़ा०] (१) मार्ग। राह। मग। पथ।
मुहा०—रास्ता काटना = किसी के चलने के समय उसके सामने से होकर निकल जाना। जैसे,—बिल्ली रास्ता काट गई। रास्ता देखना = प्रतीक्षा करना। आसरा देखना। रास्ता पकड़ना = (१) मार्ग का अवलंबन करना। राह से चलना। (२) चल देना। चले जाना। रास्ता बताना = (१) चलता करना। टालना। हटाना। (२) सिखाना। तरकीब बताना। जैसे,—वह तुम्हारे जैसों को रास्ता बतलाता है। रास्ते पर लाना = सुमार्ग पर चलाना। ठीक करना। दुरुस्त करना।
(२) प्रथा। रीति। चाल। जैसे,—अब तो आपने यह रास्ता चला ही दिया है। (३) उपाय। तरकीब। जैसे,—इस विपत्ति से निकलने का भी तो कोई रास्ता निकालो।

रास्ना-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) गंधनाकुली नामक कंद जो आसाम, लंका, जावा आदि में अधिकता से होता है। वैद्यक में यह गुरु, तिक्त, उष्ण और विष, वात, खाँसी, शोफ, कंप, कफ आदि का नाशक और पाचक माना गया है। योइरासन। (वैद्यक में इससे रास्नागुग्गुल, रास्नाद्यमूल, रास्नादिक्वाथ, रास्नादिलौह, रास्नापंचक, रास्नासप्तक आदि अनेक औषध बनते हैं।) (२) एलापर्णी नाम की ओषधि। (३) रुद्र की प्रधान पत्नी का नाम।

रास्निका-संज्ञा स्त्री० [सं० [रास्ना।

रास्प-संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल का एक पात्र जिसमें यज्ञ के समय घी रखकर दान किया जाता था।

रास्य-संज्ञा पुं० [सं०] श्रीकृष्ण।

राह-संज्ञा पुं० दे० "राहु"। उ०—आव चाँद पुनि राह गिरासा। वह बिन राह सदा परकासा।—जायसी।
संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] (१) मार्ग। पथ। रास्ता।
मुहा०—राह देखना या ताकना = प्रतीक्षा करना। आसरा देखना। राह पड़ना = (१) डाका पड़ना। लूट पड़ना। बाट पड़ना। उ०—कहै पदमाकर त्यों रोगन की राह परी दुःखन में गाह अति गाज की।—पद्माकर। (२) रास्ते से आना। रास्ते पर जाना। राह लगना = (१) रास्ते से जाना। (२) अपना काम देखना। अपने काम से काम रखना। और मुहा० के लिये दे० "रास्ता" के मुहा०।
(२) प्रथा। रीति। चाल। (३) नियम। कायदा। (४) कोल्हू की नाली।
संज्ञा स्त्री० दे० "रोहू"। उ०—पाहुन ऊपर हेरै नाहीं। हना राह अर्जुन परछाहीं।—जायसी।

राहखर्च-संज्ञा पुं० [फा० राह + खर्च] कहीं जाने आने के समय रास्ते में होनेवाला खर्च। मार्गव्यय।

राहगीर-संज्ञा पुं० [फा०] मार्ग चलनेवाला। मुसाफिर। पथिक।

राहचलता-संज्ञा पुं० [फा० राह + हिं० चलता] (१) रास्ता चलनेवाला। पथिक। राहगीर। बटोही। (२) कोई साधारण या तीसरा मनुष्य जिसका प्रस्तुत विषय से कोई संबंध न हो। अनजबी। ग़ैर। जैसे,—यों राह चलते को कोई ऐसा काम सुपुर्द करता है।

राहचौरंगी†-संज्ञा पुं० [फ़ा० राह + हिं० चौरंगी] चौमुहानी। चौरस्ता। उ०—सो किमि जानो जाय राह चौरंगी सोहै।—सुधाकर द्विवेदी।

राहज़न-संज्ञा पुं० [फ़ा०] डाकू। लुटेरा।

राहज़नी-संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] डकैती। लूट।

राहड़ी-संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का घटिया कम्मल।

राहत-संज्ञा स्त्री० [अ०] आराम। सुख। चैन।
क्रि० प्र०—देना।—पाना।—मिलना।

राहदारी-संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] (१) राह पर चलने का महसूल। सड़क का कर।
यौ०—परवाना राहदारी = वह आज्ञापत्र जिसके अनुसार किसी मार्ग से होकर जाने या माल ले जाने का अधिकार प्राप्त हो।

(२) चुंगी। महसूल।

राहना†-क्रि० स० [हिं० राह ? (राह बनाना)] (१) चक्की के पाटों को खुरदुरा करके पीसने योग्य बनाना। जाँता कूटना। (२) रेती आदि को खुरदुरा करके रेतने के योग्य बनाना। ‡® क्रि० अ० दे० "रहना"। उ०—हम सों तोसों बैर कहा, अलि, श्याम अजान ज्यों राहत।—सूर।

राहर†-संज्ञा पुं० [हिं० अरहर] अरहर नामक अन्न जिसकी दाल होती है।

राहरीति-संज्ञा स्त्री० [हिं० राह+सं० रीति] (१) राह रस्म। लेन देन। व्यवहार। (२) जान पहचान। परिचय।

राहा-संज्ञा पुं० [हिं० राह] मिट्टी का वह चबूतरा जिस पर चक्की के नीचे का पाट जमाया रहता है।

राहिन-संज्ञा पुं० [अ०] रेहन रखनेवाला। बंधक रखनेवाला।

राही-संज्ञा पुं० [फा०] राहगीर। मुसाफ़िर। पथिक। यात्री।

मुहा०—राही करना = चलता करना। धता बताना। हटाना। राही होना = चल देना। हट जाना।

राहु-संज्ञा पुं० [सं०] (१) पुराणानुसार नौ ग्रहों में से एक जो विप्रचित्ति के वीर्य्य से सिंहिका के गर्भ से उत्पन्न हुआ था। यह बहुत बलवान् था। कहते हैं कि समुद्र मथन के समय देवताओं के साथ बैठकर इसने चोरी से अमृत पी लिया था। सूर्य्य और चंद्र ने इसे यह चोरी करते हुए देख लिया था और विष्णु से इसका समाचार कह दिया था। विष्णु ने सुदर्शन चक्र से इसकी गरदन काट दी। पर यह अमृत पी चुका था, इससे इसका मस्तक अमर हो गया था। उसी मस्तक से यह सूर्य्य और चंद्र को ग्रसने लगा था; और तब से अब तक समय समय पर बराबर ग्रसता आता है जिससे दोनों को ग्रहण लगता है। यही मस्तक राहु और कबंध केतु कहलाता है। उ०—(क) राहु शशि सूर्य के बीच में बैठि कै मोहनी सों अमृत माँगि लीनो।—सूर। (ख) उपरहिं अंत न होइ निबाहू। कालनेमि जिमि रावन राहू।—तुलसी। (ग) हरिहर जस राकेस राहु से। पर अकाज भट सहस बाहु से।—तुलसी।
संज्ञा पुं० [सं० रोहित] रोहू मछली। उ०—(क) राहु बेधि भूपति करौं नहिं समर्थ जग कोय।—सबल। (ख) राहु बेधि अर्जुन होइ जीत दुरपदी ब्याह।—जायसी।

राहुग्रसन-संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य्य या चंद्रमा को राहु का ग्रसना। ग्रहण। उपराग।

राहुग्रास-संज्ञा पुं० [सं०] ग्रहण। उपराग।

राहुच्छत्र-संज्ञा पुं० [सं०] अदरक। आदी।

राहुदर्शन-संज्ञा पुं० [सं०] ग्रहण। उपराग।

राहुभेदी-संज्ञा पुं० [सं० राहुभेदिन्] विष्णु।

राहुमाता-संज्ञा स्त्री० [सं०] राहु की माता, सिंहिका।

राहुरत्न-संज्ञा पुं० [सं०] गोमेद मणि जो राहु के दोष का शमन करनेवाली मानी जाती है।

राहुल-संज्ञा पुं० [सं०] गौतम बुद्ध के पुत्र का नाम।

राहुसूतक-संज्ञा पुं० [सं०] ग्रहण। उपराग।

राहुस्पर्श-संज्ञा पुं० [सं०] ग्रहण। उपराग।

राहूच्छिष्ट-संज्ञा पुं० [सं०] लहसुन।

राहेल-संज्ञा पुं० [यहू०] यहूदियों की एक उपजाति का नाम।

रिंखण-संज्ञा पुं० [सं०] (१) फिसलना। लड़खड़ाना। (२) विचलित होना। डिगना।

रिंग-संज्ञा स्त्री० [अं०] (१) अँगूठी। छल्ला। (२) किसी प्रकार की गोल बड़ी चूड़ी। (३) घेरा। मंडल।

रिंगण-संज्ञा पुं० [सं०] (१) रेंगना। (२) फिसलना। सरकना। (३) विचलित होना। डिगना।

रिंगन-संज्ञा स्त्री० [सं० रिंगण] घुटनों के बल चलना। रेंगना। उ०—पुनि हरि आय यशोदा के गृह रिंगन लीला करिहैं।—सूर।

रिंगनी-संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की ज्वार जो मध्य प्रदेश में होती है।

रिंगल-संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का पहाड़ी बाँस जो दार्जिलिंग में होता है।

रिंगाना‡†-क्रि० स० [सं० रिंगण] (१) रेंगने की क्रिया कराना। रेंगाना। (२) धीरे धीरे चलाना। (३) घुमाना फिराना। दौड़ाना। चलाना। (बच्चों के लिये) उ०—मैं पठवति अपने लरिका को आवइ मन बहराइ। सूर श्याम मेरो अति बालक मारत ताहि रिंगाइ।—सूर।

संयो० क्रि०—देना।

रिंगिन-संज्ञा स्त्री० [अं० रिगिंग] वह रस्सी जिससे जहाज के मस्तूल आदि बाँधे जाते हैं। (लश०)

रिंद-संज्ञा पुं० [फ़ा०] (१) वह व्यक्ति जो धर्म्म के विषय में बहुत ही स्वच्छंद और उदार विचार रखता हो। धार्मिक बंधनों को न माननेवाला पुरुष। उ०—रिंदों में अगर जाँ तो मुशकिल है फिर आना।—नज़ीर। (२) मनमौजी आदमी। स्वच्छंद पुरुष।
वि० [फ़ा०] (१) मतवाला। मस्त। उ०—(क) जिन सरिस रन रिंद चलत हल चल फनिंद ध्रुव।—गिरधर। (ख) विन्ध्याचल पर बसहिं पुलिंदे। तहँ के नृप से भागहिं रिंदे।—गिरधर।

रिंदा†-वि० [फ़ा० रिंद] निरंकुश। उद्दंड।

रिअना†-संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का कीड़ा। रीआँ।

रिआयत-संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) वह अनुग्रहपूर्ण व्यवहार जो साधारण नियमों का ध्यान छोड़कर किया जाय। कोमल और दयापूर्ण व्यवहार। नरमी। जैसे,—गरीबों के साथ

रिआयत होनी चाहिए। (२) न्यूनता। कमी। जैसे,—(क) दाम में कुछ रिआयत कीजिए। (ख) अब बीमारी में कुछ रिआयत है। (३) खयाल। ध्यान। विचार। जैसे,—इस दवा में बुखार की भी रिआयत रखी है।
क्रि० प्र०—करना।—रखना।—होना।

रिआया-संज्ञा स्त्री० [अ०] प्रजा।

रिकवँछ-संज्ञा स्त्री० [देश०] एक भोज्य पदार्थ जो उर्द की पीठी और अरुई के पत्तों से बनता है। अरुई के पत्तियों को बारीक काटकर उर्द की पीठी के साथ मिला देते हैं और फिर उसी के गुलगुले से घी या तेल में छान लेते हैं।

रिकशा-संज्ञा स्त्री० [अं० रिक्शा] एक प्रकार की छोटी गाड़ी जिसे आदमी खींचते हैं और जिसमें एक या दो आदमी बैठते हैं।

रिकसा†-संज्ञा स्त्री० [सं० रिक्षा] लीख।

रिकाब-संज्ञा स्त्री० दे० "रकाब"।

रिकाबी-संज्ञा स्त्री० दे० "रकाबी"।

रिक्त-वि० [सं०] (१) खाली। शून्य। जैसे,—रिक्त घट, रिक्त स्थान। (२) निर्धन। गरीब।
संज्ञा पुं० वन। जंगल।

रिक्तकुंभ-संज्ञा पुं० [सं०] ऐसी भाषा जो समझ में न आवे। गड़बड़ बोली।

रिक्तता-संज्ञा स्त्री० [सं०] रिक्त या खाली होने का भाव।

रिक्ता-संज्ञा स्त्री० [सं०] चतुर्थी, नवमी और चतुर्दशी की तिथियाँ।

रिक्तार्क-संज्ञा पुं० [सं०] वह रिक्ता तिथि जो रविवार को पड़े। रविवार को होनेवाली चतुर्थी, नवमी या चतुर्दशी।

रिक्थ-संज्ञा पुं० [सं०] उत्तराधिकार या वरासत में मिला हुआ धन या संपत्ति।

रिक्थहारी-संज्ञा पुं० [सं० रिक्थहारिन्] [स्त्री० रिक्थहारिणी] (१) वह जिसे उत्तराधिकार में धन संपत्ति मिले। (२) मामा।

रिक्थी-संज्ञा पुं० [सं० रिक्थिन्] [स्त्री० रिक्थिनी] वह जिसे उत्तराधिकार में धन या संपत्ति मिले।

रिक्ष-संज्ञा पुं० दे० "ऋक्ष"

रिक्षपति-संज्ञा पुं० दे० "ऋक्षपति"

रिक्षा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) लिक्षा। लीख। जूँ का अंडा। (२) त्रिसरेणु।

रिखभ॰†-संज्ञा पुं० दे० "ऋषभ"।

रिखू†-संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की ऊख।

रिगइ-संज्ञा पुं० दे० "ऋक्"।

रिचा-संज्ञा स्त्री० दे० "ऋचा"।

रिचीक-संज्ञा पुं० दे० "ऋचीक"

रिच्छ॰†-संज्ञा पुं० [सं० ऋक्ष] भालू।

रिज़क-संज्ञा पुं० [अ० रिज़्क़] रोज़ी। जीविका। जीवनवृत्ति।
क्रि० प्र०—देना।—पाना।—मिलना।
मुहा०—रिजक मारना = किसी की जीविका में बाधा डालना। रोज़ी में खलल डालना।

रिज़र्व-वि० [अं०] किसी विशेष कार्य्य के लिये निश्चित य रक्षित किया हुआ। जैसे,—रिजर्व कुरसी, रिजर्व गाड़ी रिजर्व सेना।

रिजाली-संज्ञा स्त्री० [फा० रज़ील = नीच] रज़ीलपन। निर्लज्जता बेहयाई। उ०—कोउ ग्वाली की प्रीति सम्हाली, स्याम रसाली। सुकवि रिजाली दई बहाली भइ नभ लाली। —व्यास।

रिजु-वि० दे० "ऋजु"।

रिझकवार॰†-संज्ञा पुं० [हिं० रीझना + वार (प्रत्य०)] किसी के गुण पर प्रसन्न होनेवाला। रीझनेवाला। उ०—रिझकवार दग देखि कै मनमोहन की ओर। मोहन मोरत रीझ जनु डारत है न निहोर।—रसनिधि।

रिझवार†-संज्ञा पुं० [हिं० रीझना + वार (प्रत्य०)] (१) किसी बात पर प्रसन्न होनेवाला। (२) रूप पर मोहित होनेवाला। उ०—(क) कपटी जब लौं कपट नहिं साँचे बिगुरदा धार। तब लौं कैसे मिलैगो प्रभु साँचो रिझवार।—रसनिधि। (ख) मोहि भरोसो रीझिंहै उझकि झाँकि इक बार। रूप रिझावनहार वह ये नैना रिझवार।—बिहारी। (३) अनुराग करनेवाला। प्रेमी। (४) गुण पर प्रसन्न होनेवाला। क़दरदान। गुणग्राहक।

रिझाना-क्रि० स० [सं० रंजन] (१) किसी को अपने ऊपर प्रसन्न कर लेना। किसी को अपने ऊपर खुश करना। उ०—सूरदास प्रभु विविध भाँति करि मन रिझयो हरि पी को।—सूर। (२) अपना प्रेमी बनाना। अनुरक्त करना। मोहित करना। लुभाना।

रिझायल॰†-वि० [हिं० रीझना + आयल (प्रत्य०)] किसी के ऊपर प्रसन्न होनेवाला। रीझनेवाला। उ०—कवि नाथ लई उर लाय पिया रति रंग तरंग रिझायल की।—नाथ।

रिझाव-संज्ञा पुं० [हिं० रीझना + आव (प्रत्य०)] किसी के ऊपर प्रसन्न होने या रीझने का भाव।

रिझावना॰†-क्रि० स० दे० "रिझावना"। उ०—ललिता ललित बजाय रिझावति मधुर बीन कर लीन्हें।—सूर।

रित-संज्ञा स्त्री० दे० "ऋतु"।

रितवना॰-क्रि० स० [हिं० रीता + ना (प्रत्य०)] खाली करना। रिक्त करना। उ०—(क) मंजु मनोरथ कलस भरहिं अरु रितवहिं।—तुलसी। (ख) चलिबे को चरै न करै गम मेरु धरै फिर फेर भरै रितवै।—देव।

रितु—संज्ञा स्त्री० दे० "ऋतु"।

रितुवंती—संज्ञा स्त्री० [सं० ऋतुमती] रजस्वला स्त्री।

रिद्धि—संज्ञा स्त्री० दे० "ऋद्धि"।

रिद्धि सिद्धि—संज्ञा स्त्री० दे० "ऋद्धि सिद्धि"।

रिधम—संज्ञा पुं० [सं०] (१) कामदेव। (२) वसंत।

रिन—संज्ञा पुं० दे० "ऋण"।

रिनबंधी †—संज्ञा पुं० [सं० ऋण + बंध] कर्जदार। ऋणी।

रिनिआँ †—वि० [सं० ऋण] जिसने ऋण लिया हो। ऋणी। कर्जदार। उ०—दैवे को न कछू रिनिआँ हौं धनिक तू पत्र लिखाउ।—तुलसी।

रिनियाँ—वि० दे० "रिनिआँ"।

रिनी†—वि० [सं० ऋणिन्] जिसने ऋण लिया हो। ऋणी। कर्जदार।

रिप—संज्ञा पुं० [सं०] (१) पृथ्वी। (२) शत्रु। (३) हिंसा।

रिपु—संज्ञा पुं० [सं०] (१) शत्रु। दुश्मन। वैरी। (२) जन्म-कुंडली में लग्न से छठा स्थान। (३) पुराणानुसार ध्रुव के पोते और शिलष्टि के पुत्र का नाम।

रिपुघ्न—वि० [सं०] शत्रुओं का नाश करनेवाला।

रिपुता—संज्ञा स्त्री० [सं०] वैर। शत्रुता। दुश्मनी। उ०—जो रिपुता करि हमको मार्‌यो। ताको हमहू सपदि सँहार्‌यो।—रघुराज।

रिपोर्ट—संज्ञा स्त्री० [अं०] (१) किसी घटना का वह सविस्तर वर्णन जो किसी को सूचना देने के लिये किया जाय। (२) किसी संस्था आदि के कार्यों का विस्तृत विवरण। (३) किसी वस्तु या व्यक्ति के संबंध की जानने योग्य बातों का ब्योरा।

रिप्र—संज्ञा पुं० [सं०] पातक।

रिप्रवाह—संज्ञा पुं० [सं०] वह जिससे पाप या पातक का नाश होता हो।

रिभु—संज्ञा पुं० दे० "ऋभु"।

रिम—संज्ञा पुं० [सं० अरिम् या अरु] शत्रु। (डिं०)
संज्ञा स्त्री० दे० "रीम"।

रिमझिम—संज्ञा स्त्री० [अनु०] छोटी छोटी बूँदों का लगातार गिरना। हलकी फुहार पड़ना।
क्रि० वि० वर्षा की छोटी छोटी बूँदों से। उ०—बादल घिरे हुए हैं; बिजली चमक रही है; रिमझिम झड़ी लगी हुई है।—बालमुकुंद।

रिमहर—संज्ञा पुं० [सं० अरिम् + हर] शत्रु। (डिं०)

रिमिका—संज्ञा स्त्री० [?] काली मिर्च की लता। (अनेकार्थ)

रियासत—संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) राज्य। अमलदारी। (२) रईस होने का भाव। अमीरी। वैभव। ऐश्वर्य।

रिर ⊛†—संज्ञा स्त्री० [हिं० अर] हठ। ज़िद। उ०—रस मैं रिसान्यौ अनरस के खिसान्यौ देव पीछे पछितान्यौ सो घरोवत रिर पर्‌यौ।—देव।

रिरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] पीतल। (धातु)

रिलना ⊛†—क्रि० अ० [हिं० रेलना। मि० पं० रलना = मिलना] (१) प्रवेश करना। पैठना। घुसना। उ०—औरँग भरि भामिनी दिखावति सौ रँग हिय रिलि।—सुकवि। (२) हिल मिलकर एक हो जाना। मिल जाना। उ०—बेसर मानिक छवि न परत यों रँग रह्यौ रिलि।—सुकवि।

रिवाज—संज्ञा पुं० [अ०] प्रथा। रस्म। रीति। चलन।
क्रि० प्र०—उठना।—चलना। निकलना।—पड़ना।—होना।

रिश्ता—संज्ञा पुं० [फ़ा०] नाता। संबंध।

रिश्तेदार—संज्ञा पुं० [फ़ा०] संबंधी। नातेदार।

रिश्तेदारी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] रिश्ता होने का भाव। संबंध। नाता।

रिश्तेमंद—संज्ञा पुं० [फ़ा०] संबंधी। नातेदार।

रिश्य—संज्ञा पुं० [सं०] मृग।

रिश्वत—संज्ञा स्त्री० [अ०] वह धन जो किसी को उसके कर्त्तव्य से विमुख करके अपना लाभ करने के लिये अनुचित रूप से दिया जाय। घूस। लाँच। उत्कोच। जैसे,—(क) उसने दो सौ रुपए रिश्वत देकर उस मुकदमे से अपनी जान बचाई। (ख) रुपया दो रुपया रिश्वत देकर अपना काम निकाल लो।
क्रि० प्र०—खाना।—देना।—पाना।—मिलना।—लेना।

रिश्वतखोर—संज्ञा पुं० [अ० रिश्वत + फ़ा० खोर] वह जो रिश्वत लेता हो। घूस खानेवाला।

रिश्वतखोरी—संज्ञा स्त्री० [अ० रिश्वत + फ़ा० खोरी] रिश्वत खाने का काम। घूस लेने का काम।

रिषभ—संज्ञा पुं० दे० "ऋषभ"।

रिषि—संज्ञा पुं० दे० "ऋषि"।

रिषीक—संज्ञा पुं० [सं०] शिव।
वि० हानि पहुँचानेवाला।

रिष्ट—संज्ञा पुं० [सं०] (१) कल्याण। मंगल। (२) अमंगल। (३) अभाव। न होना। (४) नाश। (५) पाप। (६) खड्ग।
वि० नष्ट। बरबाद।
⊛ वि० [सं० हृष्ट] (१) प्रसन्न। (२) मोटा ताज़ा।

रिष्टि—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) खड्ग। (२) अमंगल।

रिष्यमूक—संज्ञा पुं० [सं० ऋष्यमूक] दक्षिण का एक पर्वत जहाँ राम जी से सुग्रीव की मित्रता हुई थी। उ०—रिष्यमूक पर्वत नियराई।—तुलसी।

रिस-संज्ञा स्त्री० [सं० रुष] क्रोध । गुस्सा । कोप । नाराजगी । उ०—(क) सुनि सु दान राजै रिस मानी ।—जायसी । (ख) महाप्रभु कृपाकरन रघुनंदन रिस न गहै पल आधु । सूर । (ग) जात पुकारत भारत बानी । देखि दुसासन अति रिस मानी ।—सबल ।

मुहा०—रिस मारना = क्रोध को रोकना । उ०—(क) धर्मज बदन निहारि, विकल सकल रिस मारि उर । दीन गदा महि डारि, भीम विकल पारथ अतिहि ।—सबल । (ख) रामे राम पुकार हनुमान अंगद कह्यौ । तब रावण रिस मारि रामचंद्र मन में धरे ।—हृदयराम ।

रिसना†-क्रि० स० [हिं० रसना] बहुत ही छोटे छोटे छिद्रों द्वारा छन छनकर बाहर निकल जाना । रसना । उ०—वहाँ की मिट्टी ऐसी दरदरी थी कि जो दीया बनाते, तो जलाने के समय सारी चरबी पिघलकर उसके भीतर से रिस जाती ।—शिवप्रसाद ।

रिसवाना†-क्रि० स० दे० "रिसाना" । उ०—ताही समय नंद घर आये । सुनि जसुमति को बहु रिसवाये ।—विश्राम ।

रिसहा†-वि० [हिं० रिस + हा (प्रत्य०)] (१) बात बात पर क्रोध करनेवाला । गुस्सैवर । क्रोधी । उ०—सूधे न काहू बतायो कछू मन याही ते मेरो भयो रिसहा है ।—मन्नालाल ।

रिसहाया†-वि० [हिं० रिसाया] [स्त्री० रिसहाई] क्रुद्ध । कुपति । नाराज । उ०—(क) लखि लीनी तब चतुर नागरी ये मो पर सब हैं रिसहाई ।—सूर । (ख) जननी अतिहि भई रिसहाई । बार बार कहैं कुँवरि राधिका री मोतीसरि कहाँ गमाई ।—सूर

रिसान-संज्ञा पुं० [ ] ताने के सूतों को फैलाकर उनको साफ करने का काम । (जुलाहे)

रिसाना†-क्रि० अ० [हिं० रिस + आना (प्रत्य०)] क्रुद्ध होना । खफा होना । गुस्सा होना । उ०—(क) और की ओर तकै जब प्यो तब त्यौरी चढ़ाइ चढ़ाइ रिसाति है । (ख) सखी सदन लाई जहँ रानी । मातु ताहि लखि बहुत रिसानी ।—विश्राम ।

संयो० क्रि०—जाना ।—उठना ।

क्रि० स० किसी पर क्रुद्ध होना । बिगड़ना । उ०—इनकी बात न जानति मैया मोकों बारंबार रिसाति ।—सूर ।

रिसाल†-संज्ञा पुं० [अ० इरसाल] राज्य कर जो मुफस्सल से राजधानी को भेजा जाता है । उ०—मानो हय हाथी उमराव करि साथी अवरंग डरि सिवा जी पै भेजत रिसाल है ।—भूषण ।

रिसालदार-संज्ञा पुं० [फा०] (१) घुड़सवार सेना का अफसर । (२) रिसाल या राजकर ले जानेवालों का प्रधान संचालक । चढ़नदार ।

रिसाला-संज्ञा पुं० [फा०] घोड़सवारों की सेना । अश्वा सेना ।

रिसि†-संज्ञा स्त्री० दे० "रिस" ।

रिसिआना, रिसियाना †-क्रि० अ० [हिं० रिस + आना (प्रत्य क्रुद्ध होना । कुपित होना । उ०—(क) कबहूँ रिसि कहैं हठि कै तब लेत सोई जेहि लागि अरैं ।—तुल (ख) शाप दीन सुनि अति रिसियाने । कीन्हे निपट अ अजाने ।—विश्राम ।

क्रि० स० किसी पर क्रुद्ध होना । बिगड़ना ।

रिसिक-संज्ञा स्त्री० [सं० रिष्टीक] तलवार । उ०—रि कुलेह कृपान असि बिशसनपा करवाल ।—नंददास ।

रिसौंहाँ-वि० [हिं० रिस + औंहाँ (प्रत्य०)] (१) क्रुद्ध कुछ कोप युक्त । थोड़ा नाराज़ । उ०—(क) सी ओठनि बसी करति आँखिन रिसौंही सी हँसी क भौंहनि हँसी करति ।—देव । (ख) करी रिसौंहीं जा सहज हँसौंहीं भौंह ।—बिहारी । (२) क्रोध से कोपसूचक । उ०—मापे लखन कुटिल भईं भौंहें । र फरकत नैन रिसौंहें ।—तुलसी ।

रिहननामा-संज्ञा पुं० [फा०] वह लेख जिसमें किसी पदा रेहन रखे जाने और उसके संबंध की शर्तों का उल्लेख

रिहर्सल-संज्ञा पुं० [अं०] (१) नाटक के अभिनय का अभ्या (२) वह अभ्यास जो किसी कार्य को ठीक समय पर से पहले किया जाय ।

रिहल-संज्ञा स्त्री० [अ०] काठ की बनी हुई कैंचीनुमा जिस पर रखकर लोग पुस्तक पढ़ते हैं और जिसका अ इस प्रकार का × होता है ।

रिहा—वि० [फा०] (१) (बंधन आदि से) मुक्त । छूटा हु (२) (किसी बाधा या संकट से) छूटा हुआ ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

रिहाई-संज्ञा स्त्री० [फा०] छुटकारा । मुक्ति । छुट्टी ।

क्रि० प्र०—देना ।—पाना ।—मिलना ।

रींधना-क्रि० स० [सं० रंधन] तैयार करने के लिये खाद्य को तलना, उबालना या पकाना । राँधना । उ०— जगनाथ दरसन कहँ आये । भोजन रींधा भात पकाये जायसी । (ख) रसोई के घर में महानंद की भतीजी रो रींध रही थी ।—अयोध्या ।

री-अव्य० [सं० रे] सखियों के लिये संबोधन । अरी । एरी । नेकु सुमुखि चित लाइ चितौ री । नख सिख सुंदरता लोकन कह्यौ न परत सुख होत जितौ री । साँवर सुधा भरिबे कहँ नयन कमल कल कलस रितौ री तुलसी ।

संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) गति। (२) वध। हत्या। (३) शब्द। रव।

रीगन-संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का धान जो भादों या कुआँर में तैयार होता है।

रीछ-संज्ञा पुं० [सं० ऋक्ष] [स्त्री० रीछनी] भालू।

रीछराज*-संज्ञा पुं० [सं० ऋक्षराज] जामवंत।

रीज्या-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) घृणा। नफरत। (२) भला बुरा कहना। *लानत मलामत। कुत्सा। निंदा। भर्त्सना।*

रीझ-संज्ञा स्त्री० [सं० रंजन] (१) किसी के ऊपर रीझने की क्रिया या भाव। किसी की किसी बात पर प्रसन्नता। (२) किसी के रूप, गुण आदि पर मोहित होना। मुग्ध होने का भाव।

रीझना-क्रि० अ० [सं० रंजन] (१) किसी की किसी बात पर प्रसन्न होना। (२) मोहित होना। मुग्ध होना। उ०—(क) रीझहि राज कुँवरि छबि देखी। इनहिं बरै हरि जानि विशेषी।—तुलसी। (ख) रूप निकाई मीत की ह्याँ तक लौं अधिकात। जा तन हेरौ निमिष कै रीझहु रीझी जात।—रसनिधि। (ग) कहत नटत रीझत खिझत मिलत खिलत लजियात। भरे भौन में करत हैं नैनन में सब बात।—बिहारी।

संयो० क्रि०—जाना।

रीठ*-संज्ञा स्त्री० [सं० रिष्ट] (१) तलवार। (२) युद्ध। (डिं०) वि० अशुभ। खराब।

रीठा-संज्ञा पुं० [सं० रिष्ट, प्रा० रिट्ठ] (१) एक बड़ा जंगली वृक्ष जो प्रायः बंगाल, मध्य प्रदेश, राजपूताने तथा दक्षिण भारत में पाया जाता है। यह देखने में बहुत सुंदर होता है। (२) इस वृक्ष का फल जो बेर के बराबर होता है। इसको लोग सुखाकर रखते हैं। इसे पानी में भिगोकर मलने से फेन निकलता है जिससे कपड़े धोए जाते हैं। काश्मीर में शाल आदि प्रायः इसी से साफ किए जाते हैं। यह रेशम तथा जवाहिरात धोने के काम में भी आता है। इसे फेनिल भी कहते हैं।

संज्ञा पुं० [हिं० भट्ठा] वह भट्ठा जिसमें चूना बनाने के लिये कंकर फूँके जाते हैं। (बुंदेलखंड)

रीठी-संज्ञा स्त्री० दे० "रीठा"।

रीढ़-संज्ञा स्त्री० [सं० रीढक] पीठ के बीचोबीच की वह खड़ी हड्डी जो गर्दन से कमर तक जाती है और जिसमें पसलियाँ मिली हुई रहती हैं। मेरुदंड।

विशेष—यह वास्तव में एक ही हड्डी नहीं होती, बल्कि बहुत सी हड्डियों की गुरियों की एक शृंखला होती है। इसे शरीर का आधार समझना चाहिए। इसका सीधा लगाव मस्तिष्क से होता है और बहुत से संवेदन-सूत्र इसमें से दोनों ओर निकलकर फैले रहते हैं।

रीत-संज्ञा स्त्री० दे० "रीति"। उ०—सखीन सों सीखै सोहाग की रीतहि।—देव।

रीतना*†-क्रि० अ० [सं० रिक्त प्रा० रित्त + ना (प्रत्य०)] खाली होना। रिक्त होना। उ०—हमहूँ समुझि परी नीके करि यह आशा तनु रीत्यो।—सूर।

क्रि०स० खाली करना। रिक्त करना।

रीता-वि० [सं० रिक्त, प्रा० रित्त] जिसके अंदर कुछ न हो। खाली। रिक्त। शून्य। उ०—(क) साँची कहि जाउ कब ऐहौ भौन रीते पर।—पद्माकर। (ख) हम हम करि धन धाम सँवारे अंत चले उठि रीते।—तुलसी। (ग) रीते घट धरि लेत सिर देति भरन को ढारि।—रसनिधि।

रीतिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) जस्ते का भस्म। (२) पीतल।

रीति-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) कोई कार्य करने का ढंग। प्रकार। तरह। ढब। उ०—जाति मुरी बिछुरत घरी जल सफरी की रीति।—बिहारी। (२) रस्म। रिवाज। परिपाटी। उ०—(क) मतलब मतलब प्यार सों तन मन दै कर प्रीति। सुनी सनेहिन मुष यहै प्रेम पंथ की रीति—रसनिधि। (ख) रघुकुल रीति सदा चलि आई। प्राण जाहि बरु बचन न जाई।—तुलसी। (३) क़ायदा। नियम। (४) साहित्य में किसी विषय का वर्णन करने में वर्णों की वह योजना जिससे ओज, प्रसाद या माधुर्य्य आता है। (५) पीतल। (६) लोहे की मैल। मंडूर। (७) जले हुए सोने की मैल। (८) सीसा। (९) गति। (१०) स्वभाव। (११) स्तुति। प्रशंसा।

रीम-संज्ञा स्त्री० [अं०] कागज़ की वह गड्डी जिसमें बीस दस्ते होते हैं।

संज्ञा स्त्री० [देश०] मवाद। पीब।

रीर-संज्ञा स्त्री० दे० "रीढ़"।

संज्ञा पुं० [सं०] शिव।

रीरी-संज्ञा स्त्री० [सं०] पीतल।

रीषमूक*-संज्ञा पुं० दे० "ऋष्यमूक"।

रीस-संज्ञा स्त्री० (१) दे० "रिसि"। उ०—वृद्ध जो सीस डुलावै सीस धुनहिं तेहि रीस।—जायसी।

संज्ञा स्त्री० [सं० ईर्ष्या] (१) डाह। उ०—बरनौं गीउ कंबु कै रीसी।—जायसी। (२) स्पर्द्धा। बराबरी। उ०—(क) *सेमल बिना सुगंध तू करत मालती रीस।—दीनदयाल।* (ख) कह्यो हिमालय शिव प्रभु ईस। हमकों उनसों कैसी रीस।—सूर।

रीसना*-क्रि० अ० [हिं० रिस + ना (प्रत्य०)] क्रुद्ध होना। ख़फ़ा होना। उ०—मुख फिराइ मन अपने रीसा। चलत न तिरिया कर मुख दीसा।—जायसी।

रीसा–संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की झाड़ी जिसकी छाल के रेशों से रस्सियाँ बनती हैं। यह झाड़ी हिमालय और खासिया पहाड़ी पर होती है। इसे बन-कुटकोरा या बनरीहा भी कहते हैं।

रुंज–संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का बाजा। उ०—(क) रुंज मुरज डफ झाँझ झालरी यंत्र पखावज तार।—सूर। (ख) रुंज मुरज डफ ताल बाँसुरी झालर की झंकार।—सूर।

रुंड–संज्ञा पुं० [सं०] (१) बिना सिर का धड़। कबंध। (२) बिना हाथ पैर का शरीर। वह शरीर जिसके हाथ पैर कटे हों। उ०—(क) जीव पाउँ नहिं पाछे धरहीं। रुंड मुंड मय मेदिनि करहीं।—तुलसी। (ख) रुंडनि के झुंड झूमि झूमि झुकरिसे नाचैं समर सुमार सूर भारे रघुबीर के।—तुलसी।

रुंडिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) युद्ध-भूमि। समरक्षेत्र। (२) विभूति।

रुँदवाना–क्रि० स० [हिं० रौंदना का प्रेर०] पैरों से कुचलवाना। रौंदवाना। खुँदवाना। उ०—अब नहिं राखों उठाइ बैरी नहिं नान्हो। मारौं गज तें रुँदाइ मनहि यह अनुमान्हो।—सूर।

रुंधती*–संज्ञा स्त्री० [सं० अरुंधती] वशिष्ट मुनि की स्त्री। उ०—रतनालिका सी रुंधती सी रोहिणी सी रुचि रतिसी रमा सी लसी अंगन में आइके।—रघुराज।

रुँधना–क्रि० अ० [सं० रुद्ध+ना (प्रत्य०)] (१) मार्ग न मिलने के कारण अटकना। रुकना। (२) उलझना। फँस जाना। उ०—रुँधे रति संग्राम खेत नीके। एक ते एक रणवीर जोधा प्रबल मुरत नहिं नेक अति सबल जी के।—सूर। (३) किसी काम में लगना। (४) रोक या रक्षा के लिये काँटेदार झाड़ों आदि से घिरना या छाना। घेरा जाना। जैसे,—रास्ता रुँधना, खेत रुँधना।

रु*–अव्य० [हिं० अरु का संक्षिप्त रूप] और। उ०—(क) हम हारी कै कै हहा पायन पर्‌यो प्यौरु। लेहु कहा अजहूँ किये तेह तरेरे त्यौरु।—बिहारी। (ख) संवत् भुज श्रुति निधि मही मधुमास रु सित पच्छ। शनिवासर शुभ पंचमी किन्हों ग्रंथ प्रतच्छ।—मन्नालाल।

संज्ञा पुं० [सं०] (१) शब्द। (२) भय। (३) गति।

रुआँली–संज्ञा स्त्री० [हिं० रुई+आलि] रुई की बनी हुई एक प्रकार की पोली बत्ती या पूनी जो स्त्रियाँ चरखे पर सूत कातने के लिये एक सिरकी पर लपेटकर बनाती हैं। पूनी। पौनी।

रुआँ☉†–संज्ञा पुं० [सं० रोम] शरीर पर के छोटे छोटे बाल। रोम। रोआँ।

रुआ घास–संज्ञा स्त्री० [हिं० रुआ] (१) एक प्रकार की बहुत सुगंधित घास जो तेल आदि बासने के काम में आती है। (२) इस घास से बासा हुआ तेल।

रुआना☉†–क्रि० स० दे० "रुलाना"।

रुआब†–संज्ञा पुं० [अ० रोअब] (१) धाक। दबदबा। रोब। (२) भय। डर। खौफ़। आतंक।

क्रि० प्र०—डाँटना।—छाना—बैठना।—बैठाना।—मानना।

रुई–संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का छोटा पेड़ जो हिमालय की तराई में कश्मीर से पूर्व दिशा में होता है। इसकी छाल और पत्तियाँ रँगाई के काम में आती हैं।

रुई–संज्ञा स्त्री० दे० "रूई"।

रुईदस्त–संज्ञा पुं० [फा० रु ?+दस्त=हाथ] कुश्ती में छाती या बगल के पास से हाथ अड़ाकर निकालना।

रुईदार–वि० दे० "रूईदार"।

रुकना–क्रि० अ० [हिं० रोक] (१) मार्ग आदि न मिलने के कारण ठहर जाना। आगे न बढ़ सकना। अवरुद्ध होना। अटकना। जैसे,—(क) यहाँ पानी रुकता है। (ख) रास्ता न मिलने की वजह से सब लोग रुके हैं। (२) अपनी इच्छा से ठहर जाना। आगे न बढ़ना। जैसे,—(क) हम रास्ते में एक जगह रुकना चाहते हैं। (ख) यह गाड़ी हर स्टेशन पर रुकती है।

संयो० क्रि०—जाना।—पड़ना।

(३) किसी कार्य में आगे न चलना। किसी काम में सोच विचार या आगा पीछा करना। जैसे,—मैं कुछ निश्चय नहीं कर सकता, इसी से रुका हूँ; नहीं तो कब का दावा कर चुका होता। (४) किसी कार्य्य का बीच में ही बंद हो जाना। काम आगे न होना। जैसे,—(क) रुपए के बिना सब काम रुका है। (ख) इस साल विवाह की सब तैयारी हो चुकी थी; पर लड़की मर जाने से विवाह रुक गया। (५) किसी चलते क्रम का बंद होना। सिलसिला आगे न चलना। जैसे,—धार रुकना।

संयो० क्रि०—जाना।

(६) वीर्य्यपात न होने देना। स्खलित न होना। (बाजारू)

रुकमंगद–संज्ञा पुं० दे० "रुक्मांगद"।

रुकमंजनी–संज्ञा स्त्री० [सं० रुक्मांजनी] (१) एक प्रकार का पौधा जो बागों में सजावट के लिये लगाया जाता है। (२) इस पौधे का फूल।

रुकमिनी–संज्ञा स्त्री० दे० "रुक्मिणी"।

रुकरा†–संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की ऊख या गन्ना।

रुकवाना–क्रि० स० [हिं० रुकना का प्रेर०] दूसरे को रोकने में प्रवृत्त करना। रोकने का काम दूसरे से कराना।

रुकाव–संज्ञा पुं० [हिं० रुकना] (१) रुकने का भाव। रुकावट। अटकाव। अवरोध। रोक। (२) मलावरोध। कब्ज़। स्तंभन।

रुकुम☉–संज्ञा पुं० दे० "रुक्म"।

रुकुमी*-संज्ञा पुं० दे० "रुक्मी"।

रुक्का-संज्ञा पुं० [अ० रुक्अ:] (१) छोटा पत्र या चिट्ठी। पुरजा। परचा। (२) वह लेख जो हुंडी या कर्ज लेनेवाले रुपया लेते समय लिखकर महाजन को देते हैं।

रुक्ख *†-संज्ञा पुं० [सं० रुक्ष, प्रा० रुक्ख] रूख। पेड़। वृक्ष।

रुक्म-संज्ञा पुं० [सं०] (१) स्वर्ण। सोना। उ०—चल्यो रुक्मिनी बंधु रुकम रथ चढ़ि भट रुकमी।—गोपाल। (२) धत्तूर। धतूरा। (३) लोहा। (४) नागकेसर। (५) रुक्मिणी के एक भाई का नाम। उ०—कुंदनपुर को भीपम राई। विष्णु भक्ति को ता मन चाई। रुक्म आदि ताके सुत पाँच। रुक्मिणि पुत्री हरि रँग राँच।—सूर।

रुक्मकारक-संज्ञा पुं० [सं०] सुनार।

रुक्मकेश-संज्ञा पुं० [सं०] विदर्भ के राजा भीष्मक के छोटे पुत्र का नाम।

रुक्मपाश-संज्ञा पुं० [सं०] सूत का बना हुआ वह फंदा या लड़ जिसकी सहायता से गहने आदि पहने जाते हों।

रुक्मपुर-संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार एक नगर का नाम जहाँ गरुड़ निवास करते हैं।

रुक्ममाली-संज्ञा पुं० [सं० रुक्ममालिन्] पुराणानुसार भीष्मक के एक पुत्र का नाम।

रुक्मबाहु-संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार भीष्मक के एक पुत्र का नाम।

रुक्मरथ-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शल्य के एक पुत्र का नाम। (२) भीष्मक के एक पुत्र का नाम। (३) द्रोणाचार्य्य।

रुक्मवती-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक वृत्त का नाम, जिसके प्रत्येक चरण में 'भ म स ग' (ऽ।। ऽऽऽ ।।ऽ ऽ) होते हैं। इसके और नाम 'रूपवती' तथा 'चंपकमाला' भी हैं।

रुक्मवाहन-संज्ञा पुं० [सं०] द्रोणाचार्य्य।

रुक्मसेन-संज्ञा पुं० [सं०] रुक्मिणी का छोटा भाई। उ०—तब छोटा बालक नृप केरा। रुक्मसेन बोला यहि बेरा।—विश्राम।

रुक्मांगद-संज्ञा पुं० [सं०] एक राजा का नाम। उ०—रुक्मांगद महिपाल भयो एक भगवान प्रिय। ताकी कथा रसाल मैं बर्णों संक्षेप से।—रघुराज।

रुक्मिण-संज्ञा स्त्री० दे० "रुक्मिणी"।

रुक्मिणी-संज्ञा स्त्री० [सं०] श्रीकृष्ण की पटरानियों में से बड़ी और पहली जो विदर्भ देश के राजा भीष्मक की कन्या थी। उ०—(क) यह सुनि हरि रुक्मिणि सों कह्यो। ज्यों तुम मोकों चित पर चह्यो।—सूर। (ख) हरि रुक्मिणी कह्यो सुनि नारद यह कमला अवतार।—सूर।

विशेष—हरिवंश में लिखा है कि रुक्मिणी के सौंदर्य्य की प्रशंसा सुनकर श्रीकृष्ण उस पर आसक्त हो गए थे। उधर श्रीकृष्ण के रूप गुण की प्रशंसा सुनकर रुक्मिणी भी उन पर अनुरक्त हो गई थी। पर श्रीकृष्ण ने कंस की हत्या की थी, इसलिये रुक्मी उनसे बहुत द्वेष रखता था। जरासंध ने भीष्मक से कहा था कि तुम अपनी कन्या रुक्मिणी का विवाह शिशुपाल के साथ कर दो। भीष्मक भी इस प्रस्ताव से सहमत हो गए। जब विवाह का समय आया, तब श्रीकृष्ण और बलराम भी वहाँ पहुँच गए। विवाह से एक दिन पहले रुक्मिणी रथ पर चढ़कर इंद्राणी की पूजा करने गई थी। जब वह पूजन करके मंदिर से बाहर निकली, तब श्रीकृष्ण उसे अपने रथ पर बैठाकर ले चले। समाचार पाकर शिशुपाल आदि अनेक राजा वहाँ आ पहुँचे और श्रीकृष्ण के साथ उन लोगों का युद्ध होने लगा। श्रीकृष्ण उन सब को परास्त करके रुक्मिणी को वहाँ से हर ले गए। पीछे से रुक्मी ने श्रीकृष्ण पर आक्रमण किया और नर्मदा के तट पर श्रीकृष्ण से उनका भीषण युद्ध हुआ। उस युद्ध में रुक्मी को मूर्च्छित और परास्त करके श्रीकृष्ण द्वारका पहुँचे। वहीं रुक्मिणी के साथ उनका विवाह हुआ। कहते हैं कि रुक्मिणी के गर्भ से श्रीकृष्ण को दस पुत्र और एक कन्या हुई थी। पुराणों में रुक्मिणी को लक्ष्मी का अवतार कहा है।

रुक्मिदर्प-संज्ञा पुं० [सं०] बलदेव।

रुक्मिदारी-संज्ञा पुं० [सं० रुक्मिदारिन्] बलदेव।

रुक्मी-संज्ञा पुं० [सं० रुक्मिन्] विदर्भ देश के राजा भीष्मक का बड़ा पुत्र और रुक्मिणी का भाई। जिस समय श्रीकृष्ण इसकी बहन रुक्मिणी को हर ले चले थे, उस समय इसके साथ उनका घोर युद्ध हुआ था। इन्होंने प्रतिज्ञा की थी कि जब तक मैं श्रीकृष्ण को मार न डालूँगा, तब तक घर न लौटूँगा। पर युद्ध में ये श्रीकृष्ण से परास्त हो गए थे; अतः लौटकर कुंडिननगर नहीं गए और विदर्भ में ही भोजकर नामक एक दूसरा नगर बसाकर रहने लगे थे। उ०—चल्यो रुक्मिनी बंधु रुकम रथ चढ़ि भट रुक्मी।—गिरधर।

रुक्ष-वि० [सं० रूक्ष] (१) जिसमें चिकनाहट न हो। जो स्निग्ध न हो। रूखा। (२) जिसका तल चिकना न हो। ऊबड़ खाबड़। खुरदुरा। (३) बिना रस का। नीरस। (४) सूखा। शुष्क।
संज्ञा पुं० [सं० वृक्ष] (१) वृक्ष। पेड़। (२) मरकट नाम की घास।

रुक्षता-संज्ञा स्त्री० [सं० रूक्षता] रुखाई। रूखापन।

रुख-संज्ञा पुं० [फ़ा०] (१) कपोल। गाल। (२) मुख। मुँह। चेहरा। (३) चेहरे का भाव। आकृति। चेष्टा। उ०—(क) रुख रूपे मँहि सतर नहिं सँदि ठहरात। मान दिन हरि पात तें भूम जात लौं जात।—रामसहाय। (ख) पुनि गुनियर

शंकर रुख चीन्हों। चरण गुहा ते बाहर कीन्हो।—स्वामी रामकृष्ण। (ग) संकर रुख अवलोकि भवानी। प्रभु मोहिं तजेउ हृदय अकुलानी।—तुलसी।

मुहा०—रुख मिलाना = मुँह सामने करना।

(४) मन की इच्छा जो मुख की आकृति से प्रकट हो। चेष्टा से प्रकट इच्छा या मरज़ी उ०—राम रुख निरखि हरषौ हिये हनूमान मानो खेलवार खोली सीस ताज बाज की।—तुलसी।

मुहा०—रुख देना = प्रवृत्त होना। ध्यान देना। रुख फेरना या बदलना = (१) ध्यान किसी दूसरी ओर कर लेना। प्रवृत्त न होना। (२) अकृपा करना। नाराज होना।

(५) कृपादृष्टि। मेहरबानी की नजर। (६) सामने या आगे का भाग। जैसे,—(क) वह मकान दक्खिन रुख का है। (ख) कुरसी का रुख इधर कर दो। (७) शतरंज का एक मोहरा जो ठीक सामने, पीछे, दाहिने या बाएँ चलता है, तिरछा नहीं चलता। इसे रथ, किश्ती और हाथी भी कहते हैं।

क्रि० वि० (१) तरफ। ओर। पार्श्व। उ०—मनहुँ मघा जल उमगि उदधि रुख चले नदी नद नारे।—तुलसी। (२) सामने। उ०—निज निज रुख रामहिं सब देखा। कोउ न जान कछु मरम बिसेषा।—तुलसी।

संज्ञा पुं० [सं० रूक्ष] (१) दे० "रूख"। (२) एक प्रकार की घास जिसे चरक तृण कहते हैं।

वि० दे० "रूखा"।

रुखचढ़वा†–संज्ञा पुं० [हिं० रुख + चढ़ना] (१) बंदर। (२) पेड़ पर रहनेवाला, भूत।

रुखदार–संज्ञा पुं० [फा० रुख + दार (प्रत्य०)] (बाजार का भाव) जो घट रहा हो।

रुखसत–संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) आज्ञा। परवानगी। (क०) (२) रवानगी। कूच। बिदाई। प्रस्थान। (३) काम से छुट्टी। अवकाश। जैसे,—बड़ी मुश्किल से चार दिन की रुखसत मिली है।

क्रि० प्र०—देना।—पाना।—मिलना।—होना।

वि० जो कहीं से चल पड़ा हो। जिसने प्रस्थान किया हो।

रुखसताना–संज्ञा पुं० [फा०] वह इनाम जो किसी को रुखसत होने के समय राजा या रईस आदि के यहाँ से सत्कारार्थ दिया जाता है। बिदा होने के समय दिया जानेवाला धन। बिदाई।

क्रि० प्र०—देना।—पाना।—मिलना।

रुखसती–वि० [अ० रुखसत + ई (प्रत्य०)] जिसे छुट्टी मिली हो।

संज्ञा स्त्री० [अ० रुखसत] (१) बिदाई, विशेषतः दुलहिन की बिदाई। (२) बिदाई के समय दिया जानेवाला धन। बिदाई।

रुखसार–संज्ञा पुं० [फा०] कपोल। गाल।

रुखाई–संज्ञा स्त्री० [हिं० रूखा + आई (प्रत्य०)] (१) रूखे होने की क्रिया या भाव। रूखापन। रुखावट। (२) शुष्कता। खुश्की। (३) व्यवहार की कठोरता। शील का त्याग। बेमुरौवती।

क्रि० प्र०—करना।—दिखलाना।

रुखान†–संज्ञा स्त्री० दे० "रुखानी"।

रुखानल*–संज्ञा पुं० [सं० रोषानल] क्रोधाग्नि। (डिं०)

रुखाना*†–क्रि० अ० [हिं० रूखा + आना (प्रत्य०)] (१) रूखा होना। चिकना न रह जाना। (२) नीरस होना। सूखना।

रुखानी–संज्ञा स्त्री० [सं० रोक = छेद + खनित्र = खोदने की चीज] (१) बढ़इयों का लोहे का एक औजार जो प्रायः एक बालिश्त लंबा होता है। इसका अगला सिरा धारदार होता है, और पीछे की ओर लकड़ी का दस्ता लगा होता है, जिस पर हथौड़ी या बसूले आदि से चोट लगाकर लकड़ी छीली या काटी जाती है, अथवा उसमें बड़ा छेद किया जाता है। (२) संगतराशों की वह टाँकी जिसका व्यवहार प्रायः मोटे कामों में होता है। (३) लोहे का प्रायः एक बालिश्त लंबा एक औजार जिसमें काठ का दस्ता लगा होता है और जिसकी सहायता से तेली अपनी घानी चलाते हैं।

रुखावट–संज्ञा स्त्री० दे० "रुखाई"।

रुखाहट–संज्ञा स्त्री० [हिं० रूखा + आहट (प्रत्य०)] रूखापन। रुखाई।

रुखिता–संज्ञा स्त्री० [सं० रुषिता] वह नायिका जो रोष या क्रोध कर रही हो। मानवती नायिका। उ०—कलहंतरिता कोई विप्रलब्धा कोई रुखिता।—विश्राम।

रुखिया†–संज्ञा स्त्री० [हिं० रूख + इया (प्रत्य०)] पेड़ों से छाई हुई भूमि।

रुखुरी†–संज्ञा स्त्री० [हिं० रूखा] भूना हुआ चना आदि। चबैना।

संज्ञा स्त्री० [हिं० रूख] बहुत छोटा पौधा।

रुखौहाँ†–वि० [हिं० रूखा + औहाँ (प्रत्य०)] [स्त्री० रुखौहीं] रुखाई लिए हुए। रूखा सा। उ०—रुख रूखे मिस रोष मुख कहति रुखौहैं बैन। रूखे कैसे होत ये नेह चीकने नैन।—बिहारी।

रुगना†–संज्ञा पुं० [हिं० रोग] पशुओं का टपका नामक रोग।

रुगिया†–वि० दे० "रोगी"।

रुगौना†–संज्ञा पुं० [देश०] घलुआ। घाल।

रुंदाह सन्निपात ज्वर–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का ज्वर जो बीस दिनों तक रहता है। इसमें रोगी बकता और बकता है, उसके शरीर में जलन होती है, पेट में दर्द

होता है, और उसे विशेष प्यास लगती है। यह बहुत कष्ट-साध्य माना जाता है।

रुग्ण-वि० [सं०] (१) जिसे कोई रोग हुआ हो। रोगग्रस्त। रोगी। बीमार। (२) झुका हुआ। नमित। टेढ़ा। (३) टूटा हुआ। (४) बिगड़ा हुआ।

रुग्णता-संज्ञा स्त्री० [सं०] रोगी होने का भाव। बीमारी।

रुग्मी-संज्ञा पुं० [सं०] जैन हरिवंश के अनुसार जंबू द्वीप के एक पर्वत का नाम।

रुचक्क†-संज्ञा स्त्री० दे० "रुचि"।

रुचक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वास्तुविद्या के अनुसार ऐसा घर जिसके चारों ओर के अलिंद (चबूतरा या परिक्रमा) में से पूर्व और पश्चिम का सर्वथा नष्ट हो गया हो और उत्तर दक्षिण का समूचा ज्यों का त्यों हो। इसका उत्तर का द्वारा अशुभ और शेष द्वारा शुभ माने गए हैं। (२) वह खंभा जो गोल न हो, बल्कि चौकोर हो। (३) सज्जीखार। (४) घोड़ों का गहना या साज। (५) माला। (६) काला नमक। (७) मांगल्य द्रव्य। (८) रोचना। (९) वाय-विडंग। (१०) नमक। (११) बीजपूरक। बिजौरा नीबू। (१२) प्राचीन काल का सोने का निष्क नामक सिक्का। (१३) दाँत। (१४) कबूतर। (१५) पुराणानुसार सुमेरु पर्वत के पास के एक पर्वत का नाम। (१६) जैन हरिवंश के अनुसार हरिवर्ष के एक पर्वत का नाम। (१७) दक्षिण दिशा।

वि० स्वादिष्ट। ज़ायकेदार।

रुचदान†-वि० [सं० रुचि-दान] भला लगने योग्य। जो अच्छा लग सके।

रुचना-क्रि० अ० [सं० रुच+ना (प्रत्य०)] रुचि के अनुकूल होना। अच्छा जान पड़ना। भला लगना। प्रिय लगना। पसंद आना।

मुहा०—रुच रुच = बहुत रुचि से। अच्छी तरह मन लगाकर। उ०—सबरी के बेर सुदामा के तंदुल रुचि रुचि भोग लगाए।—भजन।

रुचा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) दीप्ति। प्रकाश। (२) शोभा। (३) इच्छा। ख़ाहिश। (४) मैना, बुलबुल, तोते आदि पक्षियों का बोलना।

रुचि-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रजापति जो रौच्य मनु के पिता थे।

संज्ञा स्त्री० (१) प्रवृत्ति। तबीयत। जैसे,—जिस काम में आपकी रुचि हो, वही कीजिए। (२) अनुराग। प्रेम। चाह। (३) किरण। (४) छवि। शोभा। सुंदरता। उ०—त्यों पद्माकर आनन में रुचि कानन भौंहें कमान लगी हैं।—पद्माकर। (५) खाने की इच्छा। भूख। (६) स्वाद। ज़ायका। उ०—जब जब कहि सबरी के फलन की रुचि माधुरी न पाई।—तुलसी। (७) गोरोचन। (८) काम शास्त्र के अनुसार एक प्रकार का आलिंगन जिसमें नायिका नायक के सामने उसके घुटने पर बैठकर उसे गले लगाती है। (९) एक अप्सरा का नाम। उ०—देखी जाति बिसेखी वधू किधौं हेम बरेखी रमा रुचि रंभा।—मन्नालाल।

वि० शोभा के अनुकूल। फबता हुआ। योग्य। मुनासिब। उ०—झीनी सारी कंचुकी कुच रुचि दीसी भाव।—रामसहाय।

रुचिकर-वि० [सं०] रुचि उत्पन्न करनेवाला। अच्छा लगनेवाला। दिलपसंद। जैसे,—इसके सेवन से तुम्हें भोजन रुचिकर लगेगा।

संज्ञा पुं० केशव के एक पुत्र का नाम।

रुचिकारक-वि० [सं०] (१) रुचि उत्पन्न करनेवाला। रुचिकर। (२) बढ़िया स्वादवाला। स्वादिष्ट।

रुचिकारी-वि० [सं० रुचिकारिन्] (१) रुचि उत्पन्न करनेवाला। रुचिकारक। (२) अच्छे स्वादवाला। स्वादिष्ट। (३) अच्छा लगनेवाला। मनोहर।

रुचित-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मीठी वस्तु। (२) इच्छा। अभिलाषा।

वि० जिसे जी चाहता हो। अभिलषित।

रुचिता-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) रुचि का भाव। रोचकता। (२) अनुराग। (३) सुंदरता। खूबसूरती। (४) अतिजगती वृत्त का एक भेद।

रुचिधाम-संज्ञा पुं० [सं० रुचिधामन्] सूर्य्य।

रुचिप्रभ-संज्ञा पुं० [सं०] महाभारत के अनुसार एक दैत्य का नाम।

रुचिफल-संज्ञा पुं० [सं०] नासपाती।

रुचिभर्त्ता-संज्ञा पुं० [सं० रुचिभर्तृ] (१) सूर्य्य। (२) स्वामी। मालिक।

वि० जिसके द्वारा आनंद की वृद्धि होती हो। सुखकर।

रुचिमती-संज्ञा स्त्री० [सं०] उग्रसेन की रानी और देवकी की माता जो श्रीकृष्णचंद्र की नानी थीं।

रुचिर-वि० [सं०] (१) सुंदर। अच्छा। भला। (२) मीठा।

संज्ञा पुं० [सं०] (१) मूलक। मूली। (२) कुंकुम। केसर। (३) लौंग। (४) सेनजित् के एक पुत्र का नाम।

रुचिरकेतु-संज्ञा पुं० [सं०] एक बोधिसत्व का नाम।

रुचिरवृत्ति-संज्ञा पुं० [सं०] भक्त का एक प्रकार का संहार।

उ०—रुचिरवृत्ति मनपितृ सौमनस धम धामहु एग माली।—रघुराज।

रुचिर श्रीगर्भ-संज्ञा पुं० [सं०] एक बोधिसत्व का नाम।

रुचिरांजन-संज्ञा पुं० [सं०] शोभांजन। सहिंजन।

रुचिरा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) एक प्रकार का छंद जिसके पहले और तीसरे पदों में १६ तथा दूसरे और चौथे पदों में १४ मात्राएँ तथा अंत में दो गुरु होते हैं। (२) एक वृत्त का नाम जिसके प्रत्येक चरण में ज, भ, स, ज, ग (।ऽ। ऽ।। ।।ऽ ।ऽ। ऽ) होते हैं। (३) एक प्राचीन नदी का नाम जिसका उल्लेख रामायण में है। (४) केसर। (५) लौंग। (६) मूली।

रुचिराई*†-संज्ञा स्त्री० [सं० रुचिर+आई (प्रत्य०)] सुंदरता। मनोहरता। खूबसूरती। उ०—कंबु चिबुकाधर सुंदर क्यों कहौं दसनन की रुचिराई।—तुलसी।

रुचिरुचि-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का साम।

रुचिवर्द्धक-वि० [सं०] (१) रुचि उत्पन्न करनेवाला। (२) भूख बढ़ानेवाला।

रुचिष्य-संज्ञा पुं० [सं०] खाने का मीठा पदार्थ।

वि० जिस पर रुचि हो। जिसे प्राप्त करने को जी चाहे।

रुची-संज्ञा स्त्री० दे० "रुचि"।

रुच्छ*-वि० [सं० रुक्ष] (१) रूखा। उ०—अच्छहि निरच्छ कपि रुच्छ ह्वै उचारौं इमि तोण तिच्छ तुच्छन को कछुवै न गंत हौं।—रत्नाकर। (२) व्यवहार में कठोर। (३) नाराज़। क्रुद्ध।

संज्ञा पुं० दे० "रूख"।

रुच्य-वि० [सं०] (१) रुचिकर। (२) सुंदर। खूबसूरत।

संज्ञा पुं० [सं०] (१) सेंधा नमक। (२) शालि धान्य। जड़हन। (३) पति। स्वामी।

रुच्यकंद-संज्ञा पुं० [सं०] सूरन। ओल।

रुज-संज्ञा पुं० [सं०] (१) भंग। भाँग। (२) वेदना। कष्ट। (३) क्षत। घाव। (४) प्राचीन काल का एक प्रकार का बाजा जिस पर चमड़ा मढ़ा होता था।

रुजगार ‡-संज्ञा पुं० दे० "रोजगार"।

रुजग्रस्त-वि० [सं०] जिसे कोई रोग हो। रोगग्रस्त। बीमार।

रुजा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) रोग। बीमारी। (२) भंग। भाँग। (३) पीड़ा। (४) भेड़ी। (५) कुष्ठ। कोढ़।

रुजाकर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जिससे कोई रोग उत्पन्न हो। बीमारी पैदा करनेवाला। (२) रोग। बीमारी। (३) कमरख नामक फल।

रुजाली-संज्ञा स्त्री० [सं०] रोगों या कष्टों का समूह। उ०—हिम-करि केहरि करमाली। दहन दोष दुख दहन रुजाली।—तुलसी।

रुजी-वि० [सं० रुज्=रोग] जिसे कोई रोग हो। अस्वस्थ। बीमार। उ०—बहुत रोज भार भए अहे रुजी यह देश। याते अब निज पुरी को कीन्हे गमन नरेश।—रघुराज।

रुजू-वि० [अ० रुजूअ=मायल] (१) जिसकी तबीयत किसी ओर झुकी या लगी हो। प्रवृत्त। उ०—(क) प्रेम नगर की रीत कछु बैनन कहत बनै न। रुजू रहत चित चोर सौं नेहिन के मन नैन।—रसनिधि। (ख) अमरैया कूकत फिरै कोइल सबै जताइ। अमल भयौ ऋतुराज कौ रुजू होहु सब आइ।—रसनिधि। (२) जो ध्यान दिए हो।

रुझना *†-क्रि० अ० [सं० रुद्ध, प्रा० रुज्झ] घाव आदि का भरना या पूजना। उ०—मर्मवेधी बात का नासूर किसी तरह नहीं रुझता।—श्रीनिवासदास।

क्रि० अ० दे० "अरुझना" या "उलझना"।

रुझनी-संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की छोटी चिड़िया जिसकी पीठ काली, छाती सफेद और चोंच लंबी होती है।

रुठ-संज्ञा पुं० [सं० रुष्ट, प्रा० रुट्ठ] क्रोध। अमर्ष। गुस्सा। उ०—कामानुज आमर्ष रुठ क्रोध मन्यु क्रुध होय। क्षोभ भरी तिय को निरखि खिड़की सहचरि सोय।—नंददास।

रुठना †-क्रि० अ० दे० "रूठना"।

रुण्ण-संज्ञा स्त्री० [सं०] सरस्वती नदी की एक शाखा जिसका उल्लेख महाभारत में है।

रुणित-वि० [सं०] शब्द करता हुआ। झनकारता हुआ। बजता हुआ। उ०—चरण रुणित नूपुर ध्वनि मानो सर विहरत हैं बाल मराल।—सूर।

रुत-संज्ञा स्त्री० दे० "ऋतु"।

संज्ञा पुं० [सं०] (१) पक्षियों का शब्द। कलरव। उ०—(क) सुनि घोर अधीरन के रुत कौ। चकि कै दृग फेरि किये उतकौ।—गुमान। (ख) पल्लव अधर मधु मधुपनि पीवत ही रुचित रुचिर पिक रुत सुरु सागरी।—केशव। (२) शब्द। ध्वनि।

रुतबा-संज्ञा पुं० [अ०] (१) दरजा। मर्तबा। ओहदा। पद। (२) इज्ज़त। प्रतिष्ठा। बड़ाई।

क्रि० प्र०—घटाना।—पाना।—बढ़ाना।—मिलना।

रुदंतिका-संज्ञा स्त्री० दे० "रुदंती"।

रुदंती-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का छोटा क्षुप जिसे संजीवनी या महामांसी भी कहते हैं। वि० दे० "रुद्रवंती"।

रुदथ-संज्ञा पुं० [सं०] (१) कुत्ता। (२) छोटा बच्चा।

रुदन-संज्ञा पुं० [सं० रोदन] रोने की क्रिया। क्रंदन। रोना। विलाप करना। उ०—(क) हरि बिन को पुरवै मेरो स्वारथ। मुँडहि धुनत शीश कर मारत रुदन करत नृप पारथ।—सूर। (ख) सकल सुरभी यूथ दिन प्रति रुदनि पुर दिश धाइ।—सूर। (ग) आवत निकट हँसहिं प्रभु भाजत रुदन कराहिं। जाउँ समीप गहे पद फिरि फिरि चितइ पराहिं।—तुलसी।

रुद्राछ*†-संज्ञा पुं० दे० "रुद्राक्ष"।

रुदित-वि० [सं०] जो रो रहा हो। रोता हुआ। उ०—(क)

रुदित दक्ष की नारि गिरत ऋत्विज मुँह के थल।—बाल-मुकुंद गुप्त। (ख) हित मुदित अनहित रुदित मुख छबि कहत कवि धनु जाग की—तुलसी।

रुदुआ†-संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का धान जो अगहन के महीने में तैयार होता है और जिसका चावल सालों तक रह सकता है।

रुद्ध-वि० [सं०] (१) जो किसी चीज़ से घेरकर रोका गया हो। घेरा हुआ। रोका हुआ। वेष्टित। आवृत्त। उ०—(क) तिमि सोहैं यमुना की धारा। गंग प्रवाह रुद्ध परिचारा।—स्वामी रामकृष्ण। (ख) रुद्ध सर्प से क्रुद्ध हिये मागधै विद्ध करि।—गिरधर। (२) जिसमें कोई चीज़ अड़ या फँस गई हो। मुँदा हुआ। बंद। (३) जिसकी गति रोक ली गई हो।

यौ०—रुद्धकंठ = जिसका गला रुँध गया हो। जो प्रेम आदि मनोवेगों के कारण बोलने में असमर्थ हो गया हो।

रुद्धक-संज्ञा पुं० [सं०] नमक।

रुद्धमूत्र-संज्ञा पुं० [सं०] मूत्रकृच्छ्र नामक रोग।

रुद्र-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्रकार के गणदेवता जिनकी उत्पत्ति सृष्टि के आरंभ में ब्रह्मा की भौंहों से हुई थी। ये क्रोध रूप माने जाते हैं और भूत, प्रेत, पिशाच आदि इन्हीं के उत्पन्न हुए कहे जाते हैं। ये कुल मिलाकर ग्यारह हैं जिनके नाम इस प्रकार हैं—अज, एकपाद, अहिर्ब्रध्न, पिनाकी, अपराजित, त्र्यंबक, महेश्वर, वृषाकपि, शंभु, हरण और ईश्वर। गरुड़ पुराण में इनके नाम इस प्रकार हैं—अजैकपाद, अहिर्ब्रध्न, त्वष्टा, विश्वरूपहर, बहुरूप, त्र्यंबक, अपराजित, वृषाकपि, शंभु, कपर्दी और रैवत। कूर्म पुराण में लिखा है कि जब आरंभ में बहुत कुछ तपस्या करने पर भी ब्रह्मा सृष्टि न उत्पन्न कर सके, तब उन्हें बहुत क्रोध हुआ और उनकी आँखों से आँसू निकलने लगे। उन्हीं आँसुओं से भूतों और प्रेतों आदि की सृष्टि हुई; और तब उनके मुख से ग्यारह रुद्र उत्पन्न हुए। ये उत्पन्न होते ही ज़ोर ज़ोर से रोने लगे थे, इसलिये इनका नाम रुद्र पड़ा था। इसी प्रकार और भी अनेक पुराणों में इसी प्रकार की कथाएँ हैं। वैदिक साहित्य में अग्नि को ही रुद्र कहा गया है और यह माना गया है कि यज्ञ का अनुष्ठान करने के लिये रुद्र ही यज्ञ में प्रवेश करते हैं। यहाँ रुद्र को अग्निरूपी, सृष्टि करनेवाला और गरजनेवाला देवता कहा गया है, जिससे वज्र का भी अभिप्राय निकलता है। इसके अतिरिक्त कहीं कहीं "रुद्र" शब्द से इंद्र, मित्र, वरुण, पूषन और सोम आदि अनेक देवताओं का भी बोध होता है। एक जगह रुद्र को मरुद्गण का पिता और दूसरी जगह अंबिका का भाई भी कहा गया है। इनके तीन नेत्र बतलाए गए हैं और ये सब लोकों का नियंत्रण करनेवाले तथा शत्रुओं का ध्वंस करनेवाले कहे गये हैं। (२) ग्यारह की संख्या। उ०—तेहि मधि कुश करि विटप सुहावा। रुद्र सहस्र योजन कर गावा।—विश्राम। (३) शिव का एक रूप। कहा गया है कि इसी रूप में इन्होंने कामदेव को भस्म किया था, दक्ष के यज्ञ का नाश किया था, उमा और गंगा आदि के साथ विवाह किया था आदि। उ०—(क) रुद्रहिं देखि मदन भय माना। दुराधर्ष दुर्गम भगवाना।—तुलसी। (ख) केशव बरणहुँ युद्ध में योगिनि गण युत रुद्र।—केशव। (ग) रुद्र के चित्त समुद्र बसैं नित ब्रह्महुँ पै बरणी जो न जाई।—केशव। (घ) दशरथ सुत द्वेषी रुद्र ब्रह्मा न भासै। निशिचर बपुरा भू क्यों नस्यो मूल नासै।—केशव। (४) विश्वकर्मा के एक पुत्र का नाम। (५) प्राचीन काल का एक प्रकार का बाजा। (६) मदार का पेड़। आक। (७) रौद्र रस। उ०—प्रथम शृंगार सुहास्य रस करुणा रुद्र सुबीर। भय बीभत्स बखानिये अद्भुत शांत सुधीर।—केशव।

वि० भयंकर। डरावना। भयानक। उ०—हम बूड़त हैं विपदा समुद्र। इन राखि लियो संग्राम-रुद्र।—केशव।

रुद्रक†-संज्ञा पुं० [सं० रुद्राक्ष] रुद्राक्ष। उ०—मेलक ब्रह्म कपालनि की यह नूपुर रुद्रक माल रँधे जू।—केशव।

रुद्रकलस-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का कलस जिसका उपयोग ग्रहों आदि की शांति के समय होता है।

रुद्रकाली-संज्ञा स्त्री० [सं०] शक्ति या दुर्गा की एक मूर्त्ति का नाम।

रुद्रकुंड-संज्ञा पुं० [सं०] ब्रज के एक तीर्थ का नाम।

रुद्रकोटि-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन तीर्थ का नाम।

रुद्रगण-संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार शिव के पारिषद जिनकी संख्या १०००००००० और किसी किसी के मत ३६००००००० है। कहते हैं कि ये सब जटा धारण किए रहते हैं; इनके मस्तक पर अर्द्धचंद्र रहता है; ये बहुत बलवान होते हैं; और योगियों के योग साधन में पड़नेवाले विघ्न दूर करते हैं।

रुद्रगर्भ-संज्ञा पुं० [सं०] अग्नि। आग।

रुद्रज-संज्ञा पुं० [सं०] पारा।

रुद्रजटा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) इसरौल। ईसरमूल। (२) सौंफ। (३) तीन चार हाथ ऊँचा एक प्रकार का क्षुप जिसके पत्ते मयूरशिखा के पत्तों के समान होते हैं। इसके पत्ते पहले तो बड़े होते हैं; पर ज्यों ज्यों क्षुप बढ़ता जाता है, त्यों त्यों ये छोटे होते जाते हैं। इसमें लाल रंग के बहुत सुंदर फल लगते हैं, जिनका आकार प्रायः जटा के समान हुआ करता है। इसके बीज मरसा के बीजों के समान काले और चमकीले होते हैं। वैद्यक में रुद्रजटा कटु और श्वास, कास, हृदय रोग तथा भूत-प्रेत की बाधा दूर करनेवाली मानी गई है।

पर्य्या०—रौद्री। जटा। रुद्रा। सौम्या। सुगंधा। घना। ईश्वरी। रुद्रलता। सुपत्रा। सुगंधपत्रा। सुरभि। शिवाह्वा। पत्रवल्ली। जटावल्ली। रुद्राणी। नेत्रपुष्करा। महाजटा। जटरुद्रा।

रुद्रट–संज्ञा पुं० [सं०] साहित्य के एक प्रसिद्ध आचार्य जिनका बनाया हुआ 'काव्यालंकार' ग्रंथ बहुत प्रसिद्ध है। ये रुद्र-भट्ट और शतानंद भी कहलाते थे। इनके पिता का नाम भट्ट वामुक था।

रुद्रतनय–संज्ञा पुं० [सं०] जैन हरिवंश के अनुसार तीसरे श्रीकृष्ण का एक नाम।

रुद्रताल–संज्ञा पुं० [सं०] मृदंग का एक ताल जो सोलह मात्राओं का होता है। इसमें ११ आघात और ५ खाली होते

\+ ० १

हैं। इसका बोल इस प्रकार है—धा धिन धा दित धेत्ता

२ ० १ २ ३ ० १ ०

देत्ता खुनखुन धा धा केटे ताग् देन्ता कड़ान् धाग्धा ता देत

१ २ ३ ४ ० +

ताग देत ताक कड़ान् तेरे केटे ताग् खून धा।

रुद्रतेज–संज्ञा पुं० [सं० रुद्रतेजस्] स्वामि कार्त्तिक। कार्त्तिकेय। उ०—अग्नि के फेंके हुए रुद्रतेज को गंगा जी ने, लोकपालों के बड़े प्रतापों से भरे हुए गर्भ को रानी ने राजा के कुल की प्रतिष्ठा के निमित्त धारण किया।— लक्ष्मण।

रुद्रत्व–संज्ञा पुं० [सं०] रुद्र का भाव या धर्म्म।

रुद्रपति–संज्ञा पुं० [सं०] शिव। महादेव। उ०—रुद्रपति छुद्रपति लोकपति वोकपति धरनिपति गगनपति अगम बानी।—सूर।

रुद्रपत्नी–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) दुर्गा का एक नाम। (२) अतसी। अलसी।

रुद्रपीठ–संज्ञा पुं० [सं०] तांत्रिकों के अनुसार एक पीठ या तीर्थ का नाम।

रुद्रपुत्र–संज्ञा पुं० [सं०] बारहवें मनु रुद्रसावर्णि का एक नाम।

रुद्रप्रमोद–संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार वह स्थान जहाँ से शिवजी ने त्रिपुरासुर पर बाण चलाया था।

रुद्रप्रयाग–संज्ञा पुं० [सं०] हिमालय के एक तीर्थ का नाम जो गढ़वाल जिले में है।

रुद्रप्रिया–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) पार्वती। (२) हर्रें।

रुद्रभद्र–संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार एक नद का नाम।

रुद्रभू–संज्ञा पुं० [सं०] श्मशान। मरघट।

रुद्रभूमि–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) ज्योतिष में एक प्रकार की भूमि। (२) श्मशान। मरघट।

रुद्रभैरवी–संज्ञा स्त्री० [सं०] दुर्गा की एक मूर्त्ति का नाम।

रुद्रयज्ञ–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का यज्ञ जो रुद्र के उद्देश्य से किया जाता है।

रुद्रयामल–संज्ञा पुं० [सं०] तांत्रिकों का एक प्रसिद्ध ग्रंथ जिसमें भैरव और भैरवी का संवाद है।

रुद्ररोदन–संज्ञा पुं० [सं०] स्वर्ण। सोना।

रुद्ररोमा–संज्ञा स्त्री० [सं०] कार्त्तिकेय की एक मातृका का नाम।

रुद्रलता–संज्ञा स्त्री० [सं०] रुद्रजटा नाम का क्षुप।

रुद्रलोक–संज्ञा पुं० [सं०] वह स्थान या लोक जिसमें शिव और रुद्रों का निवास माना जाता है।

रुद्रवंती–संज्ञा स्त्री० [सं० रुद्रवन्ती] एक प्रसिद्ध वनौषधि जिसकी गणना दिव्यौषधि वर्ग में होती है। यह प्रायः सारे भारत में और विशेषतः उष्ण प्रदेशों की बलुई जमीन में जलाशयों के पास और समुद्र तट पर अधिकता से होती है। इसके क्षुप प्रायः हाथ भर ऊँचे होते हैं और देखने में चने के पौधों के से जान पड़ते हैं। इसके पत्ते भी चने के पत्तों के समान ही होते हैं, शरद ऋतु में जिनमें से पानी की बूँदें टपका करती हैं। काले, पीले, लाल और सफेद फूलों के भेद से यह चार प्रकार की होती है। वैद्यक के अनुसार यह चरपरी, कड़वी, गरम, रसायन, अग्निजनक, वीर्य्यवर्धक और श्वास, कृमि, रक्तपित्त, कफ तथा प्रमेह को दूर करनेवाली होती है।

पर्य्या०—स्रवत्तोया। संजीवनी। अमृतस्रवा। रोमांचिका। महामांसी। चणकपत्री। सुधास्रवा। मधुस्रवा।

रुद्रवट–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन तीर्थ का नाम जिसका उल्लेख महाभारत में है।

रुद्रवत्–संज्ञा पुं० दे० "रुद्रवान्"।

रुद्रवदन–संज्ञा पुं० [सं०] महादेव के पाँच मुख। वि० पाँच की संख्या।

रुद्रवान्–वि० [सं० रुद्रवत्] रुद्रगणों से युक्त। संज्ञा पुं० (१) सोम। (२) अग्नि। (३) इंद्र।

रुद्रविंशति–संज्ञा स्त्री० [सं०] प्रभव आदि साठ संवत्सरों या वर्षों में से अंतिम बीस वर्षों का समूह, जिसे रुद्र बीसी भी कहते हैं।

रुद्रवीणा–संज्ञा स्त्री० [सं०] प्राचीन काल की एक प्रकार की वीणा।

रुद्रसर–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन तीर्थ का नाम।

रुद्रसावर्णि–संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार बारहवें मनु का नाम।

रुद्रसुंदरी–संज्ञा स्त्री० [सं०] देवी की एक मूर्त्ति का नाम।

रुद्रसू–संज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्त्री जिसने ग्यारह पुत्र उत्पन्न किए हों।

रुद्रस्वर्ग–संज्ञा पुं० दे० "रुद्रलोक"।

रुद्रहिमालय–संज्ञा पुं० [सं०] हिमालय पर्वत की एक चोटी का

नाम । यह चोटी चीन की ओर पूर्वी सीमा पर है और सदा बरफ से ढकी रहती है ।

रुद्रहृदय-संज्ञा पुं० [सं०] एक उपनिषद् का नाम जो प्राचीन दस उपनिषदों में नहीं है ।

रुद्रा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) रुद्रजटा नामक क्षुप । (२) नलिका नाम का गंधद्रव्य । विद्रुम लता । (३) अदितमंजरी । सुकवर्चा ।

रुद्राक्रीड़ा-संज्ञा पुं० [सं०] श्मशान । मरघट ।

रुद्राक्ष-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्रसिद्ध बड़ा वृक्ष जो नेपाल, बंगाल, आसाम और दक्षिण भारत में अधिकता से होता है । इसके पत्ते सात आठ अंगुल लंबे, दो तीन अंगुल चौड़े और किनारे पर कटावदार होते हैं । नए निकले हुए पत्तों पर एक प्रकार की मुलायम रोईं होती है, जो पीछे झड़ जाती है । जाड़े के दिनों में यह फूलता और वसंत ऋतु में फलता है । इसके फल के अंदर पाँच खाने होते हैं और प्रत्येक खाने में एक एक छोटा कड़ा बीज रहता है । (२) इस वृक्ष का बीज जो गोल और प्रायः छोटी मिर्च से लेकर आँवले तक के बराबर होता है । इस बीज पर छोटे छोटे दाने उभरे होते हैं । प्रायः शैव लोग इनमें छेद करके मालाएँ बनाते और गले या हाथ में पहनते हैं । इसकी माला पहनने और उससे जप करने का बहुत अधिक माहात्म्य माना जाता है । कहते हैं कि इन बीजों को काली मिर्च के साथ पीसकर पीने से शीतला का भय नहीं रहता । वैद्यक में इसे शीतल, बलकारी, ओजप्रद, कृमिनाशक और खाँसी तथा प्रसूत आदि में हितकारी माना है । रुद्राछ ।

पर्य्या०—शिवाक्ष । भूतनाशन । शिवप्रिय । पुष्पचामर ।

रुद्राणी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) रुद्र की पत्नी, पार्वती । शिवा । भवानी । (२) रुद्रजटा नाम की लता जिसकी पत्तियों आदि का व्यवहार ओषधि के रूप में होता है । (३) एक प्रकार की रागिनी जो कुछ लोगों के मत से मेघ राग की पुत्रवधू है; पर कुछ लोग इसे जैती, ललित, पंचम और लीलावती के मेल से बनी हुई संकर रागिनी भी मानते हैं ।

रुद्रारि-संज्ञा पुं० [सं०] कामदेव ।

रुद्रावर्त्त-संज्ञा पुं० [सं०] महाभारत के अनुसार एक प्राचीन तीर्थ का नाम ।

रुद्रावास-संज्ञा पुं० [सं०] काशी क्षेत्र, जिसमें रुद्र या शिव का निवास माना जाता है ।

रुद्रिय-वि० [सं०] (१) रुद्र संबंधी । रुद्र का । (२) आनंददायक । प्रसन्नता उत्पन्न करनेवाला ।

रुद्री-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की वीणा जिसे रुद्रवीणा भी कहते हैं ।

संज्ञा स्त्री० [सं० रुद्र + ई (प्रत्य०)] वेद के रुद्रानुवाक या अघमर्षण सूक्त की ग्यारह आवृत्तियाँ ।

रुद्रैकादशिनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] रुद्रानुवाकों (रुद्री) की या अघमर्षण सूक्त की ग्यारह आवृत्तियाँ । रुद्री ।

रुद्रोपनिषद्-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक उपनिषद् का नाम ।

रुद्रोपस्थ-संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार एक पर्वत का नाम ।

रुधिर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शरीर में का रक्त । शोणित । लहू । खून । मुहा० के लिये दे० "खून" के मुहा० । (२) कुंकुम । केसर । (३) मंगल ग्रह । (४) एक प्रकार का रत्न । वि० दे० "रुधिराख्य" ।

रुधिरगुल्म-संज्ञा पुं० [सं०] स्त्रियों का एक प्रकार का रोग । इससे पेट में शूल और दाह होता है और एक गोला सा घूमता है । इसमें पित्तगुल्म के सब चिह्न मिलते हैं और कभी कभी इससे गर्भ रहने का भी धोखा होता है । कहते हैं कि गर्भपात होने पर अनुचित आहार विहार करने के कारण ऋतु काल में वायु कुपित होती है, जिससे रक्त इकट्ठा होकर गोला सा बन जाता है ।

रुधिरपायी-संज्ञा पुं० [सं० रुधिरपायिन्] [स्त्री० रुधिरपायिनी] (१) वह जो रक्त पीता हो । लहू पीनेवाला । (२) राक्षस ।

रुधिरपित्त-संज्ञा पुं० [सं०] रक्तपित्त । नकसीर ।

रुधिरप्लीहा-संज्ञा स्त्री० [सं०] प्लीहा रोग का एक भेद । वैद्यक के अनुसार इसमें इंद्रियाँ शिथिल हो जाती हैं, शरीर का रंग बदल जाता है, अंग भारी और पेट लाल हो जाता है और भ्रम, दाह तथा मोह होता है ।

रुधिरवृद्धिदाह-संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक के अनुसार एक प्रकार का रोग जिसमें रक्त की अधिकता से सारे शरीर से धूआँ सा निकलता है और शरीर तथा आँखों का रंग ताँबे का सा हो जाता है और मुँह से लहू की गंध आती है ।

रुधिरांध-संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार एक नरक का नाम ।

रुधिराक्त-वि० [सं०] (१) लहू से तर या भीगा हुआ । खून से भरा हुआ । (२) लहू का सा लाल ।

रुधिराख्य-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का रत्न या मणि जिसकी गणना कुछ लोग उपरत्नों में और कुछ लोग रत्नों में करते हैं । इसका रंग बीच में बिलकुल सफेद और अगल बगल इंद्रनील या नीलम के समान होता है । कहते हैं कि यही रत्न पककर हीरा हो जाता है । यह भी माना जाता है कि जो इसे धारण करता है, उसे बहुत सुख और ऐश्वर्य्य प्राप्त होता है ।

रुधिरानन-संज्ञा पुं० [सं०] फलित ज्योतिष में मंगल ग्रह की एक वक्र गति । जब मंगल किसी नक्षत्र पर अस्त होकर उससे पंद्रहवें या सोलहवें नक्षत्र पर वक्री होता है, तब वह रुधिरानन कहलाता है ।

रुधिरामय-संज्ञा पुं० [सं०] रक्तपित्त नामक रोग।

रुधिराशन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) खर राक्षस का एक सेनापति, जिसे श्रीरामचंद्र ने मारा था। (२) राक्षस।
वि० रक्त ही जिसका आधार हो। रक्तपान करके जीनेवाला।

रुधिराशी-वि० [सं०] रक्त पान करनेवाला। लहू पीनेवाला। उ०—राक्षस संगहि सहस अठासी। भूरि भयंकर भट रुधिरासी।—रघुराज।

रुधिरोद्गारी-संज्ञा पुं० [सं० रुधिरोद्गारिन्] बृहस्पति के साठ संवत्सरों में से सत्तावनवाँ संवत्सर।

रुनझुन-संज्ञा स्त्री० [अनु०] नूपुर, मंजीर, किंकिणी आदि का शब्द। कलरव। झनकार। उ०—(क) कटि किंकिणी रुनझुन सुनि तन की हँस करत किलकारी।—सूर। (ख) रुचिर नूपुर किंकिनी मनु हरति रुनझुन करनि।—तुलसी। (ग) औरन के गान उन्हें कान न सुहात सुनै तेरे नूपुरन की अनूप रुनझुन है।—देव।

रुनित*-वि० [सं० रणित] शब्द करता हुआ। बजता हुआ। झनकार करता हुआ। उ०—(क) चरण रुनित नूपुर कटि किंकिणी कल कूजै।—सूर। (ख) रुनित भृंग घंटावली झरत दान मद नीर। मंद मंद आवतु चल्यो कुंजर कुंज समीर।—बिहारी।

रुनी-संज्ञा पुं० [देश०] घोड़े की एक जाति। उ०—काल्हनी सन्दली स्याह कनैता रुनी। सुकुरा और दुवाज योरता है है छवि दूनी।—सूदन।

रुनुकझुनुक-संज्ञा स्त्री० [अनु०] नूपुर आदि का रुनझुन शब्द। झनझनाहट। झनकार। उ०—रुनुक झुनुक नूपुर बाजत पग यह अति है मनहरनी।—सूर।

रुनुझुनु-संज्ञा पुं० [अनु०] नूपुर या किंकिणी आदि का शब्द। झनकार। उ०—झनुझुनु रुनुझुनु नूपुर सुनके कनकन के प्रभु पायन में।—देवस्वामी।

रुनुल-संज्ञा पुं० [देश०] सिकम और हिमालय में होनेवाला एक प्रकार का बेत जो झाड़ के रूप में होता है।

रुपना-क्रि० अ० [हिं० रोपना का अकर्मक] (१) रोपा जाना। ज़मीन में गाड़ा या लगाया जाना। जमना। जैसे,—धान रुपना। (२) डटना। अड़ना। उ०—(क) जो रन में रुपि रुद्र रिझायौ। शशी कौ सिर काटि चढ़ायौ।—लाल। (ख) पर्‌यो जोर बिपरीत रति रुपी सुरत रनधीर। करति कोलाहल किंकिनी गह्यौ मौन मंजीर।—बिहारी।

रुपया-संज्ञा पुं० [सं० रूप्य] (१) भारत में प्रचलित चाँदी का सब से बड़ा सिक्का जो सोलह आने का होता है। यह तौल में दस मासे का होता है।
मुहा०—रुपया उठाना = रुपया खर्च करना। रुपया ठीकरी करना = रुपये का अपव्यय करना।
(२) धन। संपत्ति।
मुहा०—रुपया उड़ाना = खूब धन खरचना। रुपया जोड़ना = धन संचय करना। रुपया पानी में फेंकना = व्यर्थ खर्च करना। दौलत बरबाद करना।
यौ०—रुपया पैसा = धन संपत्ति।

रुपहरा †-वि० दे० "रुपहला"।

रुपहला-वि० [हिं० रुपा = चाँदी + हला (प्रत्य०)] [स्त्री० रुपहली] चाँदी के रंग का। चाँदी का सा। जैसे,—रुपहला गोटा, रुपहला काम।

रुपहला रंग-संज्ञा पुं० [हिं० रुपहला + रंग] भड़भाँड़ के काँटों से बचने का संकेत। (कहार)

रुपा †-संज्ञा पुं० दे० "रुपया"।

रुपिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] आक। मदार।

रुपैया ‡-संज्ञा पुं० दे० "रुपया"।

रुपौला †-वि० दे० "रुपहला"।

रुबाई-संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) उर्दू या फारसी की एक प्रकार की कविता जिसमें चार मिसरे होते हैं। (२) एक प्रकार का रंगीन या चलता गाना।

रुबाई यमन-संज्ञा पुं० [हिं० रुबाई + यमन] एक शालक राग जिसके साथ कौवाली का ठेका बजाया जाता है।

रुमंच*-संज्ञा पुं० दे० "रोमांच"।

रुमण-संज्ञा पुं० [सं०] रामायण के अनुसार एक वानर जो सौ करोड़ वानरों का यूथपति था।

रुमन्वान-संज्ञा पुं० [सं० रुमन्वत्] (१) महाभारत के अनुसार एक प्राचीन ऋषि का नाम। (२) पुराणानुसार एक पर्वत का नाम।

रुमांचित*-वि० दे० "रोमांचित"।

रुमा-संज्ञा स्त्री० [सं०] वाल्मीकि के अनुसार सुग्रीव की पत्नी का नाम।

रुमाल-संज्ञा पुं० दे० "रूमाल"।

रुमाली-संज्ञा स्त्री० [फ़ा० रूमाल] (१) एक प्रकार का लँगोट जिसमें कपड़े के एक छोटे तिकोने टुकड़े के दोनों ओर दो लंबे बंद और तीसरे कोने पर, जो नीचे की ओर होता है, एक लंबी पतली पट्टी टँकी होती है। दोनों बंद कमर से लपेटकर बाँध लिए जाते हैं और नीचे की पट्टी से आगे की ओर इंद्रिय ढककर उसे फिर पीछे की ओर उलटकर खोंस लेते हैं। प्रायः कुश्तीबाज लोग कसरत करने या कुश्ती लड़ने के समय इसे पहनते हैं। (२) मुगदर हिलाने का एक हाथ या प्रकार। इसका हाथ सिर के ऊपर से मुगदर

हुए और फेर पीठ के ऊपर के आधे ही भाग तक होता है। इसमें अधिक बल की आवश्यकता होती है।

रुमावली-संज्ञा स्त्री० दे० "रोमावली"।

रुराई-संज्ञा स्त्री० [हिं० रुरा] सुंदरता। उ०—मैं सब लिखि सोभा जो बनाई। सजल जलद तन बसन कनक रुचि उर बहु दाम रुराई।—सूर।

रुरु-संज्ञा पुं० [सं०] (१) काला हिरन। कस्तूरी मृग। (२) एक दैत्य का नाम जिसे दुर्गा ने मारा था। (३) पुराणानुसार एक प्रकार का बहुत ही क्रूर जंतु जिसे भार-शृंग भी कहते हैं। ऐसा प्रसिद्ध है कि इस लोक में जो लोग हिंसा करते हैं, उन्हें हिंसित प्राणी रुरु होकर रौरव नरक में काटते हैं। (४) एक प्रसिद्ध ऋषि जो प्रमति के पुत्र और च्यवन के पौत्र थे। कहते हैं कि जब इनकी स्त्री प्रमद्वरा का देहांत हो गया, तब इन्होंने उसे अपनी आधी आयु देकर जिलाया था। (५) विश्वेदेवा के अंतर्गत देवताओं का एक गण। (६) सावर्णि मनु के सप्तर्षियों में से एक का नाम। (७) एक भैरव का नाम। (८) एक फलदार वृक्ष का नाम।

रुरुआ-संज्ञा पुं० [हिं० ररना, रुरुआ] बड़ी जाति का उल्लू जिसकी बोली बड़ी भयावनी होती है। (प्रवाद है कि यह कभी कभी किसी का नाम सुनकर रटने लगता है और वह आदमी मर जाता है। इसका बोलना लोग बहुत अशुभ मानते हैं।) उ०—रुरुआ चहुँ दिसि ररत, डरत सुनिकै नर नारी।—हरिश्चंद्र।

रुरुक्षु-वि० [सं०] चिकना का उलटा। रूखा। रूक्ष। उ०—काल जिरुक्षु रुरुक्षु कृपा की खपावन खक्ष खपक्ष प्रियादी।—रघुराज।

रुरुभैरव-संज्ञा पुं० [सं०] तांत्रिकों के अनुसार एक प्रकार के भैरव जिनका पूजन दुर्गा के पूजन के समय किया जाता है।

रुरुमुंड-संज्ञा पुं० [सं०] एक पर्वत का नाम।

रुलना†-क्रि० अ० [सं० लुलन=इधर उधर डोलना] इधर उधर मारा फिरना। आवारा फिरना। खराब होना।

रुलाई-संज्ञा स्त्री० [हिं० रोना+आई (प्रत्य०)] (१) रोने की क्रिया या भाव। (२) रोने की प्रवृत्ति।

क्रि० प्र०—आना।—छूटना।

रुलाना-क्रि० स० [हिं० रोना का प्रे०] दूसरे को रोने में प्रवृत्त करना। उ०—उस कहने ने सब को रुला दिया।—सुधाकर।

क्रि० स० [हिं० रुलना का स०] (१) इधर उधर फिराना (२) नष्ट करना। मिट्टी खराब करना।

रुला, रुलाई-संज्ञा स्त्री० [देश०] वह भूमि जिसकी उपजाऊ शक्ति कम हो गई हो और जिसे परती छोड़ने की आवश्यकता हो।

रुल्ली-संज्ञा स्त्री० [देश०] रोहिणी की तरह की एक प्रकार की वनस्पति जो उससे कुछ छोटी होती है।

रुवा†-संज्ञा पुं० [हिं० रोवाँ] सेमल के फूल के अंदर से निकला हुआ धूआ। भूआ। उ०—का सेमर के साख बढ़ाये फूल अनूपम बानी। केतिक चात्रिक लागि रहे हैं चाखत रुवा उड़ानी।—कबीर।

रुवाई-संज्ञा स्त्री० दे० "रुलाई"।

रुवाब-संज्ञा पुं० दे० "रौब"।

रुशंगु-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन ऋषि का नाम जो रुशंगु भी कहे जाते थे।

रुशद्गु-संज्ञा पुं० दे० "रुशंगु"।

रुशना-संज्ञा स्त्री० [सं०] भागवत के अनुसार रुद्र की एक पत्नी का नाम।

रुष-संज्ञा पुं० [सं०] क्रोध। गुस्सा। उ०—दैत्य होइ ऋषि सरुष बखाना।—गिरधर।

संज्ञा पुं० दे० "रुख"।

रुषा-संज्ञा स्त्री० [सं०] क्रोध। कोप। गुस्सा।

रुषित-वि० [सं०] (१) क्रुद्ध। नाराज़। (२) रंजीदा। दुःखी।

रुष्कर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) भिलावाँ। (२) कस्तूरी मृगी। मैनाँ।

रुष्ट-वि० [सं०] जिसे रोष हुआ हो। क्रुद्ध। अप्रसन्न। नाराज़। कुपित।

रुष्टता-संज्ञा स्त्री० [सं०] रुष्ट होने का भाव। नाराज़गी। अप्रसन्नता।

रुष्ट पुष्ट-वि० दे० "हृष्टपुष्ट"।

रुष्टि-संज्ञा स्त्री० [सं०] कोप। क्रोध। गुस्सा।

रुसना*-क्रि० अ० दे० "रूसना"।

रुसवा-वि० [फा०] जिसकी बहुत बदनामी हो। निंदित। जलील।

रुसवाई-संज्ञा स्त्री० [फा०] रुसवा होने का भाव। अपमान और दुर्गति। कुत्सा और निंदा। ज़िल्लत।

रुसा-संज्ञा स्त्री० दे० "रूसा"।

संज्ञा पुं० दे० "अडूसा"।

रुसित*-वि० [सं० रुषित] रुष्ट। अप्रसन्न। नाराज़। उ०—गदासासन पै करत रुसित दासन भरि गाँसन। ज्वलित हुतासन सरिस भरत परकासन भासन।—गोपाल।

रुसूम-संज्ञा पुं० दे० "रसूम"।

रुस्ट*-वि० दे० "रुष्ट"।

रुस्तम-संज्ञा पुं० [फा०] (१) फारस का एक प्रसिद्ध प्राचीन पहलवान जिसकी गणना संसार के बहुत बड़े बड़े पहलवानों में होती है। इसका समय ईसा से लगभग नौ सौ वर्ष पहले माना जाता है।

मुहा॰—रुस्तम का साला=बहुत बड़ा वीर। बहुत बहादुर। (व्यंग्य)

(२) वह जो बहुत बड़ा वीर हो।

मुहा॰—छिपा रुस्तम=वह जो देखने में सीधा सादा पर वास्तव में किसी काम में बहुत वीर हो।

रुहक-संज्ञा पुं॰ [सं॰] छेद। सूराख।

रुहठि†-संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ रोहट=रोना।] रूठने की क्रिया या भाव। उ॰—रुहठि करै तासों को खेलै रहे पौढ़ि जहँ तहँ सब ग्वैयाँ।—सूर।

रुहा-संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] (१) दूब। (२) ककही। अतिबला। (३) मांसरोहिणी नाम की लता। (४) लजालू। लज्जावंती।

रुहिर-संज्ञा पुं॰ [सं॰ रुधिर, प्रा॰ रुहिर] लहू। रक्त। खून। उ॰—रुहिर चुअइ जो जो कह बाता। भोजन बिन भोजन मुख राता।—जायसी।

रुहेलखंड-संज्ञा पुं॰ [सं॰] अवध के उत्तर-पश्चिम पड़नेवाला प्रदेश जहाँ रुहेले पठान बसे थे।

रुहेला-संज्ञा पुं॰ [हिं॰ रुहेलखंड] पठानों की एक जाति जो प्रायः रुहेलखंड में बसी हुई है।

रूँख-संज्ञा पुं॰ दे॰ "रूख"।

रूँखड़-संज्ञा पुं॰ [हिं॰ रूखा] एक प्रकार के भिक्षुक जो दरियाई नारियल का खप्पर लेकर 'अलख' कहकर भीख माँगते हैं और कमर में एक बड़ा सा घुँघरू बाँधे रहते हैं। इनका एक और भेद होता है जो गूदड़ कहलाता है। ये कहीं अड़कर भिक्षा नहीं माँगते, केवल तीन बार "अलख" कहकर ही आगे बढ़ जाते हैं।

संज्ञा पुं॰ दे॰ "रूख"।

रूँगटा-संज्ञा पुं॰ दे॰ "रोंगटा"।

रूँगटाली†-संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ रूँगटा+वाली=वाली] भेंड़। गाडर।

रूँगा‡-संज्ञा पुं॰ [सं॰ रुक=उदारता] किसी सौदे का वह थोड़ा भाग जो खरीदनेवाले को बेचनेवाला अंत में अधिक दे दिया करता है। घाल। घलुआ। झूँगा।

रूँदना-क्रि॰ स॰ दे॰ "रौंदना"।

रूँध-वि॰ [सं॰ रुद्ध] रुका हुआ। अवरुद्ध। उ॰—बाढ़त तो उर उरज भर भर तरुनई विकास। बोझनि सौतनि के हिये आवतु रूँध उसास।—बिहारी।

रूँधना-क्रि॰ स॰ [सं॰ रुंधन] (१) किसी स्थान या वस्तु को बाहरवालों के आक्रमण से बचाने के लिये उसके चारों ओर कँटीले झाड़ आदि लगाना। कँटीले झाड़ आदि से घेरना। बाढ़ लगाना। उ॰—जर तुम्हारि चह सवति उखारी। रूँधहु करि उपाउ बर बारी।—तुलसी। (२) किसी पदार्थ को चारों ओर से इस प्रकार घेरना कि वह बाहर न जा सके। रोकना। छेकना। जैसे,—नाप रूँधना। (३) गमनागमन का मार्ग बंद करना। जैसे,—राह रूँधना, द्वार रूँधना आदि। उ॰—बबुर बहेरे को बनाइ बाँग लाइयत रूँधिबे को सोई सुरतरु काटियतु है।—तुलसी।

रू-संज्ञा पुं॰ [फा॰] (१) मुँह। चेहरा। (२) द्वार। कारण। (३) आशा। उम्मेद। (४) ऊपरी भाग। सिरा। (५) आगा। सामना।

यौ॰—रूबदस्त=बाहर भीतर। आगे पीछे। दोनों ओर। रू-रिआयत=(१) पक्षपात। (२) मुरौवत। शील संकोच।

मुहा॰—रू से=अनुसार। जैसे,—ईमान की रू से तुम्हीं बतलाओ कि क्या बात है।

रूई-संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ रोम=प्रा॰ रोवँ=हिं॰ रोवाँ, रोईं] (१) कपास के डोडे या कोश के अंदर का घूआ।

विशेष—यह डोडा पककर चिटकने पर ऊन के लच्छे की तरह बाहर निकलता है। इसके रेशे कोमल और घुँघराले होते हैं, जो बीज के ऊपर चारों ओर लगे होते हैं और जिनके अंदर बीज लिपटे रहते हैं। मोटी और बारीक के भेद से रूई अनेक प्रकार की होती है। कितनी रूइयाँ तो रेशम की भाँति कोमल और चिकनी होती हैं। ढेंढ़ या डोडे से फूटकर बाहर निकलने पर रूई इकट्ठी की जाती है। इसके बाद सूख जाने पर लोग इसे ओटनी में ओटकर बीजों से अलग करते हैं। ओटी हुई रूई धुनी जाती है जिससे उसमें जो बचे खुचे बीज रहते हैं, अलग हो जाते हैं और उसके रेशे फूटकर खुल जाते हैं। इस रूई से पेंडरी या पूनी बनाई जाती है, जिससे सूत काता जाता है। धुनी हुई रूई गद्दे आदि में भरी जाती है; और उससे सूत कातकर कपड़े बुनते हैं। इसका प्रयोग रासायनिक रीति से बारूद बनाने में भी होता है। रूई को शोरे के तेजाब में गलाते हैं, जिससे यह अत्यंत विस्फोटक हो जाता है। इसे 'गन काटन' कहते हैं और उत्तम बारूद में इसका प्रयोग होता है। इस 'गन-काटन' को ईथर या ईथर मिले हुए अलकोहल में मिलाने से एक प्रकार का लेस बनता है। इस लेस को 'कलोडीन' कहते हैं। यह घाव पर तुरंत लगाने जाने पर झिल्ली की तरह सूखकर उसे जोड़ देता है। कलोडीन में थोड़ी सी मात्रा ब्रोमाइड और आयोडाइड की मिलाकर शीशे पर लगाकर फोटो के लिये गीला 'प्लेट' बनाया जाता है। हिंदुस्तान में रूई के कपड़े का प्रचार वैदिक काल से चला आता है। ब्राह्मण और गृह्य सूत्रों में तो इसके यज्ञोपवीत और वस्त्र का विधान वर्ण भेद से स्पष्ट देखा जाता है; पर युरोप में इसके कपड़े का प्रचार कुछ ही शताब्दियों से हुआ है। सूत के लिये उत्तम रूई वही समझी जाती है, जिसके रेशे लंबे और दृढ़ होने पर भी पतले और चमकीले होते हैं।

उ०—हरि हरि कहत पाप पुनि जाइ। पवन लागि ज्यों रूई उड़ाई।—सूर।

क्रि० प्र०—धुनना।—धुनना।—धुनकना।

पर्य्या०—तूल। पिचु।

मुहा०—रूई का गाला = रूई के गाले की तरह कोमल या सफ़ेद। रूई की तरह तूम डालना = (१) अच्छी तरह नोचना। (२) बहुत मारना। पीटना। (३) गालियाँ देना। बखानना। (४) अच्छी तरह छान बीन करना। रूई की तरह धुनना = खूब मारना। अच्छी तरह पीटना। रूई सा—रूई की भाँति नरम। कोमल। जैसे,—रूई से हाथ पाँव। अपनी रूई सूत में उलझना या लिपटना = अपने काम में लगना। अपने काम काज में फँसना।

(२) इसी प्रकार का कोई रोआँ। विशेषतः बीजों के ऊपर का रोआँ।

रूईदार-वि० [हिं० रूई + फा० दार (प्रत्य०)] जिसमें रूई भरी गई हो। जैसे,—रूईदार अंगा, रूईदार बंडी।

रूक-संज्ञा स्त्री० [सं० रुक्मा] तलवार। (डिं०)

संज्ञा पुं० [सं० रुक = उदार] हूँगा। पलुआ। घाल।

संज्ञा पुं० [सं० वृक्ष, प्रा० रुक्ख] एक प्रकार का पेड़ जिसकी पत्तियाँ ओषधि के रूप में काम आती हैं और पचपानड़ी के साथ मिलकर बिकती हैं।

रूक्ष-वि० [सं०] [स्त्री० रूक्षा] जो चिकना या कोमल न हो। रूखा। स्निग्ध का उलटा।

रूख-संज्ञा पुं० [सं० वृक्ष, प्रा० रुक्ख] पेड़। वृक्ष। उ०—(क) ऊपर ताल चहूँ दिस अमृत फल सब रूख। देखि रूप सरवर कै गा पियास औ भूख।—जायसी। (ख) रूख कलपतरु सागर खारा। तेहि पठये बन राजकुमारा।—तुलसी। (ग) बन डोंगर ढूँढ़त फिरी घर मारग तजि गाउँ। बूझौं द्रुम प्रति रूख ए, कोउ कहै न पिय को नाउँ।—सूर।

वि० दे० "रूखा"।

रूखड़ा‡-संज्ञा पुं० [हिं० रूख + ड़ा] पेड़। वृक्ष। उ०—कबिरा माया रूखड़ा दो फल की दातार। खावत खरचत मुक्ति भये संचत नरक दुवार।—कबीर।

रूखना*-क्रि० अ० [सं० रुष] रूसना। रूठना।

रूखरा-संज्ञा पुं० दे० "रूखड़ा"।

वि० दे० "रूखा"।

रूखा-वि० [सं० रूक्ष, प्रा० रुक्ख] (१) जो चिकना न हो। जिसमें चिकनाहट का अभाव हो। चिकना का उलटा। अस्निग्ध। जैसे,—रूखा बाल, रूखा शरीर। (२) जिसमें घी, तेल आदि चिकने पदार्थ न पड़े हों। जैसे,—रूखी रोटी। रूखी दाल। (३) जो चरपरा न हो। जो खाने में रुचिकर और स्वादिष्ट न हो। फीका। उ०—(क) कैसे सहब खिनहिं खिन भूखा। कैसे खाब कुरकुटा रूखा।—जायसी। (ख) जग में जीवन ही को नातो। मन बिछुरे तन छार होइगो कोउ न बात पुछातो। मैं मेरी कबहूँ नहिं कीजै कीजै पंच-सुहातो। विषयासक्त रहत निसि बासर सुख सीरो दुख तातो। साँच झूठ करि माया जोरी आपुन रूखो खातो। सूरदास कछु थिर नहिं रहिहै जो आयो सो जातो।—सूर।

मुहा०—रूखा सूखा = जिसमें चिकना और चरपरा पदार्थ न हो। बिना घी और चरपटे पदार्थों के। जैसे,—रूखा सूखा जो मिला, वही खाकर पड़ रहा।

(४) जिसमें रस न हो। सूखा। शुष्क। नीरस। (५) जिसका तल सम न हो। खुरदुरा। जैसे,—यह कागज़ कुछ रूखा दिखाई पड़ता है।

यौ०—रूखा माल = नक्काशी किया हुआ बरतन। (कसेरा)

(६) जिसमें प्रेम न हो। स्नेह-रहित। नीरस। फीका। उदासीन। उ०—(क) रूखे रूखे जे रहत नेह पास नहिं लेत। उनतें वे मखियाँ भली नेह परसि जिय देत।—रसनिधि। (ख) सतर भौंहैं रूखे बचन करत कठिन मन नीठि। कहा करौं ह्वै जाति हरि हेरि हँसौंहीं दीठि।—बिहारी। (ग) मीता तू चाहत कियो रूखी बतियन जोत। नेह बिनाही रोशनी देखी सुनी न होत।—रसनिधि। (घ) चितवन रूखे दृगनि की हाँसी बिनु मुसकान। मान जनायो मानिनी जानि लियो पिय जान।—बिहारी (ङ) ये ही नैन रूखे से लगत और लोगन को वेई नैन लागत सनेह भरे नाह के।—मतिराम। (७) परुष। कठोर। उ०—(क) मुख रूखी बातें कहै जिय में पी की भूख। धीर अधीरा जानिये जैसे मीठी ऊख।—केशव। (ख) उतर न देइ दुसह रिस रूखी। मृगिन्ह चितव जनु बाघिन भूखी।—तुलसी।

मुहा०—रूखा पड़ना या होना = (१) बेमुरौवती करना। शील संकोच का त्याग करना। (२) क्रुद्ध होना। नाराज होना। तेज प्रकट करना। तीखा पड़ना। उ०—(क) पूँछे क्यों रूखी परति सग बग रही सनेह। मनमोहन छबि पर कटी कहै कट्यानी देह।—बिहारी। (ख) मोहन देहु भए ये रूखे। यह सुनिकै हँसे वे रूखे।—सूर।

(८) उदासीन। विरक्त। उ०—(क) गाहक राम राम के भूखे। धरम धुरीन विषय-रस रूखे।—तुलसी। (ख) सजल नयन कछु मुख करि रूखा। चितइ मातु लागी अति भूखा।—तुलसी। (ग) रूखे ह्वै मिस रोष मुख कहति रुखौंहैं बैन। रूखे कैसे होत हैं नेह चीकने नैन।—बिहारी। (घ) रूखी सी ऐंठनि दै दै कबहूँ मुसकाय चितौति न मौंहैं। (ङ) रति से रूखी है जहाँ दुरस दिखावै बाम। धीरा धीर अधीर तिय ताहि कहत रसधाम।—पद्माकर। (च) नेह करो

से ये बदन चिकने सरस दिखाइ। नेह लगाये भावतो क्यों रूखो होइ जाइ।—रसनिधि

संज्ञा पुं० एक प्रकार की छेनी।

रूखापन-संज्ञा पुं० [हिं० रूखा+पन (प्रत्य०)] (१) रूखे होने का भाव। रुखाई। (२) खुरकी। नीरसता। (३) कठोरता। (व्यवहार की) (४) उदासीनता। (५) स्वादहीनता।

रूखना॥-क्रि० स० दे० "रुचना"। उ०—चले निषाद जोहारि जोहारी। सूर सकल रन रुचइ रारी।—तुलसी।

रूज-संज्ञा पुं० [अं०] एक प्रकार की बुकनी जिसे मलकर सोना, चाँदी आदि धातुओं की चीजों पर जिला किया जाता है। यह तूतिए या हीरा कसीस से बनाया जाता है। पहले तूतिए या कसीस को आग पर तपाते हैं; और जब वह जल जाता है, तब उसे बारीक पीस डालते हैं। कभी कभी तूतिए को पानी में गलाकर और निथार तथा धोकर फूँकने से भी रूज बनता है। यह जौहरियों के काम आता है। रूज में खड़िया भी मिलाई जाती है। खड़िया और पारा मिलाकर रूज से बरतन पर जिला या कलई की जाती है।

रूझना॥-क्रि० अ० दे० "अरुझना" या "उलझना"। उ०—निज अवगुन गुन राम रावरे, लखि सुनि मति मन रूझै।—तुलसी।

रूठ*-संज्ञा स्त्री० [सं० रुष्टि=प्रा० रुट्ठि] (१) रूठने की क्रिया या भाव। (२) क्रोध। कोप।

रूठन-संज्ञा स्त्री० [हिं० रूठना] रूठने की क्रिया या भाव। नाराज़गी। उ०—भजनि, मिलनि, रूठनि, तूठनि, किलकनि, अवलोकनि, बोलनि बरनि न जाई।—तुलसी।

रूठना-क्रि० अ० [सं० रुष्ट, प्रा० रुट्ठ+ना (प्रत्य०)] किसी से अप्रसन्न होकर कुछ समय के लिये संबंध छोड़ना। नाराज़ होना। रूसना। उ०—(क) कबीर ते नर अंध हैं गुरु को कहते और। हरि के रूठे ठौर है गुरु रूठे नहिं ठौर।—कबीर। (ख) उलटि दृष्टि माया सों रूठी। पलट न फेरि जान कै झूठी।—जायसी। (ग) जेहि कृत कपट कनक मृग झूठा। अजहुँ सो दैव मोहिं पर रूठा।—तुलसी। (घ) रूठिबे को तूठिबे को मृदु मुसुकाइ कै बिलोकिबे को भेद कछू कह्यो न परतु है।—केशव।

संयो० क्रि०—जाना।—पड़ना।—बैठना।

रूठनि-संज्ञा स्त्री० दे० "रूठन"।

रूड-संज्ञा पुं० [अं०] लंबाई या विस्तार नापने का एक मान जो ५ गज का होता है।

रूड़, रूड़ो-वि० [हिं० रूरा] [स्त्री० रूड़ी] श्रेष्ठ। उत्तम। (डिं०) उ०—माइरे तेन्हो रूड़ो थाये। जे गुरु मुख मारगि जावे।—दादू।

रूढ़-वि० [सं०] [स्त्री० रूढ़ा] (१) चढ़ा हुआ। आरूढ़। (२) उत्पन्न। जात। (३) प्रसिद्ध। ख्यात। प्रचलित। जैसे,—इसका रूढ़ अर्थ यही है। (४) गँवार। उजड्ड। उ०— और गूढ़ कहा कहौं मूढ़ हौं जू जान जाहु, प्रौढ़ रूढ़ केशवदास नीके करि जाने हो।—केशव। (५) कठोर। कठिन। उ०— चाकी चली गोपाल की सब जग पीसा झारि। रूढ़ा शब्द कबीर का डारा चाक उखारि।—कबीर। (६) अकेला। अविभाज्य। जैसे,—रूढ़ संख्या।

संज्ञा पुं० अर्थानुसार शब्द का वह भेद जो दो शब्दों या शब्द और प्रत्यय के योग से बना हो, तथा जिसके खंड सार्थ न हों। यह यौगिक का उलटा है। रूढ़ि। जैसे,—कुब्जा, घोड़ा इत्यादि।

रूढ़यौवना-संज्ञा स्त्री० दे० "आरूढ़यौवना"।

रूढ़ा-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की लक्षणा। वह लक्षणा जो प्रचलित चली आती हो और जिसका व्यवहार प्रसिद्ध से भिन्न अभिप्राय व्यंजना के लिये न हो। प्रयोजनवती लक्षणा का उलटा।

रूढ़ि-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) चढ़ाई। चढ़ाव। (२) वृद्धि। बढ़ती। (३) उभार। उठान। (४) उत्पत्ति। जन्म। प्रादुर्भाव। (५) ख्याति। प्रसिद्धि। (६) प्रथा। चाल। रीति। (७) विचार। निश्चय। उ०—प्रौढ़ रूढ़ि कै सो मूढ़ गूढ़ गेह में गयो। सूक्त मंत्र सोधि सोधि होम को जहीं भयो।—केशव। (८) रूढ़ शब्द की शक्ति जिससे वह यौगिक न होने पर भी अपने अर्थ का बोध कराता है।

रूदाद-संज्ञा स्त्री० [फ़ा० रूएदाद] (१) समाचार। वृत्तांत। हाल। (२) दशा। अवस्था। हालत। (३) विवरण। कैफ़ियत। (४) व्यवस्था। (५) अदालत की कारवाई। कार्यक्रम। (६) मुकदमे का रंग ढंग। जैसे,—इस मुकदमे की रूदाद अच्छी नहीं जान पड़ती।

रूप-संज्ञा पुं० [सं०] (१) किसी पदार्थ का वह गुण जिसका बोध द्रष्टा को चक्षुरिंद्रिय द्वारा होता है। पदार्थ के वर्णों और आकृति का योग जिसका ज्ञान आँखों को होता है। शकल। सूरत। आकार।

विशेष—पदार्थों में एक शक्ति रहती है, जिससे उनका तेज इस प्रकार विकृत होता है कि जब वह आँखों पर लगता है, तब द्रष्टा को उस पदार्थ की आकृति, वर्णादि का ज्ञान होता है। इस शक्ति को भी रूप ही कहते हैं। दर्शन शास्त्रों में रूप को चक्षुरिंद्रिय का विषय माना है। वैशेषिक दर्शन में यह गुण माना गया है। सांख्य ने इसे पंचतन्मात्राओं में एक तन्मात्रा माना है। बौद्ध दर्शन में इसे पाँच स्कंधों में पहला स्कंध कहा है। महाभारत में सोलह प्रकार के गुण (ह्रस्व, दीर्घ, स्थूल, चतुरस्र, वृत्त, शुक्ल, कृष्ण, नीलारुण, रक्त, पीत, कठिन, चिक्कण, श्लक्ष्ण, पिच्छल, मृदु और दारुण)

रूप के भेद या प्रकार माने गए हैं। वेदांत दर्शन ने इसको एक प्रकार की उपाधि माना है और अविद्या-जनित लिखा है।

यौ०—रूपरेखा = आकार। शकल।

(२) स्वभाव। प्रकृति। (३) सौंदर्य्य। सुंदरता। उ०—मुनि मन हरण रूप अति मोरे। मोहिं तजि आनहिं वरहि न भोरे।—तुलसी।

मुहा०—रूप हरना = लज्जित करना। उ०—दीप सम दीपति उदीपति अनूप निज रूप कै सरूप रति रूपहि हरति है।—स्वंगार्थ।

यौ०—रूप रेखा = (१) चिह्न। उ०—कहा करौं नीके करि हरि को रूप रेख नहिं पावति।—सूर। (२) पता। निशान।

(४) शरीर। देह। उ०—(क) मसक समान रूप कपि धरी। लंका चले सुमिरि नर हरी।—तुलसी। (ख) जस जस सुरसा बदन बढ़ावा। तासु दून कपि रूप देखावा।—तुलसी।

क्रि० प्र०—धारण करना।—बनाना।—होना।

मुहा०—रूप लेना = रूप धारण करना। देह धरना। उ०—पाछे पृथु को रूप हरि लीनौं नाना रस दुहि काढ़े। तापर रचना रची विधाता बहु विधि यतन वाढ़े।—सूर।

(५) वेष। भेस। उ०—(क) दीठ बचाय कै जाइये कंत छये निज रावरो रूप बने हैं।—रघुनाथ। (ख) विप्र रूप धरि कपि तहँ गयऊ। माथ नाइ पूँछत अस भयऊ।—तुलसी।

क्रि० प्र०—करना।—धरना।—बनाना।

मुहा०—रूप भरना = (१) भेस बनाना। वेष धारण करना। जैसे,—यह बहुरूपिया अच्छा रूप भरता है। (२) स्वाँग रचना। मजाक या तमाशा खड़ा करना।

(६) दशा। अवस्था। देश काल का भेद। (७) शब्द या वर्ण का स्वरूप या उसका वह रूपांतर जो उसमें विभक्ति, प्रत्यय इत्यादि विकारों के लगने से बन जाता है।

क्रि० प्र०—लेना।—बनाना।

(८) समान। तुल्य। सदृश। अनुरूप। उ०—योरहु सुआ सिधारे माहीं। मोरे रूप कोउ जग माहीं।—जायसी। (९) भेद। विकार। (१०) चिह्न। लक्षण। आकार। जैसे,—(क) युरोप की लड़ाई भयंकर रूप धारण करती जाती थी। (ख) इसकी बीमारी का रूप अच्छा नहीं है। उ०—दय-माही के रूप से मिटयौ वरनि को रूप। ताही सों सब कहत हैं केशव रूपक रूप।—केशव। (११) रूपक। ⊕(१२) चाँदी। रूपा। उ०—(क) कहीं सो खोवों बिरवा लोना। जेहि ते होय रूप औ सोना।—जायसी। (ख) भाँन रूप सब भयो पसारा। धवल सिरी पोतहिं घरवारा।—जायसी।

वि० रूपवाला। रूपवान्। खूबसूरत। उ०—समय समय सुंदर सबै रूप कुरूप न कोइ। मन की रुचि जेती जितै तित तेती रुचि होइ।—बिहारी।

रूपक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मूर्त्ति। प्रतिकृति। उ०—चातुरक रति कंठ विराजत केशव रूप को रूपक जो है।—केशव। (२) वह काव्य जो पात्रों द्वारा खेला जाता है या जिसका अभिनय किया जाता है। दृश्यकाव्य। इसके प्रधान दस भेद हैं जिन्हें नाटक, प्रकरण, भाण, व्यायोग, समवकार, डिम, ईहामृग, अंक, वीथी और प्रहसन कहते हैं। इसके अतिरिक्त नाटिका, त्रोटक, गोष्ठी, सट्टक, नाट्यरासक, प्रस्थान, उल्लाप्यक, काव्य, प्रेंखण, रासक, संलापक, श्रीगदित, शिल्पक, विलासिका, दुर्मल्लिका, प्रकरणी, हल्लीश और भाण को उपरूपक कहते हैं। वि० दे० "नाटक"। (३) एक अर्थालंकार जिसमें उपमेय में उपमान के साधर्म्य का आरोप करके उसका वर्णन उपमान के रूप से या अभेद रूप किया जाता है। रूपक दो प्रकार का होता है—तद्रूप और अभेद। जिसमें उपमेय का वर्णन उपमान रूप से होता है, उसे तद्रूप, और जिसमें दोनों की अभेदता का वर्णन होता है, उसे अभेद रूपक कहते हैं। रूपक में आकृति, स्वभाव और शील का अभेद और तद्रूपता दिखाई जाती है। तद्रूप का उ० रच्यो विधाता दुहुन लै सिगरी सोभा साज। तू सुंदरि शचि दूसरी यह दूजो सुरराज। अभेद का उ०—नारि कुमुदनी अवधसर रघुवर विरह दिनेश। अस्त भये विकसित भईं निरखि राम राकेश। (४) एक परिमाण का नाम। (५) चाँदी। (६) रुपया। (७) संगीत में सात मात्राओं का एक दो-ताला ताल, जिसमें दो आघात और एक खाली होता है। इसमें खाली ताल पर ही सम होता है। जब यह दून में बजाया जाता है, तब इसे तेवरा कहते

+

हैं। इसका मृदंग का बोल इस प्रकार—धा दिंता-तेटेकता

२ +

गदिधेने धा और तबले का बोल इस प्रकार है—धिन् धा,

+

धिन् धा, तिन् तिन् ता। धा।

रूपकर्ता-संज्ञा पुं० [सं०] विश्वकर्मा।

रूपकातिशयोक्ति-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की अतिशयोक्ति जिसमें केवल उपमान का उल्लेख करके उपमेयों का अर्थ समझाया जाता है। उ०—कनक लता पर चंद्रमा धरे धनुष द्वै बाण।

रूपकृत्-संज्ञा पुं० [सं०] विश्वकर्मा।

रूपकांता-संज्ञा स्त्री० [सं०] सत्रह अक्षरों की एक वर्णवृत्ति का नाम जिसके प्रत्येक चरण में जगण, रगण, जगण, रगण, जगण और अंत में एक गुरु और एक लघु मात्रा होती है।

उ०—अशेष पुण्य पाप के कलाप आपने बहाइ। विदेह-राज ज्यों सदेह भक्त राम के कहाइ। लहै सुभुक्ति लोक लोक अंत मुक्ति होहि ताहि। कहै सुनै पढ़ै गुनै जो रामचंद्र चंद्रिकाहि।—केशव।

रूपगर्विता-संज्ञा स्त्री० [सं०] गर्विता नायिका का एक भेद। वह नायिका जिसे अपने रूप या सुंदरता का अभिमान हो। उ०—ये अँग दीपित पुंज भरे तिनकी उपमा छन जोन्ह सों दीजत। आरसी की छबि त्यों द्विज देव सुगोल कपोल समान कहीजत। चातुर स्याम कहाय कहो, उर अंतर लाज कछूक तौ लीजत। रागमयी अधराधर की समता कैसे कै प्रवाल सों कीजत।—द्विजदेव।

रूपघनाक्षरी-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का दंडक छंद। इसके प्रत्येक चरण में बत्तीस वर्ण होते हैं। इसके अंत में लघु तथा आठ आठ वर्णों पर विश्राम होना आवश्यक है।

रूपचतुर्दशी-संज्ञा स्त्री० [सं०] कार्तिक कृष्ण चतुर्दशी। यह दीप मालिका के एक दिन पहले होती है। इसे नरक चतुर्दशी भी कहते हैं। इस दिन लोग शरीर में उबटन आदि लगाते हैं।

रूपजीविनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] वेश्या। रंडी।

रूपण-संज्ञा पुं० [सं०] (१) आरोपण। आरोप करना। (२) प्रमाण। (३) परीक्षा।

रूपता-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) रूप का भाव या धर्म। (२) सौंदर्य। खूबसूरती।

रूपधर-वि० [सं०] सुंदर। खूबसूरत।

रूपनाशक-संज्ञा पुं० [सं०] उल्लू।

रूपपति-संज्ञा पुं० [सं०] त्वष्टा। विश्वकर्मा।

रूपमंजरी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) एक प्रकार का फूल। उ०—सोनजरद बहु फूली सेवती। रूपमंजरी और मालती।—जायसी। (२) एक प्रकार का धान। उ०—राजहंस और हंसी भोरी। रूपमंजरी औ गुनगौरी।—जायसी।

रूपमनी*-वि० [हिं० रूपमान] रूपवती। उ०—तेहि गोहन सिंहल पद्मिनी। इक सो एक चाहि रूपमनी।—जायसी।

रूपमय-वि० [हिं० रूप+मय] [स्त्री० रूपमयी] अति सुंदर। बहुत खूबसूरत। उ०—(क) नील निचोल छाल भइ फनिमनि भूषन रोम रोम प्रति उदित रूपमय।—सूर। (ख) मों मन मोहन को सबही मिलिकै सबही मुसकानि दिखाय दई। वह मोहनी मूरति रूपमयी सबही चितई तब हौं चितई। उनतो अपने अपने घर की रसखानि भली बिधि राह लई। कछु मोहिं को पाप पर्‌यो पल में पग पावत पौरि पहार भई।—रसखानि।

रूपमान*-वि० [सं० रूपवान्] [स्त्री० रूपमनी] उ०—तेहि गोहन सिंहल पद्मिनी। इक ते एक चाहि रूपमनी।—जायसी।

रूपमाला-संज्ञा स्त्री० [हिं० रूप+माला] एक मात्रिक छंद का नाम जिसके प्रत्येक चरण में १४ और १० के विश्राम से २४ मात्राएँ होती हैं। इसको मदन भी कहते हैं। उ०—रावरे मुख के बिलोकत ही भये दुख दूरि। सुप्रलाप नहीं रहे उर मध्य आनँद पूरि। देह पावन हो गयो पदपद्म को पय पाइ। पूजतै भयो वंश पूजित आशु ही मनुराइ।—केशव।

रूपमाली-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक छंद का नाम जिसके प्रत्येक चरण में तीन मगण या नौ दीर्घ वर्ण होते हैं। उ०—अंगा वंगा कालिंगा काशी। गंगा सिंधू संगामा वासी।

रूपया-संज्ञा पुं० दे० "रुपया"।

रूपरूपक-संज्ञा पुं० [सं० रूप+रूपक] केशव के अनुसार रूपकालंकार के 'सावयव रूपक' भेद का एक नाम।

रूपवंत-वि० [सं० रूपवद् या रूपवान् का बहु०] [स्त्री० रूपवंती] जिसमें सौंदर्य हो। खूबसूरत। रूपवान। सुंदर उ०—(क) पुनि रूपवंत बखानौं काहा। जावत जगत सबै मुख चाहा।—जायसी। (ख) इतनि रूप भइ कन्या जेहि सुरूप नहिं कोइ। धन सु देश रूपवंता जहाँ जनम अस होइ।—जायसी। (ग) साईं सुआ विचित्र अति बानी वदत विचित्र। रूपवंत गुण आगरे राम नाम सो चित्र।—गिरधर। (घ) तापसी को वेष किये राम रूपवंत किधौं मुक्ति फल दोऊ टूटे पुण्य फल डारि ते।—हनुमन्ना०।

रूपवती-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) केशव के अनुसार एक छंद का नाम। इसे छंदप्रभाकर में गौरी लिखा है। उ०—बीजै न विडंबन संतत सीते। भावी न मिटै सुकछू जगगीते। तू पति देवन की गुरु बेटी। तेरी जग मृत्यु कहावति चेटी।—केशव। (२) चंपकमाला वृत्ति का एक नाम। रुक्मवती।

वि० स्त्री० सुंदरी। खूबसूरत। (स्त्री)

रूपवान्, रूपवान-वि० [सं० रूपवत्] [स्त्री० रूपवती] सुंदर। रूपवाला। खूबसूरत।

रूपशाली-वि० [सं० रूपशालिन्] [स्त्री० रूपशालिनी] रूपवान्। सुंदर। खूबसूरत।

रूपश्री-संज्ञा स्त्री० [सं०] संपूर्ण जाति की एक संकर रागिनी जिसमें ऋषभ कोमल और शेष सब स्वर शुद्ध लगते हैं।

रूपसंपद्, रूपसंपत्ति-संज्ञा स्त्री० [सं०] सौंदर्य। उत्तम रूप। सुंदरता।

रूपसेन-संज्ञा पुं० [सं०] एक विद्याधर का नाम।

रूपस्वी-वि० [सं० रूपस्वत्] रूपवान्। सुंदर।

रूपा-संज्ञा पुं० [सं० रूप्य] (१) चाँदी। उ०—(क) हरिमन मयिये को मानों मनमथ छिन्ने रूपे के रुचिर अंक पढ़िका

कनक की।—केशव। (ख) यह सुन नंद जी ने कंचन के शृंग, रूपे के खुर, ताँबे की पीठ समेत दो लाख गऊ पाटंबर उढ़ाय संकल्प की।—लल्लू। (२) घटिया चाँदी, जिसमें कुछ मिलावट हो। (३) वह बैल जो बिलकुल सफ़ेद रंग का हो। इस रंग के बैल मज़बूत और सहिष्णु माने जाते हैं। (४) स्वच्छ सफ़ेद रंग का घोड़ा। नुकरा।

रूपाजीवा-संज्ञा स्त्री० [सं०] वेश्या। रंडी।

रूपाधिबोध-संज्ञा पुं० [सं०] दृश्य वस्तु का वह ज्ञान जो इंद्रियों द्वारा होता है।

रूपावचर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बौद्ध मत के अनुसार एक प्रकार के देवता। (२) चित्त का एक भेद जिससे रूप-लोक का ज्ञान प्राप्त होता है। चित्त की इस वृत्ति के कुशल, विपाक, क्रियादि भेद से अनेक प्रकार माने जाते हैं। (३) ध्यान की एक भूमि का नाम, जिसके प्रथमा आदि चार भेद हैं। (योग)

रूपाश्रय-संज्ञा पुं० [सं०] सुंदर पुरुष। खूबसूरत आदमी।

रूपास्त्र-संज्ञा पुं० [सं०] कामदेव।

रूपिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] सफ़ेद फूल का आक का पेड़। श्वेत मंदार। श्वेतार्क।

रूपित-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का उपन्यास, जिसमें ज्ञान, वैराग्यादि पात्र बनाए जाते हैं।

रूपी-वि० [सं० रूपिन्] [स्त्री० रूपिणी] (१) रूप विशिष्ट। रूपवाला। रूपधारी। उ०—पद पद फिर जन्म लेते हैं, सो भी विद्या रूपी सागर की थाह नहीं पाते।—लल्लू। (२) तुल्य। सदृश। जैसे,—कमल रूपी चरण। उ०—पारस रूपी जीव है लोह रूप संसार। पारस ते पारस भया परख भया टकसार।—कबीर। (३) सुंदर खूबसूरत।

रूपेंद्रिय-संज्ञा स्त्री० [सं०] चक्षु। आँख।

रूपेश्वर-संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० रूपेश्वरी] एक शिव लिंग का नाम।

रूपेश्वरी-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक देवी का नाम।

रूपोपजीविनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] वेश्या। रंडी।

रूपोपजीवी-संज्ञा पुं० [सं० रूपोपजीविन्] [स्त्री० रूपोपजीविनी] बहुरूपिया।

रूपोश-वि० [फ़ा०][संज्ञा रूपोशी] (१) छिपा हुआ। गुप्त। (२) जो दंड आदि से बचने के लिये भाग गया हो। फ़रार।

रूपोशी-संज्ञा स्त्री० [सं०] मुँह छिपाने की क्रिया। गुप्ति। छिपना।

रूप्य-वि० [सं०] (१) सुंदर। खूबसूरत। (२) उपमेय।
संज्ञा पुं० रूपा। चाँदी।

रूप्यक-संज्ञा पुं० [सं० रूप्य] रुपया।

रूप्याध्यक्ष-संज्ञा पुं० [सं०] टकसाल का प्रधान अधिकारी। नैष्किक।

रूबकार-संज्ञा पुं० [फ़ा०] (१) सामने उपस्थित करने का भाव। पेशी। (२) वह तजवीज़ या फ़ैसला जो किसी मामले में हाकिम अदालत के सामने लिखा जाय। अदालती हुक्म। (३) कुछ विशिष्ट अवस्थाओं में किसी को अदालत आदि में उपस्थित होने के लिये लिखा हुआ आज्ञापत्र। (४) आज्ञापत्र। हुक्मनामा।

रूबकारी-संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] (१) मुकदमे की पेशी। (२) मुकदमे की कारवाई।

रूबरू-क्रि० वि० [फ़ा०] सम्मुख। सामने। समक्ष। उ०—(क) हमारे रूबरू आने की ज़रूरत नहीं।—राधाकृष्ण। (ख) महाराज की आज्ञा पावौं तो रूबरू ले आवौं।—लल्लू।
क्रि० प्र०—आना।—करना।—जाना।—लाना।—होना।

रूबुक-संज्ञा पुं० [सं०] एरंड वृक्ष। रेंड़ का पेड़।

रूम-संज्ञा पुं० [फ़ा०] टर्की या तुर्की देश का एक नाम। उ०—चारि दिसा महि दंड रचो है रूम साम विच दिल्ली। ऊपर कुछ अजब तमाशा मारे है यम किल्ली।—कबीर।
विशेष—ईसा के जन्म से पहले पाँचवीं शताब्दी से रोमन जातियों की शक्ति बढ़ने लगी थी और यूनान का पतन होने पर वह एक प्रभावशाली जाति हो गई थी। इस जाति की राजधानी रोम नगर थी। यह जाति इतनी शक्तिशाली हो गई थी कि स्पेन से लेकर अरब, मिस्र आदि तक के देशों पर इसका अधिकार हो गया था। तीसरी शताब्दी के अंत में यह बृहत् साम्राज्य शासकों में विभक्त होने लगा और सन् ३३० में कैसर कान्स्टेंटाइन ने कुस्तुंतुनिया नगर को अपनी राजधानी बनाई। ३९५ में रोम राज्य, पूर्वीय और पश्चिमीय राज्य, जिसकी राजधानी रोम थी, धीरे धीरे निर्बल होता गया और उसे गाथ, फ्रैंच आदि जातियों ने ध्वंस कर दिया; और पूर्वीय राज्य ही सन् ७०६ से रोम राज्य कहलाने लगा। युरोप के दक्षिण पूर्व का भाग, एशिया का पश्चिमी भाग तथा उत्तरी अफ्रीका और अनेक टापू इस साम्राज्य के अंतर्भुक्त थे। तब से तुर्कों को, जिसका प्रधान नगर कुस्तुंतुनिया है, रूम कहने लगे; और अब तक उसे रूम ही कहते हैं।

रूमना*-क्रि० स० [हिं० झूमना का अनु०] झूमना। झोंका खाना। उ०—कहि आपनो सु भेद। न तु चित्त उपजत खेद॥ कहि बेग बानर बात। न तु मोहिं देहौं लात॥ तब बुध शाखा रूमि। करि उछरि आयो भूमि।—केशव।

रूमाल-संज्ञा पुं० [फ़ा०] (१) कपड़े का वह चौकोर टुकड़ा जो हाथ, मुँह पोंछने के काम में आता है। उ०—पोंछि रूमालन सों श्रम सीकर भौंरन की भीर निवारत ही रँ —हरिश्चंद्र।
मुहा०—रूमाल पर रूमाल भिगोना = बहुत रोना। आँसुओं से भरा रहना।

(२) चौकोना शाल या चिकन का टुकड़ा जिसके चारों ओर बेल और बीच में काम बना रहता है और जो तिकोना दोहर कर ओढ़ने के काम में लाया जाता है। मुसलमानी समय में इसे कमर में भी बाँधते थे । (३) पायजामे की काट में वह चौकोर कपड़ा जो दोनों मोहरियों की संधि में लगाया जाता है। मियानी। (४) ठगों का रूमाल जिसके एक कोने में चाँदी का एक टुकड़ा बँधा रहता था। ठग आदि इसे आदमियों के गले में लपेटकर चाँदी के टुकड़े को उसके गले पर घाँटी के पास अँगूठे से इस प्रकार दबाते थे कि वह मर जाता था।

क्रि॰ प्र॰—लगाना।

रूमाली-संज्ञा स्त्री॰ दे॰ "रुमाली"।

रूमी-वि॰ [फा॰] (१) रूम देश संबंधी । रूम का । (२) रूम देश में उत्पन्न होनेवाला। जैसे,— रूमी मस्तगी। (३) रूम देश में रहनेवाला । रूम देश का निवासी। उ॰— हबशी रूमी और फिरंगी। बड़ बड़ गुनी और तेहि संगी। —जायसी।

रूर-वि॰ [सं॰] (१) जो गरम हो गया हो। उत्तप्त। (२) जला हुआ। दग्ध।

रूरनाः-क्रि॰ अ॰ [सं॰ रोरवण = चिल्लाना] चिल्लाना। जोर से शब्द करना । उ॰—(क) एक मुई रूर मुई सो दूजी। रहा न जाय आयु अब पूजी ।—जायसी । (ख) हमरे श्याम चलन कहत हैं दूरि । मधुबन बसत आस हुती सजनी अब मरिहौं जु बिसूरि। कौन कहाँ कौन सुनि आई केहि रस रथ की धूरि । संगहिं सबै चलो माधव के ना तौ मरिहौं रूरि । दक्षिण दिशि यह नगर द्वारिका सिंधु रह्यो जल पूरि । सूरदास प्रभु बिनु क्यों जीवौं जात सजीवन मूरि।—सूर।

रूरा-वि॰ [सं॰ रुद = प्रशस्त] [स्त्री॰ रूरी] प्रशस्य । श्रेष्ठ। उत्तम । अच्छा । उ॰—(क) जिन्ह के श्रवण समुद्र समाना । कथा तुम्हार सुभग सरि नाना। भरहिं निरंतर होहिं न पूरे। तिन्ह के हिय तुम कहँ गृह रूरे।—तुलसी। (ख) लटकन ललित ललाट लटूरी । दमकत द्वै द्वै दँतुरिया रूरी।—सूर।

रूल-संज्ञा पुं॰ [अं॰] (१) नियम। कायदा। (२) लकीर खींचने का डंडा। रूलर। (३) लकीर जो लिखावट सीधी रखने के लिये कागज पर खींची जाती है।

क्रि॰ प्र॰—खींचना।

यौ॰—रूलदार = (कागज) जिस पर लकीरें खिंची हुई हों।

रूलर-संज्ञा पुं॰ [अं॰] (१) लकीर खींचने का डंडा । शलाका। (२) लकीर खींचने की पटरी। पैमाना। (३) शासक।

रूषः-संज्ञा पुं॰ दे॰ "रूख"।

रूषक-संज्ञा पुं॰ [सं॰] रूसा। अडूसा। बासक।

रूषण-संज्ञा पुं॰ [सं॰] (१) भूषित करना । अलंकरण। (२) अनुलेपन। (३) आच्छादन।

रूषाः-वि॰ दे॰ "रूखा"।

रूषित-वि॰ [सं॰] टूटा हुआ। खंडित। भग्न।

रूस-संज्ञा पुं॰ [फा॰] एक देश का नाम जो युरोप और एशिया दोनों महाद्वीपों के उत्तरी भाग में फैला हुआ है। इसके उत्तर में उत्तरीय हिम सागर, पूर्व में प्रशांत महासागर, दक्षिण में चीन, तुर्किस्तान, फारस, कश्यप सागर, काकेशस या काफ पहाड़, काला सागर और रूमानिया, तथा पश्चिम में हंगरी, जर्मनी, बालटिक की खाड़ी, स्वीडन और नारवे हैं । इस देश में बड़ी बड़ी नदियाँ और बड़े बड़े मैदान तथा जंगल हैं। आबादी इस देश में घनी नहीं है । यह देश ८६,६०,२८२ वर्ग मील है । इसकी राजधानी लेनिनग्रेड है।

संज्ञा स्त्री॰ [फा॰ रविश] चाल। (लश॰)

रूसना-क्रि॰ अ॰ [हिं॰ रोष] रोष करना । नाराज होना। रूठना। उ॰—(क) खोला आगे आनि मजूसा। मिल निकसी बहु दिन कर रूसा ।—जायसी । (ख) श्याम अचानक आये री । पाछे ते लोचन दोउ मूँदे मो को हृदय लगाए री । लहनो ताके जाके आवै मैं बड़ भागिनि पाए री। यह उपकार तुम्हारो सजनी रूसे कान्ह मिलाए री। —सूर । (ग) बारहि बार को रूसिबो बारो बढ़ाउ जु बुद्धि वियोग बसाई ।—केशव । (घ) जगत जुराफा ह्वै जियत तज्यो तजे निज मान । रूसि रहे तुम पूस में यह धौं कौन समान ।—पद्माकर ।

क्रि॰ प्र॰—जाना।—बैठना।

रूसा-संज्ञा पुं॰ [सं॰ रूषक] अडूसा। अरूसा। वि॰दे॰ "अडूसा"।

संज्ञा पुं॰ [सं॰ रोहिष] एक सुगंधित घास का नाम जो नेपाल, शिमला अलमोड़ा, काश्मीर, पंजाब, राजमहल, मध्य प्रदेश के पहाड़ी प्रदेशों, बंबई और मद्रास के पर्वतों में होती है । इस घास से गुलाब की सी सुगंध आती है और इसका तेल निकाला जाता है। इसकी प्रधान दो जातियाँ होती हैं । एक का फूल सफेद और दूसरी का फूल नीले रंग का होता है। जब यह घास नरम रहती है, तब इसकी पत्तियों का रंग नीलापन लिए होता है; पर पकने पर उनका रंग लाल हो जाता है । जब इसकी पत्तियाँ नरम होती हैं, तब इसे मोतिया कहते हैं; और जब पककर लाल हो जाती हैं, तब उन्हें सोफिया कहते हैं। सावन भादों में यह फूलने लगती है और कातिक अगहन तक फूलती है। इसी समय इसकी पत्तियाँ तेल निकालने के योग्य हो जाती हैं। जब घास फूलने लगती है, तब काट ली जाती है और इसकी

छोटी छोटी पूलियाँ बाँध ली जाती हैं। तेल निकालते समय देग में पानी भरकर ढाई तीन सौ पूलियाँ उसमें छोड़ दी जाती हैं। फिर देग पर सरपोश लगा देते हैं, जिसमें दो नलियाँ, जो तीन चार अंगुल मोटी और चार हाथ लंबी होती हैं, लगी रहती हैं। यह देग आग पर रख दिया जाता है और नलियों का सिरा ताँबे के दो घड़ों के मुँह से लगा दिया जाता है, जो पानी में डूबे रहते हैं। इस प्रकार घास का आसव खींचा जाता है। जब आसव निकल आता है, तब उसे एक चौड़े मुँह के बरतन में उँड़ेल लेते हैं। इस बरतन में रूसे का अर्क थोड़ी देर तक रहता और तेल छोटे चम्मच से धीरे धीरे ऊपर से काढ़ लिया जाता है। यह तेल गुलाब के अतर में मिलाया जाता है और इसमें तारपीन या मिट्टी का तेल मिलाकर सुगंधित द्रव्य तैयार किया जाता है। मध्य प्रदेश के जंगलों से रूसा का तेल बहुत अधिक मात्रा में बाहर जाता है। युरोप और अमेरिका में इस तेल का बहुत व्यवहार तथा व्यापार होता है।

पर्य्या०—रोहिष। गंधवेना। भूतृण। कतृण। गंधतृण।

रूसी-वि० [हिं० रूस] (१) रूस देश का रहनेवाला। रूस देश का निवासी। (२) रूस देश में उत्पन्न। (३) रूस देश का।

संज्ञा स्त्री० रूस देश की भाषा।

संज्ञा स्त्री० [देश०] सिर के चमड़े पर जमा हुआ भूसी के समान छिलका जो सिर न मलने से जम जाता है।

क्रि० प्र०—जमना।—निकलना।

रूह-संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) आत्मा। जीवात्मा। उ०—चाम चश्म से नजर न आवै देखु रूह के नैना। चून चिगून वजूद न मानु तैं सुभा नमूना पैना।—कबीर। (२) सत्त। सार। जैसे,—रूह गुलाब, रूह केवड़ा, रूह पानड़ी। (यह इत्र का एक भेद होता है।)

रूहड़-संज्ञा स्त्री० [हिं० रूई] पुरानी रूई जो पहले किसी ओढ़ने या बिछाने आदि के कपड़ों में भरी रही हो।

रूहना ✻-क्रि० अ० [सं० रोहण] चढ़ना। उमड़ना। उ०—चहुँ दिसि दिष्टि परी गज जूहा। स्याम घटा मेघ जस रूहा।—जायसी।

क्रि० स० [हिं० रूंधना] आवेष्टित करना। घेरना। उ०—इमि चमु चोदस चपिस जूहा। मधि मोहन शशि के सम रूहा।—गोपाल।

रूही-संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का वृक्ष जो हिमालय पर्वत के नीचे रावी नदी के पूर्व में तथा मध्य भारत और मदरास प्रांत में पाया जाता है। इसे चौरी और मामरी भी कहते हैं। इसकी छाल देशी ओषधियों में काम आती है और कुछ साँप के काटने की ओषधि मानी जाती है। इसकी लकड़ी तौल में प्रति घन फुट २० सेर तक होती है। यह बहुत मजबूत और चिकनी होती है। रंग देने और वार्निश करने से इस पर बहुत अच्छी चमक आती है। इससे मेज, कुरसी, अलमारी और तसवीर के चौखटे बनाए जाते हैं। यह वृक्ष बीज से बरसात में उगता है। इसको संस्कृत में अहिगंधा कहते हैं। इसकी पत्तियाँ उत्तेजक और कटु होती हैं। इसकी छाल पेट की पीड़ा और अँतड़िया ज्वर में दी जाती है। इसकी मात्रा ३ माशे से ६ माशे तक है। यह मधु के साथ कुष्ट रोग में और काली मिर्च के साथ पीसकर विशूचिका तथा अतीसार में भी दी जाती है। इसे वैद्य लोग ईसर मूल, अर्क मूल और रूही मूल कहते हैं।

रूहीमूल-संज्ञा पुं० [हिं० रूही+मूल] रूही नामक वृक्ष की छाल और जड़। ईसरमूल। अर्कमूल। अहिगंधा। वि० दे० "रूही"।

रेंकना-क्रि० अ० [अनु०] (१) गदहे का बोलना। उ०—तिसका शब्द सुन कर धेनुक खर रेंकता आया।—लल्लू। (२) बुरे ढंग से गाना। उ०—पर हमारे राम भी अब रेंकते हैं, तो तीसो रागिनी हुड़दंगा नाचने लगती हैं।—प्रतापनारायण।

रेंगटा-संज्ञा पुं० [अनु० रेंकना] गदहे का बच्चा।

रेंगना-क्रि० अ० [सं० रिंगण] (१) कीड़ों और सरीसृपों का गमन। च्यूँटी आदि कीड़ों का चलना। उ०—रकत के आँसु परैं भुइँ टूटी। रेंगि चली जनु बीर बहूटी।—जायसी। (२) धीरे धीरे चलना। उ०—(क) कोउ पहुँचे कोउ रेंगत मग में कोउ घर में से निकसे नाहिं।—सूर। (ख) गज सिंघ रेंगहि एक बाटा।—जायसी।

रेंगनी-संज्ञा स्त्री० [हिं० रेंगना] भटकटैया।

रेंट-संज्ञा पुं० [देश०] श्लेष्मा मिश्रित मल जो नाक से (विशेषतः जुकाम होने पर) निकलता है। नाक का मल।

क्रि० प्र०—निकलना।—बहना।

रेंटा-संज्ञा पुं० [देश०] छिछोड़े का फल।

रेंड़-संज्ञा पुं० [सं० एरंड] (१) एक पौधा जो ६-७ हाथ ऊँचा होता है और जिसकी पेड़ी और टहनी पोली तथा मुलायम होती है। इसमें चारों ओर बड़ी बड़ी शाखाएँ नहीं निकलतीं, सिरे पर छोटी छोटी टहनियाँ होती हैं, जिनमें पत्तों की पोली डाँड़ियाँ लगी रहती हैं। इन डाँड़ियों के छोर पर बालिश्त डेढ़ बालिश्त के बड़े बड़े गोल कटावदार पत्ते लगे रहते हैं। कटाव बहुत लंबे होते हैं और पत्तों तथा टहनियों के रंग में कुछ ललाई झलक भी रहती है। फूल सफेद होते हैं और फल गोल गोल तथा कँटीले होते हैं। फलों के अंदर बड़े बड़े बीज होते हैं जिनमें से बहुत तेल निकलता है। यह तेल जलाने और औषध के काम में आता है। यह दस्तावर होता है।

यद्यपि इसके बीज बहुत काम के होते हैं, पर खाने योग्य फल या छाया न होने के कारण लोग इसे निकृष्ट पेड़ों में गिनते हैं। उ०—नाम जाको कामतरु देत फल चारि ताहि तुलसी विहाइकै बबूर रेंड़ गोड़िए।—तुलसी। (२) एक प्रकार की ईख जिसे रेंड़ा भी कहते हैं।

रेंड़खरबूजा-संज्ञा पुं० [हिं० रेंड़ + खरबूजा] पपीता।

रेंड़ना†-क्रि० अ० [हिं० रेंड़] फसल के पौधे का बढ़ना।

रेंड़मेवा-संज्ञा पुं० [हिं० रेंड़ + मेवा] अंडखरबूजा। रेंड़ खरबूजा। पपीता।

रेंड़ा-संज्ञा पुं० [हिं० रेंड़] एक प्रकार का धान जिसकी फसल कुआर कातिक में तैयार हो जाती है।

संज्ञा स्त्री० एक प्रकार की ईख।

रेंड़ी-संज्ञा स्त्री० [हिं० रेंड़] अरंडी या रेंड़ के बीज जिनसे तेल निकलता है और जो रेचक होने के कारण दवा के काम में आते हैं।

रेंदी-संज्ञा स्त्री० [देश०] खरबूजे का छोटा फल। ककड़ी या खरबूजे की बतिया।

रेंरें-अ० अनमने लड़कों के रोने का शब्द।

मुहा०—रेंरें करना = बच्चों का धीरे धीरे रोना। जैसे,—यह लड़का जब देखो, तब रेंरें करता रहता है।

रे-अव्य० [सं०] संबोधन शब्द। उ०—क्यों मन मूढ़ छबीली के अंगनि जाय पर्यो रे सखा जिमि भीर में।—मन्नालाल।

विशेष—इस संबोधन से आदर का अभाव सूचित होता है और इसका प्रयोग उसी के प्रति होता है, जिसके प्रति 'तू' सर्वनाम का व्यवहार होता है।

संज्ञा पुं० [सं० ऋषभ का आदि र] ऋषभ स्वर। जैसे—स, रे, ग, म, प, ध, नी।

रेउँछा-संज्ञा पुं० दे० "रेवँछा"।

रेउड़ा-संज्ञा पुं० दे० "रेवड़ा"।

रेउड़ी‡-संज्ञा स्त्री० दे० "रेवड़ी"।

रेउरा†-संज्ञा पुं० दे० "रेवरा"।

रेक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) दस्त लाना। विरेचन। (२) नीच। (३) शंका।

रेकान-संज्ञा पुं० [देश०] वह जमीन जो नदी के पानी की पहुँच के बाहर हो।

रेख-संज्ञा स्त्री० [सं० रेखा] (१) रेखा। लकीर। उ०—दुहुँ नैनन बीच में काजर-रेख बिराजत रूप अनूप जग्यो।

मुहा०—रेख खींचना, खाँचना = (१) लकीर बनाना। रेखा अंकित करना। (२) (कहने में) जोर देना। दृढ़ता प्रकट करना। निश्चय व्यक्त करना। प्रतिज्ञा करना। उ०—(क) पुत्र गुनिन्ह, रेख तिन खाँची। भरत भुआल होहिं, यह साँची।—तुलसी। (ख) रेख खँचाइ कहौं बल भाखी। भामिनि भइउ दूध कै माखी।—तुलसी। रेख काढ़ना = दे० "रेख खींचना" (१)। उ०—तृनं तोन्यो गुन जात जिते गुन काढ़ति रेख मही।—सूर। (२) चिह्न। निशान। उ०—बिना रूप, बिनु रेख के जगत नचावै सोइ।

यौ०—रूप रेख = आकार। स्वरूप। सूरत। उ०—ना ओहि ठावँ न ओहि बिनु ठाऊँ। रूप रेख बिनु निरमल नाऊँ।—जायसी।

(३) गिनती। गणना। शुमार। हिसाब। उ०—तिन महँ प्रथम रेख जग मोरी। (४) नई नई निकलती हुई मूछें। मूछों का आभास। उ०—देखें छैल छबीले रेख उठान।—देव।

क्रि० प्र०—निकलना।

मुहा०—रेख आना, भीजना या भीनना = निकलती हुई मूछों का दिखाई पड़ना।

(५) हीरे के पाँच दोषों में से एक जिसमें हीरे में महीन महीन लकीरें सी पड़ी दिखाई पड़ती हैं।

रेखता-संज्ञा पुं० [फा०] एक प्रकार का गाना या गज़ल जिसका प्रचार अरबी फारसी मिली हिंदी में पहले पहल मुसलमानों द्वारा हुआ था। इसी से उर्दू को बहुत दिनों तक लोग रेखता ही कहते थे।

रेखना-क्रि० स० [सं० रेखन या लेखन] (१) रेखा खींचना। रेख बनाना। लकीर खींचना। अंकित करना। चिह्न करना। उ०—(क) शोभित स्वकीय गण गुण गनती में तहाँ तेरे नाम ही की एक रेखा रेखियतु है।—पद्माकर। (ख) सत्य कहो कहा झूँठ में पावत देखो वेई जिन रेखी कथा।—केशव। (ग) उरज करज रेख रेखी बहु भाँति है।—केशव। (२) खरोंचना। खरोंच डालना। छेदना। उ०—देखति जनु रेखत तनु बान नयन कोरहीं।—केशव।

रेखांश-संज्ञा पुं० [सं०] द्राघिमांश। याम्योत्तर वृत्त की एक एक डिग्री या अंश।

रेखा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सूत के आकार का लंबा गया हुआ चिह्न। दंडाकार चिह्न। डाँड़ी। लकीर। उ०—रेखा रुचिर कंबु कल ग्रीवा।—तुलसी।

क्रि० प्र०—खींचना।

(२) किसी वस्तु का सूचक चिह्न। दृढ़ अंक।

यौ०—कर्मरेखा = भाग्य की लिपि जो प्राणियों के मस्तक पर पहले से ही अंकित मानी जाती है। भाग्य का लेख। उ०—नेम प्रेम शंकर कर देखा। अविचल हृदय भगति कै रेखा।—तुलसी।

(३) गणना। शुमार। गिनती। उ०—साधु-समाज न जाकर लेखा। राम-भगत महँ जासु न रेखा।—तुलसी।

(४) आकृति। आकार। सूरत।

यौ०—रूप-रेखा।

(५) हथेली, तलवे आदि में पड़ी हुई लकीरें जिनसे सामुद्रिक में मनुष्य के शुभाशुभ का निर्णय किया जाता है। जैसे,—

कमल-रेखा, अंकुश-रेखा, ऊर्ध्व रेखा आदि । वि० दे० "सामुद्रिक"। (६) हीरे के बीच में दिखाई पड़नेवाली लकीर जो एक दोष मानी जाती है।

विशेष—रत्नपरीक्षा में रेखाएँ चार प्रकार की कही गई हैं—सव्य रेखा, अपसव्य रेखा, ऊर्ध्व रेखा और दीक्षाविद्धि रेखा। इनमें से सव्य रेखा को छोड़कर और सब का फल अशुभ माना गया है।

रेखागणित-संज्ञा पुं० [सं०] गणित का वह विभाग जिसमें रेखाओं द्वारा कुछ सिद्धांत निर्द्धारित किए जाते हैं। देश-संबंधी सिद्धांत स्थिर करनेवाला गणित।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग पहले पहल पंडितराज जगन्नाथ ने किया। उन्होंने "इउक्लिड" के अरबी अनुवाद का महाराज जयसिंह की आज्ञा से संस्कृत में अनुवाद किया। पर वैदिक ऋषियों ने भी इस शास्त्र का आरंभ किया था। इसके प्रमाण 'शुल्व सूत्र' हैं, जिनमें यज्ञ की वेदियाँ बनाने के लिये नाना आकारों का विचार किया गया है। पीछे भास्कराचार्य की लीलावती बनी जो क्षेत्रमिति पर ही है। कुछ लोगों का कहना है कि प्राचीन आर्य्य क्षेत्रमिति (Mensuration) तो जानते थे, पर रेखा-गणित नहीं जानते थे। पर यह कथन ठीक नहीं; क्योंकि मिस्र और यूनान में भी भूमि की माप के लिये ही रेखागणित का पहले पहल व्यवहार हुआ था।

रेखाभूमि-संज्ञा स्त्री० [सं०] प्राचीन ज्योतिषी अक्षांश स्थिर करने के लिये सुमेरु और लंका के मध्य जो रेखा कल्पित करते थे, उसकी सीध में पड़नेवाले देश।

रेखित-वि० [सं० रेखा] (१) खिंचा हुआ। अंकित। लिखित। (रेखा) (२) जिस पर रेखा या लकीर पड़ी हो। (३) मसका हुआ। फटा हुआ। उ०—रेखित कंचुकी कँचुकी के बिच होत छिपावे कहा कुच कंजन।—पद्माकर।

रेग-संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] बालू।

यौ०—रेगिस्तान।

रेगिस्तान-संज्ञा पुं० [फ़ा०] बालू का मैदान। मरुदेश।

रेचक-वि० [सं०] (१) जिसके खाने से दस्त आवें। कोष्ठशुद्धि करनेवाला। दस्तावर।

संज्ञा पुं० (१) पिचकारी। (२) जवाखार। (३) जमालगोटा। (४) प्राणायाम की तीसरी क्रिया, जिसमें खींचे हुए साँस को विधिपूर्वक बाहर निकालना होता है। उ०—(क) पूरक कुंभक रेचक करई। उलटि ध्यान त्रिकुटी को धरई।—विश्राम। (ख) सब आसन रेचक अरु पूरक कुंभक सीखे पाइ। बिन गुरु निकट सँदेसन कैसे यह अवगाह्यो जाइ।—सूर।

रेचन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) दस्त लाना। कोष्ठशुद्धि करना। पेट से मल निकालना। (२) वह औषध जो मल निकाल कर कोठा साफ करे। जुलाब।

विशेष—सुश्रुत ने छः प्रकार के रेचन द्रव्य कहे हैं—फल, मूल, छाल, तेल, रस और पेड़ों के दूध।

रेचनक-संज्ञा पुं० [सं०] कंपिल्लक। कमीला।

रेचना*-क्रि० स० [सं० रेचन] वायु या मल को बाहर निकालना। उ०—प्रथमै सूरज भेदिनी पूरै पिंगल वायु। रेचै बाँये रोकि कछु हरै वायु रुज गात।—विश्राम।

संज्ञा स्त्री० [सं०] कांपिल वृक्ष। कमीला।

रेचनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) कमीला। (२) दंती। (३) कालांजनी। (४) घटपर्णी।

रेचित-संज्ञा पुं० [सं०] (१) घोड़ों की एक चाल। (२) नाचने में हाथ हिलाने का एक ढंग।

रेच्य-संज्ञा पुं० [सं०] (१) प्राणायाम में बाहर छोड़ी हुई वायु। (२) भेदक। जुलाब।

रेजस, रेजसक्षीमा-संज्ञा पुं० [फ़ा० रेजिस] घोड़ों का जुलाब।

रेज़ा-संज्ञा पुं० [फ़ा०] (१) किसी वस्तु का बहुत छोटा टुकड़ा। सूक्ष्म खंड। उ०—(क) रेजा रेजा करि सीपै गैनन को कोरन सों काकरेजा वारी सो करेजा काढ़ि लै गई।—रघुनाथ। (ख) परिघ, परशु, नेजे मेघनाद के जे भेजे, तिन्हें कै कै रेज़े रेज़े महावीर भाग्यो है।—रघुराज। (२) मजदूर लड़का जो बड़े राजगीरों के साथ काम करता है। (३) अँगिया। चोलीबंद। (बुंदेलखंडी) (४) सुनारों का एक औज़ार जिसमें गला हुआ सोना या चाँदी ढालकर पाँसे के आकार का बना लेते हैं। यह लोहे की बनी नाली के आकार का होता है। इसे 'परधनी' भी कहते हैं। (५) थान। थान। अदद।

रेज़िश-संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] जुकाम।

रेजीडेंट-संज्ञा पुं० [अं०] वह अँगरेज़ी राजकर्मचारी जो किसी देशी राज्य में अँगरेजी राज्य के प्रतिनिधि के रूप में रहता है।

रेजीमेंट-संज्ञा स्त्री० [अं०] सेना का एक भाग। रिसालह।

रेजू-संज्ञा पुं० [फ़ा०रेज़ा ?] एक प्रकार का रेशा जो ब्रश (कपड़ा आदि साफ करने की कूँची) बनाने के लिये कलकत्ते में विलायत से आता है।

रेट-संज्ञा पुं० [अं०] (१) भाव। निर्ख। (२) चाल। गति।

रेडियम-संज्ञा पुं० [अं०] एक मूल्यवान धातु जिसका पता वैज्ञानिकों को हाल में ही लगा है।

विशेष—यह धातु अत्यंत विस्मयजनक है। इसे शक्ति का संचित रूप ही समझना चाहिए। यह उज्ज्वल प्रकाशमय होती है। इसके मिलने से परमाणु-संबंधी सिद्धांत में बहुत परिवर्तन हुआ है। पहले वैज्ञानिक परमाणु को अभौतिक मूल

द्रव्य मानते थे; पर अब यह पता लगा है कि परमाणु भी अत्यंत सूक्ष्म विद्युत्कणों की समष्टि हैं।

रेणु-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) धूल। (२) बालू। (३) पृथ्वी। (हिं०) (४) सँभालू के बीज। (५) विडंग। (६) अत्यंत लघु परिमाण। कणिका।

रेणुका-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) बालू। रेत। (२) रज। धूल। (३) पृथ्वी। (हिं०) (४) सँभालू के बीज। (५) सह्याद्रि पर्वत का एक तीर्थ। (६) परशुराम की माता का नाम।

विशेष—ये विदर्भराज की कन्या और जमदग्नि की पत्नी थीं। एक बार ये गंगा स्नान करने गईं। वहाँ राजा चित्ररथ को स्त्रियों के सहित जल क्रीड़ा करते देख रेणुका के मन में कुछ विकार उत्पन्न हुआ। पर वह तुरंत घर लौट आईं। जमदग्नि को उनके मनोविकार का पता लग गया, इससे वे बहुत क्रुद्ध हुए और अपने पुत्रों से उनका वध करने के लिये कहा। और कोई पुत्र तो मातृहत्या करने को राजी न हुआ; परशुराम ने पिता की आज्ञा से माता का वध किया। जमदग्नि ने परशुराम पर अत्यंत प्रसन्न होकर वर माँगने को कहा। परशुराम ने पहला वर यही माँगा कि माता फिर से जीवित हो जायँ।

रेणुरूपित-संज्ञा पुं० [सं०] गदहा।

रेणुवास-संज्ञा पुं० [सं०] भ्रमर। भौंरा।

रेणुसार-संज्ञा पुं० [सं०] कपूर।

रेतःकुल्या-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक नरक का नाम।

रेत-संज्ञा पुं० [सं० रेत्] (१) वीर्य। शुक्र। (२) पारा। (३) जल।

संज्ञा स्त्री० [सं० रेतजा] (१) बालू। (२) बलुआ मैदान। मरुभूमि। उ०—जै जै जानकीस जै जै लषन कपीस कहि कूदैं कपि कौतुकी नचत रेत रेत हैं।—तुलसी।

संज्ञा पुं० [हिं० रेतना] लोहार का वह औज़ार जिससे वह लोहे को रेतता है। रेती।

रेतकुंड-संज्ञा पुं० [सं०] (१) रेतःकुल्या नाम का नरक। (२) कुमाऊँ में हिमालय पर का एक तीर्थस्थान।

रेतन-संज्ञा पुं० [सं०] शुक्र। वीर्य्य।

रेतना-क्रि० स० [हिं० रेत] (१) रेती के द्वारा किसी वस्तु को रगड़कर उसमें से छोटे छोटे कण गिराना, जिससे वह चिकनी या आकार में कम हो जाय।

क्रि० प्र०—डालना।—देना।

(२) किसी वस्तु को काटने के लिये औज़ार की धार रगड़ना। जैसे,—आरी से रेतना। (३) औज़ार से रगड़कर काटना। धीरे धीरे काटना। जैसे,—गला रेतना। उ०—(क) भूला सो भूला बहुरि कै चेतु। शब्द छुरी संशय को रेतु।—कबीर। (ख) कियो सुभाइ चले कर मींजत पीसत दाँत गये रिस रेते।—तुलसी। (ग) जाको नाम रेत सो रेतत रेतन के बन को।—देव स्वामी।

रेतल-संज्ञा पुं० [देश०] एक पक्षी जिसका रंग भूरा और लंबाई छः इंच होती है। यह युक्त प्रांत और नेपाल में नदियों के किनारे रहता है। किसी झाड़ी या पत्थर के नीचे घास से प्याले के आकार का घोंसला बनाता है और भूरे रंग के २, ३ अंडे देता है।

रेतला-वि० दे० "रेतीला"।

रेतस्-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वीर्य। शुक्र। (२) पारा। (३) जल।

रेता-संज्ञा पुं० [हिं० रेत] (१) बालू। (२) मिट्टी। धूल। (३) बालू का मैदान।

रेतिया-संज्ञा पुं० [हिं० रेतना] रेतनेवाला।

रेती-संज्ञा स्त्री० [हिं० रेतना] रेतने का औज़ार। लोहे का मोटा फल जिस पर खुरदरे दाने से उभरे रहते हैं और जिसे किसी वस्तु पर रगड़ने से उसके महीन कण छूटकर गिरते हैं। (इससे सतह चिकनी और बराबर करते हैं।)

संज्ञा स्त्री० [हिं० रेत+ई (प्रत्य०)] (१) नदी या समुद्र के किनारे पड़ी हुई बलुई ज़मीन। बालू का मैदान जो नदी या समुद्र के किनारे हो। बलुवा किनारा। उ०—खेलत रही सहेली सैंती। पाट जाइ लाग तेहि रेती।—जायसी। (२) नदी की धारा के बीचोबीच टापू की तरह की बलुई ज़मीन जो पानी घटने पर निकल आती है। नदी का द्वीप। जैसे,—गंगा जी में इस साल रेती पड़ जाने से दो धाराएँ हो गई हैं।

क्रि० प्र०—पड़ना।

रेतीला-वि० [हिं० रेत+ईला (प्रत्य०)] [स्त्री० रेतीली] बालूवाला। बालुकामय। बलुआ। जैसे,—रेतीला किनारा या मैदान।

रेत्य-संज्ञा पुं० [सं०] पीतल।

रेत्र-संज्ञा पुं० [सं०] (१) रेतस्। शुक्र। (२) पीयूष। अमृत। (३) पटवास।

रेना†-क्रि० स० [देश०] किसी वस्तु में डालकर या टिकाकर लटकाना।

रेनी-संज्ञा स्त्री० [सं० रंजनी] वह वस्तु जिससे रंग निकलता हो।

संज्ञा स्त्री० [हिं० रैना=लटकाना] वह अलगनी जिस पर रँगरेज़ लोग कपड़ा रँगकर सूखने को डालते हैं।

रेनु॰-संज्ञा पुं० दे० "रेणु"।

रेनुका॰-संज्ञा स्त्री० दे० "रेणुका"।

रेप-वि० [सं०] (१) निंदित। (२) क्रूर। (३) कृपण।

रेफ-संज्ञा पुं० [सं०] (१) रकार का वह रूप जो अन्य अक्षर के पहले आने पर उसके मस्तक पर रहता है। जैसे,—दर्प, दर्पण में। (२) रकार (र)। (३) राग। (४)

वि० [सं०] कुत्सित। अधम।

रेभ–संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक वैदिक ऋषि जिन्हें असुरों ने एक कूएँ में डाल दिया था। दस रातें और नौ दिन बीतने पर अश्विनीकुमारों ने इन्हें निकाला था। (ऋग्वेद) (२) कश्यप-वंशीय एक दूसरे ऋषि।

रेरिहान–संज्ञा पुं० [सं०] (१) शिव। (२) असुर। (३) चोर।

रेरुआ, रेरुवा–संज्ञा पुं० [अनु०] बड़ा उल्लू पक्षी। रुरुआ। घुग्घू।

रेल–संज्ञा स्त्री० [अं०] (१) सड़क की वह लोहे की पटरी जिस पर रेल-गाड़ी के पहिए चलते हैं। (२) भाप के ज़ोर से चलनेवाली गाड़ी। रेल-गाड़ी।

विशेष—भाप के एंजिन से चलनेवाली गाड़ी का आविष्कार पहले पहल सन् १८०२ ई० में इंगलैंड में हुआ। तब से इसका प्रचार बहुत बढ़ता गया; यहाँ तक कि अब पृथ्वी पर बहुत कम ऐसे सभ्य देश हैं, जिनमें रेलगाड़ी न हो।

संज्ञा स्त्री० [हिं० रेलना] (१) बहाव। धारा। उ०—भूषण भनत जाके एक एक शिखर ते केते धौं नदी नद की रेल उतरति है।—भूषण। (२) आधिक्य। भरमार। उ०—सघन कुंज में श्रमित केलि ललित तनु सुगंध की रेल।—सूर।

यौ०—रेलठेल। रेलपेल।

रेलठेल–संज्ञा स्त्री० दे० "रेलपेल"। उ०—कहै पदमाकर हमेसा दिग्य वीथिन मों वानन की रेलठेल ठेलन ठिलति है।—पद्माकर।

रेलना–क्रि० स० [देश०] (१) आगे की ओर झोंकना। ढकेलना। धक्का देना। उ०—(क) एक द्विज क्षुधित घुसो तहँ पंथी। दियो सिपाही ता कहँ रेली।—रघुराज।

क्रि० प्र०—देना।

(२) अधिक भोजन करना। ठूस ठूस कर खाना। उ०—फूले वर वसंत बन बन से कहुँ मालती नवेली। तापै मदमाते से मधुकर गूँजत मधुरस रेली।—हरिश्चंद्र।

क्रि० अ० ठसाठस भरा होना। अधिक होना। उ०—फूली माधवी मालती रेलि। फूले ही मधुप करत हैं केलि।—सूर।

रेलपेल–संज्ञा स्त्री० [हिं० रेलना + पेलना] (१) भीड़, जिसमें लोग एक दूसरे को धक्का देते हों। (२) भरमार। अधिकता। ज़्यादती।

रेलवे–संज्ञा स्त्री० [अं०] (१) रेल-गाड़ी की सड़क। (२) रेल का मुहकमा। जैसे,—वह रेलवे में काम करता है।

रेला–संज्ञा पुं० [देश०] (१) तबले पर महीन और सुंदर बोलों को बजाने की रीति। (२) जल का प्रवाह। बहाव। तोड़। (३) समूह में चढ़ाई। धावा। दौड़। (४) धक्कमधक्का। (५) अधिकता। बहुतायत। (६) पंक्ति। समूह।

रेवँछा–संज्ञा पुं० [देश०] एक द्विदल अन्न जिसकी फलियाँ गोल, चपटी और लगभग एक बालिश्त लंबी होती हैं। इसके दाने लँबोतरे, गोल उर्द से कुछ बड़े और रंग में बादामी होते हैं। इसकी लोग दाल खाते हैं।

रेवंत–संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य्य के पुत्र जो गुह्यकों के अधिपति हैं और जिनकी उत्पत्ति सूर्य्य की बड़वा रूपधारिणी संज्ञा नाम की पत्नी से हुई थी।

रेवंद–संज्ञा पुं० [फा०] एक पहाड़ी पेड़ जो हिमालय पर ग्यारह बारह हजार फुट की ऊँचाई पर होता है। काश्मीर, नैपाल भूटान और सिक्किम के पहाड़ों में यह जंगली पाया जाता है। इसकी उत्तम जाति तिब्बत के दक्षिण पूर्व भागों और चीन के उत्तर-पश्चिम भागों में होती है और रेवंद चीनी कहलाती है। हिन्दुस्तानी रेवंद वैसी अच्छी नहीं होती; उसमें महक भी वैसी नहीं होती, जैसी चीनी की होती है। बाजारों में इसकी सूखी जड़ और लकड़ी रेवंद चीनी के नाम से बिकती है और औषध के काम में आती है। इसमें क्राइसोफानिक एसिड होता है, जिससे इसका रंग पीला होता है। क्राइसोफानिक एसिड दाद की बहुत अच्छी दवा है। रेवंद चीनी रेचक होती है और पेट के दर्द को दूर करती है। यह पौष्टिक भी मानी जाती है।

रेवट–संज्ञा पुं० [सं०] (१) शूकर। सूअर। (२) वेणु। बाँस। (३) विषवैद्य। (४) दक्षिणावर्त्त शंख।

रेवड़–संज्ञा पुं० [देश०] भेड़ बकरी का झुंड। लेंहड़ा। गल्ला।

रेवड़ा–संज्ञा पुं० [देश०] पगी हुई चीनी या गुड़ के लंबे लंबे टुकड़े जिन पर सफेद तिल चिपकाया रहता है।

रेवड़ी–संज्ञा स्त्री० [देश०] पगी हुई चीनी या गुड़ की छोटी टिकिया जिस पर सफेद तिल चिपकाया रहता है।

रेवत–संज्ञा पुं० [सं०] (१) जंबीरी नीबू। (२) आरग्वध वृक्ष। अमलतास (३) एक राजा जिसकी कन्या रेवती बलराम जी को ब्याही थी।

विशेष—देवी भागवत के अनुसार यह आनर्त्त का पुत्र और शर्य्याति का पौत्र था। ब्रह्मा के कहने से इसने अपनी कन्या रेवती बलराम को ब्याही थी।

रेवतक–संज्ञा पुं० [सं०] पारावत। परेवा।

रेवती–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सत्ताईसवाँ नक्षत्र जो ३२ तारों से मिलकर बना है और जिसका आकार मृदंग का सा कहा गया है। इस नक्षत्र के अंतर्गत मीन राशि पड़ती है। (२) एक मातृका का नाम। (३) गाय। (४) दुर्गा। (५) एक बालग्रह जो बच्चों को कष्ट देता है। (६) रेवत मनु की माता। (७) बलराम की पत्नी जो राजा रेवत की कन्या थी।

रेवतीभव–संज्ञा पुं० [सं०] शनि।

रेवतीरमण–संज्ञा पुं० [सं०] (१) बलराम। (२) विष्णु।

रेवना†–क्रि० स० दे० "रेना"।

रेवरा†–संज्ञा पुं० दे० "रेवड़ा"।

संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की ईख।

रेवा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) नर्मदा नदी। (२) काम की पत्नी रति। (३) नील का पौधा। (४) दुर्गा। (५) एक प्रकार का साम। (६) एक प्रकार की मछली जो नदियों में पाई जाती है। (७) दीपक राग की एक रागिनी। (८) भारत का वह देशखंड जहाँ नर्मदा नदी बहती है। रीवाँ राज्य। बघेलखंड।

रेवाउतन-संज्ञा पुं० [सं० रेवा+उत्पन्न] हाथी। (डिं०)

विशेष—पुराने समय में नर्मदा के किनारे हाथी बहुत पाए जाते थे।

रेशम-संज्ञा पुं० [फ़ा०] एक प्रकार का महीन चमकीला और दृढ़ तंतु या रेशा जिससे कपड़े बुने जाते हैं। यह तंतु कोश में रहनेवाले एक प्रकार के कीड़े तैयार करते हैं।

विशेष—रेशम के कीड़े पिल्लू कहलाते हैं और बहुत तरह के होते हैं; जैसे,—विलायती, मदरासी या कनारी, चीनी, अराकानी, आसामी इत्यादि। चीनी, बूलू और बड़े पिल्लू का रेशम सब से अच्छा होता है। ये कीड़े तितली की जाति के हैं। इनके कई काया-कल्प होते हैं। अंडा फूटने पर ये बड़े पिल्लू के आकार में होते और रेंगते हैं। इस अवस्था में ये पत्तियाँ बहुत खाते हैं। शहतूत की पत्ती इनका सब से अच्छा भोजन है। ये पिल्लू बढ़कर एक प्रकार का कोश बनाकर उसके भीतर हो जाते हैं। उस समय इन्हें कोया कहते हैं। कोश के भीतर ही यह कीड़ा वह तंतु निकालता है, जिसे रेशम कहते हैं। कोश के भीतर रहने की अवधि जब पूरी हो जाती है, तब कीड़ा रेशम को काटता हुआ निकलकर उड़ जाता है। इससे कीड़े पालनेवाले निकलने के पहले ही कोयों को गरम पानी में डालकर कीड़ों को मार डालते हैं और तब ऊपर का रेशम निकालते हैं।

पर्य्या०—कौशेय। पाट। कोशा।

रेशमी-वि० [फ़ा०] रेशम का बना हुआ।

रेशा-संज्ञा पुं० [फ़ा०] (१) तंतु या महीन सूत जो पौधों की छालों आदि से निकलता है या कुछ फलों के भीतर पाया जाता है।

यौ०—रेशेदार।

रेष-संज्ञा पुं० [सं०] (१) क्षति। हानि। (२) हिंसा।

☉ संज्ञा स्त्री० दे० "रेख"।

रेषण-संज्ञा पुं० [सं०] (१) घोड़े का हिनहिनाना। (२) बाघ का गरजना या गुर्राना।

रेषा-संज्ञा स्त्री० [सं०] घोड़े की हिनहिनाहट।

रेसमान-संज्ञा पुं० [फ़ा० रेस्मान=रस्सा] सुतरी। डोरी। रस्सी। (लश्करी)

रेह-संज्ञा स्त्री० [?] खार मिली हुई वह मिट्टी जो ऊसर मैदानों में पाई जाती है। उ०—(क) जावत खेह रेह दुनियाई। मेघ बूँद औ गगन तराई।—जायसी। (ख) जहँ जहँ भूमि जरी भइ रेहू। विरह के दाह भई जनु खेहू।—जायसी।

रेहन-संज्ञा पुं० [फ़ा०] रुपया देनेवाले के पास कुछ माल जायदाद इस शर्त पर रहना कि जब वह रुपया पा जाय, तब माल या जायदाद वापस कर दे। बंधक। गिरवी।

क्रि० प्र०—करना।—रखना।

यौ०—रेहनदार। रेहननामा।

रेहनदार-संज्ञा पुं० [फ़ा०] वह जिसके पास कोई जायदाद रेहन रखी हो।

रेहननामा-संज्ञा पुं० [फ़ा०] वह कागज जिस पर रेहन की शर्तें लिखी हों।

रेहल-संज्ञा स्त्री० [अ०] पुस्तक रखने की पेंचदार तख्ती। वि० दे० "रिहल"।

रेहुआ-वि० [हिं० रेह] जिसमें रेह बहुत हो।

रेहू-संज्ञा पुं० दे० "रोहू"।

रैंगलर-संज्ञा पुं० [अं०] इंगलैंड में प्रचलित सर्वोच्च गणितपरीक्षा में उत्तीर्ण व्यक्ति।

रैअति ☉-संज्ञा स्त्री० दे० "रैयत"।

रैतिक-वि० [सं०] पीतल संबंधी। पीतल का।

रैतुवा-संज्ञा पुं० दे० "रायता"। उ०—रुचिर स्वाद बहु रैतुवा घृत के विविध विधान।—रघुराज।

रैत्य-संज्ञा पुं० [सं०] पीतल का बना बरतन।

रैदास-संज्ञा पुं० (१) प्रसिद्ध भक्त जो जाति का चमार था। यह रामानंद का शिष्य और कबीर, पीपा आदि का समकालीन था। (२) चमार।

रैदासी-संज्ञा पुं० [हिं० रैदास+ई] (१) एक प्रकार का मोटा जड़हन धान। (२) रैदास भक्त के संप्रदाय का।

रैन, रैनि ☉-संज्ञा स्त्री० [सं० रजनी] रात्रि। उ०—भोरी छाईं रैनि होइ आवै।—जायसी।

रैनी-संज्ञा स्त्री० [हिं० रेना] चाँदी या सोने की वह गुल्ली जो तार खींचने के लिये बनाई जाती है।

रैमुनिया-संज्ञा स्त्री० [हिं० राम ?] (१) एक प्रकार की अरहर। (२) लाल पक्षी की मादा।

रैयत-संज्ञा स्त्री० [अ०] प्रजा। रिआया।

रैयाराव-संज्ञा पुं० [हिं० राजा+राव] (१) छोटा राजा। (२) एक पदवी जो प्राचीन समय में राजा लोग अपने सरदारों को देते थे।

रैवंता-संज्ञा पुं० [हिं० रैवंत] घोड़ा। (डिं०)

वि० [सं०] कुत्सित। अधम।

रेभ–संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक वैदिक ऋषि जिन्हें असुरों ने एक कूएँ में डाल दिया था। दस रातें और नौ दिन बीतने पर अश्विनीकुमारों ने इन्हें निकाला था। (ऋग्वेद) (२) कश्यप-वंशीय एक दूसरे ऋषि।

रेरिहान–संज्ञा पुं० [सं०] (१) शिव। (२) असुर। (३) चोर।

रेरुआ, रेरुवा–संज्ञा पुं० [अनु०] बड़ा उल्लू पक्षी। रुरुआ। घुग्घू।

रेल–संज्ञा स्त्री० [अं०] (१) सड़क की वह लोहे की पटरी जिस पर रेल-गाड़ी के पहिए चलते हैं। (२) भाप के ज़ोर से चलनेवाली गाड़ी। रेल-गाड़ी।

विशेष—भाप के एंजिन से चलनेवाली गाड़ी का आविष्कार पहले पहल सन् १८०२ ई० में इंगलैंड में हुआ। तब से इसका प्रचार बहुत बढ़ता गया; यहाँ तक कि अब पृथ्वी पर बहुत कम ऐसे सभ्य देश हैं, जिनमें रेलगाड़ी न हो।

संज्ञा स्त्री० [हिं० रेलना] (१) बहाव। धारा। उ०—भूषण भनत जाके एक एक शिखर ते केते धौं नदी नद की रेल उतरति है।—भूषण। (२) आधिक्य। भरमार। उ०—सघन कुंज में थमित केलि लखि तनु सुगंध की रेल।—सूर।

यौ०—रेलठेल। रेलपेल।

रेलठेल–संज्ञा स्त्री० दे० "रेलपेल"। उ०—कहै पद्माकर हमेसा दिव्य बीथिन मों बानन की रेलठेल ठेलन ठिलति है।—पद्माकर।

रेलना–क्रि० स० [देश०] (१) आगे की ओर झोंकना। ढकेलना। धक्का देना। उ०—(क) एक द्विज छुधित घुसो तहँ पेली। दियो सिपाही ता कहँ रेली।—रघुराज।

क्रि० प्र०—देना।

(२) अधिक भोजन करना। ठूस ठूस कर खाना। उ०—फूले घर बसंत बन बन से कहुँ मालती नवेली। तापै मदमाते से मधुकर गूँजत मधुरस रेली।—हरिश्चंद्र।

क्रि० अ० ठसाठस भरा होना। अधिक होना। उ०—फूली माधवी मालती रेलि। फूले ही मधुप करत हैं केलि।—सूर।

रेलपेल–संज्ञा स्त्री० [हिं० रेलना + पेलना] (१) भीड़, जिसमें लोग एक दूसरे को धक्का देते हों। (२) भरमार। अधिकता। ज़्यादती।

रेलवे–संज्ञा स्त्री० [अं०] (१) रेल-गाड़ी की सड़क। (२) रेल का मुहकमा। जैसे,—वह रेलवे में काम करता है।

रेला–संज्ञा पुं० [देश०] (१) तबले पर महीन और सुंदर बोलों को बजाने की रीति। (२) जल का प्रवाह। बहाव। तोड़। (३) समूह में चढ़ाई। धावा। दौड़। (४) धक्कमधक्का। (५) अधिकता। बहुतायत। (६) पंक्ति। समूह।

रेवँछा–संज्ञा पुं० [देश०] एक द्विदल अन्न जिसकी फलियाँ गोल, पतली और लगभग एक बालिश्त लंबी होती हैं। इसके दाने लंबोतरे, गोल उर्द से कुछ बड़े और रंग में बादामी होते हैं। इसकी लोग दाल खाते हैं।

रेवंत–संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य्य के पुत्र जो गुह्यकों के अधिपति हैं और जिनकी उत्पत्ति सूर्य्य की बड़वा रूपधारिणी संज्ञा नाम की पत्नी से हुई थी।

रेवंद–संज्ञा पुं० [फा०] एक पहाड़ी पेड़ जो हिमालय पर ग्यारह बारह हजार फुट की ऊँचाई पर होता है। काश्मीर, नैपाल भूटान और सिक्किम के पहाड़ों में यह जंगली पाया जाता है। इसकी उत्तम जाति तिब्बत के दक्षिण-पूर्व भागों और चीन के उत्तर-पश्चिम भागों में होती है और रेवंद चीनी कहलाती है। हिन्दुस्तानी रेवंद वैसी अच्छी नहीं होती; उसमें महक भी वैसी नहीं होती, जैसी चीनी की होती है। बाजारों में इसकी सूखी जड़ और लकड़ी रेवंद चीनी के नाम से बिकती है और औषध के काम में आती है। इसमें क्राइसोफानिक एसिड होता है, जिससे इसका रंग पीला होता है। क्राइसोफानिक एसिड दाद की बहुत अच्छी दवा है। रेवंद चीनी रेचक होती है और पेट के दर्द को दूर करती है। यह पौष्टिक भी मानी जाती है।

रेवट–संज्ञा पुं० [सं०] (१) शूकर। सूअर। (२) वेणु। बाँस। (३) विपर्यय। (४) दक्षिणावर्त्त शंख।

रेवड़–संज्ञा पुं० [देश०] भेड़ बकरी का झुंड। लेंहड़ा। गल्ला।

रेवड़ा–संज्ञा पुं० [देश०] पगी हुई चीनी या गुड़ के लंबे लंबे टुकड़े जिन पर सफेद तिल चिपकाया रहता है।

रेवड़ी–संज्ञा स्त्री० [देश०] पगी हुई चीनी या गुड़ की छोटी टिकिया जिस पर सफेद तिल चिपकाया रहता है।

रेवत–संज्ञा पुं० [सं०] (१) जंबीरी नीबू। (२) आरग्वध वृक्ष। अमलतास (३) एक राजा जिसकी कन्या रेवती बलराम जी को ब्याही थी।

विशेष—देवी भागवत के अनुसार यह आनर्त्त का पुत्र और शर्य्याति का पौत्र था। ब्रह्मा के कहने से इसने अपनी कन्या रेवती बलराम को ब्याही थी।

रेवतक–संज्ञा पुं० [सं०] पारावत। परेवा।

रेवती–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सत्ताईसवाँ नक्षत्र जो ३२ तारों से मिलकर बना है और जिसका आकार मृदंग का सा कहा गया है। इस नक्षत्र के अंतर्गत मीन राशि पड़ती है। (२) एक मातृका का नाम। (३) गाय। (४) दुर्गा। (५) एक बालग्रह जो बच्चों को कष्ट देता है। (६) रेवत मनु की माता। (७) बलराम की पत्नी जो राजा रेवत की कन्या थीं।

रेवतीभव–संज्ञा पुं० [सं०] शनि।

रेवतीरमण–संज्ञा पुं० [सं०] (१) बलराम। (२) विष्णु।

रेवना†–क्रि० स० दे० "रेना"।

रेवरा†–संज्ञा पुं० दे० "रेवड़ा"।

संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की ईख।

रेवा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) नर्मदा नदी। (२) काम की पत्नी रति। (३) नील का पौधा। (४) दुर्गा। (५) एक प्रकार का साम। (६) एक प्रकार की मछली जो नदियों में पाई जाती है। (७) दीपक राग की एक रागिनी। (८) भारत का वह देशखंड जहाँ नर्मदा नदी बहती है। रीवाँ राज्य। बघेलखंड।

रेवाउतन-संज्ञा पुं० [सं० रेवा+उत्पन्न] हाथी। (डिं०)

विशेष—पुराने समय में नर्मदा के किनारे हाथी बहुत पाए जाते थे।

रेशम-संज्ञा पुं० [फ़ा०] एक प्रकार का महीन चमकीला और दृढ़ तंतु या रेशा जिससे कपड़े बुने जाते हैं। यह तंतु कोश में रहनेवाले एक प्रकार के कीड़े तैयार करते हैं।

विशेष—रेशम के कीड़े पिल्लू कहलाते हैं और बहुत तरह के होते हैं; जैसे,—विलायती, मदरासी या कनारी, चीनी, अराकानी, आसामी इत्यादि। चीनी, बूलू और बड़े पिल्लू का रेशम सब से अच्छा होता है। ये कीड़े तितली की जाति के हैं। इनके कई काया-कल्प होते हैं। अंडा फूटने पर ये बड़े पिल्लू के आकार में होते और रेंगते हैं। इस अवस्था में ये पत्तियाँ बहुत खाते हैं। शहतूत की पत्ती इनका सब से अच्छा भोजन है। ये पिल्लू बढ़कर एक प्रकार का कोश बनाकर उसके भीतर हो जाते हैं। उस समय इन्हें कोया कहते हैं। कोश के भीतर ही यह कीड़ा वह तंतु निकालता है, जिसे रेशम कहते हैं। कोश के भीतर रहने की अवधि जब पूरी हो जाती है, तब कीड़ा रेशम को काटता हुआ निकलकर उड़ जाता है। इससे कीड़े पालनेवाले निकलने के पहले ही कोयों को गरम पानी में डालकर कीड़ों को मार डालते हैं और तब ऊपर का रेशम निकालते हैं।

पर्य्या०—कौशेय। पाट। कोशा।

रेशमी-वि० [फ़ा०] रेशम का बना हुआ।

रेशा-संज्ञा पुं० [फ़ा०] (१) तंतु या महीन सूत जो पौधों की छालों आदि से निकलता है या कुछ फलों के भीतर पाया जाता है।

यौ०—रेशेदार।

रेष-संज्ञा पुं० [सं०] (१) क्षति। हानि। (२) हिंसा।

⊛ संज्ञा स्त्री० दे० "रेख"।

रेषण-संज्ञा पुं० [सं०] (१) घोड़े का हिनहिनाना। (२) बाघ का गरजना या गुर्राना।

रेषा-संज्ञा स्त्री० [सं०] घोड़े की हिनहिनाहट।

रेसमान-संज्ञा पुं० [फ़ा० रीसमान=रस्सा] सुतरी। डोरी। रस्सी। (लश०)

रेह-संज्ञा स्त्री० [?] खार मिली हुई वह मिट्टी जो ऊसर मैदानों में पाई जाती है। उ०—(क) जावत खेह रेह दुनियाई। मेघ बूँद औ गगन तराई।—जायसी। (ख) जहँ जहँ भूमि जरी भइ रेहू। बिरह के दाह भई जनु खेहू।—जायसी।

रेहन-संज्ञा पुं० [फ़ा०] रुपया देनेवाले के पास कुछ माल जायदाद इस शर्त पर रहना कि जब वह रुपया पा जाय, तब माल या जायदाद वापस कर दे। बंधक। गिरवी।

क्रि० प्र०—करना।—रखना।

यौ०—रेहनदार। रेहननामा।

रेहनदार-संज्ञा पुं० [फ़ा०] वह जिसके पास कोई जायदाद रेहन रखी हो।

रेहननामा-संज्ञा पुं० [फ़ा०] वह कागज जिस पर रेहन की शर्तें लिखी हों।

रेहल-संज्ञा स्त्री० [अ०] पुस्तक रखने की पेंचदार तख्ती। वि० दे० "रिहल"।

रेहुआ-वि० [हिं० रेह] जिसमें रेह बहुत हो।

रेहू-संज्ञा पुं० दे० "रोहू"।

रैंगलर-संज्ञा पुं० [अं०] इंगलैंड में प्रचलित सर्वोच्च गणितपरीक्षा में उत्तीर्ण व्यक्ति।

रैअति ⊛-संज्ञा स्त्री० दे० "रैयत"।

रैतिक-वि० [सं०] पीतल संबंधी। पीतल का।

रैतुवा-संज्ञा पुं० दे० "रायता"। उ०—रुचिर स्वाद बहु रैतुवा घृत के विविध विधान।—रघुराज।

रैत्य-संज्ञा पुं० [सं०] पीतल का बना बरतन।

रैदास-संज्ञा पुं० (१) प्रसिद्ध भक्त जो जाति का चमार था। यह रामानंद का शिष्य और कबीर, पीपा आदि का समकालीन था। (२) चमार।

रैदासी-संज्ञा पुं० [हिं० रैदास+ई] (१) एक प्रकार का मोटा जड़हन धान। (२) रैदास भक्त के संप्रदाय का।

रैन, रैनि⊛-संज्ञा स्त्री० [सं० रजनी] रात्रि। उ०—ओही छाहँ रैनि होइ आवै।—जायसी।

रैनी-संज्ञा स्त्री० [हिं० रैना] चाँदी या सोने की वह गुल्ली जो तार खींचने के लिये बनाई जाती है।

रैमुनिया-संज्ञा स्त्री० [हिं० राम ?] (१) एक प्रकार की आरहर। (२) लाल पक्षी की मादा।

रैयत-संज्ञा स्त्री० [अ०] प्रजा। रिआया।

रैयाराय-संज्ञा पुं० [हिं० राजा+राव] (१) छोटा राजा। (२) एक पदवी जो प्राचीन समय में राजा लोग अपने सरदारों को देते थे।

रैयंता-संज्ञा पुं० [हिं० रजरंत] योद्धा। (डिं०)

रैवत—संज्ञा पुं॰ [सं॰] (१) एक साम मंत्र। (२) गुजरात का एक पर्वत जिस पर से अर्जुन ने सुभद्रा का हरण किया था। (३) शंकर। शिव। (४) एक दैत्य जो बालग्रहों में से है। (५) आनर्त्त देश का एक राजा। (६) वर्त्तमान कल्प के पाँचवें मनु जो रेवती के गर्भ से उत्पन्न कहे गए हैं। (७) मेघ। बादल।

रैवतक—संज्ञा पुं॰ [सं॰] (१) गुजरात का एक पर्वत जो आधुनिक जूनागढ़ के पास है और गिरनार कहलाता है। इसी पर्वत पर अर्जुन ने सुभद्रा हरण किया था।

रैवत्य—संज्ञा पुं॰ [सं॰] (१) एक प्रकार का साम। (२) धन। सम्पत्ति।

रैसा †—संज्ञा पुं॰ [सं॰ रेष = हिंसा] झगड़ा। कलह। युद्ध।

रैहर—संज्ञा पुं॰ [सं॰ रेष = हिंसा] झगड़ा। लड़ाई।

रैहाँ—संज्ञा पुं॰ [अ॰] एक प्रकार की वनस्पति।

यौ॰—गुलेरैहाँ। तुख़्म रैहाँ।

रोंग—संज्ञा पुं॰ [सं॰ रोमक, प्रा॰ रोअंक] शरीर पर का बाल। लोम।

रोंगटा—संज्ञा पुं॰ [सं॰ रोमक, प्रा॰ रोअंक + हिं॰ रोंग + टा] मनुष्य के सिर को छोड़कर और सारे शरीर पर के बाल।

मुहा॰—रोंगटे खड़े होना = किसी भयानक या क्रूर कांड को देखकर शरीर में क्षोभ उत्पन्न होना। जी दहलना।

रोंगटी—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ रोना] खेल में बुरा मानना या बेईमानी करना। उ॰—रोंगटि करत तुम खेलत ही में परी कहा यह बानि।—सूर।

रोंठा—संज्ञा पुं॰ [देश॰] कच्चे आम की सुखाई हुई फाँक। आमकली। अमहर।

रोंव *†—संज्ञा पुं॰ [सं॰ रोम] शरीर के बाल। रोआँ। लोम। उ॰—(क) जानि पुकारि जो भा बन-बासी। रोंव रोंव परे फँद नगवासी।—जायसी। (ख) रोंव रोंव मानुस तन ठाढ़े। सूतहिं सूत बेध अस गाढ़े।—जायसी।

रोंसा †—संज्ञा पुं॰ [देश॰] लोबिया की फली। बोड़े की फली।

रोआँ †—संज्ञा पुं॰ दे॰ "रोयाँ"।

रोआई †—संज्ञा स्त्री॰ दे॰ "रुलाई"।

रोआब †—संज्ञा पुं॰ [अ॰ रोअ्ब] रोब दाब। प्रभाव। आतंक।

रोहँसा—संज्ञा पुं॰ [देश॰] रूसा घास जिसकी जड़ से सुगंधित तेल निकलता है। वि॰ दे॰ "रूसा"।

रोइया—संज्ञा पुं॰ [देश॰] जमीन में गड़ा हुआ काठ का कुंदा जिस पर रखकर गन्ने के टुकड़े काटते हैं।

रोउँ *—संज्ञा पुं॰ दे॰ "रोंव"।

रोक—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ रोधक] (१) ऐसी स्थिति जिससे चल या बढ़ न सकें। गति में बाधा। अटकाव। छेंक। अवरोध। जैसे,—इसी बगीचे से होकर गाएँ जाती हैं; उनकी रोक के लिये दीवार उठानी चाहिए। (२) मनाही। निषेध। मुमानियत।

यौ॰—रोकटोक।

(३) किसी कार्य में प्रतिबंध। काम में बाधा। (४) वह वस्तु जिससे आगे बढ़ना या चलना रुक जाय। रोकनेवाली वस्तु। जैसे,—ऐसी कोई रोक खड़ी करो जिससे वे इधर न आने पावें।

संज्ञा पुं॰ [सं॰ रोक = नक़द] (१) नक़द रुपया। रोकड़। उ॰—धावन तहाँ पठावहु देहिं लाख दस रोक।—जायसी। (२) नक़द व्यवहार या सौदा। (३) दीप्ति। (४) छिद्र। (५) नौका।

रोक थोक—संज्ञा स्त्री॰ दे॰ "रोकटोक"।

रोक टोक—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ रोकना + टोकना] (१) बाधा। प्रतिबंध। (२) मनाही। निषेध। जैसे,—इधर से चले जाओ, कोई रोक टोक करनेवाला नहीं है।

रोकड़—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ रोक = नक़द] नगद रुपया पैसा आदि, विशेषतः वह रकम जिसमें से आय-व्यय होता हो। नक़द रुपया। (२) जमा। धन। पूँजी।

मुहा॰—रोकड़ मिलना = आय-व्यय का जोड़ लगाकर यह देखना कि रकम घटती या बढ़ती तो नहीं है।

यौ॰—रोकड़ बही। रोकड़ बिक्री।

रोकड़बही—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ रोकड़ + बही] वह बही या किताब जिसमें नक़द रुपये का लेन देन लिखा रहता है।

रोकड़बिक्री—संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ रोकड़ + बिक्री] नक़द दाम पर की हुई बिक्री।

रोकड़िया—संज्ञा पुं॰ [हिं॰ रोकड़ + इया (प्रत्य॰)] रोकड़ रखनेवाला। नक़द रुपया रखनेवाला। ख़ज़ानची। मुनीम।

रोकना—क्रि॰ स॰ [हिं॰ रोक] (१) गति का अवरोध करना। चलते हुए को थामना। चलने या बढ़ने न देना। जैसे,—गाड़ी रोकना, पानी की धार रोकना।

संयो॰ क्रि॰—देना।—लेना।

(२) जाने न देना। कहीं जाने से मना करना। (३) किसी क्रिया या व्यापार को स्थगित करना। किसी चली आती हुई बात को बंद करना। जारी न रखना। (४) मार्ग में इस प्रकार पड़ना कि कोई वस्तु दूसरी ओर न जा सके। छेंकना। जैसे,—रास्ता रोकना, प्रकाश रोकना। (५) अड़चन डालना। बाधा डालना। (६) बाज़ रखना। वर्जन करना। मना करना। (७) ऊपर लेना। ओढ़ना। जैसे,—तलवार को लाठी पर रोकना। (८) वश में रखना। प्रतिबंध में रखना। क़ाबू में रखना। संयत रखना। जैसे,—मन को रोकना, इच्छा को रोकना। (९) बढ़ती हुई सेना या दल का सामना करना।

रोख&-संज्ञा पुं० दे० "रोष"।

रोग-संज्ञा पुं० [सं०] [वि० रोगी, रुग्ण] (१) वह अवस्था जिससे शरीर अच्छी तरह न चले और जिसके बढ़ने पर जीवन में संदेह हो। शरीर भंग करनेवाली दशा। बीमारी। व्याधि। मर्ज़।

पर्य्या०—गद। आमय। रुज। उपताप। अपाटव। श्रम। मांद्य। आकल्प।

रोगकारक-वि० [सं०] बीमारी पैदा करनेवाला। व्याधिजनक।

रोगकाष्ठ-संज्ञा पुं० [सं०] बक्कम की लकड़ी।

रोगग्रस्त-वि० [सं०] रोग से पीड़ित। बीमारी में पड़ा हुआ।

रोगन-संज्ञा पुं० [फ़ा० रौग़न] (१) तेल। चिकनाई। (२) पतला लेप जिसे किसी वस्तु पर पोतने से चमक, चिकनाई और रंग आवे। पालिश। वारनिश। (३) लाख आदि से बना हुआ मसाला जिसे मिट्टी के बरतनों आदि पर चढ़ाते हैं। (४) चमड़े को मुलायम करने के लिये कुसुम या बर्रे के तेल से बनाया हुआ मसाला।

रोगनदार-वि० [फ़ा०] जिस पर रोगन किया गया हो। पालिशदार। चमकीला।

रोगनाशक-वि० [सं०] बीमारी दूर करनेवाला।

रोगनिदान-संज्ञा पुं० [सं०] रोग के लक्षण और उत्पत्ति के कारण आदि की पहचान। तशखीस।

रोगनी-वि० [फ़ा०] रोग़न किया हुआ। रोग़न लगाया हुआ। रोग़नदार। जैसे,—रोगनी बरतन।

रोगपरीसह-संज्ञा पुं० [सं०] उग्र रोग होने पर कुछ ध्यान न करके उसका सहन। (जैन)

रोगमुरारि-संज्ञा पुं० [सं०] ज्वर की एक रसौषध।

विशेष—पारा, गंधक, विष, लोहा, त्रिकटु और ताँबा सम भाग और सीसा अर्द्ध भाग लेकर पीस डाले और दो दो रत्ती की गोलियाँ बना ले।

रोगशिला-संज्ञा स्त्री० [सं०] मनःशिला। मैनसिल।

रोगशिल्पी-संज्ञा पुं० [सं०] सोनालू का पेड़।

रोगाक्रांत-वि० [सं०] रोग से घिरा हुआ। व्याधि-पीड़ित।

रोगातुर-वि० [सं०] रोग से घबराया हुआ। व्याधि से पीड़ित।

रोगार्त्त-वि० [सं०] रोग से दुःखी।

रोगाह्वय-संज्ञा पुं० [सं०] कुष्ठौषध। कुट।

रोगिणी-वि० स्त्री० दे० "रोगी"।

रोगित-वि० [सं०] पीड़ित। रोगयुक्त।

संज्ञा पुं० कुत्ते का पागलपन।

रोगितरु-संज्ञा पुं० [सं०] अशोक वृक्ष।

रोगिया-संज्ञा पुं० [हिं० रोग + इया (प्रत्य०)] रोगी। बीमार। उ०—रोगिया की को चालै बैदहिं जहाँ उपास।—जायसी।

रोगी-वि० [सं० रोगिन्] [स्त्री० रोगिनी] जो स्वस्थ न हो। जिसकी तंदुरुस्ती ठीक न हो। रोगयुक्त। व्याधिग्रस्त। बीमार। माँदा।

रोचक-वि० [सं०] (१) रुचिकारक। रुचनेवाला। अच्छा लगनेवाला। प्रिय। (२) जिसमें मन लगे। मनोरंजक। दिलचस्प। जैसे,—रोचक वृत्तांत।

संज्ञा पुं० (१) क्षुधा। भूख। (२) कदली। केला। (३) राजपलांडु। (४) एक प्रकार की ग्रंथिपर्णी जिसे नैपाल में 'भँडेउर' कहते हैं। (५) काँच की कुप्पी या शीशी बनानेवाला।

रोचकता-संज्ञा स्त्री० [सं०] रोचक होने का भाव। मनोहरता। मनोरंजकता। दिलचस्पी।

रोचकद्वय-संज्ञा पुं० [सं०] विट् लवण और सैंधव लवण। (वैद्यक)

रोचन-वि० [सं०] (१) अच्छा लगनेवाला। रुचनेवाला। रोचक। (२) दीप्तिमान। शोभा देनेवाला। (३) प्रिय लगनेवाला।

संज्ञा पुं० (१) कूट शाल्मलि। काला सेमर। (२) कांपिल्ल। कमीला। (३) श्वेत शिग्रु। सफेद सहिंजन। (४) पलांडु। प्याज। (५) आरग्वध। अमलतास। (६) करंज। करंजुवा। कंजा। (७) अंकोट। ढेरा। (८) दाड़िम। अनार। (९) रोगों के अधिष्ठाता एक प्रकार के देवता। (हरिवंश) (१०) स्वारोचिष मन्वंतर के इंद्र। (११) एक पर्वत का नाम। (मार्कंडेय पुराण) (१२) कामदेव के पाँच बाणों में से एक। (१३) रोली। रोचना। (१४) गोरोचन।

रोचनक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) जँबीरी नीबू। (२) वंशलोचन।

रोचनफल-संज्ञा पुं० [सं०] बिजौरा नीबू।

रोचना-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) रक्त कमल। (२) गोरोचन। (३) श्रेष्ठ स्त्री। (४) वसुदेव की स्त्री। (५) आकाश। (६) काला सेमर। (७) वंशलोचन।

रोचनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) आमलकी। आँवला। (२) गोरोचन। (३) मनःशिला। मैनसिल। (४) श्वेत त्रिवृता। सफेद निसोथ। (५) कमीला। (६) दंती। (७) तारका। तारा।

रोचमान-वि० [सं०] चमकता हुआ। शोभित होता हुआ।

संज्ञा पुं० (१) घोड़े की गरदन पर की एक भँवरी। (२) स्कंद के एक अनुचर का नाम।

रोचि-संज्ञा स्त्री० [सं० रोचिस्] (१) प्रभा। दीप्ति। (२) प्रकट होती हुई शोभा। उ०—साहस के डर मध्य धन्यो कर, जागति, रोम की रोचि अनाई।—केशव। (३) किरण। रश्मि।

रोचिष्णु-वि० [सं०] (१) चमकदार। (२) आभूषणों आदि से जगमगाता हुआ।

रोचिस्-संज्ञा पुं० [सं०] दीप्ति। प्रभा। चमक।

रोची-संज्ञा स्त्री० [सं०] हिलमोचिका ।

रोजड़-संज्ञा पुं० [सं० रोदन] (१) रोना धोना । रुदन । उ०—यरजा पिति हँसी औ रोजू ।—जायसी । (२) रोना पीटना । विलाप । स्यापा । उ०—(क) रोज सरोजनि के परै, हँसी ससी की होय ।—बिहारी । (ख) जहाँ गरव तहँ पीरा, जहाँ हँसी तहँ रोज ।—जायसी ।

रोज़-संज्ञा पुं० [फ़ा०] दिन । दिवस । जैसे,—उसे गए चार रोज़ हो गए ।
अव्य० प्रति दिन । नित्य । जैसे—वह हमारे यहाँ रोज़ आता है ।

रोज़गार-संज्ञा पुं० [फ़ा०] (१) जीविका या धन संचय के लिये हाथ में लिया हुआ काम जिसमें कोई बराबर लगा रहे । व्यवसाय । धंधा । उद्योग । उद्यम । पेशा । कारबार ।
मुहा०—रोज़गार चमकना = व्यवसाय में खूब लाभ होना । रोज़गार छूटना = जीविका न रहना । रोज़गार चलना = कारबार में लाभ होना । व्यवसाय जारी रहना । रोज़गार लगना = जीविका का प्रबंध होना । गुज़र के लिये कोई काम मिलना । रोज़गार लगाना = जीविका का प्रबंध करना । कोई काम देना । निर्वाह के लिये कोई मार्ग बनाना । रोज़गार से होना = निर्वाह के लिये किसी काम में लगना ।
(२) क्रय विक्रय आदि का आयोजन । व्यापार । तिजारत । जैसे,—यहाँ गल्ले का रोज़गार खूब है ।

रोज़गारी-संज्ञा पुं० [फ़ा०] व्यपारी । सौदागर । वणिक ।

रोज़नामचा-संज्ञा पुं० [फ़ा०] (१) वह किताब या बही जिस पर रोज़ का किया हुआ काम लिखा जाता है । दिनचर्या की पुस्तक । (२) प्रति दिन का जमा खर्च लिखने की बही । कच्चा चिट्ठा । खाता ।

रोज़मर्रा- अव्य० [फ़ा०] प्रति दिन । हर रोज़ । नित्य ।
संज्ञा पुं० नित्य के व्यवहार में आनेवाली भाषा । बोलचाल । चलती बोली ।

रोज़ा-संज्ञा पुं० [फ़ा०] (१) व्रत । उपवास । (२) वह व्रत जो मुसलमान रमज़ान के महीने में ३० दिन तक रखते हैं और जिसका अंत होने पर ईद होती है ।
क्रि० प्र०—रखना ।
मुहा०—रोज़ा टूटना = व्रत खंडित हो जाना । व्रत का निर्वाह न हो पाना । रोज़ा तोड़ना = व्रत खंडित करना । व्रत पूरा न करना । रोज़ा खोलना = दिन भर भूखे रहकर शाम को पहले पहल कुछ खाना ।

रोज़ाना-क्रि० वि० [फ़ा०] प्रति दिन । हर रोज़ । नित्य ।

रोज़ी-संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] (१) रोज़ का खाना । नित्य का भोजन ।
क्रि० प्र०—देना ।—मिलना ।
यौ०—रोज़ी-रोज़गार ।
मुहा०—रोज़ी चलना = भोजन वस्त्र मिलता जाना । रोज़ी चलाना = भोजन वस्त्र आदि का ठिकाना करना ।
(२) वह जिसके सहारे किसी को भोजन वस्त्र प्राप्त हो । काम धंधा जिससे गुज़र हो । जीवन-निर्वाह का अवलंब । जीविका । रोज़गार । जैसे,—किसी की रोज़ी लेना अच्छी बात नहीं । (३) एक प्रकार का पुराना कर या महसूल जिसके अनुसार व्यापारियों के चौपायों को एक एक दिन राज्य का काम करना पड़ता था ।
संज्ञा स्त्री० [देश०] गुजरात में होनेवाली एक प्रकार की कपास जिसके फूल पीले होते हैं ।

रोज़ीदार-संज्ञा पुं० [फ़ा०] वह जिसको रोज़ाना खर्च के लिये कुछ मिलता है ।

रोज़ीना-संज्ञा पुं० [फ़ा०] रोज़ का । नित्य का ।
संज्ञा पुं० प्रति दिन की मज़दूरी, वेतन या वृत्ति आदि । जैसे,—उसको २) रोज़ीना मिलता है ।

रोज़ीबिगाड़-संज्ञा पुं० [फ़ा० रोज़ी + हिं० बिगाड़ना] लगी हुई रोज़ी को बिगाड़नेवाला । जमकर कोई काम धंधा न करनेवाला । निखट्टू । निकम्मा ।

रोझ-संज्ञा स्त्री० [देश०] नीलगाय । गवय ।

रोट-संज्ञा पुं० [हिं० रोटी] (१) गेहूँ के आटे की बहुत मोटी रोटी । लिट्ट ।
विशेष—ऐसी रोटी गरीब लोग खाते हैं या हाथियों को रातिब में दी जाती है ।
(२) मीठी मोटी रोटी या पूआ जो हनुमान आदि देवताओं को चढ़ाया जाता है ।

रोटका-संज्ञा पुं० [देश०] बाजरा ।

रोटिका†-संज्ञा स्त्री० [हिं० रोटी] छोटी रोटी । फुलकी ।

रोटिहा†-संज्ञा पुं० [हिं० रोटी + हा (प्रत्य०)] रोटियों पर रहनेवाला नौकर । केवल भोजन पर रहनेवाला चाकर । उ०—कहिहौं बलि रोटिहा रावरो बिनु मोलहि बिकाउँगो ।—तुलसी ।

रोटिहान†-संज्ञा पुं० [हिं० रोटी] चूल्हे के पास का वह मिट्टी का छोटा चबूतरा जिस पर रोटियाँ पकाकर रखी जाती हैं ।

रोटी-संज्ञा स्त्री० [?] (१) गुँधे हुए आटे की आँच पर सेंकी हुई लोई या टिकिया जो नित्य के खाने के काम में आती है । चपाती । फुलका ।
क्रि० प्र०—पकाना ।—बनाना ।—सेंकना ।
मुहा०—रोटी पोना = (१) रोटी पकाना । (२) चकले पर बेलकर गुँधे हुए आटे की टिकिया बनाना ।
(२) भोजन । रसोई । खाना । जैसे,—तुम्हारे यहाँ कब रोटी तैयार होती है ?

यौ०—रोटी दाल।
मुहा०—रोटी कपड़ा = भोजन वस्त्र। खाना कपड़ा। जीवन निर्वाह की सामग्री। जैसे,—उस औरत ने रोटी कपड़े का दावा किया है। रोटी कमाना = जीविका उपार्जन करना। रोटी को रोना = भूखों मरना। अन्न-कष्ट भोगना। किसी बात की रोटी खाना = किसी बात से जीविका कमाना। जैसे,—वह इसी की तो रोटी खाता है। रोटियों का मारा = भूखा। अन्न बिना दुखी। किसी के यहाँ रोटियाँ तोड़ना = किसी के घर पड़ा रहकर पेट पालना। बैठे बैठे किसी का दिया खाना। किसी को रोटियाँ लगना = किसी को खाना पूरा मिलने से मोटाई सूझना। भरपेट भोजन पाने से इतराना। दाल रोटी से खुश = जिसे खाने पीने का अच्छा सुबीता हो। रोटी दाल चलना = जीवन-निर्वाह होना। रोटी का पेट = रोटी का वह पार्श्व या तल जो पहले गरम तवे पर डाला जाता है। रोटी की पीठ = रोटी का वह पार्श्व जो उलटने पर सेंका जाता है।

रोटीफल—संज्ञा पुं० [हिं० रोटी + फल] (१) एक फल जो खाने में बहुत अच्छा होता है। (२) इस फल का पेड़ जो मझोले आकार का होता है और दक्षिण में मदरास की ओर होता है। इसके पत्ते बड़े बड़े होते हैं।

रोठा—संज्ञा पुं० [देश०] बाजरे की एक जाति।

रोड़ा—संज्ञा पुं० [सं० लोष्ठ, प्रा० लोड्ड] (१) ईंट या पत्थर का बड़ा ढेला। बड़ा कंकड़। जैसे,—कहीं की ईंट कहीं का रोड़ा; भानमती ने कुनबा जोड़ा। (२) एक प्रकार का पंजाबी धान जो बिना सींचे उत्पन्न होता है।
मुहा०—रोड़ा अटकाना या डालना = विघ्न या बाधा डालना।
संज्ञा पुं० [सं० आरट्ट ?] पंजाब की अरोड़ा नामक जाति।

रोद*—संज्ञा पुं० [?] मुसलमान। (डिं०)

रोदन—संज्ञा पुं० [सं०] विलाप करना। क्रंदन। रोना। उ०—माता ताको रोदन देखि। दुख पायो मन माहिं विसेखि।—सूर।
क्रि० प्र०—करना।—ठानना।—होना।

रोदसी—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) स्वर्ग। (२) भूमि। उ०—पूरित है भूरि धूरि रोदसिहि आस पास दिसि दिसि बरषा ज्यों बल निबलति है।—केशव।

रोदा—संज्ञा पुं० [सं० रोध = किनारा] (१) कमान की डोरी। धनुष की पतंचिका। चिल्ला। उ०—मानो अरविंद पै चंद को चढ़ाय दीनी मानो कमनैत बिनु रोदा की कमानें है।—पद्माकर। (२) सितार के परदे बाँधने की बारीक ताँत।

रोध—संज्ञा पुं० [सं०] (१) रोक। रुकावट। (२) किनारा। तट। (३) बारी।

रोधक—संज्ञा पुं० [सं०] रोकनेवाला।

रोधकृत्—संज्ञा पुं० [सं०] साठ संवत्सरों में से पैंतालीसवाँ संवत्सर। (बृहत्संहिता)

रोधन—संज्ञा पुं० [सं०] (१) रोक। रुकावट। अवरोध। (२) दमन। उ०—अति क्रोधन रन सोधन सदा अखिल रोधन पन किए।—गोपाल।

रोधना*—क्रि० स० [सं० रोधन] रोकना।

रोध्र—संज्ञा पुं० [सं०] (१) अपराध। पाप। (२) लोध्र। लोध।

रोना—क्रि० अ० [सं० रोदन, प्रा० रोअन] (१) पीड़ा, दुःख या शोक से व्याकुल होकर मुँह से विशेष प्रकार का स्वर निकालना और नेत्रों से जल छोड़ना। चिल्लाना और आँसू बहाना। रुदन करना।
संयो० क्रि०—उठना।—देना।—पड़ना।—लेना।
मुहा०—रोना कलपना या रोना धोना = विलाप करना। रोना पीटना = छाती या सिर पर हाथ मार मारकर विलाप करना। बहुत विलाप करना। रो बैठना = (किसी व्यक्ति या वस्तु के लिये) शोक कर चुकना। निराश होकर रह जाना। रो रोकर = (१) ज्यों त्यों करके। कठिनता से। दुःख और कष्ट के साथ। प्रसन्नता-पूर्वक नहीं। जैसे,—उसने रो रोकर काम किया है। (२) बहुत धीरे धीरे। बहुत रुक रुक कर। जैसे,—जब रुपया देना ही है, तब रो रोकर क्यों देते हो? रो रोकर घर भरना = बहुत विलाप करना। किसी वस्तु को रोना = किसी वस्तु के लिये पछताना या शोक करना। किसी वस्तु का दुःख मानना। जैसे,—किस्मत को रोना, नाम को रोना, रुपए को रोना। रोना गाना = विनती करना। दुःखपूर्वक निवेदन करना। गिड़गिड़ाना। जैसे,—उसने रो गाकर जुर्माना माफ़ करा लिया। (२) बुरा मानना। रंज मानना। चिढ़ना। जैसे,—तुम तो हँसी में रोने लगते हो। (३) दुःख करना। पछताना। जैसे,—रुपया डूब गया; अब रो रहे हैं।
संज्ञा पुं० दुःख। रंज। खेद। शोक। जैसे,—इसी का तो रोना है।
मुहा०—रोना पड़ना या रोना पीटना पड़ना = विलाप होना। शोक छाना। जैसे,—घर घर रोना पीटना पड़ गया।
वि० [स्त्री० रोनी] (१) थोड़ी सी बात पर भी दुःख माननेवाला। रोनेवाला। जैसे,—यह रोना आदमी है; इससे मत बोलो। (२) बात बात पर बुरा माननेवाला। चिड़चिड़ा। (३) रोनेवाले का सा। मुहर्रमी। रोवाँसा। जैसे,—रोनी सूरत।

रोनी धोनी—वि० स्त्री० [हिं० रोना धोना] रोने धोनेवाली। शोक या दुःख की चेष्टा बनाए रहनेवाली। मुहर्रमी।
संज्ञा स्त्री० रोने धोने की वृत्ति। शोक या दुःख की चेष्टा। मनहूसी। जैसे,—रोनी धोनी पीछे जा; हँसनी [illegible]

आगे आ। (स्त्रियाँ) (स्त्रियाँ बच्चों को नहलाते समय उनका अंग पोंछती हुई उक्त वाक्य कहा करती हैं।)

रोप–संज्ञा पुं० [सं०] (१) ठहराव। रुकावट। (२) मोहन। बुद्धि फेरना। (३) छेद। सूराख। (४) बाण। तीर।
संज्ञा पुं० [देश०] हल की एक लकड़ी जो हरिस के छोर पर जंघे के पार लगी रहती है।

रोपक–वि० [सं०] (१) स्थापित करनेवाला। उठानेवाला। (२) स्थित करनेवाला। (३) जमानेवाला। लगानेवाला। (४) सोने चाँदी की एक तौल या मान जो सुवर्ण का ७० वाँ भाग होता है।

रोपण–संज्ञा पुं० [सं०] [वि० रोपित, रोप्य] (१) ऊपर रखना या स्थापित करना। (२) लगाना। जमाना। बैठाना। (बीज या पौधा) (३) स्थापित करना। खड़ा करना। उठाना। (दीवार आदि) (४) मोहित करना। मोहन। (५) विचारों में गड़बड़ी डालना। बुद्धि फेरना। (६) घाव का सूखना या उस पर पपड़ी बँधना। (७) घाव पर किसी प्रकार का लेप लगाना।

रोपना–क्रि० स० [सं० रोपण] (१) जमाना। लगाना। बैठाना। (२) पौधे को एक स्थान से उखाड़कर दूसरे स्थान पर जमाना। पौधा जमीन में गाड़ना। (३) अड़ाना। ठहराना। स्थापित करना। दृढ़ता के साथ रखना। उ०—बीच सभा अंगद पद रोप्यो, टर्‍यो न, निसिचर हारे।—सूर। (४) बीज रखना। बोना। जैसे,—बीज रोपना। (५) कोई वस्तु लेने के लिये हथेली या कोई बरतन सामने करना।
मुहा०—हाथ रोपना = माँगने के लिये हाथ फैलाना।
संयो० क्रि०—देना।—लेना।

रोपनी–संज्ञा स्त्री० [हिं० रोपना] रोपने का काम। धान आदि के पौधों को गाड़ने का काम। रोपाई। जैसे,—आज कल रोपनी हो रही है।

रोपित–वि० [सं०] (१) लगाया हुआ। जमाया हुआ। (२) स्थापित। रखा हुआ। (३) मोहित। भ्रांत। (४) उठाया हुआ। खड़ा किया हुआ।

रोब–संज्ञा पुं० [अ० रुअब] [वि० रोबीला] बड़प्पन की धाक। आतंक। प्रभाव। दबदबा। तेज। प्रताप।
यौ०—रोबदार। रोबदाब।
मुहा०—रोब जमाना = बड़प्पन की धाक पैदा करना। आतंक उत्पन्न करना। रोब मिट्टी में मिलना = बड़प्पन की धाक न रह जाना। प्रभाव नष्ट होना। रोब दिखाना = बड़प्पन का प्रभाव डालना। आतंक उत्पन्न करनेवाली चेष्टा प्रकट करना। रोब में आना = (१) आतंक के कारण कोई ऐसी बात कर डालना जो यों न की जाती हो। दबदबे में पड़ जाना। बड़प्पन की चेष्टा देख प्रभावित होना। (२) भय मानना।

रोबदार–वि० [अ०] जिसकी चेष्टा से तेज और प्रताप प्रकट हो। रोबदाब वाला। भड़कीला। प्रभावशाली। तेजस्वी।

रोमंथ–संज्ञा पुं० [सं०] सींगवाले चौपायों का निगले हुए चारे को फिर से मुँह में लाकर धीरे धीरे चबाना। जुगाली। पागुर।

रोम–संज्ञा पुं० [सं० रोमन्] (१) देह के बाल। रोयाँ। लोम।
यौ०—रोमराजी। रोमावलि। रोमलता।
मुहा०—रोम रोम में = शरीर भर में। रोम रोम से = तन मन से। पूर्ण हृदय से। जैसे,—रोम रोम से आशीर्वाद देना।
(२) छेद। छिद्र। सूराख। (३) जल। पानी।

रोमक–संज्ञा पुं० [सं०] साँभर झील का नमक। शाकंभरी लवण। पांशु लवण।
संज्ञा पुं० (१) रोम नगर का वासी। रोम देश का मनुष्य। रोमन। (२) रोम नगर या देश। (३) ज्योतिष-सिद्धांत का एक भेद।

रोमकर्णक–संज्ञा पुं० [सं०] खरगोश। खरहा।

रोमकूप–संज्ञा पुं० [सं०] शरीर के वे छिद्र जिनमें से रोएँ निकले हुए होते हैं। लोम छिद्र।

रोमकेशर–संज्ञा पुं० [सं०] चँवर। चामर।

रोमगुच्छ–संज्ञा पुं० [सं०] चँवर। चामर।

रोमद्वार–संज्ञा पुं० दे० "रोमकूप"।

रोमन कैथलिक–संज्ञा पुं० [अं०] ईसाइयों का प्राचीन संप्रदाय जिसमें ईसा की माता मरियम की, तथा अनेक संत महात्माओं की उपासना चलती है और गिरजों में मूर्त्तियाँ भी रखी जाती हैं।

रोमपाट–संज्ञा पुं० [सं०] ऊनी कपड़ा। दुशाला आदि। उ०—चामर चरम बसन बहु भाँती। रोमपाट पट अगनित जाती।—तुलसी।

रोमपाद–संज्ञा पुं० [सं०] अंग देश के एक प्राचीन राजा जिनका उल्लेख वाल्मीकीय रामायण (बाल० सर्ग ९) में है।
विशेष—यह राजा बड़ा अन्यायी और अत्याचारी था। इसके पापों से एक बार भयंकर अनावृष्टि हुई। राजा ने शास्त्रज्ञ ब्राह्मणों को बुलाकर उपाय पूछा। सब ने ऋष्यशृंग मुनि को लाकर उनके साथ राजकन्या शांता का विवाह कर दे की राय दी। वेश्याओं के प्रयत्न से ऋष्यशृंग मुनि लाए गए और खूब वृष्टि हुई। तब राजा ने अपनी कन्या शांता उन्हें ब्याह दी।

रोमवद्ध–संज्ञा पुं० [सं०] वह वस्त्र जो रोयों से बँधा या बुना हो।
वि० जो रोयों से बँधा या बुना हो।

रोमभूमि–संज्ञा स्त्री० [सं०] चमड़ा। त्वक्।

रोमराजी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) रोमावलि। रोयों की पंक्ति। (२) रोयों की वह पंक्ति जो पेट के बीचो बीच नाभि से ऊपर की ओर जाती है।

रोमलता-संज्ञा स्त्री० [सं०] रोमावलि। रोमराजी। उ०—कटि अति सूक्षम उदर द्युति चलदल दल उपमान। रोमलता तन धूम अति चारु चिटीन समान।—केशव।

रोमहर्ष-संज्ञा पुं० [सं०] रोंगटे खड़े होना। रोमांच। पुलक।

रोमहर्षण-संज्ञा पुं० [सं०] (१) रोयों का खड़ा होना जो अत्यंत आनंद के सहसा अनुभव से अथवा भय से होता है। (२) वेद व्यास का शिष्य, सूत पौराणिक।
वि० जिससे रोंगटे खड़े हों। भयंकर। भीषण। जैसे,—रोमहर्षण घटना।

रोमांच-संज्ञा पुं० [सं०] (१) आनंद से रोयों का उभर आना। पुलक। (२) भय से रोंगटे खड़े होना।

रोमांचित-वि० [सं०] (१) पुलकित। हृष्टरोमा। (२) भय से जिसके रोंगटे खड़े हो गए हों।

रोमांतिका मसूरिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] चेचक की तरह का एक रोग जिसमें रोमकूप के समान महीन महीन दाने शरीर भर में निकलते हैं और कई दिनों तक रहते हैं। खाँसी, ज्वर और अरुचि भी रहती है। इस रोग को छोटी माता भी कहते हैं।

रोमाग्र-संज्ञा पुं० [सं०] रोएँ की नोक।

रोमाली-संज्ञा स्त्री० [सं०] रोयों की पंक्ति। रोमावली। रोमराजी।

रोमावलि, रोमावली-संज्ञा स्त्री० [सं०] रोयों की पंक्ति जो पेट के बीचो बीच नाभि से ऊपर की ओर गई होती है। रोमाली। रोमराजी। उ०—नाभिह्रद रोमावली अलि चारु सहज सुभाव।—सूर।

रोमोद्गम-संज्ञा पुं० [सं०] रोयों का हर्ष या भय से खड़ा होना।

रोमोद्भेद-संज्ञा पुं० [सं०] रोमहर्ष।

रोयाँ-संज्ञा पुं० [सं० रोमन्] बाल जो सब दूध पिलानेवाले प्राणियों के शरीर पर थोड़े या बहुत उगते हैं। लोम। रोम।
क्रि० प्र०—उखड़ना।—निकलना।—जमना।
मुहा०—एक रोयाँ न उखड़ना = कुछ भी हानि न होना। रोयाँ खड़ा होना = हर्ष या भय से रोमकूपों का उभरना। रोयाँ पसीजना = हृदय में दया उत्पन्न होना। करुणा होना। तरस आना। उ०—ईंगुर भा पहार जौं भीजा। पै तुम्हार नहिं रोयँ पसीजा।—जायसी।

रोर-संज्ञा स्त्री० [सं० रवण] (१) बहुत से लोगों के मुँह से निकलकर उठी हुई ऊँची सम्मिलित ध्वनि। कलकल। हल्ला। कोलाहल। रौला। शोर गुल। चिल्लाहट। उ०—(क) पर्यो भोर ही रोर लंकगढ़, दई हाँक हनुमान।—तुलसी। (ख) जिनके जात बहुत दुख पायो, रोर परी यहि खेरे।—सूर।
क्रि० प्र०—उठना।—करना।—पड़ना।—मचना।
(२) बहुत से लोगों के रोने चिल्लाने का शब्द। उ०—घरी एक सुठि भएउ अँदोरा। पुनि पाछे बीता होइ रोरा।—जायसी। (३) धूम। घमासान। उपद्रव। हलचल। आंदोलन।
वि० (१) प्रचंड। तेज़। दुर्दमनीय। उ०—(क) देव-बंदीछोर, रन रोर केसरी-किसोर, जुग जुग तेरे बर विरद विराजे हैं।—तुलसी। (ख) ते रन-रोर कपीस-किसोर बड़े बरजोर परे फँग पाए।—तुलसी। (२) उपद्रवी। उद्धत। दुष्ट। अत्याचारी। उ०—(क) आपनी न बूझै, न कहे को राढ़ रोर, रे।—तुलसी। (ख) तालनि को बँधियो, बध रोर को, नाथ के साथ चिता जरिए जू।—केशव।

रोरा-संज्ञा पुं० [हिं० रोड़ा] चूर गाँजा।
संज्ञा पुं० दे० "रोर"।

रोरी†-संज्ञा स्त्री० [सं० रोचनी] हलदी चूने से बनी हुई लाल रंग की बुकनी जिसका तिलक लगाते हैं। रोली। उ०—मुख मंडित रोरी रंग सेंदुर माँग छुही।—सूर।
क्रि० प्र०—लगाना।
⊛ संज्ञा स्त्री० [हिं० रोर] चहल पहल। धूम। उ०—सकल सुढंग अंग भरी भोरी। पिय निरतंत मुसकनि मुख मोरी, परिरंभन रस रोरी।—हरिदास।
वि० [हिं० रुरा] सुंदर। रुचिर। उ०—स्याम तनु राजत पीत पिछौरी। उर बनमाल, काछनी काछे, कटि किंकिनि छबि रोरी।—सूर।
संज्ञा पुं० [हिं० रोली ?] लहसुनिया नग। एक प्रकार का रत्न।

रोरुदा-संज्ञा स्त्री० [सं०] अत्यंत रुदन और विलाप।

रोलंब-संज्ञा पुं० [सं०] (१) भ्रमर। भौंरा। भँवर। (२) सूखी जमीन।
वि० विश्वास न करनेवाला। अविश्वासी।

रोल⊛-संज्ञा स्त्री० [सं० रवण, हिं० रोर] (१) रोर। हल्ला। कोलाहल। (२) शब्द। ध्वनि। उ०—भानु भोर तमचुर की रोल। गोकुल में आनंद होत है, मंगल धुनि महराने ढोल।—सूर।
संज्ञा पुं० पानी का तोड़। रेला। बहाव।
संज्ञा पुं० [देश०] रुखानी की तरह का एक औज़ार जिससे बरतन की नक्काशी की ज़मीन साफ़ की जाती है।
संज्ञा पुं० [सं०] हरा अदरक।

रोलर-संज्ञा पुं० [अं०] (१) ढुलकनेवाली वस्तु। बेलन। बेलना। (२) छापेखाने में स्याही देने का बेलन। यह सरेस और

गुड़ मिलाकर बनता है। इसी पर स्याही लगाकर टाइपों पर फेरी जाती है।

रोलर फ्रेम-संज्ञा पुं० [अं०] बेलन की कमानी।

विशेष—इसमें रोलर लगाकर स्याही तथा टाइपों पर फेरते हैं। यह लोहे का एक हलका या घेरा होता है जिसमें एक पेचदार छड़ लगी होती है। ऊपर काठ की दो मुठिया होती हैं जिन्हें पकड़कर सिल पर स्याही पीसते और हर्फों पर फेरते हैं।

रोलर मोल्ड-संज्ञा पुं० [अं०] सरेस का बेलन ढालने का साँचा। यह दो प्रकार का होता है।—(१) चोंगा, जिसमें से बेलन ठेलकर निकाला जाता है। बेलन ढालते समय इसमें पीसी खड़िया तथा रेंडी का तेल लगा दिया जाता है जिसमें मोल्ड में सरेस न पकड़ ले। (२) दो-फाँका—जिसके पल्ले अलग अलग होते हैं। इन्हें खोल देने से रोलर सहज में निकल आता है।

रोला-संज्ञा पुं० [सं० रावण] (१) रोर। शोर गुल। कोलाहल। हल्ला। (२) घमासान युद्ध।

संज्ञा पुं० [सं०] एक छंद जिसके प्रत्येक चरण में ११ + १३ के विश्राम से २४ मात्राएँ होती हैं। (किसी किसी का मत है कि इसके अंत में दो गुरु अवश्य आने चाहिएँ; पर यह सर्वसम्मत नहीं है।)

† संज्ञा पुं० [देश०] जूठे बरतन माँजने का काम। चौका बरतन करने का काम।

रोली-संज्ञा स्त्री० [सं० रोचनी] चूने हल्दी से बनी हुई लाल बुकनी जिसका तिलक लगाते हैं। थ्री।

विशेष—लोहे की कड़ाही में चूने का पानी भरकर उसमें हल्दी, खटाई और सोना गलाने का सुहागा डालकर अग्नि पर पकाते हैं। पीछे सुखाकर छान लेते हैं।

रोवनहार&-संज्ञा पुं० [हिं० रोवना + हारा (प्रत्य०)] (१) रोनेवाला। (२) किसी के मर जाने पर उसका शोक करनेवाला कुटुंबी। उ०—रामबिमुख अस हाल तुम्हारा। रहा न कुल कोउ रोवनहारा।—तुलसी।

रोवना-क्रि० अ० दे० "रोना"।

वि० [स्त्री० रोवनी] (१) बहुत जल्दी रोनेवाला। बहुत जल्दी बुरा माननेवाला। (२) हँसी या खेल में भी बुरा मान जानेवाला। चिढ़नेवाला। उ०—तहीं न पायो सुयस भाजु रोवना सब बोलैं।—विश्राम।

रोवनिहारा&-वि० दे० "रोवनिहारा"। उ०—राम बिमुख अस हाल तुम्हारा। रहा न कोउ कुल रोवनिहारा।—तुलसी।

रोवनी धोवनी†-संज्ञा स्त्री० [हिं० रोवना धोवना] रोनी धोनी। रोने धोने की वृत्ति। दुःख या शोक की चेष्टा। मनहूसी। वि० दे० "रोनी धोनी"। उ०—सुख नींद कहति आली आइहौं। रोवनि धोवनि, अनखानि, अनरसनि डीठि मुठि निठुर नसाइहौं। हँसनि खेलनि, किलकनि आनंदनि भूपति-भवन बसाइहौं।—तुलसी।

रोवाँ†-संज्ञा पुं० दे० "रोयाँ"।

रोवासा-वि० [हिं० रोवना] [स्त्री० रोवासी] जो रोने पर तैयार हो। जो रो देना चाहता हो।

रोशन-वि० [फा०] (१) जलता हुआ। प्रदीप्त। प्रकाशित। जैसे,—चिराग रोशन करना। (२) प्रकाशमान। चमकदार। (३) प्रसिद्ध। मशहूर। जैसे,—नाम रोशन होना।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

(४) प्रकट। जाहिर। जैसे,—जो बात है, वह आप पर रोशन है।

मुहा०—किसी पर रोशन होना = किसी पर जाहिर होना। प्रकट होना। मालूम होना।

रोशन चौकी-संज्ञा स्त्री० [फा०] फूँककर बजाने का एक बाजा। शहनाई का बाजा। नफीरी।

विशेष—इसे प्रायः पाँच आदमी मिलकर बजाते हैं। एक केवल स्वर भरता है; दो उसके द्वारा राग रागिनी का गान करते हैं; एक नगाड़ा या दुक्कड़ बजाता है और झाँझ के द्वारा ताल देता है। यह बाजा प्रायः देवस्थानों या राजा बाबुओं के द्वार पर पहर पहर पर बजाया जाता है। इसी से चौकी कहलाता है।

रोशनदान-संज्ञा पुं० [फा०] प्रकाश आने का छिद्र। गवाक्ष। मोखा।

रोशनाई-संज्ञा स्त्री० [फा०] (१) अक्षर लिखने की स्याही। काली। मसि। स्याही। (२) प्रकाश। रोशनी। उजाला। उ०—घाट घाट बाट बाट हाट हाट दीप ठाट आगी रोशनाई जगती के ग्राम ग्राम में।—रघुराज।

रोशनी-संज्ञा स्त्री० [फा०] (१) उजाला। प्रकाश। (२) दीपक। चिराग। जैसे,—रोशनी लाओ तो सूझे। (३) दीपमाला का प्रकाश। दीपकों की पंक्ति का उजाला। जैसे,—इस खुशी में शहर भर में रोशनी हुई। (४) ज्ञान का प्रकाश। शिक्षा का प्रकाश। जैसे,—नई रोशनी के युवक।

रोष-संज्ञा पुं० [सं०] [वि० रुष्ट] (१) क्रोध। कोप। गुस्सा। (२) चिढ़। कुढ़न। (३) बैर। विरोध। द्वेष। उ०—भूलि गयो सब सों रस रोष मिटैं भव के भ्रम रैनि बिमातो।—केशव। (४) लड़ाई की उमंग। जोश। उ०—विगत अकर मम नील रदन यह रोस बढ़ावत।—हरिश्चंद्र।

रोषण-संज्ञा पुं० [सं०] (१) पारा। (२) कसौटी। (३) ऊ जमीन।

वि० क्रोध करनेवाला। क्रुद्ध।

रोषान्वित-वि० [सं०] क्रुद्ध ।
रोषित-वि० [सं०] क्रुद्ध । नाराज़ ।
रोषी-वि० [सं० रोषिन्] रोषयुक्त । क्रोधी । गुस्सावर । उ०—तापस नृपहि बहुत परितोषी । चला महाकपटी अति रोषी । —तुलसी ।
रोस-संज्ञा पुं० दे० "रोष" ।
संज्ञा स्त्री० दे० "रौस" ।
रोसनाई-संज्ञा स्त्री० दे० "रोशनाई" ।
रोसनी-संज्ञा स्त्री० दे० "रोशनी" ।
रोसा-संज्ञा पुं० [सं० रोहिश] रूसा नामक सुगंधित घास ।
रोह-संज्ञा पुं० [सं०] (१) चढ़ना । चढ़ाई । (२) कली । (३) अंकुर । अँखुवा ।
संज्ञा पुं० [देश०] नील गाय । उ०—रोह मृगा संशय वन हाँकै पारथ बाना मेलै ।—कबीर ।
रोहक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) चढ़नेवाला । (२) रथ, घोड़े आदि पर सवारी करनेवाला । सवार ।
रोहग-संज्ञा पुं० [सं०] सिंहल द्वीप का एक पहाड़ जिसे अब "आदम की चोटी" कहते हैं । विदूराद्रि ।
रोहज*-संज्ञा पुं० [डिं०] नेत्र ।
रोहण-संज्ञा पुं० [सं०] (१) चढ़ना । चढ़ाई । (२) ऊपर को बढ़ना । (३) (पौधे का) उगना । जमना । अंकुरित होना । (४) शुक्र । वीर्य्य । (५) एक राजा का नाम । (६) विदूराद्रि पर्वत । रोहग पर्वत ।
रोहन-संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का पेड़ जिसे सूहन और सूमी भी कहते हैं ।
विशेष—यह बहुत बड़ा होता है और दक्षिण तथा मध्य भारत के जंगलों में बहुत होता है । इसकी लकड़ी मकानों में लगती है और मेज़, कुरसी आदि सजावट के सामान बनाने के काम में आती है । हीर की लकड़ी बहुत कड़ी, मजबूत, टिकाऊ, चिकनी तथा ललाई लिए काले रंग की होती है । शिशिर में यह पेड़ पत्ते झाड़ता है ।
रोहना*-क्रि० अ० [सं० रोहण] (१) चढ़ना । (२) ऊपर की ओर जाना । (३) सवार होना ।
क्रि० स० (१) चढ़ाना । ऊपर करना । (२) सवार कराना । (३) अपने ऊपर रखना । धारण करना । उ०—एक हंस-वंसी ऐसी हरैं हँसि हंस वंस, एक हंसिनी सी विष हार हिये रोहिए ।—केशव ।
रोहि-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वृक्ष । पेड़ । (२) बीज । (३) व्रती । तपस्वी ।
रोहिण-संज्ञा पुं० [सं०] (१) पीपल । (२) गूलर । (३) रोहिस घास । (४) दिन का दूसरा पहर जिसमें श्राद्धादि कृत्य किए जाते हैं ।
रोहिणिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] क्रोध से लाल स्त्री ।
रोहिणी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) गाय । (२) तड़ित् । बिजली । (३) कटुंभरा । कटुका । तिक्ता । कुटकी । (४) करंज । कंजा । (५) रीठा । (६) महाश्वेता । सफ़ेद कौवाठोंठी । (७) लोहिता । रक्तपुनर्नवा । लाल गदहपूरना । (८) जैनों की विद्यादेवी । (९) काश्मरी । कंभारी । गंभारी । (१०) छोटी लंबी पीली हड़ जो गोल न हो । (इसे 'व्रणरोपिणी' भी कहते हैं ।) (११) धैवत स्वर की तीन श्रुतियों में दूसरी श्रुति । (१२) रोहू की तरह की एक मछली जिसमें काँटे कम होते हैं । (१३) मंजिष्ठा । मजीठ । (१४) वसुदेव की स्त्री जो बलराम की माता थीं । (१५) नौ वर्ष की कन्या की संज्ञा । (स्मृति) (१६) पाँच वर्ष की कुमारी । (१७) सत्ताइस नक्षत्रों में से चौथा नक्षत्र, जो पाँच तारों से मिलकर बना हुआ और रथ की आकृति का माना गया है । पुराणों के अनुसार यह दक्ष की कन्याओं में से है और चंद्रमा की स्त्री है । (१८) ब्राह्मी बूटी । (१९) गले का एक रोग । (२०) त्वचा की छठी परत ।
रोहिणीपति-संज्ञा पुं० [सं०] (१) चंद्रमा । (२) वसुदेव ।
रोहिणी योग-संज्ञा पुं० [सं०] आषाढ़ के कृष्ण पक्ष में रोहिणी का चंद्रमा के साथ योग ।
रोहिणीवल्लभ-संज्ञा पुं० दे० "रोहिणीपति" ।
रोहिणीश-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वसुदेवजी । (२) चंद्रमा ।
रोहित्-संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य्य ।
संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) मृगी । (२) एक लता । (३) लाल रंग की घोड़ी । बड़वा । (४) नदी ।
रोहित-वि० [सं०] लाल रंग का । रक्त वर्ण । लोहित ।
संज्ञा पुं० (१) लाल रंग । (२) रोहू मछली । (३) एक प्रकार का मृग । (४) रोहितक नाम का पेड़ । (५) इंद्र-धनुष । (६) कुसुम का फूल । बरें का फूल । (७) केसर । कुंकुम । (८) रक्त । लहू । खून । (९) गंधर्वों की एक जाति । (वाल्मी०)
रोहितक-संज्ञा पुं० [सं०] रोहित का पेड़ । रोहेड़ा । कूट शाल्मली ।
रोहितवाह-संज्ञा पुं० [सं०] अग्नि ।
रोहिताश्व-संज्ञा पुं० [सं०] (१) अग्नि । (२) राजा हरिश्चंद्र के पुत्र का नाम । (३) एक प्राचीन गढ़ का नाम जो सोन के किनारे पर था ।
रोहिनी*-संज्ञा स्त्री० दे० "रोहिणी" ।
रोहिश-संज्ञा पुं० [सं०] रूसा नामक घास जिसकी जड़ सुगंधित होती है ।
रोहिष-संज्ञा पुं० [सं०] (१) रूसा घास । (२) रोहू मछली । (३) एक प्रकार का मृग जो गधे से मिलता जुलता होता है ।

रोही-वि० [सं० रोहिन्] [स्त्री० रोहिणी] चढ़नेवाला।
संज्ञा पुं० (१) गूलर का पेड़। (२) पीपल का पेड़। (३) एक प्रकार का मृग। रोहिष। (४) रोहिष घास। (५) कूट शाल्मली। रोहित का पेड़। रुहेड़ा। (६) रोहू मछली।
संज्ञा पुं० [देश०] एक हथियार। उ०—तेगा, असील रोही। सिप्पर कि दो सिरोही।—सूदन।

रोहुन-संज्ञा पुं० [देश०] रोहन नाम का पेड़।

रोहू-संज्ञा स्त्री० [सं० रोहिष] (१) एक प्रकार की बड़ी मछली इसका मांस अति स्वादिष्ट होता है। इसके सिरे को लोग अत्यंत स्वादिष्ट बताते हैं। इसके ऊपर सेहरा होता है। (२) एक वृक्ष जो पूर्व हिमालय में विशेषतः दारजिलिंग में होता है।

रौंट†-संज्ञा स्त्री० [हिं० रोवना] (१) खेल या हँसी में बुरा मानना या रोना। जैसे,—तुमसे क्या खेलें; तुम तो खेल में रौंट करते हो। (२) चिढ़कर बेईमानी करना।
क्रि० प्र०—करना।

रौंद-संज्ञा स्त्री० [हिं० रौंदना] रौंदने का भाव या क्रिया।
संज्ञा स्त्री० [अं० राउंड] चक्कर। गश्त। (सिपाही)
मुहा०—रौंद पर जाना = गश्त के लिये निकलना।

रौंदन-संज्ञा स्त्री० [हिं० रौंदना] रौंदने की क्रिया या भाव। मर्दन।

रौंदना-क्रि० स० [सं० मर्दन = पीड़ित करना] (१) पैरों से कुचलना। मर्दित करना। पददलित करना। जैसे,—(क) मिट्टी रौंदना। (ख) तुमने सारे पौधों को रौंद डाला। उ०—मट्टी कहै कुम्हर सों तू क्या रौंदे मोहिं। एक दिन ऐसा होयगा मैं रौंदौंगी तोहि।—कबीर।
क्रि० प्र०—डालना।—देना।
(२) लातों से मारना। खूब पीटना।

रौंदी†-संज्ञा स्त्री० [हिं० रौंदना] चौपायों के रहने का घेरा। चौपायों के रहने का बाड़ा।

रौंसा-संज्ञा पुं० [सं० लोमश, रोमश = रोएँ वाला] (१) केवाँच। (२) केवाँच के बीज। (३) लोबिया। बोड़ा। (४) लोबिया के बीज।

रौ-संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] (१) गति। चाल। रफ़्तार। (२) वेग। झोंक। जैसे,—उसकी रौ के सामने जो कुछ पड़ेगा, वह सब समेट लेगा। (३) पानी का बहाव। तोड़। (४) किसी बात की धुन। किसी काम के करने की झोंक। वेग से चलता हुआ सिलसिला। जैसे,—बात की रौ में मैंने ध्यान नहीं दिया। (५) चाल। ढंग।
ॐ‡ संज्ञा पुं० दे० "रव"।
संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का पेड़।

रौक्म-वि० [सं०] (१) रुक्म-संबंधी। (२) सोने का बना हुआ।

रौक्ष्य-संज्ञा पुं० [सं०] रूखापन। रुखाई। रूक्षता।

रौखुर†-संज्ञा स्त्री० [देश०] वह भूमि जो बाढ़ की बालू पड़ने से खराब हो गई हो।

रौग़न-संज्ञा पुं० [अ०] (१) तेल। (२) लाख आदि का बना हुआ पक्का रंग जो चीजों पर चमक आदि लाने के लिये चढ़ाया जाता है।

रौग़नी-वि० [अ०] (१) तेल का। (२) रोग़न फेरा हुआ। जिस पर लाख आदि का पक्का रंग चढ़ाया गया हो। जैसे,—रौग़नी बरतन।

रौचनिक-वि० [सं०] गोरोचन या रोली संबंधी। गोरोचन या रोली से रँगा हुआ।

रौच्य-संज्ञा पुं० [सं०] बिल्वदंड धारण करनेवाला संन्यासी।

रौज़न-संज्ञा पुं० [फ़ा०] (१) छिद्र। बिल। सूराख़। (२) दरार। दरज़। (३) गवाक्ष। मोखा। रोशनदान।

रौज़ा-संज्ञा पुं० [अ०] (१) बाग। बगीचा। (२) बड़े पीर, बादशाह या सरदार आदि की क़ब्र के ऊपर बनी हुई इमारत। बड़े लोगों की कब्र। समाधि। जैसे,—शाह बीबी का रौज़ा।

रौत †-संज्ञा पुं० [हिं० रावत] ससुर।

रौताइन-संज्ञा स्त्री० [हिं० राव, रावत] (१) राव या रावत स्त्री। ऊँचे पद की स्त्री। ठकुराइन। (२) स्त्रियों के लिये आदर-सूचक संबोधन।

रौताई-संज्ञा स्त्री० [हिं० रावत + आई (प्रत्य०)] (१) राव रावत होने का भाव। (२) राव या रावत का पद। ठकुराई। सरदारी। उ०—(क) हानि कहाउब औ कृपना होइ कि पेम कुसल रौताई।—तुलसी। (ख) मीठो कठवति भरो, रौताई औ पेम।—तुलसी। (ग) रौत औ कुसल पेमा।—जायसी।

रौदा ‡-संज्ञा पुं० दे० "रोदा"।

रौद्र-वि० [सं०] (१) रुद्र संबंधी। (२) अत्यंत उग्र और प्रचंड। भयंकर। डरावना। (३) क्रोधपूर्ण या क्रोध सूचक। ग़ज़बनाक।
संज्ञा पुं० (१) क्रोध। गुस्सा। रोष। (२) काव्य के रसों में से एक जिसमें क्रोधसूचक शब्दों और चेष्टाओं का वर्णन होता है। (३) धूप। घाम। (४) यमराज। (५) ग्यारह मात्राओं के छंदों की संज्ञा जो सब मिलाकर १४ हो सकते हैं। (६) साठ संवत्सरों में से ५४ वाँ संवत्सर (७) एक प्रकार का अस्त्र। (८) एक केतु जिसकी चोटी नुकीली और ताम्रवर्ण कही गई है।

रौद्रकेतु-संज्ञा पुं० [सं०] आकाश के पूर्व दक्षिण भाग में शूल के अग्र भाग के समान कपिश (कपासी), रूक्ष (रूखा), ताम्रवर्ण किरणों से युक्त और आकाश के तीन भाग तक में गमन करनेवाला एक केतु।—बृहत्संहिता।

रौद्रता-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) डरावनापन। भयंकरता। भीषणता। (२) प्रचंडता। प्रखरता। उग्रता।

रौद्रदर्शन-वि० [सं०] देखने में डरावना। भयंकर रूप का। भीषण आकृति और चेष्टावाला।

रौद्रार्क-संज्ञा पुं० [सं०] २३ मात्राओं के छंदों की संज्ञा जो सब मिलाकर ४६३६८ प्रकार के हो सकते हैं।

रौद्री-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) रुद्र की पत्नी, गौरी। देवी। (२) गांधार स्वर की दो श्रुतियों में से पहली श्रुति।

रौन ॐ-संज्ञा पुं० दे० "रमण"।

रौनक-संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) वर्ण और आकृति। रूप। (२) चमक दमक। तेज। दीप्ति। कांति। जैसे,—चेहरे पर रौनक होना। (३) प्रफुल्लता। विकास। जैसे,—सुनते ही चेहरे की रौनक उड़ गई। (४) शोभा। छटा। चहल पहल। सुहावनापन। जैसे,—व्यापार गिर जाने से शहर की रौनक जाती रही।

रौना †-संज्ञा पुं० [सं० रमण] द्विरागमन। गौना। मुकलावा। संज्ञा पुं० दे० "रोना"। उ०—टौना अँखि यस करन की करे हेत इन जाइ। अब उलटे रौना पर्‍यौ गरे दगन के आइ।—रसनिधि।

रौनी ॐ-संज्ञा स्त्री० दे० "रमणी"।

रौप्य-संज्ञा पुं० [सं०] चाँदी। रूपा।
  वि० चाँदी का बना हुआ। चाँदी का। रूपे का।

रौमक-संज्ञा पुं० [सं०] साँभर नमक।

रौम लवण-संज्ञा पुं० [सं० [साँभर नमक।

रौरव-वि० [सं०] (१) भयंकर। डरावना। घोर। (२) बेइमान। धूर्त्त। कपटी। (३) बात पर दृढ़ न रहनेवाला। चंचल। (४) रुरु मृग संबंधी।
  संज्ञा पुं० एक भीषण नरक का नाम जो २१ नरकों में से पाँचवाँ कहा गया है।

रौरा †-संज्ञा पुं० दे० "रौला"।
  † सर्व० [हिं० रावरा] [स्त्री० रौरी] आपका।

रौराना †-क्रि० स० [हिं० रौर, रौरा] प्रलाप करना। व्यर्थ बोलना या हल्ला करना। बकना। उ०—अब यह और सृष्टि बिरहिन की बकत बाद रौरानी।—सूर।

रौरे †-सर्व० [हिं० राव, रावल] आप। (आदर का संबोधन) उ०—भलउ कहत दुख रौरेहि लागा।—तुलसी।

रौला-संज्ञा पुं० [सं० रवण] (१) हल्ला। गुल। शोर। हुल्लड़। धूम। (२) ऊधम। हलचल।
  क्रि० प्र०—करना।—मचना।—मचाना।—होना।

रौलि †-संज्ञा स्त्री० [देश०] धौल। चपत। झापड़। तमाचा। उ०—बाँका गढ़ बाँका मता बाँकी गढ़ की पौलि। काढ़ि कबीरा नीकसा जम सिर घाली रौलि।—कबीर।

रौशन-वि० दे० "रोशन"।

रौशनदान-संज्ञा पुं० दे० "रोशनदान"।

रौशनी-संज्ञा स्त्री० दे० "रोशनी"।

रौस-संज्ञा स्त्री० [फ़ा० रविश] (१) गति। चाल। (२) रंग ढंग। तौर तरीका। चाल ढाल। (३) बाग की पटरी। बाग की क्यारियों के बीच का मार्ग। उ०—रौस हौज बहु कटी कियारी। चौक चारु चहुँ कित चित हारी।—रघुराज।

रौसली-संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की चिकनी उपजाऊ मिट्टी। डाकर।

रौसा-संज्ञा पुं० दे० "रूसा"।

रौहाल-संज्ञा स्त्री० [देश०] (१) घोड़े की एक चाल। (२) घोड़े की एक जाति। उ०—यदपि तेज रौहाल बर लगी न पलकौ बार। तउ ग्वैंडो घर को भयो पैंडो कोस हजार।—बिहारी।

रौहिण-संज्ञा पुं० [सं०] चंदन।

रौहिणेय-संज्ञा पुं० [सं०] (१) रोहिणी के पुत्र, बलराम। (२) बुध ग्रह। (३) पन्ना। मरकत। (४) गाय का बछड़ा।

र्‍यासत †-संज्ञा स्त्री० दे० "रियासत"। उ०—दुर्जन दुरासद घर सभासद विश्व र्‍यासत शाह हैं।—रघुराज।

र्‍योरी-संज्ञा स्त्री० दे० "रेवड़ी"।

ल

ल-व्यंजन वर्ण का अट्ठाईसवाँ वर्ण जिसका उच्चारण स्थान दंत है। इसके उच्चारण में संवार, नाद और घोष प्रयत्न होते हैं। यह अल्पप्राण है।

लंक-संज्ञा स्त्री० [सं०] कमर। कटि।
  संज्ञा स्त्री० [सं० लंका] लंका नामक द्वीप।
  विशेष—इस रूप में इसका प्रयोग प्रायः यौगिक शब्दों में होता है। जैसे,—लंकनाथ, लंकपति।

लंकटंकटा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सुकेश राक्षस की माता और विद्युत्केश की कन्या का नाम। (२) संध्या की कन्या का नाम।

लंकनाथ,लंकनायक-संज्ञा पुं० [हिं० लंक + सं० पति या नायक] (१) रावण। (२) विभीषण। उ०—(क) तब लंकनाथ रिसाय कै। भो घस्त्र सब पहँ धाय कै।—रघुराज चरित्र। (ख) जाति बानर लंकनायक दूत अंगद नाम है।—केशव।

लंकलाट-संज्ञा पुं० [अं० लांग क्लाथ] एक प्रकार का मोटा बढ़िया कपड़ा जो प्रायः धुला हुआ होता है।

लंका-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) भारत के दक्षिण का एक टापू जहाँ रावण का राज्य था। लोगों का विश्वास है कि रावण के समय यह टापू सोने का था। (२) शिंबी धान्य। (३) असबरग। स्पृक्का। (४) काला चना। (५) शाखा। डाली।

लंकाशाही-संज्ञा पुं० [सं० लंकाशायिन्] हनुमान।

लंकाधिपति-संज्ञा पुं० [सं०] रावण।

लंकापति-संज्ञा पुं० [सं०] (१) रावण। (२) विभीषण। उ०—भेट्यो हरि भरि अंक भरत ज्यौं लंकापति मनु भायो।—तुलसी।

लंकायिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] असबरग। स्पृक्का।

लंकारि-संज्ञा पुं० [सं०] रामचंद्र।

लंकाल-संज्ञा पुं० [हिं०] सिंह। शेर।

लंकिनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] रामायण के अनुसार एक राक्षसी जिसे हनुमान जी ने लंका में प्रवेश करते समय घूँसों से मार डाला था।

लंकेश-संज्ञा पुं० [सं०] (१) रावण। (२) विभीषण।

लंकेश्वर-संज्ञा पुं० [सं०] रावण।

लंकोई-संज्ञा स्त्री० दे० "लंकोद्दक"।

लंकोद्दक-संज्ञा पुं० [सं०] असबरग। स्पृक्का।

लंग-संज्ञा स्त्री० दे० "लाँग"। उ०—लोगन की लंग ज्यौं लुगाइन की लाग री।—देव।

संज्ञा पुं० [फ़ा०] लँगड़ापन।

क्रि० प्र०—करना।—खाना।

संज्ञा पुं० [सं०] स्त्री का यार। उपपति।

लंगक-संज्ञा पुं० [सं०] स्त्री का यार। उपपति।

लँगटी†-संज्ञा स्त्री० दे० "लँगोटी"।

लंगड़-वि० दे० "लँगड़ा"।

संज्ञा पुं० दे० "लंगर"।

लँगड़ा-वि० [फ़ा० लंग] (१) जिसका एक पैर बेकाम या टूटा हो। (२) जिसका एक पाया टूटा हो।

संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का बहुत बढ़िया कलमी आम जो प्रायः बनारस में होता है।

लँगड़ाना-क्रि० अ० [हिं० लँगड़ा] चलने में दोनों या चारों पैरों का ठीक ठीक और बराबर न पड़ना, बल्कि किसी एक पैर का कुछ रुक या दबकर पड़ना। लंग करते हुए चलना। लँगड़े होकर चलना।

लँगड़ी-संज्ञा स्त्री० [हिं० लँगड़ा] एक प्रकार का छंद। उ०—साज आलि अवज में, तेहि प्रकार चहुँ ओर। सब तिथि तिथि में अतिथि सी राकी कर्यो प्रकाश।—गुमान।

वि० [हिं०] बली। बलवान्। जोरावर।

लंगर-संज्ञा पुं० [फ़ा० मि० अं० एन्कर] (१) लोहे का बना हुआ एक प्रकार का बहुत बड़ा काँटा जिसके बीच में एक मोटा लंबा छड़ होता है, और एक सिरे पर दो, तीन या चार टेढ़ी झुकी हुई नुकीली शाखाएँ और दूसरे सिरे पर एक मजबूत कड़ा लगा हुआ होता है। इसका व्यवहार बड़ी बड़ी नावों या जहाजों को जल में किसी एक ही स्थान पर ठहराए रखने के लिये होता है। इसके ऊपर कड़े में मोटा रस्सा या जंजीर आदि बाँधकर इसे नीचे पानी में छोड़ देते हैं। जब यह तल में पहुँच जाता है, तब इसके टेढ़े अँकुड़े जमीन के कंकड़ पत्थरों में अड़ जाते हैं, जिसके कारण नाव या जहाज उसी स्थान पर रुक जाता है; और जब तक यह फिर खींचकर ऊपर नहीं उठा लिया जाता, तब तक नाव या जहाज आगे नहीं बढ़ सकता।

क्रि० प्र०—उठाना।—करना।—छोड़ना।—डालना।—फेंकना।—होना।

यौ०—लंगरगाह।

(२) लकड़ी का वह कुंदा जो किसी नटखट गाय के गले में रस्सी द्वारा बाँध दिया जाता है। इसके बाँधने से गाय इधर उधर भाग नहीं सकती। ठेंगुर। (३) रस्सी या तार आदि से बँधी और लटकती हुई कोई भारी चीज जिसका व्यवहार कई प्रकार की कलों में और विशेषतः बड़ी घड़ियों आदि में होता है।

क्रि० प्र०—चलना।—चलाना।—हिलना।

विशेष—इस प्रकार का लंगर प्रायः निरंतर एक ओर से दूसरी ओर आता जाता रहता है। कुछ कलों में इसका व्यवहार ऐसे पुरजों का भार ठीक रखने में होता है, जो एक ओर बहुत भारी होते हैं और प्रायः इधर उधर हटते बढ़ते रहते हैं। बड़ी घड़ियों में जो लंगर होता है, वह चाभी दी हुई कमानी के जोर से एक सीधी रेखा में इधर से उधर चलता रहता है और घड़ी की गति ठीक रखता है।

(४) जहाजों में का मोटा बड़ा रस्सा। (५) लोहे की मोटी और भारी जंजीर उ०—हाथी ते उतरि हाड़ा जूझो लोह लंगर दै एती लाज का में जेती लाज छत्रसाल में।—भूषण

क्रि० प्र०—डालना।—देना।

(६) चाँदी का बना हुआ तोड़ा जो पैर में पहना जाता है। इसकी बनावट जंजीर की सी होती है। (७) किसी पदार्थ के नीचे का वह अंश जो मोटा और भारी हो। (८) कमर के नीचे का भाग। (९) अंडकोश। (बाजारू) (१०) पहलवानों का लँगोट।

मुहा०—लंगर बाँधना=(१) पहलवानी करना। (२) ब्रह्मचर्य धारण करना। लंगर लँगोट कसना या बाँधना=लड़ने को तैयार होना। लंगर लँगोट (किसी को) देना या माँगे

रखना = पहलवानी सीखने के लिये किसी पहलवान का शिष्य बनना।

(11) वह (स्थान या व्यक्ति आदि) जिसके द्वारा किसी को किसी प्रकार का आश्रय या सहारा मिलता हो। (क्व०) (12) कपड़े में के वे टाँके जो दूर दूर पर इसलिये डाले जाते हैं जिसमें मोड़ा हुआ कपड़ा अथवा एक साथ सीए जानेवाले दो कपड़े अपने स्थान से हट न जायँ। इस प्रकार के टाँके पक्की सिलाई करने से पहले डाले जाते हैं; और इसी लिये इसे कच्ची सिलाई भी कहते हैं।

क्रि० प्र०—करना।—डालना।—तोड़ना।—भरना।

(13) वह उभड़ी हुई रेखा जो अंडकोश के नीचे के भाग से आरंभ होकर गुदा तक जाती है। सीयन। सीवन। (14) वह पका हुआ भोजन जो प्रायः नित्य किसी निश्चित समय पर दीनों और दरिद्रों आदि को बाँटा जाता है।

क्रि० प्र०—देना।—बाँटना।—लगाना।

यौ०—लंगरखाना।

(15) वह स्थान जहाँ दीनों और दरिद्रों आदि को बाँटने के लिये भोजन पकाया जाता हो। (16) वह स्थान जहाँ बहुत से लोगों का भोजन एक साथ पकता हो।

वि० (1) जिसमें अधिक बोझ हो। भारी। वजनी। (2) शरीर। नटखट। ढीठ। उ०—(क) लरिका लैवे के मिसनि लंगर मो ढिग आय। गयो अचानक आँगुरी छाती छैल छुवाय।—बिहारी। (ख) सूर श्याम दिन दिन लंगर भयो, दूरि करौं लँगराया।—सूर।

मुहा०—लंगर करना = शरारत या ढिठाई करना। उ०—बोलि लियो बलरामहिं यशुमति। आवहु लाल सुनो हरि के गुण कालिहि से लंगन्यो करत अति।—सूर।

वि० दे० "लँगड़ा"।

लँगरई †—संज्ञा स्त्री० [हिं० लंगर] ढिठाई। शरारत। नटखटपन। उ०—बाँधौ आजु कौन तोहि छोरै। बहुत लँगरई कीन्ही मोसों भुज गहि रजु ऊखल सों जोरै।—सूर।

लंगरखाना—संज्ञा पुं० [फ़ा०] वह स्थान जहाँ से दरिद्रों को बना बनाया भोजन बाँटा जाता हो।

लंगरगाह—संज्ञा पुं० [फ़ा०] किनारे पर का वह स्थान जहाँ लंगर डालकर जहाज ठहराए जाते हैं।

लँगराई †—संज्ञा स्त्री० [हिं० लंगर + आई (प्रत्य०)] ढिठाई। शरारत। उ०—अजहूँ छाँड़ोगे लँगराई दोउ कर जोरि जननि पै आये।—सूर।

लँगराना †—क्रि० अ० दे० "लँगड़ाना"।

लंगूर—संज्ञा पुं० [सं० लांगूल] (1) बंदर। (2) पूँछ। दुम। (बंदर की) (3) एक विशेष प्रकार का बंदर जो साधारण बंदर से बड़ा होता है और जिसकी पूँछ बहुत अधिक लंबी होती है। इसके सारे शरीर पर सफेद रंग के रोएँ होते हैं और मुँह, हाथ की हथेलियाँ तथा पैर के तलवे और उँगलियाँ आदि काली होती हैं।

लंगूरफल—संज्ञा पुं० [हिं० लंगूर + सं० फल] नारियल। उ०—बानरमुख लंगूरफल नारिकेलि सुभ काम। ये तरुनी के नारियर तो कहँ करत प्रनाम।—नंददास।

लंगूरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० लंगूर + ई (प्रत्य०)] (1) घोड़े की एक चाल जिसमें वह उछल उछलकर चलता है। (2) वह इनाम जो चोरों को उस समय दिया जाता है, जब वे चोरी गए हुए मवेशियों का पता लगा देते हैं।

लंगूल—संज्ञा पुं० [सं० लांगूल] पूँछ। दुम।

लँगोट, लँगोटा—संज्ञा पुं० [सं० लिंग + ओट] [स्त्री० लँगोटी] कमर पर बाँधने का एक प्रकार का बना हुआ वस्त्र जिससे केवल उपस्थ ढका जाता है। यह प्रायः लंबी पट्टी के आकार का अथवा तिकोना होता है, जिसमें दोनों ओर कमर पर लपेटने के लिये बंद लगे रहते हैं। प्रायः पहलवान लोग कुश्ती लड़ने या कसरत करने के समय इसे पहना करते हैं। रूमाली।

यौ०—लँगोटबंद = ब्रह्मचारी। स्त्री-त्यागी।

लँगोटी—संज्ञा स्त्री० [हिं० लँगोट] कोपीन। कछनी। भगई। उ०—रोटी गहे हाथ में सुचोटी गुहे माथ में, लँगोटी कछे नाथ साथ बालक बिलासी है।

मुहा०—लँगोटिया यार = बचपन का मित्र। उस समय का मित्र, जब कि दोनों लँगोटी बाँधकर फिरते हों। लँगोटी पर फाग खेलना = थोड़ा ही साधन होने पर विलासी होना। कम सामर्थ्य होने पर भी बहुत अधिक व्यय करना। लँगोटी बँधवाना = बहुत दरिद्र कर देना। इतना धनहीन कर देना कि पास में लँगोटी के सिवा और कुछ न रह जाय। लँगोटी बिकवाना = इतना दरिद्र कर देना कि पहनने के वस्त्र तक न रह जायँ।

लंघक—वि० [सं०] (1) लाँघनेवाला। अतिक्रमण करनेवाला। (2) नियम का भंग करनेवाला। कायदा तोड़नेवाला।

लंघन—संज्ञा पुं० [सं०] (1) उपवास। अनाहार। फाका। कुछ न खाना। उ०—(क) जिन नैनन को है सही मोहन रूप अहार। तिनको बैद बतावहीं लंघन को उपचार।—रसनिधि। (ख) धाम धाम माँगे भीख लंघन सुनाई है।—रघुराज। (2) लाँघने की क्रिया। डाँकना। (3) अतिक्रमण। (4) घोड़े की एक चाल जिसमें वह बहुत तेज चलता है। (5) वह उपाय जिससे किसी काम में सावध या सुभीता हो।

लंघनक—संज्ञा पुं० [सं०] (1) वह जिसके द्वारा लाँघा जाय। (2) सेतु। पुल।

लंघना&-क्रि० स० [सं० परलंघन] किसी वस्तु के ऊपर से होकर इस ओर से उस ओर जाना। लाँघना। नाँघना। डाँकना। उ०—जाकी कृपा पंगु गिरि लंघै अँधरे को सब कछु दरसाई।—सूर।
संज्ञा स्त्री० [सं०] अवमानना। उपेक्षा। लापरवाही।

लंघनीय-वि० [सं०] (१) लाँघने के योग्य। (२) उल्लंघन करने के योग्य।

लंज-संज्ञा पुं० [सं०] (१) पैर। पाँव। (२) काछ। (३) पूँछ। दुम। (४) लंपटता। (५) स्रोत। सोता।
संज्ञा स्त्री० लक्ष्मी।

लंजिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] वेश्या। रंडी।

लंठ-वि० [हिं० लट्ठ] मूर्ख। उजड्ड।

लंड-संज्ञा पुं० [सं०] पुरीष। विष्ठा। गू।
संज्ञा पुं० [सं० लिंग] पुरुष की मूत्रेंद्रिय।

लँडूरा-वि० [देश० या सं० लांगूल] बिना पूँछ का। जिसकी सब पूँछ कट गई हो। (पक्षी)

लंतरानी-संज्ञा स्त्री० [अ०] व्यर्थ की बड़ी बड़ी बातें। शेखी।
क्रि० प्र०—करना।—हाँकना।

लंप-संज्ञा पुं० [अं०] दीपक। चिराग।

लंपक-संज्ञा पुं० [सं०] जैनियों का एक संप्रदाय।

लंपट-वि० [सं०] व्यभिचारी। विषयी। कामी। कामुक। उ०—लोभी लंपट लोलुप चारा। जे ताकहिं पर धन पर दारा।—तुलसी।
संज्ञा पुं० स्त्री का उपपति। यार।

लंपटता-संज्ञा स्त्री० [सं०] लंपट होने का भाव। दुराचार। कुकर्म।

लंपाक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) लंपट। दुराचारी। (२) पुराणानुसार एक देश का नाम जिसे मुरंड भी कहते थे। यह देश भारत के उत्तर-पश्चिम में था।

लंब-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह रेखा जो किसी दूसरी रेखा पर इस भाँति गिरे कि उसके साथ समकोण बनावे।
क्रि० प्र०—गिराना।—डालना।
(२) एक राक्षस जिसे श्रीकृष्ण ने मारा था। इसी को प्रलंबासुर भी कहते हैं। (३) शुद्ध राग का एक भेद। (४) वह जो नाचता हो। नाचनेवाला। (५) अंग। (६) पति। (७) एक दैत्य का नाम। (८) एक मुनि का नाम। (९) ज्योतिष में एक प्रकार की रेखा जो विषुव रेखा के समानांतर होती है। (१०) ज्योतिष में ग्रहों की एक प्रकार की गति।
संज्ञा स्त्री० दे० "विलंब"।
वि० [सं०] लंबा। उ०—(क) युग भयलंब लंब भुज चारी।—रघुराज। (ख) अस कहि लंब कास बि वायो।—रघुराज।

लंबक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) किसी पुस्तक का एक अध्याय। (२) मुख का एक रोग। (३) ज्योतिष में एक प्रकार योग जो संख्या में पंद्रह होते हैं।

लंबकर्ण-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बकरा। (२) हाथी। (३) अंक वृक्ष। (४) राक्षस। (५) बाज पक्षी। (६) गदहा। (७) खरगोश।
वि० जिसके कान लंबे हों।

लंबग्रीव-संज्ञा पुं० [सं०] ऊँट।

लंबतड़ंग-वि० [सं० लंब + ताड़ + अंग] ताड़ के समान लंबा बहुत लंबा।

लंबदंता-संज्ञा स्त्री० [सं०] सिंहल देश की पिप्पली।

लंबन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) गले का वह हार जो नाभि तक लटकता हो। (२) झूलने की क्रिया। (३) अवलंब। आश्रय सहारा। (४) कफ।

लंबपयोधरा-संज्ञा स्त्री० [सं०] कार्त्तिकेय की एक मातृका नाम।

लंबर-संज्ञा पुं० दे० "नंबर"।

लंबरदार-संज्ञा पुं० दे० "नंबरदार"।

लंबा-वि० [सं० लंब] [स्त्री० लंबी] (१) जिसके दोनों छोर एक दूसरे से बहुत अधिक दूरी पर हों। जिसका विस्तार आयतन की अपेक्षा, बहुत अधिक हो। जो किसी एक दिशा में बहुत दूर तक चला गया हो। "चौड़ा" का उलटा। जैसे,—लंबा बाल, लंबा बाँस, लंबा सफर।
मुहा०—लंबा करना = (१) (आदमी को) रवाना करना। चलता करना। (२) जमीन पर पटक या लेटा देना। चित करना। उ०—खर मारयो इन समर अनल खरनासै जैसे। कि भूमि पर लंब नासि परलंबहि तैसे।—गि० दास। लंबा बनना या होना = चल देना। रवाना होना। प्रस्थान करना। (व्यंग्य और परिहास)
यौ०—लंबा चौड़ा = जिसका आयतन और विस्तार दोनों बहुत अधिक हों। जैसे,—लंबा चौड़ा मैदान।
(२) जिसकी ऊँचाई अधिक हो। ऊपर की ओर दूर तक उठा हुआ। जैसे,—लंबा आदमी। (३) (समय) जिसका विस्तार अधिक हो। जैसे,—(क) गरमी में दिन बहुत लंबा होता है। (ख) तुम तो सदा लंबी मुद्दत की बात करते हो। (४) विशाल। दीर्घ। बड़ा। जैसे,—इतना लंबा खर्च रखना ठीक नहीं।

लंबाई-संज्ञा स्त्री० [हिं० लंबा] लंबा होने का भाव। लंबापन। जैसे,—(क) इस जमीन की लंबाई पचास गज है। (ख) यह कपड़ा लंबाई में कुछ कम है।

लंबान-संज्ञा पुं० [हिं० लंबा] लंबाई।
लंबिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] गले के अंदर की घंटी।
लंबित-वि० [सं०] लंबा।
संज्ञा पुं० मांस।
लंबी-वि० स्त्री० [हिं० लंबा] लंबा का स्त्री-लिंग रूप।
मुहा०—लंबी तानना = लेटकर सो जाना। उ०—इस समय मेरे अतिरिक्त सब लंबी ताने सोते होंगे।—हरिऔध। लंबी साँस लेना = अत्यंत दुःख या खेद से साँस लेना। ठंढी साँस लेना।
लंबुक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक नाग का नाम। (२) ज्योतिष में एक प्रकार के योग जिनकी संख्या पंद्रह है। लंबक।
लंबोदर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) गणेश। (२) वह जो बहुत अधिक खाता हो। पेटू।
लंबोष्ठ-संज्ञा पुं० [सं०] (१) ऊँट। (२) एक प्रकार के क्षेत्रपाल देवता।
लंभन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) ध्वनि। (२) लांछना। कलंक।
ल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) इंद्र। (२) पृथ्वी।
लउआ †-संज्ञा पुं० दे० "घिया"।
लउकी †-संज्ञा स्त्री० दे० "घिया"।
लकच-संज्ञा पुं० दे० "लकुच"।
लकड़बग्घा-संज्ञा पुं० [हिं० लकड़ी + बाघ] एक मांसाहारी जंगली जंतु जो भेड़िए से कुछ बड़ा होता है। यह कुत्तों का मांस बहुत पसंद करता है। खाघड़।
लकड़हारा-संज्ञा पुं० [हिं० लकड़ी + हारा] जंगल से लकड़ी तोड़ कर बेचनेवाला।
लकड़ा-संज्ञा पुं० [हिं० लकड़ी] लकड़ी का मोटा कुंदा। लक्कड़।
लकड़ी-संज्ञा स्त्री० [सं० लगुड़] (१) पेड़ का कोई स्थूल अंग (डाल, तना आदि) जो कटकर उससे अलग हो गया हो। काठ। काठ।
विशेष—इसका व्यवहार प्रायः मेज, कुरसी, किवाड़े आदि सामान बनाने में होता है।
(२) ईंधन। जलावन।
मुहा०—लकड़ी देना = मुरदे को जलाना।
(३) गतका। (४) छड़ी। लाठी।
मुहा०—लकड़ी सा = बहुत दुबला पतला। लकड़ी चलना = लाठी से मारपीट होना। लकड़ी होना = (१) सूख कर काँटा होना। बहुत दुबला पतला होना। (२) सूखकर बहुत कड़ा हो जाना। जैसे,—रोटी सूखकर लकड़ी हो गई।
लकब-संज्ञा पुं० [अ०] उपाधि। खिताब। पदवी।
क्रि० प्र०—देना।—पाना।—मिलना।
लकरी †-संज्ञा स्त्री० दे० "लकड़ी"।
लकलक-संज्ञा पुं० [अ०] लंबी गर्दन का एक जलपक्षी। ढेंक।
वि० बहुत दुबला पतला।
लकवा-संज्ञा पुं० [अ०] एक वात रोग जिसमें प्रायः चेहरा टेढ़ा हो जाता है। यह चेहरे के अतिरिक्त और और अंगों में भी होता है; और जिस अंग में होता है, उसे बिलकुल बेकाम कर देता है। इसमें शरीर के ज्ञान तंतुओं में एक प्रकार का विकार आ जाता है, जिससे कोई कोई अंग हिलने डोलने या अपना ठीक ठीक काम करने के योग्य नहीं रह जाता। इसे फालिज भी कहते हैं।
क्रि० प्र०—गिरना।
मुहा०—लकवा मारना या मार जाना = शरीर के किसी अंग में लकवे का रोग हो जाना।
लकसी-संज्ञा स्त्री० [हिं० लकड़ी + अँकुसी] फल आदि तोड़ने की लग्गी जिसके ऊपरी सिरे पर लोहे का चंद्राकार फल या एक तिरछी छोटी लकड़ी बँधी रहती है। इसी लग्गी को हाथ में लेकर ऊपरी सिरे में बँधी हुई छोटी लकड़ी या फल की सहायता से ऊँचे वृक्षों के फल आदि तोड़ते हैं।
लकाटी-संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की बिल्ली जिसके नरों के अंडकोशों में से एक प्रकार का मुश्क निकलता है।
लकीर-संज्ञा स्त्री० [सं० रेखा, हिं० लीक] (१) कलम आदि के द्वारा अथवा और किसी प्रकार बनी हुई वह सीधी आकृति जो बहुत दूर तक एक ही सीध में चली गई हो। रेखा। खत।
मुहा०—लकीर का फकीर = वह जो बिना समझे बूझे किसी प्राचीन प्रथा पर चला चलता हो। आँखें बंद करके पुराने ढंग पर चलनेवाला। लकीर पीटना = बिना समझे बूझे पुरानी प्रथा पर चले चलना। लकीर पर चलना = दे० "लकीर पीटना"
क्रि० प्र०—करना।—खींचना।—बनाना।
(२) वह चिह्न जो दूर तक रेखा के समान बना हो। (३) धारी। (४) पंक्ति। सतर।
क्रि० प्र०—करना।—खींचना।—बनाना।
लकुच-संज्ञा पुं० [सं०] बड़हर।
संज्ञा पुं० दे० "लकुट"।
लकुट-संज्ञा स्त्री० [सं० लगुड़] लाठी। छड़ी।
संज्ञा पुं० [सं० लकुच] (१) मध्यम आकार का एक प्रकार का वृक्ष जो प्रायः सारे भारत में और विशेषतः बंगाल में अधिकता से पाया जाता है। इसकी डालियाँ टेढ़ी मेढ़ी और छाल पतली तथा खाकी रंग की होती है। इसकी टहनियों के सिरे पर गुच्छों में पत्ते लगते हैं जो कनीदार और कँगूरेदार होते हैं। साथ में सफेद रंग के छोटे छोटे फूलों के भी गुच्छे लगते हैं। (२) इस वृक्ष का फल जो प्रायः

जामुन के समान होता और वसंत ऋतु में पकता है। यह फल मीठा होता है और खाया जाता है। लुकाठ। लखोट।

लकुटी†-संज्ञा स्त्री० [सं० लगुड़] लाठी। छड़ी।

लकोटा-संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का पहाड़ी बकरा जिसके बालों से शाल, दुशाले आदि बनाए जाते हैं।

लक्कड़-संज्ञा पुं० [हिं० लकड़ी] काठ का बड़ा कुंदा।

लक्का-संज्ञा पुं० [अ०] एक प्रकार का कबूतर जो खूब छाती उभाड़कर चलता है और जिसकी पूँछ पंखे सी होती है।

लक्का कबूतर-संज्ञा पुं० [हिं० लक्का + कबूतर] (१) नाच की एक गत जिसमें नाचनेवाला कमर के बल इतना झुकता है कि सिर प्रायः भूमि के निकट तक पहुँच जाता है। यह झुकाव बगल की ओर होता है। (२) दे० "लक्का"।

लक्खी-वि० [हिं० लाख] लाख के रंग का। लाखी।
संज्ञा पुं० घोड़े की एक जाति।
संज्ञा पुं० [हिं० लाख (संख्या)] वह जिसके पास लाखों रुपए हों। लखपती।

लक्त-वि० [सं०] लाल। सुर्ख।

लक्तक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) अलता, जो स्त्रियाँ पैरों में लगाती हैं। अलक्तक। (२) बहुत फटा हुआ पुराना कपड़ा। चीथड़ा। लत्ता।

लक्तकर्म्मा-संज्ञा पुं० [सं०] लाल लोध।

लक्ष-वि० [सं०] एक लाख। सौ हजार।
संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह अंक जिससे एक लाख की संख्या का ज्ञान हो। जैसे,—१००००० । (२) पैर। (३) चिह्न। निशान। (४) दे० "लक्ष्य"। (५) अस्त्र का एक प्रकार का संहार। उ०—लक्ष अलक्ष युगल दृढ़नाम सुनाम दशाक्ष शतानन।—रघुराज।

लक्षक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जो लक्ष करा दे। जता देनेवाला। (२) वह शब्द जो संबंध या प्रयोजन से अपना अर्थ सूचित करे।

लक्षण-संज्ञा पुं० [सं०] (१) किसी पदार्थ की वह विशेषता जिसके द्वारा वह पहचाना जाय। वे गुण आदि जो किसी पदार्थ में विशिष्ट रूप से हों और जिनके द्वारा सहज में उसका ज्ञान हो सके। चिह्न। निशान। आसार। जैसे,—आकाश के लक्षण से जान पड़ता है कि आज पानी बरसेगा। (२) नाम। (३) परिभाषा। (४) शरीर में दिखाई पड़नेवाले वे चिह्न आदि जो किसी रोग के सूचक हों। जैसे,—इस रोगी में क्षय के सभी लक्षण दिखाई देते हैं। (५) दर्शन। (६) सारस पक्षी। (७) सामुद्रिक के अनुसार शरीर के अंगों में होनेवाले कुछ विशेष चिह्न जो शुभ या अशुभ माने जाते हैं। जैसे,—चक्रवर्ती और बुद्ध के लक्षण एक से होते हैं। (८) शरीर में होनेवाला एक विशेष प्रकार का काला दाग जो बालक के गर्भ में रहने के समय सूर्य्य या चंद्रग्रहण लगने के कारण पड़ जाता है। लच्छन। (९) चाल ढाल। तौर तरीका। रंग ढंग। जैसे,—आजकल तुम्हारे लक्षण अच्छे नहीं जान पड़ते। (१०) दे० "लक्ष्मण"।

लक्षणा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) शब्द की वह शक्ति जिससे उसका अर्थ लक्षित हो जाता है। शब्द की वह शक्ति जिससे उसका अभिप्राय सूचित होता है।
विशेष—कभी कभी ऐसा होता है कि शब्द के साधारण अर्थ से उसका वास्तविक अभिप्राय नहीं प्रकट होता। वास्तविक अभिप्राय उसके साधारण अर्थ से कुछ भिन्न होता है। शब्द की जिस शक्ति से उसका वह साधारण से भिन्न और दूसरा वास्तविक अर्थ प्रकट होता है, उसे लक्षणा कहते हैं। साहित्य में यह शक्ति दो प्रकार की मानी गई है—निरूढ़ और प्रयोजनवती। (वि० दे० ये दोनों शब्द।)
(२) मादा हंस। हंसी। (३) मादा सारस। सारसी। (४) छोटी भटकटैया। (५) एक अप्सरा का नाम जिसका उल्लेख महाभारत में है।

लक्षणी-वि० [सं० लक्षणिन्] (१) जिसमें कोई लक्षण या चिह्न हो। (२) लक्षण जाननेवाला।

लक्षा-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक लाख की संख्या।

लक्षि-संज्ञा स्त्री० दे० "लक्ष्मी"। उ०—सुनहिं सुमुखि तो हो स्यावतो लक्षि दासी।—केशव।
संज्ञा पुं० दे० "लक्ष्य"। उ०—बाण की वायु उड़ाय कै लक्षन लक्षि करौं अरिहा समरत्थहि।—केशव।

लक्षित-वि० [सं०] (१) बतलाया हुआ। निर्दिष्ट। (२) देखा हुआ। (३) अनुमान से समझा या जाना हुआ। (४) जिस पर कोई लक्षण या चिह्न बना हो।
संज्ञा पुं० वह अर्थ जो शब्द की लक्षणा शक्ति के द्वारा ज्ञात होता है।

लक्षित लक्षणा-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की लक्षणा।

लक्षिता-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह परकीया नायिका जिसका गुप्त प्रेम उसकी सखियों को मालूम हो जाय। जिसका पर-पुरुष-प्रेम दूसरों को ज्ञात हो।

लक्ष्मी-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक वर्णवृत्त जिसके प्रत्येक चरण में आठ रगण होते हैं। इसे गंगोदक, गंगाधर और खंजन भी कहते हैं। उ०—कोटि बाधा कटैं पाप सारे घटैं शंभु शंभु रटैं नाथ को मान कै।—जगन्नाथप्रसाद।

लक्ष्मण-संज्ञा पुं० [सं०] (१) रघुवंशी राजा दशरथ के चार पुत्रों में से दूसरे पुत्र, जो सुमित्रा के गर्भ से उत्पन्न हुए थे। जब मिथिला में रामचंद्रजी ने धनुष तोड़ा था, तब विश्वामित्र के बिगड़ने पर इन्होंने उनसे वादविवाद किया था।

उसी अवसर पर ऊर्म्मिला के साथ इनका विवाह हुआ था। यद्यपि इनका स्वभाव बहुत ही उग्र और तीव्र था, तथापि ये अपने बड़े भाई रामचंद्र के बहुत बड़े भक्त थे; और सदा उनके अनुगामी रहते थे। जब रामचंद्रजी वन को जाने लगे थे, तब ये भी अयोध्या का सारा सुख छोड़कर केवल भक्ति और प्रेमवश उनके साथ हो लिए थे। वन में ये सदा सब प्रकार से उनकी सेवा किया करते थे। रावण की बहन शूर्पनखा की नाक इन्हींने काटी थी। जिस समय मारीच सोने के मृग का रूप धरकर आया था और रामचंद्र उसे मारने निकले थे, उस समय सीता की रक्षा के लिये यही कुटी में थे। पर पीछे से सीता के बहुत आग्रह करने पर ये रामचंद्र का पता लगाने के लिये जंगल में गए। राम-रावण युद्ध के समय ये बहुत वीरतापूर्वक लड़े थे और मेघनाद का वध इन्हींने किया था। उस युद्ध में ये एक बार शक्ति-बाण लगने के कारण मूर्च्छित हो गए थे, जिस पर रामचंद्रजी ने बहुत अधिक विलाप किया था। पर शीघ्र ही इनकी मूर्च्छा दूर हो गई थी और ये फिर उठकर लड़ने लगे थे। जिस समय सीताजी अपने सतीत्व का प्रमाण देने के लिये अग्निप्रवेश करने को प्रस्तुत हुई थीं, उस समय रामचंद्रजी की आज्ञा से इन्हींने सीता के लिये चिता तैयार की थी। रामचंद्र के वनवास के कारण ये अपने पिता राजा दशरथ और भाई भरत से बहुत अप्रसन्न हो गए थे; पर पीछे से भरत की ओर से इनका मन साफ़ हो गया था और इन्होंने समझ लिया था कि इसमें भरत का कोई दोष नहीं है। ये बहुत ही तेजस्वी, वीर और शुद्ध चरित्र के थे। पुराणानुसार ये शेषनाग के अवतार माने जाते हैं। (२) दुर्योधन के एक पुत्र का नाम। (३) चिह्न। लक्षण। (४) नाग। (५) सारस।

वि० जो श्री से युक्त हो। जिसमें शोभा और कांति हो।

लक्ष्मणा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) मद्र देश के राजा बृहत्सेन की कन्या जो कृष्णजी को ब्याही थी और उनकी आठ पटरानियों में से एक थी। (२) दुर्योधन की बेटी का नाम। (३) कृष्ण के पुत्र सांब की स्त्री का नाम। (४) एक जड़ी जो पुत्रदा मानी जाती है। यह जड़ी पर्वतों पर मिलती है। इसके पत्ते चौड़े होते हैं और उन पर लाल चंदन की सी बूँदें होती हैं। इसका कंद सफ़ेद होता है और वही ओषधि के काम में आता है।

पर्य्या०—पुत्रकंदा। पुत्रदा। नागपत्री। जननी।

लक्ष्मी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) हिंदुओं की एक प्रसिद्ध देवी जो विष्णु की पत्नी और धन की अधिष्ठात्री मानी जाती हैं। भिन्न भिन्न पुराणों में इनके संबंध में अनेक कथाएँ मिलती हैं। इनकी उत्पत्ति के संबंध में प्रसिद्ध है कि देवताओं और दानवों के समुद्र मथने से जो चौदह रत्न निकले थे, उन्हीं में से एक यह भी थीं। इनका वर्ण श्वेत चंपक या कंचन के समान, कमर बहुत पतली, नितंब बहुत विशाल और चार भुजाएँ मानी जाती हैं। यह भी कहा गया है कि ये अत्यंत सुंदरी हैं और सदा युवती रहती हैं। ये महालक्ष्मी भी कही जाती हैं और इनकी पूजा अनेक अवसरों पर, विशेषतः धन तेरस और दीवाली की रात को होती है। मूर्त्तियों में ये या तो अकेली बैठी हुई और या क्षीर सागर में सोते हुए विष्णु भगवान् के चरण दबाती हुई दिखलाई जाती हैं।

पर्य्या०—पद्मालया। पद्मा। कमला। श्री। हरिप्रिया। इंदिरा। लोकमाता। मा। क्षीराब्धितनया। रमा। जलधिजा। भार्गवी। हरिवल्लभा।

(२) धन-संपत्ति। दौलत।

यौ०—लक्ष्मीवान्। लक्ष्मीपति = धनवान।

(३) शोभा। सौंदर्य। छवि। उ०—जय अरि जय हित चल्यौ बदन लक्ष्मी बर ढंगी।—गिरिधर। (४) दुर्गा का एक नाम। (५) एक वर्ण वृत्त जिसके प्रत्येक चरण में दो रगण, एक गुरु और एक लघु अक्षर होता है। उ०—आहि पावैं नहीं संत। खेल सो लक्ष्मी कंत। (६) आर्या छंद के २६ भेदों में से पहला भेद जिसके प्रत्येक चरण में २७ गुरु और ३ लघु वर्ण होते हैं। (७) सीताजी का एक नाम। (८) ऋद्धि नाम की ओषधि। (९) वृद्धि नाम की ओषधि। (१०) वीर स्त्री। (११) घर की मालकिन। गृहस्वामिनी। (१२) हल्दी। (१३) शमी वृक्ष। (१४) मोती। (१५) मोक्ष की प्राप्ति। (१६) वह वृक्ष जो फलता हो अथवा जिसमें फल लगे हों। (१७) पद्म। कमल। (१८) सफ़ेद तुलसी। (१९) मेढ़ासिंगी।

लक्ष्मीक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) धनवान्। अमीर। (२) भाग्यवान्।

लक्ष्मीकांत-संज्ञा पुं० [सं०] नारायण।

लक्ष्मीगृह-संज्ञा पुं० [सं०] लाल कमल।

लक्ष्मीजनार्दन-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार के शालग्राम जो बहुत काले रंग के होते हैं और जिन पर एक ओर चार चक्र रहते हैं।

लक्ष्मी टोड़ी-संज्ञा स्त्री० [सं० लक्ष्मी + हि० टोड़ी] एक प्रकार की संकर रागिनी जिसमें सब कोमल स्वर लगते हैं।

लक्ष्मीताल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) संगीत में १८ मात्राओं का एक ताल जिसमें १५ आघात और ३ खाली होते हैं।

इसके मृदंग के बोल इस प्रकार हैं—

×	१	२	०	३
धा	केटे	धा	धा	केटे

४	५	०	६	७	८	९	१०	११	१२	१३
ताग	धा	केटे	तागे	गेना	आन	गन	केटे	ने	ना	धेत्र गे

१४ १५० +
तेटे गदिपेने । घा ॥ (२) श्रीताल नामक वृक्ष ।

लक्ष्मीधर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) स्रग्विणी छंद का दूसरा नाम। (२) विष्णु ।

लक्ष्मीनारायण-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार के शालग्राम जो बहुत काले रंग के होते हैं और जिन पर एक ओर चार चक्र बने होते हैं । लक्ष्मी जनार्दन ।

लक्ष्मीनिधि-संज्ञा पुं० [सं०] राजा जनक के पुत्र का नाम ।

लक्ष्मीनृसिंह-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार के शालग्राम जिन पर दो चक्र और एक वनमाला बनी होती है । ऐसे शालग्राम गृहस्थों के लिये बहुत शुभ माने जाते हैं ।

लक्ष्मीपति-संज्ञा पुं० [सं०] (१) विष्णु । नारायण । (२) कृष्ण । (३) राजा । (४) लौंग का वृक्ष । (५) सुपारी का वृक्ष ।

लक्ष्मीपुत्र-संज्ञा पुं० [सं०] (१) कामदेव । (२) घोड़ा । (३) सीता के पुत्र लव और कुश ।
वि० धनवान् । अमीर ।

लक्ष्मीपुष्प-संज्ञा पुं० [सं०] (१) माणिक । लाल । (२) पद्म । कमल ।

लक्ष्मीफल-संज्ञा पुं० [सं०] बेल । श्रीफल ।

लक्ष्मीरमण-संज्ञा पुं० [सं०] नारायण ।

लक्ष्मीवत्-संज्ञा पुं० [सं०] (१) विष्णु । (२) कटहल का वृक्ष । (३) अश्वत्थ का वृक्ष ।
वि० धनवान् । अमीर ।

लक्ष्मीवल्लभ-संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु ।

लक्ष्मीवेष्ट-संज्ञा पुं० [सं०] तार्पीन ।

लक्ष्मीश-संज्ञा पुं० [सं०] (१) विष्णु । (२) आम का वृक्ष ।
वि० धनवान् । अमीर ।

लक्ष्मीसहज-संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा ।

लक्ष्य-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह वस्तु जिस पर किसी प्रकार का निशाना लगाया जाय । निशाना । (२) वह जिस पर किसी प्रकार का आक्षेप किया जाय । (३) अभिलषित पदार्थ । उद्देश्य । (४) अस्त्रों का एक प्रकार का संहार । (५) वह जिसका अनुमान किया जाय । अनुमेय । (६) वह अर्थ जो किसी शब्द की लक्षणा शक्ति के द्वारा निकलता हो ।
वि० देखने योग्य । दर्शनीय ।

लक्ष्यज्ञान-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह ज्ञान जो चिह्नों को देखकर उत्पन्न हो । (२) वह ज्ञान जो दृष्टांत के द्वारा उत्पन्न हो ।

लक्ष्यता-संज्ञा स्त्री० [सं०] लक्ष्य का भाव या धर्म । लक्ष्यत्व ।

लक्ष्यभेद-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का निशाना जिसमें तेज़ी से चलते या उड़ते हुए लक्ष्य को भेदते हैं । जैसे,—आकाश में फेंके हुए पैसे या उड़ते हुए पक्षी पर निशाना लगाना ।

लक्ष्यवीथी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) वह उपाय या कर्म जिससे जीवन का उद्देश्य सिद्ध होता हो । (२) ब्रह्मलोक का मार्ग जिसे देवयान पथ भी कहते हैं ।

लक्ष्यवेधी-संज्ञा पुं० [सं० लक्ष्यवेधिन्] वह जो लक्ष्य वेध करता हो । उड़ते या तेज़ी से चलते हुए पदार्थों या जीवों पर ठीक निशाना लगानेवाला ।

लक्ष्यार्थ-संज्ञा पुं० [सं०] वह अर्थ जो लक्षणा से निकले ।

लखन*†-संज्ञा पुं० [सं० लक्ष्मण] श्री रामचंद्रजी के छोटे भाई लक्ष्मण का नाम ।
संज्ञा स्त्री० [हिं० लखना] लखने की क्रिया या भाव ।

लखना*†-क्रि० स० [सं० लक्ष] (१) लक्षण देखकर अनुमान कर लेना । समझ या जान लेना । ताड़ना । उ०—(क) लखन लखेउ भा अनरथ आजू । यह सनेह बस करिहि अकाजू ।—तुलसी । (ख) लखै न रानि निकट दुख कैसे ।—तुलसी । (ग) लखन लख्यो प्रभु हृदय खँभारू ।—तुलसी । (२) देखना । उ०—(क) लहलहि अतिगति की सयन लखे सब पास ।—बिहारी । (ख) चाहिबो जुगुल किसोर लखि लोचन जुगुल अनेक ।—बिहारी ।

लखपती-संज्ञा पुं० [सं० लक्ष + पति] लाखों रुपयों का अधिपति । जिसके पास लाखों रुपयों की संपत्ति हो ।

लखमीतात-संज्ञा पुं० [सं० लक्ष्मी + तात] समुद्र । (डिं०)

लखमीवर-संज्ञा पुं० [सं० लक्ष्मी + वर] विष्णु । (डिं०)

लखार-संज्ञा पुं० [देश०] काकड़ासिंगी का पेड़ । इसे आरोल भी कहते हैं ।

लखलखा-संज्ञा पुं० [फा०] (१) कोई सुगंधित द्रव्य । (२) एक विशेष प्रकार का बना हुआ सुगंधित द्रव्य जो प्रायः मिट्टी पर गुलाब-जल छिड़ककर अथवा इसी प्रकार के और द्रव्यों से तैयार किया जाता है और जिसे सुँघाकर बेहोश आदमी को होश में लाते हैं । मूर्छा दूर करने का कोई सुगंधित द्रव्य ।

लखाउ*-संज्ञा पुं० [हिं० लखना] (१) लक्षण । पहचान । चिह्न । उ०—(क) अजर एक तोहिं कहौं लखाऊ । मैं पुनि भेस न आउब काऊ ।—तुलसी । (ख) पुनि भरत सत-भाइ कुभाऊ । आपहु बेगि न होइ लखाऊ ।—तुलसी । (२) चिह्न के रूप में दिया हुआ कोई पदार्थ । निशानी में दी हुई चीज़ । उ०—दियो सीय प्रबोध मुँदरी दियो कपिहि लखाउ ।—तुलसी ।

लखाना*†-क्रि० अ० [हिं० लखना] दिखाई पड़ना । उ०—मिलि चंदन बेंदी रही गोरे मुख न लखाय । ज्यों ज्यों मद लाली चढ़ै त्यों त्यों उघरति जाय ।—बिहारी ।
क्रि० स० (१) दिखलाना । (२) अनुमान करा देना ।

:समझा देना। सुझा देना। उ०—मेरोइ फोरिबे जोग कपार किधौं कछु काहू लखाइ दयो है। —तुलसी।

लखाव*-संज्ञा पुं० दे० "लखाउ"।

लखिमी*†-संज्ञा स्त्री० [सं० लक्ष्मी] (१) धन संपत्ति की अधिष्ठात्री देवी, लक्ष्मी। (२) धन-संपत्ति। दौलत।

लखिया*-संज्ञा पुं० [हिं० लखना + इया (प्रत्य०)] लखनेवाला। जो लखता हो।

लखुआ†-संज्ञा पुं० [सं० लाक्षा = लाख] (१) लाखा या लाही नामक रोग जो गेहूँ के पौधों में लगता है। (२) लाल मुँहवाला बंदर।

संज्ञा पुं० दे० "लखिया"।

लखुवा-संज्ञा पुं० दे० "लखुआ"।

लखेदना*-क्रि० स० [हिं० खेदना या रगेदना] खदेड़ना। भगाना। खेदना।

लखेरा-संज्ञा पुं० [हिं० लाख + एरा (प्रत्य०)] (१) वह जो लाख की चूड़ी आदि बनाता हो। (२) हिंदुओं में एक जाति जो लाख की चूड़ियाँ आदि बनाती है।

लखोट, लखोंट-संज्ञा पुं० दे० "लकुट"।

लखौट †-संज्ञा स्त्री० [हिं० लाख + औट (प्रत्य०)] लाख की चूड़ी आदि जो स्त्रियाँ हाथों में पहनती हैं। उ०—हाथन लखौट पाइ पूरा पचमणी गरे, गोरी की जुगुल जानु कोरी मनो केरा की। —देव।

लखौटा-संज्ञा पुं० [हिं० लाख + औटा (प्रत्य०)] (१) चंदन, केसर आदि से बना हुआ अंगराग। उ०—दरशन तो मुख को भयो सुमुखी मोहिं रसाल। बिना लखौटा हू लगे अधर ओठ अति लाल। —लछमण। (२) एक प्रकार का छोटा डिब्बा जो प्रायः पीतल का बनता है और जिसमें स्त्रियाँ प्रायः सिंदूर आदि सौभाग्य के द्रव्य रखती हैं। इसके ढकने में प्रायः शीशा भी लगा होता है।

संज्ञा पुं० [हिं० लेख + औटा (प्रत्य०)] लिखावट।

लखौरी-संज्ञा स्त्री० [सं० लाक्षा, हिं० लाखा + औरी (प्रत्य०)] (१) एक प्रकार की भ्रमरी का घर जो यह मिट्टी से घरों के कोनों में बनाती है। भृंगी का घर। (२) भारत की एक प्रकार की छोटी पतली ईंट जो प्रायः पुराने मकानों में पाई जाती है और जिसका व्यवहार अब कम होता जा रहा है। नौतेरही ईंट। ककैया ईंट।

संज्ञा स्त्री० [सं० लक्ष, हिं० लाख (संख्या)] किसी देवता को उसके प्रिय वृक्ष की एक लाख पत्तियाँ या फल आदि चढ़ाना। जैसे,—शिव जी को बेलपत्र की या लक्ष्मी-नारायण को तुलसी की लखौरी चढ़ाना।

क्रि० प्र०—चढ़ाना।

लगंत-संज्ञा स्त्री० [हिं० लगना + अंत (प्रत्य०)] (१) लगन होने की क्रिया या भाव। उ०—आलम में जब बहार की आकर लिलंत है। दिल की नई लगन को मज़े की लगंत है। —नज़ीर। (२) लगने या स्त्रीप्रसंग करने की क्रिया या भाव।

लग-क्रि० वि० [हिं० लौं] (१) तक। पर्यंत। ताईं। उ०—एक मुहूरत लग कर जोरी। नयन मूँदि श्रीपतिहिं निहोरी। —रघुराज। (२) निकट। समीप। नज़दीक। पास। उ०—यहि भाँति दिगीश चले मग में। इक सोर सुन्यो अति ही लग में। —गुमान।

संज्ञा स्त्री० लगन। लाग। प्रेम। उ०—झाँकति है का झरोखा लगी लग लागिबे की इहाँ झेल नहीं फिर। —पद्माकर।

अव्य० (१) वास्ते। लिये। उ०—भृगुपति जीति परसु तुम पायो। ता लग हौं लंकेश पठायो। —हृदयराम। (२) साथ। संग। उ०—लगलगी बातनि अलग लग लगी आवै लोगनि की लंग ज्यों लुगाइन की लाग री। —देव।

लगढग-क्रि० वि० दे० "लगभग"।

लगण-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का रोग जिसमें पलक पर एक छोटी, चिकनी, कड़ी गाँठ हो जाती है। इस गाँठ में न तो पीड़ा होती है और न वह पकती है।

लगदी†-संज्ञा स्त्री० [देश०] वह बिछौना जिसे बच्चेवाली स्त्रियाँ बच्चों के नीचे इसलिये बिछाकर उन्हें अपने पास सुलाती हैं कि जिसमें उनके मलमूत्र से और बिछौने खराब न होने पावें। कथरी। पोतड़ा।

लगन-संज्ञा स्त्री० [हिं० लगना] (१) किसी ओर ध्यान लगने की क्रिया। प्रवृत्ति का किसी एक ओर लगना। लौ। जैसे,—आज कल तो आपको बस कलकत्ते जाने की लगन लगी है।

क्रि० प्र०—लगना।—लगाना।

(२) प्रेम। स्नेह। मुहब्बत। प्यार।

क्रि० प्र०—लगना।—लगाना।

(३) लगने की क्रिया या भाव। लगाव। संबंध।

संज्ञा पुं० [सं० लग्न] (१) विवाह के लिये स्थिर किया हुआ कोई शुभ मुहूर्त्त। ब्याह का मुहूर्त्त या साइत। (२) वे दिन जिनमें विवाह आदि होते हों। सहालग। (३) दे० "लग्न"।

संज्ञा पुं० [फा०] (१) ताँबे, पीतल आदि की एक प्रकार की थाली जिसमें रखकर मोमबत्ती जलाई जाती है। (२) कोई बड़ी थाली जिसमें आटा गूँधने या मिठाई आदि रखते हैं। (३) मुसलमानों में विवाह की एक रीति जिसमें विवाह से पहले थालियों में मिठाइयाँ आदि भरकर वर के लिये भेजी जाती हैं।

लगनपत्री-संज्ञा स्त्री० [सं० लग्नपत्रिका] विवाह-समय के निर्णय की चिट्ठी जो कन्या का पिता वर के पिता को भेजता है।

लगना-क्रि० अ० [सं० लग्न] (१) दो पदार्थों के तल आपस में मिलना। एक चीज की सतह पर दूसरी चीज की सतह का होना। सटना। जैसे,—टेबुल पर कपड़ा लगना, तसवीर पर शीशा लगना, दीवार पर इश्तहार लगना। उ०—मिट्टी में सनी हुई बदहवास एक पत्थर से लगी हुई थी।—देवकीनंदन। (२) एक पदार्थ का दूसरे पदार्थ में संलग्न होना। मिलना। जुड़ना। जैसे,—तसवीर में चौखटा लगना, अलमारी में शीशा लगना, किसी के गले लगना। उ०—लागति है जाय कंठ नाग दिगपालन के मेरे जान सोई कृत कीरति तिहारी है।—केशव। (३) किसी पदार्थ के तल पर पड़ना। जैसे,—पैर में कीचड़ लगना, कपड़े में मिट्टी लगना, कागज में दाग लगना। (४) एक चीज का दूसरी चीज पर सीया, जड़ा, टाँका या चिपकाया जाना। जैसे,— चादर में बेल लगना, धोती में फीता लगना, कोट में बटन लगना। उ०—(क) जटित जराय की जँजीर बीच नीलमणि लगि रहे लोकनि के नैन मानो मनहर।—केशव। (ख) सिर पर फौलादी टोपी जिसमें एक हुमा के पर की लाँबी कलगी लगी हुई थी।—देवकीनंदन। (५) सम्मिलित होना। शामिल होना। मिलना। जैसे,—पुस्तक में परिशिष्ट लगना, रजिस्टर में पन्ने लगना। (६) उत्पन्न होना। जमना। उगना। जैसे,—(क) यह गुलाब इस जमीन में न लगेगा। (ख) इस पेड़ में खूब आम लगे हैं। (७) छोर या प्रांत आदि पर पहुँचकर टिकना या रुकना। ठिकाने पर पहुँचना। जैसे,—किनारे पर नाव लगना, दरवाजे पर गाड़ी या बरात लगना। (८) क्रम से रखा या सजाया जाना। सिलसिले से रखा जाना। जैसे,—अलमारी में किताबें लगना, दूकान पर माल लगना, बरात लगना, हाट लगना, जुमाइश लगना। (९) व्यय होना। खर्च होना। जैसे,—(क) ब्याह में दस हजार रुपए लगे। (ख) उसे दौड़ने दो; तुम्हारा क्या लगता है। (१०) जान पड़ना। मालूम होना। अनुभव होना। जैसे,—डर लगना, मोह लगना, पेशाब लगना, अच्छा लगना, बुरा लगना, जाड़ा लगना, गरमी लगना। उ०—चंद्रकांता के विरह में मोरों की आवाज तीर सी लगती है।—देवकीनंदन। (११) स्थापित होना। कायम होना। जैसे,—मकान में कल लगना, छत के नीचे खंभा लगना। (१२) संबंध या रिश्ते में कुछ होना। जैसे,—यह हमारा भाई लगता है। उ०—दशरथ आपके कौन लगते हैं और आप दशरथ के कौन लगते हो।—वाल्मीकीय रामायण। (१३) आघात पड़ना। चोट पहुँचना। जैसे,—लाठी लगना, थप्पड़ लगना, तलवार लगना। उ०—धौल का लगना था कि वह पत्थर का आदमी उठ बैठा।—देवकीनंदन। (१४) टक्कर खाना। टकराना। जैसे,—जरा सा ढकेलते ही उसका सिर दीवार से जा लगा। (१५) किसी चीज के ऊपर लेप किया जाना। पोता जाना। मला जाना। जैसे,—लकड़ी पर वारनिश लगना, फोड़े पर दवा लगना, पान पर कत्था लगना, सिर में तेल लगना। (१६) किसी पदार्थ का किसी प्रकार की जलन या चुनचुनाहट आदि उत्पन्न करना। जैसे,—(क) यह सूरन बहुत लगता है। (ख) यह दवा पहले तो कुछ लगेगी; पर फिर ठंडक डाल देगी। (१७) खाद्य पदार्थ का (पकने के समय जल आदि के अभाव या आँच की अधिकता के कारण) बरतन के तल में जम जाना। जैसे,—खिचड़ी में पानी छोड़ो; नहीं तो लग जायगी। (१८) किसी प्रकार की प्रवृत्ति आदि का आरंभ होना। जैसे,—चाट लगना, चसका लगना। (१९) आरंभ होना। शुरू होना। जैसे,—(क) अब तो ग्रहण लग गया है। (ख) कल से चैत लगेगा। (ग) उनकी नौकरी लग गई है। (२०) उपयोग में आना। काम में आना। जैसे,—(क) जितना मसाला आया था, वह सब एक ही मकान में लग गया। (ख) तुम्हारी चारों साड़ियाँ लग गईं। (२१) काम के लिये आवश्यक होना। जरूरी होना। जैसे,—(क) इस महीने में हमें चार गाड़ी भूसा लगेगा। (ख) अब तो उन्हें भी चश्मा लगता है। (ग) रजिस्टरी में दो आने का टिकट लगता है। (घ) तुम्हें जो जो चीजें लगें, सब मुझसे माँग लेना। (२२) जारी होना। चलना। जैसे,—(क) आज कल दोनों में खूब लड़ाई लगी है। (ख) अब तो तुम्हारा ही काम लगा है; दो चार दिन में पूरा हो जायगा। (ग) दो चार दिन में काम लगेगा। (२३) एक चीज का दूसरी चीज के साथ रगड़ खाना। जैसे,—चलने में घोड़े के पैर लगना, गाड़ी का पहिया लगना। (२४) सड़ना। गलना। जैसे,—(क) यह आम लग गया है। (ख) इस बैल का कंधा लग गया है। (२५) किसी ऐसे कार्य्य का आरंभ होना जिसमें बहुत से लोगों के एकत्र होने की आवश्यकता हो। जैसे,—महफिल लगना, मेला लगना। (२६) प्रभाव पड़ना। असर होना। जैसे,—(क) परदेस में हमें पानी बहुत अच्छी लगता है। (ख) कड़ाही में आँच लग रही है। (ग) तुम्हें डाक्टरी दवा नहीं लगती। (घ) तुम्हें उसी का शाप लगा है। (च) मुरती बहुत तेज थी; लग गई है।

मुहा०—लगती बात कहना = ऐसी बात की बात कहना कि सुननेवाला मन मसोसकर रह जाय। मर्म्मभेदी बात कहना। चुटकी लेना।

(२७) दातव्य नियत होना। देना निश्चित होना। जैसे,—टैक्स लगना, ब्याज लगना, किराया लगना। (२८) आरोप होना। जैसे,—दफा लगना, हत्या लगना, पाप लगना। (२९) प्रज्वलित होना। जलना। जैसे,—आग लगना, दीआ लगना। उ०—औचक ही कर माँझ साँझ ही अगिनि लगी यहो अनुरागी रहि गई सोऊ हारिए।—प्रियादास। (३०) काम में आने योग्य होना। ठीक बैठना। उपयुक्त होना। जैसे,—यह ताली इस ताले में लग जाती है। (३१) हिसाब होना। गणित होना। जैसे,—पुरजा लगना, जोड़ लगना। (३२) पीछे पीछे चलना। साथ होना। शामिल होना। जैसे,—(क) बाजार में पहुँचते ही दलाल लगते हैं। (ख) तुम्हारे साथ भी सदा एक न एक आदमी लगा रहता है। उ०—लगे याके पाछे काछे काछ की न सुधि कछू गई घर आछे रहे द्वार तनु छीजिए।—प्रियादास।

मुहा०—लग चलना = किसी के साथ या पीछे हो लेना। जैसे,—जहाँ तुमने कोई मालदार असामी देखा, वहाँ तुम उसके पीछे लग चले।

(३३) संबद्ध होना। चिमटना। जैसे,—रोग लगना। (३४) किसी कार्य्य में प्रवृत्त या तत्पर होना। जैसे,—(क) तुम्हें इन सब झगड़ों से क्या मतलब; तुम अपने काम में लगो। (ख) वह सबेरे से लिखने में लगा है। (३५) स्पर्श करना। छूना। उ०—कृपा करी निज धाम पठायो अपनो रूप दिखाय। याके आश्रम जोऊ बसत है माया लगत न ताय।—सूर। (३६) गौ, भैंस, बकरी आदि दूध देनेवाले पशुओं का दूहा जाना। जैसे,—यह भैंस दिन में तीन बार लगती है। (३७) गड़ना। चुभना। धँसना। उ०—इह काँटे मो पाय लगि लीन्ही मरति जिवाय। प्रीति जनावति भीति सों मीत जु काढ्यो आय।—बिहारी। (३८) बदले में जाना। गुजरा होना। जैसे,—उनके दोनों मकान कर्ज में लग गए। (३९) समीप पहुँचना। पास जाना। छूना। जैसे,—पैरों लगना। उ०—(क) बरहिं तुरंग लेहिं नहिं बागा। जानो उलट गगन कहँ लागा।—जायसी। (ख) चितचोरन चितचोर में प्यारी इतनो आइ। इन्हें पायकै मारिए, उनके लगिये पाय। (४०) छेड़खानी करना। छेड़छाड़ करना। जैसे,—ऐसे आदमियों से मत लगा करो। उ०—औरन सों करि रहे अचगरी मोसों लगत कन्हाई।—सूर। (४१) बंद होना। मुँदना। जैसे,—किवाड़ा लगना। उ०—अर्जुन के मंदिर पगु धारा। देखे लगे कपाट दुआरा।—सबल। (४२) जूए की बाजी पर रखा जाना। दाँव पर रखा जाना। बदना। जैसे,—(क) पाँच दाएँ इस दाँव पर लगे हैं। (ग) अच्छा, इसी बात पर शर्त लगी। (४३) अंकित होना। चिह्नित होना। जैसे,—तिलक लगना, निशान लगना, मोहर लगना, ठप्पा लगना। (४४) धारदार चीज की धार का तेज किया जाना। जैसे,—उस्तरा लगना, कैंची लगना। (४५) घात में रहना। ताक में रहना। जैसे,—(क) उस रास्ते में संध्या के बाद डाकू लगते हैं। (ख) इस जंगल में शेर लगते हैं। (४६) किसी स्थान पर एकत्र होना। जैसे,—(क) इस घाट पर मछलियाँ लगती हैं। (ख) बाग में मच्छड़ लगते हैं। (४७) दाम आँका जाना। जैसे,—बाजार में घड़ी का दाम २०) लगा है। (४८) किसी चीज का विशेषतः खाने की चीज का अभ्यस्त होना। परचना। सधना। जैसे,—लड़का रोटी पर लग गया है। (४९) अपने नियत स्थान या कार्य्य आदि पर पहुँचना। जैसे,—पारसल लगना, रजिस्टरी लगना। (५०) फैलना। बिछना। जैसे,—बिछौना लगना, जाल लगना। (५१) संभोग करना। मैथुन करना। प्रसंग करना। (बाजारू) (५२) होना। जैसे,—(क) अभी हमें यहाँ देर लगेगी। (ख) यहाँ से हट जाओ, नहीं तो तुम्हारा ही नाम लगेगा। (ग) वह गाँव यहाँ से चार कोस लगता है। (घ) अब की अमावस को ग्रहण लगेगा। (च) यहाँ तो किताबों का ढेर लगा है। (५३) जहाज का छिछले पानी में अथवा किनारे की जमीन पर चढ़ जाना। (लश०) (५४) एक जहाज का दूसरे जहाज के सामने या बराबर आना। (लश०) (५५) पाल का खींचकर चढ़ाया जाना। (लश०)

विशेष—(क) भिन्न भिन्न शब्दों के साथ यह क्रिया लगकर भिन्न भिन्न अर्थ देती है। जैसे,—नींद लगना, दाँत लगना, बात लगना, समाधि लगना, नैवेद्य लगना आदि। इस प्रकार के बहुत से अर्थों में से अधिकांश की गणना मुहा० में होनी चाहिए। (ख) इस क्रिया के अलग अलग अर्थों में जाना, पड़ना आदि अलग अलग संयो० क्रियाएँ लगती हैं।

लगनि৯-संज्ञा स्त्री० दे० "लगन"। उ०—नैन लगे तिहिं लगनि सों छुटे न छूटे प्रान। काम न आवत एकहू तेरे सौकि सयान।—बिहारी।

लगभग†-क्रि० वि० [हिं० लग = पास + भग अनु०] प्रायः। करीब करीब। जैसे,—(क) वहाँ लगभग सौ आदमी उप-स्थित थे। (ख) इस काम में लगभग एक महीना लगेगा।

लगमात-संज्ञा स्त्री० [हिं० लगना + सं० मात्रा] स्वरों के वे चिह्न जो उच्चारण के लिये व्यंजनों में जोड़े जाते हैं। जैसे,—ए का े, ओ का ो।

लगर৯†-संज्ञा पुं० [देश०] चील की तरह का एक शिकारी पक्षी। लग्गड़। उ०—(क) नैन लगर घूँघुट कुलहि पवन खोल जब देत। मेरी मन चिड़िया तुरत लपट...

देत।—रसनिधि। (ख) जुरों वाज बाँसे कुही बहरी लगर लोने टोने जरकटी त्यों शचान सानवारे हैं।

लगलग-वि० [अ० लक़लक़] बहुत दुबला पतला। अति सुकुमार। उ०—अँगियाँ अधर चूमि हाहा छाँडो कहै झूमि छतियाँ सों लगी लगलगी सी हलकि कै।—देव।

लगवक्‡-वि० [अ० लग्‌व] (१) झूठ। मिथ्या। असत्य। (२) व्यर्थ। बेकार। निष्प्रयोजन।

लगवाना-क्रि० स० [हिं० लगाना का प्रेर०] लगाने का काम दूसरे से कराना। दूसरे को लगाने में प्रवृत्त करना। उ०—(क) प्रथम खवरि लगवाइ कै कूवर दीन्ह सुधारि।—विश्राम। (ख) तहाँ एक दिन नंद कन्हाई। गए खरिक लगवावन गाई।—विश्राम।

लगवार‡-संज्ञा पुं० [हिं० लगना = प्रसंग करना + वार (प्रत्य०)] स्त्री का उपपति। यार। आशना। उ०—साँझ सकार दिया लै वारे। खसम छोड़ि सुमिरे लगवारे।—कबीर।

लगहर‡-संज्ञा पुं० [हिं० लाग + हर (प्रत्य०)] वह काँटा या तराजू जिसमें पासँग हो।

लगातार-क्रि० वि० [हिं० लगना + तार = सिलसिला] एक के बाद एक। सिलसिलेवार। बरावर। निरंतर। सतत। जैसे,—(क) आज चार दिन से लगातार पानी बरस रहा है। (ख) वह लगातार दो घंटे तक व्याख्यान देता रहा।

लगान-संज्ञा पुं० [हिं० लगना या लगाना] (१) लगने या लगाने की क्रिया या भाव। (२) किसी मकान के ऊपरी भाग से मिला हुआ कोई ऐसा स्थान जहाँ से कोई वहाँ आ जा सकता हो। लाग। जैसे,—इस मकान में दोनों तरफ से लगान है। (३) वह स्थान जहाँ पर मजदूर आदि सुस्ताने के लिये अपने सिर का बोझ उतारकर रखते हैं। (४) वह स्थान जहाँ पर नावें आकर ठहरा करती हैं। (५) भूमि पर लगनेवाला वह कर जो खेतिहरों की ओर से जमींदार या सरकार को मिलता है। राजस्व। भू-कर। जमाबंदी। पोत।

यौ०—लगान मुकर्ररी = नियत भू-कर। लगान वाकई = वास्तविक भू-कर।

लगाना-क्रि० स० [हिं० लगना का स० रूप] (१) एक पदार्थ के तल के साथ दूसरे पदार्थ का तल मिलाना। सतह पर सतह रखना। सटाना। जैसे,—दीवार पर कागज लगाना, तख्ती पर तसवीर लगाना, कपड़े में अस्तर लगाना, लिफाफे पर टिकट लगाना। (२) दो पदार्थों को परस्पर संलग्न करना। मिलाना। जोड़ना। जैसे,—दराज में मुठिया लगाना, चाकू में दस्ता लगाना। (३) किसी पदार्थ के तल पर कोई चीज डालना, फेंकना, रगड़ना, चिपकाना या गिराना। जैसे,—चेहरे पर गुलाल लगाना, सिर में तेल लगाना। उ०—दीन्ह लगाय सूत जिमि पानी। तेहि फल भई भरथ की रानी।—विश्राम। (४) एक चीज पर दूसरी चीज सीना, टाँकना, चिपकाना या जोड़ना। जैसे,—टोपी में कलगी लगाना, कोट में बटन लगाना। (५) सम्मिलित करना। शामिल करना। साथ में मिलाना। जैसे,—किताब में जिल्द लगाना, मिसिल में चिट्ठी लगाना, दारू में मसाला लगाना। (६) वृक्ष आदि आरोपित करना। जमाना। उगाना। जैसे,—बाग में पेड़ लगाना। (७) एक ओर या किसी उपयुक्त स्थान पर पहुँचाना। जैसे,—बंदरगाह में जहाज लगाना। (८) क्रम से रखना या सजाना। बराबर या सिलसिले से रखना। सजाना। चुनना। जैसे,—दस्तरखान लगाना, कमरे में तसवीरें लगाना, गुच्छा लगाना, बाजार लगाना। (९) खर्च करना। व्यय करना। जैसे,—उन्होंने हजारों रुपए लगाए, तब जाकर मकान मिला। उ०—धन निज रघुपति हेतु लगावै। राम भक्ति हिय में उपजावै।—रघुराज। (१०) अनुभव कराना। मालूम कराना। जैसे,—यह दवा तुम्हें बहुत भूख लगावेगी। (११) स्थापित करना। कायम करना। जैसे,—उन्होंने अपने यहाँ बिजली का इंजन लगा रखा है। (१२) आघात करना। चोट पहुँचाना। जैसे,—थप्पड़ लगाना, घूसा लगाना। (१३) लेप करना। पोतना। मलना। जैसे,—जूते पर स्याही लगाना। (१४) किसी में कोई नई प्रवृत्ति आदि उत्पन्न करना। जैसे,—आपने ही तो उन्हें सिगरेट का चसका लगाया है। (१५) उपयोग में लाना। काम में लाना। जैसे,—झगड़ा लगाना, नौकरी लगाना। (१६) सड़ाना। गलाना। जैसे,—(क) तुमने लापरवाही से सब पान लगा दिए। (ख) खाली जीन कसते कसते तुमने घोड़े की पीठ लगा दी। (१७) ऐसा कार्य करना जिसमें बहुत से लोग एकत्र या सम्मिलित हों। जैसे,—तुम तो जहाँ जाते हो, मेला लगा देते हो। (१८) दातव्य निश्चित करना। यह तै करना कि इतना अवश्य दिया जाय। जैसे,—कर लगाना। (१९) आरोपित करना। अभियोग लगाना। जैसे,—जुर्म लगाना।

मुहा०—किसी को लगाकर कुछ कहना या गाली देना = बीच में किसी का संबंध स्थापित करके किसी प्रकार का आरोप करना।

(२०) प्रज्वलित करना। जलाना। जैसे,—कड़ाही के नीचे आँच लगा दो। उ०—सेवा प्रभु की मेंड तहाँ पाँव धरो जाइ कहो तुम पैठो कहाँ आग ही लगाई है।—प्रियादास। (२१) ठीक स्थान पर बैठाना। जड़ना। जैसे,—घड़ी में सूई लगाना, चौखटे में शीशा लगाना। (२२) गणित करना। हिसाब करना। जैसे,—ब्याज लगाना, जोड़ लगाना। (२३) किसी के पीछे या साथ नियुक्त करना। शामिल करना। जैसे,—तुम भी

उनके पीछे अपना दूत लगा दो। (२४) किसी प्रकार साथ में संबद्ध करना। जैसे,—तुमने यह अच्छी बला मेरे पीछे लगा दी। (२५) किसी के मन में दूसरे के प्रति दुर्भाव उत्पन्न करना। कान भरना। चुगली खाना। जैसे,—(क) किसी ने उन्हें मेरी तरफ से कुछ लगा दिया है। (ख) तुम तो योंही इधर की उधर लगाया करते हो।

यौ०—लगाना बुझाना = लड़ाई झगड़ा कराना। दो आदमियों में वैमनस्य उत्पन्न करना।

(२६) अपने साथ या पीछे ले चलना। जैसे,—वह बहुतों को अपने साथ लगाए फिरता है। (२७) किसी कार्य में प्रवृत्त या तत्पर करना। नियुक्त करना। जैसे,—(क) लड़के को किसी रोजगार में लगा दो। (ख) जो काम किया करो, वह मन लगाकर किया करो। उ०—जिनको धारिहु द्वारन प्रथम लगायो राम।—रघुराज। (२८) गौ, भैंस, बकरी आदि दूध देनेवाले पशुओं को दूहना। जैसे,—वह गौ लगाने गया है। (२९) गाड़ना। धँसाना। ठोंकना। जड़ना। जैसे,—दीवार में कील लगाना। (३०) समीप पहुँचाना। पास ले जाना। सटाना। जैसे,—वह दरवाजे के पास कान लगाकर सुनने लगा। (३१) स्पर्श कराना। छुआना। जैसे,—उसने तुरंत गिलास उठाकर मुँह से लगाया। (३२) बंद करना। जैसे,—दरवाजा लगाना, कुरते की घुंडी लगाना, ताला लगाना। (३३) जूए की बाजी पर रखना। दाँव पर रखना। जैसे,—(क) उसने अपने पास के सब रुपए दाँव पर लगा दिए। (ख) मैं तुमसे बाजी नहीं लगाता। उ०—देश कोश नृप सकल लगाई। जीति लेब सब रहि नहिं जाई।—सबल। (३४) किसी विषय में अपने आपको बहुत दक्ष या श्रेष्ठ समझना। किसी बात का अभिमान करना। जैसे,—वह गाने में अपने आपको बहुत लगाता है। (३५) अंग पर पहनना, ओढ़ना या रखना। धारण करना। जैसे,—चश्मा लगाना, छाता लगाना। (३६) बदले में लेना। मुजरा करना। जैसे,—यह अँगूठी तो हमने अपने लहने में लगा ली। (३७) अंकित करना। चिह्नित करना। जैसे,—तिलक लगाना, निशान लगाना, मोहर लगाना। (३८) धारदार चीज की धार तेज करना। सान पर चढ़ाना। जैसे,—छुरा लगाना, कैंची लगाना। (३९) खरीदने के समय चीज का मूल्य कहना। दाम आँकना। जैसे,—मैंने उनके मकान का दाम ५०००) लगा दिया है। (४०) किसी चीज का, विशेषतः खाने की चीज का अभ्यस्त करना। परचाना। लखाना। जैसे,—लड़के को दाल रोटी पर लगा दो; दूध कहाँ तक दिया करोगे। (४१) नियत स्थान या मार्ग पर पहुँचाना। जैसे,—पारसल लगाना, मनी आर्डर लगाना। (४२) फैलाना। बिछाना। जैसे,—बिछौना लगाना, जाल लगाना। (४३) संभोग करना। मैथुन करना। प्रसंग करना। (बाजारू) (४४) करना। जैसे,—(क) आपने वहाँ बहुत दिन लगा दिए। (ख) यहाँ कपड़ों का ढेर मत लगाना। उ०—अब जनि देर लगावहु स्वामी। देखि प्रीति बोले ऋषि ज्ञानी।—विश्राम। (४५) जहाज को छिछली या किनारे की जमीन पर चढ़ाना। (लश०) (४६) एक जहाज को दूसरे जहाज के सामने या बराबर ले जाना। (लश०) (४७) पाल खींचकर चढ़ाना। (लश०)

विशेष—(क) भिन्न भिन्न शब्दों के साथ इस क्रिया के भिन्न भिन्न अर्थ होते हैं। जैसे,—दाँत लगाना, समाधि लगाना, कान लगाना, दम लगाना आदि। इस प्रकार के बहुत से अर्थों में से अधिकांश की गणना मुहा० में होनी चाहिए। (ख) इस क्रिया के अलग अलग अर्थों में छोड़ना, डालना, देना, रखना आदि अलग अलग संयो० क्रियाएँ लगती हैं।

लगाम-संज्ञा स्त्री० [फा०] (१) लोहे का वह काँटेदार ढाँचा जो घोड़े के मुँह के अंदर रखा जाता है और जिसके दोनों ओर रस्सा या चमड़े का तस्मा आदि बँधा रहता है।

क्रि० प्र०—उतारना।—चढ़ाना।—लगाना।

मुहा०—लगाम चढ़ाना या देना = (१) किसी को कोई कार्य्य करने से, विशेषतः बोलने से रोकना। (२) लँगोट कसना। (बाजारू)

(२) इस ढाँचे के दोनों ओर बँधा हुआ रस्सा या चमड़े का तस्मा जो सवार या हाँकनेवाले के हाथ में रहता है। सवार या हाँकनेवाला इसी रस्से या तस्मे की सहायता से घोड़े को चलाता, रोकता, इधर उधर मोड़ता और अपने वश में रखता है। रास। बाग।

मुहा०—लगाम लिए फिरना = किसी को पकड़ने, बाँधने या वश में करने के लिये उसका पीछा करना। बराबर ढूँढ़ते फिरना।

लगार†-संज्ञा स्त्री० [हिं० लगना + आर (प्रत्य०)] (१) नियमित रूप से कोई काम करने या कोई चीज देने की क्रिया या भाव। बंधी। बंधेज। (२) लगने की क्रिया या भाव। लगाव। संबंध। उ०—बार बार फन घात कै विष ज्वाला की झार। सहसौ फन फन फूँकरै नैन न तनहि लगार।—सूर। (३) तार। क्रम। सिलसिला। उ०—सात दिवस नहिं मिटी लगार। बरष्यो सलिल अखंडित धार।—सूर। (४) लाग। प्रीति। लगावट। मुहब्बत। उ०—चकोर भरोसे चंद के ताता निगलै अँगार। कहै कबीर छोड़ै नहीं ऐसी वस्तु लगार।—कबीर। (५) वह जो किसी की ओर से भेद लेने के लिये भेजा गया हो। वह जो किसी के मन की बात जानने के लिये किसी की ओर

से गया हो। उ०—और सखी एक स्याम पठाई। हरि को विरह देखि भइ व्याकुल मान मनावन आई। बैठी आइ चतुराई काछे वह कछु नहीं लगार। देखति हौं कछु और दसा तुम बूझति वारंवार।—सूर। (६) वह जिससे घनिष्ठता का व्यवहार हो। मेली। संबंधी। (७) रास्ते में बीच का वह स्थान जहाँ से जुआरी लोग जूआ खेलने के स्थान तक पहुँचाए जाते हैं। टिकान।

विशेष—प्रायः जूआ किसी गुप्त स्थान पर होता है, जिसके कहीं पास ही संकेत का एक और स्थान नियत होता है। जब कोई जुआरी वहाँ पहुँचता है, तब या तो उसे जूए के स्थान का पता बतला दिया जाता है और या उसे वहाँ पहुँचाने के लिये कोई आदमी उसके साथ कर दिया जाता है। इसी संकेत स्थान को, जहाँ से जुआरी जूआ खेलने के स्थान पर भेजे जाते हैं, जुआरी लोग "लगार" कहते हैं।

लगालगी—संज्ञा स्त्री० [हिं० लगना] (१) लाग। लगन। प्रेम। स्नेह। प्रीति। उ०—(क) क्यौं बसिये क्यों निबहिये नीति नेह पुर नाहिं। लगालगी लोयन करैं नाहक मन बँध जाहिं।—बिहारी। (ख) लगालगी लोचैं गली लगे लागलै लाल। गैल गोप गोपी लगे पालागौं गोपाल।—केशव। (२) संबंध। मेल जोल।

लगाव—संज्ञा पुं० [हिं० लगना + आव (प्रत्य०)] लगे होने का भाव। संबंध। वास्ता। जैसे,—(क) इन दोनों मकानों में कोई लगाव नहीं है। (ख) मैं ऐसे लोगों से कोई लगाव नहीं रखता।

लगावट—संज्ञा स्त्री० [हिं० लगना + आवट (प्रत्य०)] (१) संबंध। वास्ता। लगाव। (२) प्रेम। प्रीति। लगन। मुहब्बत। जैसे,—लगावट की बातें।

लगावन‡†—संज्ञा स्त्री० [हिं० लगाव] लगाव। संबंध। वास्ता। उ०—हम हैं अफ़सर तुम हो बावन। हमरी तुमरी कहाँ लगावन।—रामकृष्ण वर्म्मा।

लगावना—क्रि० स० दे० "लगाना"। उ०—केती लाए फौज और क्या आदमी। सो सब लेउ बुलाइ न देर लगावनी।—सूदन।

लगि‡†—अव्य० दे० "लग"।

संज्ञा स्त्री० दे० "लग्गी"। उ०—(क) लहलहाति तन तरुनई लचि लगि लौं लफि जाइ। लगै लाँक लोयन भरी लोयन लेति लगाइ।—बिहारी। (ख) चंप कुसुम लोचन तिरे करे गनी विधि मैन। केलि सदन सुख दैन ये केलि सदन सुख दैन।—बिहारी। (ग) नाम लगि लाय लासा ललित बचन कहि ब्याध ज्यों विषय बिहंगनि बझावौं।—तुलसी।

लगीछ‡—संज्ञा स्त्री० दे० "लग्गी"। उ०—पुहि बिर-बाद सुधि ठगी। भउ भा काल हाथ लेइ लगी।—जायसी।

लगु‡†—अव्य० दे० "लग"।

लगुड—संज्ञा पुं० [सं०] (१) दंड। डंडा। लाठी। (२) प्रायः दो हाथ लंबा लोहे का एक विशेष प्रकार का डंडा जिसका व्यवहार प्राचीन काल में पैदल सैनिक अस्त्रों के समान करते थे। (३) लाल कनेर।

लगुल—संज्ञा पुं० [सं० लांगूल ?] शिश्न। (डिं०)

लगुवा†—वि० [हिं० लगना + उवा (प्रत्य०)] पीछे लगनेवाला। पीछे पीछे चलनेवाला। पिछलग्गू।

लगूर‡—संज्ञा स्त्री० [सं० लांगूल] पूँछ। दुम। उ०—अरा लगूर सुरता वहाँ। निकसि जो भागि भएउँ करमुहाँ।—जायसी।

लगूल‡—संज्ञा स्त्री० [सं० लांगूल] पूँछ। दुम। उ०—हनुमान हाँक सुनि बरषि फूल। सुर बार बार बरनहिं लगूल।—तुलसी।

लगे†—अव्य० दे० "लग"।

लगे लगे †—संज्ञा पुं० [हिं० लगाना] बंदर।

विशेष—बहुधा बंदरों के आने पर स्त्रियाँ और बच्चे "लगे लगे" (मारो, मारो) का शोर मचाते हैं; और बंदर का नाम लेना लोग ठीक नहीं समझते; इसलिये प्रायः "बंदर" के अर्थ में इस सांकेतिक शब्द का प्रयोग करते हैं।

लगौंहाँ—वि० [हिं० लगना + औंहाँ (प्रत्य०)] जिसे लगन लगने की कामना हो। लगने का आकांक्षी। रिझवार। उ०—(क) लगौंहीं चितवनि औरहि होति। दुरति न लाख दुराओ कोऊ प्रेम झलक की जोति।—हरिश्चंद्र। (ख) कत सकुचत निधरक फिरौ रतियौ खोरि तुम्हैं न। कहा करौ जो जाहिं ये लगैं लगौंहैं नैन।—बिहारी।

लग्गत †—संज्ञा स्त्री० दे० "लागत"।

लग्गा—संज्ञा पुं० [सं० लगुड] (१) लंबा बाँस। (२) वृक्षों से फल आदि तोड़ने का वह लंबा बाँस जिसके आगे एक अँकुसी लगी रहती है। लकसी। (३) वह लंबा बाँस जिसके सहारे से छिछले पानी में नाव चलाते हैं। लग्गी। (४) घास या कीचड़ आदि हटाने का एक प्रकार का फरहा जिसमें दस्ते की जगह एक लंबा बाँस लगा रहता है।

संज्ञा पुं० [हिं० लगना] कार्य्य आरंभ करना। काम में हाथ लगाना।

क्रि० प्र०—लगाना।

विशेष—इस अर्थ में इस शब्द का प्रयोग केवल "लगना" और "लगाना" क्रियाओं के साथ ही होता है।

लग्गी—संज्ञा स्त्री० [सं० लगुड] लंबा बाँस। वि० दे० "लग्गा"।

लग्घड़—संज्ञा पुं० [देश०] (१) बाज। शाहान। (२) एक प्रकार का चीता जो सामान्य चीते से बड़ा होता है। इ शिकार करना सिखाया जाता है। यह प्रायः ९ फुट की

होता है। इसकी आँखों पर एक जंजीर से पट्टियाँ बँधी रहती हैं। इसी को 'लकड़बग्घा' भी कहते हैं।

लग्घा-संज्ञा पुं० दे० "लग्गा"।

लग्घी-संज्ञा स्त्री० दे० "लग्गी"।

लग्न-संज्ञा पुं० [सं०] (१) ज्योतिष में दिन का उतना अंश, जितने में किसी एक राशि का उदय रहता है।

विशेष—पृथ्वी दिन रात में एक बार अपनी धुरी पर घूमती है; और इस बीच में वह एक बार मेष आदि बारह राशियों को पार करती है। जितने समय तक वह एक राशि में रहती है, उतने समय तक उस राशि का लग्न कहलाता है। किसी राशि में उसे कुछ कम समय लगता है और किसी में अधिक। जैसे,—मीन राशि में प्रायः पौने चार दंड, कन्या में प्रायः साढ़े पाँच दंड, और वृश्चिक में प्रायः पौने छः दंड। लग्न का विचार प्रायः बालक की जन्मपत्री बनाने, किसी प्रकार का मुहूर्त निकालने अथवा प्रश्न का उत्तर देने में होता है।

(२) ज्योतिष के अनुसार कोई शुभ कार्य करने का मुहूर्त। (३) विवाह का समय। उ०—एकहि लग्न सबहि कर पकरेउ, एक मुहूर्त्त बियाहे।—सूर। (४) विवाह। शादी। (५) विवाह के दिन। सहालग। (६) वह जो राजाओं की स्तुति करता हो। बंदीजन। सूत।

वि० (१) लगा हुआ। मिला हुआ। (२) लज्जित। शरमिंदा। (३) आसक्त।

संज्ञा पुं० दे० "लगन"।

संज्ञा स्त्री० दे० "लगन"।

लग्नकंकण-संज्ञा पुं० [सं०] वह कंकण या मंगल सूत्र जो विवाह के पूर्व वर और कन्या के हाथ में बाँधा जाता है।

लग्नक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जो जमानत करे। प्रतिभू। जामिन। (२) एक राग जो हनुमत के मत से मेघ राग का पुत्र माना जाता है।

लग्नकुंडली-संज्ञा [illegible] सं०] फलित ज्योतिष में वह चक्र या कुंडली जि[illegible] यह पता चलता है कि किसी के जन्म के समय कौ[illegible]न से ग्रह किस किस राशि में थे। जन्म-कुंडली।

लग्नदंड-संज्ञा पुं० [सं०] गाने या बजाने के समय स्वर के मुख्य अंशों या श्रुतियों को आपस में एक दूसरे से अलग न होने देना और सुंदरता से उनका संयोग करना। लाग डाँट। (संगीत)।

लग्नदिन-संज्ञा पुं० [सं०] विवाह के लिये निश्चित दिन।

लग्नपत्र-संज्ञा पुं० [सं०] वह पत्रिका जिसमें विवाह और उससे संबंध रखनेवाले दूसरे कृत्यों का लग्न स्थिर करके ब्योरेवार लिखा जाता है।

लग्नपत्रिका-संज्ञा स्त्री० दे० "लग्नपत्र"।

लग्नायु-संज्ञा स्त्री० [सं०] फलित ज्योतिष में वह आयु जो लग्न के अनुसार स्थिर की जाती है।

लग्नेश-संज्ञा पुं० [सं०] फलित ज्योतिष में वह ग्रह जो लग्न का स्वामी हो।

लग्नोदय-संज्ञा पुं० [सं०] (१) किसी लग्न के उदय होने का समय। (२) लग्न के उदय होने का कार्य।

लघड़बग्गा-संज्ञा पुं० दे० "लग्घड़" (२)।

लघमीपुष्प-संज्ञा पुं० [सं० लक्ष्मीपुष्प] पद्मराग मणि। लाल। माणिक्य। मानिक। (डिं०)

लघित्र-संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल का एक प्रकार का धारदार अस्त्र जिसमें दस्ता लगा होता था और जिससे भैंसे आदि काटे जाते थे।

लघिमा-संज्ञा स्त्री० [सं० लघिमन्] (१) आठ सिद्धियों में से चौथी सिद्धि। कहते हैं कि इसे प्राप्त कर लेने पर मनुष्य बहुत छोटा या हलका बन सकता है। (२) लघु या ह्रस्व होने का भाव। लघुत्व।

लघु-वि० [सं०] (१) शीघ्र। जल्दी। (२) जो बड़ा न हो। कनिष्ठ। छोटा। जैसे,—लघु स्वर, लघु मात्रा। (३) सुंदर। बढ़िया। (४) जिसमें किसी प्रकार का सार या तत्व न हो। निःसार। (५) थोड़ा। कम। (६) हलका। (७) नीच। (८) दुर्बल। दुबला।

संज्ञा पुं० (१) काला अगर। (२) उशीर। खस। (३) हस्त, अश्विनी और पुष्य ये तीनों नक्षत्र जो ज्योतिष में छोटे माने गए हैं और जिनका गण "लघुगण" कहा गया है। (४) समय का एक परिमाण जो पंद्रह क्षणों का होता है। (५) तीन प्रकार के प्राणायामों में से वह प्राणायाम जो बारह मात्राओं का होता है। शेष दो प्राणायाम मध्यम और उत्तम कहलाते हैं। (६) व्याकरण में वह स्वर जो एक ही मात्रा का होता है। जैसे,—अ, इ, उ, ओ, ऍ आदि। (७) वह जिसमें एक ही मात्रा हो। एक-मात्रिक। इसका चिह्न (।) है।

विशेष—इस अर्थ में इसका प्रयोग संगीत में ताल के संबंध में और छंदःशास्त्र में वर्ण के संबंध में होता है।

(८) बंशी का छोटा होना, जो उसके छः दोषों में से एक माना जाता है। (९) चाँदी। (१०) पृक्का। असबरग। (११) वह जिसका रोग छूट गया हो। (रोग छूटने पर शरीर कुछ हलका जान पड़ता है।)

लघुकंकोल-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का कंकोल जो साधारण कंकोल से छोटा होता है।

लघुकंटकी-संज्ञा स्त्री० [सं० [लज्जालु।

लघुकटाई-संज्ञा स्त्री० दे० "कंटकारी"।

लघुकण-संज्ञा पुं० [सं०] सफेद जीरा।
लघुकर्कंधु-संज्ञा पुं० [सं०] भुँईं बेर।
लघुकर्णी-संज्ञा स्त्री० [सं०] मूर्व्वा।
लघुकाम-संज्ञा पुं० [सं०] बकरी।
लघुकाश्मर्य-संज्ञा पुं० [सं०] कटहल का वृक्ष।
लघुकिन्नरी-संज्ञा स्त्री० [सं०] प्राचीन काल का एक प्रकार का बाजा जिसमें बजाने के लिये तार लगे होते थे।
लघुक्रम-संज्ञा पुं० [सं०] जल्दी जल्दी चलने की क्रिया। तेज चाल।
लघुगण-संज्ञा पुं० [सं०] अश्विनी, पुष्य और हस्त इन तीनों नक्षत्रों का समूह।
लघुगर्ग-संज्ञा पुं० [सं०] (१) खैरा नाम की मछली। (२) टेंगरा या त्रिकंटक नाम की मछली।
लघुचंदन-संज्ञा पुं० [सं०] अगर नामक सुगंधित लकड़ी।
लघुचित्त-संज्ञा पुं० [सं०] वह जिसका मन बहुत ही दुर्बल या चंचल हो।
लघुचित्तता-संज्ञा स्त्री० [सं०] मन के बहुत ही दुर्बल या चंचल होने का भाव।
लघुचेता-संज्ञा पुं० [सं० लघुचेतस्] वह जिसके विचार बहुत ही तुच्छ और बुरे हों। नीच।
लघुच्छदा-संज्ञा स्त्री० [सं०] महा शतावरी। बड़ी शतावर।
लघुजल-संज्ञा पुं० [सं०] लवा नामक पक्षी।
लघुजांगल-संज्ञा पुं० [सं०] लवा नामक पक्षी।
लघुता-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) लघु होने का भाव। छोटापन। लाघव। (२) हलकापन। तुच्छता।
लघुतिक्त-संज्ञा पुं० [सं०] मुरदासंग।
लघुतुपक-संज्ञा स्त्री० [सं०] तमंचा। पिस्तौल।
लघुत्तमापवर्त्य-संज्ञा पुं० [सं०] वह सब से छोटी संख्या जो दो या अधिक संख्याओं में से प्रत्येक को पूरा पूरा भाग दे सके।
लघुत्व-संज्ञा पुं० [सं०] (१) लघु होने का भाव। लघुता। (२) हलकापन। छोटापन। तुच्छता।
लघुदंती-संज्ञा स्त्री० [सं०] छोटी दंती। वि० दे० "दंती"।
लघुदुंदुभी-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की छोटी दुंदुभी। डुग्गी।
लघुद्राक्षा-संज्ञा स्त्री० [सं०] किशमिश।
लघुनामकर्म-संज्ञा पुं० [सं०] जैनियों के अनुसार वह कर्म जिससे जीव का शरीर न तो बहुत भारी होता है और न बहुत हलका होता है, बल्कि साधारण सम विभक्त होता है।
लघुनामा-संज्ञा पुं० [सं० लघुनामन्] अगर नामक सुगंधित लकड़ी।
लघुपंचक-संज्ञा पुं० [सं०] शालिपर्णी, पिठवन, कटाई (छोटी), कटेहरी (बड़ी) और गोखरू इन पाँचों की जड़ों का समूह जो वैद्यक के अनुसार पाचक, बलकारक, ग्राहक और ज्वर, श्वास तथा अश्मरी आदि को दूर करनेवाला माना जाता है।
लघुपंचमूल-संज्ञा पुं० दे० "लघुपंचक"।
लघुपत्र-संज्ञा पुं० [सं०] कमीला।
लघुपत्री-संज्ञा स्त्री० [सं०] अश्वत्थ वृक्ष।
लघुपर्णी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) मूर्वा। मरोड़फली। (२) छ· मूली। सतावर।
लघुपाक-संज्ञा पुं० [सं०] वह खाद्य पदार्थ जो सहज में पच जाय।
लघुपाकी-संज्ञा पुं० [सं० लघुपाकिन्] चेना नामक कदन्न।
लघुपाती-संज्ञा पुं० [सं० लघुपातिन्] कौवा।
लघुपुष्प-संज्ञा पुं० [सं०] भुइँ कदंब।
लघुपुष्पा-संज्ञा स्त्री० [सं०] पीला केवड़ा। स्वर्ण केतकी।
लघुप्रयत्न-संज्ञा पुं० [सं०] आलसी।
लघुफल-संज्ञा पुं० [सं०] गूलर।
लघुमंथ-संज्ञा पुं० [सं०] छोटी गनियारी।
लघुमति-वि० [सं०] छोटी समझवाला। कमसमझ। मूर्ख।
लघुमांस-संज्ञा पुं० [सं०] तीतर नामक पक्षी।
लघुमांसी-संज्ञा स्त्री० [सं०] छोटी जटामाँसी।
लघुमान-संज्ञा पुं० [सं०] नायिका का वह मान या अल्प रोष जो नायक को किसी दूसरी स्त्री से बातचीत करते देखकर उत्पन्न होता है।
लघुलता-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) करेले की बेल। (२) मर्जनद्रुम।
लघुलय-संज्ञा पुं० [सं०] (१) उशीर। खस। (२) पीला खस या लामज नाम की घास।
लघुलोणिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] लोनी का साग।
लघुशंका-संज्ञा स्त्री० [सं०] मूत्रोत्सर्ग। पेशाब करना।
लघुशंख-संज्ञा पुं० [सं०] घोंघा।
लघुशिखर-संज्ञा पुं० [सं०] संगीत में एक प्रकार का ताल।
लघुशीत-संज्ञा पुं० [सं०] लिसोड़ा।
लघुहस्त-संज्ञा संज्ञा [सं०] वह जो बहुत जल्दी जल्दी बाण चला सकता हो।
लघ्वी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) बेर नामक फल। (२) भसक रहका।
लच-संज्ञा पुं० [हिं० लचना] लचकने की क्रिया। लचक।
लचक-संज्ञा स्त्री० [हिं० लचकना] (१) लचकने की क्रिया या भाव। लचन। झुकाव।
क्रि० प्र०—खाना।—जाना।
(२) वह गुण जिसके रहने से कोई वस्तु दबती झुकती हो।

संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की नाव जो ६०-७० हाथ लंबी होती है। यह मकसूदाबाद की तरफ़ बनती है और इसे बहुत से लोग मिलकर खेते हैं।

लचकना-क्रि० अ० [हिं० लच (अनु०)] (१) किसी लंबे पदार्थ का बोझ पड़ने या दबने आदि के कारण बीच से झुकना। लचना। जैसे,—यह छड़ी बहुत कमजोर है; जरा सा बोझ देने से ही लचक जाती है।

संयो० क्रि०—जाना।

(२) स्त्रियों की कमर का कोमलता या नखरे आदि के कारण झुकना। जैसे,—जब वह चलती है, तब उसकी कमर लचकती है। (३) स्त्रियों का कोमलता या नखरे आदि के कारण चलने के समय रह रहकर झुकना। जैसे,—वह जब चलती है, तब लचकती चलती है।

लचकनि-संज्ञा स्त्री० [हिं० लचकना] (१) लचीलापन। (२) लचक।

लचका-संज्ञा पुं० [हिं० लचकना] एक प्रकार का गोटा।

लचकाना-क्रि० स० [हिं० लचकना] किसी पदार्थ को लचने में प्रवृत्त करना। झुकाना। लचाना।

लचकीला-वि० [हिं० लचक+ईला (प्रत्य०)] [स्त्री० लचकीली] जो सहज में लच या दब जाय। लचकने योग्य। लचकदार।

लचन, लचनि-संज्ञा स्त्री० दे० "लचक"।

लचना-क्रि० अ० दे० "लचकना"।

लचलचा-वि० [हिं० लचना] जो लचक जाय। लचीला। लचकनेवाला।

लचलचापन-संज्ञा पुं० [हिं० लचना] लचीले होने का भाव। लचीलापन।

लचाकेदार-वि० [हिं० लचक+फ़ा० दार (प्रत्य०)] मजेदार। बढ़िया। (बाजारू)

लचाना-क्रि० स० [हिं० लचना का स० रूप] लचकाना। झुकाना।

लचार*†-वि० दे० "लाचार"।

लचारी-संज्ञा स्त्री० दे० "लाचारी"।

संज्ञा स्त्री० [देश०] (१) वह कर जो कोई व्यक्ति अपने से बड़े को देता है। भेंट। नजर। उ०—विमल मुक्तमाल लसत उच कुचन पर मदन महादेव मनो दई है लचारी। —सूर। (२) एक प्रकार का गीत।

संज्ञा स्त्री० [हिं० अचार] एक प्रकार का आम का अचार जो खाली नमक से बनता है और जिसमें तेल नहीं पड़ता। अचारी।

लचुई†-संज्ञा स्त्री० [देश०] मैदे की बनी हुई पतली और मुला-यम पूरी। लुची। लुचुई।

लच्छ*-संज्ञा पुं० [सं० लक्ष] (१) व्याज। बहाना। मिस। (२) वह वस्तु या स्थान जिस पर लक्ष्य चलाना हो। निशाना। ताक।

संज्ञा पुं० सौ हजार की संख्या। लाख।

संज्ञा स्त्री० दे० "लक्ष्मी"। उ०—(क) चहै लच्छ बावर कवि सोई। जहँ सरस्वती लच्छ हित होई।—जायसी। (ख) मरकतमय साखा सुपुत्र मंजरिन लच्छ जेहि।—तुलसी।

लच्छण-संज्ञा पुं० [सं० लक्षण] स्वभाव। (डिं०)

*†-संज्ञा पुं० दे० "लक्षण"।

लच्छन*-संज्ञा पुं० दे० "लक्षण"। उ०—(क) नहिं दरिद्र कोउ दुखी न दीना। नहिं कोउ अबुध न लच्छन हीना।—तुलसी। (ख) बिनु छल विश्वनाथ पद नेहू। राम भक्त कर लच्छन एहू।—तुलसी। (ग) कछु देखि कै लच्छन छोटो बड़ो सम बात चलै कहि आवतु है।—रघुनाथ।

संज्ञा पुं० दे० "लक्ष्मण"।

लच्छना-संज्ञा स्त्री० दे० "लक्षणा"।

लच्छमण-वि० [सं० लक्ष्मीवान्] धनवान्। अमीर। (डिं०)

लच्छमी-संज्ञा स्त्री० दे० "लक्ष्मी"।

लच्छा-संज्ञा पुं० [अनु०] (१) कुछ विशेष प्रकार से लगाए हुए बहुत से तारों या डोरों आदि का समूह। गुच्छे या झुप्पे आदि के रूप में लगाए हुए तार। जैसे,—रेशम का लच्छा, सूत का लच्छा।

यौ०—लच्छे की साड़ी=बनारसी काम की वह साड़ी जिसके किनारे आदि के तार ताने के साथ ही तने गए हों।

(२) किसी चीज के सूत की तरह लंबे और पतले कटे हुए टुकड़े। जैसे,—प्याज का लच्छा, आदी का लच्छा। (३) इस आकार की किसी तरह बनाई हुई कोई चीज। जैसे,—रबड़ी का लच्छा। (४) मैदे की एक प्रकार की मिठाई जो प्रायः पतले लंबे सूत की तरह और देखने में उलझी हुई डोर के समान होती है। (५) एक प्रकार का गहना जो तारों की जंजीरों का बना होता है। यह हाथों में पहनने का भी होता है और पैरों में पहनने का भी। (६) एक प्रकार का घटिया केसर जो नीयल या निकृष्ट श्रेणी के केसर में थोड़ा सा बढ़िया केसर मिलाकर बनाया जाता है।

लच्छा साख-संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की संकर रागिनी।

लच्छि*-संज्ञा स्त्री० [सं० लक्ष्मी] लक्ष्मी। उ०—(क) एहि विधि उपजइ लच्छि जब सुंदरता सुख मूल।—तुलसी। (ख) बसइ नगर जेहि लच्छि करि कपट नारि वर वेष।—तुलसी। (ग) माया ब्रह्म जीव जगदीशा। लच्छि अलच्छि रंक अव-नीशा।—तुलसी।

संज्ञा पुं० [सं० लक्ष] लाख की संख्या।

लच्छित*-वि० [सं० लक्षित] (१) आलोकित। देखा हुआ।

(२) निशान किया हुआ। अंकित। चिह्नित। (३) लक्षण युक्त। लक्षणवाला। उ०—शुभ लच्छन लच्छित हय सोई। तुरँग लाल देखिय जो होई।—मधुसूदन।

लच्छिनाथ-संज्ञा पुं० [सं० लक्ष्मीनाथ] लक्ष्मीपति, विष्णु। (डिं०)

लच्छिनिवास*-संज्ञा पुं० [सं० लक्ष्मीनिवास] विष्णु। नारायण। उ०—दुलहिनि लेइगे लच्छिनिवासा। नृप समाज सब भयउ निरासा।—तुलसी।

लच्छी-वि० [देश०] एक प्रकार का घोड़ा। उ०—कोइ कबुली अँबोज कोइ कच्छी। बोत मेमना मुंजी लच्छी।—विश्राम।

संज्ञा स्त्री० दे० "लक्ष्मी"।

संज्ञा स्त्री० [हिं० लच्छा] सूत, रेशम, ऊन, कलाबत्तू इत्यादि की लपेटी हुई गुच्छी। अंटी।

लच्छेदार-वि० [हिं० लच्छा + फा० दार (प्रत्य०)] (१) (खाद्य-पदार्थ) जिसमें लच्छे पड़े हों। लच्छोंवाला। (२) (बात चीत) जिसका सिलसिला जल्दी न टूटे और जिसके सुनने में मन लगता हो। मजेदार या श्रुतिमधुर (बात)।

लछन-संज्ञा पुं० [सं० लक्ष्मण] राम के छोटे भाई, लक्ष्मण। उ०—दसरथ सों ऋषि आनि कह्यो। असुरन सों यज्ञ होन न पावत राम लछन तब संग दयो।—सूर।

संज्ञा पुं० दे० "लक्षण"।

लछना†-क्रि० अ० दे० "लखना"।

लछमन-संज्ञा पुं० दे० "लक्ष्मण"।

संज्ञा स्त्री० दे० "लक्ष्मणा" (४)।

लछमन झूला-संज्ञा पुं० [हिं० लछमन + झूला] (१) बदरीनारायण के मार्ग में एक स्थान। यहाँ पहले पुरानी चाल का रस्सों का एक लटकौवाँ पुल था, जिसे झूला कहते थे। (२) रस्सों या तारों आदि से बना हुआ वह पुल जो बीच में झूले की तरह नीचे लटकता हो। (३) एक प्रकार की लता या बेल।

लछमना-संज्ञा स्त्री० दे० "लक्ष्मणा"। उ०—बहुरि लछमना सुमिरन कीन्हो। ताहि स्वयंवर में हरि लीन्हो।—सूर।

लछमी-संज्ञा स्त्री० दे० "लक्ष्मी"।

लज*-संज्ञा स्त्री० [सं० लज्जा] शर्म। हया। लाज। उ०—सुधर सौति बस पिय सुनत दुलहिनि दुगुन हुलास। लखी सखी तन दीठि करि सगरब सलज सहास।—बिहारी।

लजना-क्रि० अ० [सं० लज्जा] लजाना। शरमाना। लज्जित होना।

लजनी†-संज्ञा स्त्री० [हिं० लजाना] लजालू का पौधा।

लजवाना-क्रि० स० [हिं० लजाना] दूसरे को लज्जित करना।

लजाधुर†-वि० [सं० लज्जाधर] जो बहुत लज्जा करे। लज्जावान्। शर्मीला।

संज्ञा पुं० लजालू नाम का पौधा।

लजाना-क्रि० अ० [सं० लज्जा] अपने किसी बुरे या भद्दे व्यवहार का ध्यान करके वृत्तियों के संकोच का अनुभव होना। लज्जित होना। शर्म में पड़ना। उ०—कंज-किसोरी हाह खरे लजाने लाल।—बिहारी।

संयो० क्रि०—जाना।

क्रि० स० लज्जित करना।

लजारू†-संज्ञा पुं० [सं० लज्जालु] लजालू पौधा। उ०—जनक छुए बिरवा लजारू के से, बीर रहे सकल सकुचि सिर नाइकै।—तुलसी।

लजालू-संज्ञा पुं० [सं० लज्जालु] हाथ डेढ़ हाथ ऊँचा एक काँटेदार छोटा पौधा जिसकी पत्तियाँ छूने से सुकड़कर बंद हो जाती हैं, और फिर थोड़ी देर में धीरे धीरे फैलती हैं।

विशेष—इसके डंठल का रंग लाल होता है और महीन महीन पत्तियाँ शमी या बबूल की पत्तियों के समान एक सींके के दोनों ओर पंक्ति में होती हैं। हाथ लगते ही दोनों ओर की पत्तियाँ संकुचित होकर परस्पर मिल जाती हैं, इसी से इस पौधे का नाम लजालू पड़ा। फूल गुलाबी रंग की छोटी गोल घुंडियों की तरह के होते हैं, जिनके झड़ जाने पर छोटे छोटे चिपटे बीज पड़ते हैं। भारत के गरम भागों में यह सर्वत्र होता है, जैसे, बंगाल के दक्षिण भाग में कहीं कहीं बहुत दूर तक रास्ते के दोनों ओर यह लगा [illegible]

वैद्यक में यह कटु, शीतल, कषाय तथा रक्तपित्त, अतीसार, दाह, श्रम, श्वास, व्रण, कुष्ठ, कफ तथा योनिरोग को दूर करनेवाला माना जाता है। कहीं कहीं पथरी की पीड़ा शांत करने के लिये तथा भगंदर अच्छा करने के लिये इसकी जड़ और डंठल का काढ़ा और पत्तियों का चूर्ण सेवन करते हैं। रासायनिक परीक्षा से पता चला है कि इस पौधे में सौ में दस भाग कषाय-धातु (टेनीन) होती है। इसके डंठल के चूर्ण को हीरा कसीस के साथ मिलाने से बड़ी अच्छी स्याही बनती है।

पर्य्या०—लज्जावती लता। वाराहक्रांता। रक्तपादी। शमीपत्रा। स्पृक्का। खदिरपत्रिका। संकोचिनी। समंगा। नमस्कारी। प्रसारिणी। सप्तपर्णी। खदिरी। गंधमालिका। लज्जा। लज्जिरी। स्पर्शलज्जा। अस्रारोधिनी। रक्तमूला। ताम्रमूला। स्वगुप्ता। महाभीता। वशिनी। महौषधि।

लजावन*†-क्रि० स० दे० "लजावना" या "लजाना"। उ०—कोटि मनोज लजावनहारे।—तुलसी।

विशेष—समस्त पद में किसी शब्द के आगे आने से इसका अर्थ होता है "लज्जित करनेवाला"। जैसे,—मनोज-लजावन।

लजियाना*†-क्रि० अ० दे० "लजाना"।

क्रि० स० दे० "लजवाना"।

लजीज़-वि० [अ०] जायकेदार। स्वादिष्ट। सुस्वादु। (खाद्य पदार्थ)

ीला-वि० [हिं० लाज+ईला (प्रत्य०)] [स्त्री० लजीली] जिसमें लज्जा हो। लज्जायुक्त। लज्जाशील। जैसे,—लजीला मनुष्य,लजीली आँखें।

ुरी‡-संज्ञा स्त्री० [सं० रज्जु, माग० लज्जु] कुएँ से पानी भरने की डोरी। रस्सी।

ोर*†-वि० [हिं० लाज+आयर(प्रत्य०)] लज्जाशील। जो बहुत जल्दी लज्जित हो। उ०—विदित न सनमुख ह्वै सकैं अँखियाँ बड़ी लजोर।—रसनिधि।

ोहा†-वि० [सं० लज्जावह] [स्त्री० लजोही] जिसमें लज्जा हो; या जिससे लज्जा सूचित होती हो। लजीला। शर्मीला। उ०—कुंजभवन राधा मनमोहन। रति विलास करि मगन भए अति निरखत नैन लजोहन।—सूर।

जौहाँ-वि० [सं० लज्जावह] [स्त्री० लजौहीं] जिसमें लज्जा हो या जिससे लज्जा सूचित होती हो। लज्जाशील। लजीला। शर्मीला। जैसे,—लजौहीं स्त्री, लजौहीं आँखें।

ज्जका-संज्ञा स्त्री० [सं०] वनकपास।

ज़्ज़त-संज्ञा स्त्री० [अ०] स्वाद। ज़ायका। मज़ा। (खाने पीने की वस्तुओं के लिये)

ज़्ज़तदार-वि० [अ० लज्जत+फ़ा० दार] स्वादिष्ट। मजेदार। जायकेदार।

ज्जरी-संज्ञा स्त्री० [सं०] लजालू लता। लज्जावंती।

ज्जा-संज्ञा स्त्री० [सं०] [वि० लज्जित] (१) अंतःकरण की वह अवस्था जिसमें स्वभावतः अथवा अपने किसी भद्दे या बुरे आचरण की भावना के कारण दूसरों के सामने वृत्तियाँ संकुचित हो जाती हैं, चेष्टा मंद पड़ जाती है, मुँह से शब्द नहीं निकलता, सिर निचा हो जाता है और सामने ताका नहीं जाता। लाज। शर्म। हया।

पर्य्या०—ह्री। त्रपा। व्रीडा। मंदाक्ष।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

मुहा०—(किसी बात की) लज्जा करना = किसी बात की बड़ाई की रक्षा का ध्यान करना। मर्य्यादा का विचार करना। इज्जत का खयाल करना। जैसे,—अपने कुल की लज्जा करो।

(२) मान-मर्य्यादा। पत। इज्ज़त। जैसे,—भगवान् लज्जा रखे।

क्रि० प्र०—रखना

लज्जाप्रद-वि० [सं०] जिससे लज्जा उत्पन्न हो। लज्जाजनक।

लज्जाप्राया-संज्ञा स्त्री० [सं०] केशव के अनुसार मुग्धा नायिका के चार भेदों में से एक

लज्जालु-संज्ञा पुं० [सं०] लजालू का पौधा। लाजवंती।

लज्जावंत-वि० [सं० लज्जावत्] शर्मीला। लज्जायुक्त। लजीला।

संज्ञा पुं० लजालू का पौधा। लाजवंती।

लज्जावती-वि० स्त्री० [सं०] लज्जाशील। शर्मीली।

संज्ञा स्त्री० लजालू का पौधा।

लज्जावान्-वि० [सं० लज्जावत्] [स्त्री० लज्जावती] लज्जाशील। जिसमें लज्जा हो। शर्मदार। हयादार।

लज्जाशील-वि० [सं०] जिसमें लज्जा हो। जो बात बात में शरमाता हो। लजीला।

लज्जाशून्य-वि० [सं०] जिसे लज्जा न हो। जिसे कोई अनुचित या भद्दी बात करते कुछ संकोच या हिचक न हो। बेहया।

लज्जाहीन-वि० [सं०] लज्जाशून्य। बेहया।

लज्जित-वि० [सं०] लज्जा के वशीभूत। शर्म में पड़ा हुआ। शर्माया हुआ।

लटंग-संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का बाँस जो बरमा में होता है।

लट-संज्ञा स्त्री० [सं० लट्वा] (१) सिर के बालों का समूह जो नीचे तक लटके। बालों का गिरा हुआ गुच्छा। केशपाश। अलक। केशलता।

मुहा०—लट छिटकाना = सिर के बालों को खोलकर इधर उधर बिखराना।

(२) एक में उलझे हुए बालों का गुच्छा। परस्पर चिमटे हुए बाल।

मुहा०—लट पड़ना = बालों का परस्पर उलझ या चिमट जाना।

(३) एक प्रकार का बेंत जो आसाम की ओर बहुत होता है। (४) एक प्रकार के सूत के से महीन कीड़े जो मनुष्य की अँतों में पड़ जाते हैं और मल के साथ निकलते हैं। चनूना।

संज्ञा स्त्री० [हिं० लपट] लपट। लौ। अग्निशिखा। ज्वाला। उ०—(क) झपटि झपटत लपट, पटकि फूल फूटत, फल चटकि लट लटकि द्रुम नवायो।—सूर। (ख) घट घट बोलहिं बाँस बहु सिखि लट लागि अकास।—गोपाल।

लटक-संज्ञा स्त्री० [हिं० लटकना] (१) लटकने की क्रिया या भाव। नीचे की ओर गिरता सा रहने का भाव। (२) झुकाव। लचक। (३) अंगों की मनोहर गति या चेष्टा। लुभावनी चाल। अंग भंगी। उ०—प्राणनाथ सों प्राणपियारी प्राण लटक सों लीन्हें।—सूर।

यौ०—लटक चाल।

(४) दाद जमीन। बाल। (पालकी के कहार)

लटकन-संज्ञा पुं० [हिं० लटकना] (१) लटकने की क्रिया या भाव। नीचे की ओर गिरता सा रहने का भाव। (२) किसी वस्तु में लगी हुई दूसरी वस्तु जो नीचे लटकती या झूलती हो। लटकनेवाली चीज़। (३) मनोहर अंग भंगी। लुभावनी चाल। लटक। उ०—चले जात धन ज्यों [illegible]

लटकनी·लस ।—सूर । (४) नाक में पहनने का एक गहना जो लटकता या झूलता रहता है । (यह या तो नाक के दोनों छेदों के बीच में पहना जाता है, अथवा नथ में लगा रहता है) । (५) कलगी या सिरपेंच में लगे हुए रत्नों का गुच्छा जो नीचे की ओर झुका हुआ हिलता रहता है । उ०—लटकन सीस, कंठ मनि भ्राजत मन्मथ कोटि वारनै गए री । —सूर । (६) मलखंभ की एक कसरत जिसमें दोनो पैरों के अँगूठों में बेंत फँसाकर पिंडली को लपेटते हैं और पिंडली के ही बल पर अँगूठों से बेंत को ऊपर खींचते हुए जंघों के बल पर का सारा धड़ नीचे को लटका देते हैं ।

संज्ञा पुं० [हिं० लटकना ?] एक पेड़ जिसमें लाल रंग के फूल लगते हैं और जिसके बीजों को पानी में पीसने से गेरुआ रंग निकलता है । इस रंग से कपड़े रँगते हैं ।

लटकना–क्रि० अ० [सं० लड़न = झूलना] (१) किसी ऊँचे स्थान से लगा या टिककर नीचे की ओर अधर में कुछ दूर तक फैला रहना । ऊपर से लेकर नीचे तक इस प्रकार गया रहना कि ऊपर का छोर किसी आधार पर टिका हो और नीचे का निराधार हो । झूलना । जैसे,—छत से फ़ानूस लटकना, पेड़ से लता लटकना, कूएँ में डोरी लटकना ।

संयो० क्रि०—आना ।

विशेष—'टँगना' और 'लटकना' इन दोनों के मूल भाव में अंतर है । 'टँगना' शब्द में किसी ऊँचे आधार पर टिकने या अड़ने का भाव प्रधान है, और 'लटकना' शब्द में ऊपर से नीचे तक फैले रहने या अधर में हिलने डोलने का । जैसे,—(क) तसवीर बहुत नीचे तक लटक आई है । (ख) कूएँ में डोरी लटक रही है । ऐसे स्थलों पर 'टँगना' शब्द का प्रयोग नहीं हो सकता ।

(२) ऊँचे आधार पर टिकी हुई वस्तु का कुछ दूर नीचे तक आकर इधर से उधर हिलना डोलना । झूलना । (३) किसी ऊँचे आधार पर इस प्रकार टिकना कि टिके या अड़े हुए छोर के अतिरिक्त और सब भाग नीचे की ओर अधर में हों । टँगना । जैसे,—वह एक पेड़ की डाल से लटक गया ।

संयो० क्रि०—जाना ।

(४) किसी खड़ी वस्तु का किसी ओर को झुकना । नत होना । जैसे,—खंभा पूरब की ओर कुछ लटका दिखाई देता है । (५) लचकना । बल खाना । उ०—लटकत चलत नंदकुमार ।—सूर ।

मुहा०—लटकनी चाल = बल खाती हुई मनोहर चाल । उ०—भृकुटी मटकनि पीत पट चटक लटकती चाल । चल चख चितवनि चोर चित लियो बिहारी लाल ।—बिहारी ।

(६) कोई काम पूरा न होने या किसी बात का निर्णय न होने के कारण दुबधा में पड़ा रहना । झूलना । जैसे, अभी तक लटक रहे हैं; कुछ फैसला नहीं हो रहा है । (७) किसी काम का बिना पूरा हुए पड़ा रहना । देर होना ।

लटकवाना–क्रि० स० [हिं० लटकाना का प्रेर०] लटकाने का काम दूसरे से कराना ।

लटकहर†–संज्ञा पुं० [देश०] तेली ।

लटका–संज्ञा पुं० [हिं० लटक] (१) गति । चाल । ढब । (२) बनावटी चेष्टा । हाव भाव । (३) बातचीत करने में स्वर का एक विशेष प्रकार से चढ़ाव उतार । बातचीत का बनावटी ढंग । जैसे,—लटके के साथ बात करना । (४) कोई शब्द या वाक्य जिसके बार बार प्रयोग का किसी को अभ्यास पड़ गया हो । सखुनतकिया । (५) मंत्र तंत्र की छोटी युक्ति । टोटका । (६) किसी रोग या बाधा की शांति की छोटी युक्ति । संक्षिप्त उपचार । छोटा नुसखा । जैसे,—यह फकीरी लटका है; इससे जरूर फायदा होगा । (७) एक प्रकार का चलता गाना । (८) लिंग । (बाजारू)

लटकाना–क्रि० स० [हिं० लटकना] (१) किसी ऊँचे स्थान में एक छोर लगा या टिकाकर शेष भाग नीचे तक इस प्रकार ले जाना कि ऊपर का छोर किसी आधार पर टिका हो और नीचे का निराधार हो । जैसे,—छत में फ़ानूस लटकाना । कूएँ में डोरी लटकाना ।

संयो० क्रि०—देना ।—लेना ।

विशेष—'टाँगना' और 'लटकाना' इन दोनों शब्दों के मूल भाव में अंतर है । 'टाँगना' शब्द में किसी ऊँचे आधार पर टिकाने या अड़ाने का भाव प्रधान है और 'लटकाना' शब्द में ऊपर से नीचे तक फैलाने या हिलाने डुलाने का । जैसे,—(क) धोती और नीचे तक लटका दो । (ख) कूएँ में डोरी लटका दो ।

(२) किसी ऊँचे आधार पर इस प्रकार टिकाना कि टिके या अड़े हुए छोर के अतिरिक्त और सब भाग अधर में हों । एक छोर या अंश ऊपर टिकाना जिसमें कोई वस्तु जमीन पर न गिरे । टाँगना । जैसे,—अँगरखा खूँटी में लटका दो । (३) किसी खड़ी वस्तु को किसी ओर झुकाना । लचकाना या नम्र करना । (४) किसी का कोई काम पूरा न करके उसे दुबधा में डालना । आसरे में रखना । इंतजार कराना । जैसे,—उसे क्यों लटकाए हो; जो कुछ देना हो, दे दो । (५) किसी काम को पूरा न करके डाल रखना । देर करना ।

लटकीला–वि० [हिं० लटक + ईला (प्रत्य०)] [स्त्री० लटकीली] झूमता हुआ । बल खाता हुआ । लचकदार । जैसे,—लटकीली चाल ।

लटकू-संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का पेड़ जिसकी छाल को उबालने से रंग निकलता है।

लटकौवा-वि० [हिं० लटकाना] लटकनेवाला। जो लटकता हो।

यौ०—लटकौवा मालखंभ = वह मालखंभ जिसकी लकड़ी गड़ी न रहकर ऊपर से लटकाई रहती है।

लटजीरा-संज्ञा पुं० [लट ?+ हिं० जीरा] (१) अपामार्ग। चिचड़ा। (२) एक प्रकार का जड़हन धान जो अगहन में तैयार होता है और जिसका चावल बहुत दिनों तक रहता है।

लटना-क्रि० अ० [सं० लट = हिलना डोलना] (१) थककर गिर जाना। लड़खड़ाना। उ०—(क) मर्कट विकट भट जुटत कटत, न लटत तन जर्जर भए।—तुलसी। (ख) लटे तन जात किते छत जात।—सूदन।

संयो० क्रि०—जाना।

(२) श्रम, रोग आदि से शिथिल होना। अशक्त होना। दुबला और कमजोर होना। जैसे,—आजकल वे बीमारी से बहुत लट गए हैं। उ०—(क) श्री रघुबीर, निवारिए पीर रहौं दरबार परो लटि लूलो।—तुलसी। (ख) तेरे मुँह फेरे मोसे कायर कपूत कूर लटे लटपटेनि को कौन परिगहैगो।—तुलसी। (ग) कटी कटीली कांति पै, लटी लटी अति जाय।—रामसहाय। (३) ढीला पड़ना। मंद पड़ना। शक्ति और उत्साह से रहित होना। उ०—देखि मीह लटे लगे, मन मन घटे लगे, पाछे पग हटे लगे क्रम क्रम नटे लगे।—गोपाल। (४) श्रम से निकम्मा हो जाना। अधिक काम करने के योग्य न रह जाना। शिथिल होना। थक जाना। उ०—रटत रटत रसना लटी तृषा सूखिगे अंग।—तुलसी। (५) व्याकुल होना। विकल होना। उ०—फटे फन फनि के औ लटे दिगदंती दीह, घटे बल कूरम विकलता को पाई है।—रघुनाथ।

क्रि० अ० [सं० लल, लट = ललचाना] (१) ललचाना। लेने के लिये लपकना। चाह करना। लुभाना। उ०—परिहरि सुरमनि सुनाम गुंजा लखि लटत।—तुलसी। (२) लिप्त होना। अनुरक्त होना। प्रेमपूर्वक तत्पर होना। लीन होना। उ०—(क) उलटि तहाँ पग धारिए जासों मन मान्यो। कपट कंज तजि बेलि सों लटि लटि प्रेम न जान्यो।—सूर। (ख) किन विमोह लटो फटो गगन मगन सियन।—तुलसी।

लटपट-वि० दे० "लटपटा"।

लटपटा-वि० [हिं० लटपटाना] [स्त्री० लटपटी] (१) गिरता पड़ता। लड़खड़ाता हुआ। सीधे ढंग से न चलता हुआ। निर्बलता या मद आदि के कारण इधर उधर झुकता हुआ। जैसे,—लटपटी चाल। उ०—भूरी पीत तनु,नैननि अंजन, चलत लटपटी चाल।—सूर। (२) जो ठीक बँधा न रहने के कारण ढीला होकर नीचे की ओर सरक आया हो। ढीला ढाला। जो चुस्त और दुरुस्त न हो। अस्त व्यस्त। बिना सँवारा हुआ। उ०—(क) लटपटी पाग उनींदे नैना डग डग डोलत डगमगात।—सूर। (ख) सूर देखि लटपटी पाग पर जावत की छवि लाल।—सूर। (३) (शब्द) जो स्पष्ट या ठीक क्रम से न निकले। टूटा फूटा। उ०—ज्यों ज्यों ललकति बैन लटपटे कहति छबीली।—व्यास। (४) जो ठीक क्रम से न हो। अव्यवस्थित। अंडबंड। अटसट। (५) थककर गिरा हुआ। हारा हुआ। अशक्त। बेबस। उ०—तेरे मुँह फेरे मोसे कायर कपूत कूर लटे लटपटेनि को कौन परिगहैगो?—तुलसी।

वि० (१) जो लेई की तरह गाढ़ा हो। जो न पानी की तरह पतला हो और न बहुत अधिक गाढ़ा। लुआबदार। जैसे,—लटपटी तरकारी। (२) गिंजा हुआ। मला दला हुआ। जो इधर उधर सुकड़ा हुआ हो, साफ या बराबर न हो। जिसमें शिकन या सिलवट पड़ी हो। (कपड़ा इत्यादि) उ०—त्रिवली पलोटन सलोट लटपटी सारी चोट चटपटी अटपटी चाल अटक्यो।—सूर।

लटपटान-संज्ञा स्त्री० [हिं० लटपटाना] (१) लटपटाने की क्रिया या भाव। लड़खड़ाहट। (२) मनोहर गति या चाल। लटक। लचक। उ०—श्री हरिदास के स्वामी स्यामा कुंजबिहारी के राग रंग लटपटानि के भेद न्यारे न्यारे जैसे पानी में पानी नरीच।—हरिदास।

लटपटाना-क्रि० अ० [सं० लड = हिलना डोलना + पत् = गिरना] (१) सीधे ढंग से न चलकर निर्बलता या मद आदि के कारण इधर उधर झुक झुक पड़ना। गिरना पड़ना। लड़खड़ाना। उ०—करत बिचार चल्यो सम्मुख गज। लटपटाइ पग धरनि धरत गज।—सूर।

संयो० क्रि०—जाना।

(२) स्थिर न रहना। जमा न रहना। डिगना। विचलित होना। (३) ठीक तरह से न चलना। च्युत होना। चूक जाना। जैसे,—पैर लटपटाना, जीभ लटपटाना।

क्रि० अ० [सं० लल, लट = लुभाना] (१) लुभाना। मोहित होना। उ०—श्री हरिदास के स्वामी स्यामा कुंजबिहारी लटपटाइ रहे मानि सबै सुख चैन।—हरिदास। (२) लीन होना। लिप्त होना। अनुरक्त होना।

लटा†-वि० [सं० लट] [स्त्री० लटी] (१) लोलुप। लंपट। (२) लुच्चा। नीच। (३) तुच्छ। हीन। (४) गिरा हुआ। पतित। (५) बुरा। खराब। उ०—जग में करो जो न कुल मानै। नीकी करी, लटी उर आनै।—लाल।

लटापटी-संज्ञा स्त्री० [हिं० लटपटाना] (१) लटपटाने की क्रिया

या भाव। (२) लड़ाई झगड़ा। मिड़ंत। उ०—लटापटी होवन लागी मोहि जुदा करि देहु।—गिरधर।

लटापोट⊕†-वि० [हिं० लोट पोट] लोट पोट। मोहित। मुग्ध। उ०—अटकि मुबारक मति गई लूटि सुलन की मोट। लटापोट ह्वै लपटिगो लटकत लट की ओट।—मुबारक।

लटिया-संज्ञा स्त्री० [हिं० लट] सूत आदि का लच्छा। लच्छी। आँटी।

मुहा०—लटिया करना = सूत को लपेट कर आँटी या लच्छे के रूप में करना।

लटिया सन-संज्ञा पुं० [हिं० लट + सन] पटसन।

लटी-संज्ञा स्त्री० [हिं० लटा = बुरा] (१) बुरी बात। (२) झूठी बात। गप।

मुहा०—लटी मारना = गप हाँकना। सीटना। झूठी बात कहना।

(३) साधुनी। भक्तिन। (४) वेश्या। रंडी।

लटुआ-संज्ञा पुं० दे० "लट्टू"। उ०—लटुआ लौं प्रभु कर गहे निगुनी गुन लपटाय। वहै गुनी कर तें छुटे निगुनीयै ह्वै जाय।—बिहारी।

लटुक-संज्ञा पुं० [सं० लकुच] लकुट नाम का पेड़ और उसका फल। वि० दे० "लकुट" या "लुकाट"।

लटुरी-संज्ञा स्त्री० दे० "लटूरी"। उ०—लटकन ललित लटुरियाँ मसि बिंदु गोरोचन।—सूर।

लटू-संज्ञा पुं० दे० "लट्टू"। उ०—(क) चारु चकई लै झुनझुना लटू कंचन की खेलि धरे लाल बाल सखन बुलाय रे।—दीनदयाल। (ख) रन करत लटू को करम रथ, होत छटूको सत्रु डर।—गोपाल।

लटूरा†-संज्ञा पुं० [हिं० लट्टू] कुप्पा।

लटूरी-संज्ञा स्त्री० [हिं० लट] सिर के बालों का लटकता हुआ गुच्छा। केश। अलक। उ०—लटकन लसत ललाट लटूरी। दमकति द्वै द्वै दँतुरियाँ रूरी।—तुलसी।

लटोरा-संज्ञा पुं० [हिं० लस = चिपचिपाहट] एक प्रकार का छोटा पेड़ जिसकी पत्तियाँ गोल गोल और फल बेर के से होते हैं। यह बसंत में पत्तियाँ झाड़ता है और भारतवर्ष में प्रायः सर्वत्र होता है। फलों में बहुत सा लसदार गूदा होता है। फल औषध के काम में आता है [illegible] को ढीला करने के लिये दिया जाता [illegible] में इसे 'सपिस्ताँ' कहते हैं, और हकीम लोग [illegible] लऊक सपिस्ताँ नामक अवलेह बनाते [illegible] के लिये देते हैं। [illegible] में भी इसे 'ल[illegible]' [illegible] संज्ञा पुं० [[illegible] [illegible] जिसकी गद [illegible] ऐसे बीजार [illegible] और दुम [illegible] इसकी संख्या [illegible] । यह [illegible] से रहता है [illegible] ही पाया

तीन से छः तक अंडे देता है। इसके कई भेद होते हैं। जैसे,—मटिया, कजला, खरखला।

लट्ट-संज्ञा पुं० [सं०] दुष्ट आदमी। दुर्जन।

लट्टपट्ट†-वि० दे० "लथपथ"। उ०—प्रेम रंग लट्टपट्ट भरी जायँ सट्टपट्ट देववृंद देखे परें मानो नट्टपट्ट हैं।—रघुराज।

लट्टू-संज्ञा पुं० [सं० लुठन = लुढ़कना] गोले बट्टे के आकार का एक खिलौना जिसे लपेटे हुए सूत के द्वारा जमीन पर फेंककर लड़के नचाते हैं।

विशेष—इसके बीच में लोहे की एक कील जड़ी होती है, जिसे गूँज कहते हैं। इसमें डोरी लपेटकर जोर से फेंकते हैं, जिससे यह बहुत देर तक चक्कर खाता हुआ घूमता रहता है।

क्रि० प्र०—नचाना।—फिराना।

मुहा०—(किसी पर) लट्टू होना = (१) मोहित होना। आसक्त होना। लुभाना। आशिक होना। उ०—(क) हम तौ रीझि लटू भई लालन महाप्रेम तिय जाति।—सूर। (ख) रही लटू ह्वै लाल हौं लखि वह बाल अनूप।—बिहारी। (ग) ब्याह ही तें भए कान्ह लट्टू तब ह्वैहै कहा जब द्वैहो गौनो ?—पद्माकर। (२) चाह में हैरान होना। प्राप्ति के लिये उत्कंठित होना। उ०—जा सुख की लालसा लटू सिव सनकादि उदासी।—तुलसी।

लट्टूदार पगड़ी-संज्ञा स्त्री० [हिं० लट्टूदार + पगड़ी] एक प्रकार की पगड़ी जिसके ऊपर एक गोला सा बना होता है और आगे छज्जा सा भी निकला होता है। इसे छज्जेदार पगड़ी भी कहते हैं।

लट्ठ-संज्ञा पुं० [सं० यष्टि = प्रा० लट्ठि] बड़ी लाठी। मोटा लंबा डंडा।

क्रि० प्र०—चलाना।—मारना।

यौ०—लट्ठबाज़। लट्ठमार।

मुहा०—किसी व्यक्ति या वस्तु के पीछे लट्ठ लिए फिरना = किसी का बराबर विरोध करना। किसी वस्तु के प्रतिकूल आचरण करना। जैसे,—तुम तो भाग्य के पीछे लट्ठ लिए फिरते हो।

लट्ठबाज़-वि० [हिं० लट्ठ + फ़ा० बाज़] (१) लाठी लड़नेवाला। (२) बड़ी लाठी बाँधनेवाला।

[illegible] स्त्री० [हिं० लट्ठबाज़ + ई (प्रत्य०)] लाठी की लड़ाई। [illegible] पीट।

[illegible] [हिं० लट्ठ + मारना] (१) लट्ठ मारनेवाला। (२) [illegible] और कठोर। कर्कश। कड़वा। [illegible] होती है।

[illegible] कड़ा। कर्कश।

[illegible] का बहुत लंबा टुकड़ा। [illegible] छाजन या पाटन में लगा [illegible] कड़ी। (२) कपड़े का

खंभा। जैसे,—तालाब का लट्ठा, सरहद का लट्ठा। (४) खेत या जमीन नापने का बाँस या बल्ला जो ५½ गज का होता है और नाप के रूप में चलता है। (५) एक प्रकार का गाढ़ा मोटा कपड़ा। गफ मारकीन।

लट्ठाबंदी-संज्ञा स्त्री० [हिं० लट्ठा + फ़ा० बंदी] जमीन की साधारण नाप जो लट्ठे से की जाय।

लट्व-संज्ञा पुं० [सं०] (१) घोड़ा। (२) एक प्रकार का राग।

लट्वा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) एक प्रकार का करंज। (२) एक प्रकार का बाजा। (३) गौरा पक्षी। (४) कुसुंभ। (५) चित्र बनाने की कूँची। क़लम। तूलिका। (६) व्यभिचारिणी स्त्री। (७) बालों की लट। अलक।

लठ-संज्ञा पुं० दे० "लट्ठ"।

लठियल †-वि० [हिं० लाठी + इयल (प्रत्य०)] लाठी बाँधने या चलानेवाला। लठैत।

लठिया ‡-संज्ञा स्त्री० [हिं० लाठी] लाठी। लकड़ी। डंडा।

लठैत-संज्ञा पुं० [हिं० लठ + ऐत (प्रत्य०)] लाठी चलानेवाला। लाठी की लड़ाई लड़नेवाला। लठबाज़।

लड़ंत-संज्ञा स्त्री० [हिं० लड़ना] (१) लड़ाई। भिड़ंत। (२) सामना। मुकाबला।

लड़-संज्ञा स्त्री० [सं० यष्टि, प्रा० लट्ठि, हिं० लड़ी] (१) सीध में गुथी हुई या एक दूसरी से लगी हुई एक ही प्रकार की वस्तुओं की पंक्ति। माला। जैसे,—मोतियों की लड़। (२) रस्सी का एक तार (जैसे कई एक साथ मिलाकर बटे जायँ) पाम। पान। (३) पंक्ति। पाँत। क़तार। सिलसिला। श्रेणी।

मुहा०—(किसी के साथ) लड़ मिलाना = मेल करना। मित्रता करना। (किसी की) लड़ में रहना = दल या पक्ष में रहना। अनुयायियों में रहना।

(४) पंक्ति में लगे हुए फूलों या मंजरियों का छड़ी के आकार का गुच्छा।

लड़इता†-वि० दे० "लड़ैता"।

लड़कई†-संज्ञा स्त्री० [हिं० लड़का + ई] (१) लड़कपन। बचपन। बाल्यावस्था। (२) अज्ञता। नादानी। (३) चपलता। चंचलता। खिलखिलापन।

लड़कखेल-संज्ञा पुं० [हिं० लड़का + खेल] (१) बालकों का खेल। (२) सहज काम। साधारण बात।

लड़कखेलवा†-संज्ञा पुं० [हिं० लड़का + खेल] (१) बालकों का खेलवाड़। (२) सहज काम।

लड़कपन-संज्ञा पुं० [हिं० लड़का + पन] (१) वह अवस्था जिसमें मनुष्य बालक हो। बाल्यावस्था। जैसे,—लड़कपन में मैं वहाँ प्रायः आया करता था। (२) लड़कों का सा खिलबिलापन। चपलता। चंचलता। जैसे,—हर दम लड़कपन मत किया करो।

क्रि० प्र०—करना।

लड़कबुद्धि-संज्ञा स्त्री० [हिं० लड़का + बुद्धि] बालकों की सी समझ। अपरिपक्व बुद्धि। अज्ञता। नासमझी।

लड़का-संज्ञा पुं० [सं० लट = लड़कों का सा आचरण करना। अथवा लाड़ = दुलार] [स्त्री० लड़की] (१) थोड़ी अवस्था का मनुष्य। वह जिसकी उम्र कम हो। बालक। (२) पुत्र। बेटा।

यौ०—लड़का वाला।

मुहा०—लड़कों का खेल = (१) बिना महत्व की बात। (२) सहज बात या काम। ऐसा काम जिसका करना बहुत सहज हो। जैसे,—यह काम करना लड़कों का खेल नहीं है। राह बाट का लड़का = ऐसा लड़का जिसे किसी ने रास्ते में पड़ा पाया हो, और जिसके माता पिता का पता न हो। लड़की लड़का = संतान। औलाद।

लड़काई †-संज्ञा स्त्री० दे० "लड़कई"।

लड़का वाला-संज्ञा पुं० [हिं० लड़का + सं० बाल] (१) संतति। संतान। औलाद। बाल बच्चा। जैसे,—उन्हें कोई लड़का वाला नहीं है। (२) पुत्र कलत्र आदि। परिवार। कुटुंब। कुनबा। जैसे,—(क) परदेस में लड़के वालों की खबर न मिलने से जी घबराता है। (ख) वह अपने लड़के वालों की खबर नहीं लेता।

लड़किनी ‡-संज्ञा स्त्री० दे० "लड़की"।

लड़की-संज्ञा स्त्री० [हिं० लड़का] (१) छोटी अवस्था की स्त्री। बालिका। (२) कन्या। पुत्री। बेटी।

लड़कीवाला-संज्ञा पुं० [हिं० लड़की + वाला (प्रत्य०)] विवाह संबंध में कन्या का पिता या और कोई संरक्षक। जैसे,—लड़कीवाले को सदा दबकर रहना पड़ता है।

लड़कौरी-वि० स्त्री० [हिं० लड़का + औरी (प्रत्य०)] (स्त्री) जिसकी गोद में लड़का हो। जिसके पास पालने पोसने के योग्य अपना बच्चा हो। जैसे,—लड़कौरी स्त्री को तो बच्चे से ही छुट्टी नहीं मिलती।

लड़खड़ाना-क्रि० अ० [सं० लड़ = डोलना + खड़ा] (१) न जमने या न ठहरने के कारण इधर उधर हिल डोल जाना। पूर्ण रूप से स्थित न रहने के कारण खड़ा न रह सकना, इधर उधर झुक पड़ना। झोंका खाना। डगमगाना। डिगना। जैसे,—पैर लड़खड़ाना, आदमी का लड़खड़ा कर गिरना। उ०—(क) धनि जसुमति बड़भागिनी लिए स्याम खेलावैं। तनक तनक भुज पकरि कै ठाढ़ो होन सिखावैं। लरखरात गिरि परत है, चलि घुटुरुनि धावैं। —सूर। (ख) दिगगयंद लरखरत, परत दसकंठ मुक्ख

भट।—तुलसी। (ग) रघुनाथ दौरत में दामिनी सी लसति है, गिरति है, फेरि उठि दौरति है लरखराति।—रघुनाथ।

संयो० क्रि०—जाना।

(२) डगमगाकर गिरना। झोंका खाकर नीचे आ जाना। उ०—गंजेउ सो गरजेउ घोर धुनि सुनि भूमि भूधर लरखरे।—तुलसी। (३) ठीक तौर से न चलना। अपनी क्रिया में ठीक न रहना। विचलित होना। च्युत होना। चूकना। जैसे,—कोई चीज उठाने में उसका हाथ लड़खड़ाता है।

मुहा०—जीभ लड़खड़ाना=(१) ठीक ठीक या पूरे शब्द और वाक्य मुँह से न निकलना। मुँह से स्पष्ट शब्द न निकलना। टूटे फूटे शब्द या वाक्य निकलना। (२) मुँह से रुक रुककर शब्द निकलना।

लड़खड़ी—संज्ञा स्त्री० [हिं० लड़खड़ाना] लड़खड़ाने की क्रिया या भाव। डगमगाहट।

लड़ना—क्रि० अ० [सं० रणन] (१) आघात करनेवाले शत्रु पर आघात करने का व्यापार करना। आघात प्रतिघात करना। एक दूसरे पर वार करना। एक दूसरे को चोट पहुँचाना। युद्ध करना। भिड़ना।

संयो० क्रि०—जाना।—पड़ना।

यौ०—लड़ना भिड़ना।

(२) एक दूसरे को गिराने का प्रयत्न करना। कुश्ती करना। मल्ल युद्ध करना। जैसे,—पहलवानों का अखाड़े में लड़ना। (३) एक दूसरे को कठोर शब्द कहना। वाग्युद्ध करना। झगड़ा करना। कलह करना। हुज्जत करना। तकरार करना। जैसे,—इसी बात पर दोनों घंटों से लड़ रहे हैं। (४) वाद्विवाद करना। बहस करना। (५) दो वस्तुओं का वेग के साथ एक दूसरे से जा लगना। टक्कर खाना। टकराना। भिड़ना। जैसे,—रेलगाड़ियों का लड़ना, नावों का लड़ना। (६) विरोधी या प्रतिपक्षी के हानि पहुँचानेवाले प्रयत्न को निष्फल करने और उसे विफल करने का उद्योग करना। व्यवहार आदि में सफलता के लिये एक दूसरे के विरुद्ध प्रयत्न करना। जैसे,—मुकदमा लड़ना। (७) पूर्ण रूप से घटित होना। एक बात का दूसरी बात के अनुरूप पड़ना। लक्ष्य के अनुकूल होना। मेल मिल जाना। उपयुक्त उतरना। ठीक बैठना। जैसे,—बात ही तो है, लड़ गई।

मुहा०—हिसाब लड़ना=(१) लेखा ठीक उतरना। (२) किसी बात का सुभीता होना।

(८) अनुकूल पड़ना। ठीक होना। मुआफ़िक़ उतरना। जैसे,—युक्ति लड़ना, किस्मत लड़ना। (९) बिच्छू, भिड़ आदि का डंक मारना। जैसे,—भिड़ लड़ गई। (पश्चिम)

(१०) किसी स्थान पर पड़ना। किसी वस्तु से संयुक्त होना। लक्ष्य पर पहुँचना। भिड़ना। जैसे,—आँख लड़ना। निशाना लड़ना।

लड़बड़ाना—क्रि० अ० दे० "लड़खड़ाना"।

लड़बावरा—वि० [सं० लड़=लड़कों का सा+बावला] [स्त्री० लड़बावरी] (१) जो लड़कपन लिए हो। जो चतुर और गंभीर न हो। भोला भाला और उजड्ड। अल्हड़। मूर्ख। नासमझ। अहमक़। उ०—(क) सखियाँ लड़बावरी हैं तिनकी मति में अति बौरनि ह्वौ।—देवीप्रसाद। (ख) सूर कहै न सुनै, लड़बावरी। चंदहि चोर कहू न भलोई।—सूर (२) गँवार। अनाड़ी। उ०—री लड़बावरी! अहीरि ऐसी चूकौं तोहि नाहिं सो सनेह कीजै, ता सों न कीजिए।—केशव। (३) मूर्खता से भरा हुआ। जिससे मूर्खता प्रकट हो। उ०—रावरी जो लड़बावरी बात है ये सुनि राखियो, मैं न सहूँगी।—रघुनाथ।

लड़बौरा—वि० दे० "लड़बावरा" उ०—सुन री राधा अति लड़बौरी जमुन गई तब संग कौन ही।—सूर।

लड़ाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० लड़ना+आई (प्रत्य०)] (१) आघात करनेवाले शत्रु पर आघात करने की क्रिया। आघात प्रतिघात। एक दूसरे पर वार। एक दूसरे को चोट पहुँचाने की क्रिया या भाव। भिड़ंत। युद्ध।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

यौ०—लड़ाई भिड़ाई।

(२) सेनाओं का परस्पर आघात प्रतिघात। संग्राम। जंग। युद्ध। जैसे,—दोनों राज्यों के बीच लड़ाई हो रही है।

क्रि० प्र०—करना।—छिड़ना।—ठनना।—मचना।—होना।

मुहा०—लड़ाई का मैदान=रणक्षेत्र। लड़ाई पर जाना=योद्धा या सैनिक के रूप में रणक्षेत्र में जाना।

(३) एक दूसरे को पटकने का प्रयत्न। मल्लयुद्ध। कुश्ती। (४) परस्पर कठोर शब्दों का व्यवहार। वाग्युद्ध। झगड़ा। कलह। तकरार। हुज्जत। कहा सुनी।

यौ०—लड़ाई झगड़ा।

(५) वाद्विवाद। बहस। (६) दो वस्तुओं का वेग के साथ एक दूसरी से जा लगना। टक्कर। (७) विरोधी या प्रतिपक्षी के व्यवहार से अपनी रक्षा करने और उसे विफल करने का परस्पर प्रयत्न। व्यवहार या मामले में सफलता के लिये एक दूसरे के विरुद्ध प्रयत्न या चाल। जैसे,—जमीन के लिये अदालत में लड़ाई। (८) अनबन। विरोध। बैर। बिगाड़। दुश्मनी। जैसे,—उन दोनों में आजकल लड़ाई है।

लड़ाका—वि० [हिं० लड़ना+आका (प्रत्य०)] [स्त्री० लड़ाकी] (१)

लड़नेवाला। योद्धा। सिपाही। (२) बात बात में लड़ जानेवाला। बहुत झगड़ा करनेवाला। झगड़ालू। फ़सादी।

लड़ाकू-वि० [हिं० लड़ना] (१) युद्ध में व्यवहृत होनेवाला। लड़ाई में काम आनेवाला। जैसे,—लड़ाकू जहाज। (२) दे० "लड़ाका"।

लड़ाना-क्रि० स० [हिं० लड़ना का प्रेर०] (१) लड़ने का काम दूसरे से कराना। लड़ने में प्रवृत्त करना। जैसे,—उन दोनों को तुम्हीं लड़ा रहे हो। (२) झगड़े में प्रवृत्त करना। कलह के लिये उद्यत करना। (३) एक वस्तु को दूसरी से वेग या झटके के साथ मिला देना। टक्कर खिलाना। भिड़ाना। (४) लक्ष्य पर पहुँचाना। किसी स्थान पर फेंकना या डालना। जैसे,—निशाना लड़ाना, आँख लड़ाना। (५) परस्पर उलझाना। जैसे,—पतंग लड़ाना, डोरा लड़ाना। (६) सफलता के लिये व्यवहार में लाना। सिद्धि के लिये संचालित करना। जैसे,—युक्ति लड़ाना, बुद्धि लड़ाना।

क्रि० स० [हिं० लाड़ = प्यार] लाड़ प्यार करना। दुलार करना। प्रेम से पुचकारना। उ०—नव नव लाड़ लड़ाई लाड़ली नाहीं नाहीं यहाँ मज जायरो।—हरिदास।

लड़ावता†-वि० दे० "लड़ैता"। उ०—नंदरू यशोदा के लड़ाइते कुँवर हिय हरे ग्वार गोरिन के खोरिन घने रहैं।—देव।

लड़ी-संज्ञा स्त्री० [सं० यष्टि, प्रा० लट्ठि] (१) सीध में गुथी हुई या एक दूसरी से लगी हुई एक ही प्रकार की वस्तुओं की पंक्ति। माला। जैसे,—मोतियों की लड़ी। (२) रस्सी या गुच्छे का तार (जैसे, कई एक साथ मिलाकर बटे या गुछे जायँ)। (३) पंक्ति। कतार। सिलसिला। श्रेणी। जैसे,—यहाँ से वहाँ तक टीलों की एक लड़ी चली गई है। (४) पंक्ति में लगे हुए फूलों या मंजरियों का छड़ी के आकार का गुच्छा।

लड़ुआ, लड़ुवा-संज्ञा पुं० [सं० लड्डुक] मोदक। लड्डू।

लड़ैता-वि० [हिं० लाड़ = प्यार + ऐता (प्रत्य०)] [स्त्री० लड़ैती] (१) जिसका बहुत लाड़ प्यार हो। जिस पर बहुत प्रेम किया जाय। लाडला। दुलारा। जैसे,—लड़ैते लड़के बिगड़ जाते हैं। (२) जो लाड़ प्यार के कारण बहुत इतराया हो। जिसका स्वभाव किसी के बहुत प्रेम दिखाने के कारण बिगड़ गया हो। धृष्ट। शोख़। (३) प्यारा। प्रिय। उ०—जितही जित दरस करैं लड़ैती तितही आपुन आवै।—सूर।

वि० [हिं० लड़ना] लड़नेवाला। योद्धा। वीर। उ०—कहा लड़ैते दृग करे परे लाल बेहाल।—बिहारी।

लड्डू-संज्ञा पुं० [सं० लड्डुक] गोल बँधी हुई मिठाई। मोदक।

विशेष—लड्डू कई प्रकार के और कई चीज़ों के बनते हैं। जैसे,—बेसन के लड्डू, खोए के लड्डू, बेसन की बुँदिया के लड्डू जो बाबर के लड्डू और मोतीचूर कहलाते हैं।

मुहा०—लड्डू खिलाना = उत्सव मनाना। दावत करना। लड्डू मिलना = कोई अच्छा लाभ होना। जैसे,—वहाँ जाने से क्या लड्डू मिल गया ? लड्डू बँटना = लाभ या प्राप्ति होना। जैसे,—वहाँ क्या लड्डू बँटता है ? ठग के लड्डू खाना = पागल होना। नासमझी करना। होश हवास में न रहना। (पहले ठग लोग मुसाफ़िरों को धोखे से मादक वस्तु या विष मिला लड्डू खिला देते थे; और जब वे बेहोश हो जाते थे, तब उनका माल लूट लेते थे।) मन के लड्डू खाना या फोड़ना = व्यर्थ किसी बड़े लाभ की कल्पना करना जिसका होना बहुत कठिन हो।

लड्यानाॐ†-क्रि० स० [हिं० लाड़ = प्यार] लाड़ प्यार करना। दुलार करना। उ०—(क) मृगछौना सो क्यों पग तेरे तजे जाहिं पूत लौं लाड़ लड्यानति है।—लक्ष्मण। (ख) कहते हैं कि भर्त्ता की लड़याई हुई उस चेरी ने उसके प्रतिज्ञा किए हुए दो वरदान उगले।—लक्ष्मण।

लढ़ंत-संज्ञा पुं० [सं० लुंठन = लुढ़कना] कुश्ती का एक पेच जो मुरग़ों या ख़रगोशों की लड़ाई का अनुकरण है।

लढ़ा†-संज्ञा पुं० [हिं० लुढ़ना] बैलगाड़ी।

लढ़िया†-संज्ञा स्त्री० [हिं० लुढ़ना, लुढ़कना] बैलगाड़ी।

लत-संज्ञा स्त्री० [सं० रति = अनुरक्ति, लगन] किसी बुरी बात का अभ्यास और प्रवृत्ति। बुरी आदत। दुर्व्यसन। बुरी टेव।

क्रि० प्र०—पड़ना।—लगना।

लतख़ोर-वि० दे० "लतख़ोरा"।

लतख़ोरा-वि० [हिं० लात + फ़ा० ख़ोर = खानेवाला] [स्त्री० लतख़ोरिन] (१) सदा लात खानेवाला। सदा ऐसा काम करनेवाला जिसके कारण मार खानी पड़े या भला बुरा सुनना पड़े। (२) नीच। कमीना। (३) दास। किंकर। गुलाम। (४) देहली। दहलीज़। चौखट। (५) दरवाज़े पर पड़ा हुआ पैर पोंछने का कपड़ा। पायंदाज़। गुलमगर्दा।

लतड़ी-संज्ञा स्त्री० [देश०] केसारी नाम का अन्न।

संज्ञा स्त्री० [हिं० लात = पैर] एक प्रकार की जूती जिसमें केवल तला ही होता है।

लतपत-वि० दे० "लथपथ"।

लतमर्दन-संज्ञा स्त्री० [हिं० लत + सं० मर्दन] (१) लातों से दबाने की क्रिया। पैरों से रौंदने की क्रिया। (२) लातों की मार। पदाघात।

लतर-संज्ञा स्त्री० [सं० लता] बेल। वल्ली।

लतरा-संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का मोटा अन्न जिसे 'खेसारी' और 'रेवड़' भी कहते हैं। इसकी फलियों की तरकारी भी बनाई जाती है।

लतरी-संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की घास या पौधा जो

भट।—तुलसी। (ग) रघुनाथ दौरत में दामिनी सी लसति है, गिरति है, फेरि उठि दौरति है लरखराति।—रघुनाथ।

संयो० क्रि०—जाना।

(२) डगमगाकर गिरना। झोंका खाकर नीचे आ जाना। उ०—गजेउ सो गरजेउ घोर धुनि सुनि भूमि भूधर लरखरे।—तुलसी। (३) ठीक तौर से न चलना। अपनी क्रिया में ठीक न रहना। विचलित होना। च्युत होना। चूकना। जैसे,—कोई चीज उठाने में उसका हाथ लड़खड़ाता है।

मुहा०—जीभ लड़खड़ाना=(१) ठीक ठीक या पूरे शब्द और वाक्य मुँह से न निकलना। मुँह से स्पष्ट शब्द न निकलना। टूटे फूटे शब्द या वाक्य निकलना। (२) मुँह से रुक रुककर शब्द निकलना।

लड़खड़ी—संज्ञा स्त्री० [हिं० लड़खड़ाना] लड़खड़ाने की क्रिया या भाव। डगमगाहट।

लड़ना—क्रि० अ० [सं० रणन] (१) आघात करनेवाले शत्रु पर आघात करने का व्यापार करना। आघात प्रतिघात करना। एक दूसरे पर वार करना। एक दूसरे को चोट पहुँचाना। युद्ध करना। भिड़ना।

संयो० क्रि०—जाना।—पड़ना।

यौ०—लड़ना भिड़ना।

(२) एक दूसरे को गिराने का प्रयत्न करना। कुश्ती करना। मल्ल युद्ध करना। जैसे,—पहलवानों का अखाड़े में लड़ना। (३) एक दूसरे को कठोर शब्द कहना। वाग्युद्ध करना। झगड़ा करना। कलह करना। हुज्जत करना। तकरार करना। जैसे,—इसी बात पर दोनों घंटों से लड़ रहे हैं। (४) वादविवाद करना। बहस करना। (५) दो वस्तुओं का वेग के साथ एक दूसरे से जा लगना। टक्कर खाना। टकराना। भिड़ना। जैसे,—रेलगाड़ियों का लड़ना, नावों का लड़ना। (६) विरोधी या प्रतिपक्षी के हानि पहुँचानेवाले प्रयत्न को निष्फल करने और उसे विफल करने का उद्योग करना। व्यवहार आदि में सफलता के लिये एक दूसरे के विरुद्ध प्रयत्न करना। जैसे,—मुकदमा लड़ना। (७) पूर्ण रूप से घटित होना। एक बात का दूसरी बात के अनुकूल पड़ना। लक्ष्य के अनुकूल होना। मेल मिल जाना। उपयुक्त उतरना। सटीक बैठना। जैसे,—बात ही तो है, लड़ गई।

मुहा०—हिसाब लड़ना=(१) लेखा ठीक उतरना। (२) किसी बात का सुभीता होना।

(८) अनुकूल पड़ना। ठीक होना। मुवाफ़िक उतरना। जैसे,—युक्ति लड़ना, किस्मत लड़ना। (९) बिच्छू, भिड़ आदि का डंक मारना। जैसे,—भिड़ लड़ गई। (पश्चिम) (१०) किसी स्थान पर पड़ना। किसी वस्तु से संयुक्त होना। लक्ष्य पर पहुँचना। भिड़ना। जैसे,—आँख लड़ना। निशाना लड़ना।

लड़घड़ाना—क्रि० अ० दे० "लड़खड़ाना"।

लड़बावर—वि० [सं० लड़=लड़कों का सा+बावरा] [स्त्री० लड़बावरी] (१) जो लड़कपन लिए हो। जो चतुर और गंभीर न हो। भोला भाला और उजड्ड। अल्हड़। मूर्ख। नासमझ। अहमक़। उ०—(क) सखियाँ लड़बावरी रावरी हैं तिनकी मति में अति दौरति हौं।—बेनीप्रवीन। (ख) सूर कहै न सुनै, लड़बावरी! चंदहि दोष कछु न भलोई।—सूर (२)। गँवार। अनाड़ी। उ०—री लड़बावरी! अहीरि ऐसी बूझी तोहि नाहिं सो सनेह कीजै, जा सों न कीजिए।—केशव। (३) मूर्खता से भरा हुआ। जिससे मूर्खता प्रकट हो। उ०—रावरी जो लड़बावरी बात है सो सुनि राखियो, मैं न सहूँगी।—रघुनाथ।

लड़बौरा—वि० दे० "लड़बावरा" उ०—सुन री राधा अति लड़बौरी जमुन गई तब संग कौन ही।—सूर।

लड़ाई—संज्ञा स्त्री० [हिं० लड़ना+आई (प्रत्य०)] (१) आघात करनेवाले शत्रु पर आघात करने की क्रिया। आघात प्रतिघात। एक दूसरे पर वार। एक दूसरे को चोट पहुँचाने की क्रिया या भाव। भिड़ंत। युद्ध।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

यौ०—लड़ाई भिड़ाई।

(२) सेनाओं का परस्पर आघात प्रतिघात। संग्राम। जंग। युद्ध। जैसे,—दोनों राज्यों के बीच लड़ाई हो रही है।

क्रि० प्र०—करना।—छिड़ना।—ठनना।—मचना।—होना।

मुहा०—लड़ाई का मैदान=रणक्षेत्र। लड़ाई पर जाना=योद्धा या सैनिक के रूप में रणक्षेत्र में जाना।

(३) एक दूसरे को पटकने का प्रयत्न। मल्लयुद्ध। कुश्ती। (४) परस्पर कठोर शब्दों का व्यवहार। वाग्युद्ध। झगड़ा। कलह। तकरार। हुज्जत। कहा सुनी।

यौ०—लड़ाई झगड़ा।

(५) वादविवाद। बहस। (६) दो वस्तुओं का वेग के साथ एक दूसरी से जा लगना। टक्कर। (७) विरोधी या प्रतिपक्षी के व्यवहार से अपनी रक्षा करने और उसे विफल करने का परस्पर प्रयत्न। व्यवहार या मामले में सफलता के लिये एक दूसरे के विरुद्ध प्रयत्न या चाल। जैसे,—जायदाद के लिये अदालत में लड़ाई। (८) अनबन। विरोध। बैर। बिगाड़। दुश्मनी। जैसे,—उन दोनों में आजकल लड़ाई है।

लड़ाका—वि० [हिं० लड़ना+आका (प्रत्य०)] [स्त्री० लड़ाकी] (

लड़नेवाला। योद्धा। सिपाही। (२) बात बात में लड़ जानेवाला। बहुत झगड़ा करनेवाला। झगड़ालू। फ़सादी।

लड़ाकू-वि० [हिं० लड़ना] (१) युद्ध में व्यवहृत होनेवाला। लड़ाई में काम आनेवाला। जैसे,—लड़ाकू जहाज। (२) दे० "लड़ाका"।

लड़ाना-क्रि० स० [हिं० लड़ना का प्रे०] (१) लड़ने का काम दूसरे से कराना। लड़ने में प्रवृत्त करना। जैसे,—उन दोनों को तुम्हीं लड़ा रहे हो। (२) झगड़े में प्रवृत्त करना। कलह के लिये उद्यत करना। (३) एक वस्तु को दूसरी से वेग या झटके के साथ मिला देना। टक्कर खिलाना। भिड़ाना। (४) लक्ष्य पर पहुँचाना। किसी स्थान पर फेंकना या डालना। जैसे,—निशाना लड़ाना, आँख लड़ाना। (५) परस्पर उलझाना। जैसे,—पतंग लड़ाना, डोरा लड़ाना। (६) सफलता के लिये व्यवहार में लाना। सिद्धि के लिये संचालित करना। जैसे,—युक्ति लड़ाना, बुद्धि लड़ाना।

क्रि० स० [हिं० लाड़ = प्यार] लाड़ प्यार करना। दुलार करना। प्रेम से पुचकारना। उ०—नव नव लाड़ लड़ाई लाड़ली नाहीं नाहीं यहाँ ब्रज आवरों।—हरिदास।

लड़ावता†-वि० दे० "लड़ैता"। उ०—नंदरु यशोदा के लड़ाइते कुँवर हिय हरे प्यार गोरिन के खोरिन घरो रहैं।—देव।

लड़ी-संज्ञा स्त्री० [सं० यष्टि, प्रा० लट्ठि] (१) सीध में गुछी हुई या एक दूसरी से लगी हुई एक ही प्रकार की वस्तुओं की पंक्ति। माला। जैसे,—मोतियों की लड़ी। (२) रस्सी या गुच्छे का तार (जैसे, कई एक साथ मिलाकर बटे या गुछे जायँ)। (३) पंक्ति। कतार। सिलसिला। श्रेणी। जैसे,—यहाँ से वहाँ तक टीलों की एक लड़ी चली गई है। (४) पंक्ति में लगे हुए फूलों या मंजरियों का छड़ी के आकार का गुच्छा।

लड़ुआ, लड़ुवा-संज्ञा पुं० [सं० लड्डुक] मोदक। लड्डू।

लड़ैता-वि० [हिं० लाड़ = प्यार + ऐता (प्रत्य०)] [स्त्री० लड़ैती] (१) जिसका बहुत लाड़ प्यार हो। जिस पर बहुत प्रेम किया जाय। लाडला। दुलारा। जैसे,—लड़ैते लड़के बिगड़ जाते हैं। (२) जो लाड़ प्यार के कारण बहुत इतराया हो। जिसका स्वभाव किसी के बहुत प्रेम दिखाने के कारण बिगड़ गया हो। धृष्ट। शोख़। (३) प्यारा। प्रिय। उ०—जितही जित रस करै लड़ैती तितही आपुन भावै।—सूर।

वि० [हिं० लड़ना] लड़नेवाला। योद्धा। वीर। उ०—परा लरैते रन करे परे लाल बेहाल।—बिहारी।

लड्डू-संज्ञा पुं० [सं० लड्डुक] गोल बँधी हुई मिठाई। मोदक।

विशेष—लड्डू कई प्रकार के और कई चीजों के बनते हैं। जैसे,—बेसन के लड्डू, खोए के लड्डू, बेसन की बुँदिया के लड्डू जो बावर के लड्डू और मोतीचूर कहलाते हैं।

मुहा०—लड्डू खिलाना = उत्सव मनाना। दावत करना। लड्डू मिलना = कोई अच्छा लाभ होना। जैसे,—वहाँ जाने से क्या लड्डू मिल गया ? लड्डू बँटना = लाभ या प्राप्ति होना। जैसे,—वहाँ क्या लड्डू बँटता है ? ठग के लड्डू खाना = पागल होना। नासमझी करना। होश हवास में न रहना। (पहले ठग लोग मुसाफिरों को धोखे से मादक वस्तु या विष मिला लड्डू खिला देते थे; और जब वे बेहोश हो जाते थे, तब उनका माल लूट लेते थे।) मन के लड्डू खाना या फोड़ना = व्यर्थ किसी बड़े लाभ की कल्पना करना जिसका होना बहुत कठिन हो।

लड्याना‡†-क्रि० स० [हिं० लाड़ = प्यार] लाड़ प्यार करना। दुलार करना। उ०—(क) मृगछौना सो क्यों पग तेरे तजे जाहिं पूत लौं लाड़ लड्यावति है।—लक्ष्मण। (ख) कहते हैं कि भर्ता की लड्याई हुई उस रंडी ने उसके प्रतिज्ञा किए हुए दो वरदान उगले।—लक्ष्मण।

लढ़ंत-संज्ञा पुं० [सं० लुंठन = लुढ़कना] कुश्ती का एक पेच जो मुरगों या खरगोशों की लड़ाई का अनुकरण है।

लढ़ा†-संज्ञा पुं० [हिं० लुढ़ना] बैलगाड़ी।

लढ़िया†-संज्ञा स्त्री० [हिं० लुढ़ना, लुढ़कना] बैलगाड़ी।

लत-संज्ञा स्त्री० [सं० रति = अनुरक्ति, लगना] किसी बुरी बात का अभ्यास और प्रवृत्ति। बुरी आदत। दुर्व्यसन। बुरी टेव।

क्रि० प्र०—पड़ना।—लगना।

लतखोर-वि० दे० "लतखोरा"।

लतखोरा-वि० [हिं० लात + फा० खोर = खानेवाला] [स्त्री० लतखोरिन] (१) सदा लात खानेवाला। सदा ऐसा काम करनेवाला जिसके कारण मार खानी पड़े या भला बुरा सुनना पड़े। (२) नीच। कमीना। (३) दास। चाकर। गुलाम। (४) देहली। दहलीज। चौखट। (५) दरवाज़े पर पड़ा हुआ पैर पोंछने का कपड़ा। पायंदाज़। गुलमगर्दां।

लतड़ी-संज्ञा स्त्री० [देश०] केसारी नाम का अन्न।

संज्ञा स्त्री० [हिं० लात = पैर] एक प्रकार की जूती जिसमें केवल तला ही होता है।

लतपत-वि० दे० "लथपथ"।

लतमर्दन-संज्ञा स्त्री० [हिं० लात + सं० मर्दन] (१) लातों से दबाने की क्रिया। पैरों से रौंदने की क्रिया। (२) लातों की मार। पदाघात।

लतर-संज्ञा स्त्री० [सं० लता] बेल। वल्ली।

लतरा-संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का मोटा अन्न जिसे 'खेसारी' और 'रँवठ' भी कहते हैं। इसकी फलियों की तरकारी भी बनाई जाती है।

लतरी-संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की घास या पौधा जो

खेतों में मटर के साथ बोया जाता है और जिसमें चिपटी चिपटी फलियाँ लगती हैं। इसके दानों से दाल निकलती है जिसे गरीब लोग खाते हैं। यह बहुत मोटा अन्न माना जाता है। इसे 'मोट' और 'खेसारी' भी कहते हैं।

संज्ञा स्त्री० [हिं० लात] एक प्रकार की हलकी जूती जो केवल तले के रूप में होती है और अँगूठे को फँसाकर पहनी जाती है।

लतहा†-वि० [हिं० लात + हा (प्रत्य०)] [स्त्री० लतही] लात मारनेवाला (बैल या घोड़ा)। जैसे,—लतही घोड़ी।

लतांगी-संज्ञा स्त्री० [सं०] कर्कटशृंगी। काकड़ासींगी।

लता-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) वह पौधा जो सूत या डोरी के रूप में ज़मीन पर फैले अथवा किसी खड़ी वस्तु के साथ लिपट कर ऊपर की ओर चढ़े। वल्ली। बेल। बौंर।

विशेष—जिस लता में बहुत सी शाखाएँ इधर उधर निकलती हैं और पत्तियों का झापस होता है, उसे संस्कृत में प्रतालिनी कहते हैं।

(२) कोमल कांड या शाखा। जैसे,—पद्मलता।

विशेष—सौंदर्य, कोमलता और सुकुमारता का सूचक होने के कारण 'बाहु' या 'भुज' शब्द के साथ कभी कभी 'लता' शब्द लगा दिया जाता है। जैसे,—बाहुलता, भुजलता। सुंदरी स्त्री के लिये भी 'कनकलता' आदि शब्दों का प्रयोग होता है।

(३) प्रियंगु। (४) स्पृक्का। (५) माषपर्णी। (६) ज्योतिष्मती लता। (७) माधवी लता। (८) दूब। (९) कैवर्त्तिका। (१०) सारिवा। (११) जाती पुष्प का पौधा। (१२) सुंदरी स्त्री।

लताकरंज-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का करंज या कंजा। कंटकरंज।

पर्य्या०—दुस्पर्श। वीराख्य। वज्रबीजक। धनदाक्षी। कंटफल। कुबेराक्षी।

विशेष—वैद्यक में यह कटु, उष्ण और वात-कफ-नाशक कहा गया है। इसका बीज दीपन, पथ्य तथा गुल्म और विष को दूर करनेवाला माना जाता है।

लताकर-संज्ञा पुं० [सं०] नाचने में हाथ हिलाने का एक प्रकार।

लताकस्तूरिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक पौधा जो दक्षिण में होता है। वैद्यक में इसे तिक्त, स्वादु, वृष्य, शीतल, लघु, नेत्रों को हितकारी तथा श्लेष्मा, तृष्णा और मुख रोग को दूर करनेवाली माना है।

लताकुंज-संज्ञा पुं० [सं०] लताओं से छाया हुआ स्थान।

लतागण-संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक में सूत या डोरी के रूप में फैलनेवाले पौधों का वर्ग जिसके अंतर्गत ये पौधे हैं—पान, गुर्च, सोमवल्ली, विष्णुक्रांता, स्वर्णवल्ली, हंसराज, महादंडी, आकाशबेल, वटपत्री, हिंगुपत्री, वंशपत्री, वृश्चिका, अर्कपुष्पी, सर्पाक्षी, गुमा, मूसाकानी, पोई, मोरशिखा, बंधवल्ली, कनकलता (नागकेसर), जाती और माधवी।

लतागृह-संज्ञा पुं० [सं०] लताओं से मंडप की तरह छाया हुआ स्थान।

लताजिह्व-संज्ञा पुं० [सं०] सर्प। साँप।

लताड़-संज्ञा स्त्री० दे० "लथाड़"।

लताड़ना-क्रि० स० [हिं० लात] (१) पैरों से कुचलना। रौंदना। (२) लातों से मारना। (३) हैरान करना। श्रम से शिथिल करना। थकाना। (४) लेटे हुए आदमी के शरीर पर खड़े होकर धीरे धीरे इधर उधर चलना, जिससे उसके शरीर की थकावट दूर होती है। (पश्चिम)

लतातरु-संज्ञा पुं० [सं०] (१) नारंगी का पेड़। (२) ताड़ का पेड़। (३) शाल या साखू का पेड़।

लतातास-संज्ञा पुं० [सं०] हिंताल वृक्ष।

लतानन-संज्ञा पुं० [सं०] नाचने में हाथ हिलाने का एक ढंग।

लतापता-संज्ञा पुं० [सं० लतापत्र] (१) लता और पत्ते। पेड़ पत्ते। पेड़ों और पौधों का समूह। (२) पौधों की हरियाली। (३) जड़ी बूटी। जैसे,—गाँव के लोग लतापता से दवा कर लेते हैं।

लतापनस-संज्ञा पुं० [सं०] तरबूज। कलींदा।

लतापर्ण-संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु।

लतापर्णी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) तालमूली। (२) मधुरिका। मेउँड़ी।

लतापाश-संज्ञा पुं० [सं०] लता का झापस या समूह। लताजाल।

लताफल-संज्ञा पुं० [सं०] पटोल। परवल।

लताभवन-संज्ञा पुं० [सं०] लताओं का कुंज। लतागृह। उ०—लताभवन तें प्रगट भए तेहि अवसर दोउ भाइ। निकसे जनु जुग बिमल बिधु जलद पटल बिलगाइ।—तुलसी।

लतामंडप-संज्ञा पुं० [सं०] छाई हुई लताओं से बना हुआ मंडप या घर।

लतामंडल-संज्ञा पुं० [सं०] छाई हुई लताओं का घेरा या कुंज।

लतामणि-संज्ञा पुं० [सं०] प्रवाल। मूँगा।

लतामरुत्-संज्ञा पुं० [सं०] पृक्का।

लतायष्टि-संज्ञा स्त्री० [सं०] मंजिष्ठा। मजीठ।

लतायावक-संज्ञा पुं० [सं०] प्रवाल। मूँगा।

लतार्क-संज्ञा पुं० [सं०] प्याज का पौधा।

लतालक-संज्ञा पुं० [सं०] हाथी।

लतावृक्ष-संज्ञा पुं० [सं०] शल्लकी। सलई का पेड़।

लतावेष्ट-संज्ञा पुं० [सं०] (१) कामशास्त्र में सोलह प्रकार के रतिबंधों में से तीसरा। (२) एक पर्वत जो द्वारकापुरी से दक्षिण की ओर पड़ता है। (हरिवंश)

लतावेष्टन-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का आलिंगन।

लताशंख-संज्ञा पुं० [सं०] शाल या साखू का पेड़।

लतासाधन-संज्ञा पुं० [सं०] तंत्र या वाम मार्ग की एक साधना जिसका प्रधान अधिकरण लता या स्त्री है।

विशेष—इसमें महारात्रि (शिवरात्रि) के दिन एक रजस्वला स्त्री को लेकर उसके योनि देश पर इष्टदेव का पूजन और जप करते हैं।

लतिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] छोटी लता। बँवर। बेल। वि० दे० "लता"।

लतियर, लतियल-वि० [हिं० लात + इयल (प्रत्य०)] जो सदा लात खाता रहता हो। लतखोर।

लतियाना †-क्रि० स० [हिं० लात + आना (प्रत्य०)] (१) पैरों से दबाना या रौंदना। (२) खूब लातें मारना। प्रहार करना। दंड देना। जैसे,—इसे खूब लतियाओ, तब मानेगा।

लतिहर, लतिहल-वि० दे० "लतियर"।

लतीफ़-वि० [अ०] (१) मज़ेदार। सुस्वादु। जायकेदार। (२) अच्छा। बढ़िया। मनोहर।

लतीफ़ा-संज्ञा पुं० [अ०] (१) हास्य रस पूर्ण छोटी कहानी। चुटकुला। (२) चुहल की बात। हँसी की बात। (३) चमत्कारपूर्ण बात। अनूठी बात।

लत्ता-संज्ञा पुं० [सं० लक्तक] (१) फटा पुराना कपड़ा। चीथड़ा। (२) कपड़े का टुकड़ा। वस्त्रखंड। (३) कपड़ा।

यौ०—कपड़ा लत्ता = पहनने का वस्त्र।

मुहा०—लत्ते लेना = आड़े हाथ लेना। व्यंग्य द्वारा उपहास करना। बनाना।

लत्तिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] गोधा। गोह।

लत्ती-संज्ञा स्त्री० [हिं० लात] (१) प्रहार के लिये उठाया या चलाया हुआ घोड़े, गदहे आदि का पैर। पशुओं का पाद-प्रहार। लात। (२) लात मारने की क्रिया।

क्रि० प्र०—चलाना।—फटकारना।—मारना।

संज्ञा स्त्री० [हिं० लत्ता] (१) कपड़े की लंबी धज्जी। (२) बाँस में बँधी हुई कपड़े की धज्जी जिसे ऊँचा करके कबूतर उड़ाते हैं। (३) पतंग की दुम अर्थात् नीचे बँधी हुई कपड़े की लंबी धज्जी। पुछिल्ला।

क्रि० प्र०—बाँधना।—लगाना।

लथपथ-वि० [अनु०] (१) जो भीग कर भारी हो गया हो। भीगा हुआ। तराबोर। जैसे,—(क) वह पानी में लथपथ हो गया। (ख) काम करते करते पसीने से लथपथ हो गए। (२) (कीचड़ आदि में) सना हुआ। जो कीचड़ आदि के लगने से भारी हो गया हो। जैसे,—वह कीचड़ में फिसलकर फिर लथपथ दौड़ा।

लथाड़-संज्ञा स्त्री० [अनु० लथपथ] (१) ज़मीन पर पटक कर इधर उधर लोटाने या घसीटने की क्रिया। चपेट। जैसे,—ऐसी लथाड़ दी कि होश ठिकाने हो गए।

क्रि० प्र०—देना।

मुहा०—लथाड़ खाना = (१) पटका जाना। पछाड़ा जाना। (२) ध्वस्त किया जाना। नष्ट किया जाना। लथाड़ में पड़ना = कठिन स्थिति में पड़ना। झमेले या हैरानी में पड़ना।

(२) पराजय। हार। (३) हानि। नुक़सान। (४) झिड़की। डाँट डपट। भर्त्सना। गालियों की बौछाड़।

क्रि० प्र०—सुनना।

मुहा०—लथाड़ खाना = झिड़का जाना। डाँटा जाना। झिड़की सुनना। लथाड़ पड़ना = डाँटा जाना। झिड़की सुनाई जाना। जैसे,—आज उस पर खूब लथाड़ पड़ी।

लथाड़ना-क्रि० स० (१) दे० "लथेड़ना"। (२) दे० "लताड़ना"।

लथेड़ना-क्रि० स० [अनु० लथपथ] (१) कीचड़ आदि से लपेटना। कीचड़ आदि पोतकर भारी करना। जैसे,—दुपट्टे को क्यों कीचड़ में लथेड़ रहे हो। (२) मिट्टी, कीचड़ आदि लिपटाकर गंदा करना। जैसे,—कल ही कुरता पहना, आज ही मिट्टी में लथेड़ डाला। (३) ज़मीन पर पटककर इधर उधर लोटाना या घसीटना। उ०—हरि तेहि गहि महि माँहि लथेरा।—गोपाल।

संयो० क्रि०—डालना।

(४) कुश्ती या लड़ाई में पछाड़ना। पटकना। हराना। (५) श्रम से शिथिल करना। हैरान करना। थकाना। (६) बातों या गालियों की बौछाड़ से व्याकुल करना। भर्त्सना करना। झिड़कियाँ सुनाना। भला बुरा कहना। डाँटना डपटना।

लदन-संज्ञा स्त्री० [हिं० लदना] लदाव।

लदना-क्रि० अ० [सं० लब्ध, प्रा० लिद्द = भरा हुआ, ढेर लगाया हुआ] (१) भाराक्रांत होना। भारयुक्त होना। बोझ ऊपर लेना। बोझ से भरना। ऊपर पड़ी हुई वस्तुओं के ढेर से भरना। जैसे,—(क) मेज़ किताबों से लदी हुई है। (ख) गाड़ी असबाब से लदी हुई आ रही है।

संयो० क्रि०—जाना।

(२) किसी वस्तु का किसी वस्तु के समूह से ऊपर ऊपर भर जाना। आच्छादित होना। पूर्ण होना। जैसे,—(क) यह पेड़ फलों या फूलों से लदा है। (ख) वह स्त्री गहनों से लदी है। (३) सामान ढोनेवाली सवारी (जैसे,—गाड़ी, घोड़ा, बैल, ऊँट) का वस्तुओं से पूर्ण होना। बोझ से भर जाना या भरा जाना। जैसे,—गाड़ी लद रही है।

(४) किसी भारी या वज़नी चीज का दूसरी चीज के ऊपर होना या रखा जाना। किसी वस्तु के ऊपर बोझ के रूप में पड़ना या रखा जाना। जैसे,—(क) तुम उसकी पीठ पर लद जाओ। (ख) मेज पर किताबें लदी हुई हैं। (५) सामान ढोनेवाली सवारी पर वस्तुओं का रखा जाना। बोझ का डाला या रखा जाना। जैसे,—गाड़ी पर उनका असबाब लद रहा है। (६) जेलखाने जाना। क़ैद होना। जैसे,—वह सात बरस के लिये लद गया। (७) परलोक सिधारना। मर जाना। जैसे,—आज वे भी लद गए।

लदबद–क्रि० वि० [अनु०] किसी गीली और गाढ़ी या जमी हुई वस्तु के गिरने के शब्द का अनुकरण। जैसे,—भींगी मिट्टी ऊपर से लद लद गिर रही है।

लदवाना–क्रि० स० [हिं० लादना का प्रेर०] लादने का काम दूसरे से कराना। उ०—पाँच सहस इक सौ रथ आये। सहस निसान तोप लदवाये।—सबल।

लदाऊ‡–वि० [हिं० लदना = भरना] लदाव। भराव। उ०—रेणुका की रासन में कीच कुस कासन में निकट निवासन में आसन लदाऊ के।—पद्माकर।

लदाना–क्रि० स० [हिं० लादना का प्रेर०] लादने का काम दूसरे से कराना।

संयो० क्रि० – देना।—लेना।

लदा फँदा–वि० [हिं० लदना + फँदना] भारपूर्ण। बोझ से भरा या लदा हुआ।

लदाव–संज्ञा पुं० [हिं० लादना] (१) लादने की क्रिया या भाव। (२) भार। बोझ। (३) छत आदि का पटाव। (४) ईंटों की जोड़ाई जो बिना धरन या कड़ी के अधर में ठहरी हो। कैंड़े की जोड़ाई। जैसे,—लदाव की छत। (५) वह छत या महराब जिसमें ईंटों की जोड़ाई बिना धरन या कड़ी के सहारे अधर में ठहरी हो।

लदुआ–वि० [हिं० लादना] बोझ ढोनेवाला। पीठ पर बोझ लेकर चलनेवाला। जैसे,—लदुआ घोड़ा, लदुआ बैल।

लद्दू–वि० [हिं० लादना] बोझ ढोनेवाला। लदुआ। जैसे,—लद्दू घोड़ा।

लद्धड़–वि० [हिं० लदना = भारी होना] जिसमें तेजी और फुरती न हो। सुस्त। काहिल। आलसी। जैसे,—लद्धड़ आदमी, लद्धड़ घोड़ा।

लद्धड़पन–संज्ञा पुं० [हिं० लद्धड़ + पन (प्रत्य०)] काहिली। सुस्ती। ढिलाई।

लद्धना‡ क्रि० स० [सं० लब्ध, प्रा० लद्ध = प्राप्त] प्राप्त करना। हासिल करना। मिलना। पाना। भेंटना। उ०—चीठर नमिया चून का वैरी बिरहा लद्ध। बीछुरिया सो साजना बैद न काहू लद्ध।—कबीर।

लनटक–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का पौधा या घास जिसका साग बनाकर खाया जाता है।

लना–संज्ञा पुं० [देश०] (१) एक पेड़ जिससे पंजाब में सज्जी निकाली जाती है। इसका एक भेद 'गोरालना' है। (२) शोरा।

लनी–संज्ञा स्त्री० [देश०] पान की बारी में की क्यारी।

संज्ञा स्त्री० [देश०] पंजाब में होनेवाला एक पेड़ जिससे सज्जी निकाली जाती है। छोटी जाति का 'लना' नाम का पेड़।

लप–संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की घास, जिसे 'सुगी' भी कहते हैं।

संज्ञा स्त्री० [अनु०] (१) बेंत या लचीली छड़ी को पकड़ कर हिलाने से उत्पन्न शब्द या व्यापार। (२) छुरी, तलवार आदि की चमक की गति।

मुहा०—लप लप करना = (१) बेत या लचीली छड़ी आदि के पकड़कर जोर से हिलाए जाने से शब्द करना। (२) झलकना। चमाचम करना। लप से = लौ या लपट की तरह तेजी से। झट से।

संज्ञा पुं० [देश०] (१) दोनो हथेलियों को मिलाकर बनाया हुआ संपुट जिसमें कोई वस्तु भरी जा सके। अँजली। जैसे,—लप भर आटा। (२) अँजली भर वस्तु। जैसे,—लप भर निकाल कर देना।

लपक–संज्ञा स्त्री० [अनु० लप] (१) ज्वाला। लपट। लौ। अग्निशिखा। (२) चमक। कांति। लपलपाहट। जैसे,—बिजली की लपक से आँखें चौंधिया गईं। (३) लौ या लपट की तरह निकलने या चलने की तेज़ी। वेग। (४) चलने का वेग। झपट। फुरती।

लपकना–क्रि० अ० [हिं० लपक] (१) चट पट या तेजी से चल पड़ना। तुरंत दौड़ पड़ना। जैसे,—उसने लपक कर भागते हुए चोर को पकड़ लिया। (२) वेग से गमन करना। तेज़ी से जाना या चलना। जैसे,—वह उसी ओर लपका चला जा रहा है।

मुहा०—लपक कर = (१) तुरंत तेजी से जाकर। (२) तुरंत। झट से। जैसे,—लपक कर तुम्हीं चले जाओ, लेते आओ। उ०—ताही समय उठे घनघोर दामिनी सी धाय उर लागी श्यामघन सों लपकि कै।—केशव।

(३) आक्रमण के लिये दौड़ पड़ना। झपटना। जैसे,—शेर उसकी ओर लपका। (४) कोई वस्तु लेने के लिये झट से हाथ बढ़ाना। जैसे,—तुम सभी चीजें लेने के लिये लपकते हो।

लपकी–संज्ञा स्त्री० [हिं० लपकना] एक प्रकार की सीधी सिलाई।

लपचा-संज्ञा पुं० [देश०] सिकिम के पहाड़ों की एक जंगली जाति।

लपझप-वि० [अनु० लप + हिं० झपट] (१) चंचल। चपल। स्थिर न रहनेवाला। (२) चुपचाप न बैठनेवाला। अधीर। जैसे,—बाप चुप चुप, पूत लपझप। (३) तेज। फुरतीला।

मुहा०—लपझप चाल = बेढंगी चाल। चपलता की चाल।

लपट-संज्ञा स्त्री० [सं०लोक हिं० लौ + पट = विस्तार] (१) आग के दहकने से उठा हुआ जलती वायु का स्तूप। अग्निशिखा। ज्वाला। आग की लौ। उ०—इंद्रजाल कंदर्प को कहै कहा मतिराम। आगि लपट वर्षा करै ताप धरै घनस्याम।—मतिराम। (२) तपी हुई वायु। हवा में फैली हुई गरमी। आँच।

क्रि० प्र०—आना।—लगना।

(३) किसी प्रकार की गंध से भरा वायु का झोंका। जैसे,—क्या अच्छी गुलाब की लपट आ रही है। (४) गंध। महक। महक। बू। उ०—सूरदास प्रभु को बानक देखे गोपी टारे न टरत निपट आवे सोंधे की लपट।—सूर।

† संज्ञा स्त्री० दे० "लिपट"।

लपटना†-क्रि० अ० [सं० लिप्त + ना (प्रत्य०)] (१) अंगों से घेरना। लिपटना। चिमटना। आलिंगन करना। (२) किसी सूत की सी वस्तु का दूसरी वस्तु के चारों ओर कई फेरों में घेरना। (३) लग जाना। संलग्न होना। सटना। (४) उलझना। फँसना। लिप्त होना। उ०—आइ गयो काल मोहजाल में लपटि रह्यो महा विकराल यमदूत ही दिखाइए।—प्रियादास। (५) परिवेष्टित होना। घिर जाना। (६) लगा रहना। रत रहना।

लपटा-संज्ञा पुं० [हिं० लपसी] (१) गाढ़ी गीली वस्तु। (२) लपसी। लेई। (३) कढ़ी।

लपटाना†-क्रि० स० [हिं० लपटना] (१) अंगों से घेरना। लिपटाना। चिमटाना। (२) आलिंगन करना। गले लगाना। (३) किसी सूत की सी वस्तु को कई फेरे करके टिकाना या बाँधना। लपेटना। उ०—दरसन आयो राना रूप चतुर्भुज जू के रहे प्रभु पौढ़ि हार सीस लपटायो है।—प्रियादास। (४) परिवेष्ठित करना। घेरना।

® †-क्रि० अ० (१) संलग्न सटना। उ०—यह नहिं भली तुम्हारी बानी। मैं गृहकाज रहौं लपटानी।—सूर। (२) उलझना। फँसना।

लपन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मुख। मुँह। (२) भाषण। कथन।

लपना†-क्रि० अ० [अनु० लप लप] (१) बेंत या लचीली छड़ी का एक छोर पकड़कर जोर से हिलाए जाने से इधर उधर झुकना। झोंक के साथ इधर उधर लचना। (२) झुकना। लचना। (३) लपकना। ललचना। उ०—साधन बिनु सिद्धि सकल विकल लोग लपत।—तुलसी।

लपलपाना-क्रि० अ० [अनु० लप लप] (१) बेंत या लचीली छड़ी, टहनी आदि का एक छोर पकड़कर जोर से हिलाए जाने से इधर उधर झुकना। झोंक के साथ इधर उधर लचना। लपना। जैसे,—बेंत का लपलपाना। (२) किसी लंबी कोमल वस्तु का इधर उधर हिलना डोलना या किसी वस्तु के अंदर से बार बार निकलना। जैसे,—साँप की जीभ लपलपाती है।

मुहा०—जीभ लपलपाना = चखने की इच्छा या लोभ करना। जैसे,—मिठाई खाने के लिये उसकी जीभ लपलपाया करती है।

(३) छुरी, तलवार आदि का चमकना। झलकना।

क्रि० स० (१) बेंत या लचीली छड़ी, टहनी आदि का एक छोर पकड़कर ज़ोर से इधर उधर झुकाना या झोंका देना। झोंक के साथ इधर उधर लचाना। फटकारना। लपाना। जैसे,—मारने के लिये बेंत लपलपाना। (२) किसी लंबी नरम चीज को इधर उधर हिलाना डुलाना या किसी वस्तु के अंदर से बार बार निकालना। जैसे,—साँप जीभ लपलपाता है। (३) छुरी, तलवार आदि को निकालकर चमकाना। चमचमाना।

लपलपाहट-संज्ञा स्त्री० [हिं० लपलपाना + आहट (प्रत्य०)] (१) लपलपाने की क्रिया या भाव। लचीली छड़ी या टहनी आदि का झोंक के साथ इधर उधर लचकना। एक छोर पकड़कर जोर से हिलाए जाते हुए बेंत आदि का झोंका। (२) चमक। झलक। जैसे,—तलवारों की लपलपाहट।

लपसी-संज्ञा स्त्री० [सं० लप्सिका] (१) भुने हुए आटे में चीनी का शरबत डालकर पकाई हुई बहुत गाढ़ी लेई जो खाई जाती है। थोड़े घी का हलुवा। (२) गीली गाढ़ी वस्तु। जैसे,—आज की तरकारी तो लपसी हो गई। (३) पानी में औटाया हुआ आटा जिसमें नमक मिला होता है और जो जेल में कैदियों को दिया जाता है। लपटा।

लपहा-संज्ञा पुं० [देश०] पान का एक रोग। पान की गेरुई।

लपाना-क्रि० स० [अनु० लपलप] (१) लचीली छड़ी आदि को झोंक के साथ इधर उधर लचाना। फटकारना। (२) नरम लंबी चीज को झुलाना। (३) आगे बढ़ाना।

लपित-वि० [सं०] कहा हुआ। बोला हुआ। कथित।

लपिता-संज्ञा स्त्री० [सं०] शार्ङ्गिका नामक पक्षी की एक जाति।

लपेट-संज्ञा स्त्री० [हिं० लपेटना] (१) लपेटने की क्रिया या भाव। (२) किसी सूत, डोरी या कपड़े की सी वस्तु को दूसरी वस्तु की परिधि को लपेटने या बाँधने की स्थिति। बंधन का चक्कर। घुमाव। फेरा। जैसे,—कई लपेट बाँधोगे, तब मजबूत

होगा। (३) बँधी हुई गठरी में कपड़े की तह की मोड़। उ०—खोलिकै लपेट मध्य संपुट निहारि कीड़ा, समुझि विचारे हारे, मत में न आयो है।—प्रियादास। (४) ऐंठन। बल। मरोड़। (५) किसी मोटी लंबी वस्तु की मोटाई के चारो ओर का विस्तार। घेरा। परिधि। जैसे,—(क) इस खंभे की लपेट ३ फुट है। (ख) इस पेड़ के तने की लपेट ५ फुट है। (६) उलझन। फँसाव। जाल या चक्कर। जैसे,—तुम उसकी बातों की लपेट में पड़ गए। उ०—आए इश्क लपेट में लागी चसम चपेट।—रसनिधि। (७) कुश्ती का एक पेच।

विशेष—जब दोनों लड़नेवाले एक दूसरे की बगल से सिर निकालते हैं और कमर को दोनों हाथों से पकड़कर भीतर अड़ानी टाँग से लपेटते हैं, तब उसे लपेट कहते हैं।

(८) पकड़। बंधन। उ०—बानर भालु लपेटनि मारत तब ह्वैहै पछितायो।

लपेटन-संज्ञा स्त्री० [हिं० लपेटना] (१) लपेटने की क्रिया या भाव। लपेट। (२) फेरा। बल। (३) ऐंठन। मरोड़। (४) उलझन। फँसाव।

संज्ञा पुं० (१) लपेटनेवाली वस्तु। वह वस्तु जो चारों ओर सटकर घेर ले। (२) वह वस्तु जिसे किसी वस्तु के चारों ओर घुमा घुमाकर बाँधें। (३) वह कपड़ा जिसे किसी वस्तु के चारो ओर घुमा घुमाकर बाँधें। बाँधने का कपड़ा। वेष्टन। बेठन। (४) पैरों में उलझनेवाली वस्तु। जैसे,—रस्सी का टुकड़ा। (पालकी के कहार) उ०—काठ कुराय लपेटन लोटन ठाँवहिं ठाँव बझाऊ रे।—तुलसी। (५) वह लकड़ी जिस पर जुलाहे बुनकर तैयार कपड़ा लपेटते हैं। तूर। बेलन।

लपेटना-क्रि० स० [सं० लिप्त, हिं० लिपटना] (१) किसी सूत, डोरी, या कपड़े की सी वस्तु को दूसरी वस्तु के चारो ओर घुमाकर बाँधना। घुमाव या फेरे के साथ चारो ओर फँसाना। चक्कर देकर चारो ओर ले जाना। जैसे,—(क) इस लकड़ी में तार लपेट दो। (ख) छड़ी में कपड़ा लपेटा हुआ है।

संयो० क्रि०—देना।—लेना।

(२) सूत, डोरी या कपड़े की सी वस्तु चारो ओर ले जाकर घेरना। परिवेष्टित करना। जैसे,—इस डंडे को कपड़े से लपेट दो। (३) डोरी, सूत या कपड़े की सी फैली हुई वस्तु को तह पर तह मोड़ते या घुमाते हुए संकुचित करना। फैली हुई वस्तु को लच्छे या गट्ठर के रूप में करना। समेटना। जैसे,—(क) कपड़े का थान लपेटकर रख दो। (ख) तागा लपेटकर रख दो। (४) मोड़े हुए कपड़े आदि के अंदर करके बंद करना। कपड़े आदि के अंदर बाँधना। जैसे,—पुस्तक लपेटकर रख दो। (५) हाथ पैर आदि अंगों को चारों ओर सटाकर घेरे में करना। पकड़ में कर लेना। जैसे,—(क) उसे देखते ही उसने हाथों से लपेट लिया। (ख) अजगर ने शेर को चारों ओर से लपेट लिया। (६) ऐसी स्थिति में करना कि कुछ करने न पावे। गति विधि बंद करना। चारो ओर से चाल रोकना। जैसे,—तुमने तो उसे चारो ओर से ऐसा लपेटा है कि वह कुछ कर ही नहीं सकता। (७) पकड़ में लाना। काबू में करना। ग्रसना। उ०—जिमि करि-निकर दलै मृगराजू। लेइ लपेटि लवा जिमि बाजू।—तुलसी। (८) उलझन में डालना। झंझट में फँसाना। (९) गीली गाढ़ी वस्तु पोतना। लेप करना। जैसे,—वह बदन में कीचड़ लपेटे आ पहुँचा।

विशेष—यद्यपि 'लिपटाना' और 'लपेटना' दोनों सकर्मक क्रियाएँ 'लिपटना' ही से बनी हैं, पर दोनों के प्रयोगों में अंतर है। 'लिपटाना' में संलग्न करने या सटाने का भाव प्रधान है। इसी से 'छाती से लिपटाना' 'बदन में रंग लिपटाना' आदि बोलते हैं। 'लपेटना' में घुमाकर या मोड़कर घेरने का भाव प्रधान है। इसी से 'डोरा लपेटना', 'कपड़ा लपेटना' आदि बोलते हैं।

लपेटनी-संज्ञा स्त्री० [हिं० लपेटना] जुलाहों की लपेटन नाम की लकड़ी। लपेटना। तूर।

लपेटवाँ-वि० [हिं० लपेटना] (१) जो लपेटा हो। जिसे लपेट सकें। (२) जो लपेटकर बना हो। (३) जिसमें सोने चाँदी के तार लपेटे गए हों। (४) जिसका अर्थ छिपा हो। गूढ़। व्यंग्य। जैसे,—लपेटवाँ गाली। (५) जो सीधे ढंग से न कहा या किया गया हो। घुमाव फिराव का। चक्करदार। जैसे,—लपेटवाँ बात।

लपेटा-संज्ञा पुं० दे० "लपेट"।

लपेत-संज्ञा पुं० [सं०] बालरोगों के अधिष्ठाता एक देवता। (पारस्कर गृह्यसूत्र)

लप्पड़†-संज्ञा पुं० दे० "थप्पड़"।

लप्पा-संज्ञा पुं० [देश०] (१) छत में लगी हुई वह लकड़ी जिसमें रेशमी कपड़े बुननेवाले जुलाहों के करघे की रस्सियाँ बँधी रहती हैं। (२) एक प्रकार का गोटा।

लप्सिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] लप्सी।

लफंगा-वि० [फ़ा० लफ़ंग] (१) लंपट। व्यभिचारी। दुश्चरित्र। (२) शोहदा। आवारा। कुमार्गी।

लफटंट-संज्ञा पुं० [अं० लेफ्टिनेंट] सेना का एक छोटा अफ़सर।

लफ़टंट गवर्नर-संज्ञा पुं० [अं०] किसी प्रान्त का शासक। छोटे सूबे का हाकिम।

लफना‡-क्रि० अ० दे० "लपना"। उ०—चिलक चिकनई चटक स्यों लफति सटक लौं आय। नारि सलोनी साँवरी नागिनि लौं डसि जाय।—बिहारी।

लफलफानि†-संज्ञा स्त्री॰ दे॰ "लपलपाना" या "लपलपाहट"। उ॰—राधासर तीर द्रुम डारि गहि झूलै फूलै देखत सफ लफलफानि गति मति बौरी है।—प्रियादास।

लफाना†-क्रि॰ स॰ दे॰ "लपाना"।

लफ़्ज़-संज्ञा पुं॰ [अ॰] (१) शब्द। (२) बात। बोल।

लब-संज्ञा पुं॰ [फ़ा॰] ओष्ठ। ओंठ। होंठ।

लबगुरानया-संज्ञा स्त्री॰ [देश॰] गहरे बैंगनी रंग के रतालू की लता जो भारतवर्ष में कई जगह बोई जाती है। इसकी जड़ खाई जाती है।

लबझना*†-क्रि॰ अ॰ [देश॰] उलझना। फँसना। उ॰—लबझी अंग तरंग बहु, सरिता रंग अनूप। नव पंकज अंकुर जहाँ, धरत प्रवाल स्वरूप।—गुमान।

लबड़ धोंधों-संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ लबाड़+धूम] (१) झूठ मूठ का हल्ला। व्यर्थ का गुल गपाड़ा।

क्रि॰ प्र॰—करना।—मचना।—मचाना।

(२) क्रम और व्यवस्था का अभाव। गड़बड़ी। अंधेर। बदइंतज़ामी। कुव्यवस्था। (३) अन्याय। अनीति।

क्रि॰ प्र॰—मचना।—मचाना।

(४) बातों का भुलावा। असल बात को टालने के लिये बकवाद और कहा सुनी। बेईमानी की चाल। जैसे,—यहाँ तुम्हारी यह लबड़धोंधों न चलेगी।

क्रि॰ प्र॰—करना।

मुहा॰—लबड़धोंधों चलना = बेईमानी की चाल सफल होना।

लबड़ना*†-क्रि॰ अ॰ [सं॰ लप = बकना] (१) झूठ बोलना। लबारी करना। (२) गप हाँकना।

लबदा-संज्ञा पुं॰ [सं॰ लगुड़] मोटा बेडौल डंडा।

लबदी-संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ लबदा] छोटी छड़ी। पतली छड़ी। हलकी लाठी।

लबनी†-संज्ञा स्त्री॰ [देश॰] (१) मिट्टी की लंबी हाँड़ी या मटकी जो ताड़ के पेड़ों में बाँध दी जाती है और जिसमें ताड़ी इकट्ठी होती है। (२) काठ की लंबी डाँड़ी लगा हुआ कटोरा जिससे कड़ाह में से शीरा निकालते हैं। डोई। डौवा।

लबरा†-वि॰ [सं॰ लपन = बोलना] [स्त्री॰ लबरी] (१) झूठ बोलनेवाला। (२) गप हाँकनेवाला। गप्पी। उ॰—आप सभा मँह सत्य जू सोहत लालची औ लबरान को लाबरा।—रघुराज।

लबरी-वि॰ स्त्री॰ [हिं॰ लबरा] झूठ बोलनेवाली। झूठी। गप्पी।

संज्ञा स्त्री॰ दे॰ "लिबड़ी"।

लबलबी-संज्ञा स्त्री॰ [फ़ा॰ लब] बंदूक के घोड़े की कमानी।

लबलहका†-वि॰ [हिं॰ लपना+लहकना] [स्त्री॰ लबलहकी] (१) किसी वस्तु को देखते ही उसकी ओर लपकनेवाला। अधीर और, लालची। (२) बिना प्रयोजन सब वस्तुओं को हाथ लगानेवाला। चंचल। चपल।

लबादा-संज्ञा पुं॰ [फ़ा॰] (१) रूईदार चोगा। दगला। (२) वह लंबा ढीला पहनावा जो अँगरखे आदि के ऊपर से पहन लिया जाता है और जिसका सामना प्रायः खुला होता है। अबा। चोगा।

लबार†-वि॰ [सं॰ लपन = बकना] (१) झूठा। मिथ्यावादी। (२) गप्पी। प्रपंची। उ॰—(क) आजु गए औरहि काहू के रिस पावति कहि बड़े लबार।—सूर। (ख) तौलौं लोक लोलुप ललात लालची लबार बार बार लालच धरनि धन धाम को।—तुलसी। (ग) बालि न कबहुँ गाल अस मारा। मिलि तपसिन्ह तैं भएसि लबारा।—तुलसी।

लबारी-संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ लबार] झूठ बोलने का काम।

वि॰ (१) झूठा। (२) चुगलखोर। उ॰—यह पापी अति चोर लबारी। ताहि दीन हम साँसति भारी।—विश्राम।

लबालब-क्रि॰ वि॰ [फ़ा॰] मुँह या किनारे तक। छलकता हुआ। जैसे,—(क) यह तालाब लबालब भरा है। (ख) प्याला लबालब भरा है।

लबी-संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ लिपटा] ईख का रस जो पकाकर खूब गाढ़ा और दानेदार कर दिया गया हो। राब।

लबेचू-संज्ञा पुं॰ [देश॰] जैन वैश्यों की एक जाति। लमेचू।

लबेद-संज्ञा पुं॰ [सं॰ वेद का अनु॰] वेद के विरुद्ध वचन या प्रसंग। लोकाचार और दंत कथा। (बोलचाल) जैसे,—वेद में यह सब कुछ नहीं है; तुम्हारे लबेद में हो, तो हो।

लबेदा-संज्ञा पुं॰ [सं॰ लगुड़] [स्त्री॰ अल्पा॰ लबेदी] मोटा बड़ा डंडा।

लबेदी-संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ लबेदा] (१) छोटा डंडा। लाठी। (२) डंडे का बल। ज़बरदस्ती।

लबेरा-संज्ञा पुं॰ [देश॰] लसोड़े का पेड़ या फल। लपेरा।

लब्ध-वि॰ [सं॰] (१) मिला हुआ। पाया हुआ। प्राप्त। (२) उपार्जित। कमाया हुआ। (३) भाग करने से आया हुआ फल। (गणित)

संज्ञा पुं॰ दस प्रकार के दासों में से एक। (स्मृति)

लब्धकाम-वि॰ [सं॰] जिसकी कामना सिद्ध हो गई हो। जिसका मनोरथ सफल हो गया हो। जिसका मतलब हासिल हो गया हो।

लब्धकीर्ति-वि॰ [सं॰ लब्धनामन्] (१) जिसने कीर्ति पाई हो। जिसने यश प्राप्त किया हो। (२) विख्यात। प्रसिद्ध। नामवर।

लब्धनाम-वि॰ [सं॰] जिसने नाम पाया हो। नामवर। प्रसिद्ध।

लब्धप्रतिष्ठ-वि० [सं०] जिसने प्रतिष्ठा पाई हो। प्रतिष्ठित। सम्मानित।

लब्धप्रशमन-संज्ञा पुं० [सं०] मिले हुए धन का सत्पात्र को दान। (मनु०)

लब्धलक्ष-संज्ञा पुं० [सं०] (१) जिसका वार ठीक निशाने पर जा लगे। (२) जिसे अभिप्रेत वस्तु मिल गई हो।

लब्धवर्ण-वि० [सं०] विद्वान्। पंडित।

लब्धांक-संज्ञा पुं० [सं०] गणित करने पर जो अंक प्राप्त हो। जवाब।

लब्धा-संज्ञा स्त्री० [सं०] विप्रलब्धा नायिका।

लब्धि-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) प्राप्ति। लाभ। (२) हिसाब का जवाब। गणित का लब्धांक।

लमधर†-संज्ञा पुं० [देश०] कुदाल के मुँह पर का टेढ़ा भाग।

लभन-संज्ञा पुं० [सं०] [वि० लभ्य, लब्ध] प्राप्त करना। हासिल करना। पाना।

लभस-संज्ञा पुं० [सं०] (१) घोड़ा बाँधने की रस्सी। पिछाड़ी। (२) धन। (३) याचक। माँगनेवाला।

लभ्य-वि० [सं०] (१) पाने योग्य। जो मिल सके। (२) न्याययुक्त। उचित। मुनासिब।

लमई†-संज्ञा स्त्री० [देश०] मधुमक्खी का एक भेद। जिसे कटयाल भी कहते हैं।

लमक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) जार। उपपति। (२) लंपट। विलासी।

लमकना†-क्रि० अ० [हिं० लपकना] (१) लपकना। (२) उत्कंठित होना। उ०—सजि ब्रजबाल नंदलाल सों मिलै के लिए, लगनि लगालगी में लमकि लमकि उठै।—पद्माकर।

लमगजा-संज्ञा पुं० [देश०] इकतारा। ठठवा।

लमगिरदा-संज्ञा पुं० [हिं० लंबा + फ़ा० गिर्द] लोहे की दानेदार मोटी रेती जिसके दाने कटहल के छिलके के दानों के सदृश होते हैं। यह रेती नारियल के छिलके (खोपड़ी) को रेतने के काम में आती है।

लमगोड़ा†-वि० [हिं० लंबा + गोड़] जिसकी टाँगें लंबी हों।

लमचिचा-वि० [हिं० लंबा + घींच = गर्दन] लंबी गर्दनवाला।

लमचा-संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की बरसाती घास जो काली चिकनी मिट्टी की ज़मीन में बहुत पाई जाती है।

लमछड़-संज्ञा पुं० [हिं० लंबा + छड़] (१) साँग। बरछी। भाला। (२) कबूतरबाज़ों की लग्गी। (३) पुरानी चाल की लंबी बंदूक।

वि० पतला और लंबा।

लमजक-संज्ञा पुं० [सं० लामज्जक] कुश की तरह की एक घास जिसमें सुन्दर महक होती है। इसे "ज्वरांकुश" भी कहते हैं और ज्वर में औषध के रूप में देते हैं। लामज।

लमज्जुक-संज्ञा पुं० दे० "लमजक"।

लमटंगा-वि० [हिं० लंबा + टाँग] [स्त्री० लमटँगी] जिसकी टाँगें लंबी हों।

संज्ञा पुं० सारस पक्षी।

लमडींग-संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का जंगली जानवर।

लमतड़ंग-वि० [हिं० लंबा + ताड़ + अंग] [स्त्री० लमतड़ंगी] बहुत लंबा या ऊँचा। जैसे,—लमतड़ंगा आदमी।

लमधी†-संज्ञा पुं० [देश०] समधी का बाप। उ०—समधी के घर लमधी आयो आयो बहू को भाई।—कबीर।

लमाना⊛†-क्रि० स० [हिं० लंबा + ना(प्रत्य०)] (१) लंबा करना। (२) दूर तक आगे बढ़ाना। उ०—कैधौं दसकंधर की मीचु मँड़राति व्योम कैधौं महाकाल कोपि रसना लमाई है।—रघुराज।

क्रि० अ० दूर निकल जाना। चलने में बहुत दूर बढ़ जाना।

लय-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक पदार्थ का दूसरे में मिलना या घुसना। प्रवेश। (२) एक पदार्थ का दूसरे पदार्थ में इस प्रकार मिलना कि वह तद्रूप हो जाय और उसकी सत्ता पृथक् न रह जाय। विलीन होना। लीनता। मग्नता। (३) चित्त की वृत्तियों का सब ओर से हटकर एक ओर प्रवृत्त होना। ध्यान में डूबना। एकाग्रता। (४) लगन। गहरा अनुराग। प्रेम। उ०—मन ते सकल वासना भागी। केवल राम चरण लय लागी।

क्रि० प्र०—लगाना।

(५) कार्य्य का अपने कारण में समाविष्ट होना या फिर कारण के रूप में परिणत हो जाना। (६) सृष्टि के नाना रूपों का लोप होकर अव्यक्त प्रकृति मात्र रह जाना। प्रकृति का विरूप परिणाम। जगत का नाश। प्रलय। उ०—जो संभव, पालन लय कारिनि। निज इच्छा लीला वपु-धारिनि।—तुलसी। (७) विनाश। लोप। उ०—जो कहे उ हरि बैकुंठ सिधारे। शमदम उनहीं संग पधारे। दया संतोष दया अरु गयो। ज्ञान यमादि सबै लय भयो।—सूर। (८) मिल जाना। संश्लेष। (९) संगीत में नृत्य, गीत और वाद्य की समता। नाच, गाने और बाजे का मेल।

विशेष—यह समता नाचनेवाले के हाथ, पैर, गले और मुँह से प्रकट होती है। संगीत दामोदर में हृदय, कंठ और कपाल लय के स्थान माने गए हैं। कुछ आचार्य्यों ने लय के द्विपदी, लतिका और ललिका इत्यादि अनेक भेद माने हैं। (१०) स्थिरता। विश्राम। (११) मूर्छा। बेहोशी। (१२) वह समय जो किसी स्वर को निकालने में लगता है।

विशेष—यह तीन प्रकार का माना गया है—द्रुत, मध्य और विलंबित।

(१२) एक प्रकार का पाटा जिससे वैदिक काल में खेत जोतकर उसकी मिट्टी को सम या बराबर करते थे। इसका उल्लेख शुक्ल यजुर्वेद की वाजसनेय संहिता में है।
संज्ञा स्त्री० (१) गाने का स्वर। गाने में स्वर निकालने का ढंग। जैसे,—वह बड़ी सुंदर लय से गाता है। (२) गीत गाने का ढंग या तर्ज़। धुन।
मुहा०—लय देखना = ठीक लय में गाना।
(३) संगीत में, सम।

लयन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) विश्राम। शांति। (२) आश्रय। विश्रामस्थान। (३) आश्रय ग्रहण। आड़ लेना। पनाह लेना।

लर⊛†-संज्ञा स्त्री० दे० "लड़"। उ०—नंद के लाल हरेउ मन मोर। हौं बैठी पोवत मोतियन लर काँकर डारि चले सखि भोर।—सूर।

लरकई⊛-संज्ञा स्त्री० दे० "लड़काई" या "लरिकाई"। उ०—जदपि इते जोबन नवल मधुर लरकई चारु। पै उत चतुराई अधिक प्रगटन रस व्यवहार।—हरिश्चन्द्र।

लरकना⊛†-क्रि० अ० [सं० लड़न = झूलना] (१) लटकना। उ०—चोटी गुही मोती अमल, तिन जानु लौं लर लरकती। मनु शरद वारिद की घटा जल बिंदु अवली ढरकती।—रघुराज।
(२) झुकना। (३) खिसककर नीचे आना।
संयो० क्रि०—जाना।—पड़ना।

लरका⊛-संज्ञा पुं० दे० "लड़का"।

लरकाना⊛†-क्रि० स० [हिं० लरकना] (१) लटकाना। (२) झुकाना। (३) नीचे खिसकाना।

लरकिनी⊛†-संज्ञा स्त्री० दे० "लड़की"। उ०—बधू लरकिनी पर घर आई। राखेहु नयन पलक की नाईं।—तुलसी।

लरखरना⊛†-क्रि० अ० दे० "लरखराना" या "लड़खड़ाना"। उ०—दिग्गयंद लरखरत परत दसकंठ मुक्ख भर।—तुलसी।

लरखरनि⊛-संज्ञा स्त्री० [हिं० लरखराना] (१) लड़खड़ाने की क्रिया या भाव। डगमगाहट। (२) चलने या खड़े होने में पैर न जमने का भाव। उ०—(क) हरिजू की बाल छबि कहौं बरनि। सकल सुख की सींव कोटि मनोज सोभा हरनि।...पुन्य फल अनुभवति सुतहिं बिलोकि कै नँद-घरनि। सूर प्रभु की बसी उर किलकनि ललित लरखरनि।—सूर।

लरखराना-क्रि० अ० दे० "लड़खड़ाना"।

लरजना-क्रि० अ० [फा० लरज़ा = कंप] (१) काँपना। हिलना। उ०—(क) पात बिनु कीन्हें ऐसी भाँति गन बेलिन के, परत न चीन्हे जे ये लरजत लुंज हैं।—पद्माकर। (ख) चंचला चमाकै चहुँ ओरन ते चाह भरी, चरज गई ती फेर चरजन लागी री। कहै पद्माकर लवंगन की लोनी लता, लरज गई ती फेर लरजन लागी री।—पद्माकर।
संयो० क्रि०—उठना।—जाना।
(२) भयभीत होना। दहल जाना। डरना। उ०—(क) शरण राखि ले हो नंदताता। घटा आईं गरजि युवति गईं मन लरजि, बीजु चमकति तरजि, डरत गाता।—सूर। (ख) लाजन हौं लरजौं गहिरी, बरजौं गहिरी कहिरी किहि दाहन।—देव।
क्रि० प्र०—उठना।—जाना।—पड़ना।

लरज़ा-संज्ञा पुं० [फा०] (१) कंप। कँपकँपी। थरथराहट। (२) भूकंप। भूचाल। (३) एक प्रकार का ज्वर जिसमें रोगी का शरीर ज्वर आते ही काँपने लगता है। जूड़ी।

लरझर⊛†-वि० [हिं० लड़ + झड़ना] बरसता हुआ। बहुत अधिक परिमाण में प्राप्त। प्रचुर। उ०—लोचन लेति लगाइ ललकि कै लाल सलोनी। लरझर ललित लुनाई ऐसी भई न होनी।—व्यास।

लरना⊛-क्रि० अ० दे० "लड़ना"।

लरनि⊛-संज्ञा स्त्री० [हिं० लड़ना] (१) युद्ध। लड़ाई। (२) युद्ध करने का ढंग। लड़ने का ढब। उ०—(क) मेरे जिय इहई सोच पर्‌यो। मन के ढंग सुनो री सजनी जैसे मोहिं निदर्‌यो। आपुनि गयो गंग सँग लीन्हें प्रथमहिं इहै कर्‌यो। मो सौं बैर प्रीति करि हरि सौं ऐसी लरनि लर्‌यो। ज्यों त्यों नैन रहे लपटाने तिनहूँ भेद भर्‌यो। सुनहु सूर अपनाइ इनहुँ को अबलौं रह्यो डर्‌यो।—सूर। (ख) लामी लूम लसत लपेटि पटकत भट, देखो देखो लखन लरनि हनुमान की।—तुलसी।

लराई⊛†-संज्ञा स्त्री० दे० "लड़ाई"। उ०—(क) जहँ तहँ परे अनेक लराई। जीते सकल भूप बरिआई।—तुलसी। (ख) खंजन नैन बीच नासा पुट राजत यह अनुहार। खंजन जुग मानो लरत लराई कीर बुझावत रार।—सूर।

लराका⊛-वि० दे० "लड़ाका"।

लरिकई⊛†-संज्ञा स्त्री० [हिं० लरिका] (१) लड़कपन। बाल्यावस्था। उ०—निरखि नवोढा नारि तन छुटत लरिकई लेस। भो प्यारो प्रीतम तियन मानहुँ चलत बिदेस।—बिहारी।
(२) लड़कपन की चाल। लड़कों का व्यवहार।
क्रि० प्र०—करना।
(३) चपलता। चंचलता। उ०—लाल अलौकिक लरिकई लखि लखि सखी सिहाति। आज काल्हि में देखियत उर उकसौंहीं भाँति।—बिहारी।

लरिक-सलोरी†-संज्ञा स्त्री० [हिं० लरिका + लोल = चंचल] लड़कों का खेल। खेलवाड़।

लरिका⊛†-संज्ञा पुं० [सं० ललिक] दे० "लड़का"। उ०—(क) देखि कुठार-बान-धनु-धारी। भइ लरिकहिं रिस बीर बिचारी।—तुलसी। (ख) खेलन को मैं जाउँ नहीं। और लरिकनी घर घर खेलति मोही को पै कहत तु ही।—सूर।

लरिकाई⊛†-संज्ञा स्त्री० [हिं० लड़का + आई (प्रत्य०)] (१) लड़कपन। बालपन। बाल्यावस्था। उ०—(क) लरिकाई को नेह कहौ सखि कैसे छूटै?—सूर। (ख) तात कहहुँ कछु करहुँ ढिठाई। अनुचित छमब जानि लरिकाई।—तुलसी। (ग) भाजि गई लरिकाई मनौ लरिकै करि कै दुहूँ दुंदुभि औंधे।—पद्माकर। (२) लड़कों का व्यवहार या आचरण। (३) चपलता। चंचलता।

लरी⊛-संज्ञा स्त्री० दे० "लड़ी"। उ०—(क) सुनो अनुज एहि बन इतननि मिलि जानकी प्रिया हरी। कछु इक अंगनि सहिदानी मेरी दृष्टि परी। कटि केहरि कोकिल बाणी अरु शशि मुख प्रभा खरी। मृग मूसी नैननि की सोभा जात न गुप्त करी। चंपक बरन चरन करि कमलनि दाड़िम दशन लरी। गति मराल अरु बिंब अधर छबि अहि अनूप कबरी। अति करुना रघुनाथ गुसाईं युग भर जात घरी। सूरदास प्रभु प्रिया प्रेमबस निज महिमा बिसरी।—सूर। (ख) कबिरा मोतिन की लरी हीरन को परगास। चाँद सुरज की गम नहीं तहँ दरसन पावै दास।—कबीर।

लर्ज-संज्ञा पुं० [हिं० लरजना] सितार के एक तार का नाम। यह छः तारों में पाँचवाँ और पीतल का होता है।

ललंतिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) नाभि तक लटकती हुई माला या हार। (२) गोह।

ललक-संज्ञा स्त्री० [सं० ललन = लालसा करना] प्रबल अभिलाषा। गहरी चाह। उ०—महरानी कौशल्यादिक तुव लिखतीं बारहिं बारा। दुलहिन दूलह देखब केहि दिन लागी ललक अपारा।—रघुराज।

ललकना-क्रि० अ० [हिं० ललक + ना (प्रत्य०)] (१) किसी वस्तु को पाने की गहरी इच्छा करना। लालसा करना। ललचना। उ०—(क) ललकत स्याम, मन ललचात।—सूर। (ख) ललकत लखि ज्यों कँगाल पातरी सुनाज की।—तुलसी। (२) अभिलाषा से पूर्ण होना। चाह की उमंग से भरना। उ०—बलकि बलकि बोलत बचन, ललकि ललकि लपटाति।—बिहारी।

ललकार-संज्ञा स्त्री० [हिं० लड़ना या ले ले अनु० + कार] (१) युद्ध के लिये उच्च स्वर से आह्वान। लड़ने के लिये तैयार होकर शत्रु या विपक्षी से पुकारकर कहना कि यदि हिम्मत हो, तो आकर लड़। प्रचारण। हाँक। जैसे,—ललकार सुनकर वह सामने आया। (२) किसी को किसी पर आक्रमण करने के लिये पुकारकर उत्साहित करना। लड़ने का बढ़ावा।

ललकारना-क्रि० स० [हिं० ललकार] (१) युद्ध के लिये उच्च स्वर से आह्वान करना। लड़ने के लिये तैयार होकर विपक्षी से पुकारकर कहना कि हिम्मत हो, तो आ लड़। प्रचारण। हाँक लगाना। जैसे,—युद्ध के लिये सुग्रीव ने बालि को ललकारा। (२) किसी पर आक्रमण करने के लिये किसी को पुकारकर उत्साहित करना। लड़ने के लिये उकसाना या बढ़ावा देना। जैसे,—तुम्हारे ललकारने से ही उसकी हिम्मत बढ़ी।

ललचना-क्रि० अ० [हिं० लालच + ना (प्रत्य०)] (१) लालच करना। पाने की प्रबल इच्छा करना। प्राप्त करने की अभिलाषा से अधीर होना। (२) मोहित होना। लुब्ध होना। उ०—मनि मंदिर सुंदर सब साजू। जाहि लखत ललचत सुरराजू।—रघुराज। (३) किसी बात की प्रबल इच्छा करना। अभिलाष से अधीर होना। लालसा करना। उ०—तौ मुख चंद निरीछन को ललचैं बस चाह चकोर क्या के।—दीनदयाल।

मुहा०—जी ललचना = मन में पाने की प्रबल इच्छा उत्पन्न होना।

ललचाना-क्रि० स० [हिं० ललचना] (१) किसी के मन में लालच उत्पन्न करना। प्राप्ति की अभिलाषा से अधीर करना। लालसा उत्पन्न करना। (२) मोहित करना। लुभाना। उ०—चूनरि चारु चुई सी परै चटकीली हरी अँगिया ललचावै।—पद्माकर। (३) कोई अच्छी या लुभानेवाली वस्तु सामने रखकर किसी के मन में लालच उत्पन्न करना। कोई वस्तु दिखा दिखाकर उसके पाने के लिये अधीर करना। जैसे,—उसे दूर से दिखाकर ललचाना, देना कभी मत।

मुहा०—जी या मन ललचाना = मन मोहित करना। मुग्ध करना। लुभाना। उ०—गली में आय, तान मोहिनी सुनाय, मेरो मन ललचाय भज्यो कानन में रस दै।

⊛† क्रि० अ० दे० "ललचना"। उ०—(क) भौंहन चढ़ाय छिनु रहै लखि ललचाय, मुरि मुसुकाय छिन सखी सों लपटि जाय।—रघुनाथ। (ख) साँझ समै दीप को बिलोकि ललचाय सोऊ लैबे को चहत दोऊ कर को उठावै री।—दीनदयाल।

ललचौहाँ-वि० [हिं० लालच + औहाँ (प्रत्य०)] [स्त्री० ललचौंही] लालच से भरा। ललचाया हुआ। जिससे प्रबल लालसा प्रकट हो। उ०—(क) खरी खरी मुसुकाति है, लखि ललचौंहैं लाल। (ख) चितई ललचौंहैं चखनि डटि घूँघट पट माहिं।—बिहारी।

ललजिह्व-वि० [सं०] (१) जीभ लपलपाता हुआ। (२) भयंकर। खूँखार।

संज्ञा पुं० (१) कुत्ता। (२) ऊँट।

ललदेया-संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का धान जिसकी फसल अगहन में तैयार होती है।

ललन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) प्यारा बालक। दुलारा लड़का। (२) लड़का। बालक। कुमार। (३) नायक के लिये प्यार का शब्द। प्रिय नायक या पति। उ०—(क) ललन चलन की चित धरी, कल न पलन की ओट।—बिहारी। (ख)

मानहुँ मुख दिखरावनी दुलहिनि करि अनुराग। सासु सदन, मन ललनहू, सौतिन दियो सुहाग।—बिहारी। (४) केलि। क्रीड़ा। (५) साल। साखू का पेड़। (६) पियार या चिरौंजी का पेड़। प्रियाल।

ललना-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) स्त्री। कामिनी। (२) जिह्वा। जीभ। (३) एक वर्ण वृत्त जिसके प्रत्येक चरण में भगण, मगण और दो सगण होते हैं। उ०—डारत ही सोइ सुधरे पलना। चारिउ भैया री सुघरी ललना।

ललनाप्रिय-संज्ञा पुं० [सं०] (१) ह्रीवेर। (२) कदंब।

ललनिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] ललना। स्त्री।

लला-संज्ञा पुं० [सं० ललना। हिं० "लाल" का रूप] [स्त्री० लली] (१) प्यारा या दुलारा लड़का। (२) लड़का। कुमार। (३) लड़के या कुमार के लिये प्यार का शब्द। (४) नायक या पति के लिये प्यार का शब्द। प्रिय नायक या पति। उ०—लला! फिर आइयो खेलन होरी।—पद्माकर।

ललाई-संज्ञा स्त्री० [हिं० लाल+आई (प्रत्य०)] लालिमा। सुर्खी। लाली। उ०—रँगीले नैन में औरो ललाई दौरि आई है।—प्रताप।

ललाक-संज्ञा पुं० [सं०] शिश्न। लिंगेंद्रिय।

ललाट-संज्ञा पुं० [सं०] (१) भाल। मस्तक। माथा। उ०—नीको लसत ललाट पर टीको जटित जराय। छबिहिं बढ़ावत रवि मनो ससि मंडल में आय।—बिहारी।

मुहा०—ललाट में लिखा होना = भाग्य में होना। क़िस्मत में होना।

(२) भाग्य का लेख। क़िस्मत का लिखा। जैसे,—जो ललाट में होगा, वही होगा।

ललाट-पटल-संज्ञा पुं० [सं०] मस्तक का तल। माथे की सतह। उ०—भृकुटि मनोज चाप-छबिहारी। तिलक ललाट-पटल दुतिकारी।—तुलसी।

ललाट-फलक-संज्ञा पुं० [सं०] ललाट-पटल।

ललाट-रेखा-संज्ञा स्त्री० [सं०] कपाल का लेख। मस्तक पर ब्रह्मा का किया हुआ चिह्न जिसके अनुसार संसार में प्राणी का सुख या दुःख पाना माना जाता है। भाग्यलेख।

ललाटाक्ष-संज्ञा पुं० [सं०] शिव।

ललाटाक्षी-संज्ञा स्त्री० [सं०] दुर्गा।

ललाटिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) माथे पर बाँधने का एक गहना। टीका। (२) माथे पर का टीका। तिलक।

ललाना†-क्रि० अ० [सं० ललन = लालच करना] किसी वस्तु को पाने की इच्छा से अधीर होना। लोभ करना। ललचना। लालायित होना। जैसे,—तुम सब कुछ खाते हो, फिर भी ललाते रहते हो। उ०—(क) नीच निरादर-भाजन कादर कूकर टूकन हेतु ललाई।—तुलसी। (ख) कृस गात ललात जो रोटिन को घरवात घरे खुरपा खरिया।—तुलसी।

विशेष—"किसी वस्तु को ललाना" ऐसे प्रयोगों में "को" कर्म का चिह्न नहीं है; "के लिये" के अर्थ में संप्रदान का चिह्न है।

ललाम-वि० [सं०] (१) रमणीय। सुंदर। बढ़िया। (२) लाल रंग का। सुर्ख। उ०—स्याम पै ललाम औ ललामन पै स्याम ऐसी सोभा सुभ सुभित है नाना रंग गुल की।—गोपाल। (३) श्रेष्ठ। बड़ा। प्रधान।

संज्ञा पुं० (१) भूषण। अलंकार। गहना। (२) रत्न। उ०—(क) रामनाम ललित ललाम कियो लाखन को, बेढ़ा कूर कायर कपूत कौड़ी आध को।—तुलसी। (ख) चपरि चढ़ायो चाप चन्द्रमा ललाम को।—तुलसी।

यौ०—चंद्रमा ललाम = शिव, जिनका भूषण चंद्रमा है।

(३) चिह्न। निशान। (४) दंड और पताका। ध्वज। (५) सींग। शृंग। (६) घोड़ा। (७) घोड़े या गाय के माथे पर का चिह्न। अर्थात् दूसरे रंग का चिह्न। (८) घोड़े का गहना। (९) प्रभाव। (१०) घोड़े या सिंह की गर्दन पर का बाल। अयाल।

ललामक-संज्ञा पुं० [सं०] माथे में लपेटने की माला।

ललामी-संज्ञा स्त्री० [सं०] कान में पहनने का एक गहना।

संज्ञा स्त्री० [सं० ललाम+ई (प्रत्य०)] (१) सुंदरता। (२) लालिमा। लाली। सुर्खी।

ललित-वि० [सं०] (१) सुंदर। मनोहर। (२) ईप्सित। मनचाहा। प्यारा। (३) हिलता डोलता हुआ। चलता हुआ।

संज्ञा पुं० (१) शृंगार रस में एक कायिक हाव या अंगचेष्टा जिसमें सुकुमारता (नज़ाकत) के साथ भौं, आँख, हाथ, पैर आदि अंग हिलाए जाते हैं। कहीं कहीं भूषण आदि से सजाने को ललित हाव कहा है। (२) एक विषम वर्ण वृत्त जिसके पहले चरण में सगण, जगण, सगण, लघु; दूसरे चरण में नगण, सगण, जगण, गुरु; तीसरे में नगण, नगण, सगण, सगण; और चौथे में सगण, जगण, सगण, जगण होता है। उ०—सब त्यागिये असत काम। शरण गहिये सदा हरी। भय-जनित सकल दुःख टरी। भजिए अहोनिसि हरी, हरी, हरी। (३) कुछ आचार्यों के मत से एक अलंकार जिसमें वर्ण्य वस्तु (बात) के स्थान पर उसका प्रतिबिंब वर्णन किया जाता है। जैसे,—कहना तो यह था कि "राम को गद्दी मिलनी चाहिए थी, पर बनवास मिला।" पर गो० तुलसीदास जी इस प्रकार कहते हैं—(क) लिखत सुधाकर लिखिगा राहू। इसी प्रकार "जिसे ब्रह्मा अच्छा बनाना चाहते थे, उसे बुरा बना दिया" इसके स्थान पर यह

कहना—(ख) विरचत हंस काक किय जेही। (४) पाड़व जाति का एक राग जो भैरव राग का पुत्र माना जाता है और जिसमें निषाद स्वर नहीं लगता; तथा धैवत और गांधार के अतिरिक्त और सब स्वर कोमल लगते हैं। इसके गाने का समय रात्रि के तीस दंड बीत जाने पर अर्थात् प्रातःकाल है।

ललितई⊛†-संज्ञा स्त्री० दे० "ललिताई"। उ०—लाल ललाई ललितई कलित नई दरसाय। दरसो सारस रस भरे दग आदरस मँगाय।—रामसहाय।

ललितक-संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल के एक तीर्थ का नाम।

ललितकांता-संज्ञा स्त्री० [सं०] दुर्गा।

ललितपद-वि० [सं०] जिसमें सुंदर पद या शब्द हों।

संज्ञा पुं० एक मात्रिक छंद जिसके प्रत्येक चरण में १६ और १२ के हिसाब से २८ मात्राएँ होती हैं। अंत में दो गुरु रखे जाते हैं। इसे सार, नरेन्द्र और दोवै भी कहते हैं। उ०—प्रात समय उठि जनक नंदिनी त्रिभुवननाथ जगावै।

ललितपुराण-संज्ञा पुं० [सं०] बौद्धों का "ललित-विस्तर" नामक ग्रन्थ जिसमें बुद्ध का चरित्र वर्णित है।

ललितव्यूह-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बौद्ध शास्त्र के अनुसार एक समाधि। (२) एक बोधिसत्व का नाम।

ललिता-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) एक वर्ण वृत्त जिसके प्रत्येक चरण में तगण, भगण, जगण और रगण होते हैं। उ०—तै भाजि री अलि! छिपी फिरै कहाँ। तुही बता थल हरी नहीं जहाँ। (२) पद्मपुराण, ब्रह्मवैवर्त्त पुराण आदि के अनुसार राधिका की प्रधान आठ सखियों में से एक। (३) एक रागिनी जो संगीत दामोदर और हनुमत के मत से मेघ राग की और सोमेश्वर के मत से बसंत राग की पत्नी है। इसका स्वरग्राम इस प्रकार है—स ग म ध नि स अथवा स रे ग म प ध नि स (प्रथम) ध नि स ग म ध (द्वितीय)। (४) कस्तूरी। (५) पुराणोक्त एक नदी।

विशेष—कालिका पुराण में लिखा है कि जब निमि राजा के शाप से वशिष्ठ देह-हीन हो गए, तब उन्होंने कामरूप देश में संध्याचल पर्वत पर घोर तप किया, जिससे प्रसन्न होकर विष्णु ने उन्हें वर दिया। वर के प्रभाव से वशिष्ठ ने एक अमृतकुंड बनाया। उसी अमृतकुंड के पूर्व ललिता नाम की एक मनोहर नदी है, जिसे शिव जी ले आए थे। वैशाख शुक्ल ३ को इसमें नहाने का बड़ा फल है।

ललिताई⊛-संज्ञा स्त्री० [हिं० ललित + आई (प्रत्य०)] सुंदरता। सौंदर्य। उ०—(क) दृगभाग अनुराग सहित इंदिरा अधिक ललिताई।—तुलसी। (ख) सुकवि लली के यों ललिताई लहलहात तन।

ललिता पंचमी-संज्ञा स्त्री० [सं०] आश्विन महीने की शुक्ल पंचमी जिसमें ललिता देवी (पार्वती) की पूजा होती है।

ललिता-षष्ठी-संज्ञा स्त्री० [सं०] भाद्र कृष्ण षष्ठी। भादों की छठ, जिस तिथि को स्त्रियाँ पुत्र की कामना से या पुत्र के हितार्थ ललिता देवी (पार्वती) का पूजन करती हैं और व्रत रहती हैं। पूजन कुश और पलाश की टहनी पर सिंदूर आदि चढ़ाकर होता है।

ललिता सप्तमी-संज्ञा स्त्री० [सं०] भादों सुदी सप्तमी। भाद्र शुक्ल सप्तमी।

ललितोपमा-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक अर्थालंकार जिसमें उपमेय और उपमान की समता जताने के लिये सम, समान, तुल, लौं, इव आदि के वाचक पद न रखकर ऐसे पद लाए जाते हैं, जिनसे बराबरी, मुकाबला, मित्रता, निरादर, ईर्ष्या इत्यादि भाव प्रकट होते हैं। उ०—साहि तनै सरजा सिव की सभा जामधि है मेरुवारी सुर की सभा को निदरति है। ऐसो ऊँचो दुरग महाबली को जामें नखतावली सों बहस दीपावली करति है।—भूषण।

ललिया†-संज्ञा पुं० [हिं० लाल + इया (प्रत्य०)] लाल रंग का बैल।

लली-संज्ञा स्त्री० [हिं० लला] (१) लड़की के लिये प्यार का शब्द। (२) दुलारी लड़की। लाडली लड़की। जैसे,—वृषभानुलली, जनकलली। (३) नायिका के लिये प्यार का शब्द। प्रेयसी। प्रेमिका।

ललीतिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्राचीन तीर्थ। (महाभारत)

ललौहाँ-वि० [हिं० लाल + औहाँ (प्रत्य०)] [स्त्री० ललौहीं] सुर्खी मायल। ललाई लिए हुए। उ०—लाल लिलार लखा को लखे गये लोचन ह्वै ललना के ललौहें।

लल्ला-संज्ञा पुं० [हिं० लाल, लला] [स्त्री० लल्ली] (१) लड़के या बेटे के लिये प्यार का शब्द। (२) दुलारा लड़का। लाडला लड़का।

लल्लो-संज्ञा स्त्री० [सं० ललना] जीभ। जिह्वा। ज़बान।

लल्लो चप्पो-संज्ञा स्त्री० [सं० लल = जीभ इधर उधर डोलना + अनु० चप] चिकनी चुपड़ी बात जो केवल किसी को प्रसन्न करने के लिये कही जाय। ठकुरसुहाती।

क्रि० प्र०—करना।

लल्लो पत्तो†-संज्ञा स्त्री० दे० "लल्लो चप्पो"। उ०—(क) तुमको हमारे ऊपर कुछ शक है, तो इसमें लल्लो पत्तो काहे को है?—बालकृष्ण भट्ट। (ख) लल्लो पत्तो और ख़ातिरदारी इसे आती ही न थी।—बालकृष्ण भट्ट।

लवहरा†-संज्ञा पुं० [देश०] एक पौधा या घास जिसका साग खाया जाता है।

लवंग-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मलक्का द्वीप, जंजिबार तथा दक्षिण

भारत में होनेवाला एक पेड़ जिसकी सूखी कलियाँ मसाले और दवा के काम में आती हैं।
विशेष—दे० "लौंग"।
(२) उक्त वृक्ष की सूखी कली।

लवंगलता-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) लौंग का पेड़ या उसकी शाखा।
विशेष—यद्यपि "लौंग" के बड़े बड़े पेड़ होते हैं जो बीस बरस तक खड़े रहते हैं, पर भारतीय कवि संप्रदाय में "चूतलता" आदि के समान "लवंगलता" शब्द का भी व्यवहार होता है। ऐसे स्थलों में लता का अर्थ शाखा या टहनी ही लेना चाहिए।
(२) राधिका की एक सखी का नाम।

लवंगादि चूर्ण-संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक में एक प्रसिद्ध चूर्ण जो संग्रहणी, अतिसार आदि में दिया जाता है।
विशेष—लौंग, मोथा, मोचरस, जीरा, धाय के फूल, लोध, इंद्रजौ, सुगंधमाला, जवाखार, सेंधा नमक और रसांजन बराबर लेकर पीस डाला जाता है। इसकी मात्रा दस रत्ती से बीस रत्ती तक है।

लव-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बहुत थोड़ी मात्रा। बहुत छोटी मिक़दार। अत्यन्त अल्प परिमाण।
मुहा०—लव भर = थोड़ा सा। नाम मात्र को। जैसे,—उसे लव भर भी डर नहीं है।
(२) काल का एक मान। दो काष्ठा अर्थात् छत्तीस निमेष का अल्प समय। (कुछ लोग एक निमेष के साठवें भाग को लव मानते हैं) उ०—लव निमेष परिमान जुग वर्ष कल्प-सत चंड।—तुलसी। (३) लवा नाम की चिड़िया। (४) जातीफल। (५) लवंग। (६) लामज्जक। उशीरांकुश नाम का तृण। (७) काटना। छेदना। कटाई। (८) विनाश। (९) ऊन, बाल या पर जो पशु पक्षियों के शरीर से कतर कर निकाले जाते हैं। (१०) सुरागाय की पूँछ के बाल, जो चँवर बनाने के लिये कतरे जाते हैं। (११) श्री रामचन्द्र के दो यमज पुत्रों में से एक।
विशेष—जब लोकापवाद के कारण राम ने सीता जी को गर्भावस्था में वन में भेजवा दिया था, तब वहीं वाल्मीकि के आश्रम में लव और कुश इन दो जोड़ुएँ पुत्रों की उत्पत्ति हुई थी। ऋषि ने इन्हें रामायण का गान सिखा दिया था। जब इन्होंने रामचन्द्र की सभा में जाकर यह गान सुनाया, तब राम ने इन्हें पहचाना।

लवण—संज्ञा पुं० [सं०] (१) नमक। लोन।
विशेष—दे० "नमक"।
(२) एक असुर जिसे शत्रुघ्न ने मारा था। वि० दे० "लवणासुर"। (३) पुराणोक्त सात समुद्रों में से एक। खारे पानी का समुद्र। वि० दे० "लवणसमुद्र"।
वि०—[सं०] (१) नमकीन। खारा। (२) लावण्य-युक्त। सलोना। सुंदर।

लवणतृण—संज्ञा पुं० [सं०] (१) अमलोनी घास जिसका साग खाते हैं। लोनी। लोनिया। (२) कुलफा नामक साग।

लवणत्रय-संज्ञा पुं० [सं०] तीन प्रकार के नमकों का समूह, सेंधव, विट् और सचल। (वैद्यक)

लवणधेनु—संज्ञा स्त्री० [सं०] गाय के रूप में कल्पित नमक का ढेर जिसके दान का वराहपुराण में बड़ा माहात्म्य लिखा है।
विशेष—गोबर से लिपे स्थान में कुश के आसन पर सोलह प्रस्थ नमक का एक ढोंका रक्खे और उसे गाय के रूप में कल्पित करे। चार प्रस्थ और नमक पास में रखकर उसे उस गाय का बछड़ा माने। फिर चार गन्ने रखकर चार पैर, सोना रखकर मुँह और सींग, चाँदी रखकर खुर, फल रख-कर दाँत, चीनी रखकर जीभ, गंधद्रव्य रखकर नाक, मक्खन रखकर स्तन, तागा रखकर पूँछ, ताँबे के पत्तर रखकर, कुश रखकर रोएँ और काँसा रखकर दोहनी कल्पित करे। फिर यथा विधि पूजन करके सब चीजें दान कर दे।

लवणभास्कर-संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक का एक प्रसिद्ध चूर्ण जिसमें तीनों नमक और अन्य कई ओषधियाँ पड़ती हैं और जो पेट की अपच आदि बीमारियों में दिया जाता है।

लवणमेद-संज्ञा पुं० [सं०] खारी नमक।

लवणमेह-संज्ञा पुं० [सं०] सुश्रुत के अनुसार प्रमेह रोग का एक भेद जिसमें पेशाब के साथ लवण के समान स्राव होता है।

लवणयंत्र-संज्ञा पुं० [सं०] दो मुहँड़ेदार बरतनों के मुँह जोड़ कर बनाया हुआ एक यंत्र जिसमें कुछ ओषधियों का पाक होता है। इनमें से एक बरतन में नमक भर दिया जाता है।

लवणवर्ष-संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार कुश द्वीप के अंतर्गत एक वर्ष या खंड।

लवण व्यापत्-संज्ञा स्त्री० [सं०] घोड़ों की एक प्रकार की गहरी पीड़ा जो अधिक नमक खाने से होती है।

लवण समुद्र-संज्ञा पुं० [सं०] खारे पानी का समुद्र।
विशेष—यह पुराणोक्त सात समुद्रों में से एक है। और पुराणों में तो सातो समुद्रों की उत्पत्ति सगर के पुत्रों के खोदने से या प्रियव्रत राजा के रथ के चलने से बताई गई है; पर ब्रह्मवैवर्त्त में लिखा है कि श्रीकृष्ण की एक पत्नी विरजा के गर्भ से सात पुत्र हुए, जो सात समुद्र हुए। इनमें से एक पुत्र के रोने के कारण थोड़ी देर के लिये कृष्ण का वियोग हो गया। इस पर विरजा ने उसे शाप दिया कि "तू लवण समुद्र होगा और तेरा जल कोई न पीएगा।" यह कथा बहुत पीछे की कल्पित जान पड़ती है।

लवणांतक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) लवणासुर को मारनेवाले शत्रुघ्न। (२) शिव।

लवणा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) दीप्ति। आभा। (२) महाज्योतिष्मती लता। (३) चुक्र। (४) चँगेरी। (५) अमलोनी शाक। (६) एक नदी का नाम। लूनी।

लवणाचल-संज्ञा पुं० [सं०] पहाड़ के रूप में कल्पित नमक का ढेर जिसके दान का मत्स्य पुराण में बड़ा माहात्म्य लिखा है।

लवणालय-संज्ञा पुं० [सं०] लवणासुर की बसाई हुई मधुपुरी जो पीछे मथुरा के नाम से प्रसिद्ध हुई।

लवणासुर-संज्ञा पुं० [सं०] मधु नामक असुर का पुत्र जो मथुरा में रहता था और जिसे रामचंद्र की आज्ञा से शत्रुघ्न ने मारा था।

विशेष—रामायण में इसकी कथा इस प्रकार है। सत्ययुग में दैत्य कुल में लोला के गर्भ से "मधु" नामक एक पुत्र उत्पन्न हुआ। उसने घोर तप द्वारा शिव को प्रसन्न करके उनसे एक शूल प्राप्त किया। फिर दूसरी बार तप करके उसने शिव से यह वर माँगा कि यह शूल मेरे कुल में सदा बना रहे। शिव ने ऐसा वर न देकर यह वर दिया कि शूल तुम्हारे ज्येष्ठ पुत्र को मिलेगा। विश्वावसु की कन्या अनला के गर्भ से कुंभीनसी नाम की एक कन्या थी। मधु ने उसके साथ विवाह किया; और उसी के गर्भ से लवणासुर उत्पन्न हुआ। शूल पाकर वह अवध्य हो गया और अनेक प्रकार के अत्याचार करने लगा। जब रामचंद्र जी राजा हुए, तब ऋषियों ने जाकर उनकी दुहाई दी। राम की आज्ञा से शत्रुघ्न उसे मारने गए; और जिस समय उसके हाथ में शूल नहीं था, उस समय उसे मारा।

लवणोत्तम-संज्ञा पुं० [सं०] सेंधा नमक, जो सब नमकों से अच्छा माना जाता है।

लवणोत्था-संज्ञा स्त्री० [सं०] ज्योतिष्मती लता।

लवणोदक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) नमक मिला हुआ पानी। (२) क्षार समुद्र।

लवणोदधि-संज्ञा पुं० [सं०] लवण समुद्र।

लवन-संज्ञा पुं० [सं०] [वि० लवनीय, लव्य] (१) काटना। छेदना। (२) खेत की कटाई। लुनाई। (३) खेत काटने की मज़दूरी में दिया हुआ अन्न। लौनी। उ०—तुलसिदास जोरी देखत सुख सोभा अतुल न जाति कही री। रूपरासि विरची विरंचि मनो सिला लवनि रति काम लही री।—तुलसी।

लवना-क्रि० स० [हिं० लुनना] पके हुए अन्न के पौधों को खेतों से काटकर एकत्र करना। लुनना। उ०—तुलसी यह तन खेत है, मन बच करम किसान। पाप पुन्य द्वै बीज हैं बोवै सो लवै निदान।—तुलसी।

वि० दे० "लोना"।

लवनाई ⊛-संज्ञा स्त्री० [सं० लावण्य] लावण्य। सुंदरता।

लवनि, लवनी-संज्ञा स्त्री० [सं० लवन] (१) खेत में अनाज की पकी फसल की कटाई। लुनाई। (२) वह अन्न जो खेत काटनेवालों को मज़दूरी में दिया जाता है। उ०—तुलसिदास जोरी देखत सुख सोभा अतुल न जाति कही री। रूप रासि बिरची बिरंचि मनो सिला लवनि रति काम लही री।—तुलसी।

लवनो-संज्ञा स्त्री० [सं०] शरीफ़े का पेड़ या फल।

लवर †-संज्ञा स्त्री० [हिं० लपट] अग्नि की लपट। ज्वाला। उ०—नारी गारी देत रावनहिं जरत लवर की आग।—देवस्वामी।

लवलासी ⊛†-संज्ञा स्त्री० [हिं० लव = प्रेम + लासी = लसी, लगाव] प्रेम की लगावट।

लवली-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) हरफारेवरी नाम का पेड़ और उसका फल जो खाया जाता है। (२) एक विषम वर्ण वृत्त जिसके प्रथम चरण में १६, दूसरे चरण में १२, तीसरे चरण में ८ और चौथे चरण में २० वर्ण होते हैं। उ०—दनुज कुल अरि जग हित धरम धर्ता। साँची मही मधु जगत भर्ता। रामा असुर सुहर्ता। सरबस तज मन भज नित प्रभु भवदुखहर्त्ता।

लवलीन-वि० [हिं० लय + लीन] तन्मय। तल्लीन। मग्न। उ०—(क) अधर मधुर मुसुकान मनोहर, कोटि मदन मनहीन। सूरदास जहँ दृष्टि परत है होत तहीं लवलीन।—सूर। (ख) जय जय धुनि सुनि करत अमर गन नर नारी लवलीन।—सूर। (ग) भए जे विषयन के आधीना। तिनके अधम में लवलीना।—विश्राम।

लवलेश-संज्ञा पुं० [सं०] (१) अत्यंत अल्प मात्रा। बहुत थोड़ी मिकदार। (२) ज़रा सा लगाव। अल्प संसर्ग। जैसे,—इस दूध में पानी का लवलेश नहीं है। उ०—(क) जाकी कृपा लवलेश तें मतिमंद तुलसीदास हू।—तुलसी। (ख) जाके बल लवलेश ते जितेहु चराचर झारि।—तुलसी।

लवहर †-संज्ञा पुं० [देश०] एक साथ उत्पन्न दो बालक। यमज। जोड़वाँ।

लवा †-संज्ञा पुं० [सं० लाजा] अनाज का दाना जो भूनने से फूल गया हो। भुने हुए धान या ज्वार की खील। लावा। उ०—मिल्लि माधवी आदिक फूल के ब्याज विनोद लवा बरसायो करैं।—द्विजदेव।

संज्ञा पुं० [सं० लव] तीतर की जाति का एक पक्षी जो तीतर से बहुत छोटा होता है। उ०—बाज झपट जनु लवा लुकाने।—तुलसी।

विशेष—यह तीतर की तरह ज़मीन पर अधिक रहता है। पंजे बहुत लंबे होते हैं। नर और मादा में देखने में कोई भेद नहीं होता। मादा भूरे रंग के अंडे देती है। जाड़े के

दिनों में इस चिड़िया के झुंड के झुंड झाड़ियों और ज़मीन पर दिखाई पड़ते हैं। यह दाने और कीड़े खाता है।

लवाई-वि० [देश०] हाल की ब्याई हुई गाय। वह गाय जिसका बच्चा अभी बहुत ही छोटा हो। उ०—(क) पुनि पुनि मिलति सखिन बिलगाई। बालबच्छ जनु धेनु लवाई।—तुलसी। (ख) कौसल्यादि मातु सब धाईं। निरखि बच्छ जनु धेनु लवाई।—तुलसी।

संज्ञा स्त्री० [हिं० लवना + आई (प्रत्य०)] (१) खेत की फ़सल की कटाई। लुनाई। (२) फ़सल-कटाई की मज़दूरी।

लवाज़मा-संज्ञा पुं० [अ० लवाज़िम] (१) किसी के साथ रहनेवाला दल बल और साज़ सामान। साथ में रहनेवाली भीड़-भाड़ या असबाब। जैसे,—इतना लवाज़मा साथ लेकर क्यों परदेस चलते हो? (२) आवश्यक सामग्री। सामान जो किसी बात के लिये ज़रूरी हो। जैसे,—सब लवाज़मा इकट्ठा कर लो, तब तस्वीर में हाथ लगाओ।

लवासी॥†-वि० [सं० लप, या लव = बकना + आसी (प्रत्य०)] (१) बकवादी। गप्पी। झूठा। (२) लंपट। उ०—काहे दियो सुर सुख में दुःख कपटी कान्ह लवासी।—सूर।

लशकर-संज्ञा पुं० [फ़ा०] (१) सेना। फ़ौज। योद्धाओं का दल। (२) मनुष्यों का भारी समूह। भीड़भाड़। दल। जैसे,—इतना बड़ा लशकर क्यों साथ लेकर चलते हो? (३) फ़ौज के टिकने का स्थान। सेना का पड़ाव। छावनी। (४) जहाज़ में काम करनेवालों का दल। जहाज़ी आदमी।

लशकरी-वि० [फ़ा० लशकर] (१) फ़ौज का। सेना संबंधी। सेना से संबंध रखनेवाला। (२) जहाज़ पर काम करनेवाला। खलासी। जहाज़ी। (३) जहाज़ से संबंध रखनेवाला।

संज्ञा पुं० (१) सैनिक। सिपाही। (२) जहाज़ी आदमी। (३) जहाज़ियों या खलासियों की भाषा।

लशकारना-क्रि० स० [फ़ा० लश्कर] शिकारी कुत्तों को शिकार पकड़ने के लिये पुकारकर बढ़ावा देना। लहकारना। (शिकारी)

लशुन, लशून-संज्ञा पुं० [सं०] लहसुन।

लषन॥-संज्ञा पुं० दे० "लखन"।

लषना-क्रि० स० दे० "लखना"।

लष्पन-संज्ञा पुं० दे० "लक्ष्मन"

लस-संज्ञा पुं० [सं०] (१) चिपकने या चिपकाने का गुण। श्लेषण। चिपचिपाहट। (२) वह जिसके लगाव से एक वस्तु दूसरी वस्तु से चिपक जाय। लासा। (३) चित्त लगने की बात। आकर्षण। जैसे,—वहाँ कुछ लस है, तभी वह खिंच जाता है।

लसक-संज्ञा पुं० [सं०] नाचनेवाला। नर्त्तक।

लसकर†-संज्ञा पुं० दे० "लशकर"

लसदार-वि० [हिं० लस + फ़ा० दार (प्रत्य०)] जिसमें लस हो। जिसमें चिपकने या चिपकाने का गुण हो। गोंद की तरह का। लसीला।

लसना-क्रि० स० [सं० लसन] एक वस्तु को दूसरी वस्तु के साथ इस प्रकार सटाना कि वह अलग न हो। चिपकाना। जैसे,—इस काग़ज़ को किताब पर लस दो।

संयो० क्रि०—देना।

॥ क्रि० अ० (१) शोभित होना। छजना। फबना। (२) विराजना। विद्यमान होना। उ०—(क) लसत चारु कपोल दुहुँ बिच सजल लोचन चारु।—सूर। (ख) तहँ राजत दसरथ लसैं देव देव अनूप।—केशव।

लसनि॥-संज्ञा स्त्री० [हिं० लसना] (१) स्थिति। विद्यमानता। (२) शोभित होने की क्रिया या भाव। शोभा। छटा। उ०—कहत ही बातें श्री गोपाललालजू सों बाल सुने खरिका में खरी माधुरी लसति सों।—रघुनाथ।

लसम-वि० [देश०] जो खरा और चोखा न हो। दागी। दूषित। खोटा। जैसे,—लसम सोना। उ०—और भूप परखि कै ताइके सुलाखि लेत लसम को खसम तुही पै दसरत्थ के।—तुलसी।

लसलसा-वि० [हिं० लस] [स्त्री० लसलसी] लसदार। चिपचिपा। जो गोंद की तरह चिपकने चिपकनेवाला हो।

लसलसाहट-संज्ञा स्त्री० [हिं० लसलसा] लसदार होने का भाव। चिपक। चिपचिपाहट।

लसा-संज्ञा स्त्री० [सं०] हल्दी।

लसिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] लाला। थूक।

लसी-संज्ञा स्त्री० [हिं० लस] (१) लस। चिपचिपाहट। (२) दिल लगने की वस्तु। आकर्षण। जैसे,—वह कुछ लसी पाकर वहाँ जाता है। (३) लोभ का योग। फ़ायदे का डौल। जैसे,—बिना लसी के आप क्यों कहीं जाने लगे! (४) संबंध। लगाव। मेलजोल। जैसे,—ऐसे आदमी से लसी लगाना ठीक नहीं।

क्रि० प्र०—लगाना।

(५) दूध और पानी मिला शरबत।

लसीका-संज्ञा स्त्री० [सं०] मांस और चमड़े के बीच में रहनेवाला रस या पानी। लाला।

लसीला-वि० [हिं० लस + ईला (प्रत्य०)] [स्त्री० लसीली] (१) लसदार। जिसमें लस हो। जिसके लगाने से कोई वस्तु दूसरी वस्तु से चिपक जाय। चिपचिपा। (२) सुन्दर। शोभायुक्त।

लसुन-संज्ञा पुं० दे० "लहसुन"।

लसुनिया-संज्ञा पुं० दे० "लहसुनिया"।

लसोढ़ा-संज्ञा पुं० [हिं० लस = चिपचिपाहट] एक प्रकार का छोटा पेड़ जिसकी पत्तियाँ गोल गोल और फल बेर के से होते हैं।

यह बसंत में पत्तियाँ झाड़ता है; और हिन्दुस्तान में प्रायः सर्वत्र पाया जाता है । फल में बहुत ही लसदार गूदा होता है । यह फल औषध के काम में आता है और सूखी खाँसी को ढीली करने के लिये दिया जाता है। फ़ारसी में इसे सपिस्ताँ कहते हैं। हकीम लोग मिस्री *मिलाकर इसका अवलेह (चटनी) बनाते हैं, जो खाँसी* में चाटने के लिये दिया जाता है । संस्कृत में भी इसे श्लेष्मांतक कहते हैं ।

लसौटा-संज्ञा पुं० [हिं० लासा + औटा (प्रत्य०)] बाँस का चोंगा जिसमें बहेलिए चिड़िया फँसाने का लासा रखते हैं।

लस्टम पस्टम‡-क्रि० वि० [देश०] (१) धीरे धीरे । (२) किसी न किसी तरह से । अच्छी तरह या पूरे समान के साथ नहीं । जैसे,—लस्टम पस्टम काम चला जाता है ।

लस्त-वि० [सं०] (१) क्रीड़ित । (२) शोभायुक्त । सजावट से भरा ।

वि० [हिं० लटना] (१) थका हुआ । शिथिल । श्रम या थकावट से ढीला । जैसे,—चलते चलते शरीर लस्त हो गया है । (२) जिसमें कुछ करने की शक्ति या साहस न रह गया हो । अशक्त ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

लस्तक-संज्ञा पुं० [सं०] धनुष का मध्य भाग । मूठ ।

लहँगा-संज्ञा पुं० [हिं० लंक = कमर + अंगा] कमर के नीचे का सारा अंग ढाँकने के लिये स्त्रियों का एक घेरदार पहनावा जो सूत की डोरी या नाले (इज़ारबंद) से कमर में कसकर पहना जाता है *और जिसमें बहुत सी चुनटें पड़ी* रहती हैं । इसमें नाली के आकार का घेरेदार नाला पड़ा रहता है, जिसे नेफा कहते हैं । लहँगे से केवल कटि के नीचे का भाग ढँकता है; इस से इसके साथ ओढ़नी भी ओढ़ी जाती है । उ०—क्षुद्र घंटिका कटि लहँगा रँग तन तनसुख की सारी ।—सूर ।

लहकना-क्रि० अ० [सं० लता = हिलना डोलना या अनु०] (१) हवा में इधर उधर डोलना । झोंके खाना । लहराना । उ०—(क) लकपकाहिं विष भरे पसारे । लहर भरे, लहकहिं अति कारे ।—जायसी । (ख) बैठ्यो ससि ऊपर सँभारि न सकति भार बेली मानो लहकै नवेली सोनजुही की ।—रघुनाथ । (ग) नव मालती चहूँ दिसि महँकत । जमुन-लहर तट लह लह लहकत ।—गोपाल । (घ) लाल *लाल की लर लटकाए लहकति छन छन ।*

संयो० क्रि०—उठना ।

(२) हवा का बहना । हवा का झोंके देना । उ०—कंत बिनु बासर बसंत लागे अंतक से तीर ऐसे त्रिविध समीर लागे लहकन ।—देव । (३) आग का इधर उधर लपट छोड़ना । लपट का निकलना । दहकना । जैसे,—आग लहकना । (४) चाह या उत्कंठा से आगे बढ़ना । लपकना । (५) चाह से भरना । उत्कंठित होना । ललकना । उ०—अँखियाँ अधर चूमि हा हा छोड़ो कहै झूमि छतियाँ सों लागी लग लागी सी लहकिकै ।

लहकाना-क्रि० स० [हिं० लहकना] (१) हवा में इधर उधर हिलाना डुलाना । झोंका खिलाना । (२) आगे बढ़ाना। (३) चाह या उत्कंठा से आगे बढ़ाना । लपकाना । जैसे—तुमने लहका दिया, इसी से यह पीछे लगा । (४) उत्साह दिला कर आगे बढ़ाना । आगे बढ़ने के लिये उत्साहित करना । किसी ओर अग्रसर होने के लिये बढ़ावा देना । (५) किसी के विरुद्ध कुछ करने के लिये भड़काना । ताव दिलाना । बरगलाना ।

संयो० क्रि०—देना ।

लहकौर, लहकौरि-संज्ञा स्त्री० [हिं० लहना + कौर (ग्रास)] विवाह की एक रीति जिसमें दूल्हा और दुलहिन कोहबर में एक दूसरे के मुँह में कौर (ग्रास) डालते हैं। उ०—(क) लहकौरि गौरि सिखाव रामहिं सीय सन सारद कहैं ।—तुलसी। (ख) गोदा रंगनाथ मुख माहीं । मेलति हैं लहकौरि तहाँ हीं ।—रघुराज ।

लहजा-संज्ञा पुं० [अ० लहजः] गाने या बोलने का ढंग । स्वर । लय । जैसे,—यह बड़े अच्छे लहजे से गाता है ।

लहज़ा-संज्ञा पुं० [अ०] पल । अल्पकाल । क्षण ।

मुहा०—लहज़ा भर = क्षण भर । थोड़ी देर ।

लहटना†-क्रि० अ० [देश०] परचना ।

लहनदार-संज्ञा पुं० [हिं० लहना + फ़ा० दार] वह मनुष्य जिसका कुछ लहना किसी पर बाक़ी हो । ऋण देनेवाला । महाजन ।

लहना-क्रि० स० [सं० लभन, प्रा० लहन] प्राप्त करना । लाभ करना । प्राप्त करना । पाना । उ०—भावत ही निसि दिवस मन्यो, पै नहिं सुख कबहूँ लह्यो ।—सूर ।

† क्रि० स० [सं० लवन] (१) काटना । छेदना । (२) खेत की फसल काटना । (३) छीलना । तराश करना । कतरना ।

संज्ञा पुं० [सं० लभन, प्रा० लहन] (१) किसी को दिया हुआ धन जो वसूल करना हो । उधार दिया हुआ रुपया पैसा । जैसे,— हमारा सब लहना साफ़ कर दो ।

यौ०—†लहना पवना ।

मुहा०—लहना चुकाना या साफ़ करना = किसी से लिया हुआ कर्ज़ अदा करना । लिया हुआ ऋण दे देना ।

(२) वह धन जो किसी काम के बदले में किसी से मिलने-वाला हो । रुपया पैसा जो किसी कारण किसी से मिलने-वाला हो । (३) भाग्य । किस्मत । जैसे,—जिसके लहने का होगा, उसे मिलेगा ।

लहना बही-संज्ञा पुं० [हिं० लहना + बही] वह बही जिसमें ऋण लेनेवालों के नाम और रकमें लिखी जाती हैं, और जिसके अनुसार वसूली होती है।

लहनी-संज्ञा स्त्री० [हिं० लहना] (१) प्राप्ति। (२) फलभोग। उ०—लहनी करम के पाछे। दियो आपनो लैहे सोई मिलै नहीं पाछे।—सूर।

संज्ञा स्त्री० [हिं० लहना = काटना, छीलना] वह औज़ार जिससे ठठेरे बरतन छीलते हैं।

लहमा-संज्ञा पुं० [अ० लहमः] निमेष। पल। क्षण। अत्यन्त अल्प काल।

लहर-संज्ञा स्त्री० [सं० लहरी] (१) हवा के झोंके से एक दूसरे के पीछे ऊँची उठती हुई जल की राशि। बड़ा हिलोरा। मौज। उ०—लोल लहर उठि एक एक पै चलि इमि आवत।—हरिश्चन्द्र।

क्रि० प्र०—आना।—उठना।

मुहा०—लहर लेना = समुद्र के किनारे लहर में स्नान करना।

(२) उमंग। वेग। जोश। उठान। जैसे,—आनंद की लहर। उ०—फूली धेनु, फूले धाम, फूली गोपी अंग अंग फिर तरवर आनँद लहर के।—सूर। (३) मन की मौज। मन में आप से आप उठी हुई प्रेरणा। मन में वेग के साथ उत्पन्न भावना। जैसे,—उनके मन की लहर है; आज इधर ही निकल आए। (४) शरीर के अंदर के किसी उपद्रव (जैसे, बेहोशी, पीड़ा आदि) का वेग जो कुछ अंतर पर रह रहकर उत्पन्न हो। झोंका। जैसे,—साँप के काटने पर लहर आती है। उ०—(क) सुनि के राजा गा मुरझाई। जानौ लहरि सुरुज कै आई।—जायसी। (ख) सूर सुरति तनु की कछु आई उतरत लहरि के।—सूर।

मुहा०—लहर देना या मारना = रह रहकर किसी प्रकार की पीड़ा उठना। साँप काटने की लहर = साँप काटे आदमी की वह अवस्था जिसमें बेहोशी के बीच बीच में वह जाग उठता है। उ०—लाओ गुनी गोविंद को बाढ़ी है अति लहरि।—सूर।

(५) आनंद की उमंग। हर्ष या प्रसन्नता का वेग। मज़ा। मौज। जैसे,—वहाँ चलो; वहीं लहर आवेगी।

यौ०—लहर बहर = सब प्रकार का आनन्द और सुख।

मुहा०—लहर आना = आनंद आना। लहर लेना या मारना = आनंद भोगना। मौज करना।

(६) आवाज़ की गूँज। स्वर का कंप जो वायु में उत्पन्न होता है। (७) वक्र गति। इधर उधर मुड़ती हुई टेढ़ी चाल। जैसे,—वह लहरें मारता चलता है।

मुहा०—लहर मारना या देना = सीधा न जाकर इधर उधर मुड़ना।

(८) बराबर इधर उधर मुड़ती या टेढ़ी होती हुई जानेवाली रेखा। चलते सर्प की सी कुटिल रेखा। (९) हवा का झोंका। (१०) किसी प्रकार की गंध से भरी हुई हवा का झोंका। महक। लपट। उ०—खुलि रही खूब खुसबोयन की लहरि तैसे सीतल समीर डोलै तनिकऊ न डोली मैं।—निहाल।

लहरदार-वि० [हिं० लहर + फ़ा० दार (प्रत्य०)] जो सीधा न जाकर टेढ़ा मेढ़ा गया हो। जो बल खाता गया हो। कुटिल या वक्रगति से गया हुआ। जैसे,—यह लकीर सीधी नहीं है, लहरदार है।

लहरना-क्रि० अ० दे० "लहराना" उ०—बरसाती तरिवर लहरत तहँ लता रहीं लूमि लूमि।—देवस्वामी।

लहरा-संज्ञा पुं० [हिं० लहर] (१) लहर। तरंग। (२) मौज। आनंद। मज़ा। (३) बाजों की वह गत जो आरंभ में नाचने या गाने के पहले समाँ बाँधने और आनंद बढ़ाने के लिये बजाई जाती है। इसमें कुछ गाना नहीं होता, केवल ताल और स्वरों की लय मात्र होती है।

संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की घास।

लहराना-क्रि० अ० [हिं० लहर + आना (प्रत्य०)] (१) हवा के झोंके से इधर उधर हिलना डोलना। प्रकंपित होना। लहरें खाना। जैसे,—खेत लहलहाना, या खेतों में धान लहराना, लता लहराना, बाल लहराना, पताका लहराना। उ०—(क) आतप पर्यो प्रभात ताहि सों खिल्यो कमलमुख। अलक भौंर लहराय जूथ मिलि करत विविध सुख।—व्यास। (ख) मनु प्रगट मनोरथ की लता लहकि लहराति है।—गोपाल। (२) हवा का चलना या पानी का हवा के झोंका से उठना और गिरना। बहना या हिलोर मारना। (३) सीधे न चलकर साँप की तरह इधर उधर मुड़ते या झोंका खाते हुए चलना। जैसे,—यह लकीर लहराती हुई गई है। (४) मन का उमंग में होना। उल्लास में होना। जैसे,—यह सुनकर उसका मन लहरा उठा। (५) किसी वस्तु के लिये उत्कंठित होना। प्राप्त करने की इच्छा से अधीर होना। लपकना। जैसे,—उसके लिये वह लहरा उठा। (६) आग की लपट का निकलकर इधर उधर हिलना। दहकना। भड़कना। उ०—श्रीपति सुकवि यो वियोगी कहरन लागे, मदन की आगि लहरान लागी तन में—श्रीपति। (७) शोभित होना। लसना। विराजना। शोभापूर्वक रहना। उ०—(क) कहै पद्माकर जरीन की जवाई पर साहब सवाई की ललाई लहराति है।—पद्माकर। (ख) त्यागि भय भाव चहूँ घूमत अनंद भरे विपिन विहारी पर सुखसाज लहरात।

क्रि० स० (१) हवा के झोंके में इधर उधर हिलाना डुलाना या हिलने डोलने के लिये छोड़ देना। जैसे,—सिर के बाल लहराना। (२) सीधे न चलाकर साँप की तरह इधर उधर मोड़ते हुए चलाना। वक्र गति से ले जाना (३) बार

बार, इधर से उधर हिलाना डुलाना । उ०—सूरदास प्रभु सोइ कन्हैया लहरावति मल्हरावति है ।—सूर ।

लहरि(ि)†-संज्ञा स्त्री० दे० "लहर" ।

लहरिया-संज्ञा पुं० [हिं० लहर] (१) ऐसी समानांतर रेखाओं का समूह जो सीधी न जाकर क्रम से इधर उधर मुड़ती हुई गई हों। लहरदार चिह्न । टेढ़ी मेढ़ी गई हुई लकीरों की श्रेणी। जैसे,—(क) इसका लहरिया किनारा है। (ख) इसमें लहरिया काम बना हुआ है । (२) एक प्रकार का कपड़ा जिसमें रंग बिरंगी टेढ़ी मेढ़ी लकीरें बनी होती हैं। (३) वह साड़ी या धोती जिसकी रंगाई टेढ़ी मेढ़ी लकीरों के रूप में हो । उ०—(क) लहरत लहर लहरिया लहर बहार। मोतिन जड़ी किनरिया बिथुरे बार ।—रहीम । (ख) फहर फहर होत प्रीतम को पीतपट, लहर लहर होत प्यारी को लहरिया ।—देव । (४) ज़री के कपड़ों के किनारे बनी हुई बेल ।

संज्ञा स्त्री० "लहर" शब्द का पूरबी निर्देशात्मक रूप। उ०—मैं गेलिउँ सोइ पिया मोर जागे, आइ गई सुषमन लहरिया हो रामा ।—कबीर ।

लहरियादार-वि० [हिं० लहरिया + दार (प्रत्य०)] जिसमें लहरिया बना हो। जिसमें बहुत सी टेढ़ी मेढ़ी रेखाएँ हों ।

लहरी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) लहर । तरंग । हिलोर । मौज । उ०—ऊधो, बसुधा में सुधा-लहरी लला की बरनी मैन कलाचारी कहि प्यारी कब बोलिहैं ।—दीनदयाल ।

† वि० [हिं० लहर + ई (प्रत्य०)] मन की तरंग के अनुसार चलनेवाला । आनंदी । मनमौजी । खुश-मिज़ाज ।

लहल-संज्ञा पुं० [?] एक प्रकार का राग जो दीपक राग का पुत्र कहा जाता है ।

लहलह-वि० [हिं० लहलहाना या अनु०] (१) लहलहाता हुआ । हरा भरा । सरस । उ०—लाल नील सित पीत कमलकुल सब ऋतु में लहलहाई ।—देवस्वामी । (२) हर्ष से फूला हुआ । खुशी से खिला हुआ । प्रफुल्लित ।

लहलहा-वि० [हिं० लहलहाना] [स्त्री० लहलही] लहलहाता हुआ । फूल पत्तों से भरा और सरस । हरा भरा । (२) आनन्द से पूर्ण । खुशी से भरा हुआ । प्रफुल्ल । (३) हृष्ट पुष्ट । जैसे, देह लहलही होना ।

लहलहाना-क्रि० अ० [हिं० लहरना (पत्तियों का)] (१) लहरानेवाली हरी पत्तियों से भरना । हरा भरा होना । फूल पत्तों से सरस और सजीव दिखाई देना । जैसे,—चारों ओर लहलहाते खेत चले गए हैं ।

संयो० क्रि०—उठना ।—जाना ।

(२) प्रफुल्ल होना । आनन्द से पूर्ण होना । खुशी से भरना । जैसे,—इतना सुनते ही वे लहलहा उठे । (३) सूखे पेड़ या पौधे में फिर से पत्तियाँ निकलना । पनपना । जैसे,—चार ही दिन पानी पाने से यह पौधा लहलहा उठा । (४) दुर्बल शरीर का फिर से हृष्ट और सजीव होना । शरीर पनपना ।

संयो० क्रि०—उठना ।

लहलही-वि० स्त्री० दे० "लहलहा"

लहसी†-संज्ञा स्त्री० [देश०] वह दलदल जो किसी जलाशय के सूख जाने पर रह जाती है ।

लहसुआ†-संज्ञा पुं० दे० "लसोड़ा" ।

लहसुन-संज्ञा पुं० [सं० लशुन] (१) एक कंद से उठकर चारों ओर गिरी हुई लम्बी लम्बी पतली पत्तियों का एक पौधा, जिसकी जड़ गोल गाँठ के रूप में होती है । उ०—तुलसी अपनो आचरण भलो न लागत कासु । तेहि न बसति जो खात नित लहसुनहू की बासु ।—तुलसी ।

विशेष—इसकी जड़ या कंद प्याज के ही समान तीक्ष्ण और उग्र गंधवाली होती है; इससे इसे बहुत से आचारवान् हिंदू विशेषतः वैष्णव नहीं खाते । प्याज की गाँठ और लहसुन की गाँठ की बनावट में बहुत अंतर होता है । प्याज की गाँठ कोमल कोमल छिलकों की तहों से मढ़ी हुई होती है, पर लहसुन की गाँठ चारों ओर एक पंक्ति में गुछी हुई फाँकों से बनी होती है जिन्हें जवा कहते हैं । वैद्यक में यह मांसवर्द्धक, शुक्रवर्द्धक, स्निग्ध, उष्णवीर्य्य, पाचक, सारक, कटु, मधुर, तीक्ष्ण, टूटी जगह को ठीक करनेवाला, कफ-वातनाशक, कंठशोधक, गुरु, रक्त पित्त वर्द्धक, बलकारक, वर्ण-प्रसादक, मेधा-जनक, नेत्रों का हितकारी, रसायन तथा हृद्रोग, जीर्णज्वर, कुक्षिशूल, गुल्म, अरुचि, कास, शोथ, अर्श, आमदोष, कुष्ठ, अग्निमांद्य, कृमि, वायु, श्वास तथा कफनाशक माना जाता है। भावप्रकाश में लिखा है कि लहसुन खानेवाले के लिये खट्टी चीजें, मद्य और मांस हितजनक है; तथा कसरत, धूप, क्रोध, अधिक जल, दूध और गुड़ अहितकर है । वैद्यक में इसके बहुत गुण कहे गए हैं । यह तरकारी के मसाले में पड़ता है । "भावप्रकाश" में लहसुन के संबंध में यह आख्यान लिखा है—जिस समय गरुड़ इंद्र के यहाँ से अमृत हरकर लिए जा रहे थे, उस समय उसकी एक बूँद ज़मीन पर गिर पड़ी । उसी से लहसुन की उत्पत्ति हुई । मनु आदि स्मृतियों में इसके खाने का निषेध पाया जाता है ।

पर्य्या०—महौषध । अरिष्ट । महाकंद । म्लेच्छकंद । रसोनक । भूतघ्न । उग्रगंध ।

(२) मानिक का एक दोष जिसे संस्कृत में "अशोभक" कहते हैं ।

लहसुनिया-संज्ञा पुं० [हिं० लहसुन] धूमिल रंग का एक रत्न या बहुमूल्य पत्थर । रुद्राक्ष ।

विशेष—यह नवरत्नों में है तथा लाल, पीले और हरे रंग का भी होता है। जिस पर तीन अर्द्ध रेखाएँ हों, वह उत्तम समझा जाता है और "ढाई सूत का" कहलाता है।

लहसुवा–संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का साग।

लहा॥–संज्ञा पुं० दे० "लाह"।

लहाछेह–संज्ञा पुं० [?] (१) नृत्य की क्रियाओं में से चौथी क्रिया। नाच की एक गति। (२) नाचने में तेज़ी और झपट। उ०—गोपिन सँग निस सरद की रमत रसिक रसरास। लहाछेह अति गतिन की सबन लखे सब पास। —बिहारी।

लहालह†॥–वि० दे० "लहलहा" उ०—(क) मालति औ मुचकुन्द है केदलि के परकास। पुरइन जामें लहालहि शोभा अधिक प्रकास।—कबीर। (ख) नभ पुर मंगल गान निसान गहागहे। देखि मनोरथ सुरतरु ललित लहालहे। —तुलसी।

लहालोट–वि० [हिं० लाभ, लाह + लोटना] (१) हँसी से लोटता हुआ। हँसी में मग्न। (२) खुशी से भरा हुआ। आनंद के मारे उछलता हुआ। उल्लास-मग्न। जैसे,—यह कविता सुनते ही वह लहालोट हो गया। (३) प्रेम-मग्न। लुभाया हुआ। लुब्ध। मोहित। लट्टू। जैसे,—वह उसका रूप देखते ही लहालोट हो गया।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

लहासन–संज्ञा स्त्री० [देश०] वह काली भेंड़ जिसकी कनपटी से माथे तक का भाग लाल होता है। (गड़ेरिये)

लहासी–संज्ञा स्त्री० [सं० लभस, प्रा० लहस = रस्सी] (१) वह मोटी रस्सी जिससे नाव या जहाज़ बाँधे जाते हैं। (२) रस्सी। डोरी। (३) रास्ते में निकली हुई जड़। (पालकी के कहार)

लहि†–अव्य० [हिं० लहना = प्राप्त होना, पहुँचना] पर्य्यंत। तक। ताईं। उ०—आवहु करहु कदरमस साजू। चढ़हिं बजाइ जहाँ लहि राजू।—जायसी।

लहिला†–संज्ञा पुं० दे० "रहिला"।

लहु॥†–अव्य० दे० "लौं"। उ०—यह कलेसु कारज अलप बड़ी आस लहु लाहु। उदासीन सीतारमनु समय सरिस निरबाहु।—तुलसी।

लहुरा†–वि० [सं० लघु, प्रा० लहु + रा (प्रत्य०)] [स्त्री० लहुरी] छोटा। कनिष्ठ। जैसे,—लहुरा भाई।

लहुरी†–वि० स्त्री० [हिं० लहुरा] छोटी। कनिष्ठा।

लहू–संज्ञा पुं० [सं० लोह, हिं० लोहू] रक्त। लोहू। रुधिर। खून।

मुहा०—लहूलुहान होना = खून से भर जाना। अत्यन्त लहू बहना। विशेष रक्तस्राव होना।

लहेर–संज्ञा पुं० [हिं० लहना = पाना] ब्राह्मण। (सुनार)

लहेरा–संज्ञा पुं० [हिं० लाह = लाख + एरा (प्रत्य०)] (१) एक जाति जो रेशम रँगने का काम करती है। (२) लाह का पक्का रँग चढ़ानेवाला। (३) पक्का रेशम रँगनेवाला। रँगरेज़। उ०—तारकसी अत्तार घनेरे। जोलहा पुनि कलवार लहेरे। —गोपाल।

लहेसना†–क्रि० स० [देश०] साँचे के पत्तों को गाभे पर बैठाना। (बरतन बनानेवाले)

लहेरा–संज्ञा पुं० [देश०] छोटे डील का एक सदाबहार पेड़ जो पंजाब, दक्खिन, गुजरात और राजपूताने में बहुत होता है। इसके हीर की लकड़ी बहुत चिकनी, साफ़ और मज़बूत होती है और कुरसी, मेज़, आलमारी इत्यादि सजावट के समान बनाने के काम में आती है।

लाँक†–संज्ञा स्त्री० [सं० लक = डंठल या बाल] (१) जौ, गेहूँ, चने, अरहर इत्यादि के पके और कटे हुए पौधों का समूह जो झाड़ने के वास्ते एकत्र हों। ताजी कटी हुई फसल। (२) भूसा।

संज्ञा स्त्री० [हिं० लंक] (१) कमर। कटि। उ०—लगी लाँक लोयन भरी लोयन लेति लगाय।—बिहारी।

क्रि० प्र०—डालना।—लगाना।

(३) परिमाण। मिकदार।

लाँग–संज्ञा स्त्री० [सं० लांगूल = पूँछ] धोती का वह भाग जो दोनों जाँघों के नीचे से निकालकर पीछे की ओर कमर से खोंस लिया जाता है। काछ। जैसे,—धोती की लाँग।

क्रि० प्र०—कसना।—बाँधना।—मारना।—लगाना।

लाँगड़ो–संज्ञा पुं० [सं० लांगूल] हनुमान जी। (डिं०)

लांग प्राइमर–संज्ञा पुं० [अं०] छापेखाने में एक प्रकार का टाइप जिसका आकार आदि इस प्रकार होता है—"लांग प्राइमर"।

लांगल–संज्ञा पुं० [सं०] (१) खेत जोतने का हल। (२) चंद्रमा का अर्द्धोदित शृंग। (३) शिश्न। लिंग। (४) एक प्रकार का फूल। (५) ताड़ का पेड़।

लांगलक–संज्ञा पुं० [सं०] सुश्रुत के अनुसार हल के आकार का वह घाव जो भगंदर रोग में गुदा में शस्त्र चिकित्सा करके किया जाता है।

लांगलकी–संज्ञा स्त्री० [सं०] कलियारी नाम का जहरीला पौधा।

लांगलग्रह–संज्ञा पुं० [सं०] खेतिहर। किसान।

लांगल चक्र–संज्ञा पुं० [सं०] फलित ज्योतिष में एक प्रकार का चक्र जिसकी सहायता से खेती के संबंध में शुभाशुभ फल जाने जाते हैं। इसका आकार इस प्रकार का होता है—

लांगलध्वज–संज्ञा पुं० [सं०] बलराम।

लांगलाख्य-संज्ञा पुं० [सं०] कलियारी नाम का जहरीला पौधा।

लांगलि-संज्ञा पुं० [सं०] (१) कलियारी नाम का जहरीला पौधा। (२) मजीठ। (३) जल-पीपल। (४) पिठवन। (५) कौंछ। केवाँच। (६) गज पीपल। (७) चव्य। चाव। (८) महाराष्ट्री या मराठी नाम की लता। (९) ऋषभक नाम की अष्टवर्गीय ओषधि।

लांगलिक-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का स्थावर विष।

लांगलिका-संज्ञा स्त्री० दे० "लांगलि"।

लांगलिकी-संज्ञा स्त्री० [सं०] कलियारी।

लांगलिनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] कलियारी। कलिहारी।

लांगली-संज्ञा पुं० [सं० लांगलिन्] (१) श्री बलराम जी। (२) नारियल। (३) सर्प। साँप।

संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) पुराणानुसार एक नदी का नाम। (२) कलियारी। (३) मजीठ। (४) पिठवन। (५) कौंछ। केवाँच। (६) जल-पीपल। (७) गजपीपल। (८) चव्य। चाव। (९) महाराष्ट्री नाम की लता। (१०) ऋषभक नाम की अष्टवर्गीय ओषधि।

लांगलीश-संज्ञा पुं० [सं०] एक शिव लिंग का नाम।

लांगली शाक-संज्ञा पुं० [सं०] जल पीपल।

लांगलीषा-संज्ञा स्त्री० [सं०] हल का लट्ठा। हरिस।

लांगुल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) पूँछ। दुम। (२) शिश्न। लिंग।

लांगुली-संज्ञा पुं० [सं० लांगुलिन्] (१) बंदर। (२) ऋषभ नामक ओषधि। (३) पिठवन। (४) कौंछ। केवाँच।

लांगुलीका-संज्ञा स्त्री० [सं०] पृश्निपर्णी। पिठवन।

लांगूल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) दुम। पूँछ। (२) शिश्न। लिंग।

लांगूला-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) केवाँच। कौंछ। (२) पिठवन। पृश्नपर्णी।

लांगूली-संज्ञा पुं० [सं० लांगूलिन्] बंदर। वानर।

संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) ऋषभक नाम की अष्टवर्गीय ओषधि। (२) पिठवन। पृश्निपर्णी। (३) केवाँच। कौंछ।

लाँघना-क्रि० स० [सं० लंघन] (१) किसी चीज के इस पार से उस पार जाना। डाँकना। नाँघना। जैसे,—लड़के को लाँघकर मत जाया करो। (२) किसी वस्तु को उछलकर पार करना। जैसे,—यह नाला तो तुम यों ही लाँघ सकते हो।

संयो० क्रि०—जाना।

लाँघनी उड़ी-संज्ञा स्त्री० [हिं० लाँघना + उड़ी = कुदान] मालखंभ की एक कसरत जो साधारण उड़ी के ही समान होती है। इसमें विशेषता यह है कि इसमें बीच का कुछ स्थान कूद या लाँघकर पार किया जाता है।

लाँच-संज्ञा स्त्री० [देश०] रिशवत। घूस। उत्कोच।

लांछन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) चिह्न। निशान। (२) ... (३) दोष। कलंक। जैसे,—तुम तो यों ही सबको ... लगाया करते हो।

क्रि० प्र०—लगाना।

लांछना-संज्ञा स्त्री० दे० "लांछन"।

लांछित*-वि० [सं० लांछन] जिसे लांछन लगा हो। क... दोषयुक्त। लांछित।

लाँजी-संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का धान।

लाँड़†-संज्ञा पुं० दे० "लंड"।

लांतकज-संज्ञा पुं० [सं०] जैनियों के एक प्रकार के दे... का गण।

लांपट्य-संज्ञा पुं० [सं०] (१) लंपट होने का भाव। लं... (२) व्यभिचार।

लाँबा†*-वि० दे० "लंबा"। उ०—(क) बारहिं हैं सु... गरो अति लाँबो सो मूँड़ उठावत है।—सीताराम। (ख... योजन लाँबो अरु ऊँचो।—गिरधर। (ग) लाँबी डा... ठौर ठौर गिर परी राम देखी जेहि घरी देख रही मुख... को।—हृदयराम। (घ) लहलही लाँबी लटें लपटी... पर।—पद्माकर।

लाइ*†-संज्ञा पुं० [सं० अलात = लुक, प्रा० अलाय] अ... उ०—(क) तब लंक हनुमंत लाइ दई।—केशव। ... ज्यों ज्यों बरसत घोर घन घनघमंड गरवाइ। त्यों... परति प्रचंड अति नई लगन की लाइ।—पद्माकर।

लाइक-वि० दे० "लायक"।

लाइची-संज्ञा स्त्री० दे० "इलायची"।

लाइन-संज्ञा स्त्री० [अं०] (१) कतार। अवली। (२) पंक्ति। स... (३) रेखा। लकीर। (४) रेल की सड़क। (५) ... वह पंक्ति जिनमें सिपाही रहते हैं। बारिक। लैन।

लाई†-संज्ञा स्त्री० [सं० लाजा] उबाले हुए धानों को सुखाकर... बालू में भूनने से बनी हुई खीलें। धान का लावा।

संज्ञा स्त्री० [हिं० लाना = लगाना] छिपी शिकायत। चुगल... निंदा।

क्रि० प्र०—लगाना।

यौ०—लाई लुतरी = (१) चुगली। शिकायत। (२) वह जो इधर... दूसरी की चुगली खाती फिरती हो। एक से दूसरे की... करनेवाली। चुगलखोर। (स्त्री०)

लाऊ-संज्ञा पुं० [हिं० अलाबू] लौकी। कद्दू। घिया। वि०... "घिया"।

लाकड़ी-संज्ञा स्त्री० दे० "लकड़ी"।

लाकिनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] तांत्रिकों के अनुसार एक योगि... का नाम।

लाकुच-संज्ञा पुं० दे० "लकुच"।

लाक्षण†-वि० [सं०] लक्षण संबंधी। लक्षण का।

लाक्षणिक-वि० [सं०] (१) जिससे लक्षण प्रकट हो। (२) लक्षण संबंधी।
संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह छंद जिसके प्रत्येक चरण में ३२ मात्राएँ हों। (२) वह जो लक्षणों का ज्ञाता हो। लक्षण जाननेवाला।

लाक्षा-संज्ञा स्त्री० [सं०] लाख। लाह।

लाक्षागृह-संज्ञा पुं० [सं०] लाख का वह घर जिसे दुर्योधन ने पांडवों को जला देने की इच्छा से बनवाया था। आग लगने से पहले ही सूचना पाकर पांडव लोग इस घर से निकल गए थे।

लाक्षातरु-संज्ञा पुं० [सं०] पलास का वृक्ष।

लाक्षा तैल-संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक में एक प्रकार का तेल जो साधारण तेल, लाख, हल्दी और मजीठ आदि डालकर पकाने से बनता है। यह दाह और ज्वर का नाशक माना जाता है।

लाक्षादि तैल-संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक में एक प्रकार का तेल जो साधारण तेल में लाख, दूध या दही, लाल चंदन, असगंध, हल्दी, दारु हल्दी, मुलेठी, कुटकी, रेणुका आदि ओषधियाँ पकाने से बनता है। यह जीर्णज्वर और राजयक्ष्मा आदि रोगों को दूर करनेवाला और बलवर्द्धक माना जाता है।

लाक्षाप्रसाद-संज्ञा पुं० [सं०] पठानी लोध।

लाक्षाप्रसादन-संज्ञा पुं० [सं०] लाल लोध।

लाक्षारस-संज्ञा पुं० [सं०] महावर, जो पानी में लाख औटाकर बनाते हैं।

लाक्षावृक्ष-संज्ञा पुं० [सं०] (१) ढाक। पलास। (२) कोशाम्र। कोसम।

लाक्षिक-वि० [सं०] (१) लाक्षा संबंधी। लाख का। (२) लाख का बना हुआ। लाखी।

लाख-वि० [सं० लक्ष, प्रा० लक्ख] (१) सौ हजार। उ०—लाखन हू की भीर से आँखि वहीं चलि जाहिं। (२) (लक्षणा से) बहुत अधिक। गिनती में बहुत ज्यादा।
मुहा०—लाख टके की बात = अत्यंत उपयोगी बात।
संज्ञा पुं० सौ हजार की संख्या जो इस प्रकार लिखी जाती है—१००००० ।
क्रि० वि० बहुत। अधिक। जैसे,—तुम लाख कहो, मैं एक न मानूँगा।
मुहा०—लाख से लीख होना = अत्यधिक से अत्यल्प हो जाना। सब कुछ खो (?) न रह जाना। उ०—बहुतक भुवन सोह अँतरिक्षा। रहे जो लाख भये ते लीखा।—जायसी। लाख का घर खाक होना = लाखों रुपए का घर या खानदान नष्ट होना।
संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) एक प्रकार का प्रसिद्ध लाल पदार्थ जो पलास, पीपल, कुसुम, बेर, अरहर आदि अनेक प्रकार के वृक्षों की टहनियों पर कई प्रकार के कीड़ों से बनता है। लाह।

विशेष—एक प्रकार के बहुत छोटे कीड़े होते हैं, जिनकी कई जातियाँ होती हैं। ये कीड़े या तो कुछ वृक्षों पर आप से आप हो जाते हैं या इसी लाल पदार्थ के लिये पाले जाते हैं। वृक्षों पर ये कीड़े अपने शरीर से एक प्रकार का लस-दार पदार्थ निकालकर उससे घर बनाते हैं और उसी में बहुत अधिक अंडे देते हैं। कीड़े पालनेवाले बैसाख और अगहन में वृक्षों की शाखाओं पर से खुरचकर यह लाल द्रव्य निकाल लेते हैं और तब इसे कई तरह से साफ करके काम में लाते हैं। इससे कई प्रकार के रंग, तेल, वार्निश और चूड़ियाँ, कुमकुमे आदि द्रव्य बनते हैं। चपड़ा भी इसी से तैयार होता है। लाख केवल भारत में ही होती है; और कहीं नहीं होती। यहीं से यह सारे संसार में जाती है। यहाँ इसका व्यवहार बहुत प्राचीन काल से, संभवतः वैदिक काल से, होता आया है। पहले यहाँ इससे कपड़े और चमड़े आदि रँगते थे और पैर में लगाने के लिये अलता या महावर बनाते थे। वैद्यक में इसे कटु, स्निग्ध, कषाय, हलकी, शीतल, बलकारक और कफ, रक्त-पित्त, हिचकी, खाँसी, ज्वर, विसर्प, कुष्ट, रुधिर-विकार आदि को दूर करनेवाली माना है।

पर्य्या०—कीटजा। रक्तमातृका। अलक्तक। जंतुका।
(२) लाल रंग के वे बहुत छोटे छोटे कीड़े जिनसे उक्त द्रव्य निकलता है। इनकी कई जातियाँ होती हैं।

लाखना-क्रि० स० [हिं० लाख + ना (प्रत्य०)] लाख लगाकर बरतन या और किसी चीज में का छेद बंद करना। उ०—शील तो सिधान्यो तब संग न सिधारी जब तऊ भटो भाजन लौं फूटो घट लाखयो।—हृदयराम।
‡† क्रि० स० [सं० लक्ष] लख लेना। जान लेना। समझ लेना। उ०—मुनि कै महादेव कै भाखा। सिद्ध पुरुष राजै मन लाखा।—जायसी।

लाखपती-संज्ञा पुं० दे० "लखपती"।

लाखा-संज्ञा पुं० [हिं० लाख] (१) लाख का बना हुआ एक प्रकार का रंग जिसे स्त्रियाँ सुन्दरता के लिये होंठों पर लगाती हैं।
क्रि० प्र०—जमाना।—लगाना।
(२) गेहूँ के पौधों में लगनेवाला एक रोग जिससे पौधे की नाल लाल रंग की होकर सड़ जाती है। इसे गेरुआ या कुकुही भी कहते हैं।

विशेष—यह एक प्रकार के बहुत ही सूक्ष्म लाल रंग के कीड़ों का समूह होता है।

संज्ञा पुं० [हिं० लाख = लक्ष] एक प्रसिद्ध भक्त जो मारवाड़ देश का निवासी था।

लाखागृह-संज्ञा पुं० दे० "लाक्षागृह।

लाखिराज-वि० [अ०] (भूमि) जिसका लगान न देना पड़ता हो। जिस पर कर न हो। जैसे, लाखिराज ज़मीन।

लाखिराजी-संज्ञा स्त्री० [हिं० लाखिराज + ई (प्रत्य०)] वह भूमि जिस पर कोई लगान न हो।

लाखी-वि० [हिं० लाख + ई (प्रत्य०)] लाख के रंग का। मटमैला लाल।

संज्ञा पुं० मटमैला लाल रंग। लाख का सा रंग।

लाग-संज्ञा स्त्री० [हिं० लगना] (१) संपर्क। संबंध। लगाव। ताल्लुक। जैसे,—(क) इन दोनों में कहीं से कोई लाग तो नहीं मालूम होती। (ख) यह डंडा अधर में बे-लाग खड़ा है। (२) प्रेम। प्रीति। मुहब्बत। (३) लगावट। लगन। मन की तत्परता। उ०—वरणत मान प्रवास पुनि निरखि नेह की लाग।—पद्माकर। (४) युक्ति। तरकीब। उपाय। (५) वह स्वाँग आदि जिसमें कोई विशेष कौशल हो और जो जल्दी समझ में न आवे। जैसे,—किसी के पेट या गर्दन के आर पार (वास्तव में नहीं, बल्कि केवल कौशल से) तलवार या कटार गई हुई दिखलाना। (६) प्रतिस्पर्धा। प्रतियोगिता। चढ़ा ऊपरी।

यौ०—लाग डाँट।

(७) बैर। शत्रुता। दुश्मनी। झगड़ा।

क्रि० प्र०—मानना।—रखना।

(८) जादू। मंत्र। टोना। (९) वह चेप जिससे चेचक का अथवा इसी प्रकार का और कोई टीका लगाया जाता है। (१०) वह नियत धन जो विवाह आदि शुभ अवसरों पर ब्राह्मणों, भाटों, नाइयों आदि को अलग अलग रस्मों के संबंध में दिया जाता है। (११) धातु को फूँककर तैयार किया हुआ रस। भस्म। (१२) दैनिक भोजन सामग्री। रसद। (बुंदेल०) (१३) भूमि कर। लगान। उ०—अपनी लाग लेहु लेखो करि जो कछु राज अंश को दाम।—सूर। (१४) एक प्रकार का नृत्य। उ०—अरु लाग धाउ राय-रंगाल।—केशव।

लागडाँट-संज्ञा स्त्री० [हिं० लाग = बैर + डाँट] (१) शत्रुता। दुश्मनी। बैर। (२) प्रतिस्पर्धा। प्रतियोगिता। चढ़ा ऊपरी।

संज्ञा स्त्री० [सं० लग्नदंड] नृत्य की एक क्रिया।

लागत-संज्ञा स्त्री० [हिं० लगना] वह खर्च जो किसी चीज की तैयारी या बनाने में लगे। कोई पदार्थ प्रस्तुत करने में होनेवाला व्यय। जैसे,—(क) इस मकान पर १००००) लागत आई है। (ख) तुम्हारा यह लिहाफ कितनी लागत का है? (ग) हम मे हम लागत भर लेंगे, मुनाफ़ा नहीं लेंगे।

क्रि० प्र०—आना।—बैठना।—लगाना।

लागि॥†-अव्य० [हिं० लगना] (१) कारण। हेतु। (२) निमित्त। लिये। खातिर। वास्ते। उ०—(क) जे देव देवी सेइ अति हित लागि चित सनमानि कै। ते यंत्र मंत्र सिखाय राखत सबनि सो पहिचानि कै।—तुलसी। (ख) तुमहिं लागि धरिहौं नर देहा।—तुलसी।

लागू†-वि० [हिं० लगना] (१) जो लग सकता हो या लगने योग्य हो। प्रयुक्त होने योग्य। चरितार्थ होनेवाला। जैसे,—वही नियम यहाँ भी लागू है।

लागे†-अव्य० [हिं० लगना] वास्ते। लिये। उ०—पुत्र शरीर परा तब आगे। रोवत मृषा जीव के लागे।

लाघरक-संज्ञा पुं० [सं०] हलीमक नामक रोग।

लाघव-संज्ञा पुं० [सं०] (१) लघु होने का भाव। लघुता। हलकापन या छोटापन। (२) थोड़ा होने का भाव। कमी। अल्पता। (३) हाथ की सफ़ाई। फुर्ती। तेज़ी। जैसे, हस्त लाघव। (४) नपुंसकता। (५) आरोग्यता। नीरोगता। तंदुरुस्ती।

अव्य० [सं०] फुरती से। जल्दी से। सहज में। उ०—अति लाघव उठाय धनु लीन्हा।—तुलसी।

लाघवी॥-संज्ञा स्त्री० [सं० लाघव + ई (प्रत्य०)] फुर्ती। शीघ्रता।

लाचार वि० [फ़ा०] जिसका कुछ वश न चलता हो। विवश। मजबूर।

क्रि० वि० विवश होकर। मजबूर होकर।

लाचारी-संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] लाचार होने का भाव। मजबूरी। विवशता।

लाची-संज्ञा स्त्री० दे० "इलायची"।

लाचीदाना-संज्ञा पुं० [हिं० इलायची + दाना] खाली चीनी की एक प्रकार की मिठाई जो छोटे छोटे गोल दानों के आकार की होती है। कभी कभी इसके अंदर सौंफ या इलायची का दाना भी भरा होता है। इलायची दाना।

लाछन॥-संज्ञा पुं० दे० "लांछन"।

लाज-संज्ञा स्त्री० [सं० लज्जा] लज्जा। शर्म। हया।

क्रि० प्र०—आना।—करना।

मुहा०—लाज रखना = प्रतिष्ठा बचाना। आबरू खराब न होने देना।

संज्ञा पुं० [सं०] (१) खस। उशीर। (२) पानी में भीगा हुआ चावल। (३) धान का लावा। खील।

लाजना॥†-क्रि० अ० [हिं० लाज + ना (प्रत्य०)] लज्जित होना। शरमाना। उ०—(क) मे अदन अधर लखि लखि बिंबफल लाजै।—प्रताप। (ख) जेहि तुरंग पर राम बिराजै। गति बिलोकि खगनायक लाजै।—तुलसी।

लाजपेया-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह माँड़ जो खोई या लावा उबालने से निकले। इसका व्यवहार रोगियों को पथ्य देने में होता है।

लाजभक्त-संज्ञा पुं० [सं०] खोई या लावा का पकाया हुआ भात, जो रोगियों को पथ्य में दिया जाता है।

लाजवंत-वि० [हिं० लाज + वंत (प्रत्य०)] [स्त्री० लाजवंता] जिसे लज्जा हो। शर्मदार। हयादार।

लाजवंती-संज्ञा स्त्री० [हिं० लजालू] लजालू नाम का पौधा। छुई मुई।

लाजवर्द-संज्ञा पुं० [फ़ा०] (१) एक प्रकार का प्रसिद्ध कीमती पत्थर जिसे संस्कृत में 'राजवर्तक' कहते हैं। यह जंगाली रंग का होता है और इसके ऊपर सुनहले छींटे होते हैं। यह वातज रोगों के लिये गुणकारी, मन को प्रसन्न करनेवाला, हृदय के लिये बलकारी और उन्माद आदि रोगों में उपकारी माना जाता है। आँखों में सुरमा लगाने के लिये इसकी सलाई भी बनती है, जो बहुत अधिक गुणकारी मानी जाती है। रावटी। (२) विलायती नील जो गंधक के मेल से बनता और बहुत बढ़िया होता है।

लाजवर्दी-वि० [फ़ा०] लाजवर्द के रंग का। हलका नीला।

लाजवाब-वि० [फ़ा०] (१) जिसके जोड़ का और कोई न हो। अनुपम। बेजोड़। (२) जो कुछ जवाब न दे सके। निरुत्तर। चुप। खामोश।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

लाजशक्तु-संज्ञा पुं० [सं०] खोई या लावा का सत्तू।

लाजहोम-संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल का एक प्रकार का होम जिसमें खोई या धान का लावा आहुति में दिया जाता था।

लाजा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) चावल। (२) भूनकर फुलाया हुआ धान। खील। लावा। उ०—अच्छत अंकुर रोचन लाजा। मंजुल मंजरि तुलसि विराजा।—तुलसी।

लाज़िम-वि० [अ०] (१) जो अवश्य कर्त्तव्य हो। (२) उचित। मुनासिब। वाजिब।

लाज़िमी-वि० [अ० लाज़िम + ई (प्रत्य०)] जो अवश्य कर्त्तव्य हो। जरूरी। आवश्यक।

लाट-संज्ञा पुं० [अं० लार्ड] किसी प्रांत या देश का सब से बड़ा शासक। गवर्नर।

संज्ञा पुं० [अं० लॉट] बहुत सी चीजों का वह विभाग या समूह जो एक ही साथ रखा, बेचा या नीलाम किया जाय।

यौ०—लाटबंदी।

संज्ञा स्त्री० [हिं० लट्ठा ?] मोटा और ऊँचा खंभा। जैसे,—कुतुब साहब की लाट, तालाब के बीच में की लाट, कोल्हू के बीच की लाट आदि।

संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्राचीन देश जहाँ अब भड़ौंच, अहमदाबाद आदि नगर हैं। गुजरात का एक भाग। (२) इस देश के निवासी। (३) एक अनुप्रास जिसमें शब्द और अर्थ एक ही होते हैं, पर अन्वय में हेर फेर होने से वाक्यार्थ में भेद हो जाता है। (४) वह लंबा बाँध जो किसी मैदान के पानी के बहाव को रोकने के लिये बनाया जाता है।

लाटपत्र-संज्ञा पुं० [सं०] दारचीनी।

लाटपर्ण-संज्ञा पुं० [सं०] दारचीनी।

लाटा †-संज्ञा पुं० [देश०] (१) भूने हुए महुओं और तिलों को कूटकर बनाए हुए लड्डू। (२) भुना हुआ महुआ।

लाटानुप्रास-संज्ञा पुं० [सं०] वह शब्दालंकार जिसमें शब्दों की पुनरुक्ति तो होती है, परंतु अन्वय में हेर फेर करने से तात्पर्य भिन्न हो जाता है। जैसे,—पीय निकट जाके नहीं, घाम चाँदनी ताहि। पीय निकट जाके, नहीं घाम चाँदनी ताहि।

लाटिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] साहित्य में चार प्रकार की रचनाओं में से एक प्रकार की रचना या रीति जिसमें वैदर्भी और पांचाली दोनों ही रीतियों का कुछ कुछ अनुसरण किया जाता है। इसमें छोटे छोटे पद और छोटे छोटे समास हुआ करते हैं।

लाटी†-संज्ञा स्त्री० [अनु० लट लट = गाढ़ा या चिपचिपा होना।] वह अवस्था जिसमें मुँह का थूक और होंठ सूख जाते हैं। उ०—सूखहिं अधर लागि मुँह लाटी। जिउ न जाइ उर अवधि कपाटी।—तुलसी।

क्रि० प्र०—लगना।

संज्ञा स्त्री० [सं०] लाटिका रीति।

लाठ-संज्ञा पुं० दे० "लाट"।

संज्ञा स्त्री० दे० "लाट"।

लाठी-संज्ञा स्त्री० [सं० यष्टी, प्रा० लट्ठी] वह लंबी और गोल बड़ी लकड़ी जिसका व्यवहार चलने में सहारे के लिये अथवा मार-पीट आदि के लिये होता है। डंडा। लकड़ी।

क्रि० प्र०—बाँधना।—मारना।—रखना।—लगाना।

मुहा०—लाठी चलना = लाठियों की मार पीट होना। लाठी चलाना = लाठी से मारना। लाठी से मारपीट करना। लाठी बाँधना = लाठी लिए रहना। दंड धारण करना।

लाड़-संज्ञा पुं० [सं० लालन] बच्चों का लालन। प्यार। दुलार।

क्रि० प्र०—करना।—लड़ाना।

यौ०—लाड़चाव।

लाड़लड़ा-संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का भौंरा जो प्रायः वृक्षों पर रहा करता है।

लाड़लड़ैता-वि० [हिं० लाड़ + लड़ाना] जिसका बहुत अधिक लाड़ हो। प्यारा। दुलारा। उ०—तुम सबों यदुवंश गंवारी हौं गँवारि ब्रजवासी। पठै देहु मेरो लाड़ लड़ैतो वारौं ऐसी हाँसी।—सूर।

लाडला-वि० [हिं० लाड़+ला (प्रत्य०)] [स्त्री० लाडली] जिसका लाड़ किया जाय। प्यारा। दुलारा।

लाड़ा †-संज्ञा स्त्री० [हिं० लाड़] [स्त्री० लाड़ो] वर। दूल्हा।

लाडू †-संज्ञा पुं० [हिं० लड्डू] (१) लड्डू। मोदक। (२) दक्षिणी नारंगी।

लाढ़िया-संज्ञा पुं० [देश०] वह दलाल जो दूकानदार से मिला रहता है और ग्राहकों को धोखा देकर उसका माल बिकवाता है।

लाढ़ियापन-संज्ञा पुं० [हिं० लाढ़िया+पन (प्रत्य०)] (१) लाढ़िया का काम। (२) धूर्त्तता। चालाकी। धोखेबाजी।

लात-संज्ञा स्त्री० [?] (१) पैर। पाँव। पद। उ०—तेहि अंगद कहँ लात उठाई। गहि पद पटक्यो भूमि भँवाई।—तुलसी। (२) पैर से किया हुआ आघात या वार। पदाघात। पादप्रहार।

मुहा०—लात खाना=(१) पैरों की ठोकर या मार सहना। (२) मार खाना। लात चलाना=लात से मारना। लात से आघात करना। लात जाना=गौ भैंस आदि का दूध देते समय दुहनेवाले को लात मारकर दूर हट जाना। लात मारना=तुच्छ समझकर छोड़ देना। त्याग देना। जैसे,—(क) हम ऐसी दौलत को लात मारते हैं। (ख) तुमने जान बूझकर रोजी को लात मारी है। लात मारकर खड़ा होना=बहुत अधिक बीमारी से, विशेषतः स्त्रियों का प्रसव के उपरांत, नीरोग होकर चलने फिरने के योग्य होना।

लातर †-संज्ञा स्त्री० [हिं० लतरी] पुराना जूता।

लाद-संज्ञा स्त्री० [हिं० लादना] (१) किसी वस्तु को बैल या गाड़ी पर रखकर एक स्थान से दूसरे स्थान को ले जाने का कार्य्य। लादने की क्रिया।

यौ०—लाद फाँद=लादने की क्रिया।

(२) मिट्टी का वह बोंका जो पानी निकालने की ढेंकी के दूसरे ओर लगा रहता है।

(१) पेट। उदर (जिसमें अँतड़ी आदि भरी रहती है)।

मुहा०—लाद निकलना=पेट का फूलकर आगे निकलना। तोंद निकलना।

(२) आँत। अँतड़ी। जैसे,—उसने पेट में ऐसी छुरी मारी कि लाद निकल पड़ी।

लादना-क्रि० स० [सं० लब्ध, प्रा० लद्ध=प्राप्त+ना (प्रत्य०)] (१) किसी चीज पर बहुत सी वस्तुएँ रखना। एक पर एक चीजें रखना। जैसे,—गाड़ी पर असबाब लादना। (२) गाड़ी या पशु को भार से युक्त करना। ढोने या ले जाने के लिये वस्तुओं को भरना। जैसे,—बैल लादना, गाड़ी लादना।

यौ०—लादना फाँदना=लादना और रखना।

(३) किसी के ऊपर किसी बात का भार रखना। जैसे,—तुम सब काम मुझ पर ही लादते चले जाते हो।

संयो० क्रि०—देना।

(४) कुश्ती लड़ते समय विपक्षी को अपनी पीठ या कमर पर उठा लेना। (पहल०)

संयो० क्रि०—लेना।

लादिया-संज्ञा पुं० [हिं० लादना+इया (प्रत्य०)] वह जो किसी चीज पर बोझ लादकर एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाता हो।

लादी-संज्ञा स्त्री० [हिं० लादना] (१) कपड़ों की वह गठरी जो धोबी गदहे पर लादता है। (२) वह गठरी जो किसी पशु पर लादी जाती है।

लाधना*†-क्रि० स० [सं० लब्ध, प्रा० लद्ध+ना (प्रत्य०)] प्राप्त करना। हासिल करना। पाना। उ०—(क) इन सम काहु न शिव अवराधे। काहु न इन समान फल लाधे।—तुलसी। (ख) छिन छिन परसत अंग मिलावत प्रेम प्रगट ह्वै लाधो।—सूर।

लानंग-संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का अंगूर जो कमाऊँ और देहरादून में अधिकता से होता है। इससे अर्क निकाला जाता और एक प्रकार की शराब बनाई जाती है।

लान-संज्ञा पुं० [अं० लॉन] हरी घास का बड़ा मैदान जिस पर गेंद आदि खेलते हैं।

लान टेनिस-संज्ञा पुं० [अं०] गेंद का एक खेल जो छोटे से मैदान में खेला जाता है।

लानत-संज्ञा स्त्री० [अ० लअनत] धिक्कार। फिटकार। भर्त्सना।

लानती-संज्ञा पुं० [हिं० लानत+ई (प्रत्य०)] वह जो सदा लानत मलामत सुनने का अभ्यस्त हो। सदा फिटकार सुननेवाला।

लाना-क्रि० अ० [हिं० लेना+आना, ले आना] (१) कोई चीज उठाकर या अपने साथ लेकर आना। कोई चीज उस जगह पर ले जाना, जहाँ उसे ग्रहण करनेवाला हो; अथवा जहाँ ले जानेवाला रहता हो। ले आना। जैसे,—(क) जरा वह किताब तो लाना। (ख) आप जब आते हैं, तब कुछ न कुछ लाते हैं। (ग) मैं आज बाजार से बहुत से कपड़े लाया हूँ। (घ) उनकी स्त्री मैके से बहुत सा धन लाई है।

संयो० क्रि०—देना।

(२) प्रत्यक्ष करना। उपस्थित करना। सामने रखना। जैसे,—(क) अब आप यह नया रंग लाए हैं। (ख) वह जब आता है, तब नया रूप लाता है। (ग) अब वह उन पर मुकदमा लावेगा। (३) उत्पन्न करना। पैदा करना। देना या सामने रखना। जैसे,—इस साल ये पेड़ खूब फल लाए हैं।

क्रि० स० [हिं० लाय=आग+ना (प्रत्य०)] आग लगाना।

जलाना। उ०—(क) कंत बीसलोचन बिलोकिये कुमत फल, ख्याल लंक लाई कपि राँड़ की सी झोपड़ी।—तुलसी। (ख) गोपद पयोधि करि होलिका ज्यौं लाय लंक। निपट निशंक पर पुर गलबक भो।—तुलसी।

†* क्रि० स० [हिं० लगाना] लगाना। उ०—(क) राम कुचरचा करहिं सब सीतहिं लाइ कलंक।—तुलसी। (ख) लै परजंक निसंक नवेली को लाय लगे गहि गूमन।—शंभु।

मुहा०—लाना लगाना या लाने लगाना = ऋण के बदले में कोई पदार्थ दे देना या ले लेना।

लाने*†-अव्य० [हिं० लाना = लगाना] वास्ते। लिये। (बुंदेल०) उ०—तू अलबेली अकेली डरै किन, क्यौं डरौं मेरी सहाय के लाने। है सखि संग मनोभव सो भट कान लौं बान सरासन ताने।—पद्माकर।

लापता-वि० [अ० ला = बिना + हिं० पता] (१) जिसका पता न लगे। जो कहीं मिल न रहा हो। खोया हुआ। (२) गुप्त। गायब।

क्रि० प्र०—करना।—रहना।—होना।

लापरवा-वि० [अ० ला + फ़ा० परवाह] (१) जिसे किसी बात की परवा न हो। बेफ़िक्र। (२) जो सावधानी से न रहता हो। असावधान।

लापरवाह-वि० दे० "लापरवा"।

लापरवाही-संज्ञा स्त्री० [अ० ला + फ़ा० परवाह] (१) लापरवा होने का भाव। बेफ़िक्री। (२) असावधानी। प्रमाद।

क्रि० प्र०—करना।—दिखलाना।—होना।

लापसी†-संज्ञा स्त्री० दे० "लपसी"। उ०—लुचुई ललित लापसी सोहै। स्वादु सुवास सहज मन मोहै।—सूर।

लापु-संज्ञा पुं० [सं०] रुद्रवंती। रुदंती।

लाबर*†-वि० दे० "लबार"। उ०—कालिह के लाबर बीस बिसे परौं बीस बिसे व्रत ते न टरौं जू।—केशव।

लाभ-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मिलना। प्राप्ति। लब्धि। (२) फायदा। मुनाफ़ा। नफ़ा। (३) उपकार। भलाई।

यौ०—लाभकारी। लाभदायक।

लाभकारक-वि० [सं०] जिससे लाभ होता हो। फलदायक। लाभजनक। फायदेमंद।

लाभकारी-वि० [सं० लाभकारिन्] फायदा करनेवाला। गुण करनेवाला। फायदेमंद।

लाभदायक-वि० [सं०] जिससे लाभ हो। गुणकारी। फायदेमंद।

लाभमद-संज्ञा पुं० [सं०] वह मद जिससे मनुष्य अपने आपको लाभवाला और दूसरे को हीनपुण्य समझे। (जैन)

लाभस्थान-संज्ञा पुं० [सं०] फलित ज्योतिष के अनुसार जन्म कुंडली में लग्न से ग्यारहवाँ स्थान, जिसे देखकर यह निश्चय किया जाता है कि धन-संपत्ति, संतान, आयु और विद्या आदि कैसी रहेगी।

लाभांतराय-संज्ञा पुं० [सं०] वह अंतराय कर्म जिसके उदय होने से मनुष्य के लाभ में विघ्न पड़ता है। (जैन)

लाम-संज्ञा पुं० [फ़ा० लाम] (१) सेना। फ़ौज।

मुहा०—लाम बाँधना = चढ़ाई के लिये सेना तैयार करना।

(२) बहुत से लोगों का समूह।

मुहा०—लाम बाँधना = (१) बहुत से लोगों को एकत्र करना। (२) बहुत सा सामान जमा करना।

† क्रि० वि० [सं० लंब] फ़ासले पर। दूर।

लामज-संज्ञा पुं० [सं० लामज्जक] एक प्रकार का तृण जो संयुक्त प्रदेश, पंजाब और सिंध में प्रायः बारहो महीने पाया जाता है। यह खस की तरह का और कुछ पीले रंग का होता है; इसलिये इसे पीलावाला भी कहते हैं। इसकी जड़ के पास का भाग मोटा होता है और उस पर रोएँ होते हैं। इसका डंठल सीधा होता है, जिस पर चिकने, पतले और लंबे पत्ते होते हैं। वैद्यक में इसे उत्तेजक, आमवात में पसीना लानेवाला, रुधिर को साफ करनेवाला, अजीर्ण, खाँसी आदि दूर करनेवाला और विशूचिका तथा ज्वर में लाभकारी माना जाता है।

लामज्जक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) लामज नामक तृण। वि० दे० "लामज"। (२) खस। उशीर।

लामय-संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की घास जो प्रायः ऊसर भूमि में पाई जाती है।

लामा-संज्ञा पुं० [ति०] तिब्बत या मंगोलिया के बौद्धों का धर्माचार्य, जो अनेक अंशों में उनका राजनीतिक शासक भी होता है। ऐसा धर्माचार्य सदा साधु और विरक्त हुआ करता है और मठों में रहता है।

संज्ञा पुं० [पेरू देश की भाषा] घास खाने और पागुर करनेवाला एक जंतु जो ऊँट की तरह का होता है। आकार में यह ऊँट से कुछ छोटा होता है और इसकी पीठ पर कूबड़ नहीं होता। यह दक्षिणी अमेरिका में पाया जाता है। यह बहुत चपल, बलवान् और शीघ्रगामी होता है। इसे जब तक हरी घास मिलती है, तब तक पानी की कोई आवश्यकता नहीं होती। इसकी सब उँगलियाँ अलग अलग होती हैं और प्रत्येक उँगली में एक छोटा मजबूत खुर होता है। इसके रोएँ बहुत मुलायम होते हैं और इसकी खाल का चरसा बहुत अच्छा होता है; इसी लिये कुत्तों की सहायता से इसका शिकार किया जाता है। जब कोई इसे छेड़ता है, तब यह उस पर थूक देता है, जिसका कुछ विषैला प्रभाव होता है। जंगली दशा में इसे ग्वानाको और पालतू दशा में लामा कहते हैं।

मुहा०—लालच देना = किसी के मन में लालच उत्पन्न करना। जैसे,—उसने लड़के को मिठाई का लालच देकर उसके सब गहने ले लिए।

लाल चकवी–संज्ञा पुं० [सं० लालिक] भैंसा। (डिं०)

लालचहा†–वि० [हिं० लालच + हा (प्रत्य०)] जिसे बहुत अधिक लालच हो। लालची। लोभी। उ०—घुघुरुन को सोर सुने सकुचै पिय होत ज्यौं ज्यौं अति लालचहा।—मन्नालाल।

लालचोंच–संज्ञा पुं० [हिं० लाल + चोंच] शुक। तोता। (डिं०)

लालची–वि० [हिं० लालच + ई (प्रत्य०)] जिसे बहुत अधिक लालच हो। लोभी।

लाल चीता–संज्ञा पुं० [हिं० लाल + चीता] लाल फूल का चित्रक या चीता। वि० दे० "चीता"।

लाल चीनी–संज्ञा पुं० [हिं० लाल + चीनी] एक प्रकार का कबूतर, जिसका सारा शरीर सफेद और सिर पर लाल छिटकियाँ होती हैं।

लालटेन–संज्ञा स्त्री० [अं० लैंटर्न] किसी प्रकार का वह खाना आदि जिसमें तेल का खजाना और जलाने के लिये बत्ती लगी रहती है; और जिसके चारों ओर, तेज हवा और पानी आदि से बचाने के लिये शीशा या इसी प्रकार का और कोई पारदर्शी पदार्थ लगा रहता है। इसका व्यवहार प्रकाश के लिये ऐसे स्थानों पर होता है, जहाँ या तो प्रकाश को प्रायः एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाने की आवश्यकता होती है और या ऐसी जगह स्थायी रूप से रखने के लिये होता है, जहाँ चारों ओर से हवा आया करती हो। कंदील।

लालड़ी–संज्ञा पुं० [हिं० लाल (रत्न) + ड़ी (प्रत्य०)] लाल रंग का एक प्रकार का नगीना जो प्रायः नथों और बालियों आदि में मोती के दोनों ओर लगाया जाता है।

लाल दाना–संज्ञा पुं० [हिं० लाल + दाना] लाल रंग का पोस्ते का दाना। लाल खसखस। (पूरब)

लालन–संज्ञा पुं० [सं०] अत्यंत स्नेह करना। प्रेमपूर्वक बालकों का आदर करना। लाड़। प्यार।

यौ०—लालन पालन।

संज्ञा पुं० [हिं० लाला] (१) प्रिय पुत्र। प्यारा बच्चा। उ०—भूख लगी ह्वै है लालन को लावो बेगि बुलाई।—सूर। (२) कुमार। बालक। उ०—बाल के बाल में बाल बिलोकत ही भरि लालन लोचन लीन्हे।—केशव। वि० दे० "लाल"।

क्रि० स० लाड़ करना। प्यार करना। उ०—लालन जोग लखन लघु लोने। भे न भाइ अस अहहिं न होने।—तुलसी।

संज्ञा स्त्री० [देश०] चिरौंजी। पियाल।

लालना–क्रि० स० [सं० लालन] दुलार करना। लाड़ करना। प्यार करना। उ०—(क) बारि पुचुकारि चूमि लालत लावत उर तैसे फल पावत जैसे सुबीज बये हैं।—तुलसी। (ख) कलपबेलि जिमि बहुबिधि लाली। सींचि सनेह सलिल प्रतिपाली।—तुलसी।

लालनीय–वि० [सं०] लालन करने के योग्य। दुलार या प्यार करने के लायक।

लाल पानी–संज्ञा पुं० [हिं० लाल + पानी] शराब। मद्य।

लाल पिलका–संज्ञा पुं० [हिं० लाल + पिलका] लाल रंग का एक प्रकार का कबूतर जिसकी दुम और डैने सफेद होते हैं।

लाल पेठा–संज्ञा पुं० [हिं० लाल + पेठा] कुम्हड़ा।

लाल बुझक्कड़–संज्ञा पुं० [हिं० लाल + बूझना] बातों का अटकलपच्चू मतलब लगानेवाला। वह जो कोई बात जानता तो न हो, पर यों ही अंदाज लड़ाता हो। (व्यंग्य)

लाल बेग–संज्ञा पुं० [हिं० लाल + तु० बेग] (१) लाल रंग का एक प्रकार का परदार कीड़ा। (२) मुसलमान भंगियों और मेहतरों के एक कल्पित पीर का नाम।

लालबेगी–संज्ञा पुं० [हिं० लालबेग + ई (प्रत्य०)] वह जो लालबेग का अनुयायी हो। भंगी। मेहतर।

लाल भरेंड़ा–संज्ञा पुं० [हिं० लाल + भरेंड़ा ?] एक प्रकार का छोटा झाड़ जो भारत के गरम प्रांतों में उत्पन्न होता है। इसके बीजों में से तेल निकलता है, जो गठिया के रोग में काम आता है। इसको उँदरबीबी भी कहते हैं।

लालमन–संज्ञा पुं० [हिं० लाल + मणि] (१) श्रीकृष्ण। उ०—कीन्हे चरित लालमन जोई। सुमिरि सुमिरि अब आवत रोई।—विश्राम। (२) एक प्रकार का तोता जिसका सारा शरीर लाल, डैने हरे, चोंच गुलाबी और दुम काली होती है।

लाल मिर्च–संज्ञा स्त्री० दे० "मिर्च" (२)।

लालमी–संज्ञा पुं० [?] खरबूजा।

लालमुँहा–संज्ञा पुं० [हिं० लाल + मुँह] एक प्रकार का तिनाओं जिसमें मुँह के अंदर छाले पड़ जाते हैं और उसका रंग लाल हो जाता है।

लाल मुरगा–संज्ञा पुं० [हिं० लाल + मुरगा] (१) एक प्रकार का पक्षी जिसका शिकार किया जाता है। यह काश्मीर से आसाम तक पाया जाता है। यह दो फुट से अधिक लंबा होता है। (२) मयूरशिखा। (३) गुलमखमली नामक पौधा।

लाल मूली–संज्ञा स्त्री० [हिं० लाल + मूली] शलजम। सलगम।

लालरी–संज्ञा स्त्री० दे० "लालड़ी"। उ०—छबि होती भली गजमोती के बीच जौ होतीं बड़ी बड़ी लालरियाँ।—रसकुसुमाकर।

लाल लड्डू–संज्ञा पुं० [हिं० लाल + लाड़ू = लड्डू] दक्षिण भारत में होनेवाली एक प्रकार की नारंगी।

लाल शक्कर–संज्ञा स्त्री० [हिं० लाल + शक्कर] बिना साफ की हुई चीनी। खाँड़।

लाल सफरी-संज्ञा पुं० [हिं० लाल + सफरी ?] अमरूद ।

लाल समुद्र-संज्ञा पुं० दे० "लाल सागर" ।

लालसर-संज्ञा पुं० [हिं० लाल + सर] एक प्रकार का पक्षी जिसकी गरदन और सिर लाल रंग का होता है, छाती चितकबरी और पीठ काली होती है और डैना सुनहरे रंग का होता है ।

लालसा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) किसी पदार्थ को प्राप्त करने की बहुत अधिक उत्कंठा या अभिलाषा । बहुत अधिक इच्छा या चाह । लिप्सा । उ०—एक लालसा बड़ि उर माँहीं । सुगम अगम सुजात कहि नाँहीं ।—तुलसी । (२) उत्सुकता । (३) वह अभिलाषा जो गर्भिणी स्त्री के मन में गर्भावस्था में उत्पन्न होती है । दोहद । (४) किसी से कुछ माँगना या चाहना ।

वि० लोल । चंचल ।

लाल साग-संज्ञा पुं० [हिं० लाल + साग] मरसा नाम का साग ।

लाल सागर-संज्ञा पुं० [हिं० लाल + सागर] भारतीय महासागर का वह अंश जो अरब और अफ्रिका के मध्य में पड़ता है और जो बाब एल-मंदब से स्वेज तक फैला हुआ है । यह प्रायः १४०० मील लंबा है, और इसकी अधिक से अधिक चौड़ाई २३० मील है । इसके किनारों पर बहुत से छोटे छोटे टापू और प्रवाल द्वीप हैं, जिनके कारण जहाजों को इसमें से होकर आने जाने में बहुत कठिनता होती है । पहले यह भूमध्यसागर से अलग था; पर स्वेज की नहर खुद जाने से यह उससे मिल गया है । इसके पानी में कुछ ललाई झलकती है; इसी से इसे लाल सागर कहते हैं ।

लालसिखी †-संज्ञा पुं० [हिं० लाल + सिखा] अरुणचूड़ । मुर्गा । उ०—प्रात उठी रतिमान भट्ट धुनि लालसिखी की हिये खटकी है ।—मन्नालाल ।

लालसिरा-संज्ञा स्त्री० [हिं० लाल + सिरा = सिर] एक प्रकार की बत्तख जिसका सिर लाल होता है ।

लालसी⊛-वि० [सं० लालसा + ई (प्रत्य०)] अभिलाषा करनेवाला । इच्छा करनेवाला । उत्सुक । उ०—सो हरि के पद के हम लालसी माया कि है न जहाँ प्रभुताई ।—रघुराज ।

लालसीक-संज्ञा पुं० [सं०] गिलगिला । पिच्छिल ।

लाला-संज्ञा पुं० [सं० लालक] (१) एक प्रकार का संबोधन जिसका व्यवहार किसी का नाम लेते समय उसके प्रति आदर दिखलाने के लिये किया जाता है । महाशय । साहब । जैसे,—लाला गुरदयाल आज यहाँ आनेवाले हैं । (पश्चिम)

विशेष—इस शब्द का व्यवहार प्रायः पश्चिम में खत्रियों, और बनियों आदि के लिये अधिकता से होता है ।

मुहा०—लाला भइया करना = किसी को आदरपूर्वक संबोधन करना । इज्जत के साथ बातचीत करना ।

(२) कायस्थ जाति या कायस्थों का सूचक एक शब्द ।

यौ०—लाला भाई = कायस्थ ।

(३) छोटे प्रिय बच्चे के लिये संबोधन । प्रिय व्यक्ति; विशेषतः बालक । उ०—आनँद की निधि मुख लाला को, ताहि निरखि निसिवासर सो सो छवि क्योंहूँ न जाति बखानी ।—सूर ।

संज्ञा स्त्री० [सं०] मुँह से निकलनेवाली लार । थूक ।

संज्ञा पुं० [फ़ा०] पोस्त का लाल रंग का फूल जिसमें प्रायः काली खसखस पैदा होती है । गुले लाला । उ०—कोऊ कहै गुल लाला गुलाल की कोऊ कहै रँग रोरी के भाव की ।—द्विज ।

वि० [हिं० लाल] लाल रंग का । वि० दे० "लाल" । उ०—(क) पारथ भयो विलोचन लाला । लखि अनर्थक धर्म्म भुवाला ।—सबल । (ख) केकी के काकी कका कोक कीक का कोक । लोल लालि कोलैं लली लाला लीला लोल ।—केशव ।

लाला प्रमेह-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का प्रमेह जिसमें मुँह की लार की तरह तार बँधकर पेशाब होता है ।

लालाभक्ष-संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार एक नरक का नाम । कहते हैं कि जो लोग बिना देवताओं आदि को भोग लगाए अथवा बिना अतिथियों को भोजन कराए आप भोजन कर लेते हैं, वे इसी नरक में जाते हैं ।

लालामेह-संज्ञा पुं० दे० "लालाप्रमेह" ।

लालायित-वि० [सं०] (१) जिसके मुँह में बहुत अधिक लालच के कारण पानी भर आया हो । ललचाया हुआ । (२) जिसका बहुत अधिक लालन किया गया हो । दुलारा ।

लालाविष-संज्ञा पुं० [सं०] वह जंतु जिसके मुँह की लार में विष हो । जैसे,—मकड़ी आदि ।

लालास्रव-संज्ञा स्त्री० [सं० लालास्रव] मकड़ी । (हिं०)

लालास्रव-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मुँह से लार बहना । (२) मकड़ी ।

लालास्राव-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मुँह से थूक या लार गिरना । (२) मकड़ी का जाला ।

लालिक-संज्ञा स्त्री० [सं०] भैंस ।

लालित-वि० [सं०] (१) जिसका लालन किया गया हो । दुलारा हुआ । लड़ाया हुआ । प्रिय । प्यारा । (२) जो पाला पोसा गया हो ।

लालित्य-संज्ञा पुं० [सं०] ललित होने का भाव । सौंदर्य । सुंदरता । सरसता । मनोहरता । जैसे,—आपकी भाषा में बहुत अधिक लालित्य होता है ।

लालिमा-संज्ञा स्त्री० [सं०] लाली । ललाई । अरुणता । सुर्खी

लाली-संज्ञा स्त्री० [हिं० लाल + ई (प्रत्य०)] (१) लाल होने का भाव। अरुणता। ललाई। लालपन। सुर्खी। (२) इज्जत। पत। आबरू। जैसे,—(क) आज आप की ही कृपा से उनकी लाली रह गई। (ख) मेरी लाली तुम्हारे हाथ है।

विशेष—कभी कभी लाली "लाली" और कभी कभी "मुँह की लाली" भी बोलते हैं।

(३) पीसी हुई ईंटें जो चूने में मिलाई जाती हैं। सुरखी।

संज्ञा स्त्री० आसाम की एक नदी का नाम।

लालील-संज्ञा पुं० [सं०] अग्नि। आग।

लालुका-संज्ञा स्त्री० [सं०] गले में पहनने का एक प्रकार का हार।

लाले-संज्ञा पुं० [सं० लाला या लालायित] लालसा। अभिलाषा। इच्छा। अरमान। जैसे,—हमें तो आपके देखने के ही लाले हैं।

मुहा०—किसी चीज के लाले पड़ना = किसी चीज के देखने या पाने के लिये बहुत अधिक तरसना। किसी चीज के अप्राप्य या पहुँच के बाहर होने के कारण बहुत अधिक लालायित होना।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग सदा बहुवचन में होता है।

लाल्य-वि० [सं०] लालन करने योग्य। दुलार करने लायक।

लाल्हा †-संज्ञा पुं० [हिं० लाल साग = मरसा] मरसा नामक साग। उ०—चौलाई लाल्हा अरु पोई। मध्य मेलि निबुआनि निचोई।—सूर।

लाव-संज्ञा पुं० [सं०] (१) लवा नामक पक्षी। वि० दे० "लवा"। (२) लौंग।

⊛†संज्ञा स्त्री० [हिं० लाय = आग] अग्नि। आग। आँच।

संज्ञा स्त्री० [देश० या सं० रज्जु] (१) वह मोटा रस्सा जिससे चरसा खींचते या इसी प्रकार का और कोई काम करते हैं। रस्सा। लास।

मुहा०—लाव चलाना = चरसे के द्वारा कूएँ से पानी खींचकर खेत सींचना।

(२) रस्सी। डोरी। रज्जु। उ०—फिरि फिरि चित उत ही रहतु टुटी लाज की लाव। अंग अंग छवि झौर में भयौ भौर की नाव।—बिहारी। (३) उतनी भूमि जितनी एक दिन में एक चरसे से सींची जा सके।

संज्ञा पुं० [हिं० लगाना] वह ऋण जो किसी की चीज अपने पास बंधक रखकर उसे दिया जाय।

मुहा०—लाव उठाना = (१) चीज बंधक रखकर रुपया उधार देना। (२) किसानों को उनके कष्ट के समय अल्प . स्वल्प धन देना। तकावी बाँटना।

लावक-संज्ञा पुं० [सं०] लवा पक्षी। उ०—तीतर लावक पद-चर जूथा। बरनि न जाइ मनोज बरूथा।—तुलसी।

संज्ञा पुं० [देश०] (१) चावल की जाड़े की फसिल। (२) चरसा। (३) मोट खींचने में बैलों के एक बार जाने और आने का काल।

लावज-संज्ञा पुं० [सं०] बहुत प्राचीन काल का एक प्रकार का बाजा जिस पर चमड़ा मढ़ा हुआ होता था।

लावण-संज्ञा पुं० [सं०] सुँघनी। नस्य।

वि० (१) जिसका संस्कार लवण द्वारा हुआ हो। (२) लवण का। नमकीन।

लावणा-संज्ञा पुं० [देश०] वैश्यों की एक जाति।

लावणिक-वि० [सं०] (१) जिसका लवण द्वारा संस्कार हुआ हो। (२) लवण संबंधी। नमक का।

संज्ञा पुं० (१) वह जो नमक बेचता हो। (२) वह पात्र जिसमें नमक रखा जाता है। नमकदान।

लावण्य-संज्ञा पुं० [सं०] (१) लवण का भाव या धर्म। नमकपन। (२) अत्यंत सुंदरता। नमक। लोनाई। उ०—जटा मुकुट सुरसरित सिर लोचन नलिन बिशाल। नीलकंठ लावण्यनिधि सोह बालबिधु भाल।—तुलसी। (३) शील की उत्तमता। स्वभाव का अच्छापन।

लावण्या-संज्ञा स्त्री० [सं०] ब्राह्मी नाम की बूटी।

लावदार-वि० [हिं० लाव = आग + फा० दार (प्रत्य०)] (तोप) जो छोड़ी जाने या रंजक देने के लिये तैयार हो। उ०—लावदार रक्खो किएँ सर्व भारयो एहु। ज्यों हरीफ आवै नजरि त्यौं धड़ाधड़ देहु।—सूदन।

संज्ञा पुं० तोप में बत्ती लगानेवाला। तोप छोड़नेवाला। तोपची। उ०—किते जजालदार आबदार लावदार हैं। किते निसानबान सान के भरे तयार हैं।—सूदन।

लावनता⊛-संज्ञा स्त्री० [सं० लावण्य + ता (प्रत्य०)] बहुत अधिक सौंदर्य। सुंदरता। खूबसूरती। नमक। उ०—तुलसी तेहि अवसर लावनता दसचारि नवतीनि एकीस सबै।—तुलसी।

लावना⊛†-क्रि० स० [हिं० लाना] लाना। उ०—(क) बिप्र कह्यो धन लावनो करन सुता को ब्याह। यदि पथ चोर छुराय लिय भयो भोर दुख दाह।—रघुराज। (ख) आदि अधम पापी हम चीन्हा। तेहि सब रिन लावन मन कीन्हा।—विश्राम। (ग) कीन्हेसि मधु लावइ लेइ माखी। कीन्हेसि भँवर पंखि अरु पाँखी।—जायसी।

क्रि० स० [हिं० लगाना] (१) लगाना। स्पर्श कराना। उ०—(क) लावत मैन सुगंध लख्यो सब सौरभ की तन देत दसीहै।—रघुनाथ। (ख) तुलसिदास कह रूप देखावहु। मेरे सीस पानि निज लावहु।—रघुराज। (ग) मेरे अंग सहज सुगंध सो सही है सदा लावन न देत और देते हैं सुधर्मा।—रघुनाथ। (घ) सो मोहि लेइ मँगावइ लावइ भूख पियास। जउँ न होत अस बइरी केहु काहू कर आस।—जायसी। (२) जलाना। आग लगाना। उ०—बहुरि

इंद्रजित महाभखकृत हनुमत बंधन गायो। सभागमन रावण समुझावन लावन लंक गनायो।—रघुराज।

लावनि-संज्ञा स्त्री० [सं० लावण्य] सौंदर्य। लावण्य। सुंदरता। नमक। उ०—(क) कोटि काम लावनि बिहारी जा देखत सब दुख नसंत।—स्वामी हरिदास। (ख) सुंदर मुख की बलि बलि जाऊँ। पावनि सिधि गुणनिधि शोभा निधि निरखि निरखि जीवत सब गाऊँ।—सूर।

संज्ञा स्त्री० दे० "लावनी"।

लावनी-संज्ञा स्त्री० [देश०] (१) गाने का एक प्रकार का छंद। (२) इस छंद का एक प्रकार जो प्रायः चंग बजाकर गाया जाता है। इसे ख्याल भी कहते हैं। (३) इस प्रकार का कोई गीत।

लावबाली-संज्ञा पुं० [अ० लाउबाली] (१) वह जिसे किसी प्रकार की चिंता आदि न हो। लापरवाह। बेफिक्र। (२) वह जिसके विचार, धार्मिक दृष्टि से, बहुत ही स्वतंत्र और उच्छृंखल हों। (३) वह जो सदा निकम्मा घूमा करता हो। आवारा।

संज्ञा स्त्री० लावबाली होने का भाव। लावबालीपन।

लावल्द—वि० [फ़ा०] जिसके बालबच्चा न हो। निःसंतान।

लावल्दी-संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] लावल्द या निःसंतान होने का भाव या अवस्था।

लावा-संज्ञा पुं० [सं०] लवा नामक पक्षी। वि० दे० "लवा"। उ०—गयउ सहमि नहिं कछु कहि आवा। जनु सचान बन झपटेउ लावा।—तुलसी।

संज्ञा पुं० [सं० लाजा] भूना हुआ धान, ज्वार, बाजरा या रामदाना आदि जो भुनने के कारण फूलकर फूट जाता है और जिसके अंदर से सफेद गूदा बाहर निकल आता है। यह बहुत हलका और पथ्य समझा जाता है और प्रायः रोगियों को दिया जाता है। खील। लाई। फुला।

क्रि० प्र०—फूटना। भूनना।

यौ०—लावा परछन।

संज्ञा पुं० [अं०] राख, पत्थर और धातु आदि मिला हुआ वह द्रव पदार्थ जो प्रायः ज्वालामुखी पर्वतों के मुख से विस्फोट होने पर निकलता है।

लावाणक-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का धान।

लावाणक-संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल के एक देश का नाम जो मगध के पास था।

लावा परछन-संज्ञा पुं० [हिं० लावा + परछना] विवाह के समय की एक रीति। इसमें वर के आगे कन्या खड़ी की जाती है और उसके हाथ में एक डलिया दी जाती है। कन्या का भाई उसी डलिया में धान का लावा डालता है। हवन और भाँवरी इसके बाद होती है।

लावारिस-संज्ञा पुं० [अ०] (१) वह मनुष्य जिसका कोई उत्तराधिकारी या वारिस न हो। (२) वह संपत्ति जिसका कोई अधिकारी या स्वामी न हो। (क०)।

लावारिसी-वि० [अ० लावारिस] (संपत्ति) जिसका कोई अधिकारी न हो।

लाविका-संज्ञा स्त्री० [सं० लावा] लवा नामक पक्षी।

लावु†-संज्ञा पुं० [हिं० अलाबू] कौआ। कद्दू। घिआ।

लाश-संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] किसी प्राणी का मृतक देह। लोथ। मुरदा। शव।

लाष*-संज्ञा पुं० [सं० लाक्षा] लाख नामक लाल द्रव्य। लाह। उ०—लाष भवन बैठार दुष्ट ने भोजन में विष दीन्हो।—सूर। वि० दे० "लाख"।

लाषना*†-क्रि० स० दे० "लखना"।

लासुक-संज्ञा पुं० [सं०] लोभी। लालची।

लास-संज्ञा पुं० [सं० लास्य] (१) एक प्रकार का नाच। (२) मटक। उ०—लास भरी भौंहन विलास भरे भाल मृदु हास भरे अधर सुधारस घुरे परैं।—देव।

संज्ञा पुं० [सं०] जूस। रसा। शोरबा।

संज्ञा पुं० [?] उस छड़ के दोनों कोने जिसे पाल बाँधने के लिये मस्तूल में लटकाते हैं। (लश०)

मुहा०—लास करना = चलती हुई नाव को रोकने के लिये डाँडों को बहते हुए पानी में बेड़े बल में ठहराना। (लश०)

लासक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मयूर। मोर। (२) नाचनेवाला। नचनिया। नर्तक। (३) मटका। घड़ा।

वि० चमकानेवाला। दीप्तिकारक।

लासकी-संज्ञा स्त्री० [सं०] नाचनेवाली स्त्री। नर्तकी।

लासन-संज्ञा पुं० [अं० लैशिंग] जहाज बाँधने का मोटा रस्सा। लहासी।

क्रि० प्र०—खोलना।—बाँधना।—लगाना।

मुहा०—लासन देना = मस्तूल के चारों ओर रस्सी लपेटना। कौड़ी लेना। (लश०)

लासा-संज्ञा पुं० [हिं० लस] (१) कोई लसदार या चिपचिपी चीज। चेप। लुआब। उ०—(क) नाम लगि लाय लासा ललित बचन कहि ब्याध ज्यौं विषय विहंगनि बझाौं।—तुलसी। (ख) चितवनि ललित लकुट लासा लटकनि पिय काँपे अलक तरंग।—सूर। (२) एक विशेष प्रकार का चिपचिपा पदार्थ जो बहेलिए लोग चिड़ियों को फँसाने के लिये बरगद और गूलर के दूध में मीसी का तेल पकाकर बनाते हैं। इसे प्रायः वे लोग वृक्षों की डालियों पर लगा देते हैं, और जब पक्षी उस पर आकर बैठते हैं, तब उनके परों में यह लग जाता है, जिससे वे उड़ नहीं सकते। उस समय बहेलिए उन्हें पकड़ लेते हैं।

मुहा०—लासा लगाना = किसी को फँसाने के लिये किसी प्रकार का लालच या धोखा देना। फंदे में फँसाना। लासा होना = हरदम साथ लगे रहना। पीछा न छोड़ना।

लासानी वि० [अ०] जिसका कोई सानी या जोड़ न हो। अनुपम। अद्वितीय। बे जोड़।

लासि-संज्ञा पुं० दे० "लास्य"। उ०—तांडव लासि और अंग को गनें जे जे रुचि उपजत जी कें।—स्वा० हरिदास।

लासी-संज्ञा स्त्री० [देश०] जूँ की तरह का एक प्रकार का काला कीड़ा जो गेहूँ के पेड़ों से लगकर उन्हें निकम्मा कर देता है।

संज्ञा स्त्री० दे० "लसी" या "लस्सी"।

लासु-संज्ञा पुं० दे० "लास्य"।

लास्य-संज्ञा पुं० [सं०] (१) नृत्य। नाच। (२) नाच या नृत्य के दो भेदों में से एक। वह नृत्य जो भाव और ताल आदि के सहित हो, कोमल अंगों के द्वारा हो और जिसके द्वारा शृंगार आदि कोमल रसों का उद्दीपन होता हो।

विशेष—साधारणतः स्त्रियों का नृत्य ही लास्य कहलाता है। कहते हैं कि शिव और पार्वती ने पहले पहल मिलकर नृत्य किया था। शिव का नृत्य तांडव कहलाया और पार्वती का "लास्य"। यह लास्य दो प्रकार का कहा गया है—छुरित और यौवत। साहित्यदर्पण में इसके दस अंग बतलाए गए हैं, जिनके नाम इस प्रकार हैं—गेयपद, स्थितपाठ, आसीन, पुष्पगंडिका, प्रच्छेदक, त्रिगूढ़, सैंधवाख्य, द्विगूढ़क, उत्तमोत्तमक और युक्तप्रयुक्त।

लाह-संज्ञा स्त्री० [सं० लाक्षा] लाख। चपड़ा। लाही। उ०—जाकी बाकी बीरता सुनत सहमत धीर जाकी आँच अजहु लसत लंक लाह सी।—तुलसी।

संज्ञा पुं० [सं० लाभ] लाभ। फायदा। नफा। उ०—(क) दावा धरि पाहरू को आवागौन मिसि ताके भानु शशि अभिमति लाहा में फिरत हैं।—चरण। (ख) सारहि सब्द विचारिये सोई सब्द सुख देय। अनसमझा सब्देक है कहू न लाहा लेय।—कबीर। (ग) लहि जीवनमूरि को लाह अली पै भलें जुग चारि लौं जीबो करैं।—द्विजदेव। (घ) मैं तुमसों कहि राखत हौं यह मान किये कछु ह्वैहै न लाहे।—रघुनाथ।

संज्ञा स्त्री० [?] चमक। आभा। कांति। दीप्ति। उ०—सीसफूल बेनी बेंदी बेसरि और बीरनि में हीरान की लाह में हँसनि छबि छहरी।—देव।

लाहन† संज्ञा पुं० [देश०] (१) वह महुआ जो, मद्य खींचने के उपरांत देग में बच रहता है। यह प्रायः पशुओं को खिलाया जाता है। (२) भूसी और महुए को मिलाकर उठाया हुआ खमीर। (३) किसी प्रकार या पदार्थ का खमीर। (४) वे पेय ओषधियाँ जो गौओं को बच्चा होने पर दी जाती हैं। (५) अनाज ढोने की मजदूरी।

लाहल-संज्ञा पुं० दे० "लाहौल"। उ०—लाहल पारख सब्द के जो परखे सो पाक। तामें जो हला करै सोई होइ हलाक।—कबीर।

लाही†-संज्ञा स्त्री० [सं० लाक्षा, हिं० लाख, लाह] (१) लाल रंग का वह छोटा कीड़ा जो वृक्षों पर लाख उत्पन्न करता है। वि० दे० "लाख"। (२) इससे मिलता जुलता एक प्रकार का कीड़ा जो प्रायः माघ, फागुन में पुरवा हवा चलने पर उत्पन्न होता और फसल को बहुत हानि पहुँचाता है।

वि० लाह के रंग का। मटमैलापन लिये लाल। उ०—तन सुख सारी लाही अँगिया अतलस अँतरौटा छबि धारि चारि चूरी पहुँचीनि पहुँची चमकि बनी नकफूल जेब मुख बीरा चौका चौंधें संभ्रम भूली।—स्वा० हरिदास।

संज्ञा स्त्री० [हिं० लावा] धान, बाजरे आदि के भूने हुए दाने। लावा। लाजा। खील।

यौ०—लाही का सत्तू = धान की खीलों को पीसकर बनाया हुआ सत्तू जो बहुत हलका होता और प्रायः रोगियों को पथ्य के रूप में दिया जाता है।

संज्ञा स्त्री० [देश०] (१) सरसों। (२) काली सरसों। (३) तीसरी बार का साफ किया हुआ शोरा।

लाहु⊗-संज्ञा पुं० [सं० लाभ] नफा। फायदा। प्राप्ति। लाभ। उ०—(क) हानि कुसंग सुसंगति लाहू। लोकहु बेद बिदित सब काहू।—तुलसी। (ख) मूकनि बचन लाहु मानो अंधनि लहे हैं बिलोचन तारे।—तुलसी।

लाहौरी नमक-संज्ञा पुं० [हिं० लाहौरी + नमक] सैंधव लवण। सेंधा नमक। वि० दे० "नमक"।

लाहौल-संज्ञा पुं० [अ०] एक अरबी वाक्य का पहला शब्द जिसका व्यवहार प्रायः भूत-प्रेत आदि को भगाने या घृणा प्रकट करने के लिये किया जाता है। पूरा वाक्य यह है—लाहौल व ला कुव्वत इल्ला बिल्लाह। इसका अर्थ है—ईश्वर के सिवा और किसी में कोई सामर्थ्य नहीं है।

मुहा०—लाहौल पढ़ना = (१) उक्त वाक्य का उच्चारण करना। (२) बहुत अधिक घृणा प्रकट करना।

लाह्वा-संज्ञा स्त्री० [सं०] उल्लू पक्षी।

लिंग-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जिससे किसी वस्तु की पहचान हो। चिह्न। लक्षण। निशान। (२) वह जिससे किसी वस्तु का अनुमान हो। साधक हेतु। जैसे,—धूम अग्नि का लिंग है; अर्थात् धूम से अग्नि के होने का अनुमान होता है। (न्याय)

विशेष—लिंग चार प्रकार के होते हैं—(क) संबद्ध, जैसे,—धूम अग्नि के साथ संबद्ध है। (ख) व्यक्त, जैसे,—सींग गाय के

साथ है। (ग) सहवर्ती; जैसे, भाषा मनुष्य के साथ है। और (घ) विपरीत; जैसे भला बुरे के साथ है।

(३) सांख्य के अनुसार मूल प्रकृति।

विशेष—विकृति फिर प्रकृति में लय को प्राप्त होती है; इसी से प्रकृति को लिंग कहते हैं।

(४) पुरुष का चिह्न विशेष जिसके कारण स्त्री से उसका भेद जाना जाता है। पुरुष की गुप्त इंद्रिय। शिश्न।

पर्य्या०—उपस्थ। मदनांकुश। मोहन। कंदर्पमुषल। शेफस्। मेढ्र। ध्वज। साधन।

(५) शिव की एक विशेष प्रकार की मूर्ति।

विशेष—लिंग पुराण में लिखा है कि शिव के दो रूप हैं। निष्क्रिय और निर्गुण शिव अलिंग हैं और जगत्कारण रूप शिव लिंग हैं। अलिंग शिव से ही लिंग शिव की उत्पत्ति हुई है। शिव को लिंगी भी कहते हैं; और वह इसलिये कि लिंग या प्रकृति शिव की ही है। इस प्रकार लिंग जगत्कारण रूप शिव का प्रतीक है। पद्मपुराण में शिव के इस रूप के संबंध में यह कथा है—एक बार मंदराचल पर ऋषियों ने बड़ा भारी यज्ञ किया। वहाँ उन्होंने यह चर्चा छेड़ी कि ऋषियों का पूज्य देवता किसे बनाना चाहिए। अंत में यह निश्चय हुआ कि शिव, विष्णु और ब्रह्मा तीनों के पास चलकर इसका निर्णय करना चाहिए। सब ऋषि पहले शिव के पास गए। पर उस समय वे पार्वती के साथ क्रीड़ा कर रहे थे; इससे नंदि ने द्वार पर उन्हें रोक दिया। ऋषियों को प्रतीक्षा करते बहुत काल बीत गया। इस पर भृगु ऋषि ने कोप करके शाप दिया—"हे शिव! तुमने काम क्रीड़ा के वशीभूत होकर हमारा अपमान किया; इससे तुम्हारी मूर्ति योनि-लिंग रूप होगी और तुम्हारा नैवेद्य कोई ग्रहण न करेगा"। पर इस कथा के संबंध में यह ध्यान रखना चाहिए कि पद्मपुराण वैष्णवों का पुराण है।

किसी समय जगत्कारण के रूप में देवता या ईश्वर की उपासना के लिये लिंग का ग्रहण प्राचीन मिस्र, अरब, यहूद, यूनान और रोम आदि देशों में भी था। प्राचीन यूनानी लिंग को 'फेलस' कहते थे। यहूदियों में 'बाल' देवता की प्रतिष्ठा लिंग रूप में ही थी। बाबुल के खँडहरों में मंदिरों के अंदर बहुत से 'लिंग' निकले हैं, जो भारतीयों के शिवलिंग से बिल्कुल मिलते हैं। पर प्राचीन आर्यों में इस प्रकार की उपासना का पता नहीं लगता। वैदिक समय में कुछ अनार्य्य जातियों में 'लिंग-पूजा' प्रचलित थी, इसका कुछ आभास वेद के एक मंत्र से मिलता है। उसमें "शिश्नदेवाः" के प्रति उपेक्षा का भाव प्रकट किया गया है। पर कब से यह शिव की प्रतिमा के रूप में गृहीत हुआ, इसका ठीक पता नहीं।

(६) व्याकरण में वह भेद जिससे पुरुष और स्त्री का पता लगता है। जैसे,—पुलिंग, स्त्रीलिंग। (७) मीमांसा में छः लक्षण जिनके अनुसार लिंग का निर्णय होता है। यथा—उपक्रम, उपसंहार, अभ्यास, अपूर्वता, अर्थवाद और उपपत्ति। (८) अठारह पुराणों में से एक। वि० दे० "लिंगपुराण"।

लिंगक—संज्ञा पुं० [सं०] कपित्थ वृक्ष। कैथ।

लिंग जोत्री†—संज्ञा पुं० [सं० लिंगज्योति] एक विशेष प्रकार से गढ़ा हुआ शिवलिंग। ज्योतिर्लिंग।

लिंगदेह—संज्ञा पुं० [सं०] वह सूक्ष्म शरीर जो इस स्थूल शरीर के नष्ट होने पर भी संस्कार के कारण कर्मों के फल भोगने के लिये जीवात्मा के साथ लगा रहता है। (अध्यात्म)

विशेष—इसमें ज्ञानेंद्रियों और कर्मेंद्रियों की सब वृत्तियाँ रहती हैं, केवल उनके स्थूल रूप नहीं रहते। इस देह में सत्रह तत्व माने गए हैं—१० इंद्रियाँ, मन, ५ तन्मात्र और बुद्धि। उ०—लिंगदेह नृप को निज गेह। दस इंद्रिय दासी सों नेह।—सूर।

लिंगनाश—संज्ञा पुं० [सं०] (१) अँधेरा, जिसमें वस्तु की पहचान न हो सके। तिमिर। अंधकार। (२) आँखों का एक रोग जिसमें आँखों के सामने कभी अँधेरा, कभी लाल पीला आदि दिखाई पड़ता है। नीलिका नामक रोग।

विशेष—सुश्रुत के अनुसार आँख के चौथे पटल में विकार होने से यह रोग होता है। वात, पित्त, और कफ के भेद से यह रोग तीन प्रकार का कहा गया है।

लिंग पुराण—संज्ञा पुं० [सं०] अठारह पुराणों में से एक जिसमें शिव का माहात्म्य और लिंग की पूजा की महिमा वर्णित है।

विशेष—इसकी श्लोक संख्या ११००० है। ब्रह्मा इसके मुख्य वक्ता हैं। इसमें शिव ही ब्रह्मा और विष्णु दोनों के अधिष्ठान कहे गए हैं। शिव जी ने अपने मुख से २८ अवतारों का वर्णन किया है। यह एक सांप्रदायिक पुराण है। जिस प्रकार विष्णु ने अपने उपासक अंबरीष राजा की रक्षा की थी, उसी ढंग पर इसमें शिव द्वारा परम शैव दधीचि की रक्षा की कथा लिखी गई है। पहले पद्म कल्प की सृष्टि की उत्पत्ति की कथा देकर फिर वैवस्वत मन्वंतर के राजाओं की वंशावली श्रीकृष्ण के समय तक कही गई है। योग और अध्यात्म की दृष्टि से लिंग पूजा का गुह्यार्थ भी बताया गया है।

लिंगवर्धिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] अपामार्ग। चिचड़ा।

लिंगवर्त्ति रोग—संज्ञा पुं० [सं०] लिंगार्श नामक रोग।

लिंगयान—संज्ञा पुं० [सं०] (१) चिह्नशाला। छद्मशाला। (२) शैवों का लिंगायत नामक संप्रदाय।

लिंगवृत्ति—संज्ञा पुं० [सं०] वह जो केवल बाहरी चिह्न या भेस बनाकर अपनी जीविका करता हो। आडंबरी। दांभिक।

लिंग शरीर–संज्ञा पुं० दे० "लिंगदेह"।

लिंगस्थ–संज्ञा पुं० [सं०] ब्रह्मचारी। (मनुस्मृति)

लिंगांकित–संज्ञा पुं० [सं०] एक शैव संप्रदाय। वि० दे० लिंगायत।

लिंगायत–संज्ञा पुं० [सं०] एक शैव संप्रदाय जिसका प्रचार दक्षिण में बहुत है।

विशेष—इस संप्रदाय के लोग शिव के अनन्य उपासक हैं और सोने या चाँदी के संपुट में शिवलिंग रखकर बाहु या गले में पहने रहते हैं। ये लोग 'जंगम' भी कहलाते हैं। इनके आचार और संस्कार भी औरों से विलक्षण होते हैं।

लिंगिनी–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) एक लता जिसे पँचगुरिया कहते हैं और जो वैद्यक में कटु, उष्ण, दुर्गंधनाशक तथा रसायन कही गई है। (२) धर्मध्वजी या आडंबर करनेवाली स्त्री।

लिंगी–संज्ञा पुं० [सं० लिङ्गिन्] (१) चिह्नवाला। निशानवाला। (२) बाहरी रूप रंग या वेश बनाकर काम निकालनेवाला। आडंबरी। धर्मध्वजी। (३) हाथी।

लिंगेंद्रिय–संज्ञा पुं० [सं०] पुरुषों की मूत्रेंद्रिय।

लिंट–संज्ञा पुं० [अं०] तेलिए में रँगा हुआ मुलायम कपड़ा या फलालीन जो घाव में मरहम लगाकर इसलिये भर दी जाती है, जिसमें उसका मुँह एकबारगी बंद न हो जाय और मवाद न रुके।

लिंपाक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्रकार का नीबू। (२) खर। गदहा।

लिंफ–संज्ञा पुं० [अं०] शीतला का चेप जो टीका लगाने के काम में आता है।

लिए–हिन्दी का एक कारक-चिह्न जो संप्रदान में आता है, और जिस शब्द के आगे लगता है, उसके अर्थ या निमित्त किसी क्रिया का होना सूचित करता है। जैसे,—मैं तुम्हारे लिये आम लाया हूँ। यह चिह्न शब्द के संबंध-कारक रूप का के साथ लगता है। जैसे—उसके लिए। बहुत से लोग इसकी व्युत्पत्ति संस्कृत 'कृते' से बताते हैं; पर 'लग्न' और 'लग्ग' शब्द से इसका अधिक लगाव जान पड़ता है। पुरानी काव्य-भाषा विशेषतः अवधी में 'लगि' और 'लागि' रूप बराबर मिलते हैं। यह प्रायः "लिये" भी लिखा जाता है।

लिकिम–संज्ञा पुं० [देश०] मटियाले रंग की एक बड़ी चिड़िया जिसकी टाँगें हाथ हाथ भर की और गरदन एक बालिश्त की होती है।

लिकुच–संज्ञा पुं० [सं०] बड़हर का पेड़। लकुच। लुकुच।

लिक्खाड़–संज्ञा पुं० [हिं० लिखना] बहुत लिखनेवाला। भारी लेखक। (व्यंग्य या विनोद)

लिक्षा–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) चूकोट। जूँ का अंडा। लीख। (२) एक परिमाण जो कई प्रकार का कहा गया है, जैसे, कहीं चार अणुओं की लिक्षा कही गई है, कहीं आठ बालाग्र की। (८ परमाणु = रज। ८ रज = बालाग्र)। ६ लिक्षा का एक सर्षप (सरसों या राई) माना गया है।

लिखत–संज्ञा स्त्री० [सं० लिखित] (१) लिखी हुई बात। लेख। लिपिबद्ध विषय।

यौ०—लिखत पढ़त

मुहा०—लिखत पढ़त होना = लिखा पढ़ी होना। लेख के रूप में पक्का होना।

(२) लिखित पत्र। (३) दस्तावेज़।

लिखधार*–संज्ञा पुं० [हिं० लिखना + धार (प्रत्य०)] लिखनेवाला। मुहर्रिर या मुंशी। उ०—साँचो सो लिखधार कहावै। काया ग्राम मसाहत करिकै जमा बाँधि ठहरावै।

लिखन–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) लिपि या लेख। लिखावट। (२) कर्म की रेखा। भाग्य में निश्चित बात।

लिखना–क्रि० स० [सं० लिखन] (१) किसी नुकीली वस्तु से रेखा के रूप में चिह्न करना। अंकित करना। (२) स्याही में डूबी हुई क़लम से अक्षरों की आकृति बनाना। अक्षर अंकित करना। लिपिबद्ध करना।

यौ०—लिखना पढ़ना। लिखा पढ़ी।

मुहा०—किसी के नाम लिखना = यह लिखना कि अमुक वस्तु किसी के ज़िम्मे है। जैसे,—१००) तुम्हारे नाम लिखे हैं। लिखना पढ़ना = विद्योपार्जन करना। विद्या का अभ्यास करना। जैसे,—वह लड़का कुछ लिखता पढ़ता नहीं। लिखा पढ़ा = ६ घत।

(३) रंग से आकृति अंकित करना। चित्रित करना। चित्र बनाना। तसवीर खींचना। जैसे,—चित्र लिखना। उ०—देखी चित्र लिखी सी ठाढ़ी।—सूर। (४) पुस्तक, लेख या काव्य आदि की रचना करना। जैसे,—यह पुस्तक किसकी लिखी है?

संयो० क्रि०—डालना।—देना।—लेना।

लिखनी†–संज्ञा स्त्री० [सं० लेखनी] क़लम।

लिखवाई–संज्ञा स्त्री० दे० "लिखाई"।

लिखवाना–क्रि० स० दे० "लिखाना"।

लिखाई–संज्ञा स्त्री० [हिं० लिखना] (१) लेख। लिपि। (२) लिखने का कार्य्य (३) लिखने का ढंग। लिखावट।

यौ०—लिखाई पढ़ाई = विद्याभ्यास।

(४) लिखने की मज़दूरी।

लिखाना–क्रि० स० [सं० लिखन] अंकित कराना। लिपिबद्ध कराना। दूसरे के द्वारा लिखने का काम कराना।

संयो० क्रि०—डालना।—देना।—लेना।

मुहा०—लिखाना पढ़ाना = (१) शिक्षा देना। तालीम देना। (२) लेखबद्ध कराना।

लिखापढ़ी–संज्ञा स्त्री० [हिं० लिखना + पढ़ना] (१) पत्र-व्यवहार।

चिट्ठियों का आना जाना। परस्पर लेखों द्वारा व्यवहार होना। जैसे,—(क) लिखा पढ़ी करके उनसे यह बात तै कर लो। (ख) इसके बारे में बहुत दिनों तक लिखा पढ़ी होती रही। (२) किसी विषय को कागज पर लिखकर निश्चित या पक्का करना। जैसे,—पहले लिखा पढ़ी करके तब रुपए दीजिए।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

लिखावट-संज्ञा स्त्री० [हिं० लिखना + आवट (प्रत्य०)] (१) लिखे हुए अक्षर आदि। लेख। लिपि। जैसे,—तुम्हारी लिखावट तो किसी से पढ़ी ही नहीं जाती। (२) लिखने का ढंग। लेख-प्रणाली।

लिखित-वि० [सं०] लिखा हुआ। लिपिबद्ध किया हुआ। अंकित।

संज्ञा पुं० (१) लिखी हुई बात। लेख।

विशेष—व्यवहार (मामले, मुकदमे) में 'लिखित' चार प्रकार के प्रमाणों में से एक है। साक्षियों में भी एक 'लिखित' साक्षी होते हैं। अर्थी जिसे लाकर लिखा दे, वह लिखित साक्षी होगा। (मिताक्षरा)

(२) लिखी हुई सनद। प्रमाण-पत्र। (३) एक स्मृतिकार ऋषि।

लिखितक-संज्ञा पुं० [सं० लिखित] एक प्रकार के प्राचीन चौखूँटे अक्षर जो खुतन (मध्य एशिया) में पाए गए शिलालेखों में मिलते हैं।

लिखेरा-संज्ञा पुं० [हिं० लिखना] लिखनेवाला। लेखक।

लिख्या-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) जूँ का अंडा। लीख। (२) एक परिमाण। वि० दे० "लिक्षा"।

लिगड़ी-संज्ञा स्त्री० [देश०] कमज़ोर छोटी घोड़ी।

लिगु-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मन। (२) मूर्ख। (३) मृग। (४) भूप्रदेश।

लिचेन-संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की घास जो पानी में होती है।

लिच्छवि-संज्ञा पुं० [सं०] एक इतिहास-प्रसिद्ध राजवंश जिसका राज्य किसी समय में नैपाल, मगध और कोशल में था।

विशेष—प्राचीन संस्कृत साहित्य में क्षत्रियों की इस शाखा का नाम 'निच्छवि' या 'निच्छिवि' मिलता है। पाली रूप 'लिच्छवि' है। मनुस्मृति के अनुसार लिच्छवि लोग व्रात्य क्षत्रिय थे। उसमें इनकी गणना झल्ल, मल्ल, नट, करण, खस और द्रविड़ के साथ की गई है। ये 'लिच्छवि' लोग वैदिक धर्म के विरोधी थे। इनकी कई शाखाएँ दूर दूर तक फैली थीं। वैशालीवाली शाखा में जैन तीर्थंकर महावीर स्वामी हुए और कोशल की शाक्य शाखा में गौतम बुद्ध प्रादुर्भूत हुए। किसी समय मिथिला से लेकर मगध और कोशल तक इस वंश का राज्य था। जिस प्रकार हिन्दुओं के संस्कृत ग्रंथों में यह वंश हीन कहा गया है, उसी प्रकार बौद्धों और जैनों के पाली और प्राकृत ग्रंथों में यह वंश उच्च कहा गया है। गौतम बुद्ध के समसामयिक मगध के राजा बिंबसार ने वैशाली के लिच्छवि लोगों के यहाँ संबंध किया था। पीछे गुप्त सम्राट् ने भी लिच्छवि कन्या से विवाह किया था।

लिटाना-क्रि० स० [हिं० लेटना] लेटने की क्रिया कराना। दूसरे को लेटने में प्रवृत्त कराना।

लिट्ट-संज्ञा पुं० [देश०] [स्त्री० अल्पा० लिट्टी] मोटी रोटी जो बिना तवे के आग ही पर सेंकी जाय। अंगाकड़ी। बाटी।

लिठोर-संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का नमकीन पकवान।

लिड़ार†-संज्ञा पुं० [देश०] शृगाल। गीदड़।

वि० डरपोक। कायर। बुज़दिल। उ०—त्रिगुद होहु जुद्ध को विरुद्ध बात ना कहो। न माँचिहौ अरे घुसे लिड़ार होन ना चहौ।

लिड़ौरी†-संज्ञा स्त्री० [देश०] अनाज के वे दाने जो पीटने के पीछे बाल में लगे रह जाते हैं। सुंडारी। दोबरी। पछुरी। चिची। (यह शब्द रबी की फसल के लिये बोला जाता है।)

लिपटना-क्रि० अ० [सं० लिप्त] (१) एक वस्तु का दूसरी को घेरकर उससे खूब सट जाना। किसी वस्तु से दृढ़तापूर्वक जा लगना। वेष्टित करके संलग्न होना। चिमटना। जैसे,—साँप का पैर में लिपटना, बच्चे का माँ से लिपटना, लता का पेड़ से लिपटना।

संयो० क्रि०—जाना।

(२) इस प्रकार लग जाना कि जल्दी न छूटे। चिपकना। (३) गले लगना। आलिंगन करना। जैसे—वह उससे लिपट कर रोने लगा। (४) किसी काम में जी जान से लग जाना। तन्मय होकर प्रवृत्त होना। जैसे,—जिस काम में लिपटता हूँ, उसे पूरा करके छोड़ता हूँ।

लिपटाना-क्रि० स० [हिं० लिपटना का स० रूप] (१) एक वस्तु को दूसरी वस्तु से खूब सटाना। संलग्न करना। चिमटाना। (२) किसी को हाथों से घेरकर अपने शरीर से खूब सटाना। आलिंगन करना। गले लगाना। उ०—काम्द के काम आँगुरी नाइ रही लपटाइ लवंगलता सी।—पद्माकर।

लिपड़ा-संज्ञा पुं० [देश०] लुगड़ा। कपड़ा। (कलंदर)

विशेष—कलंदर भालू नचाकर जब उससे लोगों से कपड़ा माँगने को कहते हैं, तब 'लिपड़ा' 'लिबड़ा' कहते हैं।

वि० [हिं० लेर] लेई की तरह गीला और चिपचिपा।

लिपड़ी-संज्ञा स्त्री० [हिं० लिपड़ा] लेई की तरह गीला और चिपचिपा पदार्थ। जैसे,—इसमें पानी अधिक होने से लिपड़ी हो गया।

संज्ञा स्त्री० दे० "छिपड़ी"।

लिपना-क्रि० अ० [सं० लिप्] (१) किसी रंग या गीली वस्तु की पतली तह से ढक जाना। पोता जाना। जैसे,—सारा घर गोबर से लिप गया।

यौ०—लिपा पुता = स्वच्छ। साफ़। झक।

(२) रंग या गीली वस्तु का फैल जाना। जैसे,—हाथ पड़ने से कागज़ पर स्याही लिप गई।

संयो० क्रि०—जाना।

यौ०—लिपा पुता = जिस पर धब्बे आदि हों। बदरंग।

लिपवाना-क्रि० स० [हिं० लीपना] लीपने का काम दूसरे से कराना। दूसरे को लीपने में प्रवृत्त करना

लिपाई-संज्ञा स्त्री० [हिं० लिपना] (१) किसी रंग या घुली हुई गीली वस्तु की तह फैलाने की क्रिया या भाव। (२) दीवार या ज़मीन पर घुली हुई मिट्टी या गोबर की तह फैलाना। लेपना। पोताई। (३) लीपने की मज़दूरी।

लिपाना-क्रि० स० [हिं० लीपना] (१) रंग या किसी गीली वस्तु की तह चढ़वाना। पुताना। (२) दीवार या ज़मीन पर सफ़ाई के लिये घुली हुई मिट्टी या गोबर की तह चढ़वाना। मिट्टी, गोबर आदि का लेप कराना। उ०—जागी महरि पुत्र मुख देख्यो आनँद तूर बजायो हो। कंचन कलस होम द्विज पूजा चंदन भवन लिपायो हो।—सूर।

संयो० क्रि०—डालना।—देना।—लेना।

लिपि-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) अक्षर या वर्ण के अंकित चिह्न। लिखावट। (२) अक्षर लिखने की प्रणाली। वर्ण अंकित करने की पद्धति। जैसे,—ब्राह्मी लिपि, खरोष्ठी लिपि, अरबी लिपि। (३) लिखे हुए अक्षर या बात। लेख। जैसे—भाग्य-लिपि। उ०—जिनके भाल लिखी लिपि मेरी सुख की नहीं निसानी।—तुलसी।

लिपिकर-संज्ञा पुं० [सं०] लेखक। लिखनेवाला।

लिपिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] लिपि। लिखावट।

लिपिकार-संज्ञा पुं० [सं०] लिखनेवाला। लेखक।

लिपिफलक-संज्ञा पुं० [सं०] पत्थर, तख्ती, धातुपत्र आदि जिन पर अक्षर खोदे जायँ।

लिपिबद्ध-वि० [सं०] लिखा हुआ। लिखित।

लिप्त-वि० [सं०] (१) जिस पर किसी गीली वस्तु (जैसे,—चूनी मिट्टी, चंदन आदि) की तह चढ़ी हो। जिस पर लेप किया गया हो। लिपा हुआ। पुता हुआ। चर्चित। (२) जो लीपा गया हो। जिसकी पतली तह चढ़ी हो। (३) गाढ़ा लगा हुआ। खूब संलग्न। (४) खूब तत्पर। लीन। अनुरक्त। फँसा हुआ। जैसे,—विषय भोग में लिप्त।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

लिप्ता-संज्ञा स्त्री० [सं०] ज्योतिष के अनुसार काल का एक मान जो एक मिनट के बराबर होता है।

लिप्सा-संज्ञा स्त्री० [सं०] लालच। लोभ। चाह। इच्छा।

लिप्सु-संज्ञा पुं० [सं०] लाभ की इच्छा रखनेवाला। लोलुप। लोभी। लालची। जैसे,—यशोलिप्सु।

लिफाफा-संज्ञा पुं० [अ०] (१) कागज़ की बनी हुई चौकोर खोली या थैली जिसके अंदर चिट्ठी या कागज़ पत्र रखकर भेजे जाते हैं। जैसे,—लिफ़ाफ़े में बंद करके चिट्ठी डाल देना।

मुहा०—लिफाफा खुल जाना = भेद खुल जाना। छिपी हुई बात का प्रकट हो जाना।

(२) ऊपरी आच्छादन। सजावट की पोशाक। दिखावटी कपड़े लत्ते। जैसे,—आज तो खूब लिफ़ाफ़ा बदलकर निकले हो।

मुहा०—लिफ़ाफ़ा बदलना = भड़कदार कपड़े पहनना।

(३) ऊपरी आडंबर। झूठी तड़क भड़क। मुलम्मा। कलई।

मुहा०—लिफ़ाफ़ा खुल जाना = असली रूप प्रकट हो जाना। लिफ़ाफ़ा बनाना = (१) ठाठ बाट बनाना। (२) आडंबर करना। ढकोसला रचना।

(४) जल्दी नष्ट हो जानेवाली वस्तु। दिखाऊ चीज़। कम-मोजू चीज।

लिबड़ी-संज्ञा स्त्री० [हिं० लुगड़ी ?] कपड़ा लत्ता।

यौ०—लिबड़ी बरतना या बारदाना = निर्वाह का सामान। असबाब। जैसे,—अपना लिबड़ी बरतना उठाओ, और चल दो।

लिबरल-वि० [अं०] उदार। उदार नीतिवाला।

संज्ञा पुं० (१) इंग्लैंड का एक राजनीतिक दल जिसकी नीति अधीनस्थ देशों की व्यवस्था के संबंध में तथा अन्य राज्यों के साथ व्यवहार करने में उदार कही जाती है। (२) भारत का एक राजनीतिक दल जो बहुत ही सौम्य उपायों से अपने देश को स्वतंत्र करना चाहता है।

लिबास-संज्ञा पुं० [अ०] पहनने का कपड़ा। आच्छादन। पर-माया। पोशाक।

लिबि-संज्ञा स्त्री० [सं०] लिपि। लिखावट।

लियाक़त-संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) योग्यता। क़ाबिलीयत। (२) गुण। हुनर। (३) सामर्थ्य। समाई। (४) शील। शिष्टता। भद्रता।

लिलाट†-संज्ञा पुं० दे० "ललाट"।

लिलार†-संज्ञा पुं० [सं० ललाट] (१) माथा। माथा। मस्तक। (२) कूएँ का वह सिरा जहाँ मोट का पानी उलटते हैं।

लिवारी†-संज्ञा पुं० [हिं० ओर, लंब + दार] नीलगर। रँगरेज़।

लिसाढ़ी-संज्ञा पुं० [देश०] हाथ का बटा हुआ देशी सूत।

लिसोढ़ी†-वि० [सं० लस्=चाह करना] लालची। अति लोभी।

उ०—बूझिबे की जक लागी है कान्हहिं केशव के रुचि रूप लिलोही।—केशव।

लिवाना-क्रि० स० [हिं० लेना का प्रे०] (१) लेने का काम दूसरे से कराना। ग्रहण कराना। थमाना। पकड़ाना। उ०—सूरदास भीषम परतिज्ञा शस्त्र लिवाऊँ पैज करी।—सूर।

क्रि० स० [हिं० लाना का प्रे०] लाने का काम दूसरे से कराना। जैसे,—लकड़ी मज़दूर से लिवा लाना।

विशेष—इस क्रिया का प्रयोग संयोज्य क्रिया 'लाना' के साथ होता है।

संयो० क्रि०—लाना।

मुहा०—लिवा लाना = साथ ले आना।

लिवाल संज्ञा पुं० [हिं० लेना + ला वा] खरीदनेवाला। लेनेवाला।

लिवैया†-संज्ञा पुं० [हिं० लेना] लेनेवाला।

संज्ञा पुं० [हिं० लाना] लानेवाला।

लिश्व-संज्ञा पुं० [सं०] नर्त्तक। नाचनेवाला।

लिसोड़ा-संज्ञा पुं० [हिं० लस = चिपचिपाहट] मझोले डील का एक पेड़ जिसके पत्ते कुछ गोलाई लिए होते हैं। इसके फल छोटे बेर के बराबर होते हैं और गुच्छों में लगते हैं। पकने पर इसमें लसदार गूदा हो जाता है, जो गोंद की तरह चिपकता है। यह गूदा हकीम लोग खाँसी में देते हैं। पत्ते बीड़ी (तंबाकू की) के ऊपर लपेटने के काम में आते हैं। छाल के रेशे से रस्से बटे जाते हैं। अंदर की लकड़ी मज़बूत होती है और किश्ती तथा खेती के सामान बनाने के काम की होती है। इसे 'लभेरा' और 'लिटोरा' भी कहते हैं।

पर्य्या०—श्लेष्मांतक। भूकर्बुदार।

लिह-क्रि० स० [सं०] चाटना।

वि० चाटनेवाला। जैसे,—अभ्रंलिह।

लिहाज़-संज्ञा पुं० [अ०] (१) व्यवहार या बरताव में किसी बात का ध्यान। कोई काम करते हुए उसके संबंध में किसी बात का खयाल। जैसे,—(क) उसकी तंदुरुस्ती के लिहाज़ से मैंने उसे हलका काम दिया। (ख) दवा में मैंने खाँसी का लिहाज़ भी रखा है।

क्रि० प्र०—करना।—रखना।

(२) कृपापूर्वक किसी बात का ध्यान। मेहरबानी का खयाल। कृपा दृष्टि। (३) किसी को कोई बात अप्रिय या दुःखदायी न हो, इस बात का खयाल। मुरव्वत। मुलाहज़ा। शील संकोच। जैसे,—काम बिगड़ने पर वह कुछ भी लिहाज़ न करेगा। (४) पक्षपात। तरफ़दारी। (५) बड़ों के सामने ढिठाई आदि न प्रकट हो, इस बात का ध्यान। सम्मान या मर्य्यादा का ध्यान। अदब का खयाल। जैसे,—बड़ों का लिहाज़ रखा करो। (६) लज्जा। शर्म। हया।

क्रि० प्र०—आना।—करना।—रखना।

मुहा०—लिहाज़ उठना या टूटना = लिहाज़ न रहना।

लिहाड़ा-वि० [देश०] (१) नीच। वाहियात। गिरा हुआ (२) खराब। निकम्मा।

लिहाड़ी†-संज्ञा स्त्री० [देश०] उपहास। विडंबना। निंदा। उ०—जाके कुल में भक्त मम नाम लिहाड़ी होय। एक एक रात आपनी पीढ़ी तारत सोय।

क्रि० प्र०—करना। होना।

मुहा०—लिहाड़ी लेना = (१) उपहास करना। ठट्ठा करना। बनाना। (२) निंदा करना।

लिहाफ़-संज्ञा पुं० [अ०] रात को सोते समय ओढ़ने का रूईदार कपड़ा। भारी रज़ाई।

लीक-संज्ञा स्त्री० [सं० लिख्] (१) लंबा चला गया चिह्न। लकीर। रेखा।

क्रि० प्र०—खींचना।

मुहा०—लीक करके = दे० "लीक खींचकर"। उ०—आगम निगम पुरान कहत करि लीक।—तुलसी। लीक खिंचना = (१) किसी बात का अटल और दृढ़ होना। इस प्रकार स्थिर किया जाना कि न टले। (२) मर्य्यादा बँधना। व्यवहार का प्रतिबंध या नियम स्थापित होना। हद या कायदा मुकर्रर होना। (३) साख बँधना। प्रतिष्ठा स्थिर होना। उ०—हरि चरनारविंद तजि लागत अनत कहूँ तिनकी मति काँची।—सूरदास। भगवंत भजत जे तिनकी लीक चहूँ दिसि खाँची।—सूर। लीक खींचकर = इस बात को दृढ़ प्रतिज्ञा करके कि ऐसा ही होगा। निश्चयपूर्वक। जोर देकर। उ०—सूर श्याम तेरे बस राधा, कहति लीक मैं खाँची।—सूर।

(२) गहरी पड़ी हुई लकीर। (३) गाड़ी के पहिए से पड़ी हुई लकीर। उ०—लीक लीक गाड़ी चलै लीकै चलै कपूत। (४) चलते चलते बना हुआ रास्ते का निशान। डुर्रा। जैसे,—यही लीक पकड़े सीधे चले जाओ।

मुहा०—लीक पकड़ना = डुर्रे पर चलना। पगडंडी पर होना। लीक पीटना = पुराने निकले हुए रास्ते पर चलना। चली आती हुई प्रथा का ही अनुसरण करना। बँधी हुई रीति या प्रणाली पर ही चलना। लीक लीक चलना = दे० "लीक पीटना"।

(५) महत्व की प्रतिष्ठा। मर्य्यादा। नाम। यश। उ०—दंपति धरम आचरन नीका। अजहुँ गाव श्रुति जिन्ह कै लीका।—तुलसी। (६) बँधी हुई मर्य्यादा। लोक-व्यवहार की बँधी हुई सीमा या व्यवस्था। लोक-नियम। उ०—नँदनंदन के नेह-मेह जिन लोक-लीक लोपी।—सूर। (७) बँधी हुई विधि। रीति। प्रथा। चाल। दस्तूर। (८) हद। प्रतिबंध। (९) कलंक की रेखा। धब्बा। बदनामी। लांछन। उ०—जिहि देखत मेरो पट काजर

लीक लगी तुम काज ।—सूर । (१०) गिनती के लिये लगाया हुआ चिह्न । गिनती । गणना । उ०—बारिदनाद जेठ सुत तासू । भट महँ प्रथम लीक जग जासू ।—तुलसी ।
संज्ञा स्त्री० [देश०] मटियाले रंग की एक चिड़िया जो बत्तख से कुछ छोटी होती है ।

लीख–संज्ञा स्त्री० [सं० लिक्षा] जूँ का अंडा ।

लीचड़–वि० [देश०] (१) सुस्त । काहिल । निकम्मा । (२) जल्दी न छोड़नेवाला । चिमटनेवाला । उ०—पाहुक सुबाहु नीच लीचर मरीच मिलि मुँह-पीर केतुजा कुरोग जातुधान हैं ।—तुलसी । (३) जिसका लेन देन ठीक न हो ।

लीची–संज्ञा स्त्री० [चीनी लीचू] एक सदाबहार बड़ा पेड़ जिसका फल खाने में बहुत मीठा होता है । इसकी पत्तियाँ छोटी छोटी होती हैं; फल गुच्छों में लगते हैं और देखने में बहुत सुंदर होते हैं । छिलके के ऊपर कटावदार दाने से उभरे होते हैं । गूदा सफ़ेद लोली की तरह बीच से चिपका रहता है, पर बहुत जल्दी छूटकर अलग हो जाता है । यह पेड़ चीन से आया है और बंगाल तथा बिहार में अधिक होता है ।

लीझी–संज्ञा स्त्री० [देश०] (१) देह में मले हुए उबटन के साथ छूटी हुई मैल की बत्ती । (२) वह गूदा या रेशा जिसका रस चूस या निचोड़ लिया गया हो । सीठी ।
वि० (१) नीरस । निस्सार । (२) निकम्मा । उ०—श्री रघुराज कहे कह रीती भई तनु लीझी अजौं दशा एती ।—रघुराज ।

लीडर–संज्ञा पुं० [अं०] अगुआ । मुखिया । नेता ।

लीथो–संज्ञा पुं० [अं०] पत्थर का छापा, जिस पर हाथ से लिख कर अक्षर या चित्र छापे जाते हैं ।

लीद–संज्ञा स्त्री० [देश०] घोड़े, गधे, ऊँट और हाथी आदि पशुओं का मल । घोड़े आदि का पुरीष ।
मुहा०—लीद करना = घोड़े आदि का मल त्याग करना ।

लीन–वि० [सं०] (१) लय को प्राप्त । जो किसी वस्तु में समा गया हो । (२) तन्मय । मग्न । डूबा हुआ । (३) बिलकुल लगा हुआ । तत्पर । जैसे,—कार्य्य में लीन होना । (४) ख्याल में डूबा हुआ । ध्यानमग्न । अनुरक्त । उ०—अति ही चतुर सुजान जानमनि या छबि पै अहू मैं लीना ।—सूर ।
क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

लीनता–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) तन्मयता । तत्परता । (२) ऐसा संकुचित होकर रहना जिसमें किसी को दुःख न पहुँचे । (जैन)

लीपना–क्रि० स० [सं० लेपन] (१) घुले हुए रंग, मिट्टी, गोबर या और किसी गीली वस्तु की पतली तह चढ़ाना । पोतना । (२) सफ़ाई के लिये ज़मीन या दीवार पर घुली हुई मिट्टी या गोबर फेरना । पोतना ।
यौ०—लीपना पोतना = सफ़ाई करना ।
मुहा०—लीप पोतकर बराबर करना = किसी काम को बिगाड़ना । चौपट करना । चौका लगाना । सत्यानाश करना ।

लीम–संज्ञा पुं० [देश०] (१) एक प्रकार का चीड़ का पेड़ जिसमें से तारपीन या अलकतरा निकलता है । (२) एक प्रकार की चिड़िया ।

लील†–संज्ञा पुं० [सं० नील] नील ।
वि० नीला । नीलवर्ण । नीले रंग का । उ०—लीलपुट तनुलीलबसन मणि चितयो न जात धूम के घोरे ।—सूर ।

लीलकंठ†–संज्ञा पुं० दे० "नीलकंठ" ।

लीलक–संज्ञा पुं० [हिं० लील] वह हरा चमड़ा जो जूतों की नोक पर लगाया जाता है ।
वि० नीला ।

लीलगऊ†–संज्ञा स्त्री० [हिं० नील + गऊ] नील गाय ।

लीलगर†–संज्ञा पुं० दे० "नीलगर" ।

लीलना–क्रि० स० [सं० गिलन या लीन] गले के नीचे पेट में उतारना । मुँह में लेकर पेट में डालना । निगलना । खा जाना । उ०—(क) बालधी बिसाल बिकराल ज्वालजाल मानो लंक लीलिबे को काल रसना पसारी है ।—तुलसी । (ख) बीच गये सुरसा मिली और सिंहिका नारि । लीलि लियो हनुमंत तेहि, कढ़े उदर कहँ फारि ।—केशव ।
संयो० क्रि०—जाना ।—लेना ।

लीलया–क्रि० वि० [सं०] (१) खेल में । (२) सहज में ही । बिना प्रयास । उ०—रामचन्द्र कटि सों पट बाँध्यो । लीलयैव हर को धनु साध्यो ।—केशव ।

लीला–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) वह व्यापार जो चित्त की उमंग से केवल मनोरंजन के लिये किया जाय । केलि । क्रीड़ा । खेल । जैसे,—बाल लीला । उ०—अति उतंग गढ़ सिखर लीलहिं लेहिं उठाइ ।—तुलसी । (२) शृंगार की उमंग भरी चेष्टा । प्रेम का खेलवाड़ । प्रेम-विनोद । (३) नायिकाओं का एक हाव जिसमें वे प्रिय के वेश, गति, वाणी आदि का अनुकरण करती हैं । (४) रहस्यपूर्ण व्यापार । विचित्र काम । जैसे,—यह ईश्वर की लीला है जो ऐसे स्थान में ऐसा सुंदर पेड़ होता है । (५) मनुष्यों के मनोरंजन के लिये किए हुए ईश्वरावतारों का अभिनय । चरित्र । जैसे,—रामलीला, कृष्णलीला । (६) बारह मात्राओं का एक छंद जिसके अंत में एक जगण होता है । (७) एक वर्णवृत्त जिसके प्रत्येक चरण में भगण, नगण और एक गुरु होता है । (८) चौबीस मात्राओं का एक छंद जिसमें ७ + ७ + ७ + ३ के विराम से २४ मात्राएँ और अंत में सगण होता है ।

संज्ञा पुं० [सं० नील] स्याह रंग का घोड़ा। उ०—लीले, सुरंग, कुमैत श्याम तेहि परदे सब मन रंग।

वि० नीला। उ०—कटि लहँगा लीलो बन्यो धौं को जो देखि न मोहै।—सूर।

लीलाकमल-संज्ञा पुं० [सं०] कमल का फूल जिसे क्रीड़ा के लिये हाथ में लिए हों।

लीलापुरुषोत्तम-संज्ञा पुं० [सं०] श्रीकृष्ण।

विशेष—राम और कृष्ण इन दो प्रधान अवतारों में राम मर्य्यादा पुरुषोत्तम कहलाते हैं और कृष्ण लीला पुरुषोत्तम।

लीलामय-वि० [सं०] क्रीड़ा के भाव से भरा हुआ। क्रीड़ायुक्त।

लीलावती-वि० स्त्री० [सं०] क्रीड़ा करनेवाली। विलासवती।

संज्ञा स्त्री० (१) प्रसिद्ध ज्योतिर्विद भास्कराचार्य्य की पत्नी का नाम जिसने लीलावती नाम की गणित की एक पुस्तक बनाई थी। पीछे भास्कराचार्य्य ने भी इस नाम की एक गणित की पुस्तक बनाई। (२) संपूर्ण जाति की एक रागिनी जिसमें सब शुद्ध स्वर लगते हैं। यह रागिनी ललित, जयतश्री और देशकार से मिलकर बनी कही गई है। कोई कोई इसे दीपक राग की पुत्रवधू कहते हैं। (३) एक छंद जिसके प्रत्येक चरण में १०, ८ और १४ के विराम से ३२ मात्राएँ होती हैं और अंत में एक जगण होता है।

लीलास्थल-संज्ञा पुं० [सं०] क्रीड़ा करने का स्थान।

लीली-वि० स्त्री० [सं० नील] नीले रंग की। नीली। उ०—चंदन शिरता टंक गंड पर रतन जटित मणि लीली। —सूर।

लुंग-संज्ञा पुं० [सं०] मातुलंग वृक्ष।

लुंगा-संज्ञा पुं० [देश०] (१) पंजाब में धान रोपने की एक रीति। माच। (२) दे० "लुँगाड़ा"।

लुँगाड़ा-संज्ञा पुं० [देश०] शोहदा। लफंगा। लुचा।

लुंगी-संज्ञा स्त्री० [हिं० लँगोट या लाँग] (१) धोती के स्थान पर कमर में लपेटने का छोटा टुकड़ा। तहमत। (इस देश में मुसलमान, मदरासी और बरमी लोग इस प्रकार कपड़ा लपेटते हैं, जिसमें पीछे लाँग नहीं बाँधी जाती।)

क्रि० प्र०—बाँधना।—मारना।

(२) कपड़े का टुकड़ा (जो प्रायः लाल का होता है) जो हजामत बनाते समय नाई इसलिये पैर पर आगे डाल देता है जिसमें बाल उसी पर गिरें। (३) लाल रंग का एक मोटा कपड़ा। लाहना।

संज्ञा स्त्री० [देश०] एक बड़ी चिड़िया जो हिमालय के जंगलों में, कुमाऊँ से लेकर नैपाल और भूटान तक, तालों के किनारे पाई जाती है। इसकी लंबाई सवा या डेढ़ हाथ के लगभग और आकृति मोर की सी होती है। इसका अगला भाग काला और लाल होता है। सफेद चिड़ियाँ भी होती हैं। चोंच भूरे रंग की होती है। जाड़े के दिनों में यह मैदान में उतर आती है और कीड़े मकोड़े खाकर रहती है। कुत्तों की सहायता से लोग इसका शिकार करते हैं।

लुंचन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) चुटकी से पकड़कर झटके के साथ उखाड़ना। नोचना। उत्पाटन। जैसे,—केशलुंचन। (२) जैन यतियों की एक क्रिया जिसमें उनके सिर के बाल नोचे जाते हैं। (३) काटना। तराशना। अलग करना। दूर करना।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

लुंचित-वि० [सं०] उखाड़ा हुआ। नोचा हुआ। उत्पाटित।

लुंचितकेश-संज्ञा पुं० [सं०] जैन यति, जो अपने सिर के बाल नोचे रहते हैं।

लुंज-वि० [सं० लुंचन = काटना, उखाड़ना] (१) बिना हाथ पैर का। जिसके हाथ पैर बेकाम हो गए हों। लँगड़ा लूला। उ०—ए ऊधो, कहियो माधव सो मदन मारि कीन्हों हम लुंजें—सूर। (२) बिना पत्ते का पेड़। ठूँठ। उ०—पात बिनु कीन्हे ऐसी भाँति गन बेलिन के परत न चीन्हे जैसे लरजत लुंज हैं।—पद्माकर।

लुंठक-संज्ञा पुं० [सं०] लुटेरा।

लुंठन-क्रि० स० [सं०] [वि० लुंठित] (१) लुढ़कना। (२) लूटना। चुराना।

लुंठी-संज्ञा स्त्री० [सं०] घोड़े का लोटना।

लुंड-संज्ञा पुं० [सं०] चोर।

संज्ञा पुं० [सं० रुंड] (२) बिना सिर का धड़। कबंध। रुंड। उ०—लुंड मुंड बिनु चलयो प्रचंडा। तब प्रभु काटि किये युग खंडा।—विश्राम।

लुंडमुंड-वि० [सं० रुंड + मुंड] (१) जिसका सिर, हाथ, पैर आदि कटे हों, केवल धड़ का लोथड़ा रह गया हो। (२) बिना हाथ पैर का। लँगड़ा लूला। (३) बिना पत्ते का। ठूँठ। (पेड़) (४) यों ही गठरी की तरह लपेटा हुआ।

लुंडा-वि० [सं० रुंड] [स्त्री० अल्पा० लुंडी] (१) जिसकी पूँछ और पर झड़ गए हों या उखाड़ लिए गए हों। (पक्षी) (२) जिसकी पूँछ पर बाल न हों। (बैल)

संज्ञा पुं० [सं० लुंठिका] साफ़ किए हुए लपेटे सूत की पिंडी। कुकड़ी।

लुँडियाना†-क्रि० स० [हिं० लुंडी] सूत या रस्सी आदि को पिंडी के रूप में लपेटना।

लुंडी-वि० स्त्री० [हिं० लुंडा] जिसकी पूँछ या पर झड़ गए हों।

संज्ञा स्त्री० लपेटे हुए सूत की पिंडी या गोली।

लुंबिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का बाजा।

लुंबिनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] कपिलवस्तु के पास का एक वन या उपवन जहाँ गौतम बुद्ध उत्पन्न हुए थे।

लुआठ†-संज्ञा पुं० दे० "लुआठा"
लुआठा-संज्ञा पुं० [सं० लोक = चमकना, प्रज्वलित होना + काठ] [स्त्री० अल्पा० लुआठी] वह लकड़ी जिसका एक छोर जलता हुआ हो। सुलगती हुई लकड़ी। लुआती।
लुआठी-संज्ञा स्त्री० [हिं० लुआठा] सुलगती या दहकती हुई लकड़ी।
लुआब-संज्ञा पुं० [अ०] लसदार गूदा। चिपचिपा गूदा। लासा। जैसे,—बिहीदाने का लुआब।
लुआबदार-वि० [अ० लुआब + फा० दार] (१) लसदार। चिपचिपा। (२) जिसमें लसदार गूदा हो।
लुआर†-संज्ञा स्त्री० दे० "लू"।
लुकंजन॥†-संज्ञा पुं० [सं० लोकांजन] वह अंजन जिसे आँख में आँज लेने से आँजनेवाला सब को देखता है, पर उसे कोई नहीं देखता। उ०—बीतिये ही सुनो याति चुकी अब आँजती हौ केहि काज लुकंजन।—पद्माकर।
लुकंदर‡-वि० [हिं० लुकना] छिपनेवाला।
लुक-संज्ञा पुं० [सं० लोक = चमकना] (१) वह लेप जिसे फेरने से वस्तुओं (मिट्टी के बरतन आदि) पर चमक आ जाती है। चमकदार रोगन। वार्निश।
क्रि० प्र०—फेरना।
(२) आग की लपट। लौ। ज्वाला।
लुकना-क्रि० अ० [सं० लुक = लोप] ऐसी जगह हो रहना, जहाँ कोई देख न सके। आड़ में होना। गुप्त स्थान में हो रहना। छिपना। उ०—कातिक के न्हौस कहूँ आई न्हाइबे को यह गोविंद के संग जऊ नेकुक लुकी रही।—द्विज देव।
क्रि० प्र०—जाना।—रहना।
मुहा०—लुक छिपकर = गुप्त रूप से। अप्रकट में। किसी के देखने में नहीं। जैसे,—लुक छिपकर बहुत से लोग शराब पीते हैं।
लुकमा-संज्ञा पुं० [अ०] ग्रास। कौर। निवाला।
लुकसाज़-संज्ञा पुं० [हिं० लुक = चमकीला रोगन + फा० साज] एक प्रकार का चमड़ा जो सिझाया और चमकीला किया हुआ होता है।
लुकाट-संज्ञा पुं० [सं० लकुच] एक प्रकार का पेड़ जिसके फल आमड़े के बराबर और खाने में खट-मीठे होते हैं।
लुकाना-क्रि० स० [हिं० लुकना] ऐसी जगह करना जहाँ कोई देख न सके। आड़ में करना। छिपाना। उ०—चाँरी पैंठ लुकावत अपनी जुवतिन को नहिं सकत दिखाय।—सूर।
† क्रि० अ० लुकना। छिपना। उ०—मानी महिप-कुमुद सकुचाने। कपटी भूप उलूक लुकाने।—तुलसी।
लुकारी†-संज्ञा स्त्री० [हिं० लुक] फूस का पूला या लकड़ी जिसका एक छोर जलता हो। मशाल की तरह जलती हुई लकड़ी।
लुकेठा †-संज्ञा पुं० [हिं० लुक] जलती हुई लकड़ी। लुआठा। उ०—कबहुँ प्रवेश करत घर जब हीं। मारहिं बारि लुकेठन तब हीं।—रघुराज।
लुक्क‡-संज्ञा पुं० दे० "लुक"।
लुक्कायित-वि० [सं०] लुका हुआ। छिपा हुआ। अंतर्हित। अदृश्य।
लुख-संज्ञा स्त्री० [देश०] डाभ या सरपत की तरह की एक घास।
लुगड़ा-संज्ञा पुं० दे० "लूगड़ा"।
लुगड़ी-संज्ञा स्त्री० दे० "लूगड़ी"।
लुगदा-संज्ञा पुं० [देश०] [स्त्री० अल्पा० लुगदी] गीली वस्तु का गोला या पिंडा। लोंदा।
लुगदी-संज्ञा स्त्री० [देश०] गीली वस्तु (जैसे,—कीचड़, गुँधा हुआ आटा) का पिंडा या गोला। छोटा लोंदा। जैसे,—भाँग की लुगदी।
लुगरा †-संज्ञा पुं० [हिं० लूगा + रा (प्रत्य०)] (१) कपड़ा। वस्त्र। (२) ओढ़नी। छोटी चादर। उ०—धीरे धीरे आँचर मेल लुगरा लहर लेत लँहगा की लगी लाल रँगी रँगरेज की।—देव। (३) फटा पुराना कपड़ा। लत्ता।
† संज्ञा पुं० [देश०] पीठ पीछे बुराई करनेवाला। चुगलखोर।
लुगरी-संज्ञा स्त्री० [हिं० लुगरा] फटी पुरानी धोती।
† संज्ञा स्त्री० [देश०] पीठ पीछे की हुई निंदा। चुगली।
लुगाई-संज्ञा स्त्री० [हिं० लोग] स्त्री। औरत। उ०—(क) लगा लगा बातनि अलग लगा लगी आवै लोगन की लाज औ लुगाइन की लागरो।—देव। (ख) औध सबी मग बाग के रूप ज्यों पंथ के साथ ज्यों लोग लुगाई।—तुलसी।
लुगी†-संज्ञा स्त्री० [हिं० लूगा] (१) छोटा कपड़ा। (२) फटी पुरानी धोती। (३) लँहगे का संजाफ या चौड़ा किनारा। उ०—धीरे अँचरान स्वेत लुगुरा लहरि लेत लुगी लँहगा की रँगी रंगी रंगरेज की।—देव।
लुगा‡ संज्ञा पुं० दे० "लूगा"। उ०—पूर पूर देखौ अब सुगा। शकुनि मैन पौंछत कि लुगा।—गोपाल।
लुचकना†-क्रि० अ० दे० "लुचुकना"।
लुचकना-क्रि० स० [सं० लुंचन = नोचना उखोड़ना] दूसरे के हाथ से झटका देकर ले लेना। झटके से छीनना। जैसे,—वह मेरे हाथ से मिठाई लुचककर ले गया।
संयो० क्रि०—लेना।
लुचवाना-क्रि० स० [सं० लुंचन] नोचवाना। उखड़वाना। खोंचवाना।
लुचुई†-संज्ञा स्त्री० [सं० रुचि, मा०—रुचि] मैदे की पतली और मुलायम पूरी। लूची। उ०—लुचुई पूरि सुहारी पूरी। इक तो तामी औ सुठि कोरी।—जायसी।

लुच्चा-वि० [हिं० लुचकना] [स्त्री० लुची] (१) दूसरे के हाथ से वस्तु लुचककर भागनेवाला। चाई। (२) दुराचारी। कुमार्गी। कुचाली। (३) खोटा। कमीना। लफंगा। शोहदा। बदमाश।

लुची-वि० स्त्री० [हिं० लुचा] खोटी या बदमाश। (स्त्री०) संज्ञा स्त्री० दे० "लुचुई"।

लुज्जा-संज्ञा पुं० [देश०] समुद्र में वह स्थल जो बहुत गहरा हो। (लश०)

लुटंत॰‡-संज्ञा स्त्री० [हिं० लूट] लूट।

लुटकना-क्रि० अ० दे० "लटकना"। उ०—गजगाह निहारि निगाह पुरै मुकुता लर पायन लौं लुटकैं।—गोपाल।

लुटना-क्रि० अ० [सं० लुट् = लुटना] (१) दूसरे के द्वारा लूटा जाना। डाकुओं के हाथ धन खोना। जैसे,—रास्ते में बहुत से मुसाफिर लुट गए।

मुहा०—घर लुटना = घर का माल चोरी जाना या अपहृत होना।

(२) तबाह होना। बरबाद होना। सर्वस्व खोना।

संयो० क्रि०—जाना।

॰क्रि० अ० दे० "लुठना"।

लुटाना-क्रि० स० [हिं० लूटना का प्रेर०] (१) दूसरे को लूटने देना। डाकुओं आदि को छीन लेने देना। जैसे,—तुम रात को टल गए और हमारा माल लुटा दिया। (२) मुफ़्त में देना। बिना पूरा मूल्य लिए दे देना। जैसे—तुम्हारा माल है, चाहे यों ही लुटा दो। (३) बरबाद करना। व्यर्थ फेंकना या व्यय करना। (४) मुट्ठी भर भर चारों ओर इस लिये फेंकना जिसमें जो चाहे, सो ले। बहुतायत से बाँटना। स्वच्छंद वितरण करना। सब को बिना रोक टोक देना। अंधाधुंध दान करना। जैसे,—बरात में उसने खूब रुपए लुटाए।

संयो० क्रि०—देना।

लुटावना॰‡-क्रि० स० दे० "लुटाना"।

लुटिया-संज्ञा स्त्री० [हिं० लोटा] जल भरने या रखने का धातु का छोटा बरतन। छोटा लोटा।

लुटेरया‡-संज्ञा पुं० [हिं० लुटेरा] एक प्रकार का पक्षी।

लुटेरा-संज्ञा पुं० [हिं० लूटना + एरा (प्रत्य०)] ज़बरदस्ती छीन लेनेवाला। डर दिखाकर या मार पीटकर दूसरे का माल ले लेनेवाला। लूटनेवाला। डाकू। दस्यु।

लुटेर-संज्ञा स्त्री० [देश०] वह भेड़ जिसके कान छोटे हों। (गड़ेरिये)

लुठना॰-क्रि० अ० [सं० लुंठन] (१) भूमि पर पड़ना। सारा शरीर पृथ्वी से लगाए हुए पड़ना। लोटना। उ०—राम सखा करि घरबस भेंटा। जनु महि लुठत सनेह समेटा।—तुलसी। (२) पृथ्वी पर नीचे ऊपर फिरते हुए पड़ना या गमन करना। लुढ़कना।

लुठाना॰-क्रि० स० [हिं० लुठना] (१) भूमि पर या नीचे डालना। लोटाना। उ०—माथो चरणारविंद ऊपर लुठाय रघुराय सु उठाय कियो छाती सों लगावनो।—हृदयराम। (२) लुढ़काना।

लुड़कना-क्रि० अ० दे० "लुढ़कना"।

लुड़काना-क्रि० स० दे० "लुढ़काना"।

लुड़की-संज्ञा स्त्री० दे० "लुढ़की"।

लुड़खुड़ाना-क्रि० अ० दे० "लड़खड़ाना"।

लुढ़कना-क्रि० अ० [सं० लुठन, हिं० लुठना + क] (१) ज़मीन पर नीचे ऊपर फिरते हुए पड़ना या चलना। गेंद की तरह नीचे ऊपर चक्कर खाते हुए गमन करना। ढुलकना। जैसे,—पहाड़ की चोटी से एक पत्थर लुढ़कता हुआ आया।

संयो० क्रि०—जाना।—पड़ना।

(२) गिरकर नीचे ऊपर होते हुए गमन करना। जैसे,—सँभलकर खड़े होना; नहीं तो लुढ़क पड़ोगे।

संयो० क्रि०—जाना।—पड़ना।

मुहा०—लुढ़कना पुढ़कना = गिरना पड़ना।

लुढ़काना-क्रि० स० [हिं० लुढ़कना] ज़मीन पर इस प्रकार चलाना कि नीचे ऊपर होता हुआ कुछ दूर बढ़ता जाय। इस प्रकार फेंकना या छोड़ना कि चक्कर खाते हुए कुछ दूर चला जाय। ढुलकाना। जैसे,—गेंद लुढ़काना, टीले पर से पत्थर लुढ़काना।

संयो० क्रि०—देना।

लुढ़ना॰‡-क्रि० अ० [सं० लुंठन] (१) लुढ़कना। (२) गिरना। उ०—परही मुकुट लुढ़त अवनी पर नाहिन निज भुज भरत।—सूर।

लुढ़ाना॰-क्रि० स० दे० "लुढ़काना"। उ०—(क) माखन खाय खवायत ग्वाल जो उबर्यो सो दियो लुढ़ाइ।—सूर। (ख) मियाँ जोड़ें पली पली और गुड़ा लुढ़ावें कुप्पा। (कहावत)

लुढ़ियाना-क्रि० स० [हिं० लुंडा या लोढ़िया] गोल बत्ती की तरह उभरी हुई सिलाई करना। गोल तुरपना।

संयो० क्रि०—देना।

लुतरा-वि० [देश०] [स्त्री० लुतरी] (१) इधर की उधर लगानेवाला। पीठ पीछे निंदा करके झगड़ा लगानेवाला। चुगलखोर। (२) नटखट। शरारती।

लुतरी-वि० स्त्री० [हिं० लुतरा] झगड़ा लगानेवाली। चुगलखोर। (स्त्री)

लुत्थ॰-संज्ञा स्त्री० दे० "लोथ"।

लुत्फ़-संज्ञा पुं० [अ०] (१) कृपा। दया। अनुग्रह। मेहरबानी। (२) भलाई। खूबी। उत्तमता। (३) मज़ा। आनंद।

(४) स्वाद। ज़ायक़ा। (५) रोचकता।

क्रि० प्र०—आना।—मिलना।

मुहा०—लुत्फ़ उठाना = मज़ा पाना।

लुदकी†-संज्ञा स्त्री० [हिं० लौंदा] दही में बनी हुई भाँग। लुदकी।

लुदरा-संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का धान जो अगहन के महीने में तैयार होता है और जिसका चावल बहुत दिनों तक रह सकता है।

लुनना-क्रि० स० [सं० लवन = काटना, लून = कटा हुआ + ना] (१) खेत की तैयार फसल काटना। खेत काटना। उ०—(क) अनबोए लुनना नहीं, बोए लुनना होय।—कबीर। (ख) करि कुरूप विधि परबस कीन्हा। बवा सो लुनिय, लहिय जो दीन्हा।—तुलसी। (२) दूर करना। हटाना। नष्ट करना। उ०—कस्तूरी अगर सार, चोवा रस घनसार दीपक हजार लैं अँध्यार लुनियत है।—देव।

लुनाई-संज्ञा स्त्री० [हिं० लोना + आई (प्रत्य०)] लावण्य। सुंदरता। सलोनापन। खूबसूरती। उ०—(क) टूटे हरा हियरा पै परे पद्माकर लीक सी लंक लुनाई।—पद्माकर। (ख) राख्यो न रूप कछू विधि के घर ल्याई है लूटि लुनाई की ढेरी।—देव।

लुनेरा-संज्ञा पुं० [हिं० लुनना] खेत की फ़सल काटनेवाला। लुननेवाला।

संज्ञा पुं० [हिं० लोन] एक जाति जिसे लोनिया या नोनिया भी कहते हैं। यह जाति पहले नमक निकालती थी।

लुन्दी-संज्ञा स्त्री० [देश०] मैंजकर तैयार लपेटी हुई पाई। (जुलाहे)

लुपना-क्रि० अ० [सं० लुप] छिपना। गुप्त होना। उ०—एक होय तीन लुपैं लुप्तोपमा हैं आठ तिनको उदाहरण ही सों पहिचानिये।—दूलह।

लुप्त-वि० [सं०] (१) छिपा हुआ। गुप्त। अंतर्हित। (२) ग़ायब। अदृश्य। (३) नष्ट।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

संज्ञा पुं० चोरी का माल। चौर्य-धन।

लुप्तोपमा-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह उपमा अलंकार जिसमें उसका कोई अंग (जैसे,—उपमेय, धर्म, वाचक शब्द) लुप्त हो, अर्थात् न कहा गया हो।

लुबदी-संज्ञा स्त्री० [अ० लुब = लासा] किसी तरल पदार्थ के नीचे की बैठी हुई मैल। तलौंछ। गाद।

लुबुधक-वि० दे० "लुब्ध"। उ०—व्याध बिशिख विलोक नहिं कल गान लुबुध कुरंग।—तुलसी।

संज्ञा पुं० लुब्धक। अहेरी। बहेलिया।

लुबुधना†-क्रि० अ० [हिं० = लुब्ध + ना (प्रत्य०)] लुब्ध होना। मोहित होना। लुभाना। उ०—(क) बीन नाद सुनि लुबुधे मृग ज्यों त्यों भइ दसा हमारी।—सूर। (ख) भँवर जो उदहिं जो लुबुधे बासा।—जायसी।

संयो क्रि०—जाना।

लुब्ध-वि० [सं०] (१) लोभ युक्त। प्रबल आकांक्षा-युक्त। अत्यंत राग-युक्त। लुभाया हुआ। ललचाया हुआ। (२) तन मन की सुध भूला हुआ। मोहित। उ०—आछे पद-कमल लुब्ध मुनि-मधुकर निकर परम सुगति हू लोन चाहिंन।—तुलसी।

संज्ञा पुं० व्याध। बहेलिया। लुब्धक।

लुब्धक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) पशु पक्षियों को लालच दिखाकर पकड़ लेनेवाला। व्याध। बहेलिया। शिकारी। उ०—सूरदास प्रभु सों मेरी गति जनु लुब्धक कर मीन तज्यो।—सूर। (२) उत्तरी गोलार्द्ध का एक बहुत तेजवान तारा। (आधुनिक)

लुब्धना-क्रि० अ० दे० "लुबुधना"।

लुब्धापति-संज्ञा स्त्री० [सं०] केशव के अनुसार प्रौढ़ा नायिका का चतुर्थ भेद। वह प्रौढ़ा नायिका जो पति और कुल के सब लोगों की लज्जा करे। यथा—सो लुब्धापति जानिए केशव प्रगट प्रमान। कानि करै कुलपति सबै प्रभुता प्रभुहि समान।—केशव।

लुब्बलुबाब-संज्ञा पुं० [अ०] (१) गूदा। सार। (२) किसी बात का तत्त्व। सारांश।

लुभाना-क्रि० अ० [हिं० लोभ + आना (प्रत्य०)] (१) लुब्ध होना। अत्यंत रागयुक्त होना। मोहित होना। आसक्त होना। रीझना। उ०—कुबरी के कौन गुन पै रहे कान्ह लुभाइ।—सूर। (२) लालसा करना। लालच में पड़ना। (३) तन मन की सुध भूलना। मोह में पड़ना।

संयो० क्रि०—जाना।

क्रि० स० (१) लुब्ध करना। अत्यंत रागयुक्त करना। अपने ऊपर गहरा प्रेम उत्पन्न करना। मोहित करना। रिझाना। (२) प्राप्त करने की गहरी चाह उत्पन्न करना। ललचाना। जैसे,—उसकी कारीगरी ने हमें लुभा लिया। (३) सुध बुध भुलाना। भ्रांत करना। मोह में डालना। उ०—सूर हरि की प्रबल माया देति मोहिं लुभाय।—सूर।

संयो० क्रि०—लेना।

लुरकना†-क्रि० अ० [सं० लुन्न = भूलना] अधर में लटककर हिलना डोलना। नीचे की ओर झुकना। लटकना। झुकना।

लुरका-संज्ञा पुं० [हिं० लुरकना = लटकना] झुमका।

लुरकी-संज्ञा स्त्री० [हिं० लुरकना = लटकना] कान में पहनने की बाली। मुरकी। उ०—देव जगामग जोतिन की कर मोतिन की लुरकीन लौं नाची।—देव।

संज्ञा स्त्री० दे० "लुरकी"।

लुरना⊕†-क्रि० अ० [सं० लुलन = झूलना] (१) ऊपर से नीचे तक चली आई हुई वस्तु का इधर उधर हिलना डोलना। लटकना। झूलना। लहराना। उ०—(क) छतियाँ पर लोल लुरैं अलकैं सिर फूल अरुझि सो यों दुति है।—बेनी। (ख) झपकैं पलकैं बिथुरी अलकैं अरु हार लुरैं मुकुता गल में।—सुंदर। (२) ढल पड़ना। झुक पड़ना। टूट पड़ना। (३) कहीं से एक बारगी आ जाना। उ०—मद्य की विभूति, करतूति विश्वकर्मा की, साहिबी सकल पुरहूत की लुरै परी।

संयो० क्रि०—पड़ना।

(४) आकर्षित होना। लुभा जाना। लट्टू होना। प्रवृत्त होना। उ०—संग ही संग बसौ उनके, अँग अंगन देव तिहारे लुरी है।—देव।

संयो० क्रि०—पड़ना।

लुरियाना†-क्रि० अ० [हिं० लुरना] प्रेमपूर्वक स्पर्श करना या अंग पर अंग रखना। प्यार करना।

लुरी-संज्ञा स्त्री० [हिं० लेरुआ = बछड़ा ?] वह गाय जिसे बच्चा दिए थोड़े ही दिन हुए हों। उ०—लाडिली लीली कलोरी लुरी कहँ लाल लुके कहाँ आँग लगाइकै।—केशव।

लुलन-संज्ञा पुं० [सं०] [वि० लुलित] लटकते हुए इधर उधर हिलना डोलना। आंदोलित होना। झूलना।

लुलना⊕-क्रि० अ० [सं० लुलन] लटकते हुए हिलना डोलना। झूलना। लहराना। दोलित होना।

लुलित-वि० [सं०] लटकता या झूलता हुआ। आंदोलित।

लुवार†-वि० [हिं० लू] गरमी के दिनों की तपी हुई गरम हवा। तप्त वायु। लू।

क्रि० प्र०—चलना।

लुशाई-संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की चाय जो आसाम और कछार में होती है।

लुहँगी†-संज्ञा स्त्री० [सं० लौहांग] लोहा जड़ी हुई लाठी। ऐसी लाठी जिसके मोटे सिरे पर लोहा जड़ा रहता है। लोहबंदा।

लुहना⊕-क्रि० अ० [सं० लुभन] लुभाना। ललचना। मोहित होना। उ०—भरिकै वह आजु अकेली गई खरिकै हरि के गुन रूप लुही।—देव।

लुहनी†-संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का अगहनी धान जिसका चावल बहुत दिन रह सकता है।

लुहार-संज्ञा पुं० [सं० लौहकार, प्रा० लोहार] [स्त्री० लुहारिन, लुहारी] (१) लोहे का काम करनेवाला। लोहे की चीज़ें बनानेवाला। (२) वह जाति जो लोहे की चीज़ें बनाती है।

लुहारिन-संज्ञा स्त्री० [हिं० लुहार] लुहार जाति की स्त्री।

लुहारी-संज्ञा स्त्री० [हिं० लुहार] (१) लुहार जाति की स्त्री। (२) लोहे की वस्तु बनाने का काम। जैसे,—वह लुहारी सीख रहा है।

लुहुर†-संज्ञा स्त्री० [सं० लघु, हिं० लहुरा] छोटे कानोंवाली भेड़। (गड़ेरिये)

लू-संज्ञा स्त्री० [सं० लुक = जलना। हिं० लौ = लपट] गरमी के दिनों की तपी हुई हवा। गरम हवा का लपट सा झोंका। तप्त वायु।

क्रि० प्र०—चलना।—पड़ना।

मुहा०—लू मारना या लगना = शरीर में तपी हवा लगने से ज्वर आदि उत्पन्न होना।

लूक-संज्ञा स्त्री० [सं० लुक = जलना] (१) अग्नि की ज्वाला। आग की लपट। (२) पतली लकड़ी जिसका छोर दहकता हुआ हो। जलती हुई लकड़ी। लुत्ती। उ०—दौड़ लियो टीक विचारि। इक लूक लीन्हीं बारि।—रघुराज।

मुहा०—लूक लगाना = जलती लकड़ी या बत्ती छुआना। आग लगाना। उ०—मारि मुलुक में लूक लगायो।—लाल।

(३) गरमी के दिनों की तपी हवा। तप्त वायु का झोंका जो शरीर में लपट की तरह लगे। लू। उ०—ए ब्रजचंद! चलौ किन वा ब्रज, लूकैं बसंत की ऊकन लागीं।—पद्माकर। (४) टूटा हुआ तारा। उल्का। लूक। उ०—(क) आवत मुकुट देखि कपि भागे। दिन हीं लूक परन विधि लागे।—तुलसी। (ख) सुमिरि राम तकि तरकि तोयनिधि लंक लूक सो आयो।—तुलसी।

लूकना ⊕-क्रि० स० [हिं० लूक + ना] आग लगाना। जलाना। उ०—हिय मंदर रावरो मंदिर है तेहि यों विरहानल लूकिए ना।

⊕‡ क्रि० अ० दे० "लुकना"। उ०—लूकि केते रहे, फूकि केते गए, चूकि केते दए, सूकि केते चहे।—सूदन।

लूका-संज्ञा पुं० [सं० लुक = जलना] [स्त्री० अल्पा० लूकी] (१) अग्नि की ज्वाला। आग की लौ या लपट। उ०—बरसत अकासहि चढ़े दिपाईं। तब सब लूका परहि दिखाई।—जायसी। (२) पतली लकड़ी जिसका छोर दहकता हो। लकड़ी जिसके एक सिरे में आग हो। लुत्ती।

मुहा०—लूका लगाना = आग छुआना। आग लगाना। जलाना। मुँह में लूका लगाना = मुँह जलाना। तिरस्कार करना। (स्त्रि० की गाली)

संज्ञा पुं० [देश०] मछली फँसाने का एक प्रकार का झाड़।

लूकी†-संज्ञा स्त्री० [हिं० लूका] (१) आग की चिनगारी। स्फुलिंग। उ०—हिया फाट वह जब ही कूकी। परै आँसु सब होइ होइ लूकी।—जायसी। (२) पतली लकड़ी या तिनके का टुकड़ा जिसका सिरा जलता हो। लुका।

मुहा०—लूकी लगाना = आग लगाना। जलाना।

लूखा #-वि०[सं० रूक्ष=रुख, रूखा] बिना चिकनाहट का। रूखा। उ०—मना मनोरथ छाँड़ि दे तेरा किया न होय। पानी में घी नीकसै लूखा खाइ न कोय।—कबीर।

लूगड़ा†-संज्ञा पुं० [हिं० लूगा] (१) वस्त्र। कपड़ा। (२) ओढ़नी। चादर।

लूगा†-संज्ञा पुं० [देश०] (१) वस्त्र। कपड़ा। उ०—रोटी लूगा नीके राखै आगेहु की वेद भाखै भलो ह्वैहै तेरो ताते आनँद लहत हौं।—तुलसी। (२) धोती।

लूघा-संज्ञा पुं० [देश०] क़ब्र खोदनेवाला। गोरकन। (ठग)

लूट-संज्ञा स्त्री० [हिं० लूटना] (१) बलात् अपहरण। किसी के माल का ज़बरदस्ती छीना जाना। किसी की धन संपत्ति या वस्तु का बलपूर्वक लिया जाना। डकैती। जैसे,—(क) दंगे में बाज़ार की लूट हुई। (ख) सिपाहियों को लूट का माल खूब मिला।

क्रि० प्र०—करना।—पड़ना।—मचना।—होना।

यौ०—लूट खूँद, लूटमार, लूटपाट=लोगों को मारने पीटने और उनका धन छीनने का व्यापार। डकैती और दंगा।

(२) लूटने से मिला हुआ माल। अपहृत धन। जैसे,—लूट में सब सिपाहियों का हिस्सा लगा।

लूटक-संज्ञा पुं० [हिं० लूट] (१) ज़बरदस्ती छीननेवाला। लूटनेवाला। (२) डाकू। लुटेरा। (३) कांति हरनेवाला। शोभा में बढ़ जानेवाला। उ०—असनि सरासन लसत, सुचि सर कर, तून कटि मुनिपट लूटक बसन के।—तुलसी।

लूटखूँद-संज्ञा स्त्री० [हिं० लूटना+खूँदना] लोगों को मारने और उनका धन छीनने का व्यापार। डाका और दंगा। लूटमार।

लूटना-क्रि० स० [सं० लुट्=लूटना] (१) बलात् अपहरण करना। ज़बरदस्ती छीनना। भय दिखाकर, मार पीटकर या छीन झपटकर ले लेना। जैसे,—रास्ते में डाकुओं ने सारा माल लूट लिया। उ०—(क) केशव फूलि नचैं भ्रकुटी, कटि लूटि नितंब लई बहु लाली।—केशव। (ख) जानी न ऐसी चढ़ा चढ़ी में केहि धौं कटि बीच ही लूटि लई सी।—पद्माकर। (ग) चोर चख चोरनि चलाक चित चोरी भयो, लूटि गई लाज, कुल कानि को कटा भयो—पद्माकर।

संयो० क्रि०—लेना।

यौ०—लूटना पाटना। लूटना मारना।

मुहा०—लूट खाना=दूसरे का धन किसी न किसी प्रकार से लेना।

(२) बरबाद करना। तबाह करना। (३) धोखे से या अन्यायपूर्वक किसी का धन हरण करना। अनुचित रीति से किसी का माल लेना। जैसे,—कचहरी में जाओ, तो अमले लूटते हैं।

मुहा०—(किसी को) लूट खाना=किसी का धन अनुचित रीति से ले लेना। किसी का माल मारना।

(४) बहुत अधिक मूल्य लेना। वाजिब से बहुत ज़्यादा क़ीमत लेना। ठगना। जैसे,—यह दूकानदार गाहकों को खूब लूटता है। (५) मोहित करना। मुग्ध करना। वशीभूत करना। मन हाथ में करना। उ०—लूटी घुँघराली लट, लूटी हैं बधूटी बट, टूटी घट लाज तें न जूटी परी कहैं।—दीनदयाल।

विशेष—इस क्रिया का प्रयोग सुख या आनन्द भोग करने के अर्थ में भी सुख, आनंद, मौज आदि कुछ शब्दों के साथ होता है। जैसे,—आनंद लूटना, सुख लूटना।

लूटि‡†-संज्ञा स्त्री० दे० "लूट"। उ०—गए कंचुकि बँद टूटि लूटि हिरदय सो पाई। करति मनहि मन सैन निरट रस दयो देखाई।—सूर।

लूत-संज्ञा पुं० [इबरानी] यहूदियों के एक पुराने पैगंबर का नाम।

लूता-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) मकड़ी। ऊर्णनाभ। (२) फफोले की तरह की फुंसी जो कहते हैं कि मकड़ी के मूतने से निकलती है। लूका। मर्मगण।

विशेष—वैद्यक के ग्रंथों में 'लूता' रोग कई प्रकार का कहा है और कई प्रकार की विषैली मकड़ियों की चर्चा है। जैसे,—त्रिमंडला, श्वेता, कपिला, रक्तलूता इत्यादि। इस संबंध में कहा गया है कि मकड़ी के थूक, नख, मूत्र, रज, शुक्र और पुरीष के द्वारा विष का संचार होता है। लूता रोग यदि अच्छा न हो, तो आदमी मर जाता है।

(३) पिपीलिका। च्यूँटी।

संज्ञा पुं० [हिं० लूका] [स्त्री० अल्पा० लूती] लकड़ी जिसका एक सिरा जलता हो। लूका। लुआठा। उ०—सोवत मनसिज आनि जगायो पठै सँदेस स्याम के दूते। बिरह-समुद्र सुखाय कौन विधि किरचक योग अग्नि के लूते।—सूर।

मुहा०—लूता लगाना=आग लगाना।

लूती-संज्ञा स्त्री० [हिं० लूता] पतली लकड़ी जिसका एक सिरा जलता हो। लुआठी।

मुहा०—लूती लगाना=आग लगाना।

लून-वि० [सं०] छिन्न। कटा हुआ।

संज्ञा पुं० दे० "लोन"।

लूनक-संज्ञा पुं० [हिं० लोना] (१) सज्जी खार। (२) अमलोनी का साग।

लूनना‡†-क्रि० स० दे० "लुनना"।

लूम-संज्ञा पुं० [सं०] लांगूल। पूँछ। दुम।

संज्ञा पुं० सम्पूर्ण जाति का एक राग जिसमें सब शुद्ध स्वर लगते हैं। इसके गाने का समय रात ११ दंड से १५ दंड तक है। यह मेघ राग का पुत्र कहा गया है। (हनुमत्)

संज्ञा स्त्री० [देश०] कलाबत्तू की लच्छी।

संज्ञा पुं० [अं० ह्वैंड लूम] कपड़ा बुनने का करघा।

लुमड़ी †-संज्ञा स्त्री० दे० "लोमड़ी"।
लुमना ॐ-क्रि० अ० [सं० लंबन = दोलन] लटकना। झूलना। लहराना। उ०—(क) लपकि चढ़े हरि तासु पै लूमि डह-डही डार। कियो सदंब कदंब हूँ माथ कृपा आगार।—व्यास। (ख) झूमि झूमि बरसाती तरिवर लहरत तहँ लता रहीं लूमि लूमि।—देव स्वामी।
लूमर-वि० [देश०] सयाना। जवान। युवा। (व्यंग्य या तिरस्कार) जैसे,—इतने बड़े लूमर हुए, कुछ शऊर न आया।
लूरना ॐ-क्रि० अ० दे० "लुरना"। उ०—सिरसि जटा कलाप पानि सायक चाप उरसि रुचिर बनमाल लूरति।—तुलसी।
लूला-वि० [सं० लून = कटा हुआ] [स्त्री० लूली] (१) जिसका हाथ कट गया हो या बेकाम हो गया हो। बिना हाथ का। लुंजा। टुंडा। (२) बेकाम। असमर्थ। उ०—कोकिल के—की कुलाहल हुल उठी उर में, मति की गति लूली।
लूलू-वि० [देश०] मूर्ख। बेवकूफ़। उजड्ड। उल्लू। बुद्धिहीन।
मुहा०—लूलू बनाना = (१) बेवकूफ़ बनाना। बातों में मूर्ख प्रमाणित करना। (२) उपहास करना।
लूसन-संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का फलदार पेड़।
लूह †-संज्ञा स्त्री० दे० "लू"।
लूहर †-संज्ञा स्त्री० दे० "लू"। उ०—ऊँचे ते गर्व गिरावत क्रोध सो जो यहि लूहर लावत भारे।—केशव।
लेंगा‡-संज्ञा पुं० दे० "लहँगा"।
लेंड़-संज्ञा पुं० [सं० लेंड] [स्त्री० अल्पा० लेंड़ी] मल की बत्ती जो उत्सर्ग के समय बँध जाती है। बँधा मल।
लेंड़ी-संज्ञा स्त्री० [हिं० लेंड] (१) मल की बत्ती जो उत्सर्ग के समय बँध जाती है। बँधा मल। (२) बकरी या ऊँट की मेंगनी। बकरी या ऊँट का मल जो बँधी गोलियों के आकार में निकलता है।
लेंडुआ†-संज्ञा पुं० [देश०] कागज़ का एक खिलौना जो उछाल कर फेंक देने पर ज़मीन में गिरते ही फिर खड़ा हो जाता है। इसे खड़ेसाँ और मतवाला भी कहते हैं।
लेंस-संज्ञा पुं० [अं०] शीशे का ताल जो प्रकाश की किरनों को एकत्र या केंद्रीभूत करे। जैसे,—चश्मे का लेंस, फोटोग्राफ़ी का लेंस।
लेंहड़ा-संज्ञा पुं० [देश०] झुंड। दल। समूह। क़तार। गल्ला। (चौपायों के लिये) उ०—सिंहन के लेंहड़े नहीं, हंसन की नहिं पाँत। लालन की नहिं बोरियाँ, साधु न चलैं जमात।—कबीर।
ले-अव्य० [हिं० लेना, लेकर] आरंभ होकर। शुरू होकर। जैसे,—यहाँ से ले वहाँ तक।
‡ [सं० लग्न, हिं० लग, लगि] तक। पर्य्यंत।
क्रि० स० दे० "लेना"।
लेइ†-अव्य० [सं० लग्न, हिं० लगि] तक। पर्य्यंत।
लेई-संज्ञा स्त्री० [सं० लेहिन, लेही या लेह] (१) पानी में घुले हुए किसी चूर्ण को गाढ़ा करके बनाया हुआ लसीला पदार्थ जिसे उँगली से उठाकर चाट सकें। अवलेह। (२) आटे को भूनकर उसमें शरबत मिलाकर गाढ़ा किया हुआ पदार्थ जो खाया जाता है। लपसी।
यौ०—लेई पूँजी = सारी जमा। सर्वस्व।
(३) घुला हुआ आटा जो आग पर पकाकर गाढ़ा और लसदार किया गया हो और जो कागज़ आदि चिपकाने के काम में आवे। (४) सुरखी मिला हुआ बरी का चूना जो गाढ़ा घोला जाता है और ईंटों की जोड़ाई में काम आता है।
लेक्चर-संज्ञा पुं० [अं०] व्याख्यान। वक्तृता।
क्रि० प्र०—देना।
मुहा०—लेक्चर झाड़ना = धूमधाम से व्याख्यान देना। (व्यंग्य)
लेक्चरबाज़ी-संज्ञा स्त्री० [अं० लेक्चर + फ़ा० बाज़ी] खूब लेक्चर देने की क्रिया।
लेख-संज्ञा पुं० [सं०] (१) लिखे हुए अक्षर। लिपि। (२) लिखी हुई बात। (३) लिखावट। लिखाई। (४) लेखा। हिसाब किताब। उ०—गुन गुन बिधि पूछब होइहि लेख अउ जोख।—जायसी। (५) देव। देवता। उ०—चढ़े विमानन लेख अलेखन बर्षहिं मुदित प्रसूना।—रघुराज।
ॐवि० (१) लेख्य। लिखने योग्य। (२) लेखा करने योग्य। हिसाब के लायक़।
लेखक-संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० लेखिका] (१) जो किसी बात को अक्षरों में उतारे। लिखनेवाला। लिपिकार। (२) किसी विषय पर लिखकर अपने विचार प्रकट करनेवाला। ग्रंथकार। जैसे,—इस पुस्तक का लेखक कौन है ? (३) एक प्रेत का नाम। उ०—लेखक कहता बात बिचारी। बाम्हन सुन अपराध हमारी।—सबल०।
लेखन-संज्ञा पुं० [सं०] [वि० लेखनीय, लेख्य] (१) लिखने का कार्य्य। अक्षर-विन्यास। अक्षर बनाना। (२) लिखने की कला या विद्या। (३) चित्र बनाना। उ०—अछ बिनु तरँग, भीति बिनु लेखन बिनु चेतहि चतुराई।—सूर। (४) हिसाब करना। लेखा लगाना। कूतना। (५) छर्दन। उलटी करना। वमन करना। कै करना। (६) औषध द्वारा रसादि सस धातुओं या वात आदि दोषों को शोधन करके पतला करना। (७) इस काम के लिये उपयुक्त औषध। (८) भोजपत्र, जिस पर प्राचीन काल में लिखा जाता था। (९) ताँड़ी।
लेखनवस्ति-संज्ञा स्त्री० [सं०] रसादि सस धातु या वातादि त्रिदोष और वमन इत्यादि को पतला कर देनेवाली पिचकारी।

लेखनाॐ–क्रि० स० [सं० लेखन] (१) अक्षर या चिह्न बनाना। लिखना। उ०—कुंदन-लीक कसौटी में लेखी सी देखी सुनारि सुनारि सलोनी।—देव। (२) हिसाब, संख्या या परिमाण आदि निश्चित करना। गिनती करना।

यौ०—लेखना जोखना = (१) नाप, तौल या गिनती करके संख्या या परिमाण आदि निश्चित करना। ठीक ठीक अंदाज़ करना। हिसाब करना। (२) जाँच करना। परीक्षा करना। उ०—लेखे जोखे चोखे चित तुलसी स्वारथ हित, नीके देखे देवता देवैया घने गथ के।—तुलसी।

(३) मन ही मन ठहराना। समझना। सोचना। विचारना। मानना। उ०—(क) हौं ओहि आपन दरपन लेखौं। करौं सिंगार भोर मुख देखौं।—जायसी। (ख) जे जे सब सूर सुभट कीट सम न लेखौं।—सूर। (ग) सिय सौमित्रि राम-छवि देखहिं। साधन सकल सफल करि लेखहिं।—तुलसी।

लेखनी–संज्ञा स्त्री० [सं०] वह वस्तु जिससे लिखें या अक्षर बनावें। वर्णतूलिका। कलम। लिखनी।

मुहा०—लेखनी उठाना = लिखना आरंभ करना।

लेखनीय–वि० [सं०] लिखने योग्य।

लेखपत्र–संज्ञा पुं० [सं०] लिखित पत्र। लिखा हुआ काग़ज़। दस्तावेज़।

लेखप्रणाली–संज्ञा स्त्री० [सं०] लिखने की शैली। लिखने का ढंग।

लेखर्षभ–संज्ञा पुं० [सं०] देवताओं में श्रेष्ठ, इंद्र।

लेखशैली–संज्ञा स्त्री० [सं०] लेख प्रणाली।

लेखहार–संज्ञा पुं० [सं०] चिट्ठी ले जानेवाला। पत्र-वाहक।

लेखा–संज्ञा पुं० [हिं० लिखना] (१) गणना। गिनती। हिसाब किताब। जैसे,—(क) आमदनी और खर्च का लेखा लगा लो। (ख) इसका लेखा लगाओ कि वह आठ कोस रोज़ चलकर यहाँ कितने दिनों में पहुँचेगा। (२) ठीक ठीक अंदाज़। कूत।

क्रि० प्र०—लगाना।

(३) रुपए पैसे या और किसी वस्तु की गिनती आदि का ठीक ठीक लिखा हुआ ब्योरा। आय व्यय आदि का विवरण। जैसे,—तुम अपना लेखा पेश करो; रुपया चुका दिया जाय।

यौ०—लेखा बही। लेखा जवार।

मुहा०—लेखा जोखना = यह देखना कि हिसाब ठीक है या नहीं। लेखा बेबाक करना = (१) हिसाब चुकता करना। (२) हिसाब साफ़ करना। (३) चौपट करना। नाश करना। लेखा पूरा या साफ़ करना = हिसाब साफ़ करना। निकला देना चुकाना। लेखा डालना = हिसाब किताब खोलना। देन लेन के … की बही में लिखना।

(४) अनुमान। विचार। समझ।

मुहा०—किसी के लेखे = किसी की समझ में। किसी के … अनुसार। जैसे,—हमारे लेखे तो सब बराबर हैं।

संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) लिपि। लिखावट। (२) … लकीर। जैसे,—चंद्रलेखा।

लेखाबही–संज्ञा स्त्री० [हिं० लेखा+बही] वह बही जिसमें … के लेन देन का ब्योरा रहता है।

लेखिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) लिखनेवाली। (२) ग्रं… पुस्तक बनानेवाली।

लेखित–वि० [सं०] लिखाया हुआ। लिखवाया हुआ।

लेख्य–वि० [सं०] (१) लिखने योग्य (२) जो लिखा … को हो।

संज्ञा पुं० (१) लिखी बात। लेख। (२) दस्तावेज़।

विशेष—धर्मशास्त्र में 'लेख्य' मनुष्य-प्रमाण के दो भे… एक से है। इसके भी दो भेद हैं—शासन और जान… (चीरक)

लेज†–संज्ञा स्त्री० [सं० रज्जु, मागधी प्रा० लेज्जु] रस्सी। डो…

लेज़म–संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] (१) एक प्रकार की नरम और … दार कमान जिससे धनुष चलाने का अभ्यास किया … है। (२) वह कमान जिसमें लोहे की ज़ंजीर लगी … है और कटोरियाँ पड़ी रहती हैं और जिससे पहलवान … कसरत करते हैं।

विशेष—इसे हाथ में लेकर कई तरह के पैंतरों और बैठ… साथ कसरत करते हैं।

क्रि० प्र०—भाँजना।—हिलाना।

लेजरंग–संज्ञा पुं० [लेज ?+हिं० रंग] मरकत या पन्ने की … रंगत जो उसका गुण मानी जाती है।

लेजिस्लेटिव कौंसिल–संज्ञा स्त्री० [अं०] प्रधान शासक … गवर्नर की वह सभा जो देश के लिये कानून बनाती है।

लेजुर†–संज्ञा स्त्री० [सं० रज्जु, मागधी प्रा० लेज्जु] (१) रस्… डोरी। (२) कूएँ से पानी खींचने की रस्सी। उ०—ले… भइउँ, नाथ, बिनु डोरी।—जायसी।

लेजुरा–संज्ञा पुं० दे० "लेजुर"।

संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का अगहनी धान जिस… चावल बहुत दिनों तक रहता है।

लेजुरी†–संज्ञा स्त्री० दे० "लेजुर"।

लेट–संज्ञा स्त्री० [देश०] सुरखी, कंकड़ और चूना पीटकर बन… हुई कड़ी चिकनी सतह। गच।

लेटना–क्रि० अ० [सं० लुंठन, हिं० लोटना] (१) हाथ पैर और धा… शरीर ज़मीन या और किसी सतह पर टिकाकर पड़ रह…

पीठ ज़मीन या बिस्तरे आदि से लगाकर बदन की सारी लम्बाई उस पर ठहराना। खड़ा या बैठा न रहना। पौढ़ना। जैसे,—जाकर चारपाई पर लेट रहो।

संयो० क्रि०—जाना।—रहना।

(२) किसी चीज का बगल की ओर झुककर जमीन पर गिर जाना।

मुहा०—खेती लेट जाना = (१) फ़सल का अधिक पानी या हवा के कारण सीधा खड़ा न रहना, झुककर जमीन पर पड़ जाना। (२) नत होना। विनीत हो जाना। प्रभुत्व मान लेना। गुड़ लेट जाना = ताव बिगड़ने के कारण गुड़ का गीला और चिपचिपा हो जाना।

(३) मर जाना।

लेटपेट-संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की चाय।

लेटर बाक्स-संज्ञा पुं० [अं०] डाकखाने का वह संदूक जिसमें कहीं भेजने के लिये लोग चिट्ठियाँ डालते हैं। चिट्ठी डालने का संदूक।

लेटाना-क्रि० स० [हिं० लेटना का प्रे०] दूसरे को लेटने में प्रवृत्त करना।

संयो० क्रि०—देना।

लेड-संज्ञा पुं० [अं०] (१) सीसा नामक धातु। (२) प्रायः दो अंगुल चौड़ी सीसे की ढली हुई पत्तर की तरह पतली पटरी जो छापेखाने में अक्षरों की पंक्तियों के बीच में अक्षरों को ऊपर नीचे होने से रोकने के लिये दी जाती है।

लेड मोल्ड-संज्ञा पुं० [अं०] छापेखाने में अक्षरों की पंक्तियों के बीच में रखने के लिये सीसे की पटरियाँ ढालने का साँचा। लेड ढालने का साँचा।

लेडी-संज्ञा स्त्री० [अं०] (१) भले घर की स्त्री। महिला। (२) लार्ड या सरदार की पत्नी।

लेथो-संज्ञा पुं० दे० "लीथो"।

लेद-संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का गीत जो फागुन में गाया जाता है।

लेरुवा-संज्ञा पुं० [देश०] खेत में होनेवाली एक प्रकार की ककड़ी। फूट।

लेहार-संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की चिड़िया।

लेदी-संज्ञा स्त्री० [देश०] (१) जलाशयों के किनारे रहनेवाली एक प्रकार की छोटी चिड़िया। उ०—बोलहिं सुआ ढेंक बक लेदी। रही अबोल मीन जल-भेदी।—जायसी। (२) घास का पूला जिसे हल के नीचे के भाग में इसलिये बाँध देते हैं जिसमें चौड़ी कूँड़ बने।

लेन-संज्ञा पुं० [हिं० लेना] (१) लेने की क्रिया या भाव।

यौ०—लेन देन।

(२) वह रकम जो किसी के यहाँ बाकी हो या मिलनेवाली हो। लहना। पावना।

लेनदार-संज्ञा पुं० [हिं० लेन + फ़ा० दार (प्रत्य०)] जिसका कुछ बाकी हो। जिसका ऋण चुकना हो। महाजन। लहनेदार।

लेनदेन-संज्ञा पुं० [हिं० लेना + देना] (१) लेने और देने का व्यवहार। आदान प्रदान। (२) रुपया ऋण देने और ऋण लेने का व्यवहार जो किसी के साथ किया जाय। जैसे,—हमारा उसका लेन देन नहीं है। (३) रुपए लेने देने का व्यवसाय। महाजनी। जैसे,—उसके यहाँ रुपए का लेन देन होता है।

मुहा०—लेन देन न होना = व्यवहार न होना। सरोकार न होना। संबंध या प्रयोजन न होना। उ०—हमें कछु लेन न देन है ए बीर! तुम्हारे।—सूर।

लेना-क्रि० स० [सं० लभन, हिं० लहना] (१) दूसरे के हाथ से अपने हाथ में करना। ग्रहण करना। प्राप्त करना। लाभ करना। जैसे,—उसने रुपया दिया, तो मैंने ले लिया।

संयो० क्रि०—लेना।

(२) ग्रहण करना। थामना। पकड़ना। जैसे,—छड़ी अपने हाथ में ले लो और किताब मुझे दे दो।

मुहा०—ऊपर लेना = सिर या कंधे पर रखना।

(३) मोल लेना। क्रय करना। खरीदना। जैसे,—बाज़ार में तुम्हें क्या क्या लेना है?

मुहा०—ले देना = दूसरे को मोल लेकर देना। खरीद देना।

(४) अपने अधिकार में करना। कब्ज़े में लाना। जीतना। जैसे,—उसने सिंध के किनारे का देश ले लिया। (५) उधार लेना। क़र्ज़ लेना। ऋण ग्रहण करना। जैसे,—१००) महाजन से लिए, तब काम चला। (६) कार्य्य सिद्ध करना या समाप्त करना। काम पूरा करना। जैसे,—आधे से अधिक काम हो गया है; अब ले लिया। (७) जीतना। जैसे,—बाज़ी लेना। (८) भागते हुए को पकड़ना। धरना। जैसे—लेना, जाने न पावे। (९) गोद में थामना। जैसे—ज़रा बच्चे को ले लो। (१०) किसी आते हुए आदमी से आगे जाकर मिलना। अगवानी करना। अभ्यर्थना करना। जैसे—शहर के सब रईस स्टेशन पर उन्हें लेने गए हैं। उ०—भरत भाइ आगे है लीन्हे।—तुलसी। (११) प्राप्त होना। पहुँचना। जैसे,—घर लेना मुश्किल हो गया है। (१२) किसी कार्य्य का भार ग्रहण करना। किसी काम को पूरा करने का वादा करना। जिम्मे लेना। जैसे,—जब इस काम को लिया है, तब पूरा करके ही छोड़ूँगा।

मुहा०—ऊपर लेना = जिम्मे लेना। भार ग्रहण करना। जैसे—इस काम को मैं अपने ऊपर लेता हूँ।

(१३) सेवन करना। पीना। जैसे—कभीकभी वे थोड़ी सी भाँग ले लेते हैं। (१४) धारण करना। स्वीकार करना। अंगीकार करना। जैसे,—योग लेना, संन्यास लेना, बाना लेना। (१५) काटकर अलग करना। काटना। जैसे,—(क) नाखून लेना, बाल लेना। (ख) धीरे से ऊपर का हिस्सा ले लो, अंदर छुरी न लगने पावे। (१६) किसी को उपहास द्वारा लज्जित करना। हँसी ठट्ठा करके या व्यंग्य बोलकर शरमिंदा करना। जैसे,—आज उनको खूब लिया।

मुहा०—आड़े हाथों लेना = गूढ़ व्यंग्य द्वारा लज्जित करना। छिपा हुआ आक्षेप करके लज्जित करना।

(१७) पुरुष या स्त्री के साथ संभोग करना। (१८) संचय करना। एकत्र करना। जैसे—मैं गुरु के लिये फूल लेने गया था।

मुहा०—ले आना = लेकर आना। लाना। ले उड़ना = (१) लेकर भाग जाना। (२) किसी बात को लेकर उस पर बहुत कुछ कह चलना। किसी बात का संकेत पाते ही वितंडावाद खड़ा करना। जैसे—तुमने तो जहाँ कोई बात सुनी, बस ले उड़े। लेने के देने पड़ना = (१) लेने के स्थान पर उलटे देना पड़ना। भले के लिए कुछ करते हुए बुरा होना। (किसी मामले में) लाभ के बदले हानि होना। (२) बहुत कठिन समय आना। जान पर आ बनना। जैसे,—देखते देखते बच्चे के लेने के देने पड़ गए। ले चलना = (१) लेकर चलना। थामकर या ऊपर उठा कर चलना। (२) चलते समय किसी को साथ करना। साथ साथ गमन कराना या पहुँचाना। जैसे—मेले में उन्हें भी ले चलो। ले जाना = लेकर जाना। पास में रखकर प्रस्थान करना। जैसे—(क) यह किताब ले जाओ; अब काम नहीं है। (ख) यह पत्र उनके पास ले जाओ। ले डालना = (१) खराब करना। चौपट करना। नष्ट करना। (२) पराजित करना। हराना। (३) किसी काम को निबटा देना। पूरा करना। समाप्त करना। ले डूबना = अपने साथ दूसरे को भी खराब करना। ले दे करना = (१) हुज्जत करना। तकरार करना। (२) बहुत प्रयत्न करना। बड़ी कोशिश करना। जैसे—बड़ी ले दे की, तब जाकर काम पूरा हुआ। ले देकर = (१) लेना देना सब जोड़कर। खर्च या देना आदि घटा कर। जैसे—सब ले देकर १००) बचते हैं। (२) सब मिलाकर। जोड़ गाँठकर। जैसे,—ले देकर इतने ही रुपए तो होते हैं। (३) बड़ी मुश्किल से। कठिनता से। लेना देना = (१) लेने और देने का व्यवहार। (२) रुपया उधार देने और लेने का व्यवसाय। लेना देना होना = मतलब या प्रयोजन होना। सरोकार होना। जैसे,—मुझे किसी से कुछ लेना देना है जो परवा करूँ! लेना एक न देना दो = कुछ मतलब नहीं। कुछ प्रयोजन नहीं। कुछ सरोकार नहीं। उ०—माँगि कै खैबो, मसीत को सोइबो लैबे को एक न देबे को दोऊ।—तुलसी। ले निकलना = लेकर भाग ले पड़ना = (१) अपने साथ जमीन पर गिरा देना। (२) करने लगना। ले पालना = गोद लेना। दत्तक लेना। ले बैठना = (१) बोझ लिए डूब जाना। (नाव आदि का) (२) नष्ट या खराब करना। (३) किसी व्यवसाय का नष्ट होकर धन को नष्ट करना। जैसे—यह कारखाना सभी बैठेगा। ले भागना = लेकर भाग जाना। ले रख छोड़ना। ले मरना = अपने साथ नष्ट या खराब कान में लेना = सुनना। उ०—करैं घरी दस जो खबरि देत लेत नहिं कान और मरवावही।—

ले = इस शब्द का प्रयोग किसी को संबोधन करके बोध कराने के लिये किया जाता है—(१) अच्छा, वही होता है। जैसे—ले, मैं चला जाता हूँ, सो (२) अच्छा जो तू किसी तरह नहीं मानता है, तो मैं हूँ। जैसे,—ले, तेरे हाथ जोड़ूँ हूँ, क्यों न (३)(किसी के प्रतिकूल कोई बात हो जाने पर करने के लिये) देख। कैसा फल मिला। जैसे,—(क) बढ़ बढ़कर बातें कर। (ख) ले! कैसी मिठाई मिली।

विशेष—इस क्रिया का प्रयोग संयो० क्रिया के और अकर्मक दोनों क्रियाओं के धातु-रूप के सो (क) केवल पूर्ति सूचित करने के लिये होता है। इस बीच में उसने अपना काम कर लिया। कहीं स्वयं वक्ता द्वारा किसी क्रिया का लिये। जैसे,—तुम रहने दो, मैं

लेप-संज्ञा पुं० [सं०] (१) गीली या पानी वस्तु जिसकी तह किसी वस्तु के ऊपर फैलाकर जाय। पोतने, छोपने या छुपड़ने की चीज। गाढ़ी गीली वस्तु। जैसे,—जहाँ चोट लगी है, लेप चढ़ा देना।

क्रि० प्र०—चढ़ाना।—रखना।—लगाना।

(२) गाढ़ी गीली वस्तु की तह जो किसी वस्तु फैलाई जाय। (३) उबटन। बटना। (४)

लेपक-संज्ञा पुं० [सं०] लेप करनेवाला। पोतने

लेपची-संज्ञा पुं० [देश०] नैपालियों की एक जाति।

लेपन-संज्ञा पुं० [सं०] [वि० लेपित, लेप्य, लिप्त] वस्तु की तह चढ़ाना। लेई सी गीली चीज छोपना।

लेपना-क्रि० स० [सं० लेपन] गाढ़ी गीली वस्तु की कीचड़ या लेई सी गाढ़ी चीज

लेपालक-संज्ञा पुं० [हिं० लेना + पालना] गोद लिया दत्तक पुत्र। पालट।

लेपी-वि० [सं० लेपिन्] लेप करनेवाला ।
संज्ञा पुं० लेखक । लिपिकार ।

लेप्य-वि० [सं०] लेपन करने योग्य । लेपनीय ।

लेप्यनारी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) वह स्त्री जिस पर चंदन आदि का लेप लगा हो । (२) पत्थर या मिट्टी की बनी स्त्री की मूर्ति ।

लेफ्टिनेंट-संज्ञा पुं० [अं०] (१) वह सहायक कर्मचारी जिसे यह अधिकार हो कि अपने से उच्च कर्मचारी के आज्ञानुसार या उसकी आज्ञा के अभाव में यथाभिमत कोई काम कर सके । जैसे,—लेफ्टिनेंट कर्नल, लेफ्टिनेंट गवर्नर, लेफ्टिनेंट जनरल इत्यादि । (२) सेना का वह अध्यक्ष जो कप्तान के मातहत होता है और कप्तान की अनुपस्थिति में सेना पर पूर्ण अधिकार रखता है ।

लेबरना†-क्रि० स० [हिं० लपेटना, लिबड़ना या लेमरना] ताने में माँड़ी लगाना । (जुलाहा)

लेबुल-संज्ञा पुं० [अं०] पते या विवरण आदि की सूचक वह चिट जो पुस्तकों, औषध आदि की पुड़ियों, बोतलों या गठरियों आदि पर लगाई जाती है । नाम-विधि ।

लेबोरेटरी-संज्ञा स्त्री० [अं०] वह शाला या मंदिर जिसमें वैज्ञानिक परीक्षाएँ की जाती हों, किसी परिक्रिया की जाँच की जाती हो, अथवा रासायनिक पदार्थ, औषधें इत्यादि बनाई या तैयार की जाती हों । प्रयोग शाला ।

लेमनेड-संज्ञा पुं० [अं०] नीबू का शरबत जो पहले नीबू के रस को शरबत में मिलाकर बनाते थे, पर जो अब नीबू के सत्त को शरबत में मिलाकर बनाते हैं और बोतल में हवा के जोर से बंद करके रखते हैं । विलायती मीठा पानी । (यह प्रायः पाचक होता है ।)

लेमर-संज्ञा पुं० [अं०] एक प्रकार का जंतु जो पेड़ों पर रहता है और फल, फूल, अंकुर, पत्तियाँ, अंडे और कीड़े मकोड़े, जो पेड़ों पर रहते हैं, खाता है । पहले मेडागास्कर टापू में इसका पता लगा था । यह बंदरों से मिलता जुलता होता है । इसकी अनेक जातियों का पता चला है, जो अफ्रिका और पूर्वीय टापुओं में फिलिपाइन् और सिलीबीज तक मिलती हैं । इनके सिवा इसकी एक और जाति है, जो बिना पूँछ के होती है और मलाया, बोर्निओ, सुमात्रा आदि में मिलती है । इसकी पूँछ लंबी होती है । इसकी कुछ जातियों के जंतुओं को दिन में दिखाई नहीं देता ।

लेर-संज्ञा स्त्री० दे० "लहर" । (लश०)

लेरुआ‡-संज्ञा पुं० दे० "लेरू" ।

लेटमारी†-संज्ञा पुं० [हिं० लट+मारि (प्रत्य०)] वह भेंड़ जिसके गले में बालों की लट लटकी रहती है । (गड़रिया)

लेरुवा-संज्ञा पुं० [हिं० लेरू] बछड़ा । उ०—(क) जो न बसौं, छोल नैन, लेरुवा मरहिं सब सरक सरेई आसु सूनें सुनियतु है ।—केशव । (ख) लाड़िली लली कलोरी लुरी कहँ लाल लुके कहीं अंग लगाइ कै । आसु तो केशव कैसहु लेरुवै लागन देत न कैसहूँ आइ कै ।—केशव ।

लेलिह-संज्ञा पुं० [सं०] (१) जूँ । लीख । (२) साँप ।

लेव-संज्ञा पुं० [सं० लेप्य] (१) अच्छी तरह घुली हुई मिट्टी या पिसी हुई ओषधियाँ जो किसी स्थान पर लगाई जायँ । लेप । (२) मिट्टि आदि का लेप जो हंडी या और बर्तनों की पेंदी पर उन्हें आग पर चढ़ाने से पहले जलाने से बचाने के लिये किया जाता है । (३) दीवार पर लगाने का गिलावा । कहगिल ।
क्रि० प्र०—चढ़ना ।—चढ़ाना ।—देना ।
मुहा०—लेव चढ़ना = मोटा होना । मोटाई आना । (व्यंग्य)
(४) दे० "लेवा" ।

लेवक-संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का वृक्ष जिसकी लकड़ी इमारत के काम में आती है ।

लेवड़ा‡-संज्ञा पुं० [हिं० लेव+ड़ा (प्रत्य०)] लेव । लेप ।

लेवा-संज्ञा पुं० [सं० लेप्य] (१) गिलावा । (२) मिट्टी का गिलावा । कहगिल । (३) नाव की पेंदी का वह तख़्ता जो सिरे से पतवार तक लगाया जाता है । (४) लेप । (५) पानी का इतना बरसना कि जोतने पर खेत की मिट्टी और पानी मिलकर गिलावा बन जाय ।
क्रि० प्र०—लगना ।
(६) गाय, भैंस आदि का थन ।
वि० [हिं० लेना] लेनेवाला । जैसे,—नामलेवा । जानलेवा ।
विशेष—इस अर्थ में इसका व्यवहार केवल यौगिक शब्दों के अंत में होता है ।
यौ०—लेवा देई = लेनदेन । आदान-प्रदान । उ०—अपनो काज सँवार सूर सुनि हमहिं बतावत कूर । लेवा देई बराबर में है कौन रंक को भूप ।—सूर ।

लेवार-संज्ञा पुं० [सं०] अमड़ार ।
† संज्ञा पुं० [हिं० लेव] लेप । गिलावा ।

लेवारना ‡-क्रि० स० दे० "लेवरना" ।

लेवाल-संज्ञा पुं० [हिं० लेना+वाल (प्रत्य०)] लेने या खरीदनेवाला ।

लेश-संज्ञा पुं० [सं०] (१) अणु । (२) छुटाई । सूक्ष्मता । (३) चिह्न । निशान । उ०—राम सच्चिदानंद दिनेशा । नहिं तहँ मोहनिसा-लव लेसा ।—तुलसी । (४) संसर्ग । लगाव । संबंध । उ०—जो कोइ कोप भरे मुख बैना । सनमुख हतै गिरा सर पैना । तुलसी तऊ लेस रिस नाहीं । सो सीतल कहिये जग माहीं ।—तुलसी । (५) एक अलंकार, जिसमें किसी वस्तु के वर्णन के केवल एक ही भाग या अंश में रोचकता आती है । (६) एक प्रकार का गाना ।

वि० अल्प। थोड़ा। उ०—(क) लरिका और पढ़त शाला में, तिनहिं करत उपदेस। हरि को भजन करो सबही मिलि और जगत सब लेस।—सूर। (ख) राज देन कहि दीन बन, मोहिं न सो दुख लेस। तुम्ह बिन भरतहि भूपतिहि प्रजहि प्रचंड कलेस।—तुलसी।

लेश्या-संज्ञा स्त्री० [सं०] जैनियों के अनुसार जीव की वह अवस्था जिसके कारण कर्म जीव को बाँधता है। यह छः प्रकार की मानी गई है—कृष्ण, नील, कपोत, पीत, पद्म और शुक्ल।

विशेष—इसे जैन लोग जीव का पर्याय भी मानते हैं।

लेष-संज्ञा पुं० (१) दे० "लेश"। (२) दे० "लेख"।

लेषना *-क्रि० स० (१) दे० "लखना"। उ०—दुख सुख अरु अपमान बड़ाई। सबसम लेषहिं बिपति बिहाई।—तुलसी। (२) दे० "लिखना"। उ०—सीय स्वयंवर माई दोउ भाई आए देषन। सुनत चली प्रमदा प्रमुदित मन, प्रेम पुलकि तन मनहुँ मदन मंजुल पेषन। निरषि मनोहरताई सुषमाई कहै एक एक सों भूरि भाग हम धन्य आली ए दिन एषन। तुलसी सहज सनेह सुरंग सब, सो समाज चित चित्रसार लागी लेषन।—तुलसी।

लेषनी*-संज्ञा स्त्री० दे० "लेखनी"।

लेषे*-संज्ञा पुं० दे० "लेखे"।

लेस †-संज्ञा पुं० दे० "लेश"।

संज्ञा स्त्री० [अं०] (१) कलबत्तू या किनारे पर टाँकने की इसी प्रकार की और कोई पटरी। गोटा। (२) बेल।

संज्ञा पुं० [हिं० लासा] (१) मिट्टी का गिलावा जो दीवार पर लगाने के लिये बनाया जाता है। (२) किसी वस्तु को पानी में घोलकर तैयार किया हुआ गाढ़ा गिलावा। चेप। लस।

यौ०—लेसदार = लसीला। चिपचिपा।

लेसना-क्रि० स० [सं० लेश्या = प्रकाश] जलाना। उ०—एहि विधि लेसइ दीप तेजरासि बिज्ञानमय। जातहि जासु समीर जरहिं मदादिक सलभ सब।—तुलसी।

क्रि० प्र०—देना।

क्रि० स० [हिं० लेस या लस] (१) किसी चीज़ पर लेस लगाना। पोतना। (२) घर की दीवार पर मिट्टी का गिलावा पोतना। कहगिल करना। (३) चिपकाना। सटाना। (४) इधर की बात उधर लगाना। चुगली खाना। (५) दो आदमियों में विवाद उत्पन्न करने के लिये उन्हें उत्तेजित करना।

लेसो †-संज्ञा पुं० [देश०] छः ढोली पान का एक गड्डा।

लेह-संज्ञा पुं० [सं०] (१) दे० "अवलेह"। (२) ग्रहण का एक भेद जिसमें पृथ्वी की छाया (या राहु) सूर्य्य या चंद्रबिंब को जीभ के समान चाटता हुआ जान पड़ता है।

लेहन-संज्ञा पुं० [सं० लेहक, लेह] चाटना। उ०—जहँ जहँ भीर परत भक्तन को तहँ तहँ होत सहाय। स्तुति कर मन हरष बढ़ायो लेहन जीभ कराय।—सूर।

लेहना-संज्ञा पुं० [हिं० लहना] (१) खेत में कटे हुए शस्य या फसिल की वह डाँठ जो काटनेवाले मज़दूरों को काटने की मज़दूरी में दी जाती है। (२) कटी हुई फसिल का वह बाल सहित डंठल जो नाई, धोबी आदि को दिया जाता है। (३) डंठल या बयाल आदि की वह मात्रा जो उठानेवाले के दोनों हाथों के बीच में आ सके। (४) दे० "लहना"।

लेहसुआ-संज्ञा पुं० [हिं० लेस] एक प्रकार की घास जिसकी पत्तियाँ चार अंगुल लंबी, तीन अंगुल चौड़ी, ऊपर को नुकीली और धारीदार होती हैं। यह बरसात में उत्पन्न होती है और बहुत कोमल तथा लसीली होती है। इसका साग भी बनाया जाता है और इसे भी पशु खाते हैं। इसके फूल नीले रंग के और छोटे छोटे होते हैं। इसकी पत्ती तेल आदि में तलने से रोटी की भाँति फूल जाती है। कनकौवा।

लेहसुर-संज्ञा पुं० [देश०] कुम्हारों का एक औज़ार जिससे वे मिट्टी को मिलाते हैं। पाँसू।

लेहाज़ा-क्रि० वि० [अ०] इसलिये। इस वास्ते। इस कारण।

लेहाड़ा †-वि० दे० "लिहाड़ा"।

लेहाड़ापन-संज्ञा पुं० दे० "लिहाड़ापन"।

लेहाड़ी-संज्ञा स्त्री० [हिं० लिहाड़ी] अप्रतिष्ठा। अपमान। (दलाल)

क्रि० प्र०—करना।—लेना।

लेहाफ़-संज्ञा पुं० दे० "लिहाफ़"।

लेह्य-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह पदार्थ जो चाटने के लिये हो। वह जो चाटा जाय। यह भोजन के छः प्रकारों में से एक है। चटनी। उ०—विविध भाँति के रुचिर अचारा। लेह्य चोष्य अरु पेय प्रकारा।—रघुराज। (२) अवलेह।

वि० चाटने के योग्य। जो चाटा जाय।

लैंगिक-संज्ञा पुं० [सं०] वैशेषिक दर्शन के अनुसार अनुमान प्रमाण। वह ज्ञान जो लिंग द्वारा प्राप्त हो। सूत्र में इसका स्पष्ट लक्षण न कहकर इसे उदाहरण द्वारा इस प्रकार लक्षित किया गया है कि यह इसका कार्य्य है, यह इसका कारण है, यह इसका संयोगी है, यह इसका विरोधी है, यह इसका समवायी है, आदि; इस प्रकार का ज्ञान लैंगिक ज्ञान कहलाता है। इसी को न्याय में अनुमान कहते हैं।

लैंडो-संज्ञा स्त्री० [अं०] एक प्रकार की घोड़ा गाड़ी जिसमें ऊपर टप होता है। यह टप बीच में से इस प्रकार खुलता है कि पिछला अंश पीछे की ओर और अगला आगे की ओर सिकुड़कर दब और नीचे बैठ जाता है। इसमें आमने सामने दोनों ओर बैठने की चौकियाँ होती हैं।

लैंप-संज्ञा पुं० [अं०] दीपक। चिराग।

लैं-अव्य० [हिं० लगना] तक। पर्यन्त।

लैटिन-संज्ञा स्त्री० एक भाषा जो पूर्व काल में इटली देश में बोली जाती थी। किसी समय में सारे युरोप में यह विद्वानों और पादरियों की भाषा थी। इस भाषा का साहित्य बहुत उन्नत था; और इसी लिये अब भी कुछ लोग इसका अध्ययन करते हैं।

लैन-संज्ञा स्त्री० [अं० लाइन] (१) सीधी लकीर जिसमें लंबाई मात्र हो। (२) सीमा की लकीर। (३) क़तार। पंक्ति। (४) पैदल सिपाहियों की सेना।

यौ०—लैनडोरी = पेराडेमा।

(५) सिपाहियों के रहने की जगह। बारक।

लैया†-संज्ञा पुं० [हिं० लपना ?] वह धान जो अगहन में कटता है। जड़हन। शाली। लपक।

लैवेंडर-संज्ञा पुं० [अं०] एक सुगंधित तरल पदार्थ जो एक पौधे के फूलों से निकला जाता है। यह इतर की भाँति कपड़ों में, या ठंढक पहुँचाने के लिये सिर में लगाया जाता है।

लैसंस-संज्ञा पुं० [अं० लाइसेंस] वह प्रमाणपत्र जिसके द्वारा किसी मनुष्य को विशेष अधिकार प्रदान किया जाता है। सनद। अधिकार पत्र। जैसे,—अफ़ीम बेचने का लैसंस, एक्का या गाड़ी हाँकने का लैसंस, बन्दूक रखने का लैसंस।

लैस-वि० [अं० लेस] वर्दी और हथियारों से सजा हुआ। कटिबद्ध। तैयार।

क्रि० प्र०—होना।

संज्ञा पुं० कपड़े पर चढ़ाने का फ़ीता।

संज्ञा पुं० एक प्रकार का बाण जिसकी नोक लंबी और बड़ी होती है। उ०—किहूँ लैस कसी धरत्ती घुमाई। किहूँ सैल की रेल हाथों चलाई।—सूदन।

संज्ञा पुं० [हिं० लेस] (१) एक प्रकार का सिरका। (२) कमानी।

लों-अव्य० दे० "लौं"।

लोंडी†-संज्ञा स्त्री० [सं० लेला] कान का लोलक।

लोंदा-संज्ञा पुं० [सं० लुंठन] किसी गीले पदार्थ का वह अंश जो ढले की तरह बँधा हो। जैसे,—घी का लोंदा, दही का लोंदा, मिट्टी का लोंदा।

लो-अव्य० [हिं० लेना] एक अव्यय जिसका प्रयोग श्रोता को संबोधन करके उसका ध्यान अपनी ओर आकृष्ट किया जाता है। जैसे,—(क) लो! खाली बैठे बैठे तुम्हें कैसी पत्र लिखाने की सूझी। (ख) लो! चलो मैं आता हूँ। (ग) लो! देखते जाओ, यह क्या कर रहा है। (घ) लो! क्या से क्या हो गया।

लोइ *-संज्ञा पुं० [सं० लोक, प्रा० लोओ या लोवो] लोग। उ०—(क) देखि बिनु करतूति कहियो जानिहै लघु लोइ। कहौं जो मुख की समर सरि कालि कारिख धोइ।—तुलसी। (ख) नागर नवल कुँआर वर सुंदर मारग जात लेत मन गोई। सूरश्याम मनहरण मनोहर गोकुल बसि मोहे सब लोई।—सूर। (ग) बल बसुदेव कुशल सब लोई। अर्जुन यह सुन दीने रोई।—सूर।

संज्ञा स्त्री० [सं० रोचि, प्रा० लोई] (१) प्रभा। दीप्ति। उ०—(क) इनमें लोइ दरसात है दर भूरत की लोइ। या तें लोइन कहत हैं इनसों मिलि सब कोइ।—रसनिधि। (ख) कैसे ऐसे रूप की नर तें उतपति होइ। भूतल से निकसति कहीं बिज्जु छटा की लोइ।—लक्ष्मण। (२) लव। शिखा। उ०—ईंधन के डारे बिना बढ़ति न पावक लोइ। फन न उठावत नागहू जो छेड्यो नहिं होइ।—लक्ष्मण।

लोइन*-संज्ञा पुं० [सं० लावण्य] लावण्य। नमकीनी। नमक। उ०—कीने हू साहस सहस, कीने जतन हजार। लोइन लोइन सिंधु तन, पैरि न पावत पार।—लल्लूलाल।

संज्ञा पुं० दे० "लोयन"।

लोई-संज्ञा स्त्री० [सं० लोप्त्री = प्रा० लोवी] गुँधे हुए आटे का उतना अंश जो एक रोटी मात्र के लिये निकालकर गोली के आकार का बनाया जाता है और जिसे बेल कर रोटी बनाते हैं। उ०—भाजी भावती है महा मोदक महीं की शोभा पूरी रची है कर लोनाई विधि लोई में।—रघुनाथ।

संज्ञा स्त्री० [सं० लोमीय = लोई] एक प्रकार का कम्मल जो पतले ऊन से बुना जाता है और कम्मल से कुछ अधिक लंबा और चौड़ा होता है। इसकी बुनावट प्रायः दुसुती की सी होती है। उ०—सीतलपाटी टाट, लोई कम्मल ऊन के। बची न एकौ हाट, लेस नियारहि मारि है।—सूदन।

लोकंजन *-संज्ञा पुं० [सं० लोपांजन या हिं० लुकना + अंजन] वह कल्पित अंजन जिसे आँख में लगाने से मनुष्य का अदृश्य होना माना जाता है। लोपांजन। उ०—जो कहिये विधना ही रची सिर तें पर क्यों पग को सँग लीन्हो। जो कहिये कि विरंचि रची है तो ऐसी न आनि किसी इन दीन्हो। कीन्हे विचार न आवै मनै नृप संभु मनै तब यो मति चीन्हो। जो चितचोर को चित चुरावत राधे के अंग लोकंजन कीन्हो।—शंभु।

लोकंदा†-संज्ञा पुं० [हिं० लेकना ?] [स्त्री० लोकंदी] विवाह में कन्या के डोले के साथ दासी को भेजना। उ०—ऐसी पावहि ब्याह होत है मंगल गावै गाई। बन के रोझ पै दायज दीन्हों गोद लोकंदे आई।—कबीर।

क्रि० प्र०—आना।—भेजना।

लोकंदी†-संज्ञा स्त्री० [हिं० लोकंदा] वह दासी जो कन्या के पहले पहल ससुराल जाते समय उसके साथ भेजी जाती है।

लोक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) स्थान विशेष जिसका बोध प्राणी को हो।

विशेष—उपनिषदों में दो लोक माने गए हैं—इहलोक और परलोक। निरुक्त में तीन लोकों का उल्लेख मिलता है—पृथ्वी, अंतरिक्ष और द्युलोक। इनका दूसरा नाम भूः भुव और स्वः है। ये महाव्याहृति कहलाते हैं। इन तीन महाव्याहृतियों की भाँति चार और महः, जनः, तपः और सत्यम् शब्द हैं, जो तीनों महाव्याहृतियों के साथ मिलकर सप्तव्याहृत कहलाते हैं। इन सातों महाव्याहृतियों के नाम से पौराणिक काल में सात लोकों की कल्पना हुई, जिनके नाम इस प्रकार हैं—भूलोक, भुवर्लोक, स्वर्लोक, महर्लोक, जनलोक, तपलोक और सत्यलोक। फिर पीछे इनके साथ सात पाताल—जिनके नाम अतल, नितल, वितल, गभस्तिमान, तल, सुतल और पाताल हैं—और मिलाकर चौदह लोक किए गए। पुराणों में पातालों के नाम में मत भेद है। पद्म पुराण में इनके नाम अतल, वितल, सुतल, तलातल, महातल, रसातल और पाताल बतलाए गए हैं। अग्निपुराण में अतल, सुतल, वितल, गभस्तिमान्, महातल, रसातल और पाताल; तथा विष्णु पुराण में अतल, वितल, नितल, गभस्तिमान्, महातल, सुतल और पाताल इनके नाम लिखे गए हैं। इस प्रकार चौदह लोक या भुवन माने गए हैं। सुश्रुत में लोक दो प्रकार का माना गया है—स्थावर और जंगम।

(२) संसार। जगत। (३) स्थान। निवासस्थान। जैसे,—ब्रह्म लोक, विष्णु लोक इत्यादि। (४) प्रदेश। दिशा। जैसे,—लोकपाल, लोकपति इत्यादि। (५) लोग। जन। उ०—माधव या लगि है जग जीजतु। जाते हरि सों प्रेम पुरातन बहुरि नयो करि कीजतु। कहँ रवि राहु भयो रिपुमति रवि विधि संजोग बनायो। उहि उपकारि आजु यह औसर हरि दर्शन सचु पायो। कहाँ बसहिं यदुनाथ सिंधु तट कहँ हम गोकुल वासी। वह वियोग यह मिलनि कहाँ अब काल चाल औरासी। सूरदास मुनि चरण चरचि करि सुर लोकनि रुचि मानी। तब अरु अब यह दुसह प्रमानी निमिषो पीरि न जानी।—सूर। (६) समाज। उ०—(क) सब से परम मनोहर गोपी। नँद नंदन के नेह मेह जिन लोक लीक लोपी।—सूर। (ख) सो जानब सत संग प्रभाऊ। लोकहु वेद न आन उपाऊ।—तुलसी। (७) प्राणी। उ०—उगेउ अरुन अवलोकहु ताता। पंकज लोक कोक सुखदाता।—तुलसी। (८) यश। कीर्ति। उ०—लोक में लोक बड़ो अपलोक सुकेशव दास जो होउ सो होउ।—केशव।

संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का पक्षी जो बत्तख से बड़ा और खाकी रंग का होता है।

लोककंटक-संज्ञा पुं० [सं०] वह जो समाज का कंटक, विरोधी या हानिकर हो। लोगों को कष्ट या हानि पहुँचानेवाला। दुष्ट प्राणी।

लोकक्षिति-वि० [सं०] स्वर्ग लोक का निवासी।

लोकचक्षु-संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य्य।

लोकजननी-संज्ञा स्त्री० [सं०] लक्ष्मी।

लोकजित्-संज्ञा पुं० [सं०] बुद्ध।

लोकज्येष्ठ-संज्ञा पुं० [सं०] बुद्ध।

लोकतुषार-संज्ञा पुं० [सं०] कपूर।

लोकधारिणी-संज्ञा स्त्री० [सं०] पृथ्वी।

लोकधुनि ॐ-संज्ञा स्त्री० [सं० लोकध्वनि] जनरव। अफवाह। उ०—घरघा घरनि सोचि रची जानि मन रघुराइ। दूत मुख सुनि लोकधुनि घर घरनि बूझी आइ।—तुलसी।

लोकना-क्रि० स० [सं० लोपन] (१) ऊपर से गिरती हुई किसी वस्तु को भूमि पर गिरने से पहले ही हाथों से पकड़ लेना। (२) बीच में से ही उड़ा लेना। रास्ते में से ही लेना। उ०—जाते जेर सब लोक बिलोकि त्रिलोचन सो बिलोक लियो है।—तुलसी।

क्रि० प्र०—लेना।

लोकनाथ-संज्ञा पुं० [सं०] (१) ब्रह्मा। (२) लोकपाल। (३) बुद्ध।

लोकप, लोकपति-संज्ञा पुं० [सं०] (१) ब्रह्मा। (२) लोकपाल। (३) राजा।

लोकपाल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) दिक्पाल। पुराणानुसार आठ दिशाओं के अलग अलग लोकपाल हैं। यथा इंद्र पूर्व दिशा का; अग्नि दक्षिण-पूर्व का; यम दक्षिण का; सूर्य्य दक्षिण-पश्चिम का; वरुण पश्चिम का; वायु उत्तर-पश्चिम का; कुबेर उत्तर का और सोम उत्तर-पूर्व का। किसी किसी ग्रंथ में सूर्य्य और सोम के स्थान पर निर्ऋति और ईशानी या पृथ्वी के नाम मिलते हैं। (२) अवलोकितेश्वर बोधिसत्व का एक नाम।

लोकपितामह-संज्ञा पुं० [सं०] ब्रह्मा।

लोकप्रत्यय-संज्ञा पुं० [सं०] वह जो संसार में सर्वत्र मिलता हो।

लोकप्रदीप-संज्ञा पुं० [सं०] बुद्ध।

लोकप्रवाद-संज्ञा पुं० [सं०] जिसे संसार के सभी लोग कहते और समझते हों। साधारण बात।

लोकबंधु-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शिव। (२) सूर्य्य।

लोकयात्रा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) व्यवहार। (२) व्यापार।

लोकरव-संज्ञा पुं० [सं०] अफ़वाह। प्रवाद।

लोकरा-संज्ञा पुं० [देश०] चीथड़ा।

लोकल-वि० [अं०] (१) प्रांतिक। प्रादेशिक। (२) किसी एक ही स्थान या नगर आदि से संबंध रखनेवाला। स्थानीय।

यौ०—लोकल बोर्ड।

लोकल बोर्ड-संज्ञा पुं० [अं०] वह स्थानीय समिति जिसके सभ्यों का चुनाव किसी स्थान के कर देनेवाले करते हों और जिसके अधिकार में उस स्थान की सफ़ाई आदि की व्यवस्था हो।

लोकलीकल-संज्ञा स्त्री० [हिं० लोक+लीक] लोक मर्य्यादा। उ०—सरस असम सर सरसिज लोचनि विलोकि लोक-लीक लाज लोपिबे को आगरी।—केशव।

लोकविश्रुत-वि० [सं०] संसार भर में प्रसिद्ध। जगद्विख्यात।

लोकश्रुति-संज्ञा स्त्री० [सं०] जनश्रुति। अफ़वाह।

लोकसंग्रह-संज्ञा पुं० [सं०] (१) संसार के लोगों को प्रसन्न करना। (२) संसार का कल्याण या सब की भलाई चाहनेवाला।

लोकहाँदी-संज्ञा स्त्री० [हिं० लोक+हल्दी] एक प्रकार की हल्दी।

लोकांतर-संज्ञा पुं० [सं०] वह लोक जहाँ मरने पर जीव जाता है।

लोकांतरित-वि० [सं०] (१) जो इस लोक से दूसरे लोक में चला गया हो। (२) मरा हुआ। मृत। स्वर्गीय।

लोकाचार-संज्ञा पुं० [सं०] संसार में बरता जानेवाला व्यवहार। लोकव्यवहार।

लोकाट-संज्ञा पुं० [चीनो लु:+क्यू] एक पौधा जिसकी पत्तियाँ लंबी और नुकीली, तेंदू की पत्तियों के आकार की, पर उससे कुछ बड़ी होती हैं। इसका पेड़ बीस पचीस हाथ से अधिक ऊँचा नहीं होता। इसके पेड़ में फागुन चैत के महीने में मंजरियाँ लगती हैं और बड़े बेर के बराबर फल लगते हैं, जो पकने पर पीले होते हैं और खाने में प्रायः मीठे, गुदार और स्वादिष्ट होते हैं। सहारनपुर में लोकाट बहुत अच्छा और मीठा उत्पन्न होता है। यह फल चीन और जापान देश का है और वहीं से भारतवर्ष में आया है।

लोकाधिप-संज्ञा पुं० [सं०] (१) लोकपाल। (२) बुद्ध।

लोकाना†-क्रि०स० [हिं० लोकने का प्रे०] अधर में फेंकना। उछालना।

लोकायत-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह मनुष्य जो इस लोक के अतिरिक्त दूसरे लोक को न मानता हो। (२) चार्वाक दर्शन, जिसमें परलोक या परोक्षवाद का खंडन है। (३) किसी किसी के मत से दुर्मिल नामक छंद का एक नाम।

लोकालोक-संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार एक पर्वत का नाम। कहते हैं कि यह सातो समुद्रों और द्वीपों को चारों ओर से आवेष्टित किए हुए है, जिसके बाहर सूर्य्य या चंद्र का प्रकाश नहीं पहुँचता। बौद्ध ग्रंथों में इसे चक्रवाल कहा है।

लोकैषणा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सांसारिक अभ्युदय की कामना। प्रतिष्ठा और यश की कामना। (२) स्वर्ग के सुख की कामना।

लोकोक्ति-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) कहावत। मसल। (२) काव्य में वह अलंकार जिसमें किसी लोकोक्ति का प्रयोग करके कुछ रोचकता या चमत्कार लाया जाय।

लोकोत्तर-वि० [सं०] जो इस लोक में होनेवाले पदार्थों आदि से श्रेष्ठ हो। बहुत ही अद्भुत और विलक्षण। अलौकिक। जैसे,—(क) वहाँ एक योगी ने कई लोकोत्तर चमत्कार दिखलाए थे। (ख) यह कौन सी लोकोत्तर वस्तु है जिसके लिये तुम इतना अभिमान करते हो!

लोखड़ी†-संज्ञा स्त्री० दे० "लोमड़ी"।

लोखर-संज्ञा पुं० [हिं० लोहा+खंड] (१) नाई के औज़ार। जैसे,—छुरा, कैंची, नहरनी आदि। (२) लोहारों या बढ़इयों आदि के लोहे के औज़ार।

लोग-संज्ञा पुं० [सं० लोक] [स्त्री० लुगाई] जन। मनुष्य। आदमी। उ०—(क) देख रतन हीरामन रोवा। राजा जिव लोगन हठ खोवा।—जायसी। (ख) अमृत वस्तु जानै नहीं, मगन भये कित लोग। कहहि कबीर कामो नहीं जीवहि मरन न जोग।—कबीर। (ग) जिन बीथिन बिहरहिं सब भाई। थकित होहिं सब लोग लुगाई।—तुलसी।

विशेष—हिंदी में इस शब्द का प्रयोग सदा बहुवचन में और मनुष्यों के समूह के लिये ही होता है। जैसे,—लोग चले आ रहे हैं।

लोगचिरकी-संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का फूल।

लोगाई†-संज्ञा स्त्री० [हिं० लोग+आई (प्रत्य०)] स्त्री। उ०—(क) पुनि ज्वर दी दीनी पुर लाई। जरन लगे पुर लोग लुगाई।—सूर। (ख) बूँद बूँद मिलि चलीं लोगाई। सहज सिंगार किए उठि धाई।—तुलसी।

विशेष—इस शब्द का शुद्ध रूप प्रायः "लुगाई" ही माना जाता है।

लोच-संज्ञा पुं० [हिं० लचक] (१) लचलचाहट। लचक। (२) कोमलता। उ०—चलै चलै छुटि जायगो हठ रावरे सँकोच। खरे चढ़ाए देत अब, आवे लोचन लोच।—बिहारी। (३) अच्छा ढंग।

संज्ञा पुं० [सं० रुचि] अभिलाषा। उ०—मोको दन्यो लोच बस प्राण को लोच, हिये क्रिये वाको नाम जिनि नाम तजि आइये।—प्रियादास।

संज्ञा पुं० [सं० लुंचन] जैन साधुओं का अपने सिर के बालों को उखाड़ना। लुंचन।

लोचन-संज्ञा पुं० [सं०] आँख। नेत्र। नयन।

मुहा०—लोचन भर आना = आँखों में आँसू डबडबा आना। आँखें भर आना। उ०—यह सुनि कै हलधर तहँ धाये। देखि स्याम ऊखल सों बाँधे, तबहीं दोउ लोचन भरि आये।—सूर।

लोचना†-क्रि० स० [हिं० लोचन] (१) प्रकाशित करना। (२)

रुचि उत्पन्न करना। उ०—निसि वासर लोचन रहत अपनो मन अभिराम। या तें पायो रसिक निधि इन नै लोचन नाम।—रसनिधि। (३) अभिलाषा करना। उ०—स्वर्ग में देव गण भी लोचते हैं और इस बात के लिये तरसते हैं कि भारत की कर्म भूमि में किसी तरह एक बार हमारा जन्म होता।—हिंदीप्रदीप।

क्रि० अ० शोभित होना। उ० - लोचैं परी सियरी पर्यंक पै बीती घरीन खरी खरी सोचैं।—पद्माकर।

क्रि० अ० (१) अभिलाषा करना। कामना करना। उ०—(क) कहति है सकोचति है सखी को बोलाइबे को लोचति है भट्ट बैठी सोचति है मन तें।—रघुनाथ। (ख) कुँअरि सयानि बिलोकि मातु पितु सों कहि। गिरिजा जोग जुरहिं बर अनुदित लोचहिं।—तुलसी। (२) ललचना। तरसना। उ०—अब तिनके बंधन मोचहिंगे। दास बिना पुनि हम लोचहिंगे।—सूर।

संज्ञा पुं० [सं० लुंचन] नाई। हज्जाम। (क्व०)

लोचारक-संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार एक नरक का नाम।

लोचून-संज्ञा पुं० [सं० लोहचूर्ण] (१) लोहे का चूरा। (२) लोहे की कीट का चूर्ण।

लोजंग-संज्ञा स्त्री० [देश० या लेहा + जंग ?] एक प्रकार की नाव जिसके दोनों ओर के सिरे लंबे होते हैं।

लोट-संज्ञा स्त्री० [हिं० लोटना] लोटने का भाव वाचक रूप। लोटने की क्रिया या भाव। लुढ़कना।

क्रि० प्र०—लगाना।

मुहा०—लोट मारना = (१) लेटना। सोना। (२) किसी के प्रेम में बेसुध होना।

मुहा०—लोट होना या हो जाना = (१) आसक्त होना। रीझना। (२) व्याकुल होना।

संज्ञा पुं० [हिं० लोटना] (१) उतार। घाट। उ०—चारों तरफ़ पुख़्ता लोट बने।—लल्लू। (२) ⊕ त्रिवली। उ०—(क) कर उठाय घूँघट करत उसरत पट गुझरौट। सुख मोटैं लूटै ललन लखि ललना की लोट।—बिहारी। (ख) नार नवाये तकि हरी करी कॉकरी चोट। चौंकि कँपी झझकी थकी थँपी हँसी गहि लोट।—शृंगार०। (ग) चढ़ति निकसि कुच कोर रुचि चढ़त गौर भुज मूल। मन लुटिगो लोटन चढ़त चूँटति ऊँचे फूल।—बिहारी।

लोटन-संज्ञा पुं० [हिं० लोटना] (१) एक प्रकार का हल जिसकी जोताई बहुत गहरी नहीं होती। (२) एक प्रकार का कबूतर जो चोंच पकड़कर भूमि में लुढ़का देने से लोटने लगता है; और जब तक उठाया न जाय, लोटता रहता है। (३) राह में की पड़ी हुई छोटी कंकड़ियाँ जो वायु चलने से इधर उधर लुढ़कती रहती हैं। उ०—कौर कृपापल पेडन लोटनि टारहिं ठाँव बनाऊ रे। जस जस चलिय दूरि तस तस निज प्रासन भेंट लगाऊ रे।—तुलसी।

लोटनसज्जी-संज्ञा स्त्री० [देश० लोटन + सज्जी] एक प्रकार की सज्जी जो सफ़ेद और गुलाबी रंग की होती है। यह प्रायः मुरब्बे आदि के गलाने में काम आती है।

लोटना-क्रि० अ० [सं० लुंठन] (१) भूमि पर या किसी ऐसे ही आधार के सहारे उसे स्पर्श करते हुए, ऊपर नीचे होते हुए किसी का एक स्थान से दूसरे स्थान की ओर जाना या गमन करना। सीधे और उलटे लेटते हुए किसी ओर को जाना। उ०—(क) परी कया भुँइ लोटै कहँ रे जीव बिनु भीव। को उठाय बैठारे बाज पियारे जीव।—जायसी। (ख) काम नारि अति लोटत फिरै। कंत कंत कहि छिति सुख भरै।—लल्लू। (२) लुढ़कना। उ०—जानहुँ लोटहिं चढ़े भुअंगा। बेधी बास मलय गिरि अंगा।—जायसी। (३) कष्ट से करवट बदलना। तड़पना।

क्रि० प्र०—जाना।

मुहा०—लोट जाना = (१) बेसुध होना। बेहोश हो जाना। (२) मर जाना। जैसे,—एक ही वार में पाँच कबूतर लोट गए।

(४) विश्राम करना। लेटना।

मुहा०—लोट पोट करना = लेटना। विश्राम करना।

(५) मुग्ध होना। चकित होना। उ०—सुनि गये मार लोटि तामें देखि प्रभु बोलत भये।—रघुनाथ।

लोटपटा†-संज्ञा पुं० [हिं० लोटना + पाटा] (१) विवाह के समय पीढ़ा या स्थान बदलने की रीति। इस में वर के स्थान पर वधू और वधू के स्थान पर वर बैठाया जाता है। (२) बाज़ी का उलट फेर। दाँव का इधर से उधर हो जाना। उलटफेर। उ०—कौन कहा विधि की विधि को दियो दाँवन लोटपटा करिये को।—पद्माकर।

लोटा-संज्ञा पुं० [हिं० लोटना] [स्त्री० अल्पा० लुटिया] धातु का एक पात्र जो प्रायः गोल होता है और पानी रखने के काम में आता है। यह कलसे से छोटा होता है। कभी कभी इसमें टोंटी भी लगाई जाती है; और ऐसे लोटे को टोंटीदार लोटा कहते हैं।

मुहा०—लोटा या लुटिया डुबोना = (१) कलंक लगाना। (२) सब काम चौपट करना। सर्वनाश करना।

लोटिया-संज्ञा स्त्री० [हिं० लोटा + इया (प्रत्य०)] छोटा गोल जल-पात्र जो लोटे के आकार का हो। छोटा लोटा।

लोटी-संज्ञा स्त्री० [हिं० लोटा + ई (प्रत्य०)] (१) छोटा लोटा। (२) वह बर्तन जिससे तमोली पान सींचते हैं।

लोठारी नंगर-संज्ञा पुं० [हिं० लोठारी + लंगर] एक प्रकार का लंगर जो जहाजी या बड़े लंगर से छोटा और केज लंगर से बड़ा होता है। (लश०)

लोड़ना‡†-क्रि० स० [पं० लोड़ = आवश्यकता] आवश्यकता होना। दरकार होना। उ०—(क) तिसी घड़ी नव्वाप से कर जोरि बखाना। जेहा जिसनूँ लोड़िया तेहा फुरमाना। (कल्पाना शुद्ध पाठ)—सूदन। (ख) असी हाल एहा हुवा राख्यो निजु साया। जेहा जिसनूँ लोड़िये तेहा फल पावा।—सूदन।

लोढ़कना†-क्रि० अ० दे० "लुढ़कना"।

लोढ़ना-क्रि० स० [सं० लुंचन] (१) चुनना। तोड़ना। जैसे,—फूल लोढ़ना। उ०—कुसुम लोढ़न हम जाइब हो रामा।—गीत। (२) ओटना। जैसे,—कपास लोढ़ना।

लोढ़ा-संज्ञा पुं० [सं० लोष्ठ] [स्त्री० अल्पा० लोढ़िया] (१) पत्थर का वह गोल लंबोतरा टुकड़ा जिससे सिल पर किसी चीज़ को रखकर पीसते हैं। बट्टा। उ०—फोरहिं सिल लोढ़ा सदन लागे अढुकि पहार। कायर क्रूर कपूल कलि घर घर सहर डहार।—तुलसी।

मुहा०—लोढ़ा डालना = बराबर करना। उ०—घूमि चहूँ दिसि झूमि रहे घन बूँदन ते छिति डारत लोढ़े।—रघुनाथ। लोढ़ाढाल = चौपट। सत्यानाश। उ०—विष्णु कलोह रव कहिं कोप कियो विकराल। झटकि पटकि झट लटकि कसि कीन्हो लोढ़ाढाल।

(२) बुँदेलखंड के बराबर नामक हल का एक अंश। यह मोटी लकड़ी का होता है। इसमें दतुआ या लोहे की कीलें लगी होती हैं, जिनमें पास लगाया जाता है।

लोढ़िया-संज्ञा स्त्री० [हिं० लोढ़ा + इया (प्रत्य०)] छोटा लोढ़ा। बट्टा। जैसे,—सिल लोढ़िया ले आओ।

लोण-संज्ञा पुं० [सं०] लोनी साग।

संज्ञा पुं० दे० "लोन"।

लोथ, लोथि-संज्ञा स्त्री० [सं० लोष्ठ या लोठ] किसी प्राणी का मृत शरीर। लाश। शव। उ०—(क) लोथिन्ह तें लहू के प्रवाह चले जहाँ तहाँ, मानहु गिरिन गेरु झरना झरत हैं।—तुलसी। (ख) गृध श्रृगाल कूकर आपस में लड़लड़ लोथें खैंच खैंच खाते।—लल्लू। (ग) तब कंस की लोथ को घसीट जमुना तीर ले आये।—लल्लू। (घ) भूषन बखानै भूरि भूतन मैं टाँगे चंद्रावतन लोथैं लटकत हैं।—भूषण।

मुहा०—लोथ गिरना = मारा जाना। लोथ डालना = मार गिराना। आघात करना। हत्या करना। लोथपोथ = थकने से चूर। अत्यन्त शिथिल। लथपथ।

लोथड़ा-संज्ञा पुं० [हिं० लोथ + ड़ा] मांस का बड़ा खंड जिसमें हड्डी न हो। मांसपिंड।

लोथारी-संज्ञा स्त्री० [सं० लुंठन] (१) कम पानी में से नाव को खींचते या धीरे धीरे खेते हुए किनारे लगाना। (२) लोथारी लंगर डालकर पानी की थाह का पता लेते हुए मार्ग से किनारे की ओर नाव बढ़ाना। (लश०)

यौ०—लोथारी लंगर।

मुहा०—लोथारी डालना = लोथारी लंगर को छोड़ के पानी में डाल कर तल की थाह लेते हुए नाव को किनारे लगाना। लोथारी तानना = ठीक और नाव जाने के योग्य मार्ग से होकर नाव को किनारे ले आना।

लोथारी लंगर-संज्ञा पुं० [हिं० लोथारी + हिं० लंगर] सब से छोटा लंगर। यह उस जगह डाला जाता है, जहाँ पानी कम होता है और यह जानना अभिप्रेत होता है कि यह किनारे जाने का मार्ग है या नहीं।

लोद्-संज्ञा स्त्री० दे० "लोध"।

लोध-संज्ञा स्त्री० [सं० लोध्र] एक प्रकार का वृक्ष जो भारतवर्ष के जंगलों में उत्पन्न होता है। इसकी छाल रँगने, चमड़ा सिझाने और औषधियों में काम आती है। छाल को गरम पानी में भिगो देने से पीला रंग निकलता है। कहीं कहीं इसकी छाल पानी में उबालकर भी रंग निकाला जाता है। छाल को सज्जी मिट्टी के साथ पानी में उबालने से लाल रंग निकलता है, जिससे छींट छापते हैं। वैद्यक में इसकी छाल और लकड़ी दोनों का प्रयोग होता है। इसकी छाल कुछ कसैली होती है और पेचिश आदि पेट के कई रोगों में दी जाती जाती है। इसका गुण ठंढा है और २० ग्रेन तक इसकी मात्रा है। इसके काढ़े का भी प्रयोग किया जाता है। लोध की लकड़ी के काढ़े से कुल्ला करने से मसूढ़े से रक्त निकलना जाता रहता है और वह दृढ़ हो जाता है। इसकी लकड़ी जल्दी फट जाती है; पर मज़बूत होती है और कई तरह के काम में लाई जाती है।

लोधरा-संज्ञा पुं० [सं० लोध्र] एक प्रकार का तोता जो जापान से आता है।

लोधी-संज्ञा [?] पठानों की एक जाति।

लोध्र-संज्ञा पुं० [सं०] (१) लोध नामक वृक्ष। इसके दो भेद होते हैं—श्वेत लोध और रक्त लोध। यह कसैला, ठंढा और वात, पित्त नाशक होता है। वि० दे० "लोध"।

पर्य्या०—तिरीटक। गालव। शाबर। तिरीट। तिल्वक। मार्जन। तिलकद्रु। कांडनीलक। शंबर। कांडनील। हेमपुष्पक। भिल्ली।

(२) एक जाति का साग।

संज्ञा पुं० [सं० लोध्र] आरामी तोता। लोधरा।

लोध्रतिलक-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का अलंकार जो उपमा का एक भेद माना जाता है।

लोन ‡†-संज्ञा पुं० [सं० लवण] (१) लवण। नमक।

मुहा०—किसी का लोन खाना = अन्न खाना। पालन होना। उ०—काढ़े कढ़ो कँदरानि तुम्हें हनुमान कहि रामचंद्र ही को एक तेरो लोन खायो है।—रघुराज।

किसी का लोन निकलना = निमकहरामी का फल मिलना। नमकहरामी का फल पाना। उ०—ताते मन पोखियत घोर घर-सोर मिसि फूटि फूटि निकसत है लोन राम राय को।—तुलसी। किसी का लोन न मानना = किसी का उपकार न मानना। कृतघ्न होना। उ०—नैनन को अब नाहिं पत्याऊँ। बहुन्यो उनको बोलति हौं तुम हाइ हाइ लीजै नहिं नाऊँ। अब उनको मैं नाहिं बसाऊँ मेरे उनको नाहीं ठाऊँ। व्याकुल भई डोलत हौं ऐसेहि वे जहँ रहैं तहाँ नहिं जाऊँ। खाइ खवाइ बड़े जब कीन्हे बसे जाइ अब औरहि गाऊँ। अपनो कियो आप पावैंगे मैं काहे उनको पछिताऊँ। जैसे लोन हमारो मान्यो कहा कहौं कहि काहि सुनाऊँ। सूरदास मैं इन बिन रहिहौं कृपा करैं उनको सरमाऊँ।—सूर। जले पर लोन लगाना या देना = दुःख पर दुःख देना। दुखी को दुखी करना। उ०—अति कटु वचन कहै कैकेई। मानो लोन जले पर देई।—तुलसी। किसी बात का लोन सा लगना = अरुचिकर होना। अप्रिय होना। उ०—राजै लोन सुनावा लागहु हूँ जस लोन। आइ कुँहाइ महिर कहँ सिंह जान औ गौन।—जायसी। लोन चराना = नमकीन बनाना। जैसे,—आम को लोन चराना।

(२) सौंदर्य। लावण्य। उ०—जो उन महँ देखेसि इक दासी। देखि लोन होय लोन बिलासी।—जायसी। वि० दे० "नमक"।

लोनहरामी†–वि० [हिं० लोन + अ० हरामी] कृतघ्न। नमकहराम। उ०—मन भयो ढीठ इनहिं के कीन्हे ऐसे लोनहरामी। सूरदास प्रभु इनहिं पठाने आखिर बड़े निकामी।—सूर।

लोना–वि० [हिं० लोन] [स्त्री० लोनी] (१) नमकीन। सलोना। (२) सुंदर। उ०—(क) लालन जोग लखन अति लोने। भे न भाइ अस अहहिं न होने।—तुलसी। (ख) मोहन अति गुन खानि सो बेगि बोलाइहो। करि सिंगार अति लोनि सो बिहँसति आइहो।—तुलसी।

संज्ञा पुं० [हिं० लोन] (१) एक प्रकार का रोग जो ईंट, पत्थर और मिट्टी की दीवारों में लगता है। इस से दीवार झड़ने लगती और कमज़ोर हो जाती है, थोड़े दिनों में उसमें गड्ढे पड़ जाते हैं, और वह कटकर गिर पड़ती है। यह रोग प्रायः नींव के पास के भाग में आरंभ होता है और ऊपर की ओर बढ़ता है।

क्रि० प्र०—लगना।

(२) वह धूल या मिट्टी जो लोना लगने पर दीवार से झड़कर गिरती है। यह खेत में डाली जाती है और खाद का काम देती है। (३) नमकीन मिट्टी, जिससे शोरा बनाया जाता है। (४) वह क्षार जो चने की पत्तियों पर इकट्ठा होता है और जिसके कारण उसकी पत्तियाँ चाटने में खट्टी जान पड़ती हैं। (५) एक प्रकार का कीड़ा जो घोंघे की जाति का होता है और प्रायः नाव के पेंदे में चपका हुआ मिलता है।

क्रि० स० [सं० लवन] फसल काटना। उ०—(क) बीज बोई जोई अंत लोलिये सोई समुझि यह बात नहिं चित्त धरई।—सूर। (ख) अपनो बयो आप ही लुनिये तुम आरहि निरवारी।—सूर।

लोनाई–संज्ञा स्त्री० [हिं० लोना + ई (प्रत्य०)] लावण्य। सुंदरता। उ०—हृदय सराहत सीय लोनाई। गुरु समीप गवने दोउ भाई।—तुलसी।

लोनिका–संज्ञा स्त्री० [हिं० लवण, लोन] लोनी नामक साग। वि० दे० "लोनी"। उ०—रुचितल जानि लोनिका भाँती। कही कृपालु दूसरी माँगी।—सूर।

लोनिया–संज्ञा पुं० [हिं० लवण, लोन + इया (प्रत्य०)] एक जाति जो लोन या नमक बनाने का व्यवसाय करती है। यह जाति शूद्रों के अंतर्गत मानी जाती है। नोनियाँ।

संज्ञा स्त्री० [हिं० लोन] लोनी नामक साग।

लोनी–संज्ञा स्त्री० [हिं० लवण, लोन] (१) कुलफे की जाति का एक प्रकार का साग जिसकी पत्तियाँ बहुत छोटी छोटी होती हैं। यह ठंढी जगह पर, जहाँ सीड़ होती है, उत्पन्न होती है। यह स्वाद में खटास लिए होती है। इसमें रंग बिरंग के फूल लगते हैं। इसे लोग गमलों में बोते हैं और विलायती लोनी कहते हैं। इसके बीज विलायत से आते हैं। (२) वह क्षार जो चने की पत्तियों पर बैठता है। (३) एक प्रकार की मिट्टी जिससे लोनियाँ लोग शोरा और नमक बनाते हैं। (४) दे० "लोना"।

लोप–संज्ञा पुं० [सं०] [संज्ञा लोपन] [वि० लुप्त। लोपक। लोपी। लोप्य।] (१) नाश। क्षय। (२) विच्छेद। जैसे,—कर्म का लोप होना। (३) अदर्शन। अभाव। (४) व्याकरण के चार प्रधान नियमों में से एक, जिसके अनुसार शब्द के साधन में किसी वर्ण को उड़ा देते हैं। जैसे,—अपिधान के अ का लोप करके पिधान शब्द बनाया जाता है। (५) छिपना। अंतर्धान होना। उ०—बहु बापि आयुध वारिधर सम दियो पटरथ लोप कै।—गिरिधर।

लोपन–संज्ञा पुं० [सं०] (१) लुप्त करना। तिरोहित करना। (२) नष्ट करना। घना। न।

लोपना⊛†–क्रि० स० [सं० लोपन] (१) लुप्त करना। मिटाना। उ०—(क) कलि सकोप लोपी सुचालि निज कठिन कुचालि चलाई।—तुलसी। (ख) सब से परम मनोहर गोपी। नँद नंदन के नेह मेह जिनि लोक लीक लोपी।—सूर। (ग) लोपे कोपे इंद्र लौं रोपे प्रलय अकाल। गिरिधारी राखे सबै गो, गोपी, गोपाल।—बिहारी। (२) छिपाना।

क्रि० अ० (१) लुप्त होना। मिटना। उ०—राय दसरत्थ के समर्थ राम राय मनि तेरे हेरे लोपै लिपि बिधिहू गनक की।—तुलसी। (२) छिपना। (क्व०)

लोपांजन-संज्ञा पुं० [सं०] वह कल्पित अंजन जिसके विषय में यह प्रसिद्ध है कि इसके लगाने से लगानेवाला अदृश्य हो जाता है।

लोपाक, लोपायक-संज्ञा पुं० [सं०] गीदड़। सियार।

लोपामुद्रा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) अगस्त्य ऋषि की स्त्री का नाम। पुराणों में लिखा है कि अगस्त्य ने बहुत दीर्घ काल तक ब्रह्मचर्य्य धारण किया था; और वे विवाह नहीं करते थे। एक बार उन्होंने स्वप्न में देखा कि हमारे पितर गड्ढे में उलटे लटके हुए हैं। अगस्त्य ने उन्हें इस प्रकार अधोमुख लटका देखकर उनसे कारण पूछा। पितरों ने कहा कि यदि तुम विवाह करके संतान उत्पन्न करो, तो हम लोगों को इस यातना से छुट्टी मिले। अगस्त्य ने बहुत ढूँढ़ा, पर उनको सर्व लक्षणों से युक्त कोई कन्या विवाह करने योग्य नहीं मिली। निदान उन्होंने सब प्राणियों के उत्तम उत्तम अंग लेकर एक कन्या बनाई। उस समय विदर्भ देश का राजा पुत्र के लिये तप कर रहा था। अगस्त्य जी ने लोपामुद्रा उसी विदर्भराज को प्रदान की। जब वह बड़ी हुई, तब अगस्त्य जी ने विदर्भराज से उस कन्या की याचना की। विदर्भ राजा ने लोपामुद्रा अगस्त्य जी को सौंप दी; और अगस्त्य जी ने उसका पाणिग्रहण कर उसे अपनी पत्नी बनाया।

पर्य्या०—लीपा। कौशीतकी। वरप्रदा।

(२) एक तारे का नाम जो दक्षिण में अगस्त्य मंडल के पास उदय होता है।

लोपाशक-संज्ञा पुं० [सं०] गीदड़। सियार।

लोबान-संज्ञा पुं० [अ०] एक वृक्ष का सुगंधित गोंद। यह वृक्ष अफ्रिका के पूर्वी किनारे पर, सुमालीलैंड में और अरब के दक्षिणी समुद्र तट पर होता है और वहीं से लोबान अनेक रूपों में भारतवर्ष में आता है। कुंदुरजकर, कुंदुरदमस, कुंदुर धगा, कुंदुरकशफा आदि इसी के भेद हैं। इनमें से कई दवा के काम में आते हैं। इनमें लोबानकशफ़ा, जिसे धूप भी कहते हैं, भारतवर्ष में लोबान के नाम से बिकता है। यह गोंद वृक्ष की छाल के साथ लगा रहता है। अरब से लोबान बंबई आता है। वहाँ छाँट छाँटकर उसके भेद किए जाते हैं। जो पीले रंग की बूँदों के रूप के साफ़ दाने होते हैं, वे कौड़िया कहलाते हैं। उनको छाँटकर युरोप भेज देते हैं। तथा मिला जुला और चूरा भारतवर्ष और चीन के लिये रख लेते हैं। एक और प्रकार का लोबान जावा, सुमात्रा आदि स्थानों से आता है, जिसे जावी लोबान कहते हैं। युरोप में इससे एक प्रकार का क्षार बनाया जाता है जिसे बेंज़ोइक एसिड कहते हैं। लोबान प्रायः जलाने के काम में लाया जाता है, जिससे सुगंधित धूआँ निकलता है। वैद्यक में कुंदुरलोबान का प्रयोग सूज़ाक में और जावी लोबान का प्रयोग खाँसी में होता है। यह अधिकतर मरहम के काम में लाया जाता है।

लोबिया-संज्ञा पुं० [सं० लोभ्य, मि० अ०] एक प्रकार का बोड़ा जो सफ़ेद रंग का और बहुत बड़ा होता है। इसके फल एक हाथ तक लंबे और पौन अंगुल तक चौड़े तथा बहुत कोमल होते हैं और पकाकर खाए जाते हैं। बीजों से दाल और दालमोठ बनाते हैं। इसकी और भी जातियाँ हैं; पर लोबिया सब से उत्तम माना जाता है। इसकी पत्तियाँ उर्द के सदृश पर उससे बड़ी और चिकनी होती हैं। पौधा शोभा और भाजी के लिये बागों में बोया जाता है और बहुमूल्य होता है। उ०—कंचन के धाम कहि काम जहाँ ये उपाधि, राम राज भलो जहाँ सबै खाय लोबिया—हनुमन्नाटक।

लोबिया कंजई-संज्ञा पुं० [हिं० लोबिया + कंजई] एक रंग जो गहरा हरा होता है।

लोभ-संज्ञा पुं० [सं०] [वि० लुब्ध, लोभी] (१) दूसरे के पदार्थ को लेने की कामना। लालच।

पर्य्या०—तृष्णा। लिप्सा। स्पृहा। कांक्षा। वांछा। गर्द्ध। इच्छा। वांछा। अभिलाष।

(२) जैन दर्शन के अनुसार वह मोहनीय कर्म जिसके कारण मनुष्य किसी पदार्थ को त्याग नहीं सकता। अर्थात् यह त्याग का बाधक होता है। (३) कृपणता। कंजूसी।

लोभना ☉†-क्रि० अ० [हिं० लोभ] लुब्ध होना। मुग्ध होना। उ०—(क) करनफूल नासिक अति सोभा। ससि मुख आइ सूक जनु लोभा।—जायसी। (ख) सोहत सुवरन सुरथ कनक मंदिर सम ओभा। जिनमें रतन बिहंग बने जेहि लखि जग लोभा।—जरासंधवध।

क्रि० स० [सं०] लुभाना। मुग्ध करना।

लोभाना ☉ †-क्रि० स० [हिं० लोभना का स०] मोहित करना। मुग्ध करना। उ०—माँगहु बर बहु भाँति लोभाये। परम धीर नहिं चले चलाये।—तुलसी।

क्रि० अ० मोहित होना। मुग्ध होना। उ०—(क) अस बिचारि हरि भवन सुहाने। सुनि मिरासरि भगति लोभाने।—तुलसी। (ख) बहुरि भगवान को निरखि सुंदर परम कछ पुनि नाहिं है सब भलाई। पै न इच्छा हुतै है कछु चातुरी, अरज ए देखि मोहन लोभाई।—सूर।

लोभार ☉†-वि० [हिं० लोभ + आर (प्रत्य०)] लुभानेवाला। मुग्ध

करनेवाला। उ०—वय किशोर घन तड़ित वरन तन, नख सिख अंग लोभारे। है चितु के हित लै सब छवि वितु विधि निज हाथ सँवारे।—तुलसी।

लोभित-वि० [हिं० लोभ] लुब्ध। मुग्ध। लुभाया हुआ। उ०—मलिन पराग मेव माधुरि सों मुकुलित अंब। कदंब मुनि मन मधुप सदा रस लोभित सेवत भज दिव अंब।—सूर।

लोभी-वि० [सं० लोभिन] (१) जिसे किसी बात का लोभ हो। उ०—नए नए हरि दरसन लोभी श्रावण शब्द रसाल। प्रथम ही मन गयो तनु तजि तब भई बेहाल।—सूर। (२) बहुत अधिक लोभ करनेवाला। लालची। (३) लुब्ध। लुभाया हुआ। उ०—ए कैसी है लोभिनी छवि धरति सुराई। और न ऐसी करि सकै मर्यादा जाई।—सूर।

लोम-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शरीर भर के छोटे छोटे बाल। रोवाँ। रोम। उ०—शत शत इंद्र लोम प्रति लोमनि, शत लोमनि मेरे इक लोमनि।—सूर। (२) बाल। जैसे,—गो लोम।
संज्ञा पुं० [सं० लोमश] लोमड़ी। उ०—भूषन भनत भारे भालुक भयानक हैं भीतर भवन भेर लीलगऊ लोम हैं।—भूषण।

लोमकरणी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) जटामासी। (२) माँसी नामक घास।

लोमकर्कटी-संज्ञा स्त्री० [सं०] अजमोदा।

लोमकर्ण-संज्ञा पुं० [सं०] शशक। खरगोश।

लोमकूप-संज्ञा पुं० [सं०] शरीर में का वह छिद्र जो रोएँ की जड़ में होता है। लोमगर्त।

लोमघ्न-संज्ञा पुं० [सं०] गंज नामक रोग। इंद्रलुप्तक।

लोमड़ी-संज्ञा स्त्री० [सं० लोमश] कुत्ते या गीदड़ की जाति का एक जंतु जो ऊँचाई में कुत्ते से छोटा होता है, पर विस्तार में लंबा। भारतवर्ष की लोमड़ी का रंग गीदड़ सा होता है, पर यह उससे बहुत छोटी होती है। इसकी नाक नुकीली, पूँछ झबरी और आँखें बहुत तेज़ होती हैं और यह बहुत तेज़ भागनेवाली होती है। अच्छे अच्छे कुत्ते इसका पीछा नहीं कर सकते। चालाकी के लिये यह बहुत प्रसिद्ध है। ऋतु के अनुसार इसका रोवाँ झड़ता और रंग बदलता है। यह कीड़े मकोड़ों और छोटे छोटे पक्षियों को पकड़कर खाती है। अन्य देशों में इसकी अनेक जातियाँ मिलती हैं। अमेरिका में लाल रंग की एक लोमड़ी होती है, और शीतकटिबंध प्रदेशों में काले रंग की लोमड़ी होती है, जिसके रोएँ जाड़े में सफेद रंग के हो जाते हैं। कहीं कहीं बिल्कुल काली लोमड़ी भी होती है। इन सब के बाल या रोएँ बहुत कोमल होते हैं, और इनका शिकार उनकी खाल के लिये किया जाता है, जिसे समूर या पोस्तीन कहते हैं। शीतकटिबंध प्रदेश की लोमड़ियाँ बिल बनाकर झुंड में रहती हैं। युरोप की लोमड़ियाँ बड़ी भयानक होती हैं। ये गाँवों में घुसकर अंगूर आदि फलों का और पालतू पक्षियों का नाश कर देती हैं। भारत की लोमड़ी चैत बैसाख में बच्चे देती है। बच्चों की संख्या पाँच छः होती है; और वे डेढ़ वर्ष में पूरी बाढ़ को पहुँचते हैं। इसकी आयु तेरह चौदह वर्ष की कही गई है।

लोमपाद-संज्ञा पुं० [सं०] अंग देश के एक राजा का नाम। यह राजा दशरथ के मित्र थे। एक बार इन्होंने ब्राह्मणों का अपमान किया। उससे क्रोध कर ब्राह्मण उसका देश छोड़कर चले गए। ब्राह्मणों के चले जाने से अंग देश में अवर्षण पड़ा। इसके निवारणार्थ राजा लोमपाद ने ऋष्यशृंग को राज्य में बुलाकर उन्हें अपने मित्र दशरथ की कन्या, जिसका नाम शांता था, प्रदान की, जिससे अनावृष्टि दूर हो गई। इन्हें रोमपाद भी कहते हैं।

लोमपादपुर-संज्ञा पुं० [सं०] चंपा नगरी जिसे अब भागलपुर कहते हैं।

लोमरी†-संज्ञा स्त्री० दे० "लोमड़ी"।

लोमश-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक ऋषि का नाम। पुराणों में इनको अमर माना गया है। महाभारत के अनुसार ये युधिष्ठिर के साथ तीर्थ-यात्रा को गए थे और उन्हें सब तीर्थों का वृत्तान्त बतलाया था। (२) मेष। भेड़ा।
वि० अधिक और बड़े बड़े रोएँवाला।

लोमशकांडा-संज्ञा स्त्री० [सं०] ककंटी। ककड़ी।

लोमशपर्णी लोमशपर्णिनी-संज्ञा स्त्री० [सं० लोमशपर्णिनी] माषपर्णी नामक ओषधि।

लोमशपुष्पक-संज्ञा पुं० [सं०] सिरिस। शिरीष।

लोमशमार्जार-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की बिल्ली जिसके बाल कोमल होते हैं और जिससे मुश्क निकलता है। गंधमार्जार। वि० दे० "गंधबिलाव"।
पर्य्या०—पूतिक। मारजानक। सुगंधी। मूत्रघातम।

लोमशा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) वैदिक काल की एक स्त्री जो कई मंत्रों की रचयिता मानी जाती है। (२) काकजंघा। माँसी। (३) वच। (४) अतिबला। (५) कौंछ। केवाँच। (६) कसीस।

लोमशातन-संज्ञा पुं० [सं०] हरताल।

लोमस-संज्ञा पुं० दे० "लोमश"।

लोमहर्षण-संज्ञा पुं० [सं०] (१) पुराणों के अनुसार व्यास के एक शिष्य का नाम जो उग्रश्रवा के पुत्र थे। इन्हीं को सूत कहते हैं। (२) रोमांच।
वि० ऐसा भीषण जिससे रोएँ खड़े हो जायँ। बहुत अधिक भयानक।

लोमा-संज्ञा स्त्री० [सं०] वचा। वच।

लोमाशिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] लोमड़ी। सियारिन।

लोय॰†-संज्ञा पुं० [सं० लोक] लोग। उ०—जहाँ प्रगट भूषण भनत हेतु काज ते होय। सो विभावना औरऊ कहत सयाने लोय।—भूषण।

संज्ञा स्त्री० [हिं० लव या लाव] लौ। लपट। ज्वाला। उ०—दुति निर्मल रस प्रदीप धरे बड़ी लोय सो आँखिन ओरी लरैं।—लक्ष्मण।

संज्ञा पुं० [सं० लोचन, हिं० लोयन] आँख। नेत्र। नयन।

अव्य० दे० "लौं"।

लोयन॰-संज्ञा पुं० [सं० लोचन] आँख। उ०—जनक सुता तब उर धरि धीरा। नील नलिन लोयन भरि नीरा।—तुलसी।

लोर†-वि० [सं० लोल] (१) लोल। चंचल। उ०—यह बाणी कहत ही लजानी समुझि भई जिय और। सूरश्याम मुख निरखि चली घर आनँद लोचन लोर।—सूर। (२) उत्सुक। इच्छुक। उ०—बोलि ढिग बैठारि ताको पोंछि लोचन लोर। सूर प्रभु के विरह व्याकुल सखी लखि मुख ओर।—सूर।

संज्ञा पुं० [सं० लोल] (१) कान का कुंडल। (२) लटकन। (३) आँसू।

लोरना॰-क्रि० अ० [सं० लोल] (१) चंचल होना। (२) लपकना। ललकना। उ०—पुनि उठि जागि देखैं मुकुर नारि ललचान अंक भरि लैन लोरै। सूर प्रभु माजती के सदा रस भरे नैन भरि भरि प्रिया रूप चोरै।—सूर। (३) लिपटना। उ०—लोरहिं आइ भूमि तरु शाखा फल फूलन के भारा। नाना रंग कुरंग संग एक चरैं सुरंग अपारा।—रघुराज। (४) झुकना। उ०—देव कर जोरि जोरि बंदति सुरति लघु लोगनि के छोरि छोरि पायन परति है।—देव। (५) लोटना। उ०—कलप लता से लता वृंदन विलासे, झुके अमय शिला से भूमि लोरन के आसे हैं।—रघुराज।

लोरी-संज्ञा स्त्री० [सं० लोल] (१) एक प्रकार का गीत जो स्त्रियाँ बच्चों को सुलाने के लिये गाती हैं। साथ ही वे बच्चे को गोद में लेकर हिलाती भी जाती हैं; अथवा खाट पर लेटाकर थपकी देती जाती हैं। (२) तोते की एक जाति।

लोल-वि० [सं०] (१) हिलता डोलता। कंपायमान। (२) चंचल। उ०—भाल तिलक कंचन किरीट सिर कुण्डल लोल कपोलनि झाँई। निरखहिं नारि-निकर विदेह-पुर निमिकुल की मरजाद मिटाई।—तुलसी। (३) परिवर्तनशील। (४) क्षणिक। क्षणभंगुर। (५) उत्सुक। अति इच्छुक।

संज्ञा पुं० लिंगेंद्रिय।

लोलक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) लटकन जो बालियों में पहना जाता है। यह मछली के आकार का या किसी और आकार का होता है। स्त्रियाँ इसे नथ या बाली में पिरोकर पहनती हैं। उ०—करनफूल सुटिला अरु सुंभिय। लोलक सोन सींक हूँ सुंभिय।—सूदन। (२) कान की लव। लोलकी। (३) करघे में मिट्टी का एक लट्टू जो राछ में इसलिये लगाया जाता है कि उसको ऊपर या नीचे करके राछ उठा या दबा सकें। (४) घंटी या घंटे के बीच में लगा हुआ लटकन जो हिलाने से इधर उधर टकराकर घंटी में लगकर शब्द उत्पन्न करता है।

लोलकी-संज्ञा स्त्री० [हिं० लोलक] कान का वह भाग जो गालों के किनारे इधर उधर नीचे को लटकता रहता है। इसी में छेद करके कुण्डल या बाली आदि पहनते हैं।

लोलजट-संज्ञा पुं० [सं०] बृहत्संहिता के अनुसार एक राज्य जो ईशान कोण में है।

लोलदिनेश-संज्ञा पुं० [सं०] लोलार्क नामक सूर्य्य। उ०—लोलदिनेस त्रिलोचन लोचन करणघंट घंटा सी।—तुलसी।

लोलना॰-क्रि० अ० [सं० लोल] हिलना। डोलना। उ०—नागरि नागरि लिये पनिघट तें चली घरहि आवै। ग्रीवा डोलत लोचन लोलत हरि के चितहि चुरावै।—सूर।

लोला-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) जिह्वा। जीभ। (२) लक्ष्मी। (३) मधु दैत्य की माता। (४) एक योगिनी का नाम। (५) एक वृत्त का नाम जिसके प्रत्येक चरण में मगण, सगण, मगण, भगण और अंत में दो गुरु होते हैं। इसमें सात सात पर यति होती है। उ०—मा सीमा भग गौरी काहू सी मुख देखे। सिंहों री कटि जोहे हंसी चालहिं पेखे। कोटा सी मृदुबैना पूछे बाल नवीना। बोली मातु कथै ना बानी नीतिविहीना।—छंदःप्रभाकर।

संज्ञा पुं० [देश०] लड़कों का एक खिलौना। यह एक डंडा होता है, जिसके दोनों सिरों पर दो लट्टू होते हैं।

लोलार्क-संज्ञा पुं० [सं०] काशी के एक प्रसिद्ध तीर्थ का नाम।

लोलुप-वि० [सं०] (१) लोभी। लालची। (२) चटोर। चट्टू। (३) किसी बात के लिये परम उत्सुक।

लोवा-संज्ञा स्त्री० [सं० लोमश] (१) लोमड़ी। उ०—(क) बाएँ अकासी धौंवरे आये। लोवा दरस आइ देखराये।—जायसी। (ख) लोवा फिरि फिरि दरस देखावा। सुरभी सनमुख सिसुहि पियावा।—तुलसी।

संज्ञा पुं० तीतर की जाति का एक पक्षी जो बटेर से छोटा होता है और कश्मीर, मध्य प्रदेश तथा संयुक्त प्रांत में पाया जाता है। नर प्रायः मादा से कुछ अधिक बड़ा होता है। शिकारी इसका शिकार करते हैं। इसे गुरला भी कहते हैं। लवा।

लोशन-संज्ञा पुं० [अं०] अधिक पानी में घुली हुई औषधि जो शरीर में ऊपर से लगाने, किसी पीड़ित अंश को धोने या तर रखने आदि के काम में आती है।

लोष्ट-संज्ञा पुं० [सं०] (१) पत्थर। (२) ढेला। डला।

लोष्टघ्न-संज्ञा पुं० [सं०] खेती का वह औजार जिससे खेत के ढेले फोड़ते हैं। पटेला। पाटा।

लोहँड़ा-संज्ञा पुं० [सं० लोहभांड][स्त्री० लोहँडी] (१) लोहे का एक प्रकार का पात्र जिसमें खाना पकाया जाता है। कभी कभी इसमें दस्ता भी लगा रहता है। (२) तसला। उ०—*चुंबक लोहँड़ा औटा खोवा। भा हलुवा घिउ केर निचोवा।* —जायसी।

लोह-संज्ञा पुं० [सं०] (१) लोहा नामक प्रसिद्ध धातु। (२) रक्त। (३) लाल बकरा।

लोहकार-संज्ञा पुं० [सं०] लोहार।

लोहकिट्ट-संज्ञा पुं० [सं०] लोहे की कीट या मैल जो भट्ठे में डालकर लोहे को गलाने या ताव देने से निकलती है। वैद्यक में इसे कृमि, वात, पित्त, शूल, मेह, गुल्म और शोफ का नाशक लिखा है। इसका स्वाद मधुर और कटु तथा प्रकृति उष्ण मानी गई है।

पर्य्या०—किट्ट। लोहचूर्ण। अयोमल। लोहज। कृष्णचूर्ण। लोष्ट।

लोहगंध-संज्ञा पुं० [सं०] महाभारत के अनुसार एक जाति का नाम।

लोहघातक-संज्ञा पुं० [सं०] कर्मकार नामक जाति। इस जाति के लोग लोहे को तपाकर पीटते हैं।

लोहद्रावी-संज्ञा पु०[सं० लोहद्राविन्] (१) सोहागा। (२) अम्लवेत।

लोहनाल-संज्ञा पुं० [सं०] नाराच नामक अस्त्र। वि० दे० "नाराच"।

लोहबान-संज्ञा पुं० दे० "लोबान"।

लोहलंगर-संज्ञा पुं० [हिं० लोहा+लंगर] (१) जहाज का लंगर। (२) बहुत भारी वस्तु।

लोहशंकु-संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार इक्कीस नरकों में से एक नरक का नाम।

लोहश्लेष्मक-संज्ञा पुं० [सं०] सुहागा।

लोहहारक-संज्ञा पुं० [सं०] मनु के अनुसार एक नरक का नाम।

लोहाँगी-संज्ञा स्त्री० [हिं० लोह+अंग+ई] वह छड़ी जिसके एक किनारे पर लोहा लगा होता है।

लोहा-संज्ञा पुं० [सं० लोह] (१) एक प्रसिद्ध धातु जो संसार के सभी भागों में अनेक धातुओं के साथ मिली हुई पाई जाती है। इसका रंग प्रायः काला होता है। वायु या जल के संसर्ग से इसमें मोर्चा लग जाता है। भारतवर्ष में इस धातु का ज्ञान वैदिक काल से चला आता है। वेदों में लोहे को साफ़ करने की विधि पाई जाती है; और उसके बने कठिन और तीक्ष्ण हथियारों का उल्लेख मिलता है। लोहे का ज्ञान पहले पहल संसार में किसे, कब, कहाँ और किस प्रकार हुआ, इसका उल्लेख नहीं मिलता। वैद्यक शास्त्र के अनुसार लोहा पाँच प्रकार का होता है।—कांची, पांडि, कांत, कालिंग और वज्रक। इनमें कांची, पांडि और कालिंग क्रमशः दक्षिण की कांचीपुरी, पंडा, और कलिंग देश के लोहों के नाम हैं, जो वहाँ की खानों से निकलते थे। जान पड़ता है, वज्रक उस लोहे को कहते थे, जो आकाश से उल्का के रूप में गिरता था; क्योंकि बहुत दिनों से संसार में यह बात चली आती है कि बिजली से या उल्कापात में लोहा गिरता है। कांत हर एक स्थान के शुद्ध किए हुए लोहे को कहते हैं। इन्हीं पाँच प्रकार के लोहों का प्रयोग वैद्यक में सर्वश्रेष्ठ मानकर लिखा गया है। यह बलप्रद, शोथ, शूल, अर्श, कुष्ट, पांडु, प्रमेह, मेद और वायु का नाशक, आँखों की ज्योति और आयु को बढ़ानेवाला, गुरु तथा सारक माना जाता है। कुछ लोगों का तो यह भी मत है कि लोहा सब रोगों का नाश कर सकता है; और मृत्यु तक को हटा देता है। वैद्यक में लोहे के भस्म का प्रयोग होता है। भारतवर्ष का लोहा प्राचीन काल में संसार भर में प्रख्यात था। यहाँ के लोगों को ऐसे उपाय मालूम थे जिनसे लोहे पर सैकड़ों वर्षों तक ऋतु का प्रभाव नहीं पड़ता था, और वर्षा तथा वायु के सहन से तथा मिट्टी में गड़े रहने से उसमें मोर्चा नहीं लगता था। दिल्ली का प्रसिद्ध स्तंभ इसका उदाहरण है, जिसे पंद्रह सौ वर्ष से अधिक बीत चुके हैं। उस पर अभी तक कहीं मोर्चे का नाम तक नहीं है। आज कल लोहे को जिस प्रणाली से साफ़ करते हैं, वह यह है। खान से निकले हुए लोहे को पहले आग में डालकर जला देते हैं, जिससे पानी और गंधक आदि के अंश उसमें से निकल जाते हैं। फिर उस लोहे को कोयले या पत्थर के चूने के साथ मिलाकर भट्ठी में डालकर गलाते हैं। इससे आक्सिजन का अंश, जो पहली बार जलाने से नहीं निकल सकता है, निकल जाता है। इतना साफ़ करने पर भी लोहे में प्रति सैकड़ा दो से पाँच अंश तक गंधक, कार्बन, सिलिका, फासफोरस, अल्युमीनम आदि रह जाते हैं। उन्हें अलग करने के लिये उसे फिर भट्ठी तैयार करके गलाते हैं, और तब घन से पीटते हैं। पहले को देशपून, और दूसरे को लोहा या कमाया हुआ लोहा कहते हैं। इस सच्चे लोहे में भी सैकड़ा पीछे ०·१५ से ०·५ तक कार्बन मिला रहता है। उसी कार्बन का निकालना प्रधान काम में है। इस्पात में सैकड़े पीछे ०·६ से ०·२ तक कार्बन होता है। उत्तम लोहा वही माना जाता है, जिस पर अम्ल या एसिड आदि का कुछ भी प्रभाव न पड़े। विशुद्ध लोहे का रंग चाँदी की तरह सफ़ेद होता है और जिला करने पर वह चमकने लगता है। यदि लोहे को घिसा जाय, तो उससे एक प्रकार की गंध सी निकलती है। पुराणों में लिखा है कि प्राचीन काल

में जब देवताओं ने लोमिल दैत्य का वध किया, तब उसी के शरीर से लोहा उत्पन्न हुआ। तीक्ष्ण, मुंड और कांत लोहों के पर्य्याय भी अलग अलग हैं। तीक्ष्ण के पर्य्याय,—शस्त्रायस, शस्त्र, पिंड, शठ, आयस, निशित, तीव्र, खड्ग, चित्रायस, मुंडज इत्यादि। मुंड के पर्य्याय—दृषत्सार, शिलात्मज, अश्मज, कृपिलौह इत्यादि। कुछ लोगों का कथन है कि आदि में 'लोहा' ताँबे को कहते थे। कारण यह कि 'लोह' शब्द का प्रधान या यौगिक अर्थ है—लाल। पीछे इसका प्रयोग लोहे के लिये करने लगे। पर यह कथन कई कारणों से ठीक नहीं जान पड़ता। एक कारण यह है कि वेदों में लोह और अयस शब्दों का प्रयोग प्रायः सब धातुओं के लिये मिलता है। दूसरे यह कि अब लोहे को आधुनिक विद्वान् लाल रंग का कारण मानने लगे हैं। उनकी धारणा है कि रक्त में लोहे के अंश ही के कारण ललाई है; और मिट्टी में लोहे का अंश मिला रहने से ही मिट्टी के बर्तन और ईंटें आदि पकाने पर लाल हो जाती हैं।

मुहा०—लोहे के चने = अत्यंत कठिन और दुःसाध्य काम। लोहे के चने चबाना = अत्यंत कठिन काम करना।

यौ०—लोहे की स्याही = एक प्रकार का रंग जो लोहे से तैयार किया जाता है। पहले गुड़ या शीरे को पानी में घोल लेते हैं और उसमें लोहचून छोड़कर धूप में रख देते हैं। कई दिनों में वह उठने लगता है, और उसके ऊपर झाग आ जाता है। जब यह झाग काले रंग का हो जाता है, तब जान लेते हैं कि रंग तैयार हो गया है। इसे कसेरे की स्याही और बरथ भी कहते हैं। यह रँगाई के काम में आता है।

(२) अस्त्र। हथियार। उ०—नेही लोहा नूर लखि करत कटाच्छन माहिं। असनेही हित खेत तजि भागत लोहे जाहिं।—रसनिधि।

मुहा०—लोहा गहना = हथियार उठाना। युद्ध करना। उ०—(क) लोह गहे लालच करि जिय को औरो सुभट लजावै। सूरदास प्रभु जीति शत्रु को कुशल क्षेम घर आवै।—सूर। (ख) काशीराम कहैं रघुबंसिन की रीति यही है, जासों कीजै मोह तासों लोह कैसे गहिए।—हनुमन्नाटक। लोहा बजना = युद्ध होना। उ०—दोनों वीर ललकार के ऐसे टूटे कि जैसे हाथियों के यूथ पै सिंह टूटे और लगा लोहा बजने।—लल्लू। लोहा बरसना = तलवार चलना। घमासान मचना। किसी का लोहा मानना = (१) किसी विषय में किसी का प्रभुत्व स्वीकार करना। किसी विषय में किसी से दबना। (२) पराजित होना। हार खाना। लोहा लेना = लड़ना। युद्ध करना। लड़ाई करना। उ०—सनमुख लोह भरत सन लेऊँ। जियत न सुरसरि उतरन देऊँ।—तुलसी।

(३) लोहे की बनाई हुई कोई चीज़ या उपकरण। जैसे,—लगाम, कवच आदि। उ०—(क) राजा धरा आन के तन पहिरावा लोह। ऐसो लोह सो पहिरे चेत स्याम की ओह।—जायसी। (ख) पवन समान समुंद पर धावहिं। बूड़ि न पाँव पार होइ आवहिं। थिर न रहहिं रिस लोह चबाहीं। भाजहिं पूँछ सीस उपराहीं।—जायसी। (४) लाल रंग का बैल।

वि० [स्त्री० लोही] (१) लाल। (२) बहुत अधिक कड़ा। कठोर।

लोहाना-क्रि० अ० [हिं० लोहा + आना (प्रत्य०)] लोहे के बर्तन में रखी रहने के कारण किसी वस्तु में लोहे के गुण या रंग आदि का उतर आना। किसी पदार्थ में लोहे का रंग या स्वाद आ जाना।

संज्ञा पुं० [देश०] एक जाति का नाम।

लोहार-संज्ञा पुं० [सं० लोहकार] [स्त्री० लोहारिन या लोहारन] एक जाति जो लोहे का काम करती है। इस जाति के अनेक भेद हैं। उनमें से कुछ अपने को ब्राह्मण कहते और यज्ञोपवीत धारण करते हैं। उनकी अंतर्जातियों के नाम भी ओझा आदि होते हैं। पर अधिकतर आचारहीन होते हैं और शूद्र माने जाते हैं। प्रत्येक अंतर्जाति का खान पान और विवाह संबंध पृथक् पृथक् होता है, और उनके नाम भी भिन्न होते हैं।

यौ०—लोहार की स्याही = कसीस। हीराकसीस।

लोहारी-संज्ञा स्त्री० [हिं० लोहार + ई (प्रत्य०)] लोहार का काम।

लोहित-वि० [सं०] रक्त। लाल।

संज्ञा पुं० [सं० लोहितक] मंगल ग्रह। उ०—प्रति मंदिर कलसनि पर भ्राजहिं मनि गन दुति अपनी। मानहुँ प्रगटि विपुल लोहितपुर पठइ दिये अवनी।—तुलसी।

लोहितक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) लाल मणि। (२) मंगल ग्रह। (३) एक प्रकार का धान। (४) फूल नामक धातु। (५) ताँबा। (६) आजकल के रोहतक नगर का प्राचीन नाम।

लोहितांग-संज्ञा पुं० [सं०] मंगल ग्रह।

लोहितोद-संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार इक्कीस नरकों में से एक नरक का नाम।

लोहित्य-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्राचीन गाँव का नाम। वाल्मीकि ने करीवती नदी का इसमें होकर बहना लिखा है। (२) ब्रह्मपुत्र नद। (३) एक समुद्र का नाम। पुराणानुसार यह कुश द्वीप के पास है।

लोहित्या-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) एक नदी का नाम। (२) एक अप्सरा का नाम।

लोहिया-संज्ञा पुं० [हिं० लोहा + इया (प्रत्य०)] (१) लोहे की चीज़ों का व्यापार करनेवाला। (२) बनियों और मारवाड़ियों

की एक जात का नाम। (३) लाल रंग का बैल। (४) लोहे की बनी हुई गोली।

लोहू-संज्ञा पुं० [सं० लोहित = लाल] रक्त। वि० दे० "लहू"। उ०—(क) तहिया हम तुम एकै लोहू। एकै प्रान बियापत मोहू।—कबीर। (ख) राते बिंब भये तेहि लोहू। परवर पाक फटे हिय गोहूँ।—जायसी (ग) लोथिन्ह ते लोहू के प्रवाह चले जहाँ तहाँ मानहु गिरिन गेरु झरना झरत हैं।—तुलसी। (घ) माता ही को माँस तोहिं लागतु है मीठो मुख पियत पिता को लोहू नेक न अघाति है।—केशव।

लौं *†-अव्य० [हिं० लग] (१) तक। पर्यंत। उ०—अजहूँ लौं राजत नीरधि तट करत सांख्य विस्तार। सांख्यायन से बहुत महामुनि सेवत चरण सुचार।—सूर। (ख) चलत चलत लौं लै चले सब सुख संग लगाय। ग्रीषम बासर सिसिर निसि पिय मो पास बसाय।—बिहारी। (२) समान। तुल्य। बराबर। उ०—(क) छितिये के शशि लौं धावैं शिशु देखि जननि जसोई। यह सुख सूरदास के नैनन दिन दिन दूनौ होई।—सूर। (ख) कहति न देवर की कुबत कुलतिय कलह डराति। पंजर गत मँजार ढिग सुक लौं सूखति जाति।—बिहारी।

लौंकना *†-क्रि० अ० [सं० लोकन] (१) दृष्टिगोचर होना। दिखाई देना। उ०—लौंकत चीर ध्वजा रतनारे। सावन भादों के घन कारे।—गुमान। (२) चमकना। (३) आँखों में चकाचौंध होना।

लौंग-संज्ञा पुं० [सं० लवंग] (१) एक झाड़ की कली जो खिलने के पहले ही तोड़कर सुखा ली जाती है। इसके वृक्ष मालाबार, अफ्रिका के समुद्र तट, जंजिबार, मलाया, जावा आदि में होते हैं। लौंग की खेती के लिये काली मिट्टी और विशेषतः वह मिट्टी जो ज्वालामुखी की राख हो या जिसमें बालू मिला हो, अच्छी मानी जाती है। पहले इसको पनीरी में एक एक फुट पर बो देते हैं। इसका बीज जहाँ तक हो, जब एक ताज़ा रहे, तभी तक बोया जाता है; क्योंकि फूल सूख जाने पर बीज नहीं जमते। चार पाँच सप्ताह में बीज उग आते हैं। पौधे जब चार फुट ऊँचे हो जाते हैं, तब उनको पनीरी से उखाड़कर बीस बीस फुट की दूरी पर बाग़ में लगाते हैं। जहाँ यह लगाया जाय, वहाँ की भूमि पोली और दोमट होनी चाहिए। मटियार, बालू या दलदल में यह पौधा नहीं रह सकता। यदि काली मिट्टी में बालू मिला हो और उसके नीचे पीली मिट्टी और कंकड़ पड़ जाय, तो लौंग का पेड़ बहुत शीघ्र बढ़ता है। अत्यंत घनी छाया इसको हानिकर होती है। पनीरी बैठाने के समय प्रायः वर्षा का आरंभ है। बैठाए हुए पौधे को दो तीन वर्ष तक धूप से बचाने के लिये प्रायः छाया की आवश्यकता पड़ती है; और आँधी से बचाने के लिये इसके बाग़ की घनी झाड़ी से रुँधाई करने की आवश्यकता होती है। कभी कभी इसमें आवश्यकतानुसार पानी भी दिया जाता है। तीसरे वर्ष इसके ऊपर से छाजन हटा ली जाती है; और छठे वर्ष से फूल आने लगता है। बारहवें वर्ष पौधा खूब खिलता है; और बीस पचीस वर्ष तक फूलता रहता है। इसके बाद फूल कम आने लगते हैं। कलियाँ पहले हरी रहती हैं; फिर पीली और अंत को गुलाबी रंग की हो जाती हैं। यही इनके तोड़ने का समय है। ये कलियाँ या तो बँधी हुई चुन ली जाती हैं अथवा लकड़ियों से पीटकर नीचे गिरा दी जाती हैं; और फिर उनको इकट्ठा करके सुखा लिया जाता है। यही लौंग है जो बाज़ारों में बिकता है। कोई कोई कलियाँ जो पेड़ों में रह जाती हैं, बढ़कर फूल जाती हैं। और फूल झड़ जाने पर नीचे का भाग फूलकर छोटी सी घुंडी के आकार का हो जाता है, जिसमें एक या दो दाने होते हैं। यही घुंडी बोने के काम में आती है। लौंग की कलम भी उसकी डाली को मिट्टी में दबाने से तैयार की जाती है। डेढ़ दो महीने में उसमें जड़ें निकल आती हैं। इस प्रकार की कलम जल्दी फूलने लगती है। वैद्यक में इसका स्वाद चरपरा, कड़ुआ, गुण शीतल, दीपन, पाचन, रुचिकारक, कफ पित्त-नाशक, प्यास और वमन को मिटानेवाला, आँखों के लिये हितकर और शूल, खाँसी, श्वास, हिचकी और क्षय रोग का नाशक माना गया है। लौंग से भबके द्वारा एक प्रकार का तेल निकलता है। उसका व्यवहार सभी देशी और विदेशी औषधों में होता है। वैद्यक में इसके तेल को वातनाशक, अग्निदीपक, कफनाशक और गर्भिणी के वमन को दूर करनेवाला लिखा है। दाँत की पीड़ा में जब दूषित कृमि हो जायँ, इसको लगाना विशेष लाभदायक होता है। लौंग का प्रयोग विशेष कर मसाले में होता है।

पर्य्या०—देवकुसुम। श्रीसंज्ञ। कलिकोत्तम। भृंगार। रुचिर। तीक्ष्ण। वारिज। दोहर। लव। श्रीपुष्प। रुचिर। वारिपुष्प। दिव्यगंध। तीक्ष्णपुष्प।

(२) लौंग के आकार का एक आभूषण जिसे स्त्रियाँ नाक या कान में पहनती हैं। उ०—यदपि लौंग ललितो तऊ तू न पहरि इक आँक। सदा संक बढ़ियै रहै रहै चढ़ी सी नाक।—बिहारी।

लौंगचिड़ा-संज्ञा पुं० [हिं० लौंग + चिड़ा = चिड़िया] (१) एक प्रकार का कबाब जो बेसन मिलाकर बनाया जाता है। (२) कुड़की रोटी। (क्व०)

लौंगमुश्क-संज्ञा पुं० [हिं० लौंग + मुश्क] एक प्रकार के वृक्ष का नाम।

लौंगरा-संज्ञा पुं० [हिं० लौंग] एक प्रकार की घास जिसकी पत्तियाँ गोल और नुकीली, परियारे से कुछ अधिक बड़ी और चमकीली होती हैं। यह घास बरसात में उगती है और इसमें लौंग के आकार की कलियाँ लगती हैं, जिनके डंठल प्रायः चौकोर होते हैं। फूल पीले रंग के होते हैं और उनके पक जाने पर नीचे के डंठल कुछ मोटे हो जाते हैं, जिनमें बीजों से भरे चार बीजकोश निकलते हैं। बीज काले रंग के और चिपटे होते हैं। बंगाल में लोग इसकी पत्तियों का साग बनाते हैं।

लौंगिया मिर्च-संज्ञा स्त्री० [हिं० लौंग + मिर्च] एक प्रकार की बहुत कड़वी मिर्च जिसका पेड़ बहुत बड़ा और फल छोटे छोटे होते हैं। इसे मिरची भी कहते हैं।

लौंडा-संज्ञा पुं० [?] [स्त्री० लौंडी, लौंडिया] (१) छोकरा। बालक। लड़का। (२) खूबसूरत और नमकीन लड़का।

यौ०—लौंडेबाज़। लौंडेबाजी।

वि० (१) अबोध। (२) छिछोरा।

लौंडापन-संज्ञा पुं० [हिं० लौंडा + पन (प्रत्य०)] (१) लौंडा होने का भाव। (२) लड़कपन। (३) छिछोरापन।

लौंडी-संज्ञा स्त्री० [हिं० लौंडा] दासी। मज़दूरनी। उ०—मन मनसा द्वै लौंडी निकारि डारो, मारो हंकार तृष्णा कुबुधि कुपाद की।—कबीर।

लौंडेबाज-वि० [हिं० लौंडा + फ़ा० बाज़] (१) (पुरुष) जो सुंदर बालकों से प्रेम रखता हो और उनके साथ प्रकृति विरुद्ध आचरण करता हो। (स्त्री) जो कम अवस्था के युवकों से प्रेम रखती हो। (बाज़ारू)

लौंडेबाजी-संज्ञा स्त्री० [हिं० लौंडा + फ़ा० बाज़ी] लौंडेबाज़ का काम। लौंडों से प्रेम रखना।

लौंद-संज्ञा पुं० [?] अधिमास। मल मास।

लौंदरा†-संज्ञा पुं० [हिं० लव = बालू] वह पानी जो ग्रीष्म ऋतु में वर्षा आरंभ होने से पहले बरसता है। लवँदरा। लवंद। दौंगरा।

लौंरा‡-संज्ञा पुं० दे० "लौंदा"।

लौंरी-संज्ञा स्त्री० [देश०] वह काठी जिससे टँकसार में पाठ चलाया जाता है। (बुंदेल०)

लौन-संज्ञा पुं० (१) दे० "लवन"। (२) दे० "लौंद"।

लौ-संज्ञा स्त्री० [सं० दाप] (१) आग की लपट। ज्वाला। उ०—जोरि जो धरी है बेदरद द्वारे लोन होरी, मेरी बिरहागि की उलकनि लै लाइ आव।—पद्माकर। (२) दीपक की टेम। दीपशिखा।

संज्ञा स्त्री० [हिं० लाग] (१) लाग। चाह। राग। उ०—लै इनकी लागी रहै निज मन मोहन रूप। तातें इन रसनिधि लखी लोयन नाम अनूप।—रसनिधि। (२) चित्त की वृत्ति।

यौ०—लौलीन = किसी के ध्यान में डूबा हुआ या मस्त। उ०—खसम न चीन्हैं बावरी पर पुरुषै लौ लीन। कहहिं कबीर पुकारि के परी न यानी चीन्ह।—कबीर।

(३) आशा। कामना। उ०—लौ लगी लोयन में लखिबे की उसे गुरु लोगन को भय भारी—सुंदरी सर्वस्व।

क्रि० प्र०—लगना।—लगाना।

लौआ-संज्ञा पुं० [सं० लावुक] कद्दू। घीआ।

लौका†-संज्ञा पुं० [सं० लावुक] [स्त्री० लौकी] कद्दू। उ०—भई भूजी लौका परवती। रींता कीन्ह काटि कै रती।—जायसी।

लौकिक-वि० [सं०] (१) लोक संबंधी। सांसारिक। (२) व्यावहारिक।

संज्ञा पुं० सात मात्राओं के छंदों का नाम। ऐसे छंद इक्कीस प्रकार के होते हैं।

लौकिक न्याय-संज्ञा पुं० [सं०] लोक में पाला जानेवाला नियम। साधारण नियम।

लौकी†-संज्ञा स्त्री० [सं० लावुक] (१) कद्दू। घीआ। (२) काठ की वह नली जिसे भबके में लगाकर मद्य चुआते हैं।

लौगाक्षि-संज्ञा पुं० [सं०] धर्मशास्त्र के कर्त्ता एक प्राचीन आचार्य्य का नाम।

लौज-संज्ञा पुं० [अ० लौज़] (१) बादाम। (२) एक प्रकार की मिठाई जो काटकर तिकोनिया बरफी के आकार की बनाई जाती है। इसमें प्रायः बादाम पीसकर डालते हैं।

यौ०—लौजात की गोट = वह ऐंठ की गोट जो दुलाई के कोनों पर बनाई जाती है।

लौजोरा‡†-संज्ञा पुं० [हिं० लौ + जोड़ना] पीतल या काँसे के कारखाने में वह काम करनेवाला जो भट्ठी के पास बैठा हुआ यह देखता रहता है कि धातु गल गई या नहीं। धातु गलानेवाला।

लौटना-क्रि० अ० [हिं० उलटना] (१) कहीं जाकर पुनः वहाँ से फिरना। वापस आना। पलटना। उ०—(क) मग तें सिख दीं लखि मोहन को तन लाड़िली लौटन पीठ दई। कवि बेनी दुराँनि भरी अँखियारि पसारि भुजा भरि भेंट लई। पट गुंज की माल कठोर भरी रही सो छतियाँ गड़ि पीर भई। उभरी लखी चौकी परी मुख फेरि तोरि कही अँखियाँ खिनई।—बेनी। (ख) साँकरी खोर में काँकरी की करि चोट चली फिरि लौटनहारी।—पद्माकर। (२) इधर से उधर मुँह फेरना। पीछे की ओर मुँह करना। उ०—भारी समय उठो घन घोर दामिनी सी लागी लौटि स्याम घन उर सों लपटि कै।—केशव।

संयो० क्रि०—आना।—पड़ना।

क्रि० स० इधर से उधर करना। पलटना। उलटना। जैसे,—पुस्तक के पन्ने लौटना। (क्व०)

लौट पौट–संज्ञा स्त्री० [हिं० लौट + अनु० पौट] (१) दोरुखी छपाई। वह छपाई जिसमें दोनों ओर एक से बेल बूटे दिखाई पड़ें। वह छपाई जिसमें उलटा सीधा न हो। (२) उलटने पुलटने की क्रिया। (३) दे० "लोट पोट"।

लौट फेर–संज्ञा पुं० [हिं० लौट + फेर] इधर का उधर हो जाना। उलटफेर। हेर-फेर। भारी परिवर्त्तन।

लौटाना–क्रि० स० [हिं० लौटना का सक०] (१) फेरना। पलटाना। (२) वापस करना। जैसे,—(क) यदि आप यहाँ आयें, तो उन्हें लौटाकर ला सकते हैं। (ख) अब आप ये सब पुस्तकें उन्हें लौटा दें। (३) किसी को उलटे मुँह फेरना। वापस करना। (४) ऊपर नीचे करना। जैसे,—कपड़ा लौटाना। (क्व०)

लौटान–संज्ञा स्त्री० [हिं० लौटना] लौटने की क्रिया या भाव।

लौटानी–क्रि० वि० [हिं० लौटना] लौटते समय। लौटती बार।

लौड़ा–संज्ञा पुं० [सं० लोल या हिं० लंड] पुरुष की मूत्रेंद्रिय।

लौद, लौदरा †–संज्ञा पुं० [सं० नव + डाली] [स्त्री० लौदरी, लौदरी] अरहर आदि की नरम डाली जिससे छानी छाने का काम लेते हैं। (दुआब या अंतर्वेद)

लौन ⊛–संज्ञा पुं० [सं० लवण] नमक। लवण। उ०—(क) कीन्हेहु कोटिक जतन अब कहि काढ़ै कौन। भो मनमोहन रूप मिलि पानी में को लौन।—बिहारी। (ख) प्रीतम पै चाख्यो इगन रूप सलोने लौन। कटै इश्क मैदान में तौ कहु अचरज कौन।—रसनिधि।

लौनहार†–संज्ञा पुं० [हिं० लौना + हार (प्रत्य०)] [स्त्री० लौनहारिन] खेत काटनेवाला। लौनी करनेवाला।

लौना†–संज्ञा पुं० [सं० लूम या रोम] वह रस्सी जिससे किसी पशु के एक अगले और एक पिछले पैर को एक साथ बाँधते हैं, जिसमें खुला छोड़ देने पर भी वह दूर तक न जा सके।

संज्ञा पुं० [सं० ज्वलन] ईंधन।

संज्ञा पुं० [सं० लवन] फसिल काटने का काम। कटनी। कटाई। लौनी।

⊛ वि० [सं० लावण्य = लोन] [स्त्री० लौनी] लावण्ययुक्त। सुंदर। उ०—खेलत हैं हरि बागे बने जहाँ बैठी प्रिया रति तें अति लौनी।—केशव।

लौनी †–संज्ञा स्त्री० [हिं० लौना] (१) फसल की कटनी। कटाई। (२) वह कटा हुआ डंठल जो अँकवार में आवे। अँकोरा। दाबी। एहना।

⊙ संज्ञा स्त्री० [सं० नवनीत] मैनू। नवनीत। उ०—लौनी कर आनन परसत हैं कछुक खाइ कछु लग्यो कपोलनि। कहि जन सूर कहाँ लौं बरनौं धन्य नंद जीवन जुग लोचनि।—सूर।

लौमना †–संज्ञा पुं० दे० "लौना"।

लौमनी †–संज्ञा स्त्री० (१) दे० "लौना"। (२) दे० "लौनी"।

लौह–संज्ञा पुं० [सं०] (१) लोहा। (२) शस्त्रास्त्र।

संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) तख्ती। (२) पुस्तक का सफ़ा। पृष्ठ। पन्ना।

लौहकार–संज्ञा पुं० [सं०] लोहार।

लौहचारक–संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार एक भीषण नरक का नाम।

लौहसार–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का लवण जो लोहे से बनाया जाता है। यह रासायनिक परिक्रिया द्वारा बनता है और औषधों में काम आता है।

लौहा–संज्ञा पुं० दे० "लोहा"।

लौहाचार्य्य–संज्ञा पुं० [सं०] धातुओं के तत्व को जाननेवाला आचार्य्य। वह जो धातु विद्या का अच्छा ज्ञाता हो। धातुविद्याविद्।

लौहायस–वि० [सं०] लोहे या ताँबे का बना हुआ।

लौहासव–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का आसव जो लोहे के योग से बनाया जाता है। (वैद्यक)

लौहि–संज्ञा पुं० [सं०] हरिवंश के अनुसार अष्टक के एक पुत्र का नाम।

लौहित–संज्ञा पुं० [सं०] महादेव का त्रिशूल।

लौहिता–संज्ञा पुं० [हिं० लोहा] वैश्यों की एक जाति जो लोहे का व्यापार करती है। लोहिया।

लौहितायन–संज्ञा पुं० [सं०] एक गोत्र का नाम।

लौहित्य–संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्रकार का धान जिसके चावल लाल रंग के होते हैं। (२) ब्रह्मपुत्र नद। (३) एक पर्वत का नाम। (४) एक तीर्थ का नाम। (५) लाल सागर।

ल्याना ⊛–क्रि० स० (१) दे० "लाना"। उ०—(क) ल्याई लाल बिलोकिये जिय की जीवन मूलि। रही भौन के कोन में सोनजुही सी फूलि।—बिहारी। (ख) काहे ते न ल्यावौ फिरि मोहन बिहारी जू को, कैसे काहि ल्यावौं, जैसे वाको मन ल्याई है।—पद्माकर। (ग) विप्र बचन सुनि सखी सुआसिनि चलीं जानकिहि ल्याइ। कुँवर निरखि जयमाल मेलि उर कुँभरि रही सकुचाइ।—तुलसी।

ल्यारी †–संज्ञा पुं० [देश०] भेड़िया। उ०—श्रीकृष्णचंद्र ने मुसकरा के कहा—बहुत अच्छा, तू बन भेड़िया और सब ग्वाल बाल होवें भेड़। सो सुनते ही व्योमासुर तो फूककर ल्यारी हुआ और ग्वाल बाल सब बने भेड़े।—लल्लू।

ल्याव–संज्ञा पुं० दे० "लुभाव"।

ल्यारि ⊛†–संज्ञा स्त्री० दे० "लहर"।

ल्हासा †–संज्ञा पुं० दे० "लासा"।

ल्हीक †–संज्ञा स्त्री० दे० "लीक"।

व

व-हिंदी या संस्कृत वर्णमाला का उन्तीसवाँ व्यंजन वर्ण, जो उकार का विकार और अंतस्थ अर्द्धव्यंजन माना जाता है। इसका उच्चारण स्थान दंत्योष्ठ है; अर्थात् दाँत और ओठ से इसका उच्चारण होता है। प्रयत्न ईषत्स्पृष्ट होता है; अर्थात् उच्चारण के समय दाँतों का ओठ से कुछ स्पर्श होता है। हिंदी में इस वर्ण का उच्चारण अधिकतर केवल ओष्ठ से होता है, केवल संस्कृताभ्यासी लोग ही शुद्ध दंत्योष्ठ उच्चारण करते हैं।

वंक-वि० [सं०] कुछ झुका हुआ। टेढ़ा। वक्र।
संज्ञा पुं० [सं०] नदी का मोड़। वंकर।

वंकट-वि० [सं० वंक] (१) टेढ़ा। बाँका। (२) कुटिल। जो सीधा न हो। (३) विकट। दुर्गम। उ०—रही है घूँघट-पट की ओट। मनो कियो फिर मान मवासो मन्मथ वंकट कोट।—सूर।

वंकनाल-संज्ञा पुं० [सं०] शरीर की एक नाड़ी का नाम।

वंकनाली-संज्ञा स्त्री० [हिं० वंक + नाली] साधुओं की बोलचाल में सुषुम्ना नामक नाड़ी, जो मध्य में मानी गई है। उ०—वंकनालि सदा रस पीवै, तब यहु मनुवाँ कहीं न जाय। विगसै कँवल प्रेम जब उपजै ब्रह्म जीव को करै सहाय।—दादू।

वंकर-संज्ञा पुं० [सं०] वह स्थान जहाँ से नदी मुड़ी हो। नदी का मोड़।

वंकसेन-संज्ञा पुं० [सं०] अगस्त का वृक्ष।

वंका-संज्ञा स्त्री० [सं०] चारजामे की अगली मेंढी।

वंकाटक-संज्ञा पुं० [सं०] एक पर्वत का नाम।

वंकाला-संज्ञा स्त्री० [सं०] वंगाल की प्राचीन राजधानी का नाम जिसके कारण उस देश का वंगाल नाम पड़ा।(राजतरंगिणी)

वंकिम-वि० [सं०] ईषत् वक्र। कुछ टेढ़ा या झुका हुआ। बाँका।

वंकिल-संज्ञा पुं० [सं०] कंटक। काँटा।

वंक्री-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) पशुओं की पसली की हड्डी। (२) काँड़ी। कड़ी। (३) प्राचीन काल का एक प्रकार का बाजा।

वंक्षण-संज्ञा पुं० [सं०] मूत्राशय और जंघास्थल का संधि स्थान। वह स्थान जो पेड़ू और जाँघ के बीच में है और जहाँ 'बद्ध' नामक रोग की गाँठ निकला करती है।

वंक्षु-संज्ञा स्त्री० [सं०] आक्सस नदी जो हिंदूकुश पर्वत से निकलकर मध्य एशिया में बहती हुई आरल समुद्र में गिरती है।

विशेष—इस नदी का नाम वेदों में कई जगह आया है। पुराणों में यह केतुमाल वर्ष की एक नदी कही गई है। महाभारत में इसकी गणना पवित्र नदियों में की गई है। रघुवंश की प्राचीन प्रतियों में भी रघु के दिग्विजय के अंतर्गत इस नदी का उल्लेख है और इसके किनारे हूणों की बस्ती कही गई है।

वंग-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मगध या बिहार के पूर्व पड़नेवाला प्रदेश। बंगाल।

विशेष—ऋग्वेद में सब से पूर्व पड़नेवाले जिस प्रदेश का उल्लेख है, वह "कीकट" (मगध) है। अथर्व संहिता में 'अंग' देश का भी नाम मिलता है। संहिताओं में 'वंग' नाम नहीं मिलता। ऐतरेय आरण्यक में ही सब से पहले वंग देश की चर्चा आई है; और वहाँ के निवासियों की दुर्बलता और दुराचार आदि का उल्लेख पाया जाता है। बात यह है कि संहिता काल में कीकट और वंग देश में अनार्य्यों का ही निवास था। आर्य्य लोग वहाँ तक न पहुँचे थे। बौधायन धर्मसूत्र में लिखा है कि वंग, कलिंग, पुंड्र आदि देशों में जानेवाले को लौटने पर पुनस्तोम यज्ञ करना चाहिए। मनुस्मृति में तीर्थ यात्रा के लिये जाने की आज्ञा है। इससे जान पड़ता है कि उस समय आर्य्य वहाँ बस गए थे। शतपथ ब्राह्मण के समय में मिथिला में विदेह वंश प्रतिष्ठित था। रामायण में प्राग्ज्योतिःपुर (रंगपुर से लेकर आसाम तक प्राग्ज्योतिष प्रदेश कहलाता था) की स्थापना का उल्लेख है।

महाभारत (आदि पर्व) में लिखा है कि क्षत्रिय राजा बलि को कोई संतति न हुई। तब उन्होंने अंधे दीर्घतमा ऋषि द्वारा अपनी रानी के गर्भ से पाँच पुत्र उत्पन्न कराए, जिनके नाम हुए—अंग, वंग, कलिंग, पुंड्र और सुह्म। इन्हीं के नाम पर देशों के नाम पड़े।

(२) राँगा नाम की धातु। (३) राँगे का भस्म। (४) कपास। (५) बैंगन। भंटा।

वंगज-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सिंदूर। (२) पीतल।
वि० (१) वंगाल में उत्पन्न होनेवाला। (२) बंगाली।

वंगजीवन-संज्ञा पुं० [सं०] चाँदी।

वंगन-संज्ञा पुं० [सं०] बैंगन।

वंगमल-संज्ञा पुं० [सं०] सीसा नामक धातु। प्राचीनों की यह धारणा थी कि राँगा और सीसा दोनों एक ही धातु हैं और वे सीसे को राँगे का मल समझते थे।

वंगसेन-संज्ञा पुं० [सं०] लाल फूलवाला अगस्त।

वंगारि-संज्ञा पुं० [सं०] हरताल।

वंगाली-संज्ञा स्त्री० [हिं० बंगाल] भैरव राग की एक रागिनी।

विशेष—यह ओड़व जाति की है और इसमें ऋषभ तथा धैवत

स्वर नहीं लगते। कल्लिनाथ के मत से यह संपूर्ण जाति की है और इसमें दो बार मध्यम आता है।

वंगाष्टक-संज्ञा पुं० [सं०] एक रसौषध जिसमें राँगा आदि आठ धातुएँ एक साथ मिलाकर फूँकी जाती हैं। यह प्रमेह रोग पर दिया जाता है।

विशेष—पारा, गंधक, लोहा, चाँदी, खपरिया, अभ्रक और ताँबा बराबर लेकर जितना सब हो, उतना राँगा लेकर सब को एक साथ मर्दन करके गजपुट द्वारा फूँकते हैं। जब भस्म हो जाता है, तब उसको वंगाष्टक कहते हैं। वंगाष्टक की मात्रा दो रत्ती है; और मधु, हलदी के चूर्ण तथा आमले के रस में इसे खाते हैं।

वंगेश्वर-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रसिद्ध रस।

विशेष—पारे का भस्म ८ तोला, बंग का भस्म ८ तोला, ताँबे का भस्म ३२ तोला और गंधक ३२ तोला लेकर मदार के दूध में मलकर फिर पिंडी बनाकर भूधर यंत्र द्वारा फूँकते हैं। जब भस्म हो जाता है, तब उसे वंगेश्वर कहते हैं। इसकी मात्रा २ रत्ती है। इसे जलोदर रोग में घी के साथ देते हैं; और ऊपर से पुनर्नवा का रस और गोमूत्र या हल्दी का रस पिलाते हैं।

वंचक-वि० [सं०] (१) धूर्त। धोखेबाज़। ठग। (२) खल।

संज्ञा पुं० (१) गीदड़। (२) सँधियार। (३) चोर। ठग।

वंचन-संज्ञा पुं० [सं०] [वि० वंचित] धोखा देना या खाना। धूर्तता। ठगी।

वंचना-संज्ञा स्त्री० [सं०] धोखा। जाल। फ़रेब। छल।

⊛ क्रि० स० [सं० वंचन] धोखा देना। ठगना। उ०—दंभ विलोक्यो कलह जो, दिल्ली नगरी जाइ। वंचतु जग जैसे फिरतु मो पै बरनि न जाइ।—केशव।

† क्रि० स० [सं० वाचन] पढ़ना। बाँचना।

वंचित-वि० [सं०] (१) धोखे में आया हुआ। जो ठगा गया हो। (२) अलग किया हुआ। (३) विमुख। अलग। हीन। रहित। जैसे,—मैं इस कृपा से वंचित रखा गया हूँ।

वंजुल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बेंत। (२) तिनिश का पेड़। (३) अशोक का पेड़। (४) स्थलपद्म। (५) एक प्रकार के पक्षी का नाम।

वंजुला-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) दुधारी गाय। (२) एक नदी का नाम जो मत्स्यपुराणानुसार सह्याद्रि पर्वत से निकलती है।

वंजुलावती-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक नदी का नाम जो दक्षिण के एक पर्वत से निकलती है।

वंट-संज्ञा पुं० [सं०] (१) भाग। बाँट। (२) हँसिया आदि की मूठ। बेंट। (३) जिसकी पूँछ न हो या कट गई हो। लँडूरा। बाँड़ा। (४) अविवाहित पुरुष।

वंटक-संज्ञा पुं० [सं०] भाग। बाँट।

वि० बाँटनेवाला। विभाजक।

वंटाल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शूरों का युद्ध। (२) [illegible] खोदने का औज़ार। खनती।

वंठ-वि० [सं०] जिसका कोई अंग खंडित हो। हीनांग। लूला, लँडूरा, खंजा आदि।

संज्ञा पुं० (१) अविवाहित पुरुष। (२) दास। (३) [illegible] बौना। (४) कुंत। भाला।

वंठर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) ताड़ के वृक्ष का कोपल। (२) [illegible] के कल्ले का वह मोटा पत्ता जो उसे छिपाए रहता [illegible] पत्ता गाँठ गाँठ पर होता है और बहुत [illegible] का होता है। (३) कुत्ते की पूँछ। (४) [illegible] बकरी, गाय आदि को गले से बाँधते हैं। (५) [illegible] (६) मेघ। (७) कुत्ता।

वंठाल-संज्ञा पुं० दे० "वंटाल"।

वंड-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जिसकी लिंगेंद्रिय के [illegible] पर वह चमड़ा न हो, जो सुपारी को ढाँके रहता [illegible] ध्वजभंग नामक रोग।

पर्य्या०—दुश्चर्मा। द्विनग्नक। शिपिविष्ट।

वि० बाँड़ा। हीनांग।

वंडर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मक्खीचूस। सूम। कं[illegible] वह नपुंसक जो अंतःपुर का रक्षक हो। खोजा।

वंडा-संज्ञा स्त्री० [सं०] पुंश्चली स्त्री।

वंदन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) स्तुति और प्रणाम। पूजन।

विशेष—वंदन षोडशोपचार पूजन में है। यह सम[illegible] अंत में 'वंदन' शब्द से पूजित या पूज्य का [illegible] जैसे,—जगवंदन।

(२) शरीर पर बनाए हुए तिलक आदि चिह्न। (३) [illegible] विष का नाम। (४) एक असुर का नाम। (५) [illegible] का नाम। (६) वंदाक। बाँदा।

वंदनमाल, वंदनमाला-संज्ञा स्त्री० [सं०] वंदनवार।

वंदनवार-संज्ञा स्त्री० [सं० वंदनमाल] वह माला [illegible] लिये घरों के द्वार पर या मंडप के चारों ओर [illegible] समय बाँधी जाती है। उ०—सेजहि सुधौं [illegible] उज्यारैं एक, बाँधती वंदनवारैं ह्यारैं फूल [illegible]

विशेष—इस माला में फूल पत्तियाँ गुथी रहती हैं। [illegible] में आम के पल्लव गूँथे जाते हैं।

वंदना-संज्ञा स्त्री० [सं०] [वि० वंदित, वंदनीय] (१) [illegible] (२) प्रणाम। वंदन। (३) वह [illegible] से यज्ञ के अंत में लगाया जाता है।

वंदनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) स्तुति। (२) [illegible] ओषधि। (३) गोरोचन। (४) [illegible] पर बनाए जाते हैं। (५)

वंदनीय-वि० [सं०] वंदना करने योग्य । आदर करने योग्य ।

वंदा-संज्ञा स्त्री० [सं०] दूसरे पेड़ों के ऊपर उसी के रस से पलनेवाला एक प्रकार का पौधा । वंदाक । बाँदा ।

पर्य्या०—वृक्षादनी । वृक्षरुहा । वंदाका । जीवंतिका । शेखरी । सेव्या । वंदका । वंदक । नीलवल्ली । वंदाकी । परवासिका । वशिनी । पुत्रिणी । वंधा । परपुष्टा । पराश्रया । कामवृक्षा । केशरूपा । गंधमादनी । कामिनी । श्यामा । कामवृक्ष ।

विशेष—इसका स्वाद तिक्त होता है; और वैद्यक में यह कफ, पित्त तथा श्रम को दूर करनेवाला कहा गया है ।

वंदारु-संज्ञा पुं० [सं०] (१) स्तोत्र । (२) बाँदा । वंदाक ।
वि० वंदनशील ।

वंदिग्राह-संज्ञा पुं० [सं०] डाकू ।

वंदित-वि० [सं०] पूज्य । आदरणीय ।

वंदी-संज्ञा पुं० दे० "बंदी" ।

वंदीक-संज्ञा पुं० [सं०] इन्द्र ।

वंदीगृह-संज्ञा पुं० [सं०] कैदखाना ।

वंदीजन-संज्ञा पुं० [सं०] राजाओं आदि का यश वर्णन करनेवाली एक प्राचीन जाति ।

वंद्य-वि० [सं०] वंदना करने योग्य । वंदनीय । आदरणीय । पूजनीय ।

वंधु-संज्ञा पुं० दे० "बंधु" ।

वंधुर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) रथ या गाड़ी का आश्रय जिसमें दोनों हरसे और धुरा प्रधान हैं । (२) गाड़ी में का वह स्थान जहाँ सारथी या गाड़ीवान बैठकर उसे चलाता है ।

वंश-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बाँस । (२) बँडेर । (३) पीठ की हड्डी । (४) नाक के ऊपर की हड्डी । बाँसा । (५) बाँसुरी । (६) एक प्रकार की ईख । (७) खड्ग के बीच का वह भाग जो ऊँचा होता है; अर्थात् जहाँ पर वह अधिक चौड़ा होता है । (८) बारह हाथ का एक मान । (९) बाहु आदि की लम्बी हड्डियाँ । (१०) युद्ध की सामग्री । जैसे, रथ, ध्वजा इत्यादि । (११) विष्णु । (१२) वंशलोचन । (१३) कुल ।

यौ०—वंशज । वंशकृत् । वंशक्षय । वंशच्छेद इत्यादि ।

वंशऋषि-संज्ञा पुं० [सं०] वे ऋषि जिनके नाम वंश ब्राह्मण में आए हैं ।

वंशकठिन-संज्ञा पुं० [सं०] काले अगर की लकड़ी । कृष्णागुरु ।

वंशक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) अगर नामक गंध द्रव्य । अगुरु । (२) एक प्रकार की मछली । (३) एक प्रकार का गन्ना या ईख ।

विशेष—वैद्यक में इसे शीतल, मधुर, स्निग्ध, पुष्टिकारक, धारक, वृष्य और कफनाशक लिखा है । इसके रस का स्वाद कुछ क्षारीपन लिए और भारी होता है । इसे 'कररूम' कहते हैं ।

(४) छोटी जाति का बाँस ।

वंशकपूर-संज्ञा पुं० [सं० वंशकर्पूर] वंसलोचन ।

वंशकफ-संज्ञा पुं० [सं०] सेमल आदि का धूआ जो आकाश में उड़ता फिरता है ।

वंशकर-संज्ञा पुं० [सं०] वह पुरुष जिससे किसी वंश का आरंभ हुआ हो । मूलपुरुष ।

वंशकरा-संज्ञा स्त्री० [सं०] मार्कंडेयपुराणानुसार एक नदी जो महेंद्र पर्वत से निकलती है । वंशधरा ।

वंशकार-संज्ञा पुं० [सं०] गंधक ।

वंशक्षीरी-संज्ञा स्त्री० [सं०] वंसलोचन ।

वंशघटिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] दिव्यावदान के अनुसार एक प्रकार का खेल ।

वंशज-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बाँस का चावल । (२) पुत्र । (३) कुल में उत्पन्न पुरुष । संतान । संतति । औलाद ।

वंशजा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) वंसलोचन । (२) कन्या ।

वंशतिलक-संज्ञा पुं० [सं०] एक छंद का नाम ।

वंशधर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) कुल में उत्पन्न । वंशज । संतति । संतान । (२) वंश की मर्य्यादा रखनेवाला ।

वंशधरा-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक नदी जो महेंद्र पर्वत से निकली है । यह नदी मध्य प्रदेश में है । इसे वंशकरा भी कहते हैं । इसका आधुनिक नाम वंशधारा है ।

वंशधान्य-संज्ञा पुं० [सं०] बाँस का चावल ।

वंशनर्ती-संज्ञा पुं० [सं० वंशनर्तिन्] भाँड़ ।

वंशनाश-संज्ञा पुं० [सं०] फलित ज्योतिष के अनुसार एक योग जो शनि और राहु के सूर्य्य के साथ एक लग्न में, विशेषतः पंचम में, पड़ने पर होता है ।

वंशनेत्र-संज्ञा पुं० [सं०] ईख के अँकुरवाले डंठल जिन्हें जमीन में गाड़ने से ईख का नया पौधा उत्पन्न होता है । औंटा ।

वंशपत्र-संज्ञा पुं० [सं०] हरताल ।

वंशपत्रक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्रकार की ईख जो सफेद होती है । (२) एक प्रकार की मछली । (३) हरताल ।

वंशपत्रपतित-संज्ञा पुं० [सं०] एक छंद का नाम ।

वंशपत्री-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) एक प्रकार की हींग । (२) एक घास जिसे बाँसा कहते हैं । इसकी पत्तियाँ बाँस की पत्तियों से मिलती हैं । वैद्यक में यह शीतल, मधुर, रुचिकारी तथा रक्त पित्त के दोषों को नाश करनेवाली कही गई है ।

पर्य्या०—वंशदला । जीरिका । जीर्णपत्रिका । वेणुपत्री । शिरा । शिराटिका ।

वंशपीत-संज्ञा पुं० [सं०] गुग्गुल ।

वंशब्राह्मण-संज्ञा पुं० [सं०] सामवेद के ब्राह्मणों में एक प्रधान ब्राह्मण, जिसमें सामवेदी ब्राह्मणों के वंशकार ऋषियों की नामावली है ।

वंशरोचना-संज्ञा स्त्री० [सं०] वंसलोचन।

वंशलोचन-संज्ञा पुं० [सं०] वंसलोचन।

पर्य्या०—त्वक्क्षीरा। वंशलोचना। तुगाक्षीरी। वांशी। वंशजा। क्षीरिका। तुंगा। त्वक्क्षीरी। शुभ्रा। शुभा। वंशक्षीरी। त्वक्सारा। कर्म्मरी। श्वेता। वंशकर्पूर। रोचना। रोचनिका। पिंगा। वंशशर्करा। वेणुलवण। वैणवी।

वंशलोचना-संज्ञा स्त्री० [सं०] वंसलोचन।

वंशशर्करा-संज्ञा स्त्री० [सं०] वंसलोचन।

वंशशलाका-संज्ञा स्त्री० [सं०] बीन, सितार आदि बाजों का डंडा।

वंशस्थ-संज्ञा पुं० [सं०] बारह वर्णों का एक वर्णवृत्त जिसका व्यवहार संस्कृत काव्यों में अधिक मिलता है। इसमें जगण, तगण, जगण और रगण आते हैं। जैसे,—प्रथा जु वंशस्थ विलंबि धावती। नसाय तीनों कुल को लजावती। इसे 'वंशस्थविल' भी कहते हैं।

वंशहीन-वि० [सं०] (१) जिसके वंश में कोई न हो। निर्वंश। (२) अपुत्र।

वंशानुचरित-संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन राजवंशों की कथा।

विशेष—यह पुराणों के लक्षणों में से एक है।

वंशावली-संज्ञा स्त्री० [सं०] किसी वंश में उत्पन्न पुरुषों की पूर्वोत्तर क्रम से सूची।

वंशिक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) अगर की लकड़ी। (२) काला गन्ना। केतारा।

वंशिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) अगर की लकड़ी। (२) वंसी। मुरली। (३) पिप्पली।

वंशी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) मुँह से फूँककर बजाया जानेवाला एक प्रकार का बाजा जो बाँस में सुर निकालने के लिये छेद करके बनाया जाता है। बाँसुरी। मुरली।

विशेष—पुराने ग्रंथों में लिखा है कि वंशी बाँस ही की होनी चाहिए; पर खैर, लाल चंदन आदि की लकड़ी की अथवा सोने, चाँदी की भी हो सकती है। यह वास्तव में बाँस की एक पोली नली होती है, जिसके बजानेवाले छोर पर एक जीभ लगी होती है और दूसरी ओर नली के ऊपर एक पंक्ति में सुर निकलने के छेद होते हैं। मातंग ऋषि का मत है कि नली का छेद कनिष्ठा उँगली के मूल के बराबर होना चाहिए। जो छोर मुँह में रखकर फूँका जाता है, उसे 'फूत्काररंध्र' और सुर निकालनेवाले सात छेदों को 'ताररंध्र' कहते हैं। इस वंशी के अतिरिक्त मातंग के अनुसार चार प्रकार की मुरलियाँ और होती हैं, जिन्हें महानंदा, नंदा, विजया और जया कहते हैं। महानंदा में ताररंध्र फूत्काररंध्र से दस अंगुल पर, नंदा में ग्यारह अंगुल पर, विजया में बारह अंगुल पर और जया में चौदह अंगुल पर होते हैं। आज कल वह वंशी जो एक साथ दो बजाई जाती है, अलगोझा कहलाती है। प्राचीन काल के गोपों में इस बाजे का प्रचार बहुत था।

यौ०—वंशीधर।

(२) चार कर्ष का एक मान जो आठ तोले के बराबर होता है। (३) वंसलोचन।

वंशीधर-संज्ञा पुं० [सं०] श्रीकृष्ण, जो वंशी बजाया करते थे।

वंशीय-वि० [सं०] वंशोद्भव। कुल में उत्पन्न। जैसे,—चंद्रवंशीय।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग यौगिक शब्दों के अंत में हुआ करता है।

वंशीवट-संज्ञा पुं० [सं०] वृंदावन में वह बरगद का पेड़ जिसके नीचे श्रीकृष्ण वंशी बजाया करते थे।

वंशीवादन-संज्ञा पुं० [सं०] वंशी बजाना।

वंशोद्भव-वि० [सं०] वंशज। कुल में उत्पन्न।

वंशोद्भवा-संज्ञा स्त्री० [सं०] वंसलोचन।

वंश्य-वि० [सं०] वंशी। वंशज।

संज्ञा पुं० (१) पीठ की रीढ़। (२) वह बड़ी लकड़ी जो छाजन के बीचोबीच रीढ़ के समान होती है। बँडेर।

व-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वायु। (२) वाण। (३) वरुण। (४) बाहु। (५) मंत्रण। (६) कल्याण। (७) सांत्वन। (८) वसति। बस्ती। (९) वरुणालय। समुद्र। (१०) शार्दूल। (११) वस्त्र। (१२) कोई का कंद। सेरकी। (१३) जल में उत्पन्न होनेवाले कंद। शालूक। (१४) वंदन। (१५) अश्व। (१६) खड्गधारी पुरुष। (१७) मूर्वा नामक लता। (१८) वृक्ष। (१९) कलश से उत्पन्न ध्वनि। (२०) मद्य। (२१) प्रचेता।

वि० बलवान्।

अव्य० [फ़ा०] और। जैसे,—राजा व रईस।

वक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बगला नाम का पक्षी। (२) अगस्त का पेड़ या फूल। (३) एक दैत्य का नाम जिसे श्रीकृष्ण ने बाल्यावस्था में मारा था। (४) एक राक्षस जिसे भीम ने मारा था। (५) कुबेर। (६) एक यक्ष का नाम। (७) एक जाति का नाम।

वककच्छ-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन जनपद जो नर्मदा के किनारे था।

विशेष—कथासरित्सागर में लिखा है कि उज्जयिनी के राजा सातवाहन सर्ववर्म्मा ने कलाप व्याकरण का अध्ययन करके अपने गुरु को यह राज्य गुरु-दक्षिणा में दिया था।

वकचिंचिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की छोटी मछली।

वकजित्-संज्ञा पुं० [सं०] (१) श्रीकृष्ण। (२) भीमसेन।

वकनज-संज्ञा पुं० [सं०] विश्वामित्र के एक पुत्र का नाम।

वकपंचक-संज्ञा पुं० [सं०] कार्तिक के शुक्ल पक्ष की एकादशी से लेकर पूर्णिमा तक की पाँच तिथियाँ।

वकयंत्र-संज्ञा पुं० [सं०] आसव आदि भबके से उतारने के लिये एक यंत्र या बरतन, जिसके मुँह पर बगले की गरदन की तरह टेढ़ी नली लगी रहती है।

वकवृत्ति-संज्ञा स्त्री० [सं०] धोखा देकर काम निकालने की घात में रहने की वृत्ति। कदाचार।

वकव्रत-संज्ञा पुं० [सं०] बगले की तरह घात में रहनेवाला। कपटी मनुष्य।

वकालत-संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) दूसरे के किसी काम का भार लेना। दूसरे के स्थानापन्न होकर काम करना। (२) दूसरे का सँदेसा जोर देकर कहना। दूतकर्म। (३) दूसरे के पक्ष का मंडन। दूसरे की ओर से उसके अनुकूल बातचीत करना। जैसे,—उन्हें जो कुछ कहना होगा आप कहेंगे, तुम क्यों उनकी ओर से वकालत करते हो। (४) अदालत या कचहरी में किसी मामले में वादी या प्रतिवादी की ओर से प्रश्नोत्तर या वादविवाद करने का काम। मुक़दमे में किसी फ़रीक़ की तरफ से बहस करने का पेशा।

मुहा०—वकालत चलना या चमकना = वकालत के पेशे में आमदनी होना। वकालत जमना = वकालत के पेशे में लाभ होने लगना।

यौ०—वकालतनामा।

वकालतन-क्रि० वि० [अ०] वकील के द्वारा। असालतन का उलटा।

वकालतनामा-संज्ञा पुं० [अ० + फ़ा०] वह अधिकारपत्र जिसके द्वारा कोई किसी वकील को अपनी तरफ से मुक़द्दमे में बहस करने के लिये मुक़र्रर करता है।

वकासुर-संज्ञा पुं० [सं०] एक राक्षस का नाम।

विशेष—इस नाम के दो राक्षस हुए हैं। एक को श्रीकृष्ण ने अपनी बाल्यावस्था में मारा था। यह पूतना नाम की राक्षसी का भाई और कंस का अनुचर था। दूसरे को भीमसेन ने उस समय मारा था, जब पाँचो पांडव लाक्षागृह से निकलकर वन में जाकर रहते थे।

वकी-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक राक्षसी का नाम।

वकील-संज्ञा पुं० [अ०] (१) दूसरे के काम को उसकी ओर से करने का भार लेनेवाला। (२) दूसरे का सँदेसा ले जाकर उस पर जोर देनेवाला। दूत। (३) राजदूत। एलची। उ०—सुरज करी नवाब के है आनंद सरीर। तब वकील विनती करी कृपा पाइ जदुबीर।—सूदन। (४) प्रतिनिधि। (५) दूसरे का पक्ष मंडन करनेवाला। दूसरे की ओर से उसके अनुकूल बात करनेवाला। (६) क़ानून के अनुसार वह आदमी जिसने वकालत की परीक्षा पास की हो और जिसे हाईकोर्ट की ओर से अधिकार मिला हो कि वह अदालतों में मुद्दई या मुद्दालेह की ओर से बहस करे।

वकुल-संज्ञा पुं० [सं०] अगस्त का पेड़ या फूल।

वकुला-संज्ञा स्त्री० [सं०] कुटकी नामक ओषधि।

वकुली-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) काकोली नाम की ओषधि। (२) वकुल। मौलसिरी।

वक़ूअ-संज्ञा पुं० [अ०] घटित होना। प्रकट हो।

मुहा०—वक़ूअ में आना = प्रकट होना। घटित होना।

वक़ूफ़-संज्ञा पुं० [अ०] (१) जानकारी। ज्ञान। (२) बुद्धि। समझ।

यौ०—बेवक़ूफ़ = मूर्ख।

वक़्त-संज्ञा पुं० [अ०] (१) समय। काल।

मुहा०—वक़्त काटना = (१) किसी प्रकार समय बिताना। (२) जी बहलाना। वक़्त की चीज = (१) किसी समय या ऋतु विशेष में मिलनेवाली चीज। (२) किसी विशेष समय में गाया जानेवाला गीत या राग। जैसे,—कोई वक़्त की चीज़ गाइए। वक़्त खोना = समय नष्ट करना।

(२) किसी बात के होने का समय। अवसर। मौका।

मुहा०—वक़्त पर = अवसर आने पर। कोई विशेष परिस्थिति होने पर। जैसे,—इसे रख छोड़ो, वक़्त पर काम आवेगी। वक़्त ताकना = मौका देखना। इस बात की प्रतीक्षा में रहना कि कब उपयुक्त अवसर मिले और कोई बात करें। वक़्त हाथ से देना = अवसर चूकना। मौक़ा आने पर भी काम न करना।

(३) इतना समय कि कोई काम किया जा सके। अवकाश। फ़ुरसत।

क्रि० प्र०—निकलना।—निकालना।—मिलना।

(४) मरने का नियत समय। मृत्युकाल।

क्रि० प्र०—आ जाना।—आ पहुँचना।

वक़्तन् फ़ौक़तन्-क्रि० वि० [अ०] (१) यदाकदा। कभी कभी। (२) यथासमय।

वक्तव्य-वि० [सं०] (१) कहने योग्य। वाच्य। (२) कुछ कहने सुनने लायक। (३) हीन। तुच्छ।

संज्ञा पुं० [सं०] (१) कथन। वचन। (२) वह बात जो किसी विषय में कहनी हो।

वक्ता-वि० [सं० वक्तृ] (१) वाग्मी। बोलनेवाला। (२) भाषण पटु। वदान्य।

संज्ञा पुं० कथा कहनेवाला पुरुष। व्यास। उ०—सूत जहँ कथा भागवत की कहत है करि अठासी सहस मुनि श्रोता। राम को देखि सनमान नृप ज्यों कियो मृग नहिं जान्यो निज जानि बक्ता।—सूर।

वक्तृता-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) वाग्मिता। वाक्पटुता। (२) व्याख्यान। (३) कथन। भाषण।

वक्तृत्व-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वक्तृता। वाग्मिता। (२) व्याख्यान। (३) कथन।

वक्त्र-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मुख। (२) तगर की जड़। (३) एक प्रकार का छंद जो अनुष्टुभ छंद के अनुरूप होता है। (४) काम का आरंभ।

यौ०—वक्त्रज।

वक्त्रताल-संज्ञा पुं० [सं०] वह ताल जो मुँह से उत्पन्न किया जाय। जैसे, वंसी को बजाने से या मुँह में वायु भरकर छोड़ने से।

वक्त्रतुंड-संज्ञा पुं० [सं०] गणेश।

वक्त्रदल-संज्ञा पुं० [सं०] तालू।

वक्त्रबाहु-संज्ञा पुं० [सं०] वाराही कंद।

वक्त्रवास-संज्ञा पुं० [सं०] नारंगी।

वक्त्रशल्या-संज्ञा स्त्री० [सं०] गुंजा। घुँघची।

वक्त्रासव-संज्ञा पुं० [सं०] लाला। थूक।

वक़्फ़-संज्ञा पुं० [अ०] (१) वह भूमि या संपत्ति जो धर्मार्थ दान कर दी गई हो। किसी धर्म के काम में लगी हुई जायदाद।

क्रि० प्र०—करना।

(२) किसी धर्म के काम में धन आदि देना। धर्मार्थ दान। (३) किसी के लिये कोई चीज या धन सम्पत्ति आदि छोड़ देना। (क्व०)

वक़्फ़नामा-संज्ञा पुं० [अ० वक़्फ़+फ़ा० नामा] वह पत्र जिसके अनुसार किसी के नाम कोई चीज़ वक़्फ़ की जाय। दानपत्र।

वक़्फ़ा-संज्ञा पुं० [अ०] (१) अवकाश। अंतर। छुट्टी। मोहलत।

क्रि० प्र०—देना।—मिलना।

(२) काम करने से विराम।

क्रि० प्र०—मिलना।

वक्र-वि० [सं०] (१) टेढ़ा। बाँका। ऋजु का उलटा। (२) झुका हुआ। तिरछा। (३) कुटिल। दाँव पेंच चलनेवाला।

संज्ञा पुं० (१) नदी का मोड़। बाँका। (२) तगरपादुका। (३) शनैश्चर। (४) भौम। मंगल। (५) रुद्र। (६) पर्पट। (७) वह ग्रह जिससे तीस अंश के अंदर ही सूर्य्य हो। वक्रीग्रह। (८) एक राक्षस का नाम। (९) त्रिपुरासुर।

वक्रकंटक-संज्ञा पुं० [सं०] बैर का वृक्ष।

वक्रगति-संज्ञा पुं० [सं०] (१) भौम। मंगल। (२) ग्रहलाघव के अनुसार वे ग्रह जो सूर्य्य से पाँचवें, छठे, सातवें और आठवें हों। इस प्रकार मंगल ३६ दिन, बुध २१ दिन, बृहस्पति १०० दिन, शुक्र १२ दिन और शनि १८४ दिन वक्री होता है।

वक्रगल-संज्ञा पुं० [सं० वक्र+गला] एक प्रकार का बाजा जो मुँह से फूँककर बजाया जाता है।

वक्रगामी-वि० [सं० वक्रगामिन्] (१) टेढ़ी चाल चलनेवाला। (२) शठ। कुटिल।

वक्रगुल्फ-संज्ञा पुं० [सं०] ऊँट।

वक्रचंचु-संज्ञा पुं० [सं०] तोता। शुक पक्षी।

वक्रताल-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का बाजा जो मुँह से बजाया जाता है। वक्रनाल।

वक्रतुंड-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शुक पक्षी। तोता। (२) गणेश।

वक्रदंष्ट्र-संज्ञा पुं० [सं०] शूकर। सूअर।

वक्रदृष्टि-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) टेढ़ी दृष्टि। (२) क्रोध की दृष्टि। (३) मंद दृष्टि।

वक्रधर-संज्ञा पुं० [हिं० वक्र+धर] द्वितीया का टेढ़ा चंद्रमा धारण करनेवाले, शिव।

वक्रनक्र-संज्ञा पुं० [सं०] (१) पिशुन। चुगलखोर। (२) शुक पक्षी। तोता।

वक्रनाल-संज्ञा पुं० [सं०] वक्रताल नाम का बाजा जो मुँह से फूँककर बजाया जाता है।

वक्रनासिक-संज्ञा पुं० [सं०] उल्लू।

वि० टेढ़ी नाकवाला।

वक्रपुच्छ-संज्ञा पुं० [सं०] कुत्ता।

वक्रपुष्प-संज्ञा पुं० [सं०] (१) अगस्त का पेड़। (२) पलाश।

वक्रय-संज्ञा पुं० [सं०] मूल्य। दाम।

वक्रशल्या-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) कड़वा कद्दू या घीया। (२) लाल फूल की विपलांगली।

वक्रांग-वि० [सं०] जिसका अंग टेढ़ा हो।

संज्ञा पुं० (१) हंस। (२) सर्प। साँप।

वक्रित-वि० [सं०] जो टेढ़ा हो गया हो।

वक्रिम-वि० [सं०] टेढ़ा। कुटिल।

वक्री-वि० [सं० वक्रिन्] अपने मार्ग को छोड़कर पीछे लौटनेवाला।

विशेष—फलित ज्योतिष में जो ग्रह अपनी राशि से एक बारगी दूसरी राशि में चला जाता है, उसे अतिवक्री या महावक्री कहते हैं। यह वक्रता मंगल आदि पाँच ग्रहों में ही होती है। वि० दे० "वक्रगति"।

संज्ञा पुं० (१) वक्र ग्रह। (२) वह प्राणी जिसके अंग जन्म से टेढ़े हों। (३) बुद्धदेव, जिन्होंने टेढ़ी युक्तियों से वैदिक मत का विरोध किया था।

वक्रोक्ति-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) एक प्रकार का काव्यालंकार जिसमें काकु या श्लेष से वाक्य का और का और अर्थ किया जाता है। (२) काकूक्ति। (३) वह उक्ति जिसमें चमत्कार हो। बढ़िया उक्ति।

विशेष—किसी किसी आचार्य (जैसे "वक्रोक्तिजीवितम्" के कर्त्ता) ने वाक्चातुर्य्य को ही काव्य की आत्मा कह दिया है, जिसका और आचार्य्यों ने खंडन किया है।

वक्रोष्ठिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] ऐसी मंद हँसी जिसमें दाँत न खुलें, केवल ओंठ कुछ टेढ़े हो जायँ। मुसकान। स्मित।

वक्कस-संज्ञा पुं० [सं०] सुश्रुत के अनुसार एक प्रकार का मद्य।

वक्ष-संज्ञा पुं० [सं० वक्षस्] (१) पेट और गले के बीच में पड़नेवाला भाग जिसमें स्त्रियों के स्तन और पुरुषों के स्तन के से चिह्न होते हैं। छाती। उरस्थल। (२) बैल।

वक्षःस्थल-संज्ञा पुं० [सं०] उर। छाती।

वक्षी-संज्ञा स्त्री० [सं०] अग्निशिखा।

वक्षु-संज्ञा पुं० दे० "वंक्षु"।

वक्षोग्रीव-संज्ञा पुं० [सं०] विश्वामित्र के एक पुत्र का नाम।

वक्षोज-संज्ञा पुं० [सं०] स्तन। कुच।

वक्षोरुह-संज्ञा पुं० [सं०] स्तन। कुच।

वक्ष्यमाण-वि० [सं०] (१) वाच्य। वक्तव्य। (२) जिसे कह रहे हों। जो कथन का प्रस्तुत विषय हो।

वगलामुखी-संज्ञा स्त्री० [सं०] दस महाविद्याओं में से एक जिनकी पूजा का महत्त्व तंत्रों में वर्णित है।

वग़ैरह-अव्य० [अ०] एक अव्यय जिसका अर्थ यह होता है कि "इसी प्रकार और भी समझिए"। इत्यादि। आदि। जैसे,—बैल, ऊँट, हाथी वग़ैरह बहुत से जानवर वहाँ आए थे।

विशेष—इसका प्रयोग वस्तुओं को गिनाने में उनके नामों के अंत में संक्षेप या लाघव के लिये होता है।

वचंडी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सारिका। मैना। (२) वची। (३) एक शस्त्र का नाम।

वच-संज्ञा पुं० [सं०] (१) तोता। शुक पक्षी। (२) सूर्य्य। (३) कारण।

संज्ञा पुं० [सं० वच्, वचन] वचन। वाक्य।

वचन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मनुष्य के मुँह से निकला हुआ सार्थक शब्द। वाणी। वाक्य।

पर्य्या०—इरा। सरस्वती। ब्राह्मी। भाषा। गिरा। गीर्देवी। भारती। वाचा। वर्णमातृका। व्याहार। लपित।

(२) कही हुई बात। कथन। उक्ति।

यौ०—वचनबद्ध। वचनगुप्ति।

(३) व्याकरण में शब्द के रूप में वह विधान जिससे एकत्व या बहुत्व का बोध होता है। हिंदी में दो ही वचन होते हैं—एकवचन और बहुवचन। पर कुछ और प्राचीन भाषाओं के समान संस्कृत में एक तीसरा वचन द्विवचन भी होता है।

वचनकारी-वि० [सं०] आज्ञाकारी।

वचनगुप्ति-संज्ञा स्त्री० [सं०] जैन धर्म्म के अनुसार वाणी का ऐसा संयम जिससे वह अशुभ वृत्ति में प्रवृत्त न हो।

वचनलक्षिता-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह परकीया नायिका जिसकी बातचीत से उसका उपपति से प्रेम लक्षित या प्रकट होता हो। उ०—अंगन की छवि भूषन की रघुनाथ सराहि सबै सियरातें। आपनी प्रीति, सखा उनकी प्रगटी प्रगटे सुख के हियरा तें। काहे को आज छिपावति ही हमसों करि ये चतुराई की बातें। मैं निज कान सुनी जो कही वह कान्हि रुखी सों गोपाल की बातें।

वचनविदग्धा-संज्ञा स्त्री० [सं०] नायिकाओं का एक भेद। वह परकीया नायिका जो अपने वचन की चतुराई से नायक की प्रीति का साधन करती हो। उ०—जब लौं घर को धनी आवै घरै तब लौं तो कहूँ चित दैबो करो। पद्माकर ये बछरा अपने बछरान के संग चरैबो करो। अरु औरन के घर तें हम सों तुम दूनी दुहावन छैबो करो। नित साँझ सकारे हमारी हहा! हरि गैयन को दुहि जैबो करो।—पद्माकर।

वचनीय-वि० [सं०] कथनीय।

संज्ञा पुं० निंदा। शिकायत।

वचर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) कुक्कुट। (२) शठ।

वचा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) वच नाम की ओषधि। वि० दे० "वच"। (२) सारिका पक्षी। मैना।

वच्छ-संज्ञा पुं० [सं० वक्षस्, प्रा० वच्छ] उर। छाती।

वज़न-संज्ञा पुं० [अ०] (१) भार। बोझ। (२) तौल। (३) मान। मर्य्यादा। गौरव।

क्रि० प्र०—रखना।

वज़नी-वि० [अ० वज़न+ई] (१) जिसका बहुत बोझ हो। भारी। (२) जिसका कुछ असर हो। मानने योग्य।

वजह-संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) कारण। हेतु। (२) प्रकृति। (३) सत्व।

वज़ा-संज्ञा स्त्री० [अ० वज़अ्] (१) संघटन। बनावट। रचना। (२) चालढाल। सजधज। (३) रूप। आकृति। (४) दशा। अवस्था। (५) रीति। प्रणाली। (६) मुजरा। मिनहा। कटौती।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

वज़ादार-वि० [अ० वज़ा+फा० दार] जिसकी बनावट या गढ़न आदि बहुत अच्छी हो। तरहदार। दर्शनीय।

वज़ादारी-संज्ञा स्त्री० [अ०+फा०] (१) कपड़े वग़ैरह पहनने का सुंदर ढंग। फैशन। (२) सजावट का उत्तम ढंग। (३) किसी प्रकार की मर्य्यादा आदि का अच्छी तरह निर्वाह।

वज़ारत-संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) मंत्री या अमात्य का पद। वज़ीरी। (२) मंत्री या अमात्य का कार्य्य। (३) अमात्य का कार्य्यालय।

वज़ीफ़ा—संज्ञा पुं० [अ०] (१) वृत्ति। (२) वह वृत्ति या आर्थिक सहायता जो विद्वानों, छात्रों, संन्यासियों, दीनों या बिगड़े हुए रईसों आदि को दी जाती है। (३) वह जप या पाठ जो नियमपूर्वक प्रति दिन किया जाता है। (मुसलमान)

क्रि० प्र०—पढ़ना।

वज़ीफ़ादार—वि० [अ० वज़ीफ़ा + फ़ा० दार] वज़ीफ़ा पानेवाला।

वज़ीर—संज्ञा पुं० [अ०] (१) वह जो बादशाह को रियासत के प्रबंध में सलाह या सहायता दे। मंत्री। अमात्य। दीवान। (२) शतरंज की एक गोटी, जो बादशाह से छोटी और शेष सब मोहरों से बड़ी होती है। यह गोटी आगे, पीछे, दाहिने, बाएँ और तिरछे जिधर चाहे, उधर और जितने घर चाहे, उतने घर चल सकती है।

वज़ीरी—संज्ञा स्त्री० [अ०] वजीर का काम या पद।

संज्ञा पुं० घोड़ों की एक जाति जो बलूचिस्तान में पाई जाती है। इस जाति के घोड़े बड़े परिश्रमी और दौड़ने में बहुत तेज होते हैं। इनके कंधे ऊँचे और पुट्ठे चौड़े होते हैं।

वज़ू—संज्ञा पुं० [अ० वुज़ू] नमाज़ पढ़ने के पूर्व शौच के लिये हाथ पाँव आदि धोना। (मुसलमानों का नियम है कि नमाज़ पढ़ने के पूर्व वे पहले तीन बार हाथ धोते, फिर तीन बार कुल्ली करके नथनों में पानी देते हैं। फिर मुँह धोकर कुहनियों तक हाथ धोते हैं, और सिर पर पानी लगे हाथ फेरते हैं। अंत में पाँव धोते हैं। इसी आचार का नाम वज़ू है)। उ०—का भो वज़ू व मज्जन कीन्हे का मसजिद सिर नायें। हृदया कपट निमाज़ गुज़ारै का भो मक्का जायें।—कबीर।

क्रि० प्र०—करना।

वजूद—संज्ञा पुं० [अ०] (१) सत्ता। अस्तित्व। (२) शरीर। देह। (३) सृष्टि। (४) प्रकट या घटित होना। अभिव्यक्ति।

मुहा०—वजूद पकड़ना = प्रकट होना। अस्तित्व में आना। वजूद में आना = उत्पन्न होना। प्रकट होना। वजूद में लाना = उत्पन्न करना।

वजूहात—संज्ञा स्त्री० [अ० वजह का बहु० रूप] कारणों का समूह।

विशेष—यह बहुवचन शब्द है; और इसका प्रयोग भी सदा बहुवचन में ही होता है।

वज्र—संज्ञा पुं० [सं०] (१) पुराणानुसार भाले के फल के समान एक शस्त्र जो इंद्र का प्रधान शस्त्र कहा गया है।

विशेष—इसकी उत्पत्ति की कथा ब्राह्मण ग्रंथों और पुराणों में लिखी हुई है। ऋग्वेद में उल्लेख है कि दधीचि ऋषि की हड्डी से इंद्र ने राक्षसों का ध्वंस किया। ऐतरेय ब्राह्मण में इसका इस प्रकार विवरण है। दधीचि जब तक जीते थे, तब तक असुर उन्हें देखकर भाग जाते थे। पर जब वे मर गए, तब असुरों ने उत्पात मचाना आरंभ किया। इंद्र दधीचि ऋषि की खोज में पुष्कर गए। वहाँ पता चला कि दधीचि का देहावसान हो गया। इस पर इंद्र उनकी हड्डी ढूँढ़ने लगे। पुष्कर क्षेत्र में उनके सिर की हड्डी मिली। उसी का वज्र बनाकर इंद्र ने असुरों का संहार किया। भागवत में लिखा है कि इंद्र ने वृत्रासुर का वध करने के लिये दधीचि से वज्र बनवाया था। मत्स्यपुराण के अनुसार जब विश्वकर्मा ने सूर्य्य को भ्रमयंत्र (खराद) पर चढ़ाकर खरादा था, तब छिलकर जो तेज निकला था, उसी से विष्णु का चक्र, रुद्र का शूल और इंद्र का वज्र बना था। वामनपुराण में लिखा है कि इंद्र जब दिति के गर्भ में घुस गए थे, तब वहाँ उन्हें बालक के पास ही एक मांस पिंड मिला था। इंद्र ने जब उसे हाथ में लेकर दबाया, तब वह लंबा हो गया और उसमें सौ गाँठें दिखाई पड़ीं। वही पीछे कठिन होकर वज्र बन गया। इसी प्रकार और और पुराणों में भी भिन्न भिन्न कथाएँ हैं।

पर्य्या०—ह्रादिनी। कुलिश। भिदुर। पवि। शतकोटि। स्वरु। शंब। दंभोलि। अशनि। रवदस। जंभारि। शतार। शतधार। आपोत्र। अब्दज। गिरिकंटक। गो। अभ्रोत्थ। दंभ इत्यादि।

वैदिक निघंटु के अनुसार—विद्युत्। नेमि। हेति। नम। पवि। सृक्। वृक। वध। अर्क। कुत्स। कुलिश। तुंज। तिग्म। मेनि। स्वधिति। सायक। परशु।

(२) विद्युत्। बिजली।

क्रि० प्र०—गिरना।—पड़ना।

मुहा०—वज्र पड़े = दैव से भारी दंड मिले। सत्यानाश हो। (स्त्रियाँ)

(३) हीरा। (४) एक प्रकार का लोहा। फ़ौलाद।

विशेष—वैद्यक के ग्रंथों में वज्रलौह के अनेक भेद कहे गए हैं। यथा—नीरविद, अरुणाभ, मोरक, नागकेसर, तित्तिरांग, स्वर्णवज्र, शैवालवज्र, शोणवज्र, रोहिणी, कौकोल, ग्रंथिवज्रक और मदन।

(५) भाला। बरछा। उ०—हरन रुक्मिनी होत है, दुहँ ओर भइ भीर। अति अघात, कछु नाहिन सूझत, वज्र चलहिं ज्यों नीर।—सूर। (६) ज्योतिष में २२ व्यतीपात योगों में से एक। (७) वास्तु विद्या के अनुसार वह स्तंभ (खंभा) जिसका मध्य भाग अष्टकोण हो। (८) विष्णु के चरण का एक चिह्न। (९) अभ्रक। (१०) कोकिलाक्ष वृक्ष। (११) श्वेत कुश। (१२) काँजी। (१३) वज्रपुष्प। (१४) धात्री। (१५) थूहर का पेड़। सेहुँड़। (१६) कृष्ण के एक प्रपौत्र जो अनिरुद्ध के पुत्र थे। (१७) विश्वामित्र के एक पुत्र का नाम। (१८) बौद्ध मत में चक्राकार चिह्न। (१९) अस्थिसंहार नाम का पौधा।

वि० (१) वज्र के समान कठिन। बहुत कड़ा या मज़बूत।

अत्यंत दृढ़ और पुष्ट। जैसे,—यह मसाला जब सूखेगा, तब वज्र हो जायगा। (२) घोर। दारुण। भीषण। उ०—वज्र अगिनि बिरहिनि हिय जारा। सुलगि सुलगि दहि कै भइ छारा।—जायसी।

वज्रकंकट-संज्ञा पुं० [सं०] हनुमान का एक नाम।

वज्रकंटक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) स्नुही वृक्ष। थूहर। सेंहुँड़। (२) कोकिलाक्ष वृक्ष।

वज्रकंटशाल्मली-संज्ञा पुं० [सं०] भागवत पुराण के अनुसार अट्ठाईस नरकों में से एक नरक का नाम।

वज्रकंद-संज्ञा पुं० [सं०] (१) जंगली सूरन या जिमीकंद। (२) शकरकंद। कंदा। (३) ताल के वृक्ष का फूल।

वज्रक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वज्रक्षार। (२) फलित ज्योतिष के अनुसार सूर्य्य के आठ उपग्रहों में से एक, जो सूर्य्य से तेईसवाँ नक्षत्र होता है।

वज्रकपाली-संज्ञा पुं० [सं० वज्रकपालिन्] बौद्धों की महायान शाखा के अनुसार एक बुद्ध का नाम।

वज्रकारक-संज्ञा पुं० [सं०] नख नामक सुगंधित द्रव्य।

वज्रकालिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] बुद्ध की माता मायादेवी का एक नाम।

वज्रकीट-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का कीड़ा जो पत्थर या काठ को काटकर उसमें छेद कर देता है।

विशेष—कहते हैं कि गंडक नदी में इन कीटों के द्वारा काटी हुई शिला ही शालग्राम की बटिया बन जाती है।

वज्रकूट-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक पर्वत का नाम। (२) हिमालय की चोटी पर का एक प्राचीन नगर।

वज्रकेतु-संज्ञा पुं० [सं०] मार्कंडेय पुराण के अनुसार एक राक्षस जो नरक का राजा था।

वज्रक्षार-संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक में एक रसायन योग जिसका व्यवहार गुल्म, शूल, अजीर्ण, शोथ तथा मंदाग्नि आदि उदर रोगों में होता है।

विशेष—साँभर, सेंधव, काच और सौवर्चल लवण तथा जवाखार और सज्जी सम भाग लेकर चूर्ण करते हैं; और उस चूर्ण को थूहर के दूध में भिगोकर तीन दिन तक छाया में सुखाते हैं। इसके उपरांत उस चूर्ण को आक (मदार) के पत्तों में लपेटकर एक घड़े में गजपुट द्वारा फूँकते हैं। जब यह भस्म हो जाता है, तब उसमें सोंठ, मिर्च, पीपल, त्रिफला, अजवायन, जीरा और चित्रक (चीता) का चूर्ण उतना ही मिलाकर खरल कर लेते हैं और दो टंक मात्रा में सेवन कराते हैं। इसका अनुपान उष्ण जल, गोमूत्र, घी या काँजी है।

वज्रगर्भ-संज्ञा पुं० [सं०] बौद्धों की महायान शाखा के अनुसार एक बोधिसत्व का नाम।

वज्रगोप-संज्ञा पुं० [सं०] बीरबहूटी नाम का कीड़ा। इंद्रगोप।

वज्रचर्मा-संज्ञा पुं० [सं० वज्रचर्मन्] गैंडा।

वज्रज्वाला-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) विरोचन दैत्य की पौत्री का नाम। (२) कुंभकर्ण की पत्नी।

वज्रडाकिनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] महायान शाखा के तांत्रिक बौद्धों की उपास्य डाकिनियों का एक वर्ग, जिसके अंतर्गत ये आठ डाकिनियाँ मानी जाती हैं—लास्या, माला, गीता, नृत्या, पुष्पा, धूपा, दीपा और गंधा। इनकी पूजा तिब्बत में होती है।

वज्रतुंड-संज्ञा पुं० [सं०] (१) गरुड़। (२) गणेश। (३) गीध। (४) मशक। मच्छड़। (५) थूहर। सेंहुँड़।

वज्रदंड-संज्ञा पुं० [सं०] एक अस्त्र का नाम जिसे इंद्र ने अर्जुन को प्रदान किया था।

वज्रदंत-संज्ञा पुं० [सं०] (१) चूहा। (२) सूअर।

वज्रदंती-संज्ञा स्त्री० [हिं० वज्र + दंत] एक प्रकार का पेड़ या पौधा।

विशेष—इसकी दतुवन अच्छी होती है और वैद्यक में इसकी जड़ वमनकारक कही गई है।

वज्रदंष्ट्र-संज्ञा पुं० [सं०] (१) इंद्रगोप नाम का कीड़ा। बीरबहूटी। (२) भागवत के अनुसार एक असुर का नाम।

वज्रद्रुम-संज्ञा पुं० [सं०] थूहर का वृक्ष। स्नुही। सेंहुँड़।

वज्रधर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) इंद्र। (२) बौद्धों की महायान शाखा के अनुसार आदि बुद्ध।

विशेष—तिब्बत के तांत्रिक बौद्ध मतानुसार ये प्रधान बुद्ध, प्रधान जिन, गुह्यपति तथा सब तथागतों के प्रधान मंत्री आदि, अनंत और वज्रसत्व हैं। अपदेवताओं ने इनसे हार मानकर प्रतिज्ञा की थी कि बौद्ध धर्म के विरुद्ध कभी प्रयत्न न करेंगे।

वज्रनख-संज्ञा पुं० [सं०] नृसिंह।

वज्रनाभ-संज्ञा पुं० [सं०] (१) स्कंद के एक अनुचर का नाम। (२) एक दानवराज। (३) राजा उक्थ के पुत्र का नाम।

वज्रपाणि-संज्ञा पुं० [सं०] (१) इंद्र। (२) ब्राह्मण। (३) बौद्धशास्त्रानुसार एक प्रकार की देवयोनि। (४) एक बोधिसत्व। ध्यानी बोधिसत्व।

वज्रप्रभ-संज्ञा पुं० [सं०] एक विद्याधर का नाम।

वज्रबाहु-संज्ञा पुं० [सं०] (१) इंद्र। (२) रुद्र। (३) अग्नि।

वज्रभैरव-संज्ञा पुं० [सं०] महायान शाखा के बौद्धों के एक देवता, जिन्हें भूटान में 'यमांतक शिव' कहते हैं। इनके अनेक मुख और हाथ माने जाते हैं।

वज्रमणि-संज्ञा पुं० [सं०] हीरा।

वज्रमुष्टि-संज्ञा पुं० [सं०] (१) इंद्र। (२) एक राक्षस का नाम। [illegible]

वज़ीफ़ा—संज्ञा पुं० [अ०] (१) वृत्ति। (२) वह वृत्ति या आर्थिक सहायता जो विद्वानों, छात्रों, संन्यासियों, दीनों या बिगड़े हुए रईसों आदि को दी जाती है। (३) वह जप या पाठ जो नियमपूर्वक प्रति दिन किया जाता है। (मुसलमान)

क्रि० प्र०—पढ़ना।

वज़ीफ़ादार—वि० [अ० वज़ीफ़ा + फ़ा० दार] वज़ीफ़ा पानेवाला।

वज़ीर—संज्ञा पुं० [अ०] (१) वह जो बादशाह को रियासत के प्रबंध में सलाह या सहायता दे। मंत्री। अमात्य। दीवान। (२) शतरंज की एक गोटी, जो बादशाह से छोटी और शेष सब मोहरों से बड़ी होती है। यह गोटी आगे, पीछे, दाहिने, बाएँ और तिरछे जिधर चाहे, उधर और जितने घर चाहे, उतने घर चल सकती है।

वज़ीरी—संज्ञा स्त्री० [अ०] वजीर का काम या पद।

संज्ञा पुं० घोड़ों की एक जाति जो बलूचिस्तान में पाई जाती है। इस जाति के घोड़े बड़े परिश्रमी और दौड़ने में बहुत तेज होते हैं। इनके कंधे ऊँचे और पुट्ठे चौड़े होते हैं।

वज़ू—संज्ञा पुं० [अ० वुज़ू] नमाज़ पढ़ने के पूर्व शौच के लिये हाथ पाँव आदि धोना। (मुसलमानों का नियम है कि नमाज़ पढ़ने के पूर्व वे पहले तीन बार हाथ धोते, फिर तीन बार कुल्ली करके नथनों में पानी देते हैं। फिर मुँह धोकर कुहनियों तक हाथ धोते हैं, और सिर पर पानी लगे हाथ फेरते हैं। अंत में पाँव धोते हैं। इसी आचार का नाम वज़ू है)। उ०—का भो वज़ू व मज्जन कीन्हे का मसजिद सिर नायें। हृदया कपट निमाज गुजारै का भो मक्का जायें।—कबीर।

क्रि० प्र०—करना।

वजूद—संज्ञा पुं० [अ०] (१) सत्ता। अस्तित्व। (२) शरीर। देह। (३) सृष्टि। (४) प्रकट या घटित होना। अभिव्यक्ति।

मुहा०—वजूद पकड़ना = प्रकट होना। अस्तित्व में आना। वजूद में आना = उत्पन्न होना। प्रकट होना। वजूद में लाना = उत्पन्न करना।

वजूहात—संज्ञा स्त्री० [अ० वजूह का बहु० रूप] कारणों का समूह।

विशेष—यह बहुवचन शब्द है; और इसका प्रयोग भी सदा बहुवचन में ही होता है।

वज्र—संज्ञा पुं० [सं०] (१) पुराणानुसार भाले के फल के समान एक शस्त्र जो इंद्र का प्रधान शस्त्र कहा गया है।

विशेष—इसकी उत्पत्ति की कथा ब्राह्मण ग्रंथों और पुराणों में लिखी हुई है। ऋग्वेद में उल्लेख है कि दधीचि ऋषि की हड्डी से इंद्र ने राक्षसों का ध्वंस किया। ऐतरेय ब्राह्मण में इसका इस प्रकार विवरण है। दधीचि जब तक जीते थे, तब तक असुर उन्हें देखकर भाग जाते थे। पर जब वे मर गए, तब असुरों ने उत्पात मचाना आरंभ किया। इंद्र दधीचि ऋषि की खोज में पुष्कर गए। वहाँ पता चला कि दधीचि का देहावसान हो गया। इस पर इंद्र उनकी हड्डी ढूँढ़ने को। पुष्कर क्षेत्र में उनके सिर की हड्डी मिली। उसी का वज्र बनाकर इंद्र ने असुरों का संहार किया। भागवत में लिखा है कि इंद्र ने वृत्रासुर का वध करने के लिये दधीचि से वज्र बनवाया था। मत्स्यपुराण के अनुसार जब विश्वकर्मा ने सूर्य्य को भ्रमयंत्र (खराद) पर चढ़ाकर खरादा था, तब छिलकर जो तेज निकला था, उसी से विष्णु का चक्र, रुद्र का शूल और इंद्र का वज्र बना था। वामनपुराण में लिखा है कि इंद्र जब दिति के गर्भ में घुस गए थे, तब वहाँ उन्हें बालक के पास ही एक मांस पिंड मिला था। इंद्र ने जब उसे हाथ में लेकर दबाया, तब वह लंबा हो गया और उसमें सौ गाँठें दिखाई पड़ीं। वही पीछे कठिन होकर वज्र बन गया। इसी प्रकार और और पुराणों में भी भिन्न भिन्न कथाएँ हैं।

पर्य्या०—ह्लादिनी। कुलिश। भिदुर। पवि। शतकोटि। स्वरु। शंब। दंभोलि। अशनि। स्वरस्। जंभारि। शतार। शतधार। आपोत्र। अब्जज। गिरिकंटक। गो। भ्रुकोप। दंभ इत्यादि।

वैदिक निघंटु के अनुसार—विद्युत्। नेमि। हेति। नम। पवि। सृक्। वृक। वध। अर्क। कुत्स। कुलिश। तुंज। तिग्म। मेनि। स्वधिति। सायक। परशु।

(२) विद्युत्। बिजली।

क्रि० प्र०—गिरना।—पड़ना।

मुहा०—वज्र पड़े = दैव से भारी दंड मिले। सत्यानाश हो। (स्त्रि०)

(३) हीरा। (४) एक प्रकार का लोहा। फ़ौलाद।

विशेष—वैद्यक के ग्रंथों में वज्रलौह के अनेक भेद कहे गए हैं। यथा—नीलपिंड, अरुणाभ, मोरक, नागकेसर, तित्तिराङ्ग, स्वर्णवज्र, शैवालवज्र, शोणवज्र, रोहिणी, कोकोक, ग्रंथिवज्र और मदन।

(५) भाला। बरछा। उ०—हरन रुक्मिनी होत है, तुम ओर मद भीर। अति अघात, कछु नाहिन सूझत, वज्र चलहिं ज्यों नीर।—सूर। (६) ज्योतिष में २२ व्यतीपात योगों में से एक। (७) वास्तु विद्या के अनुसार वह स्तंभ (खंभा) जिसका मध्य भाग अष्टकोण हो। (८) विष्णु के चरण का एक चिह्न। (९) अभ्रक। (१०) कोकिलाक्ष वृक्ष। (११) श्वेत कुश। (१२) काँजी। (१३) वज्रपुष्प। (१४) धात्री। (१५) थूहर का पेड़। सेहुँड़। (१६) कृष्ण के एक प्रपौत्र जो अनिरुद्ध के पुत्र थे। (१७) विश्वामित्र के एक पुत्र का नाम। (१८) बौद्ध मत में चक्राकार चिह्न। (१९) अकलबीर नाम का पौधा।

वि० (१) वज्र के समान कठिन। बहुत कड़ा या मज़बूत।

अत्यंत दृढ़ और पुष्ट। जैसे,—यह मसाला जब सूखेगा, तब वज्र हो जायगा। (२) घोर। दारुण। भीषण। उ०—वज्र अगिनि बिरहिनि हिय जारा। सुलगि सुलगि दहि कै भइ छारा।—जायसी।

वज्रकंकट-संज्ञा पुं० [सं०] हनुमान का एक नाम।

वज्रकंटक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) स्नुही वृक्ष। थूहर। सेंहुँड़। (२) कोकिलाक्ष वृक्ष।

वज्रकंटशाल्मली-संज्ञा पुं० [सं०] भागवत पुराण के अनुसार अट्ठाईस नरकों में से एक नरक का नाम।

वज्रकंद-संज्ञा पुं० [सं०] (१) जंगली सूरन या जिमीकंद। (२) शकरकंद। कंदा। (३) ताल के वृक्ष का फूल।

वज्रक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वज्रक्षार। (२) फलित ज्योतिष के अनुसार सूर्य्य के आठ उपग्रहों में से एक, जो सूर्य्य से तेईसवाँ नक्षत्र होता है।

वज्रकपाली-संज्ञा पुं० [सं० वज्रकपालिन्] बौद्धों की महायान शाखा के अनुसार एक बुद्ध का नाम।

वज्रकारक-संज्ञा पुं० [सं०] नख नामक सुगंधित द्रव्य।

वज्रकालिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] बुद्ध की माता मायादेवी का एक नाम।

वज्रकीट-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का कीड़ा जो पत्थर या काठ को काटकर उसमें छेद कर देता है।

विशेष—कहते हैं कि गंडक नदी में इन कीटों के द्वारा काटी हुई शिला ही शालग्राम की बटिया बन जाती है।

वज्रकूट-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक पर्वत का नाम। (२) हिमालय की चोटी पर का एक प्राचीन नगर।

वज्रकेतु-संज्ञा पुं० [सं०] मार्कंडेय पुराण के अनुसार एक राक्षस जो नरक का राजा था।

वज्रक्षार-संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक में एक रसायन योग जिसका व्यवहार गुल्म, शूल, अजीर्ण, शोथ तथा मंदाग्नि आदि उदर रोगों में होता है।

विशेष—साँभर, सेंधव, काच और सौवर्चल लवण तथा जवाखार और सज्जी सम भाग लेकर चूर्ण करते हैं, और उस चूर्ण को थूहर के दूध में भिगोकर तीन दिन तक छाया में सुखाते हैं। इसके उपरांत उस चूर्ण को आक (मदार) के पत्तों में लपेटकर एक घड़े में गजपुट द्वारा फूँकते हैं। जब वह भस्म हो जाता है, तब उसमें सोंठ, मिर्च, पीपल, त्रिफला, अजवायन, जीरा और चित्रक (चीता) का चूर्ण उतना ही मिलाकर खरल कर लेते हैं और दो टंक मात्रा में सेवन कराते हैं। इसका अनुपान उष्ण जल, गोमूत्र, घी या काँजी है।

वज्रगर्भ-संज्ञा पुं० [सं०] बौद्धों की महायान शाखा के अनुसार एक बोधिसत्व का नाम।

वज्रगोप-संज्ञा पुं० [सं०] बीरबहूटी नाम का कीड़ा। इंद्रगोप।

वज्रचर्मा-संज्ञा पुं० [सं० वज्रचर्मन्] गैंडा।

वज्रज्वाला-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) विरोचन दैत्य की पौत्री का नाम। (२) कुंभकर्ण की पत्नी।

वज्रडाकिनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] महायान शाखा के तांत्रिक बौद्धों की उपास्य डाकिनियों का एक वर्ग, जिसके अंतर्गत ये आठ डाकिनियाँ मानी जाती हैं—लास्या, माला, गीता, नृत्या, पुष्पा, धूपा, दीपा और गंधा। इनकी पूजा तिब्बत में होती है।

वज्रतुंड-संज्ञा पुं० [सं०] (१) गरुड़। (२) गणेश। (३) गीध। (४) मशक। मच्छड़। (५) थूहर। सेंहुँड़।

वज्रदंड-संज्ञा पुं० [सं०] एक अस्त्र का नाम जिसे इंद्र ने अर्जुन को प्रदान किया था।

वज्रदंत-संज्ञा पुं० [सं०] (१) चूहा। (२) सूअर।

वज्रदंती-संज्ञा स्त्री० [हिं० वज्र + दंत] एक प्रकार का पेड़ या पौधा।

विशेष—इसकी दतुवन अच्छी होती है और वैद्यक में इसकी जड़ वमनकारक कही गई है।

वज्रदंष्ट्र-संज्ञा पुं० [सं०] (१) इंद्रगोप नाम का कीड़ा। बीरबहूटी। (२) भागवत के अनुसार एक असुर का नाम।

वज्रद्रुम-संज्ञा पुं० [सं०] थूहर का वृक्ष। स्नुही। सेंहुँड़।

वज्रधर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) इंद्र। (२) बौद्धों की महायान शाखा के अनुसार आदि बुद्ध।

विशेष—तिब्बत के तांत्रिक बौद्ध मतानुसार ये प्रधान बुद्ध, प्रधान जिन, गुह्यपति तथा सब तथागतों के प्रधान मंत्री आदि, अनंत और वज्रसत्व हैं। उपदेवताओं ने इनसे हार मानकर प्रतिज्ञा की थी कि बौद्ध धर्म्म के विरुद्ध कभी प्रयत्न न करेंगे।

वज्रनख-संज्ञा पुं० [सं०] नृसिंह।

वज्रनाभ-संज्ञा पुं० [सं०] (१) स्कंद के एक अनुचर का नाम। (२) एक दानवराज। (३) राजा उक्थ के पुत्र का नाम।

वज्रपाणि-संज्ञा पुं० [सं०] (१) इंद्र। (२) ब्राह्मण। (३) बौद्धशास्त्रानुसार एक प्रकार की देवयोनि। (४) एक बोधिसत्व। ध्यानी बोधिसत्व।

वज्रप्रभ-संज्ञा पुं० [सं०] एक विद्याधर का नाम।

वज्रबाहु-संज्ञा पुं० [सं०] (१) इंद्र। (२) रुद्र। (३) अग्नि।

वज्रभैरव-संज्ञा पुं० [सं०] महायान शाखा के बौद्धों के एक देवता, जिन्हें भूटान में 'यमांतक शिव' कहते हैं। इनके अनेक मुख और हाथ माने जाते हैं।

वज्रमणि-संज्ञा पुं० [सं०] हीरा।

वज्रमुष्टि-संज्ञा पुं० [सं०] (१) इंद्र। (२) एक राक्षस का नाम। [illegible]

वज्रमूली–संज्ञा स्त्री० [सं०] माषपर्णी ।

वज्रयोगिनी–संज्ञा स्त्री० [सं०] तंत्रानुसार एक देवी । इसे वरद-योगिनी भी कहते हैं ।

वज्ररथ–संज्ञा पुं० [सं०] क्षत्रिय ।

वज्रलेप–संज्ञा पुं० [सं०] एक मसाला या पलस्तर जिसका लेप करने से दीवार, मूर्त्ति आदि अत्यंत दृढ़ और मजबूत हो जाती हैं ।

विशेष—यह दो तरह से बनता है । एक में तो तेंदू और कैथ के कच्चे फल, सेमल के फूल, शल्लकी (सलई) के बीज, धन्वन की छाल और बच को लेकर एक द्रोण पानी में उबालते हैं । जब जलकर आठवाँ भाग रह जाता है, तब उसे उतारकर उसमें गंधा बिरोजा, बोल, गूगल, भिलावाँ, कुंदुरु गोंद, राल, अलसी और बेल का गूदा घोटकर मिलाते हैं । दूसरा मसाला इस प्रकार है । लाख, कुंदुरु गोंद, बेल का गूदा, गेंगेरन का फल, तेंदू का फल, महुए का फल, मजीठ, राल, बोल और आँवला इन सब को द्रोण भर पानी में उबालते हैं । जब अष्टमांश रह जाता है, तब काम में लाते हैं ।

वज्रवारक–संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार जैमिनि, सुमंत, वैशंपायन, पुलस्त्य और पुलह नामक पाँच ऋषि, जिनका नाम लेने से वज्रपात का भय नहीं रहता ।

वज्रवाराही–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) बौद्धों की एक देवी का नाम ।

पर्य्या०—मारीची । त्रिमुखी । वज्रकालिका । विकटा । गौरी ।

(२) बुद्ध की माता मायादेवी का एक नाम ।

वज्रविष्कंभ–संज्ञा पुं० [सं०] गरुड़ के एक पुत्र का नाम ।

वज्रशार–संज्ञा पुं० [सं०] महाकाल रुद्र का एक नाम ।

वज्रवेग–संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक राक्षस का नाम । (२) एक विद्याधर का नाम ।

वज्रव्यूह–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की सेना की रचना जो दुधारे खड्ग के आकार में स्थित की जाती थी ।

वज्रशाखा–संज्ञा स्त्री० [सं०] जैन मत के एक संप्रदाय का नाम जिसे वज्र स्वामी ने चलाया था ।

वज्रशृंखला–संज्ञा स्त्री० [सं०] जैन मतानुसार सोलह महाविद्याओं में से एक ।

वज्रसंघात–संज्ञा पुं० [सं०] (१) भीमसेन । (२) पत्थर जोड़ने का एक मसाला जिसमें आठ भाग सीसा, दो भाग काँसा और एक भाग पीतल होता था । इससे पत्थर की जोड़ाई की जाती थी ।

वज्रसंहत–संज्ञा पुं० [सं०] ललित विस्तर के अनुसार एक बुद्ध का नाम ।

वज्रसत्व–संज्ञा पुं० [सं०] एक ध्यानी बुद्ध का नाम ।

वज्रसमाधि–संज्ञा स्त्री० [सं०] बौद्ध धर्म के अनुसार एक प्रकार की समाधि ।

वज्रसार–संज्ञा पुं० [सं०] हीरा ।

वज्रसूर्य्य–संज्ञा पुं० [सं०] एक बुद्ध का नाम ।

वज्रहस्त–संज्ञा पुं० [सं०] इंद्र ।

वज्रांग–संज्ञा पुं० [सं०] (१) सर्प । साँप । (२) हनुमान ।

वज्रांगी–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) गवेधुक । कौड़िल्ला । (२) हड़जोड़ नाम की लता जो चोट लगने पर लगाई जाती है ।

वज्रा–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) स्नुही । थूहर । (२) गुड़ुच । (३) दुर्गा ।

वज्राचार्य्य–संज्ञा पुं० [सं०] नैपाली बौद्धों के अनुसार तांत्रिक बौद्ध आचार्य जिसे तिब्बत में लामा कहते हैं । यह गृहस्थ होता है और अपने पुत्र कलत्र के साथ विहार में रह सकता है । नेपाल और तिब्बत में ऐसे आचार्यों का बड़ा मान है ।

वज्राभिषवन–संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल का एक प्रकार का अनुष्ठान जिसमें तीन दिन तक जौ का सत्तू पीकर रहते थे ।

वज्राभ्र–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का अभ्रक जो काले रंग का होता है ।

वज्रायुध–संज्ञा पुं० [सं०] इंद्र ।

वज्रावर्त–संज्ञा पुं० [सं०] एक मेघ का नाम । उ०—सुनत मेघवर्तक सजि सैन लै आये । जलवर्त, वारिवर्त, पवनवर्त, वज्रावर्त, आगिवर्तक जलद संग लाये ।—सूर ।

वज्रासन–संज्ञा पुं० [सं०] (१) हठ योग के चौरासी आसनों में से एक जिसमें गुदा और लिंग के मध्य के स्थान को बाएँ पैर की एड़ी से दबाकर उसके ऊपर दाहिना पैर रखकर पालथी लगाकर बैठते हैं । (२) वह शिला जिस पर बैठकर बुद्धदेव ने बुद्धत्व लाभ किया था । यह गया जी में बोधिद्रुम के नीचे थी ।

वज्री–संज्ञा पुं० [सं० वज्रिन्] (१) इंद्र । (२) एक प्रकार की ईंट ।

संज्ञा स्त्री० (१) थूहर । स्नुही । (२) सिधारा । नरसेज ।

वज्रेश्वरी–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) बौद्धों की एक देवी । (२) एक तांत्रिक अनुष्ठान जिसे वज्रवाहनिका भी कहते हैं । इसमें वज्र बनाकर मंत्रों द्वारा अभिषेक करते हैं और उस पर सोने से मंत्र लिखते हैं । इसके उपरांत उस वज्र को किसी जितेंद्रिय पुरुष के हाथ में दे देते हैं और लाख बार मंत्र जप करके वज्रकुंड में हवन करते हैं । इस प्रयोग से शत्रुओं पर विजय प्राप्त होती है ।

वज्रोली–संज्ञा स्त्री० [हिं० वज्र] हठ योग की एक मुद्रा का नाम ।

वट–संज्ञा पुं० [सं०] बरगद का पेड़ ।

वटक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) बड़ी टिकिया या गोला । बड़ा । (२)

बड़ा। पकौड़ा। (३) एक तौल जो आठ मासे की होती और सोना तौलने के काम में आती थी। इसे क्षुद्रम, द्रक्षण और कोक भी कहते थे। १० गुंजा = १ मासा, ४ मासा = १ शाण, २ शाण = १ वटक।

वटच्छद-संज्ञा पुं० [सं०] श्वेत बर्बरी। सफेद वनतुलसी।

वटपत्रा-संज्ञा स्त्री० [सं०] वृत्तमल्लिका नामक फूल का पौधा।

वटपत्री-संज्ञा स्त्री० [सं०] पाखान-भेद। पथरफोड़।

वटर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) चोर। (२) बटेर नामक पक्षी। (३) पगड़ी। (४) विस्तर। (५) मथानी।

वटसावित्री-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक व्रत का नाम जिसमें स्त्रियाँ वट का पूजन करती हैं।

वटारक-संज्ञा पुं० [सं०] रस्सी।

वटिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] वटी। गोली।

वटी-संज्ञा स्त्री० [सं०] गोली या टिकिया। वटी।

वटु-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बालक। (२) ब्रह्मचारी। माणवक।

वटुक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बालक। (२) माणवक। ब्रह्मचारी। (३) एक भैरव। बटुकभैरव।

वटोदका-संज्ञा स्त्री० [सं०] भागवत के अनुसार एक नदी जो पवित्र मानी जाती है।

वठर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) अंबष्ठ नामक एक वर्णसंकर जाति। (२) शब्दकार।
वि० (१) मूर्ख। (२) शठ। (३) मंद।

वड़व-संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० वड़वा] घोड़ा।

वड़भी-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह शाला या घर जो किसी प्रासाद के शिखर पर हो। गृहचूड़ा। धौरहर। धरहरा।
पर्य्या०—गोपानसी। चंद्रशाला। कूटागार।

वडिश-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वंसी जिससे मछली फँसाई जाती है। कँटिया। (२) चिकित्सकों का एक अस्त्र जिससे वेधते या नश्तर लगाते हैं। (वैद्यक)

वणिक्-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जो वाणिज्य के द्वारा अपनी जीविका का निर्वाह करता हो। रोजगार करनेवाला। (२) वैश्य। बनिया।

वतंस-संज्ञा पुं० दे० "अवतंस"।

वतन-संज्ञा पुं० [अ०] (१) वासस्थान। (२) जन्मभूमि।

वतीरा-संज्ञा पुं० [अ०] (१) ढंग। रीति। प्रथा। (२) चाल ढाल। (३) लत। टेव।

वत्स-संज्ञा पुं० [सं०] (१) गाय का बच्चा। बछड़ा। (२) शिशु। बालक। बच्चा। (३) वत्सर। वर्ष। (४) कंस का एक अनुचर। वत्सासुर। (५) इंद्रजौ। (६) वक्ष। उर। छाती। (७) एक देश का नाम।

वत्सक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) पुष्पकसीस। (२) कुटज। (३) इंद्रजौ। (४) निर्गुंडी।

वत्सघोष-संज्ञा पुं० [सं०] एक देश का नाम जो नक्षत्रों के प्रथम वर्ग में है।

वत्सतर-संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० वत्सतरी] जवान बछड़ा जो जोता न गया हो। दोहान।

वत्सतरी-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह बछिया जो तीन वर्ष की हो। कलोर।
विशेष—वृषोत्सर्ग में चार वत्सतरी के साथ एक वृष उत्सर्ग करने का विधान है।

वत्सनाभ-संज्ञा पुं० [सं०] एक विष जिसे 'बछनाग' या 'बच्छनाग' भी कहते हैं। मीठा ज़हर।
विशेष—इसका पौधा हिमालय के कम ठंढे भागों में होता है। इसकी जड़ विशेषतः नैपाल से आती है। इसके पत्ते सँभालू के पत्तों के समान होते हैं। विष जड़ में होता है। यह विष शोधकर औषधों में दिया जाता है। शोधन के लिये जड़ के छोटे छोटे टुकड़े काटकर तीन दिन तक गोमूत्र में भिगोते हैं। फिर छाल अलग करके लाल सरसों के तेल में भिगोए हुए कपड़े में पोटली बाँधकर रखते हैं। उपयुक्त मात्रा और युक्ति के साथ सेवन करने से यह रसायन, योगवाही, वातनाशक और त्रिदोषघ्न कहा गया है। वैद्य लोग इसे ज्वर और लकवे में देते हैं। इसके प्रयोग में बड़ी सावधानी चाहिए; क्योंकि अधिक मात्रा में होने से यह विष प्राणनाशक होता है। इसके योग से मृत्युंजय रस, आनंदभैरव रस, पंचवक्त्र रस आदि कई प्रसिद्ध औषधें बनती हैं।
पर्य्या०—अमृत। विष। उग्र। महौषध। गरल। मारण। नाग। स्तोकक। प्राणहारक। स्थावर।

वत्सर-संज्ञा पुं० [सं०] उतना काल या समय जितने में पृथ्वी सूर्य्य की एक परिक्रमा पूरी करती है और सब ऋतुओं की एक आवर्त्तनी हो जाती है। काल का वह मान जो बारह महीनों या ३६५ दिनों का होता है। वर्ष। साल। बरस।

वत्सराज-संज्ञा पुं० [सं०] एक राजा का नाम।
विशेष—इस नाम के अनेक राजा हो गए हैं। एक तो कौशांबी का प्रसिद्ध राजा था, जो गौतम बुद्ध का समसामयिक था। चौहान वंश में भी एक वत्सराज हुआ। लाट देश का एक चौलुक्यवंशी राजा इस नाम का हुआ है। महोबे के चंदेल राजाओं का एक मंत्री वत्सराज था, जो आल्हा गानेवालों में "बच्छराज" के नाम से प्रसिद्ध है।

वत्सल-वि० [सं०] [स्त्री० वत्सला] (१) पुत्र या संतान के प्रति पूर्ण स्नेह-युक्त। बच्चे के प्रेम से भरा हुआ। जैसे,—पुत्रवत्सल पिता, पुत्र-वत्सला माता। (२) अपने से छोटों के प्रति अत्यंत स्नेहवान् या कृपालु। जैसे,—प्रजावत्सल राजा।
संज्ञा पुं० साहित्य में कुछ लोगों के द्वारा माना हुआ दसवाँ

वात्सल्य रस, जिसमें पिता या माता का अपनी संतति के प्रति रतिभाव या प्रेम प्रदर्शित होता है।

वत्सादी–संज्ञा स्त्री० [सं०] तरबूज। कलींदा।

वत्सादनी–संज्ञा स्त्री० [सं०] गुडुच। गिलोय।

वत्सासुर–संज्ञा पुं० [सं०] कंस का अनुचर एक राक्षस जिसे कृष्ण ने बाल्यावस्था में मारा था।

वदंती–संज्ञा स्त्री० [सं०] कथा। बात।

वदक–संज्ञा पुं० [सं०] वक्ता। कहनेवाला।

वदतोव्याघात–संज्ञा पुं० [सं०] कथन का एक दोष जिसमें कोई एक बात कहकर फिर उसके विरुद्ध बात कही जाती है।

वदन–संज्ञा पुं० [सं०] (१) मुख। मुँह। (२) अगला भाग। (३) कथन। बात कहना।

वदान्य–वि० [सं०] (१) अतिशय दाता। उदार। (२) मधुर-भाषी। अपनी बात से दूसरों को संतुष्ट करनेवाला।

वदाल–संज्ञा पुं० [सं०] पाठीन मत्स्य। पहिना मछली।

वदि–संज्ञा पुं० [सं० अवदिन] कृष्ण पक्ष। जैसे,—जेठ वदि ४।

वदुसाना–क्रि० स० [सं० विदूषण] दोष देना। भला बुरा कहना। इल्ज़ाम लगाना। उ०—हम सब जानत हरि की घातें। तुम जो कहत हरि राज करत नहिं जानत हौ कछु का तें? उग्रसेन बैठारि सिंघासन लेग कहत कुल नाते। तब तें राज, राज तें आगे तुम सुन समुझत बातें। सूरस्याम यहि भाँति सयाने हमही को वदुसाते।—सूर।

वध–संज्ञा पुं० [सं०] घात। नाश। मारण। वि० दे० "वध"।

वधक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) घातक। हिंसक। (२) व्याध। (३) मृत्यु। (४) दे० "बधक"।

वधजीवी–संज्ञा पुं० [सं० वधजीविन्] वह जो वध करके जीविका निर्वाह करता हो।

वधत्र–संज्ञा पुं० [सं०] अस्त्र। हथियार।

वधभूमि–संज्ञा स्त्री० दे० "बधभूमि"।

वधांगक–संज्ञा पुं० [सं०] कारागार। कैदखाना।

वधुका–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) पुत्र की स्त्री। बहू। (२) दुल-हन। स्त्री।

वधू–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) नव विवाहिता स्त्री। दुलहन। (२) पत्नी। भार्या। (३) पुत्र की बहू। पतोहू।

वधूटी–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) नई ब्याही हुई स्त्री। दुलहिन। (२) भार्या। पत्नी। (३) पुत्र-वधू। पतोहू।

वधूत–संज्ञा पुं० दे० "अवधूत"। उ०—श्रवन कुंडल गरल कंठ करुणाकंद सच्चिदानंद वंदे वधूतं।—तुलसी।

वध्य–वि० [सं०] मार डालने योग्य। वधार्ह।

वध्र–संज्ञा पुं० [सं०] सीसा नाम की धातु।

वध्रि–संज्ञा पुं० [सं०] बधिया।

वध्रिका–संज्ञा पुं० [सं०] वह पुरुष जो बधिया हो। खोजा।

वध्र्यश्व–संज्ञा पुं० [सं०] (१) आख़ता घोड़ा। (२) एक प्राचीन राजा का नाम।

वन–संज्ञा पुं० [सं०] (१) वन। जंगल। (२) वाटिका। (३) जल। (४) घर। आलय। (५) चमसा नामक यज्ञ पात्र। (६) रश्मि। (७) शंकराचार्य्य के अनुयायी संन्यासियों की एक उपाधि। (८) फूलों का गुच्छा।

वनकणा–संज्ञा स्त्री० [सं०] वनपिप्पली।

वनकुंडल–संज्ञा पुं० [सं०] अच्छी जाति का सूरन या ज़िमींकंद।

वनचंदन–संज्ञा पुं० [सं०] (१) अगुरु। अगर। (२) देवदार।

वनचंद्रिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] मल्लिका।

वनचर–संज्ञा पुं० [सं०] (१) वन में भ्रमण करने या रहनेवाला। (२) जंगली मनुष्य या प्राणी। (३) शरभ नामक वनजंतु।

वनज–संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जो वन (जंगल या पानी) में उत्पन्न हो। (२) कमल। (३) मुस्तक। मोथा। (४) तुंबुरु का फल। (५) जंगली बिजौरा नीबू। (६) वनकुलथी।

वनजा–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) मुद्गपर्णी। (२) निर्गुंडी। (३) सफेद कंटकारि। (४) वनतुलसी। (५) असगंधा। (६) वनकपासी।

वनजीर–संज्ञा पुं० [सं०] काली जीरी।

वनतिक्त–संज्ञा पुं० [सं०] हरीतकी। हड़।

वनतिक्तिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) पाठा। (२) पथरी नाम का शाक।

वनद–संज्ञा पुं० [सं०] मेघ। बादल।

वनदीप–संज्ञा पुं० [सं०] वनचंपक।

वनदेव–संज्ञा पुं० [सं०] वन का अधिष्ठाता देवता।

वनदेवी–संज्ञा स्त्री० [सं०] वन की अधिष्ठात्री देवी।

वनपिप्पली–संज्ञा स्त्री० [सं०] छोटी पीपल।

वनप्रिय–संज्ञा पुं० [सं०] (१) कोकिल। (२) बहेड़े का वृक्ष। (३) कपूर कचरी। (४) साँभर हिरन।

वनमल्लिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] सेवती का पौधा या फूल।

वनमाला–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) वन के फूलों की माला। (२) एक विशेष प्रकार की माला जो सब ऋतुओं में होनेवाले अनेक प्रकार के फूलों से बनती और घुटने तक लंबी होती थी। ऐसी माला श्रीकृष्ण धारण करते थे।

वनमाली–वि० [सं०] वनमाला धारण करनेवाला।

संज्ञा पुं० श्रीकृष्ण।

वनमुत–संज्ञा पुं० [सं०] मेघ। बादल।

वनमूर्द्धजा–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) जंगली बिजौरा नीबू। (२) काकड़ासिंगी।

वनराज–संज्ञा पुं० [सं०] (१) सिंह। (२) अश्मंतक वृक्ष।

वनराजि, वनराजी–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) वन की श्रेणी।

वन-समूह। वृक्ष-समूह। (२) वन के बीच गई हुई पगडंडी। (३) वसुदेव की एक दासी का नाम।

वनरुह-संज्ञा पुं० [सं०] कमल।

वनलक्ष्मी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) वन की शोभा। वनश्री। (२) कदली। केला।

वनवास-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वन का निवास। जंगल में रहना। (२) बस्ती छोड़कर जंगल में रहने की व्यवस्था या विधान।

मुहा०—वनवास देना = जंगल में रहने की आज्ञा देना। बस्ती छोड़ने की आज्ञा देना। वनवास लेना = बस्ती छोड़कर जंगल में रहना अंगीकार करना।

वि० जंगल में रहनेवाला। वनवासी।

वनवासक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शाल्मली कंद। (२) एक प्राचीन नगर जो कादंब राजाओं की राजधानी था।

वनवासी-वि० [सं० वनवासिन्] [स्त्री० वनवासिनी] वन में रहनेवाला। बस्ती छोड़कर जंगल में निवास करनेवाला।

संज्ञा पुं० (१) ऋषभ नामक ओषधि। (२) वाराही कंद। (३) शाल्मली कंद। (४) नीलमहिष कंद। (५) द्रोणकाक। डोम कौआ। बड़ा काला कौआ। (६) दक्षिण में तुंगभद्रा की शाखा वरदा नदी के किनारे बसा हुआ एक प्राचीन नगर जो कादंब राजाओं का प्रधान नगर था।

वनविलासिनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] शंखपुष्पी लता।

वनशूकरी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) कपिकच्छु। केवाँच। (२) जंगली मादा सूअर।

वनशृंगाट-संज्ञा पुं० [सं०] गोखरू।

वनसंकट-संज्ञा पुं० [सं०] मसूर।

वनस्थ-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वन में रहनेवाला। (२) वानप्रस्थ। (३) मृग।

वनस्थली-संज्ञा स्त्री० [सं०] वन भूमि। अरण्य देश। जंगली ज़मीन।

वनस्था-संज्ञा स्त्री० [सं०] अश्वत्थ। पीपल का पेड़।

वनस्पति-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) वह वृक्ष जिसमें फूल न हों (अर्थात् न दिखाई पड़ें) केवल फल ही हों। जैसे,—गूलर, बड़, पीपल आदि वट वर्ग के वृक्ष। (मनु०) (२) वृक्ष मात्र। पेड़। पौधा। (३) वट वृक्ष। बरगद।

संज्ञा पुं० धृतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम।

वनस्पति शास्त्र-संज्ञा पुं० [सं०] वह शास्त्र जिसके द्वारा यह जाना जाता हो कि पौधों और वृक्षों आदि के क्या क्या रूप और कौन कौन सी जातियाँ होती हैं, उनके भिन्न भिन्न अंगों की बनावट कैसी होती है और कलम आदि के द्वारा किस प्रकार के नए पौधे या वृक्ष उत्पन्न होते हैं। वनस्पति विज्ञान।

वनहास-संज्ञा पुं० [सं०] (१) काश। काँस। (२) कुंद का फूल।

वनांत-संज्ञा पुं० [सं०] वन प्रांत। जंगली भूमि या मैदान।

वनायु-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्राचीन देश का नाम जहाँ का घोड़ा अच्छा होता था। (२) इस देश में रहनेवाली जाति। (३) पुरुरवा के एक पुत्र का नाम।

वनायुज-संज्ञा पुं० [सं०] वनायु देश का घोड़ा।

वनालक्त-संज्ञा पुं० [सं०] गेरू।

वनालिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] हस्तिशुंडी लता। हाथी सूँडी।

वनाश्रय-संज्ञा पुं० [सं०] काला कौआ। डोम कौआ।

वनिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] कुंजवन।

वनिता-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) अनुरक्ता स्त्री। प्रिया। प्रियतमा। (२) स्त्री। औरत। (३) छः वर्णों की एक वृत्ति जिसे 'तिलका' और 'डिल्ला' भी कहते हैं। इसमें दो सगण होते हैं। जैसे,—ससि भाल धरो। शिव भाल धरो।

वनितामुख-संज्ञा पुं० [सं०] मार्कंडेय पुराण के अनुसार मनुष्यों की एक जाति।

वनी-संज्ञा पुं० [सं० वनिन्] वानप्रस्थ।

संज्ञा स्त्री० [सं०] छोटा वन। वनस्थली। उ०—अति चंचल जहँ चलदलै, विधवा बनी, न नारि।—केशव।

वनेकिंशुक-संज्ञा पुं० [सं०] वह वस्तु जो वैसे ही बिना माँगे मिले, जैसे वन में किंशुक बिना माँगे या प्रयास किए मिलता है।

वनेचर-संज्ञा पुं० [सं०] वन में फिरनेवाला मनुष्य। वनचर। जंगली आदमी।

वनेज्ञा-संज्ञा पुं० [सं०] (१) आम। (२) पर्पट। पापड़ा।

वनोत्सर्ग-संज्ञा पुं० [सं०] (१) देवमंदिर, वापी, कूप, उपवन आदि का उत्सर्ग जो शास्त्रविधि से किया जाता है। मंदिर, कूआँ आदि बनवाकर सर्वसाधारण के लिये दान करना। (२) ऐसे दान या उत्सर्ग की विधि।

वनौकस-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जिसका घर वन में हो। वनवासी। (२) बंदर।

वनौषध-संज्ञा स्त्री० [सं०] वन की ओषधियाँ। जंगली जड़ी बूटी।

वन्य-वि० [सं०] (१) वन में उत्पन्न होनेवाला। वनोद्भव। (२) जंगली।

संज्ञा पुं० (१) वनसूरन। (२) क्षीर विदारी। (३) वाराही कंद। (४) बाँस।

वन्या-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) मुद्गपर्णी। (२) गोपालककड़ी। (३) गुंजा। (४) भद्रमुस्ता। (५) अश्वगंध। असगंध।

वपन-संज्ञा पुं० [सं०] [वि० वपनीय] (१) केशमुंडन। (२) बीज बोना।

वपनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) वह स्थान जहाँ नाई क्षौर कर्म करते हैं। वह स्थान जहाँ हज्जाम बैठकर हजामत बनाते हैं। (२) वह स्थान जहाँ जुलाहे कपड़ा बुनते हैं।

वपनीय-वि० [सं०] बोने योग्य।

वपा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) चरबी। मेद। (२) वल्मीक। बाँबी।

वपु-संज्ञा पुं० [सं० वपुस्] (१) शरीर। देह। (२) रूप।

वपुष्टमा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) पद्मचारिणी लता। (२) हरिवंश के अनुसार काशीराज की एक कन्या, जो परीक्षित के पुत्र जन्मेजय से ब्याही थी।

विशेष—हरिवंश में लिखा है कि राजा जन्मेजय ने एक अश्वमेध यज्ञ किया। उनकी पत्नी वपुष्टमा साथ ही बैठी थी। इंद्र ने अश्व के शरीर में प्रविष्ट होकर उसके साथ सहवास किया। जब मारा हुआ अश्व जीवित दिखाई पड़ा, तब इंद्र की चाल का पता लगा। जन्मेजय ने क्रुद्ध होकर इंद्र को शाप दिया कि अब से अश्वमेध में तुम्हारा कोई पूजन न करेगा। उन्होंने ऋत्विक् ऋषियों को भी देश से निकाल दिया और वपुष्टमा का भी तिरस्कार किया। उसी समय गंधर्वराज विश्वावसु ने आकर राजा को समझाया कि इंद्र ने तुम्हारे अश्वमेध यज्ञों से डरकर रंभा अप्सरा को वपुष्टमा का शरीर धारण करा के भेजा है। ऋत्विजों को निकालने से तुम्हारा अश्वमेध का पुण्य क्षीण हो गया।

वप्ता-संज्ञा पुं० [सं० वप्तृ] (१) पिता। जनक। (२) कवि। (३) नापित। नाई। (४) बीज बोनेवाला।

वप्र-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मिट्टी का ऊँचा धुस्स जो गढ़ या नगर की खाईं से निकली हुई मिट्टी के ढेर से चारों ओर उठाया जाता है और जिसके ऊपर प्राकार या दीवार होती है। चय। मृत्तिकास्तूप। (२) क्षेत्र। खेत। (३) रेणु। धूल। (४) ऊँचा किनारा। कगार। (नदी आदि का) (५) पहाड़ की चोटी। (६) टीला। भीटा। (७) सीसा नाम की धातु। (८) प्रजापति। (९) द्वापर युग के एक व्यास। (१०) चौदहवें मनु के एक पुत्र का नाम।

वप्रक-संज्ञा पुं० [सं०] वृत्त की परिधि। गोलाई का घेरा। चक्कर।

वप्रक्रिया-संज्ञा स्त्री० दे० "वप्रक्रीड़ा"।

वप्रक्रीड़ा-संज्ञा स्त्री० [सं०] टीले या ऊँचे उठे हुए मिट्टी के ढेर को हाथी, साँड़ आदि का दाँतों या सींगों से मारना, जो उनकी एक क्रीड़ा है।

वप्रा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) मजीठ। (२) जैनों के इक्कीसवें जिन नेमिनाथ की माता का नाम।

वप्रि-संज्ञा पुं० [सं०] (१) क्षेत्र। (२) समुद्र। (३) स्थान की दुर्गमता। दुर्गति।

वप्री-संज्ञा स्त्री० [सं०] वल्मीक। बाँबी।

वफ़ा-संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) वादा पूरा करना। बात निबाहना। यौ०—वफ़ादार। वफ़ादारी।
(२) निर्वाह। पूर्णता। उ०—अब कूच ही करना सही इस खेत से न वफ़ा लही।—सूदन।
क्रि० प्र०—करना।
(३) मुरौवत। सुशीलता। उ०—वे सावे ते बेवफ़ा बफ़ा रहै ठहराइ। मीनें कीनें दूर ज्यों तेही तें रह जाइ।—रसनिधि।

वफ़ादार-वि० [अ० वफ़ा + फ़ा० दार] [संज्ञा वफ़ादारी] (१) वचन या कर्त्तव्य का पालन करनेवाला। (२) अपने काम को ईमानदारी से करनेवाला। (३) सच्चा।

वफ़ात-संज्ञा स्त्री० [अ०] मरण। मृत्यु।
क्रि० प्र०—करना।—पाना।—होना।

वबा-संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) मरी। महामारी। फैलनेवाला भयंकर रोग। जैसे,—हैजा, प्लेग आदि। (२) छूत का रोग।
क्रि० प्र०—आना।—पड़ना।—फैलना।

वबाल-संज्ञा पुं० [अ०] (१) बोझ। भार। (२) आपत्ति। कठिनाई। (३) घोर विपत्ति। आफ़त। (४) ईश्वरीय कोप। (५) पाप का फल।
क्रि० प्र०—होना।
मुहा०—किसी का वबाल पड़ना = किसी को दुःख पहुँचाने का फल मिलना। दुखिया की आह पड़ना। जैसे,—इसका वबाल तेरे ऊपर पड़ेगा।

वभ्रु-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्रकार का सर्प। (सुश्रुत) (२) एक यदुवंशीय योद्धा। वि० दे० "बभ्रु"।

वभ्रुवाहन-संज्ञा पुं० दे० "बभ्रुवाहन"।

वमन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) कै करना। उलटी करना। छर्दि। (२) वमन किया हुआ पदार्थ। (३) आहुति। (४) पीड़ा।

वमनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] जोंक।

वमनीया-संज्ञा स्त्री० [सं०] मक्खी।

वमि-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) एक रोग जिसमें मनुष्य का जी मतलाता है, मुँह से पानी छूटता है और जो कुछ वह खाता पीता है, उसे मुँह के रास्ते निकालकर बाहर फेंक देता या कै कर देता है।

विशेष—यह वमन रोग पाँच प्रकार का माना गया है—वातज, पित्तज, कफज, सन्निपातज और आगंतुक। वातज में बगल और छाती में दर्द, मस्तक और नाभि में दूख तथा अंगों में सुई छेदने की सी पीड़ा होती है। वमन बड़े वेग से और बड़े शब्द के साथ अधिक मात्रा में निकलता है। पित्तज में मूर्च्छा, प्यास, मुँह सूखना, तालु और आँखों में जलन और आँखों के सामने अँधेरा छाना आदि लक्षण होते हैं और वमन कुछ हरा और पीला होता है। कफज में मुँह मीठा रहता है, कुछ कफ निकलता है, भोजन की अनिच्छा होती है, शरीर भारी जान पड़ता है और वमन

सफेद, गाढ़ा और मीठा होता है; तथा वमन के समय रोंगटे खड़े हो जाते हैं और बड़ी पीड़ा होती है। आगंतुक वमन कोई बुरी वस्तु खा लेने या घृणित वस्तु देखने या सूँघने से एक बारगी हो जाता है।

(२) अग्नि।

वम्री-संज्ञा स्त्री० [सं०] दीमक।

वम्रीकूट-संज्ञा पुं० [सं०] वल्मीक। बाँबी। बिमौट।

वयं ✱-सर्व० [सं० म, पु० बहु] हम। उ०—विकटतर वक्र क्षुर धार प्रमदा तीव्र दर्प कंदर्प खर खड्गधारा। धीर गंभीर मन पीर कारक तत्र केवरा का वयं विगत सारा।—तुलसी।

वयःक्रम-संज्ञा पुं० [सं०] क्रमागत जीवन काल। अवस्था। उम्र।

वयःसंधि-संज्ञा स्त्री० [सं०] बाल्यावस्था और यौवनावस्था के बीच की स्थिति। लड़कपन और जवानी के बीच का काल।

वय-संज्ञा स्त्री० [सं० वयस्] (१) बीता हुआ जीवन-काल। अवस्था। उम्र। (२) बल। (३) पक्षी।

संज्ञा पुं० [सं०] (१) तंतुवाय। जुलाहा। (२) बया पक्षी।

संज्ञा स्त्री० जुलाहों के करघे में सूत का एक जाल। वि० दे० "बै" या "बय"।

वयन-संज्ञा पुं० [सं०] बुनने की क्रिया या भाव। बुनना।

वयस्-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बीता हुआ जीवन काल। अवस्था। उम्र। (२) पक्षी।

वयस्क-वि० [सं०] [स्त्री० वयस्का] (१) उमर का। अवस्था-वाला।

विशेष—इस अर्थ में इस शब्द का प्रयोग समस्त पद के अंत में होता है। जैसे अल्पवयस्क, समवयस्क इत्यादि।

(२) पूरी अवस्था को पहुँचा हुआ। जो अब बालक न हो। सयाना। बालिग़।

वयस्कृत्-वि० [सं०] आयुःप्रद। जीवन देनेवाला।

वयस्थ-वि० [सं०] [स्त्री० वयस्था] (१) प्राप्तवयस्क। (२) युवा। युवक। (३) समवयस्क।

संज्ञा पुं० समवयस्क पुरुष।

वयस्था-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) आमलकी। आँवला। (२) हरीतकी। हड़। (३) गुडुच। (४) छोटी इलायची। (५) काकोली। (६) सेमल। (७) युवती।

वयस्थान-संज्ञा पुं० [सं०] यौवन।

वयस्य-संज्ञा पुं० [सं०] (१) समवयस्क। एक उमरवाले। हम-जोली। (२) मित्र।

वयस्या-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सखी। (२) ईंट।

वयोवृद्ध-वि० [सं०] जो अवस्था में बड़ा हो। बड़ा बूढ़ा।

वरंच-अव्य० [सं०] (१) ऐसा न होकर ऐसा। बल्कि। अपितु। (२) परंतु। लेकिन।

वरंड-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बंसी की डोर। शिस्त। (२) समूह। (३) मुहाँसा। (४) घास का गट्ठर। (५) फीलखाने आदि में की वह दीवार जो दो लड़ाके हाथियों के बीच में लड़ाई बचाने के लिये बनाई जाती है।

वरंडक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मिट्टी का भीटा। ढूह। (२) दो लड़ाके हाथियों के बीच की दीवार। (३) हाथी की पीठ पर कसा जानेवाला हौदा।

वरंडा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) कटारी। कत्ती। (२) बत्ती।

संज्ञा पुं० दे० "बरामदा"।

वर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) किसी देवता या बड़े से माँगा हुआ मनोरथ। वह बात जिसके लिये किसी देवी देवता या बड़े से प्रार्थना की जाय। जैसे,—उसने शिव से यह वर माँगा।

क्रि० प्र०—माँगना।

(२) किसी देवता या बड़े से प्राप्त किया हुआ फल या सिद्धि। वह बात जो किसी देवता या बड़े की प्रसन्नता से प्राप्त हुई हो। जैसे,—उसे यह वर था कि वह किसी के हाथ से न मरेगा।

क्रि० प्र०—देना।—पाना।—मिलना।

(३) जामाता। (४) पति या दूल्हा। (५) गुग्गुल। (६) कुंकुम। केसर। (७) दारचीनी। (८) बालक। (९) अद-रक। आर्द्रक। (१०) सुगंध तृण। (११) सेंधा नमक। (१२) पियाल या चिरौंजी का पेड़। (१३) बकुल। मौल-सिरी। (१४) हलदी। (१५) गौरा पक्षी।

वि० श्रेष्ठ। उत्तम।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग प्रायः श्रेष्ठता सूचित करने के लिये संज्ञा या विशेषणों के आगे होता है। जैसे,—पंडित-वर, विज्ञवर, वीरवर मित्रवर।

वरक संज्ञा पुं० [सं०] (१) साधारण वस्त्र। (२) नाव का आच्छादन। (३) बन मूँग। (४) काकुन। प्रियंगु। (५) जंगली बेर। झड़बेरी।

वरक़-संज्ञा पुं० [अ०] (१) पत्र। (२) पुस्तकों का पन्ना। पन्ना। (३) सोने, चाँदी आदि के पतले पत्तर, जो कूटकर बनाए जाते हैं और मिठाइयों पर लगाने और औषध में काम आते हैं।

वरक्रतु-संज्ञा पुं० [सं०] इंद्र।

वरकोद्रव-संज्ञा पुं० [सं०] कोविदार। कचनार का पेड़।

वरचंदन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) काला चंदन। (२) देवदारु।

वरज-वि० [सं०] ज्येष्ठ। बड़ा।

वरजीवी-संज्ञा पुं० [सं० वरजीविन्] (१) एक वर्णसंकर जाति जो स्मृतियों में गोप और तंतुवाय के संयोग से उत्पन्न कही गई है। (२) ब्राह्मण का औरस पुत्र जो शूद्रा के गर्भ से उत्पन्न हो।

वरट-संज्ञा पुं० [सं०] (१) हंस। (२) कुंद का फूल। (३) भिड़। बर्रे।
वरटा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) हंसी। (२) गँधिया कीड़ा। (३) बर्रे नाम का उड़नेवाला कीड़ा। भिड़।
वरटी संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) हंसी। (२) गँधिया कीड़ा।
वरण-संज्ञा पुं० [सं०] (१) किसी को पसंद करके किसी कार्य्य के लिये नियुक्त करना। किसी को किसी काम के लिये चुनना या मुकर्रर करना।
क्रि० प्र०—करना।—होना।
(२) मंगल कार्य्य के विधान में होता आदि कार्य्य-कर्त्ताओं को नियत करके दान आदि से उनका सत्कार करना। (३) मंगल कार्य्य में नियत किए हुए होता आदि के सत्कारार्थ दी हुई वस्तु या दान। जैसे,—विवाह में ११ आदमियों को वरण मिला है।
क्रि० प्र०—देना।—पाना।—मिलना।
(४) कन्या के विवाह में वर को अंगीकार करने की रीति। (५) पूजा। अर्चना। सत्कार। (६) ढकने या लपेटने की वस्तु। आवरण। आच्छादन। वेष्टन। (७) किसी स्थान के चारों ओर घेरी हुई दीवार। (८) ऊँट। (९) वरुण वृक्ष। (१०) पुल। सेतु।
वरणक-संज्ञा पुं० [सं०] आच्छादन। आवरण।
वरणा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) एक छोटी नदी का नाम जो काशी के उत्तर में बहती है। यह नदी वाराणसी क्षेत्र की उत्तरीय सीमा है। वरुणा। (२) पंजाब देश की एक नदी का नाम जो सिंधु नद में दक्षिण ओर से अटक के विपरीत दिशा से आकर मिलती है। (३) बरह्र।
वरणी-संज्ञा स्त्री० दे० "वरण" (३)।
वरणीय-वि० [सं०] (१) पूजनीय। पूज्य। (२) श्रेष्ठ। बड़ा।
वरतंतु-संज्ञा पुं० [सं०] एक ऋषि का नाम।
वरतिक्त-संज्ञा पुं० [सं०] (१) कुटज। कौरैया। (२) नीम। (३) पर्पट। पापड़ा। (४) रोहितक। रोहेना का पेड़।
वरतिक्तिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] पाठा।
वरत्रा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) बरेत। बरेता। (२) हाथी खींचने का रस्सा। (३) चमड़े का तसमा।
वरत्वच-संज्ञा पुं० [सं०] नीम का पेड़।
वरद-वि० [सं०] [स्त्री० वरदा] वर देनेवाला। अभीष्टदाता।
वरदक्षिणा-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह धन जो वर को विवाह के समय कन्या के पिता से मिलता है। दहेज। दायजा।
वरदा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) कन्या। (२) असगंध। (३) अधहुल। हुरहुर। (४) वाराही कंद।
वरदा चतुर्थी-संज्ञा स्त्री० [सं०] माघ महीने के शुक्ल पक्ष की चतुर्थी। वरदा चौथ।

वरदाता-वि० [सं०] वर देनेवाला। वरद।
वरदान-संज्ञा पुं० [सं०] (१) किसी देवता या बड़े का प्रसन्न होकर कोई अभिलषित वस्तु या सिद्धि देना। उ०—(क) कश्यप अदिति महा तप कीन्हा। तिन्ह कहँ मैं पूरब वर दीन्हा।—तुलसी। (ख) देन कहेहु वरदान दुइ तेउ पावत संदेह।—तुलसी।
क्रि० प्र०—देना।
(२) किसी फल का लाभ जो किसी की प्रसन्नता से हो।
क्रि० प्र०—पाना।—मिलना।
वरदानी-संज्ञा पुं० [सं०] वर प्रदान करनेवाला। मनोरथ पूर्ण करनेवाला। वरदायक।
वरदी-संज्ञा स्त्री० [अ०] वह परिधान जो किसी विशेष विभाग के कर्मचारियों के लिये नियत हो। वह पोशाक या पहनावा जो किसी खास महकमे के अफसरों और नौकरों के लिये मुकर्रर हो। जैसे,—पुलिस की वरदी, फौज की वरदी।
वरद्रुम-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का अगर जिसका वृक्ष बहुत बड़ा होता है।
वरन्-अव्य० [सं० वरम्] ऐसा नहीं। बल्कि।
विशेष—इस शब्द का प्रयोग अब उठता जा रहा है।
वरना*-संज्ञा पुं० [सं० वरण] ऊँट। उ०—वरना-भख का अवलोकत केश पास कृत मंद। अधर समुद्र उदय ... सहसा ध्वनि उपजत सुख-कंद।—सूर।
अव्य० [अ०] नहीं तो। यदि ऐसा न होगा तो। जैसे,—आप बैठिए; वरना मैं भी उठकर चला जाऊँगा।
वरप्रद-वि० [सं०] [स्त्री० वरप्रदा] (१) वर देनेवाला। (२) प्रसन्न।
वरप्रदान-संज्ञा पुं० [सं०] मनोरथ पूर्ण करना। कोई फल या सिद्धि देना। वर देना।
क्रि० प्र०—करना।—होना।
वरफल-संज्ञा पुं० [सं०] नारिकेल। नारियल।
वरम-संज्ञा पुं० दे० "वर्म"।
वरमेल्हो-संज्ञा पुं० [पुर्त०] एक प्रकार का लाल चंदन जो मलाया द्वीप से आता है।
वरयात्रा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) विवाह के लिये वर का अपने इष्ट-मित्रों और संबंधियों के सहित धूमधाम के साथ कन्या के घर जाना। दूल्हे का बाजे गाजे के साथ दुलहिन के घर विवाह के लिये जाना। (२) वह भीड़ भाड़ जो दूल्हे के साथ चलती है। बरात।
वरयिता-संज्ञा पुं० [सं० वरयितृ] (१) वरण करनेवाला। (२) पति। भर्ता।
वररुचि-संज्ञा पुं० [सं०] एक अत्यंत प्रसिद्ध प्राचीन पंडित, वैयाकरण और कवि।

विशेष—अष्टाध्यायी वृत्ति, प्राकृतप्रकाश, लिंगानुशासन, राक्षसकाव्य आदि अनेक ग्रंथ इनके नाम से प्रसिद्ध हैं; पर सब इनके नहीं बनाए हैं। इनका प्राकृत का व्याकरण 'प्राकृत प्रकाश' बहुत प्राचीन और प्रामाणिक माना जाता है। ये कब हुए, इसका ठीक ठीक निश्चय विद्वानों को अभी नहीं हुआ है। कथासरित्सागर में ये पाणिनि के सहाध्यायी और प्रतिद्वंद्वी कहे गए हैं; पर यह कल्पना मात्र है। उसी ग्रंथ में वररुचि और कात्यायन एक ही गए हैं; पर यह भी ठीक नहीं है। इसी प्रकार ज्योतिर्विदाभरण का वह नवरत्नवाला श्लोक भी, जिसमें वररुचि का नाम है, कपोल कल्पना मात्र है। 'प्राकृतप्रकाश' की भूमिका में कावेल साहब ने वररुचि को ईसा की पहली शताब्दी का ठहराया है; और कोई कोई इन्हें चंद्रगुप्त मौर्य्य से भी पहले ईसा से ४०० वर्ष पूर्व का मानते हैं।

वरला-संज्ञा स्त्री० [सं०] हंसी।

वरवराह-संज्ञा पुं० [सं०] घुँघराले बालोंवाला जंगली आदमी। बर्बर।

वरवर्णिनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) उत्तम स्त्री। (२) लाख। (३) हल्दी। (४) गोरोचन। (५) कँगनी। काकुन। (६) गौरी। (७) लक्ष्मी। (८) सरस्वती।

वरवाह्लीक-संज्ञा पुं० [सं०] कुंकुम। केसर।

वरशिख-संज्ञा पुं० [सं०] एक असुर जिसे इंद्र ने सपरिवार मारा था।

वरहक-संज्ञा पुं० [सं०] एक जनपद का नाम।

वरही-संज्ञा पुं० [हिं० वर] सोने की एक लंबी पट्टी जो विवाह के समय वधू को पहनाई जाती है। टीका।
 संज्ञा पुं० दे० "वर्ही"।
 संज्ञा स्त्री० दे० "बरही"।

वरांग-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मस्तक। (२) गुदा। (३) योनि। (४) हस्ती। (५) विष्णु का एक नाम। (६) एक प्रकार का नक्षत्र वासर जो ३२४ दिनों का होता है। (७) दारचीनी। (८) पेड़ की टहनी का सिरा।

वरांगक-संज्ञा पुं० [सं०] दारचीनी।

वरांगना-संज्ञा स्त्री० [सं०] सुंदर स्त्री।

वरांगी-संज्ञा पुं० [सं० वरांगिन्] (१) हाथी। (२) अमलबेत।
 संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) हल्दी। (२) नागदंती। (३) मजीठ।

वरा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) त्रिफला। (२) रेणुका नामक गंधद्रव्य। (३) गुरुच। (४) मेदा। (५) ब्राह्मी। (६) बिडंग। (७) पाठा। (८) हल्दी। (९) बैंगन। (१०) अड़हुल। जपा। देवीफूल। (११) मद्य। (१२) सोमराजी। (१३) श्वेतापराजिता। (१४) शतमूली।

वराक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शिव। (२) युद्ध। (३) पारद।
 वि० (१) शोचनीय। (२) नीच।

वराजीवी-संज्ञा पुं० [सं० वराजीविन्] ज्योतिषी। गणक।

वराट-संज्ञा पुं० [सं०] (१) कौड़ी। (२) रस्सी। (३) पद्मबीज। कँवलगट्टे का बीज।

वराटक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) कौड़ी। (२) रस्सी। (३) पद्म का बीज।

वराटकरजा-संज्ञा पुं० [सं० वराटकरजस्] नागकेसर का पेड़।

वराटिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) कौड़ी। (२) तुच्छ वस्तु। (३) नागकेसर।

वराण-संज्ञा पुं० [सं०] (१) इंद्र। (२) वरुण वृक्ष। बरना।

वरानना-संज्ञा स्त्री० [सं०] सुंदर स्त्री।

वरान्न-संज्ञा पुं० [सं०] दला हुआ उत्तम अन्न।

वराभिद-संज्ञा पुं० [सं०] अम्लवेतस्। अमलबेद।

वराम्ल-संज्ञा पुं० [सं०] करौंदा।

वरारक-संज्ञा पुं० [सं०] हीरा। हीरक।

वरारणि-संज्ञा स्त्री० [सं०] माता।

वरारोह-संज्ञा पुं० [सं०] (१) विष्णु। (२) एक प्रकार का पक्षी।
 वि० श्रेष्ठ सवारीवाला।

वरार्ध्यक-संज्ञा पुं० [सं०] पूजा की एक सामग्री जिसमें चंदन, कुंकुम और जल सम भाग होता है।

वराल-संज्ञा पुं० [सं०] लवंग। लौंग।

वरालि-संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा।

वरालिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] दुर्गा।

वराशि-संज्ञा पुं० [सं०] मोटा कपड़ा।

वरासन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) श्रेष्ठ आसन। ऊँचा आसन। (२) विवाह में वर के बैठने का आसन या पाटा। (३) जपा। देवीफूल। अड़हुल। (४) हिजड़ा। खोजा। (५) द्वारपाल।

वरासि-संज्ञा पुं० [सं०] मोटा कपड़ा।

वराह-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शूकर। सूअर। (२) विष्णु। (३) मुस्ता। मोथा। (४) एक पर्वत का नाम। (५) एक मान। (६) सूँस। शिशुमार। (७) वाराहीकंद। (८) अठारह द्वीपों में से एक छोटा द्वीप।

वराहक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) हीरा। (२) शिशुमार। सूँस।

वराहकर्णी-संज्ञा स्त्री० [सं०] अश्वगंधा। असगंध।

वराहक्रांता-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) वाराही। (२) लज्जालु। लजालू।

वराहपत्री-संज्ञा स्त्री० [सं०] अश्वगंधा। असगंध।

वराहमिहिर-संज्ञा पुं० [सं०] ज्योतिष के एक प्रधान आचार्य जिनके बनाए बृहत्संहिता, पंचसिद्धांतिका और बृहज्जातक नामक ग्रंथ प्रचलित हैं।

विशेष—इनके समय के संबंध में अनेक प्रकार के प्रवाद हुए

वचनों के आधार पर प्रचलित हैं। जैसे,—ज्योतिर्विदाभरण के एक श्लोक में कालिदास, धन्वंतरि आदि के साथ वराहमिहिर भी विक्रम की सभा के नौ रत्नों में गिनाए गए हैं। पर इन नौ नामों में से कई एक भिन्न भिन्न काल के सिद्ध हो चुके हैं। अतः यह श्लोक प्रमाण के योग्य नहीं। इसी प्रकार कुछ लोग ब्रह्मगुप्त के टीकाकार पृथुस्वामी के इस वचन का आश्रय लेते हैं—
नवाधिक पंचशतसंख्य शाके वराहमिहिराचार्यो दिवं गतः।
और शक ५०९ में वराहमिहिर की मृत्यु मानते हैं। पर अपनी पंचसिद्धांतिका में रोमकसिद्धांत का अहर्गण स्थिर करते हुए वराहमिहिर ने शक संवत् ४२७ लिया है। ज्योतिषी लोग अपना समय लेकर ही अहर्गण स्थिर करते हैं। अतः इससे ईसा की पाँचवीं शताब्दी में वराहमिहिर का होना सिद्ध होता है। अपने बृहज्जातक के उपसंहाराध्याय में आचार्य्य ने अपना कुछ परिचय दिया है। उसके अनुसार ये अवंती (उज्जयिनी) के रहनेवाले थे। 'कांपित्थ' स्थान में सूर्यदेव को प्रसन्न करके इन्होंने वर प्राप्त किया था। इनके पिता का नाम आदित्यदास था।

वराहमुक्ता–संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का मोती।
विशेष—जैसे,—'गजमुक्ता' हाथी से उत्पन्न मानी जाती है, वैसे ही यह सूअर से उत्पन्न मानी जाती है।

वराहव्यूह–संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल का एक प्रकार का व्यूह या सेना की रचना, जिसमें अग्र भाग पतला और बीच का भाग चौड़ा रखा जाता था।

वराहशिला–संज्ञा स्त्री० [सं०] एक विचित्र पवित्र शिला जो हिमालय के शिखर पर है।

वराहशैल–संज्ञा पुं० [सं०] एक पर्वत का नाम।

वराहसंहिता–संज्ञा स्त्री० [सं०] वराहमिहिर रचित ज्योतिष की बृहत्संहिता नाम की प्रसिद्ध पुस्तक।

वराहांगी–संज्ञा स्त्री० [सं०] क्षुद्रदंती।

वराहिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] कपिकच्छु। केवाँच। कौंच।

वराही–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सूअरी। सूकरी। (२) भद्रमुस्ता। नागरमोथा। (३) वाराहीकंद। (४) असगंधा। (५) एक प्रकार का पक्षी जो गौरैया के बराबर और काले रंग का होता है। (६) दे० "वाराही"।

वरिष–संज्ञा पुं० [सं०] वर्ष।

वरिष्ठ–वि० [सं०] श्रेष्ठ। पूजनीय।
संज्ञा पुं० (१) तित्तिर पक्षी। तीतर। (२) चाक्षुष मनु के पुत्र का नाम। (३) धर्म सावर्णि मन्वंतर के सप्त ऋषियों में से एक। (४) ताम्र। ताँबा। (५) मिर्च। (६) उरतमस् ऋषि का एक नाम।

वरिष्ठा–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) हलदी। (२) हुरहुर नाम का पौधा।

वरिहिष्ठ–संज्ञा पुं० [सं०] (१) उशीर। खस। (२) सुगंधबाला।

वरी–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) शतावरी। सतावर। (२) सूर्य की पत्नी।

वरीयान्–वि० [सं०] (१) श्रेष्ठ। बड़ा। (२) अति युवा।
संज्ञा पुं० (१) फलित ज्योतिष में विष्कंभ आदि सत्ताइस योगों में से अठारहवाँ योग, जिसमें जन्म लेनेवाला मनुष्य दयालु, दाता, सुंदर, सत्कर्म करनेवाला और मधुर स्वभाव का होता है। (२) पुलह ऋषि के एक पुत्र का नाम।

वरीपु–संज्ञा पुं० [सं०] कामदेव।

वरुण–संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक वैदिक देवता जो जल का अधिपति, दस्युओं का नाशक और देवताओं का रक्षक कहा गया है। पुराणों में वरुण की गिनती दिक्पालों में है और वह पश्चिम दिशा का अधिपति माना गया है। वरुण का अस्त्र पाश है।
विशेष—बहुत प्राचीन वैदिक काल में वरुण प्रधान देवता थे; पर क्रमशः उनकी प्रधानता कम होती गई और इंद्र को प्रधानता प्राप्त हुई। वरुण अदिति के आठ पुत्रों में कहे गए हैं। निरुक्तकार इन्हें द्वादश आदित्यों में बतलाते हैं। ऋग्वेद में वरुण के अनेक मंत्र हैं, जिनमें से कुछ के संबंध में ऐतरेय ब्राह्मण में शुनःशेफ की प्रसिद्ध गाथा है। इसके अनुसार हरिश्चंद्र वैधस नामक एक राजा ने पुत्र-प्राप्ति के लिये वरुण की उपासना की। वरुण ने पुत्र दिया, पर यह वचन लेकर कि उसी पुत्र से तुम मेरा यज्ञ करना। पुत्र का नाम रोहित हुआ। जब वह कुछ बड़ा हुआ और उसे यह पता चला कि मुझे वरुण के यज्ञ में बलिपशु बनना पड़ेगा, तब वह जंगल में भाग गया। वहाँ उसे इंद्र घर लौटने को बराबर मना करते रहे। अंत में राजा ने अजीगर्त नामक एक ऋषि को सौ गौएँ देकर उनके पुत्र शुनःशेफ को बलि के लिये मोल लिया। जब शुनःशेफ यूप में बाँधा गया, तब वह अपने छुटकारे के लिये प्रजापति, अग्नि, सविता आदि कई देवताओं की स्तुति करने लगा। अंत में वरुण की स्तुति करने से उसका उद्धार हुआ। ऋग्वेद में वरुण के कुछ मंत्र वे ही हैं, जिन्हें पढ़कर शुनःशेफ ने स्तुति की थी।
पुराणों में वरुण कश्यप के पुत्र कहे गए हैं। भागवत में लिखा है कि चर्षणी नाम्नी पत्नी से वरुण को भृगु और वाल्मीकि नामक दो पुत्र हुए थे। वरुण अब तक जल के देवता माने जाते हैं और जलाशयोत्सर्ग में इनका पूजन होता है। साहित्य में ये करुण रस के अधिष्ठाता माने गए हैं।
पर्य्या०—प्रचेतस। पाशी। यादसांपति। अंबुपति। वारिलोम।

अपांपति । जंबूक । मेघनाद । परंजय । वारिलोम । कुंडली। (२) वरुना का पेड़ । (३) जल । पानी । (४) सूर्य्य । (५) एक ऋषि का नाम । (६) एक ग्रह का नाम जिसे अँगरेज़ी में "नेपचून" कहते हैं । (आधुनिक)

वरुणग्रह-संज्ञा पुं० [सं०] घोड़ों का एक रोग जो अचानक हो जाता है । इस रोग में घोड़े का तालू, जीभ, आँख और लिंगेंद्रिय आदि अंग काले रंग के हो जाते हैं । उसका शरीर भारी हो जाता है और पसीना छूटता है । यह रोग भयानक होता है और बहुत यत्न करने से घोड़े के प्राण बचते हैं ।

वरुणघृत-संज्ञा पुं० [सं०] घृत में बनी हुई एक औषध जो अश्मरी (पथरी) रोग में दी जाती है ।

विशेष—इसमें वरना नामक पेड़ की छाल को जल और घी में जलाकर क्वाथ बनाया जाता है ।

वरुणदैवत-संज्ञा पुं० [सं०] शतभिषा नक्षत्र ।

वरुणपाश-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वरुण का अस्त्र पाश या फंदा। (२) नाक नामक जल-जंतु । नक्र ।

वरुणप्रघास-संज्ञा पुं० [सं०] एक व्रत या कृत्य जो आषाढ़ या श्रावण की पूर्णिमा के दिन किया जाता है । इसमें लोग जौ का सत्तू खाकर रहते हैं । इस व्रत का फल यह कहा गया है कि व्रत करनेवाला जल में डूबता नहीं और उसे मगर, घड़ियाल आदि जलजंतु नहीं पकड़ते ।

वरुणप्रस्थ-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन नगर जो कुरुक्षेत्र के पश्चिम में था ।

वरुणमंडल-संज्ञा पुं० [सं०] नक्षत्रों का एक मंडल जिसमें रेवती, पूर्वाषाढ़ा, आर्द्रा, आश्लेषा, मूल, उत्तराभाद्रपदा और शतभिषा हैं ।

वरुणात्मजा-संज्ञा स्त्री० [सं०] वारुणी । सुरा । मदिरा । शराब ।

वरुणादिगण-संज्ञा पुं० [सं०] पेड़ों और पौधों का एक वर्ग जिसके अंतर्गत वरुन, नीलझिंटी, सहिंजन, जयंती, मेढ़ासींगी, पूतिका, नाटकरंज, अग्निमंथ (गनियारी), चीता, शतमूली, बेल, अजश्रृंगी, डाभ, बृहती और कंटकारी (भटकटैया) है । (सुश्रुत)

वरुणानी-संज्ञा स्त्री० [सं०] वरुण की स्त्री ।

वरुणालय-संज्ञा पुं० [सं०] समुद्र ।

वरुथ-संज्ञा पुं० [सं०] (१) तनुत्राण । बकतर । (२) ढाल । (३) लोहे की चद्दर या सीकड़ों का बना हुआ आवरण या झूल जो शत्रु के आघात से रथ को रक्षित करने के लिये उसके ऊपर डाली जाती थी । (४) सैन्य । सेना । फौज । (५) एक प्राचीन ग्राम । (रामायण)

वरुथिनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] सेना ।

वरुथी-संज्ञा पुं० [सं० वरुथिन्] [स्त्री० वरुथिनी] हाथी की काठी।

वरेंद्र-संज्ञा पुं० [सं०] (१) राजा । (२) इंद्र । (३) बंगाल का एक भाग ।

वरेण्य-वि० [सं०] (१) प्रधान । मुख्य । (२) वरणीय । पूजनीय ।

संज्ञा पुं० (१) भृगु के एक पुत्र का नाम । (२) महादेव । (३) कुंकुम । केसर ।

वरोट-संज्ञा पुं० [सं०] मरुवा । मरुवक ।

वरोरु-वि० [सं०] (१) श्रेष्ठ जंघोंवाला । (२) सुंदरी ।

वर्कट-संज्ञा पुं० [सं०] (१) हाथी का बंधन जो लकड़ी का बना हुआ और काँटेदार होता है । (२) काँटा । कील (३) अगरी । अगल ।

वर्कणा-संज्ञा स्त्री० [सं०] जवान बकरी । पठिया ।

वर्कर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) जवान पशु । (२) बकरा । (३) भेड़ का बच्चा । मेमना । (४) आमोद प्रमोद । परिहास ।

वर्कराट-संज्ञा पुं० [सं०] (१) कटाक्ष । (२) मध्याह्न के सूर्य्य की प्रभा । (३) स्त्री के कुच के किनारे लगा हुआ नखक्षत ।

वर्ग-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक ही प्रकार की अनेक वस्तुओं का समूह । जाति । कोटि । गण । श्रेणी । (२) आकार प्रकार में कुछ भिन्न, पर कोई एक सामान्य धर्म रखनेवाले पदार्थों का समूह । जैसे,—अंतरिक्ष वर्ग, शूद्र वर्ग, ब्राह्मण वर्ग । (३) शब्द शास्त्र में एक स्थान से उच्चरित होनेवाले स्पर्श व्यंजन वर्णों का समूह । जैसे,—कवर्ग, चवर्ग, टवर्ग इत्यादि ।

विशेष—ज्योतिष में स्वर, अंतस्थ और ऊष्म वर्ण भी (जैसे,—अ, य, श) क्रमशः अवर्ग, यवर्ग और शवर्ग के अंतर्गत रखे गए हैं । इस प्रकार ज्योतिष के व्यवहार के लिये सब वर्णों के विभाग 'वर्ग' के अंतर्गत किए गए हैं और अवर्ग, कवर्ग, चवर्ग, टवर्ग, तवर्ग, पवर्ग, यवर्ग तथा शवर्ग के स्वामी क्रमशः सूर्य, मंगल, शुक्र, बुध, बृहस्पति, शनि और चंद्रमा कहे गए हैं ।

(४) ग्रंथ का विभाग । परिच्छेद । प्रकरण । अध्याय । (५) दो समान अंकों या राशियों का घात या गुणनफल । जैसे—३ का ९, ५ का २५ (३×३=९ । ५×५=२५) । (६) वह चौखूँटा क्षेत्र जिसकी लम्बाई चौड़ाई बराबर और चारो कोण समकोण हों । (रेखा गणित)

वर्गचर-संज्ञा पुं० [सं०] पढ़ना या पहिना मछली । पाठीन ।

वर्गण-संज्ञा पुं० [सं०] गुणन । घात ।

वर्गपद-संज्ञा पुं० [सं०] वह अंक जिसके घात से कोई वर्गांक बना हो । वर्गमूल ।

वर्गफल-संज्ञा पुं० [सं०] वह गुणनफल जो दो समान राशियों के घात से प्राप्त हो । वह अंक जो किसी अंक को उसी अंक के साथ गुणा करने से आवे । जैसे,—५ का वर्गफल २५ होता है ।

वर्गमूल-संज्ञा पुं० [सं०] किसी वर्गांक का वह अंक जिसे यदि उसी से गुणन करें, तो गुणन वही वर्गांक हो। जैसे,—४ वर्गांक का वर्गमूल २ और २५ का ५ होगा।

वर्गलाना-क्रि० स० [फ़ा० 'वरग़लानीदन' से] (१) कोई काम करने के लिये उभारना। कुछ करने के लिये उत्तेजित करना। उकसाना। (२) बहकाना। फुसलाना।

वर्गोत्तम-संज्ञा पुं० [सं०] फलित ज्योतिष में राशियों के वे श्रेष्ठ अंश जिनमें स्थित ग्रह शुभ होते हैं।

विशेष—चर राशि (मेष, कर्कट, तुला, मकर) का प्रथम अंश, स्थिर राशि (वृष, सिंह, वृश्चिक, कुंभ) का पंचम अंश और द्व्यात्मक राशि (मिथुन, कन्या, धनु, मीन) का नवम अंश वर्गोत्तम कहा जाता है। इसके अतिरिक्त राशियों का नवांश भी वर्गोत्तम कहा जाता है।

वर्चस्-संज्ञा पुं० [सं०] [वि० वर्चस्वान्, वर्चस्वी] (१) रूप। (२) तेज। कांति। दीप्ति। (३) अन्न। (४) विष्ठा।

वर्चस्क-संज्ञा पुं० [सं०] (१) दीप्ति। तेज। (२) विष्ठा।

वर्चस्य-वि० [सं०] तेजवर्द्धक।

वर्चस्वान्-वि० [सं० वर्चस्वत्] [स्त्री० वर्चस्वती] तेजवान्। दीप्तियुक्त। समुज्वल।

वर्चस्वी-वि० [सं० वर्चस्विन्] [स्त्री० वर्चस्विनी] तेजस्वी। दीप्तियुक्त।

संज्ञा पुं० चंद्रमा।

वर्जन-संज्ञा पुं० [सं०] [वि० वर्जनीय, वर्ज्य, वर्जित] (१) त्याग। छोड़ना। (२) ग्रहण या आचरण का निषेध। मनाही। मुमानियत। (३) हिंसा। मारण।

वर्जनीय-वि० [सं०] (१) छोड़ने योग्य। न ग्रहण करने योग्य। त्याज्य। (२) निषेध के योग्य। निषिद्ध। मना।

वर्जयिता-वि० [सं०] वर्जन करनेवाला। त्यागनेवाला।

वर्जित-वि० [सं०] (१) त्यागा हुआ। छोड़ा हुआ। त्यक्त। (२) जो ग्रहण के अयोग्य ठहराया गया हो। निषिद्ध। जैसे,—कलि में नियोग वर्जित है।

वर्ज्य-वि० [सं०] (१) छोड़ने योग्य। त्याज्य। वर्जनीय। (२) जिसका निषेध किया गया हो। जो मना हो।

वर्ण-संज्ञा पुं० [सं०] (१) पदार्थों के लाल, पीले आदि भेदों का नाम। रंग। वि० दे० रंग। (२) जन-समुदाय के चार विभाग—*ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र—जो प्राचीन* आर्यों ने किए थे। जाति।

विशेष—इस शब्द का प्राचीन प्रयोग ऋग्वेद में है। वहाँ यह जनता के दो वर्गों—आर्यों और दस्युओं—को सूचित करने के लिये हुआ है। यह विभाग पहले रंग के आधार पर था, क्योंकि आर्य्य गोरे थे और दस्यु या अनार्य्य काले। पर पीछे यह विभाग व्यवसाय के आधार पर हुआ और चार वर्ण माने गए। पुरुषसूक्त में चारों वर्णों की उत्पत्ति का आलंकारिक रूप से इस प्रकार वर्णन है कि ब्राह्मण ईश्वर के मुख से, क्षत्रिय बाहु से, वैश्य जंघे से और शूद्र पैर से उत्पन्न हुए। इस व्यवस्था के अनुसार "वर्ण" शब्द की व्युत्पत्ति 'वृ' धातु से बताई जाती है, जिसका अर्थ है 'चुनना'। अतः 'वर्ण' शब्द का अर्थ हुआ व्यवसाय। स्मृतियों में भिन्न भिन्न वर्णों के धर्म निरूपित हैं। जैसे,—ब्राह्मण का धर्म—अध्ययन, अध्यापन, यजन, याजन, दान और प्रतिग्रह; क्षत्रिय का धर्म—प्रजारक्षा, दान, यज्ञानुष्ठान और अध्ययन; वैश्य का धर्म—पशुपालन, कृषि, दान, यज्ञ और अध्ययन। शूद्र का धर्म—तीनों वर्णों की सेवा। व्यवसाय-भेद और सब देशों में भी चला आ रहा है, पर भारतीय आर्य्यों की लोकव्यवस्था में वह व्यवसायों के विचार से जाति-गत या जन्मना माना गया है। इसी 'वर्ण' और 'आश्रम' की व्यवस्था को भारतीय आर्य्य अपना विशेष लक्षण मानते थे और अपने धर्म को 'वर्णाश्रम धर्म' कहते थे।

(३) भेद। प्रकार। किस्म। (४) अकारादि अक्षरों के चिह्न या संकेत। अक्षर। (५) गुण। (६) यश। कीर्ति। (७) स्तुति। बड़ाई। (८) स्वर्ण। सोना। (९) मृदंग का एक ताल जो चार प्रकार का होता है—पाट, विधिपाट, कूटपाट और खंडपाट। (१०) रूप। (११) अंगराग। विलेपन। (१२) कुंकुम। केसर। (१३) चित्र। तसवीर।

वर्णकंट-संज्ञा पुं० [सं०] तूतिया।

वर्णक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) हरताल। (२) अनुलेपन। उबटन। (३) चंदन। (४) पिसी हुई हल्दी आदि जो देवताओं को चढ़ाई जाती है। (५) मंडल। (६) चारण। (७) रंग। (८) अभिनेताओं के परिधान या परिच्छद। (९) चित्रकार।

वर्णखंडमेरु-संज्ञा पुं० [सं०] पिंगल या छंदः शास्त्र में वह क्रिया जिससे बिना मेरु बनाए मेरु का काम निकल जाता है, अर्थात् यह ज्ञात हो जाता है कि इतने वर्णों के कितने वृत्त हो सकते हैं और प्रत्येक वृत्त में कितने गुरु और कितने लघु होंगे।

विशेष—जितने वर्णों का खंडमेरु बनाना हो, उतने से एक कोष्ठ अधिक बाईं से दाहिनी ओर को बनावे। फिर इन्हीं कोष्ठों के नीचे पहला स्थान छोड़कर दूसरे स्थान से आरंभ करके ऊपर से एक कोष्ठ कम बनावे। इसी प्रकार उसी स्थान से नीचे एक कोष्ठ कम बराबर बनाता जाता जाय, जब तक एक कोष्ठ न आ जाय। इन कोष्ठों को इस प्रकार भरे। कोष्ठों की पहली पंक्ति में बाईं ओर से सब में एक एक का अंक लिखे। दूसरी पंक्ति के पहले कोष्ठ से आरंभ करके क्रमशः २, ३, ४, ५, ६ आदि अंत तक लिख जाय। इसके अनंतर कोष्ठों की प्रथम पंक्ति के तीसरे अंक

से उत्तरोत्तर नीचे की ओर वक्रगति से अंकों को जोड़कर अगले खानों में रखता जाय। अंतिम कोठों में जो अंक होंगे, वे लघु गुरु के हिसाब से वृत्तों के भेद सूचित करेंगे। उदाहरणार्थ आठ वर्णों का खंडमेरु बनाना हो, तो इस प्रकार करे—

१	१	१	१	१	१	१	१	१
	२	३	४	५	६	७	८	
	३	६	१०	१५	२१	२८		
	४	१०	२०	३५	५६			
	५	१५	३५	७०				
	६	२१	५६					
	७	२८						
	८							

वर्ण वृत्तों में एक भेद ऐसा होगा जिसमें सब गुरु होंगे; और एक ऐसा होगा, जिसमें सब लघु होंगे। अतः सर्व गुरु से आरंभ करके एक एक गुरु घटाते जायँ, तो भेदों की संख्या इस प्रकार होगी—१ भेद ऐसा होगा, जिसमें सब (८) गुरु होंगे। ८ भेद ऐसे होंगे जिनमें १ लघु और ७ गुरु होंगे। ८ भेद ऐसे होंगे जिनमें २ लघु और ६ गुरु होंगे। ५६ भेद ऐसे होंगे, जिनमें ३ लघु और ५ गुरु होंगे। ७० भेद ऐसे होंगे जिनमें ४ लघु और ४ गुरु होंगे। ५६ भेद ऐसे होंगे, जिनमें ५ लघु और ३ गुरु होंगे। २८ भेद ऐसे होंगे जिनमें ६ लघु और २ गुरु होंगे। ८ भेद ऐसे होंगे जिनमें ७ लघु और १ गुरु होगा। एक भेद ऐसा होगा, जिसमें सब लघु होंगे।

वर्णज्येष्ठ-संज्ञा पुं० [सं०] सब वर्णों में बड़ा, ब्राह्मण।

वर्णतूलि, वर्णतूलिका, वर्णतूली-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह कूँची जिससे चित्रकार चित्र बनाते हैं। कलम।

वर्णदूत-संज्ञा पुं० [सं०] लिपि।

वर्णदूषक-संज्ञा पुं० [सं०] अपने संसर्ग से दूसरे को जातिभ्रष्ट करनेवाला। पंक्ति-दूषक। पतित मनुष्य।

वर्णन-संज्ञा पुं० [सं०] [वि० वर्णनीय, वर्ण्य, वर्णित] (१) चित्रण। रँगना। (२) किसी बात को सविस्तार कहना। कथन। बयान। उ०—सो चौबीस रूप निज कल्पित वर्णन करत विचार।—सूर। (३) स्तवन। प्रशंसा। गुणकथन। तारीफ़।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

वर्णनष्ट-संज्ञा पुं० [सं०] पिंगल या छंदः शास्त्र में एक क्रिया जिसके द्वारा यह जाना जाता है कि प्रस्तार के अनुसार इतने वर्णों के वृत्तों के अमुक संख्यक भेद का रूप लघु गुरु के हिसाब से कैसा होगा।

विशेष—जितने वर्ण के प्रस्तार के किसी भेद का रूप निकालना हो, उतने लघु के चिह्न लिखकर उनके सिरे पर क्रमशः वर्णोद्दिष्ट अंक (१ से आरंभ करके क्रमशः दूने दूने अंक) लिखे। फिर अंतिम अंक का दूना करके उसमें से पूछी हुई संख्या घटावे। जो अंक शेष रहे, वह जिन जिन उद्दिष्टों के योग से बना हो, उनके नीचे की लघु मात्राओं के चिह्नों को गुरु कर दे। जो रूप सिद्ध होगा, वही उत्तर होगा। जैसे,—किसी ने पूछा कि चार वर्णों के प्रस्तार में तेरहवें भेद का रूप क्या होगा? इसके लिये हमने यह क्रिया की—

१	२	४	८
।	।	।	।

अंतिम अंक ८ का दूना १६ हुआ। उसमें से १३ घटाया, तो ३ रहा। अब हमने देखा कि ३ संख्या ऊपर दिए हुए उद्दिष्टांकों में से १ और २ जोड़ने से आ जाती है। अतः उनके नीचे गुरु बनाया तो यह रूप ऽ ऽ । । सिद्ध हुआ।

वर्णना-संज्ञा स्त्री० [सं०] गुण कथन।

वर्णनाश-संज्ञा पुं० [सं०] निरुक्तकार के अनुसार शब्द में किसी वर्ण का नष्ट हो जाना। जैसे—'पृषोदर' शब्द में 'पृषतोदर' शब्द के 'त' का नाश पाया जाता है।

वर्णपताका-संज्ञा स्त्री० [सं०] पिंगल या छंदः शास्त्र में एक क्रिया जिसके द्वारा यह जाना जाता है कि वर्णवृत्तों के भेदों में से कौन सा (पहला, दूसरा या तीसरा आदि) ऐसा है, जिसमें इतने लघु और इतने गुरु होंगे।

वर्णपाताल-संज्ञा पुं० [सं०] पिंगल या छंदः शास्त्र में एक क्रिया जिसके द्वारा यह जाना जाता है कि अमुक संख्या के वर्णों के कुल कितने वृत्त हो सकते हैं और उन वृत्तों में से कितने लघ्वादि और कितने लघ्वंत, कितने गुर्वादि और कितने गुर्वंत तथा कितने सर्वगुरु और कितने सर्वलघु होंगे।

विशेष—जितने वर्णों का पाताल बनाना हो, उतनी ही खड़ी रेखाएँ और उन्हें काटती हुई पाँच आड़ी रेखाएँ खींचे। इस प्रकार कोठे बन जाने पर कोठों की पहली पंक्ति में क्रम से १, २, ३, ४ आदि अंक भरे। दूसरी पंक्ति में २, ४, ८, १६ आदि वर्णसूची के अंक लिखे। तीसरी पंक्ति में सूची के अंकों के आधे लिखे; और चौथी पंक्ति में पहली और तीसरी पंक्ति

के अंकों का गुणनफल लिखे। उदाहरण के लिये ९ वर्णों का पाताल इस प्रकार होगा—

१	२	३	४	५	६	७	८	९	वर्ण संख्या।
२	४	८	१६	३२	६४	१२८	२५६	५१२	सर्व संख्या।
१	२	४	८	१६	३२	६४	१२८	२५६	लघ्वादि, लघ्वंत, गुर्वादि, गुर्वंत।
१	४	१२	३२	८०	१९२	४४८	१०२४	२३०४	सर्व गुरु, सर्व लघु।

इस पाताल से विदित हुआ कि ९ वर्णों के ५१२ वृत्त हो सकते हैं। इन वृत्तों में २५६ ऐसे वृत्त होंगे, जिनके आदि में लघु होंगे; २५६ ऐसे होंगे, जिनके अंत में लघु होंगे; फिर २५६ ऐसे होंगे जिनके आदि में गुरु होंगे; और २५६ ऐसे होंगे, जिनके अंत में गुरु होंगे। सब वृत्तों में कुल मिलाकर २३०४ गुरु और २३०४ लघु होंगे।

वर्णपुर-संज्ञा पुं० [सं०] शुद्ध राग का एक भेद।

वर्णप्रत्यय-संज्ञा पुं० [सं०] छंदः शास्त्र या पिंगल में वे क्रियाएँ जिनके द्वारा यह जाना जाता है कि अमुक संख्या के वर्णवृत्तों के कितने भेद हो सकते हैं, उनके स्वरूप क्या होंगे, इत्यादि।

विशेष—जिस प्रकार मात्रिक छंदों में ९ प्रत्यय होते हैं, उसी प्रकार वर्णवृत्तों में भी ९ प्रत्यय होते हैं—प्रस्तार, सूची, पाताल, उद्दिष्ट, नष्ट, मेरु, खंडमेरु, पताका और मर्कटी।

वर्णप्रस्तार-संज्ञा पुं० [सं०] पिंगल या छंदः शास्त्र में वह क्रिया जिसके द्वारा यह जाना जाता है कि इतने वर्णों के वृत्तों के इतने भेद हो सकते हैं और उन भेदों के स्वरूप इस प्रकार होंगे।

विशेष—जितने वर्णों का प्रस्तार बनाना हो, उतने वर्णों का पहला भेद (सर्व गुरु) लिखे। फिर गुरु के नीचे लघु लिख कर शेष ज्यों का त्यों लिखे। फिर सब से बाईं ओर के गुरु के नीचे लघु लिखकर आगे ज्यों का त्यों लिखे; और बाईं ओर जितनी न्यूनता रहे, उतनी गुरु से भरे। यह क्रिया अंत तक अर्थात् सर्वलघु भेद के आने तक करे। उदाहरण के लिये तीन वर्णों का प्रस्तार इस प्रकार होगा—

रूप	भेद
ऽ ऽ ऽ	पहला
। ऽ ऽ	दूसरा
ऽ । ऽ	तीसरा
। । ऽ	चौथा
ऽ ऽ ।	पाँचवाँ
। ऽ ।	छठा
ऽ । ।	सातवाँ
। । ।	आठवाँ

इस प्रस्तार से प्रकट हुआ कि तीन वर्णों के आठ ही भेद हो सकते हैं; अर्थात् आठ ही प्रकार के वृत्त बन सकते हैं, अधिक नहीं।

वर्णमर्कटी-संज्ञा स्त्री० [सं०] पिंगल या छंदः शास्त्र में एक क्रिया जिसके द्वारा यह जाना जाता है कि इतने वर्णों के इतने वृत्त हो सकते हैं, जिनमें इतने गुर्वादि, गुर्वंत और इतने लघ्वादि लघ्वंत होंगे; तथा सब वृत्तों में मिलाकर इतने वर्ण, इतने गुरु लघु, इतनी कलाएँ और इतने पिंड (=दो कल) होंगे।

विशेष—जितने वर्ण हों, उतने खाने बाएँ से दाहिने बनावे। फिर उन खानों के नीचे उतने ही खानों की छः पंक्तियाँ और बनावे। कोठों की पहली पंक्ति में १, २, ३ आदि अंक लिखे; दूसरी में वर्ण सूची के अंक (२, ४, ८, १६ आदि) लिखे; तीसरी पंक्ति में दूसरी पंक्ति के अंकों के आधे अंक भरे; चौथी में पहली और दूसरी पंक्ति के अंकों के गुणनफल लिखे; पाँचवीं में चौथी पंक्ति के आधे अंक भरे; छठी पंक्ति में चौथी और पाँचवीं पंक्ति के अंकों का योग लिखे, और सातवीं पंक्ति में छठी पंक्ति के आधे अंक भरे। उदाहरण के लिये छः वर्णों की मर्कटी इस प्रकार होगी—

१	२	३	४	५	६	वर्ण संख्या
२	४	८	१६	३२	६४	वृत्तों की संख्या
१	२	४	८	१६	३२	गुर्वादि, गुर्वंत, लघ्वादि, लघ्वंत
२	८	२४	६४	१६०	३८४	सर्व वर्ण
१	४	१२	३२	८०	१९२	गुरु लघु
३	१२	३६	९६	२४०	५७६	सर्व कला
१½	६	१८	४८	१२०	२८८	पिंड

इस मर्कटी से प्रकट हुआ कि ६ वर्णों के ६४ वृत्त हो सकते हैं। ३२ वृत्त ऐसे होंगे जिनके आदि में गुरु, ३२ ऐसे जिनके अंत में गुरु, ३२ ऐसे जिनके आदि में लघु और ३२ ही ऐसे जिनके अंत में लघु होंगे। सब वृत्तों को मिलाकर ३८४ वर्ण होंगे; इत्यादि, इत्यादि।

वर्णमाला-संज्ञा स्त्री० [सं०] अक्षरों के रूपों की यथा श्रेणी लिखित सूची। किसी भाषा में आनेवाले सब हरफ़ जो ठीक सिलसिले से रक्खे हों। जैसे देवनागरी में—अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ ऌ ॡ ए ऐ ओ औ।
क ख ग घ ङ।
च छ ज झ ञ।
ट ठ ड ढ ण।
त थ द ध न।
प फ ब भ म।
य र ल व।
श ष स ह।
अं अः।

वर्णवती-संज्ञा स्त्री० [सं०] हल्दी।

वर्णविकार-संज्ञा पुं० [सं०] निरुक्त के अनुसार शब्दों में एक वर्ण का बिगड़कर दूसरा वर्ण हो जाना। जैसे 'हल्दी' शब्द में 'हरिद्रा' के 'र' का 'ल' हो गया है। "द्वादश" के 'द' का "बारह" शब्द में 'र' हो गया है।

वर्णविचार-संज्ञा पुं० [सं०] आधुनिक व्याकरण का वह अंश जिसमें वर्णों के आकार, उच्चारण और संधि आदि के नियमों का वर्णन हो। प्राचीन वेदांग में यह विषय 'शिक्षा' कहलाता था और व्याकरण से बिल्कुल स्वतंत्र माना जाता था।

वर्णविपर्यय-संज्ञा पुं० [सं०] निरुक्त के अनुसार शब्दों में वर्णों का उलट फेर हो जाना। जैसे 'हिंस' शब्द से बने 'सिंह' शब्द में हुआ है।

वर्णविलासिनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] हल्दी।

वर्णवृत्त-संज्ञा पुं० [सं०] वह पद्य जिसके चरणों में वर्णों की संख्या और लघु गुरु के क्रमों में समानता हो।

वर्णश्रेष्ठ-संज्ञा पुं० [सं०] ब्राह्मण।

वर्णसंकर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह व्यक्ति या जाति जो दो भिन्न भिन्न जातियों के स्त्री पुरुष के संयोग से उत्पन्न हो।

विशेष—स्मृतियों में ऐसी बहुत सी जातियाँ गिनाई गई हैं। इस विषय में एक दूसरे के मत भी नहीं मिलते। वर्णसंकर दो प्रकार के कहे गए हैं—अनुलोमज और प्रतिलोमज। अनुलोमज का पिता माता से श्रेष्ठ वर्ण का होता है और प्रतिलोमज की माता पिता से श्रेष्ठ वर्ण की होती है। प्रतिलोमज संकर प्राचीन काल में निषिद्ध माने जाते थे। अनुलोम विवाह का प्रचार प्राचीन काल में था, पर पीछे बंद हो गया। धर्मशास्त्रों में यद्यपि वर्णसंकरता के ये कारण गिनाए गए हैं—(१) व्यभिचार, (२) अवेद्यावेदन और (३) स्वकर्मत्याग; पर लोक में अंतिम बात पर ध्यान नहीं दिया जाता।

(२) वह व्यक्ति जो ऐसे स्त्री पुरुष के संयोग से उत्पन्न हुआ हो, जो धर्मानुसार विवाहित न हों। व्यभिचार से उत्पन्न मनुष्य। दोगला।

वर्णसमाम्नाय-संज्ञा पुं० [सं०] वर्णमाला।

वर्णसूची-संज्ञा स्त्री० [सं०] छंदः शास्त्र या पिंगल में एक क्रिया जिसके द्वारा वर्णवृत्तों की संख्या की शुद्धता, उनके भेदों में आदि अंत लघु और आदि अंत गुरु की संख्या जानी जाती है।

विशेष—जितने वर्णों की सूची देखनी हो, उतने वर्णों की संख्या तक क्रम से २, ४, ८ इत्यादि अर्थात् उत्तरोत्तर दूने अंक लिखे। इस क्रिया के अंत में जो संख्या आवेगी, वह वृत्तभेद की संख्या होगी। अंत के अंक से बाईं ओर जो अंक होगा, उतने आदि लघु और अंतलघु तथा आदिगुरु और अंतगुरु होंगे। फिर उससे भी बाईं ओर अर्थात् अंत से तीसरे कोष्ठ में जो अंक होगा, उतने ही आद्यंत लघु और आद्यंत गुरु वृत्त होंगे। उदाहरणार्थ ४ वर्णों की सूची यह है—

२	४	८	१६
	आद्यंत लघु, आद्यंत गुरु	आदि लघु, आदि गुरु, अंत लघु, अंत गुरु	[illegible]

वर्णा-संज्ञा स्त्री० [सं०] अरहर।

वर्णाधिप-संज्ञा पुं० [सं०] फलित ज्योतिष के अनुसार ब्राह्मणादि वर्णों के अधिपति ग्रह। (ब्राह्मण के अधिपति बृहस्पति और शुक्र, क्षत्रिय के भौम और रवि, वैश्य के चंद्र, शूद्र के बुध और अंत्यज के शनि माने जाते हैं।)

वर्णार्ह-संज्ञा पुं० [सं०] मूँग।

वर्णि-संज्ञा पुं० [सं०] (१) स्वर्ण। सोना। (२) वलि।

वर्णिक-संज्ञा पुं० [सं०] लेखक।

वर्णिक वृत्त-संज्ञा पुं० [सं०] वह वृत्त या छंद जिसके प्रत्येक चरण के वर्णों की संख्या और लघु गुरु के स्थान समान हों।

वर्णिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) खड़िनी। खड़िया। (२) मसि। स्याही। (३) सोने का पानी। (४) चंद्रमा। (५) विलेपन।

वर्णित-वि० [सं०] (१) कथित। कहा हुआ। (२) जिसका वर्णन हो चुका हो। बयान किया हुआ।

वर्णी-संज्ञा पुं० [सं० वर्णिन्] (१) लेखक। (२) चित्रकार। (३) ब्रह्मचारी।

वर्णु-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक नदी का नाम। बन्नू। आदित्य। (२) बन्नू नामक देश।

वर्णोद्दिष्ट-संज्ञा पुं० [सं०] छंदः शास्त्र में एक क्रिया जिसके द्वारा यह जाना जाता है कि अमुक संख्यक वर्णवृत्त का कोई रूप कौन सा भेद है।

विशेष—जो भेद दिया गया हो, उसमें लघु गुरु के ऊपर क्रम से दूने अंक अर्थात् १, २, ४, ८ इत्यादि लिखे। फिर लघु के ऊपर जितने अंक हों, उन्हें जोड़कर उसमें १ और जोड़ दे। जैसे,—किसी ने पूछा कि चार वर्ण के वृत्तों में ।।ऽऽ कौन सा भेद है, तो यह क्रिया की—

१ २ ४ ८
। । ऽ ऽ

अब लघु वर्णों के ऊपर के अंक (१ + २) जोड़ने से ३ हुए। उसमें एक जोड़ने से ४ हुए। इससे विदित हो गया कि यह चौथा भेद है।

वर्ण्य—संज्ञा पुं॰ [सं॰] (१) कुंकुम। (२) वनतुलसी। बबई। (३) प्रस्तुत विषय। (४) उपमेय।

वि॰ (१) वर्णन के योग्य। (२) जो वर्णन का विषय हो।

वर्तक—संज्ञा पुं॰ [सं॰] (१) बटुआ। (२) नर बटेर। (३) घोड़े का खुर।

वर्तका, वर्तकी—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] बटेर।

वर्तन—संज्ञा पुं॰ [सं॰] [वि॰ वर्तित] (१) बरताव। व्यवहार। (२) व्यवसाय। जीवनोपाय। वृत्ति। रोज़ी। (३) फेरना। घुमाना। बटना। (४) परिवर्तन। फेर फार। (५) स्थिति। ठहराव। (६) स्थापन। रखना। (७) सिल बट्टे से पीसना। पेषण। बटना। (८) वर्तमान। (९) चरखे की वह लकड़ी जिसमें तकला लगा रहता है। (१०) बटलोई। बटुला। (११) पात्र। बरतन। (१२) घाव में सलाई डालकर हिलाना डुलाना, जिससे घाव या नासूर की गहराई और फैलाव आदि का पता लगता है। शल्यकंपन कर्म। (१३) विष्णु। (१४) कोआ।

वर्तना—क्रि॰ अ॰, क्रि॰ स॰ दे॰ 'बरतना'।

वर्त्तनि—संज्ञा पुं॰ [सं॰] (१) पूर्व दिशा। पूर्व देश। (२) बाट। रास्ता। (३) शुद्ध राग का एक भेद।

वर्त्तनी—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] (१) बटने की क्रिया। पेषण। पिसाई। (२) बाट। रास्ता।

वर्त्तमान—वि॰ [सं॰] (१) चलता हुआ। जो जारी हो। जो चल रहा हो। (२) उपस्थित। मौजूद। विद्यमान। (३) साक्षात्। (४) आधुनिक। हाल का।

संज्ञा पुं॰ (१) व्याकरण में क्रिया के तीन कालों में से एक, जिससे सूचित होता है कि क्रिया अभी चली चलती है, समाप्त नहीं हुई है।

विशेष—वर्त्तमान के कई भेद होते हैं। "वह आता है" इस क्रिया में क्रिया में आरंभ और चला चलना पाया जाता है, समाप्ति नहीं; इससे यह सामान्य वर्त्तमान है। कभी कभी वर्त्तमान के प्रयोग द्वारा 'नित्य प्रवृत्ति' भी पाई जाती है। जैसे,—"भारत के उत्तर में हिमालय है"। कभी कभी "वृत्ताविरतता" भी पाई जाती है। जैसे,—"मैदान में लड़के खेलते हैं"। इस वाक्य से यह [illegible] होता है कि चाहे कहने के समय लड़के न खेलते हों पर उसके पूर्व कई बार खेल चुके हैं और आगे भी [illegible] खेलेंगे। इसी प्रकार "वह मांस नहीं खाता" इस [illegible] में "प्रवृत्त्युपरतता" पाई जाती है; अर्थात् वह अब [illegible] मांस नहीं खाता। इसी प्रकार और भी भेद हैं।

(२) वृत्तांत। समाचार। (३) चलता व्यवहार। [illegible] तुम पाँच सात पीढ़ियों के वर्त्तमान को सनातन [illegible] मानते हो।—सत्यार्थ प्रकाश।

वर्त्तरुक—संज्ञा पुं॰ [सं॰] (१) एक नदी का नाम। (२) [illegible] का घोंसला। (३) द्वारपाल।

वर्त्तलोह—संज्ञा पुं॰ [सं॰] एक प्रकार का लोहा।

विशेष—वैद्यक में शोधे हुए वर्तलोह को कफ, दा[illegible] पित्त का नाशक और उसके स्वाद को कटु, मधुर और [illegible] लिखा है। यह वही लोहा है, जिसके विरुी [illegible] बनते हैं।

पर्य्या॰—वर्त्ततीक्ष्ण। वर्त्तक। लोहसंकर। नीलक। नी[illegible] नीललोह।

वर्ति—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] (१) बत्ती। (२) अंजन। (३) वह [illegible] जो वैद्य घाव में देता है। (४) औषध बनाना। [illegible] अनुलेपन। उबटन। (५) गोली। बटी।

वर्त्तिक—संज्ञा पुं॰ [सं॰] बटेर।

वर्त्तिका—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] (१) बटेर। (२) अजशृंगी। [illegible] बत्ती। (४) शलाका। सलाई।

वर्त्तिकाबिंदु—संज्ञा पुं॰ [सं॰] हीरे का एक दोष। (इस प्रका[illegible] हीरे को धारण करने से भय उत्पन्न होता है।—[illegible] क्षा।)

वर्त्तित—वि॰ [सं॰] (१) संपादित। निष्पादित। किया हु[illegible] (२) चलाया हुआ। जारी किया हुआ। (३) उत्पन्न कि[illegible] हुआ।

वर्त्तिर—संज्ञा पुं॰ [सं॰] बटेर।

वर्त्ती—वि॰ [[सं॰ वर्तिन्] [स्त्री॰ वर्तिनी] (१) वर्तनशील। बरतनेवाला। (२) स्थित रहनेवाला। जैसे,—समीपवर्ती

संज्ञा स्त्री॰ (१) बत्ती। (२) शलाका। सलाई।

वर्त्तुल—वि॰ [सं॰] गोल। वृत्ताकार।

संज्ञा पुं॰ (१) गुंजन। गाजर। (२) मटर। (३) गुंज[illegible] (४) सुहागा।

वर्त्म—संज्ञा पुं॰ [सं॰] (१) मार्ग। पथ। (२) गाड़ी के पहि[illegible] का मार्ग। लीक। (३) किनारा। औंठ। बारी। (४) आँ[illegible] की पलक। (५) आधार। आश्रय।

वर्त्मकर्दम-संज्ञा पुं० [सं०] आँख का एक रोग जिसमें पित्त और रक्त के प्रकोप से आँखों में कीचड़ भरा रहता है।

वर्त्मबंध-संज्ञा पुं० [सं०] आँख का एक रोग जिसमें पलक में सूजन हो जाती है, खुजली तथा पीड़ा होती है और आँख नहीं खुलती।

वर्त्ममाक्षिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] स्वर्ण माक्षिका। सोना माखी।

वर्त्मरोग-संज्ञा पुं० [सं०] आँख का एक रोग जिसमें पलकों में विकार उत्पन्न हो जाता है और आँखों को खोलने से बड़ी पीड़ा होती है। वैद्यक में इस रोग के २१ भेद माने गए हैं—उत्संगिनी, कुंभिका, पोथकी, वर्त्मशर्करा, वर्त्मार्श, शुष्कार्श, अंजन-दूषिका, बहुलवर्त्म, वर्त्मबंधक, क्लिष्टवर्त्म, वर्त्मकर्दम, श्याव-वर्त्म, प्रक्लिन्नवर्त्म, अक्लिन्नवर्त्म, वातहतवर्त्म, वर्त्मार्बुद, निमेष, शोणितार्श, लगण, विष-वर्त्म और कुंचन।

वर्त्मशर्करा-संज्ञा स्त्री० [सं०] आँख का एक रोग जिसमें पलकों में छोटी छोटी फुंसियों के सहित एक बड़ी और कड़ी फुंसी हो जाती है।

वर्त्मरुजा-संज्ञा स्त्री० [सं०] आँखों का एक रोग। वर्त्मरोग।

वर्त्मार्बुद-संज्ञा पुं० [सं०] आँखों का एक रोग जिसमें पलक के अंदर एक गाँठ उत्पन्न हो जाती है। यह टेढ़ी और लाल रंग की होती है और इसमें पीड़ा नहीं होती।

वर्त्मावरोध-संज्ञा पुं० [सं०] वर्त्मरोग।

वर्द्दी-संज्ञा स्त्री० [सं० वर्ती = बत्ती] मूँज की पत्ती जो गज के ढीले होने पर चरखे में लगाई जाती है।

संज्ञा स्त्री० दे० "वरदी"।

वर्द्ध-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सीसा धातु। (२) भारंगी। (३) काटना। तराशना। (४) पूर्त्ति। पूरण।

वर्द्धक-वि० [सं०] (१) बढ़ानेवाला। पूरक। (२) काटनेवाला। छीलनेवाला।

वर्द्धकी संज्ञा पुं० [सं० वर्द्धकि, वर्द्धकिन्) बढ़ई। लकड़ी का काम करनेवाला।

वर्द्धन-संज्ञा पुं० [सं०] [वि० वर्द्धित] (१) बढ़ाना। (२) वृद्धि। बढ़ती। उन्नति। (३) छेदना। काटना। छीलना। तराशना।

वर्द्धमान-वि० [सं०] (१) बढ़ता हुआ। जो बढ़ता जा रहा हो। (२) बढ़नेवाला। वर्द्धनशील।

संज्ञा पुं० (१) एक वर्ण वृत्त जिसके चारो चरणों में वर्णों की संख्या भिन्न होती है; अर्थात् १४, १३, १८ और १५।

विशेष—इसके चारो चरणों में वर्णों की संख्या इस प्रकार होती है—प्रथम चरण—मगण, सगण, जगण, भगण, गुरु, गुरु; द्वितीय चरण—सगण, नगण, जगण, रगण, गुरु; तृतीय चरण—नगण, नगण, सगण, सगण, नगण, सगण; और चतुर्थ चरण—नगण, भगण, नगण, जगण, यगण। यथा—गोविंदा पद में जु मित्त चित्त लगैहौ। निहचै यहि भवसिंधु पार जैहौ। असत सकल जग मोह मदहिं सब तज रे। तन मन धन सब भजिए हरि को रे।

(२) मिट्टी का प्याला। सकोरा। (३) जैनियों के २४ वें जिन महावीर का नाम। (४) बंगाल का एक ज़िला और नगर।

वर्द्धयिता-संज्ञा पुं० [सं० वर्द्धयितृ] [स्त्री० वर्द्धयित्री] बढ़ानेवाला।

वर्द्धा-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक नदी का नाम जो सतपुरा के पर्वतों से निकलकर गोदावरी में गिरती है। मध्य प्रदेश की अमरावती नगरी इसी नदी के किनारे बसी है।

वर्द्धापन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) कर्ण वेध। नाड़ी छेदन। कन-छेदन। (२) महाराष्ट्र देश में अभ्यंगादि क्रिया जो किसी पुरुष की जन्मतिथि को की जाती है।

वर्द्धित-वि० [सं०] (१) बढ़ा हुआ। (२) पूर्ण। (३) छिन्न। कटा हुआ।

वर्द्धीणस-संज्ञा पुं० [सं०] वह सफेद रंग का बकरा जिसके कान नदी में पानी पीते समय पानी में छू जायँ।

वर्द्ध्र-संज्ञा पुं० [सं०] चमड़ा। खाल।

वर्द्ध्रिका, वर्द्ध्री-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) चमड़े की रस्सी। बद्धी। (२) एक प्रकार का आभूषण जिसे बद्धी कहते हैं।

वर्ध्म-संज्ञा पुं० [सं० वर्ध्मन्] (१) वह फोड़ा जो जाँघ के मूल में संधिस्थान में निकल आता है। यह फोड़ा कठिन होता है। इसके रोगी को ज्वर आता है, शूल होता है, और वह सुस्त पड़ा रहता है। बद। (२) अंत्रवृद्धि रोग। आँत उतरने का रोग।

वर्म-संज्ञा पुं० [सं० वर्मन] (१) कवच। बकतर। (२) घर। (३) पित्त पापड़ा। पर्पटक।

वर्मक-संज्ञा पुं० [सं०] महाभारत के अनुसार एक जनपद का नाम जिसे अब 'बरमा' कहते हैं।

वर्मकंटक-संज्ञा पुं० [सं०] पित्तपापड़ा। पर्पटक।

वर्मकषा-संज्ञा स्त्री० [सं०] सातला। सप्तला।

वर्महर-वि० [सं०] वर्मधर। कवचधारी।

वर्मा-संज्ञा पुं० [सं० वर्मन्] क्षत्रियों आदि की उपाधि जो उनके नाम के अंत में लगाई जाती है।

वर्मि-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की मछली।

वर्मित-वि० [सं०] कवचधारी। कृतसन्नाह।

वर्य-वि० [सं०] (१) प्रधान। (२) श्रेष्ठ।

विशेष—इसका प्रयोग विशेषतः समस्त पदों में होता है। जैसे,—विद्वद्वर्य।

संज्ञा पुं० कामदेव।

वर्य्या-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) कन्या। (२) [illegible] वधू। भरद्वर।

बर्बट-संज्ञा पुं० [सं०] लोबिया। बोड़ा। बनरबट्ट।

बर्बणा-संज्ञा स्त्री० [सं०] नीली मक्खी।

बर्बर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक देश का नाम। (२) इस देश का असभ्य निवासी जिसके बाल घुँघराले कहे गए हैं।

विशेष—यद्यपि बर्बर देश का उल्लेख महाभारत (भीष्म पर्व) तथा वामन, मार्कण्डेय आदि पुराणों में है, पर यह जनपद कहाँ था, इसका ठीक ठीक पता नहीं। कहीं कहीं बर्बरों के बाल घुँघराले कहे गए हैं। पुराने यूनानी और रोमन भौगोलिकों ने सिंधु नद के मुहाने के आसपास के प्रदेश को बर्बर (Barbarlon) देश कहा है। कुछ भारतीय ग्रंथकारों ने महाराष्ट्र देश के एक विशेष भाग को बर्बर कहा है। बर्बर नाम की एक प्राकृत भाषा का उल्लेख भी 'प्राकृतचन्द्रिका' में है। इसमें संदेह नहीं कि इस जनपद के निवासी असभ्य समझे जाते थे और घृणा की दृष्टि से देखे जाते थे। पीछे से दूर दूर तक की सभ्य जातियों में यह शब्द 'म्लेच्छ' और 'जंगली' का वाचक हुआ। प्राचीन यूनानी अपनी जाति के लोगों के अतिरिक्त औरों को 'बर्बर' कहा करते थे। रोमनों में भी ऐसा ही था।

(३) पामर। नीच। (४) घुँघराले बाल। (५) काली बन तुलसी। (६) हिंगुल। ईंगुर। (७) पीला चंदन।

बर्बरक संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का चंदन। इसका गुण शीतल, कफ, वायु, पित्त, कोढ़, खाज और व्रण तथा रक्त दोष का नाशक और स्वाद कड़ुवा माना गया है।

पर्या०—बर्बरोत्थ। शीत। पित्तारि।

बर्बरी-संज्ञा स्त्री० [सं०] बन तुलसी।

बर्बरीक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) भारंगी। (२) बन तुलसी। (३) महाकाल।

बर्बूर-संज्ञा पुं० [सं०] बबूल।

वर्ष-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वृष्टि। जलवर्षण। (२) काल का एक मान जिसमें दो अयन और बारह महीने होते हैं। उतना समय जितने में सब ऋतुओं की एक आवृत्ति हो जाती है। संवत्सर। साल।

विशेष—वर्ष चार प्रकार के होते हैं—सौर, चांद्र, सावन और नाक्षत्र। सौर वर्ष ३६५ दिन, ५ घंटे, ४८ मिनट और ४६ सेकंड का होता है। यह उतना समय है, जितने में पृथ्वी सूर्य्य की एक परिक्रमा पूरी कर लेती है। पृथ्वी के इसी भ्रमण के कारण सूर्य्य का सत्ताईस नक्षत्रों और बारह राशियों गमन दिखाई पड़ता है। लोग कहते हैं कि अब सूर्य्य अमुक नक्षत्र या राशि में है। घूमते समय पृथ्वी की धुरी सीधी न रहकर कुछ टेढ़ी रहती है और उसके मार्ग की कक्षा गोल न होकर अंडाकार होती है। इसी से सूर्य्य कुछ महीनों तक भूमध्यरेखा के उत्तर और कुछ महीनों तक दक्षिण में उदय होता दिखाई पड़ता है। ये दोनों 'उत्तर अयन' और 'द[illegible] अयन' कहलाते हैं। वर्ष में केवल दो दिन सूर्य्य भू[illegible] या विषुवत् रेखा पर उदय होता है। इन दोनों को [illegible] कहते हैं। एक सायन तुला राशि में और दूसरा मेष में। [illegible] है। सूर्य्य कर्क राशि में आकर दक्षिण की ओर बढ़ने [illegible] है और धनु राशि में पहुँचने तक भूमध्यरेखा के [illegible] ही रहता है। मकर राशि से फिर उत्तर की ओर [illegible] लगता है और कर्क राशि में पहुँचने तक उत्तर ही रहता [illegible] प्राचीन भारतीय आर्य्यों में राशियों का व्यवहार न [illegible] इससे सौर वर्ष दो अयनों का ही माना जाता था। [illegible] का उदय राशियों में न माना जाकर २७ नक्षत्रों में [illegible] जाता था। इससे कभी कभी बड़ी अव्यवस्था होती थी। [illegible] वर्ष ३५४ दिन, ८ घंटे, ४८ मिनट और ३६ सेकंड का [illegible] है। इतने काल में चंद्रमा पृथ्वी की बारह परिक्रमाएँ [illegible] लेता है। इस प्रकार सौर वर्ष और चांद्र वर्ष में प्रति [illegible] १० दिन, २१ घंटे का अंतर पड़ता है। हिन्दू पंचांग [illegible] यह अंतर प्रति तीसरे वर्ष १३ महीने का वर्ष मानकर [illegible] किया जाता है। उस बढ़े हुए महीने को 'अधिमास' [illegible] 'मलमास' कहते हैं। सावन वर्ष पूरे ३६० दिनों का [illegible] है और उसके महीने तीस तीस दिन के होते हैं। [illegible] काल में सावन मास ही अधिक चलता था और [illegible] मास की तिथि की गणना चंद्रमा के ही हिसाब से [illegible] थी। शुक्ल प्रतिपदा से पूर्णिमा तक १५ दिन का शुक्ल [illegible] और कृष्ण प्रतिपदा से अमावास्या तक १५ दिन का [illegible] पक्ष होता था। नाक्षत्र वर्ष ३२४ दिन का और [illegible] प्रत्येक महीना २७–२७ दिन का होता है। इन चार प्र[illegible] के वर्षों के अतिरिक्त प्राचीन काल में और कई प्रकार [illegible] वर्षों का प्रचार था। जैसे,—सप्तर्षि वर्ष।

(३) पुराण में माने हुए सात द्वीपों का एक विभाग। [illegible] किसी द्वीप का प्रधान भाग जैसे,—भारतवर्ष। (५) मेघ। बादल।

वर्षकर-संज्ञा पुं० [सं०] मेघ।

वर्षकरी-संज्ञा स्त्री० [सं०] झिल्ली। झींगुर।

वर्षकाम-वि० [सं०] वृष्टि की कामना रखनेवाला। [illegible] चाहनेवाला।

वर्षकामेष्टि-संज्ञा पुं० [सं०] एक यज्ञ जो वर्षा के लिये किया जाता था।

वर्षकाली-संज्ञा स्त्री० [सं०] जीरा।

वर्षकेतु-संज्ञा पुं० [सं०] लाल रंग की पुनर्नवा। लाल गदहपूरना।

वर्षकोष-संज्ञा पुं० [सं०] (१) दैवज्ञ। ज्योतिषी। (२) मास[illegible] वर्ष।

वर्षगाँठ-संज्ञा स्त्री० [हिं० वर्ष + गाँठ] वह कृत्य जो किसी पुरुष के जन्म दिन पर किया जाता है। वि० दे० "बरस गाँठ।
वर्षघ्न-संज्ञा पुं० [सं०] (१) पवन। (२) ग्रहों का वह योग जिससे वर्षा नष्ट हो जाती है।
वर्षण-संज्ञा पुं० [सं०] [वि० वर्षित] वृष्टि। बरसना।
वर्षधर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मेघ। बादल (२) अंतःपुर रक्षक। नपुंसक। खोजा।
वर्षधर्ष-संज्ञा पुं० [सं०] अंतःपुर-रक्षक। नपुंसक। खोजा।
वर्षप, वर्षपति-संज्ञा पुं० [सं०] वर्ष के अधिपति ग्रह।
विशेष—फलित ज्योतिष में वर्ष प्रवेश होने पर कोई न कोई ग्रह उस वर्ष का अधिपति या राजा माना जाता है। इसी अधिपति के विचार से यह बताया जाता है कि वर्ष शुभ होगा या अशुभ।
वर्षपाकी-संज्ञा पुं० [सं० वर्षपाकिन] आम्रातक। आमड़ा।
वर्षफल-संज्ञा पुं० [सं०] फलित ज्योतिष में जातक के अनुसार वह कुंडली जिससे किसी के वर्ष भर के ग्रहों के शुभाशुभ फलों का विवरण जाना जाता है।
क्रि० प्र०—निकालना।—बनाना।
वर्षांश-संज्ञा पुं० [सं०] महीना।
वर्षा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) वह ऋतु जिसमें पानी बरसता है।
विशेष—छः ऋतुओं के हिसाब से सावन और भादों में दो महीने वर्षा ऋतु के माने जाते हैं। पर साधारण व्यवहार में जाड़ा, गरमी और बरसात के हिसाब से वर्षा काल आषाढ़ से कुआँर तक चार महीने का लिया जाता है, जिसे चातुर्मास या 'चौमासा' कहते हैं।
पर्य्या०—प्रावृट्। पावस। घनागम। घनाकर।
(२) पानी बरसने की क्रिया या भाव। वृष्टि।
क्रि० प्र०—करना।—होना।
मुहा०—(किसी वस्तु की) वर्षा होना = (१) बहुत अधिक परिमाण में ऊपर से गिरना। जैसे,—फूलों की वर्षा होना। (२) बहुत अधिक संख्या में मिलना। जैसे,—यहाँ रुपयों की वर्षा होती है।
वर्षाकाल-संज्ञा पुं० [सं०] वर्षा ऋतु। बरसात।
वर्षागम-संज्ञा पुं० [सं०] वर्षा ऋतु का आगमन। वर्षारंभ।
वर्षाधिप-संज्ञा पुं० [सं०] फलित ज्योतिष के अनुसार वह ग्रह जो संवत्सर के वर्ष का अधिपति हो। वि०दे० "वर्षपति"।
वर्षाप्रिय-संज्ञा पुं० [सं०] चातक। पपीहा।
वर्षाबीज-संज्ञा पुं० [सं०] मेघ। बादल।
वर्षाभू-संज्ञा पुं० [सं०] (१) भेक। दादुर। मेढक। (२) इंद्रगोप। म्याखिन नाम का कीड़ा। (३) लाल रंग की पुनर्नवा। (४) कीड़े मकोड़े।
वि० वर्षा में उत्पन्न होनेवाला।
वर्षामद-संज्ञा पुं० [सं०] मयूर। मोर।
वर्षायस-वि० [सं०] नब्बे बरस से ऊपर की अवस्था का। अति वृद्ध।
वर्षार्चि-संज्ञा पुं० [सं०] मंगल ग्रह।
वर्षाल-संज्ञा पुं० [सं०] फतिंगा। पतंग।
वर्षाहिक-संज्ञा पुं० [सं०] बरसाती साँप जिसमें विष नहीं होता।
वर्षेश-संज्ञा पुं० [सं०] वर्षाधिप। वि० दे० "वर्षपति"।
वर्ष्मा-संज्ञा पुं० [सं० वर्ष्मन] (१) शरीर। (२) प्रमाण। (३) इयत्ता। (४) जल-रोधक। बाँध।
वर्ह-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मोर का पंख। (२) गँठिवन। ग्रंथिपर्णी। (३) पत्र। पत्ता।
वर्हण-संज्ञा पुं० [सं०] पत्र। पत्ता।
वर्हा-संज्ञा पुं० [सं० वर्हस्] (१) अग्नि। (२) दीप्ति। (३) यज्ञ। (४) कुश। (५) चित्रक। चीते का पेड़। (६) एक राजा का नाम।
वर्हिषद्-संज्ञा पुं० [सं०] एक पितर का नाम।
वर्ही-संज्ञा पुं० [सं० वर्हिन्] (१) मयूर। मोर। (२) कश्यप के एक पुत्र का नाम। (३) तगर।
वलंब-संज्ञा पुं० [सं०] अवलंब। सहारा।
वल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मेघ। (२) एक असुर का नाम। यह देवताओं की गौएँ चुराकर एक गुहा में जा छिपा था। इंद्र उस गुहा को छेंककर उसमें से गौओं को छुड़ा लाए थे। फिर वल ने बैल का रूप धारण किया और वह बृहस्पति के हाथ से मारा गया।
वलक-संज्ञा पुं० [सं०] मार्कंडेय पुराणानुसार तामस मन्वंतर के सप्तर्षियों में से एक ऋषि का नाम।
वलद्विष-संज्ञा पुं० [सं०] इंद्र।
वलन-संज्ञा पुं० [सं०] ज्योतिष शास्त्रानुसार ग्रह, नक्षत्रादि का सायनांश से हटकर चलना। विचलन।
वलनांश-संज्ञा पुं० [सं०] ज्योतिष के अनुसार अयनांश से किसी ग्रह के वलन अर्थात् हटकर चलने या वक्रगति की दूरी का अंश।
वलभी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) वह मंडप जो घर के ऊपर शिखर पर बना हो। रावटी। (२) घर की चोटी। (३) छाजी। (४) एक पुरानी नगरी जो काठियावाड़ में थी और जिसके खँडहर अब तक मिलते हैं।
विशेष—यहाँ एक प्रसिद्ध राजवंश का राज्य था, जिसके संस्थापक सेनापति भट्टार्क थे।
वलय-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मंडल। (२) कंकड़। (३) चूड़ी। (४) वेष्टन। (५) अठारह प्रकार के गलगंड रोगों में से एक। इसमें कफ के कारण गले के अंदर उस नली में जिसमें से होकर अन्न जल पेट में जाता है, एक गाँठ उत्पन्न हो जाती

है। यह गाँठ ऊँची और बड़ी होती है और अन्न जल के जाने का मार्ग रोक देती है। वैद्य लोग इसे असाध्य मानते हैं। (६) दंड व्यूह का एक भेद।

वलयित-वि० [सं०] वेष्टित। परिवृत्त। घेरा हुआ।

वलवला-संज्ञा पुं० [अ०] उमंग। आवेश।

वलसूदन-संज्ञा पुं० [सं०] इंद्र।

वलहंता-संज्ञा पुं० [सं०] इंद्र।

वलाका-संज्ञा स्त्री० [सं०] बगला।

वलाट-संज्ञा पुं० [सं०] मूँग।

वलाहक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मेघ। बादल। (२) पर्वत। (३) एक दैत्य का नाम। (४) साँपों की एक जाति जो दर्व्वीकर के अंतर्गत मानी जाती है। (५) मुस्तक। मोथा। (६) श्रीकृष्ण के रथ के एक घोड़े का नाम। (७) एक नद का नाम। (८) कुश द्वीप के एक पर्वत का नाम।

वलि-संज्ञा पुं० [सं०] (१) रेखा। लकीर। (२) चंदन आदि से बनाई हुई रेखा। (३) सिकुड़न के कारण पड़ी हुई लकीर। झुर्री। (४) पेट के दोनों ओर पेटी के सिकुड़ने से पड़ी हुई रेखा। बल। जैसे,—त्रिवली। (५) देवता को चढ़ाने की वस्तु। (६) राजकर। (७) एक दैत्य जो प्रह्लाद का पौत्र था और जिसे विष्णु ने वामन अवतार लेकर छला था।

विशेष—दे० "बलि"।

(८) श्रेणी। पंक्ति। (९) बवासीर का मस्सा। (१०) छाजन की ओलती। (११) गंधक। (१२) एक प्रकार का बाजा।

वलिक-संज्ञा पुं० [सं०] घर की छत या छाजन की ढाल का अंत जहाँ से पानी गिरता है। ओलती।

वलित-वि० [सं०] (१) बल खाया हुआ। लचका हुआ। (२) झुकाया हुआ। मोड़ा हुआ। (३) परिवृत। आवेष्टित। घेरा हुआ। (४) जिसमें झुर्रियाँ पड़ी हों। जो जगह जगह से मुड़ा हो। (५) लिपटा हुआ। लगा हुआ। उ०—*उरज मलय शैल शील सम सुनि देखि अलक वलित व्याल आशा कर आए हैं।—केशव।* (६) आच्छादित। ढका हुआ। उ०—*कंटक-कलित तृन वलित वि घ जल।—केशव।* (७) युक्त। सहित। उ०—*श्री रघुवर के इष्ट अश्रुवलित सीता नयन।—केशव।*

विशेष—इस अर्थ में इस शब्द का प्रयोग 'कलित' आदि के समान काव्य की भाषा में बहुत अधिक होता है।

संज्ञा पुं० (१) काली मिर्च। (२) नृत्य में हाथ मोड़ने की एक मुद्रा।

वलिमुख-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बानर। (२) गरम दूध में मट्ठा मिलने से उसका फटा विकार।

वली-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) झुर्री। शिकन। (२) अवली। श्रेणी। (३) रेखा। लकीर। (४) चंदन आदि से बनाई हुई लकीर। (५) पेट के दोनों ओर पेटी के मुड़ने से पड़ी हुई लकीर। जैसे,—त्रिवली।

संज्ञा पुं० [अ०] (१) मालिक। स्वामी। (२) शासक। हाकिम। अधिपति।

यौ०—वलीअहद।

(३) साधु। फ़कीर।

यौ०—वली संगर = साधु होने का झूठा दावा रखनेवाला। धर्मध्वजी साधु।

वलीअहद-संज्ञा पुं० [अ०] युवराज। टीका। टिकैत।

वलीक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) घर की छत या छाजन की ओलती। (२) सरकंडा। शर।

वलूक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) पद्ममूल। भिस्सा। मसींड। कमल की जड़। (२) एक प्रकार का पक्षी।

वल्क-संज्ञा पुं० [सं०] पेड़ों के धड़ और कांड पर का आवरण। वल्कल। छाल।

यौ०—वल्कतरु। वल्कद्रुम।

वल्कतरु-संज्ञा पुं० [सं०] सुपारी का वृक्ष।

वल्कद्रुम-संज्ञा पुं० [सं०] भोजपत्र का वृक्ष।

वल्कल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वृक्ष की छाल। पेड़ों के धड़ और कांड पर का आवरण।

पर्य्या०—त्वक्। वल्क। चोच। चोलक। छल्क।

(२) वृक्ष की छाल का वस्त्र, जिसे अरण्यवासी मुनि और तपस्वी पहना करते थे। (३) ऋग्वेद की बाष्कल नामक शाखा।

वल्कला-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सफेद रंग का प्रकार का एक पत्थर जिसका गुण शीतल और शांतिकारक माना जाता है। शिलावल्का। (२) तेजबल।

वल्कली-वि० [सं० वल्कलिन्] वल्कल या पेड़ की छाल पहनने वाला। वल्कलधारी।

वल्कलोध्र-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की लोध। पठानी लोध।

वल्किल-संज्ञा पुं० [सं०] कंटक। काँटा।

वल्गन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) घोड़े का कूदते या उछलते हुए चलना। दुलकी। (२) बहुत सी इधर उधर की बातें कहना। बहुत बकना।

वल्गा-संज्ञा स्त्री० [सं०] लगाम। बाग।

वल्गु-संज्ञा पुं० [सं०] (१) छाग। बकरा। (२) बौद्धों के बोधिद्रुम के चार अधिष्ठाता देवताओं में से एक।

वि० सुंदर। खूबसूरत।

वल्गुक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) चंदन। (२) विपिन। वन। (३) पण। बाज़ी। (४) सौदा।

वि० रुचिर। सुंदर।

वल्गुजंघ-संज्ञा पुं० [सं०] विश्वामित्र के एक पुत्र का नाम।

वल्गुज-संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० वल्गुजा] छाग । बकरा ।

वल्गुपत्र-संज्ञा पुं० [सं०] वनमूँग ।

वल्गुपोदिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) लड़सुआ नाम का साग । (२) एक प्रकार की लता ।

वल्गुल-संज्ञा पुं० [सं०] शृगाल । गीदड़ ।

वल्गुला-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) बकुची । (२) चमगादड़ ।

वल्गुलिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) कत्थई रंग का पतंग जाति का कीड़ा जिसे "तैलपायी" भी कहते हैं । चपड़ा । (२) मंजूषा । झाबा । पिटारा ।

वल्गुली-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) चमगादड़ । गादुर । (२) मंजूषा । झाबा । पिटारा ।

वल्द-संज्ञा पुं० [अ०] औरस बेटा । पुत्र ।

विशेष—किसी मनुष्य के कुल के परिचय के लिये उसके नाम के आगे इस शब्द का व्यवहार करके उसके पिता का नाम रखा जाता है । जैसे,—"गोकुल वल्द बलदेव" अर्थात् 'गोकुल, बेटा बलदेव का' । दस्तावेजों और सरकारी कागज़ों आदि में, जिनकी भाषा उर्दू होती है, इस शब्द का प्रयोग अधिक होता है ।

वल्दियत-संज्ञा स्त्री० [अ०] पिता के नाम का परिचय । बाप के नाम का पता । जैसे,—अपनी वल्दियत और सकूनत लिखाओ ।

वल्मीक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) दीमकों का लगाया हुआ मिट्टी का ढेर । बाँबी । बिमौट । (२) वाल्मीकि मुनि । (३) वह मेघ जिस पर सूर्य्य की किरणें पड़ती हों । (४) एक प्रकार का रोग जिसमें त्रिदोष के कारण गले, कंधे, काँख, हाथ, पैर और संधि-स्थानों (जोड़ों) में सूजन हो जाती है, जो क्रमशः गाँठ की तरह कड़ी हो जाती है । इसमें सूई चुभने की सी पीड़ा होती है और पकने पर अनेक छेद हो जाते हैं । यदि आरंभ में ही इसकी चिकित्सा न की जाय, तो यह रोग असाध्य हो जाता है ।

वल्मीकशीर्ष-संज्ञा पुं० [सं०] स्रोतांजन । लाल सुरमा ।

वल्ल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक मान जो तीन गुंजा या रत्ती के बराबर तौल में होता है । (वैद्यक में दो गुंजा का एक 'वल्ल' है ।) माना गया है । राजनिघंटु १॥ घुँघची का ही वल्ल मानता (२) खलियान में भूसा मिले हुए अनाज के दाने को ऊपर से गिराना, जिसमें हवा के जोर से भूसा अलग हो जाय । बरसाना । ओसाना । (३) निषेध । (४) आवरण । (५) सलई का पेड़ । (६) बौरा ।

वल्लक-संज्ञा पुं० [सं०] समुद्र में रहनेवाला एक प्रकार का जंतु ।

वल्लकी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) वीणा । (२) सलई का पेड़ ।

वल्लभ-वि० [सं०] अत्यंत प्रिय । प्रियतम । प्यारा ।

संज्ञा पुं० (१) अत्यंत प्यारा व्यक्ति । प्रिय मित्र । नायक । (२) पति । स्वामी । जैसे,—राधावल्लभ । (३) अध्यक्ष । मालिक । (४) सुंदर लक्षणों से युक्त घोड़ा । (५) एक प्रकार की सेम । (६) वैष्णव-संप्रदाय के प्रवर्त्तक एक प्रसिद्ध आचार्य्य जिनका संप्रदाय वल्लभ संप्रदाय कहलाता है ।

विशेष—इनके माता-पिता का पता नहीं । लक्ष्मण भट्ट नामक एक दक्षिणी ब्राह्मण ने चुनारगढ़ के पास एक बालक पड़ा पाया; और उसे अपने घर लाकर पुत्र के समान पाला। फिर वही बालक प्रसिद्ध वल्लभाचार्य्य हुआ । जब तक लक्ष्मण भट्ट जीते रहे, तब तक वल्लभ उन्हीं के पास अध्ययन करते थे । उनके मरने पर वे विष्णुस्वामी के मंदिर में जाकर शिष्य हुए और काशी में आकर संन्यास लिया । संन्यास छोड़कर ये फिर गृहस्थ हो गए थे । इनके कई पुत्र हुए, जो गद्दियों के मालिक गोस्वामी हुए । इन्होंने राधाकृष्ण की बड़ी आडंबरपूर्ण उपासना चलाई और अपना वेदांत संबंधी एक स्वतंत्र सिद्धांत भी स्थापित किया, जो विशुद्धाद्वैत वाद के नाम से प्रसिद्ध है । इस कारण ये वेदांत के चार मुख्य आचार्यों में माने जाते हैं । इनका जन्म सन् १४७९ ई० और मृत्यु सन् १५३१ ई० में हुई । सूरदास आदि अष्ट-छाप के कवि इन्हीं के शिष्य थे ।

वल्लभा-संज्ञा स्त्री० [सं०] प्रिय स्त्री । प्रिय पत्नी । प्यारी जोरू ।
वि० स्त्री० प्यारी । प्रिय ।

वल्लभाचार्य्य-संज्ञा पुं० [सं०] वैष्णव मत के एक प्रसिद्ध आचार्य । वि० दे० "वल्लभ" (६) ।

वल्लभी-संज्ञा पुं० दे० "वलभी" ।

वल्लरि, वल्लरी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) वल्ली । लता । (२) मंजरी। (३) मेथी । (४) वच । (५) एक प्रकार का बाजा ।

वल्लव-संज्ञा पुं० [सं०] (१) गोप । (२) सूपकार । सुआर । रसोइया ।

वल्लाह-अव्य० [अ०] ईश्वर की शपथ । सचमुच ।

वल्लिकंटकारिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] अग्निदमनी । छोटा ।

वल्लिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) लता । (२) पेड़ा । (३) पोई नाम की लता जिसकी पत्तियों का साग बनाकर खाया जाता है ।

वल्लिज-संज्ञा पुं० [सं०] मरिच । मिर्च ।

वल्लिदूर्वा-संज्ञा स्त्री० [सं०] श्वेत दूर्वा । सफेद दूब ।

वल्लिवृक्ष-संज्ञा पुं० [सं०] अपमस्तर्णी लता । रामफना । रपटुआ ।

वल्ली-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) लता । (२) केवटी मोथा । (३) अग्निदमनी । छोटा । (४) काली अपराजिता ।

वल्लीज-संज्ञा पुं० [सं०] मिर्च ।

वल्लीवृक्ष-संज्ञा पुं० [सं०] साल वृक्ष ।

वल्लुर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) कुंज। (२) मंजरी। (३) क्षेत्र। (४) निर्जल स्थान। सूखी जगह।

वल्लूर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) धूप में सुखाया हुआ मांस। (२) शूकर का मांस। (३) ऊपर। ऊसर। (४) जंगल। (५) वीरान। उजाड़

वल्वज-संज्ञा पुं० [सं०] आँवला।

वल्वज-संज्ञा पुं० [सं०] ओखली।

वल्वजा-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का तृण या घास।

पर्य्या०—दृढ़पत्री। तृणेक्षु। दृढ़क्षुरा। मौंजीपत्री।

विशेष—वैद्यक में यह शीतल, मधुर तथा पित्त, दाह और तृषा को दूर करनेवाली कही गई है।

वल्वल-संज्ञा पुं० [सं०] एक दैत्य जिसे बलराम जी ने मारा था। इल्वल। उ०—राम दिन कछुक ता ठौर औरहु रहे, आइ वल्वल तहाँ दियो दिखाई। रुधिर अरु मांस की लग्यो वर्षा करन, ऋषि सकल देखि कै गये डराई।—सूर।

वव-संज्ञा पुं० [सं०] फलित ज्योतिष के अनुसार ग्यारह करणों में एक करण जिसमें जन्म लेनेवाले मनुष्य का बलवान्, धीर, कृती और विचक्षण होना माना जाता है।

वशंवद-वि० [सं०] (१) वशीभूत। वशवर्त्ती। (२) आज्ञाकारी। दास।

वश-संज्ञा पुं० [सं०] (१) इच्छा। चाह। (२) एक व्यक्ति पर दूसरे का ऐसा प्रभाव कि दूसरा उसके साथ जो चाहे कर सके, या उससे जो चाहे करा सके। क़ाबू। इख़्तियार। अधिकार। जैसे,—(क) इस समय वह तुम्हारे वश में है; जो चाहो, करा लो। (ख) मैं उसके वश में हूँ; जैसा वह कहेगा, वैसा करूँगा। (ग) उस पर मेरा कोई वश नहीं है।

मुहा०—(किसी का किसी के) वश में होना=(१) अधिकार में होना। क़ाबू में होना। कब्जे में होना। अधीन होना। (२) कहे में होना। आज्ञानुवर्त्ती होना। दबाव मानना। किसी पर वश होना=किसी पर अधिकार होना। किसी पर ऐसा प्रभाव होना कि उसे इच्छानुकूल चलाया जा सके। जैसे,—उस लड़के पर हमारा कोई वश नहीं है। वश का=जिस पर अधिकार हो। जो इच्छानुसार चलाया जा सके। अधीन। जैसे,—अब वह सयाना हुआ; हमारे वश का नहीं है।

(३) किसी वस्तु या बात को अपने अनुकूल घटित करने की सामर्थ्य। शक्ति की पहुँच। क़ाबू। जैसे,—(क) जो अपने वश की बात नहीं, उसके लिये शोक क्या? (ख) हार जीत अपने वश की बात नहीं।

मुहा०—वश का=इच्छा के अधीन। वश चलना=शक्ति काम करना। कुछ करने की सामर्थ्य होना। क़ाबू चलना। जैसे,—यदि मेरा वश चलता, तो मैं उसे निकाल देता।

(४) अधीन करने का भाव। अधिकार। कब्ज़ा। प्रभुत्व। उ०—हरि कछु ऐसो टोना जानत। सब के मन अपने वश आनत।—सूर। (५) जन्म। (६) वेश्याओं के रहने का स्थान। चकला।

वशवर्त्ती-वि० [सं० वशवर्त्तिन्] जो दूसरे के वश में रहे। जो दूसरे के आज्ञानुसार चलता हो। अधीन। ताबे।

वशा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) वंध्या स्त्री। बाँझ। (२) स्त्री। पत्नी। (३) गाय। (४) हथिनी। (५) वंध्या गाय। ठाँठ। (६) पति की बहन। ननद।

वशाकु-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की चिड़िया।

वशादधक-संज्ञा पुं० [सं०] शिशुमार। सूँस।

वशानुग-संज्ञा पुं० [सं०] आज्ञाकारी। अधीन। दास।

वि० वशीभूत।

वशिक-वि० [सं०] शून्य।

वशिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] अगरु। अगर की लकड़ी।

वशिता-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) अधीनता। ताबेदारी। (२) मोहने की क्रिया या भाव। मोहन।

वशित्व-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वशता। (२) योग के अणिमादि आठ प्रकार के ऐश्वर्यों में से एक। कहते हैं कि इस सिद्धि से साधक सब को अपने वश में कर लेता है।

वशिनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] शमी का पेड़।

वशिमा-संज्ञा स्त्री० [सं०] योग की आठ सिद्धियों में से एक। वशित्व।

वशिर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) समुद्र लवण। समुद्री नमक। (२) एक प्रकार का वृक्ष। (३) एक प्रकार की लाल मिर्च। मिर्चा।

वशिष्ठ-संज्ञा पुं० दे० "वसिष्ठ"।

वशी-वि० [सं० वशिन्] [स्त्री० वशिनी] (१) अपने को वश में रखनेवाला। (२) वश में किया हुआ। क़ाबू में आया हुआ। अधीन।

वशीकरण-संज्ञा पुं० [सं०] [वि० वशीकृत] (१) वश में लाने की क्रिया। (२) मणि, मंत्र या औषध आदि के द्वारा किसी को अपने वश में करने का प्रयोग। अधीन करना।

विशेष—तंत्र में चार प्रकार के प्रयोग कहे जाते हैं—मारण, मोहन, वशीकरण और उच्चाटन। अथर्व वेद में मंत्र सिद्ध करके मणि और औषध द्वारा वश में करने का उल्लेख है।

वशीकार-संज्ञा पुं० [सं०] वश में करना।

वशीकृत-वि० [सं०] (१) किसी प्रकार वश में किया हुआ। (२) मंत्र द्वारा वश में किया हुआ। मंत्रमुग्ध। (३) मोहित। मुग्ध।

वशीभूत-वि० [सं०] (१) वश में आया हुआ। अधीन। ताबे। (२) दूसरे की इच्छा के अधीन।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

वश्य-वि० [सं०] (१) वश में आनेवाला। ताबे होनेवाला। (२) किसी की इच्छा के अधीन। दूसरे की आज्ञा या कहने में रहनेवाला।

संज्ञा पुं० (१) दास। सेवक। (२) मातहत। (३) आनिध्र का पाँचवाँ पुत्र। (मार्कंडेय पुराण)

वश्यता-संज्ञा स्त्री० [सं०] वश में होने की अवस्था या भाव। अधीनता।

वश्या-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) लगाम। (२) नीलापराजिता। (३) गोरोचन।

वषट्-अव्य० [सं०] एक शब्द जिसका उच्चारण अग्नि में आहुति देते समय यज्ञों में होता है। अंगन्यास और करन्यास में शिखा और मध्यमा के साथ इसका व्यवहार होता है।

वषट्कार-संज्ञा पुं० [सं०] (१) देवताओं के उद्देश्य से किया हुआ यज्ञ। होम। होत्र। (२) वेदोक्त तैंतीस देवताओं में से एक।

वषट्कृत-वि० [सं०] देवताओं के निमित्त अग्नि में डाला हुआ। होम किया हुआ। हुत।

वषट्कृत्य-संज्ञा पुं० [सं०] होम।

वष्कयणी, वष्कयिणी-संज्ञा स्त्री० [सं०] बकेना गाय।

वसंत-संज्ञा पुं० [सं०] [वि० वासंत, वासंतक, वासंतिक, वसंती] (१) वर्ष की छः ऋतुओं में से प्रधान और प्रथम ऋतु जिसके अंतर्गत चैत और बैसाख के महीने माने गए हैं। नई पत्ती लगने और बहुत से फूल फूलने की सुंदर ऋतु। बहार का मौसिम।

विशेष—प्राचीन वैदिक काल में यह ऋतु चैत और बैसाख में ही पड़ती थी; पर क्रमशः अयन खिसकने से आज कल प्रकृति में कुछ अंतर दिखाई पड़ता है। इसी से पीछे के कुछ ग्रंथों में फागुन और चैत के महीने वसंत ऋतु कहे गए हैं। पर काव्य आदि में परंपरानुसार अब तक चैत और बैसाख ही इस ऋतु के महीने माने जाते हैं। वसंत ऋतु के ये लक्षण कहे गए हैं—पेड़ों में फूल लगना और नई पत्तियाँ आना, शीतल मंद और सुगंधयुक्त वायु चलना, सायंकाल अत्यंत मनोरम होना, और स्त्री पुरुषों का उमंग से भरना। इस ऋतु में प्राचीन काल में वसंतोत्सव और मदन-पूजा होती थी। आज कल होली का उत्सव उसी की परंपरा है। पुराणों में इस ऋतु का अधिष्ठाता देवता कामदेव का सहचर कहा गया है।

(२) अतीसार रोग। (३) शीतला रोग। विस्फोटक। चेचक। (४) मसूरिका रोग। (५) छः रागों में दूसरा राग। (संगीत)

विशेष—इस राग की उत्पत्ति पंचवक्त्र शिव के पाँचवें मुख से कही गई है। इसकी छः रागिनियाँ ये हैं—देसी, देवगिरी, वैराटी, तोड़िका, ललिता और हिंदोला। कल्लिनाथ के अनुसार छः रागिनियाँ ये हैं—अंधूली, गमकी, पटमंजरी, गौड़केरी, धामकली और देवशाखा। संगीतदामोदर का मत है कि श्रीपंचमी से हरि-शयनी एकादशी तक वसंत राग गा सकते हैं। पर संगीतदर्पण के अनुसार इसे वसंत ऋतु में ही गाना चाहिए। इसका सरगम इस प्रकार है—सा, रि, ग, म, प, ध, नि, सा। कुछ लोग इस राग को हिंदोल राग का पुत्र मानते हैं।

(६) एक ताल का नाम। (संगीत) (७) फूलों का गुच्छा।

वसंतक-संज्ञा पुं० [सं०] श्योनाक। सोनापाढ़ी। टेंटू। अरलू।

वसंतघोषी-संज्ञा पुं० [सं० वसंतघोषिन्] कोकिल।

वसंतजा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) वासंती लता। (२) सफेद जुही। (३) वसंतोत्सव।

वसंततिलक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्रकार के फूल का नाम। (२) एक वर्णवृत्त जिसके प्रत्येक चरण में तगण, भगण, जगण, जगण और दो गुरु, इस प्रकार कुल चौदह वर्ण होते हैं। उ०—लाली ललाम मृदुता अवलोकनीया।

वसंततिलका-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक वर्णवृत्त। वि० दे० "वसंततिलक"।

वसंतदूत-संज्ञा पुं० [सं०] (१) आम का वृक्ष। (२) कोयल। (३) पंचम राग। (४) चैत्र मास।

वसंतदूती-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) कोकिला। (२) पाटली वृक्ष। पाँडरि। पाढर। (३) माधवी लता।

वसंतपंचमी-संज्ञा स्त्री० [सं०] माघ महीने की शुक्ल पंचमी। इस दिन वसंत और रति सहित कामदेव की पूजा करने का विधान है और वसंत राग के सुनने का महाफल है। इसे श्रीपंचमी भी कहते हैं। इस दिन एकाहार व्रत भी किया जाता है।

वसंतबंधु-संज्ञा पुं० [सं०] कामदेव।

वसंतभैरवी-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक रागिनी का नाम।

वसंतमहोत्सव-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक उत्सव जो प्राचीन काल में वसंत पंचमी के दूसरे दिन कामदेव और वसंत की पूजा के उपलक्ष्य में मनाया जाता था। (२) होलिकोत्सव।

वसंतमारू-संज्ञा पुं० [सं०] संपूर्ण जाति का एक राग जिसमें सब शुद्ध स्वर लगते हैं।

वसंतयात्रा-संज्ञा स्त्री० [सं०] वसंतोत्सव।

वसंतयाक्-संज्ञा पुं० [सं०] चौदह तालों में से एक। (संगीत दामोदर)

वसंतमत-संज्ञा पुं० [सं०] कोकिल।

वसंतसख, वसंतसखा-संज्ञा पुं० [सं०] कामदेव।

वसंता-संज्ञा पुं० [हिं० वसंत] हरे रंग की एक सुंदर चिड़िया जिसका कंठ और सिर लाल होता है।

वसंतार्त्त-संज्ञा पुं० [सं०] विभीतक वृक्ष । बहेड़ा ।
वसंती-संज्ञा पुं० [हिं० वसंत] एक रंग जो हलका पीला होता है । सरसों के फूल के रंग का । वसंती ।
वि० वसंती रंग का ।
विशेष—वसंतोत्सव में इस रंग के कपड़े पहने जाते हैं ।
वसंतोत्सव-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक उत्सव जो प्राचीन काल में वसंत पंचमी के दूसरे दिन होता था । इसे 'मदनोत्सव' भी कहते थे । इसमें उद्यानों में जाकर लोग वसंत और कामदेव का पूजन करते थे । होली का उत्सव इसी की परंपरा है । (२) होली का उत्सव ।
वसअत-संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) विस्तार । फैलाव । (२) (३) समाई । अँटने की जगह । (४) चौड़ाई । (५) सामर्थ्य । शक्ति । जैसे,—सब काम अपनी वसअत देखकर करना चाहिए ।
वसति-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) वास । रहना । (२) घर । (३) बस्ती । आबादी । (४) जैन साधुओं का मठ । (५) रात । रात्रि ।
वसती-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) वास । रहना । (२) रात । (३) घर ।
वसन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वस्त्र । (२) ढकने की वस्तु । आवरण । छादन । (३) निवास । (४) स्त्रियों की कमर का एक आभूषण । (५) तेजपत्ता ।
वसना-संज्ञा स्त्री० [सं०] स्त्रियों की कमर का एक आभूषण ।
वसनार्णवा-संज्ञा स्त्री० [सं०] भूमि । पृथिवी ।
वसमा-संज्ञा पुं० [अ०] (१) नील का पत्ता । (२) खिज़ाब । (३) उबटन । (४) एक प्रकार का छपा कपड़ा जो चाँदी के वर्क लगाकर छापा जाता है ।
वसवास-संज्ञा पुं० [अ०] [वि० वसवासी] (१) भ्रम । दुबधा । संदेह । (२) भुलावा । बहकावा । प्रलोभन या मोह । उ०—सरगहुँ तें दोउ निकसे नारद के वसवास ।—जायसी ।
वसवासी-वि० [अ० वसवास] (१) विश्वास न करनेवाला । संशयात्मा । शक्की । (२) भुलावे में डालनेवाला । बह-कानेवाला ।
वसहु-संज्ञा पुं० [सं० वृषभ, प्रा० वसह] बैल । वि० दे० "वसह" ।
वसा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) मेद । (२) चरबी ।
वसाकेतु-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार के धूमकेतु जो पश्चिम में उदय होते हैं और जिनकी पूँछ का विस्तार उत्तर की ओर होता है । ये देखने में स्निग्ध जान पड़ते हैं और इनके उदय से सुभिक्ष होता है ।
वसाढ्य, वसाढ्यक-संज्ञा पुं० [सं०] शिशुमार । सूँस ।
वसातनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] पीला शीशम ।
वसाति-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वसाति नामक जनपद का अधि-वासी । (२) इक्ष्वाकु के एक पुत्र का नाम । (३) जन्मेजय के एक पुत्र का नाम ।
संज्ञा स्त्री० उत्तर के एक जनपद का नाम ।
वसापायी-संज्ञा पुं० [सं० वसापायिन्] कुत्ता ।
वसापायन-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार के वैदिक देवता । पशुमाता ।
वसाप्रमेह-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का मेह रोग जिसमें मूत्र के साथ चरबी मिलकर निकलती है ।
विशेष—आधुनिक डाक्टरी चिकित्सा में यह बहुमूत्र का भेद है, जिसमें मूत्र के साथ शरीर का सत निकलता है और रोगी बहुत क्षीण हो जाता है ।
वसामूर-संज्ञा पुं० [सं०] एक जनपद का नाम ।
वसामेह-संज्ञा पुं० [सं०] वसाप्रमेह ।
वसार-संज्ञा पुं० [सं०] (१) इच्छा । (२) वश । (३) अभिप्राय ।
वसारोह-संज्ञा पुं० [सं०] कुकुरमुत्ता । खुमी ।
वसिर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) समुद्र लवण । (२) गज पिप्पली । (३) लाल रंग का अपामार्ग । लाल चिचड़ा । (४) जलकुंभी ।
वसिष्ठ-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्राचीन ऋषि जिनका उल्लेख वेदों से लेकर रामायण, महाभारत, पुराणों आदि तक में है ।
विशेष—वेदों में ये मित्र और वरुण के पुत्र कहे गए हैं । यज्ञस्थल में एक बार उर्वशी को देखकर मित्र और वरुण का वीर्यपात हो गया । वह वीर्य्य एक घड़े कुंभ में रखा गया । कुंभ से वसिष्ठ और अगस्त्य का जन्म हुआ । 'बृहद्देवता' में लिखा है कि कुंभ के जल में मत्स्य, स्थल में वसिष्ठ और कुंभ में अगस्त्य उत्पन्न हुए थे । ऋग्वेद के अनुसार ये वसिष्ठ गांधार और काबुल की ओर राज्य करनेवाले त्रित्सु वंश के राजा दिवोदास के पौत्र और पिजवन के पुत्र सुदास के पुरोहित थे । सुदास ने इनको बहुत कुछ दान दिया था । एक बार सुदास ने यज्ञ करने के लिये विश्वामित्र को बुलाया इस पर वसिष्ठ बहुत क्रुद्ध हुए । उन्होंने अपने अन्य यजमानों "भरतों" के द्वारा विश्वामित्र को बहुत तंग किया । विश्वामित्र तो चले आए; पर सुदास के पुत्रों ने वसिष्ठ के सौ पुत्रों का नाश कर दिया । फिर वसिष्ठ ने "एक-स्माद" इत्यादि ५० मंत्रों द्वारा यज्ञ करके सौदासों को पराभूत किया ।
पुराणों में वसिष्ठ ब्रह्मा के मानस-पुत्र कहे गए हैं । राजा निमि और वसिष्ठ के बीच एक बार झगड़ा हुआ । वसिष्ठ ने निमि को और निमि ने वसिष्ठ को शाप दिया । निमि तप करके शरीर रहित होकर अमर हुए और उनका वंश विदेह कहलाया । वसिष्ठ ने शरीर त्याग कर मित्रावरुण के वीर्य्य से जन्म ग्रहण किया । कामधेनु के लिये वसिष्ठ और विश्वामित्र (जो पहले राजा

ये) से बहुत दिनों तक झगड़ा होता रहा। विश्वामित्र के सौ पुत्रों को वसिष्ठ ने केवल हुंकार से जला दिया था। विश्वामित्र अंत में हारकर ब्राह्मणत्व प्राप्त करने के लिये तप करने लगे। पुराणों में वसिष्ठ की अनेक पत्नियों के नाम मिलते हैं, जिनमें से अरुंधती कर्दम की कन्या थी; और वसिष्ठ को सब से प्रिय थी। इनकी एक और स्त्री अक्षमाला नीच जाति की थी। किसी और पत्नी से इन्हें शक्ति नामक एक पुत्र हुआ था जो गोत्रकार ऋषि हुआ। ऋग्वेद के अनेक मंत्रों के द्रष्टा वसिष्ठ हैं। सप्तम मंडल के द्रष्टा ये ही माने जाते हैं।

(२) सप्तर्षि मंडल का एक तारा जिसके पास का छोटा तारा अरुंधती कहलाता है।

वसिष्ठनिह्न-संज्ञा पुं० [सं०] एक साम का नाम।

वसिष्ठ पुराण-संज्ञा पुं० [सं०] एक उपपुराण जिसका उल्लेख देवी भागवत में है। कुछ लोग कहते हैं कि लिंग पुराण ही वसिष्ठ पुराण है।

वसिष्ठप्राची-संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल के एक जनपद का नाम।

वसिष्ठशफ-संज्ञा पुं० [सं०] एक साम का नाम।

वसिष्ठसंसर्प-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का संन्यासी।

वसिष्ठसंहिता-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक स्मृति का नाम।

वसिष्ठसिद्धांत-संज्ञा पुं० [सं०] ज्योतिष का एक सिद्धांत ग्रंथ।

वसिष्ठांकुश-संज्ञा पुं० [सं०] एक साम का नाम।

वसिष्ठानुपद-संज्ञा पुं० [सं०] एक साम का नाम।

वसिष्ठापवाह-संज्ञा पुं० [सं०] सरस्वती नदी के किनारे का एक प्राचीन स्थान।

विशेष—कथा है कि जब वसिष्ठ और विश्वामित्र के बीच घोर युद्ध हुआ था, तब सरस्वती नदी ने वसिष्ठ को विश्वामित्र से बचाने के लिये इसी स्थान पर छिपा लिया था।

वसीका-संज्ञा पुं० [अ०] (१) मुसलमानी धर्मशास्त्र के अनुसार वह धन जो विधर्मी या काफ़िर से नक़द रुपए के मुनाफ़े के तौर पर लिया जाय। (२) वह धन जो इस उद्देश्य से सरकारी खजाने में जमा किया जाय कि उसका सूद जमा करनेवाले के संबंधियों को मिला करे अथवा किसी धर्म-कार्य्य, मकान की मरम्मत आदि में लगाया जाय। (३) ऐसे धन से आया हुआ सूद। वृत्ति। (४) वक़्फ़ का इक़रारनामा।

वसीयत-संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) वह अंतिम आदेश जो विदेश जानेवाला या मरणासन्न पुरुष इस उद्देश्य से करता है कि मेरी अनुपस्थिति में अमुक काम इस प्रकार किया जाय। (२) अपनी संपत्ति के विभाग और प्रबंध आदि के संबंध में की हुई वह व्यवस्था, जो मरने के समय कोई मनुष्य लिख जाता है। विल।

वसीयतनामा-संज्ञा पुं० [अ० वसीयत + फ़ा० नामा] वह लेख जिसके द्वारा कोई मनुष्य यह व्यवस्था करता है कि मेरी संपत्ति का विभाग और प्रबंध मेरे मरने के पीछे किस प्रकार हो। विल।

वसीला-संज्ञा पुं० [अ०] (१) संबंध। (२) आश्रय। सहायता। (३) किसी कार्य्य की सिद्धि का मार्ग। जरिया। द्वार। जैसे,—(क) किस वसीले से वह यहाँ आया? (ख) नौकरी के लिये जाता हूँ; कोई वसीला निकल ही आवेगा।

मुहा०—वसीला पैदा करना = (१) किसी कार्य्य की सिद्धि का मार्ग निकालना। सहारा पैदा करना। (२) आमदनी आदि का रास्ता निकालना। वसीला रखना = (१) संबंध रखना। (२) आसरा रखना।

वसुंधरा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) पृथ्वी। (२) श्वफल्क की कन्या जो सांब से ब्याही थी।

वसु-संज्ञा पुं० [सं०] (१) देवताओं का एक गण जिसके अंतर्गत आठ देवता हैं।

विशेष—वेदों में वसु शब्द का प्रयोग अग्नि, मरुद्गण, इंद्र, उषा, अश्वी, रुद्र और वायु के लिये मिलता है। वसु को आदित्य भी कहा है। बृहदारण्यक में इस गण में पृथिवी, वायु, अंतरिक्ष, आदित्य, द्यौ, अग्नि, चंद्रमा और नक्षत्र माने गए हैं। महाभारत के अनुसार आठ वसु ये हैं—धर, ध्रुव, सोम, विष्णु, अनिल, अनल, प्रत्यूष और प्रभास। श्रीमद्भागवत में ये नाम हैं—द्रोण, प्राण, ध्रुव, अर्क, अग्नि, दोष, वास्तु और विभावसु। अग्नि पुराण में आप, ध्रुव, सोम, धर, अनिल, अनल, प्रत्यूष और प्रभास वसु कहे गए हैं। भागवत के अनुसार दक्ष प्रजापति की कन्या 'वसु' ने; जो धर्म को ब्याही थी, वसुओं को उत्पन्न किया।

देवी भागवत में कथा है कि एक बार वसुओं ने वसिष्ठ की नंदिनी गाय चुरा ली थी, जिससे वसिष्ठ ने शाप दिया था कि तुम लोग मनुष्य योनि में जन्म लोगे। वसी शाप के अनुसार वसुओं का जन्म शांतनु की पत्नी गंगा के गर्भ से हुआ, जिनमें सात को तो गंगा जनमते ही गंगा में फेंक आई, पर अंतिम भीष्म बचा लिए गए। इसी से भीष्म वसु के अवतार माने जाते हैं।

(२) शब्दों द्वारा संख्या सूचित करने की रीति के अनुसार आठ की संख्या। (३) रत्न। (४) धन। (५) बक वृक्ष। अगस्त का पेड़। (६) अग्नि। (७) रश्मि। किरन। (८) अष्ट। (९) सुवर्ण। सोना। (१०) योक्त्र। जोत। (११) कुबेर। (१२) पीली मूँग। (१३) वृक्ष। पेड़। (१४) शिव। (१५) सूर्य्य। (१६) विष्णु। (१७) मौलसिरी।

बकुल। (१८) साधु पुरुष। सज्जन। (१९) सरोवर। तालाब। (२०) राजा नृग के एक पुत्र का नाम। (२१) छप्पय के हो सकनेवाले भेदों में से ६९ वाँ भेद।

संज्ञा स्त्री० (१) दीप्ति। आभा। (२) वृद्धौषध। (३) दक्ष प्रजापति की एक कन्या जो धर्म को ब्याही थी और जिससे द्रोण आदि आठ वसुओं का जन्म हुआ था।

वि० (१) जो सब में वास करता हो। (२) जिसमें सब का वास हो।

वसुक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) साँभर नमक। (२) पांशु लवण। रेह। (३) वस्तुक शाक। बथुआ। (४) काला अगर। कृष्णागुरु। (५) क्षार लवण। (६) मदार का वृक्ष। (७) बकुला वृक्ष। बड़ी मौलसिरी।

वसुकर्ण-संज्ञा पुं० [सं०] एक मंत्रद्रष्टा ऋषि।

वसुकृत-संज्ञा पुं० [सं०] एक मंत्रद्रष्टा ऋषि।

वसुकोद्र-संज्ञा पुं० [सं०] तालीशपत्र।

वसुक्र-संज्ञा पुं० [सं०] एक मंत्रद्रष्टा ऋषि का नाम। इस नाम के दो ऋषि हुए हैं। एक इंद्र के गोत्र में उत्पन्न हुए थे; दूसरे वसिष्ठ के गोत्र के थे।

वसुचरण-संज्ञा पुं० [सं०] ढगण के चौथे भेद का नाम जिसके आदि में गुरु और फिर दो लघु होते हैं। (पिंगल)

वसुश्रायक-संज्ञा पुं० [सं०] सोना।

वसुच्छिद्रा-संज्ञा स्त्री० [सं०] महामेदा।

वसुद-संज्ञा पुं० [सं०] (१) कुबेर। (२) विष्णु।

वसुदा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) स्कंद मातृकाओं में से एक। (२) पृथ्वी। (३) माली राक्षस की पत्नी जो नर्मदा नाम की गंधर्वी की पुत्री थी। इसके अनल, निल, हर और संपाति नामक चार पुत्र थे, जो विभीषण के अमात्य थे।

वसुदान-संज्ञा पुं० [सं०] (१) विदेहराज के एक पुत्र का नाम। (२) बृहद्रथ के एक पुत्र का नाम।

वसुदामा-संज्ञा पुं० [सं० वसुदामन्] बृहद्रथ के एक पुत्र का नाम।

संज्ञा स्त्री० [सं०] स्कंद मातृकाओं में से एक का नाम।

वसुदेव-संज्ञा पुं० [सं०] (१) यदुवंशियों के शूर कुल के एक राजा जो श्रीकृष्ण के पिता थे।

विशेष—इनके पिता का नाम देवमीढ़ और माता का मारिषा था। इनके जन्म के समय स्वर्ग में दुंदुभि का शब्द सुनाई पड़ा था, इससे ये 'आनकदुंदुभी' कहलाते थे। ये अपने पिता के ज्येष्ठ पुत्र थे। इनकी बारह स्त्रियाँ थीं—पौरवी, रोहिणी, मदिरा, धरा, वैशाली, भद्रा, सुनाम्नी, सहदेवा, शांतिदेवा, सुदेवा, देवरक्षिता और देवकी। इन पत्नियों के अतिरिक्त इनके सुतनु और बड़वा नाम की दो परिचारिकाएँ भी थीं। रोहिणी के गर्भ से बलराम और देवकी के गर्भ से श्रीकृष्ण का जन्म हुआ था। वसुदेव की बहन कुंती थीं, जिससे पांडव उत्पन्न हुए थे।

(२) एक राजा जो पहले वसुभूति का अमात्य था और पीछे उसे मारकर आप राजा हुआ। (३) धनिष्ठा नक्षत्र।

वसुदेवत-संज्ञा पुं० [सं०] धनिष्ठा नक्षत्र।

वसुदेव्या-संज्ञा स्त्री० [सं०] धनिष्ठा नक्षत्र।

वसुदैवत-संज्ञा पुं० [सं०] धनिष्ठा नक्षत्र।

वसुद्रुम-संज्ञा पुं० [सं०] उदुंबर। गूलर।

वसुधर्मा-संज्ञा पुं० [सं० वसुधर्मन्] महाभारत के अनुसार एक राजा का नाम।

वसुधा-संज्ञा स्त्री० [सं०] पृथ्वी।

वि० वसु अर्थात् धन देनेवाला। धनदाता।

वसुधाधर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) पर्वत। (२) विष्णु।

वसुधाधिप-संज्ञा पुं० [सं०] राजा।

वसुधान-संज्ञा पुं० [सं०] पृथ्वी।

वसुधार-संज्ञा पुं० [सं०] मार्कंडेय पुराण के अनुसार एक पर्वत का नाम।

वसुधारा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) जैनों की एक देवी का नाम।

पर्य्या०—तारा। नीलसरस्वती। महाश्री। स्वाहा। श्री। जया। अनंता। शिवा। भद्रा। शंखिनी। महातारा। त्रिलोचना। तारिणी।

(२) कुबेर की पुरी, अलका। (३) एक तीर्थ का नाम। (४) नांदीमुख श्राद्ध का अंग एक कृत्य, जिसमें राजा वसु के लिये घी की सात धारें दी जाती हैं। पहले दीवार में चंदन से सात चिह्न बनाए जाते हैं। फिर वेद मंत्र पढ़ते हुए धारें दी जाती हैं। (५) एक नदी का नाम।

वसुधार्मिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) स्फटिक। बिल्लौर। (२) संगमर्म।

वसुनीत-संज्ञा पुं० [सं०] ब्रह्मा।

वसुनीथ-संज्ञा पुं० [सं०] अग्नि।

वसुप्रद-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शिव। (२) स्कंद के एक अनुचर का नाम। (३) कुबेर।

वसुबंधु-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन बौद्ध आचार्य जो महायान शाखा के अनुयायी थे। इन्होंने अनेक ग्रंथ रचे हैं, जिनमें से कुछ के अनुवाद चीनी भाषा में भी वर्तमान हैं।

वसुभ-संज्ञा पुं० [सं०] धनिष्ठा नक्षत्र।

वसुमती-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) पृथ्वी। (२) छः वर्णों का एक वृत्त जिसके प्रत्येक चरण में तगण और सगण होते हैं। उ०—तासों परिहरो। जो है हितु भारी। तारी अरु प्यारी। भारी वसुमती।

वसुमना-संज्ञा पुं० [सं० वसुमनस्] पुराणानुसार एक मंत्रद्रष्टा ऋषि का नाम।

वसुमान-संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार एक पर्वत का नाम जो उत्तर दिशा में है।
वसुमित्र-संज्ञा पुं० [सं०] एक बौद्ध आचार्य्य जो महायान शाखा के अंतर्गत वैभाषिक संप्रदाय के थे। ये काश्मीर के पश्चिम अश्मापरांत देश के निवासी कहे गए हैं।
वसुरक्षित-संज्ञा पुं० [सं०] एक बौद्ध आचार्य्य का नाम।
वसुरात-संज्ञा पुं० [सं०] एक ऋषि का नाम।
वसुरुच्-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार के देवता।
वसुरुचि-संज्ञा पुं० [सं०] एक गंधर्व का नाम।
वसुरूप-संज्ञा पुं० [सं०] शिव।
वसुरेता-संज्ञा पुं० [सं० वसुरेतस्] (१) अग्नि। (२) शिव।
वसुरोधी-संज्ञा पुं० [सं०] शिव।
वसुल-संज्ञा पुं० [सं०] देवता।
वसुवन-संज्ञा पुं० [सं०] बृहत्संहिता के अनुसार ईशान कोण में स्थित एक देश।
वसुवाह-संज्ञा पुं० [सं०] एक ऋषि का नाम।
वसुविद्-संज्ञा पुं० [सं०] अग्नि।
वसुश्री-संज्ञा स्त्री० [सं०] स्कंद की अनुचरी एक मातृका का नाम।
वसुश्रुत-संज्ञा पुं० [सं०] अत्रिगोत्री एक ऋषि का नाम।
वसुश्रेष्ठ-संज्ञा पुं० [सं०] चाँदी।
वसुसारा-संज्ञा स्त्री० [सं०] कुवेर की पुरी, अलका।
वसुस्थली-संज्ञा स्त्री० [सं०] कुवेर की पुरी, अलका।
वसुहंस-संज्ञा पुं० [सं०] वसुदेव के पुत्र एक यादव का नाम।
उ०—हयो वीर वसुहंस हंस-दुति हंस-वरन पट। जादव-कुल-अवतंस शत्रु विध्वंसकरन भट।—गोपाल।
वसुहोम-संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार अंग देश के एक राजा का नाम।
वसूक-संज्ञा पुं० [सं०] अगस्त का पेड़।
वसूत्र-संज्ञा पुं० [सं०] अत्रिगोत्री एक ऋषि जो ऋग्वेद के एक सूक्त के द्रष्टा थे।
वसूल-वि० [अ०] (१) पास पहुँचा हुआ। मिला हुआ। प्राप्त। जैसे,—खत का वसूल होना। (२) जो चुका लिया गया हो। जो हाथ में आ गया हो। प्राप्त। लब्ध। जैसे,—लगान वसूल करना। रुपया वसूल करना।
क्रि० प्र०—करना।—होना।
मुहा०—वसूल पाना = दूसरे से जो पाना हो, वह मिल जाना।
संज्ञा पुं० दे० "उसूल"।
वसूली-संज्ञा स्त्री० [अ० वसूल] (१) चुकता कराने की क्रिया। दूसरे से रुपया पैसा या वस्तु लेने का काम। प्राप्ति। जैसे,—इन्हें रुपया देते तो हो, पर वसूली में बड़ी दिक्कत होगी। (२) बाकी निकला या चाहता हुआ रुपया लेने का काम। जैसे,—इस गाँव में वसूली शुरू हो गई।
वस्त-संज्ञा पुं० [सं०] बकरा।
संज्ञा स्त्री० दे० "वस्तु"।
वस्तक-संज्ञा पुं० [सं०] कृत्रिम लवण। बनाया हुआ नमक।
वस्तकर्ण-संज्ञा पुं० [सं०] शाल वृक्ष। साखू का पेड़।
वस्तमोदा-संज्ञा स्त्री० [सं०] अजमोदा।
वस्ति-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) नाभि के नीचे का भाग। पेड़ू। (२) मूत्राशय। (३) पिचकारी।
वस्तिकर्म-संज्ञा पुं० [सं०] लिंगेंद्रिय, गुदेंद्रिय आदि मार्गों में पिचकारी देने की क्रिया।
वस्तिकुंडलिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक रोग जिसमें मूत्राशय में गाँठ सी पड़ जाती है, उसमें पीड़ा तथा जलन होती है और पेशाब कठिनता से उतरता है। गाँठ को दबाने से कभी तो बूँद बूँद करके पेशाब गिरता है, और कभी धार भी निकल पड़ती है। यह रोग असाध्य कहा जाता है। अधिक परिश्रम करने, दौड़कर चलने या चोट लगने से इस रोग की उत्पत्ति कही गई है।
वस्तिवात-संज्ञा पुं० [सं०] एक मूत्र रोग जिसमें वायु बिगड़ कर वस्ति (पेड़ू) में मूत्र को रोक देता है।
वस्तिशोधन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मदन वृक्ष। मैनफल का पेड़। (२) मदनफल। मैनफल।
वस्तु-संज्ञा स्त्री० [सं०] [वि० वास्तव, वास्तविक] (१) वह जिसका अस्तित्व हो। वह जिसकी सत्ता हो। वह जो सचमुच हो। जैसे,—डर कोई वस्तु नहीं। (२) सत्य। (३) वह जिसका नामरूप हो। गोचर पदार्थ। चीज़। जैसे,—घर में बहुत सी वस्तुएँ इधर उधर पड़ी हैं। (४) इतिवृत्त। वृत्तान्त। (५) नाटक का कथन या आख्यान। कथावस्तु।
विशेष—नाटकीय कथावस्तु दो प्रकार की कही गई है—अधिकारिक जिसमें नायक का चरित्र हो; और प्रासंगिक जिसमें नायक के अतिरिक्त और किसी का चरित्र बीच में आ गया हो। वि० दे० "नाटक"।
वस्तुकी-संज्ञा स्त्री० [सं०] बथुआ नाम का साग।
वस्तुज्ञान-संज्ञा पुं० [सं०] (१) किसी वस्तु की पहचान। (२) मूल तथ्य का बोध। सत्य की जानकारी। तत्वज्ञान।
वस्तुतः-अव्य० [सं०] यथार्थतः। सचमुच। असल में।
वस्तुनिर्देश-संज्ञा पुं० [सं०] मंगलाचरण का एक भेद जिसमें कथा का कुछ आभास दे दिया जाता है।
वस्तुबल-संज्ञा पुं० [सं०] वस्तु का गुण।
वस्तुवाद-संज्ञा पुं० [सं०] वह दार्शनिक सिद्धांत जिसमें जगत् जैसा दृश्य है, उसी रूप में उसकी सत्ता मानी जाती है। जैसे,—न्याय और वैशेषिक। यह सिद्धांत अद्वैतवाद का विरोधी है, जिसमें नामरूपात्मक जगत् की सत्ता नहीं मानी जाती।

वस्त्य–संज्ञा पुं० [सं०] बसने की जगह, घर ।

वस्त्र–संज्ञा पुं० [सं०] कपड़ा ।

वस्त्रकुट्टिम–संज्ञा पुं० [सं०] (१) छाता । (२) ख़ेमा । डेरा ।

वस्त्रग्रंथि–संज्ञा स्त्री० [सं०] नीवी । नाड़ा । इज़ारबंद ।

वस्त्रघर्घरी–संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का बाजा ।

वस्त्रप–संज्ञा पुं० [सं०] एक तीर्थ स्थान जिसका नाम पुराणों में "वस्त्रापथ क्षेत्र" मिलता है । यह आज कल का गिरनार है, जो गुजरात में है ।

वस्त्रपूत–वि० [सं०] कपड़े से छाना हुआ ।

वस्त्रबंध–संज्ञा पुं० [सं०] नीवी ।

वस्त्रभूषण–संज्ञा पुं० [सं०] रक्तांजन ।

वस्त्रभूषणा–संज्ञा स्त्री० [सं०] मजीठ ।

वस्त्ररंजन–संज्ञा पुं० [सं०] कुसुंभ का वृक्ष ।

वस्त्ररंजनी–संज्ञा स्त्री० [सं०] मजीठ ।

वस्न–संज्ञा पुं० [सं०] (१) वेतन । (२) मूल्य । (३) वसन । (४) द्रव्य । चीज (५) धन । (६) त्वक् । वल्कल । छाल ।

वस्नक–संज्ञा पुं० [सं०] कटिभूषण । करधनी ।

वस्फ़–संज्ञा पुं० [अ०] (१) प्रशंसा । स्तुति । (२) गुण । सिफ़त । (३) विशेषता ।

वस्वौकसारा–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) इंद्रपुरी । (२) कुबेरपुरी । (३) गंगा । (४) इंद्र नामक नदी ।

वहंत–संज्ञा पुं० [सं०] (१) वायु । (२) बालक ।

वह–सर्व० [सं० सः] (१) एक शब्द जिसके द्वारा दूसरे मनुष्य से बातचीत करते समय किसी तीसरे मनुष्य का संकेत किया जाता है । कर्तृकारक प्रथम पुरुष सर्वनाम । जैसे,—तुम जाओ; वह आता होगा । (२) एक निर्देशकारक शब्द जिससे दूर की या परोक्ष वस्तुओं का संकेत करते हैं । जैसे,—यह और वह दोनों एक ही हैं ।

विशेष—इस अर्थ में यह शब्द संज्ञा के पहले विशेषण की तरह भी आता है । जैसे,—यह आदमी और वह आदमी ।

संज्ञा पुं० [सं०] (१) बैल का कंधा । (२) घोड़ा । (३) वायु । (४) मार्ग । पथ । (५) नद ।

वि० बोझ उठाकर ले जानेवाला । वाहक । (समास में)

वहत–संज्ञा पुं० [सं०] (१) बैल । (२) पंथ । मार्ग ।

वहतांश्री–संज्ञा स्त्री० [सं०] छागलाद्यी क्षुप ।

विशेष—वैद्यक में यह पौधा कटु तथा कास रोग नाशक

जगह से दूसरी जगह ले जाना । जैसे,—भार वहन करना । रथ वहन करना । (३) कंधे या सिर पर लेना । (४) ऊपर लेना । उठाना । (५) खंभे के नौ भागों में से सब से नीचे का भाग । (वास्तु विद्या)

वहनीय–वि० [सं०] (१) उठा या खींचकर ले जाने योग्य । (२) ऊपर लेने योग्य ।

वहम–संज्ञा पुं० [अ०] (१) बिना संकल्प के चित्त का किसी बात पर जाना । मिथ्या धारणा । झूठा ख़याल । (२) भ्रम । (३) व्यर्थ की शंका । मिथ्या संदेह । फ़ज़ूल शक । जैसे,—वहम की तो कोई दवा ही नहीं ।

वहमी–वि० [अ० वहम] वृथा संदेह द्वारा उत्पन्न । भ्रमजन्य । (२) झूठे ख़याल में पड़ा रहनेवाला । (३) वहम करनेवाला । जो व्यर्थ संदेह में पड़े । किसी बात के संबंध में जो व्यर्थ भला बुरा सोचे । संशयात्मा ।

वहल–संज्ञा पुं० [सं०] जहाज़ । नाव ।

वि० दृढ़ । मज़बूत ।

वहलगंध–संज्ञा पुं० [सं०] शंबर चंदन ।

वहलचक्षु–संज्ञा पुं० [सं० वहलचक्षुस्] मेढ़ासींगी । मेषशृंगी ।

वहलत्वच्–संज्ञा पुं० [सं०] लोध ।

वहला–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) शतपुष्पा । (२) बड़ी इलायची । (३) दीपक राग की एक रागिनी का नाम ।

वहशत–संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) जंगलीपन । असभ्यता । बर्बरता । (२) उजड्डपन । (३) पागलपन । बावलापन । (४) चित्त की चंचलता । अधीरता । (५) विकलता । घबराहट । (६) चहल-पहल या रौनक़ न होना । सन्नाटापन । उदासी । (७) डरावनापन ।

मुहा०—वहशत उछलना = (१) सनक होना । खब्त होना । (२) धुन होना । वहशत बरसना = (१) उदासी छाना । कष्ट या दुःख का भाव प्रकट होना । रौनक़ न रहना । (२) डरावनापन प्रकट होना ।

वहशी–वि० [अ०] (१) जंगल में रहनेवाला । जंगली । (२) जो पालतू न हो । जो आदमियों में रहना न जानता हो । (३) असभ्य । (४) भड़कनेवाला ।

वहाँ–अव्य० [हिं० वह] उस [illegible] पर ।

करता था। इस मत के अनुयायी किसी व्यक्ति या स्थान विशेष की प्रतिष्ठा नहीं करते। अब्दुलवहाब ने अनेक मसजिदों और पवित्र स्थानों को गिराया और मुहम्मद साहब की क़ब्र को भी खोदकर फेंक देना चाहा था। इस मत के अनुयायी अरब और फ़ारस में अधिक हैं।

बहिः-अव्य० [सं०] जो अंदर न हो। बाहर।

विशेष—हिंदी में इस शब्द का प्रयोग अकेले नहीं होता, समस्त रूप में होता है। जैसे,—बहिर्गत। बहिष्कार। बहिरंग इत्यादि।

बहित्री-संज्ञा स्त्री० [सं०] नौका। नाव।

बहिरंग-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शरीर का बाहरी भाग। देह का बाहरी हिस्सा। (२) ऊपर या बाहर का हिस्सा। बाहरी भाग। अंतरंग का उलटा। (३) वह जो किसी वस्तु के भीतरी तत्व को न जानना चाहता हो। (४) आगंतुक पुरुष। कहीं बाहर से आया हुआ आदमी। (५) वह मनुष्य जो अपने दल या मंडली का न हो। बाहरी आदमी। (६) पूजा में वह कृत्य जो आदि में किया जाय।

वि० (१) ऊपर ऊपर का। बाहर का। जो अंतरंग न हो। बाहरी। (२) जो सार रूप न हो। जो भीतरी तत्व न हो। (३) अनावश्यक। फालतू।

बहिरिंद्रिय-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) कर्मेंद्रिय। (२) बाह्यकरण मात्र। कर्मेंद्रिय और ज्ञानेंद्रिय।

बहिर्गत-वि० [सं०] जो बाहर गया हो। निकला हुआ। बाहर का।

बहिर्देश-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बाहर का स्थान। (२) विदेश। (३) अज्ञात स्थान। (४) द्वार। दरवाजा।

बहिर्द्वार-संज्ञा पुं० [सं०] बाहरी फाटक। सदर फाटक। तोरण।

बहिर्ध्वजा-संज्ञा स्त्री० [सं०] दुर्गा।

बहिर्भूत-वि० [सं०] बहिर्गत।

बहिर्मुख-वि० [सं०] विमुख।

बहिर्योग-संज्ञा पुं० [सं०] हठयोग।

बहिर्लंब-संज्ञा पुं० [सं०] रेखा-गणित में वह लंब जो किसी क्षेत्र के बाहर बढ़ाए हुए आधार पर गिराया जाता है।

बहिर्लापिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] कोई ऐसा टेढ़ा वाक्य या प्रश्न जिसका उत्तर बतलाने के लिये श्रोता से कहा जाय। पहेली।

विशेष—पहेलियाँ दो प्रकार की होती हैं। जिनके उत्तर का शब्द पहेली के वाक्य के अंदर ही रहता है, उसे अंतर्लापिका कहते हैं। और जिनके उत्तर का पूरा शब्द पहेली के अंदर नहीं होता, वे बहिर्लापिका कहलाती हैं। जैसे,—"मानै काह सयान को ? कौन शंभु-वाहन है ? का को सुत होन है ? काको माल शिव धारो है ?। कहा गज बंधन ? छबीले दग का के अनि ? कौन हरसुत ? सीपसुत को सुप्यारो है। शोभा को सुनाम का है, कृष्ण नख धारो कहा ? सिंधु से मिलत कौन ? काह अनियारो है ?। उत्तर के वर्णन में आदि अंत छाँड़ि दीजै, मध्य लीजै सो हिये मनोरथ हमारो है।"

इन प्रश्नों के उत्तर क्रमशः ये होंगे—(१) सयाने। (२) बरद। (३) सुकृती। (४) कपाल। (५) साँकल। (६) हरिणी। (७) गनेश। (८) मुकता। (९) पानिप। (१०) पहाड़। (११) सरिता। (१२) नयन। इन शब्दों के मध्याक्षर लेने से यह उत्तर वाक्य निकलता है।—"यार! कृपा करि नेक निहारिय"।

बहिश्चर-संज्ञा पुं० [सं०] केकड़ा।

बहिष्करण-संज्ञा पुं० [सं०] बाहर की इंद्रियाँ। पाँच ज्ञानेंद्रियाँ और पाँच कर्मेंद्रियाँ। बाह्येंद्रिय। (मन या अन्तःकरण को भीतर की इंद्रिय कहते हैं।)

बहिष्कृत-वि० [सं०] (१) निकाला हुआ। बाहर किया हुआ। (२) अलग किया हुआ। त्यागा हुआ। त्यक्त।

बहिष्ठ-वि० [सं०] अधिक भार उठानेवाला।

बहिष्प्राण-संज्ञा पुं० [सं०] (१) जीवन। (२) श्वास वायु। (३) अर्थ।

वहीं-अव्य० [हिं० वहाँ+ही] उसी स्थान पर। उसी जगह।

विशेष—जब वहाँ शब्द पर ज़ोर होता है, तब "ही" लगने के कारण उसका यह रूप हो जाता है।

वही-सर्व० [हिं० वह+ही] (१) उस तृतीय व्यक्ति की ओर निश्चित रूप से संकेत करनेवाला सर्वनाम, जिसके संबंध में कुछ कहा जा चुका हो। पूर्वोक्त व्यक्ति। जैसे,—(क) यह वही आदमी है जो कल आया था। (२) निर्दिष्ट व्यक्ति। अन्य नहीं। जैसे,—जो पहले वहाँ पहुँचेगा, वही इनाम पावेगा।

बहीरु-संज्ञा पुं० [सं०] (१) रक्तवाहिनी नाड़ियों का एक वर्ग। शिरा। (२) स्नायु। (३) मांसपेशी। पुट्ठा।

बहूदक-संज्ञा पुं० [सं०] चार प्रकार के संन्यासियों में से एक।

विशेष—सूत-संहिता के अनुसार कुटीचक, बहूदक, हंस और परमहंस ये चार प्रकार के संन्यासी कहे गए हैं। बहूदकों के लिये यह नियम है कि वे एक घर से पूरी भिक्षा न ग्रहण करें, सात घरों से लें। उन्हें अपने साथ में गाय की पूँछ के रोयों से बँधा हुआ त्रिदंड, शिक्य, जलपूर्ण पात्र, कौपीन, कमंडलु, कंथा, पादुका, छत्र, रुद्राक्ष की माला, योगपट्ट, खनित्र और कृपाण रखना चाहिए। मरने पर बहूदक संन्यासी जल में डुबाए जाते हैं।

वह्नि-संज्ञा पुं० [सं०] (१) अग्नि। (२) कृष्ण के एक पुत्र का नाम, जो मित्रविंदा से उत्पन्न हुआ था। (३) तुर्वसु के पुत्र का नाम। (४) कुक्कुर वंशी एक यादव का नाम। (५)

चित्रक। चीता। (६) भिलावाँ। (७) तीन की संख्या। (८) राम की सेना के सेनापति एक बंदर का नाम।

वह्निकर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) विद्युत्। बिजली। (२) जठराग्नि। (३) चकमक। पथरी।

वह्निकरी-संज्ञा स्त्री० [सं०] धौ का फूल।

वह्निकुमार-संज्ञा पुं० [सं०] भुवनपति देवगण में से एक।

वह्निगर्भ-संज्ञा पुं० [सं०] बाँस।

वह्निचक्रा-संज्ञा स्त्री० [सं०] कलिहारी या कलियारी नाम का विष।

वह्निज्वाला-संज्ञा स्त्री० [सं०] धव का पेड़।

वह्निदीपक-संज्ञा पुं० [सं०] कुसुंभ का वृक्ष।

वह्निदीपिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] अजमोदा।

वह्निनाम-संज्ञा पुं० [सं०] (१) चित्रक। चीते का पेड़। (२) भिलावाँ।

वह्निनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] जटामासी।

वह्निपुष्पा-संज्ञा स्त्री० [सं०] धव का वृक्ष।

वह्निबीज-संज्ञा पुं० [सं०] (१) स्वर्ण। सोना।

विशेष—ब्रह्मवैवर्त पुराण के कृष्णजन्म खंड में स्वर्ण की उत्पत्ति की कथा यह है। स्वर्ग की सभा में एक बार सब देवता बैठे हुए थे और रंभा नाच रही थी। रंभा को देखकर अग्नि देव काम पीड़ित हुए और उनका वीर्य्य गिरा, जिसे उन्होंने लज्जावश कपड़ों से ढाँक लिया। कुछ दिनों पीछे वह वीर्य्य दमकती हुई धातु होकर वस्त्र भेदकर नीचे गिरा, जिससे सुवर्ण की उत्पत्ति हुई।

(२) तंत्र में "रं" बीज।

वह्निभूतिक-संज्ञा पुं० [सं०] चाँदी।

वह्निभोग-संज्ञा पुं० [सं०] घी।

वह्निमंथ-संज्ञा पुं० [सं०] गनियारी का पेड़। अग्निमंथ वृक्ष। अँगेथू का पेड़।

वह्निमंथन-संज्ञा पुं० [सं०] गनियारी का पेड़।

वह्निमित्र-संज्ञा पुं० [सं०] वायु। हवा।

वह्निमुख-संज्ञा पुं० [सं०] देवता।

विशेष—यज्ञ की अग्नि में डाला हुआ भाग देवताओं को पहुँचता है, इसी से ये वह्निमुख कहलाते हैं।

वह्निरेता-संज्ञा पुं० [सं० वह्निरेतस्] शिव।

वह्निलोह-संज्ञा पुं० [सं०] ताम्र। ताँबा।

वह्निलोहक-संज्ञा पुं० [सं०] काँसा।

वह्निवक्त्रा-संज्ञा स्त्री० [सं०] कलिहारी या कलियारी नाम का विष।

वह्निशिखा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) कलिहारी या कलियारी नाम का विष। (२) धव का पेड़। (३) कुसुम नाम का क्षुप। प्रियंगु। (४) गज पिप्पली। गजपीपल।

वह्य-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वाहन। यान। (२) शकट। गाड़ी।

वह्यक-संज्ञा पुं० [सं०] उठाकर ले जानेवाला। वाहक।

वाँ†-अव्य० [हिं० वहाँ का संक्षिप्त रूप] उस जगह। उस स्थान पर।

वांछनीय-वि० [सं०] (१) चाहने योग्य। (२) जिसकी इच्छा हो।

वांछा-संज्ञा स्त्री० [सं० वाञ्छा] [वि० वांछित, वांछनीय] इच्छा। अभिलाषा। चाह।

विशेष—सिद्धांतमुक्तावली के अनुसार वांछा नामक आत्मवृत्ति दो प्रकार की होती है। एक उपाय-विषयिणी, दूसरी फल-विषयिणी। फल का अर्थ है—सुख की प्राप्ति और दुःख का न होना। जिस वांछा का कारण फलज्ञान हो, अर्थात् जो वांछा इस रूप में हो कि अमुक सुख मुझे मिले, वह फलविषयिणी है। जो वांछा किसी ऐसे उपाय के संबंध में हो, जिससे फल साधन हो, वह उपाय-विषयिणी है।

वांछित-वि० [सं०] अभिलषित। इच्छित। चाहा हुआ। जिसकी इच्छा हो।

वांत-संज्ञा पुं० [सं०] वमन। उलटी। कै।

वांताद-संज्ञा पुं० [सं०] कुत्ता।

वांताशी-वि० [सं०] वमन खानेवाला।

संज्ञा पुं० (१) कुत्ता। (२) वह ब्राह्मण जो भोजन के लिये अपने कुल या गोत्र की प्रशंसा करे।

वांति-संज्ञा स्त्री० [सं०] वमन। वांत। कै।

वांतिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] कुटकी।

वांतिकृत-संज्ञा पुं० [सं०] मदनफल वृक्ष। मैनफल का पेड़।

वांतिदा-संज्ञा स्त्री० [सं०] कुटकी।

वांतिशोधनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] जीरक। जीरा।

वाःकिटि-संज्ञा पुं० [सं०] शिशुमार। सूँस।

वाःपुष्प-संज्ञा पुं० [सं०] लवंग। लौंग।

वा-अव्य० [सं०] विकल्प या संदेहवाचक शब्द। या। अथवा।

‡† सर्व० [हिं० वह] व्रज भाषा में प्रथम पुरुष का वह एकवचन रूप जो कारक चिह्न लगने के पहले उसे होता है। जैसे,—वाने, वाकों, वासों इत्यादि। उ०—रही रैर वाके पास याहि इतन ही देति।—बिहारी।

वाइ‡†-सर्व० दे० "वाहि"। उ०—नैन कमल की लाग है कमल लगन है वाइ। कमल बाल सम्भव दियो दोनों एक सुभाइ।—रसनिधि।

वाइज़-संज्ञा पुं० [अ०] दे० "वाज़"।

वाइस चांसलर-संज्ञा पुं० [अं०] विश्वविद्यालय का वह उच्च अधिकारी जो चांसलर के सहायतार्थ हो और उसकी अनुपस्थिति में उसके सारे कामों को उसी की भाँति कर सकता हो।

वाइसराय-संज्ञा पुं० [अं०] हिंदुस्तान का वह सर्वप्रधान शासक

अधिकारी जो सम्राट् के प्रतिनिधि स्वरूप वहाँ रहता है। बड़ा लाट।

वाक्-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वाणी। वाक्य। (२) सरस्वती। (३) बोलने की इंद्रिय।

वाक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बगलों का समूह। (२) वाक्य। (३) वेद का एक भाग। (४) खेत की वह कूत जो बिना खेत नापे की जाती है।

वि० बक संबंधी। बगलों का।

वाक़ई-वि० [अ०] ठीक। यथार्थ। सच। वास्तव। जैसे,—जो कुछ कहता हूँ, वह वाक़ई कहता हूँ।

अव्य० सचमुच। यथार्थ में। वास्तव में। जैसे,—क्या आप वाक़ई वहाँ गए थे?

वाक़या-संज्ञा पुं० [अ०] (१) कोई बात जो घटित हो। व्यापार-संयोग। घटना। (२) वृत्तांत। समाचार।

यौ०—वाक़या नवीस = मुसलमानी साम्राज्य में वह कर्मचारी जिसका कार्य्य इतिहास के रूप में घटनाओं को लिखना होता था।

वाक़ा-संज्ञा पुं० [अ०] (१) होनेवाला। घटनेवाला।

मुहा०—वाक़ा होना = घटना के रूप में उपस्थित होना। घटित होना।

(२) स्थित। खड़ा। प्रतिष्ठित। जैसे,—वह मकान दरिया के किनारे वाक़ा है।

वाकिनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] तंत्र के अनुसार एक देवी का नाम।

वाक़िफ़-वि० [अ०] (१) जानकार। ज्ञाता। जैसे,—मैं इस बात से वाक़िफ़ न था। (२) बात को समझने बूझनेवाला। बातों की जानकारी रखनेवाला। अनुभवी। जैसे,—किसी वाक़िफ़ आदमी को इंतजाम के लिये भेजना चाहिए।

वाक़िफ़कार-वि० [अ० वाक़िफ़ + फ़ा० कार] काम को समझने बूझनेवाला। जो अनाड़ी न हो। कार्य्याभिज्ञ।

वाकुची-संज्ञा स्त्री० [सं०] बकुची।

वाकोवाक-संज्ञा पुं० [सं०] कथोपकथन। बातचीत।

वाकोवाक्य-संज्ञा पुं० [सं०] (१) परस्पर कथोपकथन। बातचीत। (२) परस्पर तर्क। (३) तर्क विद्या।

विशेष—छांदोग्योपनिषद् में नारद ने सनत्कुमारों से अपनी जिन जिन विद्याओं के ज्ञाता होने की बात कही थी, उनमें "वाक्योवाक्य" विद्या भी थी।

वाक्का-संज्ञा स्त्री० [सं०] चरक के अनुसार एक प्रकार का पक्षी।

वाक्चपल-वि० [सं०] (१) बहुत बातें करनेवाला। बातें करने में तेज़। मुँहज़ोर। (२) गप्पी।

वाक्छल-संज्ञा पुं० [सं०] न्यायशास्त्र के अनुसार छल के तीन भेदों में से एक।

विशेष—जब वक्ता के साधारण रूप से कहे हुए कथन में दूसरे पक्ष द्वारा अभिप्रेत अर्थ से अन्य अर्थ की कल्पना उसे केवल चक्कर में डालने के लिये की जाती है, तब वाक्छल कहा जाता है। जैसे,—वक्ता ने कहा,—"यह बालक नव कंबल है।" अर्थात् नए कंबलवाला है। इसका प्रतिवादी यदि यह अर्थ लगावे कि इस बालक के पास संख्या में नौ कंबल हैं, और कहे—"नौ कंबल कहाँ हैं, एक ही तो है।" तो यह वाक्छल होगा।

वाक्पटु-वि० [सं०] बात करने में चतुर। वाक्कुशल।

वाक्पति-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बृहस्पति। (२) विष्णु। (३) अनवद्य वचन। पटु वाक्य। निर्दोष बात।

वाक्पतिराज-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक कवि जो राजा यशोवर्म्मा के आश्रित थे। इन्होंने प्राकृत में गौड़वहो (गौड़वध) नामक काव्य की रचना की है। ये भवभूति के सम सामयिक थे। (२) मालवा का एक परमार राजा जो सीयक का पुत्र था। (इस नाम का एक और राजा हुआ है।)

वाक्पारुष्य-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वचन की कठोरता। बात का कड़ुआपन। मुँहज़ोरी। (२) धर्मशास्त्रानुसार किसी की जाति, कुल इत्यादि के दोषों को इस प्रकार ऊँचे स्वर से कहना कि उससे उद्वेग उत्पन्न हो।

वाक़्फ़ियत-संज्ञा स्त्री० [अ०] जानकारी। परिज्ञान।

वाक्य-संज्ञा पुं० [सं०] वह पद समूह जिससे श्रोता को वक्ता के अभिप्राय का बोध हो। वाक्य में कम से कम कर्त्ता, जो संज्ञा या सर्वनाम होता है, और क्रिया का होना आवश्यक है।

विशेष—नैयायिकों और अलंकारियों के अनुसार वाक्य में (१) आकांक्षा, (२) योग्यता और (३) आसत्ति होनी चाहिए। "आकांक्षा" का अभिप्राय यह है कि शब्द यों ही रखे हुए न हों; वे मिलकर किसी एक तात्पर्य्य का बोध कराते हों। जैसे,—कोई कहे—"मनुष्य चारपाई पुस्तक" तो यह वाक्य न होगा। जब वह कहेगा—"मनुष्य चारपाई पर पुस्तक पढ़ता है।" तब वाक्य होगा। "योग्यता" का तात्पर्य्य यह है कि पदों के समूह से निकला हुआ अर्थ असंगत या असंभव न हो। जैसे,—कोई कहे—"पानी में हाथ जल गया" तो यह वाक्य न होगा। "आसत्ति" का मतलब है सामीप्य या निकटता। अर्थात् तात्पर्य्य बोध करानेवाले पदों के बीच देश या काल का व्यवधान न हो। जैसे,—कोई यह न कह कर कि "कुत्ता मारा, पानी पिया" यह कहे—"कुत्ता पिया मारा पानी" तो इसमें आसत्ति न होने से वाक्य न बनेगा; क्योंकि "कुत्ता" और "मारा" के बीच "पिया" शब्द का व्यवधान पड़ता है। इसी प्रकार यदि कोई "पानी" सबेरे कहे और "पिया" शाम को कहे, तो इसमें काल संबंधी व्यवधान होगा।

वाक्यकर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक की बात दूसरे से कहनेवाला। दूत। (२) बातें बनानेवाला।

वाक्यभेद–संज्ञा पुं० [सं०] मीमांसा के एक ही वाक्य का एक ही काल में परस्पर विरुद्ध अर्थ करना।

वाक्यैकवाक्यता–संज्ञा स्त्री० [सं०] मीमांसा के अनुसार एक वाक्य को दूसरे वाक्य से मिलाकर उसके सुसंगत अर्थ का बोध कराना।

वाक्संयम–संज्ञा पुं० [सं०] वाणी का संयम। अन्यथा बात न कहना। व्यर्थ बातें न करना।

वाक्सिद्धि–संज्ञा स्त्री० [सं०] वाणी की सिद्धि; अर्थात् इस प्रकार की सिद्धि या शक्ति कि जो बात मुँह से निकले, वह ठीक घटे।

वागर–संज्ञा पुं० [सं०] (१) वारक। (२) शाण। सान। (३) निर्णय। (४) वृक। भेड़िया। (५) पंडित। (६) मुमुक्षु। (७) निर्भय। निडर।

वागा–संज्ञा स्त्री० [सं०] वल्गा। लगाम।

वागारु–संज्ञा पुं० [सं०] आशा देकर निराश करनेवाला। आसरे में रखकर पीछे धोखा देनेवाला। विश्वासघाती।

वागाशनि–संज्ञा पुं० [सं०] बुद्धदेव।

वागीश–संज्ञा पुं० [सं०] (१) बृहस्पति। (२) ब्रह्मा। (३) वाग्मी। कवि।

वि० अच्छा बोलनेवाला। वक्ता।

वागीशा–संज्ञा स्त्री० [सं०] सरस्वती।

वागीश्वर–संज्ञा पुं० [सं०] (१) बृहस्पति। (२) ब्रह्मा। (३) मंजुघोष बोधिसत्व। (४) कवि।

वि० अच्छा बोलनेवाला। सद्वक्ता।

वागीश्वरी–संज्ञा स्त्री० [सं०] सरस्वती।

वागुंजार–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की मछली। (सुश्रुत)

वागुजी–संज्ञा स्त्री० [सं०] बकुची नाम की ओषधि।

वागुण–संज्ञा पुं० [सं०] (१) कमरख। (२) बैंगन। भंटा।

वागुरा–संज्ञा स्त्री० [सं०] मृगों के फँसाने का जाल।

वागुरिक–संज्ञा पुं० [सं०] हिरन फँसानेवाला शिकारी। मृगव्याध।

वागुलि–संज्ञा पुं० [सं०] डिब्बा। पानदान।

वागुलिक–संज्ञा पुं० [सं०] राजाओं का वह सेवक जिसका काम उनको पान खिलाना होता है। खवास।

वागुद–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का पक्षी।

विशेष—मनुस्मृति में लिखा है कि जो गुड़ चुराता है, वह दूसरे जन्म में वागुद पक्षी होता है।

वागुलि–संज्ञा पुं० [सं०] राजाओं का वह खवास जो उनको पान खिलाता है।

वाग्जाल–संज्ञा पुं० [सं०] बातों की लपेट। बातों का आडम्बर या भरमार।

वाग्दंड–संज्ञा पुं० [सं०] भला बुरा कहने का दंड। मौखिक दंड। डाँट डपट। झिड़की।

वाग्दत्त–वि० [सं०] मुँह से दिया हुआ। वचनों द्वारा प्रदान किया हुआ। जिसे दूसरे को देने के लिये कह चुके हों।

वाग्दत्ता–संज्ञा स्त्री० [सं०] वह कन्या जिसके विवाह की बात किसी के साथ ठहराई जा चुकी हो, केवल विवाह संस्कार होने को बाकी हो।

विशेष—पूर्व काल में प्रथा थी कि कन्या का पिता बालक के पास जाकर कहता था कि मैं अपनी कन्या तुम्हें दूँगा। आजकल इस प्रकार तो नहीं कहा जाता; पर बरच्छा या फलदान का टीका चढ़ाया जाता है।

वाग्दल–संज्ञा पुं० [सं०] ओष्ठाधर। ओठ।

वाग्दान–संज्ञा पुं० [सं०] कन्या के पिता का किसी से जाकर यह कहना कि मैं अपनी कन्या तुम्हें ब्याहूँगा।

विशेष—प्राचीन काल में कन्या का पिता जिसे उत्तम वर समझता था, उसके पास जाकर कहता था—"मैं अपनी कन्या तुम्हें दूँगा"। यही कथन वाग्दान कहलाता था।

वाग्दुष्ट–वि० [सं०] (१) परुषभाषी। कटुभाषी। (२) जिसे किसी ने शाप दिया हो। जिसे किसी ने कोसा हो। अभिशप्त।

वाग्देवता–संज्ञा पुं० [सं०] वाणी। सरस्वती।

वाग्देवी–संज्ञा स्त्री० [सं०] सरस्वती। वाणी।

वाग्देवत्यचरु–संज्ञा पुं० [सं०] वह चरु जो सरस्वती के उद्देश से पकाया गया हो।

वाग्दोष–संज्ञा पुं० [सं०] (१) बोलने की त्रुटि। जैसे,—वर्णों का ठीक उच्चारण न करना इत्यादि। (२) व्याकरण संबंधी त्रुटियाँ या दोष। (३) निंदा या गाली।

वाग्भट–संज्ञा पुं० [सं०] (१) अष्टांगहृदय संहिता नामक वैद्यक के ग्रंथ के रचयिता जिनके पिता का नाम सिंहगुप्त था। (२) पदार्थचंद्रिका, भावप्रकाश, रसरत्न-समुच्चय, शास्त्रदर्पण आदि के रचयिता। (३) वैद्यक निघंटु के रचयिता। (४) एक जैन पंडित जिनके पिता का नाम नेमिकुमार था। इनके रचे अलंकारतिलक, वाग्भटालंकार, और छंदानुशासन प्रसिद्ध ग्रंथ हैं।

वाग्मी–संज्ञा पुं० [सं०] (१) वाचाल। अच्छा वक्ता। (२) पंडित। (३) बृहस्पति। (४) एक पुरुवंशी राजा।

वाग्य–संज्ञा पुं० [सं०] (१) परिमित-भाषी (२) निर्वेद।

वाग्यमन–संज्ञा पुं० [सं०] वाणी का संयम। बोलने में संयम।

वाग्वज्र–संज्ञा पुं० [सं०] (१) कठोर वाक्य। (२) शाप।

वाग्वादिनी–संज्ञा स्त्री० [सं०] सरस्वती।

वाग्विदग्ध–वि० [सं०] (१) पंडित। (२) बातचीत करने में चतुर।

वाग्विलास–संज्ञा पुं० [सं०] आनंदपूर्वक परस्पर संभाषण। आनंदपूर्वक बात-चीत करना।

वाग्वैदग्ध्य-संज्ञा पुं॰ [सं॰] (१) बात करने की चतुरता। (२) सुंदर अलंकार और चमत्कारपूर्ण उक्तियों की निपुणता।

विशेष—काव्य में वाग्वैदग्ध्य की प्रधानता मानते हुए भी काव्य की आत्मा रस ही कहा गया है। अग्नि पुराण में स्पष्ट लिखा है—"वाग्वैदग्ध्य प्रधानेऽपि रस एवात्र जीवितम्"।

वाग्मती-संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] एक नदी जो नैपाल में है और आजकल "बागमती" कहलाती है।

विशेष—वराह पुराण (गोकर्ण माहात्म्य) में इस नदी को अत्यंत पवित्र,गंगा से भी पवित्र, कहा है और इसमें स्नान करने तथा इसके किनारे मरने से विष्णुलोक की प्राप्ति बतलाई है।

वाङ्मय-वि॰ [सं॰] (१) वाक्यात्मक। वचन-संबंधी। (२) वचन द्वारा किया हुआ। जैसे,—वाङ्मय पाप।

विशेष—वचनों द्वारा किए हुए पाप चार प्रकार के कहे गए हैं—पारुष्य, अनृत, पैशुन्य और असंबद्ध प्रलाप।

(३) जो पठन-पाठन का विषय हो।

संज्ञा पुं॰ गद्य-पद्यात्मक वाक्य आदि जो पठन-पाठन का विषय हों। साहित्य।

वाङ्मयी-संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] सरस्वती।

वाङ्मुख-संज्ञा पुं॰ [सं॰] एक प्रकार का गद्य काव्य। उपन्यास।

वाचंयम-संज्ञा पुं॰ [सं॰] (१) मुनि। (२) मौन व्रत धारण करनेवाला पुरुष। मौनी।

वाच्-संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] वाचा। वाणी। वाक्य।

वाच-संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] एक प्रकार की मछली।

वॉच-संज्ञा स्त्री॰ [अं॰] जेब में रखने की या कलाई पर बाँधने की छोटी घड़ी।

वाचक-वि॰ [सं॰] बतानेवाला। कहनेवाला। द्योतक। सूचक। बोधक। जैसे,—उपमावाचक शब्द। लिंगवाचक प्रत्यय।

संज्ञा पुं॰ वह जिससे किसी वस्तु का अर्थ बोध हो। नाम। संज्ञा। संकेत।

वाचकधर्मलुप्ता-संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] वह उपमा जिसमें वाचक शब्द और सामान्य धर्म का लोप हो। उ॰—ईस प्रसाद असीस तुम्हारी। सब सुतवधू देवसरि-वारी।—तुलसी।

वाचकलुप्ता-संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] एक प्रकार का उपमालंकार जिसमें उपमावाचक शब्द का लोप होता है। जैसे,—नील सरोरुह स्याम, तरुण अरुण वारिज नयन।—तुलसी।

वाचकोपमानधर्मलुप्ता-संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] वह उपमा जिसमें वाचक शब्द, उपमान और धर्म तीनों लुप्त हों, केवल उपमेय भर हो। जैसे,—जेहि वर बाजि राम असवारा। तेहि सारदौ न बरनै पारा।—तुलसी।

वाचकोपमानलुप्ता-संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] उपमालंकार का एक भेद जिसमें वाचक और उपमान का लोप होता है। यथा,—तेरे ये कटु बचन हूँ सुनत हियो हरखात।

वाचकोपमेयलुप्ता-संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] उपमालंकार का एक भेद जिसमें वाचक और उपमेय का लोप होता है। जैसे,—अटा उदय होती भयो छविधर पूरन चंद।

वाचक्नवी-संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] गार्गी। वाचक्नवी। (वचक्नु ऋषि की अपत्य।)

वाचन-संज्ञा पुं॰ [सं॰] (१) पढ़ना या उच्चारण करना। पठन। बाँचना। (२) कहना। बताना। (३) प्रतिपादन।

वाचनक-संज्ञा पुं॰ [सं॰] पहेली।

वाचयिता-वि॰ [सं॰ वाचयितृ] वाचक। बाँचनेवाला।

वाचस्पति-संज्ञा पुं॰ [सं॰] बृहस्पति।

वाचस्पति-संज्ञा पुं॰ [सं॰] (१) बृहस्पति। (२) शब्दपति-पालक।

वाचा-संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] (१) वाणी। (२) वाक्य। वचन। शब्द।

वाचाट-वि॰ [सं॰] (१) वाचाल। (२) बकी। बकवादी।

वाचापत्र-संज्ञा पुं॰ [सं॰] प्रतिज्ञापत्र।

वाचाबंध*-वि॰ [सं॰ वाचाबद्ध] वाचाबद्ध। प्रतिज्ञाबद्ध। उ॰—वाचाबंध कंस करि छाँड्यो तब वसुदेव पतीजे हो। याके गर्भ अवतरे जे सुत सावधान ह्वै लीजे हो।—सूर।

वाचाबंधन-संज्ञा पुं॰ [सं॰] प्रतिज्ञाबद्ध होना।

वाचाबद्ध-संज्ञा पुं॰ [सं॰] वादे में बँधा हुआ। वचन देने के कारण विवश। प्रतिज्ञाबद्ध।

वाचाल-वि॰ [सं॰] (१) बोलने में तेज़। वाक्पटु। (२) बकवादी। व्यर्थ बकनेवाला।

वाचालता-संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] (१) बहु-भाषिता। बहुत बोलने-वाला। (२) बातचीत में निपुणता।

वाचिक-वि॰ [सं॰] (१) वाणी संबंधी। (२) वाणी से किया हुआ। (३) संकेत से कहा हुआ।

संज्ञा पुं॰ अभिनय का एक भेद जिसमें केवल वाक्य विन्यास द्वारा अभिनय का कार्य संपन्न होता है।

वाची-वि॰ [सं॰ वाचिन्] (१) वाक्ययुक्त। (२) प्रकट करने-वाला। बोध करानेवाला। सूचक।

विशेष—यह शब्द समास में समस्त पद के अंत में आने से वाचक और विधायक का अर्थ देता है। जैसे,—पुरुषवाची = पुरुषवाचक।

वाच्य-वि॰ [सं॰] (१) कहने योग्य। जो कथन में आवे। (२) शब्द संकेत द्वारा जिसका बोध हो। अभिधा द्वारा जिसका बोध हो। अभिधेय।

विशेष—जिस शब्द द्वारा बोध होता है, उसे "वाचक" कहते

हैं; और जिस वस्तु या अर्थ का बोध होता है, उसे "वाच्य" कहते हैं।

(३) जिसे लोग भला बुरा कहें। कुत्सित। हीन।

संज्ञा पुं० (१) अभिप्रेतार्थ। (२) प्रतिपादन। वि० दे० "वाच्यार्थ"।

वाच्यार्थ-संज्ञा पुं० [सं०] वह अभिप्राय जो शब्दों के नियत अर्थ द्वारा ही प्रकट हो। संकेत रूप से स्थिर शब्दों का नियत अर्थ। मूल शब्दार्थ।

विशेष—अभिधा, लक्षणा और व्यंजना ये तीन शक्तियाँ शब्द की मानी जाती हैं। इनमें से प्रथम के सिवा और सब का आधार "अभिधा" है, जो शब्द-संकेत में नियत अर्थ का बोध कराती है। जैसे,—'कुत्ता' और 'इमली' कहने से पशु विशेष और वृक्ष विशेष का बोध होता है। इस प्रकार का मूल अर्थ वाच्यार्थ कहलाता है। वि० दे० "शब्दशक्ति"।

वाच्यावाच्य-संज्ञा पुं० [सं०] भली बुरी या कहने न कहने योग्य बात। जैसे,—उसे वाच्यावाच्य का विचार नहीं है।

वाज-संज्ञा पुं० [सं०] (१) घृत। घी। (२) यज्ञ। (३) अन्न। (४) जल। (५) संग्राम। (६) बल। (७) बाण में का पंख जो पीछे लगा रहता है। (८) पलक। (९) वेग। (१०) मुनि। (११) शब्द। आवाज़।

वाज़-संज्ञा पुं० [अ०] (१) उपदेश। शिक्षा। (२) धार्मिक व्याख्यान। (३) धार्मिक उपदेश। कथा।

क्रि० प्र०—करना।—देना।—होना।

वाजद्रावणी-संज्ञा पुं० [सं० वाजद्रावणम्] एक साम का नाम।

वाजपति-संज्ञा पुं० [सं०] (१) अग्नि। (२) अन्नपति।

वाजपेई-संज्ञा पुं० दे० "वाजपेयी"।

वाजपेय-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रसिद्ध यज्ञ, जो सात श्रौत यज्ञों में पाँचवाँ है।

वाजपेयी-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह पुरुष जिसने वाजपेय यज्ञ किया हो। (२) ब्राह्मणों की एक उपाधि जो कान्यकुब्जों में होती है। (३) अत्यंत कुलीन पुरुष। जैसे,—वे कौन बड़े भारी वाजपेयी हैं। उ०—व्याध अपराध की साध राखी कौन, पिंगलै कौन मति भगति भेई। कौन धौं सोमयाजी अजामिल अधम कौन गजराज धौं वाजपेई?—तुलसी।

वाजप्य-संज्ञा पुं० [सं०] एक गोत्रकार ऋषि। इनके गोत्र के लोग वाजप्यायन कहलाते हैं।

वाजबी-वि० दे० "वाजिबी"।

वाजमर्मीय-संज्ञा पुं० [सं०] एक साम का नाम।

वाजभृत्-संज्ञा पुं० [सं०] एक साम का नाम।

वाजयत-संज्ञा पुं० [सं०] [अपत्य वाजयतायनि] एक गोत्रकार ऋषि, जिनके गोत्र के लोग "वाजयतायनि" कहलाते हैं।

वाजमय-संज्ञा पुं० [सं०] एक ऋषि का नाम।

वाजश्रवस-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वाजश्रवा ऋषि के गोत्र में उत्पन्न पुरुष। (२) एक ऋषि जिनके पुत्र का नाम "नचिकेता" था और जो अपने पिता के क्रुद्ध होने पर यमलोक चला गया था। वहाँ उसने उनसे ज्ञान प्राप्त किया।

वाजश्रवा-संज्ञा पुं० [सं० वाजश्रवस्] (१) अग्नि। (२) गोत्रकार ऋषि का नाम।

वाजस-संज्ञा पुं० [सं०] एक साम का नाम।

वाजसनि-संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य।

वाजसनेय-संज्ञा पुं० [सं०] (१) यजुर्वेद की एक शाखा जिसे याज्ञवल्क्य ने अपने गुरु वैशंपायन पर क्रुद्ध हो उनकी पढ़ाई हुई विद्या उगलने पर सूर्य के तप से प्राप्त की थी। मत्स्य पुराण के अनुसार वैशंपायन के शाप से वाजसनेय शाखा नष्ट हो गई। पर आजकल शुक्ल यजुर्वेद की जो संहिता मिलती है, वह वाजसनेय संहिता कहलाती है। (२) याज्ञवल्क्य ऋषि।

वाजसाम-संज्ञा पुं० [सं० वाजसामन्] एक साम का नाम।

वाजस्त्रजायस-संज्ञा पुं० [सं०] वेन राजा का नाम।

वाजिगंधा-संज्ञा स्त्री० [सं०] अश्वगंधा। असगंध।

वाजिदंत-संज्ञा पुं० [सं०] वासक। अडूसा।

वाजिनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) घोड़ी। (२) अश्वगंधा। असगंध।

वाजिब-वि० [अ०] उचित। ठीक। मुनासिब।

वाजिबी-वि० [अ०] उचित। ठीक। मुनासिब।

मुहा०—वाजिबी बात = ठीक बात। सच्ची बात। वाजिबी का आवश्यक खर्च।

वाजिबुल्-अदा-वि० [अ०] (रक़म या धन) जिसके देने का समय आ गया हो। (वह रक़म) जिसका देना उचित हो, या जिसे देने का समय पूरा हो गया हो।

संज्ञा पुं० ऐसा धन या रक़म।

वाजिबुल्-अर्ज़-संज्ञा पुं० [अ०] वह शर्तें जो कानूनी बन्दोबस्त के समय ज़मींदारों और काश्तकारों के बीच गाँव के हक आदि के संबंध में लिखी जाती है।

वाजिबुल्-वसूल-वि० [अ०] (धन) जिसके वसूल करने का वक्त आ गया हो।

संज्ञा पुं० ऐसा धन या रक़म।

वाजिभ-संज्ञा पुं० [सं०] अश्विनी नक्षत्र।

वाजिमेध-संज्ञा पुं० [सं०] अश्वमेध।

वाजिराज-संज्ञा पुं० [सं०] (१) विष्णु। (२) उच्चैःश्रवा।

वाजिशत्रु-संज्ञा पुं० [सं०] अपमार। कनेर का पेड़।

वाजिशिरा-संज्ञा पुं० [सं० वाजिशिरस्] (१) भगवान के एक अवतार का नाम। (२) एक दानव का नाम।

वाजी-संज्ञा पुं० [सं० वाजिन्] (१) घोड़ा। (२) वासक। अडूसा। (३) कटे हुए कूप का पानी। वैद्यक में इसे रुक्षकर...

तृष्णा, दाह, रक्तपित्त और ज्वर का नाशक लिखा है। (२) हवि।

वाजीकरण-संज्ञा पुं० [सं०] वह आयुर्वेदिक प्रयोग जिससे मनुष्य में वीर्य्य और पुंसत्व की वृद्धि हो।

विशेष—जिस प्रयोग से मनुष्य अश्व के समान रतिशक्तिवाला हो, उसे वाजीकरण कहते हैं। मनुष्य में जब वीर्य्य की अल्पता होती है, तब वाजीकरण औषधों का व्यवहार किया जाता है। साधारणतः घी, दूध, मांस आदि पदार्थ वीर्य्य-वर्द्धक होते हैं। पर आयुर्वेद में वाजीकरण पर एक अलग प्रकरण रहता है, जिसमें अनेक प्रकार की काष्ठौषधों और रसौषधों की व्यवस्था रहती है।

वाट-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मार्ग। रास्ता। (२) वास्तु। इमारत। (३) मंडप।

वाटधान-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक जनपद जो काश्मीर के नैऋत्य कोण में कहा गया है। नकुल के दिग्विजय में इसे पश्चिम में और मत्स्य पुराण में उत्तर दिशा में लिखा है। (२) ब्राह्मणी माता और वर्ण ब्राह्मण या कर्महीन ब्राह्मण से उत्पन्न एक संकर जाति। (स्मृति)

वाटर-संज्ञा पुं० [अं०] पानी।

यौ०—वाटरप्रूफ। वाटरवर्क्स। वाटरशूट। सोडावाटर आदि।

वाटरप्रूफ़-वि० [अं०] जिस पर पानी का प्रभाव न पड़े। जो पानी में न भीग सके। जैसे,—वाटरप्रूफ कपड़ा।

वाटर वर्क्स-संज्ञा पुं० [सं०] (१) नगर में पानी पहुँचाने का विभाग। पानी पहुँचाने की कल का कार्य्यालय। (२) पानी पहुँचाने की कल। जलकल।

वाटरशूट-संज्ञा स्त्री० [अं०] पानी में कूदकर तैरने की क्रीड़ा। जलक्रीड़ा।

वाटिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) वास्तु। इमारत। (२) बाग। बगीचा। (३) हिंगुपत्री।

वाटी-संज्ञा स्त्री० [सं०] वास्तु। इमारत। घर।

वाटुक-संज्ञा पुं० [सं०] भुना हुआ जौ। बहुरी।

वाट्य-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बला। बरियारा। खिरेंटी। (२) भुना हुआ जौ।

वाट्यपुष्प-संज्ञा पुं० [सं०] (१) चंदन। (२) कुंकुम।

वाट्यमंड-संज्ञा पुं० [सं०] बिना भूसी या छिलके के भुने हुए और दले हुए जौ का माँड।

विशेष—एक भाग दले हुए जौ को चौगुने पानी में पकाने से वाट्यमंड बनता है। वैद्यक में यह हलका, रुचिकर, दीपन तथा पित्त, श्लेष्मा, वायु और अनाहनाशक कहा गया है।

वाट्या-संज्ञा स्त्री० [सं०] बरियारा। बीजबंद।

वाट्याल, वाट्यालक-संज्ञा पुं० [सं०] बरियारा। बीजबंद।

वाट्यालिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] छोटा बरियारा।

वाड़व-संज्ञा पुं० [सं०] दे० "वाड़व"।

वाड़वाग्नि-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) समुद्र के अंदर की आग। (२) समुद्री आग। वह आग जो समुद्र में दिखाई देती है।

वाढ़म-अव्य० [सं०] अलम। बस। काफ़ी है। बहुत हो चुका।

वाण-संज्ञा पुं० [सं०] धारदार फल लगा हुआ छड़ी के आकार का छोटा अस्त्र जो धनुष की डोरी पर खींचकर छोड़ा जाता है। तीर।

विशेष—वृहत् शार्ङ्गधर में धनुष और वाण बनाने के संबंध में बहुत से नियम दिए गए हैं। उसमें लिखा है कि वाण या तीर का फल शुद्ध लौह का होना चाहिए। फल कई आकार के बनाए जाते थे; जैसे,—आरामुख, क्षुरप्र, गोपुच्छ, अर्द्ध-चंद्र, सूचीमुख, भल्ल, वत्सदंत, द्विभल्ल, कर्णिक और काक-तुंड। ये सब भिन्न भिन्न कामों के लिये होते थे। जैसे,—आरामुख वाण वर्म (बकतर) भेदने के लिये, अर्द्धचंद्र सिर काटने के लिये, आरामुख और सूची ढाल छेदने के लिये, क्षुरप्र धनुष काटने के लिये, भल्ल हृदय भेदने के लिये, द्विभल्ल धनुष की डोरी काटने के लिये आदि। फल पर अच्छी जिला होनी चाहिए। पीपल, सेंधा नमक और कुट को गोमूत्र में पीसकर फल पर लेप करे; फिर फल को अग्नि में तपाकर तेल में बुझावे, तो अच्छी जिला होगी। शर कैसा होना चाहिए, इसके संबंध में भी बहुत सी बातें हैं। वाण ठीक सीधा जाय, रास्ते में इधर उधर न हो; इसके लिये उसके पिछले भाग में कुछ दूर तक कौवे, हंस, बगले, गीध और मयूर आदि किसी पक्षी के पर लगाने चाहिएँ।

वाणावली-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) वाणों की अवली। तीरों की कतार। (२) तीरों की लगातार वर्षा। (३) एक साथ बने हुए पाँच श्लोक। श्लोकों का पंचक।

वाणिज्य-संज्ञा पुं० दे० "वाणिज्य"।

वाणिनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) नर्त्तकी। (२) मत्त स्त्री। (३) एक वर्ण वृत्त का नाम, जिसके प्रत्येक चरण में १६ वर्ण अर्थात् क्रमानुसार नगण, जगण, भगण, फिर जगण और अंत में रगण और गुरु होता है।

वाणी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सरस्वती। (२) मुँह से निकले हुए सार्थक शब्द। वचन। जैसे,—ऐसी बानी बोलिए मन का आपा खोय।—कबीर।

मुहा०—वाणी फुरना = मुँह से शब्द निकलना।

(३) वाक्शक्ति। उ०—इतनी कहत गदद पर वरिहै तुरतहि मधुबन आये। कंधु कपोल परसि बालक के बानी प्रगट कराये।—सूर। (४) वागिंद्रिय। जीभ। रसना। उ०—मैन निरखि चकित ह्वै गये। सब बानी दोउ थकि रहे।—सूर। (५) स्वर।

वातंड-संज्ञा पुं० [सं०] एक गोत्रकार ऋषि का नाम, जिनके गोत्रवाले वातंड्य कहलाते हैं।

वातंड्य-संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० वातंड्यायिनी] वातंड ऋषि के गोत्र में उत्पन्न पुरुष।

वात-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वायु। हवा। (२) वैद्यक के अनुसार शरीर के अंदर की वह वायु जिसके कुपित होने से अनेक प्रकार के रोग होते हैं। शरीर में इसका स्थान पक्वाशय माना गया है। कहते हैं कि शरीर की सब धातुओं और मल आदि का परिचालन इसी से होता है; और श्वास प्रश्वास, चेष्टा, वेग आदि इंद्रियों के कार्य्यों का भी यही मूल है।

वातकंटक-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का वात रोग जिसमें पाँव की गाँठों में वायु के घुसने के कारण जोड़ों में बड़ी पीड़ा होती है। यह रोग ऊँचे नीचे पैर पड़ने या अधिक परिश्रम करने से हो जाता है।

वातक-संज्ञा पुं० [सं०] अश्मनपर्णी।

वातकुंडलिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का मूत्ररोग जिसमें वायु कुंडलाकार होकर पेड़ू में घूमता रहता है, रोगी को पेशाब करने में पीड़ा होती है, और बूँद बूँद करके पेशाब उतरता है।

विशेष—मूत्रकृच्छ्र का रोगी यदि कुपथ्य करके रूखी वस्तुएँ खाता है, तो यह उपद्रव होता है।

वातकेतु-संज्ञा पुं० [सं०] धूल। गर्द।

वातकेलि-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सुंदर आलाप। (२) उपपति के दाँतों का दाग।

वातगंड-संज्ञा पुं० [सं०] वातज गलगंड रोग जिसमें गले की नसें काली या लाल और कड़ी हो जाती हैं और बहुत दिन में पकती हैं।

वातगुल्म-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का गुल्म रोग जो वात के प्रकोप से होता है।

विशेष—वैद्यक के अनुसार अधिक भोजन करने, रूखा अन्न खाने, बलवान् से लड़ने, मल मूत्र रोकने या अधिक विरेचनादि लेने से यह रोग होता है। इसमें गोला सा बँध जाता है, जो इधर से उधर रेंगता सा जान पड़ता है। कभी कभी बड़ी पीड़ा होती है। यह पीड़ा प्रायः भोजन पचने के पीछे खाली पेट होने पर होती है और भोजन करने पर घट जाती है।

वातघ्नी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) शालपर्णी। (२) अश्वगंधा। असगंध।

वातचक्र-संज्ञा पुं० [सं०] (१) ज्योतिष में एक योग।

विशेष—आषाढ़ी पूर्णिमा के दिन सूर्यास्त के समय यह योग आता है। उस समय वायु की दिशा द्वारा वर्ष के फलाफल का विचार किया जाता है।

(२) चक्रवात। बवंडर।

वातचटक-संज्ञा पुं० [सं०] तित्तिर। तीतर पक्षी।

वातज-वि० [सं०] वायु द्वारा उत्पन्न। वातकृत।

वातज्वर-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का ज्वर।

विशेष—इसमें गला, होंठ और मुँह सूखते हैं, नींद नहीं आती, हिचकी आती है, शरीर रूखा हो जाता है, सिर और देह में पीड़ा होती है, मुँह फीका लगता है और मल रुद्ध हो जाता है। यह ज्वर कभी घट और कभी बढ़ जाता है।

वाततूल-संज्ञा पुं० [सं०] महीन तागा जो कभी कभी आकाश में इधर उधर उड़ता दिखाई पड़ता है।

विशेष—यह एक प्रकार की बहुत छोटी मकड़ियों का जाल होता है जिसके सहारे वह एक पेड़ से दूसरे पेड़ पर जाया करती हैं। इसी को बुढ़िया का तागा कहते हैं।

पर्य्या०—धूमसूत्रक। इंद्रतूल। ग्रावाहास। चंडक। मरुध्वज।

वातध्वज-संज्ञा पुं० [सं०] मेघ।

वातनाड़ी-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का नासूर जिसमें वायु के प्रकोप से दाँत की जड़ में नासूर हो जाता है। इस में से रक्त सहित पीब निकला करता है और सुमने की सी पीड़ा होती है।

वातपट-संज्ञा पुं० [सं०] पताका। ध्वजा।

वातपत्नी-संज्ञा स्त्री० [सं०] दिशा।

वातपर्यय-संज्ञा पुं० [सं०] एक चक्षु रोग जिसमें कभी भौं में और कभी आँखें धँसने से बड़ी पीड़ा होती है।

वातपुत्र-संज्ञा पुं० [सं०] (१) हनुमान। (२) भीम।

वातपोथ-संज्ञा पुं० [सं०] पलाश।

वातप्रकृति-वि० [सं०] जिसकी प्रकृति वायु-प्रधान हो।

वात प्रकोप-संज्ञा पुं० [सं०] वायु का बढ़ जाना। वायु की अधिकता। इसमें अनेक प्रकार के रोग होते हैं।

वातप्रमी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) हिरन। (२) नकुल। नेवला। (३) घोड़ा।

वातप्रमथिनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] काकतुण्डा।

वातमज-संज्ञा पुं० [सं०] जिधर की हवा हो, उधर मुख करके दौड़नेवाला मृग। वातमृग।

वातमृग-संज्ञा पुं० [सं०] जिधर की हवा हो, उधर मुख करके दौड़नेवाला मृग।

वातरंग-संज्ञा पुं० [सं०] चलदल वृक्ष। पीपल।

वातरक्त-संज्ञा पुं० [सं०] एक रोग जिसमें कुपथ्य और अनुचित आहार विहार से रक्त वायु से दूषित हो जाता है। इसमें पैर के तलवे से घुटने तक छोटी छोटी फुंसियाँ हो जाती हैं, जठराग्नि मंद पड़ जाती है और शरीर दुर्बल होता जाता है।

वातरथ-संज्ञा पुं० [सं०] मेघ।

वातरायण-संज्ञा पुं० [सं०] (१) निष्प्रयोजन पुरुष। निकम्मा आदमी। (२) कांड। (३) करपात्र। लोटा। (४) कुट। (५) सीधा पेड़। (६) उन्मत्त पुरुष।

वातरश-संज्ञा पुं० [सं०] (१) इंद्रधनुष। (२) उत्कोच। घूस। रिश्वत।

वातरोहिणी-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का रोग जिसमें जीभ पर चारों ओर काँटे के समान मांस उभर आता है और उसका गला रुक सा जाता है। इसमें रोगी को बड़ा कष्ट होता है।

वातर्द्धि-संज्ञा पुं० [सं०] काठ और लोहे का बना हुआ पात्र।

वातल-संज्ञा पुं० [सं०] चना।

वि० वायुकारक। वायुवर्द्धक।

वातवैरी-संज्ञा पुं० [सं०] बादाम।

वातव्याधि-संज्ञा स्त्री० [सं०] गठिया।

वातशत्रु-संज्ञा पुं० [सं०] अग्नि।

वातशीर्ष-संज्ञा पुं० [सं०] वस्ति। पिचकारी।

वातसार-संज्ञा पुं० [सं०] बिल्व। बेल।

वातसारथि-संज्ञा पुं० [सं०] अग्नि।

वातस्कंध-संज्ञा पुं० [सं०] आकाश का वह भाग जहाँ वायु चलती रहती है।

वातसखा-संज्ञा पुं० [सं०] अग्नि।

वातांड-संज्ञा पुं० [सं०] अंडकोश का एक रोग, जिसमें एक अंड चलता रहता है।

वाताट-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सूर्य्य का घोड़ा। (२) हिरन।

वातात्मज-संज्ञा पुं० [सं०] हनुमान।

वाताद-संज्ञा पुं० [सं०] बादाम।

वातापि-संज्ञा पुं० [सं०] एक असुर का नाम।

विशेष—आतापि और वातापि दो भाई थे। दोनों मिलकर ऋषियों को बहुत सताया करते थे। वातापि तो भेड़ बन जाता था और उसका भाई आतापि उसे मारकर ब्राह्मणों को भोजन कराया करता था। जब ब्राह्मण लोग खा चुकते, तब वह वातापि का नाम लेकर पुकारता था और वह उनका पेट फाड़कर निकल जाता था। इस प्रकार उन दोनों ने बहुत से ब्राह्मणों को मार डाला। एक दिन अगस्त्य ऋषि उन दोनों के घर आए। आतापि ने वातापि को मारकर अगस्त्य को खिलाया और फिर नाम लेकर पुकारने लगा। अगस्त्य जी ने डकार लेकर कहा कि वह तो मेरे पेट में कभी का पच गया; अब कहाँ आता है।

वाताप्य-संज्ञा पुं० [सं०] (१) जल। (२) सोम।

वाताम-संज्ञा पुं० [सं०] बादाम।

वातामोदा-संज्ञा स्त्री० [सं०] कस्तूरी।

वातायन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) गवाक्ष। झरोखा। मोरी। खिड़की। (२) घोड़ा। (३) एक मंत्रद्रष्टा ऋषि का नाम। (४) रामायण के अनुसार एक जनपद का नाम।

वातायु-संज्ञा पुं० [सं०] हिरन।

वातारि-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एरंड। रेंड़। (२) शतमूली। (३) सिंदारू। निर्गुंडी। (४) अजवायन। (५) थूहर। सेंहुड़। (६) बायबिडंग। (७) सूरन। जिमींकंद। (८) भिलावाँ। (९) सतावर। (१०) तिलक वृक्ष। (११) नील का पौधा।

वाताष्ठीला-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक उदर रोग जिसमें नाभि के नीचे वायु की गाँठ सी पड़ जाती है, जो इधर उधर रेंगती सी जान पड़ती है। यह कभी कभी मूत्र का अवरोध भी करती है।

वाति-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वायु। (२) सूर्य्य। (३) चंद्रमा।

वातिगम-संज्ञा पुं० [सं०] भंटा। बैंगन।

वातीक-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का छोटा पक्षी।

वातुल-वि० [सं०] (१) वायुप्रधान। (२) वायु के कोप से जिसकी बुद्धि ठिकाने न हो।

संज्ञा पुं० बावला। उन्मत्त।

वातोदर-संज्ञा पुं० [सं०] एक रोग जिसमें हाथ, पाँव, नाभि, कोख, पसली, पेट, कमर और पीठ में पीड़ा होती है; सूखी खाँसी आती है; शरीर भारी रहता है; अंगों में ऐंठन होती है; और मल का अवरोध हो जाता है। पेट में कभी कभी गुड़गुड़ाहट भी होती है और पेट फूला रहता है। पेट ठोंकने से ऐसा शब्द निकलता है, जैसे हवा भरी हुई मशक ठोंकने से।

वातोर्मी-संज्ञा पुं० [सं०] ग्यारह अक्षरों का एक वर्ण वृत्त जिसमें मगण, भगण, तगण और अंत में दो गुरु होते हैं। जैसे,—मो भाँती तो गहि धीरा धरो जू। नीके बीतो सद बुद्धै करो जू। पाभोगे अर्जुन या रीति सुखी। वातोर्मी सो समुझौ आत्मसुखी।

वातोलंघन-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का सन्निपात ज्वर। इसमें रोगी को श्वास, खाँसी, भ्रम और मूर्च्छा होती है और वह प्रलाप करता है। उसकी पसलियों में पीड़ा होती है, वह जँभाई अधिक लेता है और उसके मुँह का स्वाद कसैला रहता है।

वात्स-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक गोत्रकार ऋषि का नाम। (२) एक साम का नाम।

वात्सरिक-संज्ञा पुं० [सं०] ज्योतिषी।

वात्सल्य-संज्ञा पुं० [सं०] (१) प्रेम। स्नेह। (२) वह स्नेह जो पिता या माता के हृदय में संतति के प्रति होता है। माता-पिता का प्रेम।

विशेष—साहित्य में जिस प्रकार नायक नायिका के प्रति भाव

के वर्णन द्वारा शृंगार रस माना जाता है, उसी प्रकार कुछ लोग माता-पिता के रति भाव के विभाव, अनुभाव और संचारी सहित वर्णन को वात्सल्य रस मानते हैं। पर यह सर्वसम्मत नहीं है। अधिकांश लोग दांपत्य रति के अतिरिक्त और प्रकार के रति भाव को "भाव" ही मानते हैं।

वात्स्य-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक ऋषि का नाम। (२) एक गोत्र जिसमें और्व, च्यवन, भार्गव, जामदग्न्य और आप्नुवान नामक पाँच प्रवर होते हैं।

वात्स्यायन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक ऋषि का नाम। (२) न्यायशास्त्र के प्रसिद्ध भाष्यकार। (३) काम सूत्र-प्रणेता एक प्रसिद्ध ऋषि।

वाद-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह बात-चीत जो किसी तत्व के निर्णय के लिये हो। तर्क। शास्त्रार्थ। दलील।

विशेष—"वाद" न्याय के सोलह पदार्थों में दसवाँ पदार्थ माना गया है। जब किसी बात के संबंध में एक कहता है कि यह इस प्रकार है और दूसरा कहता है कि नहीं, इस प्रकार है, और दोनों अपने अपने पक्ष की युक्तियों को सामने रखते हुए कथोपकथन में प्रवृत्त होते हैं,तब यह कथोपकथन "वाद" कहलाता है। यह वाद शास्त्रीय नियमों के अनुसार होता है, और उसमें दोनों अपने अपने कथन को प्रमाणों द्वारा पुष्ट करते हुए दूसरे के प्रमाणों का खंडन करते हैं। यदि कोई निग्रह स्थान में आ जाता है, तो उसका पक्ष गिरा हुआ माना जाता है और वाद समाप्त हो जाता है।

(२) किसी पक्ष के तत्वज्ञों द्वारा निश्चित सिद्धांत। उसूल। जैसे,—अद्वैतवाद, आरंभवाद, परिणामवाद। (३) बहस। झगड़ा।

वादक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बाजा बजानेवाला। (२) वक्ता। (३) वाद करनेवाला। तर्क या शास्त्रार्थ करनेवाला।

वादचंचु-संज्ञा पुं० [सं०] शास्त्रार्थ करने में पटु। वाद करने में दक्ष।

वाददंड-संज्ञा पुं० [सं०] सारंगी आदि बाजों के बजाने की कमानी।

वादन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बाजा बजाना। (२) बाजा।

वादनक-संज्ञा पुं० [सं०] बाजा।

वादप्रतिवाद-संज्ञा पुं० [सं०] शास्त्रीय विषयों में होनेवाला कथोपकथन। बहस।

वादर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) कपास के सूत का कपड़ा। (२) कपास का पेड़। (३) बेर का पेड़।

वादरंग-संज्ञा पुं० [सं०] अश्वत्थ का वृक्ष।

वादरा-संज्ञा स्त्री० [सं०] कपास।

वादरायण-संज्ञा पुं० [सं०] व्यासदेव। वेदव्यास।

वादरायणि-संज्ञा पुं० [सं०] (१) व्यास के पुत्र शुकदेव। (२) व्यासदेव।

वादरि-संज्ञा पुं० [सं०] वादरायण के पिता। इनका मत वेदांत दर्शन में प्रायः उद्धृत मिलता है।

वादरिक-संज्ञा पुं० [सं०] बेर बीननेवाला।

वादल-संज्ञा पुं० [सं०] मधुयष्टिका। जेठी मधु। मुलेठी।

वादविवाद-संज्ञा पुं० [सं०] शाब्दिक झगड़ा। बहस।

वादसाधन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) उपकार करना। (२) तर्क करना।

वादा-संज्ञा पुं० [अ० वाद:] (१) नियत समय या घड़ी।

मुहा०—वादा आना = (१) घड़ी का पहुँचना। नियत समय का प्राप्त होना। (२) काल आना। मृत्यु का समय आना। वादा पूरा होना = जीवन काल समाप्त होना।

(२) इस बात का विश्वास दिलाना कि मैं अमुक काम करूँगा। वचन। प्रतिज्ञा। इकरार।

मुहा०—वादा पूरा करना = वचन के अनुसार काम करना। प्रतिज्ञा पूर्ण करना। वादा टालना = जिस समय कोई काम करने का वचन दिया हो, उस समय न करना। प्रतिज्ञा भंग करना। वादाखिलाफ़ी करना = बात पूरी न करना। वचन के विरुद्ध कार्य करना। वादा लगाना = वचन लेना। प्रतिज्ञा कराना। उ०—सौंह करि कहत हौं, पूछो प्यारे रघुनाथ ! आवति होते वादो उनहीं के घर सों।—रघुनाथ।

वादानुवाद-संज्ञा पुं० [सं०] तर्क वितर्क। शास्त्रार्थ। बहस।

वादाल-संज्ञा पुं० [सं०] सहस्रदंष्ट्र नामक मछली।

वादि-संज्ञा पुं० [सं०] विद्वान्।

अव्य० दे० "बादि"।

वादिक-संज्ञा पुं० [सं०] तार्किक।

वादित-वि० [सं०] बजाया हुआ। बादित।

वादित्र-संज्ञा पुं० [सं०] वाद्य। बाजा।

वादिराज-संज्ञा पुं० [सं०] मंजुघोष।

वादींद्र-संज्ञा पुं० [सं०] मंजुघोष।

वादी-संज्ञा पुं० [सं० वादिन्] (१) वक्ता। बोलनेवाला। (२) किसी बात का पहले पहल प्रस्ताव करनेवाला, जिसका प्रतिवादी की ओर से खंडन होता है। (३) व्यवहार में किसी के प्रति कोई अभियोग चलानेवाला। मुकदमा चलानेवाला। फ़रियादी। मुद्दई।

वादूलि-संज्ञा पुं० [सं०] विश्वामित्र के एक पुत्र का नाम।

वाद्य-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बजाना। (२) बाजा।

वाद्यक-संज्ञा पुं० [सं०] बाजा बजानेवाला।

वाद्यभांड-संज्ञा पुं० [सं०] मुरज आदि बाजे।

वापू-संज्ञा पुं० [सं०] (१) नाव का डाँड़। (२) बीज। आदि।

वाधूल-संज्ञा पुं० [सं०] एक गोत्रकार ऋषि का नाम। इस गोत्र के लोग वाधौल कहलाते हैं।

वाध्र्यश्व-संज्ञा पुं० [सं०] अग्नि।

वान-संज्ञा पुं० [सं०] (१) कट। गोनटी। चटाई। (२) पानी में लगनेवाला वायु का झोंका। (३) गति। (४) सुरंग। (५) सौरभ। सुगंध। (६) सूखा फल। (७) वाना।
संज्ञा पुं० दे० "वाण"।

वानदंड-संज्ञा पुं० [सं०] वह लकड़ी जिसमें वाना लपेटकर बुना जाता है।

वानप्रस्थ-संज्ञा पुं० [सं०] (१) महुए का पेड़। मधूक वृक्ष। (२) पलाश। (३) प्राचीन भारतीय आर्यों के अनुसार मनुष्य जीवन के चार विभागों या आश्रमों में से तीसरा विभाग या आश्रम।

विशेष—यह आश्रम गार्हस्थ्य के पीछे और संन्यास के पहले पड़ता है। शास्त्र के अनुसार पचास वर्ष के ऊपर हो जाने पर और गार्हस्थ्य आश्रम से चित्त हट जाने पर मनुष्य इस आश्रम का अधिकारी होता है। इस आश्रम में प्रवेश करनेवाले को नगर, गाँव या बस्ती से अलग वन में रहना, जंगली फल खाना, और उन्हीं से पंचमहा यज्ञादि करना चाहिए। शय्या, वाहन, वस्त्र, पलंग आदि सब त्याग देना चाहिए। स्त्री को चाहे पुत्र के पास छोड़े, चाहे अपने साथ वन में ले जाय। जब इस आश्रम में रहकर मनुष्य पूर्ण वैराग्य संपन्न हो जाय, तब उसे संन्यास लेना चाहिए।

वानर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बंदर। (२) दोहे का एक भेद जिसके प्रत्येक चरण में १० गुरु और २८ लघु होते हैं। यथा—जड़ चेतनगुण दोषमय, विश्व कीन्ह करतार। संत हंस गुण गहहिं पै परिहरि वारि विकार।

वानरी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) केवाँच। कपिकच्छु। (२) बंदर की मादा।

वानल-संज्ञा पुं० [सं०] काली वन-तुलसी।

वानवासिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] सोलह मात्राओं के छंदों या चौपाई का एक भेद जिसमें नवीं और बारहवीं मात्राएँ लघु पड़ती हैं। जैसे,—"सीय लखन जेहि विधि सुख लहहीं"।

वानस्पत्य-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह वृक्ष जिसमें पहले फूल लगकर पीछे फल लगते हैं। जैसे,—आम, जामुन आदि। (२) वनस्पति का समूह।

वाना-संज्ञा स्त्री० [सं०] बटेर पक्षी।

वानायुज-संज्ञा पुं० [सं०] वनायुज देश का घोड़ा।

वानीय-संज्ञा पुं० [सं०] कैवर्त मुस्तक। केवटीमोथा। कुर। गोन।

वानीर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बेंत। (२) पाकड़ का पेड़। पक्कड़।

वानीरक-संज्ञा पुं० [सं०] मूँज।

वानेय-संज्ञा पुं० [सं०] गोन नाम का तृण जो पानी में होता है। कैवर्त मुस्तक।

वाप-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बोना। वपन। (२) मुंडन। (३) क्षेत्र। खेत।

वापक-संज्ञा पुं० [सं०] बीज बोनेवाला।

वापन-संज्ञा पुं० [सं०] बीज बोना।

वापस-वि० [फा०] लौटा हुआ। फिरा हुआ।

मुहा०—वापस आना = किसी स्थान पर जाकर वहाँ से फिर आ जाना। लौट आना। वापस करना = (१) किसी आए हुए मनुष्य को फिर वहीं भेजना, जहाँ से वह आया हो। लौटाना। (२) किसी वस्तु को मोल लेकर फिर दूकानदार को दे देना और उससे दाम ले लेना। जैसे,—यह छाता अच्छा नहीं है; वापस कर दो। (३) दे० "वापस लेना"। (४) किसी से ली हुई वस्तु को उसे फिर दे देना। वापस जाना = फिर वहाँ जाना, जहाँ से आया हो। लौट जाना। वापस होना = (१) लौट आना। (२) किसी मोल ली हुई वस्तु का फिर दूकानदार को उससे दाम लेकर दे दिया जाना। फेरा जाना। जैसे,—अब यह छाता वापस नहीं हो सकता। (३) दी हुई वस्तु का फिर मिल जाना या ली हुई वस्तु का फिर दे दिया जाना।

वापसी-वि० [फा० वापस] लौटा हुआ या फेरा हुआ। जैसे,—वापसी डाक।
संज्ञा स्त्री० (१) लौटने की क्रिया या भाव। प्रत्यावर्त्तन। जैसे,—वापसी के समय लेते जाना। (२) किसी दी हुई—वस्तु को फिर लेने या ली हुई वस्तु को फिर देने का काम या भाव।

वापिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का बड़ा चौड़ा कूआँ या जलाशय। वापी। बावली।

वापित-वि० [सं०] (१) बोया हुआ। (२) मुंडित। मूँड़ा हुआ।

वापी-संज्ञा स्त्री० [सं०] छोटा जलाशय। बावली।

वाप्य-संज्ञा पुं० [सं०] (१) कुट। (२) बोआरी धान। (३) बावली का पानी।

वाम-वि० [सं०] (१) बायाँ। दक्षिण या दाहिने का उलटा। (२) प्रतिकूल। विरुद्ध। खिलाफ़। अहित में तत्पर। उ०—बिधि बाम की करनी कठिन जेइ मातु कीन्ही बावरी।—तुलसी। (३) टेढ़ा। कुटिल। (४) खोटा। दुष्ट। नीच। (५) जो अच्छा न हो। बुरा।
संज्ञा पुं० (१) कामदेव। (२) एक रुद्र का नाम। वामदेव। (३) वरुण। (४) कुच। स्तन। (५) धन। (६) धृतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम। (७) कृष्ण के एक पुत्र का नाम। (८) चंद्रमा के रथ के एक घोड़े का नाम। (९) २४ अक्षरों का एक वर्ण वृत्त जिसके प्रत्येक चरण में [illegible] जगण और

एक यगण होता है। इसे मंजरी, मकरंद और माधवी भी कहते हैं। यह एक प्रकार का सवैया ही है। जैसे,—सु *लोक यथामति वेद पढ़ै सब आगम औ दस आठ सयाने।*
संज्ञा स्त्री० दे० "वामा"। उ०—नवल त्रिभंग कदम तर ठाढ़े, मोहत सब ब्रज वाम। (गीत)

वामक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) अंगमंगी का एक भेद। (२) बौद्ध ग्रंथों के अनुसार एक चक्रवर्ती।

वामकक्ष-संज्ञा पुं० [सं०] एक गोत्रकार ऋषि का नाम जिनके गोत्र के लोग वामकक्षायन कहे जाते थे।

वामदेव-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शिव। महादेव। (२) गौतम गोत्रीय एक वैदिक ऋषि जो ऋग्वेद के चौथे मंडल के अधिकांश सूक्तों के द्रष्टा थे। (३) दशरथ के एक मंत्री का नाम।

वामदेवी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) दुर्गा। (२) सावित्री।

वामदेव्य-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक साम का नाम। (२) एक ऋषि का नाम। (३) पुराणानुसार शाल्मलि द्वीप के एक पर्वत का नाम।

वामन-वि० [सं०] (१) बौना। छोटे डील का। (२) ह्रस्व। खर्व।
संज्ञा पुं० [सं०] (१) विष्णु। (२) शिव। (३) एक दिग्गज का नाम। (४) एक प्रकार का घोड़ा जो डील डौल में छोटा होता है। (५) हनु के एक पुत्र का नाम। (६) एक नाग का नाम। (७) गरुड़ वंशी एक पक्षी का नाम। (८) क्रौंच द्वीप के एक पर्वत का नाम। (९) विष्णु भगवान का पाँचवाँ अवतार जो बलि को छलने के लिये अदिति के गर्भ से हुआ था। (१०) अठारह पुराणों में से एक।

वामनक-संज्ञा पुं० [सं०] क्रौंच द्वीप का एक पर्वत।

वामनद्वादशी-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक पर्व तिथि जो भादों शुक्ल १२ को पड़ती है। इस दिन व्रत करके विष्णु भगवान के वामनावतार की पूजा की जाती है।

वामना-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक अप्सरा का नाम।

वामनिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) स्कंद की अनुचरी एक माता या मातृका का नाम। (२) बौनी स्त्री।

वाम मार्ग-संज्ञा पुं० [सं०] वेद-विहित दक्षिण मार्ग के प्रतिकूल तांत्रिक मत जिसमें, मद्य, मांस, व्यभिचार आदि निषिद्ध बातों का विधान रहता है।

वामरथ-संज्ञा पुं० [सं०] एक गोत्रकार ऋषि का नाम जिनके गोत्रवाले वामरथ्य कहलाते थे।

वामलूर-संज्ञा पुं० [सं०] दीमक का भीटा। वल्मीक। बाँबी।

वामलोचना-संज्ञा स्त्री० [सं०] सुंदरी स्त्री।

वामा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) स्त्री। (२) दुर्गा। (३) वर्णवृत्तों के एक वृत्त का नाम जिसके प्रत्येक चरण में तगण, यगण और भगण तथा अंत में एक गुरु होता है। जैसे,— तू यौं मगवामा तें सारदा। टेरै धन ते ज्यों तीर का। है दुख नाना की जननी। ऐसी इम माया ते बचनी।

वामाक्षी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सुंदर स्त्री। (२) [illegible]

वामाचार-संज्ञा पुं० [सं०] तांत्रिक मत का एक भेद जिसमें पंच मकार अर्थात् मद्य, मांस, मत्स्य, मुद्रा और मैथुन द्वारा उपास्य देव की पूजा की जाती है। इस मतवाले तंत्र-अवलंबी को वीर, साधक आदि और विरोधी को [illegible] कहते हैं।

वामापीड़न-संज्ञा पुं० [सं०] पीलू का पेड़।

वामावर्त-वि० [सं०] (१) दक्षिणावर्त का उलटा। (वह फेरी) किसी वस्तु (देव-प्रतिमा आदि) की बाईं ओर से आरंभ की जाय। जैसे,—वामावर्त्त परिक्रमा। (२) (वह चक्र) जो बाईं ओर से चला हो। (३) जिसमें बाईं ओर घुमाव या भँवरी हो। जैसे,—वामावर्त्त शंख।
विशेष—शंख दो प्रकार के होते हैं—एक वामावर्त, दूसरा दक्षिणावर्त। दक्षिणावर्त शंख अत्यन्त शुभ और दुर्लभ कहा जाता है।

वामिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] चंडिका।

वामिनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का योनि रोग जिसमें गर्भाशय से छः सात दिन तक रज का स्राव होता रहता है। इसमें कभी पीड़ा होती है, कभी नहीं होती।

वामी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) शृगाली। गीदड़ी। (२) [illegible] (३) गदही।

वामोरु-संज्ञा स्त्री० [सं०] सुंदर जंघावाली स्त्री। सुंदरी स्त्री।

वाम्री-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक स्त्री जो गोत्रकार थी। इसके गोत्र वाले वाम्रेय कहलाते थे।

वाम्य-संज्ञा पुं० [सं०] वामदेव ऋषि के घोड़े का नाम।

वाम्र-संज्ञा पुं० [सं०] एक साम का नाम।

वाय-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बुनना। (२) धागा।

वायक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बुननेवाला। (२) [illegible] जुलाहा।

वायदंड-संज्ञा पुं० [सं०] जुलाहों की ढरकी।

वायन-संज्ञा पुं० [सं०] वह मिठाई या पकवान जो [illegible] या विवाहादि के लिये बनाया जाय।
विशेष—दे० "बायन"।

वायनरज्जु-संज्ञा पुं० [सं०] जुलाहों के करघे की [illegible]।

वायव्य-वि० [सं०] (१) वायु संबंधी। (२) [illegible] वायु से बना हुआ। (३) जिसका देवता वायु हो।
संज्ञा पुं० (१) वह कोण या दिशा जिसका अधिपति वायु है। उत्तर पश्चिम का कोना। पश्चिमोत्तर दिशा। (२) वायु पुराण। (३) एक अस्त्र का नाम।

वायस-संज्ञा पुं० [सं०] (१) अगुरु। अगर का पेड़। (२) कौआ।

वायसतंतु-संज्ञा पुं० [सं०] (१) हनु के दोनों जोड़। (२) काकतुंडी। कौआठोंठी।

वायसांतक-संज्ञा पुं० [सं०] उलूक। उल्लू।

वायसाह्विनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) महाज्योतिष्मती लता। (२) कौआठोंठी।

वायसी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) छोटी मकोय जिसमें गुच्छों में गोल मिर्च के समान लाल फल लगते हैं। काकमाची। (२) महाज्योतिष्मती। (३) काकतुंडी। कौआठोंठी। (४) सफेद घुँघुची। (५) काकजंघा। मासी। (६) महाकरंज। बड़ा कंजा।

वायसेक्षु-संज्ञा पुं० [सं०] काँस नाम का तृण।

वायसोलिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) काकोली। मालकंगनी। (२) महाज्योतिष्मती लता।

वायु-संज्ञा स्त्री० [सं०] हवा। वात।

विशेष—वैशेषिक दर्शन वायु को द्रव्यों में मानता है और उसे रूपरहित, स्पर्शवान् तथा नित्य कहता है। न्याय दर्शन में वायु पंचभूतों में है और इसका गुण स्पर्श कहा गया है। वायु से ही स्पर्शेंद्रिय की उत्पत्ति मानी गई है। वैशेषिक दर्शन स्पर्श के अतिरिक्त संख्या, परिमाण, पृथक्त्व, संयोग, विभाग, परत्व, अपरत्व और वेग भी वायु के गुण मानता है। सांख्य में वायु की उत्पत्ति स्पर्श तन्मात्रा से मानी गई है। उपनिषदों के अनुसार वेदांत भी वायु की उत्पत्ति आकाश से मानते हैं।

वायुकोण-संज्ञा पुं० [सं०] पश्चिमोत्तर दिशा।

वायुगुल्म-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वातचक्र। बगोला। बवंडर। (२) पेट का एक रोग जिसमें उसके अंदर वायु का एक गोला सा बँध जाता है, जो घटता बढ़ता और सारे पेट में फिरता रहता है। कभी कभी यह पीड़ा भी उत्पन्न करता है। वायगोला।

विशेष—इसमें प्रायः मल मूत्र का अवरोध भी हो जाता है और गला सूखा रहता है। हृदय, बगल और पसली में कभी कभी बड़ा दर्द होता है। खाली पेट में इसका ज़ोर अधिक रहता है और भरे पेट में कम। कड़ुवे, कसैले पदार्थों के खाने से यह रोग बढ़ता है।

वायुदारु-संज्ञा पुं० [सं०] मेघ। बादल।

वायुपुत्र-संज्ञा पुं० [सं०] (१) हनुमान। (२) भीम।

वायुफल-संज्ञा पुं० [सं०] इंद्रधनुष।

वायुभक्ष-संज्ञा पुं० [सं०] सर्प। साँप।

वायुमंडल-संज्ञा पुं० [सं०] आकाश, जिसमें वायु प्रवाहित होती है।

वायुमरुल्लिपि-संज्ञा स्त्री० [सं०] ललितविस्तर के अनुसार एक लिपि का नाम।

वायुरोषा-संज्ञा स्त्री० [सं०] रात।

वायुलोक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) पुराणानुसार एक लोक का नाम। (२) आकाश।

वायुवाहन-संज्ञा पुं० [सं०] धूम्र। धूआँ।

वायुसख-संज्ञा पुं० [सं०] अग्नि।

वायुहन्-संज्ञा पुं० [सं०] एक ऋषि का नाम जो मंकण ऋषि के पुत्र थे। कथा है कि मंकण ऋषि एक बार सरस्वती में स्नान कर रहे थे। वहाँ उनको एक नग्न स्त्री स्नान करती हुई दिखाई दी। उसे देखकर उनका वीर्य्य स्खलित हो गया। उसे उन्होंने एक घड़े में रखा, वह सात भागों में विभक्त हो गया और उनसे वायुवेग, वायुबल, वायुहन्, वायुमंडल, वायुजाल, वायु-रेता और वायुचक्र नामक सात पुत्र उत्पन्न हुए।

वारंक-संज्ञा पुं० [सं०] पक्षी।

वारंग-संज्ञा पुं० [सं०] (१) तलवार की मूठ। (२) अँकुड़े के आकार का एक अस्त्र जिससे चिकित्सक अस्थिविनष्ट शल्य निकालते थे। (सुश्रुत)

वारंट-संज्ञा पुं० [अं०] अदालत का वह आज्ञापत्र जिसके अनुसार किसी कर्मचारी को वह काम करने का अधिकार प्राप्त हो जाय, जिसे वह अन्यथा करने में असमर्थ हो। यह कई प्रकार का होता है, जैसे,—वारंट गिरफ्तारी, वारंट तलाशी, वारंट रिहाई, इत्यादि।

वारंट गिरफ़्तारी-संज्ञा पुं० [अं० वारंट+फ़ा० गिरफ़्तारी] अदालत का वह आज्ञापत्र जिसके अनुसार किसी कर्मचारी को यह अधिकार दिया जाय कि वह किसी पुरुष को पकड़कर अदालत में हाज़िर करे।

वारंट तलाशी-संज्ञा पुं० [अं० वारंट+फ़ा० तलाशी] अदालत का वह आज्ञापत्र जिसके अनुसार किसी कर्मचारी को यह अधिकार दिया जाय कि वह किसी स्थान में जाकर वहाँ की तलाशी ले।

वारंट रिहाई-संज्ञा पुं० [अं० वारंट+फ़ा० रिहाई] अदालत का वह आज्ञापत्र जिसके अनुसार किसी सरकारी कर्मचारी को यह आज्ञा और अधिकार मिले कि वह किसी पुरुष को, जो जेल, हवालात या गिरफ्तारी में हो, छोड़ दे, या किसी माल या जायदाद को, जो कुर्क हो या किसी की सपुर्दगी में हो, मालिक को लौटा दे।

वारंवार-अव्य० दे० 'बारंबार'।

वार्-संज्ञा पुं० [सं०] जल। पानी।

वार-संज्ञा पुं० [सं०] (१) द्वार। दरवाज़ा। (२) अवरोध। रोक। रुकावट। (३) ढँकनेवाली वस्तु। आवरण। (४)

कोई नियत काल। अवसर। दफ़ा। मरतबः। जैसे,—बारंबार। (५) क्षण। (६) सप्ताह का दिन। जैसे,—आज कौन वार है ? (७) कुज वृक्ष। (८) पानपात्र। मद्य का प्याला। (९) वाण। तीर। (१०) नदी या समुद्र का किनारा। (११) शिव का एक नाम। (१२) दाँव। बारी। जैसे,—अपना अपना वार है।

मुहा०—वार मिलना = फुरसत मिलना।

संज्ञा पुं० [सं० वार = दाँव, बारी] चोट। आघात। आक्रमण। हमला।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

मुहा०—वार खाली जाना = (१) प्रहार का ठीक स्थान पर न पड़ना। चलाया हुआ अस्त्र न लगना। (२) युक्ति सफल न होना। चली हुई चाल या तदबीर का कुछ नतीजा न होना।

वारक संज्ञा पुं० [सं०] (१) निषेध करनेवाला। प्रतिबंधक। (२) घोड़े का कदम। (३) घोड़ा। (४) वह स्थान जहाँ पीड़ा हो। कष्ट-स्थान। (५) बाधा का स्थान। (६) एक सुगंधित तृण।

वारकन्या-संज्ञा स्त्री० [सं०] वेश्या। रंडी।

वारकी-संज्ञा पुं० [सं०] (१) प्रतिवादी। शत्रु। (२) समुद्र। (३) पत्ते खाकर रहनेवाला तपस्वी। पर्णाशी यती।

वारकीर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) साला। (२) द्वारपाल। (३) बाड़वाग्नि। (४) जूँ। (५) कंघी। (६) लड़ाई का घोड़ा। चित्राध।

वारण-संज्ञा पुं० [सं०] (१) किसी बात को न करने का संकेत या आज्ञा। निषेध। मनाही।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

(२) रोक। रुकावट। बाधा। (३) कवच। बकतर। (४) हाथी। (५) अंकुश। (६) हरताल। (७) काला सीसम। (८) पारिभद्र। (९) सफेद कोरैया का फूल। (१०) छप्पय छंद का एक भेद जिसमें ४१ गुरु, ७० लघु, कुल १११ वर्ण या १५२ मात्राएँ होती हैं; अथवा ४१ गुरु, ६६ लघु, कुल १०७ वर्ण या १४८ मात्राएँ होती हैं।

वारणकणा-संज्ञा स्त्री० [सं०] गजपिप्पली।

वारणकृच्छ्र-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का कृच्छ्र व्रत जिसमें एक महीने तक पानी में जौ का सत्तू घोलकर पीना पड़ता है।

वारणबुसा-संज्ञा स्त्री० [सं०] कदली। केला।

वारणावत-संज्ञा पुं० [सं०] महाभारत के ... जनपद या नगर जो गंगा के किनारे था।

विशेष—यहीं पर दुर्योधन ने पांडवों ... लाक्षागृह बनवाया था। कुछ लोग इसे ... पास मानते हैं और कुछ ... नामक स्थान के पास ...

वारणीय-वि० [सं०] निषेध योग्य। प्रतिषेध्य।

वारतिय*-संज्ञा स्त्री० [सं० वारस्त्री] वेश्या। उ०—वाढ़े ... वारतिय होई। रूपवती रंभा छवि होई।—रघुराज।

वारद*-संज्ञा पुं० [सं० वारिद] बादल। उ०—सोहति धोती सेत में कनक बरन तन बाल। सारद-वारद बीजुरी-भा रद कीजत लाल।—विहारी।

वारदात-संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) कोई भीषण या शोचनीय कांड। दुर्घटना। (२) मारपीट। मारकाट। दंगा फसाद।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

(३) घटना संबंधी समाचार। हाल। (क्व०)

वारधान-संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार एक जनपद का नाम। इसे वाटधान भी कहते हैं।

वारन*-संज्ञा स्त्री० [हिं० वारना] निछावर। बलि। उ०—नित हित सों पालत रहै रूप भूप नँदलाल। छवि पनिशाव मै मनौ दृग पर वारन हाल।—रसनिधि।

संज्ञा पुं० [सं० वंदन] वंदनवार। वंदनमाला। उ०—घर घर धुजा पताका बानी। तोरन वारन बासर ठानी।—सूर।

वारना-क्रि० स० [हिं० उतारना] निछावर करना। उत्सर्ग करना। उ०—(क) चितै रही मुख इंदु मनोहर वा छवि पर वारति तन को। कछि काछिनी भेष नटवर को बीच मिली मुरलीधर को।—सूर। (ख) कौसिला की कोखि पर तोषि तन वारिए री राम दसरथ की बलाय लीजै आलि री।—तुलसी। (ग) तो पर वारौं उरबसी सुन राधिका सुजान। तू मोहन के उर बसी ह्वै उरबसी समान।—विहारी।

संज्ञा पुं० निछावर। उत्सर्ग। उ०—अति कोमल कर-चरन-सरोरुह, अधर दसन नासा सोहै री। लटकन सीस कंठ मणि भ्राजत ......कोटि वारने हैं।—सूर।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

मुहा०—वारने जाना = निछावर होना। बलि जाना। उ०—बाल विभूषन, बसन मनोहर अंगनि विरचि बनैहीं। सोभा निरखि निछावरि करि उर लाइ वारने जैहौं।—तुलसी।

वारनारी-संज्ञा स्त्री० [सं०] वेश्या।

वारपार-संज्ञा पुं० [सं० अवर+पार] (१) (नदी आदि का) यह किनारा और वह किनारा। पूरा विस्तार। जैसे,—नदी इतनी ... वारपार नहीं सूझता। (२) यह छोर और वह ... वार पार नहिं सूझहि लागत ... नीर। ... अव्य० ... से उस किनारे तक। जैसे,—वार पार ... लगेगा।

मुहा०— ... पूरा विस्तार ... वार पार ... (२) ... पार्श्व से दूसरी ...

बगल तक। पूरी चौड़ाई या मोटाई तक। जैसे,—बरछी वारपार हो गई।

मुहा०—वार पार करना = इस ओर से उस ओर तक धँसाना। पूरी मोटाई छेदकर दूसरी ओर निकालना।

वारफेर-संज्ञा स्त्री० [हिं० वार + फेर] (१) निछावर। बलि। (२) वह रुपया पैसा जो दूल्हा या दुलहिन के सिर पर से घुमाकर डोमनियों आदि को दिया जाता है। उ०—मोली कर जोरि मेरो जोर न चलत कछू चाहो सोई होहु यह वारि फेरि डारिये।—प्रियादास।

वारमुखी-संज्ञा स्त्री० [सं०] वेश्या। उ०—कहै तुम कौन वारमुखी नहीं भोग संग भएवा सुनई मौन सुनि परी पैरी है।—प्रियादास।

वारला-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) हंसी। (२) केला।

वारलीक-संज्ञा पुं० [सं०] विश्वेजा तृण। बनकस।

वारवधू-संज्ञा स्त्री० [सं०] वेश्या। रंडी।

वारवाणि-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वंशी बजानेवाला। (२) उत्तम गायक। (३) धर्माध्यक्ष। न्यायाधीश। जज। (४) ज्योतिषी।

वारवाणी-संज्ञा स्त्री० [सं०] वेश्या।

वारवालि, वारवास्य-संज्ञा पुं० [सं०] महाभारत के अनुसार एक जनपद का नाम जो भारत की पश्चिमी सीमा के आगे था।

वारस्त्री-संज्ञा स्त्री० [सं०] बाजार में बैठनेवाली स्त्री। वेश्या। रंडी।

वारांगना-संज्ञा स्त्री० [सं०] वेश्या। रंडी।

वारांनिधि-संज्ञा पुं० [सं०] समुद्र। उ०—जयति वैराग्य-विज्ञान-वारांनिधे, नमत नर्मद पाप-ताप-हर्त्ता।—तुलसी।

वारा-संज्ञा पुं० [सं० वारण = रक्षा, बचाव] (१) खर्च की बचत। किफ़ायत। (२) लाभ। फ़ायदा।

क्रि० प्र०—पड़ना।—बैठना।

संज्ञा पुं० [हिं० वार = यह किनारा] इधर का किनारा। वार।

यौ०—वारा न्यारा।

वि० किफ़ायत। सस्ता।

वि० [हिं० वारना] [स्त्री० वारी] जो निछावर हुआ हो। जिसने किसी पर अपने को उत्सर्ग किया हो।

मुहा०—वारा होना = निछावर होना। कुरबान होना। (प्यार का वाक्य) उ०—हौं वारी तेरे इंदुवदन पर अति छवि अलकानि सोहैं।—सूर। वारा जाना = दे० "वारा होना"। उ०—बनवारी वारी गई बनवारी पै आज।—रसनिधि।

वाराणसी-संज्ञा स्त्री० [सं०] काशी नगरी का प्राचीन नाम।

विशेष—कुछ लोग यह नाम वरुणा और असी नदियों के कारण मानते हैं। पर इस प्रकार यह शब्द सिद्ध नहीं होता। लोग इसकी ठीक व्युत्पत्ति 'वर' + 'अनस्' (जल) अर्थात् "पवित्र जलवाली पुरी" बतलाते हैं। "उत्तम रथोंवाली पुरी" भी कुछ विद्वान् अर्थ करते हैं।

वारा न्यारा-संज्ञा पुं० [हिं० वार + न्यारा] (१) इस पक्ष या उस पक्ष में निर्णय। किसी ओर निश्चय। फ़ैसला। (२) झंझट या झगड़े का निबटेरा। चले आते हुए मामले का खातमा। जैसे,—उस मामले का अभी तक कुछ वारान्यारा नहीं हुआ।

वारालिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] दुर्गा।

वारावस्कंदी-संज्ञा पुं० [सं०] अग्नि।

वाराह संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० वाराही] (१) दे० "वराह"। (२) काली मैनी का वृक्ष। (३) पानी के किनारे होनेवाला बेंत। अंबुवेतस्।

वाराहपत्री-संज्ञा स्त्री० [सं०] असगंधा। असगंध।

वाराहांगी-संज्ञा स्त्री० [सं०] दंती का पेड़।

वाराही-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) ब्रह्माणी आदि आठ मातृकाओं में से एक मातृका का नाम। (२) एक योगिनी का नाम। (३) वाराही कंद। (४) कँगनी। (५) श्यामा पक्षी। (६) सफेद भूकुष्मांडा। बिलाई कंद। विदारी कंद।

वाराहीकंद-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का महाकंद जो गेंठी कहलाता है। कहते हैं कि यह अनूप देश में होता है। इसके कंद के ऊपर सूअर के बालों के समान रोएँ होते हैं। इसका आकार प्रायः गुड़ की भेली के समान होता है और इसके पत्ते कँटीले, बड़े बड़े तथा अनीदार होते हैं। वैद्यक में यह चरपरा, कड़ुआ, बलकारक, पित्तजनक, रसायन, शुक्रजनक, वीर्यवर्धक, अग्निदीपक, मधुर, गरम, स्वर को शुद्ध करनेवाला, आयुवर्द्धक तथा कोढ़, प्रमेह, त्रिदोष, कफ, वात, कृमि और मूत्रकृच्छ्र का नाशक माना है।

पर्य्या०—वाराही। चर्मकारालुक। विष्वक्सेनप्रिया। वृष्टि। बदरा। कष्ठा। वनमालिनी। गृष्टि। विश्वमूला। सूकरी। क्रोड़कन्या। कौमारी। त्रिनेत्रा। ब्रह्मपुत्री। क्रोड़ी। कन्या। माधवेष्टा। सूकरकंद। वनवासी। कुष्ठनाशन। वक्र। अमृत। महावीर्य्य। शंबरकंद। वराहकंद। वीर। ब्राह्मीकंद। महौषध। शुकंदक। वृष्टिकर। व्याधिहंता। मागधी।

वारि-संज्ञा पुं० [सं०] (१) जल। पानी। (२) तरल पदार्थ। (३) ह्रीवेर। (४) सुगंधबाला।

संज्ञा स्त्री० (१) वाणी। सरस्वती। (२) हाथी के बाँधने की जंजीर आदि। (३) हाथी के बाँधने का स्थान। (४) छोटा कलसा या गगरा।

वारिकफ-संज्ञा पुं० [सं०] समुद्र।

वारिकुब्ज, वारिकुब्जक-संज्ञा पुं० [सं०] सिंघाड़ा।

वारिकोल-संज्ञा पुं० [सं०] कच्छप। कछुआ।

वारिचर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) पानी में रहनेवाले जंतु। (२) मत्स्य। मछली। (३) शंख।
वारिज-संज्ञा पुं० [सं०] (१) कमल। (२) द्रोणीलवण। (३) मछली। (४) शंख। (५) घोंघा। (६) कौड़ी। (७) उत्तम सुवर्ण। खरा सोना।
वारिजात-संज्ञा पुं० [सं०] (१) कमल। (२) शंख। (३) दे० "वारिज"।
वारित-वि० [सं०] जो रोका गया हो। जो मना किया गया हो। निवारित।
वारितर-संज्ञा पुं० [सं०] उशीर। खस।
वारिद-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मेघ। बादल। (२) भद्रमुस्तक। नागरमोथा।
वारिधर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मेघ। बादल। (२) भद्रमुस्तक। नागरमोथा।
वारिधि-संज्ञा पुं० [सं०] समुद्र।
वारिनाथ-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वरुण। (२) समुद्र। (३) बादल। मेघ।
वारिनिधि-संज्ञा पुं० [सं०] समुद्र।
वारिपर्णी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) जलकुंभी। (२) पानी की काई।
वारिपृश्नी-संज्ञा स्त्री० [सं०] जलकुंभी।
वारिमुच्-संज्ञा पुं० [सं०] बादल। मेघ।
वारियंत्र-संज्ञा पुं० [सं०] फ़ौआरा। जलयंत्र।
वारियाँ-संज्ञा स्त्री० [हिं० वारी] निछावर। बलि।
क्रि० प्र०—जाना।
मुहा०—वारियाँ जाऊँ = तुम पर निछावर हूँ। (स्त्रियों का प्यार का वाक्य जो वे बात चीत में लाया करती हैं।)
वारिरुह-संज्ञा पुं० [सं०] कमल।
वारिलोमा-संज्ञा पुं० [सं० वारिलोमन्] वरुण।
वारिवंद-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन जनपद।
विशेष—यह कूचबिहार के उत्तर में बताया जाता है।
वारिवर-संज्ञा पुं० [सं०] करौंदा।
वारिवर्तक-संज्ञा पुं० [सं० वारि + आवर्त] एक मेघ का नाम। उ०—सुनत मेघवर्तक साजि सैन लै आए। जलवर्त, वारिवर्त, पवनवर्त, वज्रवर्त, आगिवर्तक जलद संग लाए। —सूर।
वारिवास-संज्ञा पुं० [सं०] मद्य बनानेवाला। कलवार। कलार।
वारिवाह-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मेघ। (२) मुस्तक। मोथा।
वारिश-संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु।
वारिशास्त्र-संज्ञा पुं० [सं०] फलित ज्योतिष का एक ग्रंथ जो गर्ग मुनि का रचा हुआ कहा जाता है। इससे यह निकाला जाता है कि किस स्थान में कैसी वृष्टि होगी, और कब कब होगी।
वारिस-संज्ञा पुं० [अ०] (१) दायाद। दायभागी पुरुष। (२) वह पुरुष जो किसी के मरने के पीछे उसकी संपत्ति आदि का स्वामी और उसके ऋण आदि का देनदार हो। उत्तराधिकारी।
वारिसार-संज्ञा पुं० [सं०] भागवत पुराण के अनुसार चंद्रगुप्त के एक पुत्र का नाम।
वारींद्र-संज्ञा पुं० [सं०] समुद्र।
वारी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) हाथी के बाँधने की जंजीर या अँडुआ। गजबंधन। (२) कलसी। छोटा गगरा।
वि० दे० "वारा"।
वारीट-संज्ञा पुं० [सं०] हाथी।
वारी फेरी-संज्ञा स्त्री० [हिं० वारना + फेरना] किसी प्रिय व्यक्ति के ऊपर कुछ द्रव्य, या और कोई वस्तु घुमाकर इसलिये छोड़ना या उत्सर्ग करना, जिसमें उसकी सब बाधाएँ दूर हो जायँ। निछावर। (स्त्रियों का एक टोटका) उ०—भुजन पर जननी वारी फेरी डारी। क्यों तोर्‌यो कोमल कर-कमलन संभु-सरासन भारी ?—तुलसी।
क्रि० प्र०—डालना।
वारीश-संज्ञा पुं० [सं०] समुद्र।
वारुंड-संज्ञा पुं० [सं०] (१) साँपों का राजा। (२) नाव में से पानी निकालने का बरतन। तसला। (३) कान की मैल। खूँट। (४) आँख का कीचड़।
वारु-संज्ञा पुं० [सं०] विजय हस्ति, जिस पर विजयपताका चलती है।
वारुठ-संज्ञा पुं० [सं०] (१) अंतशय्या। मरण खाट। (२) वह टिकठी जिस पर मुरदे को लेटाकर ले जाते हैं। अरथी।
वारुण-संज्ञा पुं० [सं०] (१) जल। (२) शतभिषा नक्षत्र। (३) भारतवर्ष के एक खंड का नाम। इसे आज कल 'बरमाद' कहते हैं। (४) एक अस्त्र का नाम। (५) हरताल। (६) एक उपपुराण का नाम। (७) वरुण या बरना नाम का पेड़।
वारुणक-संज्ञा पुं० [सं०] एक जनपद का नाम।
वारुणकर्म-संज्ञा पुं० [सं०] कूआँ, पोखरा, बावली आदि जलाशय बनवाने का काम।
वारुणि-संज्ञा पुं० [सं०] (१) अगस्त्य मुनि। (२) वशिष्ठ। (३) भृगु। (४) विनता के एक पुत्र का नाम। (५) एक जनपद का नाम। (६) दँतैला हाथी। (७) बाल्न वृक्ष। बरना का पेड़।
वारुणी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) मदिरा। शराब।
विशेष—कई प्रकार की मदिरा का नाम वारुणी है। जैसे,— पुनर्नवा (गदहपूरना) को पीसकर बनाई हुई, ताड़ की

खजूर के रस से बनी हुई, साठी धान के चावल और हड़ पीसकर बनाई हुई।
(२) वरुण की स्त्री। वरुणानी। (३) उपनिषद् विद्या जिसका उपदेश वरुण ने किया था। (४) पश्चिम दिशा। (५) शतभिषा नक्षत्र। (६) एक नदी का नाम। (७) भुईंआँवला। (८) गाँडर दूब। (९) घोड़े की एक चाल। (१०) इन्द्रवारुणी लता। इँदारुन की बेल। (११) हथनी। (१२) एक पर्व जो उस समय माना जाता है, जब चैत महीने की कृष्ण त्रयोदशी को शतभिषा नक्षत्र पड़ता है। इस दिन लोग गंगा स्नान, दान आदि करते हैं। (१३) वृंदावन के एक कदंब का रस जो वरुण की कृपा से बलराम जी के लिये निकला था। (१४) कदंब के पके हुए फलों से बनाया हुआ मद्य।

वारुड़-संज्ञा पुं० [सं०] अग्नि। आग।

वारेंद्र-संज्ञा पुं० [सं०] गौड़ देश के एक प्राचीन जनपद का नाम जो आज कल के राजशाही ज़िले में था।

वार्कजंभ-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक साम का नाम। (२) वृकजंभ ऋषि का गोत्रज।

वार्कार्य्या-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक यज्ञ कर्म।

वार्क्ष-वि० [सं०] वृक्ष संबंधी या वृक्ष का बना हुआ।
संज्ञा पुं० वृक्ष की छाल का बना हुआ वस्त्र।

वार्क्षी-संज्ञा स्त्री० [सं०] प्रचेतागण की स्त्री मारिषा का नाम।
विशेष—इसका जन्म कुंड मुनि और प्रम्लोचा अप्सरा से हुआ था। कुंड मुनि गोमती के तट पर तप कर रहे थे। उनको तपोभ्रष्ट करने के लिये इंद्र ने प्रम्लोचा को भेजा था। यह मुनि के आश्रम में बहुत काल तक रही। जब मुनि को उसके छल का ज्ञान हुआ, तब वे अपने को धिक्कारने लगे। प्रम्लोचा शाप के भय से भागी। उसके शरीर से पसीना निकला, जो एक वृक्ष के ऊपर पड़ा। उसी से मारिषा उत्पन्न हुई। मारिषा को राजा ने प्रचेतागण को प्रदान किया, जिससे दक्ष प्रजापति का जन्म हुआ।

वार्च-संज्ञा पुं० [सं०] हंस।

वार्ड-संज्ञा पुं० [अं०] (१) रक्षा। हिफाजत। (२) किसी विशिष्ट कार्य के लिये घेरकर बनाया हुआ स्थान। (३) नगर में उनके महल्लों आदि का समूह, जो किसी विशिष्ट कार्य के लिये अलग नियत किया गया हो। (४) अस्पताल या जेल आदि के अंदर के अलग अलग विभाग।

वार्डर-संज्ञा पुं० [अं०] (१) वह जो रक्षा करता हो। रक्षक। (२) जेल आदि के अंदर का पहरेदार।

वार्णक-संज्ञा पुं० [सं०] लेखक।

वार्णिक-संज्ञा पुं० [सं०] लेखक।

वार्त-संज्ञा पुं० [सं०] (१) आरोग्य। निरामय। (२) किसी वृत्ति या व्यवसाय में लगा हुआ। काम-काजी।

वार्त्तक-संज्ञा पुं० [सं०] बटेर पक्षी।

वार्त्ता-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) जनश्रुति। अफ़वाह। (२) संवाद। वृत्तांत। हाल। (३) विषय। मामला। प्रसंग। बात। (४) कथोपकथन। बातचीत।
यौ०—वार्त्तालाप।
(५) वैश्य वृत्ति जिसके अंतर्गत कृषि, वाणिज्य, गोरक्षा और कुसीद है। (६) दुर्गा। (७) अन्य के द्वारा क्रय विक्रय होना।

वार्त्ताक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बैंगन। भंटा। (२) बटेर पक्षी।

वार्त्ताकी-संज्ञा स्त्री० [सं०] बैंगन। भंटा।

वार्त्ताकु-संज्ञा पुं० [सं०] बैंगन। भंटा।

वार्त्तायन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) गूढ़ पुरुष। प्रणिधि। चर। (२) दूत। एलची।

वार्तालाप-संज्ञा पुं० [सं०] बात चीत। कथोपकथन।
क्रि० प्र०—करना।—होना।

वार्त्तावह-संज्ञा पुं० [सं०] (१) पनसारी। (२) समाचार ले जानेवाला। दूत। (३) नीति शास्त्र का वह भाग, जो आय व्यय से संबंध रखता है। वार्त्ता।

वार्त्तिक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) किसी ग्रन्थ के उक्त, अनुक्त और दुरुक्त अर्थों को स्पष्ट करनेवाला वाक्य या ग्रंथ। जैसे,—पाणिनि की अष्टाध्यायी पर कात्यायन का वार्त्तिक, न्यायसूत्र के वात्स्यायन भाष्य पर उद्योतकर का न्याय-वार्त्तिक।
विशेष—वृत्ति और भाष्य केवल मूल ग्रंथ के आशय को स्पष्ट करते हैं, उसके बाहर कुछ नहीं कहते। पर वार्त्तिककार को पूर्ण स्वतंत्रता रहती है। वह नई बातें भी कह सकता है।
(२) वृत्ति या आचार शास्त्र का अध्ययन करनेवाला। (३) दूत। चर।

वार्त्रघ्न-संज्ञा पुं० [सं०] (१) अर्जुन। (२) जयंत।

वार्त्रतुर-संज्ञा पुं० [सं०] एक साम का नाम।

वार्द-संज्ञा पुं० [सं०] मेघ। बादल।

वार्दर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) दक्षिणावर्त्त शंख। (२) जल। (३) घोड़े के गले पर की दाहिनी ओर की भौंरी। (४) आम की गुठली। (५) रेशम। (६) जल। (७) काकचिंचा।

वार्द्धक-संज्ञा पुं० [सं०] बुढ़ापा।

वार्द्धक्य-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बुढ़ापा। (२) वृद्धि। बढ़ती।

वार्द्धि-संज्ञा पुं० [सं०] समुद्र।

वार्द्धुषि-संज्ञा पुं० [सं०] बहुत अधिक ब्याज लेनेवाला।

वार्द्धुषिक-संज्ञा पुं० [सं०] बहुत अधिक सूद लेनेवाला। सूदखोर।

वार्द्धुष्य-संज्ञा पुं० [सं०] अन्न को अधिक ब्याज पर देने का व्यवसाय। विसार।

वार्ध्रीणस-संज्ञा पुं० [सं०] (१) गैंडा। (२) वह बधिया बकरा जिसका रंग सफ़ेद हो और जिसके कान इतने लंबे हों कि पानी पीते समय पानी से छू जायँ। (३) एक प्रकार का पक्षी जिसका सिर लाल, गला नीला और शेष शरीर काला कहा गया है। प्राचीन काल में इस पक्षी का बलिदान विष्णु के उद्देश्य से होता था।

वार्भट-संज्ञा पुं० [सं०] घड़ियाल।

वार्मुच-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बादल। (२) मुस्तक। मोथा।

वार्य्य-वि० [सं०] (१) जो रोका जा सके। जिसका निवारण हो सके। वारणीय। (२) जिसे वारण करना हो। जिसे रोकना हो।

वार्य्योका-संज्ञा स्त्री० [सं०] जोंक।

वाराशि-संज्ञा पुं० [सं०] समुद्र।

वार्वट-संज्ञा पुं० [सं०] नौका। नाव। बेड़ा।

वार्वणा-संज्ञा स्त्री० [सं०] नीले रंग की मक्खी।

वार्षक-संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार पृथ्वी के दस भागों में से एक भाग का नाम जिसे सुद्युम्न ने विभक्त किया था।

वार्षगण्य-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार के वैदिक आचार्य्य।

वार्षाहर-संज्ञा पुं० [सं०] एक साम का नाम।

वार्षिक-वि० [सं०] (१) वर्ष संबंधी। (२) जो प्रति वर्ष होता हो। सालाना। (३) वर्षा काल में होनेवाला।

वार्षिकी-संज्ञा स्त्री० [सं०] बेले का फूल।

वार्षिला-संज्ञा स्त्री० [सं०] ओला। करका। पत्थर।

वार्ष्ण-संज्ञा पुं० [सं०] कृष्णचंद्र।

वार्ष्णेय-संज्ञा पुं० [सं०] कृष्णचंद्र।

वार्हद्रथ-संज्ञा पुं० [सं०] बृहद्रथ का पुत्र, जरासंध।

वालंटियर-संज्ञा पुं० [अं०] (१) वह मनुष्य जो बिना किसी पुरस्कार या वेतन के किसी कार्य्य में अपनी इच्छा से योग दे। स्वयंसेवक। स्वेच्छासेवक। (२) वह सिपाही जो बिना वेतन के अपनी इच्छा से फ़ौज में सिपाही या अफ़सर का काम करे। बलमटेर।

वालक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बालछड़। (२) कंकण। कंगन।

वालदैन-संज्ञा पुं० [अ०] माता पिता। माँ बाप।

वालव-संज्ञा पुं० [सं०] ज्योतिष में एक करण का नाम।

वाला-संज्ञा स्त्री० [सं०] इंद्रवज्रा और उपेंद्रवज्रा के मेल से बने हुए उपजाति नामक सोलह प्रकार के वृत्तों में से एक, जिसके पहले तीन चरणों में दो तगण, एक जगण और दो गुरु होते हैं, तथा चौथे चरण में और सब वही रहता है, केवल प्रथम वर्ण लघु होता है। जैसे,—रासौ सदा शंभु हिये अनंदा। बाधौ सबै दूर तनै जु दंदा। भारो विभूती तन अंगमंडा। नसैं सबैई भव भोग फंदा।

वालाक्षी-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक पौधा जिसके फूलों के दल आँख के आकार के लगते हैं।

वालाग्र-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन मान जो आठ रज का माना जाता था।

वालिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) दे० "बालिका"। (२) बालुका। बालू। (३) कान का एक गहना। बाला। बाली। (४) इलायची।

वालिखिल्य-संज्ञा पुं० दे० "बालखिल्य"।

वालिद-संज्ञा पुं० [अ०] पिता। बाप।

वालिदा-संज्ञा स्त्री० [अ०] माता। माँ।

वाली-संज्ञा पुं० [सं० वालिन्] बंदरों का एक राजा जो सुग्रीव का बड़ा भाई और अंगद का पिता था।

विशेष—पुराणों में इसकी उत्पत्ति इंद्र के वीर्य्य से कही गई है। वि० दे० "बालि"।

वालु-संज्ञा पुं० [सं०] एक गंध द्रव्य।

वालुक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक गंध द्रव्य। (२) पनिपाल।

वालुका-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) बालू। रेत। (२) शाखा। (३) हाथ पैर। (४) ककड़ी। (५) कपूर।

वालुकाप्रभा-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक नरक का नाम।

वालुकायंत्र-संज्ञा पुं० [सं०] औषध सिद्ध करने का एक प्रकार का यंत्र।

वालुकी-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की ककड़ी।

वालूक-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का विष।

वालेय-संज्ञा पुं० [सं०] (१) गदहा। (२) पुत्र। (३) एक प्रकार का करंज। अंगारवल्लरी।

वाल्क-संज्ञा पुं० [सं०] क्षौमादि वस्त्र।

वाल्कल-वि० [सं०] वल्कल का। छाल का।

वाल्कली-संज्ञा स्त्री० [सं०] मदिरा। गौड़ी मद्य।

वाल्मीकि-संज्ञा पुं० [सं०] एक मुनि जो रामायण के रचयिता और आदि कवि कहे जाते हैं। इनका जन्म भृगु वंश में हुआ था। ये प्रचेता के वंशज थे और तमसा नदी के किनारे, जिसे अब टौंस कहते हैं, रहते थे। ये एक बार अपने शिष्यों सहित नदी तट पर स्नान करने गए। वहाँ शिष्यों को घाट पर स्नान संध्या करने के लिये छोड़कर नदी के किनारे टहल रहे थे कि इसी बीच में एक निषाद ने एक क्रौंच को मारा। क्रौंच रक्त में लथपथ भूमि पर गिर पड़ा और क्रौंची चिल्लाने लगी। यह घटना देखकर मुनि के मुँह से यह वाक्य निकल गया—मा निषाद प्रतिष्ठाम्त्वमगमश्शाश्वतीः समाः, यत्क्रौंचमिथुनादेकमवधीः काममोहितम्। यह वाक्य विशुद्ध लय-युक्त सुंदर अनुष्टुभ था। यह छंद मुनि को इतना रुचिकर हुआ कि उन्होंने समस्त रामायण महाकाव्य इसी छंद में रच डाला।

वाल्मीकीय-वि० स्त्री० [सं०] (१) वाल्मीकि संबंधी। वाल्मीकि की। (२) वाल्मीकि की बनाई हुई।

वावदूक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) अच्छा बोलनेवाला। वक्ता। वाग्मी। (२) बहुत बकनेवाला। बकवादी।

वावैला-संज्ञा पुं० [अ०] (१) विलाप। रोना पीटना। (२) शोरगुल। हल्ला। चिल्लाहट।
 क्रि० प्र०—करना।—मचाना।

वाश-संज्ञा पुं० [सं०] अड़ूसा। वासक।
 वि० (१) बहुत रोनेवाला। रोना। (२) निवेदित।
 संज्ञा पुं० [सं०] एक साम का नाम।

वाशक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) चिल्लानेवाला। निनादकारी। (२) रोनेवाला। (३) अड़ूसा।

वाशन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) पक्षियों का बोलना। (२) मक्खियों का भिनभिनाना।
 वि० (१) चिल्लानेवाला। शब्द करनेवाला। (२) चहचहानेवाला। (३) भिनभिनानेवाला।

वाशा-संज्ञा स्त्री० [सं०] वासक। अड़ूसा।

वाशि-संज्ञा पुं० [सं०] अग्नि। आग।

वाशिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] अड़ूसा।

वाशित-संज्ञा पुं० [सं०] पशु पक्षी आदि का शब्द।
 वि० दे० "वासित"।

वाशिता-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) स्त्री। (२) हथिनी।

वाशिष्ठ-संज्ञा पुं० (१) एक उपपुराण का नाम। (२) एक प्राचीन तीर्थ का नाम।
 वि० [सं०] वशिष्ठ संबंधी। वशिष्ठ का

वाशिष्ठी-संज्ञा स्त्री० [सं०] गोमती नदी।

वाश्म-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मंदिर। (२) चौराहा।

वाष्प-संज्ञा पुं० [सं०] (१) लोहा। (२) आँसू। (३) भाप। भाफ। (४) कंटकारि। भटकटैया।

वाष्पक-संज्ञा पुं० [सं०] मरसा नाम का साग।

वाष्पिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] हिंगुपत्री।

वासंत-संज्ञा पुं० [सं०] (१) ऊँट। (२) कोकिल। (३) मलय वायु। (४) मूँग। (५) मैनफल।

वासंतक-वि० [सं०] (१) वसंत संबंधी। (२) वसंत ऋतु में बोया हुआ।

वासंतिक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) भाँड़। विदूषक। (२) नाचनेवाला। नर्तक।
 वि० वसंत संबंधी।

वासंती-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) माधवी लता। (२) जूही। (३) गनियारी नामक फूल। (४) मदनोत्सव। (५) दुर्गा। (६) एक वृत्त का नाम जिसके प्रत्येक चरण में चौदह वर्ण होते हैं, जिनमें ६, ७, ८ और ९ वाँ वर्ण लघु और शेष गुरु होते हैं। (म, त, न म, ग ग)

वास-संज्ञा पुं० [सं०] (१) अवस्थान। रहना। निवास।
 क्रि० प्र०—करना।—होना।
 यौ०—कारावास। तीर्थवास। कल्पवास। कैलाशवास। वैकुंठवास।
 (२) गृह। घर। मकान। (३) वासक। अड़ूसा। (४) सुगंध। बू।

वासक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) अड़ूसा। (२) गान का एक अंग।
 विशेष—शंकर के मत से मनोहर, कंदर्प, चारु और नंदन नामक इसके चार भेद हैं। कोई कोई विनोद, वरद, नंद और कुमुद को इसके भेद मानते हैं।
 (३) वासर। दिन। (४) शालक राग का एक भेद।

वासकसज्जा-संज्ञा स्त्री० [सं०] नायिका भेद के अनुसार वह नायिका जो नायक से मिलने की तैयारी किए हुए घर आदि सजाकर और आप भी सजकर बैठी हो।

वासका-संज्ञा स्त्री० [सं०] अड़ूसा।

वासकेट-संज्ञा पुं० स्त्री० [अं० वेस्टकोट] एक प्रकार की छोटी बंडी या कमर तक की कुरती जिससे केवल पीठ, छाती और पेट ढकता है।
 विशेष—इसमें आस्तीन नहीं होती। आगे और पीछे के कपड़ों में भेद होता है। इसे कसने के लिये पीछे बकसुएदार दो बंद होते हैं।

वासत-संज्ञा पुं० [सं०] गर्दभ। गदहा।

वासतेय-वि० [सं०] बस्ती के योग्य। रहने लायक।

वासतेयी-संज्ञा स्त्री० [सं०] रात।

वासन-संज्ञा पुं० [सं०] [वि० वासित] (१) सुगंधित करना। वासना। धूपन। (२) वस्त्र। (३) वास। (४) ज्ञान।

वासना-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) प्रत्याशा। (२) ज्ञान। (३) किसी पूर्व स्थिति के जमे प्रभाव से उत्पन्न मानसिक दशा। भावना। संस्कार। स्मृतिहेतु। (४) न्याय के अनुसार देहात्म बुद्धिजन्य मिथ्या संस्कार। (५) इच्छा। कामना। (६) दुर्गा। (७) अर्क की पत्नी।
 क्रि० स० दे० "बासना"।

वासर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) दिन। दिवस। (२) वह घर जिसमें विवाह हो जाने पर स्त्री पुरुष पहली रात को सोते हैं।

वासरमणि-संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य्य।

वासरसंग-संज्ञा पुं० [सं०] प्रातःकाल।

वासव-संज्ञा पुं० [सं०] (१) इंद्र। (२) धनिष्ठा नक्षत्र।

वासवि-संज्ञा पुं० [सं०] इंद्र के पुत्र, अर्जुन।

वासवी-संज्ञा स्त्री० [सं०] व्यास की माता सत्यवती। मत्स्यगंधा।

वासवेय-संज्ञा पुं० [सं०] वासवी के पुत्र, वेदव्यास।

वासस्-संज्ञा पुं० [सं०] वस्त्र। कपड़ा।

वासा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) वासक। अडूसा। (२) वासंती। माधवी लता।

वासि-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का कुठार। वसूला।

वासित-वि० [सं०] (१) सुगंधित किया हुआ। महकाया हुआ। (२) वस्त्राच्छादित। कपड़े से ढका हुआ। (३) जो ताजा न हो। बासी।

वासिता-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) स्त्री। (२) हथिनी। (३) चंद्रशेखर के मत से आर्य्या छंद का एक भेद जिसमें ९ गुरु और ३९ लघु वर्ण होते हैं।

वासिल-वि० [अ०] (१) पहुँचाया हुआ। प्राप्त। (२) मिला हुआ। जो वसूल हुआ हो।

यौ०—वासिल बाकी = वसूल और बाकी रकम। उ०—वासिल बाकी स्याहा मुजमिल सब अधरम की बाकी। चित्रगुप्त होत मुस्तौफ़ी शरण गहौं मैं काकी।—सूर।

वासिलात संज्ञा पुं० [अ०] वह धन जो वसूल हुआ हो। वसूल हुए धन का योग। (इसका प्रयोग बहु० में होता है।)

वासिष्ठ-वि० [सं०] वसिष्ठ संबंधी।

संज्ञा पुं० रक्त। रुधिर।

वासी-संज्ञा पुं० [सं० वासिन्] रहनेवाला। बसनेवाला। अधिवासी। जैसे,—ग्रामवासी। नगरवासी।

संज्ञा स्त्री० [सं०] वसूला जिससे बढ़ई लकड़ी छीलते हैं। तक्षणी।

वासु-संज्ञा पुं० [सं०] (१) विष्णु। (२) परमात्मा। (३) पुनर्वसु नक्षत्र।

वासुकी-संज्ञा पुं० [सं०] आठ नागों में से दूसरा नागराज।

वासुदेव-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वसुदेव के पुत्र, श्रीकृष्णचंद्र। (२) पीपल का पेड़। अश्वत्थ। (बोलचाल)

वासुदेवक-संज्ञा पुं० [सं०] वासुदेव या श्रीकृष्ण का उपासक।

वासुभद्र-संज्ञा पुं० [सं०] वासुदेव। श्रीकृष्णचंद्र।

वासुमंद-संज्ञा पुं० [सं०] एक साम का नाम।

वासुरा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) स्त्री। (२) हथिनी। (३) रात्रि। रात। (४) भूमि। जमीन।

वासू-संज्ञा स्त्री० [सं०] नाटकों की परिभाषा में स्त्रियों के लिये संबोधन का शब्द।

वास्त-संज्ञा पुं० [सं०] बकरा।

वास्तव-वि० [सं०] प्रकृत। यथार्थ। सत्य।

यौ०—वास्तव में = सचमुच। सत्यतः। असल में। दर-असल। वाकई।

संज्ञा पुं० परमार्थ भूत। असल सत्य।

वास्तविक-वि० [सं०] (१) परमार्थ। सत्य। प्राकृत। (२) यथार्थ। ठीक।

वास्तव्य-वि० [सं०] (१) रहने योग्य। बसने योग्य। (२) बसनेवाला। अधिवासी।

संज्ञा पुं० बस्ती। आबादी।

वास्ता-संज्ञा पुं० [अ०] (१) संबंध। लगाव।

मुहा०—वास्ता पड़ना = व्यवहार का अवसर आना। काम पड़ना। जैसे,—तुमको उससे वास्ता नहीं पड़ा है, नहीं तो जानते। वास्ता पैदा करना = ढब लगाना। संबंध जोड़ना। वास्ता रखना = लगाव रखना। संबंध रखना।

(२) मित्रता। (३) स्त्री और पुरुष का अनुचित संबंध।

वास्तु-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शुभ निवास योग्य स्थान। वह स्थान जिस पर घर उठाया जाय। डीह।

विशेष—घर बनाने के पहले वास्तु या डीह के शुभाशुभ का विचार किया जाता है। बृहत्संहिता में वास्तुगृह के उत्तम मध्यम आदि क्रम से पाँच भेद कहे गए हैं।

(२) घर। गृह। मकान। (३) इमारत।

वास्तुक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बथुआ नाम का साग। (२) पुनर्नवा। गदहपूरना।

वास्तुकालिंग-संज्ञा पुं० [सं०] तरबूज। कलींदा।

वास्तुप, वास्तुपति-संज्ञा पुं० [सं०]वास्तु का अधिष्ठाता देवता, उस स्थान का देवता जिसमें घर बना हो। वास्तुपुरुष।

वास्तुपूजा-संज्ञा स्त्री० [सं०]वास्तु पुरुष की पूजा जो नवीन घर में गृहप्रवेश के आरंभ में की जाती है।

वास्तुयाग-संज्ञा पुं० [सं०] वह याग जो नवीन गृह में प्रवेश करने के समय किया जाता है।

वास्तुविद्या-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह विद्या जिससे वास्तु या इमारत के संबंध की सारी बातों का परिज्ञान होता है। भवन-निर्माण की कला।

वास्तुशांति-संज्ञा स्त्री० [सं०] वे शांति आदि कर्म जो नवीन गृह में प्रवेश करते समय किए जाते हैं।

वास्तुशास्त्र-संज्ञा पुं० [सं०] वास्तुविषयक शास्त्र। दे० "वास्तु विद्या"।

वास्तूक-संज्ञा पुं० [सं०] बथुआ।

वास्ते-अव्य० [अ०] (१) लिये। निमित्त। जैसे,—तुम्हारे वास्ते आम लाया हूँ। (२) हेतु। सबब। जैसे,—तुम किस वास्ते यहाँ आते हो?

वास्तोष्पति-संज्ञा पुं० [सं०] (१) इंद्र। (२) देवता मात्र। (३) वास्तुपति।

वास्य-वि० [सं०] जल में रहनेवाला। जलस्थ।

वास्प-संज्ञा पुं० [सं०] (१) गरमी। ऊष्मा। (२) आँसू। (३) भाप।

वास्पेय-संज्ञा पुं० [सं०] नागकेसर।

वाह-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वाहन। सवारी। (२) भारवाहक या खींचकर ले चलनेवाला। (३) घोड़ा। (४) बैल। (५) भैंसा। (६) वायु। (७) प्राचीन काल का एक तौल या मान जो चार गोणी का होता था।

अव्य० [फा०] (१) प्रशंसासूचक शब्द । धन्य । जैसे,—वाह ! यह तुम्हारा ही काम था ।

विशेष—कभी कभी अत्यंत हर्ष प्रकट करने के लिये यह शब्द दो बार भी आता है । जैसे,—वाह वाह, आ गए ।

(२) आश्चर्यसूचक शब्द । जैसे,—वाह ! मियाँ काले, क्या खूब रंग निकाले । (३) घृणाद्योतक शब्द । जैसे,—वाह तुम्हारा यह मुँह ! (४) आनंदसूचक शब्द ।

वाहक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) लादकर या खींचकर वस्तुओं को ले चलनेवाला । बोझ ढोने या खींचनेवाला । जैसे,—भारवाहक । (२) सारथी ।

वाहन-संज्ञा पुं० [सं०] सवारी ।

वाहरिपु-संज्ञा पुं० [सं०] महिष । भैंसा ।

वाहवाही-संज्ञा स्त्री० [फा०] लोगों की प्रशंसा । स्तुति । साधुवाद ।

मुहा०—वाहवाही लेना या लूटना = लोगों की प्रशंसा का पात्र बनना । जैसे,—दूसरे का माल बाँटकर उसने खूब वाहवाही लूटी ।

वाहिक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) गाड़ी । छकड़ा । (२) ढक्का ।

वाहित-वि० [सं०] (१) प्रवाहित । (२) चलाया हुआ । चालित । (३) वंचित ।

वाहिनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सेना । (२) सेना का एक भेद जिसमें ८१ हाथी, ८१ रथ, २४३ घोड़े और ४०५ पैदल होते थे । एक वाहिनी में तीन गण होते थे ।

वाहिनीपति-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वाहिनी नामक सेना विभाग का अधिपति । (२) सेनापति ।

वाहियात-वि० [अ० वाही+फा० यात] (१) व्यर्थ । फजूल । जैसे,—तुम तो यों ही वाहियात बका करते हो । (२) बुरा । खराब । जैसे,—वाहियात आदमियों का साथ मत किया करो ।

वाही-वि० [अ०] (१) सुस्त । ढीला । (२) निकम्मा । (३) बुद्धिहीन । मूर्ख । उ०—पीठि परो इंठि सो बसीठि बिनु ढीठ मन नीठ न सँभारै वाही मोहि मदि रहो है ।—देव । (४) आवारा । (५) बेठिकाने का । (६) बेहूदा ।

वाहीतबाही-वि० [अ० वाही+तबाह] (१) बेहूदा । आवारा।

क्रि० प्र०—फिरना ।

(२) अंडबंड । बेसिर पैर का ।

क्रि० प्र०—बकना ।

संज्ञा स्त्री० अंटबंट बातें । गाली गलौज ।

वाहु-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) हाथ के ऊपर का भाग जो कुहनी और कंधे के बीच में होता है । भुजदंड । (२) गणित शास्त्र में त्रिकोणादि क्षेत्रों के किनारे की (पार्श्व) रेखा । भुजा ।

वाहुमूल-संज्ञा पुं० [सं०] काँख ।

वाहुल-संज्ञा पुं० [सं०] कार्त्तिक का महीना ।

वाहुल्य-संज्ञा पुं० [सं०] आधिक्य । अधिकता ।

वाहुवार-संज्ञा पुं० [सं०] बहेड़े का वृक्ष ।

वाह्य-संज्ञा पुं० [सं०] यान । रथ । सवारी ।

क्रि० वि० (१) बाहर । (२) अलग । जैसे,—लोकवाह्य ।

वाह्यांतर-वि० [सं०] भीतर और बाहर का । जैसे,—वाह्यांतर शुद्धि ।

क्रि० वि० भीतर और बाहर ।

वाह्येंद्रिय-संज्ञा स्त्री० [सं०] पाँचों ज्ञानेंद्रियाँ जिनका काम वाह्य विषयों का ग्रहण करना है । आँख, कान, नाक, जिह्वा और त्वचा ।

वाह्लीक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक जनपद जो भारत की उत्तर-पश्चिम सीमा पर था । गांधार के पास का एक प्रदेश ।

विशेष—साधारणतः आजकल के 'बलख' (जो अफगानिस्तान के उत्तरी भाग में है) के आस पास का प्रदेश ही, जिसे प्राचीन पारसी 'बख्तर' और यूनानी 'बैक्ट्रिया' कहते थे, वाह्लीक माना जाता है; पर पाश्चात्य पुरातत्त्वविद् इसे आजकल के हिंदुस्तान के बाहर नहीं मानना चाहते ।

(२) वाह्लीक देश का घोड़ा । (३) कुंकुम । केसर । (४) हींग । (५) एक गंधर्व का नाम ।

विंगेरु-संज्ञा पुं० [?] अग्नि । आग ।

विंजामर-संज्ञा पुं० [सं०] आँख का वह भाग जो सफेद होता है ।

विंजाली-संज्ञा स्त्री० [सं०] श्रेणी । पंक्ति । कतार ।

विंद-संज्ञा पुं० [सं०] (१) अवंती के एक राजा का नाम । (२) धृतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम । (३) दिन का एक विशेष भाग । (४) प्राप्ति । लाभ ।

संज्ञा पुं० दे० "वृंद" । उ०—कलिंदजा के सुर मूल कूलन के विंद वितान तने हैं ।—दास ।

संज्ञा पुं० दे० "विंदु" ।

विंदक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) प्राप्त करनेवाला । पानेवाला । (२) जाननेवाला । ज्ञाता । वेत्ता । उ०—(क) परम साधु परमारथ विंदक । संभु उपासक नहिं हरि निंदक ।—तुलसी । (ख) नय कि पावहिं परमातम विंदक । सुखी कि होहिं कबहुँ पर निंदक ।—तुलसी ।

विंदु-संज्ञा पुं० [सं० बिन्दु] (१) जलकण । बूँद । (२) बुँदकी । बिंदी । (३) रंग की बिंदी जो हाथी के मस्तक पर शोभा के लिये बनाई जाती है । (४) अनुस्वार । (५) शून्य । (६) दाँत का लगाया हुआ दाग । दंत क्षत । (७) दो भौंहों के बीच की बिंदी । (८) एक बूँद परिमाण । (९) रेखागणित के अनुसार वह जिसका स्थान नियत हो, पर विभाग न हो सके । (१०) छोटा टुकड़ा । कण । कनी ।

उ०—कनक विंदु दुइ चारि के देखे। राखे सीस सीय सम लेखे।—तुलसी। (११) रत्नों का एक दोष या धब्बा जो चार प्रकार का कहा गया है—आवर्त्त (गोल), वर्त्ति (लंबा) आरक्त (लाल) और यव (जौ के आकार का)। (१२) मूँज या सरकंडे का धूँआँ।

वि० (१) ज्ञाता। वेत्ता। जानकार। (२) दाता। (३) जानने योग्य।

विंदुचित्रक-संज्ञा पुं० [सं०] वह मृग जिसके शरीर पर गोल गोल सफ़ेद बुँदकियाँ होती हैं। सफ़ेद चित्तियों का हिरन।

विंदुजाल-संज्ञा पुं० [सं०] सफ़ेद विंदियों का समूह जो हाथी के मस्तक और सूँड़ पर बनाया जाता है।

विंदुजालक-संज्ञा पुं० [सं०] हाथियों का पद्मक नामक रोग।

विंदुतंत्र-संज्ञा पुं० [सं०] (१) चौपड़ आदि की बिसात। अक्ष। सारिफलक। (२) तुरंगक।

विंदुतीर्थ-संज्ञा पुं० [सं०] काशी के प्रसिद्ध पंचनद तीर्थ का नामांतर जहाँ विंदु माधव का मंदिर है। पंचगंगा।

विंदुत्रिवेणी-संज्ञा स्त्री० [सं०] गाने में स्वर साधन की एक प्रणाली जिसमें तीन बार एक स्वर का उच्चारण करके एक बार उसके बाद के स्वर का उच्चारण करते हैं। फिर तीन बार उस दूसरे स्वर का उच्चारण करके एक बार तीसरे स्वर का उच्चारण करते हैं; और अंत में तीन बार सातवें स्वर का उच्चारण करके एक बार उसके अगले सप्तक के पहले स्वर का उच्चारण करते हैं। यथा—आरोही—सा सा सा रे, रे रे रे ग, ग ग ग म, म म म प, प प प ध, ध ध ध नि, नि नि नि सा। अवरोही—सा सा सा नि, नि नि नि ध, ध ध ध प, प प प म, म म म ग, ग ग ग रे, रे रे रे सा।

विंदुपत्र-संज्ञा पुं० [सं०] भोजपत्र।

विंदुमति, विंदुमती-संज्ञा स्त्री० [सं०] राजा शशिविंदु की कन्या का नाम।

विंदुमाधव-संज्ञा पुं० [सं०] काशी की एक प्रसिद्ध विष्णुमूर्त्ति का नाम। इसके विषय में काशी खंड में लिखा है कि एक बार भगवान विष्णु शिवजी की सम्मति पाकर काशी आए और यहाँ से राजा दिवोदास को बाहर निकाल दिया। उस समय अग्निविंदु नामक ऋषि ने विष्णु की स्तुति की और भगवान ने प्रसन्न होकर उससे वर माँगने के लिये कहा। ऋषि ने कहा कि मोक्षाभिलाषियों के हितार्थ पंचनद तीर्थ पर आप अवस्थान करें और हमारे नाम से प्रसिद्ध होकर सब को मुक्ति प्रदान करें। विष्णु भगवान ने "एवमस्तु" कहकर कहा कि आज से हम तुम्हारा आधा नाम अपने नाम के आगे जोड़कर विंदुमाधव नाम से प्रख्यात होकर पंचनद तीर्थ (पंचगंगा) पर वास करेंगे। पंचनद तीर्थ भी विंदु तीर्थ कहलावेगा।

विंदुर-संज्ञा पुं० [सं० विंदु+र (प्रत्य०)] किसी पदार्थ पर दूसरे रंग के लगे हुए छोटे छोटे चिह्न। बुँदकी। उ०—विंदुर विंदुर बान के चिह्न चुनी जरि केसर कुंदन कीजै।—सुंदरी०।

विंदुराजि-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का साँप। राजमन।

विंदुल-संज्ञा पुं० [सं०] अगिया नामक कीड़ा जिसके छूने से शरीर में फफोले निकल आते हैं।

विंदुसर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) पुराणानुसार एक सरोवर का नाम जिसके उत्तर कैलाश पर्व्वत है। कहते हैं कि भगीरथ ने गंगा के लिये, इसी सर के किनारे तप किया था। गंगा भी इसी स्थान से निकली हैं। देवताओं ने यहाँ अनेक यज्ञ किए थे और भगवती गंगा के जितने विंदु पृथ्वी पर उतरते समय गिरे, वे इसी स्थान पर गिरे थे। इस से यह सर बन गया और विंदुसर कहलाने लगा। (२) उड़ीसा में भुवनेश्वर क्षेत्र के एक प्राचीन सरोवर का नाम।

विंदुसार-संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रगुप्त के एक पुत्र का नाम। यह चंद्रगुप्त के बाद मगध का राजा हुआ था। सम्राट् अशोक इसी का पुत्र था।

विंध*-संज्ञा पुं० [सं० विंध्य] विंध्याचल। विंध्य पर्वत। उ०—कुसमउ देखि सनेह सँभारा। बढ़त विंध जिमि घटज निवारा।—तुलसी।

विंधपत्र-संज्ञा पुं० [सं०] बेलसोंठ। बिल्वशलाटु।

विंधपत्री-संज्ञा स्त्री० दे० "विंधपत्र"।

विंध्य-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रसिद्ध पर्वत या पर्वत-श्रेणी का नाम जो भारतवर्ष के मध्य में पूर्व से पश्चिम को फैला हुआ है। आर्य्यावर्त्त देश की दक्षिण सीमा पर यह पर्वत है। विंध्य पर्वत के दक्षिण का प्रदेश दक्षिणापथ या दक्षिण कहलाता है। इससे दो प्रधान नदियाँ नर्मदा और ताप्ती दक्षिण और पश्चिम दिशा में बहकर अरब की खाड़ी में गिरती हैं। इस पर्वत के पत्थर प्रायः बलुए और परतदार होते हैं। इसकी अनेक शाखा-प्रशाखाएँ सतपुरा आदि नाम से विख्यात हैं। पुराणानुसार यह सात कुल पर्वतों में है और मनु के अनुसार मध्य देश की दक्षिणी सीमा है। महाभारत में कथा है कि विंध्य ने सूर्य्य से कहा कि मेरु के समान तुम हमारी प्रदक्षिणा किया करो। जब सूर्य्य ने न माना, तब विंध्य ऊपर बढ़ने लगा और यह आशंका हुई कि यह सूर्य्य का मार्ग ही रोक देगा। देवताओं ने अगस्त्य से प्रार्थना की। अगस्त्य उसके पास गए और उसने साष्टांग दंडवत की। मुनि ने कहा कि जब तक मैं न लौटूँ, तब तक इसी तरह पड़े रहना। इतना कहकर अगस्त्य जी चले गए और फिर वापस नहीं आए। कहते हैं कि इसी लिये वह पर्वत अब तक ज्यों का त्यों लेटा पड़ा है, और इसी लिये इसका इतना अधिक विस्तार है।

विंध्यकूट-संज्ञा पुं० [सं०] (१) विंध्य पर्वत। (२) अगस्त्य मुनि का एक नाम।

विंध्यचूलक, विंध्यचूलिक-संज्ञा पुं० [सं०] विंध्य-पर्वत के दक्षिण का प्रदेश। महाभारत के अनुसार यहाँ एक प्राचीन जंगली जाति बसती थी।

विंध्यवासिनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] देवी की एक प्रसिद्ध मूर्त्ति जो मिर्जापुर ज़िले में विंध्य के एक टीले पर अवस्थित है। पुराणों में इस मूर्ति के संबंध में अनेक आख्यान हैं। वामन पुराण का मत है कि इंद्र ने भगवती दुर्गा को विंध्य पर्वत पर ले जाकर स्थापित किया था। किसी किसी का मत है कि सती के देह परित्याग करने पर जब शिव जी उनके शव को अपनी पीठ पर लादकर फिरने लगे, तब विष्णु धनुष बाण लेकर उनके पीछे पीछे चले; और जहाँ जहाँ अवकाश पाया, शव को काट काटकर गिराते गए। उसी समय एक अंग यहाँ भी गिरा था, जिससे यह सिद्ध-पीठ हो गया। यह मूर्ति बहुत प्राचीन है; क्योंकि प्राकृत के गौडवहो (गौड़वध) काव्य में वाक्पतिराज ने, जो आठवीं शताब्दी में था, इसका वर्णन किया है। राजतरंगिणी में विंध्यवासिनी को भ्रमरवासिनी नाम से लिखा है। जिस स्थान पर यह मूर्ति है, वह स्थान विंध्याचल कहलाता है।

विंध्यवासी-संज्ञा पुं० [सं०] व्याडि मुनि का एक नाम।

विंध्यशक्ति-संज्ञा पुं० [सं०] एक यवन राजा का नाम।

विंध्यस्थ-संज्ञा पुं० [सं०] व्याडि मुनि का एक नाम।

विंध्या-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक नदी का नाम।

संज्ञा पुं० दे० "विंध्य"।

विंध्याचल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) विंध्य पर्वत। (२) विंध्य पर्वत की एक शाखा पर बसी हुई एक छोटी सी बस्ती जिसमें विंध्यवासिनी देवी का मंदिर है। यह मिरज़ापुर से थोड़ी दूर पर है।

विंध्यावली-संज्ञा स्त्री० [सं०] राजा बलि की स्त्री का नाम।

विंश-वि० [सं०] क्रम में बीस के स्थान पर पड़नेवाला। बीसवाँ।

विंशत-वि० [सं०] बीस। (कुछ समस्त शब्दों में)

विंशति-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) बीस की संख्या। (२) इसका सूचक अंक जो इस प्रकार लिखा जाता है—२०।

वि० जो गिनती में बीस हो।

विंशतिप-संज्ञा पुं० [सं०] बीस गाँवों का अधिपति।

विंशतिबाहु-संज्ञा पुं० [सं०] रावण का एक नाम। विंशद्बाहु।

विंशतीश-संज्ञा पुं० [सं०] बीस गाँवों का अधिपति।

विंशतीशी-संज्ञा पुं० [सं० विंशतीशिन्] बीस गाँवों का अधिपति। विंशतीश।

विंशोत्तरी-संज्ञा स्त्री० [सं०] फलित ज्योतिष के अनुसार मनुष्य के शुभाशुभ फल जानने की एक रीति, जिसमें मनुष्य की आयु १२० वर्ष मानकर उसके विभाग करके नक्षत्रों और ग्रहों के अनुसार शुभाशुभ फल की कल्पना की जाती है। यथा—

ग्रह	काल	नक्षत्र
सूर्य्य	६ वर्ष	कृत्तिका, उत्तर फाल्गुनी और उत्तराषाढ़।
चंद्र	१० "	रोहिणी, हस्त और श्रवण।
मंगल	७ "	मृगशिरा, चित्रा और धनिष्ठा।
राहु	१८ "	आर्द्रा, स्वाती और शतभिषा।
बृहस्पति	१६ "	पुनर्वसु, विशाखा और पूर्व भाद्र।
शनि	१९ "	पुष्य, अनुराधा और उत्तर भाद्र।
बुध	१७ "	अश्लेषा, ज्येष्ठा और रेवती।
केतु	७ "	मघा, मूल और अश्विनी।
शुक्र	२० "	पूर्वफाल्गुनी, पूर्वाषाढ़ा और भरणी।
कुल	१२० वर्ष	

विकुंभिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) मेढ़कों की बोली। (२) टर्र टर्र की आवाज़। कर्कश ध्वनि। टर्राहट।

वि-उप० [सं०] एक उपसर्ग जो शब्द के पहले लगकर इस प्रकार अर्थ देता है—(१) विशेष; जैसे,—विकराल, विहीन। (२) वैरूप्य; जैसे,—विविध। (३) निषेध या वैपरीत्य। जैसे,—विक्रय, विकल्प।

संज्ञा पुं० [सं०] (१) अन्न। (२) आहार। (३) पशु। आँख।

संज्ञा स्त्री० पक्षी।

विकंकट-संज्ञा पुं० [सं०] गोक्षुर। गोखरू।

विकंकत-संज्ञा पुं० [सं०] एक जंगली वृक्ष का नाम जिसे कंटाई, किंकिणी और बंज कहते हैं। इसके पत्ते छोटे छोटे और डालियों में काँटे होते हैं। इसके फल बेर के आकार के तथा पकने पर मीठे होते हैं; पर अधपकी अवस्था में खटमीठे होते हैं। वैद्यक में यह लघु, दीपन और पाचक तथा कमल और प्लीहा का नाशक लिखा है। यज्ञों के लिये स्रुवा इसी की लकड़ी के बनाने का विधान है।

पर्य्या०—ग्रंथिल। स्रुवावृक्ष। स्वादुकंटक। कंटकी। व्याघ्रपाद। कंटहारी। दृढ़कंट। गुच्छाढ्य। मधुपर्णी। बहुफल। गोपघंटी। दंतकाष्ठ। यज्ञपादप। हिमक। विंकार। पृथुबीज। रावण। पादरोहण। सुवावृक्ष इत्यादि।

विकंकता-संज्ञा स्त्री० [सं०] अतिबला।

विकंटक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) जवासा। (२) विकंकट।

विकंपन-संज्ञा पुं० [सं०] एक राक्षस का नाम।

विक-संज्ञा पुं० [सं०] सद्यः प्रसूता गाय का दूध। तुरत की ब्याई गौ का दूध। पेउस। पीयूष।

विकच-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्रकार के पुच्छल तारे जिनकी

संख्या ६५ है। ये बृहस्पति के पुत्र माने जाते हैं। इनमें शिखा नहीं होती। इनका वर्ण सफेद होता है और ये प्रायः दक्षिण दिशा में उदय होते हैं। इनके उदय का फल अशुभ माना जाता है। (बृहत्संहिता) (२) ध्वजा। (३) क्षपणक।
वि० (१) विकसित। खिला हुआ। (२) जिसमें बाल न हो। बिना बाल का। केशहीन।

विकच्छ-संज्ञा पुं० [सं०] (नदी) जिसके दोनों ओर तराई या कछार न हो। जिसके किनारे पर दलदल या गीली ज़मीन न हो।

विकट-वि० [सं०] (१) विशाल। (२) विकराल। भयंकर। भीषण। (३) वक्र। टेढ़ा। उ०—(क) भृकुटी विकट निकट नैनन के राजत अति वर नारि। मनहुँ मदन जग जीति जेर करि राख्यो धनुष उतारि।—सूर। (ख) विकट भृकुटि कच घूँघरवारे। नव सरोज लोचन रतनारे।—तुलसी। (४) कठिन। मुश्किल। उ०—(क) नित प्रति सबै उरहने के मिस आवति हैं उठि प्रात। अनसमुझे अपराध लगावति विकट बनावति बात। सूर। (ख) नट कृत कपट विकट खगराया। नट सेवकहिं न व्यापहि माया।—तुलसी। (५) दुर्गम। जैसे, विकट मार्ग। (६) दुस्साध्य। (७) बिना चटाई का।
संज्ञा पुं० (१) विस्फोटक। (२) सोम लता। (३) धृतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम।

विकटा-संज्ञा स्त्री० [सं०] बुद्ध देव की माता माया देवी का एक नाम।

विकटानन-संज्ञा पुं० [सं०] धृतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम।

विकथा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) विशिष्ट कथा। (२) कुत्सित कथा। (जैन)

विकद्रु संज्ञा पुं० [सं०] यादवों के एक भेद का नाम।

विकनिधाहिक-संज्ञा पुं० [सं०] एक साम का नाम।

विकर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) रोग। व्याधि। (२) तलवार के ३२ हाथों में से एक का नाम।

विकरार-वि० [सं० विकराल] विकराल। भयंकर। डरावना। उ०—(क) नाक कान बिनु भइ विकरारा। जनु स्रव सैल गेरु कै धारा।—तुलसी। (ख) कियो युद्ध अति ही विकरार। चली चलन रुधिर की धार।—सूर।
वि० [फा० बेक़रार] विकल। बेचैन। व्याकुल। उ०—घनहिं चेत घन होइ विकरारा। भा चंदन बंदन सब छारा।—जायसी।

विकराल-वि० [सं०] भीषण। भयानक। डरावना।

विकर्ण-संज्ञा पुं० [सं०] (१) कर्ण के एक पुत्र का नाम। (२) दुर्योधन के एक भाई का नाम जो कुरुक्षेत्र की लड़ाई में मारा गया था। (३) एक साम का नाम। (४) एक प्रकार का बाण।

विकर्णक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्रकार की नदिया। (शिव का व्याड़ि नामक गण।

विकर्णिक-संज्ञा पुं० [सं०] सारस्वत प्रदेश।

विकर्णी संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) एक प्रकार की ईंट जिस व्यवहार यज्ञ की वेदी बनाने में होता था। (२) एक का नाम।

विकर्त्तन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सूर्य्य। (२) मंदार। आक।

विकर्म-संज्ञा पुं० [सं०] निषिद्ध कर्म। विरुद्धाचार।
वि० कर्मभ्रष्ट। दुराचारी।

विकर्मस्थ-संज्ञा पुं० [सं०] धर्मशास्त्रानुसार वह पुरुष जो वे विरुद्ध कर्म करता हो। वेद के विरुद्ध आचार करनेवा व्यक्ति।

विकर्ष-संज्ञा पुं० [सं०] बाण। तीर।

विकर्षण-संज्ञा पुं० [सं०] (१) आकर्षण। खींचना। (विभाग। हिस्सा। (३) एक शास्त्र का नाम जिसमें कर्षण करने की विद्या का वर्णन है। उ०—सत्य अस्त्र माया महाबल घोर तेज तनुकारी। पुनि पर तेज विकर्षण ही सौम्य अस्त्र भयहारी।

विकल-वि० [सं०] (१) विह्वल। व्याकुल। बेचैन। (कलाहीन। (३) खंडित। अपूर्ण। जैसे,—विकलांग। (घटा हुआ। ह्रासप्राप्त। (५) अस्वाभाविक। अनैसर्गिक। (६) असमर्थ।
संज्ञा पुं० दे० "विकला"।

विकलांग-वि० [सं०] जिसका कोई अंग टूटा या खराब हो। न्यूनांग। अंगहीन। जैसे,—लूला, लँगड़ा, काना, अं आदि।

विकला-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) कला का साठवाँ अंश। (वह स्त्री जिसका रजोदर्शन होना बंद हो गया हो। (बुध ग्रह की गति का नाम। (४) समय का एक अत्यं छोटा भाग।

विकलाना-क्रि० अ० [सं० विकल + आना (प्रत्य०)] व्याकु होना। घबराना। बेचैन होना। उ०—(क) निठुर वचन सुनि श्याम के युवती विकलानी। मनों महानिधि पाइ खाये पछितानी।—सूर। (ख) एक एक ह्वै ढूँढ़ी सखी विकलाईं। सूर प्रभु कहुँ नाहिं मिले ढूँढ़ति भुलानी।—सूर।

विकलास-संज्ञा पुं० [सं० विकलास] एक प्रकार का प्राचीन बाजा, जिस पर चमड़ा मढ़ा होता था।

विकलित-वि० [सं०] (१) व्याकुल। बेचैन। (२) दुःखी। पीड़ित।

विकलेंद्रिय-वि० [सं०] (१) जिसकी इंद्रियाँ वश में न हों।

(२) जिसकी कोई इंद्रिय खराब हो, अथवा बिल्कुल न हो। न्यूनेंद्रिय। जैसे,—लूला, लँगड़ा, काना, गंजा इत्यादि।

विकल्प-संज्ञा पुं० [सं०] (१) भ्रांति। भ्रम। धोखा। (२) एक बात मन में बैठाकर फिर उसके विरुद्ध सोच विचार। संकल्प का उलटा। (३) विपरीत कल्पना। विरुद्ध कल्पना। (४) विशेष रूप से कल्पना करना या निर्धारित करना। जैसे,—दंड विकल्प। (५) विविध कल्पना। नाना भाँति से कल्पना करना। (६) कई प्रकार की विधियों का मिलना।

विशेष—मीमांसा में विकल्प दो प्रकार का माना गया है—एक व्यवस्थायुक्त, दूसरा इच्छानुयायी। जिसमें दो प्रकार की विधियाँ मिलती हों, उसे व्यवस्थायुक्त कहते हैं। यथा "दर्श पौर्णमास याग में यव द्वारा होम करे, व्रीहि द्वारा होम करे" इसमें दो प्रकार की विधियाँ हैं। इसमें यदि कर्त्ता यव से होम करे या व्रीहि से, तो यह इच्छानुयायी विकल्प होगा। इच्छा विकल्प में आठ दोष होते हैं—प्रमाणत्व परित्याग, अप्रामाण्य कल्पना, अप्रामाण्योज्जीवन और प्रामाण्य हानि। ये चारों उक्त दोनों में लगने से आठ हो जाते हैं।

(७) योग शास्त्रानुसार पंच विधि चित्तवृत्तियों में एक, जो ऐसे शब्द-ज्ञान की शक्ति है जिसका वाच्य वस्तु नहीं होती। इसमें मनुष्य इस बात की खोज नहीं करता कि अमुक शब्द का वाच्य कोई पदार्थ है या नहीं, अथवा हो सकता है या नहीं। परंपरा से उसके वाच्य के संबंध में जैसा लोग मानते आते हैं, वैसा ही वह भी मान बैठता है। जैसे,—पारस पत्थर न मिला और न किसी ने देखा है। पर पारस पत्थर शब्द से लोग यही समझते हैं कि कोई ऐसा पत्थर है, जिसके स्पर्श से लोहा सोना हो जाता है। इस प्रकार के शब्दों के वाच्य के संबंध में जो वृत्ति चित्त में उत्पन्न होती है, उसे विकल्प कहते हैं। (८) अवांतर कल्प। (९) एक काव्यालंकार जिसमें दो विरुद्ध बातों को लेकर कहा जाता है कि या तो यही होगा या वही। जैसे,—कै लखिहैं मुख मोहन को कै पलास-प्रसून की आगि जरौंगी। (१०) वैचित्र्य। विलक्षणता। (११) समाधि का एक भेद जिसे सविकल्प कहते हैं। (१२) व्याकरण में एक ही विषय के कई नियमों में से किसी एक का इच्छानुसार ग्रहण।

विकल्पसंप्राप्ति-संज्ञा स्त्री० [सं०] वातादि दोषों की मिश्रित अवस्था में प्रत्येक के अंशांश की कल्पना करना। (वैद्यक)

विकल्पसम-संज्ञा पुं० [सं०] न्यायदर्शन में २४ जातियों में से एक जिसमें वादी के दिए हुए दृष्टांत में अन्य धर्म की योजना करते हुए साध्य में भी उसी धर्म का आरोप करके अथवा दृष्टांत को असिद्ध ठहराकर वादी की युक्ति का मिथ्या खंडन किया जाता है। जैसे,—वादी—"शब्द अनित्य है; क्योंकि वह उत्पत्ति धर्मवाला है, घट के समान"। प्रतिवादी—"अनित्य और मूर्त्त है; क्योंकि वह उत्पत्ति धर्मवाला है, घट के समान जो अनित्य और मूर्त्त है।" यहाँ प्रतिवादी का अभिप्राय यह है कि या तो शब्द को मूर्त्त मानो अथवा उसका नित्य होना स्वीकार करो।

विकल्पित-वि० [सं०] (१) जिसके संबंध में निश्चय न हो। संदिग्ध। (२) जिसका कोई नियम न हो। अनियमित।

विकल्मष-वि० [सं०] जिसमें पाप न हो। निष्पाप। पाप-रहित।

विकश्वर-वि० दे० "विकस्वर"।

विकषा-संज्ञा स्त्री० [सं०] मजीठ।

विकस-संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा।

विकसन-संज्ञा पुं० [सं०] [वि० विकसित] प्रस्फुटन। फूटना। खिलना।

विकसना-क्रि० अ० दे० "बिकसना"।

विकस्वर-वि० [सं०] विकासशील। खिलनेवाला।

संज्ञा पुं० एक काव्यालंकार जिसमें पहले कोई विशेष बात कहकर उसकी पुष्टि सामान्य बात से की जाती है। उ०—मधुप मोह मोहन तज्यो यह स्यामन की रीति। करौ आपने काज लौं तुम्हें भाति सौं प्रीति।

विकस्वरा-संज्ञा स्त्री० [सं०] लाल रंग की पुनर्नवा। लाल गदहपूरना।

विकार-संज्ञा पुं० [सं०] (१) किसी वस्तु का रूप, रंग आदि बदल जाना। (२) निरुक्त के चार प्रधान नियमों में एक जिसके अनुसार एक वर्ण के स्थान में दूसरा वर्ण हो जाता है। (३) दोष की प्राप्ति। बिगड़ना। खराबी। (४) दोष। बुराई। अवगुण। (५) मन की वृत्ति या अवस्था। मनोवेग या प्रवृत्ति। वासना। उ०—सकल प्रकार विकार बिहाई। मन क्रम बचन करेहु सेवकाई।—तुलसी। (६) वेदांत और सांख्य दर्शन के अनुसार किसी पदार्थ के रूप आदि का बदल जाना। परिणाम। जैसे,—कंकण सोने का विकार है; क्योंकि वह सोने से ही रूपांतरित होकर बना है। (७) उपद्रव। हानि।

विकारी-वि० [सं० विकारिन्] (१) जिसमें विकार हो। विकार युक्त। (२) क्रोधादि मनोविकारों से युक्त। दुष्ट वासनावाला। उ०—रे रे अंध बीसहूँ लोचन पर-तिय हर न विकारी। सूने भवन गवन तैं कीनो सेष रेख नहिं टारी।—सूर। (३) जिसमें विकार या परिवर्तन हुआ हो। परिवर्तित। उ०—जो हूँ क्रोध न कियो विकारि। महादेव हू फिरे निहारि।—सूर।

संज्ञा पुं० [सं०] साठ संवत्सरों में से एक संवत्सर का नाम।

विकाल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) अतिकाल। देर। (२) ऐसा समय

जब देव कार्य या पितृकार्य्य करने का समय बीत गया हो। सायंकाल का समय।

पर्य्या०—सायं। दिनांत। सायाह्न। विकालक।

विकालत-संज्ञा स्त्री० दे० "वकालत"।

विकालिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] घड़ियाल का कटोरा। जलघड़ी।

विकाश-संज्ञा पुं० [सं०] (१) प्रकाश। (२) प्रसार। फैलाव। विस्तार। वृद्धि। (३) आकाश। (४) विषम गति। (५) प्रस्फुटन। खिलना। (६) एक काव्यालंकार जिसमें किसी वस्तु का बिना निज का आधार छोड़े अत्यंत विकसित होना वर्णन किया जाता है। (७) किसी वस्तु की वृद्धि के लिये उसके रूप आदि में उत्तरोत्तर परिवर्त्तन होना।

वि० निर्जन। एकांत।

विकास-संज्ञा पुं० [सं०] (१) प्रसार। फैलाव। (२) खिलना। प्रस्फुटित होना। (३) किसी पदार्थ का उत्पन्न होकर अन्त या आरंभ से भिन्न भिन्न रूप धारण करते हुए उत्तरोत्तर बढ़ना। क्रमशः उन्नत होना। जैसे,—सृष्टि का विकास, मानव सभ्यता का विकास, बीज से पेड़ों का विकास, गर्भादि से शरीर का विकास। (४) एक प्रसिद्ध पाश्चात्य सिद्धांत जिसके आचार्य्य डार्विन नामक प्रसिद्ध प्राणि-विज्ञानवेत्ता हैं। इस सिद्धांत में यह माना जाता है कि आधुनिक समस्त सृष्टि और उसमें पाए जानेवाले जीव-जन्तु तथा वृक्ष आदि एक ही मूल तत्व से उत्तरोत्तर निकलते गए हैं। यह सिद्धांत इस बात का विरोधी है कि सारी सृष्टि जैसी है, वैसी ही एक बारगी उत्पन्न हो गई थी।

संज्ञा स्त्री० [सं० वि+कास] एक प्रकार की घास जो नीच भूमि में होती है। इसकी पत्तियाँ दूब की भाँति पर कुछ बड़ी होती हैं। चौपाए इसे बड़े चाव से खाते हैं।

विकासना॰-क्रि० स० [सं० विकास] (१) प्रकट करना। निकालना। उ०—(क) जनु अमृत होइ बचन विकासा। कमल जो बास बास धन बासा।—जायसी। (ख) छटपटाहिं पै अर्थ विकासैं। ये पुनि आतम अर्थ प्रकासैं। (२) विकसित करना। प्रस्फुटित करना। खिलने में प्रवृत्त करना।

क्रि० अ० (१) विकसित होना। खिलना। (२) प्रकट होना। ज़ाहिर होना।

विकिर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) पक्षी। चिड़िया। (२) कूआँ। (३) वह चावल आदि जो पूजा के समय विघ्न आदि दूर करने के लिये चारो ओर फेंका जाता है। अक्षत।

विकिष्क-संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल का बढ़इयों का एक प्रकार का गज जो प्रायः सवा दो हाथ या ४२ इंच का होता था।

विकीरण-संज्ञा पुं० [सं०] आक। मदार।

विकीर्ण-वि० [सं०] (१) चारों ओर फैला या छितराया हुआ। (२) प्रसिद्ध। मशहूर।

संज्ञा पुं० स्वर के उच्चारण में होनेवाला एक प्रकार का दोष।

विकीर्णरोम-संज्ञा पुं० [सं० विकीर्णरोमन्] एक प्रकार का सुगंधित पौधा।

विकुंज-संज्ञा पुं० [सं०] महाभारत के अनुसार एक जाति का नाम।

विकुंठ॰-संज्ञा पुं० [सं० वैकुंठ] वैकुंठ। उ०—(क) हरिरस माते मगन रहइ। निरमल भगति प्रेमरस पीवइ आन न दूजा भाव धरइ। सहजइ सदा राम रसराते, मुक्ति विकुंठ कहा करइ।—दादू। (ख) नारायण सुंदर भुज चारी। बसहिं विकुंठहि सदा सुरारी।—रघुराज।

वि० [सं०] जो कुंठित न हो। तेज धारवाला। कुंद या भुथरा का उलटा।

विकुंभांड-संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार एक दानव का नाम।

विकुक्षि-संज्ञा पुं० [सं०] अयोध्या के राजा कुक्षि के पुत्र का नाम।

वि० जिसका पेट फूला या आगे को निकला हुआ हो। तोंद-वाला।

विकुस्त-संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा।

विकूणिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] नासिका। नाक।

विकृत-वि० [सं०] (१) जिसमें किसी प्रकार का विकार आ गया हो। बिगड़ा हुआ। (२) जो भद्दा या कुरूप हो गया हो। उ०—पुरुष के शुक्र और स्त्री के आर्तव में कैसा दोष हो जाने से संतान नहीं होती अथवा विकृत संतान होती है।—जगन्नाथ शर्म्मा। (३) असाधारण। अस्वाभाविक। (४) अपूर्ण। अधूरा। (५) विद्रोही। अराजक। (६) रोगी। बीमार।

संज्ञा पुं० (१) दूसरे प्रजापति का नाम। (२) पुराणानुसार परिवर्त्त राक्षस के पुत्र का नाम। (३) साठ संवत्सरों में से चौबीसवाँ संवत्सर।

विकृतदृष्टि-संज्ञा पुं० [सं०] ऐंचा ताना।

विकृत स्वर-संज्ञा पुं० [सं०] वह स्वर जो अपने नियत स्थान से हटकर दूसरी श्रुतियों पर जाकर ठहरता है। संगीत-शास्त्र में १२ विकृत स्वर माने गए हैं—(१) च्युत षड्ज, (२) अच्युत षड्ज, (३) विकृत षड्ज, (४) साधारण गांधार, (५) अंतर गांधार, (६) च्युत मध्यम, (७) अच्युत मध्यम, (८) त्रिश्रुति मध्यम, (९) कैशिक पंचम, (१०) विकृत धैवत, (११) कैशिक निषाद और (१२) काकली निषाद।

विकृता-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक योगिनी का नाम।

विकृति-संज्ञा स्त्री० [सं०]. (१) विकार। खराबी। बिगाड़। (२) वह रूप जो विकार के उपरांत प्राप्त हो। बिगड़ा हुआ रूप। (३) रोग। बीमारी। (४) सांख्य के अनुसार मूल प्रकृति का वह रूप जो उसमें विकार आने पर होता

है। विकार। परिणाम। (५) परिवर्त्तन। (६) मन में होनेवाला क्षोभ। (७) विद्रोही होने का भाव। शत्रुता। (८) मूल धातु से बिगड़कर बना हुआ शब्द का रूप। (९) उन्नति। विकास। (१०) माया का एक नाम। (११) २३ वर्णों के वृत्तों की संज्ञा।

विकृष्ट-वि० [सं०] खींचा हुआ। आकृष्ट।

विकेट डोर-संज्ञा पुं० [अं०] एक प्रकार का छोटा चक्करदार दरवाजा या जाने का रास्ता, जो प्रायः कमर तक ऊँचा और ऊपर से बिलकुल खुला हुआ होता है। यह बागों आदि के बड़े दरवाजों के पास ही इसलिये लगाया जाता है कि आदमी तो आ जा सकें, पर पशु आदि न आ सकें। इसके रूप प्रायः इस प्रकार के होते हैं—(१) ⋲, (२) [×], (३) [◇]

विकेश-वि० [सं०] [स्त्री० विकेशी] (१) जिसके बाल खुले हों। (२) गंजा।

संज्ञा पुं० (१) एक प्राचीन ऋषि का नाम। (२) पुच्छल तारा। (३) एक प्रकार के प्रेत।

विकेशी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) मही (पृथ्वी) रूप शिव की पत्नी का नाम। (२) एक प्रकार की राक्षसी या पूतना।

विकोक-संज्ञा पुं० [सं०] वृकासुर के पुत्र और कोक के छोटे भाई का नाम।

विकोष-वि० [सं०] (१) कोष या म्यान से निकली हुई (तलवार)। (२) जिसके ऊपर किसी प्रकार का आवरण या आच्छादन न हो।

विक्टोरिया-संज्ञा स्त्री० [अं०] एक प्रकार की घोड़ा गाड़ी जो देखने में प्रायः फिटन से मिलती जुलती, पर उससे कुछ छोटी और हलकी होती है और जिसे प्रायः एक ही घोड़ा खींचता है।

संज्ञा पुं० एक छोटे ग्रह का नाम जिसका पता हैण्ड नामक एक युरोपियन ने सन् १८५० में लगाया था।

विक्रम-संज्ञा पुं० [सं०] (१) विष्णु का एक नाम। उ०—कटि तट प्रगट प्रताप महान त्रिविक्रम रहैं। पृष्ठ देस मँह परम रास पर विक्रम रहैं।—गोपाल। (२) बल, शौर्य्य या शक्ति की अधिकता। ताकत का ज्यादा होना। बहादुरी। पराक्रम। उ०—(क) कासी नृपति चखेउ प्रकासी विक्रम रासी।—गोपाल। (ख) पर भोगी नृपन को धरे पंचानन विक्रम अधिक।—गोपाल। (ग) विपुल बल मूल सार्दूल विक्रम जलद नाद मर्दन महावीर भारी।—तुलसी। (३) ताकत। बल। (४) गति। (५) प्रकार। ढंग। (६) साठ संवत्सरों में से चौदहवाँ संवत्सर। (७) वेद पाठ की वह प्रणाली जिसमें क्रम का अभाव हो। (८) दे० "विक्रमादित्य"।

वि० श्रेष्ठ। उत्तम। उ०—सुना सुफल है आपउँ तेहि गुन ते मुख रात। कया पीत सो तासों सवरौं विक्रम बात।—जायसी।

विक्रमक-संज्ञा पुं० [सं०] कार्त्तिकेय के एक गण का नाम।

विक्रमण-संज्ञा पुं० [सं०] चलना। कदम रखना।

विक्रमाजीत-संज्ञा पुं० दे० "विक्रमादित्य"।

विक्रमादित्य-संज्ञा पुं० [सं०] उज्जयिनी के एक प्रसिद्ध प्रतापी राजा का नाम जिनके संबंध में अनेक प्रकार के प्रवाद प्रचलित हैं। ये बहुत बड़े विद्याप्रेमी, कवि, उदार, गुणग्राहक और दानी कहे जाते हैं। यह भी कहा जाता है कि इनकी सभा में नौ बहुत बड़े बड़े और प्रसिद्ध पंडित रहा करते थे, जो "नवरत्न" कहलाते थे और जिनके नाम इस प्रकार हैं—कालिदास, वररुचि, अमरसिंह, धन्वंतरि, क्षपणक, वेतालभट्ट, घटकर्पर, शंकु और वराहमिहिर। परंतु ऐतिहासिक दृष्टि से इन नौ विद्वानों का एक ही समय में होना सिद्ध नहीं होता, जिससे "नवरत्न" को लोग कल्पित ही समझते हैं। आजकल जो विक्रमी संवत् प्रचलित है, उसके संबंध में भी लोगों की यही धारणा है कि इन्हीं राजा विक्रमादित्य का चलाया हुआ है; पर इस बात का भी कोई ऐतिहासिक प्रमाण अभी तक नहीं मिला है कि विक्रमी संवत् के आरंभ होने के समय मालव देश में या उसके आस पास विक्रमादित्य नाम का कोई राजा रहता था। विक्रमी संवत् किस राजा विक्रमादित्य का चलाया हुआ है, इसका अभी तक कोई ठीक ठीक पता नहीं चला है। कुछ विद्वानों का मत है कि विक्रम संवत् का विक्रमादित्य नाम के किसी राजा के साथ कोई संबंध नहीं है और न वह किसी एक व्यक्ति का चलाया हुआ है। उनका मत है कि ईसवी सन् से ५८ वर्ष पूर्व शक नहपान को गौतमीपुत्र ने युद्ध में बुरी तरह परास्त करके उसे मार डाला था। इस युद्ध में उसने अपना जो विक्रम (वीरता) दिखलाया था, उसी की स्मृति के रूप में मालवों के गण ने उसी तिथि से कृत-युग का आरंभ माना; और इस प्रकार इस विक्रम संवत् का प्रचार हुआ। तात्पर्य्य यह है कि संवत्वाला "विक्रम" शब्द किसी विक्रमादित्य नामक संवत् चलानेवाले राजा का सूचक नहीं है, बल्कि यह पीछे के किसी राजा के विक्रम या वीरता का बोधक है। स्कंद पुराण में लिखा है कि कलियुग के तीन हजार वर्ष बीत जाने पर विक्रमादित्य नाम का एक बहुत प्रतापी राजा हुआ था। मोटे हिसाब से यह समय ईसवी सन् से प्रायः सौ वर्ष पूर्व पड़ता है, पर वह राजा कौन था, इसका निश्चय नहीं होता। यह भी प्रसिद्ध है कि इस राजा ने शकों को एक घोर युद्ध में पराजित किया था और उसी विजय के उपलक्ष में अपना संवत्

भी चलाया था। शकों को पराजित करने के कारण ही इसकी एक उपाधि "शकारि" भी हो गई थी। बौद्धों और जैनियों के धर्मग्रंथों तथा चीनी और अरबी आदि यात्रियों के यात्रा विवरण में भी विक्रमादित्य के संबंध में कुछ फुटकर बातें पाई जाती हैं। पर न तो यही ज्ञात है कि इन्होंने कब से कब तक राज्य किया और न इनके जीवन की और बातों का ही कोई क्रमबद्ध इतिहास मिला है। इतिहास से यह भी पता चलता है कि गुप्त वंशीय प्रथम चन्द्रगुप्त ने उत्तर भारत में शकों को परास्त करके "विक्रमादित्य" की उपाधि धारण की थी; परंतु ये संवत् चलानेवाले विक्रमादित्य के बहुत बाद के हैं। इसके अतिरिक्त इसी गुप्त वंश के समुद्रगुप्त के पुत्र द्वितीय चंद्रगुप्त ने भी "विक्रमादित्य" की उपाधि धारण की थी। ईसवी सातवीं शताब्दी के आरंभ में काश्मीर में भी विक्रमादित्य नाम का एक राजा हुआ था जिसके पिता का नाम रणादित्य था। इसी प्रकार चालुक्य वंश में भी इस नाम के कई राजा हो गए हैं। पीछे से तो मानों यह प्रथा सी चल पड़ी थी कि जहाँ कोई राजा कुछ अधिक बढ़ निकलता था, तहाँ वह अपने नाम के साथ "विक्रमादित्य" की उपाधि लगा लिया करता था। यहाँ तक कि अकबर की बाल्यावस्था में जब हेमूँ डूसर ने दिल्ली पर अधिकार किया, तब वह भी "विक्रमादित्य" बन बैठा था।

विक्रमाब्द-संज्ञा पुं० [सं०] विक्रमादित्य के नाम से चला हुआ संवत्। विक्रम संवत्।

विक्रमार्क-संज्ञा पुं० दे० "विक्रमादित्य"।

विक्रमी-संज्ञा पुं० [सं० विक्रमिन्] (१) वह जिसमें बहुत अधिक बल हो। विक्रमवाला। पराक्रमी। उ०—अति विक्रमी मोरध्वजनंदन। नाम ताम्रध्वज दुष्ट निकंदन।—रघुराज। (२) विष्णु। (३) शेर।

वि० विक्रम का। विक्रम संबंधी। जैसे,—विक्रमी संवत्।

विक्रय-संज्ञा पुं० [सं०] मूल्य लेकर कोई पदार्थ देना। बेचना। बिक्री। उ०—इस दलील के आधार पर क्रय-विक्रय के मामूली व्यापार में दस्तंदाज़ी करना—अर्थात् किसी चीज के बेचने या मोल लेने की मनाई कर देना —और भी अनुचित बात होगी।—स्वाधीनता।

यौ०—क्रय-विक्रय।

विक्रयक-संज्ञा पुं० [सं०] बेचनेवाला। विक्रेता।

विक्रयण-संज्ञा पुं० [सं०] बेचने की क्रिया। विक्रय। बिक्री।

विक्रयपत्र-संज्ञा पुं० [सं०] वह पत्र जिसमें यह लिखा हो कि अमुक पदार्थ अमुक व्यक्ति के नाम इतने मूल्य पर बेचा गया। बैनामा।

विक्रयिक-संज्ञा पुं० [सं०] वह जो विक्रय करता या बेचता हो। बेचनेवाला। विक्रेता।

विक्रयी-संज्ञा पुं० [सं० विक्रयिन्] विक्रय करनेवाला। बेचनेवाला। विक्रेता।

विक्रांत-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वैक्रांत मणि। (२) शूर। वीर। बहादुर। (३) शेर। (४) पुराणानुसार हिरण्याक्ष के एक पुत्र का नाम। (५) व्याकरण में एक प्रकार की संधि जिसमें विसर्ग अविकृत ही रहता है। (६) एक प्रजापति का नाम। (७) पुराणानुसार कुवलयाश्व के पुत्र का नाम जिसका जन्म मदालसा के गर्भ से हुआ था। (८) चलने का ढंग। (९) साहस। हिम्मत। (१०) एक प्रकार का मादक पेय पदार्थ।

वि० (१) जिसकी क्रांति नष्ट हो गई हो। (२) तेजस्वी। प्रतापी।

विक्रांता-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) अग्निमंथ वृक्ष। अरणी। (२) जयंती। (३) मूसाकानी। (४) अड़हुल। गुड़हर। (५) अपराजिता। (६) लाल लजालू। छुई मुई। (७) हंसराज नाम की लता।

विक्रांति-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) गति। (२) घोड़े की सरपट चाल। (३) विक्रम। बल। (४) वीरता। शूरता। बहादुरी।

विक्रायक-संज्ञा पुं० [सं०] बेचनेवाला। विक्रेता।

विक्रिया-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) विकार। खराबी। (२) किसी क्रिया के विरुद्ध होनेवाली क्रिया।

विक्रियोपमा-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का उपमालंकार जिसमें किसी विशिष्ट क्रिया या उपाय का अवलंबन कहा जाता है।

विक्री-संज्ञा स्त्री० [सं० विक्रय] (१) बेचने की क्रिया या भाव। विक्रय। बिक्री। (२) वह धन जो बेचने पर मिले।

विक्रीत-वि० [सं०] जो बेच दिया गया हो। बेचा हुआ।

विक्रुष्ट-संज्ञा पुं० [सं०] निष्ठुर। निर्दय। निठुर।

विक्रेता-संज्ञा पुं० [सं०] वह जो मूल्य लेकर देता हो। बेचनेवाला। बिक्री करनेवाला।

विक्रेय-वि० [सं०] जो विक्रय होने को हो। बिकनेवाला।

विक्लव-वि० [सं०] विह्वल। बेचैन।

विक्लिन्न-वि० [सं०] जो पुराना होने के कारण सड़ या गल गया हो।

विक्षत-वि० [सं०] (१) जिसमें क्षत लगा हो। जिसमें घाव पड़ी हो। घायल। ज़ख्मी।

विक्षय-संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक के अनुसार एक प्रकार का रोग जो अधिक मद्य-पान करने से होता है।

विक्षिप्त-वि० [सं०] (१) फेंका या छितराया हुआ। (२) जिसका त्याग किया गया हो। त्यक्त। (३) जिसका चित्त ठिकाने न हो। पागल। उ०—(क) वायुकी चोट भी हर

जाती होगी और जो रात-दिन जागता होगा, तो विक्षिप्त या अति रोगी होगा।—दयानंद। (ख) तुमहिं कह्यो श्रुति शासन माहीं। जहँ विक्षिप्त भूप है जाहीं।—रघुराज। (४) घबराया हुआ। पागलों का सा। विकल। व्याकुल।

विक्षिप्तक-संज्ञा पुं० [सं०] वह मृत शरीर जो जलाया या गाड़ा न गया हो, बल्कि योंही कहीं फेंक दिया गया हो।

विक्षिप्तता-संज्ञा स्त्री० [सं०] विक्षिप्त या पागल होने का भाव। पागलपन। उ०—यहाँ तक कि कुछ काल के पश्चात् स्वयं उसे ही अपनी विक्षिप्तता को देखकर विस्मित होना पड़ता है।—निबंधमालादर्श।

विक्षीर-संज्ञा पुं० [सं०] आक। मदार।

विक्षीरणी-संज्ञा स्त्री० [सं०] दुद्धी। दुग्धिका।

विक्षुब्ध-वि० [सं०] जिसके मन में क्षोभ उत्पन्न हुआ हो। जिसका मन चंचल हो गया हो। क्षुब्ध।

विक्षुभा-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक छाया का नाम।

विक्षेप-संज्ञा पुं० [सं०] (१) ऊपर की ओर अथवा इधर उधर फेंकना। डालना। (२) इधर उधर हिलाना। झटका देना। (३)(धनुष की डोरी) खींचना। चिल्ला चढ़ाना। (४)मन को इधर उधर भटकाना। इंद्रियों को वश में न रखना। संयम का उलटा। उ०—ईर्ष्या, द्वेष, काम, अभिमान, विक्षेप आदि दोषों से अलग होके सत्य आदि गुणों को धारण करे।—दयानंद। (५) प्राचीन काल का एक प्रकार का अस्त्र जो फेंककर चलाया जाता था। (६) सेना का पड़ाव। छावनी। (७) एक प्रकार का रोग। (८) बाधा। विघ्न। खलल। जैसे,—इस काम में कई विक्षेप पड़े हैं। उ०—समाधि की प्राप्ति होने पर भी उसमें चित्त स्थिर न होना ये सब चित्त की समाधि होने में विक्षेप अर्थात् उपासना-योग के शत्रु हैं।—दयानंद।

विक्षेपण-संज्ञा पुं० [सं०] (१) ऊपर अथवा इधर उधर फेंकने की क्रिया। (२) हिलाने या झटका देने की क्रिया। (३) धनुष की डोरी खींचने की क्रिया। (४) विघ्न। बाधा। खलल।

विक्षेपलिपि-संज्ञा स्त्री० [सं०] ललितविस्तर के अनुसार एक प्रकार की प्राचीन लिपि या लेख-प्रणाली।

विक्षोभ-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मन की चंचलता या उद्विग्नता। क्षोभ। (२) हाथी की छाती का एक भाग या पार्श्व।

विक्षोभण-संज्ञा पुं० [सं०] (१) पुराणानुसार एक दानव का नाम। (२) मन में बहुत अधिक क्षोभ उत्पन्न होना या करना।

विक्षोभी-वि० [सं० विक्षोभिन्] [स्त्री० विक्षोभिणी] जो क्षोभ उत्पन्न करे। क्षोभकारी।

विख-वि० [सं०] जिसकी नाक न हो। बिना नाकवाला।
 ● संज्ञा पुं० दे० "विष"।

विखद्दा-संज्ञा पुं० [सं० विषघ्न] गरुड़।

विखादितक-संज्ञा पुं० [सं०] वह मृत शरीर जिसे पशुओं ने खा डाला हो।

विखानक-संज्ञा पुं० [सं० विषाण] सींग।

विखानस-संज्ञा पुं० दे० "वैखानस"।

विखायँध-संज्ञा स्त्री० [हिं० विख = जहर + आयँध (गंध) (प्रत्य०)] कड़वी या जहर की सी गंध। बिसायँध। उ०—जो अन्दवाय भरे अरगजा। तौहु बिसायँध ओहि नहिं तजा। जायसी।

विखुर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) राक्षस। (२) चोर।

विख्यात-वि० [सं०] जिसे सब लोग जानते हों। प्रसिद्ध। मशहूर। उ०—(क) यक्ष प्रबल यादै भुव मंडल तिन मान्यो निज भ्रात। तिनके काज अंश हरि प्रगटे भूय जगत विख्यात।—सूर। (ख) मन तें यदि रथ जात केतु फहरात वात बस। लखि लजात सुरतात बहुत विख्यात जगत जस।—गोपाल।

विख्याति-संज्ञा स्त्री० [सं०] विख्यात होने का भाव। प्रसिद्धि। शोहरत। उ०—राम नाम सुमिरत सुजस भाजन भयेउ कुजाति। कुतरुक सुरपुर राज मग लहत भुवन विख्याति। तुलसी।

विख्यापन-संज्ञा पुं० [सं०] प्रसिद्ध करना। मशहूर करना।

विगंध-वि० [सं०] (१) जिसमें किसी प्रकार की गंध न हो। (२) बदबूदार। उ०—कंटक कलित त्रिनवलित विगंध जल तिनके तलपत लता को ललचात जू।—केशव।

विगंधक-संज्ञा पुं० [सं०] इंगुदी वृक्ष।

विगंधिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) हपुषा। हाऊबेर। (२) अजगंधा। तिलवन।

विगणन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) हिसाब लगाना। लेखा करना। (२) ऋण से मुक्त होना। कर्ज चुकाना।

विगत-वि० [सं०] (१) जो गत हो गया हो। जो बीत चुका हो।

विशेष—जब यह शब्द यौगिक अवस्था में किसी संज्ञा के पहले आता है, तब इसका अर्थ होता है—"जिसका नष्ट हो गया हो।" जैसे,—विगत-ज्वर = जिसका ज्वर उतर गया हो। विगत नयन = जिसकी आँखें नष्ट हो गई हों। उ०—विगत मास प्रमुदित मन माहीं। निरखि राम छवि दग न अघाहीं। रामाश्वमेध।

(२) गत से पहले का। अंतिम या बीते हुए से पहले का। जैसे,—विगत सप्ताह = गत सप्ताह से पहले का सप्ताह। (३) जो कहीं इधर उधर चला गया हो। (४) जिसकी प्रभा या कांति नष्ट हो गई हो। जिसकी चमक आदि जाती रही हो। निष्प्रभ। (५) रहित। विहीन। उ०—

(क) विगत मानसम सीतल मन पर गुन नहिं दोस कहौंगो ।—तुलसी । (ख) प्रमुदित जनक निरखि अंबुज मुख विगत नयन मन पीर ।—सूर ।

विगता-वि० स्त्री० [सं०] (१) जो विवाह करने के योग्य न रह गई हो । (२) जो पर पुरुष से प्रेम करती हो ।

विगति-संज्ञा स्त्री० [सं०] दुर्दशा । दुर्गति । खराबी ।

विगतोद्धव-संज्ञा पुं० [सं०] एक बुद्ध का नाम ।

विगम-संज्ञा पुं० [सं०] (१) प्रस्थान । चला जाना । (२) समाप्ति । अंत । खातमा । (३) नाश । (४) मोक्ष ।

विगर्हण-संज्ञा पुं० [सं०] भर्त्सना करना । डाँटना । डपटना । धिक्कार । फटकार ।

विगर्हणा-संज्ञा स्त्री० [सं०] भर्त्सना । डाँट । फटकार ।

विगर्हित-वि० [सं०] (१) जिसे भर्त्सना की गई हो । जिसे डाँट या फटकार बतलाई गई हो । (२) बुरा । खराब । निंदनीय । (३) निषिद्ध ।

विगर्ह्य-वि० [सं०] जो भर्त्सना करने योग्य हो । डाँटने डपटने या निंदा करने के योग्य ।

विगलित-वि० [सं०] (१) जो गिर गया हो । (२) जो बह गया हो । जो चूकर या टपककर निकल गया हो । (३) ढीला पड़ा हुआ । छूटा हुआ । शिथिल । (४) बिगड़ा हुआ । उ०—ऋतुपति तरु विगलित सुदल, तहँ कुरूपता वास । बसी अरुचि यक भवन में, पाप न बस्यो विनास । —रामस्वयंवर ।

विगाथा-संज्ञा स्त्री० [सं०] आर्य्या छंद का एक भेद जिसके विषम पदों में १२, दूसरे में १५ और चौथे में १८ मात्राएँ होती हैं और अंत का वर्ण गुरु होता है । विषम गणों में जगण नहीं होता, पहले दल का छठा गण (२७ वीं मात्रा के कारण) एक लघु का मान लिया जाता है । इसे 'विग्गाहा' और 'उद्गीति' भी कहते हैं ।

विगुण-वि० [सं०] जिसमें कोई गुण न हो । गुण रहित । निर्गुण । वि० दे० "निर्गुण" । उ०—शशि रूप मनं तमभं विगुणं । हृदयस्थ लखो सब त्यागि भ्रमं ।-स्वामी रामकृष्ण ।

विग्गाहा-संज्ञा स्त्री० [सं० विगाथा] विगाथा नामक छंद जो आर्य्या का एक भेद है ।

विग्रह-संज्ञा पुं० [सं०] (१) दूर या अलग करना । (२) विभाग । (३) यौगिक शब्दों अथवा समस्त पदों के किसी एक अथवा प्रत्येक शब्द को अलग करना । (व्याकरण) (४) कलह । लड़ाई । झगड़ा । (५) युद्ध । समर । (६) नीति के छः गुणों में से एक । विपक्षियों में फूट या कलह उत्पन्न करना । (७) आकृति । शक्ल । (८) शरीर । (९) मूर्ति । (१०) सजावट । शृंगार । (११) सांख्य के अनुसार कोई तत्व । (१२) शिव का एक नाम । (१३) स्कंद के एक अनुचर का नाम ।

विग्रहण-संज्ञा पुं० [सं०] रूप धारण करना । शक्ल में आना ।

विग्रही-संज्ञा पुं० [सं० विग्रहिन्] (१) लड़ाई झगड़ा करनेवाला । (२) युद्ध करनेवाला । (३) युद्ध विभाग का मंत्री या सचिव ।

विग्राह्य-वि० [सं०] जो इस योग्य हो कि उसके साथ कलह की जा सके । जिसके साथ युद्ध हो सके ।

विघटन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) संयोजक अंगों को अलग अलग करना । (२) तोड़ना फोड़ना । उ०—प्रगटी धनु-विघटन परिपाटी ।—तुलसी । (३) नष्ट करना ।

विघटिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] समय का एक छोटा मान । घड़ी का २३वाँ भाग ।

विघटित-वि० [सं०] (१) जिसके संयोजक अंग अलग अलग किए गए हों । (२) जो तोड़ फोड़ डाला गया हो । (३) नष्ट ।

विघट्टन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) खोलना । (२) पटकना । (३) रगड़ना । (४) दे० "विघटन" ।

विघट्टित-वि० [सं०] (१) खुला हुआ । (२) तोड़ा फोड़ा हुआ ।

विघन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) आघात करना । चोट पहुँचाना । (२) एक प्रकार का बहुत बड़ा हथौड़ा । घन । (३) इंद्र ।

*‡ संज्ञा पुं० दे० "विघ्न" ।

विघर्षण-संज्ञा पुं० [सं०] अच्छी तरह रगड़ने या घिसने की क्रिया ।

विघस-संज्ञा पुं० [सं०] (१) आहार । भोजन । खाना । (२) वह अन्न जो देवता, पितर, गुरु या अतिथि आदि के खा चुकने पर बच रहे ।

विघात-संज्ञा पुं० [सं०] (१) आघात । प्रहार । चोट । (२) टुकड़े करना । तोड़ना फोड़ना । (३) नाश । (४) बाधा । विघ्न । (५) सफल न होना । विफलता ।

विघातक-संज्ञा पुं० [सं०] विघ्न डालनेवाला । बाधक ।

विघातन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) विघात करने की क्रिया । (२) मार डालना । हत्या करना ।

विघाती-संज्ञा पुं० [सं० विघातिन्] [स्त्री० विघातिनी] (१) विघात करनेवाला । (२) बाधा डालनेवाला । (३) हत्या करनेवाला । घातक ।

विघूर्णिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] नासिका । नाक ।

विघूर्णन-संज्ञा पुं० [सं०] चारों ओर घुमाना । चक्कर देना ।

विघ्न-संज्ञा पुं० [सं०] (१) किसी काम के बीच में पड़नेवाली अड़चन । रुकावट । बाधा । व्याघात । अंतराय । खलल ।

क्रि० प्र०—करना ।—डालना ।—दूर करना ।—पड़ना ।—होना ।

विशेष—जब इस शब्द के साथ नायक, नाशक अथवा इसी

पर्य्यायवाची शब्दों का योग होता है, तब इसका अर्थ "गणेश" होता है।

(२) पाकफल।

विघ्नक-वि० [सं०] विघ्न करनेवाला। बाधा डालनेवाला।

विघ्नकारी-संज्ञा पुं० [सं० विघ्नकारिन्] वह जो विघ्न डालता हो। बाधा उपस्थित करनेवाला।

विघ्नजित्-संज्ञा पुं० [सं०] गणेश।

विघ्ननायक-संज्ञा पुं० [सं०] गणेश।

विघ्ननाशक-संज्ञा पुं० [सं०] गणेश।

विघ्नपति, विघ्नराज-संज्ञा पुं० [सं०] गणेश।

विघ्नविनायक-संज्ञा पुं० [सं०] गणेश।

विघ्नेश-संज्ञा पुं० [सं०] गणेश।

विघ्नेशकांता-संज्ञा स्त्री० [सं०] सफेद दूब।

विचकित-वि० [सं०] घबराया हुआ।

विचकिल-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की मल्लिका या चमेली। मदनक।

विचक्र-संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार एक दानव का नाम।

विचक्षण-वि० [सं०] (१) प्रकाशमान्। चमकता हुआ। (२) जो स्पष्ट दिखाई दे। (३) जो किसी विषय का अच्छा ज्ञाता हो। निपुण। पारदर्शी। (४) पंडित। विद्वान्। (५) बहुत बड़ा चतुर या बुद्धिमान्। उ०—(क) परम साधु सब बात विचक्षण। बसे ताहि महँ सकल सुलक्षण।—रघुराज। (ख) अंतरवेद विचक्षन मारि निरंतर अंतर की गति जानै।—देव।

विचक्षणा-संज्ञा स्त्री० [सं०] नागदंती।

विचच्छन-संज्ञा पुं० [सं० विचक्षण] बहुत बड़ा बुद्धिमान् या चतुर। उ०—(क) रन परम विचच्छन गरम तर परम सुरच्छन करम कर।—गोपाल। (ख) लच्छ रथी अच्यच्छ प्रबल प्रत्यच्छ विचच्छन। कसे कच्छ निज सैनु रच्छ करि पर दल भच्छन।—गोपाल। (ग) है कपूर मनिमय रही मिलि तन दुति मुकुतालि। छिन छिन खरी विचच्छनौ लखति छ्वाय तिन आलि।—बिहारी।

विचय-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एकत्र करना। इकट्ठा करना। जमा करना। (२) जाँच पड़ताल करना। परीक्षा करना।

विचयन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) इकट्ठा करना। एकत्र करना। (२) जाँचना। परीक्षा करना।

विचरण-संज्ञा पुं० [सं०] (१) चलना। (२) घूमना फिरना। पर्य्यटन करना। उ०—आर्य्य संतान उस दिन अपने प्राचीन वेष में विचरण करती थी।—बालमुकुंद गुप्त।

विचरन-संज्ञा पुं० दे० "विचरण"। उ०—(क) पूरी सोभा विचरन बरषै होइ सीकर की बरनन रचना ऊपर है।—गोपाल। (ख) भये कबीर प्रगट मथुरा में। विचरन लगे सकल बसुधा में।—कबीर।

विचरना-क्रि० अ० [सं० विचरण] चलना फिरना। उ०—(क) जग महँ विचरि विचरि सब ठौरा। हरि विमुखन किय हरि की ओरा।—रघुराज। (ख) भोग समग्री जुरी अपार। विचरन लागे सुख संसार।—सूर। (ग) रामचरण धरि हृदय मुदित मन विचरत फिरत निशंक।—सूर।

विचरनि-संज्ञा स्त्री० [सं० विचरण] चलने फिरने या विचरण करने की क्रिया या भाव।

विचर्चिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सुश्रुत के अनुसार एक प्रकार का रोग जिसमें दाने निकलते और खुजली होती है। ब्योंची। (२) छोटी फुंसी।

विचल-वि० [सं०] जो बराबर हिलता रहता हो। (२) जो स्थिर न हो। अस्थिर। (३) डिगा हुआ। स्थान से हटा हुआ। (४) प्रतिज्ञा या संकल्प से हटा हुआ।

मुहा०—चल-विचल होना = मन का किसी एक बात पर न ठहरना। चित्त का चंचल होना।

विचलता-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) विचल होने की क्रिया या भाव। चंचलता। अस्थिरता। (२) घबराहट।

विचलना-क्रि० अ० [सं० विचलन] (१) अपने स्थान से हट जाना या चल पड़ना। (विशेषतः घबराहट या गड़बड़ी आदि के समय) उ०—(क) औ जोबन मैमंत बिधाँसा। विचला बिरह बिरह लै नासा।—जायसी। (ख) दल विचलत लखिकै भट सगरे। धरि धरि धनुष गदादिक अगरे।—गोपाल। (ग) जो सीता सतते बिचलै तौ श्रीपति काहि सँभारै। मोसे मुग्ध महापापी को कौन क्रोध करि तारै।—सूर। (२) विचलित होना। अधीर होना। घबराना। उ०—(क) जेंहि भजत विनायक इभवदन चलत समर विचलत प्रबल।—गोपाल। (ख) चलन अबै रन हेत तबै विचलत लरिकै पर।—गोपाल। (३) प्रतिज्ञा या संकल्प पर दृढ़ न रहना। बात पर जमा न रहना।

विचलाना-क्रि० स० [सं० विचलन] (१) इधर उधर हटाना या चलाना। विचलित करना। उ०—एहि विधान भरि जोर सकल यदु दल विचलायो।—गोपाल। (२) ऐसा काम करना जिससे कोई घबरा जाय या स्थिर न रह सके।

विचलित-वि० [सं०] (१) जो विचल हो गया हो। अस्थिर। चंचल। जैसे,—किसी चीज को देखकर मन विचलित होना। उ०—(क) उसकी बुद्धि ऐसी तीक्ष्ण थी कि कोई कैसा ही दुर्घट काम हो, परंतु वह कभी विचलित न होता।—कादंबरी। (ख) तेहि ते अब यह रूप दुरावहु। विचलित सकल लोक दुख पावहु।—सं० दि०। (२) प्रतिज्ञा या संकल्प से हटा हुआ। जो दृढ़ न रहा हो। [illegible]

विचार-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जो कुछ मन से सोचा जाय अथवा सोचकर निश्चित किया जाय। किसी विषय पर कुछ सोचने या सोचकर निश्चय करने की क्रिया। (२) वह बात जो मन में उत्पन्न हो। मन में उठनेवाली कोई बात। भावना। खयाल। जैसे,—अभी मेरे मन में विचार आया है कि चलकर उससे बातें करूँ। (३) राजा या न्यायाधीश आदि का वह कार्य्य, जिसमें वादी और प्रतिवादी के अभियोग और उत्तर आदि सुने जाते हैं; यह निश्चित किया जाता है कि किस पक्ष का कथन ठीक है; और तब कुछ निर्णय किया जाता है। मुकदमे की सुनवाई और फैसला। जैसे,—राजकर्मचारी दोनों को पकड़कर उनका विचार कराने के लिये उन्हें राजद्वार पर ले गया।

यौ०—विचारकर्त्ता। विचारस्थल। विचारसभा।

(४) विचरना। घूमना। (५) घुमाना। फिराना।

विचारक-संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० विचारिका] (१) वह जो विचार करता हो। विचार करनेवाला। उ०—इन बातों पर ध्यान करके विचारक पुरुष जानते हैं कि ऐसा वृत्तांत केवल कवीश्वर का कल्पित मात्र है।—मत परीक्षा। (२) फैसला करनेवाला। न्यायकर्त्ता। उ०—तब तक विरोधी विचारकों का होना बहुत ही ज़रूरी है।—स्वाधीनता। (३) नेता। पथ-प्रदर्शक। (४) गुप्तचर। जासूस।

विचारकर्त्ता-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जो किसी प्रकार का विचार करता हो। सोचने विचारनेवाला। (२) वह जो अभियोग आदि सुनकर उनका निर्णय करता हो। न्यायाधीश।

विचारज्ञ-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जो विचार करना जानता हो। (२) वह जो अभियोग आदि का निर्णय या निपटारा करता हो।

विचारण-संज्ञा पुं० [सं०] (१) विचार करने की क्रिया या भाव। (२) घूमना फिरना। (३) घुमाना। फिराना।

विचारणा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) विचार करने की क्रिया या भाव। उ०—क्योंकि केवल अपनी बुद्धि, या अपने ज्ञान या अपनी विचारणा पर आदमी का विश्वास जितना कम होता है, उतना ही संसार की प्रमाद-हीनता या निर्भ्रमता पर उसका विश्वास अधिक होता है।—स्वाधीनता। (२) घूमने फिरने या घुमाने फिराने की क्रिया या भाव।

विचारणीय-वि० [सं०] (१) जो विचार करने के योग्य हो। जिस पर कुछ विचार करने की आवश्यकता हो। उ०—अब यह अवश्यमेव विचारणीय है कि यदि ऐसा ही है तो बिना कारण किसी को दूषित करना और स्वयं उस पर दोषारोपण कर लोगों में उसकी योग्यता कम करने के लिये यत्न करना नीचता एवं अधमता है।—निबंध-माला-दर्श। (२) जो सिद्ध न हो। जिसे प्रमाणित करने की आवश्यकता हो। चिंत्य। संदिग्ध।

विचारना-क्रि० अ० [सं० विचार+ना (प्रत्य०)] (१) विचार करना। सोचना। समझना। गौर करना। उ०—(क) कृष्णदेव द्वारावति अहैं। मन में बहुत विचारत रहैं।—सबल (ख) फिर मैंने यह बात विचारी कि छिपने में तो कुछ अधिक अनर्थ नहीं होता।—अयोध्यासिंह। (ग) आजु अजादृशी धरा करौं विचारि कै।—गोपाल। (घ) [illegible] विरंचि विचार तहँ, नृपमणि मधुकर शाहि।—केशव। (२) पूछना। (३) ढूँढ़ना। पता लगाना। उ०—सुभ तेहि अवसर लावनता दस चारि नव तीनि पचीस सबै मति भारति पंगु भई जो निहारि विचारि फिरी उपमा पवै।—तुलसी।

विचारपति-संज्ञा पुं० [सं० विचार+पति] वह जो किसी न्यायालय में बैठकर मुकदमों आदि के फैसले करता हो। विचारक। न्यायाधीश।

विचारवान्-संज्ञा पुं० [सं०] वह जिसमें सोचने समझने व विचारने की अच्छी शक्ति हो। विचारशील।

विचारशक्ति-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह शक्ति जिसकी सहायता से विचार किया जाय। सोचने या भला बुरा पहचानने की शक्ति। उ०—मनुष्य जानता तो है कि मैं जीता हूँ और सोच विचार भी करता हूँ, परंतु प्राण और विचारशक्ति किससे बनाई गई।—गोलविनोद।

विचारशास्त्र-संज्ञा पुं० [सं०] मीमांसा शास्त्र।

विचारशील-संज्ञा पुं० [सं०] वह जिसमें किसी विषय को सोचने या विचारने की अच्छी शक्ति हो। विचारवान्। उ०—(क) जिसका सत्य विचारशील ज्ञान और अनंत ऐश्वर्य है, इससे उस परमात्मा का नाम ईश्वर है।—सत्यार्थ प्रकाश। (ख) विद्वान् बुद्धिमान और विचारशील पुरुषों के चरण जिस भूमि पर पड़ते हैं, वह तीर्थ बन जाती है।—शिवशंभु का चिट्ठा।

विचारशीलता-संज्ञा स्त्री० [सं०] विचारशील होने का भाव या धर्म। बुद्धिमत्ता। अक्लमंदी। उ०—आत्मकर्तव्य का मामूली अर्थ विचारशीलता या बुद्धिमानी है।—स्वाधीनता।

विचारस्थल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह स्थान जहाँ किसी विषय पर विचार होता हो। (२) न्यायालय। अदालत।

विचाराध्यक्ष-संज्ञा पुं० [सं०] वह जो न्याय-विभाग का प्रधान हो। प्रधान विचारक। प्रधान न्यायाधीश।

विचारालय-संज्ञा पुं० [सं०] वह स्थान जहाँ अभियोगों आदि का विचार होता हो। न्यायालय। कचहरी। उ०—बड़े आचार्य नीतिज्ञ धर्मशास्त्री लोग विचारालय में बैठे विचार कर रहे हैं।—कादंबरी।

विचारिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) प्राचीन काल की वह दासी जो घर में लगे हुए फूल पौधों की देख-भाल तथा इसी प्रकार के और काम करती थी। (२) वह स्त्री जो अभियोगों आदि का विचार करती हो।

विचारित-वि० [सं०] (१) जिस पर विचार किया जा चुका हो। जो सोचा समझा जा चुका हो। (२) जो अभी विचाराधीन हो। जिस पर विचार होने को हो।

विचारी-संज्ञा पुं० [सं० विचारिन्] (१) वह जिस पर चलने के लिये बहुत बड़े बड़े मार्ग बने हों (जैसे, पृथ्वी)। (२) जो इधर उधर चलता हो। विचरण करनेवाला। (३) वह जो विचार करता हो। विचार करनेवाला। (४) कबंध के एक पुत्र का नाम।

विचारु-संज्ञा पुं० [सं०] भागवत के अनुसार श्रीकृष्ण के एक पुत्र का नाम।

विचार्य्य-वि० [सं०] जो विचार करने के योग्य हो। जिस पर विचार करने की आवश्यकता हो। विचारणीय।

विचालन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) हटाना या चलाना। (२) नष्ट करना।

विचिंतन-संज्ञा पुं० [सं०] चिंता करना। सोचना।

विचिंतनीय-वि० [सं०] जो चिंता करने या सोचने योग्य हो।

विचिंता-संज्ञा स्त्री० [सं०] सोच-विचार।

विचिंत्य-वि० [सं०] (१) जो चिंतन करने या सोचने के योग्य हो। (२) जिसमें किसी प्रकार का संदेह हो। संदिग्ध।

विचि-संज्ञा स्त्री० [सं०] वीची। तरंग। लहर।

विचिकित्सा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) संदेह। अनिश्चय। शक। (२) वह संदेह जो किसी विषय में कुछ निश्चय करने के पहले उत्पन्न हो और जिसे दूर करके कुछ निश्चय किया जाय।

विचित-वि० [सं०] जिसका अन्वेषण किया जाय।

विचिति-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) विचार। सोचना। (२) अनुसंधान।

विचित्त-वि० [सं०] (१) अचेत। बेहोश। (२) जिसका चित्त ठिकाने न हो। जो अपना कर्त्तव्य न समझ सकता हो।

विचित्ति-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) बेहोशी। (२) वह अवस्था जिसमें मनुष्य का चित्त ठिकाने न रहे।

विचित्र-वि० [सं०] (१) जिसमें कई प्रकार के रंग हों। कई तरह के रंगों या वर्णोंवाला। (२) जिसमें किसी प्रकार की विलक्षणता हो। जिसमें किसी प्रकार की असाधारणता हो। विलक्षण। जैसे,—(क) ऐसा विचित्र पक्षी मैंने पहले नहीं देखा था। (ख) तुम भी बड़े विचित्र आदमी हो। (३) जिसके द्वारा मन में किसी प्रकार का आश्चर्य उत्पन्न हो। विस्मित या चकित करनेवाला। (४) सुंदर। खूबसूरत।

संज्ञा पुं० (१) पुराणानुसार रौच्य मनु के एक पुत्र का नाम। (२) साहित्य में एक प्रकार का अर्थालंकार जो उस समय होता है, जब किसी फल की सिद्धि के लिये किसी प्रकार का उलटा प्रयत्न करने का उल्लेख किया जाता है। उ०—(क) करिबेको उज्जल सुधा सों अभिराम देखो, मन मजवाम रँगती हैं श्याम रंग में। (ख) राम कहेउ रिस तजहु मुनीसा। कर कुठार आगे यह सीसा। —तुलसी। (ग) जीवन हित प्रानहिं तजत नवैं उँचाई हेत। सुख कारण दुख संग्रहैं बहुधा पुरुष सचेत। (घ) क्यों नहिं गंगा को सुमिरि दरस परस सुख लेत। जाके तट में मरत नर अमर होने के हेत।

विचित्रक-संज्ञा पुं० [सं०] भोजपत्र का वृक्ष।

वि० दे० "विचित्र"।

विचित्रता-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) रंग बिरंगे होने का भाव। (२) विलक्षण या अद्भुत होने का भाव।

विचित्रदेह-संज्ञा पुं० [सं०] मेघ। बादल।

विचित्रवीर्य्य-संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रवंशी राजा शांतनु के पुत्र का नाम जिनकी कथा महाभारत में है। जब राजा शांतनु ने अपने पुत्र भीष्म के आजन्म ब्रह्मचारी रहने की प्रतिज्ञा करने पर सत्यवती के साथ विवाह कर लिया था, तब उसी सत्यवती के गर्भ से उन्हें चित्रांगद और विचित्रवीर्य्य नाम के दो पुत्र उत्पन्न हुए थे। चित्रांगद तो छोटी अवस्था में ही एक गंधर्व द्वारा मारा गया था; पर विचित्रवीर्य्य ने बड़े होने पर राज्याधिकार पाया था। इसने काशिराज की अंबिका और अंबालिका नाम की दो कन्याओं के साथ विवाह किया था। परंतु थोड़े ही दिनों बाद निःसंतान अवस्था में ही इसकी मृत्यु हो गई। सत्यवती को विवाह से पहले ही पराशर से गर्भ रह चुका था और इससे द्वैपायन का जन्म हुआ था। विचित्रवीर्य्य के निस्संतान मर जाने पर सत्यवती ने अपने उसी पहले पुत्र द्वैपायन को बुलाया और उसे विचित्रवीर्य्य की विधवा स्त्रियों के साथ नियोग करने को कहा। तदनुसार द्वैपायन ने धृतराष्ट्र, पांडु और विदुर नाम के तीन पुत्र उत्पन्न किए थे।

विचित्रशाला-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्थान जहाँ अनेक प्रकार के विचित्र पदार्थों का संग्रह हो। अजायबघर।

विचित्रांग-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मोर। (२) बाघ।

विचित्रा-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक रागिनी जिसे कुछ लोग भैरव राग की पाँच स्त्रियों में से एक और कुछ लोग त्रिवन, काफी, गौरी और जयती के मेल से बनी हुई संकर रागिनी मानते हैं।

विचित्रित-वि० [सं०] जो कई तरह के रंगों आदि से बना हो। अनेक प्रकार के रंगों से चित्रित। रंग बिरंगा।

विचिलक-संज्ञा पुं० [सं०] सुश्रुत के अनुसार एक प्रकार का जहरीला कीड़ा।

विची-संज्ञा स्त्री० [सं०] वीची। तरंग। लहर।

विचेतन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जिसे चेतना न हो। संज्ञाहीन। अचेतन। बेहोश। (२) वह जिसे भले बुरे का ज्ञान न हो। विवेकहीन।

विचेता-संज्ञा पुं० [सं० विचेतस्] (१) जिसका चित्त ठिकाने न हो। घबराया हुआ। (२) बेहोश। (३) जिसे किसी विषय का विशेष ज्ञान हो। (४) दुष्ट। पाजी। (५) मूर्ख। बेवकूफ।

विचेष्ट-वि० [सं०] जिसमें किसी प्रकार की चेष्टा न हो। जो हिलता डोलता न हो।

विचेष्टन-संज्ञा पुं० [सं०] पीड़ा आदि से बुरी चेष्टा करना। इधर उधर लोटना। तड़पना।

विचेष्टा-संज्ञा स्त्री० [सं०] बुरी या खराब चेष्टा करना। मुँह बनाना या हाथ पैर पटकना।

विच्छंदक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) देव-मंदिर। देवालय। (२) प्रासाद। महल।

विच्छुमक-संज्ञा पुं० [सं०] सुसनी का साग।

विच्छर्दक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) देव-मंदिर। देवालय। (२) प्रासाद। महल।

विच्छर्दन-संज्ञा पुं० [सं०] कै। वमन।

विच्छर्दिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] वमन। कै।

विच्छर्दित-वि० [सं०] (१) जो वमन किया गया हो। कै किया हुआ। (२) जिसकी उपेक्षा की गई हो। जो तुच्छ समझा गया हो।

विच्छल-संज्ञा पुं० [सं०] बेंत की लता।

विच्छाय-संज्ञा पुं० [सं०] (१) पक्षियों की छाया। (२) मणि। (३) वह जिसकी छाया न पड़ती हो।

विशेष—प्रायः ऐसा माना जाता है कि देवताओं, दानवों, भूतों और प्रेतों आदि की छाया नहीं पड़ती।

वि० कांतिहीन। श्रीहीन।

विच्छित्ति-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) काटकर अलग या टुकड़े करना। (२) विच्छेद। अलगाव। (३) कमी। त्रुटि। (४) वेषभूषा आदि में होनेवाली लापरवाही या बेढंगापन। (५) रंगों आदि से शरीर को चित्रित करना। (६) कविता में, यति। (७) एक प्रकार का हार। (८) साहित्य में एक हाव जिसमें स्त्री थोड़े शृंगार से पुरुष को मोहित करने की चेष्टा करती है। उ०—बेंदी भाल, तमोल मुख, सीस सिलसिले बार। दृग आँजे, राजे खरी, साजे सहज सिंगार।

विच्छिन्न-वि० [सं०] (१) जो काट या छेदकर अलग कर दिया गया हो। जिसका अपने मूल अंग के साथ कोई संबंध न रह गया हो। विभक्त। (२) जुदा। अलग। उ०—भारतनिवासी इससे विच्छिन्न नहीं हुए वरंच और युक्त हो गये।—शिवशंभु का चिट्ठा। (३) जिसका विच्छेद हुआ हो। (४) जिसका अंत हो गया हो। (५) कुटिल।

विच्छेद-संज्ञा पुं० [सं०] (१) काट या छेदकर अलग करने की क्रिया। (२) क्रम का बीच से टूट जाना। सिलसिला न रह जाना। (३) किसी प्रकार अलग या टुकड़े टुकड़े करना। सब में से कुछ अलग करना। (४) नाश। उ०—जैसे इस समय बद्ध मुक्त जीव हैं, वैसे ही सर्वदा रहते हैं; अर्थात् विच्छेद बंध मुक्ति का कभी नहीं होता, किंतु बंध और मुक्ति सदा नहीं रहती।—दयानंद। (५) विरह। वियोग। (६) पुस्तक का प्रकरण या अध्याय। परिच्छेद। (७) बीच में पड़नेवाला खाली स्थान। अवकाश। (८) कविता में यति।

विच्छेदक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जो विच्छेद करता हो। (२) वह जो काट या छेदकर अलग करता हो। (३) विभाग करनेवाला। विभाजक।

विच्छेदन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) काट या छेदकर अलग करने की क्रिया। अलग करना। (२) नष्ट करना। बरबाद करना।

विच्छेदनीय-वि० [सं०] (१) जो काट या छेदकर अलग करने के योग्य हो। (२) जो विच्छेद करने के योग्य हो।

विच्छेदी-संज्ञा पुं० [सं० विच्छेदिन्] वह जो विच्छेद करता हो। विच्छेदन करनेवाला।

विच्छेद्य-वि० [सं०] जो विच्छेद करने के योग्य हो। जो काटे या विभाग करने के योग्य हो।

विच्युत-वि० [सं०] (१) जो कटकर अथवा और किसी प्रकार इधर उधर गिर पड़ा हो। (२) जो जीवित अंग में से काटकर निकाला गया हो। (वैद्यक) (३) जो अपने स्थान से गिर या हट गया हो। च्युत।

विच्युति संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) किसी पदार्थ का अपने स्थान से हट या गिर जाना। च्युत होना। (२) गर्भ का गिर जाना। गर्भ-पात।

विछलना*†-क्रि० अ० [हिं० फिसलना] (१) फिसलना। (२) विचलित होना। उ०—उछरयो उदधिराज विछरयो प्रभराज ध्यान की धमारि भूरि भूली भूतराज की।—रघुराज।

विछेद*—संज्ञा पुं० [सं० विच्छेद] प्रिय से अलग या दूर होना। वियोग। बिछोह। उ०—सूरश्याम के परम भावती पलक न होत विछेद।—सूर।

विछोई*†-संज्ञा पुं० [हिं० विछोह+ई (प्रत्य०)] वह जिसका अपने प्रिय से विच्छेद हो गया हो। वियोगी। उ०—फिर पियारा मीन विछोई। साथ न लाग आर गा सोई।—जायसी।

विछोह*†-संज्ञा पुं० [सं० विच्छेद] प्रिय से अलग या दूर होने

वियोग। उ०—जस विछोह जल मीन दुहेला। जल हति काढ़ अँगन महँ मेला।—जायसी।

विजंघ-वि० [सं०] (१) जिसकी जाँघें कट गई हों या न हों। (२) (गाड़ी) जिसमें धुरी और पहिए आदि न हों।

विजई॰†-संज्ञा पुं० दे० "विजयी"।

विजन-वि० [सं०] जिसमें अथवा जहाँ आदमी न हो। जनरहित। एकांत। निराला। उ०—तहाँ सचिव सब लेहिं सुधारी। भूपहि विजन भवन महँ डारी।—रघुराज।

संज्ञा पुं० [सं० व्यजन] हवा करने का पंखा। बीजन। उ०—(क) सुरछल चँवर विजन बहु करते। मृदु कहि राह परिस्रम हरते।—गोपाल। (ख) कोऊ विजन डोलावन लागे। कोउ सींचे जल अति अनुरागे।—रघुराज।

विजनता-संज्ञा स्त्री० [सं०] विजन होने का भाव। एकांत का भाव।

विजनन-संज्ञा पुं० [सं०] जनन करने की क्रिया। प्रसव।

विजना॰†-संज्ञा पुं० [सं० विजन] पंखा। उ०—इत एक सखी बतराय रही विजना इत एक डुलाय रही—संगीत शाकुंतल।

विजन्मा-संज्ञा पुं० [सं० विजन्मन्] (१) किसी स्त्री का उसके उपपति या यार से उत्पन्न पुत्र। जारज। दोगला। (२) मनु के अनुसार एक वर्णसंकर जाति। (३) वह जो जाति च्युत कर दिया गया हो।

विजन्या-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्त्री जो प्रसव करने को हो। गर्भवती। गर्भिणी।

विजयंत-संज्ञा पुं० [सं०] इंद्र का एक नाम।

विजयंतिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक योगिनी का नाम।

विजयंती-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) एक अप्सरा का नाम। (२) माही बूटी।

विजय-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) युद्ध या विवाद आदि में होनेवाली जीत। विपक्षी या शत्रु को दबाकर अपना प्रभुत्व या पक्ष स्थापित करना। जय। जीत। पराजय का उलटा। (२) एक प्रकार का छंद जो केशव के अनुसार सवैया का मत्तगयंद नामक भेद है। (३) भोजन करना। खाना। (पूरब)

विजयक-संज्ञा पुं० [सं०] वह जो विजय करता हो। सदा जीतनेवाला।

विजयकुंजर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) राजा की सवारी का हाथी। (२) लड़ाई के मैदान में जानेवाला हाथी।

विजयकेतु-संज्ञा पुं० [सं०] वह ध्वजा जो शत्रु पर विजय प्राप्त करके फहराई जाती है। विजय-पताका।

विजयच्छंद-संज्ञा पुं० [सं०] (१) पाँच सौ मोतियों का हार। (२) एक प्रकार का कल्पित हार जो दो हाथ लंबा और ५०४ लड़ियों का माना जाता है। कहते हैं कि ऐसा हार केवल देवता लोग पहनते हैं।

विजयडिंडिम-संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल का एक प्रकार का बड़ा ढोल जो युद्ध के समय बजाया जाता था।

विजयतीर्थ-संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार एक तीर्थ का नाम।

विजयदंड-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सैनिकों का वह समूह अथवा सेना का वह विभाग जो सदा विजयी रहता हो। (२) सेना का एक विशिष्ट विभाग जिस पर विजय विशेष रूप से निर्भर करती है।

विजयदशमी-संज्ञा स्त्री० दे० "विजयादशमी"।

विजयनंदन-संज्ञा पुं० [सं०] इक्ष्वाकु वंश के राजा जय का एक नाम।

विजयपताका-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सेना में की वह पताका जो जीत के समय फहराई जाती है। (२) विजय का सूचक कोई चिह्न।

विजयपर्पटी-संज्ञा स्त्री० [सं०] वैद्यक में एक प्रकार की औषध जो पारे, जयंती के पत्तों, रेंड़ की जड़ और अबरक आदि के योग से बनाई और संग्रहणी रोग में दी जाती है।

विजयपूर्णिमा-संज्ञा स्त्री० [सं०] विजयादशमी के उपरांत पड़नेवाली पूर्णिमा। आश्विन की पूर्णिमा।

विशेष—इस तिथि को बंगाल में लक्ष्मी का पूजन होता और उत्सव मनाया जाता है।

विजयभैरव-संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक में एक प्रकार का रस। इसमें हड़ का छिलका, चीता, इलायची, तज, सँभालू, पीपल, लोहसार आदि के योग से गंधक और पारे की कजली तैयार की जाती है। यह सब प्रकार के रोगों और दुर्बलता को दूर करनेवाला माना जाता है।

विजयभैरव तैल-संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक में एक प्रकार का तेल जो मालकंगनी, अजवायन, काले जीरे, मेथी और तिल को कोल्हू में पेरकर निकाला जाता है और जो सब प्रकार के वायु रोगों का नाशक माना जाता है।

विजयमर्दल-संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल का एक प्रकार का ढोल। डंका।

विजय यात्रा-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह यात्रा जो किसी पर किसी प्रकार की विजय प्राप्त करने के उद्देश्य से की जाय।

विजय रस-संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक में एक प्रकार का रस जो पारे, गंधक और सीसे के योग से बनता और प्रायः अजीर्ण रोग में दिया जाता है।

विजयलक्ष्मी-संज्ञा स्त्री० [सं०] विजय की अधिष्ठात्री देवी, जिसकी कृपा पर विजय निर्भर मानी जाती है।

विजयशील-संज्ञा पुं० [सं०] वह जो बराबर विजय करता हो। सदा जीतनेवाला।

विजयश्री-संज्ञा स्त्री० [सं०] विजय की अधिष्ठात्री देवी जिसकी कृपा पर विजय निर्भर मानी जाती है।

विजयसार-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का बड़ा वृक्ष जिसकी लकड़ी औजार बनाने और इमारत के काम में आती है। वि० दे० "विजैसार"।

विजया-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) पुराणानुसार पार्वती की एक सखी का नाम जो गौतम की कन्या थी। (२) दुर्गा। (३) यम की भार्या का नाम। (४) हरीतकी। हर्रे। (५) वच। (६) जयंती। (७) मजीठ। (८) एक प्रकार का शमी। (९) अग्निमंथ। (१०) भाँग। सिद्धि। भंग। उ०—(क) संसार के सब दुःखों और समस्त चिंताओं को जो शिवशंभु शर्म्मा दो चुल्लू बूटी पीकर भुला देता था, आज उसका उस प्यारी विजया पर भी मन नहीं है।—शिवशंभु का चिट्ठा। (ख) हम तो यह जानते हैं कि यदि किसी मंत्र, यंत्र से सर्पादि के डंक का कष्ट या कोई ज्वर, शूल आदि विकार दूर हो जाता हो, तो वह मंत्र संखिया, धतूरा, विजयादि के विषों पर पड़ा हुआ भी अवश्य फल करे।—श्रद्धाराम। (११) एक योगिनी का नाम। (१२) वर्तमान अवसर्पिणी के दूसरे अर्हत की माता का नाम। (१३) दक्ष की एक कन्या का नाम। (१४) श्रीकृष्ण की माला का नाम। (१५) इंद्र की पताका पर की एक कुमारी का नाम। (१६) प्राचीन काल का एक प्रकार का बड़ा खेमा। (१७) काश्मीर के एक पवित्र क्षेत्र का नाम। (१८) दस मात्राओं का एक मात्रिक छंद जिसमें अक्षरों का कोई नियम नहीं होता और जिसके अंत में रगण रखना बड़ा मधुर होता है। (१९) एक वर्णिक वृत्त जिसके प्रत्येक चरण में आठ वर्ण होते हैं। इसके अंत में लघु और गुरु अथवा नगण भी होता है। उ०—धरन वसु धारिए। चरण प्रति धारिए। लगन ना विसारिए। सुविजया सम्हारिए। (२०) दे० "विजयादशमी"।

विजया एकादशी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) आश्विन मास के शुक्ल पक्ष की एकादशी। (२) फाल्गुन मास के कृष्ण पक्ष की एकादशी।

विजया दशमी-संज्ञा स्त्री० [सं०] आश्विन मास के शुक्ल पक्ष की दशमी जो हिंदुओं का और विशेषतः क्षत्रियों का एक बहुत बड़ा त्यौहार है। प्राचीन काल में राजा लोग इसी दिन अपने शत्रुओं पर आक्रमण करने अथवा दिग्विजय आदि करने के लिये निकला करते थे। इस दिन देवी, घोड़े, हाथी और मुकुट आदि का पूजन तथा राजा के दर्शन करने का विधान है। इस दिन किसी नए कार्य का आरंभ करना बहुत ही शुभ समझा जाता है।

विजयानंद-संज्ञा पुं० [सं०] (१) संगीत में ताल के साठ मुख्य भेदों में से एक। (२) वैद्यक में एक प्रकार की औषध जो पारे और हरताल के योग से बनाई जाती और कुष्ठ रोग में दी जाती है।

विजयार्ध-संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार एक पर्वत का नाम।

विजया वटिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] वैद्यक में एक प्रकार की वटिका या गोली जो पारे और गंधक के योग से बनाई जाती है और जिसका व्यवहार संग्रहणी रोग में होता है।

विजया सप्तमी-संज्ञा स्त्री० [सं०] फलित ज्योतिष के अनुसार किसी मास के शुक्ल पक्ष की वह सप्तमी जो रविवार को पड़े। ऐसी तिथि को पुराणानुसार रामचंद्र जी का पूजन और दान करने का विधान है।

विजयी-संज्ञा पुं० [सं० विजयिन्] [स्त्री० विजयिनी] (१) वह जिसने विजय प्राप्त की हो। विजय करनेवाला। जीतनेवाला। उ०—(क) सीजर भी इसी धर्म के प्रभाव से ऐसी विजयी सेना संग होने पर भी काँप उठता है।—तोताराम। (ख) ऐरावत-विजयी द्विरद मत्त इसके हैं। मेघों से टक्कर मार खेलते हैं अब।—द्विवेदी। (ग) वीर विजयी यह कथा, राजा सुन दे कान। विजय होय सब जगत में, शत्रु होय क्षय जान।—सबल। (२) अर्जुन।

विजयेश-संज्ञा पुं० [सं०] शिव का एक नाम, जो विजय के देवता माने जाते हैं।

विजयोत्सव-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह उत्सव जो आश्विन मास के शुक्ल पक्ष की दशमी को होता है। विजया दशमी को होनेवाला उत्सव। (२) वह उत्सव जो किसी प्रकार की विजय प्राप्त करने पर होता है।

विजर-वि० [सं०] (१) जिसे जरा या बुढ़ापा न आता हो। (२) नवीन। नया।

विजरा-संज्ञा स्त्री० [सं०] ब्रह्मलोक की एक नदी का नाम।

विजल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) जल या वर्षा का अभाव। अनावृष्टि। सूखा। (२) जल का न होना। पानी का अभाव।

विजला-संज्ञा स्त्री० [सं०] चंचु या चेंच नाम का साग।

विजल्प-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सच, झूठ और सब तरह की ऊट पटाँग बातें करना। व्यर्थ की बहुत सी बकवाद। (२) किसी सज्जन या भले आदमी के संबंध में ईर्ष्यायुक्त बातें कहना।

विजाग-संज्ञा पुं० [सं० वियोग] बिछोह। वियोग। उ०—सूर अस्त हिमंचल लाका। विरह विजाग सौंह रथ हाँका।—जायसी।

विजागी-संज्ञा पुं० [हिं० विजोग] जिसका अपने प्रिय से बिछोह हुआ हो। वियोगी। उ०—तेहि के आग ओ ही विजागी। तीनौं लोक जरहिं तेहि लागी।—जायसी।

विजात-वि० [सं०] वर्णसंकर। दोगला। हरामजादा।

संज्ञा पुं० सखी छंद का एक भेद जिसके प्रत्येक चरण में ५-५-४ के विश्राम से १४ मात्राएँ और अंत में मगण या यगण होता है। इसकी पहली और आठवीं मात्राएँ लघु रहती हैं। इसके अंत में जगण, तगण या रगण नहीं होना चाहिए।

बिजाता-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) जारज लड़की। दोगली। (२) वह स्त्री जिसे हाल में संतान हुई हो। ज़च्चा।

बिजाति-वि० [सं०] भिन्न या दूसरी जाति का।

बिजातीय-वि० [सं०] जो दूसरी जाति का हो। एक अथवा अपनी जाति से भिन्न जाति का। उ०—(क) हम विजातीय कार्य्यकर्त्ताओं की बनाई हुई वस्तुओं को काम में लाते हैं। (ख) ब्रह्म से पृथक् कोई सजातीय विजातीय और स्वगत अवयवों के भेद न होने से एक ब्रह्म ही सिद्ध होता है।—दयानन्द।

बिजानु-संज्ञा पुं० [सं०] तलवार चलाने के ३२ हाथों में से एक हाथ या प्रकार। उ०—तिमि सव्य जानु विजानु संकोचित सुआहित चित्रको।—रघुराज।

बिजार-संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की मटिया भूमि जिसमें धान और कभी कभी चना भी बोया जाता है।

बिजारत-संज्ञा स्त्री० [अ०] वजीर का पद, धर्म्म या भाव। मंत्रित्व। उ०— वज़ीर की तनख़्वाह १ लाख रुपए की और विजारत के दस्तूर समेत २ लाख रुपए की सालाना है।—देवीप्रसाद।

बिजिगीषा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) वह इच्छा जिसके अनुसार मनुष्य यह चाहता है कि मुझे कोई यह न कह सके कि मैं अपना पेट पालने में असमर्थ हूँ। (२) विजय प्राप्त करने की इच्छा। (३) व्यवहार। (४) उत्कर्ष। उन्नति।

बिजिगीषु-वि० [सं०] विजय की इच्छा करनेवाला।

बिजिगीषुता-संज्ञा स्त्री० [सं०] विजिगीषु होने का भाव या धर्म्म।

बिज़िट-संज्ञा स्त्री० [अं०] (१) भेंट। मुलाकात। (२) डाक्टर आदि का रोगी के देखने के लिये आना। (३) वह धन जो डाक्टर आदि को आने के उपलक्ष में दिया जाय। डाक्टर की फीस।

बिज़िटर्स बुक-संज्ञा स्त्री० [अं०] किसी सार्वजनिक संस्था की वह पुस्तक जिसमें वहाँ के आने जानेवाले अपना नाम और कभी कभी उस संस्था के संबंध में अपनी सम्मति भी लिखते हैं।

बिज़िटिंग कार्ड-संज्ञा पुं० [अं०] एक प्रकार का बढ़िया छोटा कार्ड जिस पर लोग अपना नाम, पद और पता छपवा लेते हैं; और जब किसी से मिलने जाते हैं, तब उसे अपने आगमन की सूचना देने के लिये पहले यह कार्ड उसके पास भेज देते हैं।

बिजित-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जिस पर विजय प्राप्त की गई हो। वह जो जीत लिया गया हो। (२) वह प्रदेश जिस पर विजय प्राप्त की गई हो। जीता हुआ देश। (३) कोई प्रांत या प्रदेश। (४) फलित ज्योतिष में वह ग्रह जो युद्ध में किसी दूसरे ग्रह से बल में कम होता है।

बिजितात्मा-संज्ञा पुं० [सं० विजितात्मन्] शिव का एक नाम।

बिजितारि-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक राक्षस का नाम। (२) वह जिसने अपने शत्रु को जीत लिया हो।

बिजिताश्व-संज्ञा पुं० [सं०] राजा पृथु के एक पुत्र का नाम।

बिजिति-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) विजय। जीत। (२) प्राप्ति।

बिजित्वर-वि० [सं०] जीतनेवाला। विजेता।

बिजित्वरा-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक देवी का नाम।

बिजिल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) ऐसा भोजन जिसमें अधिक रस न हो। (२) एक प्रकार का दही।

बिजीप-वि० [सं०] जिसे जय प्राप्त करने की इच्छा हो।

बिजुल-संज्ञा पुं० [सं०] शाल्मलि कंद।

बिजुली-संज्ञा स्त्री० [सं०] पुराणानुसार एक देवी का नाम।
संज्ञा स्त्री० दे० "बिजली"।

बिजृंभण-संज्ञा पुं० [सं०] (१) किसी पदार्थ का मुँह खोलना। (२) जँभाई लेना। उबासी लेना। (३) धनुष की डोरी खींचना। (४) (भौं) सिकोड़ना।

बिजृंभा-संज्ञा स्त्री० [सं०] उबासी। जँभाई।

बिजेतव्य-वि० [सं०] जो विजित करने के योग्य हो। जो जीतने के योग्य हो।

बिजेता-संज्ञा पुं० [सं० विजेतृ] जिसने विजय पाई हो। जीतनेवाला। विजय करनेवाला।

बिजेय-वि० [सं०] जिस पर विजय प्राप्त की जाने को हो। जीता जाने के योग्य।

बिजैछा-संज्ञा स्त्री० दे० "विजय"। उ०—हारि जात नर करि उपाय। कपट न तिनको यह फँसाय। सोइ अफँसन पद कहाय। त्रैलोक्य विजै जौ रहा पाय।—देव स्वामी।

बिजैसार-संज्ञा पुं० [सं० विजयसार] एक प्रकार का बड़ा वृक्ष जो साल का एक भेद माना जाता है। यह पूर्वी भारत तथा बरमा में बहुत अधिकता से पाया जाता है। इसकी लकड़ी बहुत मजबूत होती है और खेती के औज़ार बनाने तथा इमारत आदि के काम में आती है।

बिजैसाल-संज्ञा पुं० दे० "बिजैसार"।

बिजोरा-संज्ञा पुं० दे० "बिजौरा"।
वि० [हिं० बि + ज़ोर = बल] निर्बल। कमज़ोर। उ०—जीव को सुख दुख तनु सँग होई। जोर बिजोर तन के संग सोई।—सूर।

बिजौरा-संज्ञा पुं० [सं० बीजपूर] एक वृक्ष का नाम जिसके फल

चरण में दो रगण होते हैं। इसे "जोहा" "विमोहा" और "विज्जोहा" भी कहते हैं।

विज्जल-संज्ञा पुं० [सं०] एक विशेष प्रकार का बाण या तीर।

विज्जुल†-संज्ञा स्त्री० [सं० विद्युत्] विद्युत्। बिजली। उ०—ससि विज्जु मनहुँ दोउ दिसि बसत उडगन को वसतर धरे।—गोपाल।

विज्जुल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) त्वचा। छिलका। (२) दारचीनी।

विज्जुलता⊛-संज्ञा स्त्री० [सं० विद्युल्लता] विद्युत्। बिजली। उ०—कर लीने मनि रंगि रंगि रहि फैलि अथोरी। विज्जुलता यदि मनहुँ रची विसुकरमा डोरी।—गोपालचंद्र।

विज्जुलिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] जतुका या पहाड़ी नाम की लता।

विज्जोहा-संज्ञा पुं० दे० "विजोहा"।

विज्ञ-वि० [सं०] (१) जो जानता हो। जानकार। (२) बुद्धिमान्। समझदार। (३) विद्वान्। पंडित।

विज्ञता-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) विज्ञ होने का भाव। जानकारी। (२) बुद्धिमत्ता। (३) पांडित्य। विद्वत्ता।

विज्ञत्व-संज्ञा पुं० दे० "विज्ञता"।

विज्ञप्त-वि० [सं०] जो बतलाया या सूचित किया गया हो। जतलाया हुआ।

विज्ञप्ति-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) जतलाने या सूचित करने की क्रिया। (२) विज्ञापन। इश्तहार।

विज्ञप्तिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] प्रार्थना। निवेदन।

विज्ञबुद्धि-संज्ञा स्त्री० [सं०] जटामासी।

विज्ञात-वि० [सं०] (१) जाना या समझा हुआ। (२) प्रसिद्ध। मशहूर।

विज्ञातव्य-वि० [सं०] जो जानने या समझने के योग्य हो।

विज्ञाता-संज्ञा पुं० [सं० विज्ञातृ] वह जो जानता या समझता हो।

विज्ञाति-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) ज्ञान। समझ। (२) जानकारी। (३) एक प्रकार की देवयोनि जिसे गण भी कहते हैं। (४) एक कल्प का नाम।

विज्ञान-संज्ञा पुं० [सं०] (१) ज्ञान।। जानकारी। (२) किसी विशिष्ट विषय के तत्वों या सिद्धांतों आदि का विशेष रूप से प्राप्त किया हुआ ज्ञान जो ठीक क्रम से एकत्र या संगृहीत हो। किसी विषय की जानी हुई बातों का ठीक तरह से किया हुआ संग्रह जो एक अलग शास्त्र के रूप में हो। शास्त्र। जैसे,—पदार्थ विज्ञान, राजनीति विज्ञान, शरीर विज्ञान, ज्योतिर्विज्ञान, समाज विज्ञान आदि। (३) किसी विषय का अनुभव-जन्य, पूरा और अच्छा ज्ञान। कार्य कुशलता। (४) कर्म। (५) माया या अविद्या नाम की वृत्ति। (६) बौद्धों के अनुसार आत्मा के स्वरूप का ज्ञान। आत्मा का अनुभव। (७) ब्रह्म। (८) आत्मा। (९) आकाश। (१०) निश्चयात्मिका बुद्धि। (११) मोक्ष।

विज्ञानकोश-संज्ञा पुं० [सं०] वेदांत के अनुसार ज्ञानेंद्रियों और बुद्धि। विज्ञानमय कोश। वि० दे० "कोष"।

विज्ञानता-संज्ञा स्त्री० [सं०] विज्ञान का भाव या धर्म।

विज्ञानपति-संज्ञा पुं० [सं०] वह जो परम ज्ञानी हो।

विज्ञानपाद-संज्ञा पुं० [सं०] वेदव्यास का एक नाम।

विज्ञानमय कोष-संज्ञा पुं० [सं०] ज्ञानेंद्रियों और बुद्धि का समूह। वि० दे० "कोष"।

विज्ञानमातृक-संज्ञा पुं० [सं०] बुद्ध का एक नाम।

विज्ञानवाद-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह वाद या सिद्धांत जिसमें ब्रह्म और आत्मा की एकता प्रतिपादित हो। (२) वह वाद या सिद्धांत जिसमें केवल आधुनिक विज्ञान की बातें ही प्रतिपादित या मान्य की गई हों।

विज्ञानवादी-संज्ञा पुं० [सं० विज्ञानवादिन्] (१) वह जो योग के मार्ग का अनुसरण करता हो। योगी। (२) वह जो आधुनिक विज्ञान-शास्त्र का पक्षपाती हो। विज्ञान के मत का समर्थन करनेवाला।

विज्ञानिक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) जिसे ज्ञान हो। (२) विज्ञ। पंडित। (३) दे० "वैज्ञानिक"।

विज्ञानिता-संज्ञा स्त्री० [सं०] विज्ञानी का भाव या धर्म।

विज्ञानी-संज्ञा पुं० [सं० विज्ञानिन्] (१) वह जिसे किसी विषय का अच्छा ज्ञान हो। (२) वह जो किसी विज्ञान का अच्छा वेत्ता हो। वैज्ञानिक। (३) वह जिसे आत्मा तथा ईश्वर आदि के स्वरूप के संबंध में विशेष ज्ञान हो।

विज्ञानीय-वि० [सं०] विज्ञान-संबंधी। वैज्ञानिक।

विज्ञापक-संज्ञा पुं० [सं०] वह जो विज्ञापन करता हो। समझाने, बतलाने या जतलानेवाला।

विज्ञापन-संज्ञा पुं० [सं०] [वि० विज्ञापनीय] (१) किसी बात को बतलाने या जतलाने की क्रिया। जानकारी कराना। सूचना देना। (२) वह पत्र या सूचना आदि जिसके द्वारा कोई बात लोगों को बतलाई जाय। इश्तहार।

विज्ञापना-संज्ञा स्त्री० [सं०] विज्ञात करना। जतलाना। बतलाना।

विज्ञापनीय-वि० [सं०] जो बतलाने या जतलाने के योग्य हो। सूचित करने के योग्य।

विज्ञापित-वि० [सं०] (१) जो बतलाया जा चुका हो। जिसकी सूचना दी जा चुकी हो। (२) जिसका इश्तहार दिया जा चुका हो।

विज्ञापी-वि० [सं० विज्ञापिन्] जतलाने या बतलानेवाला। सूचना देनेवाला।

विज्ञाप्ति-संज्ञा स्त्री० दे० "विज्ञप्ति"।

विज्ञाप्य-वि० [सं०] बतलाने योग्य । सूचित करने योग्य ।

विज्ञेय-वि० [सं०] जो जानने या समझने के योग्य हो ।

विज्वर-वि० [सं०] (१) जिसका ज्वर उतर गया हो । जिसका बुखार छूट गया हो । (२) जिसे सब प्रकार की चिंताओं से छुटकारा मिल गया हो । निश्चिंत । बेफिक्र । (३) जो सब प्रकार के क्लेशों आदि से मुक्त हो । जिसे किसी प्रकार का शोक या संताप न हो ।

विटंक-वि० [सं०] सुंदर । मनोहर ।
संज्ञा पुं० (१) सब से ऊँचा सिरा या स्थान । (२) कबूतर का दरबा । काबुक । (३) बड़ी कड़ी ।

विट-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जिसमें काम-वासना बहुत अधिक हो । कामुक । लंपट । (२) वह जो किसी वेश्या का यार हो या जिसने किसी वेश्या को रख लिया हो । (३) धूर्त । चालाक । (४) साहित्य में एक प्रकार का नायक । साहित्य-दर्पण के अनुसार जो व्यक्ति विषय-भोग में अपनी सारी संपत्ति नष्ट कर चुका हो, भारी धूर्त हो, फल या परिणाम का एक ही अंग देखता हो, वेष-भूषा और बातें बनाने में बहुत चतुर हो, वह विट कहलाता है । (५) एक पर्वत का नाम । (६) एक प्रकार का खैर जिसे दुर्गंध खैर भी कहते हैं । (७) नारंगी का वृक्ष । (८) चूहा । (९) साँचर नमक ।

विटक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) प्राचीन काल की एक जाति का नाम । (२) पुराणानुसार एक प्राचीन देश जो नर्मदा नदी के तट पर था । (३) घोड़ा ।

विटकारिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का पक्षी ।

विटक्रिमि-संज्ञा पुं० [सं०] चुना या चुनचुना नाम का कीड़ा जो बच्चों की गुदा में उत्पन्न होता है ।

विटप-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वृक्ष या लता की नई शाखा । कोंपल । (२) छतनार पेड़ । झाड़ी । (३) वृक्ष । पेड़ । (४) आदित्य-पत्र ।

विटपक-संज्ञा पुं० [सं०] दुष्ट । पाजी ।

विटपी-संज्ञा पुं० [सं० विटपिन्] (१) जिसमें नई शाखाएँ या कोंपलें निकली हों । (२) वृक्ष । पेड़ । (३) अंजीर का पेड़ । (४) वट वृक्ष । बड़ का पेड़ ।

विटपीमृग-संज्ञा पुं० [सं०] शाखामृग । बंदर ।

विटप्रिय-संज्ञा पुं० [सं०] मोगरा नामक फूल या उसका पौधा ।

विटभृत-संज्ञा पुं० [सं०] महाभारत के अनुसार एक असुर का नाम ।

विटमाक्षिक-संज्ञा पुं० [सं०] सोनामक्खी नाम का खनिज द्रव्य ।

विटलवण-संज्ञा पुं० [सं०] साँचर नमक ।

विटवल्लभा-संज्ञा स्त्री० [सं०] पाटली वृक्ष ।

विटि-संज्ञा स्त्री० [सं०] लाल चंदन ।

विट्-संज्ञा पुं० [सं०] साँचर नमक ।

विट्क-संज्ञा पुं० [सं०] विष । जहर ।

विट्घात-संज्ञा पुं० [सं०] मूत्राघात नामक रोग ।

विट्चर-संज्ञा पुं० [सं०] गाँवों में रहनेवाला सूअर ।

विट्ठल-संज्ञा पुं० [?] दक्षिण भारत की विष्णु की एक मूर्त्ति का नाम ।

विट्पति-संज्ञा पुं० [सं०] जामाता । दामाद ।

विट्प्रिय-संज्ञा पुं० [सं०] शिशुमार या सूँस नामक जल-जंतु ।

विट्शूल-संज्ञा पुं० [सं०] सुश्रुत के अनुसार एक प्रकार का शूल रोग ।

विट्संग-संज्ञा पुं० [सं०] मलरोध । कब्ज़ियत ।

विट्सारिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का पक्षी ।

विठल-संज्ञा पुं० दे० "विट्ठल" ।

विडंग-संज्ञा पुं० [सं०] वायविडंग ।

विडंबक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) ठीक ठीक अनुकरण करनेवाला । पूरी पूरी नकल करनेवाला । (२) अनुकरण करके चिढ़ाने या अपमान करनेवाला । (३) निंदा या परिहास करनेवाला ।

विडंबन--संज्ञा पुं० [सं०] (१) किसी के रंग ढंग या चाल ढाल आदि का ठीक ठीक अनुकरण करना । पूरी पूरी नकल करना । (२) चिढ़ाने या अपमानित करने के लिये नकल करना । भाँड़पन करना । (३) निंदा या उपहास करना ।

विडंबना-संज्ञा स्त्री० [सं०] [वि० विडंबनीय, विडंबित] (१) अनुकरण करना । नकल उतारना । (२) किसी को चिढ़ाने या बनाने के लिये उसकी नकल उतारना । (३) हँसी उड़ाना । मज़ाक करना । (४) डाँटना डपटना । फट-कारना ।

विडंबनीय-वि० [सं०] (१) जो अनुकरण करने के योग्य हो । नकल उतारने लायक । (२) चिढ़ाने या उपहास करने के योग्य ।

विडंबी-संज्ञा पुं० [सं० विडंबिन्] वह जो किसी प्रकार की विडंबना करता हो । विडंबना करनेवाला ।

विड्-संज्ञा पुं० [सं०] विट लवण ।

विड्गंध-संज्ञा पुं० [सं०] विट लवण । साँचर नमक ।

विडरना‡-क्रि० अ० [सं० विट्, हिं० डरना या सं० विरल] (१) इधर उधर होना । तितर बितर होना । उ०—(क) बिडरत विडुकि जानि रथ ते मृग जनु ससंकि ससि लंगर सारे ।—सूर । (ख) जानत नहीं कौन गुन यहि तन जाते तन बिडरे ।—सूर । (२) भागना । दौड़ना । उ०—टूटे गुनह ताल की जोरी । भजे विडरि बालक चहुँ ओरी ।—छत्रप्रकाश ।

विडराना‡-क्रि० स० दे० "विडारना" ।

विड़ारक-संज्ञा पुं० [सं०] बिडाल । बिल्ली ।

विडारना-क्रि० स० [हिं० बिडरना का स० रूप] (१) तितर बितर करना। इधर उधर करना। छितराना। उ०—हारे लै बिडारे जोइ पति पै पुकारे कहो यजमारे मति जावो हरि गाइये।—नाभादास। (२) नष्ट करना। उ०—विश्वक्सेन रूप हरि लैंगे कीन्हो शिव को हेत। असुर मारि सब सुरत बिडारे दीन्हें रुद्र निकेत।—सूर। (३) भगाना। दौड़ाना।

विड़ाल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) आँख का पिंड। (२) आँख की एक प्रकार की दवा जो जेठी मधु, गेरू, दारु हल्दी और रसांजन आदि से बनती है और जिसका आँख के चारो ओर लेप किया जाता है। (३) आँख के चारों ओर किया जानेवाला कोई लेप। (४) बिल्ली। (५) गंध मार्जार। मुश्क बिलाव। (६) हरताल।

विड़ालक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) हरताल। (२) बिल्ली।

विड़ालपद-संज्ञा पुं० [सं०] दो तोले का परिमाण।

विड़ालाक्ष-संज्ञा पुं० [सं०] महाभारत के अनुसार एक राजा का नाम जो महाराज युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में गया था।

विड़ाली-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) विदारी कंद। (२) बिल्ली।

विड़ीन-संज्ञा पुं० [सं०] पक्षियों की उड़ान का एक प्रकार।

विड़ौजा-संज्ञा पुं० [सं० विडौजस्] इंद्र का एक नाम।

विड्गंध-संज्ञा पुं० [सं०] विट लवण।

विड्ग्रह-संज्ञा पुं० [सं०] कोष्ठबद्धता। कब्जियत। मलरोध।

विड्घात-संज्ञा पुं० [सं०] मलमूत्र का अवरोध। पेशाब और पाखाना रुकना।

विड्ज-संज्ञा पुं० [सं०] विष्ठा आदि से उत्पन्न होनेवाले कीड़े मकोड़े।

विड्बंध-संज्ञा पुं० [सं०] मल का अवरोध। कब्जियत।

विड्भंग-संज्ञा पुं० [सं०] बहुत दस्त होना। पेट चलना।

विड्भेद-संज्ञा पुं० [सं०] बहुत दस्त होना। पेट चलना।

विड्भेदी-संज्ञा पुं० [सं० विड्भेदिन] वह ओषधि या द्रव्य जो विरेचक हो। दस्तावर चीज या दवा।

विड्भोजी-संज्ञा पुं० [सं० विड्भोजिन्] वह जो विष्ठा खाता हो।

विड्लवण-संज्ञा पुं० [सं०] विट लवण। साँचर नमक।

विड्वराह-संज्ञा पुं० [सं०] गाँवों में रहनेवाला सूअर।

विड्विघात-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का मूत्रघात रोग।

वितंड-संज्ञा पुं० [सं०] हाथी।

वितंडा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) दूसरे के पक्ष को दबाते हुए अपने मत की स्थापना करना। (२) व्यर्थ का झगड़ा या कहा-सुनी। (३) कपूर। (४) दर्वी। (५) शिलारस।

वितंस-संज्ञा पुं० [सं० वि+तंत] वह बाजा जिसमें तार न लगे हों। बिना तार का बाजा। उ०—संत वितंत सुभ घन ... सबहि नाद होय घनआल।—जायसी।

वितंस-संज्ञा पुं० [सं०] पक्षियों अथवा छोटे छोटे पशुओं आदि को फँसाने का जाल।

वितक्ष-वि० [सं० विद्] (१) जाननेवाला। ज्ञाता। उ०—सब शास्त्र विसारद भद्र वित विदित बली मति नागर किय।—गोपाल। (२) चतुर। निपुण। उ०—रन सु मान रद ... नृप हस्यो कादि मगध महराज को।—गोपाल।

वितर्णी-संज्ञा स्त्री० [सं०] छोटी अरणी।

वितत-वि० [सं०] विस्तृत। फैला हुआ।

संज्ञा पुं० [सं०] वीणा अथवा उससे मिलता जुलता हुआ और कोई बाजा।

विततानाक्ष†-क्रि० अ० [सं० व्यथा] व्याकुल होना। बेचैन होना। उ०—देखे आइ तहाँ हरि नाहीं, बिरहनि जहाँ तहाँ वितितानी।—सूर।

वितति-संज्ञा स्त्री० [सं०] विस्तार। फैलाव।

वितथ-वि० [सं०] [संज्ञा वितथता] (१) मिथ्या। झूठ। (२) व्यर्थ। निरर्थक। बेफायदा।

वितथता-संज्ञा स्त्री० [सं०] वितथ का भाव। मिथ्यात्व।

वितथ्य-वि० [सं०] मिथ्या। असत्य। झूठ।

वितद्रु-संज्ञा पुं० [सं०] पंजाब की वितस्ता या झेलम नदी का एक नाम।

वितनु-वि० [सं०] जो बहुत ही सूक्ष्म हो।

वितपन्नक्ष-संज्ञा पुं० [सं० व्युत्पन्न] वह जो किसी काम में कुशल हो। व्युत्पन्न। दक्ष। प्रवीण। उ०—(क) सुत संजु विनपन्न कोक गुन ताते हरि हरि ध्यावत।—सूर। (ख) संगहि रहति सदा पिय प्यारी कीड़त काति बराबर। कोककला वितपन्न भई हौ कान्हरूप तनु आधा।—सूर।

वि० घबराया हुआ। व्याकुल। उ०—उनहिं मिले बितपन्न भई अब ये दिन गए भुलाइ।—सूर।

वितमस्क-वि० [सं०] (१) जिसमें अंधकार न हो। (२) जिसमें तमोगुण न हो।

वितरक-संज्ञा पुं० [सं० वितरण] वितरण करनेवाला। बाँटनेवाला। उ०—सुनु धुनि पूरत ताते नूपुर वितरक अर्थ सुखदन हैं। देव स्वामी।

वितरण-संज्ञा पुं० [सं०] (१) दान करना। अर्पण करना। देना। (२) बाँटना।

वितरनक्ष-संज्ञा पुं० [सं० वितरण] (१) बाँटनेवाला। वितरण करनेवाला। तारन तरन दुति भवतारन वितरन सुख ... रनकरन।—गोपाल। (२) दे० "वितरण"। उ०—बहु दिन प्रभु तहँ कियो निवासा। वितरन बैभव बृंद हुलासा।—रघुराज।

वितरनाक्ष-क्रि० स० [सं० वितरण] वितरण करना। बाँटना। उ०—(क) ये अद्भुत ... भई उदारा। वितरहिं सब को ...

अपारा ।—रघुराज । (ख) सुवरण तनु तिनके किये, सुवरण वितरि अपार ।—रघुराज ।

वितरिक्त॰-अव्य॰ [सं॰ व्यतिरिक्त] अतिरिक्त । सिवा । उ॰—हरि वितरिक्त जाहि शिर नावै । मूरति तुरत फूटि सो जावै—रघुराज ।

वितरित-वि॰ [सं॰] जो वितरण किया गया हो । बाँटा हुआ ।

वितरेक॰-क्रि॰ वि॰ [सं॰ व्यतिरिक्त] छोड़कर । सिवा । उ॰—वितरेक तोहि निर्दय महाखल आनु कहु को सहि सकै ।—तुलसी ।

वितर्क-संज्ञा पुं॰ [सं॰] (१) एक तर्क के उपरांत होनेवाला दूसरा तर्क । (२) संदेह । शक । (३) अनुमान । (४) एक प्रकार का अर्थालंकार जिसमें किसी प्रकार के संदेह या वितर्क का उल्लेख होता है और कुछ निर्णय नहीं होता ।

वितर्क्य-वि॰ [सं॰] (१) जिसमें किसी प्रकार के वितर्क या संदेह का स्थान हो । (२) जो देखने में बहुत विलक्षण हो ।

वितर्दि, वितर्दिका-संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] वेदी । मंच ।

वितल-संज्ञा पुं॰ [सं॰] पुराणानुसार सात पातालों में से तीसरा पाताल । देवी भागवत के अनुसार यही दूसरा पाताल है । कहते हैं कि इस पाताल में शिव जी "हाटकेश्वर" नाम से अपने पार्षदों के साथ रहते हैं । इनके वीर्य्य से हाटकी नाम की नदी बहती है जिसे हुताशन पीते हैं । उन्हीं हुताशन के मुँह से जब फुफकार निकलता है, तब उससे हाटक नामक सोना निकलता है ।

वितलिन-संज्ञा पुं॰ [सं॰ वितलिन्] वितल लोक को धारण करनेवाले, बलदेव । उ॰—बलिनं सुशलिनं देव हलिनं वितलिनं तलिनं स्वयं ।—गर्गसंहिता ।

वितस्ता-संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] पंजाब की झेलम नामक नदी का प्राचीन नाम ।

वितस्ताख्य-संज्ञा पुं॰ [सं॰] महाभारत के अनुसार तक्षक नाग का निवास-स्थान ।

वितस्ताद्रि-संज्ञा पुं॰ [सं॰] राजतरंगिणी के अनुसार एक पर्वत का नाम ।

वितस्ति-संज्ञा पुं॰ [सं॰] (१) उतना परिमाण जितना हाथ के अँगूठे और उँगली को पूरा पूरा फैलाने से होता है । बालिश्त । बित्ता । (२) बारह अंगुल का परिमाण ।

वितान-संज्ञा पुं॰ [सं॰] (१) यज्ञ । (२) विस्तार । फैलाव । (३) बड़ा चँदोआ या खेमा । (४) समूह । संघ । जमाव । (५) सुश्रुत के अनुसार एक प्रकार का बंधन जो सिर पर के आघात या घाव आदि पर बाँधा जाता है । (६) अवसर । अवकाश । (७) पूजा । नफरत । (८) शून्य । खाली स्थान । (९) अग्निहोत्र आदि कार्य । (१०) एक प्रकार का छंद । (११) एक वृत्त का नाम जिसके प्रत्येक चरण में एक सगण, एक भगण और दो गुरु होते हैं । उ॰—शुभ गंगा जल तेरो । सुखदाता जन केरो । नसिकै भौ-दुख नाना । जस को तान विताना ।—जगन्नाथ ।

वि॰ (१) मंद । धीमा । (२) शून्य । खाली ।

वितानक-संज्ञा पुं॰ [सं॰] धनिया ।

संज्ञा पुं॰ [सं॰] (१) बड़ा चँदोआ या खेमा । (२) समूह । जमावड़ा । (३) धन संपत्ति ।

वितानना॰†-क्रि॰ स॰ [सं॰ वितान] (१) शामियाना आदि तानना । (२) कोई चीज़ तानना । उ॰—मनी हीन छीन फनी, मीन वारि सों विहीन ह्वै कै मलीन मति दीनता वितानई ।—रसकुसुमाकर ।

वितानमूल-संज्ञा पुं॰ [सं॰] खस । उशीर ।

वितानमूलक-संज्ञा पुं॰ [सं॰] उशीर । गाडर । खस ।

वितामस-संज्ञा पुं॰ [सं॰] प्रकाश । उजाला ।

वि॰ जिसमें तमोगुण न हो ।

वितार-संज्ञा पुं॰ [सं॰] बृहत्संहिता के अनुसार एक प्रकार का केतु या पुच्छल तारा ।

वितारक-संज्ञा पुं॰ [सं॰] विधारा नामक जड़ी ।

वितिक्रम॰-संज्ञा पुं॰ [सं॰ व्यतिक्रम] क्रम का भंग होना । व्यतिक्रम । गड़बड़ी । उ॰—प्रीति परीक्षा तिहुन की बैर वितिक्रम जानि ।—तुलसी ।

वितिहोतर-संज्ञा पुं॰ [सं॰ वीतिहोत्र] अग्नि । (डिं॰)

वितीत॰†-वि॰ दे॰ "व्यतीत" । उ॰—आम मंजरी सँग सनेह सों कछु दिन करत वितीत ।—संगीत शाकुंतल ।

वितीपात-संज्ञा पुं॰ दे॰ "व्यतीपात" ।

वितीपाती †-संज्ञा पुं॰ [सं॰ व्यतीपात + ई॰ (प्रत्य॰)] वह जो बहुत अधिक उपद्रव करता हो । पाजी । शरारती । (लड़का)

वितीर्ण-संज्ञा पुं॰ दे॰ "वितरण" ।

वि॰ दे॰ "उत्तीर्ण" ।

वितुंड-संज्ञा पुं॰ [सं॰ वि + तुंड] हाथी । उ॰—(क) भारी झुंड के वितुंड चिग्र्घ रुंड मुंड तुंड मुंड धरे कुंड मुंड कुंडल करे करे ।—गोपाल । (ख) गईं वसिष्ठ आदिक मुनिराई । चढ़े वितुंडन आनँद छाई ।—रघुराज ।

वितु॰†-संज्ञा पुं॰ [सं॰ वित्त] धन-संपत्ति । उ॰—दै वितु कै हित कै सब छवि वितु बिधि बिस हाथ सँवारे ।—तुलसी ।

वितुद-संज्ञा पुं॰ [सं॰] नीला थोथा । तूतिया ।

वितुर-संज्ञा पुं॰ [सं॰] वैदिक साहित्य के अनुसार एक प्रकार की भूतयोनि ।

वितुन्न-संज्ञा पुं॰ [सं॰] (१) तितिवारी या सुसना नामक साग । (२) सेवार ।

वितुन्नक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) धनिया। (२) तूतिया। (३) कैवर्त्तमुस्तक। (४) भुइँ आँवला।
वितुन्नका-संज्ञा स्त्री० [सं०] भुइँ आँवला।
वितुन्नभूता-संज्ञा स्त्री० [सं०] भुइँ आँवला।
वितुन्ना-संज्ञा स्त्री० [सं०] भुइँ आँवला।
वितुष्ट-वि० [सं०] जो संतुष्ट न हो। असंतुष्ट।
वितृण-संज्ञा पुं० [सं०] वह स्थान जहाँ तृण या घास आदि न होती हो।
वितृप्त-वि० [सं०] जो तृप्त या संतुष्ट न हुआ हो।
वितृप्तता-संज्ञा स्त्री० [सं०] वितृप्त या असंतुष्ट होने का भाव।
वितृष-संज्ञा पुं० [सं०] वह जिसे किसी प्रकार की तृष्णा न रह गई हो। तृष्णा से रहित।
वितृष्ण-संज्ञा पुं० [सं०] वह जिसे किसी प्रकार की तृष्णा न हो। निस्पृह। उदासीन।
वितृष्णा-संज्ञा स्त्री० [सं०] तृष्णा का अभाव। तृष्णा का न होना।
वित्त-संज्ञा पुं० [सं०] धन। संपत्ति।
वि० (१) सोचा या विचारा हुआ। (२) जाना या समझा हुआ। (३) मिला या पाया हुआ। (४) विख्यात। प्रसिद्ध। मशहूर।
वित्तकोश-संज्ञा पुं० [सं०] रुपए पैसे आदि रखने की थैली।
वित्तगोप्त-संज्ञा पुं० [सं०] कुबेर के भंडारी का नाम।
वित्तदा-संज्ञा स्त्री० [सं०] कार्त्तिकेय की एक मातृका का नाम।
वित्तनाथ-संज्ञा पुं० [सं०] कुबेर का एक नाम।
वित्तप-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जो धन की रक्षा करता हो। भंडारी। (२) कुबेर का एक नाम।
वित्तपति-संज्ञा पुं० [सं०] कुबेर का एक नाम। उ०—लख्यो वित्तपति चित्त महँ, कहि धनि भनुज हमार।—रघुराज।
वित्तपाल-संज्ञा पुं० [सं०] कुबेर का एक नाम।
वित्तपुरी-संज्ञा स्त्री० [सं०] कुबेर की पुरी, अलका।
वित्तहीन-संज्ञा पुं० [सं०] धनहीन। दरिद्र। गरीब। उ०—सब परिवार मेरो याही लागि राजाजू, हौं दीन वित्तहीन कैसे दूसरी गढ़ाइहौं।—तुलसी।
वित्ति-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) विचार। (२) लाभ। प्राप्ति। (३) ज्ञान। (४) संभावना।
वित्तेश, वित्तेश्वर-संज्ञा पुं० [सं०] कुबेर।
वित्रप-वि० [सं०] निर्लज्ज। बेहया। बेशरम।
वित्रास-संज्ञा पुं० [सं०] भय। डर।
वित्व-संज्ञा पुं० [सं०] बेल होने का भाव।
वित्सन-संज्ञा पुं० [सं०] बैल।
विथकना॰†-क्रि॰ अ० [हिं० थकना] (१) थकना। शिथिल होना। उ०—मुनि किन्नर सँवर्व सराहत विथके हैं विबुध विमान।—तुलसी। (२) मोहित या चकित होना, चुप हो जाना। उ०—तुलसी मुनि ग्रामवधू विथकी पुलकी तन औ चले लोचन च्वै।—तुलसी।
विथकित॰-वि० [हिं० विथकना] (१) थका हुआ। शिथिल। उ०—तुलसी भइ मति विथकित करि अनुमान। राम लखन के रूप न देखेउ आन।—तुलसी। (२) जो आश्चर्य या मोह आदि के कारण कुछ न बोल सकता हो। उ०—गोपीजन विथकित ह्वै चितवत सब ठाढ़ी।—सूर।
विथराना॰-क्रि० स० [सं० वितरण] (१) फैलाना। (२) इधर उधर करना।
विथा॰†-संज्ञा स्त्री० [सं० व्यथा] (१) व्यथा। पीड़ा। तकलीफ। उ०—(क) तनकहु विथा नहीं मन मान्यो। मैं उपकार न तनु प्रिय जान्यो।—रघुराज। (ख) भँवर आये पै कमल पिरीती। जेहि महँ विथा प्रेम की बीती।—जायसी। (ग) बूटी जड़ी मनी बहु विधि की। सीनी विथा निवारन सिधि की।—गोपाल। (२) रोग। बीमारी। उ०—नैन तजे सुख तें, पटकै कर, जी न हियो कृ विथा निरवारन।—रसकुसुमाकर।
विथारना॰-क्रि० स० [सं० वितरण] फैलाना। छितराना। उ०—श्री रघुबीर के याह विलास तें धर्म रच्यो प्रवेश विथार्‍यो।—हृदयराम।
विथित॰-वि० [सं० व्यथित] जिसे किसी प्रकार की व्यथा हो। दुःखी।
विथुर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) चोर। (२) राक्षस। (३) ध्वंस। नाश।
वि० (१) अल्प। थोड़ा। कम। (२) व्यथित। दुःखित।
विथुरा-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्त्री जिसका स्वामी से वियोग हुआ हो। विरहिणी।
विथ्या-संज्ञा स्त्री० [सं०] गोभी।
विदंता-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की कौड़ी।
विद्-संज्ञा पुं० [सं०] (१) तिल पुष्पी। तिलक। (२) जानकार। जाननेवाला। (३) पंडित। विद्वान्।
विदग्ध-संज्ञा पुं० [सं०] (१) रसिक पुरुष। रसज्ञ। नागर। (२) पंडित। विद्वान्। (३) चतुर। चालाक। होशियार। (४) रूसा नामक घास।
वि० जला हुआ।
विदग्धता-संज्ञा स्त्री० [सं०] पांडित्य। विज्ञता।
विदग्धा-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह परकीया नायिका जो होशियारी के साथ पर-पुरुष को अपनी ओर अनुरक्त करे। यह दो प्रकार की मानी गई है—वचन विदग्धा और क्रिया विदग्धा। जो स्त्री अपनी बात चीत के कौशल से पर पुरुष पर अपनी काम-वासना प्रकट करती है, वह वचन विदग्धा कहलाती है, और जो किसी प्रकार के क्रिया द्वारा

से अपना भाव प्रकट करती है, उसे क्रिया विदग्धा कहते हैं।

विदग्धाजीर्ण-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का अजीर्ण रोग जो पित्त के प्रकोप से उत्पन्न होता है और जिसमें रोगी को भ्रम, तृष्णा, मूर्च्छा, दाह और पेट में दर्द होता है।

विदग्धाम्लदृष्टि-संज्ञा स्त्री० [सं०] आँखों का एक प्रकार का रोग जो बहुत अधिक खटाई खाने से होता है और जिसमें आँखें पीली पड़ जाती हैं।

विदथ-संज्ञा पुं० [सं०] (१) योगी। (२) यज्ञ। (३) वैदिक काल के एक राजा का नाम।

विदथी-संज्ञा पुं० [सं० विदथिन्] एक वैदिक ऋषि का नाम।

विदमान ☼-अव्य० [सं० विद्यमान] जो विद्यमान हो। सामने। सम्मुख। (क) उ०—कोन्यो गवन काम नहिं छाँड्यो सुर पति के विदमान।—सूर। (ख) ताको बचन कियो इहि रघुपति लो देखत विदमान।—सूर।

विदर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) कंकारी। विधसारक। (२) विदारण करना। फाड़ना।

विदरण-संज्ञा पुं० [सं०] (१) विदारण करना। फाड़ना। (२) विद्रधि नामक रोग।

विदरना☼-क्रि० अ० [सं० विदरण] विदीर्ण होना। फटना। उ०—(क) बिदरत नाहिं वज्र की छाती हरि वियोग क्यों सहिए।—सूर।

क्रि० स० विदीर्ण करना। फाड़ना। उ०— महेश यही तुमको निदन्योंजू। अरा सम पत्रनि ह्वै बिदन्योजू।—गुमान।

विदर्भ-संज्ञा पुं० [सं०] (१) आधुनिक बरार प्रदेश का प्राचीन नाम। (२) भागवत के अनुसार एक राजा का नाम। कहते हैं कि इसी राजा के नाम पर विदर्भ देश का नाम पड़ा था। (३) पुराणानुसार एक प्राचीन ऋषि का नाम। (४) दाँतों में चोट लगने के कारण मसूड़ा फूलना या दाँतों का हिलना।

विदर्भजा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) अगस्त्य ऋषि की स्त्री लोपामुद्रा का एक नाम। (२) दमयंती का एक नाम जो विदर्भ के राजा भीष्म की कन्या थी। (३) रुक्मिणी का एक नाम।

विदर्भराज-संज्ञा पुं० [सं०] दमयंती के पिता राजा भीष्म जो विदर्भ के राजा थे।

विदर्भि-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन ऋषि का नाम।

विदर्व्य-संज्ञा पुं० [सं०] बिना फनवाला साँप।

विदल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) लाल रंग का सोना। (२) सोना। स्वर्ण। (३) अनार का दाना। (४) बाँस का बना हुआ दौरा या और कोई पात्र। (५) चना। (६) पीठी।

वि० विकसित। खिला हुआ। (२) जिसमें दल न हों। बिना दल का।

विदलन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मलने दलने या दबाने आदि की क्रिया (२) टुकड़े टुकड़े या इधर उधर करना। फाड़ना।

विदलना☼-क्रि० स० [सं० विदलन] दलित करना। नष्ट करना। उ०—तीरन केहरि केहरि के विदले अरि कुंजर छैल छवा से।—तुलसी।

विदलान्न-संज्ञा पुं० [सं०] (१) पकाई हुई दाल। (२) वह अन्न जिसमें दो दल हों। जैसे,—चना, उड़द, मूँग, अरहर, मसूर आदि।

विदलित-वि० [सं०] (१) जिसका अच्छी तरह दलन किया गया हो। (२) रौंदा हुआ। मला हुआ। (३) टुकड़े टुकड़े किया हुआ। (४) फाड़ा हुआ।

विदा-संज्ञा स्त्री० [सं०] बुद्धि। ज्ञान। अक्ल।

संज्ञा स्त्री० [सं० विदाय, मि० अ० विदाअ] (१) प्रस्थान। रवाना होना। (२) कहीं से चलने की आज्ञा या अनुमति।

क्रि० प्र०—करना।—माँगना।—होना।

विदाई-संज्ञा स्त्री० [हिं० विदा+ई (प्रत्य०)] (१) विदा होने की क्रिया या भाव। रुखसती। प्रस्थान। (२) विदा होने की आज्ञा या अनुमति। (३) वह धन आदि जो विदा होने के समय किसी को दिया जाय।

क्रि० प्र०—देना।—पाना।—मिलना।

विदाय-संज्ञा पुं० [सं०] (१) विसर्जन। (२) प्रस्थान। (३) जाने की आज्ञा या अनुमति। विदा।

क्रि० प्र०—माँगना।—लेना।

(४) दान।

विदायी-संज्ञा पुं० [सं० विदायिन्] (१) वह जो ठीक तरह से चलाता या रखता हो। नियामक। (२) दान करनेवाला।

संज्ञा स्त्री० दे० "विदाई"।

विदार-संज्ञा पुं० [सं०] (१) युद्ध। समर। (२) दे० "विदारण"।

विदारक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह वृक्ष या पर्वत आदि जो जल के बीच में हो। (२) छोटी नदियों के तल में बनाया हुआ गड्ढा, जिसमें नदी के सूखने पर भी पानी बचा रहता है। (३) नौसादर।

वि० विदारण करनेवाला। फाड़ डालनेवाला।

विदारण-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बीच में से अलग करके दो या अधिक टुकड़े करना। फाड़ना। (२) मार डालना। हत्या करना। (३) युद्ध। समर। लड़ाई। (४) कनेर। (५) खपरिया। (६) नौसादर।

विदारना☼-क्रि० स० [हिं० विदरना] (१) फाड़ना। उ०—(क) जनु उडगन विधु मिलन को चले तम विदारि करि-वाद।—तुलसी। (ख) निज जाँघन पर ताहि पछान्यो। नखन साथ तब उदर विदान्यो।—केशव।

विदारिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) बृहत्संहिता के अनुसार एक

प्रकार की डाकिनी जो घर के बाहर अग्नि कोण में रहती है। (२) गंभारी वृक्ष। (३) विदारीकंद। (४) शालपर्णी। (५) कपूरी [illegible]।

विदारिगंधा-संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] शालपर्णी।

विदारिणी-संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] गंभारी।

विदारित-वि॰ [सं॰] विदीर्ण किया हुआ। फाड़ा हुआ।

विदारी-वि॰ [सं॰ विदारिन्] फाड़नेवाला। विदारण करने-वाला।

संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] (१) शालपर्णी। (२) भुईं कुम्हड़ा। (३) [illegible] के अनुसार [illegible] प्रकार के कंठरोगों में से एक प्रकार का कंठ रोग जो पित्त के प्रकोप से होता है। इसमें गले में [illegible] हो जाती है, [illegible] होती है और [illegible] के [illegible] कहते हैं कि जिस करवट कोई अधिक सोता है, उसी ओर यह रोग होता है। (४) एक प्रकार का क्षुद्र रोग जिसमें [illegible] में फुंसी निकलती है। (५) कान का एक रोग। (६) [illegible]। (७) क्षीर काकोली। (८) वाग्भट के अनुसार मेढ़ासींगी, सफेद पुनर्नवा, देवदार, अनंतमूल, [illegible] आदि ओषधियों का एक गण।

विदारीकंद-संज्ञा पुं॰ [सं॰] भुईं कुम्हड़ा।

विदारीगंधा-संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] (१) शालपर्णी। (२) सुश्रुत के अनुसार शालपर्णी, भुईं कुम्हड़ा, गोखरू, शतमूली, अनंत-मूल, जीवंती, मुगवन, कटियारी, पुनर्नवा आदि ओषधियों का एक गण। इस गण की सब ओषधियाँ वायु तथा पित्त की नाशक, और शोथ, गुल्म, ऊर्ध्वश्वास तथा खाँसी आदि रोगों में हितकर मानी जाती हैं।

विद्रध-संज्ञा पुं॰ [सं॰] विद्रधि।

विदाह-संज्ञा पुं॰ [सं॰] (१) पित्त के प्रकोप के कारण होनेवाली जलन। (२) हाथ पैर में किसी कारण से होनेवाली जलन।

विदिश्-संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] दो दिशाओं के बीच का कोण। जैसे,—अग्नि या ईशान आदि।

विदीपक-संज्ञा पुं॰ [सं॰] दीपक। दीया।

विदीर्ण-वि॰ [सं॰] (१) बीच से फाड़ा या विदारण किया हुआ। (२) टूटा फूटा। (३) मार डाला हुआ। निहत।

विदु-संज्ञा पुं॰ [सं॰] (१) हाथी के मस्तक के बीच का भाग। (२) घोड़े के कान के नीचे का भाग।

विदुत्तम-संज्ञा पुं॰ [सं॰] (१) वह जो सब बातें जानता हो। (२) विष्णु का एक नाम।

विदुर-संज्ञा पुं॰ [सं॰] (१) वह जो जानता हो। जानकार। वेत्ता। ज्ञाता। (२) पंडित। ज्ञानी। (३) कौरवों के सुप्रसिद्ध मंत्री जो राजनीति, धर्मनीति और अर्थनीति में बहुत निपुण थे और जो धर्म के अवतार माने जाते हैं। महाभारत में कथा है कि जब सत्यवती ने अपनी पुत्रवधू अंबिका को दूसरी बार कृष्णद्वैपायन के साथ नियोग करने की आज्ञा दी, तब उसने कृष्णद्वैपायन की आकृति आदि से भयभीत होकर एक सुन्दरी दासी को अपने कपड़े आदि पहनाकर उनके पास भेज दिया, जिससे विदुर का जन्म हुआ। ये बहुत बड़े पंडित, बुद्धिमान्, शांत और दूरदर्शी थे, और पांडवों के बहुत बड़े पक्षपाती थे। पहले ये राजा पांडु के मंत्री थे; और इसी लिये पीछे से अनेक अवसरों पर इन्होंने पांडवों की भारी भारी विपत्तियों से रक्षा की थी। लाक्षागृह के जलने के समय भी इन्हीं के परामर्श से पांडवों की जान बची थी। ये धृतराष्ट्र के छोटे भाई और मंत्री भी थे। जिस समय दुर्योधन के बहुत कहने पर धृतराष्ट्र ने इनसे जूए के संबंध में सम्मति माँगी थी, उस समय इन्होंने उन्हें बहुत रोका और समझाया था। पांडवों के वन जाने पर ये दुर्योधन के पास रहते थे। महाभारत का युद्ध आरंभ होने से पहले

विदुष-संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० विदुषी] विद्वान । पंडित । उ०—(क) निज निज वेद की सप्रेम जोग छेम मई मुदित असीस विप्र विदुष निदई हैं।—तुलसी। (ख) विदुष जनन विराट प्रभु रीझे अति मन में सुख पायो ।—सूर ।

विदुषी-संज्ञा स्त्री० [सं०] विद्या पढ़ी हुई स्त्री । विद्वान् स्त्री । उ०—(क) जैसे लड़के ब्रह्मचर्य सेवन से पूर्ण विद्या और सुशिक्षा को प्राप्त होके युवति, विदुषी, अपने अनुकूल प्रिय सदृश स्त्रियों के साथ विवाह करते हैं ।—दयानंद । (ख) जहाँ पूर्ण विद्वान् और पूर्ण विदुषी स्त्री शिक्षा और विद्यादान करनेवाली हों, वहाँ भेज दें ।—दयानंद ।

विदूर-वि० [सं०] जो बहुत दूर हो ।

संज्ञा पुं० (१) बहुत दूर का प्रदेश । (२) एक देश का नाम। (३) एक पर्वत का नाम । कहते हैं कि वैदूर्य्य मणि इसी पर्वत में मिलती है । (४) दे० "वैदूर्य्य" । (मणि)

विदूरज-संज्ञा पुं० [सं०] विदूर पर्वत से उत्पन्न, वैदूर्य्य मणि ।

विदूरत्व-संज्ञा पुं० [सं०] विदूर होने का भाव । बहुत अधिक दूर होना ।

विदूरथ-संज्ञा पुं० [सं०] (१) कुरुक्षेत्र का एक नाम । (२) पुराणानुसार एक राजा का नाम ।

विदूरभूमि-संज्ञा स्त्री० [सं०] विदूर नामक देश । कहते हैं कि वैदूर्य्य मणि इसी देश में होती है ।

विदूरविगत-संज्ञा पुं० [सं०] अन्त्यज ।

विदूषक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जो बहुत अधिक विषयी हो । कामुक । (२) वह जो तरह तरह की नकलें आदि करके, वेष भूषा बनाकर अथवा बातचीत करके दूसरों को हँसाता हो । मसखरा ।

विशेष—प्राचीन काल में राजाओं और बड़े आदमियों के मनोविनोद के लिये उनके दरबार में इस प्रकार के मसखरे रहा करते थे, जो अनेक प्रकार के कौतुक करके, बेवकूफ बनकर अथवा बातें बनाकर लोगों को हँसाया करते थे । प्राचीन नाटकों आदि में भी इन्हें यथेष्ट स्थान मिला है; क्योंकि इनसे सामाजिकों का मनोरंजन होता है । साहित्यदर्पण के अनुसार विदूषक प्रायः अपने कौशल से दो आदमियों में झगड़ा भी कराता है; और अपना पेट भरना या स्वार्थ सिद्ध करना खूब जानता है । यह शृंगार रस में सहायक होता है और मानिनी नायिका को मनाने में बहुत कुशल होता है ।

(३) चार प्रकार के नायकों में से एक प्रकार का नायक जो अपने कौतुक और परिहास आदि के कारण काम केलि में सहायक होता है । (४) वह जो दूसरों की निंदा करता हो । खल । (५) भाँड़ । उ०—नाचहिं कहुँ विदूष करि जाला । कूजहिं काँख बजावहिं ताला ।—सबल ।

विदूषण-संज्ञा पुं० [सं०] किसी पर विशेष रूप से दोष लगाने की क्रिया । ऐब लगाना ।

विदूषना-क्रि० स० [सं० विदूषण] (१) सताना । दुःख देना । उ०—सुनु सठ काल ग्रसित यह देही । जनि तेहि लागि विदूषहि केही ।—तुलसी । (२) दोष लगाना । दोषी ठहराना ।

क्रि० अ० दुःखी होना । पीड़ा का अनुभव करना । उ०—तापन सों तपती थिर में बिन काल वृथा मन माहिं विदूषतीं ।—मन्नालाल ।

विदृश-वि० [सं०] जिसे दिखाई न पड़े । अन्धा ।

विदेघ-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्राचीन ऋषि का नाम । (२) दे० "विदेह" ।

विदेव-संज्ञा पुं० [सं०] (१) राक्षस । (२) यक्ष ।

विदेश-संज्ञा पुं० [सं०] अपने देश को छोड़कर दूसरा देश । परदेश ।

विदेह-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जो शरीर से रहित हो । (२) वह जिसकी उत्पत्ति माता पिता से न हो । जैसे,—देवता आदि । (३) राजा जनक का एक नाम। वि० दे० "जनक" । (४) राजा निमि का एक नाम । वि० दे० "निमि" । (५) प्राचीन मिथिला का एक नाम । (६) इस देश के निवासी ।

विदेहक-संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार एक पर्वत का नाम ।

विदेहकूट-संज्ञा पुं० [सं०] जैन पुराणानुसार एक पर्वत का नाम ।

विदेहकैवल्य-संज्ञा पुं० [सं०] वह निर्वाण या मोक्ष जो जीवन्मुक्त को मरने पर प्राप्त होता है ।

विदेहत्व-संज्ञा पुं० [सं०] (१) विदेह होने का भाव । (२) शरीर का नाश । मृत्यु । मौत ।

विदेहपुर-संज्ञा पुं० [सं०] राजा जनक की राजधानी, जनकपुर । उ०—विदित विदेहपुरनाथ भृगुनाथ गति समय सयानी कीन्ही जैसी आइ गौं परी ।—तुलसी ।

विदेहा-संज्ञा स्त्री० [सं०] मिथिला नगरी और प्रदेश का एक नाम ।

विदोष-वि० [सं०] जिसमें किसी प्रकार का दोष न हो । दोषरहित । बे ऐब ।

विद्-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जो जानता हो । जानकार । (२) पंडित । विद्वान् । (३) बुध ग्रह । (४) तिल का पौधा ।

विद्ध-वि० [सं०] (१) बीच में से छेद किया हुआ । (२) फेंका हुआ । (३) जिसमें बाधा पड़ी हो । (४) समान । तुल्य । बराबर । (५) जिसको चोट लगी हो । (६) टेढ़ा । (७) मिला हुआ । आबद्ध ।

विद्रक-संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल का एक प्रकार का यंत्र जिससे मिट्टी खोदी जाती थी।

विद्रधि-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का क्षुद्र रोग जिससे शरीर में बहुत छोटी छोटी फुंसियाँ निकलती हैं।

विद्धि-संज्ञा स्त्री० [सं०] आघात करना। मारना।

विद्यमान-वि० [सं०] वर्त्तमान। उपस्थित। मौजूद।

विद्यमानता-संज्ञा स्त्री० [सं०] विद्यमान होने का भाव। उपस्थिति। मौजूदगी।

विद्यमानत्व-संज्ञा पुं० [सं०] विद्यमान होने का भाव। उपस्थिति। मौजूदगी।

विद्या-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह ज्ञान जो शिक्षा आदि के द्वारा उपार्जित या प्राप्त किया जाता है। वह जानकारी जो सीखकर हासिल की जाती है। किसी विषय का विशिष्ट ज्ञान। इल्म। जैसे,—(क) विद्या पढ़कर मनुष्य पंडित होता है। (ख) आजकल पाठशालाओं में अनेक प्रकार की विद्याएँ पढ़ाई जाती हैं।

विशेष—हमारे यहाँ विद्या दो प्रकार की मानी गई है—परा और अपरा। जिस विद्या के द्वारा ब्रह्मज्ञान होता है, वह परा विद्या और इसके अतिरिक्त जो अन्य लौकिक या पदार्थ विद्याएँ हैं, वे सब अपरा विद्या कहलाती हैं।

(२) वह ज्ञान जिसके द्वारा मोक्ष की प्राप्ति या परमपुरुषार्थ की सिद्धि होती है। (३) वे शास्त्र आदि जिनके द्वारा ज्ञान प्राप्त किया जाता है। हमारे यहाँ इनकी संख्या १८ बतलाई गई है। यथा—चारों वेद, छओं अंग, मीमांसा, न्याय, धर्मशास्त्र, पुराण, आयुर्वेद, धनुर्वेद, गान्धर्ववेद और अर्थशास्त्र। (४) दुर्गा। (५) देवी का मंत्र। (६) गनियारी। (७) सीता की एक सखी का नाम। (८) आर्य्या छंद का पाँचवाँ भेद जिसमें चन्द्रशेखर के मत से २२ गुरु और ११ लघु मात्राएँ होती हैं।

विद्यागुरु-संज्ञा पुं० [सं०] वह गुरु जिससे विद्या पढ़ी हो। पढ़ानेवाला गुरु। शिक्षक।

विद्यागृह-संज्ञा पुं० [सं०] वह स्थान जहाँ विद्या पढ़ाई जाती हो। विद्यालय। पाठशाला।

विद्यातीर्थ-संज्ञा पुं० [सं०] महाभारत के अनुसार एक प्राचीन तीर्थ का नाम।

विद्यात्व-संज्ञा पुं० [सं०] विद्या का भाव।

विद्यादल-संज्ञा पुं० [सं०] भोजपत्र का पेड़।

विद्यादाता-संज्ञा पुं० [सं० विद्यादातृ] विद्या पढ़ानेवाला गुरु, जो शास्त्रों के अनुसार पिता माना जाता है।

विद्यादान-संज्ञा पुं० [सं०] विद्या पढ़ाना। शिक्षा देना।

विद्यादेवी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सरस्वती। (२) जैनियों की सोलह जिन देवियों में से एक देवी का नाम।

विद्याधन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) विद्या रूपी धन। (२) वह धन जो अपनी विद्या द्वारा उपार्जित किया जाय। ऐसे धन में किसी का हिस्सा नहीं लग सकता।

विद्याधर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्रकार की देवयोनि जिसके अंतर्गत खेचर, गंधर्व, किन्नर आदि माने जाते हैं। (२) सोलह प्रकार के रतिबंधों में से एक प्रकार का रतिबंध। (३) वैद्यक में एक प्रकार का यंत्र जिसमें एक थाली में पारा रखकर उस पर दूसरी थाली रखकर मिट्टी से बीच का जोड़ बंद कर देते हैं, और ऊपर की थाली में पानी भरकर दोनों मिली हुई थालियों पाँच पहर तक आग पर रखते हैं। इसके उपरान्त ठंढे होने पर पारा निकाल लेते हैं।

विद्याधर रस-संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक में एक प्रकार का रस जो पारे, गंधक, ताँबे, सोंठ, पीपल, मिर्च, धतूरे आदि की सहायता से बनाया जाता है और ज्वर में बहुत उपयोगी माना जाता है।

विद्याधरी-संज्ञा स्त्री० [सं०] विद्याधर नामक देवता की स्त्री। उ०—विद्याधरी किन्नरी नामा त्यों वानरी अपारा।—(पुराण)

विद्याधरेंद्र-संज्ञा पुं० [सं०] जाम्बुवान् का एक नाम।

विद्याधरेश्वर-संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार एक शिवलिंग का नाम।

विद्याधार-संज्ञा पुं० [सं०] पंडित। विद्वान्।

विद्याधारी-संज्ञा पुं० [सं० विद्याधारिन्] एक वृत्त का नाम जिसके प्रत्येक चरण में चार मगण होते हैं। उ०—मैं चारों ओर गाऊँ भली को पाऊँ। रे स्वामी सारे पापों वाली भ का कर्मी जानी मेरा याको सत्संगा को धारी। थोड़ी सोंचो मन सोंचो विद्याधारी।—जगन्नाथ।

विद्याधिदेवता-संज्ञा स्त्री० [सं०] विद्या की अधिष्ठात्री देवी, सरस्वती।

विद्याधिप-संज्ञा पुं० [सं०] (१) विद्या पढ़ानेवाला। गुरु। शिक्षक। (२) विद्वान्। पंडित।

विद्याधिराज-संज्ञा पुं० [सं०] वह जो बहुत बड़ा पंडित हो।

विद्याध्र-संज्ञा पुं० [सं०] विद्याधर नाम की देवयोनि।

विद्यामणि-संज्ञा पुं० दे० "विद्याधन"।

विद्यामय-संज्ञा पुं० [सं०] वह जो पूर्ण पंडित हो।

विद्यारंभ-संज्ञा पुं० [सं०] वह संस्कार जिसमें विद्या की पढ़ाई आरंभ होती है।

विद्याराज-संज्ञा पुं० [सं०] (१) विष्णु की एक मूर्ति का नाम।

विद्याराशि-संज्ञा पुं० [सं०] शिव का एक नाम।

विद्यार्थी-संज्ञा पुं० [सं० विद्यार्थिन्] वह जो विद्या पढ़ता हो। पढ़नेवाला छात्र। शिष्य।

विद्यालय-संज्ञा पुं० [सं०] वह स्थान जहाँ विद्या पढ़ाई जाती हो। पाठशाला।

विद्याविद्–संज्ञा पुं० [सं०] विद्वान्। पंडित।

विद्याव्रत–संज्ञा पुं० [सं०] वह व्रत जो गुरु के घर रहकर विद्या पढ़ने के उद्देश से धारण किया जाता है।

विद्याव्रतस्नातक–संज्ञा पुं० [सं०] मनु के अनुसार वह स्नातक जो गुरु के पास रहकर वेद और विद्या व्रत दोनों समाप्त करके अपने घर लौटे।

विद्यास्नातक–संज्ञा पुं० [सं०] मनु के अनुसार वह स्नातक जो गुरु के घर रहकर वेदाध्ययन समाप्त करके घर लौटा हो।

विद्युज्जिह्व–संज्ञा पुं० [सं०] (१) रामायण के अनुसार रावण के पक्ष के एक राक्षस का नाम जो शूर्पणखा का पति था। (२) एक यक्ष का नाम।

विद्युज्जिह्वा–संज्ञा स्त्री० [सं०] कार्त्तिकेय की एक मातृका का नाम।

विद्युज्ज्वाला–संज्ञा स्त्री० [सं०] कलिहारी या कलियारी नामक वृक्ष।

विद्युता–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) विद्युत्। बिजली। (२) महाभारत के अनुसार एक अप्सरा का नाम।

विद्युताक्ष–संज्ञा पुं० [सं०] कार्त्तिकेय के एक अनुचर का नाम।

विद्युत्–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) संध्या। (२) बिजली। (३) बृहत्संहिता के अनुसार एक प्रकार की उल्का। (४) एक प्रकार की वीणा।

संज्ञा पुं० एक प्राचीन ऋषि का नाम।

वि० (१) जिसमें बहुत अधिक दीप्ति हो। बहुत चमकीला। (२) जिसमें किसी प्रकार की दीप्ति या प्रभा न होना।

विद्युत्केश–संज्ञा पुं० [सं०] रामायण के अनुसार हेति नामक राक्षस का पुत्र जो काल की कन्या भया के गर्भ से उत्पन्न हुआ था। इसी विद्युत्केश और पौलोमी से राक्षसों के वंश की वृद्धि हुई थी।

विद्युत्त्व–संज्ञा पुं० [सं०] (१) विद्युत् का भाव या धर्म। बिजली-पन।

विद्युत्पताक–संज्ञा पुं० [सं०] प्रलय के समय के सात मेघों में से एक मेघ का नाम।

विद्युत्पर्णा–संज्ञा स्त्री० [सं०] एक अप्सरा का नाम जिसका उल्लेख महाभारत में है।

विद्युत्पात–संज्ञा पुं० [सं०] बिजली का गिरना। वज्रपात।

विद्युत्प्रभ–संज्ञा पुं० [सं०] (१) महाभारत के अनुसार एक ऋषि का नाम। (२) एक दैत्य का नाम।

विद्युत्प्रभा–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) दैत्यों के राजा बालि की पोती का नाम। (२) अप्सराओं का एक गण।

विद्युत्प्रिय–संज्ञा पुं० [सं०] काँसा नामक धातु या उसका कोई बरतन, जिसकी ओर बिजली जल्दी खिंचती है।

विद्युत्य–वि० [सं०] विद्युत् या बिजली से उत्पन्न।

विद्युत्वत्–संज्ञा पुं० [सं०] मेघ। बादल।

विद्युद्दाम–संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार एक दैत्य का नाम।

विद्युद्गौरी–संज्ञा स्त्री० [सं०] शक्ति की एक मूर्ति का नाम।

विद्युद्ध्वज–संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक असुर का नाम। (२) दे० "विद्युत्पताक"।

विद्युन्मापक–संज्ञा पुं० [सं० विद्युत्+मापक] एक विशेष प्रकार का यंत्र जिससे यह जाना जाता है कि विद्युत् का बल कितना और प्रवाह किस ओर है।

विद्युन्माल–संज्ञा पुं० [सं०] (१) रामायण के अनुसार एक बंदर का नाम। (२) दे० "विद्युन्माला"।

विद्युन्माला–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) बिजली का समूह या सिलसिला। (२) एक यक्षिणी का नाम। (३) एक छंद जिसके प्रत्येक चरण में आठ आठ गुरु वर्ण अथवा दो मगण और दो गुरु वर्ण होते हैं और चार वर्णों पर यति होती है। उ०—मैं माँगों गोपी सों दाना। भागी बोली नाहीं काना। कारी सारी ताही माला। भासी मोही विद्युन्माला।—जगन्नाथ।

विद्युन्माली–संज्ञा पुं० [सं० विद्युन्मालिन्] (१) पुराणानुसार एक राक्षस का नाम जिसने शिव की भक्ति करके सोने का एक विमान प्राप्त किया था और जो उसी विमान पर चढ़कर सूर्य्य के पीछे पीछे घूमा करता था। इससे रात के समय भी उस विमान में अन्धकार नहीं होने पाता था। इससे घबराकर सूर्य्य ने अपने तेज से वह विमान गलाकर ज़मीन पर गिरा दिया था। रामायण में कहा है कि धर्म्म के पुत्र सुषेण के साथ इसका युद्ध हुआ था। उ०—विद्युन्माली रजनिचर, हन्यो सुषेणहिं बान। मारि सुषेणहुँ शृंग इक, तोन्यो ताकर यान।—रघुराज। (२) महाभारत के अनुसार एक असुर का नाम। (३) एक छंद का नाम जिसके प्रत्येक चरण में एक भगण, एक मगण और अंत में दो गुरु होते हैं।

विद्युन्मुख–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार के उपग्रह।

विद्युल्लता–संज्ञा स्त्री० [सं०] विद्युत्। बिजली।

विद्युल्लेखा–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) एक वृत्त का नाम जिसके प्रत्येक चरण में दो मगण होते हैं। इसे शेषराज भी कहते हैं। उ०—मैं मारी ना खाई। झूठे ग्वाला माई। मू थायो मा देखा। जोती विद्युल्लेखा।—जगन्नाथ। (२) विद्युत्। बिजली।

विद्येश–संज्ञा पुं० [सं०] शिव का एक नाम।

विद्योत्–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) विद्युत्। बिजली। (२) प्रभा। दीप्ति। चमक। (३) एक अप्सरा का नाम।

विद्र–संज्ञा पुं० [सं०] छिद्र। छेद।

विद्रध–वि० [सं०] (१) मोटा ताज़ा। (२) दृढ़। मज़बूत। पक्का। (३) जो किसी काम के लिये अच्छी तरह तैयार हो।

संज्ञा पुं० दे० "विद्रधि"।

विद्रधि–संज्ञा पुं० स्त्री० [सं०] पेट के अंदर का एक प्रकार का फोड़ा जो बहुत घातक होता है।

विद्रधिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] सुश्रुत के अनुसार एक प्रकार का छोटा फोड़ा जो प्रमेह रोग के बहुत दिनों तक रहने के कारण होता है।

विद्रधिघ्न–संज्ञा पुं० [सं०] शोभांजन। सहिजन।

विद्रव–संज्ञा पुं० [सं०] (१) भागना। (२) बुद्धि। अक्ल। (३) नाश। (४) भय। डर। (५) युद्ध। लड़ाई। (६) बहना। (७) पिघलना। (८) निंदा। शिकायत।

विद्राव–संज्ञा पुं० [सं०] (१) बहना। क्षरण। (२) पिघलना। (३) गलना।

विद्रावण–संज्ञा पुं० [सं०] (१) भागना। (२) पिघलना। (३) गलना। (४) उड़ना। (५) फाड़ना। (६) वह जो नष्ट करता हो। (७) एक दानव का नाम।

विद्राविणी–संज्ञा स्त्री० [सं०] कौआ ठोंठी।

विद्रावी–संज्ञा पुं० [सं० विद्राविन्] (१) भागनेवाला। (२) गलनेवाला। (३) फाड़नेवाला।

विद्रुत–वि० [सं०] (१) भागा हुआ। (२) गला हुआ। (३) पिघला हुआ।

विद्रुति–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) भागना। (२) गलना। (३) पिघलना। (४) नष्ट होना।

विद्रुधि–संज्ञा पुं० दे० "विद्रधि"।

विद्रुम–संज्ञा पुं० [सं०] (१) प्रवाल। मूँगा। (२) मुक्ताफल नामक वृक्ष। (३) वृक्ष का नया पत्ता। कोंपल।

विद्रुमफल–संज्ञा पुं० [सं०] कुंदुरु नामक सुगंधित गोंद।

विद्रुमलता–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) नलिका या नली नामक गंध द्रव्य। (२) मूँगा।

विद्रोह–संज्ञा पुं० [सं०] (१) किसी के प्रति होनेवाला वह द्वेष या आचरण जिससे उसको हानि पहुँचे। (२) राज्य में होनेवाला भारी उपद्रव जो राज्य को हानि पहुँचाने या नष्ट करने के उद्देश्य से हो। बलवा। बगावत।

विद्रोही–संज्ञा पुं० [सं० विद्रोहिन्] (१) वह जो किसी के प्रति विद्रोह या द्वेष करता हो। (२) राज्य का अनिष्ट करनेवाला। बागी।

विद्वन्–संज्ञा पुं० [सं०] शिव का एक नाम।

विद्वत्ता–संज्ञा स्त्री० [सं०] बहुत अधिक विद्वान् होने का भाव। पांडित्य।

विद्वत्व–संज्ञा पुं० [सं०] बहुत अधिक विद्वान् होने का भाव। विद्वत्ता। पांडित्य।

विद्वान्–संज्ञा पुं० [सं० विद्वस्] (१) वह जो आत्मा का स्वरूप जानता हो। (२) वह जिसने बहुत अधिक विद्या पढ़ी हो। पंडित। (३) वह जो सब कुछ जानता हो। सर्वज्ञ।

विद्विष–संज्ञा पुं० [सं०] वह जो विद्वेष या शत्रुता करता हो। शत्रु। दुश्मन।

विद्विष्ट–वि० [सं०] जिसके साथ विद्वेष या शत्रुता की जाय। द्वेष का पात्र या भाजन।

विद्विष्टता–संज्ञा स्त्री० [सं०] विद्विष्ट होने का भाव।

विद्विष्टि–संज्ञा स्त्री० [सं०] विद्वेष। शत्रुता। दुश्मनी।

विद्वेष–संज्ञा पुं० [सं०] शत्रुता। दुश्मनी। वैर। द्वेष।

विद्वेषक–संज्ञा पुं० [सं०] वह जो विद्वेष करता हो। शत्रु। दुश्मन। वैरी।

विद्वेषण–संज्ञा पुं० [सं०] (१) शत्रुता। दुश्मनी। वैर। (२) तंत्र के अनुसार एक प्रकार की क्रिया जिसके द्वारा दो व्यक्तियों में द्वेष या शत्रुता उत्पन्न की जाती है। (३) वह जो द्वेष करता हो। शत्रु। वैरी। (४) सज्जनता का अभाव। दुष्टता।

विद्वेषिणी–संज्ञा स्त्री० [सं०] पुराणानुसार दुःसह नामक यक्ष की आठवीं और अंतिम कन्या जो निर्माष्टि के गर्भ से उत्पन्न हुई थी। कहते हैं कि यही लोगों में द्वेष उत्पन्न करती है। इसे शांत करने के लिये दूध, शहद और घी में मिले हुए तिलों से होम आदि करने का विधान है।

विद्वेषी–संज्ञा पुं० [सं० विद्वेषिन्] वह जो विद्वेष करता हो। द्वेषी। शत्रु। वैरी।

विद्वेष्टा–संज्ञा पुं० [सं० विद्वेष्टृ] वह जो विद्वेष करता हो। शत्रु। वैरी।

विद्वेष्य–संज्ञा पुं० [सं०] (१) जिसके साथ विद्वेष किया जाय। द्वेष का पात्र या भाजन। (२) कंकोल।

विधंस–संज्ञा पुं० [सं० विध्वंस] विध्वंस। नाश। उ०—मारा कंस विधंसमुरारी। दारिद वारिद प्रबल बयारी।—रघुराज। वि० विध्वस्त। नष्ट। विनष्ट।

विधंसना–क्रि० स० [सं० विध्वंसन] नष्ट करना। बरबाद करना। उ० चाँद सुरुज औ होइ बिवाहू। नाहिं विधंसब बेधब राहू।—जायसी।

विध–संज्ञा पुं० [सं० विधि] विधि। ब्रह्मा। उ०—नैन की कोर ते मेह किये विध दीठ की छाँह ते चीठ सँवारो।—देव। संज्ञा स्त्री० दे० "विधि"।

विधर्त्री–संज्ञा स्त्री० [सं० विधात्री] ब्रह्मा की शक्ति, महासरस्वती।

विधन–वि० [सं०] जिसके पास धन न हो। निर्धन। गरीब।

विधनता–संज्ञा स्त्री० [सं०] विधन होने का भाव। निर्धनता। गरीबी।

विधना–क्रि० स० [सं० विध] प्राप्त करना। अपने साथ लगाना। ऊपर लेना। उ०—(क) रूप अँगार बिरंग आगे अरु

व्याध विधए।—सूर। (ख) याके सूर पथिक मग मानो मदन व्याधि विधये री।—सूर।

संज्ञा स्त्री० [सं० विधि] वह जो कुछ होने को हो भवितव्यता। होनी।

संज्ञा पुं० विधि। ब्रह्मा। उ०—विधना ऐसी रैन कर भोर कभी ना होय।

विधमन-संज्ञा पुं० [सं०] धौंकनी या मुख आदि के द्वारा हवा पहुँचाकर आग सुलगाना। धौंकना।

विधर†-क्रि० वि० दे० "उधर"। उ०—जैसे रथ के घोड़े बाग के आश्रय जिधर ले जाते हैं, विधर जाता है।—पद्मुनारांकर।

विधरण-संज्ञा पुं० [सं०] (१) पकड़ना। रोकना। (२) दे० "विरत"।

विधर्म-संज्ञा पुं० [सं०] (१) अपने धर्म्म को छोड़कर और किसी का धर्म्म। पराया धर्म्म। (२) अपने धर्म्म को छोड़ कर दूसरे का धर्म्म ग्रहण करना, जो पाँच प्रकार के अधर्म्मों में से एक कहा गया है।

वि० (१) जिसकी धर्म्मशास्त्र में निंदा की गई हो। (२) जिसमें गुण न हो। गुणहीन।

विधर्मिक-वि० [सं०] (१) जो धर्म्मविरुद्ध आचरण करता हो। (२) जो दूसरे धर्म्म का अनुयायी हो।

विधर्मी-संज्ञा पुं० [सं० विधर्म्मिन्] (१) वह जो अपने धर्म्म के विपरीत आचरण करता हो। धर्म्म-भ्रष्ट। (२) वह जो किसी दूसरे धर्म्म का अनुयायी हो।

विधवा-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्त्री जिसका पति मर गया हो। पतिहीन स्त्री। राँड़। बेवा। उ०—(१) सुत बधू विधवा सों बोलि कै सुनायो हेतु धनपति गेह श्री गुपाल भरतार है।—नाभा। (२) ब्राह्मण विधवा मारि सुर गुरु अंश दुरावहीं। कहूँ न बचन विचारि, परै सोई निरयास महँ।—विश्राम।

विशेष—स्मृतियों में विधवा स्त्रियों के लिये ब्रह्मचर्य्य तथा कठिन नियमों का पालन विधेय है। जैसे,—तांबूल और मद्यमांस आदि का त्याग। द्विजातियों में विधवा के लिये पुनर्विवाह का नियम नहीं है। केवल पराशर-संहिता में यह कहा गया है कि स्वामी के लापता होने, मरने, अथवा संन्यासी, क्लीव या पतित होने पर स्त्री दूसरा पति कर सकती है। पर और स्मृतियों के साथ अविरोध सिद्ध करने के लिये पंडित लोग "अन्य पति" शब्द का अर्थ "दूसरा पालनकर्त्ता" किया करते हैं।

विधवापन-संज्ञा पुं० [सं० विधवा+हिं० पन (प्रत्य०)] विधवा होने की अवस्था। वह अवस्था जिसमें पति के मरने के कारण स्त्री पतिहीन हो जाती है। रँड़ापा। वैधव्य। उ०—लिख्यो न विधि मिलिबे तिहि मोंही। प्राण जई विधवापन तोही।—रघुराज।

विधवाश्रम-संज्ञा पुं० [सं० विधवा+आश्रम] विधवाओं के रहने का स्थान। वह स्थान जहाँ विधवाओं के पालन पोषण तथा शिक्षा आदि का प्रबंध किया जाता है। उ०—इन बालिकाओं के लिये अध्यापक कर्वे ने पूना में "अनाथ विधवाश्रम" खोला है।—सरस्वती।

विधस-संज्ञा पुं० [सं०] मोम।

विधाँसना॥†-क्रि० स० [सं० विध्वंसन] (१) नष्ट करना। बरबाद करना। उ०—(क) औ जोबन मैमंत विधाँसा। बिचला बिरह बिरह लै नासा।—जायसी। (ख) भएउ जूझ जस रावन रामा। सेज विधाँस, विरह संग्रामा।—जायसी। (२) अस्त व्यस्त करना। इधर उधर करना। गड़बड़ कर देना।

विधातव्य-वि० [सं०] (१) विधान के योग्य। विधेय। (२) करने योग्य। कर्त्तव्य।

विधाता-संज्ञा पुं० [सं० विधातृ] [स्त्री० विधात्री] (१) विधान करनेवाला। रचनेवाला। बनानेवाला। (२) उत्पन्न करनेवाला। तैयार करनेवाला। उ०—विद्या-वारिधि बुद्धि-विधाता।—तुलसी। (३) व्यवस्था करनेवाला। प्रबंध करनेवाला। इंतजाम करनेवाला। ठीक तरह से लगानेवाला। उ०—ए गोसाईं! तू ऐस विधाता। जावत जीव सबन्ह भुकदाता।—जायसी। (४) सृष्टि बनानेवाला। जगत् की रचना करनेवाला। सृष्टिकर्त्ता। ब्रह्मा या ईश्वर। उ०—कुछ संदेह नहीं कि विधाता ने मुझे अत्यंत सुकुमारी बनाया है।—तोताराम।

विधातृका-संज्ञा स्त्री० [सं०] विधान करनेवाली। विधायिका।

विधात्री-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) विधान करनेवाली। रचनेवाली। बनानेवाली। (२) व्यवस्था करनेवाली। प्रबंध करनेवाली। (३) पिप्पली। पीपल।

विधान-संज्ञा पुं० [सं०] (१) किसी कार्य्य का आयोजन। काम का होना या चलना। विन्यास। संपादन-क्रम। अनुष्ठान। जैसे,—जो कुछ करना है, उसी का विधान अब होना चाहिए।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

(२) व्यवस्था। प्रबंध। इंतजाम। बंदोबस्त। जैसे,—पहले ही से ऐसा विधान करो कि कार्य्य आरंभ करने में देर न हो। (३) कार्य्य करने की रीति। विधि। प्रणाली। पद्धति। जैसे,—शास्त्रों में ऐसा विधान है। उ०—तुम विश्व विविध विधान।—केशव। (४) रचना। निर्माण। (५) ढंग। तरकीब। उपाय। युक्ति। जैसे,—कोई ऐसा विधान निकालो कि कार्य्य निर्विघ्न हो जाय। (६) उतना चारा

जितना हाथी एक बार मुँह में डालता है। हाथी का ग्रास। (७) हानि पहुँचाने का दाँवपेच। शत्रुता का आचरण। (८) प्रेरण। भेजना। (९) अनुमति देने का कार्य्य। आज्ञा करना। (१०) धन संपत्ति। (११) पूजा। अर्चन। (१२) नाटक में वह स्थल जहाँ किसी वाक्य द्वारा एक साथ सुख और दुःख प्रकट किया जाता है। जैसे,—"बाल्यकाल ही में तुम्हारा ऐसा उत्साह देख मुझे हर्ष और विषाद दोनों होते हैं।"

विधानक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) विधान। विधि। (२) विधान-वेत्ता। विधि या रीति जाननेवाला।

विधानसप्तमी-संज्ञा स्त्री० [सं०] माघ शुक्ला सप्तमी।

विधानसप्तमी व्रत-संज्ञा स्त्री० [सं०] सूर्य्य का एक व्रत जो माघ शुक्ला सप्तमी को आरंभ करके साल भर तक (पौष तक) किया जाता है। इसमें सूर्य्य का पूजन होता है।

विधानिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] बृहती।

विधानी-संज्ञा पुं० [सं० विधान+ई (प्रत्य०)] (१) विधान का जाननेवाला। (२) विधिपूर्वक कार्य्य करनेवाला।

विधायक-संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० विधायिका] (१) विधान करनेवाला। कार्य्य करनेवाला। (२) बनानेवाला। रचनेवाला। उ०—हे विरंचि तैं विश्वविधायक।—रघुराज। (३) व्यवस्था करनेवाला। प्रबंध करनेवाला। प्रस्तुत करनेवाला। उ०—मंगल मूरति सिद्धि विधायक।—शंकर-दिग्विजय।

विधारा-संज्ञा पुं० [सं० वृद्ध+दारु] एक प्रकार की लता जो दक्षिण भारत में बहुतायत से होती है। इसका झाड़ बहुत बड़ा और इसकी शाखाएँ बहुत घनी होती हैं। इसकी डालियों पर गुलाब के से काँटे होते हैं। पत्ते तीन अंगुल लंबे अण्डाकार और नोकदार होते हैं। डालियों के सिरे पर चमकदार पीले फूलों का गुच्छा होता है। वैद्यक में इसे गरम, मधुर, मेधाजनक, अग्नि-प्रदीपक, धातुवर्धक और पुष्टिदायक माना है। उपदंश, प्रमेह, क्षय, वातरक्त आदि में इसे ओषधि की भाँति व्यवहार में लाते हैं।

पर्य्या०—जीर्णदारु। वृद्धदारु। वृद्धदारक। गर्भवृद्धि।

विधि-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) कोई कार्य्य करने की रीति। कार्य्यक्रम। प्रणाली। ढंग। नियम। क़ायदा। जैसे,—पूजा की विधि, यज्ञ की विधि। (२) व्यवस्था। संगति। योजना। करीना। मेल या सिलसिला।

मुहा०—विधि बैठना = (१) परस्पर अनुकूलता होना। मेल बैठना। मेल खाना। व्यवहार निभना। जैसे,—हमारी उनकी विधि नहीं बैठेगी। (२) सब बातों का ठीक होना। इच्छानुकूल व्यवस्था होना। जैसे,—फिर क्या है, तुम्हारी विधि बैठ गई। (३) किसी शास्त्र या ग्रंथ में लिखी हुई व्यवस्था। शास्त्रोक्त विधान।

मुहा०—कुंडली की विधि मिलना = कुंडली में लिखी बात का पूरा होना। फलित ज्योतिष द्वारा बताई हुई बात का ठीक घटना।

(४) किसी शास्त्र या धर्म-ग्रंथ में किया हुआ कर्त्तव्य-निर्देश। कर्म के अनुष्ठान की आज्ञा या अनुमति। शास्त्र में इस प्रकार का कथन कि मनुष्य यह काम करे।

विशेष—किसी काम को करने की आज्ञा को "विधि" और न करने की आज्ञा को 'निषेध' कहते हैं। पूर्वमीमांसा में नियोग का नाम विधि है। अर्थात् जो वाक्य किसी इष्ट फल की प्राप्ति का उपाय बताकर उसे करने की प्रवृत्ति उत्पन्न करे, वही विधि है। जैसे,—"स्वर्ग चाहनेवाला यह करे।" विधि दो प्रकार कही गई है—प्रधान-विधि और अंग-विधि। फल देनेवाली संपूर्ण क्रिया के आदेश करनेवाले वाक्य को "प्रधान विधि" कहते हैं। जैसे,—"जिसे पुत्र की कामना हो, वह पुत्रेष्टि, यज्ञ करे"। प्रधान क्रिया के अंतर्गत होनेवाली छोटी छोटी क्रियाओं के निर्देश को 'अंग-विधि' कहते हैं। जैसे,—"चावल से यज्ञ करे" "दधि का हवन करे" इत्यादि।

यौ०—विधि निषेध। उ०—विधि-निषेध-मय कलिमल-हरनी।—तुलसी।

(५) व्याकरण में क्रिया का वह रूप जिसके द्वारा किसी को कोई काम करने का आदेश किया जाता है। जैसे,—वह काम करो या काम करना चाहिए। (६) साहित्य में एक अर्थालंकार जिसमें किसी सिद्ध विषय का फिर से विधान किया जाता है। जैसे,—वर्षा काल के ही मेघ मेघ हैं। (७) आचार-व्यवहार। चालढाल।

यौ०—गतिविधि = चेष्टा और कार्रवाई। जैसे,—उसकी गति विधि पर ध्यान रखना।

(८) भाँति। प्रकार। क़िस्म। तरह। उ०—एहि विधि राम सबहिं समुझावा।—तुलसी।

संज्ञा पुं० [सं०] सृष्टि का विधान करनेवाला। ब्रह्मा। उ०—विधि करतब सब उलटे अहहीं।—तुलसी।

विधिज्ञ-संज्ञा पुं० [सं०] (१) विधि को जाननेवाला। शास्त्रोक्त विधान को जाननेवाला। (२) रीति जाननेवाला।

विधिदर्शी-संज्ञा पुं० [सं० विधिदर्शिन्] यज्ञ में यह देखने के लिये नियुक्त पुरुष कि होता, आचार्य्य आदि ठीक ठीक विधि के अनुकूल कर्म कर रहे हैं या नहीं।

विधिना ‡-संज्ञा पुं० [सं० विधि+ना (प्रत्य०)] विधि। ब्रह्मा।

विधिपाट-संज्ञा पुं० [सं०] मृदंग के चार वर्णों में से एक वर्ण। चारो वर्ण ये हैं—पाट, विधिपाट, कूटपाट और खंडपाट।

विधिपुत्र-संज्ञा पुं० [सं० विधि+पुत्र] ब्रह्मा के पुत्र, नारद।

विधिपुर-संज्ञा पुं० [सं० विधि + पुर] ब्रह्मा का लोक, ब्रह्म-लोक। उ०—स्वर्ग लोक महँ वपथ न देखी। विधिपुर गयो प्राण निज लेखी।—रघुराज।

विधिबोधित-वि० [सं०] शास्त्र विधि द्वारा बताया हुआ। शास्त्रसम्मत।

विधियज्ञ-संज्ञा पुं० [सं०] वह यज्ञ जिसके करने की विधि हो। जैसे,—दर्शपौर्णमास।

विधिरानी॰-संज्ञा स्त्री० [सं० विधि + हिं० रानी (प्रत्य०)] ब्रह्मा की पत्नी, सरस्वती। उ०—बंदौं वाणी बीन कर विधि-रानी विख्यात।—रघुराज।

विधिलोक-संज्ञा पुं० [सं०] ब्रह्मलोक। सत्यलोक।

विधिवत्-क्रि० वि० [सं०] (१) विधिपूर्वक। विधि से। पद्धति के अनुसार। क़ायदे के मुताबिक़। (२) जैसा चाहिए। उचित रूप से। यथा योग्य।

विधिवधू-संज्ञा स्त्री० [सं०] ब्रह्मा की पत्नी, सरस्वती।

विधिवाहन-संज्ञा पुं० [सं०] ब्रह्मा की सवारी, हंस।

विधिसेध-संज्ञा पुं० [सं०] विधि और निषेध।

विधुंतुद-संज्ञा पुं० [सं० विधु + तुद] चंद्रमा को दुःख देनेवाला, राहु। उ०—ज्ञानराकेस-ग्रासन विधुंतुद दलन काम-करि मत्त हरि दूषनारी।—तुलसी।

विधु-संज्ञा पुं० [सं०] (१) चंद्रमा। (२) वायु। (३) कपूर। (४) ब्रह्मा। (५) विष्णु। (६) एक राक्षस का नाम। (७) आयुध। (८) जल-स्नान। (९) पापक्षालन। पाप छुड़ाना।

विधुक्रांत-संज्ञा पुं० [सं०] संगीत का एक ताल।

विधुदार-संज्ञा पुं० [सं० विधु + दारा] चंद्रमा की स्त्री। रोहिणी। उ०—तारा किधौं विधुदार किधौं एतधार सी पावक है परिरंभी।—सबालाल।

विधुपंजर-संज्ञा पुं० [सं०] खड्ग। खाँड़ा।

विधुप्रिया-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) चंद्रमा की स्त्री, रोहिणी। (२) कुमुदिनी।

विधुबंधु-संज्ञा पुं० [सं०] कुमुद का फूल। उ०—विधुबंधुर मुख भा बड़ी वारिज नैन प्रभाति।—रामसहाय।

विधुबैनी॰-संज्ञा स्त्री० [सं० विधु + वदन, प्रा० बयन] चंद्र-मुखी। सुंदरी स्त्री। उ०—संग लिए विधुबैनी बधू रति हू जेहि रंचक रूप दियो है।—तुलसी।

विधुर-संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० विधुरा] (१) दुःखी। (२) घबराया हुआ। डरा हुआ। (४) विकल। व्याकुल। जैसे,—विरह-विधुर। (५) असमर्थ। अशक्त। (६) परित्यक्त। (७) विमूढ़।

संज्ञा पुं० [सं०] (१) कष्ट। दुःख। (२) वियोग। जुदाई। (३) अलग होने की क्रिया या भाव। (४) कैवल्य। मोक्ष। (५) शत्रु।

विधुरा-वि० स्त्री० [सं०] (१) कातर। व्याकुल। पीड़ित। (२) कानों के पीछे की एक स्नायु-ग्रंथि जिसके पीड़ित या ख़राब होने से प्राणी बहरा हो जाता है।

विधुवदनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] चंद्रमा के समान मुखवाली स्त्री। सुंदरी स्त्री। उ०—विधुवदनी सब भाँति सँवारी। सोह न बसन बिना बरनारी।—तुलसी।

विधूत-वि० [सं०] (१) कंपित। काँपता हुआ। (२) हिलता हुआ। डोलता हुआ। (३) त्यागा हुआ। छोड़ाहुआ। त्यक्त। (४) दूर किया हुआ। हटाया हुआ। (५) निकाला हुआ। बाहर किया हुआ।

विधूनन-पुं० पुं० [सं०] कंपन। काँपना।

विधूम-वि० [सं०] धूम रहित। बिना धुएँ का। उ०—जारि बारि कै विधूम वारिधि बुताई लूम।—तुलसी।

विधूम्र-वि० [सं०] धूमिल या मटमैले रंग का। धूसर वर्ण।

विधूयन-संज्ञा पुं० [सं०] कंपन। काँपना।

विधेय-वि० [सं०] (१) विधान के योग्य। जिसका विधान या अनुष्ठान उचित हो। जिसका करना उचित हो। कर्त्तव्य। (२) जिसका विधान हो या होनेवाला हो। जो किया जाय या किया जानेवाला हो। (३) जो नियम या विधि द्वारा जाना जाय। जिसके करने का नियम या विधि हो। (४) वचन या आज्ञा के वशीभूत। अधीन। (५) वह (शब्द या वाक्य) जिसके द्वारा किसी के संबंध में कुछ कहा जाय। जैसे,—"गोपाल सज्जन है" इस वाक्य में "सज्जन है" विधेय है; क्योंकि वह गोपाल के संबंध में कुछ विधान करता है, अर्थात् उसकी कोई विशेषता बताता है।

विशेष—न्याय और व्याकरण में वाक्य के दो मुख्य भाग माने जाते हैं—उद्देश्य और विधेय। जिसके संबंध में कुछ कहा जाता है (अर्थात् कर्त्ता), वह "उद्देश्य" कहलाता है; और जो कुछ कहा जाता है, वह "विधेय" कहलाता है।

विधेयता-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) विधान की योग्यता या औचित्य। (२) अधीनता।

विधेयत्व-संज्ञा पुं० [सं०] विधेयता।

विधेयाविमर्ष-संज्ञा पुं० [सं०] साहित्य में एक वाक्य-दोष जो विधेय अंश को अप्रधान स्थान प्राप्त होने पर होता है। जो बात प्रधानतः कहनी है, उसका वाक्य-रचना के बीच दबा रहना।

विशेष—प्रत्येक वाक्य में विधेय की प्रधानता के साथ निर्देश होना चाहिए। ऐसा न होना दोष है। "विधेय" शब्द के समास के बीच पड़ जाने से या विशेषण रूप से आ जाने पर प्रायः यह दोष होता है। जैसे,—किसी वीर ने खिन्न होकर कहा—"मेरी इन व्यर्थ फूली हुई बाँहों से क्या"। इस वाक्य में कहनेवाले का अभिप्राय तो

यह है कि मेरी बाँहें स्वयं फूली हैं, पर "फूली हैं" के विशेषण रूप में आ जाने से विधेय की प्रधानता नहीं स्पष्ट होती। दूसरा उदाहरण—"मुझ रामानुज के सामने राक्षस क्या ठहरेंगे?" यहाँ कहना चाहिए था कि—मैं राम का अनुज हूँ" तब राम के संबंध से लक्ष्मण की विशेषता प्रकट होती।

विध्य-वि० [सं०] (१) बिंधने योग्य। छिदने योग्य। (२) जिसे बेधना हो। जो छेदा जानेवाला हो।

विध्याभास-संज्ञा पुं० [सं०] एक अर्थालंकार जिसमें घोर अनिष्ट की संभावना दिखाते हुए अनिच्छापूर्वक किसी बात की अनुमति दी जाती है। जैसे,—विदेश जाते हुए नायक के प्रति नायिका का यह कथन "जाते हो तो जाओ! जहाँ जाते हो, मैं भी वहाँ जन्म लेकर पहुँचूँगी"।

विध्वंस-संज्ञा पुं० [सं०] (१) विनाश। नाश। बरबादी। (२) घृणा। (३) अनादर। (४) वैर। (५) वैमनस्य।

विध्वंसक-संज्ञा पुं० [सं०] नाश करनेवाला।

विध्वंसन-संज्ञा पुं० [सं०] [वि० विध्वंसित, विध्वस्त] नाश करना। बरबाद करना।

विध्वंसित-वि० [सं०] नष्ट किया हुआ। बरबाद किया हुआ।

विध्वंसी-संज्ञा पुं० [सं० विध्वंसिन्] [स्त्री० विध्वंसिनी] नाशकारी। नाश करनेवाला। बरबाद करनेवाला।

विध्वस्त-वि० [सं०] नष्ट किया हुआ। बरबाद किया हुआ।

विन†-सर्व० [हिं० वा = उस] प्रथम पुरुष बहुवचन सर्वनाम का वह रूप जो उसे कारक चिह्न लगने के पहले प्राप्त होता है। जैसे,—विन ने, विनको इत्यादि।

अव्य० दे० "विना"।

विनत-वि० [सं०] (१) नीचे की ओर प्रवृत्त। झुका हुआ। (२) टेढ़ा पड़ा हुआ। वक्र। (३) संकुचित। सिकुड़ा हुआ। (४) विनीत। नम्र। (५) शिष्ट। शिक्षित।

संज्ञा पुं० (१) सुग्रीव की सेना का एक बंदर। (२) शिव। महादेव।

विनतक-संज्ञा पुं० [सं०] एक पर्वत का नाम।

विनतड़ी*†-संज्ञा स्त्री० दे० "विनति"। उ०—स्वामी तुम्हीं हीं संग न मेल्हीं वीनतड़ी कहेस।—दादू।

विनता-वि० स्त्री० [सं०] कुबड़ी या खंज। (स्त्री)

संज्ञा स्त्री० (१) दक्ष प्रजापति की एक कन्या जो कश्यप की स्त्री और गरुड़ की माता थी। (२) एक प्रकार का भयानक फोड़ा जो प्रमेह या बहुमूत्र के रोगियों को होता है।

विशेष—जिस स्थान पर यह फोड़ा होता है, वह स्थान मुरदा हो जाने के कारण नीला पड़ जाता है। सुश्रुत आदि प्राचीन ग्रंथों में प्रमेह के अंतर्गत इसकी चिकित्सा लिखी है। यह प्रायः घातक होता है। इसमें अंग बहुत तेज़ी के साथ सड़ता चला जाता है। यदि बढ़ने के पहले ही वह स्थान काटकर अलग कर दिया जाय, तो रोगी बच सकता है। (३) एक राक्षसी जो व्याधि लाती है। (महाभारत) (४) एक राक्षसी जिसे रावण ने सीता को समझाने के लिये नियुक्त किया था।

विनतासूनु-संज्ञा पुं० [सं०] (१) अरुण। (२) गरुड़।

विनति-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) झुकाव। (२) नम्रता। विनय। शिष्टता। सुशीलता। (३) अनुनय। प्रार्थना। विनती। (४) निवारण। रोक। (५) दमन। शासन। दंड। (६) विनियोग।

विनती-संज्ञा स्त्री० दे० "विनति"।

विनद-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का पेड़। विन्याक वृक्ष।

विनमन-संज्ञा पुं० [सं०] [वि० विनत] (१) नम्र करना। झुकाना। (२) लचाना।

विनम्र-वि० [सं०] (१) झुका हुआ। (२) विनीत। सुशील।

संज्ञा पुं० तगर का फूल।

विनय-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) व्यवहार में दीनता या अधीनता का भाव। नम्रता। प्रणति। आजिज़ी। (२) शिक्षा। (३) प्रार्थना। विनती। अनुनय। (४) शासन। तंबीह। (स्मृति) (५) नीति। उ०—नमत सबै करि विनय, विनय मत सबै बखानत।—गोपाल।

संज्ञा पुं० (१) वणिक्। बनिया। (२) वश्य। वशिष्ठा। (३) जितेंद्रिय। संयमी।

विनयधर-संज्ञा पुं० [सं०] पुरोहित।

विनय-पिटक-संज्ञा पुं० [सं०] आदि बौद्ध शास्त्रों में से एक।

विशेष—आदि बौद्ध शास्त्र जो पाली भाषा में हैं, तीन भागों में विभक्त हैं—विनय-पिटक, सूत्र-पिटक और अभिधर्म-पिटक। ये तीनों "त्रिपिटक" नाम से प्रसिद्ध हैं। बुद्धदेव ने अपनी शिष्यमंडली को भिक्षुधर्म के जो उपदेश दिए थे, वही विनय-पिटक में संगृहीत हैं। इसके संकलन के संबंध में यह कथा है कि बुद्धभगवान् तथा सारिपुत्र, मौद्गलायन आदि प्रधान प्रधान शिष्यों के निर्वाण लाभ करने पर बौद्ध शास्त्र के लुप्त होने का भय हुआ। इससे महाकश्यप ने अजातशत्रु के राजत्व काल में राजगृह के पास वैभार पर्वत की सप्तपर्णी नाम की गुफा में पाँच सौ स्थविरों को आमंत्रित करके एक बड़ी सभा की, जिसमें उपालि ने बुद्ध द्वारा उपदिष्ट "विनय" का प्रकाश किया। इसके पीछे एक बार फिर गड़बड़ उपस्थित होने पर वैशाली के बालिकाराम में सभा हुई जिसमें "विनय" का फिर संग्रह हुआ। इस प्रकार कई संकलनों के उपरांत अशोक के समय में 'विनय' पूर्ण रूप से संकलित हुआ।

विनयवान्-वि० [सं० विनयवत्] [स्त्री० विनयवती] जिसमें नम्रता हो। शिष्ट।

विनयशील-वि० [सं०] विनययुक्त । नम्र । सुशील । शिष्ट ।
विनया-संज्ञा स्त्री० [सं०] यास्पालक । वरियारा ।
विनयी-वि० [सं० विनयिन्] विनययुक्त । नम्र ।
विनवन-क्रि० अ०, क्रि० स० दे० "विनवना" ।
विनशन-संज्ञा पुं० [सं०] [वि० विनष्ट, विनश्वर] नष्ट होना । नाश । बरबादी ।
विनशना-क्रि० अ० दे० "विनसना" ।
विनशाना-क्रि० स० दे० "विनसाना" ।
विनश्वर-वि० [सं०] सब दिन या बहुत दिन न रहनेवाला । नष्ट होनेवाला । ध्वंसशील । अचिरस्थायी । अनित्य । जैसे,—शरीर विनश्वर है ।
विनश्वरता-संज्ञा स्त्री० [सं०] अनित्यता । अचिरस्थायित्व ।
विनष्ट-वि० [सं०] (१) नाश को प्राप्त । जो बरबाद हो गया हो । जो न रह गया हो । जिसका अस्तित्व मिट गया हो । ध्वस्त । (२) मृत । मरा हुआ । (३) जो विकृत या खराब हो गया हो । जो व्यवहार के योग्य न रह गया हो । जो निकम्मा हो गया हो । बिगड़ा हुआ । (४) जिसका आचरण बिगड़ गया हो । भ्रष्ट । पतित ।
क्रि० प्र०—करना । - होना ।
विनष्टि-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) नाश । (२) लोप । (३) पतन ।
विनस-वि० [सं०] जिसे नासिका न हो । विना नाक का । नकटा ।
विनसना*-क्रि० अ० [सं० विनशन] नष्ट होना । न रहना । लुप्त होना । उ०—उपजै विनसै ज्ञान जिमि पाइ सुसंग कुसंग ।—तुलसी ।
विनसाना*-क्रि० स० [हिं० विनसना का प्रे० रूप] (१) नष्ट करना । (२) बिगाड़ना ।
क्रि० अ० दे० "विनसना" ।
विना-अव्य० [सं०] (१) अभाव में । न रहने की अवस्था में । बगैर । जैसे,—तुम्हारे विना यह काम न बनेगा । (२) छोड़कर । अतिरिक्त । सिवा । जैसे,—तुम्हारे विना और कौन यह काम कर सकता है ?
विनाड़ी-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक घड़ी का साठवाँ भाग । पल ।
विनती*‡-संज्ञा स्त्री० [सं० विनती] विनती । विनय । उ०—ए गोसाईं, सुनु मोरि विनती ।—जायसी ।
विनाथ-वि० [सं०] जिसका कोई रक्षक न हो । अनाथ । उ०—नाथ नाथ विनाथ नाथ अनाथ नाथ सुसिद्ध ।—केशव ।
विनाम-संज्ञा पुं० [सं०] (१) झुकाव । टेढ़ापन । (२) किसी पीड़ा द्वारा शरीर का झुक जाना । (भावप्रकाश)
विनायक-संज्ञा पुं० [सं०] गणों के नायक, गणेश । (२) गरुड़ । (३) विघ्न । बाधा । उ०—लसत विनायक-केतु विनायक नसत निरखि रथ ।—गोपाल । (४) गुरु । (५) देवी का एक स्थान । (६) बुद्धदेव ।

विनायक-केतु-संज्ञा पुं० [सं०] गरुड़ध्वज । श्रीकृष्ण । उ०—लसत विनायक-केतु विनायक नसत निरखि रथ ।—गोपाल ।
विनायक चतुर्थी संज्ञा स्त्री० [सं०] माघ महीने की शुक्ला चतुर्थी । माघ सुदी चौथ । गणेशचतुर्थी ।
विशेष—इस दिन गणेश का पूजन और व्रत होता है ।
विनाश-संज्ञा पुं० [सं०] (१) अभाव हो जाना । अस्तित्व का न रह जाना । न रहना । नाश । मिटना । ध्वंस । बरबादी । (२) लोप । अदर्शन । (३) बिगड़ जाने का भाव । खराब हो जाना । निकम्मा हो जाना । चौपट होना । खराबी । (४) बुरी दशा । तबाही । (५) हानि । नुकसान ।
विनाशक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) विनाश करनेवाला । क्षय करनेवाला । (२) बिगाड़नेवाला । खराब करनेवाला । घातक ।
विनाशन-संज्ञा पुं० [सं०] [वि० विनाशी, विनाश्य] (१) नष्ट करना । ध्वस्त करना । बरबाद करना । (२) संहार करना । वध करना । उ०—दससीस विनासन बीस भुजा—तुलसी । (३) खराब करना । बिगाड़ना । (४) एक असुर जो काल का पुत्र था ।
विनाशित-वि० [सं०] (१) नष्ट किया हुआ । ध्वस्त किया हुआ । (२) मारा हुआ । (३) बिगाड़ा हुआ । खराब किया हुआ ।
विनाशी-वि० [सं० विनाशिन्] [स्त्री० विनाशिनी] (१) नष्ट करनेवाला । ध्वस्त करनेवाला । बरबाद करनेवाला । (२) वध करनेवाला । मारनेवाला । (३) बिगाड़नेवाला । खराब करनेवाला ।
विनाश्य-वि० [सं०] विनाश योग्य ।
विनास*‡-संज्ञा पुं० दे० "विनाश" ।
विनासक-वि० [सं०] विना नाक का । नकटा ।
*संज्ञा पुं० दे० "विनाशक" ।
विनासन*-संज्ञा पुं० दे० "विनाशन" ।
विनासना*-क्रि० स० [सं० विनाशन] (१) नष्ट करना । ध्वस्त करना । बरबाद करना । न रहने देना । (२) संहार करना । वध करना । (३) खराब करना । बिगाड़ना ।
क्रि० अ० नष्ट होना । बरबाद होना ।
विनिंदक-संज्ञा पुं० [सं०] अत्यंत निंदा करनेवाला ।
विनिंदा-संज्ञा स्त्री० [सं०] अतिशय निंदा । बहुत बुराई ।
विनिंदित-वि० [सं०] जिसकी बहुत निंदा हुई हो । लांछित ।
विनिःसृत-वि० [सं०] निकला हुआ । जो बाहर हुआ हो ।
विनिगमक-वि० [सं०] दो पक्षों में से किसी एक पक्ष को सिद्ध करनेवाला ।
विनिगमना-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) दो परस्पर विरुद्ध पक्षों में से किसी एक पक्ष का युक्ति और प्रमाण द्वारा निश्चय । दो बातों में से किसी एक बात के ठीक होने का निर्णय जो विचार और तर्क द्वारा हो । (वैशेषिक) (२) सिद्धांत । नतीजा ।

विनिग्रह-संज्ञा पुं० [सं०] (१) नियम । प्रबंध । प्रतिबंध । (२) अपनी किसी वृत्ति को दबाकर अधीन करना । संयम । (३) अवरोध । रुकावट । (४) व्याघात । बाधा ।

विनिघ्न-वि० [सं०] (१) नष्ट । बरबाद । (२) गुणित । गुणा किया हुआ ।

विनिद्र-संज्ञा पुं० [सं०] अस्त्र का एक संहार जिससे अस्त्र द्वारा निद्रित या मूर्च्छित व्यक्ति की नींद या बेहोशी दूर होती है । वि० जिसकी नींद खुल गई हो ।

विनिपात-संज्ञा पुं० [सं०] (१) विनाश । ध्वंस । बरबादी । (२) वध । हत्या । (३) अवमान । अनादर । नज़र से गिरना ।

विनिपातक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) विनाशकारी । (२) संहारकर्त्ता । (३) अपमान करनेवाला ।

विनिमय-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक वस्तु लेकर बदले में दूसरी वस्तु देने का व्यवहार । अदल बदल । परिवर्त्तन । परिदान । (२) गिरवी । बंधक ।

विनियुक्त-वि० [सं०] (१) किसी काम में लगाया हुआ । नियोजित । (२) अर्पित । (३) प्रेरित ।

विनियोग-संज्ञा पुं० [सं०] (१) किसी फल के उद्देश्य से किसी वस्तु का उपयोग । किसी विषय में लगाना । प्रयोग । (२) किसी वैदिक कृत्य में मंत्र का प्रयोग । (३) प्रेषण । भेजना । (४) प्रवेश । घुसना ।

विनियोजित-वि० [सं०] (१) प्रयुक्त । नियुक्त । लगाया हुआ । (२) अर्पित । (३) प्रेरित ।

विनिर्गत-वि० [सं०] (१) निकला हुआ । जो बाहर हुआ हो । बहिर्गत । (२) गया हुआ । जो चला गया हो । निष्क्रांत । (३) बीता हुआ । अतीत ।

विनिर्गम-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बाहर होना । निकलना । (२) प्रस्थान । चला जाना ।

विनिर्भोग-संज्ञा पुं० [सं०] एक कल्प का नाम ।

विनिर्माण-संज्ञा पुं० [सं०] [वि० विनिर्मित] विशेष रूप से निर्माण । अच्छी तरह बनना ।

विनिर्मित-वि० [सं०] विशेष रूप से निर्मित या बना हुआ । जैसे,—प्रस्तर विनिर्मित भवन ।

विनिर्मुक्त-वि० [सं०] (१) बाहर निकला हुआ । बहिर्गत । (२) जो खुला हो या ढँका न हो । अनाच्छन्न । (३) छूटा हुआ । बंधन से रहित । ।

विनिर्मोक-वि० [सं०] निर्मोक रहित । बिना पहनावे का । वस्त्र रहित । परिधान शून्य ।

विनिवर्त्तन-संज्ञा पुं० [सं०] [वि० विनिवर्तित, विनिवर्त्ती] लौटना ।

विनिवेश-संज्ञा पुं० [सं०] प्रवेश । घुसना ।

विनिवेशन-वि० [सं०] [वि० विनिवेशित, विनिवेशी] (१) प्रवेश । घुसना । (२) अधिष्ठान । स्थिति । वास । रहायस ।

विनिवेशित-वि० [सं०] (१) प्रविष्ट । घुसा हुआ । (२) ठहरा या टिका हुआ । अधिष्ठित । स्थापित । (३) बसा हुआ ।

विनिवेशी-वि० [सं० विनिवेशिन्] [स्त्री० विनिवेशिनी] (१) प्रवेश करनेवाला । घुसनेवाला । (२) रहनेवाला । बसनेवाला ।

विनिहत-वि० [सं०] (१) चोट खाया हुआ । आहत । (२) विनष्ट । ध्वस्त । बरबाद । (३) मरा हुआ । मृत । (४) लुप्त ।

विनीत-वि० [सं०] (१) जिसमें उत्तम शिक्षा का संस्कार और शिष्टता हो । विनययुक्त । सुशील । (२) व्यवहार में अधीनता प्रकट करनेवाला । शिष्ट । नम्र । (३) जितेंद्रिय । (४) संयमी । (५) ग्रहण किया हुआ । (६) सिखाया हुआ । (७) दूर किया हुआ । हटाया हुआ । (८) ले गया हुआ । (९) जिसको तंबीह की गई हो । दंडित । शासित । (१०) नीतिपूर्वक व्यवहार करनेवाला । धार्मिक । (११) साफ़ धुला । (कपड़ा आदि)

संज्ञा पुं० (१) वणिक् । बनिया । साहु । (२) निकाला हुआ घोड़ा । (३) पुलस्त्य के एक पुत्र का नाम । (४) दमनक । दौने का पौधा ।

विनीतता-संज्ञा स्त्री० [सं०] विनीत होने का भाव । नम्रता ।

विनीति-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) विनय । सुशीलता । (२) सद्व्यवहार । (३) सम्मान ।

विनु*†-अव्य० दे० "विना" ।

विनुति-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) प्रशंसा । (२) एक एकाह कृत्य का नाम । (आश्वलायन श्रौत सूत्र)

विनूठा†-वि० [हिं० अनूठा] अनूठा । सुंदर । बढ़िया ।

विनोक्ति-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) एक अलंकार जिसमें किसी वस्तु की हीनता या श्रेष्ठता वर्णन की जाती है । उ०—(क) जिय बिनु देह नदी बिनु वारी । तैसइ नाथ पुरुष बिनु नारी ।—तुलसी । (ख) कैसे नीके लगत ये बिनु सँकोच के बैन ।—बिहारी ।

विनोद-संज्ञा पुं० [सं०] (१) कौतूहल । तमाशा । मनोरंजक व्यापार । (२) क्रीड़ा । खेल कूद । लीला । (३) प्रमोद । हँसी दिल्लगी । परिहास । (४) कामशास्त्र के अनुसार एक प्रकार का आलिंगन । (५) एक प्रकार का प्रासाद । प्रमोदगृह । (६) हर्ष । आनंद । प्रसन्नता ।

विनोदन-संज्ञा पुं० [सं०] [वि० विनोदित, विनोदी] (१) ऐसे व्यापार करना जिनका उद्देश्य केवल मनोरंजन हो । आमोद प्रमोद करना । क्रीड़ा करना । खेल कूद करना । (२) हँसी दिल्लगी या हास विलास करना । (३) आनंद करना ।

विनोदित-वि० [सं०] (१) हर्षित । प्रसन्न । (२) कुतूहलयुक्त ।

विनोदी-वि० [सं० विनोदिन्] [स्त्री० विनोदिनी] (१) कुतूहल करनेवाला। आमोद प्रमोद करनेवाला। क्रीड़ा करनेवाला। (२) खेल कूद करनेवाला। चुहलबाज़। (३) जिसका स्वभाव आमोद प्रमोद करने का हो। आनंदी। (४) क्रीड़ाशील। खेलकूद या हँसी ठट्ठे में रहनेवाला। उ०—स्याम विनोदी रे मधुबनिया।—सूर।

विन्यस्त-वि० [सं०] (१) रखा हुआ। स्थापित। (२) यथा स्थान बैठाया हुआ। जड़ा हुआ। (३) करीने से लगा हुआ। (४) डाला हुआ। क्षिप्त।

विन्याक-संज्ञा पुं० [सं०] मरियारा नाम का पौधा।

विन्यास-संज्ञा पुं० [सं०] [वि० विन्यस्त] (१) स्थापन। रखना। धरना। (२) यथा स्थान स्थापन। ठीक जगह पर करीने से रखना या बैठाना। सजाना। रचना। (३) जड़ना। (४) किसी स्थान पर डालना।

विपंची-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) एक प्रकार का बाजा जिसमें तार लगे रहते हैं। एक प्रकार की वीणा। उ०—(क) नवल वसंत धुनि सुनिये विपंची नाद पंचम सुरनि ठानी औठनि अमेठिये।—देव। (ख) तंत्री वीणा वल्लकी बहुरि विपंची आहि।—नंददास। (२) केलि। क्रीड़ा। खेल।

विपक्व-वि० [सं०] (१) खूब पका हुआ। (२) पूर्ण अवस्था को प्राप्त। (३) जो पका न हो। कच्चा।

विपक्ष-संज्ञा पुं० [सं०] (१) विरुद्ध पक्ष। किसी बात के विरुद्ध दूसरी स्थिति। (२) शत्रु या विरोधी का पार्श्व। (३) विरोध करनेवाला दल। शत्रु पक्ष। विरोधी। प्रतिद्वंद्वी। दूसरा फरीक। जैसे,—विपक्ष में जाना। (४) प्रतिवादी या शत्रु। विरुद्ध दल का मनुष्य। (५) किसी बात के विरुद्ध की स्थापना। विरोध। खंडन। जैसे,—इसके विपक्ष में तुम्हें क्या कहना है? (६) व्याकरण में किसी नियम के कुछ विरुद्ध व्यवस्था। बाधक नियम। अपवाद। (७) न्याय या तर्क शास्त्र में वह पक्ष जिसमें साध्य का अभाव हो।

वि० (१) विरुद्ध। खिलाफ़। प्रतिकूल। (२) उलटा। विपरीत। (३) जिसके पक्ष में कोई न हो। जिसका कोई तरफदार न हो। (४) बिना पर या डैने का। पक्षहीन।

विपक्षता-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) विरुद्ध पक्ष का अवलंबन। (२) विपक्ष होने की क्रिया या भाव। खिलाफ़ होना।

विपक्षी-संज्ञा पुं० [सं० विपक्षिन्] (१) विरुद्ध पक्ष का। दूसरी तरफ का। (२) शत्रु। प्रतिद्वंद्वी। प्रतिवादी। फ़रीक़ सानी। (३) बिना पक्ष का। बिना पंख या डैने का। उ०—गिरिहिं विपच्छ बनाइ।—गुमान।

विपत्ति-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) कष्ट, दुःख या शोक की प्राप्ति। भारी रंज या तकलीफ का आ पड़ना। आफ़त। (२) क्लेश या शोक की स्थिति। रंज या तकलीफ़ की हालत। संकट की अवस्था। बुरे दिन। जैसे,—विपत्ति में कोई साथी नहीं होता।

क्रि० प्र०—आना।—पड़ना।

मुहा०—विपत्ति उठाना = संकट या कष्ट सहना। रंज या तकलीफ बरदाश्त करना। विपत्ति काटना = संकट या कष्ट के दिन बिताना। रंज या तकलीफ में रहना। विपत्ति झेलना = कष्ट या शोक सहना। (किसी पर) विपत्ति डालना = (किसी को) शोक या दुःख पहुँचाना। किसी को रंज या तकलीफ़ में डालना। (किसी पर) विपत्ति ढहना = सहसा कोई दुःख या शोक उपस्थित होना। एक बारगी आफ़त आना। विपत्ति में डालना = संकट या दुःख की अवस्था में करना। विपत्ति में पड़ना = शोक, दुःख या संकट की दशा को प्राप्त होना। विपत्ति भुगतना या भोगना = शोक, दुःख या संकट सहना।

(३) कठिनाई। झंझट। बखेड़ा।

मुहा०—विपत्ति मोल लेना = व्यर्थ अपने ऊपर झंझट लेना। बखेड़े में पड़ना। विपत्ति सिर पर लेना = व्यर्थ झंझट में पड़ना। दिक़्क़त में पड़ना।

विपथ-संज्ञा पुं० [सं०] (१) कुमार्ग। बुरा रास्ता। (२) बगल का रास्ता। (३) बुरी चाल। मंद आचरण। (४) एक प्रकार का रथ।

विपद्-संज्ञा स्त्री० [सं०] विपत्ति। आफ़त। संकट।

विपदा-संज्ञा स्त्री० [सं०] विपत्ति। आफ़त। दुःख, शोक या संकट।

विपन्न-वि० [सं०] (१) जिस पर विपत्ति पड़ी हो। विपत्ति में पड़ा हुआ। मुसीबत का मारा। (२) दुःखी। आर्त्त। (३) कठिनाई या झंझट में पड़ा हुआ। (४) भूला हुआ। भ्रम में पड़ा हुआ। (५) मृत।

विपरीत-वि० [सं०] (१) जो मेल में या अनुरूप न हो। जो विपर्य्यय के रूप में हो। उलटा। विरुद्ध। खिलाफ़। (२) किसी की इच्छा या हित के विरुद्ध। प्रतिकूल। जैसे,—विपरीत आचरण। (३) अनिष्ट साधन में तत्पर। रुष्ट। जैसे,—दैव या विधि का विपरीत होना। (४) हितसाधन के अनुपयुक्त। दुःखद। जैसे,—विपरीत समय। उ०—आजु विपरीत समय सब ही विपरीत है।

संज्ञा पुं० (१) केशव के अनुसार एक अर्थालंकार जिसमें कार्य्य की सिद्धि में स्वयं साधक का बाधक होना दिखाया जाता है। उ०—राधा जू सों कहा कहौं दूतिन की मानैं सीख साँपिनी सहित विष रहित फनिन की। क्यों न परै बीच, बीच आँगियौ न सहि सकै, बीच परी अंगना अनेक आँगननि की। (यहाँ दूती को साधक होना चाहिए था, पर वह बाधक हुई।) (२) सोलह प्रकार के रति बंधों में से दूसरा रतिबंध।

विपरीतता-संज्ञा स्त्री० [सं०] विपरीत होने का भाव।
विपरीता-संज्ञा स्त्री० [सं०] दुश्चरित्रा स्त्री।
विपरीतार्थ-वि० [सं०] जिसका अर्थ उलटा हो।
विपरीति-संज्ञा स्त्री० दे० "विपरीत"।
विपरीतोपमा-संज्ञा स्त्री० [सं०] केशव के अनुसार एक अलंकार जिसमें किसी भाग्यवान व्यक्ति की हीनता वर्णन की जाय और वह अति हीन दशा में दिखाया जाय। यथा—देखिय मंडित दंडन सों, भुजदंड दोऊ असि दंड विहीनो। राजनि श्री रघुनाथ के राज कुमंडल छाँड़ि कमंडल लीनो।——केशव।
विपर्णक-वि० [सं०] पर्ण रहित। बिना पत्तों का।
संज्ञा पुं० पलाश का पेड़। टेसू।
विपर्य्यय-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक वस्तु का दूसरी के स्थान पर और दूसरी का पहली के स्थान पर होना। उलट पलट। इधर का उधर। जैसे,—वर्ण-विपर्य्यय। (२) ऐसा परिवर्त्तन जिसमें दो वस्तुओं की स्थिति पूर्व स्थित से विरुद्ध हो जाय। जैसी चाहिए, उससे विरुद्ध स्थिति। और काऔर। व्यतिक्रम। (३) मिथ्या ज्ञान। और का और समझना।
विशेष—योग-दर्शन के अनुसार 'विपर्य्यय' चित्त की पाँच प्रकार की वृत्तियों (प्रमाण, विकल्प आदि) में से एक है। जैसे, रस्सी को साँप, या सीप को चाँदी समझना। यथार्थ ज्ञान द्वारा इसका निराकरण होता है। इस 'विपर्य्यय' या विपरीतज्ञान के पाँच अवयव कहे गए हैं—अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश। इन्हीं को सांख्य में क्रमशः तम, मोह, महामोह, तामिस्र और अंधतामिस्र कहते हैं।
(४) भ्रम। भूल। ग़लती। समझ का फेर। (५) गड़बड़ी। अव्यवस्था। (६) नाश।
विपर्य्यस्त-वि० [सं०] (१) जिसका विपर्य्यय हुआ हो। जो उलट पलट गया हो। जो इधर का उधर हो गया हो। (२) अस्त व्यस्त। गड़बड़। चौपट।
विपर्य्यास-संज्ञा पुं० [सं०] [वि० विपर्य्यस्त] (१) विपर्य्यय। उलट पलट। इधर का उधर। व्यतिक्रम। (२) पूर्व से विरुद्ध स्थिति। एक वस्तु का दूसरी के स्थान पर होना। (३) जैसी चाहिए, उससे विरुद्ध स्थिति। और का और। (४) मिथ्या ज्ञान। और का और समझना।
विशेष—न्याय में भ्रमात्मक बुद्धि का नाम विपर्य्यास है। जैसे,—रस्सी को साँप समझना।
विपल-संज्ञा पुं० [सं०] समय का एक अत्यंत छोटा विभाग जो एक पल का साठवाँ भाग होता है।
विपवन-वि० [सं०] [वि० विपवनीय, विपव्य] विशेष रूप से पवित्र करनेवाला।
संज्ञा पुं० विशुद्ध पवन। साफ़ हवा।
विपशी-संज्ञा पुं० [सं० विपशिन्] एक बुद्ध का नाम।
विपश्यन-संज्ञा पुं० [सं०] प्रकृत ज्ञान। यथार्थ बोध। (बौद्ध)
विपश्चित्-वि० [सं०] पंडित। बुद्धिमान्। सूक्ष्मदर्शी। उ०—तेहि कारण शिव गंग तेहि गहैं विपश्चित लोक। यहि में मज्जन किये ते मिटैं महा अघ शोक।—शंकर दिग्विजय।
विपश्यी-संज्ञा पुं० [सं० विपश्यिन्] एक बुद्ध का नाम।
विपस्-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मेधा। बुद्धि। (२) ज्ञान। समझ।
विपांडुरा-संज्ञा स्त्री० [सं०] महामेदा।
विपाक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) परिपक्व होना। पचन। पकना। (२) पूर्ण दशा को पहुँचना। तैयारी पर आना। काम उतरना। (३) फल। परिणाम। (४) कर्म का फल।
विशेष—योग दर्शन में यह विपाक तीन प्रकार का कहा गया है—जाति (जन्म), आयु और भोग।
(५) खाए हुए भोजन का पेट में पचना। खाए द्रव्य की पेट के अंदर रस-रूप में परिणति। (६) दुर्गति। दुर्दशा। (७) स्वाद। ज़ायका।
विपाट-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का बाण।
विपाटन-संज्ञा पुं० [सं०] उखाड़ना। खोदना।
विपाठ-संज्ञा पुं० [सं०] बाण। तीर।
विपात-संज्ञा पुं० [सं०] पातन। नाश।
विपातक-संज्ञा पुं० [सं०] नाश करनेवाला। नाशक।
विपातन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) गलाना। (२) नाश करना।
विपादन-संज्ञा पुं० [सं०] [वि० विपादित] वध। हत्या।
विपादिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) कुष्ट रोग का एक भेद। अपरस।
विशेष—यह पैर में होता है। इससे उँगलियों के पास से ऊपर तक चमड़े में दरारें पड़ जाती हैं और बड़ी खुजली होती है। पीड़ा के कारण पैर नहीं रखा जाता।
(२) प्रहेलिका। पहेली।
विपादित-वि० [सं०] विनाशित। नष्ट किया हुआ।
विपापा-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक नदी का नाम। (महाभारत)
विपाल-वि० [सं०] (पशु) जिसका कोई पालनेवाला या मालिक न हो। (स्मृति)
विपाशा-संज्ञा स्त्री० [सं०] व्यास नदी जो पंजाब में है। वि० दे० "विपाशा"।
विपाशा-संज्ञा स्त्री० [सं०] पंजाब की एक नदी। व्यास।
विशेष—ऋग्वेद में इस नदी का उल्लेख शतुद्री (सतलज) के साथ है।
विपिन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वन। जंगल। (२) उपवन। वाटिका।
वि० भयानक। डरावना।

विपिनचर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वन में रहनेवाला। वनचर। (२) जंगली आदमी। (३) पशु पक्षी आदि।

विपिनतिलका-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक वर्ण वृत्ति जिसके प्रत्येक चरण में नगण, सगण, नगण और दो रगण (न, स, न, र, र अर्थात् ।।।, ।।ऽ, ।।।, ऽ।ऽ, ऽ।ऽ) होते हैं।

विपिनपति-संज्ञा पुं० [सं०] वन का राजा, सिंह। उ०—जिमि भेरी दल लै विपिन-पति, रिसि दुचंग मन में धरत। तिमि लख्यो प्रवीन उताल गति सुर सिंगार करि समर रत। —गोपाल।

विपिनविहारी-संज्ञा पुं० [सं० विपिन+विहारी] (१) वन में विहार करनेवाला। वनचारी। (२) कृष्ण का एक नाम। उ०—दरसन पाइ थकित भईं सारी। कहत भये तब विपिनविहारी।—विश्राम।

विपुंसक-वि० [सं०] पुंसत्व रहित। पुरुषत्व से हीन।

विपुंसी-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्त्री जिसकी चेष्टा, स्वभाव या आकृति पुरुषों की सी हो।

विपुत्र-वि० [सं०] [स्त्री० विपुत्रा] पुत्र-रहित। पुत्र-हीन।

विपुल-वि० [सं०] [स्त्री० विपुला] (१) विस्तार, संख्या या परिमाण में बहुत अधिक। (२) वृहत्। बड़ा। अगाध। बहुत गहरा।

संज्ञा पुं० (१) सुमेरु पर्वत का पश्चिमी भाग। (२) मगध देश की प्राचीन राजधानी राजगृह के पास की एक पहाड़ी। (३) हिमालय। (४) एक देवी-पीठ। देवी का एक प्रधान स्थान जहाँ की देवी का नाम विपुला है। (५) रोहिणी से उत्पन्न वसुदेव के एक पुत्र का नाम। उ०—विपुल विपुल-बल चल्यो रचत रन में पुल सर को।—गोपाल।

विपुलक-वि० [सं०] (१) बहुत चौड़ा। (२) जिसे रोमांच न हो। पुलक-रहित।

विपुलता-संज्ञा स्त्री० [सं०] आधिक्य। बहुतायत। बड़ाई।

विपुलपार्श्व-संज्ञा पुं० [सं०] एक पर्वत का नाम।

विपुलमति-वि० [सं०] बहुत बुद्धिवाला। बहुत बुद्धिमान्।

संज्ञा पुं० एक बोधिसत्व का नाम।

विपुलस्कंध-संज्ञा पुं० [सं०] अर्जुन का एक नाम।

विपुला-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) पृथ्वी। वसुन्धरा। (२) एक प्रकार का छंद, जिसके प्रत्येक चरण में भगण, रगण और दो लघु होते हैं। (३) आर्य्या छंद के तीन भेदों में एक भेद जिसके प्रथम चरण में १८, दूसरे में १२, तीसरे में १४ और चौथे में १३ मात्राएँ होती हैं। (४) विपुल नामक पर्वत की अधिष्ठात्री देवी। (५) एक प्रसिद्ध सती जो 'बहुला' के नाम से प्रसिद्ध है।

विपुलाई-संज्ञा स्त्री० [सं० विपुल+आई (हिं० प्रत्य०)] विपुलता। अधिकता। ज्यादती।

विपुलाश्रया-संज्ञा स्त्री० [सं०] घृतकुमारी। घी कुआँर। ग्वारपाठा।

विपुष्पित-वि० [सं०] हर्षित। प्रफुल्ल।

विपूय-संज्ञा पुं० [सं०] मुंजतृण। मूँज।

विपोहना-क्रि० स० [सं० वि०+प्रोत] (१) पोतना। लीपना। (२) नाश करना। मिटाना। उ०—ज्योति जगै जमुना सी लगै जग लाल विलोचन पाप विपोहै।—केशव। (३) दे० "पोहना"।

विप्र-संज्ञा पुं० [सं०] (१) ब्राह्मण

विशेष—जो यजन याजन आदि कर्म पूर्ण रीति से करता हो, वह विप्र है। विशेष दे० "ब्राह्मण"।

(२) पुरोहित। यज्ञ करानेवाला। (३) वेद मंत्रों को जानने-वाला। कर्मनिष्ठ। (४) शिरीष वृक्ष। सरिस का पेड़। (५) अश्वत्थ। पीपल का पेड़। (६) पापर का पौधा जो औषध के काम में आता है। रेणुक।

वि० मेधावी। बुद्धिमान्।

विप्रकर्षण-संज्ञा पुं० [सं०] [वि० विप्रकृष्ट] (१) दूर खींच ले जाना। दूर हटाना। (२) किसी कर्म या कृत्य का अंत।

विप्रकार-संज्ञा पुं० [सं०] [वि० विप्रकृत] (१) तिरस्कार। अनादर। (२) अपकार।

अव्य० विविध प्रकार से।

विप्रकाष्ठ-संज्ञा पुं० [सं०] नरमा या कपास का पौधा।

विप्रकीर्ण-वि० [सं०] (१) बिखरा हुआ। छितराया हुआ। इधर उधर पड़ा हुआ। (२) अस्त व्यस्त। अव्यवस्थित। गड़बड़।

विप्रकृति-संज्ञा स्त्री० [सं०] विप्रकार। अपकार।

विप्रकृष्ट-वि० [सं०] (१) खींचकर दूर किया हुआ। (२) जो दूरी पर हो। दूरस्थ।

विप्रचरण-संज्ञा पुं० [सं०] [सं० विप्र+चरण] भृगु मुनि की लात का चिह्न जो विष्णु के हृदय पर माना जाता है। उ०—(क) उर बन माल पदिक अति शोभित, विप्रचरन चित कहँ कापै।—तुलसी। (ख) उर मनि-हार पदिक की सोभा। विप्रचरन देखत मन लोभा।—तुलसी।

विप्रचित्-संज्ञा पुं० दे० "विप्रचित्ति"।

विप्रचित्ति-संज्ञा पुं० [सं०] एक दानव जिसकी पत्नी सिंहिका के गर्भ से राहु की उत्पत्ति हुई थी।

विप्रता-संज्ञा स्त्री० [सं०] ब्राह्मणत्व।

विप्रतारक-संज्ञा पुं० [सं०] बहुत धोखा देनेवाला।

विप्रतिपत्ति-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) विरोध। मेल न बैठना। जैसे,—मनुष्यों के स्वार्थ की विप्रतिपत्ति। (मिताक्षरा) (२) ऐसा कथन जिसके अंदर दो ऐसी बातें हों जो एक साथ न हो सकती हों। परस्पर विरुद्ध वाक्य। (न्याय)

विप्रलोप-संज्ञा पुं० [सं०] [वि० विप्रलुप्त] (१) बिल्कुल लोप। (२) नाश।

विप्रवाद-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बुरे वचन। (२) व्यर्थ बकवाद। (३) कलह। विवाद। झगड़ा।

विप्रवास-संज्ञा पुं० [सं०] [वि० विप्रवसित] (१) विदेश में वास। परदेस में रहना। (२) संन्यास आश्रम में एक अपराध जो अपने कपड़े दूसरे को देने से होता है।

विप्रभजनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्त्री जो दो पुरुषों से संबंध रखे।

विप्रश्न-संज्ञा पुं० [सं०] वह प्रश्न जिसका उत्तर फलित ज्योतिष द्वारा दिया जाय।

विप्रश्निक-संज्ञा पुं० [सं०] दैवज्ञ। ज्योतिषी।

विप्रष्ट-संज्ञा पुं० [सं०] एक यादव का नाम जो बलराम जी का छोटा भाई लगता था।

विप्रसारण-संज्ञा पुं० [सं०] विस्तार करना। फैलाना।

विप्रहरण-संज्ञा पुं० [सं०] (१) त्याग। (२) मुक्ति।

विप्रिय-वि० [सं०] (१) अप्रिय। (२) कटु। (३) अतिशय प्रिय। (४) वियोग।

संज्ञा पुं० अपराध। कुसूर।

विप्रुट्-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) पानी की छोटी बूँद या छींटा। (२) थूक का वह छींटा जो वेद पाठ करने में उड़ता है।

विशेष—मनुस्मृति के अनुसार ऐसा छींटा अपवित्र नहीं है।

विप्रुप-संज्ञा पुं० [सं०] पानी की छोटी बूँद या छींटा।

विप्रुड्होम-संज्ञा पुं० [सं० विप्रुष् + होम] एक प्रकार का पूजन जो यज्ञ के अवसर पर सोम की प्राप्ति के लिये किया जाता था।

[illegible] वि० [सं०] (१) प्रवास में गया हुआ। (२) अनु-

विप्लावी-संज्ञा पुं० [सं० विप्लाविन्] [स्त्री० विप्लाविनी] (१) उपद्रव करनेवाला। (२) जल की बाढ़ लानेवाला।

विप्लुत-वि० [सं०] (१) छितराया हुआ। बिखरा हुआ। (२) घबराया हुआ। आकुल। (३) क्षुब्ध। व्यग्र। दुखी। (४) भ्रष्ट। पतित। (५) नियम, प्रतिज्ञा आदि से च्युत। (६) व्यसन के कारण किसी वस्तु के अभाव में व्याकुल। व्यसनार्त।

विप्लुता-संज्ञा स्त्री० [सं०] स्त्रियों की एक व्याधि जिसमें उनकी योनि में नित्य पीड़ा रहती है।

विप्लुति-संज्ञा स्त्री० [सं०] विप्लव। हलचल। उपद्रव।

विप्लुष्-संज्ञा पुं० दे० "विप्रुट्"।

विप्सा-संज्ञा स्त्री० दे० "वीप्सा"।

विफल-वि० [सं०] (१) जिसमें फल न लगता या लगा हो। फल-रहित। उ०—मुरली सुनत अचल चले। द्रवित ह्वै जल झरत पाहन विफल वृक्ष फले।—सूर। (२) जिसका कुछ परिणाम न हो। जिसका कुछ नतीजा न हो। जिससे कुछ सिद्धि न प्राप्त हो। निष्फल। व्यर्थ। बेफ़ायदा। जैसे,—कोई प्रयत्न विफल होना; विफल-मनोरथ होना। (३) जिसके प्रयत्न का कुछ परिणाम न हुआ हो। अकृत-कार्य्य। नाकामयाब। (४) हताश। निराश। (५) अंड-कोश-रहित।

विफलता-संज्ञा स्त्री० [सं०] कार्य्य की सिद्धि न होना। असफलता।

विफला-वि० स्त्री० [सं०] (१) बिना फल की। जिसमें फल न लगें। (२) जिसका कुछ परिणाम न निकले। (३) जो प्रयत्न में कृतकार्य्य न हुई हो।

संज्ञा स्त्री० केतकी।

विबंध-संज्ञा पुं० [सं०] (१) विशेष रूप से बंधन। खूब जक-ड़ना। (२) आनाह रोग (अफरा) का एक भेद जिसमें खाए हुए पदार्थ का बिना पचा रस मल रूप में पेट में रुका रहता है और दस्त नहीं होता।

विबंधन-संज्ञा पुं० [सं०] पीठ, छाती, पेट आदि के घाव या फोड़े को कपड़े से विशेष रूप से बाँधने की युक्ति या क्रिया। (सुश्रुत)

विबंधवस्ति-संज्ञा स्त्री० [सं०] घोड़ों का एक रोग जिसमें उनका पेशाब बंद हो जाता है तथा पेट और नाड़ियों में जकड़ने की सी पीड़ा होती है।

विबंधु-वि० [सं० वि + बन्धु] (१) बंधु रहित। जिसके भाई बंधु न हो। (२) पितृहीन। अनाथ।

विबल-वि० [सं०] (१) बल रहित। (२) दुर्बल। अशक्त। (३) विशेष बलवान्।

विबाध-वि० [सं०] बाधा रहित।

विबुद्ध-वि० [सं० वि+बुध] (१) जाग्रत। जगा हुआ। (२) विकसित। खिला हुआ। (३) ज्ञान-प्राप्त। सचेत।
विबुध-संज्ञा पुं० [सं० वि+बुध] (१) पंडित। बुद्धिमान्। (२) देवता। (३) चंद्रमा। (४) एक राजा का नाम। (५) शिव। महादेव।
विबुधतटिनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] देवताओं की नदी, आकाश-गंगा।
विबुधतरु-संज्ञा पुं० [सं०] कल्पवृक्ष।
विबुधधेनु-संज्ञा स्त्री० [सं०] कामधेनु।
विबुधपति-संज्ञा पुं० [सं०] देवताओं का राजा, इन्द्र।
विबुधप्रिया-संज्ञा पुं० [सं०] देवी। भगवती।
विबुधविलासिनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) देवांगना। देवता की स्त्री। (२) अप्सरा। स्वर्ग की वेश्या। उ०—सकल सुआसिनी गुरु जन पुरजन पाहुने लोग। विबुधविलासिनी सुर मुनि जाचक जो जेहि जोग।—तुलसी।
विबुधबेलि-संज्ञा स्त्री० [सं०] कल्पलता। उ०—कृपा सुधा सींची विबुध बेलि ज्यों फिरि सुख फरनि फरी।—तुलसी।
विबुधवैद्य-संज्ञा पुं० [सं०] देवताओं के वैद्य, अश्विनीकुमार।
विबुधवन-संज्ञा पुं० [सं० विबुध+वन] इन्द्र का उद्यान। नंदन कानन।
विबुधाधिप-संज्ञा पुं० [सं०] देवताओं के राजा, इन्द्र।
विबुधान-संज्ञा पुं० [सं०] (१) पंडित। आचार्य्य। (२) देवता।
विबुधापगा-संज्ञा स्त्री० [सं०] देवताओं की नदी, आकाश-गंगा।
विबुधावास-संज्ञा पुं० [सं० विबुध+आवास] (१) देवताओं का निवास स्थान, स्वर्ग। (२) देवमंदिर।
विबोध-संज्ञा पुं० [सं०] (१) जागरण। जागना। उ०—चिंता मोह सुपन विबोध स्मृति अमर्ष गर्ष उतसुक तासु अवहित्थ ठानिये।—पद्माकर।
विशेष—साहित्य के रस विधान में विबोध संचारी या व्यभिचारी भावों में से एक है।
(२) सम्यक् बोध। अच्छा ज्ञान। (३) सचेत होना। सावधान होना। (४) होश में आना। (५) विकास। प्रफुल्लता।
विबोधन-संज्ञा पुं० [सं०] [वि० विबोधित] (१) जगाना। प्रबोधन। (२) ज्ञान कराना। आँख खोलना। (३) समझाना बुझाना। ढारस देना।
विबोधित-वि० [सं०] (१) जगाया हुआ। (२) ज्ञापित। जताया हुआ। बतलाया हुआ। (३) [illegible] या प्रफुल्लित किया हुआ। विकासित।
विभंग-संज्ञा पुं० [illegible] (१) विन्या[illegible] रचना। (२) टूटना [illegible] (४) क्रम[illegible] टूटना।
(५) भ्रूभंग। भौं की चेष्टा। (६) सुख का भाव या चेष्टा।
विभंज-वि० [सं० वि०+भज्] (१) टूटना। फूटना। (२) नाश। ध्वंस।
विभक्त-वि० [सं० वि+भज्] (१) बँटा हुआ। विभाजित। (२) अलग किया हुआ। पृथक् किया हुआ। (३) जो अपने पिता की सम्पत्ति से अपना भाग पा चुका हो और अलग हो।
संज्ञा पुं० कार्तिकेय।
विभक्ति-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) विभक्त होने की क्रिया या भाव। विभाग। बाँट। (२) अलग होने की क्रिया या भाव। अलगाव। पार्थक्य। (३) शब्द के आगे लगा हुआ वह प्रत्यय या चिह्न जिससे यह पता लगता है कि उस शब्द का क्रिया-पद से क्या संबंध है। (व्याकरण)
विशेष—संस्कृत व्याकरण में जिसे 'विभक्ति' कहते हैं, वह वास्तव में शब्द का रूपांतरित अंग होता है। जैसे,—रामेण, रामाय इत्यादि। आज कल की प्रचलित खड़ी बोली में इस प्रकार की विभक्तियाँ प्रायः नहीं हैं, केवल कर्म और सम्प्रदान कारक के सर्वनामों में विकल्प से आती हैं। जैसे,—मुझे, तुझे, इन्हें इत्यादि। संस्कृत में विभक्तियों के रूप शब्द के अंत्य अक्षर के अनुसार भिन्न भिन्न होते हैं। पर यह भेद खड़ी बोली के कारकों में नहीं पाया जाता, जिनमें शुद्ध विभक्तियों का व्यवहार नहीं होता, कारक-चिह्नों का व्यवहार होता है।
विभग्न-वि० [सं० वि+भग्न] (१) टूटा फूटा हुआ। (२) अलग हुआ।
विभव-संज्ञा पुं० [सं०] (१) धन। संपत्ति। (२) ऐश्वर्य्य। शक्ति। उ०—भव भव, विभव, पराभव-कारिनि।—तुलसी। (३) औदार्य्य। (४) बहुतायत। आधिक्य। (५) मोक्ष। जन्म मरण से छुटकारा। (६) साठ संवत्सरों में से छत्तीसवाँ संवत्सर।
विभववान्-संज्ञा पुं० [सं० विभववत्] [स्त्री० विभववती] (१) विभव-वाला। धनी। दौलतमन्द। (२) शक्तिशाली।
विभवशाली-वि० [सं०] (१) विभववाला। (२) प्रतापवाला। ऐश्वर्य्यवाला।
विभांडक-संज्ञा पुं० [सं०] एक ऋषि जो ऋष्यशृंग के पिता थे।
विभांडिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] आहुल्य वृक्ष।
विभांडी-संज्ञा स्त्री० [सं०] नीलापराजिता। विष्णुक्रांता लता।
विभाँति-संज्ञा स्त्री० [सं० वि० + हिं० भाँति] प्रकार। भेद। क़िस्म।
वि० अनेक प्रकार का।
अव्य० अनेक प्रकार से।
विभा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) प्रभा। कान्ति। चमक। (२) किरण। रश्मि। (३) शोभा। सुन्दरता।

विभाकर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) प्रकाशवाला। (२) सूर्य्य। (३) आक का पौधा। मदार। (४) चित्रक। चीते का पेड़। (५) अग्नि। (६) राजा।

विभाग-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बाँटने की क्रिया या भाव। किसी वस्तु के कई भाग या हिस्से करना। बँटवारा। तकसीम। जैसे,—संपत्ति का विभाग।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

(२) कई खंडों या वर्गों में विभक्त वस्तु का एक एक खंड या वर्ग। भाग। अंश। हिस्सा। बखरा। (३) पैतृक संपत्ति का कोई अंश जो किसी को नियमानुसार दिया जाय। हिस्सा। बखरा। (४) प्रकरण। अध्याय। जैसे,—ग्रंथ का विभाग। (५) कार्य्य क्षेत्र। मुहकमा। जैसे,—शिक्षा विभाग।

विभागशः-क्रि० वि० [सं०] विभाग के अनुसार।

विभागात्मक नक्षत्र-संज्ञा पुं० [सं०] रोहिणी, आर्द्रा, पुनर्वसु, मघा, चित्रा, स्वाती, ज्येष्ठा और श्रवण आदि आठ प्रकाशमय नक्षत्र।

विभागी-संज्ञा पुं० [विभागिन्] [स्त्री० विभागिनी] (१) विभाग करनेवाला। (२) विभाग या हिस्सा पानेवाला। हिस्सेदार।

विभाजक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) विभाग करनेवाला। बाँटनेवाला। (२) गणित में वह संख्या जिससे किसी दूसरी संख्या को भाग दें। भाजक।

विभाजन-संज्ञा पुं० [सं०] [वि० विभाजनीय, विभाजित, विभाज्य] (१) विभाग करने की क्रिया या भाव। बाँटने का काम। (२) पात्र। बरतन।

विभाजित-वि० [सं०] जिसका विभाग किया गया हो। जो बाँटा गया हो। जिसके खंड या हिस्से किए गए हों।

विभाज्य-वि० [सं०] (१) विभाग करने योग्य। (२) जिसका विभाग करना हो। जिसे बाँटना हो।

विभात-संज्ञा पुं० [सं०] सवेरा। प्रभात।

विभाति-संज्ञा पुं० [सं० विभा] शोभा। सुंदरता। उ०—और वनिता की ओर भूलेहूँ न देहौं मन तुम जो कहत आये सोइ सीरी राती में। ताको अब करियो निबाह सो देखाऊँ तुम्हैं रघुनाथ देखौ देह आपनी विभाती में।—रघुनाथ।

विभाना*-क्रि० अ० [सं० विभा+ना (प्रत्य०)] (१) चमकना। झलकना। (२) शोभा पाना। शोभित होना। उ०—मनु फुल्ल कमल के मधि कली सतगुन रुता विभाति है।—गोपाल।

विभारना*-क्रि० अ० [हिं० विभाना] चमकना। झलकना। उ०—स्याम बरन पट अरुन विभारैं। रवि सम तेज सुलच्छन धारैं।—पद्माकर।

विभाव-संज्ञा पुं० [सं०] साहित्य में वह वस्तु जो रति आदि भावों को आश्रय में उत्पन्न करनेवाली या उद्दीप्त करनेवाली हो। रस-विधान में भाव का उद्बोधक।

विशेष—विभाव दो कहे गए हैं—आलंबन और उद्दीपन। आलंबन वह है जिसके प्रति आश्रय या पात्र के हृदय में कोई भाव स्थित हो। जैसे नायक के लिये नायिका और नायिका के लिये नायक। उद्दीपन वह है जिससे आलंबन के प्रति स्थित भाव उद्दीप्त या उत्तेजित हो। रस-भेद से आलंबन और उद्दीपन भिन्न भिन्न होंगे। जैसे, शृंगार में आलंबन होंगे नायक नायिका; हास में कोई बेढंगी आकृति या वाणी आदिवाला व्यक्ति; करुण में विनष्ट बंधु आदि या कोई पीड़ित अथवा शोचनीय व्यक्ति इत्यादि, इत्यादि। इसी प्रकार उद्दीपन भी रस भेद से भिन्न होंगे। जैसे, शृंगार में चाँदनी, फूल आदि; रौद्र में आलंबन की दुष्ट चेष्टा इत्यादि।

विभावन-संज्ञा पुं० [सं०] [वि० विभावनीय] (१) विशेष रूप से चिंतन। (२) साहित्य के रस-विधान में वह मानसिक व्यापार जिसके कारण पात्र में प्रदर्शित भाव का श्रोता या पाठक भी साधारणीकरण द्वारा भागी होता है।

विभावना-संज्ञा स्त्री० [सं०] साहित्य में एक अर्थालंकार जिसमें कारण के बिना कार्य्य की उत्पत्ति, या अपूर्ण कारण से कार्य्य की उत्पत्ति, या प्रतिबंध होते हुए भी कार्य्य की सिद्धि, या जो जिस कार्य्य का कारण नहीं हुआ करता, उससे उस कार्य्य की उत्पत्ति, अथवा विरुद्ध कारण से किसी कार्य्य की उत्पत्ति या कार्य्य से कारण की उत्पत्ति दिखाई जाती है। उ०—(क) सुनत लखत श्रुति नैन बिनु, रसना बिनु रस लेत। (ख) राजकुमार सरोज से हाथन सों गहि शंभु शरासन तोड़यो। (ग) तव बेनी नागिनि रहै, बाँधी गुनन बनाय। तऊ बाम मजचंद को बदाबदी डसि जाय। (घ) वारे घन उमड़ि अँगारे बरसत हैं। (ङ) अग्निधार स्रवत सुधाकर विलोकिए। (च) और नदी नदन तें कोकनद होत, तेरो कर कोकनद नदी नद प्रगटत है।

विभावनीय-वि० [सं०] भावना या चिंतन करने योग्य।

विभावरी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) रात्रि। रात। (२) वह रात जिसमें तारे चमकते हों। (३) हरिद्रा। हल्दी। (४) कुटनी कुटनी। दूती। (५) टेढ़ी स्त्री। चाल की औरत। (६) मुखरा स्त्री। बहुत बढ़ बढ़ करनेवाली स्त्री। (७) मेढ़ा वृक्ष (८) प्रचेतस की नगरी का नाम।

विभावरीश-संज्ञा पुं० [सं०] निशापति। चंद्रमा।

विभावसु-वि० [सं०] जिसमें प्रकाश की अधिकता हो। अधिक प्रभावाला।

संज्ञा पुं० (१) वसुओं के एक पुत्र। (२) सूर्य्य। (३) आक का पौधा। अर्क। मदार (४) अग्नि। (५) चित्रक वृक्ष।

चीता। (६) चंद्रमा। (७) एक प्रकार का हार। (८) एक दानव जो नरकासुर का पुत्र था। (९) एक ऋषि का नाम। (महाभारत) (१०) एक गंधर्व जिसने गायत्री से वह सोम छीना था, जो वह देवताओं के लिये ले जा रही थी।

विभावित-वि० [सं०] (१) चिंतन किया हुआ। सोचा या विचारा हुआ। (२) कल्पित। (३) निश्चित। (४) स्वीकृत। मंजूर किया हुआ।

विभाषा-संज्ञा स्त्री० [सं०] संस्कृत व्याकरण में वह स्थल जहाँ ऐसे वचन मिलते हैं कि "ऐसा न होगा" तथा "ऐसा हो भी सकता है"।

विभास-संज्ञा पुं० [सं०] (१) चमक। तेज। (२) एक राग जो सवेरे के समय गाया जाता है। इसे कुछ लोग भैरव राग का ही भेद मानते हैं। (३) तैत्तिरीय आरण्यक के अनुसार सप्तर्षियों में से एक। (४) एक देव योनि। (मार्कंडेय पुराण)

विभासक-वि० [सं०] [स्त्री० विभासिका] (१) चमकनेवाला। प्रकाशयुक्त। (२) चमकानेवाला। झलकानेवाला। (३) प्रकाशित करनेवाला। प्रकट या व्यक्त करनेवाला। ज़ाहिर करनेवाला।

विभासना*-क्रि० अ० [सं० विभास+ना (हिं० प्रत्य०)] चमकना। झलकना।

विभासिका-वि० स्त्री० [सं०] चमकनेवाली।

विभासित-वि० [सं०] (१) प्रकाशित। दीप्त। चमकता हुआ। (२) प्रकट। ज़ाहिर।

विभिन्न-वि० [सं०] (१) छिदा हुआ। कटा हुआ। काटकर अलग किया हुआ। (२) बिल्कुल अलग। पृथक्। जुदा। (३) अनेक प्रकार का। कई तरह का। (४) और का और किया हुआ। उलटा। (५) हताश। निराश।

विभिन्नता-संज्ञा स्त्री० [सं०] विभिन्न होने का भाव। भेद। पार्थक्य। अलगाव। फ़र्क़।

विभीत-वि० [सं०] डरा हुआ।

संज्ञा पुं० विभीतक। बहेड़ा।

विभीतक-संज्ञा पुं० [सं०] बहेड़े का वृक्ष।

विभीति-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) डर। भय। (२) शंका। संदेह। उ०—नहिं तोरिहैं राम शिव को धनु यह विभीति परिहरहु।—रघुराज।

विभीषक-संज्ञा पुं० [सं०] डरानेवाला। भयानक।

विभीषण-वि० [सं०] बहुत डरावना। बहुत भयानक।

संज्ञा पुं० (१) एक राक्षस जो रावण का भाई था और रावण के मारे जाने पर राम द्वारा लंका का राजा बनाया गया था।

विशेष—यह विश्रवा मुनि द्वारा कैकसी राक्षसी के गर्भ से उत्पन्न हुआ था और सुमाली नामक राक्षस का दौहित्र (नाती) था। एक दिन सुमाली ने कुबेर को पुष्पक विमान पर चढ़कर जाते देखा। उसे यह इच्छा हुई कि मेरे भी ऐसा ही दौहित्र होता। उसने अपनी परम रूपवती कन्या कैकसी को विश्रवा मुनि के पास भेजा। जिस समय वह गई, उस समय मुनि ध्यान में मग्न थे। वे उसका अभिप्राय समझकर बोले—"तू बड़े विकट समय में आई। इससे इस बार तुझे एक विकट आकृति का पुत्र उत्पन्न होगा"। कैकसी के बहुत विनय करने पर ऋषि ने फिर आशीर्वाद दिया—"अच्छा जा! तेरा अंतिम पुत्र मेरे ही वंश का सा और परम धार्मिक होगा।" वही अंतिम पुत्र विभीषण हुआ। अपने बड़े भाइयों रावण और कुंभकर्ण के साथ विभीषण ने भी घोर तप किया। जब ब्रह्मा वर देने आए, तब विभीषण ने यही वर माँगा—"मेरी मति धर्म में सदा स्थिर रहे"। ब्रह्मा ने वर दिया—"तुम बड़े धार्मिक और अमर होंगे"। वर-प्राप्ति के उपरांत विभीषण भी रावण के साथ लंका में ही आकर रहने लगा। रावण ने जब सीताहरण किया, तब यह राम की ओर हो गया था।

(२) नल तृण। नरसल का पौधा।

विभीषणा-वि० स्त्री० [सं०] डरावनी। भयानक।

संज्ञा स्त्री० एक मुहूर्त का नाम।

विभीषिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) भय-प्रदर्शन। डर दिखाना। (२) भयंकर बात। भयानक कांड या दृश्य।

विभु-वि० [सं०] (१) जो सर्वत्र वर्त्तमान हो। जो सब मूर्त्त पदार्थों में रम रहा हो। जिससे कोई स्थान ख़ाली न हो। सर्वगत। सर्वव्यापक। जैसे,—दिक्, काल और आत्मा।

विशेष—जीव की जाग्रत आदि चारो अवस्थाओं के चार विभु माने गए हैं। जाग्रत का विभु विश्व, स्वप्न का तैजस्, सुषुप्ति का प्राज्ञ और तुरीय का ब्रह्म कहा गया है।

(२) जो सब जगह जा सकता हो। सर्वत्र गमनशील। जैसे, मन। (३) अत्यंत विस्तृत। बहुत बड़ा। महान्। (४) सब काल में रहनेवाला। सर्वकाल व्यापी। नित्य। (५) दृढ़। अचल। चिरस्थायी। (६) शक्तिमान्। ऐश्वर्य्ययुक्त।

संज्ञा पुं० (१) ब्रह्म। (२) आत्मा। जीवात्मा। (३) प्रभु। स्वामी। (४) ईश्वर। (५) शंकर। शिव। (६) विष्णु। (७) भृत्य।

विभुता-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) विभु होने का भाव। सर्वव्यापकता। (२) ऐश्वर्य। शक्ति। (३) प्रभुता। ईश्वरता। (४) अधिकार।

विभूति-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) बहुतायत। वृद्धि। बढ़ती।

(२) विभव। ऐश्वर्य। (३) संपत्ति। धन। (४) दिव्य या अलौकिक शक्ति जिसके अंतर्गत अणिमा, महिमा, गरिमा, लघिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशित्व और वशित्व ये आठ सिद्धियाँ हैं।

विशेष—योगदर्शन के विभूतिपाद में इसका वर्णन है कि किन किन साधनाओं से कौन कौन सी विभूतियाँ प्राप्त होती हैं।

(५) शिव के अंग में चढ़ाने की राख या भस्म।

विशेष—देवी भागवत, शिवपुराण आदि में भस्म या विभूति धारण करने का माहात्म्य विस्तार से वर्णित है।

(६) भगवान् विष्णु का वह ऐश्वर्य जो नित्य और स्थायी माना जाता है। (७) लक्ष्मी। (८) विविध सृष्टि। (९) एक दिव्यास्त्र जो विश्वामित्र ने राम को दिया था। (१०) प्रभुत्व। बड़ाई। (११) सृष्टि।

विभूतिमान-वि० [सं०] [स्त्री० विभूतिमती] (१) शक्ति-संपन्न। ऐश्वर्यशाली। (२) संपत्तिशाली। धनवान्।

विभूमा-वि० [सं० विभूमन्] ऐश्वर्यवान्। शक्तिशाली।

संज्ञा पुं० श्रीकृष्ण।

विभूरसि-संज्ञा पुं० [सं०] अग्नि की एक मूर्ति।

विभूषण-संज्ञा पुं० [सं०] [वि० विभूष्य, विभूषित] (१) अलंकृत करने की क्रिया। गहने आदि से सजाने का काम। (२) भूषण। अलंकार। ज़ेवर। गहना।

विशेष—किसी शब्द के आगे लगकर यह शब्द श्रेष्ठतावाचक हो जाता है। जैसे—रघुवंश-विभूषण।

(३) मंजुश्री का एक नाम। (बौद्ध)

विभूषणा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) गहनों आदि की सजावट। भूषा। (२) शोभा।

विभूषना-क्रि० स० [सं० विभूषण] (१) अलंकृत करना। गहने आदि से सजाना। (२) सुशोभित करना। मंडित करना। (३) अपने आगमन द्वारा सुशोभित करना। उ०—कहा रीति शवरी जो रंक को विभूषै गेह, तुम सो प्रवीन गुरु सेवा ततपर कों।—दूलह।

विभूषा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) गहनों आदि की खूब सजावट। (२) भूषण। अलंकार। गहना। (३) शोभा।

विभूषित-वि० [सं०] (१) गहनों आदि से सजाया हुआ। अलंकृत। (२) (अच्छी वस्तु, गुण आदि से) युक्त। सहित। जैसे,—वे सब गुणों से विभूषित हैं। (३) शोभित।

विभूष्णु-वि० [सं०] विभूति-युक्त।

संज्ञा पुं० शिव।

विभूष्य-वि० [सं०] (१) विभूषित करने योग्य। सजाने योग्य। (२) जिसे गहनों आदि से सजाना हो।

विभेंटन-संज्ञा पुं० [सं० वि० + भेंट] आलिंगन करना। गले मिलना। भेंटना। उ०—पूरे वाम नैन मेरे पूरी भुज वाम आमरौरे फरकन सें जो बालम विहारिहौं। कहिहौं गुलाब उपकार गुन मानिनी कै देखन विभेंटन में आगे विस्तारिहौं।—पद्माकर।

विभेद-संज्ञा पुं० [सं०] (१) विभिन्नता। फ़र्क़। अंतर। (२) अनेक भेद। कई प्रकार। (३) छेदकर घुसना। धँसना। (४) काटना, तोड़ना या छेदना। (५) कटाव। छेद। दरार। (६) दो या कई खंडों में करना। विभाग। (७) एक-रूपता से अनेक रूपता की प्राप्ति। विकास। (८) मिश्रण।

विभेदक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) भेदन करनेवाला। काटने या छेदनेवाला। (२) घुसनेवाला। धँसनेवाला। (३) दो वस्तुओं में भेद प्रकट करनेवाला। फ़र्क़ दिखाने या डालनेवाला। एक से दूसरे में विशेषता प्रकट करनेवाला।

संज्ञा पुं० विभीतक। बहेड़ा।

विभेदकारी-वि० [सं० विभेदकारिन्] [स्त्री० विभेदकारिणी] (१) छेदने या काटनेवाला। (२) भेद या फ़र्क़ करनेवाला। (३) दो व्यक्तियों में विरोध उत्पन्न करनेवाला। फूट डालनेवाला।

विभेदन-संज्ञा पुं० [सं०] [वि० विभेदनीय, विभेद्य] (१) छेदना, काटना या तोड़ना। (२) छेदकर घुसना। धँसना। (३) काटकर दो या कई खंडों में करना। (४) पृथक् पृथक् करना। अलग अलग करना। (५) भेद या फ़र्क़ डालना या दिखाना।

विभेदना-क्रि० स० [सं० विभेदन] (१) भेदन करना। छेदना। काटना। (२) घुसना। प्रवेश करना। उ०—लोक विभेदति वासना वायु परी मनु शीरघ में गनिये जू।—केशव।

(३) भेद या फ़र्क़ डालना।

विभेदिनी-वि० स्त्री० [सं० विभेदिन्] (१) छेदन या भेदन करनेवाली। (२) छेदकर घुसनेवाली। (३) भेद या फ़र्क़ करनेवाली।

विभेदी-वि० [सं० विभेदिन्] [स्त्री० विभेदिनी] (१) छेदन करनेवाला। काटनेवाला। (२) छेदकर घुसनेवाला। धँसनेवाला। (३) भेद या फ़र्क़ करनेवाला।

विभो-संज्ञा पुं० [सं० 'विभु' का संबोधन रूप] हे विभु।

विभौ-संज्ञा पुं० दे० "विभव"।

विभ्रंश-संज्ञा पुं० [सं०] (१) विनाश। ध्वंस। (२) पतन। अवनति। (३) ऊँचा कगार। (४) पहाड़ की चोटी पर का चौरस मैदान।

विभ्रंशित-वि० [सं०] (१) विनष्ट। ध्वस्त। (२) पतित।

विभ्रम-संज्ञा पुं० [सं०] (१) भ्रमण। चक्कर। फेरा। (२) भ्रम। भ्रांति। धोखा। भूल। (३) संदेह। संशय। (४) चकपकाहट। घबराहट। अस्थिरता। (५) स्त्रियों का एक हाव जिसमें वे भ्रम से उलटे पलटे भूषण वस्त्र पहन लेती हैं,

तथा रह रहकर मतवाले की तरह कभी क्रोध, कभी हर्ष आदि भाव प्रकट करती हैं। (६) शोभा।

विभ्रमा-संज्ञा स्त्री० [सं०] बुढ़ाई। बुढ़ापा। वार्द्धक्य।

विभ्रांत-वि० [सं०] (१) घूमता हुआ। चक्कर खाता हुआ। (२) भ्रम में पड़ा हुआ। विभ्रमयुक्त।

विभ्रांति-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) फेरा। चक्कर। (२) भ्रम। संदेह। (३) हड़बड़ी। घबराहट।

विभ्राट्-संज्ञा पुं० [सं०] (१) आपत्ति। विपत्ति। संकट। (२) उपद्रव। बखेड़ा। उ०—तिलक विभ्राट् के समय गोखले विलायत में थे।—सरस्वती।

वि० प्रकाशमान्। दीप्तिमान्।

विमंडन-संज्ञा पुं० [सं०] [वि० विमंडित] (१) गहने आदि से सजाना। (२) शृंगार करना। सँवारना। (३) अलंकार। भूषण। गहना।

विमंडित-वि० [सं०] (१) अलंकृत। सजा हुआ। (२) सुशोभित। (३) सहित। युक्त। (अच्छी वस्तु से) उ०—देखि विमण्डित दण्डिन सों भुजदण्ड दुवौ असि दण्ड विहीनो।—केशव।

विमंथन-संज्ञा पुं० [सं०] खूब मथना।

विमत-संज्ञा पुं० [सं०] (१) विरुद्ध मत। विपरीत सिद्धान्त। उ०—उमत, विमत, न पुरान मत एक पथ नेति नेति नेति नित निगम करत।—तुलसी। (२) ख़िलाफ़ राय। प्रतिकूल सम्मति।

वि० विरुद्ध मतवाला।

विमति-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) विरुद्ध मति। ख़िलाफ़ राय। प्रतिकूल विचार। (२) उचित के विपरीत विचार। कुमति। दुर्बुद्धि। बुरा विचार। (३) असम्मति। अस्वीकृति।

विमत्सर-संज्ञा पुं० [सं०] अधिक अहंकार। उ०—तजि काम क्रोध विमत्सराकस लोभ मोह निवारि कै। छल मल कुसंगति त्यागि मद दुरवासना सनमानि कै।—विश्राम।

वि० मत्सर-रहित। अहंकार-शून्य।

विमद-वि० [सं०] (१) मद-रहित। उन्माद हीन। जो मतवाला न हो। (२) (वह हाथी) जिसे मद न बहता हो।

विमन-वि० [सं० विमनस्] अनमना। उदास। रंजीदा। खिन्न। उ०—विमन बैठि मुनि सुरसरि तीरा। तहँ आयो नारद मुनि धीरा। क्यों उदास पूछ्यौ अस ब्यासै। वर्ण्यो ब्यास सकल निज आसै।—रघुराज।

विमनस्क-वि० [सं०] (१) जिसका मन उचटा हो। जिसका मन न लगता हो। अनमना। (२) उदास। खिन्न। रंजीदा।

विमर्दक-वि० [सं०] (१) खूब मर्दन करनेवाला। मसल डालनेवाला। (२) चूर चूर करनेवाला। पीस डालनेवाला। (३) नष्ट भ्रष्ट करनेवाला। ध्वस्त करनेवाला।

विमर्दन-संज्ञा पुं० [सं०] [वि० विमर्दनीय, विमर्दित] (१) खूब मर्दन करना। अच्छी तरह मलना दलना। (२) कुचलना। पीस डालना। (३) ध्वस्त करना। नष्ट करना। बरबाद करना। (४) मार डालना। (५) पीड़ित करना। (६) अभिमर्श। प्रस्फुटन। स्फुरण। जैसे, बीज फूटकर अंकुर का प्रकट होना। (सांख्य)

विमर्दनीय-वि० [सं०] मर्दन करने योग्य।

विमर्दित-वि० [सं०] (१) मला दला हुआ। (२) कुचला हुआ। (३) नष्ट किया हुआ। बरबाद किया हुआ। (४) पीड़ित। (५) अपमानित।

विमर्दी-वि० [सं० विमर्दिन्] [स्त्री० विमर्दिनी] (१) खूब मर्दन करनेवाला। (२) कुचलनेवाला। पीसनेवाला। (३) नष्ट करनेवाला। (४) वध करनेवाला। मारनेवाला।

विमर्श-संज्ञा पुं० [सं०] (१) किसी तथ्य का अनुसंधान। किसी बात का विवेचन या विचार। (२) आलोचना। समीक्षा। (३) परखने की क्रिया। परीक्षा। (४) परामर्श। सलाह। (५) असंतोष। अधीरता।

विमर्शन-संज्ञा पुं० [सं०] [वि० विमृष्ट, विमर्शी] (१) विवेचन करना। तर्क वितर्क करना। (२) आलोचना करना।

विमर्ष-संज्ञा पुं० [सं०] (१) विवेचन। विचार। (२) आलोचना। समीक्षा। (३) नाटक का एक अंग जिसके अंतर्गत अपवाद, संफेट, व्यवसाय, द्रव, द्युति, शक्ति, प्रसंग, खेद, प्रतिषेध, विरोध, प्ररोचना, आदान और छादन का वर्णन होता है।

विशेष—दोष-कथन को अपवाद, क्रोध से भरी बात चीत को संफेट, कार्य्य के हेतु के उद्भव को व्यवसाय, शोक आदि के वेग में गुरु जनों के आदर आदि का ध्यान न रखने को द्रव, भयप्रदर्शन द्वारा उद्वेग उत्पन्न करने को द्युति, विरोध की शांति को शक्ति, अत्यंत गुण कीर्त्तन या दोष-दर्शन को प्रसंग, शरीर या मन की थकावट को खेद, अभिलषित विषय में रुकावट को प्रतिषेध, कार्य्यध्वंस को विरोध, प्रस्तावना के समय नट, नटी, नाटक या नाटककार आदि की प्रशंसा को प्ररोचना, संहार विषय के प्रदर्शित होने को आदान, तथा कार्योद्धार के लिये अपमान आदि सह लेने को छादन कहते हैं।

विमल-वि० [सं०] [स्त्री० विमला] (१) निर्मल। मल रहित। स्वच्छ। साफ़। (२) बिना दोष का। निर्दोष। शुद्ध। (३) रमणीय। सुंदर। मनोहर।

संज्ञा पुं० (१) एक उपधातु जिसके शोधन आदि की विधि रसेंद्रसार में लिखी है। (२) चाँदी। (३) गत उत्सर्पिणी के ५ वें और वर्तमान अवसर्पिणी के १३ वें अर्हत् या तीर्थंकर। (जैन) (४) सुधन्वा का पुत्र। (५) पद्मकाठ। (६) सेंधा नमक।

विमलक-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का नग या बहुमूल्य पत्थर।

विमलकीर्ति-संज्ञा पुं० [सं०] महायान पंथ के एक बौद्ध आचार्य्य जिन्होंने कई सूत्रों की रचना की है, जो उन्हीं के नाम से प्रसिद्ध हैं।

विमलता-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) निर्मलता। स्वच्छता। सफ़ाई। (२) पवित्रता। (३) शुद्धता। निर्दोषता। (४) रमणीयता। मनोहरता।

विमल दान-संज्ञा पुं० [सं०] वह दान जो नित्य, नैमित्तिक और काम्य के अतिरिक्त हो और केवल ईश्वर के प्रीत्यर्थ दिया जाय। (गरुड़ पुराण)

विमलध्वनि-संज्ञा पुं० [सं०] छः चरणों का एक छंद जो एक दोहे और समान सवैया से मिलकर बनता है।

विमला-वि० स्त्री० [सं०] निर्मल। स्वच्छ।
संज्ञा स्त्री० (१) सातला का पेड़। कोची। सातला। चर्म-कषा। (२) एक प्रकार की भूमि। (३) एक देवी का नाम जो कालिका पुराण में वासुदेव की नायिका कही गई हैं। (४) सरस्वती।

विमलात्मा-वि० [सं० विमलात्मन्] शुद्ध हृदयवाला। शुद्ध मनवाला।
संज्ञा पुं० चंद्रमा।

विमलाशोक-संज्ञा पुं० [सं०] संन्यासियों का एक भेद।

विमलीकरण-संज्ञा पुं० [सं०] (१) विमल करने की क्रिया। शुद्ध करने की क्रिया। (२) मन में विचार कर ज्योति मंत्र से तीनों मलों का नाश करना। (सर्वदर्शनसंग्रह)

विमलोदका-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक नदी का नाम।

विमांस-संज्ञा पुं० [सं०] अशुद्ध, अपवित्र या न खाने योग्य मांस। (जैसे, कुत्ते आदि का)

विमाता-संज्ञा स्त्री० [सं० विमातृ] अपनी माता के अतिरिक्त पिता की दूसरी विवाहिता स्त्री। सौतेली माँ।

विमातृज-संज्ञा पुं० [सं०] विमाता का पुत्र। सौतेला भाई।

विमान-संज्ञा पुं० [सं०] (१) आकाश मार्ग से गमन करनेवाला रथ जो देवताओं आदि के पास होता है। वायुयान। उड़न-खटोला। (२) मरे हुए वृद्ध मनुष्य की अरथी जो सजधज के साथ निकाली जाती है। (३) रथ। गाड़ी। (४) अश्व। घोड़ा। (५) सात खंड का मकान। सात मंज़िल का घर। (६) असम्मान। अनादर। (७) परिमाण। (८) प्राचीन वास्तु विद्या के अनुसार वह देव मंदिर जो ऊपर की ओर गावदुम या पतला होता हुआ चला जाय।
विशेष—'मानसार' नामक प्राचीन ग्रंथ के अनुसार विमान गोल, चौपहला और अठपहला होता है। गोल को वेसर, चौपहले को नागर और अठपहले को द्राविड़ कहते हैं।

विमानना-संज्ञा स्त्री० [सं०] अपमान। अवमानना। तिरस्कार।

विमार्ग-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बुरा रास्ता। (२) कदाचार। बुरी चाल। (३) झाड़ू। कूचा।

विमित-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह चौकोर शाला या इमारत जो चार खंभों पर टिकी हो। (२) बड़ा कमरा या इमारत।
वि० जिसकी सीमा या हद हो। परिमित।

विमिश्र-वि० [सं०] (१) मिला हुआ। मिश्रित। (२) जिसमें कई प्रकार की वस्तुओं का मेल हो। मिला जुला।

विमिश्रा-संज्ञा स्त्री० [सं०] मृगशिरा, आर्द्रा, मघा, और अश्लेषा नक्षत्र में बुध की गति का नाम जो ३० दिनों तक रहती है।

विमिश्रित-वि० [सं०] (१) मिलाया हुआ। (२) मिला जुला।

विमुक्त-वि० [सं०] (१) अच्छी तरह मुक्त। छूटा हुआ। जो बंधन से अलग हुआ हो। (२) जिसे किसी प्रकार का प्रतिबंध या रुकावट न रह गई हो। (३) स्वतंत्र। स्वच्छंद। आज़ाद। (४) (हानि, दंड आदि से) बचा हुआ। (५) अलग किया हुआ। बरी। (६) पकड़ से छूटकर चला हुआ। फेंका हुआ। छोड़ा हुआ। जैसे,—विमुक्त बाण।

विमुक्ति-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) छुटकारा। रिहाई। (२) मुक्ति। मोक्ष।

विमुख-वि० [सं०] (१) मुख रहित। जिसके मुँह न हो। (२) जिसने किसी बात से मुँह फेर लिया हो। जो किसी कार्य्य या विषय में दत्तचित्त न हो। जो किसी काम से हटा या अलग हो। अतत्पर। विरत। निवृत्त। जैसे,—कर्त्तव्य से विमुख होना। (३) जो अनुरक्त न हो। जिसे परवाह न हो। जिसने मन न लगाया हो। उदासीन। जैसे,—हरिपद विमुख। (४) जो किसी के हित के प्रतिकूल हो। जिसकी स्थिति या आचरण अनुकूल न हो। विरुद्ध। ख़िलाफ़। अप्रसन्न। जैसे,—जब ईश्वर ही विमुख है, तब क्या हो सकता है! (५) जिसकी चाह या माँग पूरी न हुई हो। अप्राप्त मनोरथ। निराश। जैसे,—उनके यहाँ से कोई याचक विमुख नहीं गया। उ०—जो देहैं सो भोजन पैहैं। विमुख कोउ इततें नहिं जैहैं।—रघुराज।
क्रि० प्र०—करना।—होना।

विमुखता-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) किसी बात से दूर रहना। अतत्परता। विरति। (२) विपरीतता। विरोध। अप्रसन्नता।

विमुग्ध-वि० [सं०] (१) मोहित। आसक्त। (२) भ्रम में पड़ा हुआ। भूला हुआ। भ्रांत। (३) घबराया हुआ। डरा हुआ। (४) उन्मत्त। मतवाला। (५) पागल। बावला। (६) बेसुध।

विमुग्धक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मोहनेवाला। (२) एक प्रकार का छोटा अभिनय या नक़ल। (नाट्य-शास्त्र)

विमुग्धकारी-संज्ञा पुं० [सं० विमुग्धकारिन्] [स्त्री० विमुग्धकारिणी] (१) मोहनेवाला । मोहित करनेवाला । (२) भ्रम में डालनेवाला ।

विमुद-वि० [सं०] आनंद-रहित । उदास । खिन्न । उ०—दरति केलि पिय हिय लगी, कोक कलनि अवरेखि । विमुद कुमुद लौं ह्वै रही चंदु मंद दुति देखि ।—पद्माकर ।
संज्ञा पुं० एक बड़ी संख्या का नाम ।

विमूढ़-वि० [सं०] [स्त्री० विमूढ़ा] (१) विशेष रूप से मुग्ध । अत्यंत मोहित । (२) मोह प्राप्त । भ्रम में पड़ा हुआ । चकराया हुआ । (३) बेसुध । अचेत । (४) ज्ञान-रहित । जिसे समझ न पड़ता हो । जैसे,—किंकर्त्तव्य विमूढ़ । (५) बहुत मूर्ख । जड़ बुद्धि । नादान । नासमझ ।
संज्ञा पुं० एक प्रकार की संगीत-कला ।

विमूढ़गर्भ-संज्ञा पुं० [सं०] वह गर्भ जिसमें बच्चा मरा या बेहोश हो और प्रसव में बड़ी कठिनता हो ।

विमूल-वि० [सं०] (१) मूल-रहित । बिना जड़ का । (२) मूल से रहित । उच्छिन्न । निर्मूल । (३) बरबाद । नष्ट ।
क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

विमूलन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) जड़ से उखाड़ना । उन्मूलन । (२) विनाश । ध्वंस ।

विमृश्य-वि० [सं०] (१) विवेचन के योग्य । आलोचना या समीक्षा के योग्य । (२) जिस पर विवेचना या विचार करना हो । जिसकी समीक्षा करनी हो ।

विमृष्ट-वि० [सं०] (१) जिस पर तर्क वितर्क या सम्यक् विचार हुआ हो । (२) जिसकी पूरी आलोचना या समीक्षा हुई हो । (३) परिच्छिन्न ।

विमोक-वि० [सं०] (१) मल-रहित । राग-रहित । दुर्वासना रहित । (जैन) (२) ऊपरी आवरण रहित । (३) साफ़ । स्पष्ट ।
संज्ञा पुं० मुक्ति । छुटकारा । रिहाई ।

विमोक्ता-संज्ञा पुं० [सं० विमोक्तृ] मुक्त करनेवाला । छुड़ानेवाला ।

विमोक्ष-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बंधन या गाँठ आदि का खुलना । (२) छुटकारा । मुक्ति । रिहाई । (३) जन्म मरण के बंधन से छूटना । आवागमन से छुट्टी पाना । मुक्ति । निर्वाण । (४) सूर्य्य या चंद्रमा का ग्रहण से छूटना । ग्रहण का हटना । उग्रह । (५) किसी वस्तु का पकड़ से इस प्रकार छूटना कि वह दूर जा पड़े । प्रक्षेपण । (६) मेरु पर्वत का एक नाम ।

विमोक्षण-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बंधन आदि खोलना । (२) मुक्त करना । रिहा करना । (३) हाथ से छोड़ना जिसमें कोई वस्तु दूर जा पड़े । प्रक्षेपण ।

विमोघ-वि० [सं०] व्यर्थ न होनेवाला । न चूकनेवाला । खाली न जानेवाला । अमोघ ।

विमोचक-वि० [सं०] (१) मुक्त करनेवाला । छुड़ानेवाला । (२) बंधन खोलनेवाला । (३) गिरानेवाला । छोड़नेवाला । डालनेवाला ।

विमोचन-संज्ञा पुं० [सं०] [वि० विमोचनीय, विमोचित विमोच्य] (१) बंधन, गाँठ आदि खोलना । (२) बंधन से छुड़ाना । मुक्त करना । रिहा करना । (३) गाड़ी से बैल आदि को खोलना । (४) निकालना । बाहर करना । जैसे,—अश्रु विमोचन । (५) इस प्रकार अलग करना कि कोई वस्तु दूर जा पड़े । छोड़ना । फेंकना । जैसे,—धनुष से बाण । (६) गिराना । डालना ।

विमोचना*-क्रि० स० [सं० विमोचन] (१) बंधन आदि खोलना । (२) छुटकारा देना । रिहा करना । मुक्त करना । छोड़ना । (३) गिराना । टपकाना । (४) निकालना । बाहर करना । उ०—जब तें परदेस सिधारे पिया अँसुआ अँखियानि विमोचति सी ।—बेनीप्रबीन ।

विमोचनीय-वि० [सं०] छोड़ने योग्य । मुक्त करने योग्य ।

विमोचित-वि० [सं०] (१) खुला हुआ । जो बँधा न हो । (२) जो छोड़ दिया गया हो । मुक्त किया हुआ ।

विमोच्य-वि० [सं०] (१) छोड़ने योग्य । मुक्त करने योग्य । (२) जिसे छोड़ना, खोलना या मुक्त करना हो ।

विमोह-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मोह । अज्ञान । भ्रम । भ्रांति । उ०—मनु वसुदेव विमोह कंस से । मोचक माधव-दुविद ध्वंस से ।—रघुराज । (२) बेसुध होना । अचेत होना । बेहोशी । (३) बहुत लुभाना या मोहित होना । आसक्ति । (४) एक नरक का नाम ।

विमोहक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मोहनेवाला । मन खींचनेवाला । लुभावना । (२) मन में क्षोभ उत्पन्न करनेवाला । ललचानेवाला । (३) ज्ञान या सुध हरनेवाला । (४) एक राग जो हिंडोल राग का पुत्र माना जाता है ।

विमोहन-संज्ञा पुं० [सं०] [वि० विमोहित, विमोही] (१) मोहित करना । मन लुभाना । मुग्ध करना । (२) दूसरे का मन वश में करना । (३) सुध बुध भुलाना । ऐसा प्रभाव डालना कि चित्त ठिकाने न रहे । (४) कामदेव के पाँच बाणों में से एक । (५) एक नरक का नाम ।

विमोहनशील-वि० [सं० विमोहन+शील] (१) भ्रमकारी । धोखा देनेवाला । चक्कर में डालनेवाला । भ्रांत करनेवाला । उ०—गिरिजा सुनहु राम कै लीला । सुर हित दनुज विमोहनसीला ।—तुलसी । (२) मोहित करनेवाला । लुभानेवाला ।

विमोहना*-क्रि० अ० [सं० विमोहन] (१) मोहित होना । लुभा जाना । आसक्त होना । उ०—एक मदन कवि सुरमइ गुनी ।

सोइ विमोहा जो कवि सुनी।—जायसी। (२) बेसुध होना। तन मन की सुध न रहना। (३) भ्रांत होना। धोखा खाना।

क्रि० स० (१) मोहित करना। लुभाना। (२) ऐसा प्रभाव डालना कि तन मन की सुध न रहे। बेसुध करना। (३) भ्रांति में करना। धोखे में डालना।

विमोहा-संज्ञा स्त्री० [?] एक छंद जिसके प्रत्येक चरण में दो रगण (ऽ।ऽ) होते हैं। इसे 'जोहा' 'विजोहा' और 'विज्जोहा' भी कहते हैं। वि० दे० "विजोहा"।

विमोहित-वि० [सं०] (१) लुभाया हुआ। मुग्ध। उ०—तुम अस बहुत विमोहित भये। धुन धुन सीस जीव दै गये। (२) तन मन की सुध भूला हुआ। (३) मूर्च्छित। उ०—यह सुनना न पड़े सोई अच्छा है और यही कहते कहते वह विमोहित हो गई।—कादंबरी।

विमोही-वि० [सं० विमोहिन्] [स्त्री० विमोहिनी] (१) मोहित करनेवाला। जी लुभानेवाला। मन आकर्षित करनेवाला। (२) सुध बुध भुलानेवाला। ऐसा प्रभाव डालनेवाला कि तन मन की सुध न रहे। (३) मूर्च्छित या बेहोश करनेवाला। (४) भ्रम में डालनेवाला। भ्रांत करनेवाला। (५) जिसे मोह या दया न हो। जिसे ममता या स्नेह न हो। निष्ठुर। कठोर-हृदय। उ०—जिउ गँवाइ सो गयउ विमोही। भा बिनु जिउ, जिउ दीन्हेसि ओही।—जायसी।

विमौट-संज्ञा पुं० [सं० वल्मीक प्रा० बम्मी + औट (प्रत्य०)] दीमकों का उठाया हुआ मिट्टी का ढूह। बाँबी। उ०—गोहर ह्वै तुम पूरब जनमा। बसे विमौट एक कहुँ बन माँ।—रघुराज।

वियंग ⊛-संज्ञा पुं० [हिं० विय + अंग] दो अंगवाले, महादेव। उ०—करहि वियंगा आलिंगन। तेहि चन्द्रहिं कबहूँ सालिंगन।—शंकरदिग्विजय।

वियक्त-वि० [सं० द्वि, द्वितीय, प्रा० विय] (१) दो। जोड़ा (२) दूसरा। उ०—कहत सबै कवि कमल से, मो मत नैन पखान। नतरु कत इनि विय लगत उपजत विरह कृशान।—विहारी।

वियन्मणि-संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य्य।

वियत्-संज्ञा पुं० [सं०] (१) आकाश। (२) वायुमण्डल।

वि० गमनशील।

वियत्पताका-संज्ञा स्त्री० [सं० वियत + पताका] विद्युत्। बिजली।

वियति-संज्ञा पुं० [सं०] नहुष राजा के एक पुत्र का नाम। (भागवत)

वियद्गंगा-संज्ञा स्त्री० [सं०] आकाशगंगा।

वियम-संज्ञा पुं० [सं०] (१) संयम। इंद्रियदमन। (२) दुःख। क्लेश। यातना।

वियात-वि० [सं०] (१) रास्ते से भटका हुआ। पथ-भ्रष्ट। (२) गया बीता। (३) निर्लज्ज। बेहया।

वियाम-संज्ञा पुं० [सं०] इंद्रिय निग्रह। संयम।

वियुत वि० [सं०] (१) वियुक्त। अलग। (२) रहित। हीन।

वियुक्त-वि० [सं०] (१) जो संयुक्त न हो। जिसकी जुदाई हो गई हो। बिछुड़ा हुआ। वियोग प्राप्त। (२) जुदा। अलग। पृथक्। (३) रहित। हीन।

वियो ⊛-वि० [सं० द्वितीय, प्रा० बीय] दूसरा। अन्य। उ०—ज्ञान स्मारत पक्ष को नाहिन कोउ खण्डन वियो।—नाभादास।

वियोग-संज्ञा पुं० [सं०] (१) संयोग का अभाव। मिलाप का न होना। विच्छेद। (२) पृथक् होने का भाव। अलगाव। (३) दो प्रेमियों का एक दूसरे से अलग होना। विरह। जुदाई।

विशेष—साहित्य में शृंगार रस दो प्रकार का माना गया है—संयोग शृंगार (या संभोग शृंगार) और वियोग शृंगार (या विप्रलंभ शृंगार)। वियोग की दशा तीन प्रकार की होती है—पूर्वराग, मान और प्रवास।

(४) गणित में राशि का व्यवकलन।

वियोगांत-वि० [सं०] (नाटक या उपन्यास आदि) जिसकी कथा का अंत दुःख-पूर्ण हो।

विशेष—आधुनिक नाटक दो प्रकार के माने जाते हैं—सुखांत और दुःखांत। इन्हीं को कुछ लोग संयोगांत और वियोगांत भी कहते हैं। भारतवर्ष में संयोगांत या सुखांत नाटक लिखने की ही चाल पाई जाती है; दुःखांत का निषेध ही मिलता है। पर पूर्वकाल में दुःखांत नाटक भी लिखे जाते थे, इसका आभास कालिदास के पूर्ववर्ती महाकवि भास के नाटकों से मिलता है।

वियोगिन-संज्ञा स्त्री० दे० "वियोगिनी"।

वियोगिनी-वि० स्त्री० [सं०] जो अपने पति या प्रिय से वियुक्त हो। जो अपने प्यारे से बिछुड़ी हुई हो। जिसका पति या नायक पास में न हो और जो उसके न रहने से दुःखी हो।

वियोगी-वि० [सं० वियोगिन्] [स्त्री० वियोगिनी] जो प्रिया से वियुक्त हो। जो प्रियतमा से बिछुड़ा हुआ हो। विरही।

संज्ञा पुं० (१) वियोगी पुरुष। (२) चक्रवाक। चकवा।

वियोजक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) अलग करनेवाला। दो मिली हुई वस्तुओं को पृथक् करनेवाला। (२) गणित में वह संख्या जिसे किसी दूसरी बड़ी संख्या में से घटाना हो।

वियोजन-संज्ञा पुं० [सं०] [वि० वियोजनीय, वियोजित, वियोज्य] (१) मिली हुई वस्तुओं को अलग करना। जुदा करना। पृथक् करना। (२) गणित में एक संख्या में से उससे कुछ छोटी दूसरी संख्या निकालने या घटाने की क्रिया। बाकी।

वियोजित-वि० [सं०] (१) पृथक् किया हुआ। अलग किया हुआ। (२) रहित। शून्य।

वियोज्य-वि० [सं०] (१) वियोजन के योग्य। पृथक् करने योग्य। (२) जिसे अलग करना हो। जिसे जुदा करना हो। संज्ञा पुं० वह संख्या जिसमें से कोई संख्या घटानी हो। (गणित)

विरंग-वि० [सं०] (१) बुरे रंग का। बदरंग। विवर्ण। फीका। उ०—कैका करी कोकिल कुरंग बार कोर कोर कुदि कुदि केहरि कलंक लंक हहली। जरि जरि जम्बूनद विद्रुम विरंग होत, अंग फारि दाड़िम त्वचा भुजंग बदली। (२) अनेक रंगों का। कई वर्णों का।

यौ०—रंग विरंग, रंग विरंगा।

विरंग काबुली-संज्ञा पुं० [फ़ा०] वायविडंग। भाभीरंग।

विरंच-संज्ञा पुं० [सं०] ब्रह्मा।

विरंचि-संज्ञा पुं० [सं०] सृष्टि रचनेवाला, ब्रह्मा। विधाता। उ०—संचि विरंचि निकाई मनोहर लाजति मूरतिवन्त बनाई। तापर तो बड़ भाग बड़े मतिराम लसैं पति प्रीति सुहाई।—मतिराम।

विरंचिसुत-संज्ञा पुं० [सं० विरंचि+सुत] ब्रह्मा के पुत्र, नारद। उ०—सुनि विरंचि-सुति अति हरपाए। कहत सुनहु जो चहत सुहाए।—गोपाल।

विरंज फूल-संज्ञा पुं० [हिं० विरंज+फूल] एक प्रकार का धान या जड़हन।

विरक्त-वि० [सं०] (१) जो अनुरक्त न हो। जिसका जी हटा हो। जिसे चाह न हो। विमुख। जैसे,—ऐसी बातों से वे सदा विरक्त रहते हैं। (२) जो कुछ प्रयोजन न रखता हो। उदासीन। (३) अप्रसन्न। खिन्न। जैसे,—उनकी बातें सुनकर वे और भी विरक्त हो गए।

संज्ञा पुं० ऐसे बाजे जो केवल ताल देने के काम में आते हैं।

विरक्तता-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) अनुराग का अभाव। विरक्त होने का भाव। (२) उदासीनता।

विरक्ति-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) अनुराग का अभाव। चाह का न होना। जी का हटा रहना। विराग। विमुखता। (२) उदासीनता। (३) अप्रसन्नता। खिन्नता।

विरचन-संज्ञा पुं० [सं०] [वि० विरचनीय, विरचित] प्रणयन। निर्माण। बनाना।

विरचनाऽ-क्रि० स० [सं० विरचन] (१) रचना। बनाना। निर्माण करना। (२) अलंकृत करना। सजाना।

क्रि० अ० [सं० वि+रंजन] विरक्त होना। जी का हटना। उचटना। उ०—विरचि मन फेरि राच्यो जाइ।—सूर।

विरचयिता-संज्ञा पुं० [सं०] रचनेवाला। बनानेवाला।

विरचित-वि० [सं०] (१) बनाया हुआ। निर्मित। (२) रचा हुआ। लिखित। जैसे,—कालिदास विरचित शकुंतला नाटक।

विरज-वि० [सं० विरजस्] (१) रजोगुण रहित। सुख-वासना आदि से मुक्त। (२) जिसमें धूल या गर्द न हो। निर्मल। स्वच्छ। साफ़। (३) निर्दोष। बेऐब। (४) (स्त्री) जिसका रजोधर्म बंद हो गया हो।

संज्ञा पुं० (१) विष्णु। (२) शिव। (३) धृतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम।

विरजप्रभ-संज्ञा पुं० [सं०] एक बुद्ध का नाम।

विरजमंडल-संज्ञा पुं० [सं०] एक तीर्थ जो उड़ीसा में जाजपुर के पास माना गया है। यहाँ देवी की महाजया नामक मूर्ति है। (प्रभासखंड)

विरजा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) कपित्थानी का पौधा जिसकी पत्तियाँ कैथ की पत्तियों के समान होती हैं। (२) श्रीकृष्ण की एक प्रेमिका सखी जिसने राधा के भय से नदी का रूप धारण कर लिया था।

विशेष—इसकी कथा ब्रह्मवैवर्त्त पुराण के श्रीकृष्ण जन्मखंड में दी हुई है। गोलोक में एक बार कृष्ण जी राधा को न देखकर विरजा नाम की एक गोपी के पास चले गए। खबर पाते ही राधा दौड़ी। श्रीकृष्ण तो अंतर्द्धान हो गए; और विरजा बेचारी डर के मारे नदी हो गई। जब कृष्ण इसके विरह में बहुत व्याकुल हुए, तब इसने फिर अपना पूर्व रूप धारण कर लिया।

विरजाक्ष-संज्ञा पुं० [सं०] मार्कंडेय पुराण के अनुसार एक पर्वत जो मेरु के उत्तर ओर है।

विरजाक्षेत्र-संज्ञा पुं० [सं०] उड़ीसा में एक तीर्थ स्थान जो जाजपुर के पास माना जाता है।

विरट-संज्ञा पुं० [सं०] (१) कंधा। (२) अगुरु। अगर हुरा।

विरण-संज्ञा पुं० [सं०] वरिन नाम की घास।

विरत-वि० [सं०] (१) जो अनुरक्त न हो। जिसे चाह न हो। जिसका मन हटा हो। विमुख। जैसे,—स्त्री या भोग विलास से विरत होना। (२) जो लगा हुआ न हो। जो लीन या तत्पर न हो। जिसने अपना हाथ हटा लिया हो। निवृत्त। जैसे,—किसी कार्य्य से विरत होना। (३) जिसने सांसारिक विषयों से अपना मन हटा लिया हो। विरक्त। वैरागी। (४) विशेष रूप से रत। बहुत लीन। बिल्कुल लगा हुआ। उ०—कहुँ गनक गनत, जोगी जपत जंत्र मंत्र मन विरत नित।—गुमान।

विरति-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) अनुराग का अभाव। चाह का न होना। (२) जी का उचटना। उदासीनता। (३) सांसारिक विषयों से जी का हटना। वैराग्य। उ०—जोग तें विरति, विरति तें ज्ञाना।—तुलसी।

विरथ-वि० [सं०] (१) बिना रथ का। जिसके पास रथ या सवारी न हो। उ०—रावण रथी, विरथ रघुबीरा।—तुलसी। (२) रथ से गिरा हुआ। (३) पैदल।

विरथीकरण-संज्ञा पुं० [सं०] युद्ध में रथ नष्ट करके शत्रु को रथहीन करना।

विरद-संज्ञा पुं० [सं० विरुद] (१) बड़ा नाम। लंबा चौड़ा या सुंदर नाम। (२) ख्याति। प्रसिद्धि। उ०—बड़े न हूजै गुनन बिनु बिरद बड़ाई पाय। कहत धतूरो को कनक गहनों गढ्यो न जाय।—बिहारी। (३) यश। कीर्ति।

विशेष—दे० "विरुद"।

वि० [सं०] बिना दाँत का।

विरदावली-संज्ञा स्त्री० [सं० विरुदावली] यश की कथा। कीर्ति की गाथा। प्रशंसा के गीत।

विरदैत*-वि० [हिं० विरद+ऐत (प्रत्य०)] बड़े विरदवाला। कीर्ति या यशवाला। बड़े नामवाला।

विरमण-संज्ञा पुं० [सं०] (१) विराम करना। रुकना। ठहरना। थमना। (२) रम जाना। मन लगाना। (३) संभोग। विलास। (४) विरत होना। निवृत्त होना। त्याग। जैसे,—अदत्तादान-विरमण। (जैन)

विरमना*†-क्रि० अ० [सं० विरमण] (१) रम जाना। मन लगाना। अनुरक्त हो जाना। (२) विराम करना। ठहरना। रुकना। (३) मोहित होकर रुक जाना। उ०—सूरदास कित विरमि रहे प्रभु आवत नाहिं चले।—सूर। (४) वेग आदि का थमना या कम होना। उ०—विरमै नहिं ताप जताए बिन, जगजीवन की अहै रीति यही। करैं जाहिर जीम सों लाज लगै जो अकाज न आज फिरै उमही।

क्रि० अ० दे० "विलंबना"।

विरमाना*†-क्रि० स० [हिं० विरमना का स० रूप] (१) दूसरे का मन लगाना। अनुरक्त करना। (२) मोहित करके रोक लेना। फँसाना। उ०—उत कुबजा विरमायो स्यामहि, इत यह दशा भई।—सूर। (३) फँसा रखना। मशगूल रखना। उ०—देति न लेति कछू हँसिकै बड़ी बेर लौं बातन ही विरमावति। (४) भुलावे में रखना। भ्रम में डाले रहना।

क्रि० स० दे० "विलंबाना"।

विरल-वि० [सं०] (१) जो घना न हो। जिसके बीच बीच में अवकाश हो। जिसके बीच बीच में ख़ाली जगह हो। 'सघन' का उलटा। जैसे,—आगे चलकर यह वन विरल होता गया है। (२) जो पास पास न हों। जो दूर दूर पर हों। (३) जो अधिकता से न मिले। जो केवल कहीं कहीं पाया जाय। दुर्लभ। जैसे,—ऐसे लोग संसार में बहुत विरल हैं। (४) जो गाढ़ा न हो। पतला। (५) शून्य। निर्जन। (६) अल्प। थोड़ा।

विरलिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] प्राचीन काल का एक प्रकार का झीना या महीन वस्त्र।

विरलीकरण-संज्ञा पुं० [सं०] सघन को विरल करना।

विरव-संज्ञा पुं० [सं०] अनेक प्रकार के शब्द।

वि० शब्द-रहित। नीरव।

विरस-वि० [सं०] (१) रसहीन। फीका। नीरस। बिना स्वाद का। उ०—जल पय सरिस बिकाय, देखहु प्रीति की रीति यह। बिरस तुरत ह्वै जाय, कपट खटाई परत ही। (२) जो अच्छा न लगे। विरक्ति-जनक। जी हटानेवाला। अप्रिय। अरुचिकर। (३) (काव्य) जो रसहीन हो गया हो। जिसमें रस का निर्वाह न हो सका हो।

संज्ञा पुं० काव्य में रस-भंग।

विशेष—केशव ने इसे 'अनरस' के पाँच भेदों में एक माना है।

विरसता-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) नीरसता। फीकापन। (२) रसभंग। मज़ा किरकिरा होना।

विरह-संज्ञा पुं० [सं०] (१) किसी वस्तु से रहित होने का भाव। किसी वस्तु का अभाव। किसी वस्तु के बिना स्थिति। (२) किसी प्रिय व्यक्ति का पास से अलग होना। विच्छेद। वियोग। जुदाई। (३) वियोग का दुःख। जुदाई का रंज।

वि० रहित। शून्य। बग़ैर। बिना।

विरहा-संज्ञा पुं० [हिं० विरह] एक प्रकार का गीत जिसे अहीर और गड़रिए गाते हैं। वि० दे० "बिरहा"।

विरहिणी-वि० स्त्री० [सं०] जिसे प्रिय या पति का वियोग हो। जो पति या नायक से अलग होने के कारण दुखी हो।

विरहित-वि० [सं०] रहित। शून्य। बिना। उ०—आश्रम-बरन-धरम-विरहित जग लोक-बेद मरजाद गई है।—तुलसी।

विरही-वि० [सं० विरहिन्] [स्त्री० विरहिणी] जिससे प्रिया का वियोग हो। जो प्रियतमा से अलग होने के कारण दुखी हो। उ०—विरही कहँ लौं आपु सँभारै?—सूर।

विरहोत्कंठिता-संज्ञा स्त्री० [सं०] नायिका भेद के अनुसार प्रिय के न आने से दुखी वह नायिका जिसके मन में पूरा विश्वास हो कि पति या नायक आवेगा; पर फिर भी किसी कारणवश वह न आवे।

विराग-संज्ञा पुं० [सं०] (१) अनुराग का अभाव। चाह का न होना। लगन न होना। (२) किसी वस्तु से न विशेष प्रेम होना न द्वेष। उदासीन भाव। (३) सांसारिक सुखों की चाह न रहना। विषय-भोग आदि से निवृत्ति। वैराग्य। (४) एक में मिले हुए दो राग। (एक राग में जब दूसरा राग मिल जाता है, तब उसे विराग कहते हैं।)

विरागी-वि० [सं० विरागिन्] [स्त्री० विरागिनी] (१) जिसे रा

न हो। जिसे चाह न हो। जिसने मन न लगाया हो। उदासीन। विमुख। (२) जिसने सांसारिक विषयों से मन हटा लिया हो। संसारत्यागी। विरक्त।

विराजन-संज्ञा पुं० [सं०] [वि० विराजमान, विराजित] (१) शोभित होना। (२) वर्त्तमान होना। रहना।

विराजना-क्रि० अ० [सं० विराजन] (१) शोभित होना। प्रकाशित होना। सोहना। फबना। (२) वर्त्तमान होना। मौजूद रहना। उपस्थित रहना। होना। रहना। (३) बैठना। जैसे,—आइए, विराजिए।

विराजमान-वि० [सं०] (१) प्रकाशमान। चमकता हुआ। चमक दमकवाला। (२) विद्यमान। उपस्थित। मौजूद। जैसे,—पंडित जी यहाँ पहले ही से विराजमान हैं। (३) बैठा हुआ। उपविष्ट।

विराजित-वि० [सं०] (१) सुशोभित। (२) प्रकाशित। (३) उपस्थित। विद्यमान।

विराट्-संज्ञा पुं० [सं०] (१) ब्रह्म का वह स्थूल स्वरूप जिसके अंदर अखिल विश्व है अर्थात् संपूर्ण विश्व जिसका शरीर है। विश्व-शरीरमय अनंत पुरुष।

विशेष—इस भावना का निरूपण ऋग्वेद में इस प्रकार है—"उस पुरुष के सहस्रों मस्तक, सहस्रों आँखें और सहस्रों चरण हैं। वह पृथ्वी में सर्वत्र व्याप्त रहने पर भी दस अंगुल ऊपर अवस्थित है। पुरुष ही सब कुछ है—जो हुआ है और जो होगा। उसकी इतनी बड़ी महिमा है, पर वह इससे कहीं बड़ा है। संपूर्ण विश्व और भूत एक पाद है, आकाश का अमर अंश त्रिपाद है। उससे विराट् उत्पन्न हुए और विराट् से अधिपुरुष। उन्होंने आविर्भूत होकर संपूर्ण पृथ्वी को आगे पीछे घेर लिया।" भगवद्गीता के अनुसार भगवान ने जो अपना विराट् स्वरूप दिखाया था, उसमें समस्त लोक, पर्वत, समुद्र, नद, नदी, देवता इत्यादि दिखाई पड़े थे। बलि को छलने के लिये भगवान् ने जो त्रिविक्रम रूप धारण किया था, उसे भी विराट् कहते हैं। पुराणों में विराट् को ब्रह्मा का प्रथम पुत्र कहा है। ब्रह्मा दो भागोंमें विभक्त हुए—स्त्री और पुरुष। स्त्री-अंश से विराट् की उत्पत्ति हुई जिसने स्वायंभुव मनु को उत्पन्न किया। स्वायंभुव मनु से प्रजापतियों की उत्पत्ति हुई।

(२) क्षत्रिय। (३) कांति। दीप्ति।

वि० बहुत बड़ा। बहुत भारी। जैसे,—विराट् सभा, विराट् आयोजन।

विराट् स्वराज-संज्ञा पुं० [सं०] एक दिन में होनेवाला एक प्रकार का यज्ञ। एक प्रकार का एकाह। (श्रौत सूत्र)

विराट-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मत्स्य देश जहाँ के राजा के यहाँ पाँचो पांडव अज्ञातवास के समय छिपे थे।

विशेष—मनुस्मृति में मत्स्य देश का उल्लेख कुरुक्षेत्र और पांचाल के साथ है; इससे अनुमान होता था कि वह थानेसर के आसपास होगा। पर अब यह बात एक प्रकार से निश्चित हो गई है कि अलवर और जयपुर के बीच का प्रदेश ही महाभारत के समय मत्स्य देश कहलाता था। उक्त प्रदेश के अंतर्गत 'बैराट' और 'माचड़ी' दो स्थान अब तक 'विराट' और 'मत्स्य' का स्मरण दिलाते हैं।

(२) मत्स्य देश का राजा जिसके यहाँ अज्ञातवास के समय पांडव नौकर रहते थे। (३) महाभारत का एक पर्व। (४) संगीत में एक ताल का नाम।

विराटक-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का निम्न कोटि का हीरा या नग जो विराट देश में निकलता था। राजपट्ट। राजावर्त्त।

विराटज-संज्ञा पुं० दे० "विराटक"।

विराणी-संज्ञा पुं० [सं० विराणिन्] हस्ति। हाथी।

विरातरू-संज्ञा पुं० [सं०] अर्जुन वृक्ष।

विराध-संज्ञा पुं० [सं०] (१) पीड़ा। क्लेश। तकलीफ। (२) पीड़ित करनेवाला। सतानेवाला। (३) एक राक्षस जिसे दंडकारण्य में लक्ष्मण ने मारा था।

विशेष—इसके पिता का नाम सुपर्णन्य और माता का नाम शतह्रदा था। यह राक्षस पूर्व जन्म में तुंबुरु नामक गंधर्व था जो वैश्रवण या कुबेर के शाप से राक्षस-योनि में उत्पन्न हुआ था। इसके बहुत प्रार्थना करने पर वैश्रवण ने कहा था—"अच्छा, जाओ। जब दशरथ के यहाँ भगवान् अवतार लेंगे, तब तुम्हारा शाप छूटेगा"। (अग्निपुराण)

रामायण में लिखा है कि दंडकारण्य में विराध सीता को लेकर भागने लगा। राम ने बहुत बाण चलाए, पर वह युद्ध में न मारा गया और राम तथा लक्ष्मण दोनों को उठाकर ले चला। रास्ते में फिर युद्ध होने लगा और दोनों भाइयों ने मिलकर उसकी भुजाएँ काट डालीं। पर वह जल्दी मरता नहीं था। अंत में लक्ष्मण ने एक बड़ा सा गड्ढा खोदा और उसका शरीर उसमें डाल दिया गया। मरने के पहले इसे अपने पूर्व शरीर और शाप का स्मरण हो आया था।

विराधन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) अपकार करना। हानि करना। (२) पीड़ित करना। सताना। तंग करना।

विराम-संज्ञा पुं० [सं०] (१) किसी क्रिया या व्यापार का कुछ देर के लिये बंद होना। रुकना या थमना। ठहराव। ठहरना। (२) चलने की थकावट दूर करने के लिये रास्ते में ठहरना। चलना रोकना। सुस्ताना। दम मारना। विश्राम।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

(३) वाक्य के अंतर्गत वह स्थान जहाँ बोलते समय

ठहरना पड़ता हो। (४) छंद के चरण में वह स्थान जहाँ पढ़ते समय कुछ ठहरना पड़े। यति।

विरामग्रह-संज्ञा पुं० [सं०] संगीत में ग्रह ताल के चार भेदों में से एक भेद।

विराल-संज्ञा पुं० [सं०] विड़ाल। बिल्ली।

विराव-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शब्द। बोली। कलरव। उ०—कान परी कोकिला की काकली कलित जो कलापिन की कूक कल कोमल विराव की।—देव

(२) हल्ला गुल्ला। शोर गुल।

वि० शब्द रहित।

विराविणी-वि० स्त्री० [सं०] (१) बोलनेवाली। शब्द करनेवाली। (२) रोने चिल्लानेवाली।

संज्ञा स्त्री० झाड़ू।

विरावी-वि० [सं० विराविन्] [स्त्री० विराविणी] (१) शब्द करनेवाला। बोलनेवाला। (२) रोने चिल्लानेवाला।

विरासॐ-संज्ञा पुं० दे० "विलास"।

विरासी ॐ-वि० दे० "विलासी"। उ०—जौ लगि कालिंदि होसि विरासी। पुनि सुरसरि होइ समुद परासी।—जायसी।

विरिंच-संज्ञा पुं० [सं०] (१) ब्रह्मा। (२) विष्णु। (३) शिव।

विरिंचन-संज्ञा पुं० [सं०] ब्रह्मा।

विरिक्त-वि० [सं०] (१) जिसे विरेचन दिया गया हो। (२) जिसका पेट छूटा हो। जिसे दस्त आ रहे हों।

विरुखा-वि० दे० "बेरुखा" या "बेरुख"।

विरुज-वि० [सं०] रोग रहित। नीरोग। स्वस्थ।

विरुझनाॐ-क्रि० अ० दे० "उलझना"।

विरुत-वि० [सं०] रव-युक्त। अव्यक्त शब्द-युक्त। कूजित। गूँजता हुआ।

विरुद-संज्ञा पुं० [सं०] (१) गुण, प्रताप आदि का वर्णन। राजाओं की स्तुति या प्रशंसा जो सुन्दर भाषा में की गई हो। यशकीर्तन। प्रशस्ति। (२) यश या प्रशंसासूचक पदवी जो राजा लोग प्राचीन काल में धारण करते थे। जैसे, चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य। (इसमें चंद्रगुप्त तो नाम है और 'विक्रमादित्य' विरुद है।) (३) यश। कीर्ति।

विरुदावली-संज्ञा स्त्री० [सं०] किसी के गुण, प्रताप, पराक्रम आदि का सविस्तर कथन। यश-वर्णन। प्रशंसा।

विरुद्ध-वि० [सं०] (१) जो हित के अनुकूल न हो। विरोधयुक्त। प्रतिकूल। खिलाफ़। जैसे,—आज कल वह हमारे विरुद्ध है। (२) अप्रसन्न। वाम। (३) जो मेल में न हो। जो एक दम भिन्न या उलटा हो। विपरीत। जैसे,-यह बात उस बात से सर्वथा विरुद्ध है। (४) जो उचित से सर्वथा भिन्न हो। जो न्याय या नीति के अनुकूल न हो। विपरीत। अनुचित। जैसे,—विरुद्ध आचरण।

क्रि० वि० प्रतिकूल स्थिति में। खिलाफ़। जैसे,—आजकल वह हमारे विरुद्ध चल रहा है।

विरुद्धकर्मा-संज्ञा पुं० [सं० विरुद्धकर्मन्] (१) विरुद्ध कर्म करनेवाला। विपरीत आचरण का मनुष्य। बुरे चाल चलन का आदमी। (२) केशव के अनुसार श्लेष अलंकार का एक भेद जिसमें एक ही क्रिया के कई परस्पर विरुद्ध फल दिखाए जाते हैं। उ०—वारुणी को राग होत सूरज कात अस्त, उदै द्विजराज को सु होत यह कैसो है ? इस पद का साधारण अर्थ तो यह है कि पश्चिम दिशा के लाल होते ही सूर्य्य तो अस्त होता है और चन्द्रमा उदय, यह कैसी बात है ! पर श्लेष से इसका अर्थ होता है कि वारुणी (शराब) की चाह होते ही शूरवीर का तो पराभव होता है, पर वारुणी (उपनिषद् की एक विद्या) की चाह होते ही ब्राह्मण की उन्नति होती है।

विरुद्धता-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) विरुद्ध होने का भाव। (२) प्रतिकूलता। विपरीतता। उलटापन।

विरुद्धमति-कारिता-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक काव्य-दोष जो ऐसे पद या वाक्य के प्रयोग से होता है जिससे वाच्य के संबंध में विरुद्ध या अनुचित बुद्धि हो सकती है। जैसे, "भवानीश" शब्द के प्रयोग से। 'भवानी' शब्द का अर्थ ही है 'शिव' की पत्नी। उसमें ईश लगाने से सहसा यह ध्यान हो सकता है कि "शिव की पत्नी" का कोई और भी पति है।

विरुद्धरूपक-संज्ञा पुं० [सं०] केशव के अनुसार रूपक अलंकार का एक भेद जिसमें कही हुई बात बिलकुल 'अनमिल' अर्थात् असंगत या असंबद्ध सी जान पड़ती है, पर विचार करने पर अर्थात् रूपक के दोनों पक्षों (उपमेय, उपमान) का ध्यान करने पर अर्थ संगत ठहरता है। इसमें उपमेय का कथन नहीं होता, इससे यह "रूपकातिशयोक्ति" ही है।

विरुद्ध हेत्वाभास-संज्ञा पुं० [सं०] न्याय में वह हेत्वाभास जहाँ साध्य के साधक होने के स्थान पर साध्य के अभाव का साधक हेतु हो। जैसे,—यह द्रव्य वह्निमान् है; क्योंकि वह महा ह्रद है। यहाँ महा ह्रद होना वह्नि के होने का हेतु नहीं है, वरन् वह्नि के अभाव का हेतु है।

विरुद्धार्थ दीपक-संज्ञा पुं० [सं०] काव्यादर्श के अनुसार दीपक अलंकार का एक भेद जिसमें एक ही बात से दो परस्पर विरुद्ध क्रियाओं का एक साथ होना दिखाया जाता है। जैसे,—जलकण मिली वायु ग्रीष्म-ताप को घटाती और विरह-ताप को बढ़ाती है।

विरूढ़-वि० [सं०] (१) आरूढ़। चढ़ा हुआ। (२) अंकुरित।

जमा हुआ। बीज से फूटा हुआ। (३) जात। उत्पन्न। पैदा। (४) खूब जमा हुआ। खूब बैठा हुआ। खूब गड़ा या धँसा हुआ।

विरूढ़क-संज्ञा पुं० [सं०] (१) इक्ष्वाकु के एक पुत्र का नाम। (२) एक शाक्य वंशीय राजा का नाम। (३) एक लोक-पाल का नाम।

विरूथिनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] वैशाख कृष्ण एकादशी।

विरूप-वि० [सं०] [स्त्री० विरूपा] (१) कई रंग रूप का। कई शकलों का। तरह तरह का। (२) कुरूप। बदसूरत। भद्दा। (३) बदला हुआ। परिवर्तित। (४) शोभाहीन। शोभा रहित। (५) जो अनुरूप न हो। विरुद्ध। उलटा। (६) दूसरी तरह का। बिलकुल भिन्न।

संज्ञा पुं० पिपरामूल।

विरूपता-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) विरूप होने का भाव। (२) कुरूपता। बदसूरती। (३) भद्दापन। बेढंगापन।

विरूप-परिणाम संज्ञा पुं० [सं०] एकरूपता से अनेकरूपता अर्थात् निर्विशेषता से विशेषता की ओर परिवर्त्तन। एक मूल प्रकृति से अनेक विकृतियों की ओर गति।

विशेष—सांख्य में परिणाम दो प्रकार के कहे गए हैं—स्वरूप परिणाम और विरूप परिणाम। विरूप-परिणाम द्वारा प्रकृति से नाना रूप पदार्थों का विकास होता है; और स्वरूप-परिणाम द्वारा फिर नाना पदार्थ क्रमशः अपने रूप खोते हुए प्रकृति में लीन होते हैं। एक परिणाम सृष्टि की ओर अग्रसर होता है और दूसरा लय की ओर।

विरूपा-वि० स्त्री० [सं०] कुरूप। बदसूरत। उ०—शूर्पणखै जो विरूपा करी तुम तातें दियो हमहूँ दुख भारी।—केशव।

संज्ञा स्त्री० (१) दुरालभा। (२) अतिविषा। (३) यम की पत्नी का नाम।

विरूपाक्ष-वि० [सं०] जिसके नेत्र बेढंगे या डरावने हों।

संज्ञा पुं० (१) शिव। शंकर। (२) शिव के एक गण का नाम। (३) रावण का एक सेनानायक जिसे हनुमान ने प्रमोद वन उजाड़ने के समय मारा था। (४) एक राक्षस का नाम जिसे सुग्रीव ने राम-रावण युद्ध में मारा था। (५) रावण का एक मंत्री। (६) एक दिग्गज का नाम। (७) एक नाग का नाम।

विरूपिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] कुरूप स्त्री। बदसूरत औरत।

विरूपी-वि० [सं० विरूपिन्] [स्त्री० विरूपिणी] (१) बदसूरत। कुरूप। (२) डरावनी सूरत का।

संज्ञा पुं० गिरगिट।

विरेक-संज्ञा पुं० [सं०] दस्तावर दवा। जुलाब। विरेचन।

विरेचक-वि० [सं०] दस्त लानेवाला। मलभेदक। दस्तावर।

विरेचन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मलभेदक औषध। दस्त लानेवाली दवा। जुलाब। जैसे,—रेंड़ी का तेल। (२) दस्त लाना। मल भेद करने की क्रिया।

विशेष—वैद्यक के ग्रंथों में विरेचन की विधि विशेष विस्तार से लिखी है; क्योंकि कुपित मल ही सब रोगों का कारण कहा गया है। पूरी विधि के साथ विरेचन का विधान स्नेह, स्वेदन और वमन के उपरांत किया गया है। शरद और वसंत में विरेचन विधेय ठहराया गया है। बालक, वृद्ध, क्षतग्रस्त, रोग से अत्यंत क्षीण, भयार्त्त, श्रांत, पिपासार्त्त और मतवाले को विरेचन नहीं कराना चाहिए।

विरेच्य-वि० [सं०] विरेचन के योग्य। जो दस्तावर दवा देने के योग्य हो।

विशेष—वैद्यक के ग्रंथों में नीचे लिखे रोगियों को विरेचन के योग्य कहा है—गुल्म, बवासीर, विस्फोटक (चेचक), कमल रोग, जीर्ण ज्वर, उदर रोग, विष, पेट की पीड़ा, योनि और शुक्रगत रोग, प्लीहा, कुष्ठ, मेह, श्लीपद (फीलपाव), उन्माद, कास, श्वास, विसर्प इत्यादि से पीड़ित रोगियों को विरेचन देना चाहिए।

विरोक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) चमक। दीप्ति। (२) रश्मि। किरन। (३) छिद्र। छेद। (४) चंद्रमा। (५) विष्णु।

विरोचन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) चमकना। प्रकाशित होना। (२) दीप्तियुक्त। प्रकाशमान। (३) सूर्य्य की किरण। (४) सूर्य्य। (५) चंद्र। (६) अग्नि। (७) मदार का पौधा। आक। (८) विष्णु। (९) रोहित वृक्ष। (१०) श्योनाक वृक्ष। (११) पूत-करंज। (१२) प्रह्लाद के पुत्र और बलि के पिता।

विरोचनसुत-संज्ञा पुं० [सं०] राजा बलि।

विरोध-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मेल में न होना। किसी दूसरी वस्तु के साथ अत्यंत भिन्नता। विपरीत भाव। अनैक्य। जैसे,—इन दोनों भावों का परस्पर विरोध है। (२) मेल का न होना। वैर। शत्रुता। बिगाड़। अनबन। जैसे,—उन दोनों का विरोध बहुत पुराना है।

यौ०—वैर विरोध।

(३) दो बातों का एक साथ न हो सकना। विप्रतिपत्ति। व्याघात। असद्भाव। जैसे,—आपके कथन में पूर्वापर विरोध है। (४) उलटी स्थिति। सर्वथा दूसरे प्रकार की स्थिति। (५) नाश। (६) नाटक का एक अंग जिसमें किसी बात का वर्णन करते समय विपत्ति का आभास दिखाया जाता है। (७) एक अर्थालंकार जिसमें जाति, गुण, क्रिया और द्रव्य में से किसी एक का दूसरी जाति, गुण, क्रिया या द्रव्य में से किसी एक के साथ विरोध होता है। जैसे,—"तुम्हारे वियोग में उस कामिनी को मलयानिल दावानल हो रहा है।" यहाँ जाति के साथ जाति का विरोध है। इसी प्रकार वह

कहना गुण का द्रव्य के साथ जाति-विरोध होगा—"तुम्हारे बिना चंद्रमा विष की ज्वाला से पूर्ण हो गया"।

विरोधक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) विरोध करनेवाला। (२) नाटक में वे विषय जिन का वर्णन निषिद्ध हो।

विरोधन-संज्ञा पुं० [सं०] [वि० विरोधी, विरोधित, विरोध्य] (१) विरोध करना। वैर करना। (२) नाश। बरबादी। (३) नाटक में विमर्ष का एक अंग जो उस समय होता है, जब किसी कारणवश कार्य्यध्वंस का उपक्रम (सामान) होता है। जैसे,—कुरुक्षेत्र के युद्ध के अंत होने के निकट जब दुर्योधन बच रहा था, तब भीम का यह प्रतिज्ञा करना कि "यदि दुर्योधन को न मारूँगा, तो अग्नि में प्रवेश कर जाऊँगा"। सब बात बन जाने पर भी भीम का यह कहना युधिष्ठिर आदि के मन में यह विचार लाया कि यदि दुर्योधन न मारा गया, तो हम सब लोग भी भीम के बिना कैसे रहेंगे!

विरोधना-क्रि० स० [सं० विरोधन] विरोध करना। अपने विरुद्ध करना। वैर करना। शत्रुता या झगड़ा करना। उ०—साईं ये न विरोधिए गुरु, पंडित, कवि, यार।—गिरधर।

विरोधाचरण-संज्ञा पुं० [सं०] (१) हित के प्रतिकूल आचरण। ख़िलाफ़ कार्रवाई। (२) शत्रुता का व्यवहार।

विरोधाभास-संज्ञा पुं० [सं०] एक अर्थालंकार जिसमें जाति, गुण, क्रिया और द्रव्य का विरोध दिखाई पड़ता है। वि० दे० "विरोध"।

विरोधित-वि० [सं०] जिसका विरोध किया गया हो।

विरोधिता-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) विरोध। शत्रुता। वैर। (२) नक्षत्रों की प्रतिकूल दृष्टि। (फलित ज्योतिष)

विरोधिनी-वि० स्त्री० [सं०] (१) विरोध करनेवाली। वैरिन। (२) विरोध करानेवाली। दो आदमियों में झगड़ा लगानेवाली।

विरोधी-वि० [सं० विरोधिन्] [स्त्री० विरोधिनी] (१) विरोध करनेवाला। हित के प्रतिकूल चलनेवाला। कार्य्य सिद्धि में बाधा डालनेवाला। (२) प्रतिद्वन्द्वी। विपक्षी। शत्रु। वैरी। दुश्मन।

संज्ञा पुं० साठ संवत्सरों में से पचीसवाँ संवत्सर।

विरोधी श्लेष-संज्ञा पुं० [सं०] केशव के अनुसार श्लेष अलंकार का एक भेद जिसमें श्लिष्ट शब्दों द्वारा दो पदार्थों में भेद, विरोध या न्यूनाधिकता दिखाई जाती है। उ०—कृष्ण हरे हरये हरे संपति, शंभु विपत्ति यहै अधिकाई। जातक काम अकामन के हित, घातक काम सकाम सहाई। इसमें यह दिखाया गया है कि हर (शिव) दासों पर हरि की अपेक्षा अधिक कृपा करते हैं। कृष्ण धीरे धीरे संपत्ति हरते हैं और शिव विपत्ति। हरि काम को उत्पन्न करनेवाले हैं और निष्काम लोगों के हितू हैं; शिव काम के घातक हैं, पर कामना रखनेवालों के सहायक हैं। यहाँ 'काम' शब्द के 'कामदेव' और 'कामना' दो अर्थ हैं।

विरोधोपमा-संज्ञा स्त्री० [सं०] उपमा अलंकार का एक भेद जिसमें किसी वस्तु की उपमा एक साथ दो विरोधी पदार्थों से दी जाती है। जैसे,—"तुम्हारा मुख चंद्रमा और कमल के समान है"। यहाँ कमल और चंद्रमा इन दोनों उपमानों में विरोध है।

विरोध्य-वि० [सं०] (१) विरोध के योग्य। (२) जिसका विरोध करना हो।

विरोपण-संज्ञा पुं० [सं०] [वि० विरोपणीय, विरोपित, विरोप्य] (१) लेपन। लेस करना। (२) लीपना। पोतना। तह चढ़ाना। लेव चढ़ाना। (३) ज़मीन में पौधा लगाना। रोपना।

विरोम-वि० [सं०] रोम रहित। बिना रोएँ का।

विरोहण-संज्ञा पुं० [सं०] [वि० विरोहणीय, विरोहित] एक स्थान से उखाड़कर दूसरे स्थान पर लगाना।

विरोही-वि० [सं० विरोहिन्] [स्त्री० विरोहिणी] रोपनेवाला। पौधा लगानेवाला।

विरौनी-संज्ञा स्त्री० [देश०] बाजरा, मडुवा, कोदों वगैरह की एक प्रकार की जोताई जो उनके पौधे कुछ ऊँचे होने पर भी जाती है।

विर्त्त‡-संज्ञा स्त्री० दे० "वृत्ति"।

विलंघन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) कूद या लाँघकर पार करने की क्रिया। (२) उपवास करना। लंघन करना। (३) किसी वस्तु के भोग से अपने आप को रोक रखना। वंचित रहना।

विलंघनीय-वि० [सं०] (१) पार करने योग्य। लाँघने योग्य। (२) नीचा दिखाने योग्य। परास्त करने योग्य।

विलंघित-वि० [सं०] (१) जो परास्त हुआ हो। जिसने नीचा देखा हो। (२) जो विफल हुआ हो।

विलंघ्य-वि० [सं०] (१) पार करने योग्य। (नदी आदि) (२) परास्त होने योग्य। वश में आने योग्य। (३) करने योग्य। सहज।

विलंब-वि० [सं० विलम्ब] आवश्यकता, अनुमान आदि से अधिक समय (जो किसी बात में लगे)। बहुत काल। अतिकाल। देर।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

विलंबन-संज्ञा पुं० [सं०] [वि० विलंबनीय, विलंबी, विलंबित] (१) देर करना। विलंब करना। (२) लटकना। टँगना। (३) सहारा पकड़ना। टेकना।

विलंबना-क्रि० अ० [सं० विलंबन] (१) देर करना। विलंब करना। आवश्यकता से अधिक समय लगाना। (२) रम जाना। मन लगने के कारण बस जाना। उ०—भँवर कँवल रस बेधिया, अमत न भरमै जाइ। तहाँ वास विलंबिया, मगन भया रस खाइ।—दादू। (३) लटकना। (४) सहारा लेना।

विलंबिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का रोग जो विदग्धाजीर्ण द्वारा उत्पन्न होता है।

विशेष—इस रोग में खाया हुआ अन्न कफ और वायु से दूषित होकर पेट में दुःख देता है। न तो वमन होता है न मल निकलता है।

विलंबित-वि० [सं०] (१) लटकता हुआ। झूलता हुआ। उ०—राजत रोमक की तन राजिय है रस विच नदी सुख देनी। आगे भई प्रतिबिम्बित पाइ विलम्बित जो मृगनैनी कि बेनी।—द्विज। (२) जिसमें विलंब या देर हुई हो।

संज्ञा पुं० सुस्त चलनेवाला जानवर। जैसे,—हाथी, गैंडा, भैंस इत्यादि।

विलंबी-वि० [सं० विलंबिन्] [स्त्री० विलंबिनी] लटकता हुआ। झूलता हुआ।

संज्ञा पुं० साठ संवत्सरों में से बत्तीसवाँ संवत्सर।

विलंभ-संज्ञा पुं० [सं०] (१) उदारता। (२) दान। (३) उपहार। भेंट।

विलक्ष-वि० [सं०] (१) अचंभे में पड़ा हुआ। आश्चर्यचकित। (२) लज्जित। (३) घबराया हुआ। व्यस्त।

विलक्षण-वि० [सं०] (१) साधारण से भिन्न। असाधारण। अपूर्व। अद्भुत। (२) अनोखा। अनूठा।

विलक्षणता-संज्ञा स्त्री० [सं०] विलक्षण होने का भाव। अपूर्वता। अद्भुतता। अनोखापन।

विलखना-क्रि० अ० [सं० विकल] दुखी होना। वि० दे० 'बिलखना'।

*-क्रि० अ० [सं० लक्ष] ताड़ना। पता पाना। लक्ष करना।

विलखाना-क्रि० स० [हिं० विलखना का स०] विलखाना का सकर्मक रूप। विकल करना। वि० दे० 'बिलखाना'।

विलग-वि० [हिं० वि (उप०) + लगना] अलग। पृथक्।

संज्ञा पुं० अंतर। भेद। फरक।

विलगाना-क्रि० अ० [हिं० विलग + ना (प्रत्य०)] (१) अलग होना। पृथक् होना। (२) पृथक् पृथक् दिखाई पड़ना। विभक्त या अलग दिखाई देना।

क्रि० स० पृथक् करना। अलग करना। वि० दे० "बिलगाना"।

विलच्छन-वि० दे० "विलक्षण"।

विलपना*-क्रि० अ० [सं० विलाप] विलाप करना। रोना।

विलपाना*-क्रि० स० [हिं० विलपना का स०] दूसरे को विलाप करने में प्रवृत्त करना। रुलाना।

विलब्ध-वि० [सं०] (१) दिया हुआ। पाया हुआ। (२) अलग किया हुआ।

विलम*-संज्ञा पुं० [सं० विलंब] देर। अबेर। विलंब।

विलमना*-क्रि० अ० दे० "बिलमना"।

विलय-संज्ञा पुं० [सं०] (१) विलीन होने की क्रिया या भाव। लोप। अस्त। (२) मृत्यु। मौत। (३) नाश। (४) प्रलय।

विलयन-संज्ञा पुं० [सं०] लय को प्राप्त होना। विलीन होना।

विलसन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) चमकने की क्रिया। (२) क्रीड़ा। प्रमोद।

विलसना*-क्रि० अ० [सं० विलस] (१) शोभा पाना। (२) विलास करना। क्रीड़ा करना। (३) आनंद मनाना। वि० दे० "बिलसना"।

विलसाना*-क्रि० स० दे० "बिलसाना"।

विलहयंदी-संज्ञा स्त्री० [?] जिले के बन्दोबस्त का वह संक्षिप्त ब्योरा जिसमें प्रत्येक महाल का नाम, काश्तकारों के नाम और उनके लगान आदि का ब्योरा लिखा होता है। वितरबन्दी।

विलाता-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की चिड़िया।

विलाना-क्रि० अ० दे० "बिलाना"

विलाप-संज्ञा पुं० [सं०] (१) विलख विलख कर या विकल होकर रोने की क्रिया। रोकर दुःख प्रकट करने की क्रिया। क्रन्दन। रुदन।

विलापना*-क्रि० अ० [सं० विलापन] शोक करना। विलाप करना।

क्रि० स० [सं० रोपन] वृक्ष रोपना या लगाना।

विलायत-संज्ञा पुं० [अ०] (१) पराया देश। दूसरों का देश। (२) दूरस्थ देश। दूर का देश। विशेषतः आजकल की बोलचाल में युरोप या अमेरिका का कोई देश। जैसे,—आप दो बार विलायत हो आए हैं।

विलायती-वि० [अ०] (१) विलायत का। विदेशी। (२) दूसरे देश में बना हुआ। (३) अन्य देश का रहनेवाला। परदेसी।

विलायती अनन्नास-संज्ञा पुं० [हिं० विलायती + अननास] रामबाँस। रामबान। वि० दे० "रामबाँस"।

विलायती कद्दू-संज्ञा पुं० [हिं० विलायती + कद्दू] एक विशेष प्रकार का कद्दू, जो तरकारी के काम में आता है।

विलायती कासनी-संज्ञा स्त्री० [हिं० विलायती + कासनी] एक प्रकार की कासनी जिसकी पत्तियाँ दवा के काम में आती हैं।

विलायती कीकर-संज्ञा पुं० [हिं० विलायती+कीकर] पहाड़ी कीकर जो हिमालय में पाँच हजार फुट की ऊँचाई तक होता है। यह बाढ़ लगाने के काम आता है। यह जाड़े के दिनों में खूब फूलता है और इसके फूलों से बहुत अच्छी महक निकलती है। युरोप में इन फूलों से कई प्रकार के इत्र आदि बनाए जाते हैं। इसे परसी बबूल भी कहते हैं।

विलायती छछूँदर-संज्ञा पुं० [हिं० विलायती+छछूँदर] एक प्रकार का छछूँदर जो इंगलैण्ड के पश्चिमी ओर के प्रदेशों में बहुत पाया जाता है। यह पृथ्वी के नीचे सुरंग में रहता है और प्रायः दूध पीता है। इसे अंधकार अधिक प्रिय होता है। इस के अगले पैर चौड़े और पट्टेदार तरिछे होते हैं। इसकी आँखें छोटी, थुथना लंबा और नोकदार, बाल सघन और कोमल होते हैं। इसकी श्रवण शक्ति बहुत तेज होती है।

विलायती नील-संज्ञा पुं० [हिं० विलायती+नील] एक विशेष प्रकार का नीला रंग जो चीन से आता है।

विलायती पटुआ-संज्ञा पुं० [हिं० विलायती+पटुआ] लाल पटुआ। लाल सन।

विलायती पात-संज्ञा पुं० [हिं० विलायती+पटुआ] रामबाँस। कृष्ण केतकी।

विलायती प्याज-संज्ञा पुं० [हिं० विलायती+प्याज] एक प्रकार का प्याज जिसमें गाँठ नहीं होती, सिर्फ गूदेदार जड़ होती है।

विलायती बैंगन-संज्ञा पुं० [हिं० विलयती+बैंगन] एक प्रकार का बैंगन या भंटा जो इस देश में युरोप से आया है। यह क्षुप जाति की वनस्पति है जो प्रति वर्ष बोई जाती है। इसका क्षुप दो ढाई हाथ ऊँचा होता है। इसकी डालियाँ भूमि की ओर झुकी अथवा भूमि पर पसरी रहती हैं। पत्ते आलू के पत्तों के से होते हैं। डंडियों के बीच बीच से सींके निकलते हैं जिन पर गुच्छे में फूल आते हैं। ये फूल साधारण बैंगन के फूलों के सदृश, पर उनसे छोटे होते हैं। इनका रंग पीला होता है। फल प्रायः दो से चार इंच तक के गोलाकार और कुछ चिपटे (नारंगी के समान) होते हैं। कच्चे रहने पर उसका रंग हरा और पकने पर लाल चमकीला हो जाता है। इसकी तरकारी, चटनी आदि बनती है। स्वाद में यह कुछ खट्टापन लिए होता है। रासायनिक विश्लेषण से पता लगता है कि इसमें २३ सैकड़े लोहे का अंश होता है। अतः यह रक्त-वर्धक है। अंग्रेज लोग इसका अधिक व्यवहार करते हैं। इसे टुमेटो कहते हैं।

विलायती लहसुन-संज्ञा पुं० [हिं० विलायती+लहसुन] एक प्रकार का लहसुन जो मसाले के काम में आता है।

विलायती सिरिस-संज्ञा पुं० [हिं० विलायती+सिरिस] एक प्रकार का सिरिस जो विदेश से यहाँ आया है, पर अब यहाँ भी होने लगा है। यह नीलगिरि पर्वत पर बहुतायत से होता है। पंजाब में भी यह पाया जाता है। इसकी छाल प्रायः चमड़ा सिझाने के काम में आती है।

विलायती सेम-संज्ञा स्त्री० [हिं० विलायती+सेम] एक प्रकार की सेम जिसकी फलियाँ साधारण सेम से कुछ बड़ी होती हैं।

विलायन-संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल का एक अस्त्र। कहते हैं कि जब इस अस्त्र का उपयोग किया जाता था, तब शत्रु की सेना विश्राम करने लगती थी।

विलावली-संज्ञा स्त्री० [हिं० विलावल] एक रागिनी जो हिंडोल राग की स्त्री मानी जाती है। (संगीत)

विलास-संज्ञा पुं० [सं०] (१) प्रसन्न या प्रफुल्लित करनेवाली क्रिया। (२) सुख-भोग। आनन्दमय क्रीड़ा। मनोरंजन। मनोविनोद। (३) आनंद। हर्ष। (४) संयोग के समय में अनेक हाव भाव अथवा प्रेमसूचक क्रियाएँ जिनसे स्त्रियाँ पुरुषों को अपनी ओर अनुरक्त करती हैं। हाव भाव। नाज नखरा। (५) किसी अंग की मनोहर चेष्टा। जैसे भ्रूविलास, करविलास। उ०—भृकुटि विलास जासु जग होई। राम बाम दिस सीता सोई।—तुलसी। (६) किसी चीज़ का हिलना डोलना। जैसे,—चपला का विलास। (७) आराम तलबी। अतिशय सुख भोग।

विलासक-संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० विलासिका] इधर उधर फिरनेवाला। भ्रमणशील।

विलासिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का रूपक जिसमें एक ही अंक होता है। इसका विषय संक्षिप्त और साधारण होता है।

वि० स्त्री० आनन्द देनेवाली।

विलासिनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सुन्दरी युवा स्त्री। कामिनी। (२) वेश्या। गणिका। (३) एक वृत्त का नाम जिसके प्रत्येक चरण में ज, र, ज, ग, ग, (।ऽ। ऽ।ऽ ।ऽ। ऽ ऽ) होते हैं।

विलासी-संज्ञा पुं० [सं० विलासिन्] [स्त्री० विलासिनी] (१) सुख भोग में अनुरक्त पुरुष। कामी। (२) जिसे आमोद प्रमोद पसंद हो। क्रीड़ाशील। हँसोड़। कौतुकशील। (३) ऐश आराम पसंद। आराम तलब। (४) वरुण वृक्ष। बरुन।

विलास्य-संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल का एक प्रकार का बाजा जिसमें बजाने के लिये तार लगे होते थे।

विलिखित-वि० [सं०] (१) खरोचा हुआ। (२) लिखा हुआ। (३) खुदा हुआ।

विलिंगी-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का साँप।

विलिप्त-वि० [सं०] पुता हुआ। लिपा हुआ।

विलिष्ट-वि० [सं०] (१) टूटा हुआ। उखड़ा हुआ। (२) जो ठीक अवस्था में न हो। अस्तव्यस्त।

विलीक*-वि० पुं० [सं० व्यलीक] अनुचित। नामुनासिब।

विलीन-वि० [सं०] (१) जो अदृश्य हो गया हो। लुप्त। (२) जो मिल गया हो। जैसे, पानी में नमक विलीन हो गया। (३) छिपा हुआ। (४) नष्ट। क्षयप्राप्त।

विलुप्त-वि० [सं०] (१) जिसका लोप हो गया हो। नष्ट। (२) जो अदृश्य हो गया हो। जो दिखाई न पड़ता हो।

विलुप्तायोनि-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का योनि रोग। इस रोग में योनी में सदा पीड़ा होती रहती है।

विलुलक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) नाश करनेवाला।

विलून-वि० [सं०] कटा हुआ। अलग किया हुआ।

विलेप-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शरीर आदि पर चुपड़कर लगाने की चीज़। लेप। (२) पलस्तर। गारा।

विलेपन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) लेप करने या लगाने की क्रिया। अच्छी तरह लीपना। लगाना। (२) लगाने या लेप करने का पदार्थ। जैसे,—चन्दन, केसर आदि।

विलेशय-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बिल या दरार में रहनेवाले जीव। जैसे साँप, बिच्छू, गोह आदि। (२) सर्प। साँप। उ०—आसीविष विषधर फणी भगी बिलेशय व्याल।—नंददास।

विलोकना-क्रि० स० [सं० विलोकन] (१) देखना। (२) अवलोकन करना। वि० दे० "बिलोकना"।

विलोकनि-संज्ञा स्त्री० दे० "बिलोकनि"।

विलोचन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) नेत्र। नयन। आँख। (२) पुराणानुसार एक नरक का नाम जिसमें मनुष्य अन्धा हो जाता है और न देखने के कारण अनेक यातनाएँ भोगता है। (३) लोचन-रहित करने की क्रिया। आँखें फोड़ने की क्रिया। नेत्र-रहित कर देने की क्रिया।

विलोटक-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की मछली। बेला मच्छली।

विलोड़ना-क्रि० स० दे० "बिलोड़ना"।

विलोना-क्रि० स० दे० "बिलोना"।

विलोप-संज्ञा पुं० [सं०] (१) किसी वस्तु को लेकर भाग जाने की क्रिया। (२) रुकावट। (३) विघ्न। बाधा। (४) आघात। (५) नाश। लोप। (६) हानि। नुकसान।

विलोपक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) नाश करनेवाला। (२) दूर करनेवाला। (३) लेकर भागनेवाला।

विलोपन-संज्ञा पुं० [सं०] विलोप करने की क्रिया।

विलोपना-क्रि० स० [सं० विलोपन] (१) लोप करना। नाश करना। (२) लेकर भागना। (३) विघ्न डालना। बाधा उपस्थित करना।

विलोपी-संज्ञा पुं० [सं० विलोपिन्] [स्त्री० विलोपिनी] विलोप करनेवाला। नाश करनेवाला।

विलोप्य-वि० [सं०] विलोप करने या होने योग्य।

विलोभ-संज्ञा पुं० [सं०] (१) प्रलोभन। (२) मोह। माया भ्रम।

वि० जिसके मन में किसी प्रकार का लालच न हो। लोभ-रहित।

विलोभन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) लोभ दिखाने की क्रिया। (२) मोहित या आकर्षित करने का व्यापार (३) कोई बुरा काम करने के लिये किसी को लोभ दिखाने का काम। ललचाना।

विलोम-वि० [सं०] (१) विपरीत। उलटा। प्रतिकूल। उ०—तुम सन कही वचन कटु बानी। अपने हाथ मीचु की माँगी। कहेसि विलोम-वचन तजि ज्ञाना। यदि कर काल आय नियराना।—सबल। (२) संगीत में ऊँचे स्वर से नीचे स्वर की ओर आना। स्वर का अवरोह। उतार। (३) ऊँचे की ओर से नीचे की ओर आना।

संज्ञा पुं० [सं०] (१) सर्प। (२) वरुण। (३) कुत्ता। (४) रहट।

विलोमक-वि० [सं०] विपरीत। प्रतिकूल।

विलोम क्रिया-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह क्रिया जो अंत से आदि की ओर की जाय। उलटी ओर से होनेवाली क्रिया।

विलोमजिह्व-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का हाथी।

विलोम वर्ण-संज्ञा पुं० [सं०] वर्ण सङ्कर जाति। दोगली जाति।

विलोमी-संज्ञा स्त्री० [सं०] आँवला। आमलकी।

विलोल-वि० [सं०] (१) चंचल। (२) सुन्दर। उ०—(क) चपल विलोल डोल वह लागी। थिर न रहे चंचल बैरागी।—जायसी। (ख) चटुकीं चिबुक चाँपि चूँपि विलोल लोचन कौं, रस में विरस कलो वचन मलीनो है। गहि मरि लीनो कछु उत्तर न बाल दीनों हाल से हवाल रात अंक भरि लीनो है।—सूदन।

विल्व-संज्ञा पुं० [सं०] बेल वृक्ष। बेल का पेड़।

विल्व तैल-संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक में एक प्रकार का तेल। इसे बनाने के लिये बेल की जड़ का रस, सोंठ, मिर्च, पीपल, पीपलामूल, अपामार्ग का क्षार और जवाखार को इकट्ठा गोमूत्र के साथ तेल में डालकर मन्द आँच पर पकाते हैं। रस जलने और तेल मात्र रहने पर उतार लेते हैं। कहते हैं कि इससे कान के बधिरता, कर्ण-स्रावादि रोग अच्छे हो जाते हैं।

विल्वपत्र-संज्ञा पुं० [सं०] बेल का पत्ता, जो शिव पर चढ़ाने के काम में आता है। बेलपत्र।

विल्वमंगल-संज्ञा पुं० [सं०] भक्त और महाकवि सूरदास का अन्धे होने से पूर्व का नाम।

विल्वेश-संज्ञा पुं० [सं०] आधुनिक भिलसा नगरी का प्राचीन नाम जो ग्वालियर के दक्षिण में बेतवा नदी के दाहिने किनारे पर बसी है। इसका पुराना नाम भद्रावत भी कहा जाता है।

विवंधक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) रोकनेवाला। (२) कोष्ट-बद्धता। कब्जियत। कब्ज।

विवंधन-संज्ञा पुं० [सं०] रोक। बंधन। रुकावट।

विव-वि० [सं० द्वि] (१) दो। (२) द्वितीय। दूसरा। वि० दे० "विवि"।

विवक्कत-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बहुत बोलनेवाला। वाचाल। (२) स्पष्ट बोलनेवाला। (३) वक्ता। वाग्मी।

विवक्ता-संज्ञा पुं० [सं० विवक्तृ] (१) कहनेवाला। (२) किसी बात को प्रकट करनेवाला। (३) दुरुस्त करने या सुधारनेवाला। संशोधन करनेवाला।

विवक्षा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) कोई बात कहने की इच्छा। बोलने की इच्छा। (२) अर्थ। तात्पर्य्य। आशय। (३) अनिश्चय। शक। संदेह।

विवक्षित-वि० [सं०] जिसकी आवश्यकता या इच्छा हो। इच्छित। अपेक्षित।

विवदना&-क्रि० अ० [सं० विवाद+हिं० ना] किसी वस्तु या विषय पर जबानी झगड़ा करना। शास्त्रार्थ करना। विवाद करना। ज़बानी झगड़ना। उ०—इमि विवदहिं शारद यति राजा। सुनि विस्मित सब विदुष समाजा।—शं० दि०।

विवध-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह लकड़ी जो बैलों के कन्धों पर उस समय रक्खी जाती है, जब उन्हें कोई वस्तु खींचकर ले जानी होती है। जुआठा। (२) भूसे या अनाज की राशि। (३) चौड़ी सड़क। राजमार्ग।

विवर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) छिद्र। बिल। (२) गड्ढा। दरार। गर्त। (३) गुफा। कन्दरा।

विवरण-संज्ञा पुं० [सं०] (१) किसी वस्तु को स्पष्ट रूप से समझाने की क्रिया। विवेचन। व्याख्या। (२) सविस्तर वर्णन। वृत्तान्त। बयान। हाल। (३) भाष्य। टीका।

विवरना-क्रि० अ० दे० "बिवरना"।

विवर्जन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) त्याग करने की क्रिया। परित्याग। (२) अनादर। उपेक्षा।

विवर्जित-वि० [सं०] (१) मना किया हुआ। वर्जित। निषिद्ध। (२) उपेक्षित। अनादरित। (३) वंचित। रहित।

विवर्ण-संज्ञा पुं० [सं०] साहित्य में एक भाव का नाम जिसमें भय, मोह, क्रोध, लज्जा आदि के कारण नायक या नायिका के मुख का रंग बदल जाता है। खराब रंगवाला।

वि० [सं०] (१) नीच। कमीना। (२) नीच जाति का। (३) नीच पेशा या व्यवसाय करनेवाला। (४) कुजाति। (५) जिसका रंग खराब हो गया हो। (६) रंग बदलनेवाला। (७) बदरंग। बुरे रंग का। (८) जिसके चेहरे का रंग उतरा हुआ हो। कांतिहीन।

विवर्त-संज्ञा पुं० [सं०] (१) समुदाय। समूह। (२) नाच। नृत्य। (३) रूपान्तर। (४) आकाश। (५) भ्रांति। भ्रम।

विवर्त कल्प-संज्ञा पुं० [सं०] वह कल्प जिसमें लोक क्रमशः उन्नति से अवनति को प्राप्त होता है।

विवर्तन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) परिभ्रमण। घूमना फिरना। (२) नाच। नृत्य।

विवर्तवाद-संज्ञा पुं० [सं०] वेदान्त में एक सिद्धान्त जिसके अनुसार ब्रह्म को सृष्टि का मुख्य उत्पत्ति स्थान और संसार को माया मानते हैं। परिणामवाद।

विवर्तस्थायी कल्प-संज्ञा पुं० [सं०] वह समय जब लोक अवनति की पराकाष्ठा को पहुँचकर शून्य दशा में रहता है। कल्पान्त। प्रलय।

विवर्तित-वि० [सं०] (१) परिवर्तित। बदला हुआ। (२) भ्रमित। घूमा हुआ। (३) उखड़ा हुआ। सरका हुआ। (४) अंग जिसमें मोच आ गई हो। जैसे हाथ पैर का विवर्तित होना।

विवर्तिताक्ष-संज्ञा पुं० [सं०] आँख घुमानेवाला, मुर्गा। अरुण-शिखा।

विवर्द्धन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बढ़ाने या वृद्धि करने की क्रिया। (२) वृद्धि। बढ़ती। उन्नति।

विवर्द्धित-वि० [सं०] (१) बढ़ा हुआ। वृद्धि-प्राप्त। (२) उन्नति-प्राप्त। उन्नत।

विवश-वि० [सं०] (१) जिसका कुछ वश न चले। लाचार। बेबस। मजबूर। (२) पराधीन। परवश। (३) जो काबू में न आवे। स्वाधीन। (४) जिसमें कोई शक्ति या बल न हो। अशक्त।

विवस-वि० दे० "विवश"।

विवस्त्र-वि० [सं०] जिसके शरीर पर वस्त्र न हो। वस्त्र-रहित। नग्न। नंगा।

विवस्वती-संज्ञा स्त्री० [सं०] सूर्य्यनगरी।

विवस्वत्-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सूर्य्य। (२) अर्क वृक्ष। (३) सूर्य्य का सारथी, अरुण। (४) पंद्रहवें प्रजापति का नाम।

विवाक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) जो शास्त्रार्थ में दोनों पक्षों के तर्क को देखकर न्याय करे। न्यायधीश। (२) मध्यस्थ।

विवाद-संज्ञा पुं० [सं०] (१) किसी बात या वस्तु पर जबानी झगड़ा। वाक् युद्ध। (२) झगड़ा। कलह।

मुहा०—विवाद उठाना = किसी बात पर मतभेद प्रकट करना और उसके उत्तर की आशा करना। झगड़ा उठाना।

(३) मतभेद। (४) मुकदमेबाजी। अदालत की लड़ाई।

विवादक-संज्ञा पुं० [सं०] विवाद करनेवाला। झगड़ालू।

विवादास्पद-वि० [सं०] जिस पर विवाद या झगड़ा हो। विवाद योग्य। विवादयुक्त। जैसे—अभी इस विषय में कुछ निश्चय नहीं हुआ है; यह विवादास्पद है।

विवादी-संज्ञा पुं० [सं० विवादिन्] (१) विवाद करनेवाला। कहा सुनी या झगड़ा करनेवाला। (२) मुकदमा लड़नेवालों में से कोई एक पक्ष। मुद्दई और मुद्दालेह। (३) संगीत में वह स्वर जिसका किसी राग में बहुत कम व्यवहार हो।

विवाधिक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) जो कंधे पर चीज़ें ढोकर ले जाय। (२) घूमकर चीजें बेचनेवाला। फेरीवाला।

विवास्य-वि० [सं०] निकाल देने योग्य।

विवाह-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रथा जिसके अनुसार स्त्री और पुरुष आपस में दाम्पत्य सूत्र में बँधते हैं। कहीं यह प्रथा सामाजिक होती है, कहीं धार्मिक और कहीं कानून के अनुसार होती है। यह हिन्दुओं के सोलह संस्कारों में से एक संस्कार है। शादी। ब्याह।

विशेष—मनुष्य जाति जब आदिम असभ्यावस्था में थी, उस समय उसमें विवाह या पति-संवरण की प्रथा न थी। केवल काम वेग के कारण स्त्री पुरुषों का समागम हुआ करता था। यह प्रथा अब भी कुछ असभ्य जातियों में प्रचलित है। महाभारत में लिखा है—'प्राचीन काल में स्त्रियाँ नंगी रहती थीं। वे स्वतंत्र और विहारिणी होती थीं और बिना ब्याह किए ही अनेक पुरुषों से समागम करती थीं'। उनका यह कृत्य उस समय अधर्म नहीं समझा जाता था। सभ्यता बढ़ने पर लोगों को घर बनाने और एक ऐसे व्यक्ति को अपने यहाँ रखने की आवश्यकता हुई जो उसका प्रबन्ध कर सके। इसके लिये स्त्रियाँ उपयुक्त समझी गईं। अतः लोगों ने उनको फुसलाकर अथवा बलात् अपने यहाँ रखना आरंभ किया। उन दिनों स्त्री एक पुरुष के अधिकार में तब तक रहती थी, जब तक कोई दूसरा उससे बली पुरुष उसे बलपूर्वक छीन न ले जाता था। अतः अब ऐसा नियम बनाने की आवश्यकता हुई कि एक दूसरे की स्त्री को हरण न कर सके। पर स्त्री-स्वतंत्रता में बाधा नहीं थी। जब आर्यों की सभ्यता बढ़ी और उनमें वर्णधर्म स्थापित हो चला, तब लोग संयुक्त स्त्री को अपने यहाँ रखने की अपेक्षा असंयुक्त या कन्या को अच्छा समझते थे। कन्या के लिये कभी कभी युद्ध भी हुआ करते थे। धीरे धीरे सभ्यता बढ़ती गई और लोगों में स्त्री पुत्र की ममता अधिक होती गई। पर स्त्रियों की स्वतंत्रता बनी रही। वे एक पुरुष के अधिकार में रहकर भी अन्य की कामना करती थीं। उस समय यह व्यभिचार नहीं समझा जाता था। महाभारत से पता चलता है कि इस प्रथा को उद्दालक ऋषि के पुत्र श्वेतकेतु ने उठा दिया। उन्होंने यह मर्यादा बाँधी कि पति के रहते हुए कोई स्त्री उसकी आज्ञा के विरुद्ध अन्य पुरुष से संभोग न करे। पर उस समय भी पति की अयोग्यता की अवस्था में उसके रहते स्त्रियाँ दूसरा पति कर लेती थीं। महर्षि दीर्घतमा ने यह प्रथा निकाली कि 'यावत् जीवन स्त्रियाँ पति के अधीन रहें। पति के जीवन काल में तथा उसके मरने पर भी वे कभी पर पुरुष का आश्रय न लें। और यदि आश्रय लें, तो पतित समझी जायँ।' धीरे धीरे स्त्रियों की स्वतंत्रता जाती रही और वे उपभोग की सामग्री समझी जाने लगीं। यहाँ तक कि लोग उन्हें पति के मरने पर उसके शव के साथ अन्य आमोद प्रमोद की वस्तुओं की भाँति जलाने लगे जिसमें मरे हुए व्यक्ति को वे स्वर्ग में मिलें। इसी प्रथा ने पीछे सती की प्रथा का रूप धारण किया। पीछे से आर्य जाति व्यसनी हो गई। एक पुरुष अनेक स्त्रियाँ रखने लगा; यहाँ तक कि तपस्वी भी इससे नहीं बचे थे। याज्ञवल्क्य के दो स्त्रियाँ (मैत्रेयी और गार्गी) थीं। आर्य्य लोग अनार्य्य स्त्रियों को भी नहीं छोड़ते थे। इस कारण यह नियम बनाना पड़ा कि यज्ञ-दीक्षा के समय रामा अर्थात् शूद्रा से गमन न करें। पीछे से राजा वेणु ने अपने वंश की रक्षा के लिये जबर्दस्ती 'नियोग' की प्रथा चलाई। मनुजी ने उसकी निन्दा की है। वे लिखते हैं—'राजर्षि वेणु के समय में विद्वान् द्विजों ने मनुष्यों के लिये इस पशु-धर्म (नियोग) का उपदेश किया था। राजर्षि प्रवर वेणु समस्त भूमण्डल का राजा था। उसी कामी ने वर्णों का घाल मेल किया।" उस समय तक विवाह दो प्रकार के होते थे। एक तो छीन झपटकर, लड़ भिड़कर या योंही कन्या को फुसलाकर अपने यहाँ ले आते थे। दूसरे यज्ञों के समय यजमान अपनी कन्याएँ पुरोहितों को चाहे दक्षिणा रूप में या धर्म समझकर दे देते थे। धीरे धीरे जब विवाह की यह प्रथा अनुचित मालूम हुई, तब विवाह का अधिकार पिता के हाथ में दिया गया और पिता योग्य वरों को एक समाज में बुलाकर कन्याओं को उनमें से एक को चुनने का अधिकार देता था। यही आगे चलकर स्वयंवर हुआ। कभी कभी स्वयंवर के मौके पर भी क्षत्रिय लोग लड़कियाँ उठा ले जाते थे। विवाह के समय प्रायः वर की २५ वर्ष और कन्या की १६ वर्ष की अवस्था होती थी; अतः विधवा होने की कम संभावना रहती थी। धीरे धीरे 'नियोग' की प्रथा मिट गई। विधवा का विवाह भी बुरा समझा जाने लगा। सभ्यता के बढ़ने पर पुरुष लोग स्त्रियों पर कड़ी दृष्टि रखने लगे और उनकी स्वतंत्रता जाती रही। स्त्रियों की स्वतंत्रता हो जाने पर पुरुषों में बहु-विवाह की प्रथा चल पड़ी। पीछे बुद्ध के समय में एक बार स्त्रियों की

स्वतंत्रता फिर बढ़ी। पर बौद्ध मत का लोप होने पर यह फिर जाती रही। मुसलमानों के आने पर स्त्रियों की रक्षा करने के लिये हिंदुओं ने उनका जल्दी विवाह करना आरंभ किया; क्योंकि उस समय मुसलमान लोग विवाहित स्त्रियों पर बलात्कार करना धर्म-विरुद्ध समझते थे। इसी से बाल विवाह की प्रथा चली। विवाह आठ प्रकार के माने गए हैं—ब्राह्म, दैव, आर्ष, प्राजापत्य, आसुर, गांधर्व, राक्षस और पैशाच। पर आज कल केवल ब्राह्म विवाह प्रचलित है।

पर्य्या०—दारकर्म। परिणय। पाणिग्रहण।

विवाहना-क्रि० स० दे० "ब्याहना"।

विवाहित-वि० पुं० [सं०] [स्त्री० विवाहिता] जिसका विवाह हो गया हो। ब्याहा हुआ।

विवाहिता-वि० स्त्री० [सं०] जिसका पाणिग्रहण हो चुका हो। ब्याही हुई।

विवाही-वि० स्त्री० [सं० विवाहिता] जिसका विवाह हो चुका हो। उ०—और सहेली सबै बिआही। मो कहँ देव कतहुँ बर नाहीं।—जायसी।

विवाह्य-वि० [सं०] पाणिग्रहण करने योग्य। ब्याह करने योग्य। ब्याहने लायक।

विविक्ष-वि० [सं० द्वि] (१) दो। (२) दूसरा। उ०—श्रीफल कंज कली से विराजत कै विवि मौनी बसे हिंग गंग के। कै गिरि हेम के संपुट साने कै राजत संभु मनो रस रंग के।—द्विज।

विविक्त-वि० [सं०] (१) पृथक् किया हुआ। (२) बिखरा हुआ। (३) पवित्र। (४) विजन। निर्जन। (५) त्यक्त।
संज्ञा पुं० [स्त्री० विविक्ता] संन्यासी। त्यागी।

विविक्तचरित-वि० [सं०] जिसका आचरण बहुत अच्छा और पवित्र हो। शुद्ध चरित्रवाला।

विविक्तनाम-संज्ञा पुं० [सं०] (१) पुराणानुसार हिरण्यरेता के सात पुत्रों में से एक पुत्र। (२) इसके द्वारा शासित वर्ष का नाम।

विविचार-वि० [सं०] (१) विचार रहित। विवेक रहित। उ०—हौं अपने विविचार विचार अचार विचार अपार बहाऊँ। धीरज धूरि मिलै कहि केशव धर्म के धामिन धूरि जमाऊँ।—केशव। (२) आचार रहित।

विविचारी-संज्ञा पुं० [सं० विविचारिन्] [स्त्री० विविचारिणी] (१) अविवेकी। मूर्ख। बेवकूफ। (२) दुराचारी। दुश्चरित्र। बदचलन।

विविध-वि० [सं०] बहुत प्रकार का। अनेक तरह का। भाँति भाँति का। जैसे,—विविध विषयों से विभूषित मासिक पत्रिका। उ०—अति रति गति मति एक करि, विविध विवेक विलास। रसिकन को रसिक प्रिया, कीन्हीं केशवदास।—केशव।

विविर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) खोह। गुफा। उ०—विविर जाय सुख पाय, पायो महाप्रसाद पुनि। तहँ के तीर्थ निकाय जाय जाय सादर कियो। (२) बिल। (३) दरार।

विवीत-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह स्थान जो चारों ओर से घिरा हो। बाड़ा। (२) पशुओं के चरने का स्थान जो चारों ओर से घिरा हो।

विबुध-संज्ञा पुं० [सं०] (१) देवता। (२) पंडित। ज्ञानी।

विबुधपुर-संज्ञा पुं० [सं०] देवताओं का देश, स्वर्ग।

विबुधप्रिया-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक वृत्त जिसके प्रत्येक चरण में र, स, ज, ज, भ और र गण होते हैं। इसे 'चंचरी' 'चंचली' और 'चर्चरी' भी कहते हैं।

विबुधवन-संज्ञा पुं० [सं०] देवताओं का प्रमोद वन, नंदन कानन।

विबुधवैद्य-संज्ञा पुं० [सं०] देवताओं के चिकित्सक, अश्विनीकुमार।

विबुधेश-संज्ञा पुं० [सं० विबुध + ईश] देवताओं का राजा, इन्द्र।

विवृत-वि० [सं०] (१) विस्तृत। फैला हुआ। (२) खुला हुआ।
संज्ञा पुं० ऊष्म स्वरों के उच्चारण करने का एक प्रयत्न।

विवृता-संज्ञा स्त्री० [सं०] योनि का एक रोग जिसमें गूलर के फल के सदृश मंडलाकार फुंसियाँ होती हैं और योनि में बहुत जलन होती है।

विवृति-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) चक्र के समान घूमने की क्रिया। परिभ्रमण। (२) टीका। भाष्य।

विवृतोक्ति-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक अलंकार जिसमें श्लेष से छिपाया हुआ अर्थ कवि स्वयं अपने शब्दों द्वारा प्रकट कर देता है।

विवेक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) भली बुरी वस्तु का ज्ञान। सत् असत् का ज्ञान। (२) मन की वह शक्ति जिससे भले बुरे का ज्ञान होता है। अच्छे और बुरे को पहचानने की शक्ति। (३) समझ। विचार। बुद्धि। (४) सत्य ज्ञान। (५) प्रकृति और पुरुष की विभिन्नता का ज्ञान। (६) पानी रखने का एक प्रकार का बरतन।

विवेकता-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) विवेक का भाव। ज्ञान। (२) सत् और असत् का विचार।

विवेकवान्-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जिसे सत् और असत् का ज्ञान हो। अच्छे बुरे को पहचाननेवाला। (२) बुद्धिमान्। अक्लमंद।

विवेकी-संज्ञा पुं० [सं० विवेकिन्] (१) वह जिसे विवेक हो। भले बुरे

का ज्ञान रखनेवाला। (२) विचारवान। बुद्धिमान्। समझदार। (३) ज्ञानी। (४) न्यायशील। (५) वह जो अभियोगों आदि का न्याय करता हो। न्यायाधीश।

विवेचक-संज्ञा पुं० [सं०] विवेचना करनेवाला। विवेकी।

विवेचन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) किसी वस्तु की भली भाँति परीक्षा करना। जाँचना। (२) यह देखना कि कौन सी बात ठीक है और कौन नहीं। निर्णय। (३) व्याख्या। तर्क वितर्क। (४) अनुसंधान। (५) परीक्षा। (६) सत् असत् का विचार। (७) मीमांसा।

विवेचना-संज्ञा स्त्री० "विवेचन"।

विवेचनीय-वि० [सं०] विवेचन करने योग्य। विचार करने लायक।

विवेचित-वि० [सं०] (१) जिसकी विवेचना की गई हो। निर्णय किया हुआ। (२) तै किया हुआ। निश्चित।

विव्वोक-संज्ञा पुं० [सं०] साहित्य शास्त्र के अनुसार एक हाव जिसमें स्त्रियाँ संयोग के समय प्रिय का अनादर करती हैं।

विशंक-वि० [सं०] जिसे किसी प्रकार की शंका या भय न हो। निःशंक। निर्भय। निडर।

विशंकट-वि० [सं०] (१) बहुत बड़ा या विस्तृत। विशाल। (२) भयानक। डरावना।

विशंकनीय-वि० [सं०] जिससे किसी प्रकार की शंका हो। डरने योग्य।

विशंका-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) आशंका। भय। डर। (२) आशंका का अभाव।

विशंकी-वि० [सं० विशंकिन्] जिसे किसी प्रकार की आशंका या भय हो।

विशंक्य-वि० [सं०] आशंका या भय करने के योग्य।

विश-संज्ञा पुं० [सं०] (१) कमल की डंठी। मृणाल। (२) चाँदी। (३) मनुष्य। आदमी।
संज्ञा स्त्री० कन्या। लड़की।

विशद-वि० [सं०] (१) स्वच्छ। विमल। (२) साफ। स्पष्ट। (३) जो दिखाई पड़ता हो। व्यक्त। (४) सफेद। (५) प्रसन्न। खुश। (६) सुंदर। मनोहर। खूबसूरत। (७) अनुकूल।
संज्ञा पुं० (१) सफेद रंग। (२) भागवत के अनुसार जयद्रथ के एक पुत्र का नाम। (३) कसीस। (४) बृहती। बड़ी कटाई। भटकटैया।

विशय-संज्ञा पुं० [सं०] (१) संशय। संदेह। शक। (२) आश्रय। सहारा।

विशयी-संज्ञा पुं० [सं० विशयिन्] वह जिसे किसी प्रकार की शंका या संदेह हो।

विशर-संज्ञा पुं० [सं०] मार डालना। वध।

विशरण-संज्ञा पुं० [सं०] मार डालना। हत्या करना। वध करना।

विशरद-संज्ञा पुं० दे० "विशारद"।

विशर्द्धन-संज्ञा पुं० [सं०] वायुत्याग। पादना।

विशल्यकर्णी-संज्ञा स्त्री० [सं०] निर्विषी।

विशल्यकृत-संज्ञा पुं० [सं०] (१) पलासी लता। (२) आसफोटा या हरपरवाली नामक लता।

विशल्या-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) गुरुच। (२) अग्निशिखा नामक वृक्ष। (३) दंती वृक्ष। (४) नागदंती। (५) एक प्रकार की तुलसी जिसे रामदंती भी कहते हैं। (६) एक नदी का नाम। (७) लक्ष्मण की स्त्री का नाम। (८) निसोथ। (९) पाटला। (१०) खेसारी।

विशस-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मार डालना। हत्या करना। वध। (२) खड्ग।

विशसन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मार डालना। हत्या करना। (२) भागवत के अनुसार एक नरक का नाम। (३) खड्ग।

विशस्त-वि० [सं०] (१) जो मार डाला गया हो। (२) काटा हुआ। (३) जिसे किसी प्रकार का भय न हो।

विशस्ता-संज्ञा पुं० [सं० विशस्तृ] (१) मार डालनेवाला। हत्या करनेवाला। (२) चांडाल।

विशस्ति-संज्ञा स्त्री० [सं०] मार डालना। हत्या।

विशस्पति-संज्ञा पुं० [सं०] राजा।

विशांपति-संज्ञा पुं० [सं०] राजा।

विशाकर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) भद्रचूड़। कंकासीस। (२) दंती। (३) हाथी सुंडी। (४) पाडर या पाटला का वृक्ष।

विशाख-संज्ञा पुं० [सं०] (१) कार्तिकेय। (२) धनुष चलाने के समय एक पैर आगे और एक उससे कुछ पीछे रखना। (३) माँगनेवाला। याचक। (४) पुनर्नवा। गदहपूरना। (५) सुश्रुत के अनुसार वह अपस्मार रोग जो स्कंद नामक ग्रह के प्रकोप से हो। (६) पुराणानुसार एक देवता का नाम जिनका जन्म कार्तिकेय के वज्र चलाने से हुआ था। (७) कार्तिकेय के छोटे भाई का नाम। (८) शिव।
वि० जिसमें शाखाएँ आदि न हों।

विशाखमह-संज्ञा पुं० [सं०] बेल का पेड़।

विशाखज-संज्ञा पुं० [सं०] नारंगी का पेड़।

विशाखपत्र-संज्ञा पुं० [सं०] बालकों को होनेवाला एक प्रकार का रोग। (वैद्यक)

विशाखयूप-संज्ञा पुं० [सं०] नृसिंह पुराण के अनुसार एक प्राचीन देश का नाम। कुछ लोग इसे मद्रास प्रांत का आधुनिक विशाखपत्तन मानते हैं।

विशाखा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) अश्विनी आदि सत्ताईस नक्षत्रों में से सोलहवाँ नक्षत्र जो मिश्र गण के अंतर्गत है और जिसे राधा भी कहते हैं। इसमें चार तारे हैं और इसका आकार तोरण का सा है। यह नक्षत्र दो भागों में बँटा हुआ है, इसलिये इसके दो देवता इंद्र और अग्नि हैं। (२) एक प्राचीन जनपद जो कौशांबी के पास था। (३) सफेद गदहपूरना। (४) काली अपराजिता।

विशाखिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) पुनर्नवा। गदहपूरना। (२) नीली अपराजिता। (३) करेला।

विशाप-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन ऋषि का नाम।

विशाय-संज्ञा पुं० [सं०] पहरेदारों का पारी पारी से सोना।

विशायक-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की लता जिसे विशाकर भी कहते हैं।

विशारद-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जो किसी विषय का अच्छा पंडित या विद्वान् हो। (२) वह जो किसी काम में बहुत कुशल हो। दक्ष। (३) वह जिसे अपनी शक्ति पर भरोसा हो। (४) बकुल वृक्ष। मौलसिरी।

वि० (१) प्रसिद्ध। मशहूर। (२) श्रेष्ठ। उत्तम। (३) अभिमानी। घमंडी।

विशारदा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) केवाँच। कौंछ। (२) धमासा। दुरालभा।

विशाल-वि० [सं०] (१) जो बहुत बड़ा और विस्तृत हो। लंबा चौड़ा। (२) जो देखने में सुंदर और भव्य हो। (३) प्रसिद्ध। मशहूर।

संज्ञा स्त्री० (१) एक प्रकार का मृग। (२) चिड़िया। पक्षी। (३) पेड़। वृक्ष। (४) रामायण के अनुसार राजा इक्ष्वाकु के पुत्र का नाम जिसने विशाला नाम की नगरी स्थापित की थी। (५) पुराणानुसार एक पर्वत का नाम।

विशालक-संज्ञा पुं० [॰] (१) कैथ। कपित्थ। (२) गरुड़। (३) एक यक्ष का नाम।

विशालता-संज्ञा स्त्री० [सं०] विशाल होने का भाव।

विशालत्वक्-संज्ञा पुं० [सं०] छतिवन।

विशालदा-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की लता।

विशालनेत्र-संज्ञा पुं० [सं०] एक बोधिसत्व का नाम।

विशालपत्र-संज्ञा पुं० [सं०] (१) श्रीताल नामक वृक्ष। हिंताल। (२) मानकंद। मानकच्चू।

विशालफलिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] निष्पावी। बरसेमा।

विशाला-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) इंद्रवारुणी नामक लता। इंद्रायन। (२) महेंद्रवारुणी। (३) पुराणानुसार एक तीर्थ का नाम। (४) दक्ष की एक कन्या का नाम। (५) पोई का साग। (६) एकांगी। मुरामांसी। (७) ककणा नामक साग।

विशालाक्ष-संज्ञा पुं० [सं०] (१) महादेव। शिव। (२) विष्णु। (३) गरुड़। (४) धृतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम।

वि० जिसकी आँखें बड़ी और सुंदर हों।

विशालाक्षी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) वह स्त्री जिसकी आँखें बड़ी और सुंदर हों। (२) पार्वती। (३) देवी का एक रूप या मूर्ति। (४) चौंसठ योगिनियों में से एक योगिनी का नाम। (५) नागदंती। हाथीशुंडी।

विशाली-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) अजमोदा। (२) पलाशी लता।

विशिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] बालू। रेत।

विशिख-संज्ञा पुं० [सं०] (१) रामसर या भद्रमुंज नामक घास। (२) बाण। (३) वह स्थान जिसमें रोगी रहता हो।

विशिरस्क-संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार मेरु पर्वत के पास के एक पर्वत का नाम।

विशिष्ट-वि० [सं०] (१) मिला हुआ। युक्त। (२) जिसमें किसी प्रकार की विशेषता हो। विशेषता-युक्त। जैसे,—कुछ विशिष्ट कर्म्म ऐसे होते हैं, जिनके लिये मनुष्य को प्रायश्चित्त तक करना होता है। (३) विलक्षण। अद्भुत। (४) जो बहुत अधिक शिष्ट हो। (५) यशस्वी। कीर्त्तिशाली। (६) प्रसिद्ध। मशहूर।

संज्ञा पुं० सीसा नामक धातु।

विशिष्टचरित्र-संज्ञा पुं० [सं०] एक बोधिसत्व का नाम।

विशिष्टता-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) विशिष्ट का भाव या धर्म्म। (२) विशेषता।

विशिष्टपत्र-संज्ञा पुं० [सं०] ग्रंथिपर्णी। गठिवन।

विशिष्टाद्वैत-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रसिद्ध दार्शनिक सिद्धांत जिसके अनुसार यह माना जाता है कि जीवात्मा और जगत् दोनों ब्रह्म से भिन्न होने पर भी वास्तव में भिन्न नहीं हैं। इस सिद्धांत में यद्यपि ब्रह्म, जीवात्मा और जगत् तीनों मूलतः एक ही माने जाते हैं, पर फिर भी तीनों कार्य्य रूप में एक दूसरे से भिन्न और कुछ विशिष्ट गुणों से युक्त माने जाते हैं। इस सिद्धांत के अनुसार जीव और ब्रह्म का वही संबंध है, जो किरण और सूर्य्य का है; अर्थात् किरण जिस प्रकार सूर्य्य से निकली हुई है, उसी प्रकार जीव भी ब्रह्म से निकला हुआ है; और जिस प्रकार किरण से सूर्य्य बहुत बड़ा है, उसी प्रकार जीव से ब्रह्म भी बहुत बड़ा है। इसमें ब्रह्म को एक भी माना जाता है और अनेक भी। वास्तव में द्वैत और अद्वैत दोनों वादों के मध्य का यह मार्ग है; अर्थात् इसमें उन दोनों वादों में सामंजस्य स्थापित करने की चेष्टा की गई है। यह वाद रामानुजाचार्य्य का चलाया हुआ है और भेदाभेदवाद या द्वैताद्वैतवाद भी कहलाता है।

विशिष्टी-संज्ञा स्त्री० [सं०] शंकराचार्य की माता का नाम।

विशीर्ण-वि० [सं०] (१) सूखा हुआ । (२) दुबला पतला । (३) बहुत पुराना । जीर्ण ।

विशीर्णपर्ण-संज्ञा पुं० [सं०] नीम का पेड़ ।

विशील-वि० [सं०] (१) जिसका शील या चरित्र अच्छा न हो । (२) दुष्ट । पाजी ।

विशुंडि-संज्ञा पुं० [सं०] कश्यप के एक पुत्र का नाम ।

विशुद्ध-वि० [सं०] (१) जो बिलकुल शुद्ध हो । जिसमें किसी प्रकार की मिलावट आदि न हो । (२) सत्य । सच्चा ।
संज्ञा पुं० तंत्र के अनुसार शरीर के अंदर के छः चक्रों में से पाँचवाँ चक्र जो गले में माना जाता है । कहते हैं कि इस में सोलह दल होते हैं और शिव तथा आकाश इसमें निवास करते हैं ।

विशुद्धचरित्र-संज्ञा पुं० [सं०] एक बोधिसत्व का नाम ।
वि० जिसका चरित्र बहुत शुद्ध हो ।

विशुद्धचारी-संज्ञा पुं० [सं० विशुद्धचारिन्] वह जिसका चरित्र बहुत शुद्ध हो ।

विशुद्धता-संज्ञा स्त्री० [सं०] विशुद्ध होने का भाव या धर्म । पवित्रता ।

विशुद्धि-संज्ञा स्त्री० [सं०] विशुद्ध होने की क्रिया या भाव । शुद्धता । पवित्रता ।

विशूचिका-संज्ञा स्त्री० दे० "विसूचिका" ।

विशृंखल-वि० [सं०] (१) जिसमें शृंखला न हो या न रह गई हो । शृंखला-रहित । (२) जो किसी प्रकार दबाया या रोका न जा सके ।

विशृंग-वि० [सं०] जिसे शृंग न हों । शृंग-रहित ।

विशेष-संज्ञा पुं० [सं०] (१) भेद । अंतर । फरक । (२) प्रकार । तरह । ढंग । (३) नियम । कायदा । (४) विचित्रता । (५) व्यक्ति । (६) सार । निचोड़ । (७) तारतम्य । मुनासिबत । (८) वह जो साधारण के अतिरिक्त और उससे अधिक हो । अधिकता । ज्यादती । (९) अवयव । अंग । (१०) वस्तु । पदार्थ । चीज । (११) तिल का पौधा । (१२) साहित्य में एक प्रकार का अलंकार जिसके तीन भेद कहे गए हैं । पहला वह भेद है जिसमें बिना किसी आधार के ही आधेय का वर्णन होता है । जैसे,—बिनु बारिद बिजुरी बिना बारि लसत युग मीन । बिनु ऊपर तम सोम यह निरखी रीति नवीन । दूसरा भेद वह है जिसमें थोड़ा सा ही काम करने पर बहुत बड़ा काम या लाभ हो । जैसे,—पाइ तुम्हें फल चारिहू करत गंगजल पान । तीसरा भेद वह है जिसमें एक चीज का अनेक स्थानों में होना वर्णित होता है । जैसे,—घर बाहर अब ऊरधो सब ठौं राम लखाय । (१३) वैशेषिक दर्शन के अनुसार सात प्रकार के पदार्थों में से एक प्रकार का पदार्थ । विशेष—कणाद ने द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष, समवाय और अभाव ये सात पदार्थ माने हैं । "विशेष" वे गुण हैं जिनके कारण कोई एक पदार्थ शेष दूसरे पदार्थों से भिन्न समझा जाता है । दो वस्तुओं में रूप, रस और गंध आदि में जो अंतर होता है, वह इसी "विशेष" गुण के कारण होता है । रूप, रस, गंध, स्पर्श, स्नेह, द्रवत्व, बुद्धि, सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, धर्म, अधर्म, संस्कार और शब्द ये वैशेषिक गुण या विशेष गुण कहलाते हैं । कणाद के दर्शन में इन्हीं विशेष पदार्थों या गुणों आदि का विवेचन है, इसी लिये यह "वैशेषिक दर्शन" कहलाता है ।

विशेषक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) माथे पर लगाया जानेवाला तिलक । टीका । (२) तिलक वृक्ष । तिलपुष्पी । (३) चित्रक । (४) साहित्य में एक प्रकार का पद्य जिसमें तीन श्लोकों या पदों में एक ही क्रिया रहती है, इसलिये इन तीनों श्लोकों या पद्यों का एक साथ ही अन्वय होता है ।
वि० विशेषता उत्पन्न करनेवाला । विशेष रूप देनेवाला ।

विशेषज्ञ-संज्ञा पुं० [सं०] वह जिसे किसी विषय का विशेष ज्ञान हो । वह जो किसी बात का खास तौर पर जानकार हो । किसी विषय का पारदर्शी ।

विशेषण-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जो किसी प्रकार की विशेषता उत्पन्न करता या बतलाता हो । (२) व्याकरण में वह विकारी शब्द जिससे किसी संज्ञा की कोई विशेषता सूचित होती है, अथवा उसकी व्याप्ति मर्यादित होती है । जैसे,—"वीर मराठे" या "चपल बालक" में "वीर" और "चपल" शब्द विशेषण हैं । जब विशेषण किसी संज्ञा के साथ लगता है, तब उसे विशेष्य-विशेषण कहते हैं; और जब वह क्रिया के साथ लगता है, तब उसे विधेय विशेषण कहते हैं । जैसे,—"हमें तो संसार सूना देख पड़ता है" । यहाँ "सूना" विधेय विशेषण है । साधारणतः विशेषण तीन प्रकार के होते हैं—(१) सार्वनामिक विशेषण; जैसे,—"वह आदमी चला गया" में "वह" सार्वनामिक विशेषण है । (२) गुणवाचक विशेषण; जैसे,—नया, पुराना, सुडौल, सूखा, खराब आदि । और (३) संख्यावाचक विशेषण; जैसे,—आधा, एक, चार, दसवाँ ।

विशेषता-संज्ञा स्त्री० [सं०] विशेष का भाव या धर्म । खसूसियत । खासपन । जैसे,—आपकी बातों में यह विशेषता है कि तुरंत प्रभाव डालती हैं ।

विशेषमति-संज्ञा पुं० [सं०] एक बोधिसत्व का नाम ।

विशेषित-वि० [सं०] (१) जो खास तौर पर अलग किया गया हो । जो "विशेष" किया या बनाया गया हो । (२) जिसमें विशेषता लगा हो ।

विशेषी-वि० [सं० विशेषिन्] जिसमें कोई विशेष बात हो। विशेषतायुक्त।

विशेषोक्ति-संज्ञा स्त्री० [सं०] काव्य में एक प्रकार का अलंकार जिसमें पूर्ण कारण के रहते हुए भी कार्य्य के न होने का वर्णन रहता है। जैसे,—(क) भलि इन लोयन को कछू उपजी बड़ी बलाय। नीरे भरे नित प्रति रहैं, तऊ न प्यास बुजाय। (ख) तमकि ताकि तकि शिव धनु धरहीं। उठत न कोटि भाँति बल करहीं—तुलसी।

विशेष्य-संज्ञा पुं० [सं०] व्याकरण में वह संज्ञा जिसके साथ कोई विशेषण लगा होता है। वह संज्ञा जिसकी विशेषता विशेषण लगाकर सूचित की जाय। जैसे,—मोटा आदमी या काला कुत्ता में "आदमी" और "कुत्ता" विशेष्य हैं।

विशेष्यासिद्धि-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह हेत्वाभास जिसके द्वारा स्वरूप की असिद्धि हो।

विशोक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) अशोक वृक्ष। (२) युधिष्ठिर के एक अनुचर का नाम। (३) पुराणानुसार ब्रह्मा के एक मानसपुत्र का नाम।

वि० जिसे शोक न हो। शोक रहित।

विशोकता-संज्ञा स्त्री० [सं०] शोक रहित होने का भाव या धर्म।

विशोक षष्ठी-संज्ञा स्त्री० [सं०] चैत्र शुक्ला षष्ठी।

विशेष—कहते हैं कि इस दिन व्रत करने से मनुष्य को शोक नहीं होता।

विशोका-संज्ञा स्त्री० [सं०] योग दर्शन के अनुसार वह चित्त-वृत्ति जो संप्रज्ञात समाधि से पहले होती है। इसे ज्योतिष्मती भी कहते हैं।

विशोध-वि० [सं०] विशुद्ध करने योग्य। साफ करने लायक।

विशोधन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) अच्छी तरह साफ करना। (२) विष्णु।

विशोधनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) ब्रह्मा की पुरी का नाम। (२) नागदंती। (३) नीली नामक पौधा। (४) पान। तांबूल।

विशोधिनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) नागदंती। (२) नीली। (३) जमालगोटा।

विशोधिनीबीज-संज्ञा पुं० [सं०] जमालगोटा।

विशोधी-वि० [सं० विशोधिन्] बिल्कुल शुद्ध करनेवाला। विशुद्धि करनेवाला।

विशोष-संज्ञा पुं० [सं०] नीरसता। शुष्कता। रूखापन।

विशोषण-संज्ञा पुं० [सं०] अच्छी तरह सोखना।

विशोषी-संज्ञा पुं० [सं० विशोषिन्] अच्छी तरह सोखनेवाला।

विश्-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) वह जिसने जन्म लिया हो। प्रजा। (२) कन्या। लड़की।

विश्पति-संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० विश्पत्नी] (१) राजा। (२) वैश्यों का प्रधान, मुखिया या पंच।

विश्यापर्ण-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का यज्ञ।

विश्रंभ-संज्ञा पुं० [सं०] (१) विश्वास। एतबार। (२) प्रेमी और प्रेमिका में रति के समय होनेवाला झगड़ा। (३) प्रेम। मुहब्बत। (४) हत्या। मार डालना। (५) स्वच्छंदतापूर्वक घूमना फिरना।

विश्रब्ध-वि० [सं०] (१) जो उद्धत न हो। शांत। (२) जिसका विश्वास किया जाय। विश्वसनीय। (३) जिसे किसी प्रकार का भय न हो। निर्भय। निडर।

विश्रब्धनवोढ़ा-संज्ञा स्त्री० [सं०] साहित्य में नवोढ़ा नायिका का एक भेद। वह नवोढ़ा नायिका जिसका अपने पति पर कुछ कुछ अनुराग और कुछ कुछ विश्वास होने लगा हो। उ०—जाहि न चाह कहूँ रति की सुकछू पति को पतियान लगी है। त्यौं पदमाकर आनन में रुचि कानन भौंह कमान लगी है। देति पिया न छुवै छतियाँ बतियान में तो मुसक्यान लगी है। प्रीतमै पान खवाइबे को परजंक के पास लौं जान लगी है।—पद्माकर।

विश्रम-संज्ञा पुं० दे० "विश्राम"।

विश्रवण-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन ऋषि का नाम।

विश्रवा-संज्ञा पुं० [सं० विश्रवस्] एक प्राचीन ऋषि जो पुलस्त्य मुनि के पुत्र थे और उनकी पत्नी हविर्भू के गर्भ से उत्पन्न हुए थे। कुबेर इन्हीं के पुत्र थे और इन्हीं की पत्नी इलविदा के गर्भ से जनमे थे।

विश्रांत-वि० [सं०] जिसने विश्राम कर लिया हो। जो थकावट उतार चुका हो।

विश्रांति-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) विश्राम। आराम। (२) पुराणानुसार एक तीर्थ का नाम। कहते हैं कि जनार्दन ने वहीं आकर विश्राम किया था।

विश्राम-संज्ञा पुं० [सं०] (१) अधिक समय तक कोई काम या परिश्रम करने के कारण थक जाने पर रुकना या ठहरना। श्रम मिटाना। थकावट दूर करना। आराम करना। उ०—किय विश्राम न मगु महिपाला।—तुलसी। (२) ठहरने का स्थान। उ०—प्यारी की ठोढ़ी को बिंदु दिनेस किधौं बिसराम गोविंद के जी को। (३) आराम। चैन। सुख। उ०—कोउ विश्राम कि पाव तात सहज संतोष बिन। चलै कि जल बिनु नाव कोटि जतन पचि पचि मरिय।—तुलसी।

विश्राव-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बहुत अधिक प्रसिद्धि। शोहरत। (२) ध्वनि। (३) झरना, बहना या रसना। क्षरण।

विश्रि-संज्ञा स्त्री० [सं०] मृत्यु। मौत।

विश्री-वि० [सं०] (१) जिसकी श्री नष्ट हो गई हो। शोभाहीन। (२) भद्दा। कुरूप।

विश्रुत-वि० [सं०] (१) जो जाना या सुना हुआ हो। (२) प्रसिद्ध। विख्यात। मशहूर।

विश्रुतात्मा-संज्ञा पुं० [सं० विश्रुतात्मन्] विष्णु।

विश्रुति-संज्ञा स्त्री० [[सं०] (१) प्रसिद्धि। शोहरत। (२) झरना, बहना या रसना।

विश्लिष्ट-वि० [सं०] (१) जो अलग हो गया हो। जो मिला हुआ न हो। जिसका विश्लेषण हो चुका हो। (२) विकसित। खिला हुआ। (३) जो प्रकट हो। प्रकाशित। (४) जो खुला हुआ हो। मुक्त। (५) थका हुआ। शिथिल।

विश्लिष्टसंधि-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) वैद्यक के अनुसार हड्डी टूटने का एक प्रकार। (२) शरीर के अंगों की किसी संधि का चोट आदि के कारण टूटना।

विश्लेष-संज्ञा पुं० [सं०] (१) अलग होना। पृथक् होना। (२) वियोग। बिछोह। (३) शिथिलता। थकावट। (४) किसी की ओर से मन हट जाना। (५) विकास।

विश्लेषण-संज्ञा पुं० [सं०] (१) किसी पदार्थ के संयोजक द्रव्यों का अलग अलग करना। (२) वायु के प्रकोप से फोड़े या घाव में होनेवाली एक प्रकार की वेदना।

विश्वंतर-संज्ञा पुं० [सं०] भगवान् बुद्ध का एक नाम।

विश्वंभर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सारे विश्व का पालन या भरण करनेवाला, परमेश्वर। (२) विष्णु। (३) एक उपनिषद् का नाम।

विश्वंभरा-संज्ञा स्त्री० [सं०] पृथ्वी।

विश्वंभरेश्वर-संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार हिमालय के एक शिव लिंग का नाम।

विश्व-संज्ञा पुं० [सं०] (१) चौदहो भुवनों का समूह। समस्त ब्रह्मांड। वि० दे० "ब्रह्मांड"। (२) संसार। जगत्। दुनिया। (३) सोंठ। (४) बोल नामक गंध द्रव्य। (५) देवताओं का एक गण जिसमें ये दस देवता हैं—वसु, सत्य, क्रतु, दक्ष, काल, काम, धृति, कुरु, पुरूरवा और माद्रवा। ये धर्म के पुत्र और दक्ष की कन्या विश्वा के गर्भ से उत्पन्न माने जाते हैं। (६) जीवात्मा। (७) विष्णु। (८) शिव। (९) शरीर। देह।

वि० (१) समस्त। सब। (२) बहुत। अधिक।

विशेष—इन अर्थों में इस शब्द का व्यवहार यौगिक शब्द बनाने के लिये उनके आरंभ में होता है।

विश्वक-वि० [सं०] समस्त। पूरा।

विश्वकद्रु-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शिकारी कुत्ता। (२) खल। दुष्ट। पाजी। (३) शब्द। आवाज।

विश्वकर्त्ता-संज्ञा पुं० [सं० विश्वकर्तृ] संसार को उत्पन्न करनेवाला, परमेश्वर।

विश्वकर्म-संज्ञा पुं० [सं०] वह जो सब प्रकार के कार्य्य करने में चतुर हो।

विश्वकर्मजा-संज्ञा स्त्री० [सं०] सूर्य्य की पत्नी संज्ञा का एक नाम।

विश्वकर्म्मा-संज्ञा पुं० [सं० विश्वकर्मन्] (१) समस्त संसार की रचना करनेवाला, ईश्वर। (२) ब्रह्मा। (३) सूर्य्य। (४) एक प्रसिद्ध आचार्य्य अथवा देवता जो सब प्रकार के शिल्पशास्त्र के आविष्कर्त्ता और सर्वश्रेष्ठ ज्ञाता माने जाते हैं। पुराणानुसार ये आठ वसुओं में से प्रभास नामक वसु के पुत्र थे और देवताओं के लिये विमान तथा प्रासाद आदि बनाया करते थे। आग्नेयास्त्र इन्हीं का बनाया हुआ माना जाता है। महाभारत में ये सर्वश्रेष्ठ शिल्पी और अमर कहे गए हैं। रामायण के अनुसार इन्होंने राक्षसों के लिये लंका बनाई थी। वेदों में ये सर्वदर्शी, सर्वनियंता और विधाता कहे गए हैं। वेदों में कहीं कहीं "विश्वकर्म्मा" शब्द इंद्र, सूर्य्य, प्रजापति, विष्णु आदि के अर्थ में भी आया है। महाभारत के अनुसार इनकी माता का नाम लावण्यमयी था; और सूर्य्य की पत्नी संज्ञा इन्हीं की कन्या थी। कहते हैं कि जब सूर्य्य के प्रखर ताप को संज्ञा न सह सकी, तब इन्होंने उसका आठवाँ अंश काट लिया और उससे सुदर्शन चक्र, त्रिशूल आदि बनाकर देवताओं में बाँटे। सृष्टि की रचना करने के कारण ये प्रजापति और त्वष्टा भी कहे जाते हैं। भाद्रपद की संक्रांति को इनकी पूजा हुआ करती है। कारु। तक्षक। देववर्द्धन। (५) शिव का एक नाम। (६) चरक के अनुसार शरीर में की चेतना नामक धातु। (७) बढ़ई। (८) मेमार। राज। (९) लोहार।

विश्वकर्म्मेश-संज्ञा पुं० [सं०] एक शिवलिंग का नाम।

विश्वकाय-संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु।

विश्वकाया-संज्ञा स्त्री० [सं०] दुर्गा।

विश्वकारक-संज्ञा पुं० [सं०] शिव।

विश्वकारु-संज्ञा पुं० दे० "विश्वकर्म्मा"।

विश्वकार्य-संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य्य की सात प्रधान ज्योतियों का समूह।

विश्वकूट-संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार हिमालय की एक चोटी का नाम।

विश्वकृत्-संज्ञा पुं० दे० "विश्वकर्म्मा"।

विश्वकृष्टि-संज्ञा पुं० [सं०] वह जो सब लोगों को अपने सगे संबंधी के समान समझता हो।

विश्वकेतु-संज्ञा पुं० [सं०] (१) अनिरुद्ध का एक नाम। (२) पुराणानुसार एक पर्वत का नाम।

विश्वकोश-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह कोश या भांडार जिसमें संसार भर के सब पदार्थ आदि संगृहीत हों। (२) वह ग्रंथ जिसमें संसार भर के सब प्रकार के विषयों आदि का विस्तृत विवेचन या वर्णन हो।

विश्वकोष-संज्ञा पुं० दे० "विश्वकोश"।

विश्वक्सेन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) विष्णु। (२) पुराणानुसार

तेरहवें मनु का नाम। (३) कालिका पुराण के अनुसार एक चतुर्भुज देवता जो शंख, चक्र, गदा और पद्म धारण किए रहते हैं और जो विष्णु का निर्माल्य धारण करनेवाले माने जाते हैं।

विश्वक्सेना-संज्ञा स्त्री० [सं०] प्रियंगु नामक वृक्ष। कँगनी।

विश्वक्षय-संज्ञा पुं० [सं०] विश्व या ब्रह्मांड का नाश। प्रलय।

विश्वगंगा-संज्ञा स्त्री० [सं०] बरार प्रदेश की एक छोटी नदी का नाम।

विश्वगंध-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बोल नामक गंध द्रव्य। (२) प्याज।

विश्वगंधा-संज्ञा स्त्री० [सं०] पृथ्वी।

विश्वगंधि-संज्ञा पुं० [सं०] भागवत के अनुसार पृथु के पुत्र का नाम।

विश्वग-संज्ञा पुं० [सं०] (१) ब्रह्मा। (२) भागवत के अनुसार मरीचि के पुत्र का नाम जिसका जन्म पूर्णिमा के गर्भ से हुआ था।

विश्वगर्भ-संज्ञा पुं० [सं०] (१) विष्णु। (२) शिव। (३) पुराणानुसार रैवत के एक पुत्र का नाम।

विश्वगुरु-संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु।

विश्वगोप्ता-संज्ञा पुं० [सं० विश्वगोप्तृ] (१) विष्णु। (२) इंद्र। (३) वह जो समस्त विश्व का पालन करता हो।

विश्वग्रंथि-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) हंसपदी लता। (२) लाल लजालू।

विश्वग्वात-संज्ञा पुं० दे० "विश्वग्वायु"।

विश्वग्वायु-संज्ञा पुं० स्त्री० [सं०] वह वायु जो सब जगह समान रूप से चलती हो। ऐसी वायु अनेक प्रकार के दोष और उत्पात उत्पन्न करनेवाली मानी जाती है।

विश्वचक्र-संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार बारह प्रकार के महादानों में से एक प्रकार का महादान। इसमें एक हजार पल का सोने का एक चक्र या पहिया बनवाया जाता है जिसमें सोलह आरे होते हैं; और तब यह चक्र कुछ विशिष्ट विधानों के अनुसार दान किया जाता है।

विश्वचक्रात्मा-संज्ञा पुं० [सं० विश्वचक्रात्मन्] विष्णु।

विश्वचक्षु-संज्ञा पुं० [सं० विश्वचक्षुस्] ईश्वर।

विश्वजा-संज्ञा स्त्री० [सं०] सोंठ।

विश्वजित्-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्रकार का यज्ञ। (२) वरुण का पाश। (३) महाभारत के अनुसार एक प्रकार की अग्नि। (४) एक दानव का नाम। (५) सत्यजित् के पुत्र का नाम। (६) वह जिसने सारे विश्व पर विजय प्राप्त की हो।

विश्वग्रीव-संज्ञा पुं० [सं०] ईश्वर।

विश्वज्योतिष-संज्ञा पुं० [सं०] एक गोत्र-प्रवर्तक ऋषि का नाम।

विश्वतनु-संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु।

विश्वतुलसी-संज्ञा स्त्री० [सं०] बबुई तुलसी। वन-तुलसी।

विश्वतृप्त-संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु।

विश्वतोया-संज्ञा स्त्री० [सं०] गंगा नदी।

विश्वदासा-संज्ञा स्त्री० [सं०] अग्नि की सातों जिह्वाओं का एक नाम।

विश्वदेव-संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार एक प्रकार के देवता जिनकी पूजा नांदीमुख श्राद्ध में होती है।

विश्वदेवा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) नागबला। गँगेरन। (२) लाल दंडोत्पल।

विश्वदेव, विश्वदैवत-संज्ञा पुं० [सं०] उत्तराषाढ़ा नक्षत्र, जिसके देवता विश्वदेव माने जाते हैं।

विश्वधर-संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु।

विश्वधाम-संज्ञा पुं० [सं० विश्वधामन्] (१) ईश्वर। (२) स्वदेश।

विश्वधार-संज्ञा पुं० [सं०] शाकद्वीप के राजा मेधातिथि के एक पुत्र का नाम।

विश्वधारा-संज्ञा स्त्री० [सं०] पुराणानुसार एक नदी का नाम।

विश्वधारिणी-संज्ञा स्त्री० [सं०] पृथ्वी।

विश्वधेनु-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन ऋषि का नाम।

विश्वनाथ-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शिव। महादेव। (२) काशी के एक प्रसिद्ध ज्योतिर्लिंग।

विश्वनाभ-संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु।

विश्वनाभि-संज्ञा स्त्री० [सं०] विष्णु का चक्र।

विश्वपति-संज्ञा पुं० [सं०] (१) ईश्वर। (२) श्रीकृष्ण।

विश्वपर्णी-संज्ञा स्त्री० [सं०] भुईं आँवला।

विश्वपा-संज्ञा पुं० [सं०] ईश्वर।

विश्वपाणि-संज्ञा पुं० [सं०] एक बोधिसत्व का नाम।

विश्वपाल-संज्ञा पुं० [सं०] ईश्वर।

विश्वपावन-संज्ञा स्त्री० [सं०] तुलसी।

विश्वपूजिता-संज्ञा स्त्री० [सं०] तुलसी।

विश्वप्रकाशक-संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य्य।

विश्वप्रबोध-संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु।

विश्वप्स-संज्ञा पुं० [सं० विश्वप्सन्] (१) अग्नि। (२) चंद्रमा। (३) सूर्य्य। (४) देवता। (५) विश्वकर्मा।

विश्वप्सा-संज्ञा स्त्री० [सं०] अग्नि।

विश्वबंधु-संज्ञा पुं० [सं०] शिव। महादेव।

विश्वबाहु-संज्ञा पुं० [सं०] (१) विष्णु। (२) महादेव।

विश्वबीज-संज्ञा पुं० [सं०] विश्व की मूल प्रकृति या माया।

विश्वबोध-संज्ञा पुं० [सं०] भगवान् बुद्ध का एक नाम।

विश्वभद्र-संज्ञा पुं० दे० "सर्वतोभद्र"।

विश्वभर्त्ता-संज्ञा पुं० [सं० विश्वभर्तृ] ईश्वर।

विश्वमय-संज्ञा पुं० [सं०] ब्रह्म जिसमें सारे विश्व की सृष्टि हुई है।

विश्वभाव, विश्वभावन-संज्ञा पुं० [सं०] ईश्वर।
विश्वभुज्-संज्ञा पुं० [सं०] (१) ईश्वर। (२) इंद्र।
विश्वभुजा-संज्ञा स्त्री० [सं०] पुराणानुसार एक देवी का नाम।
विश्वभेषज-संज्ञा पुं० [सं०] सोंठ।
विश्वमया-संज्ञा स्त्री० [सं०] अग्नि की सात जिह्वाओं में से एक जिह्वा का नाम।
विश्वमहेश्वर-संज्ञा पुं० [सं०] महादेव।
विश्वमाता-संज्ञा स्त्री० [सं० विश्वमातृ] समस्त विश्व की माता, दुर्गा।
विश्वमुखी-संज्ञा स्त्री० [सं०] पार्वती का एक नाम।
विश्वमूर्त्ति-संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु।
विश्वमोहन-संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु।
विश्वयोनि-संज्ञा पुं० [सं०] ब्रह्मा।
विश्वरथ-संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार राजा गाधि के एक पुत्र का नाम।
विश्वरद-संज्ञा पुं० [सं०] मग या भोजक ब्राह्मणों का एक धार्मिक ग्रंथ जिसे वे अपना वेद मानते थे और जो भारतीय आर्यों के वेदों का विरोधी था।
विश्वरुचि-संज्ञा पुं० [सं०] (१) महाभारत के अनुसार एक प्रकार की देवयोनि। (२) एक दानव का नाम।
संज्ञा स्त्री० अग्नि की सात जिह्वाओं में से एक जिह्वा का नाम।
विश्वरूप-संज्ञा पुं० [सं०] (१) विष्णु। (२) शिव। (३) पुराणानुसार त्वष्टा के एक पुत्र का नाम। (४) भगवान् श्रीकृष्ण का वह स्वरूप जो उन्होंने गीता का उपदेश करते समय अर्जुन को दिखलाया था।
विशेष—श्रीकृष्ण ने उस अवसर पर अर्जुन को यह दिखलाया या समझाया था कि इस समस्त विश्व या ब्रह्मांड में सूर्य, चंद्रमा, तारे, ग्रह आदि जो कुछ हैं, वे सब मेरा ही स्वरूप हैं।
(५) पुराणानुसार एक तीर्थ का नाम।
विश्वरूपक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) काला अगर। (२) खिरनी।
विश्वरूपी-संज्ञा पुं० [सं० विश्वरूपिन्] विष्णु।
विश्वरोचन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) माही या नारीच नामक साग। (२) कचूर या पेचुक नामक साग।
विश्वलोचन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सूर्य और चंद्रमा।
विश्वलोप-संज्ञा पुं० [सं०] एक वैदिक ऋषि का नाम।
विश्ववर्णा-संज्ञा स्त्री० [सं०] भुइँ आँवला।
विश्ववार-संज्ञा पुं० [सं०] यज्ञ में सोम का एक संस्कार।
विश्ववारा-संज्ञा स्त्री० [सं०] अत्रि गोत्र की एक स्त्री जो ऋग्वेद के पाँचवें मंडल की कुछ ऋचाओं की ऋषि मानी जाती है।
विश्ववास-संज्ञा पुं० [सं०] संसार। जगत्। दुनिया।
विश्वविद्-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जो विश्व की सब बातें जानता हो। बहुत बड़ा पंडित। (२) ईश्वर।
विश्वविद्यालय-संज्ञा पुं० [सं०] वह संस्था जिसमें सभी प्रकार की विद्याओं की उच्च कोटि की शिक्षा दी जाती हो, परीक्षाएँ ली जाती हों और जो लोगों को विद्या संबंधी उपाधियाँ आदि प्रदान करती हो। यूनिवर्सिटी।
विश्ववृक्ष-संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु।
विश्वव्यापी-संज्ञा पुं० [सं० विश्वव्यापिन्] ईश्वर।
वि० जो सारे विश्व में व्याप्त हो।
विश्वश्रवा-संज्ञा पुं० [सं० विश्वश्रवस्] एक मुनि जो कुबेर और रावण आदि के पिता थे।
विश्वसंभव-संज्ञा पुं० [सं०] ईश्वर।
विश्वसन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह स्थान जहाँ ऋषि मुनि विश्राम करते हों। (२) विश्वास। एतबार।
विश्वसनीय-वि० [सं०] विश्वास करने के योग्य। जिसका एतबार किया जा सके। जैसे,—(क) हमें यह समाचार विश्वसनीय सूत्र से मिला है। (ख) आपकी सब बातें बहुत विश्वसनीय हैं।
विश्वसहा-संज्ञा स्त्री० [सं०] अग्नि की सात जिह्वाओं में से एक जिह्वा का नाम।
विश्वसाक्षी-संज्ञा पुं० [सं० विश्वसाक्षिन्] ईश्वर।
विश्वसाम-संज्ञा पुं० [सं० विश्वसामन्] एक वैदिक ऋषि का नाम जो आत्रेय गोत्र के थे और जो अनेक वैदिक मंत्रों के द्रष्टा थे।
विश्वसारक-संज्ञा पुं० [सं०] कंकारी वृक्ष।
विश्वसित-वि० [सं०] विश्वास करने के योग्य। विश्वसनीय। विश्वस्त।
विश्वसृट्-संज्ञा पुं० [सं०] ईश्वर।
विश्वस्त-वि० [सं०] जिसका विश्वास किया जाय। विश्वसनीय।
विश्वस्ता-संज्ञा स्त्री० [सं०] विधवा।
विश्वस्था-संज्ञा स्त्री० [सं०] शतावर।
विश्वहर्त्ता-संज्ञा पुं० [सं० विश्वहर्तृ] शिव।
विश्वहेतु-संज्ञा पुं० [सं०] विश्व को उत्पन्न करनेवाले, विष्णु।
विश्वा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) दक्ष की एक कन्या जो धर्म को ब्याही थी और जिससे वसु, सत्य, क्रतु आदि दस पुत्र उत्पन्न हुए थे। (२) एक मान जो २० पल का होता है। (३) अतिविषा। अतीस। (४) शतावर। (५) पीपल। (६) सोंठ। (७) शंखिनी। चोरपुष्पी।
विश्वाद-संज्ञा पुं० [सं०] ईश्वर।
विश्वाची-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) एक वैदिक अप्सरा का नाम। (२) एक प्रकार का रोग जिसमें वायु के कारण कंधे से

उँगलियों तक सारा हाथ न तो फैलाया जा सकता है और न सिकोड़ा जा सकता है।

विश्वातीत-संज्ञा पुं० [सं०] ईश्वर

विश्वात्मा-संज्ञा पुं० [सं० विश्वात्मन्] (१) विष्णु। (२) शिव। (३) ब्रह्मा।

विश्वाद्-संज्ञा पुं० [सं०] अग्नि।

विश्वादि-संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक में एक प्रकार का कषाय जो सोंठ, बाला, क्षेत्रपर्पटी, मोथा, लाल चंदन आदि से बनाया जाता है और जो ज्वर की प्यास, कै तथा दाह आदि को कम करनेवाला माना जाता है।

विश्वाधार-संज्ञा पुं० [सं०] परमेश्वर।

विश्वाधिप-संज्ञा पुं० [सं०] परमेश्वर।

विश्वानर-संज्ञा पुं० दे० "वैश्वानर"।

विश्वाभू-संज्ञा पुं० [सं०] इंद्र।

विश्वामित्र-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रसिद्ध ब्रह्मर्षि जो गाधिज, गाधेय और कौशिक भी कहे जाते हैं।

विशेष—विश्वामित्र कान्यकुब्ज के पुरुवंशी महाराज गाधि के पुत्र थे, परंतु क्षत्रिय कुल में जन्म लेने पर भी अपने तपोबल से ब्रह्मर्षियों में परिगणित हुए। ऋग्वेद के अनेक मंत्र ऐसे हैं जिनके द्रष्टा विश्वामित्र अथवा उनके वंशज माने जाते हैं। इनका विश्वामित्र नाम ब्राह्मणत्व प्राप्त करने पर पड़ा था; नहीं तो इनका पहला क्षत्रिय-दशा का नाम विश्वरथ था। ऋग्वेद में अनेक मंत्र ऐसे मिलते हैं जिनसे सिद्ध होता है कि ये यज्ञों में पुरोहित का कार्य करते थे, और वृत्ति के संबंध में इनमें तथा वशिष्ट में बहुत समय तक बराबर झगड़े बखेड़े होते रहते थे। पुराणों में लिखा है कि राजा गाधि को सत्यवती नाम की एक सुंदरी कन्या उत्पन्न हुई थी। वह कन्या उन्होंने ऋचीक ऋषि को दे दी थी। ऋचीक ने एक बार दो अलग अलग चरु तैयार करके अपनी स्त्री सत्यवती को दिए थे और कहा था कि इसमें से यह एक चरु तो तुम खा लेना जिससे तुम्हें ब्राह्मणों के गुण से संपन्न एक पुत्र होगा; और यह दूसरा चरु अपनी माता को दे देना जिससे उन्हें क्षत्रियों के गुणवाला एक बहुत तेजस्वी पुत्र उत्पन्न होगा। इसी बीच में राजा गाधि अपनी स्त्री सहित वहाँ आए। सत्यवती ने वे दोनों चरु अपनी माता के सामने रख दिए और उनका गुण बतला दिया। माता ने समझा कि ऋचीक ने अपनी स्त्री के लिये बढ़िया चरु तैयार किया होगा; इसलिये उसने उसका चरु तो आप खा लिया और अपना उसे खिला दिया। इससे उसके गर्भ से तो विश्वामित्र का जन्म हुआ, जिसमें क्षत्रिय होने पर भी ब्राह्मणों के से गुण थे; और सत्यवती के गर्भ से जमदग्नि का जन्म हुआ जो ब्राह्मण होने पर भी क्षत्रियों के गुणों से संपन्न थे। विश्वामित्र को शुनःशेफ, देवरात, देवश्रवा, हिरण्याक्ष, गालव, जय, अष्टक, कच्छप, नारायण, नर आदि सौ पुत्र उत्पन्न हुए थे, जिनके कारण इनके कौशिक वंश की बहुत अधिक वृद्धि हुई थी। कहते हैं कि एक बार जब विश्वामित्र ने बहुत बड़ा तप किया था, तब इंद्र तथा समस्त देवताओं ने भयभीत होकर मेनका नामक अप्सरा को उसका तप भंग करने के लिये भेजा था। इसी मेनका से विश्वामित्र को शकुंतला नामक कन्या उत्पन्न हुई थी जो दुष्यंत को ब्याही गई थी। यह भी प्रसिद्ध है कि इक्ष्वाकु वंश के राजा त्रिशंकु ने एक बार सशरीर स्वर्ग जाने की कामना से एक यज्ञ करना चाहा था। परंतु उनके पुरोहित वशिष्ठ ने कहा कि ऐसा होना असंभव है। इस पर त्रिशंकु ने विश्वामित्र की शरण ली और विश्वामित्र ने उन्हें सशरीर स्वर्ग पहुँचा दिया। यह भी कहा जाता है कि विश्वामित्र बहुत बड़े क्रोधी थे और प्रायः लोगों को शाप दे दिया करते थे। राजा हरिश्चंद्र के सत्य की सुप्रसिद्ध परीक्षा लेनेवाले भी यही माने जाते हैं। पुराणों में इनके संबंध में इसी प्रकार की और भी अनेक कथाएँ प्रचलित हैं।

विश्वामित्रप्रिय-संज्ञा पुं० [सं०] नारियल का पेड़।

विश्वामित्रा-संज्ञा स्त्री० [सं०] महाभारत के अनुसार एक नदी का नाम।

विश्वायन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जो विश्व की सब बातें जानता हो। सर्वज्ञ। (२) ब्रह्मा।

विश्वाराज्-संज्ञा पुं० [सं०] ईश्वर।

विश्वावसु-संज्ञा पुं० [सं०] (१) पुराणानुसार एक गंधर्व का नाम। (२) विष्णु। (३) एक संवत्सर का नाम।
संज्ञा स्त्री० रात।

विश्वास-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह धारणा जो मन में किसी व्यक्ति के प्रति उसका सद्भाव, हितैषिता, सत्यता, दृढ़ता आदि अथवा किसी सिद्धांत आदि की सत्यता अथवा उत्तमता का ज्ञान होने के कारण होती है। किसी के गुणों आदि का निश्चय होने पर उसके प्रति उत्पन्न होनेवाला मन का भाव। एतबार। यकीन। जैसे,—(क) मैं तो सदा ईश्वर पर विश्वास रखता हूँ। (ख) उन्हें आपका पूरा पूरा विश्वास है। (ग) आप विश्वास रखें, ऐसा कभी न होगा।

क्रि० प्र०—करना।—मानना।—रखना।—होना।

मुहा०—विश्वास जमाना = किसी के मन में विश्वास उत्पन्न करना या दृढ़ करना। विश्वास दिलाना = किसी के मन में विश्वास उत्पन्न करना।

(२) मन की वह धारणा जो विषय या सिद्धांत आदि की सत्यता का पूरा पूरा प्रमाण न मिलने पर भी, उसकी

सत्यता के संबंध में होती है। जैसे,—(क) बहुत से अशिक्षित भूत प्रेत पर विश्वास रखते हैं। (ख) और धर्मों की अपेक्षा बौद्ध धर्म पर उनका कुछ अधिक विश्वास है। (३) केवल अनुमान के आधार पर होनेवाला मन का दृढ़ निश्चय। जैसे,—मेरा तो यही विश्वास है कि वह अवश्य आवेगा।

विश्वासकारक-वि० [सं०] (१) विश्वास करनेवाला। यकीन करनेवाला। (२) मन में विश्वास उत्पन्न करनेवाला। जिससे विश्वास उत्पन्न हो।

विश्वासघात-संज्ञा पुं० [सं०] किसी के विश्वास के विरुद्ध की हुई क्रिया। अपने पर विश्वास करनेवाले के साथ ऐसा कार्य करना जो उसके विश्वास के बिल्कुल विपरीत हो।

विश्वासघातक-संज्ञा पुं० [सं०] वह जो किसी के मन में अपने प्रति विश्वास उत्पन्न करके भी उसका अपकार करे। विश्वास करने पर भी धोखा देनेवाला। धोखेबाज।

विश्वासन-संज्ञा पुं० [सं०] विश्वास। एतबार। यकीन।

विश्वासपात्र-संज्ञा पुं० [सं०] जिस पर भरोसा किया जाय। विश्वास करने के योग्य। विश्वसनीय।

विश्वासस्थान-संज्ञा पुं० [सं०] वह जिसका विश्वास किया जाय। विश्वास-भाजन।

विश्वासिक-संज्ञा पुं० [सं०] वह जिसका विश्वास किया जाय। विश्वसनीय।

विश्वासी-संज्ञा पुं० [सं० विश्वासिन्] (१) वह जो किसी पर विश्वास करता हो। विश्वास करनेवाला। (२) वह जिसका विश्वास किया जाय।

विश्वास्य-वि० [सं०] (१) विश्वास करने योग्य। विश्वसनीय। (२) जिसका विश्वास किया जाय। विश्वास-भाजन।

विश्वाह्वा-संज्ञा स्त्री० [सं०] सोंठ।

विश्वेदेव-संज्ञा पुं० [सं०] (१) अग्नि। (२) देवताओं का एक गण जिसमें इंद्र, अग्नि आदि नौ देवता माने जाते हैं। वैदिक युग में लोग इन्हें मनुष्यों के रक्षक, शुभ कर्मों के फल देनेवाले और विश्व के अधिपति मानते थे। अग्नि पुराण में ये दस कहे गए हैं और इनके नाम इस प्रकार बतलाए गए हैं—क्रतु, दक्ष, वसु, सत्य, काम, काल, ध्वनि रोचक, आद्रव और पुरूरवा। (३) पुराणानुसार एक असुर का नाम।

विश्वेभोज-संज्ञा पुं० [सं० विश्वेभोजस्] इंद्र।

विश्ववेद-संज्ञा पुं० [सं० विश्ववेदस्] अग्नि।

विश्वेश-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शिव। (२) विष्णु। (३) उत्तराषाढ़ा नक्षत्र जिसके अधिपति विश्व नामक देवता माने जाते हैं।

विश्वेश्वर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) ईश्वर। (२) शिव की एक मूर्त्ति का नाम।

विश्वैकसार-संज्ञा पुं० [सं०] काश्मीर के एक प्राचीन तीर्थ का नाम।

विश्वौषध-संज्ञा पुं० [सं०] सोंठ।

विषंड-संज्ञा पुं० [सं०] कमल की नाल। मृणाल।

विष-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह पदार्थ जो किसी प्राणी के शरीर में किसी प्रकार पहुँचने पर उसके प्राण ले लेता हो अथवा उसका स्वास्थ्य नष्ट करता हो। गरल। जहर।

विशेष—वैद्यक में स्थावर और जंगम ये दो प्रकार के विष माने गए हैं। स्थावर विष वृक्षों, पौधों और खानों आदि में से निकला हुआ माना जाता है; और जंगम विष वह कहलाता है जो अनेक प्रकार के जीवों के शरीर, नख, दाँत या डंक आदि में होता है। कुछ विष कृत्रिम भी होते हैं और रासायनिक क्रियाओं से बनाए जाते हैं। चिकित्सा में अनेक विषों का प्रयोग, बहुत थोड़ी मात्रा में, अनेक रोगों को दूर करने और दुर्बल रोगी के शरीर में बल लाने के लिये किया जाता है।

मुहा०—के लिये दे० "जहर"।

(२) वह जो किसी की सुख-शांति आदि में बाधक हो।

मुहा०—विष की गाँठ = वह जो अनेक प्रकार के उपद्रव और अपकार आदि करता हो। खराबी पैदा करनेवाला। जैसे,—यही तो विष की गाँठ हैं; सब झगड़ा इन्हीं का खड़ा किया हुआ है।

(३) जल। (४) पद्मकेदार। (५) कमल की नाल। (६) बोल नामक गंध द्रव्य। (७) बछनाग। (८) अतीस। (९) कलिहारी।

विषकंद-संज्ञा पुं० [सं०] इंगुदी।

विषकंटक-संज्ञा पुं० [सं०] दुरालभा।

विषकंटका-संज्ञा स्त्री० [सं०] वंध्या ककोटी। बाँझ ककोड़ी।

विषकंटकी-संज्ञा स्त्री० [सं०] बाँझ ककोटी।

विषकंठ-संज्ञा पुं० [सं०] शिव। महादेव।

विषकंठिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] बगला।

विषकंद-संज्ञा पुं० [सं०] (१) भैंसा कंद। (२) हिंगोट। इंगुदी।

विषकन्या-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह कन्या या स्त्री जिसके शरीर में इस आशय से कुछ विष प्रविष्ट कर दिए गए हों कि जो उसके साथ संभोग करे, वह मर जाय।

विशेष—प्राचीन काल में राजाओं के यहाँ बाल्यावस्था से ही कुछ कन्याओं के शरीर में अनेक प्रकार से विष प्रविष्ट करा दिए जाते थे, जिनके कारण उनके शरीर में ऐसा प्रभाव आ जाता था कि जो उनके साथ विषय करता था, वह मर जाता था। जब राजा को अपने किसी शत्रु को गुप्त

रूप से मारना अभीष्ट होता था, तब वह इस प्रकार की विषकन्या उसके पास भेज देता था, जिसके साथ संभोग करके वह शत्रु मर जाता था।

विषगंधक–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का तृण जिसमें भीनी भीनी गंध होती है।

विषगंधा–संज्ञा स्त्री० [सं०] काली अपराजिता।

विषगिरि–संज्ञा पुं० [सं०] वह पर्वत जिस पर उत्पन्न होनेवाले वृक्ष और पौधे आदि जहरीले होते हों।

विषघ–वि० [सं०] विष का नाश करनेवाला।

विषघा–संज्ञा पुं० [सं०] गुड़ुच।

विषघातक–संज्ञा पुं० [सं०] वह जिससे विष का प्रभाव दूर होता हो।

विषघाती–संज्ञा पुं० [सं० विषघातिन्] (१) वह जिससे विष का प्रभाव नष्ट होता हो। (२) सिरिस का पेड़।

विषघ्न–वि० [सं०] विष का प्रभाव दूर करनेवाला। विषनाशक। संज्ञा पुं० (१) सिरिस का वृक्ष। (२) भिलावाँ। (३) चंपा का वृक्ष। (४) भूकदंब। (५) गंध-तुलसी।

विषघ्ना–संज्ञा स्त्री० [सं०] अतिविषा। अतीस।

विषघ्निका–संज्ञा स्त्री० [सं०] सफेद अपामार्ग या चिचड़ा।

विषघ्नी–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) हिलमोचिका या हिलंच नामक साग। (२) वन तुलसी। बबुई तुलसी। (३) इंद्रवारुणी। (४) भुईं आँवला। (५) लाल पुनर्नवा। गदहपूरना। (६) हलदी। (७) महाकरंज। (८) वृश्चिकाली नाम की लता। (९) देवदाली या पीतघोषा नाम की लता। (१०) कठकेला। (११) सफेद अपामार्ग। (१२) रास्ना।

विषचक्र–संज्ञा पुं० [सं०] चकोर पक्षी।

विषजिह्व–संज्ञा पुं० [सं०] देवताड़ नामक वृक्ष।

विषज्वर–संज्ञा पुं० [सं०] (१) वैद्यक के अनुसार वह ज्वर जो विष के कारण उत्पन्न हुआ हो। ऐसे ज्वर में दाह होती है, दस्त आते हैं, भोजन की ओर रुचि नहीं होती, प्यास बहुत लगती है और रोगी मूर्च्छित हो जाता है। (२) भैंसा।

विषणि–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का साँप।

विषण्ण–वि० [सं०] जिसका चित्त दुःखी हो। जिसे विषाद, शोक या रंज हो।

विषण्णता–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) विषण्ण या दुःखी होने का भाव। (२) मूर्खता। बेवकूफी।

विषण्णांग–संज्ञा पुं० [सं०] शिव।

विषतंत्र–संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक के अनुसार वह प्रक्रिया जिसके द्वारा साँप आदि का विष दूर किया जाता है।

विषतरु–संज्ञा पुं० [सं०] कुचला।

विषता–संज्ञा स्त्री० [सं०] विष का भाव या धर्म। जहरीलापन।

विषतिंदु–संज्ञा पुं० [सं०] (१) कुचला। (२) करौंदा।

विषतैल–संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक में एक प्रकार का तेल जो कड़ुए तेल में गोमूत्र, हलदी, दारु हल्दी, बच, लालचंदन, मजीठ आदि डालकर बनाया जाता है और जिसका व्यवहार कुष्ट आदि रोग दूर करने के लिये होता है।

विषदंत–संज्ञा पुं० [सं०] बिल्ली।

विषदंतक–संज्ञा पुं० [सं०] साँप।

विषदंष्ट्र–संज्ञा पुं० [सं०] बिल्ली।

विषदंष्ट्रा–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) साँप का वह दाँत जिसमें जहर होता है। (२) सर्प कंकालिका नाम की लता। (३) नागदमनी।

विषद–संज्ञा पुं० [सं०] (१) हीरा कसीस। (२) सफेद रंग। (३) अतिविषा। अतीस। (४) बादल। वि० विर्मल। स्वच्छ। साफ।

विषदमूला–संज्ञा स्त्री० [सं०] मार्कंडी नामक पौधा जिसके पत्तों का साग होता है।

विषदा–संज्ञा स्त्री० [सं०] अतिविषा। अतीस।

विषदाता–संज्ञा पुं० [सं० विषदातृ] वह जो किसी को मार डालने या बेहोश करने के अभिप्राय से जहर दे।

विषदुष्ट–वि० [सं०] जो जहर मिलाकर खराब कर दिया गया हो।

विषदूषण–वि० [सं०] विष दूर करनेवाला।

विषद्रुम–संज्ञा पुं० [सं०] कुचला।

विषधर–संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० विषधरी] साँप।

विषधात्री–संज्ञा स्त्री० [सं०] जरत्कारु ऋषि की स्त्री मनसा देवी का एक नाम।

विषध्वंसी–संज्ञा पुं० [सं० विषध्वंसिन्] नागर मोथा।

विषनाशन–संज्ञा पुं० [सं०] (१) सिरिस का पेड़। (२) मानकंद। वि० जो विष को दूर करता हो। विषनाशक।

विषनाशिनी–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सर्प कंकाली नाम की लता। (२) बाँस ककोटी। (३) गंधनाकुली।

विषपत्रिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) किसी जहरीले बीज का छिलका। (२) कोई जहरीला पत्ता।

विषपन्नग–संज्ञा पुं० [सं०] जहरीला साँप।

विषपुच्छ–संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० विषपुच्छी] बिच्छू।

विषपुट–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन ऋषि का नाम।

विषपुष्प–संज्ञा पुं० [सं०] (१) नीला पद्म। (२) अलसी का फूल। (३) मैनफल का पेड़।

विषपुष्पक–संज्ञा पुं० [सं०] मदन नामक वृक्ष। मैनफल।

विषप्रशमनी–संज्ञा स्त्री० [सं०] बाँस ककोड़ी।

विषप्रस्थ–संज्ञा पुं० [सं०] महाभारत के अनुसार एक पर्वत का नाम।

विषभद्रा–संज्ञा स्त्री० [सं०] बड़ी दंती।

विषभद्रिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] बड़ी दंती।

विषभुजंग-संज्ञा पुं० [सं०] जहरीला साँप।

विषमंत्र-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जो विष उतारने का मंत्र जानता हो। (२) सँपेरा।

विषम-वि० [सं०] (१) जो सम या समान न हो। जो बराबर न हो। असमान। (२) (वह संख्या) जिसमें दो से भाग देने पर एक बचे। सम या जूस का उलटा। ताक। (३) जिसकी मीमांसा सहज में न हो सके। बहुत कठिन। जैसे,—विषम समस्या। (४) बहुत तीव्र। बहुत तेज। (५) भीषण। विकट। जैसे,—विषम विपत्ति।

संज्ञा पुं० (१) संकट। विपत्ति। आफत। (२) वह वृत्त जिसके चारों चरणों में बराबर बराबर अक्षर न हों, बल्कि कम और ज्यादा अक्षर हों। (३) एक अर्थालंकार जिसमें दो विरोधी वस्तुओं का संबंध वर्णन किया जाता है या यथायोग्य का अभाव कहा जाता है। उ०—(क) कहाँ मृदुल तन तीय को सिरस प्रसून महान। कहाँ मदन की लाय यह अँव सम दुसह समान। (ख) खड्गलता अति स्याम तें उपजी कीरति सेत। (४) संगीत में ताल का एक प्रकार। (५) पहली, तीसरी, पाँचवीं आदि विषम संख्याओं पर पड़नेवाली राशियाँ। (६) वैद्यक के अनुसार चार प्रकार की जठराग्नियों में से एक प्रकार की जठराग्नि जो वायु की अधिकता से उत्पन्न होती है। कहते हैं कि जब जठराग्नि विषम होती है, तब कभी तो भोजन बहुत अच्छी तरह पच जाता है और कभी बिलकुल नहीं पचता।

विषमकर्ण-संज्ञा पुं० [सं०] चारों समकोणोंवाले चतुर्भुज में किसी दो बराबर के कोणों के सामने की रेखा।

विषमकोण-संज्ञा पुं० [सं०] वह कोण जो सम न हो। समकोण से भिन्न और कोई कोण।

विषमचतुष्कोण-संज्ञा पुं० [सं०] वह चौकोर क्षेत्र जिसके चारो कोण समान न हों। विषम कोणवाला चतुष्कोण।

विषमच्छद-संज्ञा पुं० [सं०] छतिवन का पेड़।

विषमज्वर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वैद्यक के अनुसार एक प्रकार का ज्वर जो होता तो नित्य है, पर जिसके आने का कोई समय नियत नहीं होता। इसमें ताप-मान भी सदा समान नहीं रहता और नाड़ी की गति भी सदा एक सी नहीं रहती, बराबर बदलती रहती है। इसलिये इसे विषमज्वर कहते हैं। ज्वर का यह रूप किसी साधारण ज्वर के बिगड़ने अथवा पूरी तरह अच्छे न होने पर कुपथ्य करने के कारण होता है। वैद्यक में इसके अनेक भेद कहे गए हैं। जैसे—संतत, सतत, तृतीयक, चतुर्थक आदि। (२) जाड़ा देकर आनेवाला ज्वर। जूड़ी बुखार। (३) क्षयी रोग में होनेवाला ज्वर।

विषमता-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) विषम होने का भाव। असमानता। (२) वैर। विरोध। द्रोह।

विषमत्रिभुज-संज्ञा पुं० [सं०] वह त्रिभुज जिसके तीनों भुज छोटे बड़े हों, समान न हों।

विषमत्व-संज्ञा पुं० [सं०] विषम होने का भाव। विषमता।

विषमनयन-संज्ञा पुं० [सं०] शिव। महादेव।

विषमनेत्र-संज्ञा पुं० [सं०] शिव। महादेव।

विषमपलाश-संज्ञा पुं० [सं०] छतिवन का वृक्ष।

विषमर्दनिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] गंधनाकुली।

विषमवल्कल संज्ञा पुं० [सं०] नारंगी।

विषमबाण-संज्ञा पुं० [सं०] कामदेव का एक नाम।

विषमविशिख-संज्ञा पुं० [सं०] कामदेव का एक नाम।

विषमवृत्त-संज्ञा पुं० [सं०] वह वृत्त या छंद जिसके चरण या पद समान न हों। असमान पदोंवाला वृत्त।

विषमशिष्ट-संज्ञा पुं० [सं०] प्रायश्चित्त आदि के लिये व्यवस्था देने के संबंध का एक दोष जो उस समय माना जाता है, जब कोई भारी पाप करने पर हलका प्रायश्चित्त करने की या हलका पाप करने पर भारी प्रायश्चित्त करने की व्यवस्था दी जाती है।

विषमा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) हापरमाली। (२) एक प्रकार का बछनाग।

विषमाक्ष-संज्ञा पुं० [सं०] शिव। महादेव।

विषमाग्नि-संज्ञा स्त्री० [सं०] वैद्यक में एक प्रकार की जठराग्नि। कहते हैं यह अग्नि कभी तो खाए हुए पदार्थों को अच्छी तरह पचा देती है और कभी बिलकुल नहीं पचाती।

विषमाधुर-संज्ञा पुं० [सं०] शृंगी विष। सींगिया।

विषमायुध-संज्ञा पुं० [सं०] कामदेव।

विषमाशन-संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक के अनुसार ठीक समय पर भोजन न करके समय के पहले या पीछे अथवा थोड़ा या अधिक भोजन करना जिसके कारण शरीर में आलस्य या दुर्बलता होती है।

विषमुष्कक-संज्ञा पुं० [सं०] मैनफल।

विषमुष्टि-संज्ञा पुं० [सं०] (१) जीवंती। (२) बकायन। (३) मीठी नीम। घोड़ा नीम। (४) कलिहारी। (५) कुचला।

विषमुष्टिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] बकायन।

विषमूला-संज्ञा स्त्री० [सं०] शिरामलक। शिर आँवला।

विषमृत्यु-संज्ञा पुं० [सं०] चकोर पक्षी।

विषमेक्षण-संज्ञा पुं० [सं०] महादेव।

विषमेषु-संज्ञा पुं० [सं०] कामदेव।

विषयक-अव्य० [सं०] विषय का। संबंधी। जैसे,—इस पत्र में राजनीति विषयक बातें अधिक रहती हैं।

विषयता-संज्ञा स्त्री० [सं०] विषय का भाव या धर्म।

विषयपति-संज्ञा पुं० [सं०] किसी जनपद या छोटे प्रांत का राजा या शासक।

विषयाधिप-संज्ञा पुं० [सं०] किसी छोटे प्रांत का राजा या शासक।

विषयी-संज्ञा पुं० [सं० विषयिन्] (१) वह जो भोग विलास या विषय आदि में बहुत अधिक आसक्त हो। विलासी। कामी। (२) राजा। (३) कामदेव। (४) जिसके पास बहुत अधिक विषय या धन संपत्ति हो। धनवान। अमीर।

विषरूपा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) अतिविषा। अतीस। (२) मीठी नीम। घोड़ा नीम। (३) खेकसा।

विषल-संज्ञा पुं० [सं०] विष। जहर।

विषलता-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) इंद्रवारुणी नाम की लता। (२) मृणाल। कमलनाल।

विषलांगल-संज्ञा पुं० [सं०] कलिहारी।

विषवंचिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] बिच्छू नामक पौधा।

विषवल्ली-संज्ञा स्त्री० [सं०] इंद्रवारुणी नाम की लता।

विषविद्या-संज्ञा स्त्री० [सं०] मंत्र आदि की सहायता से झाड़ फूँककर विष उतारने की विद्या।

विषविधि-संज्ञा स्त्री० [सं०] प्राचीन व्यवहार शास्त्र के अनुसार एक प्रकार की परीक्षा या दिव्य जिससे यह जाना जाता था कि अमुक व्यक्ति अपराधी है या नहीं। वि० दे० "दिव्य"।

विषवृक्ष-संज्ञा पुं० [सं०] गूलर।

विषवैद्य-संज्ञा पुं० [सं०] वह जो मंत्र तंत्र आदि की सहायता से विष उतारता हो।

विषवैरिणी-संज्ञा स्त्री० [सं०] निर्विषी नामक घास।

विषशालूक-संज्ञा पुं० [सं०] कमलकंद। भसींड़।

विषशूक-संज्ञा पुं० [सं०] भीमरोल नामक कीड़ा।

विषशृंगी-संज्ञा पुं० [सं० विषशृंगिन्] भीमरोल नामक कीड़ा।

विषसंयोग-संज्ञा पुं० [सं०] सिंदूर। सेंदुर।

विषसूचक-संज्ञा पुं० [सं०] चकोर नामक पक्षी।

विषहंता-संज्ञा पुं० [सं० विषहंतृ] सिरिस का पेड़।
वि० जिससे विष का प्रभाव दूर हो। विषनाशक।

विषहंत्री-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) अपराजिता। (२) निर्विषी।

विषह-वि० [सं०] जो विष का नाश करता हो। विषघ्न।
संज्ञा पुं० (१) देवदाली। (२) निर्विषी।

विषहर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह औषध या मंत्र आदि जिससे विष का प्रभाव दूर होता हो। (२) भटेउर। चोरक। धनहर।

विषहरा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) देवदाली। बंदाल। (२) निर्विषी। (३) मनसा देवी का एक नाम।

विषहरी-संज्ञा स्त्री० [सं०] मनसा देवी का एक नाम।

विषहा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) देवदाली। बंदाल। (२) निर्विषी।

विषहारक-संज्ञा पुं० [सं०] भुइँ कदंब।

विषहारिणी-संज्ञा स्त्री० [सं०] निर्विषी नामक घास।

विषांकुर-संज्ञा पुं० [सं०] तीर।

विषांगना-संज्ञा स्त्री० दे० "विषकन्या"।

विषांतक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जिससे विष का नाश हो। (२) शिव का एक नाम।

विषा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) अतिविषा। अतीस। (२) कलिहारी। (३) कड़वी कँदूरी। (४) कड़वी तरोई। (५) काकोली। (६) बुद्धि। अक्ल।

विषाक्त-वि० [सं०] जिसमें विष मिला हो। विष युक्त। विषपूर्ण। ज़हरीला।

विषाख्या-संज्ञा स्त्री० [सं०] अतीस।

विषाण-संज्ञा पुं० [सं०] (१) कुट या कूट नामक ओषधि। (२) हाथी दाँत। (३) पशु का सींग। (४) मेढ़ा सिंगी। (५) वाराहीकंद। गेंठी। (६) ऋषभक नामक ओषधि। (७) सूअर का दाँत। (८) इमली।

विषाणांत-संज्ञा पुं० [सं०] गणेशजी का दाँत।

विषाणिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) मेढ़ा सिंगी। (२) सातला नाम का थूहर। (३) काकड़ा सिंगी। (४) आवर्त्तकी या भगवतवल्ली नाम की लता। (५) सिंघाड़ा। (६) ऋषभक नामक ओषधि। (७) काकोली।

विषाणी-संज्ञा पुं० [सं० विषाणिन्] (१) वह जिसे सींग हो। सींगवाला। (२) हाथी। (३) सूअर। (४) साँड़। (५) सिंघाड़ा। (६) ऋषभक नामक ओषधि।
संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) क्षीर काकोली। (२) ऋषभक नामक ओषधि। (३) मेढ़ासिंगी। (४) वृश्चिकाली। बिछाती। (५) इमली। (६) सिंघाड़ा। (७) विष। ज़हर। (८) भगवतवल्ली या आवर्त्तकी नाम की लता।

विषाद-संज्ञा पुं० [सं०] (१) खेद। दुःख। रंज। (२) जड़ या निश्चेष्ट होने का भाव। (३) काम करने को बिलकुल जी न चाहना। (४) मूर्खता। बेवकूफ़ी।

विषादनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) पलाशी नामकी लता। (२) इंद्रवारुणी।

विषादिता-संज्ञा स्त्री० [सं०] विषाद का धर्म्म या भाव।

विषादिनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) पलाशी नाम की लता। (२) इंद्रवारुणी।

विषादी-संज्ञा पुं० [सं० विषादिन्] वह जिसे विषाद हो। विषाद-युक्त।

विषाद्-संज्ञा पुं० [सं०] हलाहल विष खानेवाले, शिव।

विषानन-संज्ञा पुं० [सं०] साँप।

विषापह-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मोखा नामक वृक्ष। (२) वह जिससे विष का नाश हो।

विषापहा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) इंद्रवारुणी। इंद्रायन। (२) निर्विषी। (३) नागदमन। (४) अर्कपत्रा। इसरौल। (५) सर्पकंकाली। (६) सर्पदंष्ट्रा। इरपंद। (७) त्रिपर्णी नामक कंद।

विषायका-संज्ञा स्त्री० [सं०] निर्विषी।

विषायुध-संज्ञा पुं० [सं०] (१) साँप। (२) वह अस्त्र जो ज़हर में बुझाया गया हो।

विषार-संज्ञा पुं० [सं०] साँप।

विषाराति-संज्ञा पुं० [सं०] काला धतूरा।

विषारि-संज्ञा पुं० [सं०] (१) महाचंचु या चेंच नामक साग। (२) घीकरंज।

वि० जिससे विष का नाश होता हो।

विषाला-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की मछली जिसका मांस वायु और कफ को बढ़ानेवाला माना जाता है।

विषास्त्र-संज्ञा पुं० [सं०] (१) साँप। (२) ज़हर में बुझाया हुआ अस्त्र।

विषास्य-संज्ञा पुं० [सं०] साँप।

विषास्या-संज्ञा स्त्री० [सं०] भिलावाँ।

विषी-संज्ञा पुं० [सं० विषिन्] (१) विषपूर्ण वस्तु। ज़हरीली चीज़। (२) विषधर सर्प। ज़हरीला साँप।

वि० [हिं० विष] विषयुक्त। ज़हरीला।

विषुण-संज्ञा पुं० दे० "विषव"।

विषुदुह-संज्ञा पुं० [सं०] बाण। तीर।

विषुप-संज्ञा पुं० दे० "विषुव"।

विषुव-संज्ञा पुं० [सं०] ज्योतिष के अनुसार वह समय जब कि सूर्य्य विषुव रेखा पर पहुँचता है और दिन तथा रात दोनों बराबर होते हैं। ऐसा समय वर्ष में दो बार आता है। एक तो सौर चैत्र मास की नवीं तिथि या अंग्रेज़ी २१ मार्च को; और दूसरा सौर आश्विन की नवीं तिथि या अंग्रेज़ी २२ सितंबर को।

विशेष—दे० "विषव रेखा"।

विषुवरेखा-संज्ञा स्त्री० [सं०] ज्योतिष के कार्य्य के लिये कल्पित एक रेखा जो पृथ्वी तल पर उसके ठीक मध्य भाग में खड़े बल में या पूर्व पश्चिम पृथ्वी के चारों ओर मानी जाती है। यह रेखा दोनों मेरुओं के ठीक मध्य में और दोनों से समान अंतर पर है। आकाश में इस रेखा से उत्तर की ओर मेष से कन्या तक की पहली छः राशियाँ और दक्षिण की ओर तुला से मीन तक की छः राशियाँ हैं। इसे निरक्ष वृत्त भी कहते हैं।

विषूचक-संज्ञा पुं० [सं०] विसूचिका नामक रोग।

विषूचिका-संज्ञा स्त्री० दे० "विसूचिका"।

विषोषधी-संज्ञा स्त्री० [सं०] नागदंती।

विष्कंध-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जो गति को रोकता हो। (२) बाधा। विघ्न।

विष्कंधाजीर्ण-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का अजीर्ण रोग जिसमें रोगी के शरीर में शूल के समान पीड़ा होती है, उसका पेट फूल जाता है और वह मल या अपान वायु का त्याग नहीं कर सकता।

विष्कंभ-संज्ञा पुं० [सं०] (१) फलित ज्योतिष के अनुसार सत्ताइस योगों में से पहला योग जो आरंभ के पाँच दंडों को छोड़कर शुभ कार्य्य के लिये बहुत अच्छा समझा जाता है। कहते हैं कि इस योग में जन्म लेनेवाला मनुष्य सब बातों में स्वाधीन और भाई बंधु आदि से सदा सुखी रहता है। (२) विस्तार। (३) बाधा। विघ्न। (४) साहित्य-दर्पण के अनुसार नाटक का एक प्रकार का अंक जो प्रायः गर्भांक के समीप होता है। जो कथा पहले हो चुकी हो अथवा जो अभी होनेवाली हो, उसकी इसमें मध्यम पात्रों द्वारा सूचना दी जाती है। यह दो प्रकार का होता है—शुद्ध और संकीर्ण। जब एक या अनेक मध्यम पात्र इसका प्रयोग करते हैं, तब यह शुद्ध कहलाता है। और जब मध्यम तथा नीच पात्रों द्वारा इसका प्रयोग होता है, तब इसे संकीर्ण कहते हैं। शुद्ध विष्कंभक में मध्यम पात्रों का वार्त्तालाप संस्कृत भाषा में और संकीर्ण विष्कंभक में मध्यम तथा नीच पात्रों का वार्त्तालाप प्राकृत भाषा में होता है। शुद्ध का उदाहरण मालती माधव के पाँचवें अंक में कुंडला कृत प्रयोग और संकीर्ण का रामाभिनंद में क्षपणक और कापालिक कृत प्रयोग है। (५) योगियों का एक प्रकार का बंध। (६) वाराह पुराण के अनुसार एक पर्वत का नाम। (७) वृक्ष। पेड़। (८) अर्गल। ब्योंड़ा।

विष्कंभक-संज्ञा पुं० दे० "विष्कंभ"।

विष्कंभी-संज्ञा पुं० [सं० विष्कंभिन्] (१) शिव जी का एक नाम। (२) अर्गल। ब्योंड़ा।

विष्क-संज्ञा पुं० [सं०] वह हाथी जिसकी अवस्था बीस वर्ष की हो गई हो।

विष्कर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) पक्षी। चिड़िया। (२) अर्गल। ब्योंड़ा। (३) एक दानव का नाम।

विष्कल-संज्ञा पुं० [सं०] सूअर।

विष्कलन-संज्ञा पुं० [सं०] भोजन। आहार।

विष्किर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) पक्षी। चिड़िया। (२) वे पक्षी जो अन्न को इधर उधर छितराकर नखों से कुरेदकर खाते हैं। जैसे, कबूतर, मुरगा, तीतर, बटेर आदि। (३)

दर्वीकर नामक जाति के साँपों के अंतर्गत एक प्रकार का साँप।

विष्कुंभ-संज्ञा पुं० दे० "विष्कंभ"।

विष्टप-संज्ञा पुं० [सं०] भुवन। लोक।

विष्टप्-संज्ञा पुं० [सं०] स्वर्ग लोक।

विष्टंभ-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बाधा। रुकावट। (२) एक प्रकार का रोग जिसमें मल रुकने के कारण रोगी का पेट फूल जाता है। अनाह। विबंध। (३) आक्रमण। चढ़ाई।

विष्टंभन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) रोकने या संकुचित करने की क्रिया। (२) वह जो रोकता या संकुचित करता हो।

विष्टंभी-संज्ञा [सं० विष्टंभिन्] वह पदार्थ जिससे पेट का मल रुके। (वैद्यक)

विष्टर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) आक। मदार। (२) वृक्ष। पेड़। (३) पीठ। (४) कुश का बना हुआ आसन।

विष्टरश्रवा-संज्ञा पुं० [सं० विष्टरश्रवस्] विष्णु। नारायण।

विष्टरा-संज्ञा स्त्री० [सं०] गुंडासिनी नामक घास।

विष्टराश्व-संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार पृथु के एक पुत्र का नाम।

विष्टरुहा-संज्ञा स्त्री० [सं०] पीली केतकी।

विष्टारपंक्ति-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का वैदिक छंद जिसके प्रथम और चतुर्थ चरणों में १२ वर्ण होते हैं।

विष्टारबृहती-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक वैदिक छंद का नाम जिसके पहले और चौथे चरणों में ८ और दूसरे तथा तीसरे चरणों में १० वर्ण होते हैं।

विष्टि-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) वह काम जो बिना कुछ पुरस्कार दिए कराया जाय। बेगार। (२) वेतन। तनख्वाह। (३) काम। (४) वर्षा। (५) फलित ज्योतिष के ग्यारह चरणों में से सातवाँ करण जिसे विष्टिभद्रा भी कहते हैं।

विष्टिकर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) प्राचीन काल के राज्य का वह बड़ा सैनिक कर्मचारी जिसे अपनी सेना रखने के लिये राज्य की ओर से जागीर मिला करती थी। (२) अत्याचारी।

विष्टिभद्रा-संज्ञा स्त्री० दे० "विष्टि"। (५)

विष्टिमत-संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार एक प्रकार का मत।

विष्ठा-संज्ञा स्त्री० [सं०] मल। मैला। गुह। पाखाना।

विष्ठाभुक्-संज्ञा पुं० [सं०] सूअर।

विष्ठाभुजी-संज्ञा पुं० [सं०] सूअर।

विष्ठारुहा-संज्ञा स्त्री० [सं०] पीली केतकी।

विष्ठेष्ठा-संज्ञा स्त्री० [सं०] हल्दी।

विष्णु-संज्ञा पुं० [सं०] (१) हिंदुओं के एक प्रधान और बहुत बड़े देवता जो सृष्टि का भरण पोषण और पालन करनेवाले तथा ब्रह्म का एक विशेष रूप माने जाते हैं।

विशेष—भारतवर्ष में विष्णु को देवता रूप में बहुत दिनों से मानते चले आते हैं और इनकी उपासना बहुत अधिकता से होती आई है। ऋग्वेद में यद्यपि विष्णु गौण देवता माने गए हैं, पर ब्राह्मण ग्रंथों में इनका महत्व बहुत अधिक है। ऋग्वेद में विष्णु विशाल शरीरवाले और युवक माने गए हैं और कहा गया है कि ये त्रि-वि-क्रम अर्थात् तीन कदमों अथवा डगों से सारे विश्व को अतिक्रमण करनेवाले हैं। पुराणों के वामन अवतार का यही बीज रूप है। कुछ लोगों ने इन तीनों डगों या कदमों का अर्थ सूर्य्य का दैनिक उदय, मध्य और अस्त माना है; और कुछ लोग इसका अर्थ भूलोक, भुवर्लोक और स्वर्गलोक लेते हैं। इसके अतिरिक्त ये नियमित रूप, बहुत दूर तक और जल्दी जल्दी चलनेवाले माने गए हैं। यह भी कहा गया है कि ये इंद्र के मित्र थे और वृत्र के साथ युद्ध करने में इन्होंने इंद्र को सहायता दी थी। विष्णु और इन्द्र दोनों मिलकर वातावरण, अंतरिक्ष, सूर्य, उषा और अग्नि के उत्पादक माने गए हैं; और विष्णु इस पृथ्वी, स्वर्ग और सब जीवों के मुख्य आधार कहे गए हैं। ऋग्वेद और शतपथ ब्राह्मण में कुछ ऐसी कथाएँ भी हैं जो पौराणिक काल के वराह, मत्स्य तथा कूर्म अवतार का भी मूल या प्रारंभिक रूप मानी जा सकती हैं। वैदिक काल में विष्णु धन, वीर्य और बल देनेवाले तथा सब लोगों का अभीष्ट सिद्ध करनेवाले माने जाते थे। पुराणों के अनुसार विष्णु समय समय पर पृथ्वी का भार हलका करने के लिये, संसार में शांति और सुख की स्थापना करने के लिये और दुष्टों तथा पापियों का नाश करने के लिये अवतार धारण किया करते हैं। विष्णु के कुल चौबीस अवतार कहे गए हैं जिनमें से दस मुख्य माने गए हैं (दे० "अवतार")। भिन्न भिन्न पुराणों में विष्णु के संबंध में अनेक प्रकार की कथाएँ और उनकी उपासना आदि का बहुत अधिक माहात्म्य मिलता है। विष्णु के उपासक वैष्णव कहलाते हैं। इनकी स्त्री का नाम श्री या लक्ष्मी कहा गया है; और ये युवक, श्याम वर्ण और चतुर्भुज माने गए हैं। ये चारों हाथों में शंख, चक्र, गदा और पद्म धारण किए रहते हैं। इनके शंख का नाम पांचजन्य, चक्र का नाम सुदर्शन और गदा का नाम कौमोदकी है। इनकी तलवार का नाम नंदक और धनुष का नाम शार्ङ्ग है। इनका वाहन वैनतेय नामक गरुड़ माना जाता है। पुराणों में इनके एक हजार नाम कहे गए हैं; और उन नामों का जप बहुत शुभ फल देनेवाला माना जाता है। नारायण, कृष्ण, वैकुंठ, दामोदर, केशव, माधव, गोविंद, पीतांबर, जनार्दन, चक्रपाणि, श्रीपति, मधुसूदन, हरि आदि इनके प्रसिद्ध नाम हैं। (२) अग्नि। (३) वसुदेवता। (४) बारह आदित्यों में से

पहले आदित्य का नाम। (५) एक प्राचीन ऋषि जिनका बनाया हुआ धर्मशास्त्र प्रचलित है।

विष्णुऋक्ष-संज्ञा पुं० [सं०] श्रवण नक्षत्र का एक नाम।

विष्णुकंद-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का बड़ा कंद जो प्रायः कोंकण प्रदेश में होता है। वैद्यक में यह मधुर, शीतल, रुचिकारी, तृप्तिकारक तथा दाह, पित्त और सूजन को दूर करनेवाला माना जाता है।

पर्य्या०—विष्णुगुप्त। सुपुट। महुसंपुट। जलवासा। बृहत्कंद।

विष्णुकांची-संज्ञा स्त्री० [सं०] दक्षिण के एक प्राचीन तीर्थ का नाम। कहते हैं कि इसकी स्थापना शंकराचार्य्य ने की थी।

विष्णुकांता-संज्ञा स्त्री० [सं०] नीली अपराजिता। नीली कोयल लता।

विष्णुकांती-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्राचीन तीर्थ का नाम।

विष्णुकाक-संज्ञा पुं० [सं०] नीली अपराजिता। नीली कोयल लता।

विष्णुक्रांत-संज्ञा पुं० [सं०] (१) इश्क पेचाँ नामक लता या उसका फूल। (२) संगीत में एक प्रकार का ताल।

विष्णुक्रांता-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) नीली अपराजिता या कोयल नाम की लता। (२) वाराहीकंद। गेंठी। (३) नीले फूल वाली शंखाहुली।

विष्णुक्रांति-संज्ञा स्त्री० [सं०] अपराजिता या कोयल नाम की लता।

विष्णुक्षेत्र-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन तीर्थ का नाम।

विष्णुगंगा-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्राचीन नदी का नाम।

विष्णुगंधि-संज्ञा स्त्री० [सं०] लाल फूल की शंखाहुली।

विष्णुगुप्त-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्रसिद्ध ऋषि और वैयाकरण जो लोक में कौटिल्य नाम से प्रसिद्ध थे। कहते हैं कि एक बार शिवजी इन पर बहुत कुपित हुए थे। उस समय विष्णु ने इनकी रक्षा की थी। (२) प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ चाणक्य का असली नाम। वि० दे० "चाणक्य"। (३) बड़ी मूली। (४) विष्णुकंद।

विष्णुगुप्तक-संज्ञा पुं० [सं०] बड़ी मूली।

विष्णुचक्र-संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु के हाथ का चक्र। सुदर्शन चक्र।

विष्णुतिथि-संज्ञा स्त्री० [सं०] एकादशी और द्वादशी दोनों तिथियाँ, जिनके स्वामी विष्णु माने जाते हैं।

विष्णुतैल-संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक में एक प्रकार का तेल जो वात रोगों के लिये बहुत उपकारी माना जाता है।

विष्णुत्व-संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु का भाव या धर्म।

विष्णुदैवत्-संज्ञा पुं० [सं०] श्रवण नामक नक्षत्र जिसके स्वामी विष्णु माने जाते हैं।

विष्णुद्वीप-संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार एक द्वीप का नाम।

विष्णुधर्मोत्तर-संज्ञा पुं० [सं०] एक उपपुराण का नाम जो विष्णु पुराण का एक अंग माना जाता है।

विष्णुधारा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) एक प्राचीन तीर्थ का नाम। (२) पुराणानुसार हिमालय से निकली हुई एक नदी का नाम।

विष्णुपंजर-संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार विष्णु का एक कवच। कहते हैं कि यह कवच धारण करने से सब प्रकार के भय दूर हो जाते हैं।

विष्णुपत्नी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) विष्णु की स्त्री, लक्ष्मी। (२) अदिति का एक नाम।

विष्णुपद-संज्ञा पुं० [सं०] (१) कमल। (२) आकाश। आसमान।

विष्णुपदी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) गंगा नदी जो विष्णु के पैरों से निकली हुई मानी जाती है। (२) वृष, वृश्चिक, कुंभ और सिंह इनमें से प्रत्येक की संक्रांति।

विष्णुपरायण-संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु का भक्त, वैष्णव।

विष्णुपर्णिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] पृश्निपर्णी। पिठवन।

विष्णुपर्णी-संज्ञा स्त्री० [सं०] भुइँ आँवला।

विष्णुपीठ-संज्ञा पुं० [सं०] तांत्रिकों के अनुसार एक पीठ या तीर्थस्थान का नाम।

विष्णुपुरी-संज्ञा स्त्री० [सं०] विष्णु के रहने का स्थान, वैकुंठ।

विष्णुप्रिया-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) तुलसी का पौधा। (२) लक्ष्मी।

विष्णुमाया-संज्ञा स्त्री० [सं०] दुर्गा।

विष्णुयशा-संज्ञा पुं० [सं० विष्णुयशस्] पुराणानुसार वह व्यक्ति जो महायशा का पुत्र और कल्कि अवतार का पिता होगा।

वि [illegible]-संज्ञा पुं० [सं०] गरुड़।

वि [illegible]रात-संज्ञा पुं० [सं०] राजा परीक्षित का एक नाम। कहते हैं कि अश्वत्थामा ने इन्हें गर्भ में ही मार डाला था; पर विष्णु ने इन्हें फिर से जिला दिया; इसी से इनका यह नाम पड़ा।

विष्णुलिंगी-संज्ञा स्त्री० [सं०] बटेर।

विष्णुलोक-संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु का निवास स्थान, वैकुंठ। गोलोक।

विष्णुवल्लभा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) तुलसी का पौधा। (२) अग्निशिखा। कलिहारी।

विष्णुवाहन-संज्ञा पुं० [सं०] गरुड़।

विष्णुवृद्ध-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन गोत्र-प्रवर्तक ऋषि का नाम।

विष्णुशक्ति-संज्ञा स्त्री० [सं०] लक्ष्मी।

विष्णुशिला-संज्ञा स्त्री० [सं०] शालग्राम।

विष्णुशृंखल-संज्ञा पुं० [सं०] वह द्वादशी जो श्रवण नक्षत्र में हो। इसकी गणना योग और पुण्य काल में होती है।

विष्णुश्रुत-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्राचीन ऋषि का नाम।

(२) एक प्रकार का आशीर्वाद-वचन जिसका अभिप्राय है कि यह सुनकर विष्णु तुम्हारा मंगल करें।

विष्णुसंहिता-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रसिद्ध स्मृति का नाम।

विष्णुसर्वज्ञ-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रसिद्ध आचार्य जो सायण के गुरु माने जाते हैं।

विष्णुस्मृति-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रसिद्ध स्मृति जिसका उल्लेख याज्ञवल्क्य आदि ने किया है।

विष्णुहिता-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) तुलसी का पौधा। (२) मरुआ।

विष्पक्षी-संज्ञा पुं० [सं०] पक्षी। चिड़िया।

विष्पर्धा-संज्ञा पुं० [सं० विष्पर्धन्] स्वर्ग।

वि० जिसे किसी प्रकार की स्पर्धा या मत्सर आदि न हो।

विष्फार-संज्ञा पुं० [सं०] धनुष की टंकार।

विष्य-वि० [सं०] जो विष देकर मार डालने योग्य हो। जहर देकर मार डालने लायक।

विष्वक्-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जो सदा इधर उधर घूमता फिरता रहे। (२) दे० "विषुव"।

विष्वक्पर्णी-संज्ञा स्त्री० [सं०] भुइँ आँवला।

विष्वक्सेन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) विष्णु का एक नाम। (२) एक मनु का नाम जो मत्स्य पुराण के अनुसार तेरहवें और विष्णु पुराण के अनुसार चौदहवें हैं। (३) शिव का एक नाम। (४) एक प्राचीन ऋषि का नाम। (५) पुराणानुसार शंकर के एक पुत्र का नाम।

विष्वक्सेना-संज्ञा स्त्री० [सं०] प्रियंगु।

विसंकट-संज्ञा पुं० [सं०] (१) इंगुदी या हिंगोट नामक वृक्ष। (२) सिंह। शेर।

वि० विशाल। बड़ा।

विसंज्ञ-वि० [सं०] जिसे संज्ञा न हो। बेहोश।

विसंधिक-वि० [सं०] जिनकी संधि न हो सकती हो।

विसंवाद-संज्ञा पुं० [सं०] (१) विरोध। (२) डाँट डपट।

वि० विलक्षण। अद्भुत।

विस-संज्ञा पुं० [सं०] कमल की नाल। मृणाल।

विसकंठिका-संज्ञा स्त्री० [सं] एक प्रकार का छोटा बगला।

विसकुसुम-संज्ञा पुं० [सं०] कमल।

विसग्रंथि-संज्ञा पुं० [सं०] कमलकंद। भसींड़।

विसज-संज्ञा पुं० [सं०] कमल।

विसदृश-वि० [सं०] (१) जो सदृश या समान न हो। विपरीत। विरुद्ध। उलटा। (२) विलक्षण। अद्भुत। अजीब।

विसनाभि-संज्ञा पुं० [सं०] कमलिनी। पद्मिनी।

विसप्रसून-संज्ञा पुं० [सं०] कमल।

विसम-वि० दे० "विषम"।

विसमता-संज्ञा स्त्री० दे० "विषमता"।

विसर्ग-संज्ञा पुं० [सं०] (१) दान। (२) त्याग। (३) मल का त्याग करना। शौच। (४) व्याकरण के अनुसार एक वर्ण जिसमें ऊपर नीचे दो बिंदु होते हैं और जिनका उच्चारण प्रायः अर्ध ह के समान होता है। इसका रूप यह होता है:—(५) सूर्य का एक अयन। (६) मोक्ष। (७) मृत्यु। (८) प्रलय। (९) वियोग। बिछोह। (१०) दीप्ति। चमक। (११) वर्षा, शरद और हेमंत ये तीनों ऋतुएँ।

विसर्जन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) परित्याग। छोड़ना। उ०—अब मुझे प्राण विसर्जन करने में तनिक भी आगा पीछा नहीं।—राधाकृष्ण। (२) किसी को यह कहकर भेजना कि तुम जाकर अमुक कार्य्य करो। (३) विदा होना। चला जाना। प्रस्थान करना। (४) षोडशोपचार पूजन में अंतिम उपचार; अर्थात् आवाहन किए हुए देवता से पुनः स्वस्थान-गमन की प्रार्थना करना। (५) समाप्ति। अंत। उ०—कथा विसर्जन होति है सुनौ वीर हनुमान। (६) दान।

विसर्प-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का रोग जिसमें ज्वर के साथ साथ सारे शरीर में छोटी छोटी फुंसियाँ हो जाती हैं।

विसर्पण-संज्ञा पुं० [सं०] (१) फैलना। (२) फोड़े आदि का फूटना। (३) फेंकना।

विसर्पिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] विसर्प नामक रोग।

विसर्पिणी-संज्ञा स्त्री० [सं०] यवतिक्ता। शंखिनी।

विसर्पी-वि० [सं० विसर्पिन्] प्रसरणशील। फैलनेवाला। उ०—उठ उठ ह्याँ ते भागु तौ लौं अभागे। मम वचन विसर्पी सर्प जौ लौं न लागे।—केशव।

विसल-संज्ञा पुं० [सं०] वृक्ष का नया पत्ता। पल्लव।

विसल्यकृत-संज्ञा पुं० [सं०] भद्रवल्ली।

विसवर्त्म-संज्ञा पुं० [सं० विसवर्त्मन्] वैद्यक के अनुसार आँखों का एक प्रकार का रोग जिसमें त्रिदोष के प्रकोप के कारण पलकों में सूजन हो जाती है और उसमें छोटी छोटी फुंसियाँ हो जाती हैं जिनमें से पानी बहा करता है।

विसवासह-संज्ञा पुं० [सं०] जावित्री।

विसवासा-संज्ञा स्त्री० [सं०] जावित्री।

विसशालूक-संज्ञा पुं० [सं०] कमलकंद। भसींड़।

विसार-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मछली। (२) निर्गम। निकलना। (३) विस्तार। फैलाव। (४) प्रवाह। बहाव। (५) उत्पत्ति।

विसारिणी-संज्ञा स्त्री० [सं०] माषपर्णी। मषवन।

विसिनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) कमलिनी। पद्मिनी। मृणाल।

† संज्ञा पुं० दे० "व्यसनी"।

विसुकृत-संज्ञा पुं० [सं०] धर्म्म-विरुद्ध कार्य्य। पाप। गुनाह।

विसूचिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] वैद्यक के अनुसार एक प्रकार का रोग जिसे कुछ लोग "हैजा" मानते हैं।

विशेष—वैद्यक के अनुसार इस रोग में पहले पेट में दर्द होता है, और फिर रोगी को बहुत से दस्त आते हैं। शरीर

जलन होती है और प्यास बहुत लगती है; छाती और सिर में पीड़ा होती है; भ्रम, मूर्छा और कंप होता है; जँभाई आती है; निर्बलता बहुत होती है; मूत्र मंद हो जाता है; नाड़ी मंद पड़ जाती है; आँखें बैठ जाती हैं; शरीर का रंग पीला पड़ जाता है और आवाज बदल जाती है। साथ ही वायु आदि के प्रकोप के कारण सारे शरीर में सुइयाँ चुभने की सी पीड़ा होती है; इसी से इसे विसूचिका कहते हैं। कुछ लोग इसे "हैज़ा" भी मानते हैं, पर अधिकांश डाक्टर आदि इसे हैज़े से भिन्न समझते हैं। उनका मत है कि यह विसूचिका रोग अजीर्ण के कारण होता है; और हैज़ा एक प्रकार के विषाक्त जीवाणुओं के शरीर में प्रवेश करने से होता है।

विसूची-संज्ञा स्त्री० [सं०] विसूचिका नामक रोग।

विसूरण-संज्ञा पुं० [सं०] (१) दुःख। रंज। शोक। (२) चिंता। फ़िक्र। (३) विरक्ति। वैराग्य।

विसृष्ट-वि० [सं०] (१) जिसकी सृष्टि या रचना विशेष प्रकार से हुई हो। विशेष रूप से बनाया हुआ। (२) फेंका हुआ। (३) त्यागा हुआ। छोड़ा हुआ। (४) भेजा हुआ।

संज्ञा पुं० विसर्ग जो इस प्रकार लिखा जाता है—ः।

विसोटा-संज्ञा पुं० [सं० वासक] अडूसा।

विस्त-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सोना। (२) एक प्रकार का परिमाण जो एक कर्ष के बराबर होता है। (३) ८० रत्ती सोना।

विस्तंज-संज्ञा पुं० [सं०] कुंदुरु।

विस्तर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) दे० "विस्तार"। (२) प्रेम। (३) समूह। (४) आसन। (५) संख्या। (६) आधार। (७) शिव का एक नाम।

वि० बहुत। अधिक। विशेष।

विस्तरता-संज्ञा स्त्री० [सं०] बहुत या अधिक होने का भाव।

विस्तार-संज्ञा पुं० [सं०] (१) लंबे या चौड़े होने का भाव। फैले होने का भाव। फैलाव। जैसे—(क) इस मकान का विस्तार कम है। (ख) तुम बातों का बहुत अधिक विस्तार करते हो। (२) पेड़ की शाखा। (३) गुच्छा। (४) शिव का एक नाम। (५) विष्णु का एक नाम।

विस्तारता-संज्ञा स्त्री० [सं०] विस्तार का भाव। फैलाव।

विस्तारी-संज्ञा पुं० [सं० विस्तारिन्] (१) वह जिसका विस्तार अधिक हो। (२) बरगद। बड़।

विस्तीर्ण-वि० [सं०] (१) जो दूर तक फैला हुआ हो। विस्तृत। (२) विशाल। बहुत बड़ा। (३) विपुल। बहुत अधिक।

विस्तीर्णकर्ण-संज्ञा पुं० [सं०] हाथी।

विस्तीर्णता-संज्ञा स्त्री० [सं०] विस्तीर्ण होने का भाव। विस्तार। फैलाव।

विस्तीर्णपर्ण-संज्ञा पुं० [सं०] मानकंद।

विस्तीर्णभेद-संज्ञा पुं० [सं०] ललितविस्तर के अनुसार एक बुद्ध का नाम।

विस्तृत-वि० [सं०] (१) जो अधिक दूर तक फैला हुआ हो। लंबा चौड़ा। विस्तारवाला। जैसे,—यहाँ आप लोगों के लिये बहुत विस्तृत स्थान है। (२) यथेष्ट विवरणवाला। जिसके सब अंग या सब बातें बतलाई गई हों। जैसे,—इस ग्रंथ में नाटक के स्वरूप का बहुत विस्तृत वर्णन है। (३) बहुत बड़ा या लंबा चौड़ा। विशाल।

विस्तृति-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) फैलाव। विस्तार। (२) व्याप्ति। (३) लंबाई, चौड़ाई और ऊँचाई या गहराई। (४) वृत्त का व्यास।

विस्फार-संज्ञा पुं० [सं०] [वि० विस्फारित] (१) धनुष की टंकार। कमान का शब्द। (२) धनुष की डोरी। (३) विस्तार। फैलाव। (४) स्फूर्ति। तेज़ी। (५) विकास। (६) काँपना। बार बार हिलना।

विस्फारक-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का सन्निपात-ज्वर जो बहुत ही भयंकर होता है और जिसमें रोगी को खाँसी, मूर्च्छा, मोह और कंप आदि होता है।

विस्फुरणी-संज्ञा स्त्री० [सं०] तेंदुआ या तिंदुक नामक वृक्ष।

विस्फूर्जन-संज्ञा पुं० [सं०] किसी पदार्थ का फैलना या बढ़ना। विकास।

विस्फूर्जनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] तेंदुआ या तिंदुक नामक वृक्ष।

विस्फुलिंग-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्रकार का विष। (२) आग की चिनगारी।

विस्फोट-संज्ञा पुं० [सं०] (१) किसी पदार्थ का गरमी आदि के कारण उबल या फूट पड़ना। जैसे,—ज्वालामुखी पर्वत का विस्फोट। (२) कोई ज़हरीला और बहुत स्राव फोड़ा।

विस्फोटक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) फोड़ा, विशेषतः ज़हरीला फोड़ा। (२) वह पदार्थ जो गरमी या आघात के कारण भभक उठे। भभकनेवाला पदार्थ। (३) शीतला का रोग। चेचक।

विस्फोटन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) किसी पदार्थ का उबाल आदि के कारण फूट बहना। (२) ज़ोर का शब्द।

विस्मय-संज्ञा पुं० [सं०] (१) आश्चर्य। ताज्जुब। (२) साहित्य में अद्भुत रस का एक स्थायी भाव जो अनेक प्रकार के अलौकिक या विलक्षण पदार्थों के वर्णन के कारण मन में उत्पन्न होता है। (३) अभिमान। गर्व। शेख़ी। (४) संदेह। शक।

वि० जिसका गर्व नष्ट या चूर्ण हो गया हो।

विस्मरण-संज्ञा पुं० [सं०] स्मरण न रहना। भूल जाना।

विस्मापन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) गंधर्वनगर। (२) कामदेव का एक नाम।

वि० जिसे देखकर विस्मय हो। आश्चर्य उत्पन्न करनेवाला।

विस्मारक-वि० [सं०] भुला देनेवाला। विस्मरण करानेवाला।

विसारण-संज्ञा पुं० [सं०] लीन हो जाना। लय हो जाना। नष्ट हो जाना।
विस्मित-वि० [सं०] जिसे विस्मय या आश्चर्य हुआ हो। चकित।
विस्मृत-वि० [सं०] जो स्मरण न हो। जो याद न हो। भूला हुआ।
विस्मृति-संज्ञा स्त्री० [सं०] भूल जाना। विस्मरण।
विस्रंभ-संज्ञा पुं० [सं०] (१) विश्वास। यकीन। एतबार। (२) केलि के समय स्त्री और पुरुष में होनेवाला झगड़ा। (३) वध। हत्या।
विस्रंसिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] प्राचीन काल का एक प्रकार का उपकरण जिससे यज्ञ में आहुती दी जाती थी।
विस्र-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बड़ी मूली। (२) मांस के जलने की गंध। चिरायँध।
विस्रगंध-संज्ञा पुं० [सं०] (१) प्याज। (२) गोदंती हरताल।
विस्रगंधा-संज्ञा स्त्री० [सं०] गोदंती हरताल। (२) प्याज। (३) हाऊ बेर। हवुषा।
विस्रगंधि-संज्ञा पुं० [सं०] गोदंती हरताल।
विस्रवण-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बहना। (२) झरना। क्षरण। रसना।
विस्रसा-संज्ञा स्त्री० [सं०] वृद्धावस्था। बुढ़ापा।
विस्रा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) हाऊ बेर। हवुषा। (२) चरबी।
विस्राम-ॐ† संज्ञा पुं० दे० "विश्राम"।
विस्राव-संज्ञा पुं० [सं०] भात का माँड़। पीच।
विहंग-संज्ञा पुं० [सं०] (१) पक्षी। चिड़िया। उ०—सुनी परेवा जगत में तू ही एक विहंग।—बिहारी। (२) सोना मक्खी। (३) बाण। तीर। (४) मेघ। बादल। (५) चंद्रमा। (६) सूर्य। (७) एक नाग का नाम जिसका उल्लेख महाभारत में है।
विहंगम-संज्ञा पुं० [सं०] (१) पक्षी। चिड़िया। (२) सूर्य।
विहंगमा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सूर्य की एक प्रकार की किरण। (२) ग्यारहवें मन्वन्तर के देवताओं का एक गण। (३) बहँगी में की वह लकड़ी जिसके दोनों सिरों पर बोझ लटकाया जाता है।
विहंगराज-संज्ञा पुं० [सं०] गरुड़।
विहंगिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] बहँगी जिस पर कहार बोझ ढोते हैं।
विहग-संज्ञा पुं० [सं०] (१) पक्षी। चिड़िया। उ०—पाहन पशु विटप विहग अपने कर लीन्हें। महाराज दशरथ के रंक राव कीन्हें।—तुलसी। (२) बाण। तीर। (३) सूर्य। (४) चंद्रमा। (५) ग्रह।
विहर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वियोग। बिछोह। (२) दे० "विहार"।
विहरण-संज्ञा पुं० [सं०] (१) विहार करने की क्रिया। चलना फिरना। घूमना। (२) वियोग। बिछोह। (३) फैलना।
विहव-संज्ञा पुं० [सं०] (१) यज्ञ। (२) युद्ध। लड़ाई।
विहसित-संज्ञा पुं० [सं०] वह हास्य जो न बहुत उच्च हो, न बहुत मधुर। मध्यम हास्य।
विहस्त-संज्ञा पुं० [सं०] पंडित। विद्वान्।
वि० (१) घबराया हुआ। व्याकुल। (२) जिसका हाथ टूटा हुआ हो।
विहायस-संज्ञा पुं० [सं०] (१) आकाश। (२) दान। (३) पक्षी। चिड़िया।
विहार-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मन बहलाव के लिये धीरे धीरे चलना। टहलना। घूमना। फिरना। (२) रति क्रीड़ा। संभोग। (३) रति-क्रीड़ा करने का स्थान। (४) बौद्ध श्रमणों के रहने का मठ। संघाराम।
विहारी-संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० विहारिणी] (१) वह जो विहार करता हो। विहार करनेवाला। (२) श्रीकृष्ण का एक नाम।
विहित-वि० [सं०] (१) जिसका विधान किया गया हो। जैसे,—यह कार्य शास्त्रविहित है। (२) किया हुआ। (३) दिया हुआ।
विहिति-संज्ञा स्त्री० [सं०] कोई काम करने की आज्ञा। विधान।
विहीन-वि० [सं०] (१) रहित। बगैर। बिना। (२) त्यागा हुआ। छोड़ा हुआ।
विहीनता-संज्ञा स्त्री० [सं०] विहीन होने का भाव या धर्म।
विहीनर-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन ऋषि का नाम।
विहुंडन-संज्ञा पुं० [सं०] शिव के एक अनुचर का नाम।
विहृत-संज्ञा पुं० [सं०] साहित्य में स्त्रियों के दस प्रकार के स्वाभाविक अलंकारों में से एक प्रकार का अलंकार।
विहृति-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) ज़बरदस्ती या बलपूर्वक कुछ ले लेना या कोई काम करना। (२) विहार। क्रीड़ा। (३) खोलने की क्रिया।
विह्वल-वि० [सं०] भय या इसी प्रकार के और किसी मनोवेग के कारण जिसका चित्त ठिकाने न हो। घबराया हुआ। व्याकुल।
विह्वलता-संज्ञा स्त्री० [सं०] विह्वल होने की क्रिया या भाव। व्याकुलता। घबराहट।
विह्वली-संज्ञा पुं० [सं० विह्वलिन्] वह जो विह्वल हो गया हो। वह जो बहुत घबरा गया हो।
वीक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वायु। (२) पक्षी। चिड़िया। (३) मन।
वीकाश-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एकांत स्थान। (२) प्रकाश। रोशनी।
वीक्ष-संज्ञा पुं० [सं०] दृष्टि।
वीक्षण-संज्ञा पुं० [सं०] [वि० वीक्षणीय] देखने की क्रिया। निरीक्षण।

वीक्षणीय-वि० [सं०] जो देखने योग्य हो। दर्शनीय।
वीक्षा-संज्ञा स्त्री० [सं०] देखने की क्रिया। वीक्षण। दर्शन।
वीक्ष्य-संज्ञा पुं० [सं०] (१) विस्मय। आश्चर्य। (२) वह जो कुछ देखा जाय। दृश्य। (३) वह जो नाचता हो। नाचनेवाला। नर्त्तक। (४) घोड़ा।
वि० देखने योग्य। दर्शनीय।
वीचि-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) लहर। तरंग। (२) बीच की खाली जगह। अवकाश। (३) सुख। (४) दीप्ति। चमक।
वीचितरंग न्याय-संज्ञा पुं० दे० "न्याय"।
वीचिमाली-संज्ञा पुं० [सं० वीचिमालिन्] समुद्र।
वीची-संज्ञा स्त्री० [सं०] तरंग। लहर।
वीचीकाक-संज्ञा पुं० [सं०] जलकौआ।
बीज-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मूल कारण। (२) शुक्र। वीर्य्य। (३) तेज। (४) अन्न आदि का बीज। बीआ। (५) अंकुर। (६) फल। (७) आधार। (८) निधि। खजाना। (९) तत्व। (१०) मूल। (११) मज्जा। (१२) तांत्रिकों के अनुसार एक प्रकार के मंत्र जो बड़े बड़े मंत्रों के मूल तत्व के रूप में माने जाते हैं। प्रत्येक देवी या देवता के लिये ये मंत्र अलग अलग होते हैं। जैसे,—ह्रीं, श्रीं, क्लीं आदि। (१३) बीज गणित।
बीजक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) विजयसार या पियासाल नामक वृक्ष। (२) बिजौरा नीबू। (३) सफेद सहिंजन। (४) बीज। बीआ। (५) दे० "बीजक"।
बीजकर-संज्ञा पुं० [सं०] उड़द की दाल जो बहुत पुष्टिकारक मानी जाती है।
बीजकर्कटिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] ककड़ी।
बीजकसार-संज्ञा पुं० [सं०] (१) विजयसार के बीज। (२) बिजौरा नीबू का सार या सत्त।
बीजका-संज्ञा स्त्री० [सं०] मुनक्का।
बीजकाह्व-संज्ञा पुं० [सं०] बिजौरा नीबू का पेड़।
बीजकृत्-संज्ञा पुं० [सं०] वह औषध जिसके खाने से वीर्य्य बढ़ता हो। वीर्य्य बढ़ानेवाली दवा।
बीजकोश-संज्ञा पुं० [सं०] (१) कमलगट्टा। (२) सिंघाड़ा। (३) फल, जिसमें बीज रहते हैं।
बीजकोशक-संज्ञा पुं० [सं०] अंडकोश।
बीजगणित-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का गणित जिसमें अज्ञात राशियों को जानने के लिये उनके स्थान पर अक्षर आदि रखकर कुछ सांकेतिक चिह्नों आदि की सहायता से गणना की जाती है। यह साधारण अंकगणित की अपेक्षा कठिन होता है, पर इसके द्वारा अज्ञात राशियों का पता लगाने में बहुत सहायता मिलती है।
बीजगर्भ-संज्ञा पुं० [सं०] परवल।
बीजगुप्ति-संज्ञा स्त्री० [सं०] सेम।
बीजद्रुम-संज्ञा पुं० [सं०] विजयसार या असन नामक वृक्ष।
बीजधान्य-संज्ञा पुं० [सं०] धनियाँ।
बीजन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) पंखा झलना। हवा करना। (२) पंखा। (३) चँवर। (४) चकोर। (५) लोध का पेड़।
बीजपादप-संज्ञा पुं० [सं०] (१) पियासाल। विजयसार। (२) भिलावाँ।
बीजपुरुष-संज्ञा पुं० [सं०] किसी वंश का आदि या मूल पुरुष जिससे वह वंश चला हो।
बीजपुष्प-संज्ञा पुं० [सं०] (१) महआ। (२) मैनफल। (३) ज्वार।
बीजपूर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बिजौरा नीबू। (२) चकोतरा। (३) गलगल।
बीजपूर्ण-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बिजौरा नीबू। (२) चकोतरा।
बीजपेशिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] अंडकोश।
बीजफलक-संज्ञा पुं० [सं०] बिजौरा नीबू।
बीजमातृका-संज्ञा स्त्री० [सं०] कमलगट्टा।
बीजमार्गी-संज्ञा पुं० [सं० बीजमार्गिन्] एक प्रकार के वैष्णव जो पश्चिम भारत में पाए जाते हैं। ये लोग निर्गुण उपासक होते हैं और देवी देवताओं का पूजन नहीं करते।
बीजरत्न-संज्ञा पुं० [सं०] उड़द की दाल।
बीजरेचक-संज्ञा पुं० [सं०] जमालगोटा।
बीजरेचन-संज्ञा पुं० [सं०] जमालगोटा।
बीजवर-संज्ञा पुं० [सं०] उड़द। माष।
बीजवाहन-संज्ञा पुं० [सं०] महादेव। शिव।
बीजवृक्ष-संज्ञा पुं० [सं०] विजयसार। पियासाल। (२) भिलावाँ।
बीजसार-संज्ञा पुं० [सं०] चायविडंग।
बीजसू-संज्ञा स्त्री० [सं०] पृथ्वी।
बीजस्नेह-संज्ञा पुं० [सं०] पलास। ढाक।
बीजांकुर न्याय-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का न्याय। वि० दे० "न्याय"।
बीजाढ्य-संज्ञा पुं० [सं०] जमालगोटा।
बीजाम्ल-संज्ञा पुं० [सं०] वृक्षाम्ल। महादा।
बीजाविक-संज्ञा पुं० [सं०] ऊँट।
बीजी-संज्ञा पुं० [सं० बीजिन्] (१) वह जिसमें बीज हों। (२) पिता। (३) चौलाई का साग।
बीजोदक-संज्ञा पुं० [सं०] आकाश से गिरनेवाला ओला। बिनौरी।
बीज्य-वि० [सं०] (१) जो बोने के योग्य हो। (२) जो अच्छे कुल में उत्पन्न हुआ हो। कुलीन।
बीटा-संज्ञा स्त्री० [सं०] प्राचीन काल का एक प्रकार का खेल जो बालक लकड़ी के एक छोटे डंडे से खेला करते थे। इस

लोगों का यह भी मत है कि यह खेलने के लिये बना हुआ धातु का एक गोला होता था।

वीटि-संज्ञा स्त्री० [सं०] पान का बीज।

वीटिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] लगाया हुआ पान का बीड़ा।

वीटी-संज्ञा स्त्री० [सं०] पान का बीड़ा।

वीणा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) प्राचीन काल का एक प्रसिद्ध बाजा जिसका प्रचार अब तक भारत के पुराने ढंग के गवैयों में है। इसमें बीच में एक लंबा पोला दंड होता है, जिसके दोनों सिरों पर दो बड़े बड़े तूँबे लगे होते हैं; और एक तूँबे से दूसरे तूँबे तक, बीच के दंड पर से होते हुए, लोहे के तीन और पीतल के चार तार लगे रहते हैं। लोहे के तार पक्के और पीतल के कच्चे कहलाते हैं। इन सातों तारों को कसने या ढीला करने के लिये सात खूँटियाँ रहती हैं। इन्हीं तारों को झनकार कर स्वर उत्पन्न किए जाते हैं। बीन।

विशेष—प्राचीन भारत के तत जाति के बाजों में वीणा सब से पुरानी और अच्छी मानी जाती है। कहते हैं कि अनेक देवताओं के हाथ में यही वीणा रहती है। भिन्न भिन्न देवताओं आदि के हाथ में रहनेवाली वीणाओं के नाम अलग अलग हैं। जैसे,—महादेव के हाथ की वीणा लंबी, सरस्वती के हाथ की कच्छपी, नारद के हाथ की महती और तुंबुरु के हाथ की कलावती कहलाती है। इसके अतिरिक्त वीणा के और भी कई भेद हैं। जैसे,—त्रितंत्री, किन्नरी, विपंची, रंजनी, शारदी, रुद्र और नादेश्वर आदि। इन सब की आकृति आदि में भी थोड़ा बहुत अंतर रहता है।

पर्य्या०—वल्लकी। परिवादिनी। ध्वनिमाला। वंगमल्ली। घोषवती। कंठकूणिका।

(२) विद्युत्। बिजली।

वीणादंड-संज्ञा पुं० [सं०] वीणा में का लंबा दंड या तुंबी का बना हुआ वह अंश जो मध्य में होता है। इसे प्रवाल भी कहते हैं।

वीणापाणि-संज्ञा स्त्री० [सं०] सरस्वती।

वीणाप्रसेव-संज्ञा पुं० [सं०] वह गिलाफ जो वीणा पर उसकी रक्षा के लिये चढ़ाया जाता है।

वीणाभिद्-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की वीणा।

वीणावती-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सरस्वती। (२) एक अप्सरा का नाम।

वीणावरा-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की मक्खी।

वीणावाद-संज्ञा पुं० [सं०] वह जो वीणा बजाता हो। बीनकार।

वीणास्य-संज्ञा पुं० [सं०] नारद।

वीणाहस्त-संज्ञा पुं० [सं०] शिव। महादेव।

वीतंस-संज्ञा पुं० [सं०] वह जाल, फंदा या इसी प्रकार की और सामग्री जिससे पशु और पक्षी आदि फँसाए जाते हैं।

वीत-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वे हाथी, घोड़े और सैनिक आदि जो युद्ध करने के योग्य न रह गए हों। (२) अंकुश के द्वारा मारना। अंकुश का प्रहार करना। (३) सांख्य के अनुसार अनुमान के दो प्रकारों में से एक।

विशेष—सांख्य में अनुमान के तीन भेद कहे गए हैं—पूर्ववत् या केवलान्वयी, शेषवत् या व्यतिरेकी और सामान्यतोदृष्ट या अन्वयव्यतिरेकी। इनमें से पूर्ववत् और सामान्यतोदृष्ट अनुमान तो वीत कहलाते हैं और शेषवत् को अवीत कहते हैं। वि० दे० "अनुमान"।

वि० (१) जिसका परित्याग कर दिया गया हो। जो छोड़ दिया गया हो। (२) जो छूट गया हो। मुक्त। (३) जो बीत गया हो। जो समाप्त हो चुका हो। (४) जो निवृत्त हो चुका हो। जो (किसी बात से) रहित हो। जैसे,—वीतराग। (५) सुंदर।

वीतदंभ-संज्ञा पुं० [सं०] वह जिसने दंभ या अहंकार का परित्याग कर दिया हो। जिसका अभिमान नष्ट हो गया हो।

वीतभय-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जिसका भय छूट गया हो। (२) विष्णु।

वीतभीत-संज्ञा पुं० [सं०] एक असुर का नाम।

वीतमल-वि० [सं०] (१) जो कोई पाप न करे। पाप-रहित। (२) जिसमें किसी प्रकार का कलंक या मल आदि न हो। विमल।

वीतराग-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जिसने राग या आसक्ति आदि का परित्याग कर दिया हो। वह जो निस्पृह हो गया हो। (२) बुद्ध का एक नाम। (३) जैनों के प्रधान देवता का एक नाम।

वीतशोक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जिसने शोक आदि का परित्याग कर दिया हो। (२) अशोक नामक वृक्ष।

वीतसूत्र-संज्ञा पुं० [सं०] यज्ञोपवीत। जनेऊ।

वीतहव्य-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्रसिद्ध वैदिक ऋषि जो अंगिरा के वंश में थे। (२) शुनक के पुत्र का नाम।

वि० यज्ञ में आहुति देनेवाला। जो आहुति या हव्य देता हो।

वीतहोत्र-संज्ञा पुं० दे० "वीतिहोत्र"।

वीति-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) गति। चाल। (२) दीप्ति। चमक। आभा। (३) गर्भ धारण करने की क्रिया। (४) खाने या पीने की क्रिया। (५) यज्ञ। (६) घोड़ा।

वीतिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) जेठीमधु। मुलेठी। (२) नीलिका।

वीतिहोत्र-संज्ञा पुं० [सं०] (१) अग्नि। (२) सूर्य। (३) पुराणानुसार राजा प्रियव्रत के एक पुत्र का नाम। (४) हैहय वंश के एक राजा का नाम। (५) वह जो यज्ञ करता हो।

वीती-संज्ञा पुं० [सं० वीतिन्] एक प्राचीन ऋषि का नाम।

वीथिका-संज्ञा स्त्री० दे० "वीथी"।

वीथी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) दृश्य काव्य या रूपक के २७ भेदों में से एक भेद जो एक ही अंक का होता है और जिसमें एक ही नायक होता है। इसमें आकाशभाषित और शृंगार रस की अधिकता रहती है। प्राचीन काल में ऐसे रूपक अलग भी खेले जाते थे और दूसरे नाटकों के साथ भी। इसके नीचे लिखे १३ अंग माने गए हैं—(१) उद्घातक (२) अवलगित (३) प्रपंच (४) त्रिगत (५) छलन (६) वाक्केली (७) अधिबल (८) गंड (९) अवस्यंदित (१०) नालिका (११) असत्प्रलाप (१२) व्याहार और (१३) मृदव। धनंजय ने अपने दशरूपक में वीथी के उक्त तेरह अंगों का उल्लेख करके कहा है कि सूत्रधार इन वीथ्यंगों के द्वारा अर्थ और पात्र का प्रस्ताव करके प्रस्तावना के अंत में चला जाय और तब वस्तु-प्रपंचन आरंभ हो। साहित्यदर्पण के अनुसार वीथी के अंग ही प्रहसन के भी अंग हो सकते हैं। अंतर केवल यही है कि वीथी में तो इनका होना आवश्यक है, पर प्रहसन में ऐच्छिक होता है। अतः कहा जा सकता है कि वीथी और प्रहसन दोनों प्रस्तावना के ऐसे अंशों को कहते थे जिनमें हास्य रस की अधिकता होती थी और जिनके द्वारा सामाजिकों या दर्शकों के मन में अभिनय के प्रति रुचि या उत्कंठा उत्पन्न की जाती थी। (२) मार्ग। रास्ता। सड़क। (३) वह आकाश मार्ग जिससे होकर सूर्य चलता है। रवि-मार्ग। (४) आकाश में नक्षत्रों के रहने के स्थानों के कुछ विशिष्ट भाग जो वीथी या सड़क के रूप में माने गए हैं। जैसे,—नागवीथी, गजवीथी, ऐरावती वीथी, गोवीथी, मृगवीथी आदि।

विशेष—आकाश में उत्तर, मध्य और दक्षिण में क्रमशः ऐरावत, जरद्गव और वैश्वानर नामक तीन स्थान माने गए हैं; और इनमें से प्रत्येक स्थान में तीन तीन वीथियाँ हैं। इस प्रकार कुल नौ वीथियों में सत्ताईस नक्षत्र समान भागों में विभक्त हैं; अर्थात् प्रत्येक वीथी में तीन तीन नक्षत्रों का अवस्थान माना गया है।

वीथ्यंग-संज्ञा पुं० [सं०] रूपक में वीथी के अंग जो १३ माने गए हैं। वि० दे० "वीथी" (१)।

वीध्र-संज्ञा पुं० [सं०] (१) आकाश। (२) अग्नि। (३) वायु।

वीनाह-संज्ञा पुं० [सं०] वह जँगला या ढकना आदि जो कूएँ के ऊपर लगाया जाता है।

वीपा-संज्ञा स्त्री० [सं०] बिजली।

वीरंकरा-संज्ञा स्त्री० [सं०] पुराणानुसार एक नदी का नाम, जिसे वीरकरा भी कहते हैं।

वीरंधर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मोर। (२) जंगली पशुओं के साथ होनेवाला युद्ध। (३) एक प्राचीन नदी का नाम।

वीर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जो साहसी और बलवान् हो। शूर। बहादुर। (२) योद्धा। सैनिक। सिपाही। (३) वह जो किसी विकट परिस्थिति में भी आगे बढ़कर तत्परता-पूर्वक अपने कर्त्तव्य का पालन करे। (४) वह जो किसी काम में और लोगों से बहुत बढ़कर हो। जैसे,—दानवीर। कर्मवीर। (५) पुत्र। लड़का। (६) पति। खसम। (७) भाई। (स्त्री०) (८) महाभारत के अनुसार दनायु नामक दैत्य के पुत्र का नाम। (९) विष्णु। (१०) जिन। (११) साहित्य में शृंगार आदि नौ रसों में से एक रस जिसमें उत्साह और वीरता आदि की परिपुष्टि होती है। इसका वर्ण गौर और देवता इंद्र माने गए हैं। उत्साह इसका स्थायी भाव है और धृति, मति, गर्व, स्मृति, तर्क और रोमांच आदि इसके संचारी भाव हैं। भयानक, शांत और शृंगार रस का यह रस विरोधी है। (१२) तांत्रिकों के अनुसार साधना के तीन भावों में से एक भाव। कहते हैं कि दिन के पहले दस दंड में पशु भाव से, बीच के दस दंड में वीर भाव से और अंतिम दस दंड में दिव्य भाव से साधना करनी चाहिए। कुछ लोगों का यह भी मत है कि पहले १६ वर्ष की आयु तक पशु भाव से, फिर ५० वर्ष की आयु तक वीर भाव से और इसके उपरांत दिव्य भाव से साधना करनी चाहिए। (१३) तांत्रिकों के अनुसार वह साधक जो इस प्रकार वीर भाव से साधना करता है। दिन रात मद्य पीना, पागलों की सी चेष्टा रखना, शरीर में भस्म लगाए रहना और अपने इष्ट देव को मनुष्य, बकरी, भेड़े या भैंसे आदि का बलिदान चढ़ाना इनका मुख्य कर्तव्य होता है। (१४) वह जो किसी काम में बहुत चतुर हो। होशियार। (१५) कर्मठ। कर्मशील। (१६) यज्ञ की अग्नि। (१७) सींगिया नामक विष। (१८) काली मिर्च। (१९) पुष्करमूल। (२०) काँजी। (२१) खस। उशीर। (२२) आलूबुखारा। (२३) पीली कटसरैया। (२४) चौलाई का साग। (२५) वाराहीकंद। गैंठी। (२६) लताकरंज। (२७) कनेर। (२८) अर्जुन नामक वृक्ष। (२९) काकोली। (३०) सिंदूर। (३१) शालिपर्णी। सरिवन। (३२) लोहा। (३३) नरसल। नरकट। (३४) भिलावाँ। (३५) कुश। (३६) ऋषभक नामक ओषधि। (३७) तोरई।

वीरक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सफेद कनेर। (२) वह जो किसी निंदित देश का निवासी हो। (३) पुराणानुसार चाक्षुष मन्वंतर के एक मनु का नाम।

वीरकरा-संज्ञा स्त्री० [सं०] पुराणानुसार एक नदी का नाम जिसे वीरंकरा भी कहते हैं।

वीरकर्मा-संज्ञा पुं० [सं० वीरकर्मन्] वह जो वीरों की भाँति काम करता हो। वीरोचित कार्य करनेवाला।

वीरकाम-संज्ञा पुं० [सं०] वह जिसे पुत्र की कामना हो। पुत्र (?) की इच्छा रखनेवाला।

वीरकुक्षि-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्त्री जो वीर पुत्र प्रसव करती हो।

वीरकेतु-संज्ञा पुं० [सं०] महाभारत के अनुसार पांचाल के एक राजकुमार का नाम।

वीरकेशरी-संज्ञा पुं० [सं० वीरकेशरिन्] वह जो वीरों में सिंह के समान अथवा बहुत श्रेष्ठ हो।

वीरकेसरी-संज्ञा पुं० दे० "वीरकेशरी"।

वीरगति-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) वह उत्तम गति जो वीरों को रणक्षेत्र में मरने से प्राप्त होती है। (कहते हैं कि युद्ध-क्षेत्र में वीरतापूर्वक लड़कर मरनेवाले लोग सीधे स्वर्ग जाते हैं।) (२) स्वर्ग।

वीरचक्रेश्वर-संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु।

वीरण-संज्ञा पुं० [सं०] (१) कुश, दर्भ, काँस और दूब आदि की जाति के तृण। (२) उशीर। खस। (३) पुराणानुसार एक प्रजापति का नाम जिनकी कन्या असिक्री का विवाह दक्ष से हुआ था। इस कन्या के गर्भ से पाँच हजार वीर पुत्र उत्पन्न हुए थे जिनसे सृष्टि बढ़ी थी। (४) एक प्राचीन ऋषि का नाम।

वीरणक-संज्ञा पुं० [सं०] एक नाग का नाम जिसका उल्लेख महाभारत में है।

वीरतर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शर। तीर। बाण। (२) उशीर। खस।

वीरतरु-संज्ञा पुं० [सं०] (१) अर्जुन वृक्ष। (२) तालमखाना। (३) भिलावाँ। (४) शर नामक तृण। (५) पियासार नामक वृक्ष।

वीरता-संज्ञा स्त्री० [सं०] वीर होने का भाव। शूरता। बहादुरी।

वीरद्युम्न-संज्ञा पुं० [सं०] महाभारत के अनुसार एक राजकुमार का नाम।

वीरधन्वा-संज्ञा पुं० [सं० वीरधन्वन्] कामदेव का एक नाम।

वीरनायक-संज्ञा पुं० [सं०] उशीर। खस।

वीरपट्ट-संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल का एक विशेष प्रकार का पहनावा जो युद्ध के समय पहना जाता था।

वीरपत्नी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) वैदिक काल की एक नदी का नाम। (२) वह जो किसी वीर की पत्नी हो।

वीरपुत्रा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) भाँग। भंग। (२) एक प्रकार का महाकंद जिसे धारणी भी कहते हैं।

वीरपर्ण-संज्ञा पुं० [सं०] सुरपर्णी। माचीपत्री।

वीरपान-संज्ञा पुं० [सं०] वह पान जो वीर लोग युद्ध का श्रम मिटाने के लिये करते हैं।

वीरपुष्पी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) महाबला। सहदेई। (२) सिंदूरपुष्पी। छटकन।

वीरप्रमोक्ष-संज्ञा पुं० [सं०] महाभारत के अनुसार एक प्राचीन तीर्थ का नाम।

वीरप्रसू-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्त्री जो वीर संतान उत्पन्न करती हो।

वीरबाहु-संज्ञा पुं० [सं०] (१) विष्णु। (२) धृतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम। (३) रावण के एक पुत्र का नाम।

वीरभद्र-संज्ञा पुं० [सं०] (१) अश्वमेध यज्ञ का घोड़ा। (२) उशीर। खस। (३) शिव के एक प्रसिद्ध गण का नाम जो उनके पुत्र और अवतार माने जाते हैं। कहते हैं कि दक्ष का यज्ञ नष्ट करने के लिये शिवजी ने अपने मुँह से इनकी सृष्टि की थी। वीरभद्र ने बहुत से रुद्रों की सृष्टि करके दक्ष का यज्ञ नष्ट किया था।

वीरभद्रक-संज्ञा पुं० [सं०] खस। उशीर।

वीरभद्र रस-संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक में एक प्रकार का रस जो सन्निपात के लिये बहुत उपकारी माना जाता है।

वीरभुक्ति-संज्ञा स्त्री० [सं०] आधुनिक वीरभूम का प्राचीन नाम।

वीरमणि-संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार देवपुर के एक प्राचीन राजा का नाम जिसके पुत्र रुक्मांगद ने रामचंद्रजी के यज्ञ का घोड़ा पकड़ लिया था। इस पर शत्रुघ्न और हनुमान आदि ने इससे युद्ध किया था। कहते हैं कि इस युद्ध में महादेवजी भी वीरमणि की ओर से लड़े थे और उन्होंने शत्रुघ्न को अपने पाश में बाँध लिया था। तब रामचंद्र ने आकर उन्हें और अपना घोड़ा छुड़ाया था।

वीरमत्स्य-संज्ञा पुं० [सं०] रामायण के अनुसार एक प्राचीन जाति का नाम।

वीरमर्दन-संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार एक दानव का नाम।

वीरमर्दल-संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल का एक प्रकार का ढोल जो युद्ध के समय बजाया जाता था।

वीरमाता-संज्ञा स्त्री० [सं० वीरमातृ] वह स्त्री जो वीर पुत्र प्रसव करती हो। वीरजननी। वीरप्रसू।

वीरमार्ग-संज्ञा पुं० [सं०] स्वर्ग।

वीरमुद्रिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का छल्ला जो प्राचीन काल में पैर की बीचवाली उँगली में पहना जाता था।

वीररज-संज्ञा पुं० [सं० वीररजस्] सिंदूर।

वीरराघव-संज्ञा पुं० [सं०] रामचंद्र का एक नाम।

वीररेणु-संज्ञा पुं० [सं०] भीमसेन का एक नाम।

वीरललित-संज्ञा पुं० [सं०] वीरों का सा, पर साथ ही कोमल स्वभाव।

वीरलोक-संज्ञा पुं० [सं०] स्वर्ग।

वीरवती-संज्ञा स्त्री० [सं०] मांसरोहिणी नाम की लता।

वीरवल्ली-संज्ञा स्त्री० [सं०] देवदाली नाम की लता।

वीरवह-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जो घोड़ों द्वारा खींचा जाय। (२) रथ।

वीरविप्लावक-संज्ञा पुं० [सं०] वह जो शूद्रों से धन आदि लेकर हवन करता हो।

वीरवृक्ष-संज्ञा पुं० [सं०] (१) भिलावाँ। (२) अर्जुन नामक वृक्ष। (३) महाशालि। देवधान्य। (४) विल्वांतर या वेलंतर नामक वृक्ष। (५) सांवाँ नामक धान्य। (६) शाल वृक्ष।

वीरवेतस-संज्ञा पुं० [सं०] अमलबेंत।

वीरव्रत-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जो अपने संकल्प पर सदा दृढ़ रहता हो। वीरतापूर्वक अपने संकल्प का पालन करनेवाला। (२) वह ब्रह्मचारी जो बहुत ही निष्ठा तथा आचारपूर्वक रहता हो। (३) पुराणानुसार मधु के एक पुत्र का नाम जो सुमना के गर्भ से उत्पन्न हुआ था।

वीरशय-संज्ञा पुं० [सं०] वीरों के सोने का स्थान, रण-भूमि। युद्ध-क्षेत्र। लड़ाई का मैदान।

वीरशयन-संज्ञा पुं० [सं०] वीरों के सोने का स्थान, रणभूमि।

वीरशय्या-संज्ञा स्त्री० [सं०] रणभूमि।

वीरशाक-संज्ञा पुं० [सं०] बथुआ नामक साग।

वीरशैव-संज्ञा पुं० [सं०] शैवों का एक भेद।

वीरसू-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्त्री जो वीर पुत्र प्रसव करती हो। वीर-जननी।

वीरसेन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) राजा नल के पिता का नाम। (२) आरूक या आड़ू नाम की जड़ी जो हिमालय में होती है। (३) आलूबुखारा।

वीरस्थ-संज्ञा पुं० [सं०] वह पशु जिसका यज्ञ में बलिदान हो।

वीरस्थान-संज्ञा पुं० [सं०] (१) साधकों का एक प्रकार का आसन जिसे वीरासन कहते हैं। (२) स्वर्ग, जहाँ वीर लोग मरने पर जाते हैं।

वीरहा-संज्ञा पुं० [सं० वीरहन्] (१) विष्णु। (२) वह अग्निहोत्री ब्राह्मण जिसकी अग्निहोत्रवाली अग्नि आलस्य आदि के कारण बुझ गई हो।
वि० वीरों को मारनेवाला।

वीरहोत्र-संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार एक प्राचीन प्रदेश का नाम जो विंध्य पर्वत पर था।

वीरांतक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जो वीरों का अंत या नाश करता हो। (२) अर्जुन नामक वृक्ष।

वीरा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सुरामांसी। मुरा। (२) क्षीर-काकोली। (३) भुइँ आँवला। (४) एलुवा। (५) केला। (६) बिदारी कंद। (७) काकोली। (८) शतावर। (९) घी कुआँर। (१०) माखी। (११) अतीस। अतिविषा। (१२) मदिरा। शराब। (१३) शीशम का पेड़। (१४) गंभारी नामक वृक्ष। (१५) पृश्निपर्णी। पिठवन। (१६) खिरैटी। (१७) कुटकी। (१८) जटामाँसी। बालछड़। (१९) आँवला। (२०) वह स्त्री जिसके पति और पुत्र हों। (२१) महाभारत के अनुसार एक प्राचीन नदी का नाम।

वीराचारी-संज्ञा पुं० [सं० वीराचारिन्] एक प्रकार के वाममार्गी या शाक्त जो अपने इष्ट देवताओं की वीर भाव से उपासना करते हैं। ये लोग मद्य को शक्ति और मांस को शिव स्वरूप मानते हैं; और इन दोनों के भक्तों को भैरव समझते हैं। ये लोग चक्र में बैठकर पूजन करते हैं और बीच बीच में किसी स्त्री को काली मानकर उस पर मद्य, मांस आदि चढ़ाते हैं। ये लोग प्रायः शव या मृत शरीर लाकर उस की पूजा करते और उसी के द्वारा अनेक प्रकार के साधन और पूजन करते हैं।

वीराद्रु-संज्ञा पुं० [सं०] अर्जुन नामक वृक्ष।

वीरान-वि० [फा०] (१) उजड़ा हुआ। जिसमें आबादी न रह गई हो। जैसे,—यह बस्ती बिलकुल वीरान हो गई है। (२) जिसकी शोभा नष्ट हो गई हो। श्रीहीन।

वीराना-संज्ञा पुं० [फा०] वह स्थान जहाँ किसी प्रकार की आबादी न हो। उजाड़ जंगल।

वीरानी-संज्ञा स्त्री० [फा०] वीरान या उजाड़ होने का भाव।

वीराम्ल-संज्ञा पुं० [सं०] अमलबेत।

वीरारुक-संज्ञा पुं० [सं०] आरूक या आड़ू नाम की जड़ी जो हिमालय में होती है।

वीराशंसन-संज्ञा पुं० [सं०] वह युद्धभूमि जो बहुत ही भीषण और भयानक जान पड़ती हो।

वीराष्टक-संज्ञा पुं० [सं०] कार्त्तिकेय के एक अनुचर का नाम।

वीरासन-संज्ञा पुं० [सं०] बैठने का एक प्रकार का आसन या मुद्रा जिसका व्यवहार प्रायः पूजन और तांत्रिकों आदि के साधन में होता है। इसमें बाएँ पैर और टखने पर दाहिनी जाँघ रखकर बैठते हैं।

वीरिणी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) वीरण प्रजापति की कन्या असिक्नी जो दक्ष को ब्याही थी। (२) वह स्त्री जिसे पुत्र हो। पुत्रवती। (३) एक प्राचीन नदी का नाम।

वीरुध-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वृक्ष और वनस्पति आदि। (२) ओषधि। (३) विस्तृता या गुल्मिनी नाम की लता।

वीरुधा-संज्ञा स्त्री० [सं०] दवा के रूप में काम में आनेवाली वनस्पति। ओषधि।

वीरेश-संज्ञा पुं० [सं०] शिव। महादेव।

वीरेश्वर-संज्ञा पुं० [सं०] शिव। महादेव।

वीरोपजीविक-संज्ञा पुं० [सं०] वह जो अग्निहोत्र के द्वारा अपनी जीविका का निर्वाह करता हो।

वीर्य-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शरीर के सात धातुओं में से एक धातु जिसका निर्माण सब के अंत में होता है और जिसके कारण

शरीर में बल और कांति आती है। इसे चरम धातु भी कहते हैं। यह स्त्री-प्रसंग के समय अथवा रोग आदि के कारण यों ही मूत्रेंद्रिय से निकलता है। कुछ लोगों का मत है कि वीर्य्य दो प्रकार का है—शीत और उष्ण। और कुछ लोगों का मत है कि यह आठ प्रकार का होता है—उष्ण, शीत, स्निग्ध, रूक्ष, विशद, पिच्छिल, मृदु और तीव्र। वि० दे० "शुक्र"।

पर्य्या०—शुक्र। तेज। रेत। बीज। इंद्रिय।

(२) दे० "रज"। (३) वैद्यक के अनुसार किसी पदार्थ का वह सार भाग जिसके कारण उस पदार्थ में शक्ति रहती है। किसी वस्तु का मूल तत्व। (४) पराक्रम। बल। शक्ति। सामर्थ्य। (५) अन्न आदि का बीज। बीआ।

वीर्य्यकृत-संज्ञा पुं० [सं०] बलवान्। ताकतवर।

वीर्य्यकृत्-वि० [सं०] जो बल या वीर्य उत्पन्न करता हो। बलकारक।

वीर्य्यज-संज्ञा पुं० [सं०] लड़का। बेटा। पुत्र।

वीर्य्यतम-संज्ञा पुं० [सं०] वह जो बहुत बड़ा बलवान हो।

वीर्य्यधर-संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार प्लक्ष द्वीप में रहनेवाले एक प्रकार के क्षत्रिय।

वीर्य्यवत्-वि० [सं०] (१) बलवान्। मजबूत। (२) मांसल। हृष्ट पुष्ट।

वीर्य्यशुल्क-संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० वीर्यशुल्का] वह प्रतिज्ञा या प्रण जो वीर्य्य संबंधी हो। जैसे,—यह प्रतिज्ञा करना कि जो पुरुष (या स्त्री) अमुक कार्य करेगा, उसके साथ इस स्त्री (या पुरुष) का विवाह होगा।

वीर्य्यसह-संज्ञा पुं० [सं०] सूर्यवंशी राजा सौदास के पुत्र कल्मापपाद का एक नाम।

वीर्य्यहारी-संज्ञा पुं० [सं० वीर्य्यहारिन्] एक यक्ष का नाम जो दुःसह नामक यक्ष की कन्या के गर्भ से किसी चोर के वीर्य्य से उत्पन्न हुआ था। कहते हैं कि जो लोग कदाचारी होते हैं, या बिना हाथ पैर धोए रसोई घर में जाते हैं, उनके घर में यह यक्ष अपने और दो भाइयों के साथ रहता है।

वीर्य्यांतराय-संज्ञा पुं० [सं०] जैनियों के अनुसार वह पाप कर्म जिसका उदय होने से जीव हृष्ट पुष्टांग होते हुए भी शक्तिविहीन हो जाता है और कुछ पराक्रम नहीं कर सकता।

वीर्य्या-संज्ञा स्त्री० दे० "वीर्य्य"।

वीहार-संज्ञा पुं० दे० "विहार"।

वृंत-संज्ञा पुं० [सं०] (१) स्तन का अगला भाग। (२) ढौंढी। ढेंढी।

वृंताक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बैंगन। (२) पोई का साग।

वृंताकी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) वनभंटा। (२) बैंगन।

वृंद-संज्ञा पुं० [सं०] (१) समूह। झुंड। (२) सौ करोड़ की संख्या। (३) एक मुहूर्त का नाम। उ०—माघ शुक्ल भूता दिन जानो। वृंद मुहूरत में पहिचानो।—विश्राम।

वृंदा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) तुलसी। (२) राधिका के सोलह नामों में से एक नाम।

वृंदाक-संज्ञा पुं० [सं०] परगाछा नाम का पेड़।

वृंदारक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) देवता। (२) श्रेष्ठ व्यक्ति।

वृंदारण्य-संज्ञा पुं० [सं०] वृंदावन।

वृंदावन-संज्ञा पुं० [सं०] मथुरा जिले का एक प्रसिद्ध प्राचीन तीर्थ जो भगवान् श्रीकृष्णचंद्र का क्रीड़ा-क्षेत्र माना जाता है। कहते हैं कि श्रीकृष्ण ने अपनी अधिकांश बाल लीलाएँ यहीं की थीं। पुराणों में वृंदावन के संबंध में अनेक प्रकार की विलक्षण कथाएँ आदि पाई जाती हैं। महमूद गजनवी ने वृंदावन और उसके आस पास के अनेक स्थानों को बिलकुल नष्ट भ्रष्ट कर डाला था; और बहुत दिनों तक यह उसी दशा में पड़ा रहा। पर पीछे से चैतन्य महाप्रभु ने यमुना के किनारे वर्त्तमान वृंदावन नामक नगर की स्थापना की थी। इस नगर में इस समय हजारों बड़े बड़े मंदिर हैं और दूर दूर से यात्री लोग यहाँ दर्शनों के लिये आते हैं।

वृंदावनेश्वर-संज्ञा पुं० [सं०] श्रीकृष्ण का एक नाम।

वृंदावनेश्वरी-संज्ञा स्त्री० [सं०] राधिका का एक नाम।

वृंहण-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह पदार्थ जो पुष्टिकारक हो। बलवर्धक द्रव्य। (२) भावप्रकाश के अनुसार एक प्रकार का धूम्र-पान। (३) असगंध। (४) मुनक्का। (५) भुईं-कुम्हड़ा। (६) चरक के अनुसार सूअर के मांस में पकाया हुआ जौ का सत्तू।

वृंहणवस्ति-संज्ञा स्त्री० [सं०] भावप्रकाश के अनुसार एक प्रकार की वस्ति जिसे निरूह या निरुद्ध भी कहते हैं। वि० दे० "निरूहवस्ति"।

वृक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) कुत्ते की जाति का एक मांसाहारी पशु। भेड़िया। (२) शृगाल। गीदड़। (३) कौवा। (४) क्षत्रिय। (५) चोर। (६) वज्र। (७) अगस्त का पेड़। (८) गंधाबिरोजा।

वृककर्म्मा-संज्ञा पुं० [सं० वृककर्मन्] एक असुर का नाम।

वृकखंड-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन ऋषि का नाम।

वृकगर्त्त-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन जनपद का नाम।

वृकग्राह-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन ऋषि का नाम।

वृकजंभ-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन ऋषि का नाम।

वृकदंत-संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार एक राक्षस का नाम। इसी की कन्या सानंदिनी कुंभकर्ण को ब्याही थी।

वृकदंस-संज्ञा पुं० [सं०] कुत्ता।

वृकद्दीप्ति-संज्ञा स्त्री० [सं०] पुराणानुसार श्रीकृष्ण के एक पुत्र का नाम।

वृकदेव-संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार वसुदेव के एक पुत्र का नाम।

वृकदेवा-संज्ञा स्त्री० [सं०] पुराणानुसार देवक की कन्या और वसुदेव की पत्नी, देवकी का एक नाम।

वृकधूप-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह धूप जो अनेक प्रकार के सुगंधित द्रव्यों की सहायता से तैयार किया गया हो। (२) सरल वृक्ष का निर्यास। तारपीन।

वृकधूर्त्त-संज्ञा पुं० [सं०] गीदड़।

वृक निवृत्ति-संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार श्रीकृष्ण के एक पुत्र का नाम।

वृकबंधु-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन ऋषि का नाम।

वृकरथ-संज्ञा पुं० [सं०] महाभारत के अनुसार कर्ण के एक भाई का नाम।

वृकल-संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार शिलिष्टि के एक पुत्र का नाम।

वृकला-संज्ञा स्त्री० [सं०] नाड़ी।

वृकवंचिक-संज्ञा पुं० [सं०] एक वैदिक ऋषि का नाम।

वृका-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) अंबष्ठा या पाढ़ा नाम की लता। (२) प्राचीन काल का एक परिमाण जो दो सूर्पों के बराबर होता था।

वृकादनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] निसोथ।

वृकाजिन-संज्ञा पुं० [सं०] वैदिक काल के एक ऋषि का नाम।

वृकायु-संज्ञा पुं० [सं०] (१) जंगली कुत्ता। (२) चोर।

वृकाराति, वृकारि-संज्ञा पुं० [सं०] कुत्ता।

वृकाश्व-संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल के एक ऋषि का नाम।

वृकाश्वकि-संज्ञा पुं० [सं०] एक गोत्रप्रवर्त्तक ऋषि का नाम।

वृकास्य-संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार कृष्ण के एक पुत्र का नाम जिन्हें वृकाश्व भी कहते थे।

वृकोदर-संज्ञा पुं० [सं०] भीमसेन का एक नाम।

विशेष—कहते हैं कि भीमसेन के पेट में वृक नाम की विकट अग्नि थी; इसी से उनका यह नाम पड़ा।

वृक्क-संज्ञा पुं० [सं०] गुरदा।

वृक्कक-संज्ञा पुं० [सं०] मूत्राशय। गुरदा।

वृक्का-संज्ञा स्त्री० [सं०] हृदय।

वृक्ष-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वनस्पति या उद्भिज के अंतर्गत वह बड़ा क्षुप जिसका एक ही मोटा और भारी तना होता है और जो जमीन से प्रायः सीधा ऊपर की ओर जाता है। पेड़। दरख्त। द्रुम। विटप।

विशेष—आम बोल चाल में वृक्ष और क्षुप अथवा क्षुप और दूसरी छोटी वनस्पतियों में कोई अंतर नहीं रखते और उनमें से अधिकांश को प्रायः वृक्ष ही कहा करते हैं। पर क्षुप और वृक्ष में यह अंतर है कि क्षुप तीन चार हाथ से अधिक ऊँचा नहीं होता; और न उसमें कोई एक मुख्य तना होता है। उसकी जड़ से ही कई डालियाँ निकलकर इधर उधर फैल जाती हैं। परंतु वृक्ष में एक मुख्य और भारी तना होता है जो पहले कुछ ऊँचाई तक सीधा ऊपर की ओर जाता है; और तब उसमें से चारों ओर डालियाँ निकलती हैं। पर फिर भी कुछ बड़े क्षुप ऐसे होते हैं जो अपने आकार प्रकार के कारण ही वृक्ष कहलाते हैं। वृक्ष में कुछ ठोस काठ का रहना भी आवश्यक होता है, पर केले में काठ का कोई अंश न रहने पर भी उसे लोग प्रायः वृक्ष ही कहते हैं। कुछ वृक्ष ऐसे होते हैं जिनके सब पत्ते वसंत ऋतु के आरंभ में झड़ जाते हैं; और तब फिर नए पत्ते निकलते हैं। ऐसे वृक्ष "पतझड़" वाले वृक्ष कहलाते हैं। और कुछ वृक्ष ऐसे होते हैं जिनमें पुराने पक्के पत्तों के गिरने से पहले ही नए पत्ते निकल आते हैं। ऐसे वृक्ष सदाबहार कहलाते हैं। वृक्षों में प्रायः अनेक प्रकार के फल लगते हैं जिन्हें लोग खाते हैं, और उनकी लकड़ी से तरह तरह की चीजें (जैसे,—मेज, कुरसी, दरवाजा, हल, गाड़ी आदि) बनाई जाती हैं। इनकी पत्तियाँ आदि ओषधि रूप में, रंग निकालने और चमड़ा सिझाने के काम में आती हैं। वृक्ष प्रायः बीजों से और कभी कभी पनीरी के द्वारा उत्पन्न किए जाते हैं।

पर्य्या०—महीरुह। शाखी। विटपी। पादप। तरु। पलाशी। द्रुम। आगम। स्थिर। नग। अग। कुज। क्षितिरुह। महीज। साल।

(२) किसी प्रकार का क्षुप या पौधा अथवा कोई कुछ बड़ी और ऊँची वनस्पति। (३) वृक्ष से मिलती जुलती वह आकृति जिसमें किसी चीज का मूल अथवा उद्गम और उसकी अनेक शाखाएँ-प्रशाखाएँ आदि दिखलाई गई हों। जैसे,—वंश-वृक्ष।

वृक्षकंद-संज्ञा पुं० [सं०] विदारीकंद।

वृक्षक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) छोटा पेड़। (२) पेड़। दरख्त (३) कुटज का पेड़।

वृक्षकुक्कुट-संज्ञा पुं० [सं०] जंगली कुत्ता।

वृक्षचर-संज्ञा पुं० [सं०] बंदर।

वृक्षतक्षक-संज्ञा पुं० [सं०] गिलहरी।

वृक्षधूप-संज्ञा पुं० [सं०] सरल या चीड़ का पेड़।

वृक्षनाथ-संज्ञा पुं० [सं०] बड़ का पेड़।

वृक्षनिर्यास-संज्ञा पुं० [सं०] पेड़ में से निकलनेवाला किसी प्रकार का रस या तरल द्रव्य।

वृक्षपाक-संज्ञा पुं० [सं०] बड़ का पेड़। बट।

वृक्षपाल-संज्ञा पुं० [सं०] जंगली शाल।

वृक्षप्रतिष्ठा-संज्ञा स्त्री० [सं०] स्मृतियों आदि के अनुसार पुण्य-फल की प्राप्ति के लिये अश्वत्थ आदि के वृक्ष लगाने की क्रिया।

वृक्षमहा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) परगाछा नाम का पौधा। वि० दे० "परगाछा"। (२) बंदाक। बंदा।

वृक्षभेदी-संज्ञा पुं० [सं० वृक्षभेदिन्] कुल्हाड़ी।

वृक्षमूल-संज्ञा पुं० [सं०] पेड़ की जड़।

वृक्षमूलिक-वि० [सं०] वृक्ष की जड़ या मूल से संबंध रखनेवाला।

वृक्षराज-संज्ञा पुं० [सं०] परजाता। पारिजात।

वृक्षराज्-संज्ञा पुं० [सं०] पीपल का पेड़।

वृक्षरुहा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) परगाछा नाम का पौधा। (२) रुद्रवंती। वंदष्टा। वंदाक। (३) अमरबेल। (४) जतुका नाम की लता। (५) विदारीकंद। (६) ककही या कंघी नाम का पौधा। (७) पुष्करमूल।

वृक्षवाटिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] बाग। बगीचा। उपवन।

वृक्षशायिक-संज्ञा पुं० [सं०] लंगूर।

वृक्षशायिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] गिलहरी।

वृक्षसंकट-संज्ञा पुं० [सं०] वह पगडंडी जो घने वृक्षों के बीच से गई हो।

वृक्षसारक-संज्ञा पुं० [सं०] द्रोणपुष्पी। गूमा।

वृक्षस्नेह-संज्ञा पुं० [सं०] पेड़ में से निकलनेवाला निर्यास या तरल द्रव्य।

वृक्षादन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) कुल्हाड़ी। (२) अश्वत्थ वृक्ष। (३) पियाल का पेड़। (४) मधुमक्खी का छत्ता।

वृक्षादनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) विदारीकंद। (२) बंदा। बंझा। बंदाक।

वृक्षामय-संज्ञा पुं० [सं०] लाख।

वृक्षाम्ल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) इमली। (२) चुक नामक खटाई। (३) अमड़ा। (४) अमलबेत। (५) अम्ललकुटा।

वृक्षायुर्वेद-संज्ञा पुं० [सं०] वह शास्त्र जिसमें वृक्षों के रोगों आदि की चिकित्सा का वर्णन हो।

वृक्षार्हा-संज्ञा स्त्री० [सं०] महामेदा।

वृक्षालय-संज्ञा पुं० [सं०] पक्षी। चिड़िया।

वृक्षोत्पल-संज्ञा पुं० [सं०] कनियारी या कनकचंपा का पेड़।

वृक्ष्य-संज्ञा पुं० [सं०] पेड़ का फल।

वृज-संज्ञा पुं० दे० "व्रज"।

विशेष—"वृज" के यौगिक आदि के लिये दे० "व्रज" के यौ०।

वृजन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) आकाश। आसमान। (२) दुष्कर्म। पाप। (३) लड़ाई। युद्ध। (४) निपटारा। निराकरण। (५) ताकत। शक्ति। बल। (६) बाल। (७) शत्रु। दुश्मन।

वि० कुटिल। टेढ़ा।

वृजन्य-संज्ञा पुं० [सं०] बहुत ही सीधा सादा आदमी। वह जो परम साधु हो।

वृजि-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) मल्लभूमि। (२) मिथिला प्रदेश। तिरहुत।

वृजिन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) पाप। गुनाह। उ०—देव अखिल मंगल भवन निबिड संसय समन दमन वृजिनाटवी कष्ट-हर्ता।—तुलसी। (२) दुःख। कष्ट। तकलीफ। (३) खाल। चमड़ा। (४) खून। लहू। रक्त। (५) बाल।

वि० (१) कुटिल। टेढ़ा। (२) पापयुक्त।

वृत-वि० [सं०] (१) जो किसी काम के लिये नियुक्त किया गया हो। मुकर्रर किया हुआ। (२) ढका हुआ। छाया हुआ। (३) जिसके संबंध में प्रार्थना की गई हो। (४) जो मंजूर किया गया हो। स्वीकृत। (५) गोल।

वृतपत्रा-संज्ञा स्त्री० [सं०] पुत्रदात्री नाम की लता।

वृताक्ष-संज्ञा पुं० [सं०] मुरगा।

वृतिंकर-संज्ञा पुं० [सं०] विकंकत नाम का वृक्ष।

वृति-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) वह जिससे कोई चीज घेरी या ढकी जाय। (२) नियुक्त करने की क्रिया। नियुक्ति। (३) छिपाने की क्रिया।

वृत्त-संज्ञा पुं० [सं०] (१) चरित्र। चरित। (२) वेदों और शास्त्रों के अनुकूल आचार रखना। (३) आचार। चाल-चलन। (४) स्तन के आगे का भाग। (५) सफेद ज्वार। (६) गुंडा नाम की घास। (७) अंजीर। (८) सतिवन। (९) कछुआ। (१०) समाचार। वृत्तांत। हाल। (११) बड़ों के आदर, इंद्रिय-निग्रह और सत्य आदि की ओर होनेवाली प्रवृत्ति। (१२) महाभारत के अनुसार एक नाग का नाम। (१३) जीविका का साधन। वृत्ति। (१४) वह छंद जिसके प्रत्येक पद में अक्षरों की संख्या और लघु गुरु के क्रम का नियम हो। वर्णिक छंद। जैसे,—इंद्रवज्रा, उपेंद्रवज्रा, मालिनी आदि।

विशेष—पदों के विचार से वृत्त तीन प्रकार के होते हैं। जिस वृत्त के चारों पद समान हों, वह सम वृत्त कहलाता है; जिसमें चारों पद असमान हों, वह विषम वृत्त कहलाता है; और जिसके पहले और तीसरे तथा दूसरे और चौथे पद समान हों, उसे अर्द्ध समवृत्त कहते हैं।

(१५) एक प्रकार का छंद जिसके प्रत्येक चरण में बीस वर्ण होते हैं। इसे गंडका और दंडिका भी कहते हैं। (१६) वह क्षेत्र जिसका घेरा या परिधि गोल हो। मंडल। (१७) वह गोल रेखा जिसका प्रत्येक बिंदु उसके अंदर के मध्य-बिंदु से समान अंतर पर हो। (१८) दे० "वृत्रासुर"।

वि० (१) बीता हुआ। गुजरा हुआ। (२) दृढ़। मजबूत। (३) जिसका आकार गोल हो। वर्त्तुल। (४) मृत। मरा

हुआ। (५) जो उत्पन्न हुआ हो। जात। (६) निष्पन्न। सिद्ध। (७) ढका हुआ। आच्छादित।

वृत्तक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह गद्य जिसमें कोमल तथा मधुर अक्षरों और छोटे छोटे समासों का व्यवहार किया गया हो। (२) छंद।

वृत्तकर्कटी-संज्ञा स्त्री० [सं०] खरबूजा।

वृत्तकोशा-संज्ञा स्त्री० [सं०] देवदाली नाम की लता।

वृत्तकोष-संज्ञा पुं० [सं०] पीली देवदाली।

वृत्तखंड-संज्ञा पुं० [सं०] (१) किसी वृत्त या गोलाई का कोई अंश। (२) मेहराव।

वृत्तगंधि-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह गद्य जिसमें अनुप्रासों और समासों की अधिकता हो। वह गद्य जिसमें पद्य का आनंद आता हो।

वृत्तगुंड-संज्ञा पुं० [सं०] दीर्घनाल या गोंदला नाम की घास।

वृत्तचेष्टा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) स्वभाव। प्रकृति। मिजाज। (२) आचरण। चाल चलन।

वृत्ततंडुल-संज्ञा पुं० [सं०] यवनाल। जवनाल।

वृत्तपत्र-संज्ञा पुं० [सं०] पुत्रदात्री नाम की लता।

वृत्तपर्णी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) पाठा। पाढ़ा। (२) बड़ी शाण-पुष्पी।

वृत्तपुष्प-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सिरिस का पेड़। (२) कदम या कदंब का पेड़। (३) जलबेत। (४) भुईं कदंब। (५) सदा-गुलाब। सेवती। (६) मोतिया। (७) मल्लिका।

वृत्तपुष्पा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) नागदमनी। (२) सदा गुलाब। सेवती।

वृत्तफल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) कोई गोलाकार फल। (२) काली मिर्च। (३) अनार। (४) बेर। (५) कैथ। कपित्थ। (६) लाल अपामार्ग। लाल चिचड़ा। (७) करंज का पेड़। (८) तरबूज। (९) खरबूजा।

वृत्तफला-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) बैंगन। भंटा। (२) कड़वी ककड़ी। (३) आँवला।

वृत्तबंध-संज्ञा पुं० [सं०] वह जो वृत्त या छंद के रूप में बाँधा गया हो।

वृत्तभोजन-संज्ञा पुं० [सं०] गंडीर या गिडनी नाम का साग।

वृत्तमल्लिका संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सफेद आक। (२) त्रिपुर-मल्लिका।

वृत्तवत्-वि० [सं०] जिसका आचरण उत्तम हो। सदाचारी।

वृत्तबीज-संज्ञा पुं० [सं०] (१) भिंडी। तरोई। (२) लोबिया। राजमाष।

वृत्तबीजका-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) अरहर नामक दाल। (२) पांडुफली। पांडुफली।

वृत्तबीजा-संज्ञा स्त्री० [सं०] अरहर नाम का अन्न।

वृत्तशाली-संज्ञा पुं० [सं० वृत्तशालिन्] वह जिसका आचरण उत्तम हो। सदाचारी।

वृत्तश्लाघी-संज्ञा पुं० [सं० वृत्तश्लाघिन्] (१) वह जिसे अपने काम का अभिमान या श्लाघा हो। (२) क्षत्रिय।

वृत्तस्थ-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जिसका चरित्र शुद्ध हो। सदाचारी। (२) वह जो दूसरों का उपकार करता हो। परोपकारी।

वृत्तांत-संज्ञा पुं० [सं०] (१) किसी बीती हुई बात या घटी हुई घटना का विवरण। समाचार। हाल। जैसे,—(क) इस घटना का सारा वृत्तांत समाचारपत्रों में छप गया है। (ख) अब आप कुछ अपना वृत्तांत सुनाइए। (२) प्रक्रिया। (३) संपूर्णता। समस्तता। (४) प्रस्ताव। (५) आख्यान। (६) अवसर। मौका। (७) भाव।

वृत्ता-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) तिंसरीट नाम का क्षुप। (२) रेणुका। रेणु-बीज। (३) प्रियंगु। (४) मांसरोहिणी। (५) सफेद सेम। (६) नाग-दमनी। (७) नतुआ।

वृत्तानुवर्ती-संज्ञा पुं० [सं० वृत्तानुवर्तिन्] वह जिसका आचरण शुद्ध हो। सदाचारी।

वृत्ति-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) वह कार्य्य जिसके द्वारा जीविका का निर्वाह होता हो। जीविका। रोजी।

क्रि० प्र०—करना।—लगना।—होना।

(२) वह धन जो किसी दीन, विधवा या छात्र आदि को बराबर, कुछ निश्चित समय पर, उसके सहायतार्थ दिया जाय। उपजीविका।

क्रि० प्र०—देना।—पाना।—मिलना।

(३) सूत्रों आदि का वह विवरण या व्याख्या जो उनका अर्थ स्पष्ट करने के लिये की जाती है।

विशेष—हमारे यहाँ सूत्रों आदि की व्याख्या के वृत्ति, भाष्य, वार्तिक, टीका और टिप्पणी ये पाँच भेद किए गए हैं। इनमें से वृत्ति उस व्याख्या को कहते हैं, जो कुछ संक्षिप्त होती है और जिसकी रचना गंभीर होती है।

(४) विवरण। वृत्तांत। हाल। (५) नाटकों में विषय के विचार से वर्णन करने की शैली जो चार प्रकार की कही गई है और जो भिन्न भिन्न रसों के लिये उपयुक्त मानी गई है। जैसे,—कौशिकी वृत्ति, शृंगार रस के लिये; सात्वती वृत्ति वीर रस के लिये; आरभटी वृत्ति रौद्र और वीभत्स रस के लिये; और भारती वृत्ति शेष अन्य रसों के लिये। जहाँ अच्छी वेशभूषावाली नायिका, बहुत सी स्त्रियों और नृत्य-गीत तथा भोग-विलास आदि का वर्णन हो, उसे कौशिकी; जहाँ वीरता, सत्वशक्ति, दया, सरलता आदि का वर्णन हो, उसे सात्वती; जहाँ माया, इंद्रजाल, संग्राम, क्रोध आदि का वर्णन हो, उसे आरभटी; और जहाँ संस्कृत-बहुल कथोप-

कथन हो, उसे भारती वृत्ति कहते हैं। इन चारों वृत्तियों के भी कई अवांतर भेद माने गए हैं। (६) व्यवहार। (७) वह जो किसी दूसरे पर आश्रित या अवलंबित हो। आधेय। (८) योग के अनुसार चित्त की अवस्था जो पाँच प्रकार की मानी गई है—क्षिप्त, मूढ़, विक्षिप्त, एकाग्र और निरुद्ध। (९) व्यापार। कार्य्य। (१०) स्वभाव। प्रकृति। (११) कौशिक। (१२) संहार करने का एक प्रकार का वाण। उ०—सारथि माली वृत्ति नाम पुनि अतिमाली भौ।—पद्माकर।

वृत्तिकार-संज्ञा पुं० [सं०] वह जिसने किसी सूत्र-ग्रंथ पर वृत्ति लिखी हो।

वृत्तिता-संज्ञा स्त्री० [सं०] वृत्ति का भाव या धर्म।

वृत्तिरशना-संज्ञा स्त्री० [सं०] पुराणानुसार रुद्र की एक स्त्री का नाम।

वृत्तिस्थ-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जो अपनी वृत्ति पर स्थित हो। (२) गिरगिट।

वृत्तेर्वारु-संज्ञा पुं० [सं०] खरबूजे की बेल।

वृत्य-वि० [सं०] जो नियुक्त करने के योग्य हो। मुकर्रर करने के काबिल।

वृत्यनुप्रास-संज्ञा पुं० [सं०] (१) पाँच प्रकार के अनुप्रासों में से एक प्रकार का अनुप्रास जो काव्य में एक शब्दालंकार माना जाता है। इसमें एक या कई व्यंजन वर्ण एक ही या भिन्न भिन्न रूपों में बार बार आते हैं। उ०—अति भारी कारी घटा, कारी वारी वैस। (२) इसमें र और व ये दो व्यंजन कई बार आए हैं, अतः यह वृत्यनुप्रास हुआ।

वृत्र-संज्ञा पुं० [सं०] (१) अँधेरा। (२) मेघ। बादल। (३) शत्रु। दुश्मन। (४) पुराणानुसार त्वष्टा के पुत्र एक दानव या असुर का नाम जिसे इंद्र ने मारा था। इसी को मारने के लिये दधीचि ऋषि की हड्डियों का वज्र बनाया गया था। कहते हैं कि एक बार इंद्र ने विश्वरूप पुरोहित को मार डाला था। उसके पिता त्वष्टा ऋषि ने इसका बदला चुकाने के लिये यज्ञ करके इसे उत्पन्न किया। जब इसने इंद्र पर आक्रमण किया, तब इंद्र देवताओं सहित इंद्रपुरी में भाग गए। पर अंत में विष्णु की सम्मति से इंद्र ने दधीचि ऋषि से उनकी हड्डियाँ माँगीं और उन्हीं हड्डियों का वज्र बनाकर इससे लड़ना आरंभ किया। जब इंद्र ने इसके दोनों हाथ काट डाले, तब यह इंद्र को उनके हाथी ऐरावत सहित निगल गया। तब इन्द्र इसका पेट फाड़कर बाहर निकले और इसका सिर काट डाला। देवी भागवत में इसकी कथा विस्तार के साथ दी गई है। वेदों में भी वृत्र असुर का उल्लेख है; पर वहाँ जो कुछ वर्णन मिलता है, उससे आलंकारिक रूप में मेघ और अंधकार आदि के संबंध में ही "वृत्र" शब्द आया हुआ जान पड़ता है। वृत्रासुर। (५) एक पर्वत का नाम।

वृत्रखाद-संज्ञा पुं० [सं०] इंद्र का एक नाम, जिन्होंने वृत्र नामक असुर को मारा था।

वृत्रघ्न-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वृत्र नामक असुर को मारनेवाले, इंद्र। (२) वैदिक काल के एक देश का नाम जो गंगा के तट पर था।

वृत्रघ्नी-संज्ञा स्त्री० [सं०] पुराणानुसार पारिपात्र नामक कुल-पर्वत से निकली हुई एक नदी का नाम।

वृत्रतूर्य-संज्ञा पुं० [सं०] युद्ध। लड़ाई।

वृत्रत्व-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वृत्र का भाव या धर्म। (२) शत्रुता। दुश्मनी।

वृत्रनाशन-संज्ञा पुं० [सं०] वृत्र नामक असुर को मारनेवाले, इंद्र।

वृत्रभोजन-संज्ञा पुं० [सं०] गंडीर या गुँदरी नामक साग।

वृत्रवैरी-संज्ञा पुं० [सं० वृत्रवैरिन्] वृत्र को मारनेवाले, इंद्र।

वृत्रशंकु-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का पत्थर का खंभा। (वैदिक)

वृत्रशत्रु-संज्ञा पुं० [सं०] इंद्र।

वृत्रहा-संज्ञा पुं० [सं०] वृत्रासुर को मारनेवाले, इंद्र।

वृत्रारि-संज्ञा पुं० [सं०] इंद्र।

वृत्रासुर-संज्ञा पुं० दे "वृत्र" (४)।

वृथा-वि० [सं०] बिना मतलब का। निष्प्रयोजन। व्यर्थ। फजूल।

क्रि० वि० बिना मतलब के। बेफ़ायदा।

वृथात्व-संज्ञा पुं० [सं०] वृथा होने का भाव या धर्म।

वृथामांस-संज्ञा पुं० [सं०] वह मांस जो किसी देवी या देवता को चढ़ाया गया हो। ऐसा मांस खाने का निषेध है।

वृद्ध-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मनुष्य की तीन अवस्थाओं में से एक अवस्था जो युवावस्था के उपरांत और सब के अंत में आती है। यह अवस्था प्रायः ६० वर्ष के उपरांत आती है। इसमें मनुष्य दुर्बल और क्षीण हो जाता है, उसके सब अंग शिथिल हो जाते हैं, शरीर की धातुएँ तथा इंद्रियाँ आदि भी बराबर क्षीण होती जाती हैं, और इसके अंत में मृत्यु आ जाती है। बुढ़ापा। जरा। (२) वह जो इस अवस्था में पहुँच गया हो। बुड्ढा। (३) पंडित। विद्वान्। (४) शैलज नामक गंधद्रव्य। (५) वृद्धावस्था।

वृद्धकंद-संज्ञा पुं० [सं०] इंगुदी का पेड़।

वृद्धकाक-संज्ञा पुं० [सं०] द्रोण काक। पहाड़ी कौवा।

वृद्धकावेरी-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक नदी का नाम।

वृद्धकृच्छ्र-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का कृच्छ्र रोग।

वृद्धकेशव-संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार सूर्य की एक मूर्ति का नाम।

वृद्धगंगा-संज्ञा स्त्री० [सं०] हिमालय की एक छोटी नदी का नाम।

वृद्धगोनस-संज्ञा पुं० [सं०] सुश्रुत के अनुसार एक प्रकार का साँप।
वृद्धता-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) वृद्ध का भाव या धर्म। बुढ़ापा। (२) पांडित्य।
वृद्धतिक्ता-संज्ञा स्त्री० [सं०] पाठा। पाढ़ा।
वृद्धत्व-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वृद्ध होने का भाव या धर्म। बुढ़ापा। (२) पांडित्य।
वृद्धदार-संज्ञा पुं० दे० "वृद्धदारक"।
वृद्धदारक-संज्ञा पुं० [सं०] विधारा नामक क्षुप।
वृद्धद्युम्न-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन ऋषि का नाम।
वृद्धधूप-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सिरिस का पेड़। (२) सरल का वृक्ष।
वृद्धधूमा-संज्ञा स्त्री० [सं०] लिसोड़ा।
वृद्धनाभि-संज्ञा पुं० [सं०] वह जिसकी तोंद आगे को निकली हो। तोंदल।
वृद्धपराशर-संज्ञा पुं० [सं०] एक धर्मशास्त्र कार का नाम।
वृद्धप्रपितामह-संज्ञा पुं० [सं०] दादा का दादा। परदादा का पिता।
वृद्धबला-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) ककही या कंघी नामक पेड़। (२) महाबला।
वृद्धबृहस्पति-संज्ञा पुं० [सं०] एक धर्मशास्त्र-कार का नाम।
वृद्धबौधायन-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन धर्मशास्त्र कार का नाम।
वृद्धमनु-संज्ञा पुं० [सं०] एक धर्मशास्त्र-कार का नाम।
वृद्धयाज्ञवल्क्य-संज्ञा पुं० [सं०] एक धर्मशास्त्र-कार का नाम।
वृद्धयुवती-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) कुटनी। (२) धात्री। दाई।
वृद्धराज-संज्ञा पुं० [सं०] अमलबेत।
वृद्धवशिष्ठ-संज्ञा पुं० [सं०] एक धर्मशास्त्र-कार का नाम।
वृद्धवासिनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] गीदड़।
वृद्धवाहन-संज्ञा पुं० [सं०] आम का पेड़।
वृद्धविभीतक-संज्ञा पुं० [सं०] अमड़ा।
वृद्धविष्णु-संज्ञा पुं० [सं०] एक धर्मशास्त्र-कार का नाम।
वृद्धशाकल्य-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन ऋषि का नाम।
वृद्धश्रवा-संज्ञा पुं० [सं० वृद्धश्रवस्] इंद्र।
वृद्धश्रावक-संज्ञा पुं० [सं०] कापालिक।
वृद्धसूचक-संज्ञा पुं० [सं०] कपास।
वृद्धहारीत-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन धर्मशास्त्र-कार का नाम।
वृद्धांगुलि-संज्ञा स्त्री० [सं०] अँगूठा।
वृद्धांत-संज्ञा पुं० [सं०] वह जो सम्मान या प्रतिष्ठा करने योग्य हो। आदरणीय।
वृद्धा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) वह स्त्री जो अवस्था में वृद्ध हो गई हो। बुढ़ी। (२) अँगूठा। (३) महाश्रावणिका।
वृद्धाचल-संज्ञा पुं० [सं०] मदरास प्रांत के एक तीर्थ का नाम।
वृद्धात्रि-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन ऋषि का नाम।

वृद्धि-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) बढ़ने या अधिक होने की क्रिया या भाव। बढ़ती। ज्यादती। अधिकता। जैसे,—धन धान्य की वृद्धि, संतान की वृद्धि, यश की वृद्धि। (२) ब्याज। सूद। (३) वह अशौच जो घर में संतान उत्पन्न होने पर होता है। (४) अभ्युदय। समृद्धि। (५) एक प्रसिद्ध लता जो अष्टवर्ग के अंतर्गत मानी गई है। कहते हैं कि यह कोश-यामक देश में कोशल पर्वत पर पाई जाती है। इसके कंद पर सफेद रोएँ और कहीं कहीं छेद होते हैं। इसका फल कपास की गाँठ के समान होता है, जो लता में दाहिनी ओर निकलता है। आजकल यह ओषधि नहीं मिलती। वैद्यक में यह मधुर, शीतल, वीर्य्यवर्द्धक, गर्भ धारण करानेवाली और रक्त-पित्त, खाँसी तथा क्षय रोग को नष्ट करनेवाली मानी गई है।
पर्य्या०—योग्या। ऋद्धि। सिद्धि। लक्ष्मी। युग्मि। वृद्धि-दात्री। मंगल्या। श्री। सम्पद्। जनेष्टा। भूति। सुख। जीवभद्रा।
(६) राजनीति में कृषि, वाणिज्य, दुर्ग, सेतु, कुंजरबंधन, कन्याकर, बलादान और सैन्यसन्निवेश इन आठो वर्गों का उपचय। वर्द्धन। स्फाति। (७) फलित ज्योतिष में विष्कंभ आदि २७ योगों के अंतर्गत ग्यारहवाँ योग। कहते हैं कि इस योग में जन्म लेनेवाला व्यक्ति विनयी, धन का अच्छा उपयोग करनेवाला और माल खरीदने तथा बेचने में बहुत चतुर होता है।
वृद्धिकर्म्म-संज्ञा पुं० [सं०] नांदीमुख श्राद्ध। वृद्धि श्राद्ध।
वृद्धिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) ऋद्धि नाम की ओषधि। (२) सफेद अपराजिता। (३) अर्कपुष्पी।
वृद्धिजीवक-संज्ञा पुं० [सं०] वह जो वृद्धि या ब्याज से अपना निर्वाह करता हो। सूद से अपना निर्वाह करनेवाला।
वृद्धिद-संज्ञा पुं० [सं०] (१) जीवक नामक क्षुप। (२) सूअरकंद। वि० वृद्धि देनेवाला।
वृद्धिपत्र-संज्ञा पुं० [सं०] सुश्रुत के अनुसार एक प्रकार का शस्त्र जो सात अंगुल का होता था और जिसका व्यवहार चीर फाड़ में छेदने आदि के लिये होता था। इसका आकार प्रायः छुरे के समान होता था।
वृद्धियोग-संज्ञा पुं० [सं०] फलित ज्योतिष के सत्ताइस योगों में में से एक योग।
वृद्धिश्राद्ध-संज्ञा पुं० [सं०] नांदीमुख नाम का श्राद्ध। वि० दे० "नांदीमुख"।
वृधसानु-संज्ञा पुं० [सं०] (१) पुरुष। आदमी। (२) कृति। काम।
वृधु-संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल का एक सूत्रकार जिससे भरद्वाज मुनि को बहुत सी गौएँ मिली थीं।

वृश-संज्ञा पुं० [सं०] (१) अड़ूसा। (२) चूहा।

[illegible] संज्ञा पुं० दे० "वृष"।

वृशा-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की ओषधि।

वृश्चन-संज्ञा पुं० [सं०] वृश्चिक। बिच्छू।

वृश्चि-संज्ञा पुं० [सं०] लाल गदहपूरना।

वृश्चिक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बिच्छू नामक प्रसिद्ध कीड़ा जिसके डंक में बहुत तेज़ ज़हर होता है। वि० दे० "बिच्छू"। (२) गोबर में उत्पन्न होनेवाला कीड़ा। शूककीट। (३) पुनर्नवा। गदहपूरना। (४) मदन वृक्ष। मैनफल। (५) वृश्चिकाली या बिच्छू नाम की लता। (६) ज्योतिष में मेष आदि बारह राशियों में से आठवीं राशि जिस के सब तारों से प्रायः बिच्छू का सा आकार बनता है। विशाखा नक्षत्र के अंतिम पाद से आरंभ होकर अनुराधा और ज्येष्ठा नक्षत्रों के स्थिति-काल तक यह राशि मानी जाती है। भारतीय फलितज्योतिष के अनुसार यह राशि शीर्षोदय, श्वेतवर्ण, कफ प्रकृति, जलचर, उत्तर दिशा की अधिपति और अनेक पुत्रों तथा स्त्रियों से युक्त मानी गई है। कहते हैं कि इस राशि में जन्म लेनेवाला मनुष्य धन जन से युक्त, भाग्यवान, खल, राजसेवा करनेवाला, सदा दूसरों के धन की अभिलाषा करनेवाला, उत्साही और धीर होता है।

पर्य्या०—सौम्य। कंगना। युग्म। सम। स्थिर। पुष्कर। सरीसृपजाति। ग्राम्य।

(७) फलित ज्योतिष के अनुसार मेष आदि बारह लग्नों में से आठवाँ लग्न जो वृश्चिक राशि के उदय के समय माना जाता है। कहते हैं कि जो बालक इस लग्न में जन्म लेता है, वह बहुत मोटा ताज़ा, खर्चीला, कुटिल, माता-पिता के लिये अनिष्टकर, गंभीर और स्थिर प्रकृतिवाला, उग्र स्वभाव का, विश्वासी, हँसमुख, साहसी, गुरु और मित्रों से शत्रुता रखनेवाला, राजसेवा करनेवाला, दुःखी, दाता, नीचप्रकृति और पित्त-रोगी होता है। (८) अगहन मास जिसमें प्रायः सूर्योदय के समय वृश्चिक राशि का उदय होता है।

वृश्चिकपत्रिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] पोई नाम का साग।

वृश्चिकप्रिया-संज्ञा स्त्री० [सं०] पोई नाम का साग।

वृश्चिकर्णी-संज्ञा स्त्री० [सं०] मूसाकानी। आखुकर्णी।

वृश्चिकविषापहा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) नकुलकंद। (२) रास्ना।

वृश्चिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) बिछुआ या बिच्छू नाम की घास। (२) पित्थवन। (३) सफेद पुनर्नवा।

वृश्चिकाली-संज्ञा स्त्री० [सं०] बिच्छू नाम की लता जो प्रायः सारे भारत में पाई जाती और बारहो मास हरी रहती है। इसके पत्ते ५-६ अंगुल लंबे, नुकीले और अंडाकार होते हैं और उन पर तथा डंठलों पर एक प्रकार के रोएँ होते हैं, जिनके शरीर में लगने से बहुत तेज जलन होती है। इसकी जड़ का प्रयोग ओषधि रूप में होता है। वैद्यक में यह कड़वी, चरपरी, बल तथा रुचि बढ़ानेवाली, तथा खाँसी, श्वास और ज्वर को दूर करनेवाली मानी गई है।

वृश्चिकेश-संज्ञा पुं० [सं०] वृश्चिक राशि के अधिष्ठाता देवता।

वृश्चिपत्रिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] पूतिका। पोई।

वृश्चिपत्री-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) वृश्चिकाली। (२) मेढ़ासिंगी।

वृश्चिपर्णी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) वृश्चिकाली। (२) मेढ़ासिंगी।

वृश्ची-संज्ञा स्त्री० [सं०] पुनर्नवा। गदहपूरना।

वृश्चीर-संज्ञा पुं० [सं०] सफेद गदहपूरना।

वृश्चीव-संज्ञा पुं० [सं०] गदहपूरना। पुनर्नवा।

वृष-संज्ञा पुं० [सं०] (१) गौ का नर। साँड़। (२) कामशास्त्र के अनुसार चार प्रकार के पुरुषों में से एक प्रकार का पुरुष जो शंखिनी जाति की स्त्री के लिये उपयुक्त समझा जाता है। कहते हैं कि ऐसा पुरुष अनेक गुणों से युक्त, अनेक प्रकार के रतिबंधों का ज्ञाता, सुंदर और सत्यवादी होता है। (३) धर्म्म जिसके चार पैर माने जाते हैं और जो इसी कारण साँड़ के रूप में माना जाता है। (४) पुराणानुसार ग्यारहवें मन्वंतर के इंद्र का नाम। (५) चूहा। (६) अड़ूसा। (७) श्रीकृष्ण का एक नाम। (८) शत्रु। दुश्मन। वैरी। (९) काम। (१०) ऋषभ नामक ओषधि। (११) पति। स्वामी। (१२) गेहूँ। (१३) धमासा। (१४) नदी में होनेवाला बिलावँ। (१५) ज्योतिष में मेष आदि बारह राशियों में से दूसरी राशि जिसमें कृत्तिका नक्षत्र के तीन पाद, पूरा रोहिणी नक्षत्र और मृगशिरा नक्षत्र के पहले दो पाद हैं। यह राशि श्वेत वर्ण, वात प्रकृति, वैश्य, चार पैरोंवाली और दक्षिण दिशा की स्वामिनी मानी जाती है। कहते हैं कि जो व्यक्ति इस राशि में जन्म लेता है, वह सुंदर, दाता, क्षमा-शील, स्त्रैण और निर्भय होता है तथा आरंभिक अवस्था में धन, बंधु, संतति आदि से रहित और अंतिम अवस्था में इन सब बातों से सुखी रहता है। (१६) फलित ज्योतिष में मेष आदि बारह लग्नों में से दूसरा लग्न। कहते हैं कि इस लग्न में जन्म लेनेवाले मनुष्य के ओंठ और नाक मोटी तथा ललाट बहुत चौड़ा होता है; वह वात-श्लेष्म प्रकृति का, भाग्यवान्, खर्चीला, माता-पिता को कष्ट देनेवाला और बुरे कामों की ओर प्रवृत्ति रखनेवाला होता है। ऐसे मनुष्य को पुत्र कम और कन्याएँ अधिक होती हैं। इसकी मृत्यु किसी पशु या बलवान् व्यक्ति के द्वारा अथवा जल, शूल, पर्य्यटन आदि के कारण अथवा भूखों रहने से होती है।

वृषक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) साँड़। (२) महाभारत के अनुसार गांधार के एक राजकुमार का नाम। (३) एक प्रकार का साम। (४) अड़ूसा। (५) ऋषभक नामक ओषधि। (६)

घनासार। दुरालभा। (७) भिलावाँ। (८) गेहूँ। (९) पुदा।
वृषकर्णी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सुदर्शन नाम की लता। (२) एक प्रकार का विधारा।
वृषका-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्राचीन नदी का नाम।
वृषकेतन-संज्ञा पुं० [सं०] शिव। महादेव।
वृषकेतु-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शिव या महादेव, जिनकी ध्वजा पर बैल का चिह्न माना जाता है। (२) कर्ण के एक पुत्र का नाम। (३) लाल गदहपूरना।
वृषक्रतु-संज्ञा पुं० [सं०] वर्षा करनेवाले, इंद्र।
वृषखादि-संज्ञा पुं० [सं०] वह जो सोम पान करता हो।
वृषगंधा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) ककही या कंघी नाम का पौधा। (२) एक प्रकार का विधारा।
वृषगंधिका-संज्ञा स्त्री० दे० "वृषगंधा"।
वृषगण-संज्ञा पुं० [सं०] वैदिक ऋषियों का एक गण या समूह।
वृषचक्र-संज्ञा पुं० [सं०] फलित ज्योतिष में एक प्रकार का चक्र जिसमें एक बैल बनाकर उसके भिन्न भिन्न अंगों में नक्षत्र आदि रखते हैं और तब उसके द्वारा खेती संबंधी शुभाशुभ फल आदि निकालते हैं।
वृषण-संज्ञा पुं० [सं०] (१) इंद्र। (२) कर्ण। (३) विष्णु। (४) साँड़। (५) घोड़ा। (६) वृक्ष। (७) पीड़ा का ज्ञान या उससे होनेवाली बेहोशी। (८) अंडकोष। पोता।
वृषणकच्छु-संज्ञा स्त्री० [सं०] अंडकोश के आस पास होनेवाली वह फुंसियाँ आदि जो मैल और पसीने आदि के कारण हो जाती हैं और जिनमें खुजली होती है।
वृषणाश्व-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्रसिद्ध वैदिक राजा का नाम। (२) इंद्र के घोड़े का नाम।
वृषदंशक-संज्ञा पुं० [सं०] बिल्ली।
वृषदर्भ-संज्ञा पुं० [सं०] (१) महाभारत के अनुसार कश्मीर के एक राज-कुमार का नाम। (२) पुराणानुसार शिवि के एक पुत्र का नाम। (३) श्रीकृष्ण का एक नाम।
वृषदेवा-संज्ञा स्त्री० [सं०] वायुपुराण के अनुसार वसुदेव की एक स्त्री का नाम।
वृषद्वीप-संज्ञा पुं० [सं०] बृहत्संहिता के अनुसार एक द्वीप का नाम।
वृषध्वज-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शिव। महादेव। (२) गणेश। (३) पुराणानुसार एक पर्वत का नाम। (४) वह व्यक्ति जो बहुत पुण्यशील हो। पुण्यात्मा।
वृषध्वजा-संज्ञा स्त्री० [सं०] दुर्गा का एक नाम।
वृषध्वांक्षा-संज्ञा स्त्री० [सं०] नागरमोथा।
वृषध्वांक्षी-संज्ञा स्त्री० दे० "वृषध्वांक्षा"।
वृषनामा-संज्ञा पुं० [सं० वृषनामन्] अड़ूसा।
वृषनाशन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) विड़ंग। वायविडंग। (२) पुराणानुसार श्रीकृष्ण का एक नाम।
वृषपति-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शिव। महादेव। (२) नपुंसक। हिजड़ा। षंड।
वृषपत्रिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] बस्तांत्री या छागलांत्री नाम की ओषधि जो विधारा का एक भेद है।
वृषपर्णिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] भारंगी। ब्राह्मणयष्टिका।
वृषपर्णी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) मूसाकानी। आखुकर्णी। (२) बहुंबरपर्णी। दंती। (३) सुदर्शना नाम की लता।
वृषपर्व्वा-संज्ञा पुं० [सं० वृषपर्वन्] (१) शिव। महादेव। (२) महाभारत के अनुसार एक दैत्य का नाम। (३) विष्णु का एक नाम। (४) कसेरू। (५) एक प्रकार का तृण। (६) भँगरा।
वृषप्रिय-संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु।
वृषभ-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बैल या साँड़। (२) साहित्य में वैदर्भी रीति का एक भेद। (३) कान का छेद। (४) ऋषभ नाम की ओषधि। (५) कामशास्त्र के अनुसार चार प्रकार के पुरुषों में श्रेष्ठ पुरुष जो शंखिनी जाति की स्त्री के लिये उपयुक्त कहा गया है। (६) सूर्य की वीथियों में से एक वीथी का नाम। (७) एक प्राचीन तीर्थ का नाम। (८) श्रीकृष्ण के एक सखा का नाम। (९) एक यूथपति बंदर का नाम जो राम-रावण युद्ध में लड़ा था।
वृषभकेतु-संज्ञा पुं० [सं०] शिव का एक नाम।
वृषभगति-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शिव। महादेव। (२) वह सवारी जो बैल के द्वारा खींची जाती हो।
वृषभतीर्थ-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन तीर्थ का नाम।
वृषभत्व-संज्ञा पुं० [सं०] वृषभ होने का भाव या धर्म वृषभता।
वृषभधुज*-संज्ञा पुं० दे० "वृषभध्वज"।
वृषभध्वज-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शिव। महादेव। (२) एक प्राचीन पर्वत का नाम।
वृषभध्वजा-संज्ञा स्त्री० [सं०] बड़ी दंती। बँगरेता।
वृषभपल्लव-संज्ञा पुं० [सं०] अड़ूसा।
वृषभवीथि-संज्ञा स्त्री० [सं०] सूर्य की वीथियों में से एक वीथि का नाम।
वृषभांक-संज्ञा पुं० [सं०] शिव। महादेव।
वृषभा-संज्ञा स्त्री० [सं०] पुराणानुसार एक प्राचीन नदी का नाम।
वृषभाक्ष-संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु।
वृषभाक्षी-संज्ञा स्त्री० [सं०] इंद्रवारुणी लता। इनारुन।
वृषभान*-संज्ञा पुं० दे० "वृषभानु"।

वृषभानु-संज्ञा पुं० [सं०] श्री राधिकाजी के पिता का नाम जो पुराणानुसार नारायण के अंश से उत्पन्न हुए थे। इनके पिता का नाम सुरभानु और माता का नाम पद्मावती था। ये गोकुल के बड़े सरदार थे और पहले रावल ग्राम में रहते थे, जहाँ राधिका का जन्म हुआ था। पर अंत में कंस के उपद्रव के कारण वहाँ से बरसाने में जा बसे थे।

विशेष—इस शब्द के साथ "कन्या" या उसका पर्याय-वाची शब्द लगाने से उसका "राधिका" अर्थ होता है। जैसे,—वृषभानुसुता, वृषभानुनंदिनी।

वृषभानुनंदिनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] राधिका।

वृषभानुसुता-संज्ञा स्त्री० [सं०] वृषभानु की कन्या, श्रीराधिका।

वृषभासा-संज्ञा स्त्री० [सं०] इंद्र की पुरी अमरावती का एक नाम।

वृषभेक्षण-संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु।

वृषमूल-संज्ञा पुं० [सं०] अड़ूसे की जड़।

वृषय-संज्ञा पुं० [सं०] आश्रय।

वृषरवि-संज्ञा पुं० दे० "वृषभानु"।

वृषरथ-संज्ञा पुं० [सं० वृषरथिन्] शिव। महादेव।

वृषल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शूद्र। (२) वह जिसे धर्म्म आदि का कुछ भी ध्यान न हो। पाप और दुष्कर्म करनेवाला। (३) घोड़ा। (४) सम्राट् चंद्रगुप्त का एक नाम। (५) गाजर। (६) शलगम।

वृषलता-संज्ञा स्त्री० [सं०] वृषल होने का धर्म या भाव। वृषलपन।

वृषलांछन-संज्ञा पुं० [सं०] शिव। महादेव।

वृषली-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) स्मृतियों आदि के अनुसार वह कन्या जो रजस्वला तो हो गई हो, पर जिसका अभी विवाह न हुआ हो। कहते हैं कि ऐसी कन्या का पिता बड़ा पातकी होता है और उसे उस कन्या की भ्रूणहत्या करने का पाप लगता है। (२) वह स्त्री जो अपने पति को छोड़कर पर-पुरुष से प्रेम करती हो। (३) शूद्र जाति की स्त्री। वृषल की स्त्री। (४) वह स्त्री जो पाप या दुष्कर्म करती हो। (५) नीच जाति की स्त्री। (६) वह स्त्री जो मासिक धर्म्म से हो। रजस्वला स्त्री। (७) वह स्त्री जो मरी हुई संतान उत्पन्न करती हो।

वृषलीपति-संज्ञा पुं० [सं०] वह पुरुष जिसने ऐसी कन्या के साथ विवाह किया हो जो विवाह से पहले ही रजस्वला हो चुकी हो। वृषली का पति। (कहते हैं कि ऐसे पुरुष को श्राद्ध आदि करने का अधिकार नहीं होता।)

वृषलोचन-संज्ञा पुं० [सं०] चूहा। मूसा।

वृषवत्-संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार एक पर्वत का नाम।

वृषवासी-संज्ञा पुं० [सं० वृषवासिन्] केरल देश के वृष पर्वत पर बसनेवाले, शिवजी। उ०—इनके घर लेहो अवतारा। वृषवासी हर हृदय विचारा।—शंकर दि०।

वृषवाहन-संज्ञा पुं० [सं०] शिव। महादेव।

वृषवीमत्स-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की कौंछ या केवाँच।

वृषवृष-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का साम।

वृषशत्रु-संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु।

वृषशिप्र-संज्ञा पुं० [सं०] वैदिक काल के एक असुर का नाम।

वृषशील-संज्ञा पुं० दे० "वृषल"।

वृषशुष्म-संज्ञा पुं० [सं०] वैदिक काल के एक ऋषि का नाम जो जतुकर्ण के पोते थे।

वृषषंड-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रवर-कार ऋषि का नाम।

वृषसव-संज्ञा पुं० [सं०] वह जिसने यज्ञ करने के लिये मंगल-स्नान किया हो।

वृषसार-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सफेद बड़। (२) देवकुंभी। बड़ा गूमा।

वृषसाह्वया-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्राचीन नदी का नाम जिसका उल्लेख महाभारत में है।

वृषसृक्की-संज्ञा पुं० [सं० वृषसृक्किन्] भीमरोल या भूँगरोल नाम का कीड़ा।

वृषसेन-संज्ञा पुं० [सं०] भागवत के अनुसार कर्ण के एक पुत्र का नाम।

वृषस्कंध-संज्ञा पुं० [सं०] शिव। महादेव।

वृषांक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शिव। महादेव। (२) साधु। धर्मात्मा। (३) जल में होनेवाला भिलावाँ। (४) नपुंसक। हिजड़ा। (५) मोर।

वृषांकज-संज्ञा पुं० [सं०] डमरू।

वृषांचन-संज्ञा पुं० [सं०] शिव। महादेव।

वृषांड-संज्ञा पुं० [सं०] महाभारत के अनुसार एक असुर का नाम।

वृषांतक-संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु।

वृषा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) मूसाकानी। आखुकर्णी। (२) केवाँच। कौंछ। (३) उदुंबरपर्णी। दंती। (४) बड़ी दंती। (५) असगंध। (६) मालकंगनी। (७) गौ।

वृषाकपायी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) जीवंती। डोडी। (२) सतावर। (३) लक्ष्मी। (४) गौरी। (५) इंद्र की पत्नी, शची।

वृषाकपि-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शिव। (२) विष्णु। (३) अग्नि। (४) इंद्र। (५) सूर्य।

वृषाकर-संज्ञा पुं० [सं०] उड़द। माष।

वृषाकृति-संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु।

वृषाख्य-संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु।

वृषाणक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शिव। महादेव। (२) शिव के एक अनुचर का नाम।

वृषाणी–संज्ञा पुं० [सं० वृषाणिन्] ऋषभक नाम की ओषधि जो अष्टवर्ग में है।

वृषादनी–संज्ञा स्त्री० [सं०] इंद्रवारुणी। इनारू।

वृषादर्भ–संज्ञा पुं० [सं०] भागवत के अनुसार शिवि के एक पुत्र का नाम।

वृषादित्य–संज्ञा पुं० [सं०] वृष राशि के सूर्य। ज्येष्ठ मास की संक्रांति के सूर्य।

वृषाद्रि–संज्ञा पुं० [सं०] एक पर्वत का नाम जो केरल देश में है।

वृषायण–संज्ञा पुं० [सं०] (१) शिव। महादेव। (२) चटक या गौरैया नामक पक्षी।

वृषारणी–संज्ञा स्त्री० [सं०] गंगा का एक नाम।

वृषारव–संज्ञा पुं० [सं०] वे जंतु जिनकी बोली बहुत कर्कश हो। जैसे,—झिल्ली, मेढक आदि।

वृषाशील–संज्ञा पुं० दे० "वृषल"।

वृषाश्रिता–संज्ञा स्त्री० [सं०] गंगा का एक नाम।

वृषासुर–संज्ञा पुं० [सं०] भस्मासुर दैत्य का एक नाम जिसने शिव से वर पाकर शिव ही को भस्म करके पार्वती को लेना चाहा था। वृकासुर। वि० दे० "भस्मासुर"।

वृषाहार–संज्ञा पुं० [सं०] चूहों को खानेवाली, बिल्ली।

वृषाही–संज्ञा पुं० [सं० वृषाहिन्] विष्णु।

वृषी–संज्ञा पुं० [सं० वृषिन्] मोर।

वृषेंद्र–संज्ञा पुं० [सं०] (१) साँड़। (२) बैल।

वृषोत्सर्ग–संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार एक प्रकार का धार्मिक कृत्य जिसमें लोग अपने मृत पिता आदि के नाम पर साँड़ पर चक्र दागकर उसे छोड़ देते हैं। ऐसे छोड़े हुए साँड़ों से किसी प्रकार का काम नहीं लिया जाता। कहते हैं कि जिन पितरों के नाम पर साँड़ छोड़े जाते हैं, वे स्वर्ग पहुँच जाते हैं। अशौच समाप्त होने के दूसरे दिन यह कृत्य करने का विधान है।

वृषोत्साद–संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु का एक नाम।

वृषोदर–संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु।

वृष्ट–संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार कुकुर के एक पुत्र का नाम।

वृष्टि–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) आकाश से जल बरसना। वर्षा। बारिश। मेह। (२) ऊपर से बहुत सी चीजों का एक साथ गिरना या गिराया जाना। जैसे,—पुष्पवृष्टि। (३) किसी क्रिया का कुछ समय तक लगातार होना। जैसे,—उनके बैठते ही चारों ओर से उन पर कटु वचनों की वृष्टि होने लगी।

वृष्टिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] नागपुष्पी। बबसलाई।

वृष्टिघ्नी–संज्ञा स्त्री० [सं०] छोटी इलायची।

वृष्टिजीवन–संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह देश जहाँ की खेतीबारी केवल वर्षा पर ही निर्भर हो। (२) चातक पक्षी।

वृष्टिभू–संज्ञा पुं० [सं०] मेढक।

वृष्टिमान–संज्ञा पुं० [सं०] वह यंत्र जिसके द्वारा यह जाना जाता है कि कितनी वृष्टि हुई। यह एक छोटा सा बरतन होता है, जिसमें वर्षा का जल भरता है। इसी जल की ऊँचाई इंचों आदि से नापकर निश्चय किया जाता है कि अमुक समय में इतने इंच वर्षा हुई।

वृष्टिवैकृत–संज्ञा पुं० [सं०] बृहत्संहिता के अनुसार बहुत अधिक वृष्टि होना या बिलकुल वृष्टि न होना, जो उपद्रव आदि का सूचक समझा जाता है।

वृष्ण–संज्ञा पुं० [सं०] वैदिक काल के एक प्राचीन ऋषि का नाम।

वृष्णि–संज्ञा पुं० [सं०] (१) मेघ। बादल। (२) यादव वंश। उ०—वृष्णि कुल कुमुद राकेश राधारमन कंस वंशाटवी धूमकेतू।—तुलसी। (३) श्रीकृष्ण। (४) इंद्र। (५) अग्नि। (६) वायु। (७) ज्योति। (८) गौ। (९) भेड़ा। वि० (१) प्रचंड। उग्र। तेज। (२) पामर। नीच।

वृष्णिक–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन ऋषि का नाम।

वृष्णिकगर्भ–संज्ञा पुं० [सं०] श्रीकृष्ण।

वृष्ण्य–संज्ञा पुं० [सं०] वीर्य।

वृष्य–संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह चीज जिससे वीर्य और बल बढ़ता हो। (२) वह चीज जिसके सेवन से मन में आनंद उत्पन्न होता हो। (३) ईख। ऊख। (४) उड़द की दाल। (५) ऋषभ नामक ओषधि। (६) आँवला। (७) कमल की नाल। मृणाल।

वृष्यकंदा–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) बिदारी कंद। (२) मूली।

वृष्यगंधा–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) वृद्धदारक। बिधारा। (२) बरतोंधी नाम की लता। (३) ककही। अतिबला।

वृष्यगंधिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] ककही। अतिबला।

वृष्यघंटी–संज्ञा स्त्री० [सं०] मूसाकानी। आखुकर्णी।

वृष्यपर्णी–संज्ञा स्त्री० [सं०] बिदारीकंद। भुईं-कुम्हड़ा।

वृष्यफला–संज्ञा स्त्री० [सं०] आँवला।

वृष्यवल्लिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] बिदारी कंद। भुईंकुम्हड़ा।

वृष्यवल्ली–संज्ञा स्त्री० [सं०] बिदारीकंद।

वृष्या–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) अष्टवर्ग की ऋद्धि नामक ओषधि। (२) शतावर। (३) आँवला। (४) केवाँच। कौंछ। (५) भुईं-आँवला। (६) बिदारीकंद। (७) ककही। अतिबला। (८) बड़ी दंती। बँगड़ेरा।

वृहच्चंचु–संज्ञा पुं० [सं०] महाचंचु नामक साग।

वृहच्छमेद–संज्ञा पुं० [सं०] जयंती। जैंत।

वृहच्चित्त–संज्ञा पुं० [सं०] बिजौरा नीबू।

वृहच्छद–संज्ञा पुं० [सं०] अखरोट।

वृहच्छफरी–संज्ञा स्त्री० [सं०] सफरी नाम की मछली।

वृहच्छल्क–संज्ञा पुं० [सं०] झिंगवा नाम की मछली।

वृहच्छालपर्णी–संज्ञा स्त्री० [सं०] महाशालपर्णी। बड़ी सरिवन।
वृहच्छिंबी–संज्ञा स्त्री० [सं०] सेम।
वृहज्जीरक–संज्ञा पुं० [सं०] मँगरैला।
वृहज्जीवंती–संज्ञा स्त्री० [सं०] बड़ी जीवंती।
वृहज्जीवा–संज्ञा स्त्री० [सं०] बड़ी जीवंती।
वृहतिका–संज्ञा स्त्री० दे० "वृहती"।
वृहती–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) कंटकारी। छोटी कटाई। (२) बनभंटा। बड़ी कटाई। (३) बैगन। (४) वैद्यक के अनुसार एक मर्मस्थान जो छातियों के ठीक पीछे पीठ में दोनों ओर होता है। इस मर्मस्थान पर आघात लगने से बहुत अधिक रक्त निकलता है और प्रायः मनुष्य मर जाता है। (५) विश्वावसु नामक गंधर्व की वीणा का नाम। (६) वाक्य। (७) एक प्रकार का छंद जिसके प्रत्येक चरण में भगण, मगण और सगण होता है। जैसे,—भाव सुपूजा कारज जू। प्रात गईं सीता सरजू। कण्ठमणी मध्ये सु जला। टूट परीं खोजैं अबला।—काव्यप्रभाकर।
वृहतीपति—संज्ञा पुं० [सं०] वृहस्पति।
वृहतीफल—संज्ञा पुं० [सं०] बनभंटा।
वृहत्–वि० [सं०] बड़ा। भारी। महान्। जैसे,—आपने यह बहुत वृहत् कार्य्य उठाया है।
वृहत्कंद–संज्ञा पुं० [सं०] (१) विष्णुकंद। (२) गाजर।
वृहत्कालशाक–संज्ञा पुं० [सं०] महाकासमर्द नाम का क्षुप। कसौंदी।
वृहत्काश–संज्ञा पुं० [सं०] उलूक नाम का तृण। खगड़ा।
वृहत्कुक्षि–संज्ञा पुं० [सं०] वह जिसका पेट आगे की ओर निकला हो। तोंदल।
वृहत्कोशातकी–संज्ञा स्त्री० [सं०] नेनुआँ। तरोई।
वृहत्खर्जूरिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] छुहारा।
वृहत्ताल–संज्ञा पुं० [सं०] श्रीताल या हिंताल नाम का वृक्ष।
वृहत्तिक्त–संज्ञा पुं० [सं०] छोटा पाठा।
वृहत्तिक्ता–संज्ञा स्त्री० [सं०] पाठा। पाढ़ा।
वृहत्तृण–संज्ञा पुं० [सं०] बाँस।
वृहत्त्वक्–संज्ञा पुं० [सं०] सप्तपर्ण या सतिवन नामक वृक्ष।
वृहत्त्वच–संज्ञा पुं० [सं०] नीम का पेड़।
वृहत्पंचमूल–संज्ञा पुं० [सं०] बेल, सोनापाठा, गंभारी, पाँडर, और गनियारी इन पाँचों का समूह।
वृहत्पत्र–संज्ञा पुं० [सं०] (१) हाथीकंद। (२) पठानी लोध। (३) बथुआ नाम का साग।
वृहत्पत्रा–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) त्रिपर्णी कंद। (२) कासमर्द। कसौंदी।
वृहत्पत्रिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] त्रिपर्णी कंद।
वृहत्पर्ण–संज्ञा पुं० [सं०] पठानी लोध।
वृहत्पर्णी–संज्ञा स्त्री० [सं०] महाशणपुष्पी। बड़ी बनसनई।
वृहत्पाटली–संज्ञा स्त्री० [सं०] धतूरा।
वृहत्पाद–संज्ञा पुं० [सं०] वट का वृक्ष। बरगद।
वृहत्पारेवत–संज्ञा पुं० [सं०] बड़ा पारेवत वृक्ष।
वृहत्पाली–संज्ञा पुं० [सं० वृहत्पालिन्] वन-जीरक। काली जीरी।
वृहत्पीलु–संज्ञा पुं० [सं०] महापीलु नामक वृक्ष। पहाड़ी अखरोट।
वृहत्पुष्प–संज्ञा पुं० [सं०] (१) केला। (२) सफेद कुम्हड़ा। पेठा।
वृहत्पुष्पा–संज्ञा स्त्री० [सं०] शणपुष्पी। बन-सनई।
वृहत्पुष्पी–संज्ञा स्त्री० [सं०] सन। सनई।
वृहत्फल–संज्ञा पुं० [सं०] (१) कुम्हड़ा। (२) कटहल। (३) जामुन। (४) चिचड़ा।
वृहत्फला–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) कद्दू। लौकी। (२) कड़वी लौकी। (३) महेंद्रवारुणी। इनारुन। (४) बड़ा जामुन। (५) सफेद कुम्हड़ा। पेठा।
वृहदंग–संज्ञा पुं० [सं०] हाथी।
वृहदम्ल–संज्ञा पुं० [सं०] कमरख का पेड़।
वृहदेला–संज्ञा स्त्री० [सं०] बड़ी इलायची।
वृहद्गृह–संज्ञा पुं० [सं०] वृहद्गृह या कारुष नामक प्राचीन देश।
वृहद्गृह–संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल के एक देश का नाम जो विंध्य-पर्वत के पश्चिम में मालव देश के पास था। कारुष देश।
वृहद्गोल–संज्ञा पुं० [सं०] तरबूज।
वृहद्दंती–संज्ञा स्त्री० [सं०] बड़ी दंती। द्रवंती।
वृहद्दल–संज्ञा पुं० [सं०] (१) पठानी लोध। (२) सप्तपर्ण। सतिवन। (३) श्रीताल या हिंताल नामक वृक्ष। (४) लाल लहसुन। (५) लजालू। लज्जावंती।
वृहद्दला–संज्ञा स्त्री० [सं०] लाजवंती। लजालू।
वृहद्द्रोणी–संज्ञा स्त्री० [सं०] द्रोण नामक परिमाण।
वृहद्धान्य–संज्ञा पुं० [सं०] यावनाल। ज्वार।
वृहद्बदर–संज्ञा पुं० [सं०] बड़ा बेर।
वृहद्बला–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) पीतपुष्पा। सहदेई। (२) पठानी लोध। (३) लजालू। लज्जावंती।
वृहद्बीज–संज्ञा पुं० [सं०] आम्रातक। अमड़ा।
वृहद्भंडी–संज्ञा स्त्री० [सं०] त्रायमाणा नाम की लता।
वृहद्भट्टारिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] दुर्गा का एक नाम।
वृहद्भानु–संज्ञा पुं० [सं०] (१) अग्नि। (२) सूर्य। (३) भागवत के अनुसार सत्यभामा के एक पुत्र का नाम। (४) चित्रक। चीता।
वृहद्रथ–संज्ञा पुं० [सं०] (१) इंद्र। (२) यज्ञपात्र। (३) साम-

भेद के एक अंश का नाम। (४) भागवत के अनुसार शतधन्वा के एक पुत्र नाम। (५) देवरात के एक पुत्र का नाम। (६) एक प्रकार का मंत्र।

वि० [स्त्री० बृहद्रथा] जिसके पास बहुत से रथ हों।

बृहद्रथा-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्राचीन नदी का नाम।

बृहद्राय-संज्ञा पुं० [सं०] उल्लू पक्षी।

बृहद्वर्ण-संज्ञा पुं० [सं०] सोनामक्खी।

बृहद्वल्क, बृहद्वल्कल-संज्ञापुं० [सं०] (१) पठानी लोध। (२) सप्तपर्ण। छतिवन।

बृहद्वल्ली-संज्ञा स्त्री० [सं०] करेला।

बृहद्वान-संज्ञा पुं० [सं०] देवधान्य। पुनेरा।

बृहद्वारुणी-संज्ञा स्त्री० [सं०] महेंद्रवारुणी। इनारू।

बृहन्नल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बाहु। बाँह। (२) अर्जुन।

बृहन्नला-संज्ञा स्त्री० [सं०] अर्जुन का उस समय का नाम जब वे वनवास के उपरांत अज्ञातवास के समय राजा विराट के यहाँ स्त्री के वेष में रहकर उसकी कन्या को नाच गाना सिखलाते थे।

बृहन्नाल-संज्ञा पुं० [सं०] नरसल। नरकट।

बृहन्निंब-संज्ञा पुं० [सं०] महानिंब। बकायन।

बृहन्मरिच-संज्ञा पुं० [सं०] गोल मिर्च।

बृहल्लोणी-संज्ञा स्त्री० [सं०] कुलफा नामक साग।

बृहस्पति-संज्ञा पुं० दे० "बृहस्पति"।

बृही-संज्ञा पुं० [सं०] साठी धान्य।

वेंकटगिरि-संज्ञा पुं० [सं०] दक्षिण भारत के एक पर्वत का नाम।

वेंकटाचल-संज्ञा पुं० दे० "वेंकटगिरि"।

वेकट-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्रकार की मछली। भाकुर। (२) युवक। जवान। (३) विदूषक। मसखरा। (४) जौहरी।

वेक्षण-संज्ञा पुं० [सं०] अच्छी तरह ढूँढना या देखना।

वेग-संज्ञा पुं० [सं०] (१) प्रवाह। बहाव। (२) शरीर में से मल मूत्र आदि निकलने की प्रवृत्ति। (३) किसी ओर प्रवृत्त होने का जोर। तेजी। (४) शीघ्रता। जल्दी। (५) आनंद। प्रसन्नता। खुशी। (६) कोई काम करने की दृढ़ प्रतिज्ञा या पक्का निश्चय। (७) उद्योग। उद्यम। (८) प्रवृत्ति। झुकाव। (९) वृद्धि। बढ़ती। (१०) महा ज्योतिष्मती। (११) लाल इनारू। (१२) शुक्र। वीर्य्य। (१३) न्याय के अनुसार चौबीस गुणों में से एक गुण जो आकाश, जल, तेज, वायु और मन में पाया जाता है। संसार में जो कुछ गति देखी जाती है, वह इसी गुण के कारण होती है और वह पाँचों में से किसी न किसी के द्वारा होती है।

वेगगा-संज्ञा स्त्री० [सं०] वेगपूर्वक चलनेवाली, नदी।

वेगदर्शी-संज्ञा पुं० [सं० वेगदर्शिन्] रामायण के अनुसार एक बंदर का नाम।

वेगधारण-संज्ञा पुं० [सं०] मल, मूत्र या शरीर के इसी प्रकार के और किसी वेग को रोकना जो स्वास्थ्य के लिये हानिकारक होता है।

वेगनाशन-संज्ञा पुं० [सं०] श्लेष्मा। कफ। (कहते हैं कि शरीर से निकलनेवाला मल आदि इसी के कारण कुछ रुकता है; इसी लिये इसका यह नाम पड़ा है।)

वेगनिरोध-संज्ञा पुं० [सं०] शरीर के मल-मूत्र आदि वेगों को रोकना। वेगधारण।

वेगरोग-संज्ञा पुं० [सं०] शरीर के मल-मूत्र आदि वेगों को रोकना। वेगधारण।

वेगवती-संज्ञा स्त्री० [सं०] दक्षिण भारत की एक नदी का नाम।

वेगवान्-वि० [सं०] वेगपूर्वक चलनेवाला। तेज चलनेवाला।

संज्ञा पुं० विष्णु।

वेगवाहिनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) गंगा। (२) पुराणानुसार एक प्राचीन नदी का नाम।

वेगविघात-संज्ञा पुं० [सं०] शरीर से निकलते हुए मल-मूत्र आदि वेगों को सहसा रोक लेना जो स्वास्थ्य के लिये हानिकारक समझा जाता है।

वेगसर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) तेज चलनेवाला घोड़ा। (२) खच्चर।

वेगा-संज्ञा स्त्री० [सं०] बड़ी मालकँगनी। महाज्योतिष्मती।

वेगित-वि० [सं०] जिसमें वेग हो। वेग-युक्त।

वेगिहिरण-संज्ञा पुं० [सं०] शिकारी मृग।

वेगी-संज्ञा पुं० [सं० वेगिन्] (१) वह जिसमें बहुत अधिक वेग हो। (२) बाज नाम का पक्षी।

वेणाली-संज्ञा स्त्री० [सं०] सोमराजी।

वेट्-संज्ञा पुं० [सं०] स्वाहा।

विशेष—वैदिक काल में यज्ञों आदि में स्वाहा के स्थान में वेट् शब्द का व्यवहार होता था।

वेट्चंदन-संज्ञा पुं० [सं०] मलयागिरि चंदन।

वेढमिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह रोटी या कचौड़ी जिसमें बड़ा की पीठी भरी हो। बेढ़ई।

वेण-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मनु के अनुसार एक प्राचीन वर्णसंकर जाति जिसकी उत्पत्ति वैदेहक माता और अंबष्ठ पिता से मानी गई है। (२) सूर्य्यवंशी राजा पृथु के पिता का नाम।

वेणुयोनि-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की लता।

वेणुवी-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जिसके पास वेणु हो। (२) शिव का एक नाम।

वेणा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) रामायण के अनुसार एक प्राचीन

नदी का नाम जिसे पर्णासा भी कहते हैं। (२) उशीर। खस।

वेणि–संज्ञा स्त्री० [सं०] देवदाली। बंदाल।

वेणिक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) महाभारत के अनुसार एक प्राचीन जनपद का नाम। (२) इस देश का निवासी।

वेणिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] स्त्रियों के बालों की गूथी हुई चोटी। वेणी।

वेणिवेधनी–संज्ञा स्त्री० [सं०] जोंक।

वेणी–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) स्त्रियों के बालों की गूथी हुई चोटी। (२) जल का प्रवाह। पानी का बहाव। (३) भीड़-भाड़। (४) देवदाली। (५) एक प्राचीन नदी का नाम। (६) भेड़। (७) देवताड़।

वेणीग–संज्ञा पुं० [सं०] खस। उशीर।

वेणीफल–संज्ञा पुं० [सं०] देवदाली का फल।

वेणीमूल–संज्ञा पुं० [सं०] खस। उशीर।

वेणीमूलक–संज्ञा पुं० [सं०] उशीर। खस।

वेणीर–संज्ञा पुं० [सं०] (१) नीम का पेड़। (२) रीठा।

वेणीस्कंध–संज्ञा पुं० [सं०] महाभारत के अनुसार एक नाग का नाम।

वेणु–संज्ञा पुं० [सं०] (१) बाँस। (२) बाँस की बनी हुई वंशी। (३) दे० "वेण"।

वेणुक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह लकड़ी या छड़ी जिससे गौओं, बैलों आदि को हाँकते हैं। (२) अंकुश। आँकुस। (३) छोटी वंशी। बाँसुरी। (४) इलायची।

वेणुकर्कर–संज्ञा पुं० [सं०] कनेर का पेड़।

वेणुका–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) बाँसुरी। वंशी। (२) एक प्रकार का वृक्ष जिसका फल बहुत जहरीला होता है। (३) हाथी को चलाने का प्राचीन काल का एक प्रकार का दंड जिसमें बाँस का दस्ता लगा होता था।

वेणुकार–संज्ञा पुं० [सं०] वह जो बाँस से बाँसुरी बनाता हो। वंशी बनानेवाला।

वेणुकीय–वि० [सं०] वेणु संबंधी। वेणु का।

वेणुगध–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की ओषधि।

वेणुजंघ–संज्ञा पुं० [सं०] महाभारत के अनुसार एक प्राचीन मुनि का नाम।

वेणुज–संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह चीज जो बाँस से उत्पन्न हुई हो। (२) बाँस के फूल में होनेवाले दाने, जो चावल कहलाते हैं और जो पीसकर ज्वार आदि के आटे के साथ खाए जाते हैं। बाँस का चावल। (३) गोल मिर्च।

वेणुजमुक्ता–संज्ञा स्त्री० [सं०] बाँस में होनेवाला एक प्रकार का गोल दाना जो प्रायः मोती कहलाता है।

वेणुदत्त–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन ऋषि का नाम।

वेणुदारि–संज्ञा पुं० [सं०] महाभारत के अनुसार एक राजकुमार का नाम।

वेणुन–संज्ञा पुं० [सं०] मिर्च।

वेणुनिःसृत–संज्ञा पुं० [सं०] ईख। ऊख।

वेणुनिर्लेखन–संज्ञा पुं० [सं०] बाँस की छाल।

वेणुप–संज्ञा पुं० [सं०] (१) महाभारत के अनुसार एक प्राचीन देश का नाम जो रेणुप भी कहलाता था। (२) इस देश का निवासी।

वेणुपत्रक–संज्ञा पुं० [सं०] सुश्रुत के अनुसार एक प्रकार का साँप।

वेणुपत्रिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] वंशपत्री। हिंगुपर्णी।

वेणुपुर–संज्ञा पुं० [सं०] आधुनिक बेलगाँव का प्राचीन नाम।

वेणुबीज–संज्ञा पुं० [सं०] बाँस के फूल में होनेवाले छोटे दाने जो ज्वार आदि के आटे के साथ पीसकर खाए जाते हैं। बाँस का चावल।

वेणुमंडल–संज्ञा पुं० [सं०] महाभारत के अनुसार कुशद्वीप के एक वर्ष का नाम।

वेणुमती–संज्ञा स्त्री० [सं०] पुराणानुसार पश्चिमोत्तर देश की एक नदी का नाम।

वेणुमय–वि० [सं०] बाँस का बना हुआ।

वेणुमान–संज्ञा पुं० [सं० वेणुमत्] (१) पुराणानुसार एक वंश का नाम। (२) पुराणानुसार एक पर्वत का नाम।

वेणुमुद्रा–संज्ञा स्त्री० [सं०] तांत्रिकों की एक प्रकार की मुद्रा।

वेणुयव–संज्ञा पुं० [सं०] बाँस के फूलों में होनेवाले दाने जो ज्वार आदि के साथ पीसकर खाए जाते हैं। बाँस का चावल। वैद्यक में यह रुक्ष, शीतल, कषाय और कफ, पित्त, मेद, क्रिमि तथा विष आदि का नाशक तथा बल और वीर्य्यवर्धक कहा गया है।

वेणुवंश–संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार एक राजा का नाम।

वेणुवन–संज्ञा पुं० [सं०] राजगृह के पास का एक उपवन। राजा बिंबिसार ने गौतम बुद्ध को बुलाकर यहीं ठहराया था।

वेणुवाद–संज्ञा पुं० [सं०] वह जो वंशी बजाता हो। बाँसुरी बजानेवाला।

वेणुवीणाधरा–संज्ञा स्त्री० [सं०] कार्तिकेय की एक मातृका का नाम।

वेणुहोत्र–संज्ञा पुं० [सं०] धृष्टकेतु के एक पुत्र का नाम।

वेण्य–संज्ञा स्त्री० [सं०] पुराणानुसार विंध्य पर्वत से निकली हुई एक नदी का नाम।

वेण्वा–संज्ञा स्त्री० [सं०] पुराणानुसार पारिपात्र पर्वत की एक नदी का नाम।

वेण्वातट–संज्ञा पुं० [सं०] (१) महाभारत के अनुसार एक प्राचीन देश का नाम जो वेण या वेण्वा नदी के तट पर था। (२) इस देश का निवासी।

चेत-संज्ञा पुं० दे० "बेंत"।

वेतन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह धन जो किसी को कोई काम करने के बदले में दिया जाय। पारिश्रमिक। उजरत। (२) वह धन जो बराबर कुछ निश्चित समय तक, प्रायः एक मास तक, काम करने पर मिले। तनखाह। दर-माहा। महीना।

क्रि० प्र०—देना—पाना।—मिलना।

(३) चाँदी।

वेतनभोगी-संज्ञा पुं० [सं० वेतनभोगिन्] वह जो वेतन लेकर काम करता हो। तनखाह पर काम करनेवाला।

वेतस-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बेंत। (२) जल-बेंत। (३) बड़वानल।

वेतसक-संज्ञा पुं० [सं०] महाभारत के अनुसार एक प्राचीन जनपद का नाम।

वेतसपत्रक-संज्ञा पुं० [सं०] सुश्रुत के अनुसार प्राचीन काल का एक प्रकार का शस्त्र जो प्रायः एक अंगुल मोटा और चार अंगुल लंबा होता था। इसका व्यवहार चीरफाड़ में होता था।

वेतसाम्ल-संज्ञा पुं० [सं०] अम्लवेत।

वेतसिनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] पुराणानुसार एक नदी का नाम।

वेतसी-संज्ञा स्त्री० दे० "वेतस"।

वेतसु-संज्ञा पुं० [सं०] वैदिक काल के एक असुर का नाम।

वेता-संज्ञा स्त्री० दे० "वेतन"।

वेताल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) द्वारपाल। संतरी। (२) शिव के एक गणाधिप। (३) पुराणों के अनुसार भूतों की एक प्रकार की योनि। इस योनि के भूत साधारण भूतों के प्रधान माने जाते हैं। ये प्रायः श्मशानों आदि में रहते हैं। बैताल। (४) वह शव जिस पर भूतों ने अधिकार कर कर लिया हो। (५) छप्पय के छठे भेद का नाम जिसमें ६५ गुरु और २२ लघु कुल ८७ वर्ण या १५२ मात्राएँ, अथवा ६५ गुरु और १८ लघु कुल ८३ वर्ण या १४८ मात्राएँ होती हैं।

वेतालग्रह-संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक के अनुसार एक प्रकार का भूतग्रह। कहते हैं कि जिस पर इस ग्रह का आक्रमण होता है, उसमें बहुत से दोष आ जाते हैं। वह प्रायः काँपता रहता है, सच बोलता है और फूल, माला तथा सुगंधि आदि बहुत पसंद करता है।

वेत्ता-वि० [सं०] जाननेवाला। ज्ञाता। जानकार। जैसे,— तत्ववेत्ता, शास्त्रवेत्ता।

वेत्र-संज्ञा पुं० [सं०] बेंत।

वेत्रक-संज्ञा पुं० [सं०] रामसर। सरपत।

वेत्रकार-संज्ञा पुं० [सं०] वह जो बेंत के सामान बनाता हो।

वेत्रकीय-संज्ञा पुं० [सं०] वह स्थान या देश जहाँ बेंत की अधिकता हो।

वेत्रकूट-संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार हिमालय की एक चोटी का नाम।

वेत्रगंगा-संज्ञा स्त्री० [सं०] हिमालय से निकली हुई एक नदी का नाम।

वेत्रधर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) द्वारपाल। संतरी। (२) चरैत। छड़ीबरदार।

वेत्रमूला-संज्ञा स्त्री० [सं०] यवतिक्ता। शंखिनी।

वेत्रवती-संज्ञा स्त्री० [सं०] बेतवा नदी जो मालवे से निकलकर कालपी के पास यमुना में मिलती है।

वेत्रहा-संज्ञा पुं० [सं० वेत्रहन्] इंद्र।

वेत्रावती-संज्ञा स्त्री० दे० "वेत्रवती"।

वेत्रासन-संज्ञा पुं० [सं०] बेंत का बना हुआ किसी प्रकार का आसन।

वेत्रासुर-संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार एक प्रसिद्ध असुर का नाम जो प्राग्ज्योतिषपुर का राजा था। इसने पहले समस्त संसार को जीतकर फिर इंद्र, अग्नि और यम पर विजय प्राप्त की थी। अंत में इंद्र ने इसे मार डाला था। कहते हैं कि यह सिंधुद्वीप नामक राजा का पुत्र था और वेत्रवती नदी के गर्भ से उत्पन्न हुआ था।

वेत्रिक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) महाभारत के अनुसार प्राचीन काल के एक जनपद का नाम। (२) इस जनपद का निवासी। (३) द्वारपाल। संतरी।

वेत्री-संज्ञा पुं० [सं० वेत्रिन्] (१) द्वारपाल। संतरी। (२) चोबदार। असा-बरदार।

वेदंड-संज्ञा पुं० [सं०] हाथी।

वेद-संज्ञा पुं० [सं०] (१) किसी विषय का, विशेषतः धार्मिक या आध्यात्मिक विषय का, सच्चा और वास्तविक ज्ञान। (२) वृत्त। (३) वित्त। (४) यज्ञांग। (५) भारतीय आर्यों के सर्वप्रधान और सर्वमान्य धार्मिक ग्रंथ जिनकी संख्या चार है और जो ब्रह्मा के चारों मुखों से निकले हुए माने जाते हैं। आम्नाय। श्रुति।

विशेष—आरंभ में वेद केवल तीन ही थे—ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद (दे०)। इनमें से ऋग्वेद पद्य में है और यजुर्वेद गद्य में; और सामवेद में गाने योग्य गीत या साम हैं। इसी लिये प्राचीन साहित्य में "वेदत्रयी" शब्द का ही अधिक प्रयोग देखने में आता है, यहाँ तक कि मनु ने भी अपने धर्मशास्त्र में अनेक स्थानों पर "वेदत्रयी" शब्द का ही व्यवहार किया है। चौथा अथर्ववेद पीछे से वेदों में सम्मिलित हुआ था और तब से वेद चार माने जाने लगे। इस चौथे या अंतिम वेद में शांति तथा पौष्टिक अभिचार,

प्रायश्चित्त, तंत्र, मंत्र आदि विषय हैं। वेदों के तीन मुख्य भाग हैं जो संहिता, ब्राह्मण और आरण्यक या उपनिषद् कहलाते हैं। संहिता शब्द का अर्थ संग्रह है; और वेदों के संहिता भाग में स्तोत्र, प्रार्थना, मंत्र-प्रयोग, आशीर्वादात्मक सूक्त, यज्ञ-विधि से संबंध रखनेवाले मंत्र और अरिष्ट आदि की शांति के लिये प्रार्थनाएँ आदि सम्मिलित हैं। वेदों का यही अंश मंत्र भाग भी कहलाता है। ब्राह्मण भाग में एक प्रकार से बड़े बड़े गद्य ग्रंथ आते हैं जिनमें अनेक देवताओं की कथाएँ, यज्ञ संबंधी विचार और भिन्न भिन्न ऋतुओं में होनेवाले धार्मिक कृत्यों के व्यावहारिक तथा आध्यात्मिक महत्त्व का निरूपण है। इनमें कथाओं आदि का जो अंश है, वह अर्थवाद कहलाता है; और धार्मिक कृत्यों की विधियोंवाले अंश को विधि कहते हैं। वनों में रहनेवाले यति, संन्यासी आदि परमेश्वर, जगत् और मनुष्य इन तीनों के संबंध में जो विचार किया करते थे, वे उपनिषदों और आरण्यकों में संगृहीत हैं। इन्हीं में भारतवर्ष का प्राचीनतम तत्वज्ञान भरा हुआ है। यह मानों वेदों का अंतिम भाग है; और इसी लिये वेदांत कहलाता है। वेदों का प्रचार बहुत प्राचीन काल से और बहुत विस्तृत प्रदेश में रहा है; इसलिये काल-भेद, देश-भेद और व्यक्ति-भेद आदि के कारण वेदों के मंत्रों के उच्चारण आदि में अनेक पाठभेद हो गए हैं। साथ ही पाठ में कहीं कहीं कुछ न्यूनता और अधिकता भी हो गई है। इस पाठ-भेद के कारण संहिताओं को जो रूप प्राप्त हुए हैं, वे शाखा कहलाते हैं; और इस प्रकार प्रत्येक वेद की कई कई शाखाएँ हो गई हैं। चारों वेदों से निकली हुई चार विद्याएँ कही गई हैं; और जिन ग्रंथों में इन चारों विद्याओं का वर्णन है, वे उपवेद कहलाते हैं। प्रत्येक वेद का एक स्वतंत्र उपवेद माना जाता है। इसके अतिरिक्त शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, ज्योतिष और छंद ये छः वेदों के अंग या वेदांग कहलाते हैं।

वेदों का स्थान संसार के प्राचीनतम इतिहास में बहुत उच्च है। इनमें भारतीय आर्यों की आरंभिक आध्यात्मिक, सामाजिक और नैतिक सभ्यता का बहुत अच्छा दिग्दर्शन है। भारतीय आर्य्य या हिंदू लोग इन्हें अपौरुषेय और ईश्वर-कृत मानते हैं। लोगों का विश्वास है कि ब्रह्मा ने अपने चारों मुखों से वेद कहे हैं; और जिन जिन ऋषियों ने जो मंत्र सुनकर संगृहीत किए हैं, वे ऋषि उन मंत्रों के द्रष्टा हैं। प्रायः सभी संप्रदायों के लोग वेदों को परम प्रामाण्य मानते हैं। स्मृतियों और पुराणों आदि में वेद देवताओं आदि के मार्गदर्शक, नित्य, अपौरुषेय और अप्रमेय कहे गए हैं। ब्राह्मणों और उपनिषदों में तो यहाँ तक कहा गया है कि वेद सृष्टि से भी पहले के हैं और उनका निर्माण प्रजापति ने किया है। कहा जाता है कि वेदों का वर्त्तमान रूप में संग्रह और संकलन महर्षि व्यास ने किया है; और इसी लिये वे वेद-व्यास कहे जाते हैं। विष्णु और वायुपुराण में कहा है कि स्वयं विष्णु ने वेद-व्यास का रूप धारण करके वेद के चार भाग किए और क्रमशः पैल, वैशंपायन, जैमिनि और सुमंत इन चार ऋषियों को दिए। वेदांती लोग वेदों को ब्रह्म से निकला हुआ मानते हैं; और जैमिनि तथा कपिल इन्हें स्वतःसिद्ध कहते हैं। वेदों के रचना-काल के संबंध में विद्वानों में बहुत अधिक मतभेद है। मैक्समूलर आदि कई पाश्चात्य विद्वानों का मत है कि वेदों की रचना ईसा से प्रायः हजार डेढ़ हजार बरस पहले उस समय हुई थी, जिस समय आर्य्य लोग आकर पंजाब में बसे थे। परंतु लोकमान्य तिलक ने ज्योतिष संबंधी तथा अन्य कई आधारों पर वेदों का समय ईसा से लगभग ४५०० वर्ष पूर्व स्थिर किया है। बुहलर आदि विद्वानों का मत है कि आर्य्य सभ्यता ईसा से प्रायः चार हजार वर्ष के पहले की है और वैदिक साहित्य की रचना ईसा से प्रायः तीन हजार वर्ष पहले हुई है; और अधिकांश लोग यही मत मानते हैं।

वेदक-वि० [सं०] ज्ञान करानेवाला। परिचय करानेवाला।

वेदकर्त्ता-संज्ञा पुं० [सं० वेदकर्तृ] (१) वह जिसने वेदों की रचना की। वेदों का रचयिता। (२) सूर्य्य। (३) शिव। (४) विष्णु। (५) वर पक्ष के बड़े बूढ़े लोग जो विवाह हो चुकने के उपरांत वेदी पर बैठे हुए वर और वधू को आशीर्वाद देने के लिये जाते हैं।

वेदकार-संज्ञा पुं० [सं०] वेदों का रचयिता।

वेदकुंभ-संज्ञा पुं० [सं०] एक वैदिक आचार्य्य का नाम।

वेदकौलेयक-संज्ञा पुं० [सं०] शिव का एक नाम।

वेदगंगा-संज्ञा स्त्री० [सं०] दक्षिण भारत की एक नदी का नाम जो कोल्हापुर राज्य से निकलकर कृष्णा नदी में मिलती है।

वेदगर्भ-संज्ञा पुं० [सं०] (१) ब्रह्मा। (२) ब्राह्मण।

वेदगर्भा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सरस्वती नदी। (२) रेवा नदी।

वेदगर्भापुरी-संज्ञा स्त्री० [सं०] पुराणानुसार एक प्राचीन तीर्थ का नाम।

वेदगाथ-संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार एक प्राचीन ऋषि का नाम।

वेदगुप्त-संज्ञा पुं० [सं०] (१) श्रीकृष्ण का एक नाम। (२) भागवत के अनुसार पराशर के एक पुत्र का नाम।

वेदगुह्य-संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु।

वेदजननी-संज्ञा स्त्री० [सं०] सावित्री जो वेद की माता मानी जाती है।

वेदज्ञ-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जो [illegible] का ज्ञाता हो। वेद

जाननेवाला। (२) वह जो ब्रह्म ज्ञान प्राप्त कर चुका हो। ब्रह्मज्ञानी।

वेदतीर्थ-संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार एक प्राचीन तीर्थ का नाम।

वेदत्व-संज्ञा पुं० [सं०] वेद का भाव या धर्म।

वेददर्श-संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार एक प्राचीन मुनि का नाम।

वेददर्शन-संज्ञा पुं० [सं०] वह जो देखने में वेदों का स्वरूप जान पड़े।

वेददर्शी-संज्ञा पुं० [सं० वेददर्शिन्] वह जो वेदों का ज्ञाता हो।

वेददान-संज्ञा पुं० [सं०] वेद पढ़ाना।

वेददीप-संज्ञा पुं० [सं०] महीधर का किया हुआ शुक्ल यजुर्वेद का भाष्य।

वेदन-संज्ञा पुं० दे० "वेदना"।

वेदना-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) दुःख या कष्ट आदि का होनेवाला अनुभव। पीड़ा। व्यथा। तकलीफ। (२) बौद्धों के अनुसार पाँच स्कंधों में से एक स्कंध। (३) चिकित्सा। इलाज। (४) चमड़ा।

वेदनिंदक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जो वेदों की निंदा करता हो। वेदों की बुराई करनेवाला। (२) नास्तिक। (३) भगवान बुद्ध का एक नाम। (४) बौद्ध धर्म का अनुयायी।

वेदनीय-वि० [सं०] (१) जानने योग्य। (२) कष्ट-दायक। जो वेदना उत्पन्न करे।

वेदपारग-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जो वेदों का ज्ञाता हो। (२) वह जो वैदिक कर्मों का ज्ञाता हो।

वेदफल-संज्ञा पुं० [सं०] वह फल जो वैदिक कर्म करने से प्राप्त होता है।

वेदबाहु-संज्ञा पुं० [सं०] (१) श्रीकृष्ण का एक नाम। (२) पुलस्त्य का एक नाम।

वेदबीज-संज्ञा पुं० [सं०] श्रीकृष्ण।

वेदभू-संज्ञा पुं० [सं०] महाभारत के अनुसार देवताओं के एक गण का नाम।

वेदभृत्-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन ऋषि का नाम।

वेदमंत्र-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वेदों में आए हुए मंत्र। (२) पुराणानुसार एक जनपद का नाम। (३) इस जनपद का निवासी।

वेदमाता-संज्ञा स्त्री० [सं० वेदमातृ] (१) गायत्री। सावित्री। (२) दुर्गा। (३) सरस्वती।

वेदमातृका-संज्ञा स्त्री० [सं०] सावित्री।

वेदमित्र-संज्ञा पुं० [सं०] एक वैदिक आचार्य्य का नाम।

वेदमुंड-संज्ञा पुं० [सं०] एक असुर का नाम।

वेदमूर्त्ति-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जो वेदों का बहुत बड़ा ज्ञाता हो। (२) सूर्य्य।

वेदयज्ञ-संज्ञा पुं० [सं०] वेद पढ़ना। वेद-पाठ।

वेदरहस्य-संज्ञा पुं० [सं०] उपनिषद्।

वेदवती-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) राजा कुशध्वज की कन्या का नाम। कहते हैं कि यही दूसरे जन्म में सीता हुई थीं। (२) पुराणानुसार पारियात्र पर्वत की एक नदी का नाम। (३) अप्सरा। (४) दक्षिण भारत की एक नदी का नाम।

वेदवदन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) ब्रह्मा। (२) व्याकरण।

वेदवाक्य-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वेद में का कोई वाक्य। (२) ऐसी बात जो पूर्ण रूप से प्रामाणिक हो और जिसका खंडन न हो सकता हो।

वेदवादी-संज्ञा पुं० [सं० वेदवादिन्] वह जो वेदों का अच्छा ज्ञाता हो।

वेदवास-संज्ञा पुं० [सं०] ब्राह्मण।

वेदवाह-संज्ञा पुं० [सं०] वह जो वेदों का ज्ञाता हो।

वेदवाहन-संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य्य।

वेदविद्-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जो वेदों का ज्ञाता हो। वेदज्ञ। (२) विष्णु का एक नाम।

वेदवृद्ध-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन आचार्य्य का नाम।

वेदवैनाशिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक नदी का नाम।

वेदव्यास-संज्ञा पुं० दे० "व्यास" (१)।

वेदव्रत-संज्ञा पुं० [सं०] वह जो वेदों का अध्ययन करता हो।

वेदशिर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) भागवत के अनुसार कृशाश्व के एक पुत्र का नाम। (२) पुराणानुसार एक प्रकार का अस्त्र।
संज्ञा पुं० [सं० वेदशिरस्] पुराणानुसार मार्कंडेय के एक पुत्र का नाम जो मूर्द्धन्या के गर्भ से उत्पन्न हुआ था। कहते हैं कि भार्गव लोगों का मूल पुरुष यही था।

वेदशीर्ष-संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार एक पर्वत का नाम।

वेदश्रवा-संज्ञा पुं० [सं० वेदश्रवस्] एक प्राचीन ऋषि का नाम।

वेदश्री-संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार एक प्राचीन ऋषि का नाम।

वेदश्रुत-संज्ञा पुं० [सं०] भागवत के अनुसार वशिष्ठ के एक पुत्र का नाम।

वेदश्रुति-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्राचीन नदी का नाम जिसका उल्लेख महाभारत में है।

वेदसार-संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु।

वेदसिनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] पुराणानुसार एक नदी का नाम।

वेदस्पर्श-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन वैदिक आचार्य्य का नाम।

वेदस्मृता-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्राचीन नदी का नाम जिसका उल्लेख महाभारत में है।

वेदस्मृति-संज्ञा स्त्री० [सं०] वेदस्मृता नदी का एक नाम।

वेदांग-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वेदों के अंग या शास्त्र जो छः हैं और जिनके नाम इस प्रकार हैं—शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, ज्योतिष और छंद । इनमें से व्याकरण को लोग वेदों का मुख, शिक्षा को नाक, निरुक्त को कान, ज्योतिष को आँख, कल्प को हाथ और छंद को पैर मानते हैं । (२) सूर्य्य का एक नाम । (३) बारह आदित्यों में से एक आदित्य ।

वेदांत-संज्ञा पुं० [सं०] (१) उपनिषद् और आरण्यक आदि वेद के अंतिम भाग जिनमें आत्मा, परमात्मा, जगत् आदि के संबंध में निरूपण है । ब्रह्म-विद्या । अध्यात्म । ज्ञानकांड । (२) छः दर्शनों में से प्रधान दर्शन जिसमें चैतन्य या ब्रह्म ही एक मात्र पारमार्थिक सत्ता स्वीकार किया गया है; जड़ जगत् और जीव कोई अतिरिक्त या अन्य पदार्थ नहीं माने गए हैं । उत्तर मीमांसा । अद्वैतवाद

विशेष—यद्यपि इस सिद्धांत का आभास वेद के मंत्र भाग में कहीं कहीं पाया जाता है, पर इसका आधार उपनिषद् ही हैं जिनमें जीव, जगत् और ब्रह्म आदि का निरूपण है । उपनिषदों में जिस प्रकार 'अहं ब्रह्मास्मि', 'तत्वमसि' आदि जीवात्मा और परमात्मा की एकता प्रतिपादित करनेवाले महावाक्य हैं, उसी प्रकार पंचमहाभूतों में से पृथ्वी, जल और अग्नि ब्रह्म के मूर्त्त रूप तथा वायु और आकाश अमूर्त्त रूप कहे गए हैं । इस प्रकार उनमें जीवात्मा और जड़ जगत् दोनों का समावेश ब्रह्म के भीतर मिलता है जो अद्वैतवाद का आधार है। आगे चलकर उपनिषद् की इस ब्रह्म विद्या का दार्शनिक ढंग से निरूपण महर्षि बादरायण के 'ब्रह्मसूत्रों' में हुआ है, जिन पर कई भाष्य भिन्न भिन्न आचार्य्यों ने अपने अपने मत के अनुसार रचे । तीन भाष्य मुख्य हैं—शंकराचार्य्य का (शारीरक), रामानुज स्वामी का और वल्लभाचार्य्य का । इनमें से शंकर का भाष्य ही सब से प्रसिद्ध और चिन्तन-पद्धति में बहुत आगे बढ़ा हुआ है । अतः 'वेदांत' शब्द से साधारणतः शंकर का अद्वैतवाद ही समझा जाता है । शेष दो भाष्य साम्प्रदायिक माने जाते हैं ।

जगत्, जीव और ब्रह्म या परमात्मा इन तीनों वस्तुओं के स्वरूप तथा इनके पारस्परिक संबंध का निर्णय ही वेदांत शास्त्र का विषय है । न्याय और वैशेषिक ने ईश्वर, जीव और जगत् (या जगत् के मूल-द्रव्य परमाणु) ये तीन तत्व मानकर ईश्वर को जगत् का कर्त्ता ठहराया है, जो सर्वसाधारण की स्थूल भावना के अनुकूल है । वैशेषिक के अनुसार जगत् का मूल रूप परमाणु हैं जो नित्य हैं और जिनके ईश्वर-प्रेरित संयोग से सृष्टि होती है । इसके आगे बढ़कर सांख्य ने दो ही नित्य तत्व स्थिर किए—पुरुष (आत्मा) और प्रकृति; अर्थात् एक ओर असंख्य चेतन जीवात्माएँ और दूसरी ओर जड़ जगत् का अव्यक्त मूल । ईश्वर या परमात्मा का समावेश सांख्य-पद्धति में नहीं है । सृष्टि के विकास की सूक्ष्म तात्विक विवेचना सांख्य ने ही की है । किस प्रकार एक अव्यक्त प्रकृति से क्रमशः आपसे आप जगत् का विकास हुआ, इसका पूरा ब्योरा उसमें बताया गया है; और जगत् का कोई कर्त्ता है, नैयायिकों के इस सिद्धांत का खण्डन किया गया है । पुरुष या आत्मा केवल द्रष्टा है, कर्त्ता नहीं । इसी प्रकार प्रकृति जड़ और क्रियामयी है । एक लँगड़ा है, दूसरी अंधी । असंख्य पुरुषों के संयोग या सान्निध्य से ही प्रकृति सृष्टि-क्रिया में तत्पर हुआ करती है ।

वेदांत ने और आगे बढ़कर प्रकृति तथा असंख्य पुरुषों का एक ही परम तत्व ब्रह्म में अविभक्त रूप से समावेश करके जड़ चेतन के द्वैत के स्थान पर अद्वैत की स्थापना की । वेदांत ने सांख्यों के अनेक पुरुषों का खंडन किया और चेतन तत्व को एक और अविच्छिन्न सिद्ध करते हुए बताया कि प्रकृति या माया की 'अहंकार' गुण-रूपी उपाधि से ही एक के स्थान पर अनेक पुरुषों या आत्माओं की प्रतीति होती है । यह अनेकता माया-जन्य है । सांख्यों ने पुरुष और प्रकृति के संयोग से जो सृष्टि की उत्पत्ति कही है, वह भी असंगत है; क्योंकि यह संयोग या तो सत्य हो सकता है अथवा मिथ्या । यदि सत्य है, तो नित्य है; अतः कभी टूट नहीं सकता । इस दशा में आत्मा कभी मुक्त हो ही नहीं सकती । इसी प्रकार की युक्तियों से पुरुष और प्रकृति के द्वैत को न मानकर वेदांत ने उन्हें एक ही परम तत्व ब्रह्म की विभूतियाँ बताया । वेदांत के अनुसार ब्रह्म जगत् का निमित्त और उपादान दोनों है ।

नामरूपात्मक जगत् के मूल में आधारभूत होकर रहनेवाले इस नित्य और निर्विकार तत्व ब्रह्म का स्वरूप कैसा हो सकता है, इसका भी निरूपण वेदांत ने किया है। जगत् में जो नाना दृश्य दिखाई पड़ते हैं, वे सब परिणामी और अनित्य हैं । वे बदलते रहते हैं, पर उनका ज्ञान करनेवाला आत्मा या द्रष्टा सदा वही रहता है । यदि ऐसा न होता तो भूत काल में अनुभव की हुई बात का वर्तमान काल में अनुभूत विषय के साथ जो संबंध जोड़ा जाता है, वह असंभव होता (पंचदशी) । इसी से ब्रह्म का स्वरूप भी ऐसा ही होना चाहिए, अर्थात् ब्रह्म चित्स्वरूप या आत्मस्वरूप है । नाना ज्ञेय पदार्थ भी ज्ञाता के ही सगुण, सोपाधि या मायात्मक रूप हैं, यह निश्चित करके ज्ञाता और ज्ञेय का द्वैत वेदांत ने हटा दिया है । ब्रह्मस्वरूप का विवेचन वेदांत के पिछले ग्रंथों में ब्योरे के साथ हुआ है ।

जगत् और सृष्टि के संबंध में वेदांतियों ने नैयायिकों के 'आरंभवाद' (ईश्वर सृष्टि उत्पन्न करता है) और सांख्यों के 'परिणामवाद' (सृष्टि का विकास उत्तरोत्तर विकार या परिणाम द्वारा अव्यक्त प्रकृति से आपसे आप होता है) के स्थान पर 'विवर्तवाद' की स्थापना की है जिसके अनुसार जगत् ब्रह्म का विवर्त या कल्पित रूप है। रस्सी को यदि हम सर्प समझें तो रस्सी सत्य वस्तु है और सर्प उसका विवर्त या भ्रांतिजन्य प्रतीति है। इसी प्रकार ब्रह्म तो नित्य और वास्तविक सत्ता है और नामरूपात्मक जगत् उसका विवर्त है। यह विवर्त अध्यास द्वारा होता है। जो नामरूपात्मक दृश्य हम देखते हैं, वह न तो ब्रह्म का वास्तव स्वरूप ही है, न कार्य्य या परिणाम ही, क्योंकि ब्रह्म निर्विकार और अपरिणामी है। अध्यास के संबंध में कहा जा सकता है कि सर्प कोई अलग पदार्थ है, तब तो उसका आरोप होता है। अतः इस विषय को और स्पष्ट करने के लिये 'दृष्टि-सृष्टि-वाद' उपस्थित किया जाता है जिसके अनुसार माया या नामरूप मन की वृत्ति हैं। इनकी सृष्टि मन ही करता है और मन ही देखता है। ये नामरूप उसी प्रकार मन या वृत्तियों के बाहर की कोई वस्तु नहीं हैं, जिस प्रकार जड़ चित् के बाहर की कोई वस्तु नहीं है। इन वृत्तियों का दमन ही मोक्ष है।

इन दोनों वादों में कुछ त्रुटि देखकर कुछ वेदांती 'अवच्छेदवाद' का आश्रय लेते हैं। वे कहते हैं कि ब्रह्म के अतिरिक्त जगत् की जो प्रतीति होती है, वह एकरस या अनवच्छिन्न सत्ता के भीतर माया द्वारा अवच्छेद या परिमिति के आरोप के कारण होती है। कुछ अन्य वेदांती इन तीनों वादों के स्थान पर 'बिंब-प्रतिबिंब-वाद' उपस्थित करते हैं और कहते हैं कि ब्रह्म प्रकृति या माया के बीच अनेक प्रकार से प्रतिबिंबित होता है जिससे नामरूपात्मक दृश्यों की प्रतीति होती है। अंतिम वाद 'अजातवाद' है जिसे 'प्रौढ़िवाद' भी कहते हैं। यह सब प्रकार की उत्पत्ति को— चाहे वह विवर्त के रूप में कही जाय चाहे दृष्टिसृष्टि या अवच्छेद या प्रतिबिंब के रूप में—अस्वीकार करता है और कहता है कि जो जैसा है, वह वैसा ही है और सब ब्रह्म है। ब्रह्म अनिर्वचनीय है, उसका वर्णन शब्दों द्वारा हो ही नहीं सकता; क्योंकि हमारे पास जो भाषा है, वह द्वैत ही की है, अर्थात् जो कुछ हम कहते हैं, वह भेद के आधार पर ही।

यद्यपि ब्रह्म का वास्तविक या पारमार्थिक रूप अव्यक्त, निर्गुण और निर्विशेष है; पर व्यक्त और सगुण रूप भी उसके बाहर नहीं है। पंचदशी में इन सगुण रूपों का विभेद प्रतिबिंब-वाद के शब्दों में इस प्रकार समझाया गया है। रजोगुण की प्रवृत्ति से प्रकृति दो रूपों में विभक्त होती है— सत्व-प्रधान और तमःप्रधान। सत्वप्रधान के भी दो रूप हो जाते हैं—शुद्ध सत्व (जिसमें सत्वगुण पूर्ण हो) और अशुद्ध सत्व (जिसमें सत्व अंशतः हो)। प्रकृति के इन्हीं भेदों में प्रतिबिंबित होने के कारण ब्रह्म को 'जीव' कहते हैं।

वेदांत या अद्वैतवाद से साधारणतः शंकराचार्य प्रतिपादित अद्वैतवाद लिया जाता है जिसमें ब्रह्म स्वगत, सजातीय और विजातीय तीनों भेदों से परे कहा गया है। पर जैसा ऊपर कहा जा चुका है, बादरायण के ब्रह्मसूत्र पर रामानुजाचार्य और वल्लभाचार्य के भाष्य भी हैं। रामानुज के अद्वैतवाद को 'विशिष्टाद्वैत' कहते हैं; क्योंकि उसमें ब्रह्म को चित् और अचित् इन दो पक्षों से युक्त या विशिष्ट कहा है। ब्रह्म के इसी सूक्ष्म चित् और सूक्ष्म अचित् से स्थूल चित् (जीव) और स्थूल अचित् (जड़) उत्पन्न हुए। अतः रामानुज के अनुसार ब्रह्म केवल निमित्त कारण है; उपादान हैं जड़ (स्थूल अचित्) और जीव (स्थूल चित्)। इस मत के अनुसार जीव को ब्रह्म का अंश कह सकते हैं, पर शंकर मत से नहीं; क्योंकि उसमें ब्रह्म सब प्रकार के भेदों से परे कहा गया है।

वल्लभाचार्य्य जी का अद्वैत 'शुद्धाद्वैत' कहलाता है; क्योंकि उसमें रामानुज-कृत दो पक्षों की विशिष्टता हटाकर अद्वैतवाद शुद्ध किया गया है। इस मत के अनुसार सत्, चित् और आनन्दस्वरूप ब्रह्म अपने इच्छानुसार इन तीनों स्वरूपों का आविर्भाव करता रहता है। जड़ जगत् भी ब्रह्म ही है, पर अपने चित् और आनन्द स्वरूपों का पूर्ण तिरोभाव किए हुए तथा सत् स्वरूप का कुछ अंशतः आविर्भाव किए हुए है। चेतन जगत् भी ब्रह्म ही है जिसमें सत्, चित् और आनन्द इन तीनों स्वरूपों का कुछ आविर्भाव और कुछ तिरोभाव रहता है। माया ब्रह्म ही की शक्ति है जो उसी की इच्छा से विभक्त होती है; अतः मायात्मक जगत् मिथ्या नहीं है। जीव अपने शुद्ध ब्रह्मस्वरूप को तभी प्राप्त करता है जब आविर्भाव और तिरोभाव दोनों मिट जाते हैं; और यह बात केवल ईश्वर के अनुग्रह से ही, जिसे 'पुष्टि' कहते हैं, हो सकती है।

रामानुज और वल्लभाचार्य केवल दार्शनिक ही न थे, भक्तिमार्गी भी थे।

वेदांतसूत्र—संज्ञा पुं॰ [सं॰] महर्षि बादरायण कृत सूत्र जो वेदांत शास्त्र के मूल माने जाते हैं। वि॰ दे॰ "वेदांत"।

वेदांती—संज्ञा पुं॰ [सं॰ वेदांतिन्] वह जो वेदांत का अच्छा ज्ञाता हो। वेदांत का पूरा पंडित। ब्रह्मवादी।

वेदाग्रणी—संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] सरस्वती।

वेदात्मा—संज्ञा पुं॰ [सं॰ वेदात्मन्] (1) विष्णु। (2) सूर्य।

वेदाद्रि—संज्ञा पुं॰ [सं॰] प्रणव या ओंकार का मंत्र।

वेदादिबीज-संज्ञा पुं० [सं०] प्रणव या ओंकार का मंत्र ।
वेदाधिदेव-संज्ञा पुं० [सं०] ब्राह्मण ।
वेदाधिप-संज्ञा पुं० [सं०] चारों वेदों के अधिपति ग्रह जो इस प्रकार हैं—ऋग्वेद के अधिपति बृहस्पति, यजुर्वेद के शुक्र, सामवेद के मंगल और अथर्ववेद के बुध ।
वेदाध्यक्ष-संज्ञा पुं० [सं०] श्रीकृष्ण का एक नाम ।
वेदार-संज्ञा पुं० [सं०] गिरगिट ।
वेदाश्व-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्राचीन नदी का नाम जिसका उल्लेख महाभारत में है ।
वेदि-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) यज्ञ कार्य्य के लिये साफ करके तैयार की हुई भूमि । वेदी । (२) किसी शुभ कार्य्य के लिये बनाकर तैयार की हुई भूमि । (३) उँगली की एक प्रकार की मुद्रा । (४) अंगद्दा । (५) वह अँगूठी जिस पर किसी का नाम अंकित हो ।
वेदिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) किसी शुभ कार्य्य के लिये साफ करके तैयार की हुई भूमि । वेदी । (२) जैन पुराणों के अनुसार एक नदी का नाम ।
वेदिजा-संज्ञा स्त्री० [सं०] द्रौपदी का एक नाम ।
वेदित-वि० [सं०] (१) जो कुछ बतलाया या सूचित किया गया हो । निवेदित । (२) जो देखा गया हो ।
वेदितव्य-वि० [सं०] जो जानने के योग्य हो । ज्ञातव्य ।
वेदित्व-संज्ञा पुं० [सं०] विदित होने का भाव । ज्ञान ।
वेदिष्ठ-वि० [सं०] जो सब बातें जानता हो । सर्वज्ञ ।
वेदी-संज्ञा पुं० [सं० वेदिन्] [स्त्री० वेदिनी] (१) पंडित । विद्वान् । (२) ज्ञाता । जानकार । (३) वह जो विवाद करता हो । (४) ब्रह्म ।
संज्ञा स्त्री० (१) किसी शुभ कार्य्य के लिये, विशेषतः धार्मिक कार्य के लिये तैयार की हुई ऊँची भूमि । जैसे,—विवाह की वेदी, यज्ञ की वेदी । (२) सरस्वती ।
वेदीतीर्थ-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन तीर्थ का नाम जिसका उल्लेख महाभारत में है ।
वेदीश-संज्ञा पुं० [सं०] वेदों के स्वामी, ब्रह्मा ।
वेदुक-वि० [सं०] (१) जाननेवाला । ज्ञाता । (२) प्राप्त करनेवाला । पानेवाला । (३) जो कुछ मिला हो । प्राप्त ।
वेदेश्वर-संज्ञा पुं० [सं०] वेदों के स्वामी, ब्रह्मा ।
वेदोदय-संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य्य ।
वेदोपकरण-संज्ञा पुं० [सं०] वेदांग ।
वेदोपनिषद्-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक उपनिषद् का नाम ।
वेद्धव्य-वि० [सं०] जो वेधने या छेदने के योग्य हो । वेधा जाने के योग्य । वेध्य ।
वेद्य-वि० [सं०] (१) जो जानने या समझने के योग्य हो । (२) जो कहने के योग्य हो । (३) जो स्तुति करने के योग्य हो । (४) जो प्राप्त करने के योग्य हो ।
वेद्यत्व-संज्ञा पुं० [सं०] ज्ञान । जानकारी ।
वेध-संज्ञा पुं० [सं०] (१) किसी नुकीली चीज से छेदने की क्रिया । बेधना । विद्ध करना । (२) मंत्रों आदि की सहायता से ग्रहों, नक्षत्रों और तारों आदि को देखना ।
यौ०—वेधशाला ।
(३) ज्योतिष के ग्रहों का किसी ऐसे स्थान में पहुँचना जहाँ से उनका किसी दूसरे ग्रह में सामना होता हो । जैसे,—युतवेध, पताकी वेध । (४) गहरापन । गंभीरता ।
संज्ञा पुं० [सं० वेधस्] (१) ब्रह्मा । (२) विष्णु । (३) शिव । महादेव । (४) सूर्य्य । (५) पंडित । विद्वान् । (६) सफेद मदार । (७) दक्ष आदि प्रजापति ।
वेधक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वेध करनेवाला । (२) वह जो मणियों आदि को वेधकर अपनी जीविका चलाता हो । (३) धनियाँ । (४) कपूर । (५) अम्लबेंत ।
वेधनिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह औजार जिससे मणियों आदि में छेद करते हों ।
वेधनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह औजार जिससे मणियों आदि में छेद करते हों । वेधनिका । (२) हाथी का अंकुश ।
वेधमुख्य-संज्ञा पुं० [सं०] कचूर ।
वेधमुख्यक-संज्ञा पुं० [सं०] हलदी का पौधा ।
वेधमुख्या-संज्ञा स्त्री० [सं०] कस्तूरी ।
वेधशाला-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्थान जहाँ ग्रहों और नक्षत्रों आदि का वेध करने के यंत्र आदि रखे हों । वह स्थान जहाँ नक्षत्रों और तारों आदि को देखने और उनकी दूरी, गति आदि जानने के यंत्र हों ।
वेधस-संज्ञा पुं० [सं०] हथेली के अँगूठे की जड़ के पास का स्थान जिसे ब्रह्मतीर्थ भी कहते हैं । (आचमन के लिये इसी गड्ढे में जल लेने का विधान है ।)
वेधसी-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्राचीन तीर्थ का नाम ।
वेधा-संज्ञा पुं० [सं० वेधस्] (१) ब्रह्मा । उ०—सहस अब्द पीते तब वेधा । वरं मूँदि भाखेउ अति मेधा ।—गिरधर । (२) विष्णु । (३) शिव । (४) सूर्य । (५) पंडित । (६) सफेद मदार । (७) दक्ष आदि प्रजापति । (८) एक यादव का नाम जो अनंद या अनंत का पुत्र था ।
वेधालय-संज्ञा पुं० दे० "वेधशाला" ।
वेधित-वि० [सं०] जो बेधा गया हो । जिसमें छेद किया गया हो । बिंधा हुआ ।
वेधिनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) जोंक । (२) मेथी ।
वि० वेधनेवाली । छेदनेवाली ।

वेधी–संज्ञा पुं० [सं० वेधिन्] [स्त्री० वेधिनी] (१) वह जो वेध करता हो। वेध करनेवाला। (२) अम्लबेंत।
वेध्य–वि० [सं०] (१) जिसे वेध किया जाय। (२) जो वेध करने के योग्य हो।
वेन्ना–संज्ञा स्त्री० [सं०] एक पवित्र नदी। (महाभारत)
वेन्य–संज्ञा पुं० दे० "वेन"।
वि० सुंदर। खूबसूरत।
वेपथु–संज्ञा पुं० [सं०] काँपने की क्रिया। कँपकँपी। कंप।
वेपन–संज्ञा पुं० [सं०] (१) काँपना। कंप। (२) वात रोग।
वेमक–संज्ञा पुं० [सं०] एक स्वर्गीय ऋषि।
वेर–संज्ञा पुं० [सं०] (१) शरीर। देह। बदन। (२) कुंकुम। केसर।
वेरक–संज्ञा पुं० [सं०] कपूर।
वेरट–संज्ञा पुं० [सं०] बेर नामक फल।
वि० (१) मिलाया हुआ। मिश्रित। (२) नीच।
वेल–संज्ञा पुं० [सं०] उपवन। बाग।
वेलन–संज्ञा पुं० [सं०] हींग।
वेला–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) काल। समय। वक्त। (२) समय का एक विभाग जो दिन और रात का चौबीसवाँ भाग होता है। कुछ लोग दिनमान के आठवें भाग को भी वेला मानते हैं। (३) मर्यादा। (४) समुद्र का किनारा। (५) समुद्र की लहर। (६) वाक्। वाणी। (७) मसूढ़ा। (८) भोजन। खाना। (९) रोग। बीमारी।
वेलाकूल–संज्ञा पुं० [सं०] ताम्रलिप्त देश का एक नाम।
वेलाज्वर–संज्ञा पुं० [सं०] मरने के समय आनेवाला ज्वर।
वेलाधिप–संज्ञा पुं० [सं०] फलित ज्योतिष में दिनमान के आठवें भाग या वेला के अधिपति देवता।
विशेष—रवि, शुक, बुध, चंद्र, शनि, बृहस्पति और मंगल ये क्रमशः वेलाधिप होते हैं। जिस दिन जो वार होता है, उस दिन की पहली वेला का वेलाधिप उसी वार का ग्रह होता है; और फिर पीछे की वेलाओं के अधिपति उक्त क्रम से शेष ग्रह होते हैं। जैसे,—रविवार की पहली वेला के वेलाधिप रवि, दूसरी के शुक्र, तीसरी के बुध, चौथी के चंद्र आदि होंगे। इसी प्रकार बुधवार की पहली वेला के वेलाधिप बुध, दूसरी के चंद्र, तीसरी के शनि, चौथी के बृहस्पति आदि होंगे।
वेलायनि–संज्ञा पुं० [सं०] एक गोत्रप्रवर्त्तक ऋषि।
वेलावलि–संज्ञा स्त्री० दे० "विलावल"।
वेलावित्त–संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल के एक प्रकार के राज-कर्मचारी। (राजतरंगिणी)
वेलिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) ताम्रलिप्त का एक नाम। (२) नदी तट के आस पास का प्रदेश।
वेल्ल–संज्ञा पुं० [सं०] विड़ंग।
वेल्लगिरिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] प्रियंगु।
वेल्लज–संज्ञा पुं० [सं०] मिर्च।
वेल्लन–संज्ञा पुं० [सं०] घोड़ों का जमीन पर लोटना।
वेल्लनी–संज्ञा स्त्री० [सं०] वल्ली दूब। माला दूब।
वेल्लमव–संज्ञा पुं० [सं०] मिर्च।
वेल्लरी–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) काला विधारा। (२) माला दूब।
वेल्लहल–संज्ञा पुं० [सं०] लंपट। दुराचारी। बदचलन।
वेल्लि–संज्ञा स्त्री० [सं०] लता। बेल।
वेल्लिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] पोई का साग। उपोदिका।
वेल्लिकाख्या–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) बेल का पेड़। (२) बेल के फल का गूदा।
वेल्लितक–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का साँप।
वेल्ली–संज्ञा स्त्री० [सं० वेल्लि] बेल। लता।
वेश–संज्ञा पुं० [सं०] (१) कपड़े लत्ते और गहने आदि पहन कर अपने आपको सजाना। (२) किसी के कपड़े लत्ते आदि पहनने का ढंग।
मुहा०—किसी का वेश धारण करना = किसी के ढंग के कपड़े लत्ते पहनना। किसी के रूप रंग और पहनावे आदि की नकल करना। जैसे,—(नटों आदि का) राजा का वेश धारण करना।
(३) पहनने के वस्त्र। पोशाक। जैसे,—अब आप अपना वेश उतारिए।
यौ०—वेशभूषा = पहनने के कपड़े आदि। पोशाक।
(४) कपड़े का बना हुआ घर। खेमा। तंबू। (५) घर। मकान। (६) वेश्या का घर। (७) दे० "प्रवेश"।
वेशकुल–संज्ञा पुं० [सं०] (१) कुलटा स्त्री। दुश्चरित्रा स्त्री। (२) वेश्या। रंडी।
वेशता–संज्ञा स्त्री० [सं०] वेश का भाव या धर्म। वेशत्व।
वेशत्व–संज्ञा पुं० [सं०] वेश का भाव या धर्म। वेशता।
वेशधर–संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जिसने किसी दूसरे का वेश धारण किया हो। वह जो भेस बदले हुए हो। छद्मवेशी। (२) जैनों का एक संप्रदाय।
वेशधारी–संज्ञा पुं० [सं० वेशधारिन्] (१) वह जिसने वेश धारण किया हो। वेश धारण करनेवाला। (२) वह जो तपस्वी न हो, पर तपस्वियों का सा वेश धारण करता हो। (३) पुराणानुसार एक संकर जाति।
वेशन–संज्ञा पुं० [सं०] प्रवेश करना।
वेशनद–संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल की एक नदी का नाम।
वेशयुवती–संज्ञा स्त्री० [सं०] वेश्या। रंडी।
वेशवधू–संज्ञा स्त्री० [सं०] वेश्या। रंडी।

वेशवनिता-संज्ञा स्त्री० [सं०] वेश्या । रंडी ।
वेशवार-संज्ञा पुं० [सं०] नमक, मिर्च, धनिया आदि मसाले ।
वेशवास-संज्ञा पुं० [सं०] वेश्या का घर । रंडी का मकान ।
वेशस्त्री-संज्ञा स्त्री० [सं०] वेश्या । रंडी ।
वेशिक-संज्ञा पुं० [सं०] शिल्पविद्या । हाथ की कारीगरी ।
वेशी-संज्ञा पुं० [सं० वेशिन्] वह जो वेश धारण किए हो । वेश धारण करनेवाला ।
वेशीजाता-संज्ञा स्त्री० [सं०] पुत्रदात्री नाम की लता ।
वेश्म-संज्ञा पुं० [सं०] घर । मकान ।
वेश्मकलिंग-संज्ञा पुं० [सं०] चटक पक्षी । गौरैया ।
वेश्मकूल-संज्ञा पुं० [सं०] चिचिंडा । चिचड़ा ।
वेश्मनकुल-संज्ञा पुं० [सं०] छछूँदर ।
वेश्मभू-संज्ञा पुं० [सं०] वह स्थान जो मकान बनाने के लिये उपयुक्त हो; अथवा जिस पर मकान बनाया जाय ।
वेश्मवास-संज्ञा पुं० [सं०] रहने का घर । मकान ।
वेश्मस्त्री-संज्ञा स्त्री० [सं०] वेश्या । रंडी ।
वेश्मांत-संज्ञा पुं० [सं०] घर के अंदर का वह भाग जिसमें स्त्रियाँ रहती हैं । अंतःपुर । जनानखाना ।
वेश्य-संज्ञा पुं० [सं०] वेश्या के रहने का मकान । रंडी का घर ।
वेश्यांगना-संज्ञा स्त्री० [सं०] कुलटा स्त्री । बदचलन औरत ।
वेश्या-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्त्री जो नाचती गाती और धन लेकर लोगों के साथ संभोग करती हो । गाने और कसब कमानेवाली औरत । रंडी ।
पर्य्या०—वारस्त्री । गणिका । रूपाजीवा । क्षुद्रा । शूला । वारविलासिनी । लंजिका । कुंभा । कामरेखा । पण्यांगना । वारवधू । भोग्या । स्मरवीथिका ।
वेश्याचार्य्य-संज्ञा पुं० [सं०] वह जो वेश्याओं के साथ रहता और उन्हें परपुरुषों से मिलाता हो । रंडियों का दलाल । भड़ुआ ।
वेश्वर-संज्ञा पुं० [सं०] गदहा ।
वेष-संज्ञा पुं० [सं०] (१) दे० "वेश" । (२) रंगमंच में पीछे का वह स्थान जहाँ नट लोग वेश रचना करते हैं । नेपथ्य । (३) वेश्या का घर । रंडी का मकान । (४) कर्म । (५) कार्य-परिचालन । काम चलाना ।
वेषकार-संज्ञा पुं० [सं०] किसी चीज को लपेटने का कपड़ा । वेष्टन । बेठन ।
वेषण-संज्ञा पुं० [सं०] (१) कासमर्द नाम का क्षुप । कसौंदी । (२) परिचर्या । सेवा ।
वेषणा-संज्ञा स्त्री० [सं०] धनियाँ ।
वेषधारी-संज्ञा पुं० दे० "वेशधारी" ।
वेषवार-संज्ञा पुं० [सं०] नमक, मिर्च, धनियाँ आदि मसाले ।
वेषश्री-वि० [सं०] (वेदमंत्र) जिसमें सुंदर और ललित वाक्य हों ।
वेषिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] चमेली ।
वेषी-संज्ञा पुं० दे० "वेशी" ।
वेष्ट-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वृक्ष का किसी प्रकार का निर्य्यास । (२) गोंद । (३) धूप का पेड़ । धूपसरल । (४) श्रीवेष्ट । गंधा बिरोजा । (५) सुश्रुत के अनुसार मुँह में होनेवाला एक प्रकार का रोग । (६) दे० "वेष्टन" ।
वेष्टक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) गंधाबिरोजा । श्रीवेष्ट । (२) गोंद । (३) वृक्ष का किसी प्रकार का निर्य्यास । (४) सफेद कुम्हड़ा । पेठा । (५) कुम्हड़ा । (६) छाल । वल्कल । (७) उष्णीष । पगड़ी । (८) प्राचीर । परकोटा । चहारदीवारी । वि० चारों ओर से ढकने या आवृत करनेवाला । वेष्टन करनेवाला ।
वेष्टकापथ-संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार एक प्राचीन शिव-स्थान का नाम ।
वेष्टन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह कपड़ा आदि जिससे कोई चीज लपेटी जाय । बेठन । (२) घेरने या लपेटने की क्रिया या भाव । (३) मुकुट । (४) उष्णीष । पगड़ी । गुग्गुल । (५) गूगल । (६) कान का छेद ।
वेष्टनक-संज्ञा पुं० [सं०] स्त्री-प्रसंग करने का एक प्रकार । एक तरह का रतिबंध ।
वेष्टनवेष्टक-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का रतिबंध ।
वेष्टवंश-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का बाँस जिसे वेउर बाँस कहते हैं । रंध्रवंश ।
वेष्टव्य-वि० [सं०] वेष्टन करने योग्य । बेठन आदि से लपेटने लायक ।
वेष्टसार-संज्ञा पुं० [सं०] (१) श्रीवेष्ट । गंधाबिरोजा । (२) धूप का पेड़ । सरलकाष्ठ । धूपसरल ।
वेष्टा-संज्ञा स्त्री० [सं०] हड़ें । हरीतकी ।
वेष्टित-वि० [सं०] (१) नदी या परकोटे आदि से चारों ओर से घिरा हुआ । (२) कपड़े आदि से लपेटा हुआ । (३) रुका हुआ । रुद्ध ।
वेसन-संज्ञा पुं० [सं०] मटर, चने आदि की दाल पीसकर तैयार किया हुआ आटा । बेसन ।
वेसर-संज्ञा पुं० [सं०] गदहा ।
वेसवार-संज्ञा पुं० [सं०] (१) पीसा हुआ जीरा, मिर्च, लौंग आदि मसाला । (२) एक प्रकार का पकाया हुआ मांस ।
विशेष—पहले हड्डियाँ आदि अलग करके खाली मांस पीस लेते हैं; और तब गुड़, घी, पीपल, मिर्च आदि मिलाकर उसे पकाते हैं । यही पका हुआ मांस वेसवार कहलाता है ।

वैंकि-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन गोत्रप्रवर्त्तक ऋषि का नाम।

वैंदवी-संज्ञा स्त्री० [सं०] प्राचीन काल की एक जाति का नाम। इस जाति के लोग बहुत युद्ध-प्रिय होते थे।

वैंध्य-वि० [सं०] (१) विंध्य प्रांत का। (२) विंध्य पर्वत का।

वैकंकत-संज्ञा पुं० दे० "विकंकत"।

वि० जो विकंकत की लकड़ी आदि से बना हो। विकंकत का।

वैकक्ष-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह हार या माला जो एक ओर कंधे पर और दूसरी ओर हाथ के नीचे रहे। जनेऊ की तरह पहना जानेवाला हार या माला। (२) इस प्रकार माला पहनने का ढंग।

वैकटिक- संज्ञा पुं० [सं०] रत्न-परीक्षक। जौहरी।

वि० विकट संबंधी। संबंधो विकट का।

वैकट्य-संज्ञा पुं० [सं०] विकट होने का भाव या धर्म। विकटता।

वैकतिक-संज्ञा पुं० [सं०] वह जो रत्नों की परीक्षा करता हो। रत्न-परीक्षक। जौहरी।

वैकथिक-संज्ञा पुं० [सं०] वह जो अपने संबंध में बहुत बढ़ा कर बातें कहा करता हो। शेखीबाज। सीटनेवाला।

वैकरंज-संज्ञा पुं० [सं०] संकर जाति का एक प्रकार का साँप। ऐसा साँप जो फनवाले और बिना फनवाले साँपों के योग से उत्पन्न हुआ हो।

वैकर्ण-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वात्स्य मुनि का एक नाम। (२) एक प्राचीन जनपद का नाम जिसका उल्लेख वेदों में है।

वैकर्णायन-संज्ञा पुं० [सं०] वह जो वैकर्ण या वात्स्य मुनि के वंश में उत्पन्न हुआ हो।

वैकर्त्तन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सूर्य्य के एक पुत्र का नाम। (२) कर्ण का एक नाम। (३) सुग्रीव के एक पूर्वज का नाम। (४) वह जो सूर्य्य वंशी हो।

वि० सूर्य संबंधी। सूर्य का।

वैकर्म्म-संज्ञा पुं० [सं०] विकर्म्म या अपकर्म्म का भाव। दुष्कृत्य।

वैकल्प-संज्ञा पुं० [सं०] विकल्प का भाव।

वैकल्पिक-वि० [सं०] (१) जो किसी एक पक्ष में हो। एकांगी। (२) जिसमें किसी प्रकार का संदेह हो। संदिग्ध। (३) जो अपने इच्छानुसार ग्रहण किया जा सके। जो चुना जा सके।

वैकल्य-संज्ञा पुं० [सं०] (१) विकल होने का भाव। विकलता। घबराहट। (२) कातरता। (३) टेढ़ापन। (४) अंगहीन होने का भाव। (५) न्यूनता। कमी। (६) अभाव। न होना।

वि० अधूरा। अपूर्ण।

वैकायन-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन गोत्रप्रवर्त्तक ऋषि का नाम।

वैकारिक-वि० [सं०] जिसमें किसी प्रकार का विकार हुआ हो। बिगड़ा हुआ। विकृत।

संज्ञा पुं० विकार। बिगाड़।

वैकार्य्य-संज्ञा पुं० [सं०] विकार का भाव या धर्म।

वि० जिसमें विकार हो सकता या होता हो। विकार के योग्य।

वैकालिक-वि० [सं०] जो अपने उपयुक्त समय पर न होकर असमय में उत्पन्न हो।

वैकुंठ-संज्ञा पुं० [सं०] (१) विष्णु का एक नाम। (२) पुराणानुसार विष्णु का धाम या स्थान। वह स्थान जहाँ भगवान् या विष्णु रहते हैं। पुराणानुसार यह धाम सत्यलोक से भी ऊपर है। यह धाम सब से श्रेष्ठ माना गया है और कहा गया है कि जिन्हें विष्णु मोक्ष देते हैं, वे इसी धाम में निवास करते हैं। यहाँ रहनेवाले न तो बुड्ढे होते हैं और न मरते हैं। (३) वैकुंठ में रहनेवाले देवता। (४) स्वर्ग। (क०) (५) इंद्र। (६) सफेद पत्तोंवाली तुलसी।

वैकुंठत्व-संज्ञा पुं० [०] वैकुण्ठ का भाव या धर्म।

वैकुंठीय-वि० [सं०] वैकुण्ठ संबंधी। वैकुण्ठ का।

वैकृत-संज्ञा पुं० [सं०] (१) विकार। खराबी। (२) बीभत्स रस। (३) बीभत्स रस का आलंबन। जैसे,—खून, गोश्त, हड्डी आदि।

वि० (१) जो विकार से उत्पन्न हुआ हो। (२) जो सहज में ठीक न हो सके। दुःसाध्य।

वैकृत ज्वर-संज्ञा पुं० [सं०] वह ज्वर जो ऋतु के अनुसार स्वाभाविक न हो, बल्कि किसी और ऋतु के अनुकूल हो।

विशेष—साधारणतः वर्षा ऋतु में वायु, शरद् ऋतु में पित्त और वसंत ऋतु में कफ कुपित होता है। यदि वर्षा ऋतु में वायु के प्रकोप से ज्वर हो, तो वह वैकृत ज्वर कहा जायगा।

वैकृतिक-वि० [सं०] नैमित्तिक।

वैकृत्य-संज्ञा पुं० [सं०] बीभत्स रस।

वैक्रमीय-वि० [सं०] विक्रम का। विक्रम संबंधी। जैसे,—वैक्रमीय संवत्।

वैक्रांत-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की मणि जिसे चुन्नी कहते हैं।

वैक्रिय-वि० [सं०] जो बिकने को हो। बेचा जाने योग्य। बिक्री का।

वैखरी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) कंठ से उत्पन्न होनेवाले स्वर का एक विशिष्ट प्रकार। ऐसा स्वर दृढ़ और गंभीर होता है

और बहुत स्पष्ट सुनाई पड़ता है। (२) वाक्-शक्ति। (३) वाग्देवी।

वैखानस-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जो वानप्रस्थ आश्रम में हो। (२) प्राचीन काल के एक प्रकार के ब्रह्मचारी या तपस्वी जो प्रायः वन में रहा करते थे।

वैखानसि-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन गोत्रप्रवर्त्तक ऋषि का नाम।

वैखानसीय-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक उपनिषद् का नाम।

वैगंधिक-संज्ञा पुं० [सं०] गंधक।

वैगलेय-संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार भूतों का एक गण।

वैगुण्य-संज्ञा पुं० [सं०] (१) गुणहीन होने का भाव। विगुणता। (२) अपराध। दोष। (३) नीचता। वाहियातपन।

वैग्रहिक-संज्ञा पुं० [सं०] विग्रह या शरीर संबंधी। शरीर का।

वैघात्य-संज्ञा पुं० [सं०] वह जो घात करने के योग्य हो। मार डालने लायक।

वैचक्षण्य-संज्ञा पुं० [सं०] विचक्षण या निपुण होने का भाव। विचक्षणता। निपुणता। होशियारी।

वैचित्य-संज्ञा पुं० [सं०] चित्त की भ्रांति। भ्रम। अन्यमनस्कता।

वैचित्र-संज्ञा पुं० [सं०] विचित्रता। विलक्षणता।

वैचित्र्य-संज्ञा पुं० [सं०] (१) विचित्र होनेका भाव। विचित्रता। विलक्षणता। (२) विभिन्नता। भेद। फर्क। (३) सुंदरता। खूबसूरती।

वैचित्र्यवीर्य्य-संज्ञा पुं० [सं०] विचित्रवीर्य्य की संतान, धृतराष्ट्र, पांडु और विदुर आदि।

वैच्युत-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन ऋषि का नाम।

वैच्युति-संज्ञा स्त्री० [सं०] विच्युत होने का कार्य्य या भाव। पतन। गिरना।

वैजनन-संज्ञा पुं० [सं०] वह मास जिसमें किसी स्त्री को संतान उत्पन्न हो। प्रसव-मास।

वैजन्य-संज्ञा पुं० [सं०] विजन होने का भाव। विजनता। एकांत।

वैजयंत-संज्ञा पुं० [सं०] (१) इंद्र की पुरी का नाम। (२) इंद्र। (३) घर। (४) अग्निमंथ नामक वृक्ष। अरणी।

वैजयंतिक-संज्ञा पुं० [सं०] वह जो पताका या झंडा उठाता हो। झंडा उठानेवाला।

वैजयंतिका-संज्ञा स्त्री० दे० "वैजयंती"।

वैजयंती-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) पताका। झंडी। (२) जयंती नामक वृक्ष। (३) एक प्रकार की माला जो पाँच रंगों की और घुटनों तक लटकती हुई होती थी। कहते हैं कि यह माला श्रीकृष्ण जी पहना करते थे।

वैजयिक-वि० [सं०] विजय संबंधी। विजय का।

वैजयी-संज्ञा पुं० दे० "विजयी"।

वैजवन-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन ऋषि जो एक वैदिक शाखा के प्रवर्त्तक थे। पैजवन। वैजन।

वैजात्य-संज्ञा पुं० [सं०] (१) विजातीय होने का भाव। (२) विलक्षणता। अद्भुतता। (३) बद-चलनी। लंपटता।

वैजिक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) आत्मा। (२) हेतु। कारण।

वि० (१) बीज संबंधी। बीज का। (२) वीर्य्य संबंधी। वीर्य्य का।

वैज्ञानिक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जो विज्ञान का अच्छा ज्ञाता हो। विज्ञान जाननेवाला। (२) निपुण। दक्ष। होशियार।

वि० विज्ञान संबंधी। विज्ञान का। जैसे,—वैज्ञानिक विवेचन, वैज्ञानिक खोज।

वैड़ालव्रत-संज्ञा पुं० [सं०] पाप और कुकर्म करते हुए भी ऊपर से साधु बने रहना।

वैड़ालव्रती-संज्ञा पुं० [सं० वैडालव्रतिन्] वह तपस्वी या साधु जो वास्तव में पापी और कुकर्मी हो। दुष्ट और नीच धर्मध्वजी।

वैडूर्य्य-संज्ञा पुं० दे० "वैदूर्य्य"।

वैण-वि० [सं०] वेणु संबंधी। बाँस का।

वैणव-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बाँस का फल। (२) बाँस का वह डंडा जो यज्ञोपवीत के समय धारण किया जाता है। (३) बंशी। वेणु।

वि० वेणु संबंधी। बाँस का।

वैणविक-संज्ञा पुं० [सं०] वह जो वेणु बजाता हो। बंशी बजानेवाला।

वैणवी-संज्ञा स्त्री० [सं०] वंशलोचन।

संज्ञा पुं० [सं० वैणविन्] (१) वह जो वेणु बजाता हो। (२) शिव का एक नाम।

वैणिक-संज्ञा पुं० [सं०] वह जो वीणा बजाता हो। बीनकार।

वैणुक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जो वेणु बजाने में चतुर हो। बंशी बजानेवाला। (२) हाथी का अंकुस।

वैणुकीय-वि० [सं०] वेणु संबंधी। वेणु का।

वैणेय-संज्ञा पुं० [सं०] वेद की एक शाखा का नाम।

वैण्य-संज्ञा पुं० [सं०] राजा वेणु के पुत्र पृथु का एक नाम।

वैतंडिक-संज्ञा पुं० [सं०] वह जो बहुत अधिक वितंडा करता हो। व्यर्थ का झगड़ा या बहस करनेवाला।

वैतंडी-संज्ञा पुं० [सं० वैतंडिन्] पुराणानुसार एक प्राचीन ऋषि का नाम।

वैतंसिक-संज्ञा पुं० [सं०] वह जो मांस बेचता हो। मांसिक। बूचड़। कसाई।

वैतथ्य-संज्ञा पुं० [सं०] विफल होने का भाव। विफलता।

वैतनिक-संज्ञा पुं० [सं०] वह जो वेतन लेकर काम करता हो। तनखाह लेकर काम करनेवाला। नौकर। भृत्य।

वैतरणी–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) एक प्रसिद्ध पौराणिक नदी जो यम के द्वार पर मानी जाती है। कहते हैं कि यह नदी बहुत तेज बहती है, इसका जल बहुत ही गरम और बदबूदार है, और उसमें हड्डियाँ, लहू तथा बाल आदि भरे हुए हैं। यह भी माना जाता है कि प्राणी को मरने पर पहले यह नदी पार करनी पड़ती है, जिसमें उसे बहुत कष्ट होता है। परंतु यदि उसने अपनी जीवितावस्था में गोदान किया हो, तो वह उसी गौ की सहायता से सहज में पार उतर जाता है। पुराणों मे लिखा है कि जब सती के वियोग में महादेवजी रोने लगे, तब उनके आँसुओं का प्रवाह देखकर देवता लोग बहुत डरे और उन्होंने शनि से प्रार्थना की कि तुम इस प्रवाह को ग्रहण करके सोख लो। शनि ने उस धारा को ग्रहण करना चाहा, पर उसे सफलता नहीं हुई। अंत में उसी धारा से यह वैतरणी नदी बनी। इसका विस्तार दो योजन माना गया है। पापियों को यह नदी पार करने में बहुत कष्ट होता है। (२) उड़ीसा की एक नदी का नाम जो बहुत पवित्र मानी जाती है।

वैतस–संज्ञा पुं० [सं०] (१) पुरुष की मूत्रेंद्रिय। लिंग। (२) अम्लवेंत।

वैतसेन–संज्ञा पुं० [सं०] राजा पुरूरवा का एक नाम जो वीतसेना के पुत्र थे।

वैताढ्य–संज्ञा पुं० [सं०] एक पर्वत का नाम।

वैतानिक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह हवन या यज्ञ आदि जो श्रौत विधानों के अनुसार हो। (२) वह अग्नि जिससे अग्निहोत्र आदि कृत्य किए जायँ।

वैताल–संज्ञा पुं० [सं०] स्तुति-पाठक। वैतालिक।

वि० वेताल संबंधी। वेताल का।

वैतालकि–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन आचार्य्य का नाम जो ऋग्वेद की एक शाखा के प्रवर्त्तक थे।

वैताल रस–संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक में एक प्रकार का रस जो गंधक, मिर्चे और हरताल आदि के योग से बनता है और जो सान्निपातिक ज्वर तथा मूर्च्छा आदि में उपयोगी माना जाता है।

वैतालिक–संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल का वह स्तुतिपाठक जो प्रातःकाल राजाओं को उनकी स्तुति करके जगाया करता था। स्तुति-पाठक।

वैताली–संज्ञा पुं० [सं० वैतालिन्] कार्त्तिकेय के एक अनुचर का नाम।

वैतालीय–संज्ञा पुं० [सं०] एक वर्णवृत्त जिसके पहले तथा तीसरे चरणों में चौदह और दूसरे तथा चौथे चरणों में सोलह मात्राएँ होती हैं।

वि० वैताल संबंधी। वैताल का।

वैतृष्ण्य–संज्ञा पुं० [सं०] तृष्णा से रहित होने का भाव।

वैदंभ–संज्ञा पुं० [सं०] शिव का एक नाम।

वैद–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन ऋषि का नाम जो विद नाम ऋषि के पुत्र थे।

वि० विद्वान् या पंडित संबंधी।

संज्ञा पुं० दे० "वैद्य"।

वैदक–संज्ञा पुं० दे० "वैद्यक"।

वैदग्ध–संज्ञा पुं० [सं०] (१) विदग्ध या पूर्ण पंडित होने का भाव। पांडित्य। विद्वत्ता। (२) कार्यकुशलता। पटुता। (३) चतुरता। चालाकी। (४) रसिकता। (५) शोभा। (६) हाव भाव।

वैदग्ध्य–संज्ञा पुं० [सं०] विदग्ध या पूर्ण पंडित होने का भाव। पांडित्य। विद्वत्ता।

वैदत–संज्ञा पुं० [सं०] वह जो किसी विषय का अच्छा ज्ञाता हो। जानकार।

वैदनृत–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का साम।

वैदर्भ–संज्ञा पुं० [सं०] (१) विदर्भ देश का राजा या शासक। (२) दमयंती के पिता भीमसेन का एक नाम। (३) रुक्मिणी के पिता भीष्मक का एक नाम। (४) वह जो बातचीत करने में बहुत चतुर हो। (५) बातचीत करने की चतुराई। वाक्-चातुरी। (६) एक रोग जिसमें मसूड़े फूल जाते हैं और उनमें पीड़ा होती है।

वि० (१) जो विदर्भ देश में उत्पन्न हुआ हो। (२) विदर्भ देश का।

वैदर्भक–संज्ञा पुं० [सं०] वह जो विदर्भ देश का निवासी हो।

वैदर्भी–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) काव्य की एक रीति। वह रीति या शैली जिसमें मधुर वर्णों के द्वारा मधुर रचना होती है। यह सब से अच्छी समझी जाती है। (२) अगस्त्य ऋषि की स्त्री का एक नाम। (३) दमयंती। (४) रुक्मिणी।

वैदल–संज्ञा पुं० [सं०] (१) मिट्टी का वह पात्र जिसमें भिखमंगे भीख माँगते हैं। (२) एक प्रकार की पीढ़ी।

वैदारिक–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का सन्निपात ज्वर। इसमें वायु का प्रकोप कम, पित्त का मध्यम और कफ का अधिक होता है; रोगी की हड्डियों और कमर में पीड़ा होती है; उसे भ्रम, क्लांति, श्वास, खाँसी और हिचकी होती है, और सारा शरीर सुन्न हो जाता है। ऐसा सन्निपात जल्दी अच्छा नहीं होता।

वैदिक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जो वेदों में बतलाए हुए कर्मकांड का अनुष्ठान करता हो। वेद में कहे हुए कृत्य करनेवाला। (२) वह जो वेदों आदि का अच्छा ज्ञाता हो। वेदों का पंडित।

वि० (१) जो वेदों में कहा गया हो। (२) वेद संबंधी। वेद का। जैसे,—वैदिक काल।

वैदिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] वनजामुन।

वैदिश-संज्ञा पुं० [सं०] वह जो विदिशा का निवासी हो।

वैदुल-संज्ञा पुं० [सं०] बेंत की जड़।

वैदुष-संज्ञा पुं० [सं०] विद्वान्। पंडित।

वैदुष्य-संज्ञा पुं० [सं०] विद्वत्ता। पांडित्य।

वैदूर्य-संज्ञा पुं० [सं०] धूमिल रंग का एक प्रकार का रत्न या बहुमूल्य पत्थर जिसे "लहसुनिया" कहते हैं। दे० "लह-सुनिया"।

विशेष—फलित ज्योतिष के अनुसार इस रत्न के अधिष्ठाता देवता केतु माने गए हैं; और कहा गया है कि जब केतु ग्रह खराब या बिगड़ा हुआ हो, तो यह रत्न धारण करना चाहिए। हमारे यहाँ इसकी गणना महारत्नों में है। सुतार, घन, अद्रच्छ, कलिल और व्यंग ये पाँच इसके गुण और कर्कर, कर्कश, त्रास, कलंक और देह ये पाँच इसके दोष कहे गए हैं। कुछ लोगों का मत है कि यह रत्न विदूर पर्वत पर होता है, इसी से वैदूर्य कहलाता है। वैद्यक के अनुसार यह अम्ल, उष्ण, कफ तथा वायु का नाशक और गुल्म तथा शूल को शांत करनेवाला है।

पर्य्या०—केतुरत्न। अभ्ररोह। विदूरात्न। विदूरज। खराब्जांकुर।

वैदेशिक-वि० [सं०] विदेश संबंधी। विदेश का।

वैदेश्य-वि० दे० "वैदेशिक"।

वैदेह-संज्ञा पुं० [सं०] (१) राजा निमि के पुत्र का नाम। कहते हैं कि जब राजा निमि निःसंतान मर गए, तब धर्म्म का लोप हो जाने के भय से ऋषियों ने अरणी से मथकर इन्हें, राज्य करने के लिये, उत्पन्न किया था। (२) वणिक्। सौदागर। (३) प्राचीन काल की एक वर्णसंकर जाति जिसका काम अंतःपुर में पहरा देना था। मनु के अनुसार इस जाति की उत्पत्ति ब्राह्मणी माता और वैश्य पिता से है।

वैदेहक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वणिक्। व्यापारी। (२) वैदेह नामक वर्णसंकर जाति।

वैदेहिक-संज्ञा पुं० दे० "वैदेह" (२) और (३)।

वैदेही-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) विदेह राजा जनक की कन्या, सीता। (२) वैदेह जाति की स्त्री। (३) रोचना। (४) पीपल। पिप्पली।

वैद्य-संज्ञा पुं० [सं०] (१) पंडित। विद्वान्। (२) वह जो आयु-र्वेद का ज्ञाता हो और उसके अनुसार रोगियों की चिकि-त्सा आदि करता हो। भिषक्। चिकित्सक। (३) वासक वृक्ष। (४) एक जाति जो प्रायः बंगाल में पाई जाती है। इस जाति के लोग अपने आप को "अंबष्ठ संतान" कहते हैं।

वि० वेद संबंधी। वेद का।

वैद्यक-संज्ञा पुं० [सं०] वह शास्त्र जिसमें रोगों के निदान और चिकित्सा आदि का विवेचन हो। चिकित्सा शास्त्र। आयु-र्वेद। वि० दे० "आयुर्वेद"।

वैद्यनाथ-संज्ञा पुं० [सं०] बंगाल का एक प्रसिद्ध तीर्थ जो संथाल परगने के अंतर्गत है। यहाँ इसी नाम का शिव का एक प्रसिद्ध मंदिर है।

वैद्यमाता-संज्ञा स्त्री० [सं० वैद्यमातृ] वासक वृक्ष। अडूसा।

वैद्यराज-संज्ञा पुं० [सं०] वह जो अच्छा वैद्य हो। वैद्यों में श्रेष्ठ।

वैद्यसिंही-संज्ञा स्त्री० [सं०] वासक वृक्ष।

वैद्या-संज्ञा स्त्री० [सं०] काकोली।

वैद्यानि-संज्ञा पुं० [सं०] वैदिक काल के एक ऋषि-पुत्र का नाम।

वैद्युत-वि० [सं०] विद्युत् संबंधी। बिजली का।

संज्ञा पुं० (१) विद्युत् का देवता। (२) पुराणानुसार शाल्म-लि द्वीप के एक वर्ष का नाम।

वैद्युतगिरि-संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार एक पर्वत का नाम।

वैद्रुम-वि० [सं०] विद्रुम संबंधी। मूँगे का।

वैध-वि० [सं०] जो विधि के अनुसार हो। कायदे या कानून के मुताबिक। ठीक। जैसे,—वैध आंदोलन। वैध हिंसा।

वैधर्म्य-संज्ञा पुं० [सं०] (१) विधर्मी होने का भाव। (२) वह जो अपने धर्म्म के अतिरिक्त अन्यान्य धर्मों के सिद्धांतों का भी अच्छा ज्ञाता हो। (३) नास्तिकता।

वैधव-संज्ञा पुं० [सं०] विधु अर्थात् चंद्रमा के पुत्र, बुध।

वैधवेय-संज्ञा पुं० [सं०] वह जो विधवा के गर्भ से उत्पन्न हुआ हो। विधवा का पुत्र।

वैधव्य-संज्ञा पुं० [सं०] विधवा होने का भाव। रँडापा।

वैधस-संज्ञा पुं० [सं०] राजा हरिश्चंद्र का एक नाम जो राजा वेधस के पुत्र थे।

वैधातनिक-संज्ञा पुं० दे० "वैधात्र"।

वैधात्र-संज्ञा पुं० [सं०] सनत्कुमार, जो विधाता के पुत्र माने जाते हैं।

वैधात्री-संज्ञा स्त्री० [सं०] ब्राह्मी नाम की जड़ी।

वैधुमाग्ना-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्राचीन नगरी का नाम जो शाल्व देश में थी।

वैधुर्य-संज्ञा पुं० [सं०] (१) विधुर होने का भाव। इताश या कातर होने का भाव। (२) भ्रम। संदेह। (३) कंपित होने का भाव।

वैधृत-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जो विधृति का पुत्र या संतान हो। (२) ग्यारहवें मन्वंतर के एक इंद्र का नाम।

वैधृतयाशिष्ठ–संज्ञा पुं० [सं०] एक साम का नाम।
वैधृति–संज्ञा पुं० [सं०] (१) ज्योतिष में विष्कंभ आदि सत्ताईस योगों में से एक योग जो अशुभ माना जाता है। इस योग में यात्रा अथवा कोई शुभ कार्य्य करना वर्जित है। (२) भागवत के अनुसार एक देवता जो विधृति के पुत्र हैं।
वैधेय–वि० [सं०] (१) विधि संबंधी। विधि का। (२) संबंधी। (३) मूर्ख। बेवकूफ। ना समझ।
वैध्यत–संज्ञा पुं० [सं०] यम के एक प्रतिहार का नाम।
वैन–संज्ञा पुं० [सं०] राजा वेन के पुत्र पृथु का एक नाम।
वैनतक–संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल का एक प्रकार का पात्र जिसमें घी रखा जाता था और जिसका व्यवहार यज्ञों में होता था।
वैनतेय–संज्ञा पुं० [सं०] (१) विनता की संतान। (२) गरुड़। (३) अरुण।
वैनतेयी–संज्ञा स्त्री० [सं०] एक वैदिक शाखा का नाम।
वैनस्य–वि० [सं०] जिसका स्वभाव विनीत हो। नम्र।
वैनद्–संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्राचीन नदी का नाम।
वैनभूत–संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्राचीन गोत्र प्रवर्त्तक ऋषि का नाम। (२) एक वैदिक शाखा का नाम।
वैनयिक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) विनय। प्रार्थना। (२) वह जो शास्त्रों आदि का अध्ययन करता हो। (३) प्राचीन काल का एक प्रकार का रथ जिसका व्यवहार युद्ध में होता था।
वि० विनय संबंधी। विनय का।
वैनायक–वि० [सं०] विनायक या गणेश संबंधी।
संज्ञा पुं० भागवत के अनुसार भूतों का एक गण।
वैनायिक–वि० [सं०] विनायक संबंधी।
संज्ञा पुं० वह जो बौद्ध धर्म का अनुयायी हो। बौद्ध।
वैनाशिक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) फलित ज्योतिष में जन्म-नक्षत्र से तेईसवाँ नक्षत्र। (२) जन्म नक्षत्र से सातवाँ, दसवाँ और अठारहवाँ नक्षत्र। ये तीनों नक्षत्र अशुभ समझे जाते हैं और निधन-तारा कहलाते हैं। इन नक्षत्रों में यात्रा करना वर्जित है। (३) बौद्ध।
वि० (१) विनाश संबंधी। (२) परतंत्र। पराधीन।
वैनीतक–संज्ञा पुं० [सं०] ऐसी सवारी जिसे कई आदमी मिलकर उठाते हों। जैसे,—डोली, पालकी, तामजाम आदि।
वैनेय–संज्ञा पुं० [सं०] एक वैदिक शाखा का नाम।
वैन्य–संज्ञा पुं० [सं०] राजा वेन के पुत्र पृथु का एक नाम।
वैपरीत्य–संज्ञा पुं० [सं०] विपरीत होने का भाव। विपरीतता। प्रतिकूलता।
वैपश्चित–संज्ञा पुं० [सं०] तार्क्ष्य नामक ऋषि का एक नाम जो विपश्चित् ऋषि के वंशज थे।
वैपश्यत–संज्ञा पुं० [सं०] वैदिक काल के एक ऋषि का नाम।
वैपादिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] विपादिका नामक रोग।
वैपार–संज्ञा पुं० दे० "व्यापार"।
वैपारी–संज्ञा पुं० दे० "व्यापारी"।
वैपित्र–संज्ञा पुं० [सं०] वे भाई बहन आदि जिनकी माता तो एक ही हो, पर पिता अलग अलग हों।
वैपुल्य–संज्ञा पुं० [सं०] विपुल होने का भाव। विपुलता। अधिकता।
वैफल्य–संज्ञा पुं० [सं०] विफल होने का भाव। विफलता। नाकामयाबी।
वैबाध–संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल का एक प्रकार का विकड़। (२) वह अश्वत्थ वृक्ष जो खैर के वृक्ष में से निकला हो।
वैबोधिक–संज्ञा पुं० [सं०] वह जो रात के समय पहरा देता, घंटा बजाता और सोए हुए लोगों को जगाता हो।
वैभंडि–संज्ञा पुं० [सं०] एक गोत्रप्रवर्त्तक ऋषि का नाम। जिन्हें विभांडि भी कहते हैं।
वैभव–संज्ञा पुं० [सं०] (१) धन-संपत्ति। दौलत। विभव। ऐश्वर्य। (२) महिमा। महत्त्व। बड़प्पन। (३) सामर्थ्य। शक्ति। ताकत।
वैभवशाली–संज्ञा पुं० [सं०] वह जिसके पास बहुत अधिक धन-संपत्ति हो। विभववाला। मालदार।
वैभविक–संज्ञा पुं० [सं०] वह जो कोई काम करने की अच्छी सामर्थ्य रखता हो। समर्थ।
वैभांडिक–संज्ञा पुं० [सं०] एक गोत्रप्रवर्त्तक ऋषि का नाम।
वैभार–संज्ञा पुं० [सं०] राजगृह के पास के एक पर्वत का नाम। इसे वैहार भी कहते थे।
वैभाषिक–वि० [सं०] (१) विभाषा संबंधी। (२) वैकल्पिक।
संज्ञा पुं० बौद्धों के एक संप्रदाय का नाम।
वैभूतिक–वि० [सं०] विभूति संबंधी। विभूति का।
वैभोज–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन जाति का नाम। महाभारत के अनुसार द्रुह्यु के वंशज वैभोज कहलाते थे। ये लोग सवारी आदि का व्यवहार करना नहीं जानते थे और न इन लोगों में कोई राजा हुआ करता था।
वैभ्राज–संज्ञा पुं० [सं०] (१) देवताओं का उद्यान या बाग। (२) पुराणानुसार मेरु के पश्चिम में सुपार्श्व पर्वत पर के एक जंगल का नाम। (३) पुराणानुसार एक पर्वत का नाम। (४) एक लोक का नाम जो स्वर्ग में माना जाता है।
वैमनस्य–संज्ञा पुं० [सं०] (१) विमन या अन्यमनस्क होने का भाव। (२) वैर। द्वेष। दुश्मनी।
वैमल्य–संज्ञा पुं० [सं०] विमल होने का भाव। विमलता।

वैमात्र-वि० [सं०] [स्त्री० वैमात्री] विमाता से उत्पन्न । सौतेला । जैसे,—वैमात्र भाई ।

वैमात्रेय-वि० [सं०] [स्त्री० वैमात्रेयी] विमाता से उत्पन्न । सौतेला ।

वैमानिक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जो विमान पर चढ़कर अंतरिक्ष में विहार करता हो । (२) वह जो आकाश में विहार करता हो । आकाशचारी । (३) वह जो उड़ सकता हो ।

वैमित्रा-संज्ञा स्त्री० [सं०] कार्त्तिकेय की एक मातृका का नाम ।

वैमुख्य-संज्ञा पुं० [सं०] (१) विमुख होने का भाव । विमुखता । (२) विपरीतता । प्रतिकूलता । (३) अप्रसन्नता । नाराजगी । (४) भागना ।

वैमृध-संज्ञा पुं० [सं०] युद्ध करनेवाले, इंद्र ।

वैमृध्य-संज्ञा पुं० [सं०] वह जो युद्ध विद्या में बहुत निपुण हो । युद्ध कुशल ।

वैमेय-संज्ञा पुं० [सं०] विनिमय । परिवर्त्तन । बदला ।

वैश्य-संज्ञा पुं० [सं०] एक गोत्र-प्रवर्त्तक ऋषि का नाम ।

वैयमक-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन जाति का नाम जिसका उल्लेख महाभारत में है ।

वैयर्थ्य-संज्ञा पुं० [सं०] व्यर्थ होने का भाव । व्यर्थता ।

वैयशन-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का साम ।

वैयश्व-संज्ञा पुं० [सं०] एक वैदिक ऋषि का नाम जो विश्वमनस् के पिता थे ।

वैयसन-वि० [सं०] व्यसन से उत्पन्न । व्यसन का ।

वैयाकरण-संज्ञा पुं० [सं०] वह जो व्याकरण शास्त्र का अच्छा ज्ञाता हो । व्याकरण का पंडित ।

वि० व्याकरण संबंधी । व्याकरण का ।

वैयाख्य-संज्ञा स्त्री० दे० "व्याख्या" ।

वैयाघ्र-संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल का एक प्रकार का रथ जिस पर शेर या चीते की खाल मढ़ी होती थी । इसे द्वैप भी कहते थे ।

वि० व्याघ्र संबंधी । व्याघ्र का ।

वैयाघ्रपद्य-संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल के एक गोत्र-प्रवर्त्तक ऋषि का नाम ।

वैयाघ्र-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का आसन ।

वैयास-वि० [सं०] व्यास संबंधी । व्यास का ।

वैयासकि-संज्ञा पुं० [सं०] वह जो व्यास के गोत्र या वंश में उत्पन्न हो ।

वैयासिक-वि० [सं०] व्यास का बनाया हुआ (ग्रंथ आदि) ।

वैयास्क-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का वैदिक छंद ।

वैरंडेय-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन गोत्र-प्रवर्त्तक ऋषि का नाम ।

वैर-संज्ञा पुं० [सं०] शत्रुता । दुश्मनी । द्वेष । विरोध ।

क्रि० प्र०—करना ।—मानना ।—रखना ।—होना ।

वैरकर, वैरकारक-संज्ञा पुं० [सं०] वह जो किसी के साथ वैर करता हो । दुश्मनी करनेवाला ।

वैरक्त-संज्ञा पुं० [सं०] विरक्त होने का भाव । विरक्तता । वैराग्य ।

वैरत-संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार एक प्राचीन जाति का नाम ।

वैरता-संज्ञा स्त्री० [सं०] वैर का भाव । शत्रुता । दुश्मनी ।

वैरदेय-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह वैर या शत्रुता जो किसी के शत्रुता करने पर उत्पन्न हो । (२) वैदिक काल के एक असुर का नाम ।

वैरपुरुष-संज्ञा पुं० [सं०] वह जिसके साथ वैर हो । शत्रु । दुश्मन ।

वैरल्य-संज्ञा पुं० [सं०] (१) विरल होने का भाव । विरलता । (२) एकांत ।

वैरशुद्धि-संज्ञा स्त्री० [सं०] किसी के वैर का बदला चुकाना । दुश्मनी का बदला लेना ।

वैरस्य-संज्ञा पुं० [सं०] (१) विरस होने का भाव । विरसता । (२) इच्छा का न होना । अनिच्छा ।

वैराग-संज्ञा पुं० दे० "वैराग्य" ।

वैरागिक-वि० [सं०] जिसके कारण विराग उत्पन्न हो ।

वैरागी-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जिसके मन में विराग उत्पन्न हुआ हो । वह जिसका मन संसार की ओर से हट गया हो । विरक्त । (२) उदासीन वैष्णवों का एक संप्रदाय । इस संप्रदाय के लोग रामानुज के अनुयायी होते हैं और श्रीकृष्ण अथवा रामचंद्र की उपासना करते हैं । ये लोग प्रायः भिक्षा माँगकर अपना निर्वाह करते हैं और अखाड़े बनाकर रहते हैं । बंगाल के कुछ वैरागी विवाह करके गृहस्थों की भाँति भी रहते हैं ।

वैराग्य-संज्ञा पुं० [सं०] मन की वह वृत्ति जिसके अनुसार संसार की विषयवासना तुच्छ प्रतीत होती है और लोग संसार की झंझटें छोड़कर एकांत में रहते और ईश्वर का भजन करते हैं । विरक्ति ।

वैराज-संज्ञा पुं० [सं०] (१) विराट् पुरुष । परमात्मा । (२) एक मनु का नाम । (३) एक प्रकार का साम । (४) भागवत के अनुसार अजित के पिता का नाम । (५) सत्ताइसवें कल्प का नाम । (६) तपोलोक में रहनेवाले एक प्रकार के पितृ । कहते हैं कि ये कभी आग से नहीं जल सकते । (७) दे० "वैराज्य" ।

वैराजक-संज्ञा पुं० [सं०] उन्नीसवें कल्प का नाम ।

वैराज्य-संज्ञा पुं० [सं०] (१) प्राचीन काल की एक प्रकार की

शासन प्रणाली जिसमें एक ही देश में दो राजा मिलकर शासन करते थे। एक ही देश में दो राजाओं का शासन। (२) वह देश जहाँ इस प्रकार की शासन प्रणाली प्रचलित हो।

वैराट–वि० [सं०] (१) विराट संबंधी। विराट का। (२) विस्तृत। लंबा चौड़ा।

संज्ञा पुं० (१) इंद्रगोप नाम का कीड़ा। बीरबहूटी। (२) महाभारत का विराट पर्व।

वैराटक-संज्ञा पुं० [सं०] सुश्रुत के अनुसार शरीर में किसी स्थान पर होनेवाली वह गाँठ जो जहरीली हो।

वैराट्या-संज्ञा स्त्री० [सं०] जैनियों के अनुसार सोलह विद्या-देवियों में से एक विद्यादेवी का नाम।

वैरातंक-संज्ञा पुं० [सं०] अर्जुन या कोह नाम का वृक्ष।

वैराम–संज्ञा पुं० [सं०] महाभारत के अनुसार एक प्राचीन जाति का नाम।

वैरिंचि–वि० [सं०] विरिंचि या ब्रह्मा संबंधी। ब्रह्मा का।

वैरिंच्य–संज्ञा पुं० [सं०] सनक आदि ऋषि जो ब्रह्मा के पुत्र माने जाते हैं।

वैरि-संज्ञा पुं० [सं०] वैरी। शत्रु। दुश्मन।

वैरिण-संज्ञा पुं० [सं०] वैरी। शत्रु। दुश्मन।

वैरिता-संज्ञा स्त्री० [सं०] वैर का भाव। शत्रुता। दुश्मनी।

वैरिवीर-संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार दशरथ के एक पुत्र जिनका दूसरा नाम इल्वविल भी है।

वैरूप-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्राचीन प्रवरकार ऋषि का नाम। (२) एक प्रकार का साम।

वैरूपाक्ष-संज्ञा पुं० [सं०] वह जो विरूपाक्ष के गोत्र या वंश में उत्पन्न हुआ हो।

वैरूप्य-संज्ञा पुं० [सं०] (१) विरूप का भाव या धर्म। विरूपता। (२) विकृत होने का भाव।

वैरेचन–वि० [सं०] विरेचन संबंधी। विरेचन का।

वैरोचन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बुद्ध का एक नाम। (२) राजा बलि का एक नाम। (३) सूर्य के एक पुत्र का नाम। (४) अग्नि के एक पुत्र का नाम।

वैरोचनि-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बुद्ध का एक नाम। (२) राजा बलि का एक नाम। (३) सूर्य के एक पुत्र का नाम।

वैरोचि-संज्ञा पुं० [सं०] राजा बलि के पुत्र बाण-दैत्य का एक नाम।

वैरोट्या-संज्ञा स्त्री० [सं०] जैनियों की सोलह विद्यादेवियों में से एक विद्यादेवी का नाम।

वैरोद्धार-संज्ञा पुं० [सं०] किसी के वैर का बदला चुकाना। वैर-शुद्धि।

वैल-संज्ञा पुं० [सं०] बेल नामक वृक्ष या उसका फल।

वैलक्षण्य-संज्ञा पुं० [सं०] (१) विलक्षण होने का भाव। विलक्षणता। (२) विभिन्न या अलग होने का भाव। विभिन्नता।

वैलक्ष्य-संज्ञा पुं० [सं०] (१) लज्जा। संकोच। शर्म। (२) विस्मय। आश्चर्य। ताज्जुब। (३) स्वभाव की विलक्षणता।

वैलस्थान-संज्ञा पुं० [सं०] श्मशान। मरघट।

वैल्व-संज्ञा पुं० [सं०] बिल्व या बेल नामक फल। श्रीफल।

वि० बिल्व या बेल नामक फल के संबंध का। बेल का।

वैवधिक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जो अनाज आदि बेचकर अपना निर्वाह करता हो। गल्ले का व्यापारी। (२) दूत। (३) बोझ ढोनेवाला। मजदूर।

वैवर्ण्य-संज्ञा पुं० [सं०] (१) विवर्ण या मलिन होने का भाव। मलिनता। (२) सौंदर्य या लावण्य का अभाव। (३) स्त्रियों के आठ प्रकार के सात्विक भावों में से एक प्रकार का भाव।

वैवर्त्त-संज्ञा पुं० [सं०] किसी पदार्थ का चक्र या पहिए के समान घूमना।

वैवश्य-संज्ञा पुं० [सं०] (१) विवश होने का भाव। विवशता। लाचारी। (२) दुर्बलता। कमजोरी।

वैवस्वत-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सूर्य के एक पुत्र का नाम। (२) एक रुद्र का नाम। (३) शनैश्चर। (४) पुराणानुसार एक मनु का नाम। आजकल का मन्वंतर इन्हीं मनु का माना जाता है। इक्ष्वाकु, नृग, शर्याति, दिष्ट, धृष्ट, करूषक, नरिष्यंत, पृषध्र, नाभाग और कवि ये दस इनके पुत्र माने गए हैं। (५) पुराणानुसार वर्तमान मन्वंतर का नाम। इस मन्वंतर के अवतार वामन, पुरंदर इंद्र, देवता आदित्यगण, वसुगण, रुद्रगण, मरुद्गण आदि और ऋषि कश्यप, अत्रि, वशिष्ट, विश्वामित्र आदि कहे गए हैं। (६) एक तीर्थ का नाम।

वैवस्वतद्रुम-संज्ञा पुं० [सं०] मोगरा चावल।

वैवस्वती-संज्ञा स्त्री० [सं०] दक्षिण दिशा जो वैवस्वत मनु की मानी गई है।

वैवाह–वि० [सं०] विवाह संबंधी। विवाह का।

वैवाहिक-संज्ञा पुं० [सं०] कन्या अथवा वर का श्वसुर। समधी।

वि० विवाह संबंधी। विवाह का।

वैवाह्य–वि० [सं०] (१) विवाह संबंधी। विवाह का। (२) जो विवाह के योग्य हो।

संज्ञा पुं० वह समारोह या उत्सव जो विवाह के अवसर पर हो।

वैवृत्त-संज्ञा पुं० [सं०] उदात्त आदि स्वरों का क्रम।

वैशंपायन-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रसिद्ध ऋषि का नाम जो वेद

व्यास के शिष्य थे। कहते हैं कि महर्षि व्यासदेव की आज्ञा से इन्हीं ने जनमेजय को महाभारत की कथा सुनाई थी।

वैशद्य-संज्ञा पुं० [सं०] (१) विशद होने का भाव। विशदता। (२) निर्मल या स्वच्छ होने का भाव। निर्मलता।

वैशली-संज्ञा स्त्री० दे० "वैशाली"।

वैशाख-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मथानी में का डंडा। मंथन दंड। (२) लाल गदहपूरना। (३) बारह महीनों में से एक महीना जो चांद्र गणना से दूसरा और सौर गणना के अनुसार पहला महीना होता है। इस मास की पूर्णिमा विशाखा नक्षत्र में पड़ती है, इसी लिये इसे वैशाख कहते हैं। चैत के बाद का और जेठ के पहले का महीना। (४) एक प्रकार का ग्रह जिसका प्रभाव घोड़ों पर पड़ता है और जिसके कारण उसका शरीर भारी हो जाता और वह काँपने लगता है।

वैशाखी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) वह पूर्णिमा जो विशाखा नक्षत्र से युक्त हो। वैशाख मास की पूर्णिमा। (२) लाल गदह पूरना। (३) पुराणानुसार वसुदेव की एक स्त्री का नाम।

वैशाख्य-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन ऋषि का नाम।

वैशारद-संज्ञा पुं० [सं०] वह जो किसी विषय का अच्छा ज्ञाता हो। विशारद। पंडित।

वैशारद्य-संज्ञा पुं० [सं०] (१) विशारद या पंडित होने का भाव। (२) निर्मलता। स्वच्छता। सफाई।

वैशाल-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन ऋषि का नाम।

वैशाली-संज्ञा स्त्री० [सं०] प्राचीन बौद्ध काल की एक प्रसिद्ध नगरी जो विशाल नगरी या विशालपुरी भी कहलाती थी। कहते हैं कि राजा तृणबिंदु के पुत्र विशाल ने यह नगरी बसाई थी। जैन धर्म के प्रवर्त्तक महावीर का जन्म यहीं हुआ था और बुद्ध भगवान् कई बार यहाँ गए थे। किसी समय यह नगरी बहुत प्रसिद्ध थी और यहाँ बौद्धों की बहुत प्रधानता थी। यहाँ का लिच्छवी राजवंश इतिहासों में प्रसिद्ध है। यहाँ जैनियों का भी तीर्थ था। विद्वानों का मत है कि आधुनिक मुजफ्फरपुर जिले का बसाढ़ नामक गाँव प्राचीन वैशाली का ही अवशेष है।

वैशालीय-संज्ञा पुं० [सं०] जैन धर्म के प्रवर्त्तक महावीर का एक नाम।

वैशालेय-संज्ञा पुं० [सं०] तक्षक, जो विशाल के वंशज माने जाते हैं।

वैशिक-संज्ञा पुं० [सं०] साहित्य के अनुसार तीन प्रकार के नायकों में से एक प्रकार का नायक। वह नायक जो वेश्याओं के साथ भोग-विलास करता हो। वेश्यागामी नायक।

वि० वेश संबंधी। वेश का।

वैशिक्य-संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार एक प्राचीन जाति का नाम।

वैशिजाता-संज्ञा स्त्री० [सं०] पुत्रदात्री नाम की लता।

वैशीपुत्र-संज्ञा पुं० [सं०] वेश्या का पुत्र।

वैशेषिक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) छः दर्शनों में से एक जो महर्षि कणाद कृत है और जिसमें पदार्थों का विचार तथा द्रव्यों का निरूपण है। पदार्थ विद्या।

विशेष—महर्षि कणाद का एक नाम उलूक भी है, इससे इसे 'औलूक्य दर्शन' भी कहते हैं। यह दर्शन न्याय के ही अंतर्गत माना जाता है। सिद्धांत-पक्ष में 'न्याय' कहने से दोनों का बोध होता है; क्योंकि गौतम में प्रमाण-पक्ष प्रधान है और इसमें प्रमेय-पक्ष लिया गया है। ईश्वर, जगत्, जीव आदि के संबंध में दोनों के सिद्धांत एक ही हैं। यह दर्शन गौतम से पीछे का माना जाता है। गौतम ने मुख्यतः तर्क-पद्धति और प्रमाण-विषय का ही निरूपण किया है, पर कणाद उससे आगे बढ़कर द्रव्यों की परीक्षा में प्रवृत्त हुए हैं। नौ द्रव्यों की विशेषताएँ बताने के ही कारण इनके दर्शन का नाम वैशेषिक पड़ा। नौ द्रव्य ये हैं—पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, काल, दिक्, आत्मा और मन। इनमें से पृथ्वी, जल, तेज और वायु नित्य भी हैं और अनित्य भी; अर्थात् परमाणु-अवस्था में तो वे नित्य हैं और स्थूल अवस्था में अनित्य। आकाश, काल, दिक् और आत्मा नित्य और सर्वव्यापक हैं। मन नित्य तो है, पर व्यापक नहीं, क्योंकि वह अणु-रूप है। द्रव्यों की विशेषता इसी प्रकार कणाद ने बताई है।

गौतम ने सोलह पदार्थ माने थे, पर कणाद ने छः ही पदार्थ रखे—द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष और समवाय। अंधकार आदि को इन छः के अंतर्गत आता न समझकर पीछे से एक सातवाँ पदार्थ 'अभाव' भी बढ़ाया गया। द्रव्यों के उद्देश (परिगणन), लक्षण और परीक्षा के उपरांत कणाद ने गुण और कर्म को लिया है जो द्रव्यों में रहते हैं। संख्या, पृथक्त्व, बुद्धि, सुख, दुःख इत्यादि २४ गुण गिनाए गए हैं। उत्क्षेपण, अवक्षेपण आदि पाँच प्रकार की गतियाँ कर्म के अंतर्गत ली गई हैं। अब रहा 'सामान्य'। वह द्रव्य, गुण और कर्म इन्हीं तीनों में सत्ता के रूप में पाया जाता है। पाँचवाँ पदार्थ 'विशेष' पृथ्वी, जल, तेज और वायु के परमाणुओं में तथा शेष पाँच द्रव्यों में पाया जाता है। 'विशेष' अनंत होते हैं। 'समवाय' जहाँ कहीं पाया जायगा, वही रहेगा; अतः वह एक ही है।

वैशेषिक का परमाणुवाद प्रसिद्ध है। द्रव्यखंड के टुकड़े करते करते जब ऐसा टुकड़ा रह जाता है जिसके और टुकड़े नहीं हो सकते, तब वह परमाणु कहलाता है। परमाणु नित्य और अक्षर हैं। इन्हीं की योजना से सब

पदार्थ बनते हैं और सृष्टि होती है। आकाश को छोड़ कर जितने प्रकार के भूत होते हैं, उतने ही प्रकार के परमाणु होते हैं; जैसे—पृथ्वी-परमाणु, जल-परमाणु, तेज-परमाणु और वायु-परमाणु। वैशेषिक में दो परमाणुओं के योग को द्व्यणुक कहते हैं। आगे चलकर यही द्व्यणुक अधिक संख्या में मिलते जाते हैं, जिससे नाना प्रकार के पदार्थ बनते हैं; जैसे, तीन द्व्यणुकों से त्रसरेणु, चार द्व्यणुकों से चतुरणुक इत्यादि। कारण-गुण पूर्वक ही कार्य्य के गुण होते हैं; अतः जिस गुण के परमाणु होंगे, उसी गुण के उनसे बने पदार्थ होंगे। पदार्थों में जो नाना भेद दिखाई पड़ते हैं, वे सन्निवेश-भेद से होते हैं। तेज के संबंध से वस्तुओं के गुण में बहुत कुछ फेरफार हो जाता है।

परमाणुओं के बीच अंतर की धारणा न होने के कारण वैशेषिकों को "पीलुपाक" नाम का विलक्षण मत ग्रहण करना पड़ा। इस मत के अनुसार घड़ा आग में पड़कर इस प्रकार लाल होता है कि अग्नि के तेज से घड़े के परमाणु अलग अलग हो जाते हैं और फिर लाल होकर मिल जाते हैं। घड़े का यह बनना और बिगड़ना इतने सूक्ष्म काल में होता है कि कोई देख नहीं सकता।

परमाणुओं का संयोग सृष्टि के आदि में कैसे होता है इस संबंध में कहा गया है कि ईश्वर की इच्छा या प्रेरणा से परमाणुओं में गति या क्षोभ उत्पन्न होता है और वे परस्पर मिलकर सृष्टि की योजना करने लगते हैं। ऊपर जो नौ द्रव्य कहे गए हैं, उनमें 'आत्मा' भी है। आत्मा दो प्रकार का कहा गया है—ईश्वर और जीव। ईश्वर की सत्ता और कर्तृत्व मानने के कारण ही न्याय और वैशेषिक भक्तों और पौराणिकों के आक्षेपों से बचे रहे हैं।

और दर्शनों के समान इस दर्शन पर भाष्य नहीं मिलते। प्रशस्तपाद का "पदार्थधर्म संग्रह" नामक ग्रंथ वैशेषिक सूत्रों का भाष्य कहा जाता है; पर वह वास्तव में भाष्य नहीं है, सूत्रों के आधार पर बना हुआ अलग ग्रंथ है।

(२) कणाद का अनुयायी। वैशेषिक दर्शन का माननेवाला।

वैशेष्य—संज्ञा पुं० [सं०] विशेष का भाव। विशेषता।

वैश्य—संज्ञा पुं० [सं०] भारतीय आर्यों के चार वर्णों में से तीसरा वर्ण जो "द्विजाति" के अंतर्गत और उसमें अंतिम है। इनका धर्म यजन, अध्ययन और पशुपालन तथा वृत्ति कृषि और वाणिज्य है। आज कल अधिकांश वैश्य प्रायः वाणिज्य-व्यवसाय करके ही जीविका निर्वाह करते हैं।

विशेष—"वैश्य" शब्द वैदिक "विश्" से निकला है। वैदिक काल में प्रजा मात्र को विश् कहते थे। पर जब बाद में वर्णव्यवस्था हुई, तब वाणिज्य-व्यवसाय और गोपालन आदि करनेवाले लोग वैश्य कहलाने लगे। आजकल इन वैश्यों में देश और वंश आदि के भेद से अनेक जातियाँ और उपजातियाँ पाई जाती हैं। जैसे,—अग्रवाल, ओसवाल, रस्तोगी, भाटिए आदि।

वैश्यता—संज्ञा स्त्री० [सं०] वैश्य का भाव या धर्म। वैश्यत्व।

वैश्यभद्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] बौद्धों की वैश्या और भद्रा नाम की दो देवियाँ।

वैश्यसव—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का सव या यज्ञ।

वैश्यस्तोम—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का यज्ञ।

वैश्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) वैश्य जाति की स्त्री। (२) हलदी।

वैश्रंभक—संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार देवताओं के एक उद्यान या बाग का नाम।

वैश्रवण—संज्ञा पुं० [सं०] (१) कुबेर। (२) शिव। महादेव।

वैश्रवणालय—संज्ञा पुं० [सं०] (१) कुबेर के रहने का स्थान। (२) वट वृक्ष। बड़ का पेड़। बरगद।

वैश्रवणोदय—संज्ञा पुं० [सं०] वट वृक्ष। बरगद का पेड़।

वैश्व—वि० [सं०] विश्वदेव संबंधी। विश्वदेव का।

संज्ञा पुं० उत्तराषाढ़ा नक्षत्र का एक नाम।

वैश्वजनीन—वि० [सं०] विश्व भर के लोगों से संबंध रखनेवाला। समस्त संसार के लोगों का।

संज्ञा पुं० वह जो समस्त विश्व या संसार के लोगों का कल्याण करता हो।

वैश्वज्योतिष—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का साम।

वैश्वदेव—संज्ञा पुं० [सं०] वह होम या यज्ञ आदि जो विश्वदेव के उद्देश्य से किया जाय। इसमें केवल पके हुए अन्न से विश्वदेव के उद्देश्य से आहुति दी जाती है और ब्राह्मणों को भोजन कराने की आवश्यकता नहीं होती।

वैश्वदेवत—संज्ञा पुं० [सं०] उत्तराषाढ़ा नक्षत्र जिसके अधिष्ठाता विश्वदेव माने जाते हैं।

वैश्वदेविक—वि० [सं०] विश्वदेव संबंधी। विश्वदेव का।

वैश्वमनस—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का साम।

वैश्वयुग—संज्ञा पुं० [सं०] फलित ज्योतिष के अनुसार बृहस्पति के शोभकृत्, शुभकृत्, क्रोधी, विश्वावसु और पराभव नामक पाँच संवत्सरों का युग या समूह। इनमें से पहले दो संवत्सर शुभ और शेष तीन अशुभ माने जाते हैं।

वैश्वानर—संज्ञा पुं० [सं०] (१) अग्नि। (२) चित्रक या चीता नाम का वृक्ष। (३) पित्त। पित्ता। (४) परमात्मा। (५) चेतन।

वैश्वानर चूर्ण—संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक में एक प्रकार का चूर्ण जो सेंधा नमक, अजवायन और हर्रें आदि से बनाया जाता है।

यह आमवात, शूल और गुल्म आदि के लिये बहुत उपयोगी माना जाता है।

वैश्वानर मार्ग-संज्ञा पुं० [सं०] अग्निकोण या पूर्व और दक्षिण के बीच का कोना जो वैश्वानर का मार्ग माना जाता है।

वैश्वानर वटी-संज्ञा स्त्री० [सं०] वैद्यक में एक प्रकार की गोली जो पारे, गंधक, ताँबे, लोहे, शिलाजीत, सोंठ, पीपल, चित्रक तथा मिर्च आदि के योग से बनाई जाती है और जो पेट के रोगों में उपकारी मानी जाती है।

वैश्वानरविद्या-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक उपनिषद् का नाम।

वैश्वासिक-संज्ञा पुं० [सं०] वह जिस पर विश्वास किया जाय। एतबार करने के काबिल। विश्वस्त।

वैश्वी-संज्ञा स्त्री० [सं०] उत्तराषाढ़ा नक्षत्र।

वैषम-संज्ञा पुं० [सं०] विषम होने का भाव। विषमता।

वैषम्य-संज्ञा पुं० [सं०] विषम होने का भाव। विषमता।

वैषयिक-वि० [सं०] विषय संबंधी। विषय का।

संज्ञा पुं० वह जो सदा विषय वासना में रत रहता हो। विषयी। लंपट।

वैषुवत-संज्ञा पुं० [सं०] विषुव संक्रांति।

वैष्किर-संज्ञा पुं० [सं०] वह पशु या पक्षी जो चारों ओर घूम फिरकर आहार प्राप्त करता हो।

वैष्टंभ-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का साम।

वैष्टत-संज्ञा पुं० [सं०] होम की भस्म।

वैष्टु-संज्ञा पुं० [सं०] (१) स्वर्ग। (२) वायु। (३) विष्णु।

वैष्णव-संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० वैष्णवी] (१) वह जो विष्णु की आराधना करता हो। विष्णु की उपासना करनेवाला। (२) हिंदुओं का एक प्रसिद्ध धार्मिक संप्रदाय। इस सप्रदाय के लोग प्रधानतः विष्णु की उपासना करते हैं और अपेक्षाकृत विशेष आचार विचार से रहते हैं।

विशेष—भारतवर्ष में विष्णु की उपासना बहुत प्राचीन काल से चली आती है। महाभारत के समय में यह धर्म पांचरात्र या नारायणीय धर्म कहलाता था। पीछे यही भागवत धर्म के नाम से प्रसिद्ध हुआ और इसमें वासुदेव या कृष्ण की उपासना प्रधान हुई। नारायणीय आख्यान में लिखा है कि पहले नारायण ने इस धर्म का उपदेश ब्रह्मा को किया था। ब्रह्मा ने नारद को, नारद ने व्यास को और व्यास ने शुकदेव को यह धर्म बतलाया था; और तब शुकदेव से सर्वसाधारण में प्रचलित हुआ था। शंकराचार्य ने इस मत को अवैदिक सिद्ध करना चाहा था, जिसका रामानुजाचार्य ने खंडन किया। बीच में इस धर्म का कुछ ह्रास हो गया था; पर चैतन्य, रामानुजाचार्य, वल्लभाचार्य आदि आचार्यों ने इस धर्म का फिर से बहुत अधिक प्रचार किया; और इस समय यह भारत के मुख्य संप्रदायों में से एक है। यह धर्म भक्ति-प्रधान है और इसमें विष्णु ही उपास्य हैं। आज कल इस संप्रदाय की अनेक शाखाएँ और प्रशाखाएँ निकल आई हैं—चैतन्य, वल्लभ इत्यादि। अधिक संप्रदाय विष्णु के अवतार श्रीकृष्ण के उपासक हैं। कुछ संप्रदायवाले माथे पर के तिलक के अतिरिक्त शंख, चक्र, गदा, पद्म आदि चिह्न भी तप्त धातु से शरीर में अंकित कराते हैं।

(३) यज्ञ कुंड की भस्म। (४) विष्णु पुराण।

वि० विष्णु संबंधी। विष्णु का।

वैष्णवत्व-संज्ञा पुं० [सं०] वैष्णव होने का भाव या धर्म। वैष्णवता।

वैष्णवी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) विष्णु की शक्ति। (२) दुर्गा। (३) गंगा। (४) अपराजिता या कोयल नाम की लता। (५) शतावर। (६) तुलसी। (७) पृथ्वी। (८) श्रवण नक्षत्र। (९) एक प्रकार का साम।

वैष्णव्य-वि० [सं०] विष्णु संबंधी। विष्णु का।

वैसर्गिक-वि० [सं०] जो विसर्जन करने या त्यागने योग्य हो। त्याज्य।

वैसर्जन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) विसर्जन करने या उत्सर्ग करने की क्रिया। (२) वह जो विसर्जित या उत्सर्ग किया जाय। (३) यज्ञ की बलि।

वैसर्प-संज्ञा पुं० [सं०] विसर्प नामक रोग।

वैसादृश्य-संज्ञा पुं० [सं०] असदृश या असमान होने का भाव। असमानता। विषमता।

वैसारिण-संज्ञा पुं० [सं०] मछली।

वैस्रप-संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार एक दानव का नाम।

वैस्तारिक-वि० [सं०] विस्तार संबंधी। विस्तार का।

वैस्वर्य्य-संज्ञा पुं० [सं०] स्वर का विकृत होना। गला बैठना।

वैहंग-वि० [सं०] विहंग संबंधी। विहंग का।

वैहार-संज्ञा पुं० [सं० वैभार] एक पर्वत जो मगध में राजगृह के पास है। वैभार।

वैहार्य्य-संज्ञा पुं० [सं०] वह जिसके साथ हँसी मज़ाक आदि का संबंध हो। जैसे,—साला, सरहज, साली आदि।

वैहासिक-संज्ञा पुं० [सं०] वह जो सब को हँसाता हो। विदूषक। भाँड़।

वोकाण-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बृहत्संहिता के अनुसार एक देश का नाम। (२) इस देश का निवासी।

वोट-संज्ञा पुं० [अं०] वह सम्मति जो किसी सार्वजनिक पद पर किसी को निर्वाचित करने या न करने, अथवा सर्वसाधारण से संबंध रखनेवाले किसी नियम या कानून आदि के निर्धारित होने या न होने आदि के विषय में प्रकट की जाती है। किसी सार्वजनिक कार्य्य आदि के होने अथवा न होने आदि के संबंध में दी हुई अलग अलग राय। हुश्रा

विशेष—आज कल प्रायः सभा समितियों में निर्वाचन के संबंध में या और किसी विषय में सभासदों अथवा उपस्थित लोगों की सम्मतियाँ ली जाती हैं। यह सम्मति या तो हाथ उठाकर या खड़े होकर या कागज आदि पर लिखकर प्रकट की जाती है। इसी सम्मति को वोट कहते हैं। आजकल प्रायः म्युनिसिपल और डिस्ट्रिक्ट बोर्डों तथा काउन्सिलों आदि के चुनाव में कुछ विशिष्ट अधिकार प्राप्त लोगों से वोट लिया जाता है। भारतवर्ष में प्राचीन बौद्ध काल में और उसके पहले भी इससे मिलती जुलती सम्मति देने की प्रथा थी, जिसे छंदस् या छंद कहते थे।

क्रि० प्र०—देना।—माँगना।

वोटर-संज्ञा पुं० [अं०] वह जिसे वोट या सम्मति देने का अधिकार प्राप्त हो। वोट या सम्मति देनेवाला।

यौ०—वोटर लिस्ट।

वोटर लिस्ट-संज्ञा स्त्री० [अं० वोट+लिस्ट] वह सूची जिसमें किसी विषय में वोट देने के अधिकारियों के नाम और पते आदि लिखे रहते हैं। वोट देनेवालों की सूची।

वोटा-संज्ञा स्त्री० [सं०] दासी। मजदूरनी। दाई।

वोड़-संज्ञा पुं० [सं०] सुपारी।

वोड्र-संज्ञा पुं० [सं०] (१) गोह नामक जंतु। गोनस सर्प। (२) एक प्रकार की मछली।

वोढ़-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वोढ्रु ऋषि। (२) कदम का पेड़।

वोढ़ा-संज्ञा स्त्री० [सं०] ऋषभक नाम की ओषधि।

वोढ्रु-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन ऋषि जिनके नाम से तर्पण के समय जल दिया जाता है।

वोद्-वि० [सं०] आर्द्र। गीला।

वोदार-संज्ञा पुं० [सं०] मुरदासिंगी। कंकुष्ठ।

वोदाल-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की मछली जिसे बोआरी कहते हैं।

वोरक-संज्ञा पुं० [सं०] वह जो लिखता हो। लेखक।

वोरट-संज्ञा पुं० [सं०] कुंद का फूल या पौधा।

वोरव-संज्ञा पुं० [सं०] बोरो धान।

वोरुखान-संज्ञा पुं० [सं०] वह घोड़ा जिसकी दुम और अयाल के बाल पीले रंग के हों।

वोहित्थ-संज्ञा पुं० [सं०] बड़ी नाव। जहाज।

व्यंकुश-वि० दे० "निरंकुश"।

व्यंग-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मेंढक। (२) भाव प्रकाश के अनुसार एक प्रकार का क्षुद्र रोग जिसमें क्रोध या परिश्रम आदि के कारण वायु दूषित होने से मुँह पर छोटी छोटी काली फुंसियाँ या दाने निकल आते हैं। (३) वह जिसका कोई अंग टूटा हुआ या विकृत हो। विकलांग। (४) दे० "व्यंग्य"।

व्यंगक-संज्ञा पुं० [सं०] पर्वत।

व्यंगता-संज्ञा स्त्री० [सं०] व्यंग का भाव।

व्यंगत्व-संज्ञा पुं० [सं०] किसी अंग का न होना या खंडित होना। लंज।

व्यंगार्थ-संज्ञा पुं० दे० "व्यंग्य"।

व्यंगुष्ठ-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का गुल्म।

व्यंग्य-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शब्द का वह अर्थ जो उसकी व्यंजना वृत्ति के द्वारा प्रकट हो। व्यंजना शक्ति के द्वारा प्रकट होनेवाला साधारण से कुछ विशिष्ट अर्थ। गूढ़ और छिपा हुआ अर्थ। वि० दे० "व्यंजना"। (२) वह लगती हुई बात जिसका कुछ गूढ़ अर्थ हो। ताना। बोली। चुटकी।

क्रि० प्र०—कहना।—छोड़ना—बोलना।—सुनाना।

व्यंजन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) व्यक्त या प्रकट करने अथवा होने की क्रिया। (२) दे० "व्यंजना"। (३) चिह्न। निशान। (४) अवयव। अंग। (५) मूँछ। (६) दिन। (७) पेड़ू के नीचे का स्थान। उपस्थ। (८) तरकारी और साग आदि जो दाल, चावल, रोटी आदि के साथ खाए जाते हैं। (९) साधारण बोलचाल में, पका हुआ भोजन। (१०) वर्णमाला में का वह वर्ण जो बिना स्वर की सहायता से न बोला जा सकता हो। हिंदी वर्णमाला में "क" से "ह" तक के सब वर्ण व्यंजन हैं।

व्यंजनहारिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] पुराणानुसार एक प्रकार की अमंगल-कारिणी शक्ति जो विवाहिता लड़कियों के बनाए हुए खाद्य पदार्थ उठा ले जाती है।

व्यंजना-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) प्रकट करने की क्रिया। (२) शब्द की तीन प्रकार की शक्तियों या वृत्तियों में से एक प्रकार की शक्ति या वृत्ति जिससे शब्द या शब्द-समूह के वाच्यार्थ अथवा लक्ष्यार्थ से भिन्न किसी और ही अर्थ का बोध होता है। शब्द की वह शक्ति जिसके द्वारा साधारण अर्थ को छोड़कर कोई विशेष अर्थ प्रकट होता हो। जैसे,—यदि कोई कहे कि "तुम्हारे चेहरे पर पाजी-पन झलक रहा है" और इसके उत्तर में दूसरा व्यक्ति कहे कि "मुझे आज ही ज्ञात हुआ कि मेरे चेहरे में दर्पण का गुण है" तो इससे यह अर्थ निकलेगा कि तुमने मेरे दर्पण रूपी चेहरे में अपना प्रतिबिंब देखकर उसमें पाजी-पन की झलक पाई है। शब्दों की जिस शक्ति से यह अभिप्राय निकला, वही व्यंजना शक्ति है। इसके शाब्दी और आर्थी दो भेद माने गए हैं और इन दोनों भेदों के भी कई उपभेद किए गए हैं।

व्यंतर-संज्ञा पुं० [सं०] जैनों के अनुसार एक प्रकार के पिशाच और यक्ष आदि।

व्यंश-संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार विप्रचित्ति के पुत्र का नाम जो सिंहिका के गर्भ से उत्पन्न हुआ था।

व्यंशक–संज्ञा पुं० [सं०] पर्वत। पहाड़।
व्यंस–संज्ञा पुं० [सं०] एक राक्षस का नाम।
व्यंसक–संज्ञा पुं० [सं०] धूर्त। चालाक।
व्यंसन–संज्ञा पुं० [सं०] ठगने या धोखा देने की क्रिया।
व्यक्त–वि० [सं०] (१) दिखाई देता या झलकता हुआ। प्रकट। जाहिर। (२) साफ। स्पष्ट। (३) स्थूल। बड़ा। (४) दुष्ट। पाजी।
संज्ञा पुं० (१) विष्णु। (२) मनुष्य। आदमी। (३) कृत्य। कार्य। काम। (४) सांख्य के अनुसार प्रधान, अहंकार, इंद्रियाँ, तन्मात्र, महाभूत आदि चौबीस तत्व जो पुरुष से उद्भूत माने गए हैं।
विशेष—सांख्य के मत से प्रकृति अव्यक्त और पुरुष व्यक्त है।
व्यक्तगंधा–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) नीली अपराजिता। (२) सोनजुही। (३) पिप्पली। पीपल।
व्यक्तगणित–संज्ञा पुं० दे० "अंकगणित"।
व्यक्तता–संज्ञा स्त्री० [सं०] व्यक्त होने का भाव।
व्यक्तदृष्टार्थ–संज्ञा पुं० [सं०] वह जो देखी हुई बात कहे। चश्मदीद गवाह।
व्यक्तभुज–संज्ञा पुं० [सं०] समय। वक्त।
व्यक्त राशि–संज्ञा स्त्री० [सं०] अंकगणित में वह राशि या अंक जो व्यक्त किया या बतला दिया गया हो। ज्ञात राशि।
व्यक्तरूप–संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु।
व्यक्ति–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) व्यक्त होने की क्रिया या भाव। प्रकाशित या दृश्य होना। प्रकट होना। (२) मनुष्य या किसी और शरीरधारी का सारा शरीर, जिसकी पृथक् सत्ता मानी जाती है और जो किसी समूह या समाज का अंग समझा जाता है। समष्टि का उलटा। व्यष्टि। (३) मनुष्य। आदमी। जैसे,—कुछ व्यक्ति ऐसे होते हैं जो सदा दूसरों का अपकार ही किया करते हैं।
विशेष—यद्यपि यह शब्द संस्कृत में स्त्री लिंग है, तथापि हिंदी में "मनुष्य" या "आदमी" के अर्थ में यह प्रायः पुल्लिंग ही बोला और लिखा जाता है।
(४) भूत मात्र। (५) वस्तु। पदार्थ। चीज। (६) प्रकाश।
व्यक्तीकृत–वि० [सं०] जो व्यक्त किया गया हो। प्रकट किया हुआ।
व्यक्तीभूत–वि० [सं०] जो व्यक्त किया गया हो। प्रकट किया हुआ।
व्यग्र–वि० [सं०] (१) घबराया हुआ। व्याकुल। (२) डरा हुआ। भयभीत। (३) काम में फँसा हुआ। (४) उद्यमी। उद्योगी। (५) आसक्त। (६) आग्रही।
संज्ञा पुं० विष्णु।
व्यग्रता–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) व्यग्र होने का भाव। (२) व्याकुलता। घबराहट।
व्यजन–संज्ञा पुं० [सं०] हवा करने का पंखा।
व्यज्य–वि० [सं०] जिसका बोध शब्द की व्यंजना शक्ति के द्वारा हो।
संज्ञा पुं० दे० "व्यंग्य"।
व्यडंबक–संज्ञा पुं० [सं०] रेंड़ का पेड़। एरंड।
व्यड़–संज्ञा पुं० दे० "व्याड़ि"।
व्यति–संज्ञा पुं० [सं०] घोड़ा।
व्यतिकार–संज्ञा पुं० [सं०] (१) व्यसन। (२) विनाश। बरबादी। (३) मिश्रण। मिलावट। (४) व्याप्ति। (५) संबंध। लगाव। तअल्लुक। (६) समूह। झुंड।
व्यतिक्रम–संज्ञा पुं० [सं०] (१) क्रम में होनेवाला विपर्यय। सिलसिले में होनेवाला उलट-फेर। (२) बाधा। विघ्न।
व्यतिक्रमण–संज्ञा पुं० [सं०] क्रम में विपर्यय करना। सिलसिले में उलट फेर करना।
व्यतिक्रांत–वि० [सं०] जिसमें किसी प्रकार का विपर्यय हुआ हो।
व्यतिक्रांति–संज्ञा स्त्री० [सं०] क्रम में होनेवाला विपर्यय। व्यतिक्रम।
व्यतिचार–संज्ञा पुं० [सं०] (१) पाप कर्म करना। पाप का आचरण करना। (२) दोष। ऐब।
व्यतिपात–संज्ञा पुं० [सं०] (१) बहुत बड़ा उत्पात। भारी उपद्रव या खराबी। (२) दे० "व्यतीपात"।
व्यतिरिक्त–वि० [सं०] (१) भिन्न। अलग। (२) बढ़ा हुआ।
क्रि० वि० अतिरिक्त। सिवा। अलावा।
व्यतिरिक्तता–संज्ञा स्त्री० [सं०] व्यतिरिक्त होने का भाव या धर्म। विभिन्नता।
व्यतिरेक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) अभाव। (२) भेद। अंतर। भिन्नता। (३) वृद्धि। बढ़ती। (४) अतिक्रम। (५) एक प्रकार का अर्थालंकार जिसमें उपमान की अपेक्षा उपमेय में कुछ और भी विशेषता या अधिकता का वर्णन होता है। उ०—(क) कहत सबै बेंदी दिए अंक दस गुनो होत। तिय लिलार बेंदी दिए अगनित बढ़त उदोत। (ख) निज परिताप द्रवहिं नवनीता। पर दुख द्रवहिं सु संत पुनीता।
व्यतिरेकी–संज्ञा पुं० [सं० व्यतिरेकिन्] (१) वह जो किसी को अतिक्रमण करके जाता हो। (२) वह जो पदार्थों में विभिन्नता उत्पन्न करता हो।
व्यतिषंग–संज्ञा पुं० [सं०] [वि० व्यतिषक्त] (१) मिलाना। (२) विनिमय। बदला।
व्यतिषक्त–वि० [सं०] (१) मिला हुआ। (२) आसक्त।

व्यतिहार-संज्ञा पुं० [सं०] (१) विनिमय। परिवर्त्तन। बदला। (२) गाली गलौज। (३) मारपीट।

व्यतीकार-संज्ञा पुं० [सं०] (१) व्यसन। (२) विनाश। बरबादी। (३) मिश्रण।

व्यतीत-वि० [सं०] बीता हुआ। गत। जैसे,—बहुत दिन व्यतीत हो गए, वहाँ से कोई उत्तर नहीं आया।

व्यतीपात-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बहुत बड़ा उत्पात। भारी उपद्रव। जैसे,—भूकंप, उल्कापात आदि। (२) अपमान। बेइज्जती। (३) ज्योतिष में विष्कंभ आदि सत्ताईस योगों में से सत्रहवाँ योग जिसमें यात्रा अथवा किसी प्रकार का शुभ काम करने का निषेध है। (४) एक प्रकार का योग जो अमावास्या के दिन रविवार या श्रवण, धनिष्ठा, आर्द्रा, अश्लेषा अथवा मृगशिरा नक्षत्र होने पर होता है। इस योग में गंगा स्नान का बहुत माहात्म्य है।

व्यतीहार-संज्ञा पुं० [सं०] (१) विनिमय। परिवर्त्तन। बदला। (२) आपस में गाली गलौज, मार पीट या इसी प्रकार का और कोई काम करना।

व्यत्यय-संज्ञा पुं० दे० "व्यतिक्रम"।

व्यत्यास-संज्ञा पुं० दे० "व्यतिक्रम"।

व्यथक-संज्ञा पुं० [सं०] वह जो व्यथा उत्पन्न करता हो। पीड़ा देनेवाला।

व्यथन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) व्यथा। पीड़ा। तकलीफ। (२) वह जो व्यथा उत्पन्न करता हो। पीड़ा देनेवाला।

व्यथा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) पीड़ा। वेदना। तकलीफ। (२) दुःख। क्लेश। (३) भय। डर।

व्यथित-वि० [सं०] (१) जिसे किसी प्रकार की व्यथा या तकलीफ हो। (२) दुःखित। रंजीदा। (३) जिसे किसी प्रकार का शोक प्राप्त हुआ हो। (४) भीत। डरा हुआ।

व्यथ्य-वि० [सं०] (१) व्यथा देने योग्य। (२) भय उत्पन्न करनेवाला। भयानक।

व्यधन-संज्ञा पुं० [सं०] बेधने की क्रिया। विद्ध करना। बींधना।

व्यधिक्षेप-संज्ञा पुं० [सं०] निंदा। शिकायत।

व्यपदेश-संज्ञा पुं० [सं०] निंदा। शिकायत।

व्यपनय-संज्ञा पुं० [सं०] (१) विनाश। बरबादी। (२) छोड़ देना। त्याग।

व्यपनयन-संज्ञा पुं० [सं०] छोड़ देना। त्याग।

व्यपरोपण-संज्ञा पुं० [सं०] [वि० व्यपरोपित] (१) खुदाना। (२) काटना। (३) जड़ से काटना। (४) दूर करना। हटाना।

व्यपवर्ग-संज्ञा पुं० [सं०] (१) अलग होना। (२) छोड़ना। त्याग।

व्यपवर्जन-संज्ञा पुं० [सं०] [वि० व्यपवर्जित] (१) छोड़ना। त्याग। (२) निवारण। (३) देना। दान।

व्यपेक्षा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) आकांक्षा। इच्छा। चाह। (२) अनुरोध। आग्रह।

व्यपोह-संज्ञा पुं० [सं०] विनाश। बरबादी।

व्यभिचार-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बुरा या दूषित आचार। कदाचार। बदचलनी। (२) स्त्री का पर-पुरुष से अथवा पुरुष का पर-स्त्री से अनुचित संबंध। छिनाला।

व्यभिचारिता-संज्ञा स्त्री० दे० "व्यभिचार"।

व्यभिचारी-संज्ञा पुं० [सं० व्यभिचारिन्] [स्त्री० व्यभिचारिणी] (१) वह जो अपने मार्ग से गिर गया हो। मार्ग-भ्रष्ट। (२) वह जिसका चाल चलन अच्छा न हो। बदचलन। (३) वह जो पर-स्त्रियों से संबंध रखता हो। पर-स्त्री-गामी। (४) दे० "संचारी" (भाव)।

व्यभिहास-संज्ञा पुं० [सं०] उपहास। ठट्ठा। मजाक।

व्यय-संज्ञा पुं० [सं०] (१) किसी पदार्थ का विशेषतः धन आदि का इस प्रकार काम में आना कि वह समाप्त हो जाय। किसी चीज का किसी काम में लगना। खर्च। सरफा। खपत। जैसे,—(क) उनका व्यय १००) मासिक है। (ख) व्यर्थ अपनी शक्ति व्यय मत करो। (२) नाश। बरबादी। (३) दान। (४) छोड़ देना। परित्याग। (५) बृहस्पति के चार के एक वर्ष या संवत्सर का नाम। (६) महाभारत के अनुसार एक नाग का नाम।

व्ययक-संज्ञा पुं० [सं०] वह जो व्यय करता हो। व्यय करनेवाला।

व्ययशील-संज्ञा पुं० [सं०] वह जो बहुत अधिक खर्च करता हो। खर्चीले स्वभाव का। बाहु-खर्च।

व्ययित-वि० [सं०] खर्च किया हुआ। व्यय किया हुआ।

व्ययी-संज्ञा पुं० [सं० व्ययिन्] वह जो बहुत व्यय करता हो। खूब खर्च करनेवाला। शाह-खर्च।

व्यर्थ-वि० [सं०] (१) जिसका कोई अर्थ या प्रयोजन न हो। बिना मतलब का। निरर्थक। (२) जिसका कोई अर्थ या मतलब न हो। बिना माने का। अर्थ-रहित। (३) जिससे किसी प्रकार का काम न हो।

क्रि० वि० बिना किसी मतलब के। फजूल। योंही। जैसे,—वह दिन भर व्यर्थ घूमा करता है।

व्यर्थता-संज्ञा स्त्री० [सं०] व्यर्थ होने का भाव।

व्यलीक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह अपराध जो काम के आवेग के कारण किया जाय। (२) अपराध। कसूर। (३) झंझट। खटकार। (४) दुःख। कष्ट। तकलीफ। (५) बीड़-भर्द। पिट। (६) विलक्षणता। अद्भुतता।

वि० (१) जो अच्छा न लगे। अप्रिय। (२) दुःख देनेवाला।

कष्टदायक। (३) बिना जान पहचान का। अपरिचित। (४) विलक्षण। अद्भुत। अजीब।

व्यवकलन-संज्ञा पुं० [सं०] एक अंक या रकम में से दूसरा अंक या रकम घटाना। बाकी निकालना।

व्यवकीर्ण-वि० [सं०] अलग किया हुआ। निकाला हुआ। जुदा किया हुआ।

व्यवच्छिन्न-वि० [सं०] (१) अलग। जुदा। (२) विभाग करके अलग किया हुआ। विभक्त। (३) निर्द्धारण किया हुआ। निश्चित।

व्यवच्छेद-संज्ञा पुं० [सं०] (१) पृथकता। पार्थक्य। अलगाव। (२) विभाग। खंड। हिस्सा। (३) विराम। ठहरना। (४) निवृत्ति। छुटकारा।

व्यवच्छेदक-संज्ञा पुं० [सं०] वह जो व्यवच्छेद या अलग करता हो।

व्यवदान-संज्ञा पुं० [सं०] किसी पदार्थ को शुद्ध और साफ़ करने की क्रिया। संस्कार। सफाई।

व्यवधा-संज्ञा स्त्री० [सं०] व्यवधान। परदा।

व्यवधान-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह चीज़ जो बीच में पड़कर आड़ करती हो। परदा। (२) भेद। विभाग। खंड। (३) विच्छेद। अलग होना। (४) खतम होना। समाप्ति।

व्यवधायक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जो आड़ में जाता हो। छिपनेवाला। गायब होनेवाला। (२) वह जो किसी को ढकता या छिपाता हो। आड़ करने या छिपानेवाला।

व्यवधारण-संज्ञा पुं० [सं०] अच्छी तरह अवधारण या निश्चय करना।

व्यवधि-संज्ञा पुं० [सं०] व्यवधान। परदा। आड़। ओट।

व्यवशाद-संज्ञा पुं० [सं०] (१) छोड़ देना। (२) त्याग। (३) पीछे की ओर गिरना या हटना।

व्यवसर्ग-संज्ञा पुं० [सं०] (१) किसी पदार्थ के विभाग करने की क्रिया। बाँट। (२) मुक्ति। छुटकारा।

व्यवसाय-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह कार्य्य जिसके द्वारा किसी की जीविका का निर्वाह होता हो। जीविका। जैसे,—दूसरों की सेवा करना ही उसका व्यवसाय है। (२) रोजगार। व्यापार। जैसे,—आजकल कपड़े का व्यवसाय कुछ मंदा है। (३) कोई कार्य्य आरंभ करना। (४) निश्चय। (५) प्रयत्न। उद्योग। कोशिश। (६) उद्यम। काम धंधा। (७) इच्छा। विचार। कल्पना। (८) अभिप्राय। मतलब। (९) विष्णु का एक नाम। (१०) शिव का एक नाम।

व्यवसायी-संज्ञा पुं० [सं० व्यवसायिन्] (१) वह जो किसी प्रकार का व्यवसाय करता हो। व्यवसाय करनेवाला। (२) रोजगार करनेवाला। रोज़गारी। (३) वह जो किसी कार्य्य का अनुष्ठान करता हो।

व्यवसित-वि० [सं०] (१) जिसका अनुष्ठान किया गया हो। व्यवसाय किया हुआ। (२) जो कोई काम करने के लिये तैयार हो। उद्यत। तत्पर। (३) जो निश्चय किया जा चुका हो। निश्चित।

व्यवसिति-संज्ञा स्त्री० [सं०] व्यवसाय। रोज़गार।

व्यवस्था-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) किसी कार्य्य का वह विधान जो शास्त्रों आदि के द्वारा निश्चित या निर्धारित हुआ हो।

मुहा०—व्यवस्था देना = पंडितों आदि का यह बतलाना कि अमुक विषय में शास्त्रों का क्या मत अथवा आज्ञा है। किसी विषय में शास्त्रों का विधान बतलाना।

(२) चीज़ों को अलग अलग सजाकर या ठिकाने से रखना। (३) प्रबन्ध। इंतजाम। जैसे,—विवाह की सब व्यवस्था अपने ही हाथ में है। (४) स्थिर होने का भाव। स्थिरता। स्थिति।

व्यवस्थाता-संज्ञा पुं० [सं० व्यवस्थातृ] (१) वह जो व्यवस्था करता हो। व्यवस्था या इंतजाम करनेवाला। (२) वह जो यह बतलाता हो कि अमुक विषय में शास्त्रों की क्या आज्ञा है। शास्त्रीय व्यवस्था देनेवाला।

व्यवस्थान-संज्ञा पुं० [सं०] (१) उपस्थित या अस्थिर होना। व्यवस्थिति। (२) व्यवस्था। इंतजाम। प्रबंध। (३) विष्णु का एक नाम।

व्यवस्थानप्रज्ञप्ति-संज्ञा स्त्री० [सं०] बौद्धों के अनुसार एक बहुत बड़ी संख्या का नाम।

व्यवस्थापक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जो यह बतलाता हो कि अमुक विषय में शास्त्रों का क्या मत है। व्यवस्था देनेवाला। (२) वह जो किसी कार्य्य आदि को नियमपूर्वक चलाता हो। (३) वह जो व्यवस्था या इंतजाम करता हो। प्रबंधकर्त्ता। इंतजामकार।

व्यवस्थापत्र-संज्ञा पुं० [सं०] वह पत्र जिसमें किसी विषय की शास्त्रीय व्यवस्था या यह विधान लिखा हो कि अमुक विषय में शास्त्र की क्या आज्ञा या मत है।

व्यवस्थापन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) किसी विषय में शास्त्रीय व्यवस्था देना या बतलाना। यह बतलाना कि अमुक विषय में शास्त्रों की क्या आज्ञा अथवा मत है। (२) किसी विषय में कुछ निश्चय, निर्धारण या निरूपण करना।

व्यवस्थापनीय-वि० [सं०] व्यवस्थापन करने के योग्य।

व्यवस्थापित-वि० [सं०] (१) जिसके संबंध में कुछ निश्चय या निरूपण किया गया हो। व्यवस्था किया हुआ। (२) जो नियमपूर्वक लगाया, रखा या किया गया हो। (३) जो नियम के अनुसार हो। नियमित।

व्यवस्थाप्य-वि० [सं०] जो व्यवस्थापन करने के योग्य हो।

व्यवस्थित-वि० [सं०] जिसमें किसी प्रकार की व्यवस्था या

नियम हो। जो ठीक नियम के अनुसार हो। कायदे का। जैसे,—वे सभी काम व्यवस्थित रूप से किया करते हैं।

व्यवस्थिति–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) उपस्थित या स्थिर होना। व्यवस्थान। (२) व्यवस्था। इंतज़ाम।

व्यवहरण–संज्ञा पुं० [सं०] अभियोगों आदि का नियमानुसार विचार। मुकदमे की सुनाई या पेशी। व्यवहार।

व्यवहर्त्ता–संज्ञा पुं० [सं० व्यवहर्तृ] वह जो व्यवहार शास्त्र के अनुसार किसी अभियोग आदि का विचार करता हो। न्यायकर्त्ता।

व्यवहार–संज्ञा पुं० [सं०] (१) क्रिया। कार्य्य। काम। (२) आपस में एक दूसरे के साथ बरतना। बरताव। जैसे,— हमारा उनका इस तरह का व्यवहार नहीं है। (३) व्यापार। रोज़गार। (४) लेनदेन का काम। महाजनी। (५) झगड़ा। विवाद। (६) न्याय। (७) शर्त्त। पण। (८) स्थिति। (९) दो पक्षों में होनेवाला वह झगड़ा जिसका फैसला अदालत से हो। मुकदमा।

व्यवहारक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जिसकी जीविका व्यवहार से चलती हो। वह जो न्याय या वकालत आदि करता हो। (२) वह जो वयस्क हो गया हो। बालिग।

व्यवहारजीवी–संज्ञा पुं० [सं० व्यवहारजीविन्] वह जो व्यवहार या वकालत आदि के द्वारा अपनी जीविका चलाता हो।

व्यवहारज्ञ–संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जो व्यवहार शास्त्र का ज्ञाता हो। व्यवहार जाननेवाला। (२) वह जो पूर्ण वयस्क हो गया हो। बालिग़।

व्यवहारत्व–संज्ञा पुं० [सं०] व्यवहार का भाव या धर्म।

व्यवहारदर्शन–संज्ञा पुं० [सं०] किसी अभियोग में न्याय और अन्याय अथवा सत्य और मिथ्या का निर्णय करना।

व्यवहारपाद–संज्ञा पुं० [सं०] (१) व्यवहार के पूर्वपक्ष, उत्तर, क्रिया पाद और निर्णय इन चारों का समूह। (२) इन चारों में से कोई एक जो व्यवहार का एक पाद या अंश माना जाता है।

व्यवहार मातृका–संज्ञा स्त्री० [सं०] वे क्रियाएँ जिनका व्यवहार में उपयोग होता है। व्यवहार शास्त्र के अनुसार होनेवाली कार्रवाइयाँ। जैसे,—मुकदमा दायर होना, पेश होना, गवाहों का बुलाया जाना, उनकी गवाही होना, जिरह और बहस होना, फैसला होना आदि। मिताक्षरा के अनुसार ऐसी क्रियाएँ संख्या में तीस हैं।

व्यवहार मूल–संज्ञा पुं० [सं०] झगड़ा। झगड़ा-रगड़ा।

व्यवहार विधि–संज्ञा स्त्री० [सं०] वह शास्त्र जिसमें व्यवहार संबंधी बातों का उल्लेख हो। वह शास्त्र जिसमें व्यवहार या मुकदमों आदि का विधान हो। धर्मशास्त्र।

व्यवहार शास्त्र–संज्ञा पुं० [सं०] वह शास्त्र जिसमें यह बतलाया गया हो कि वादी और प्रतिवादी के विवाद का कि प्रकार निर्णय करना चाहिए, अभियोग किस प्रकार सुन चाहिए और किस अपराध के लिये कितना दंड दे चाहिए। धर्मशास्त्र।

व्यवहारसिद्धि–संज्ञा स्त्री० [सं०] व्यवहार शास्त्र के अनुसा अभियोगों का निर्णय करना।

व्यवहारस्थान–संज्ञा पुं० [सं०] व्यवहार का विषय या पद।

व्यवहारासन–संज्ञा पुं० [सं०] वह आसन जिस पर अभियो का विचार करते समय विचार करनेवाला बैठता है विचारासन। न्यायासन।

व्यवहारास्पद–संज्ञा पुं० [सं०] वह निवेदन जो वादी आ अभियोग के संबंध में राजा अथवा न्यायकर्त्ता के सम्मु करता हो। नालिश। फ़रियाद।

व्यवहारिक–वि० [सं०] (१) जो व्यवहार के लिये उपयु या ठीक हो। व्यवहार-योग्य। (२) इंगुदी। हिंगोट।

व्यवहारिक जीव–संज्ञा पुं० [सं०] वेदांत के अनुसार विज्ञान मय कोष जो ज्ञानेंद्रिय के साथ बुद्धि के संयुक्त होने होता है।

व्यवहारिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) संसार में रहकर उस सब व्यवहार या कार्य्य करना। (२) इंगुदी का पे (३) झाड़ू।

व्यवहारी–संज्ञा पुं० [सं० व्यवहारिन्] व्यवहार करनेवाला।

व्यवहार्य्य–वि० [सं०] जो व्यवहार करने के योग्य हो। का में लाने लायक।

व्यवहित–वि० [सं०] जिसके आगे किसी प्रकार का व्यवधा या परदा पड़ गया हो। आड़ या ओट में गया हुआ छिपा हुआ।

व्यवहृत–वि० [सं०] (१) जिसका आचरण या अनुष्ठान कि गया हो। (२) जिसका व्यवहार शास्त्र के अनुसार विचा किया गया हो। (३) जो काम में लाया गया हो।

व्यवहृति–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) वह काम जो व्यापार में होता है। रोजगार में होनेवाला धंधा। (२) वाणिज्य। व्यापार। रोजगार। (३) कुशलता। होशियारी।

व्यवाय–संज्ञा पुं० [सं०] (१) तेज। (२) स्त्री-प्रसंग। संभोग। मैथुन। (३) शुद्धि। (४) परिणाम। फल। नतीजा। (५) आड़। ओट। परदा। (६) विघ्न। बाधा। अड़चन।

व्यवाय शोष–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का राजयक्ष्मा या तपेदिक जो बहुत अधिक स्त्री-प्रसंग करने से होता है।

व्यवायी–संज्ञा पुं० [सं० व्यवायिन्] (१) वह जिसे स्त्री प्रसंग की बहुत अधिक कामना रहती हो। कामुक। (२) वह जो बीच में किसी प्रकार का व्यवधान या परदा डाल हो। आड़ या रोक करनेवाला। (३) वह औषधि जो

शरीर में पहुँचकर पहले सब नाड़ियों में फैल जाय और तब पचे। जैसे,—भाँग या अफीम।

व्यश्व-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्राचीन ऋषि का नाम जो ऋग्वेद के कई मंत्रों के द्रष्टा थे। (२) एक प्राचीन राजा का नाम जिसका उल्लेख महाभारत में है।

व्यष्टका-संज्ञा स्त्री० [सं०] कृष्ण पक्ष की प्रतिपदा।

व्यष्टि-संज्ञा स्त्री० [सं०] समूह या समाज में से अलग किया हुआ प्रत्येक व्यक्ति या पदार्थ। वह जिसका विचार अकेले हो, औरों के साथ न हो। समष्टि का एक विशिष्ट और पृथक् अंश। समष्टि का उलटा।

व्यसन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) विपत्ति। आफत। (२) दुःख। कष्ट। तकलीफ। (३) पतन। गिरना। (४) विनाश। नष्ट होना। (५) कोई बुरी या अमंगल बात। (६) वह प्रयत्न जिसका कोई फल न हो। व्यर्थ का उद्योग। (७) विषय-वासना के प्रति होनेवाला अनुराग। विषयों के प्रति आसक्ति। (८) दुर्भाग्य। बदकिस्मती। (९) अयोग्य या असमर्थ होने का भाव। (१०) वह दोष जो काम या क्रोध आदि विकारों से उत्पन्न हुआ हो। जैसे,—शिकार, जूआ, स्त्री-प्रसंग, नृत्य आदि देखना और गीत आदि सुनना।

विशेष—मनु ने व्यसनों की संख्या १८ बतलाई है और इनमें से १० व्यसन कामज तथा ८ क्रोधज कहे हैं। मनु की यह भी आज्ञा है कि राजा को इन सब प्रकार के व्यसनों से बचना चाहिए।

(११) किसी प्रकार का शौक। किसी विषय के प्रति विशेष रुचि या प्रवृत्ति। जैसे,—उन्हें केवल लिखने पढ़ने का व्यसन है।

व्यसनार्त्त-वि० [सं०] जिसे किसी प्रकार की दैवी या मानुषी पीड़ा पहुँची हो।

व्यसनिता-संज्ञा स्त्री० [सं०] व्यसनी होने का भाव या धर्म्म। व्यसनित्व।

व्यसनी-संज्ञा पुं० [सं० व्यसनिन्] (१) वह जिसे किसी प्रकार का व्यसन या शौक हो। (२) वेश्यागामी। रंडीबाज।

व्यस्त-वि० [सं०] (१) घबराया हुआ। व्याकुल। (२) काम में लगा या फँसा हुआ। (३) फैला या छाया हुआ। व्याप्त। (४) फेंका हुआ। (५) इधर उधर, आगे पीछे या ऊपर नीचे किया हुआ। (६) हर एक। अलग अलग। पृथक्।

व्यस्तक-वि० [सं०] जिस में हड्डी न हो। बिना हड्डी का।

व्यस्तपद-संज्ञा पुं० [सं०] व्यवहार शास्त्र में नालिश होने पर ऋण न चुकाना, बल्कि कुछ उज्र करना।

व्यह्न-संज्ञा पुं० [सं०] कल का बीता हुआ दिन।

व्याकरण-संज्ञा पुं० [सं०] वह विद्या या शास्त्र जिस में किसी भाषा के शब्दों के शुद्ध रूपों और वाक्यों के प्रयोग के नियमों आदि का निरूपण होता है। भाषा का शुद्ध प्रयोग और नियम आदि बतलानेवाला शास्त्र।

विशेष—व्याकरण में वर्णों, शब्दों और वाक्यों का विचार होता है; इसी लिये इसके वर्ण-विचार, शब्द-साधन और वाक्य-विन्यास ये तीन मुख्य विभाग होते हैं। व्याकरण के नियम प्रायः लिखी हुई और प्रचलित भाषा के आधार पर निश्चित किए जाते हैं; क्योंकि बोलने में लोग प्रायः प्रयोगों की शुद्धता पर उतना अधिक ध्यान नहीं रखते। व्याकरण में शब्दों के अलग अलग भेद कर लिए जाते हैं; जैसे,—संज्ञा, क्रिया, विशेषण, सर्वनाम आदि; और तब इस बात का विचार किया जाता है कि इन शब्द-भेदों का ठीक ठीक और शुद्ध प्रयोग क्या है। हमारे यहाँ व्याकरण की गणना वेदांग में की गई है।

व्याकर्त्ता-संज्ञा पुं० [सं० व्याकर्तृ] सृष्टि की रचना करनेवाला, परमेश्वर।

व्याकार-संज्ञा पुं० [सं०] (१) किसी पदार्थ का बिगड़ा या बदला हुआ आकार। (२) व्याख्या।

व्याकीर्ण-वि० [सं०] जो चारों ओर अच्छी तरह फैलाया गया हो।

व्याकुल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जो भय या दुःख के कारण इतना घबरा गया हो कि कुछ समझ न सके। बहुत घबराया हुआ। विकल। (२) जिसे किसी बात की बहुत अधिक उत्कंठा या कामना हो। (३) कातर।

व्याकुलता-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) व्याकुल होने का भाव। विकलता। घबराहट। (२) कातरता।

व्याकृति-संज्ञा स्त्री० [सं०] छल। धोखा। फरेब।

व्याकृति-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) प्रकाश में लाने का काम। (२) व्याख्या करने का काम। व्याख्यान। (३) रूप में परिवर्तन करने का काम।

व्याकोश-संज्ञा पुं० [सं०] (१) विकास। (२) स्फुटित होना। खिलना।

व्याक्रोश-संज्ञा पुं० [सं०] (१) किसी का तिरस्कार करते हुए कटाक्ष करना। (२) चिल्लाना। चिल्लाहट।

व्याक्षेप-संज्ञा पुं० [सं०] (१) विलंब। देर। (२) आकुल होने का भाव। घबराहट।

व्याख्या-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) वह वाक्य आदि जो किसी जटिल पद या वाक्य आदि का अर्थ स्पष्ट करता हो। किसी बात को समझाने के लिये किया हुआ उसका विस्तृत और स्पष्ट अर्थ। टीका। व्याख्यान।

विशेष—शास्त्रों या सूत्रों आदि की जो व्याख्या होती है, उसके वृत्ति, भाष्य, वार्त्तिक, टीका, टिप्पणी आदि अनेक भेद माने गए हैं।

(२) वह ग्रंथ जिसमें इस प्रकार अर्थ-विस्तार किया गया हो। (३) कहना। वर्णन।

व्याख्यागम्य-संज्ञा पुं० [सं०] वादी के अभियोग का ठीक ठीक उत्तर न देकर इधर उधर की बातें कहना। (व्यवहार)

वि० जो व्याख्या अथवा टीका आदि की सहायता से समझा जा सके।

व्याख्यात-वि० [सं०] जिसकी व्याख्या की गई हो।

व्याख्यातव्य-वि० [सं०] जो व्याख्या करने के योग्य हो।

व्याख्याता-संज्ञा पुं० [सं० व्याख्यातृ] (१) वह जो किसी विषय की व्याख्या करता हो। व्याख्या करनेवाला। (२) वह जो व्याख्यान देता हो। भाषण करनेवाला।

व्याख्यान-संज्ञा पुं० [सं०] (१) किसी विषय की व्याख्या या टीका करने अथवा विवरण बतलाने का काम। (२) बोलकर कोई विषय समझाने का काम। भाषण। (३) वह जो कुछ व्याख्या रूप में या समझाने के लिये कहा जाय। भाषण। वक्तृता।

व्याख्यानशाला-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्थान जहाँ किसी प्रकार का व्याख्यान आदि होता हो।

व्याख्या स्वर-संज्ञा पुं० [सं०] वह स्वर जो न बहुत ऊँचा हो और न बहुत नीचा। मध्यम स्वर।

व्याख्येय-वि० [सं०] जो व्याख्या करने के योग्य हो। वर्णन करने या समझाने लायक।

व्याघट्टन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) अच्छी तरह रगड़ने का काम। संघर्षण। रगड़। (२) मथना। बिलोना।

व्याघात-संज्ञा पुं० [सं०] (१) विघ्न। खलल। बाधा।

क्रि० प्र०—पड़ना।—होना।

(२) आघात। प्रहार। मार। (३) ज्योतिष के विष्कंभ आदि सत्ताइस योगों में से तेरहवाँ योग जिसमें किसी प्रकार का शुभ कार्य्य करना वर्जित है। पर कुछ लोगों का मत है कि इसके पहले छः दंडों को छोड़कर शेष समय में शुभ काम किए जा सकते हैं। कहते हैं कि इस योग में जो बालक जन्म ग्रहण करता है, वह साधुओं के काम में विघ्न करनेवाला, कठोर, शठ और निर्दय होता है। (४) काव्य में एक प्रकार का अलंकार जिसमें एक ही उपाय के द्वारा अथवा एक ही साधन के द्वारा दो विरोधी कार्य्यों के होने का वर्णन होता है। उ०—(क) जासों कादर जगत के बंधन दीन दयाल। ता चितवनि सों नियम के मन बाँधे गोपाल। (ख) नाम प्रभाव जान शिव नीके। कालकूट फल दीन अमी के। (ग) रण से हूटे को अमर भागत कादर कूर। यहै बाद चित करि नहीं बिचलत साँचे सूर। (घ) मिलत एक दारुन दुख देहीं। बिछुरत एक प्रान हरि लेहीं।

व्याघ्र-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बाघ या शेर नामक प्रसिद्ध हिंस्र जंतु। वि० दे० "शेर"। (२) लाल रेंड़। (३) करंज।

व्याघ्रकंद-संज्ञा पुं० [सं०] लाल रेंड़।

व्याघ्रखड्डा-संज्ञा पुं० [सं०] बाघ या शेर का नाखून जो प्रायः बालकों के गले में उन्हें नजर लगने से बचाने के लिये पहनाया जाता है।

व्याघ्रग्रीव-संज्ञा पुं० [सं०] (१) पुराणानुसार एक प्राचीन देश का नाम। (२) इस देस का निवासी।

व्याघ्रघंटा-संज्ञा स्त्री० [सं०] किंकिणी या गोबिंदी नाम की लता जो कोंकण प्रदेश में अधिकता से होती है। वैद्यक के अनुसार यह पित्तवर्धक, उष्ण, रुचिकर और विष तथा कफ की नाशक मानी गई है।

व्याघ्रघंटी-संज्ञा स्त्री० दे० "व्याघ्रघंटा"।

व्याघ्रचर्म्म-संज्ञा पुं० [सं०] बाघ या शेर की खाल जिस पर प्रायः लोग बैठते हैं, या जो शोभा के लिये कमरों आदि में लटकाई जाती है।

व्याघ्रतरु-संज्ञा पुं० [सं०] लाल रेंड़।

व्याघ्रतल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) लाल रेंड़। (२) नखी या व्याघ्रनख नामक गंध द्रव्य।

व्याघ्रतला-संज्ञा स्त्री० [सं०] नख या व्याघ्रनख नामक गंध द्रव्य। बघनहा।

व्याघ्रता-संज्ञा स्त्री० [सं०] व्याघ्र का भाव या धर्म।

व्याघ्रदंष्ट्र-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का गुल्म।

व्याघ्रदल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) नख या व्याघ्रनख नामक गंध द्रव्य। बघनहा। (२) लाल रेंड़।

व्याघ्रदला-संज्ञा स्त्री० दे० "व्याघ्रदल"।

व्याघ्रनख-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बाघ या शेर का नाखून जो प्रायः बच्चों के गले में उन्हें नजर से बचाने के लिये पहनाया जाता है। (२) नख या बघनहा नामक प्रसिद्ध गंध द्रव्य। वि० दे० "नख"। (३) थूहर। (४) एक प्रकार का कंद।

व्याघ्रनखक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) व्याघ्रनख। (२) नाखून के द्वारा लगी हुई चोट। नखक्षत।

व्याघ्रनखी-संज्ञा स्त्री० [सं०] नख या बघनहा नामक गंध द्रव्य। वि० दे० "नख"।

व्याघ्रनायक-संज्ञा पुं० [सं०] गीदड़।

व्याघ्रपद-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का पेड़। (धुरंधर०)

व्याघ्रपद्-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्रकार का गुल्म। (२) वशिष्ट गोत्र के एक प्राचीन ऋषि का नाम जो ऋग्वेद के कई मंत्रों के द्रष्टा थे।

व्याघ्रपाद्-संज्ञा पुं० [सं०] (१) विकंकत या कँटाई नामक वृक्ष। (२) एक प्राचीन ऋषि का नाम।

व्याघ्रपादपी-संज्ञा स्त्री० [सं०] विकंकत। गवांकुश।

व्याघ्रपाद्-संज्ञा पुं० [सं०] (१) विकंकत या कंटाई नामक वृक्ष। (२) विकंटक । गर्जाहुल । (३) एक प्राचीन ऋषि का नाम।

व्याघ्रपुच्छ-संज्ञा पुं० [सं०] रेंड़ ।

व्याघ्रपुष्प-संज्ञा पुं० [सं०] नख या बगनहा नामक गंध द्रव्य ।

व्याघ्रपुष्पि-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन गोत्र-प्रवर्त्तक ऋषि का नाम ।

व्याघ्रभट-संज्ञा पुं० [सं०] एक राक्षस का नाम ।

व्याघ्रमुख-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बिल्ली । (२) पुराणानुसार एक पर्वत का नाम । (३) बृहत्संहिता के अनुसार एक देश का नाम । (४) इस देश का निवासी ।

व्याघ्ररूपा-संज्ञा स्त्री० [सं०] वंध्या ककंटी । वन-ककोड़ा ।

व्याघ्रलोम-संज्ञा पुं० [सं० व्याघ्रलोमन्] ऊपरी ओंठ पर के बाल । मूँछ ।

व्याघ्रवक्त्र-संज्ञा पुं० [सं० व्याघ्रवक्त्र] (१) बिल्ली । (२) शिव का एक नाम ।

व्याघ्रसेवक-संज्ञा पुं० [सं०] शृगाल । गीदड़ ।

व्याघ्रहस्त-संज्ञा पुं० [सं०] लाल रेंड़।

व्याघ्राक्ष-संज्ञा पुं० [सं०] (१) कार्त्तिकेय के एक अनुचर का का नाम । (२) पुराणानुसार एक राक्षस का नाम ।

व्याघ्राजिन-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन ऋषि का नाम ।

व्याघ्राट-संज्ञा पुं० [सं०] लवा नामक पक्षी । अगिन चिड़िया । वि० दे० "लवा" ।

व्याघ्रादनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] निसोथ ।

व्याघ्रायुध-संज्ञा पुं० [सं०] नख नामक गंधद्रव्य ।

व्याघ्रास्य-संज्ञा पुं० [सं०] बिल्ली ।

व्याघ्रिस्त्री-संज्ञा स्त्री० [सं०] बौद्धों की एक देवी का नाम ।

व्याघ्री-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) कंटकारी । छोटी कँटाई । (२) एक प्रकार की कौड़ी । (३) नखी नामक गंधद्रव्य ।

व्याघ्रीयुग-संज्ञा पुं० [सं०] बृहती या वनभंटा और कंटकारी, इन दोनों का समूह ।

व्याज-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मन में कोई और बात रखकर ऊपर से कुछ और करना या कहना । कपट । छल । फरेब।धोखा।

यौ०—व्याजनिंदा । व्याजस्तुति । व्याजोक्ति ।

(२) बाधा । विघ्न । खलल । (३) विलंब । देर ।

संज्ञा पुं० दे० "ब्याज" ।

व्याजनिंदा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) वह निंदा जो व्याज अर्थात् छल या कपट से की जाय । ऐसी निंदा जो ऊपर से देखने में स्पष्ट निंदा न जान पड़े । (२) एक प्रकार का शब्दालंकार जिसमें इस प्रकार निंदा की जाती है ।

व्याजस्तुति-संज्ञा स्त्री० सं० वह स्तुति जो व्याज अथवा किसी बहाने से की जाय और ऊपर से देखने में स्तुति न जान पड़े । (२) एक प्रकार का शब्दालंकार जिसमें इस प्रकार स्तुति की जाती है । इस में जो स्तुति की जाती है, वह ऊपर से देखने में निंदा सी जान पड़ती है ।

व्याजोक्ति-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) वह कथन जिसमें किसी प्रकार का छल हो । कपट भरी बात । (२) एक प्रकार का अलंकार जिसमें किसी स्पष्ट या प्रकट बात को छिपाने के लिये किसी प्रकार का बहाना किया जाता है । छेकापह्नुति से इसमें यह अंतर है कि छेकापह्नुति में निषेधपूर्वक बात छिपाई जाती है और इसमें बिना निषेध किए ही छिपाई जाती है । उ०—(क) भूप प्रतापभानु अवनीसा । तासु सचिव मैं सुनहु मुनीसा । (ख) बहुरि गौरि कर ध्यान करेहू । भूप किशोर देखि किन लेहू ।

व्याडंब-संज्ञा पुं० [सं०] लाल रेंड़ ।

व्याड़-संज्ञा पुं० [सं०] (१) साँप । (२) बाघ । शेर । (३) इंद्र का एक नाम ।

वि० धूर्त्त । वंचक ।

व्याड़ायुध-संज्ञा पुं० [सं०] नख नामक गंध द्रव्य ।

व्याड़ि-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन का नाम जिन्होंने एक व्याकरण बनाया था ।

व्यात्युक्षी-संज्ञा स्त्री० [सं०] जल क्रीड़ा ।

व्यादान-संज्ञा पुं० [सं०] (१) फैलाव ।विस्तार। (२) उद्घाटन। खोलना ।

व्यादिश-संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु का एक नाम ।

व्याध-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जो जंगली पशुओं आदि को मारकर अपना निर्वाह करता हो । शिकारी। (२) प्राचीन काल की एक जाति जो जंगली पशुओं को मारकर अपना निर्वाह करती थी । ब्रह्मवैवर्त्त पुराण के अनुसार इसकी उत्पत्ति सर्वस्वी माता और क्षत्रिय पिता से है। (३) प्राचीन काल की शबर नामक नीच जाति ।

वि० दुष्ट । पाजी । लुच्चा ।

व्याधभीत-संज्ञा पुं० [सं०] मृग । हिरन ।

व्याधास-संज्ञा पुं० [सं०] वज्र ।

व्याधि-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) रोग । बीमारी । (२) आफत । झंझट । (३) कुड़ या कुट नाम की ओषधि । (४) साहित्य में एक संचारी भाव । विरह या काम आदि के कारण शरीर में किसी प्रकार का रोग होना ।

व्याधिखड्ग-संज्ञा पुं० [सं०] नख नामक गंध द्रव्य ।

व्याधिघात-संज्ञा पुं० [सं०] अमलतास ।

व्याधिघ्न-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जिस से किसी प्रकार की व्याधि का नाश होता हो । (२) अमलतास ।

व्याधिजित्-संज्ञा पुं० [सं०] अमलतास ।

व्याधित-संज्ञा पुं० [सं०] वह जिसे किसी प्रकार की व्याधि हुई हो । रोगी । बीमार ।

व्याधिनाशन-संज्ञा पुं० [सं०] चोब-चीनी।

व्याधिरिपु-संज्ञा पुं० [सं०] (१) अमलतास। (२) एक प्रकार का अमलतास जिसे कर्णिकार कहते हैं।

व्याधिविपरीत-संज्ञा पुं० [सं०] ऐसी औषध जो व्याधि के विपरीत गुण करनेवाली हो। जैसे,—दस्त आने के समय कब्जियत करनेवाली दवा।

व्याधिस्थान-संज्ञा पुं० [सं०] शरीर। बदन। जिस्म।

व्याधिहंता-संज्ञा पुं० [सं० व्याधिहंतृ] वाराही कंद। शूकर कंद। गेंठी।

वि० जिससे रोग का नाश हो। रोगनाशक।

व्याधिहर-वि० [सं०] व्याधि को दूर करनेवाला। जिससे रोग नष्ट होता हो।

व्याधी-संज्ञा स्त्री० दे० "व्याधि"।

व्याध्य-संज्ञा पुं० [सं०] शिव का एक नाम।

वि० व्याधि संबंधी। व्याधि का।

व्यान-संज्ञा पुं० [सं०] शरीर में रहनेवाली पाँच वायुओं में से एक वायु जो सारे शरीर में संचार करनेवाली मानी जाती है। कहते हैं कि इसी के द्वारा शरीर की सब क्रियाएँ होती हैं; सारे शरीर में रस पहुँचता है, पसीना बहता और खून चलता है, आदमी उठता, बैठता और चलता फिरता है और आँखें खोलता तथा बंद करता है। भावप्रकाश के मत से जब यह वायु कुपित होती है, तब प्रायः सारे शरीर में एक न एक रोग हो जाता है।

व्यानदा-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह शक्ति जो व्यान वायु प्रदान करती है।

व्यापक-वि० [सं०] (१) जो बहुत दूर तक व्याप्त हो। चारों ओर फैला हुआ। जैसे,—यह एक सर्वव्यापक सिद्धांत है। (२) जो ऊपर या चारों ओर से घेरे हुए हो। घेरने या ढकनेवाला। आच्छादक।

व्यापकन्यास-संज्ञा पुं० [सं०] तांत्रिकों के अनुसार एक प्रकार का अंगन्यास। इसमें किसी देवता का मूल मंत्र पढ़ते हुए सिर से पैर तक न्यास करते हैं।

व्यापत्ति-संज्ञा स्त्री० [सं०] मृत्यु। मौत।

व्यापद्-संज्ञा स्त्री० [सं०] मृत्यु। मौत।

व्यापन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) फैलाव। विस्तार। (२) दूर तक फैलना। विस्तृत होना। (३) चारों ओर से या ऊपर से घेरना या ढकना। आच्छादन करना।

व्यापना-क्रि० अ० [सं० व्यापन] किसी चीज के अंदर फैलना। व्याप्त होना। जैसे,—(क) तुम्हें भी इस समय मोह व्यापता है। (ख) ईश्वर घट घट में व्यापता है। (ग) उस के सारे शरीर में विष व्याप गया है।

संयो० क्रि०—जाना।—रहना।

व्यापनीय-वि० [सं०] व्यापन करने के योग्य।

व्यापन्न-वि० [सं०] (१) जो किसी प्रकार की विपत्ति में पड़ा हुआ हो। आफत में फँसा हुआ। (२) मरा हुआ। मृत।

व्यापाद-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मन में दूसरे के अपकार की भावना करना। किसी की बुराई सोचना। (२) मार डालना। (३) नष्ट करना। बरबाद करना।

व्यापादक-वि० पुं० [सं०] (१) वह जो दूसरों की बुराई करने की इच्छा रखता हो। (२) वह जो हत्या या विनाश करता हो।

व्यापादन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) किसी को कष्ट पहुँचाने का उपाय सोचना। (२) मार डालना। वध। हत्या। (३) नष्ट करना। बरबाद करना।

व्यापादनीय-वि० [सं०] मार डालने या नष्ट करने योग्य।

व्यापार-संज्ञा पुं० [सं०] (१) कर्म। कार्य। काम। जैसे,—(क) संसार में दिन रात अनेक प्रकार के व्यापार होते रहते हैं। (ख) सोचना मस्तिष्क का व्यापार है। (२) न्याय के अनुसार विषय के साथ होनेवाला इंद्रियों का संयोग। (३) पदार्थों अथवा धन के बदले में पदार्थ लेना और देना। क्रय विक्रय का कार्य्य। रोजगार। व्यवसाय। जैसे,—(क) आजकल कपड़े का व्यापार बहुत चमक रहा है। (ख) वे रूई, सोने, चाँदी आदि कई चीजों का व्यापार करते हैं। (४) सहायता। मदद।

व्यापारण-संज्ञा पुं० [सं०] (१) आज्ञा देना। (२) किसी काम में। नियुक्त करना

व्यापारी-संज्ञा पुं० [सं० व्यापारिन्] (१) वह जो किसी प्रकार का व्यापार करता हो। (२) व्यवसाय या रोजगार करनेवाला। व्यवसायी। रोजगारी।

वि० [सं० व्यापार+ई (प्रत्य०)] (१) वह जो किसी प्रकार का व्यापार करता हो। (२) व्यवसाय या रोजगार करनेवाला। व्यवसायी। रोजगारी।

वि० [सं० व्यापार+ई (प्रत्य०)] व्यापार संबंधी। व्यापार का। जैसे,—व्यापारी बोलचाल, व्यापारी भाव।

व्याप्ति-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) व्याप्त होने की क्रिया या भाव। चारों ओर या सब जगह फैला हुआ होना। (२) न्याय के अनुसार किसी एक पदार्थ में दूसरे पदार्थ का पूर्ण रूप से मिला या फैला हुआ होना। एक पदार्थ का दूसरे पदार्थ में अथवा उसके साथ सदा पाया जाना। जैसे,—आग में धूएँ की या तिल में तेल की व्याप्ति है।

यौ०—व्याप्ति ज्ञान।

(३) आठ प्रकार के ऐश्वर्यों में से एक प्रकार का ऐश्वर्य। शेष सात ऐश्वर्यों के नाम ये हैं—अणिमा, महिमा,

प्राकाम्य, महिमा, ईशित्व, वशित्व और कामावसायिता।

व्याप्ति ज्ञान-संज्ञा पुं० [सं०] न्याय के अनुसार वह ज्ञान जो साध्य को देखकर साधनवान् के अस्तित्व के संबंध में अथवा साधनवान् को देखकर साध्य के अस्तित्व के संबंध में होता है। जैसे,— धूएँ को देखकर यह समझना कि यहाँ आग भी होगी।

व्याप्तित्व-संज्ञा पुं० [सं०] व्याप्ति का भाव या धर्म्म।

व्याप्य-वि० [सं०] व्याप्त करने के योग्य। व्यापनीय।

संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जिसके द्वारा कोई काम हो। साधन। हेतु। (२) कुट या कुड़ नामक ओषधि। (३) दे० "व्याप्ति"।

व्याम-संज्ञा पुं० [सं०] लंबाई की एक नाप।

विशेष—दोनों हाथों को जहाँ तक हो सके, दोनों बगल में फैलाने पर एक हाथ की उँगलियों के सिरे से दूसरे हाथ हाथ की उँगलियों के सिरे तक जितनी दूरी होती है, वह व्याम कहलाती है।

व्यामिश्र-संज्ञा पुं० [सं०] दो प्रकार के पदार्थों या कार्य्यों को एक में मिलाने की क्रिया।

व्यामोह-संज्ञा पुं० [सं०] मोह। अज्ञान।

व्यायाम-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह शारीरिक श्रम जो केवल शरीर का बल बढ़ाने के उद्देश्य से किया जाता है। कसरत। जोर। जैसे,—डंड, बैठकी करना या मुगदर, डंबल आदि हिलाना। (२) पौरुष। (३) परिश्रम। मेहनत। (४) व्यापार। काम।

व्यायामिक-वि० [सं०] व्यायाम का। व्यायाम संबंधी।

व्यायामी-संज्ञा पुं० [सं० व्यायामिन्] (१) वह जो व्यायाम करता हो। कसरत करनेवाला। कसरती। (२) वह जो बहुत परिश्रम करता हो। परिश्रमी। मेहनती।

व्यायोग-संज्ञा पुं० [सं०] साहित्य में दस प्रकार के रूपकों में से एक प्रकार का रूपक या दृश्य काव्य। इसकी कथावस्तु किसी ऐसे ग्रंथ से ली जानी चाहिए, जिससे सब लोग भली भाँति परिचित हों। इसके पात्रों में स्त्रियाँ कम और पुरुष अधिक होते हैं। इसमें गर्भ, विमर्ष और संधि नहीं होती। इसमें एक ही अंक रहता है और कौशिकी वृत्ति का व्यवहार होता है। इसका नायक कोई प्रसिद्ध राजर्षि, दिव्य और धीरोद्धत होना चाहिए। इसमें शृंगार, हास्य और शांत के सिवा और सब रसों का वर्णन होता है।

व्यारोष-संज्ञा पुं० [सं०] क्रोध। गुस्सा।

व्यालंब-संज्ञा पुं० [सं०] लाल रेंड़।

व्याल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) साँप। (२) दुष्ट या पाजी हाथी। (३) बाघ। शेर। (४) वह बाघ जो शिकार करने के लिये सधाया गया हो। (५) राजा। (६) विष्णु का एक नाम। (७) दंडक छंद का एक भेद। (८) कोई हिंसक जंतु।

वि० (१) दूसरों का अपकार करनेवाला। (२) दुष्ट। पाजी।

व्यालक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) दुष्ट या पाजी हाथी। (२) हिंसक जंतु।

व्यालकरज-संज्ञा पुं० [सं०] नख या बगनहा नामक गंध द्रव्य।

व्यालखड्ग-संज्ञा पुं० [सं०] नख या बगनहा नामक गंध द्रव्य।

व्यालगंधा-संज्ञा स्त्री० [सं०] नाकुली नामक कंद।

व्यालग्राह-संज्ञा पुं० [सं०] वह जो साँपों को पकड़ता हो। सँपेरा।

व्यालग्राही-संज्ञा पुं० [सं० व्यालग्राहिन्] वह जो साँप पकड़ने का काम करता हो। सँपेरा।

व्यालग्रीव-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बृहत्संहिता के अनुसार एक देश का नाम। (२) इस देश का निवासी।

व्यालजिह्वा-संज्ञा स्त्री० [सं०] कँगही या कंघी नामक पौधा। महासमंगा।

व्यालता-संज्ञा स्त्री० [सं०] व्याल का भाव या धर्म्म। व्यालत्व। व्यालपन।

व्यालत्व-संज्ञा पुं० [सं०] व्याल का भाव या धर्म्म। व्यालता। व्यालपन।

व्यालदंष्ट्र-संज्ञा पुं० [सं०] गोखरू का पौधा।

व्यालनख-संज्ञा पुं० [सं०] नख या बगनहा नामक गंध द्रव्य।

व्यालपत्र-संज्ञा पुं० [सं०] खेतपापड़ा।

व्यालपत्रा-संज्ञा स्त्री० [सं०] खेतपापड़ा।

व्यालपाणिज-संज्ञा पुं० [सं०] नख या बगनहा नामक गंध द्रव्य।

व्यालप्रहरण-संज्ञा पुं० [सं०] नख या बगनहा नामक गंध द्रव्य।

व्यालबल-संज्ञा पुं० [सं०] नख या बगनहा नामक गंध द्रव्य।

व्यालमृग-संज्ञा पुं० [सं०] बाघ। शेर।

व्यालायुध-संज्ञा पुं० [सं०] नख या बगनहा नामक गंध द्रव्य।

व्यालि-संज्ञा पुं० [सं०] व्याड़ि नामक एक प्राचीन ऋषि जिन्होंने एक व्याकरण बनाया था।

व्यालिक-संज्ञा पुं० [सं०] वह जो साँपों को पकड़कर अपनी जीविका चलाता हो। सँपेरा।

व्यालीढ़-संज्ञा पुं० [सं०] साँप के काटने का एक प्रकार। साँप का वह काटना जिसमें केवल एक या दो दाँत लगे हों और घाव में से खून न बहा हो।

व्यालुप्त-संज्ञा पुं० [सं०] साँप के काटने का एक प्रकार। साँप का वह काटना जिसमें दो दाँत भरपूर बैठे हों और घाव में से खून भी निकला हो।

ब्यालू†–संज्ञा पुं० स्त्री० [सं० वेला] रात के समय का भोजन । रात का खाना ।

व्यावर्ग–संज्ञा पुं० [सं०] विभाग करना । हिस्सा लगाना । विभक्त करना । बाँटना ।

व्यावर्त्त–संज्ञा पुं० [सं०] (१) चकवँड़ । चक्रमर्द । (२) आगे की ओर निकली हुई नाभि । नाभिकंटक ।

व्यावर्त्तक–संज्ञा पुं० [सं०] वह जो व्यावर्त्तन करता हो । पीछे की ओर लौटानेवाला ।

व्यावर्त्तन–संज्ञा पुं० [सं०] (१) जो पराङ्मुख किया गया हो । (२) पीछे की ओर लौटाया या मोड़ा हुआ ।

व्यावहारिक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) व्यवहार । (२) वह जो व्यवहार शास्त्र के अनुसार अभियोगों का विचार करता हो । (३) राजा का वह अमात्य या मंत्री जिसके अधिकार में भीतरी और बाहरी सब तरह के काम हों ।

वि० (१) व्यवहार संबंधी । व्यवहार या बरताव का । (२) व्यवहार शास्त्र संबंधी । व्यवहार शास्त्र का ।

व्यावृत्त–वि० [सं०] (१) छूटा हुआ । निवृत्त । (२) मना किया हुआ । निषिद्ध । (३) टूटा हुआ । खंडित । (४) अलग किया हुआ । विभक्त । (५) जो मन में पसंद किया गया हो । मनोनीत । (६) चारों ओर से घेरा हुआ । (७) ऊपर से ढका हुआ । आच्छादित । (८) जिसकी प्रशंसा या स्तुति की गई हो ।

व्यावृत्ति–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) खंडन । (२) आवृत्ति । (३) मन से चुनने या पसंद करने का काम । (४) चारों ओर से घेरना । (५) स्तुति । प्रशंसा । तारीफ । (६) मनाही । निषेध । (७) बाधा । खलल । (८) निराकरण । निर्णय । मीमांसा । (९) नियोग ।

व्यासंग–संज्ञा पुं० [सं०] बहुत अधिक आसक्ति या मनोयोग ।

व्यास–संज्ञा पुं० [सं०] (१) पराशर के पुत्र कृष्ण द्वैपायन जिन्होंने वेदों का संग्रह, विभाग और संपादन किया था । कहा जाता है कि अठारहों पुराणों, महाभारत, भागवत और वेदांत आदि की रचना भी इन्हींने की थी ।

विशेष—इनके जन्म आदि की कथा महाभारत में बहुत विस्तार के साथ दी है । उसमें कहा गया है कि एक बार मत्स्यगंधा सत्यवती नाव खे रही थी । उसी समय पराशर मुनि वहाँ आ पहुँचे और उसे देखकर आसक्त हो गए । वे उससे बोले कि तुम मेरी कामना पूरी करो । सत्यवती ने कहा—महाराज, नदी के दोनों ओर ऋषि मुनि आदि बैठे हुए हैं और हम लोगों को देख रहे हैं । मैं कैसे आपकी कामना पूरी करूँ । इस पर पराशर मुनि ने अपने तप के बल से कुहरा उत्पन्न कर दिया जिससे चारों ओर अँधेरा छा गया । उस समय सत्यवती ने फिर कहा—महाराज, मैं अभी कुमारी हूँ; और आपकी कामना पूरी करने से मेरा कौमार नष्ट हो जायगा । उस दशा में मैं किस प्रकार अपने घर में रह सकूँगी ? पराशर ने उत्तर दिया—नहीं, इससे तुम्हारा कौमार नष्ट नहीं होगा । तुम मुझसे वर माँगो । सत्यवती ने कहा कि मेरे शरीर से मछली की जो गंध आती है, वह न आवे । पराशर ने कहा कि ऐसा ही होगा । उसी समय से उसके शरीर से सुगंध निकलने लगी और तब से उसका नाम गंधवती या योजनगंधा पड़ा । इसके उपरांत पराशर मुनि ने उसके साथ संभोग किया जिससे उसे गर्भ रह गया; और उस गर्भ से इन्हीं व्यासदेव की उत्पत्ति हुई । इनका जन्म नदी के बीच के एक टापू में हुआ था और इनका रंग बिलकुल काला था; इसलिये इनका नाम कृष्ण द्वैपायन पड़ा । इन्होंने बचपन से ही तपस्या आरंभ की और बड़े होने पर वेदों का संग्रह तथा विभाग किया; इसलिये ये वेदव्यास कहलाए । पीछे से जब शांतनु के साथ सत्यवती का विवाह हुआ, तब अपने पुत्र विचित्रवीर्य्य के मरने पर सत्यवती ने इन्हें बुलाकर विचित्रवीर्य्य की विधवा पत्नियों (अंबिका और अंबालिका) के साथ नियोग करने की आज्ञा दी, जिससे धृतराष्ट्र और पांडु का जन्म हुआ । विदुर भी इन्हीं के वीर्य्य से उत्पन्न हुए थे । ये पाराशर्य्य, कानीन, बादरायण, सत्यभारत, सत्यव्रत और सात्यवतेय भी कहलाते हैं ।

(२) पुराणानुसार वे अट्ठाईस महर्षि जिन्होंने भिन्न भिन्न कल्पों में जन्म ग्रहण करके वेदों का संग्रह और विभाग किया था । ये सब ब्रह्मा और विष्णु के अवतार माने जाते हैं; और इनके नाम इस प्रकार हैं—स्वयंभुव, प्रजापति या मनु, उशना, बृहस्पति, सविता, मृत्यु या यम, इंद्र, वशिष्ठ, सारस्वत, त्रिधामा, त्रयारुण या त्रिवृष, सुतेजा या भरद्वाज, अंतरिक्ष या धर्म्म, वप्रन् या सुचक्षु, त्र्यारुणि, धनंजय, कृतंजय, ऋणंजय, भरद्वाज, गौतम, उत्तम या हर्यात्मा, वाजश्रवा या नारायण (इन्हें वेन भी कहते हैं), सोमशुष्मायन या तृणबिंदु, ऋक्ष या वाल्मीकि, शक्ति, पराशर, जातूकर्ण्य और कृष्ण द्वैपायन । (३) वह ब्राह्मण जो रामायण, महाभारत या पुराणों आदि की कथाएँ लोगों को सुनाता हो । कथावाचक । (४) वह रेखा जो किसी बिलकुल गोल रेखा या वृत्त के किसी एक स्थान से बिलकुल सीधी चलकर दूसरे सिरे तक पहुँची हो । (५) विस्तार । फैलाव ।

व्यासकूट–संज्ञा पुं० [सं०] (१) महाभारत में आए हुए वेदव्यास के कूट श्लोक । (२) वे कूट श्लोक जो श्रीमद्भाग

होने पर रामचंद्रजी ने माल्यवान् पर्वत पर कहे थे और जिनसे उन्हें कुछ शांति मिली थी।

व्यासक्त–वि० [सं०] जो बहुत अधिक आसक्त हुआ हो। जिसका मन बेतरह आ गया हो।

व्यासगीता–संज्ञा स्त्री० [सं०] एक उपनिषद् का नाम।

व्यासता–संज्ञा स्त्री० [सं०] व्यास का भाव या धर्म्म। व्यासत्व।

व्यासतीर्थ–संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार एक तीर्थ का नाम।

व्यासत्व–संज्ञा पुं० [सं०] व्यास का भाव या धर्म्म।

व्यासमूर्त्ति–संज्ञा पुं० [सं०] शिव का एक नाम।

व्यासवन–संज्ञा पुं० [सं०] महाभारत के अनुसार एक प्राचीन वन का नाम।

व्याससूत्र–संज्ञा पुं० [सं०] वेदांत सूत्र।

व्यासस्थली–संज्ञा स्त्री० [सं०] महाभारत के अनुसार एक प्राचीन पवित्र तीर्थ का नाम।

व्यासारण्य–संज्ञा पुं० [सं०] व्यासवन नामक प्राचीन वन।

व्यासार्द्ध–संज्ञा पुं० [सं०] व्यास का आधा भाग। किसी वृत्त के केंद्र से उसके किसी छोर तक की रेखा।

व्यासासन–संज्ञा पुं० [सं०] वह आसन जिस पर कथा कहने-वाले व्यास बैठकर कथा कहते हैं।

व्यासिद्ध–वि० [सं०] (१) मना किया हुआ। निषिद्ध। (२) रुका हुआ। अवरुद्ध।

व्यासीय–वि० [सं०] व्यास संबंधी। व्यास का।

व्याहत–वि० [सं०] (१) मना किया हुआ। निवारित। निषिद्ध। (२) व्यर्थ।

व्याहति–संज्ञा स्त्री० [सं०] बाधा डालना। खलल पहुँचाना।

व्याहरण–संज्ञा पुं० [सं०] कथन। उक्ति।

व्याहार–संज्ञा पुं० [सं०] वाक्य। जुमला।

व्याहृत–वि० [सं०] कहा हुआ। कथित।

व्याहृति–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) कथन। उक्ति। (२) भूः, भुवः स्वः इन तीनों का मंत्र। (कहते हैं कि जहाँ और कोई मंत्र न हो, वहाँ इसी व्याहृति मंत्र से काम लेना चाहिए।)

व्युच्छित्ति–संज्ञा स्त्री० [सं०] विनाश। बरबादी।

व्युच्छेत्ता–संज्ञा पुं० [सं० व्युच्छेतृ] विनाश करनेवाला। बरबाद करनेवाला।

व्युत्क्रम–संज्ञा पुं० [सं०] क्रम में उलट फेर होना। व्यतिक्रम। गड़बड़ी।

व्युत्क्रांता–संज्ञा स्त्री० [सं०] पहेली।

व्युत्थान–संज्ञा पुं० [सं०] (१) स्वतंत्र या स्वाधीन होकर काम करना। (२) किसी के विरुद्ध आचरण करना। खिलाफ चलना। (३) रुकावट डालना। रोकना। (४) समाधि। (५) एक प्रकार का नृत्य। (६) योग के अनुसार चित्त की क्षिप्त, मूढ़ और विक्षिप्त ये तीनों अवस्थाएँ या चित्त-भूमियाँ जिनमें योग का साधन नहीं हो सकता। इन भूमियों में चित्त बहुत चंचल रहता है।

व्युत्पत्ति–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) किसी पदार्थ आदि की विशिष्ट उत्पत्ति। किसी चीज का मूल उद्गम या उत्पत्ति स्थान। (२) शब्द का मूल रूप। वह शब्द जिससे कोई दूसरा शब्द निकला हो। (३) किसी विज्ञान या शास्त्र आदि का अच्छा ज्ञान। जैसे,—दर्शन शास्त्र में उनकी अच्छी व्युत्पत्ति है।

व्युत्पन्न–वि० [सं०] (१) जिसका संस्कार हो चुका हो। संस्कृत। (२) जिसका किसी विज्ञान या शास्त्र में अच्छा प्रवेश हो। जो किसी शास्त्र आदि का अच्छा ज्ञाता हो।

व्युत्पादक–वि० [सं०] व्युत्पत्ति करनेवाला। उत्पन्न करनेवाला।

व्युत्पादन–संज्ञा पुं० [सं०] व्युत्पत्ति।

व्युपदेश–संज्ञा पुं० [सं०] ठगने या धोखा देने का काम। ठगी।

व्युपरम–संज्ञा पुं० [सं०] (१) शांति। (२) छुटकारा। निवृत्ति। (३) स्थिति।

व्युपशम–संज्ञा पुं० [सं०] अशांति।

व्युष–संज्ञा स्त्री० [सं०] सूर्य्य के उदय होने का समय। प्रातः-काल। सबेरा।

व्युषिताश्व–संज्ञा पुं० [सं०] महाभारत के अनुसार एक राजा का नाम।

व्युष्ट–संज्ञा पुं० [सं०] (१) प्रभात। तड़का। (२) दिन। (३) फल।

वि० जला या झुलसा हुआ।

व्युष्टि–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) फल। (२) समृद्धि। (३) स्तुति। प्रशंसा। (४) प्रकाश। उजाला। (५) प्रभात। तड़का। (६) दाह। जलन। (७) इच्छा। कामना। ख्वाहिश।

व्यूक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्राचीन देश का नाम। (२) इस देश का निवासी।

व्यूढ़–संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जो व्यूह बनाकर खड़ा हो। (२) वह जिसका विवाह हो चुका हो। विवाहित।

वि० (१) स्थूल। मोटा। (२) उत्तम। बढ़िया। (३) तुल्य। समान। (४) दृढ़। मजबूत।

व्यूढ़ि–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) विन्यास। सजावट। (२) स्थूलता। मोटाई।

व्यूत–वि० [सं०] बुना हुआ।

व्यूति–संज्ञा स्त्री० [सं०] कपड़े आदि बुनने की क्रिया। बुनाई।

व्यूह–संज्ञा पुं० [सं०] (१) समूह। जमघट। (२) निर्माण। रचना। (३) तर्क। (४) शरीर। बदन। (५) सेना। फौज। (६) परिणाम। नतीजा। (७) युद्ध के समय की जानेवाली सेना की स्थापना। लड़ाई के समय की अलग

अलग उपयुक्त स्थानों पर की हुई सेना के भिन्न भिन्न अंगों की नियुक्ति। सेना का विन्यास। बलविन्यास।

विशेष—प्राचीन काल में युद्ध क्षेत्र में लड़ने के लिये पैदल, अश्वारोही, रथ और हाथी आदि कुछ खास ढंग से और खास खास मौकों पर रखे जाते थे; और सेना का यही स्थापन व्यूह कहलाता था। आकार आदि के विचार से ये व्यूह कई प्रकार के होते थे। जैसे,—दंड व्यूह, शकट व्यूह, वराहव्यूह, मकरव्यूह, सूचीव्यूह, पद्मव्यूह, चक्रव्यूह, वज्रव्यूह, गरुड़व्यूह, श्येनव्यूह, मंडलव्यूह, धनुव्यूह, सर्वतोभद्रव्यूह आदि। राजा या सेना का प्रधान सेनापति प्रायः व्यूह के मध्य में रहता था; और उस पर सहसा आक्रमण नहीं हो सकता था। जब इस प्रकार सेना के सब अंग स्थापित कर दिए जाते थे, तब शत्रु सहसा उन्हें छिन्न भिन्न नहीं कर सकते थे।

(८) किसी प्रकार के आक्रमण या विपत्ति आदि से रक्षित रहने के लिये की हुई ऊपरी योजनाएँ।

व्यूहन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) युद्ध के लिये भिन्न भिन्न स्थानों पर सैनिकों की नियुक्ति करना। सेना को स्थापित करना। व्यूह रचना। (२) मिलाना।

व्यूहमति-संज्ञा पुं० [सं०] ललित विस्तर के अनुसार एक देवपुत्र का नाम।

व्यूहराज-संज्ञा पुं० [सं०] एक बोधिसत्व का नाम।

व्योम संज्ञा पुं० [सं० व्योमन्] (१) आकाश। अंतरिक्ष। आसमान। (२) जल। पानी। (३) मेघ। बादल।

व्योमकेश-संज्ञा पुं० [सं०] शिव का एक नाम।

व्योमकेशी-संज्ञा पुं० [सं० व्योमकेशिन्] शिव का एक नाम।

व्योमगंगा-संज्ञा स्त्री० [सं०] आकाश गंगा।

व्योमगमनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह विद्या जिसके द्वारा मनुष्य आकाश में उड़ सकता हो। आसमान में उड़ने की विद्या।

व्योमचर-संज्ञा पुं० [सं०] वह जो आकाश में विचरण करता हो। आकाशचारी।

व्योमचारी संज्ञा पुं० [सं० व्योमचारिन्] (१) देवता। (२) पक्षी। चिड़िया। (३) वह जो आकाश में विचरण करता हो।

व्योमधूम-संज्ञा पुं० [सं०] मेघ। बादल।

व्योमनासिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] भारती नामक पक्षी।

व्योमपाद-संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु का एक नाम।

व्योममंडल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) आकाश। आसमान। (२) पताका। ध्वजा। झंडा।

व्योममुद्गर-संज्ञा पुं० [सं०] वह शब्द जो हवा के बहुत जोर से चलने से होता है। झोंका।

व्योममृग-संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा के दसवें घोड़े का नाम।

व्योमयान-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह यान या सवारी जिस पर चढ़कर मनुष्य आकाश में उड़ सकता हो। विमान। (२) हवाई जहाज।

व्योमरत्न-संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य।

व्योमवल्ली-संज्ञा स्त्री० [सं०] आकाशवल्ली या अमरबेल नाम की लता।

व्योमसरिता-संज्ञा स्त्री० [सं० व्योमसरित्] आकाश गंगा। मंदाकिनी।

व्योमस्थली-संज्ञा स्त्री० [सं०] पृथ्वी। जमीन।

व्योमाम-संज्ञा पुं० [सं०] गौतम बुद्ध का एक नाम।

व्योमारि-संज्ञा पुं० [सं०] विश्वेदेवता।

व्योमोदक-संज्ञा पुं० [सं०] वर्षा का जल। बरसात का पानी।

व्योमिक-वि० [सं०] व्योम संबंधी। व्योम या आकाश का।

व्योष-संज्ञा पुं० [सं०] सोंठ, पीपल और मिर्च इन तीनों का समूह। त्रिकटु।

ब्रज-संज्ञा पुं० [सं०] (१) जाना या चलना। गमन। (२) समूह। झुंड। (३) मथुरा और वृंदावन के आस पास का प्रांत जो भगवान श्रीकृष्णचंद्र का लीलाक्षेत्र है और जो इसी कारण बहुत पवित्र माना जाता है। पुराणों आदि के अनुसार मथुरा से चारों ओर ८४-८४ कोस तक की भूमि ब्रज भूमि कही गई है; और इसकी प्रदक्षिणा का बहुत अधिक माहात्म्य कहा गया है।

ब्रजन-संज्ञा पुं० [सं०] चलना। जाना। गमन।

ब्रजनाथ-संज्ञा पुं० [सं०] श्रीकृष्ण।

ब्रज भाषा-संज्ञा स्त्री० [सं०] मथुरा, आगरा, इटावा और इसके आस पास के प्रदेशों में बोली जानेवाली एक प्रसिद्ध भाषा जिसकी उत्पत्ति शौरसेनी प्राकृत से हुई है। इन जिलों के पश्चिम या दक्षिण में यही भाषा राजस्थानी का रूप धारण कर लेती है। इस भाषा का प्राचीन साहित्य बहुत बड़ा और बढ़ा है और इधर चार पाँच सौ वर्षों में उत्तर भारत के अधिकांश कवियों ने प्रायः इसी भाषा में कविताएँ की हैं, जिनमें से सूर, तुलसी, बिहारी आदि अनेक कवियों ने तो बहुत अधिक प्रसिद्धि प्राप्त की है। यह भाषा बहुत ही कर्ण-मधुर मानी जाती है। खड़ी बोली में जो संज्ञाएँ, विशेषण और भूतकृदंत आदि आकारांत होते हैं, वे इस भाषा में प्रायः ओकारांत हो जाते हैं, और कारक चिह्न भी प्रायः ओकारांत ही होते हैं। जैसे,—घोड़ो, बड़ो, को, सों, मों आदि। इसके कारक चिह्न भिन्न हैं, जो न खड़ी बोली में मिलते हैं और न अवधी में। भाषा विज्ञान की दृष्टि से यह भाषा अंतरंग समुदाय की भाषाओं में मुख्य मानी जाती है।

ब्रजमंडल-संज्ञा पुं० [सं०] ब्रज और उसके आस पास का प्रदेश।

व्रजमोहन-संज्ञा पुं० [सं०] श्रीकृष्ण।
व्रजराज-संज्ञा पुं० [सं०] श्रीकृष्ण।
व्रजलाल-संज्ञा पुं० [सं०] श्रीकृष्ण।
व्रजवल्लभ-संज्ञा पुं० [सं०] श्रीकृष्ण।
व्रजस्पति-संज्ञा पुं० [सं०] श्रीकृष्ण।
व्रजेंद्र-संज्ञा पुं० [सं०] (१) नंदराय। (२) श्रीकृष्ण।
व्रजेश्वर-संज्ञा पुं० [सं०] श्रीकृष्ण।
व्रज्या-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) घूमना फिरना। पर्य्यटन। (२) गमन। जाना। (३) आक्रमण। चढ़ाई। (४) एक ही तरह की बहुत सी चीजें एक स्थान पर एकत्र करना। (५) दल। (६) रंगभूमि। नाट्यशाला।
व्रण-संज्ञा पुं० [सं०] शरीर में होनेवाला फोड़ा।
व्रणकृत्-संज्ञा पुं० [सं०] भिलावाँ।
व्रणग्रंथि-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह गाँठ जो फोड़े के ऊपर हो जाती है। वैद्यक में इसकी गणना रोगों में होती है।
व्रणजिता-संज्ञा स्त्री० [सं०] गोरखमुंडी।
व्रणरोपण-संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक के अनुसार फोड़े में से दूषित मांस आदि निकल जाने पर ऐसी क्रिया करना जिसमें वह भर जाय। फोड़े का घाव भरने की क्रिया।
व्रणशोधन-संज्ञा पुं० [सं०] कमीला।
व्रणशोथ-संज्ञा पुं० [सं०] फोड़े या घाव आदि में होनेवाली वह सूजन जिसके साथ में पीड़ा भी हो।
व्रणहृ-संज्ञा पुं० [सं०] रेंड़ का वृक्ष।
व्रणहा-संज्ञा स्त्री० [सं०] गुडुच।
व्रणहृत्-संज्ञा पुं० [सं०] कलिहारी या कलियारी नामक पेड़।
व्रणायाम-संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक के अनुसार एक प्रकार का वात रोग जिसमें मर्म्मस्थान के फोड़े में सारे शरीर की वायु एकत्र होकर व्याप्त हो जाती है। यह रोग असाध्य माना जाता है।
व्रणारि-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बोल नामक गंध द्रव्य। (२) अगस्त नामक वृक्ष।
व्रणी-संज्ञा पुं० [सं० व्रणिन्] वह जिसे व्रण हुआ हो। व्रण का रोगी।
व्रणीय-वि० [सं०] व्रण संबंधी। व्रण या फोड़े का।
व्रत-संज्ञा पुं० [सं०] (१) भोजन करना। भक्षण। खाना। (२) किसी पुण्यतिथि को अथवा पुण्य की प्राप्ति के विचार से नियमपूर्वक उपवास करना।

विशेष—प्रायः हिंदू लोग या तो व्रत के दिन कुछ नहीं खाते, या केवल फल खाते हैं और या केवल कोई एक विशिष्ट पदार्थ खाकर रहते हैं। साधारणतः प्रत्येक एकादशी को जो व्रत किया जाता है, उसमें लोग केवल फल ही खाते हैं; पर प्रदोष आदि के व्रत में अन्न भी खाया करते हैं। कुछ विशिष्ट तिथियों के व्रत भी विशिष्ट प्रकार के हुआ करते हैं। जैसे,—निर्जला एकादशी के व्रत में जल तक ग्रहण न करने का विधान है। कुछ विशिष्ट वारों को उन के देवताओं के उद्देश्य से भी व्रत किया जाता है। कुछ व्रत ऐसे भी होते हैं जो कई कई दिनों बल्कि महीनों तक चलते हैं। जैसे,—चांद्रायण, चातुर्मास्य व्रत आदि। कुछ बड़े बड़े व्रत ऐसे भी होते हैं जिनके अंत में अथवा दूसरे दिन विशेष विधानपूर्वक पारण किया जाता है। कुछ व्रत ऐसे भी हैं जिनका विधान केवल स्त्रियों के लिये है। जैसे,—जीवपुत्रा या हरितालिका व्रत। व्र० से एक दिन पहले से ही लोग कुछ विशेष आचारपूर्वक रहते हैं।

क्रि० प्र०—करना।—रखना।

(३) कोई काम करने अथवा न करने का नियमपूर्वक, दृढ़ निश्चय। किसी बात का पक्का संकल्प। जैसे,—ब्रह्मचर्य्य व्रत, पातिव्रत, पत्नीव्रत।

व्रतचर्य्या-संज्ञा स्त्री० [सं०] किसी प्रकार का व्रत करने या रखने का काम।
व्रतचारिता-संज्ञा स्त्री० [सं०] व्रतचारी होने का भाव या धर्म्म।
व्रतचारी-संज्ञा पुं० [सं० व्रतचारिन्] वह जो किसी प्रकार के व्रत का आचरण या अनुष्ठान करता हो। व्रत करनेवाला।
व्रतती-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) विस्तार। फैलाव। (२) लता।
व्रतधर-संज्ञा पुं० [सं०] वह जिसने किसी प्रकार का व्रत धारण किया हो। व्रत करनेवाला।
व्रतपक्ष-संज्ञा पुं० [सं०] (१) भाद्रपद मास का शुक्ल पक्ष। (२) एक प्रकार का साम।
व्रतभिक्षा-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह भिक्षा जो बालक को यज्ञोपवीत के समय माँगनी पड़ती है।
व्रतसंग्रह-संज्ञा पुं० [सं०] वह दीक्षा जो यज्ञोपवीत के समय गुरु से ली जाती है।
व्रतस्थ-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जिसने किसी प्रकार का व्रत धारण किया हो। (२) ब्रह्मचारी।
व्रतस्नातक-संज्ञा पुं० [सं०] तीन प्रकार के ब्रह्मचारियों में से में से एक प्रकार का ब्रह्मचारी। वह ब्रह्मचारी जिसने गुरु के यहाँ रहकर व्रत तो समाप्त कर लिया हो, पर बिना वेद समाप्त किए ही घर लौट आया हो।
व्रतादेश-संज्ञा पुं० [सं०] उपनयन नामक संस्कार। यज्ञोपवीत।
व्रतादेशन-संज्ञा पुं० [सं०] वेदों का वह उपदेश जो उपनयन संस्कार के बाद ब्रह्मचारी को दिया जाता है।
व्रतिक-संज्ञा पुं० [सं०] वह जिसने किसी प्रकार का व्रत धारण किया हो। व्रत का आचरण करनेवाला।
व्रती-संज्ञा पुं० [सं० व्रतिन्] (१) वह जिसने किसी प्रकार का व्रत धारण किया हो। व्रत का आचरण करनेवाला। (२)

वह जो यज्ञ आदि करता हो। यजमान। (३) ब्रह्मचारी। (४) एक प्राचीन ऋषि का नाम।

व्रतेयु–संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार रौद्राश्व के एक पुत्र का नाम।

व्रतेश–संज्ञा पुं० [सं०] शिव का एक नाम।

व्रतोपद–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का साम।

व्रत्य–संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जिसने कोई व्रत धारण किया हो। (२) ब्रह्मचारी।

व्रश्चन–संज्ञा पुं० [सं०] (१) सोना, चाँदी आदि काटने की छेनी। (२) वह बुरादा जो लकड़ी आदि चीरने पर गिरता है। (३) कुल्हाड़ी। (४) छेदने या काटने की क्रिया।

व्राचड़–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) अपभ्रंश भाषा का एक भेद जिसका व्यवहार आठवीं से ग्यारहवीं शताब्दी तक सिंध प्रांत में था। (२) पैशाचिका भाषा का एक भेद।

व्राज–संज्ञा पुं० [सं०] (१) कुत्ता। (२) दल। समूह। (३) जाना। गमन।

व्राजपति–संज्ञा पुं० [सं०] दल या समूह का नायक।

व्रात–संज्ञा पुं० [सं०] (१) समूह। दल। (२) मनुष्य। आदमी। (३) वह परिश्रम जो जीविका के लिये किया जाय।

व्रातजीवन–संज्ञा पुं० [सं०] वह जो शारीरिक परिश्रम करके अपना निर्वाह करता हो।

व्रात्य–वि० [सं०] व्रत संबंधी। व्रत का।

संज्ञा पुं० (१) वह जिसके दस संस्कार न हुए हों। (२) वह जिसका उपनयन या यज्ञोपवीत संस्कार न हुआ हो। ऐसा मनुष्य पतित और अनार्य्य समझा जाता है और उसे वैदिक कृत्य आदि करने का अधिकार नहीं होता। शास्त्रों में ऐसे व्यक्ति के लिये प्रायश्चित्त का विधान किया गया है।

विशेष—प्राचीन वैदिक काल में "व्रात्य" शब्द प्रायः परमात्मा का वाचक माना जाता था; और अथर्ववेद में "व्रात्य" की बहुत अधिक महिमा कही गई है। उसमें वह वैदिक कार्य्यों का अधिकारी, देवप्रिय, ब्राह्मणों और क्षत्रियों का पूज्य, यहाँ तक कि स्वयं देवाधिदेव कहा गया है। पर परवर्ती काल में यह शब्द पतित और निकृष्ट का वाचक हो गया।

(३) वह पुरुष जो असवर्ण माता-पिता से उत्पन्न हो। दोगला। वर्ण-संकर।

व्रात्यता–संज्ञा स्त्री० [सं०] व्रात्य का भाव या धर्म। व्रात्यत्व।

व्रात्यत्व–संज्ञा पुं० [सं०] व्रात्य का भाव या धर्म। व्रात्यता।

व्रात्ययाजक–संज्ञा पुं० [सं०] वह जो व्रात्यों को यज्ञ कराता हो।

व्रात्यस्तोम–संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल का एक प्रकार का यज्ञ जो व्रात्य या संस्कार-हीन लोग किया करते थे।

व्रीड़–संज्ञा पुं० [सं०] लज्जा। शरम।

व्रीड़ा–संज्ञा स्त्री० [सं०] लज्जा। शरम।

व्रीहि–संज्ञा पुं० [सं०] धान। चावल।

व्रीहिकांचन–संज्ञा पुं० [सं०] मसूर।

व्रीहितुंदिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] देवधान्य।

व्रीहिद्रोण–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का पुदम।

व्रीहिपर्णिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] शालिपर्णी।

व्रीहिभेद–संज्ञा पुं० [सं०] चेना धान।

व्रीहिमुख–संज्ञा पुं० [सं०] सुश्रुत के अनुसार प्राचीन काल का एक प्रकार का शस्त्र जिसका व्यवहार शस्त्र चिकित्सा में होता था

व्रीहिराजक–संज्ञा पुं० [सं०] चेना धान।

व्रीहिश्रेष्ठ–संज्ञा पुं० [सं०] शालि धान्य।

व्रीही–संज्ञा पुं० [सं० व्रीहिन्] वह खेत जिसमें धान बोया हो।

संज्ञा पुं० दे० "व्रीहि"।

व्रीह्यागार–संज्ञा पुं० [सं०] वह स्थान जहाँ पर बहुत सा धान रखा जाता हो। धान का गोदाम।

व्रीह्यपूप–संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल का एक प्रकार का पूआ जो चावल को पीसकर बनाया जाता था।

श

श— हिंदी वर्णमाला में व्यंजन का तीसवाँ वर्ण। इसका उच्चारण प्रधानतया तालु की सहायता से होता है इससे इसे तालव्य श कहते हैं। यह महाप्राण है और इसके उच्चारण में एक प्रकार का घर्षण होता है; इसलिये इसे ऊष्म भी कहते हैं। आभ्यंतर प्रयत्न के विचार से यह ईषत् स्पृष्ट है; और इसमें बाह्य प्रयत्न श्वास और घोष होता है।

शं-संज्ञा पुं० [सं०] (१) कल्याण। मंगल। (२) सुख। (३) शांति। (४) राग का अभाव। बाह्य वस्तुओं से वैराग्य। (५) शास्त्र।
वि० शुभ।

शंक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बैल जो छकड़ा खींचता है। (२) भय। डर। आशंका।

शंकना*-क्रि० अ० [सं० शंका] शंका करना। भय करना। डरना। उ०—(क) साँसति शंकि चली, डरपेंहु ते किंकर, से करनी मुख मोरे।—तुलसी। (ख)—शंक्यो शंभु शैलजा समेत देत मेरो शैल शक्रपद देत ही सुशंक्यो सुरपाल है। भक्तमाल।

शंकनीय-वि० [सं०] शंका करने योग्य। भय के योग्य।

शंकर-वि० [सं०] (१) मंगल करनेवाला। (२) शुभ। (३) लाभदायक।
संज्ञा पुं० (१) शिव का एक नाम जो कल्याण करनेवाले माने जाते हैं। महादेव। शंभु।
यौ०—शंकर की लकड़ी = कहारों की परिभाषा में ऊख। (जब कहार पालकी लेकर चलते हैं और रास्ते में उन्हें ऊख पड़ी हुई मिलती है, तब आगेवाला कहार पीछेवाले कहार को सचेत करने के लिये इस पद का प्रयोग करता है।)
(२) दे० "शंकराचार्य्य"। (३) भीमसेनी कपूर। (४) कबूतर। (५) एक छंद का नाम जिसके प्रत्येक चरण में १६ और १० के विश्राम से २६ मात्राएँ होती हैं और अंत में गुरु लघु होता है। (६) एक राग जो मेघ राग का आठवाँ पुत्र कहा गया है। कहते हैं कि इसका रंग गोरा है; श्वेत वस्त्र धारण किए हुए है; तीक्ष्ण त्रिशूल इसके हाथ में है; पान खाए और अरगजा लगाए स्त्री के साथ विहार करता है। शास्त्रों में यह संपूर्ण जाति का कहा गया है। रात्रि का प्रथम पहर इसके गाने का समय है; और यों रात्रि में किसी समय गाया जा सकता है।
संज्ञा पुं० दे० "संकर" उ०—शंकर बरण पशु पक्षी में हो पाइयत अकबरी पारत अरु भंग निराधारही।—गुमान।

शंकर का फूल-संज्ञा पुं० [सं० शंकर + फूल] शंखोदरी। गुलपरी।

शंकरचूर-संज्ञा पु० [सं०] एक प्रकार का सर्प। कहते हैं कि इसकी उत्पत्ति पातराज और दूधराज सर्प के जोड़े से होती है। यह कभी कभी ९, १० हाथ लंबा होता है। इसके जहर के दाँत बड़े होते हैं, इसी से इसका काटना सांघातिक होता है। यह बहुत कम देखने में आता है और बंग देश में केवल सुंदर वन में होता है। यह बहुत भयंकर होता है और इसका पकड़ना बड़ा कठिन है।

शंकरजटा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) रुद्रजटा। जटाधारी। (२) साबूदाना। साबूदाना। (३) एक प्रकार की पिठवन।

शंकर ताल-संज्ञा पुं० [सं०] संगीत में एक प्रकार का ताल। इसमें ११ मात्राएँ होती हैं, जिसमें ९ आघात और २ खाली होते हैं। इसके मृदंग के बोल इस प्रकार हैं—

\+
धा धिन

१ ० २ ३ ४ ० ५ ६
ता देत खूशा केटे ताग धाधिन ता, देत खूशा तेटे केटे नाग

७ ८ +
देत तेटे कता गदि घेने। धा।

शंकरतीर्थ-संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार एक प्राचीन तीर्थ का नाम।

शंकरप्रिय-संज्ञा पुं० [सं०] (१) तीतर पक्षी। (२) धतूरा। (३) गूमा। द्रोणपुष्पी। गोम।

शंकरमत्त-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का लोहा जिसे शंकर लोह भी कहते हैं।

शंकरवाणी-संज्ञा स्त्री० [सं०] शंकर का वाक्य अर्थात् ब्रह्म वाक्य जिसका सत्य होना परम निश्चित माना जाता है। सदा ठीक घटनेवाली बात।

शंकरशुक्र-संज्ञा पुं० [सं०] पारा। पारद।

शंकर शैल-संज्ञा पुं० [सं०] महादेवजी का पर्वत, कैलास। उ०—शंकरशैल शिला तल मध्य किधौं शुक की अवली फिरि आई।—केशव।

शंकरस्वामी-संज्ञा पुं० दे० "शंकराचार्य्य"।

शंकरा-संज्ञा पुं० [सं० शंकर] (१) एक प्रकार का राग जिसमें सब शुद्ध स्वर लगते हैं। यह दीपक राग का पुत्र माना जाता है। वि० दे० "शंकर" (७) और "शंकराभरण"। (२) शमी। सफेद कीकर। (३) मजीठ। (४) शिवा। भवानी। पार्वती।
वि० स्त्री० कल्याण करनेवाली। मंगल करनेवाली।

शंकराचारी-संज्ञा पुं० [सं०] श्रीशंकराचार्य्य द्वारा संस्थापित शैव धर्म्म का अनुयायी।

शंकराचार्य्य-संज्ञा पुं० [सं०] अद्वैत मत के प्रवर्त्तक एक प्रसिद्ध शैव आचार्य्य जिनका जन्म सन् ७८८ ई० में केरल देश

में कालपी अथवा कापल नामक ग्राम हुआ में हुआ था; और जो ३२ वर्ष की अल्प आयु में सन् ८२० ई० में केदारनाथ के समीप स्वर्गवासी हुए थे। इनके पिता का नाम शिवगुरु और माता का नाम सुभद्रा था। बहुत दिनों तक सपत्नीक शिव की आराधना करने के अनंतर शिवगुरु ने पुत्र रत्न पाया था, अतः उसका नाम शंकर रखा। जब ये तीन ही वर्ष के थे, तब इनके पिता का देहांत हो गया था। ये बड़े ही मेधावी तथा प्रतिभाशाली थे। छः वर्ष की अवस्था में ही ये एक प्रकाण्ड पंडित हो गए थे और आठ वर्ष की अवस्था में इन्होंने संन्यास ग्रहण किया था। इनके संन्यास ग्रहण करने के समय की कथा बड़ी विचित्र है। कहते हैं कि माता अपने एक मात्र पुत्र को संन्यासी बनने की आज्ञा नहीं देती थी। एक दिन जब शंकर अपनी माता के साथ किसी आत्मीय के यहाँ से लौट रहे थे, तब नदी पार करने के लिये वे उसमें घुसे। गले भर पानी में पहुँचकर इन्होंने माता को संन्यास ग्रहण करने की आज्ञा न देने पर डूब मरने की धमकी दी। इससे भयभीत होकर माता ने तुरंत इन्हें संन्यासी होने की आज्ञा प्रदान की और इन्होंने गोविंद स्वामी से संन्यास ग्रहण किया। इन्होंने ब्रह्मसूत्रों की बड़ी ही विशद और रोचक व्याख्या की है। पहले ये कुछ दिनों तक काशी में रहे थे; और तब इन्होंने विजिलबिंदु के ताल वन में मंडन मिश्र को सपत्नीक शास्त्रार्थ में परास्त किया। इन्होंने समस्त भारतवर्ष में भ्रमण करके बौद्ध धर्म्म को मिथ्या प्रमाणित करके वैदिक धर्म्म को पुनरुज्जीवित किया था। उपनिषदों और वेदांत सूत्र पर लिखी हुई इनकी टीकाएँ बहुत प्रसिद्ध हैं। इन्होंने भारतवर्ष में चार मठों की स्थापना की थी जो अभी तक बहुत प्रसिद्ध और पवित्र माने जाते हैं, और जिनके प्रबंधक तथा गद्दी के अधिकारी शंकराचार्य्य कहे जाते हैं। ये चारों स्थान निम्नलिखित हैं—(१) बद्रिकाश्रम, (२) करवीरपीठ, (३) द्वारिका पीठ और (४) शारदा पीठ। इन्होंने अनेक विधर्मियों को भी अपने धर्म्म में दीक्षित किया था। ये शंकर के अवतार माने जाते हैं।

शंकरादि–संज्ञा पुं० [सं०] सफेद आक। सफेद मदार।

शंकराभरण–संज्ञा पुं० [सं०] संपूर्ण जाति का एक प्रकार का राग जो नटनारायण राग का पुत्र माना जाता है। इसके गाने का समय प्रभात है; और किसी किसी के मत से सायंकाल में १६ दंड से २० दंड तक भी गाया जा सकता है।

शंकरालय–संज्ञा पुं० [सं०] कैलास।

शंकरावास–संज्ञा पुं० [सं०] कैलास।

शंकरावास कर्पूर–संज्ञा पुं० [सं०] भीमसेनी कपूर। बरास।

शंकराह्वा–संज्ञा स्त्री० [सं०] शमी का वृक्ष।

शंकरी–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) शिव की पत्नी पार्वती। (२) मंजिष्ठा। मजीठ। (३) शमी का वृक्ष। (४) एक रागिनी जो मालकोश राग की सहचरी मानी जाती है।

वि० कल्याण करनेवाली। मंगल करनेवाली।

शंकर्षण–संज्ञा पुं० [सं०] (१) विष्णु का एक नाम। (२) रोहिणी के पुत्र का नाम।

शंकव–संज्ञा स्त्री० [सं०] सकुची मछली।

शंका–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) मन में होनेवाला अनिष्ट का भय। डर। खौफ। खटक। उ०—(क) देव जान शंका सब काहू। बक चंद्रमहि ग्रसै न राहू।—तुलसी। (ख) शंका दै दशानन को डंका दै सुबंका बीर, डंका दै विजय को कपि कूद्यो लंका में।—पद्माकर। (२) किसी विषय की सत्यता या असत्यता के संबंध में होनेवाला संदेह। आशंका। संशय। शक। उ०—(क) नृप बिलोकि शंका उपजाई। सजल नयन मुख बचन न आवा।—सबल। (ख) तुम्हहिं बरण चाहत हौं आपहि। पै हिडंब शंका मन आवहि।—सबल। (३) साहित्य के अनुसार एक संचारी भाव। अपने किसी अनुचित व्यवहार अथवा किसी और कारण से होनेवाली इष्ट-हानि की चिंता।

शंका अतिचार–संज्ञा पुं० [सं०] जैनियों के अनुसार एक प्रकार का पाप या अतिचार जो जिन-वचन में शंका करने से होता है।

शंकित–वि० [सं०] [स्त्री० शंकिता] (१) डरा हुआ। भयभीत। (२) जिसे संदेह हुआ हो। (३) अनिश्चित। संदेहयुक्त। उ०—दशन धरि धरनि चिक्करत दिग्गज कमठ, शेष संकुचित, शंकित पिनाकी।—तुलसी।

संज्ञा पुं० भटेउर या चोरक नाम का गंध द्रव्य।

शंकितवर्णक–संज्ञा पुं० [सं०] चोर।

शंकु–संज्ञा पुं० [सं०] (१) कोई नुकीली वस्तु। (२) मेख। कील। (३) खूँटी। (४) भाला। बरछा। (५) गाँसी। फल। (६) लीलावती के अनुसार दस लक्ष कोटि की एक संख्या। शंख। (७) एक प्रकार की मछली। (८) कामदेव। (९) शिव। (१०) राक्षस। (११) विष। (१२) हंस। (१३) वल्मीक। बाँबी। (१४) कलुष। पाप। (१५) प्राचीन काल का एक प्रकार का बाजा। (१६) बारह अंगुल की एक माप। (१७) बारह अंगुल की एक खूँटी जिसका व्यवहार प्राचीन काल में सूर्य्य या दीप की छाया आदि नापने में होता था। (१८) वृक्षों में की रस खींचने की शक्ति। (१९) गावदुम खंभा जिसके ऊपर का हिस्सा नुकीला और नीचे का मोटा हो। (२०)

पुराणानुसार उज्जयिनी के राजा विक्रमादित्य के नवरत्न पंडितों में से एक। (२१) उग्रसेन का एक पुत्र। (२२) दाँव। (२३) पत्तों की नसें। (२४) नखी नामक गंध द्रव्य। (२५) लिंग। (२६) शिव के अनुचर एक गंधर्व का नाम।

शंकुकर्ण-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जिसके कान शंकु के समान लंबे और नुकीले हों। (२) गदहा। (३) एक नाग का नाम।

शंकुकर्णी-संज्ञा पुं० [सं० शंकुकर्णिन्] शिव। महादेव।

शंकुचि-संज्ञा स्त्री० [सं०] सकुची मछली।

शंकुच्छाया-संज्ञा स्त्री० [सं०] प्राचीन काल की बारह अंगुल की एक नुकीली खूँटी जिसका ऊपरी भाग नुकीला होता था। इसकी छाया से समय का परिमाण मालूम किया जाता था।

शंकुतरु-संज्ञा पुं० [सं०] शाल का वृक्ष।

शंकुद्वार-संज्ञा पुं० [सं०] गुजरात के समीप के एक छोटे टापू का नाम। यहाँ शंकु नारायण की मूर्ति है।

शंकुनारायण-संज्ञा पुं० [सं०] नारायण की वह मूर्ति जो शंकुद्वार टापू में है।

शंकुफणी-संज्ञा पुं० [सं० शंकुफणिन्] जल में रहनेवाले जंतु। जलचर।

शंकुफलिका, शंकुफली-संज्ञा स्त्री० [सं०] सफ़ेद कीकर।

शंकुमती-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक वैदिक छंद जिसके पहले पाद में पाँच और शेष तीनों में छः छः या इससे कुछ न्यूनाधिक वर्ण होते हैं।

शंकुमुख-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मगर। (२) चूहा।

शंकुमुखी-संज्ञा स्त्री० [सं०] जोंक।

शंकुर-संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार एक दानव का नाम।
वि० भयंकर। भीषण।

शंकुला-संज्ञा स्त्री० [सं०] सुपारी काटने का सरौता।

शंकुवृक्ष-संज्ञा पुं० [सं०] शाल का वृक्ष।

शंकुशिर-संज्ञा पुं० [सं० शंकुशिरस्] भागवत के अनुसार एक असुर का नाम।

शंकोच, शंकोचि-संज्ञा पुं० [सं०] सकुची मछली।

शंकोशिक-वि० [सं०] नैमित्तिक। (सांख्य)

शंख-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्रकार का बड़ा घोंघा जो समुद्र में पाया जाता है। इसे एक प्रकार का जल जंतु, जिसे शंख कहते हैं, अपने रहने के लिये तैयार करता है। लोग इस जंतु को मारकर उसका यह कलेवर बजाने के उपयोग में लाते हैं। यह बहुत पवित्र समझा जाता है और देवता आदि के सामने तथा लड़ाई के समय मुँह से फूँककर बजाया जाता है। पुराणों के अनुसार विष्णु भगवान के चारों हाथों में से एक हाथ में शंख भी रहता है। इसके दो भेद होते हैं। एक दक्षिणावर्त्त और दूसरा वामावर्त्त। इनमें से दक्षिणावर्त्त बहुत कम मिलता है। वैद्यक के अनुसार यह नेत्रों को हितकारी, पित्त, कफ, रुधिर-विकार, विष-विकार, वायगोला, शूल, श्वास, अजीर्ण, संग्रहणी और मुँहासे को नष्ट करनेवाला माना गया है। दक्षिणावर्त्त में इससे भी अधिक गुण होते हैं। कहते हैं कि जिसके घर में यह रहता है, उसके धन की अधिक वृद्धि होती है। वामावर्त्त ही अधिक मिलता है और यही ओषध के काम आता है। जो शंख उज्ज्वल और चमकदार होता है, वह उत्तम समझा जाता है। इसको विधिपूर्वक शुद्ध कर भस्म बनाकर काम में लाते हैं। यह भस्म सब प्रकार के ज्वर, सब प्रकार की खाँसी, श्वास, अतिसार आदि रोगों में उचित अनुपान से अत्यंत लाभकारी है। यह स्तंभक और वाजीकरण भी है। इसकी मात्रा चार रत्ती से डेढ़ माशे तक है।

मुहा०—शंख बजना = विजय प्राप्त होना। शंख बजाना = किसी की बुराई या हानि देखकर आनंद मनाना।

यौ०—शंख का मोती = एक प्रकार का कल्पित मोती। कहते हैं कि यह समुद्र के अंतर्गत दुर्गम स्थानों में शंख के अंदर उत्पन्न होता है।

पर्य्या०—कंबु। कंबोज। पावनध्वनि। अंतःकुटिल। सुनाद। महानाद। मुखर। बहुनाद। दीर्घनाद। हरिप्रिय।

(२) दस खर्व की एक संख्या। एक लाख करोड़। (३) कनपटी। (४) हाथी का गंडस्थल, अथवा दाँतों के बीच का भाग। (५) चरण चिह्न। (६) एक दैत्य का नाम जो देवताओं को जीतकर वेदों को चुरा ले गया था और जिसके हाथों से वेदों का उद्धार करने के लिये भगवान् को मत्स्यावतार धारण करना पड़ा था। शंखासुर। (७) नखी नाम का सुगंधित द्रव्य। (८) एक निधि। उ०—शंख खर्व नीलादप नवई निद्धि मुकुंद।—विश्राम। (९) राजा विराट् का पुत्र। उ०—उत्तर शंख नृपति सुत वीरा। औरो सजे अमित रणधीरा।—सबल। (१०) एक राजमंत्री का नाम। उ०—सुरति सुधन्वा जू सों रोष के कराह मरे शंख औ लिखित विप्र भयो मैलो मन है।—नाभा। (११) कुबेर की निधि के देवता। (१२) चंपक पुरी के राजा हंसध्वज का उपरोहित और लिखित का भाई। उ०—शंख लिखित उपरोहित दोई। रहे तहाँ जानत सब कोई।—सबल। (१३) धारा नगर के राजा गंधर्वसेन का बड़ा लड़का और राजा विक्रमादित्य का बड़ा भाई जिसे मारकर विक्रम ने गद्दी प्राप्त की थी। (१४) छप्पय के ७१ भेदों में से एक भेद। इसमें १५२ मात्राएँ या १५१ वर्ण होते हैं, जिनमें से १ गुरु और शेष १४९ लघु होते हैं। (१५) दंडक वृत्त के अंतर्गत प्रचित का एक भेद। इसमें दो सगण और चौदह रगण

होते हैं। (१६) कपाल। लिलार। (१७) पवन के चलने से होनेवाला शब्द।

शंखकंद-संज्ञा पुं० [सं०] शंखालु। सौंफ।

शंखक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वैद्यक के अनुसार एक प्रकार का रोग जिसमें बहुत गरमी होती है और त्रिदोष बिगड़ने से कनपटी में दाह सहित लाल रंग की गिल्टी निकल आती है, जिससे सिर और गला जकड़ जाता है। कहते हैं कि यह असाध्य रोग है और तीन दिन के अंदर इसका इलाज संभव है, इसके बाद नहीं। (२) हवा के चलने का शब्द। (३) हीरा कसीस। (४) मस्तक। माथा। (५) नौ निधियों में से एक निधि। (६) कंकण। वलय।

शंखकार-संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार एक वर्ण संकर जाति जिसकी उत्पत्ति शूद्रा माता और विश्वकर्मा पिता से मानी गई है। इस जाति के लोग शंख की चीजें बनाने का काम करते हैं।

शंखकुसुमा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) शंखपुष्पी। (२) सफेद अपराजिता। सफेद कोयल।

शंखकूट-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक नाग का नाम। (२) पुराणानुसार एक पर्वत का नाम।

शंखक्षीर-संज्ञा पुं० [सं०] शंख का दूध अर्थात् कोई असंभव और अन-होनी बात।

शंखचरी, शंखचर्ची-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) चंदन का तिलक (ललाट पर का)। (२) भाल। मस्तक। ललाट।

शंखचूड़-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक राक्षस का नाम जिसे कंस ने कृष्ण को मारने के लिये भेजा था और जो स्वयं कृष्ण द्वारा मारा गया था। कहते हैं कि यह सुदामा नामक गोप था जो राधा के शाप से असुर हो गया था। इसका विवाह तुलसी से हुआ था। ब्रह्मवैवर्त्त पुराण में लिखा है कि इसका संहार महादेव जी ने अपने शूल से किया था। (२) कुबेर के दूत और सखा का नाम। (३) एक यक्ष का नाम। (४) पुराणानुसार द्वारिका निवासी एक गृहस्थ का नाम जिसके पुत्र उत्पन्न होकर अदृश्य हो जाते थे। (५) एक नाग का नाम। (६) एक तीर्थस्थान।

शंखज-संज्ञा पुं० [सं०] बड़ा मोती जो शंख से निकलता है।

शंखजीरा-संज्ञा पुं० [सं०] संग जराहत।

विशेष—जान पड़ता है कि यह शब्द फ़ारसी "संग जराहत" का बनाया हुआ संस्कृत रूप है।

शंखण-संज्ञा पुं० [सं०] रामायण के अनुसार प्रबुद्ध के लड़के का नाम।

शंखतीर्थ-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन तीर्थ का नाम।

शंखदारक-संज्ञा पुं० दे० "शंखकार"।

शंखद्राव-संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक के अनुसार एक प्रकार का अर्क जिसमें शंख भी गल जाता है। आध सेर हीरा कसीस, सेर भर लाहौरी फिटकरी, सेर भर सेंधा नमक और सेर भर शोरा चूर्ण करके डेकली यंत्र से रस निकाल लिया जाता है, जो शंखद्राव कहलाता है। कहते हैं कि इसके सेवन से शूल, गुल्म, अर्श, प्लीहा, उदर रोग, अजीर्ण और वात रोग सब दूर होते हैं। इसे काँच या चीनी की शीशी में रखना चाहिए; अन्यथा पात्र गल जायगा। इसके सेवन के समय मुँह में घी लगा देना चाहिए, नहीं तो जिह्वा और दाँतों को हानि पहुँचेगी।

वि० कोई ऐसा तीक्ष्ण रस या क्षार जिसमें डालने से शंख गल जाय।

शंखद्रावक-संज्ञा पुं० दे० "शंखद्राव"।

शंखद्रावी-संज्ञा पुं० [सं० शंखद्राविन्] अमलबेत।

शंखद्वीप-संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार एक द्वीप का नाम।

शंखधर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शंख को धारण करनेवाले, अर्थात् विष्णु। (२) श्रीकृष्ण। उ०—गिरिधर ब्रजधर मुरलीधर पीताम्बर धर मुकुटधर गोपधर उरगधर सारंगधर चक्रधर रस धरें अधर सुधाधर।—सूर।

शंखधरा-संज्ञा स्त्री० [सं०] हुरहुर का साग। हिलमोचिका।

शंखधवना-संज्ञा स्त्री० [सं०] जूही। यूथिका।

शंखन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) अयोध्या के राजा कल्माषपाद के एक पुत्र का नाम। (२) वज्रनाभ के पुत्र का नाम।

शंखनख-संज्ञा पुं० [सं०] (१) घोंघा। छोटा शंख। (२) व्याघ्रनख। नखी नाम का गंध द्रव्य।

शंखनखा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) घोंघा। (२) नखी नामक गंध द्रव्य।

शंखनाभि-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) एक प्रकार का शंख। (२) एक प्रकार का गंध द्रव्य।

शंखनाम्नी-संज्ञा स्त्री० [सं०] शंखाहुली। शंखपुष्पी।

शंखनारी-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक वृत्त का नाम जिसमें छः वर्ण होते हैं। यह दो यगण का वृत्त है। इसे सोमराजी वृत्त भी कहते हैं।

शंखनी-संज्ञा स्त्री० दे० "शंखिनी"।

शंखपलीता-संज्ञा पुं० [सं० शंख + हिं० पलीता] एक प्रकार का रेशेदार खनिज पदार्थ जो ज्वाला-मुखी पर्वतों से निकलता है। इसका रंग सफ़ेद या हरा होता है और इसमें रेशम की सी चमक होती है। इसका विशेष गुण यह है कि यह जल्दी जलता नहीं; इसी लिये गैस के लट्टू बनाने में इसका बहुत उपयोग होता है। आग से न जलनेवाले कपड़े तैयार करने में भी यह काम में लाया जाता है। गरमी और बिजली का प्रवेश इसमें बहुत कम होता है; इसी से यह बिजली के तार आदि लपेटने में भी काम

जाता है। इंजिनों के जोड़ इसी से भरे या बंद किए जाते हैं। यह कारसिका, स्काटलैंड, कनाडा, इटली आदि देशों में अधिक मिलता है।

शंखपाणि-संज्ञा पुं० [सं०] हाथ में शंख धारण करनेवाले, विष्णु।

शंखपाल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शकर पारा नाम की मिठाई। वि० दे० "शकरपारा"। (२) एक प्रकार का साँप। (३) एक नाग का नाम। (४) कर्दम के पुत्र का नाम।

शंखपाषाण-संज्ञा पुं० [सं०] संखिया।

शंखपुष्पिका-संज्ञा स्त्री० दे० "शंखपुष्पी"।

शंखपुष्पी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सफ़ेद अपराजिता। श्वेताप-राजिता। सफ़ेद कोयल। (२) जूही। यूथिका। (३) शंखाहुली। शंखाह्वा।

शंखप्रस्थ-संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा का कलंक।

शंखभस्म-संज्ञा पुं० [सं०] चूना।

शंखभृत-संज्ञा पुं० [सं०] शंख धारण करनेवाले, विष्णु।

शंखमालिनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] शंखाहुली। शंखपुष्पी।

शंखमुक्ता-संज्ञा स्त्री० [सं०] शंखज नाम का बड़ा मोती।

शंखमुख-संज्ञा पुं० [सं०] कुम्भीर। घड़ियाल

शंखमूलक-संज्ञा स्त्री० [सं०] मूली।

शंखयूथिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] जूही। यूथिका।

शंखरी-संज्ञा पुं० [सं०] वह जो शंख की चूड़ी बनाने का व्यव-साय करता हो।

शंखलिखित-वि० [सं०] निर्दोष। दोष रहित। बे-ऐब। संज्ञा पुं० (१) न्यायशील राजा। (२) शंख और लिखित नाम के दो ऋषि जिन्होंने एक स्मृति बनाई थी। संज्ञा स्त्री० शंख और लिखित ऋषियों द्वारा लिखी हुई स्मृति। उ०—सचिव सुधन्वै चह्यो जरावा। शंख लिखित फल आयुह पावा।—रघुनाथ।

शंखवटी-संज्ञा स्त्री० [सं०] वैद्यक में एक प्रकार की वटी या गोली जिसके प्रस्तुत करने की प्रणाली यह है। नीबू के रस में बुझाई हुई शंख की भस्म टके भर और जवाखार, सेंकी हींग, पाँचों नमक, सोंठ, काली मिर्च, पिप्पली, शुद्ध सिंगी मुहरा, शुद्ध पारा, शुद्ध गंधक की कजली ये सब दस दस टंक एक में मिलाकर सब को चूर्ण करके नीबू के रस में खरल करके चने के बराबर गोलियाँ बनाते हैं। कहते हैं कि लौंग के जल के साथ एक गोली सेवन करने से संग्रहणी, शूल और वायुगोला आदि रोग दूर होते हैं।

शंखवटी रस-संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक में एक प्रकार की वटी या गोली जो शूल रोग को तत्काल दूर करनेवाली मानी जाती है। इसके प्रस्तुत करने की विधि यह है। बड़े शंख को तपा तपाकर ग्यारह बार नीबू के रस में बुझाते हैं; और इस शंख के चूर्ण में टके भर इमली का खार, ५ टंक साँचर नमक, टके भर सेंधा नमक, टके भर साँभर नमक, टके भर कच नोन, टके भर विड़ नोन, ६ मासे सोंठ, ६ मासे काली मिर्च, १ मासे पिप्पली, टके भर सेंकी हींग, टके भर शुद्ध गंधक, टके भर शुद्ध पारा, १ टंक शुद्ध सिंगी मुहरा, इन सब को मिलाकर जल के साथ घोंटकर छोटे बेर के बराबर गोलियाँ बना लेते हैं।

शंखवात-संज्ञा पुं० [सं०] सिर की पीड़ा। वि० दे० "शंखक" (१)।

शंखविष-संज्ञा पुं० [सं०] संखिया।

शंखवेलान्याय-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का न्याय जिसमें किसी एक कार्य्य के होने से किसी दूसरी बात का वैसे ही ज्ञान होता है, जैसे शंख बजने से समय का ज्ञान होता है।

शंखशुक्तिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] सीप।

शंखसंकाश-संज्ञा पुं० [सं०] संखालु। सफ़ेद शकरकंद।

शंखस-संज्ञा पुं० [सं०] शंख की चूड़ी या कड़ा।

शंखाख्य-संज्ञा पुं० [सं०] बृहन्नखी या बगनखा नामक गंध द्रव्य।

शंखारु, शंखालु-संज्ञा पुं० [सं०] शंखालुक। शंखकंद। सफ़ेद शकरकंद।

शंखालुक-संज्ञा पुं० [सं०] शंखालु। सफ़ेद शकरकंद।

शंखावर्त्त-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का भगंदर रोग जिसे शंबुकावर्त्त भी कहते हैं। वि० दे० "शंबुकावर्त्त"।

शंखासुर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक दैत्य जो ब्रह्मा के पास से वेद चुराकर समुद्र के गर्भ में जा छिपा था। इसी को मारने के लिये विष्णु ने मत्स्यावतार धारण किया था। उ०—बहुरो किलाल बैठ मारयो जिन शंखासुर ताते वेद अनेक विधाता को दिखाए हैं।—हनुमन्नाटक। (२) मुर दैत्य का पिता। उ०—शंखासुर सुत पितु बध जान्यो। तब बन जाइ तहाँ तप ठान्यो।—रघुनाथ।

शंखास्थि-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सिर की हड्डी। (२) पीठ की हड्डी।

शंखाहुली-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) संखाहुली। शंखपुष्पी। वि० दे० "कौड़ियाला"। (२) सफेद अपराजिता या कोयल।

शंखाहोली-संज्ञा स्त्री० [सं० शंखाहुली] शंखपुष्पी। कौड़ियाला। कौड़ेना।

शंखिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] संखाहुली। चोरपुष्पी।

शंखिन-संज्ञा पुं० [सं०] सिरस। शिरीष वृक्ष।

शंखिनिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] पृश्निपर्णी। पठिवन।

शंखिनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) एक प्रकार की वनौषधि जिसकी लता और फल शिवलिंगी के समान होते हैं। अंतर केवल यही है कि शिवलिंगी के फल पर सफेद छींटे होते हैं जो

शंखिनी के फल पर नहीं होते। इसके बीज शंख के समान होते हैं जिनका तेल निकलता है। वैद्यक में यह चरपरी, स्निग्ध, कड़वी, भारी, तीक्ष्ण, गरम, अग्निदीपक, बलकारक, रुचिकारी और विषविकार, आम-दोष, क्षय, रुधिर विकार तथा उदर-दोष आदि को शान्त करनेवाली मानी जाती है।
पर्या॰—यवतिक्ता। महातिक्ता। भद्रतिका। सूक्ष्मपुष्पी। दृढ़पादा। विसर्पिणी। नाकुली। नेत्रमीला। अक्षपीड़ा। माहेश्वरी। तिक्ता। यावी।

(२) पद्मिनी आदि स्त्रियों के चार भेदों में से एक भेद। उ॰—कोइ शंखिनि युत रोप दया बिन बेगि प्रचारे।—विश्राम।

विशेष—कहते हैं कि ऐसी स्त्री कोपशील, कोविद, सलोम शरीरवाली, बड़ी बड़ी और सजल आँखोंवाली, देखने में सुंदर, लज्जा और शंका रहित, अधीर, रतिप्रिय, क्षार गंधयुक्त और अरुण नखवाली होती है। यह वृषभ जाति के पुरुष के लिये उपयुक्त होती है।

(३) गुदा द्वार की नस। (४) मुँह की नाड़ी। उ॰—मुख स्थान शंखिनी केरा। ये नाड़िन के नाम निबेरा।—विश्राम। (५) एक देवी का नाम। (६) सीप। (७) एक शक्ति जिसकी पूजा बौद्ध लोग करते हैं। (८) एक तीर्थस्थान का नाम। (९) एक प्रकार की अप्सरा। (१०) शंखाहुली।

शंखिनी डंकिनी-संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] एक प्रकार का उन्माद जिसके लक्षण इस प्रकार कहे गए हैं—सर्वांग में पीड़ा होना, नेत्र बहुत दुखना, मूर्छा होना, शरीर काँपना, रोना, हँसना, बकना, भोजन में अरुचि, गला बैठना, शरीर के बल तथा भूख का नाश, ज्वर चढ़ना और सिर में चक्कर आना।

शंखिनीवास-संज्ञा पुं॰ [सं॰] शाखोट वृक्ष। सहोरा।

शंखिया-संज्ञा पुं॰ दे॰ "संखिया"।

शंखी-संज्ञा पुं॰ [सं॰ शंखिन्] (१) विष्णु। (२) समुद्र। (३) एक प्रकार का साँप।

शंखोद्धिमल-संज्ञा पुं॰ [सं॰] समुद्रफेन।

शंखोदरी-संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] मध्यम आकार का एक प्रकार का वृक्ष जो बागों में शोभा के लिये लगाते हैं। इसके पत्ते चकवँड़ के पत्तों के समान होते हैं। पीले और लाल फूलों के भेद से यह वृक्ष दो प्रकार का होता है। इसकी कलियाँ उँगली के समान मोटी, चिपटी तथा चार पाँच अंगुल लंबी होती हैं और इसमें ७, ८ दाने होते हैं। इसके फूल गुच्छों में लगते हैं जो बारहों महीने रहते हैं; परंतु और महीनों की अपेक्षा आषाढ़ में अधिक फूल लगते हैं। फूलों में गंध नहीं होती। इसकी लकड़ी मजबूत होती है। इसके पेड़ बीज और कलम दोनों से ही लगते हैं। कई प्रकार के रोगों में इसका क्वाथ भी दिया जाता है। वैद्यक के अनुसार य[ह] गरम, कफ, वात, शूल, आमवात और नेत्र रोग को [दूर] करनेवाली है। गुलतुरी। गुलतुरी। सिंदेश्वर।

शंग जराहत-संज्ञा पुं॰ दे॰ "संग जराहत"।

शंगरफ़-संज्ञा पुं॰ [देश॰] एक प्रकार का बहुत ऊँचा वृक्ष जो म[ध्य] राम और सुंदर बन में अधिकता से होता है। इसकी लक[ड़ी] लाल और मजबूत होती है और मकान तथा गाड़ी आ[दि] बनाने के काम में आती है। इसके पत्तों से रंग भी निका[ला] जाता है।

शंजरफ़-संज्ञा पुं॰ दे॰ "शिंगरफ़"।

शंठ-संज्ञा पुं॰ [सं॰] (१) अविवाहित। (२) नपुंसक। हीजड़ा। (३) मूर्ख। बेवकूफ़। उ॰—मुग्ध मूढ़ जड़ मूढ़ मत ब[ाल] अबुध वद शंठ।—नंददास।

शंड-संज्ञा पुं॰ [सं॰] (१) नपुंसक। हीजड़ा। (२) वह पुरुष जि[से] संतान न होती हो। बंध्या पुरुष। (३) साँड़। (४) उन्मत्त पागल। (५) कमलिनी। पद्मिनी।

शंडता-संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] शंड का भाव या धर्म। नपुंसकता। हीजड़ापन।

शंडा-संज्ञा पुं॰ [सं॰] (१) कटा हुआ संडा वृक्ष अथवा डा[ल]। (२) शुक्राचार्य्य का पुत्र जो असुरों का पुरोहित था। (३) एक यक्ष का नाम।

शंडा की मद्य-संज्ञा स्त्री॰ [सं॰ शंड+मद्य] अर्कप्रकाश के अनुसा[र] एक प्रकार की शराब जो राई, मूली और सरसों के पत्तों [के] रस चावलों की पीठी में मिलाकर अर्क निकालने से तैया[र] होती है।

शंडामर्क-संज्ञा पुं॰ [सं॰] शंड और मर्क नाम के दो दैत्य जिनक[ा] नाम साथ ही साथ लिया जाता है। उ॰—शंडामर्क [...] कहियो जाय।—शब्दावली।

शंडील-संज्ञा पुं॰ [सं॰] एक प्राचीन गोत्रकार ऋषि जिनके गोत्र के लोग शांडिल्य कहलाते हैं।

शंतनु-संज्ञा पुं॰ दे॰ "शांतनु"। उ॰—(क) बरणी शंतनु की कथा, पुनि ययाति कर भोग।—रघुनाथ। (ख) विष्णु सुता सत्य सुत माहीं। तासु पुत्र शंतनु नृप आहीं।—सबल।

शंतनु-सुत-संज्ञा पुं॰ [सं॰ शांतनु+सुत] गंगा के गर्भ से उत्पन्न शांतनु के पुत्र, भीष्मपितामह। वि॰ दे॰ "भीष्म"।

शंपा-संज्ञा स्त्री॰ [सं॰] (१) बिजली। (२) कमर।

शंपाक, शंपात-संज्ञा पुं॰ [सं॰] आरग्वध वृक्ष। अमलतास।

शंब-संज्ञा पुं॰ [सं॰] (१) इंद्र का वज्र। (२) लोहे की जंजीर जो कमर के चारों तरफ़ पहनी जाय। (३) प्राचीन काल

की नापने की एक माप। (४) नियमित रूप से हल जोतने की क्रिया।

शंबर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक दैत्य जो दिवोदास का बड़ा शत्रु था। दिवोदास की रक्षा के लिये इंद्र ने इसे पहाड़ पर से नीचे गिराकर मार डाला था। (२) रामायण और महाभारत में इसे कामदेव का शत्रु कहा है। (३) प्राचीन काल का एक प्रकार का शस्त्र। (४) युद्ध। समर। लड़ाई। (५) एक प्रकार का मृग। (६) मछली। (७) एक पर्वत का नाम। (८) जल। पानी। (९) चीता नामक पेड़। चितउर। (१०) लोध वृक्ष। (११) अर्जुन वृक्ष। (१२) साल वृक्ष। (१३) साबर हिरन। (१४) मुश्क ज़मीं।

वि० (१) अति उत्तम। बहुत बढ़िया। (२) भाग्यवान्। (३) सुखी।

शंबरकंद-संज्ञा पुं० [सं०] वाराही कंद। शूकर कंद।

शंबर चंदन-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का चंदन जिसे कैरात, महलगंध और गंधकाष्ठ भी कहते हैं।

शंबरमाया-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) इंद्रजाल। जादू। (२) शक्ति।

शंबरसूदन-संज्ञा पुं० [सं०] कामदेव।

शंबरारि-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शंबर का शत्रु, अर्थात् कामदेव। मदन। उ०—शंबर ज्यों शंबरारि दुख देह को दहै।—केशव। (२) प्रद्युम्न जो कामदेव के अवतार कहे जाते हैं। उ०—मुरछि मुरछि गिरायो भूमि पर शंबरारि ललकारि।—गर्गसंहिता।

शंबराहार-संज्ञा पुं० [सं०] झरबेरी। भूबदरी।

शंबरी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) मूसाकानी। आखुपर्णी लता। (२) बड़ी दंती। बगरेंडा। (३) माया।

शंबरीगंधा-संज्ञा स्त्री० [सं०] बनतुलसी। बर्बरी।

शंबरोद्भव-संज्ञा पुं० [सं०] सफ़ेद लोध।

शंबल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) यात्रा के समय रास्ते के लिये भोजन-सामग्री। संबल। पाथेय। (२) तट। किनारा। (३) कूल। (४) ईर्ष्या। द्वेष। (५) दे० "शंबर"।

शंबसादन-संज्ञा पुं० [सं०] वाल्मीकीय रामायण के अनुसार एक दैत्य जिसे केशरी वानर ने मारा था।

शंबा-संज्ञा पुं० [अ०] शनिवार। शनैश्चरवार।

शंबु-संज्ञा पुं० [सं०] सीपी। घोंघा।

शंबुक, शंबूक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) घोंघा। (२) छोटा शंख।

शंबुकपुष्पी-संज्ञा स्त्री० दे० "शंखपुष्पी"।

शंबुकावर्त्त-वि० [सं०]. घोंघे की भँवरी के सदृश घूमा हुआ।

संज्ञा पुं० पाँच प्रकार के भगंदरों में से एक प्रकार का भगंदर जिसके फोड़ने से अनेक प्रकार की पीड़ा होती है। इसका कई प्रकार का वर्ण होता है और इसमें सदैव पीब बहा करता है, फोड़ा गौ के थन के आकार का हो जाता है और उसका छिद्र घोंघे के घेरे के समान घूमता हुआ होता है।

शंबूक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक तपस्वी शूद्र, जिसकी तपस्या के कारण त्रेतायुग में रामराज्य में एक ब्राह्मण का पुत्र अकालमृत्यु को प्राप्त हुआ था; अतः इसे राम ने मारकर मृत ब्राह्मण-पुत्र को पुनरुज्जीवित किया था। (२) घोंघा। (३) शंख। (४) एक दैत्य का नाम। (५) हाथी के सूँड़ का अगला भाग।

संज्ञा स्त्री० [सं०] सीपी।

शंभु-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शिव। महादेव। (२) ग्यारह रुद्रों में से एक। वि० दे० "महादेव" और "रुद्र"। (३) रामायण के अनुसार एक दैत्य का नाम। (४) एक वृत्त का नाम, जिसके प्रत्येक चरण में १९ वर्ण होते हैं; और उनका क्रम इस प्रकार होता है—स, त, य, भ, म, म, ग (IIS, SSI, ISS, SII, SSS, SSS, S)। (५) ब्रह्मा। (६) विष्णु। (७) सफ़ेद आक। (८) पारा।

संज्ञा पुं० दे० "स्वायंभुव"। उ०—कह शौनक शंभू मनु पाछे। कीन्ह राज्य केहि कहिये आछे।—रघुनाथ।

शंभुकांता-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) शंभु की स्त्री, पार्वती। (२) दुर्गा।

शंभुगिरि-संज्ञा पुं० [सं०] शंभु का पर्वत, कैलास।

शंभुतेज-संज्ञा पुं० [सं०] पारा। पारद।

शंभुबीज-संज्ञा पुं० [सं०] पारा। पारद।

शंभुभूषण-संज्ञा पुं० [सं०] महादेव जी का भूषण, चंद्रमा।

शंभु मनु-संज्ञा पुं० [सं०] स्वायंभुव मन्वंतर जो सब से पहला मन्वंतर है। वि० दे० "स्वायंभुव" और "मनु"।

शंभुलोक-संज्ञा पुं० [सं०] महादेव जी का लोक, कैलास।

शंस-संज्ञा पुं० [सं०] (१) प्रतिज्ञा। इकरार। (२) शपथ। कसम। (३) जादू। (४) प्रशंसा। तारीफ़। (५) इच्छा। ख्वाहिश। (६) चापलूसी। चाटुता। (७) घोषणा। (८) वक्तृता।

शंस्य-वि० [सं०] (१) प्रशंसा के योग्य। (२) इच्छित। चाहा हुआ।

संज्ञा स्त्री० अग्नि।

श-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शिव। (२) कल्याण। मंगल। (३) शस्त्र। हथियार।

शअबान-संज्ञा पुं० [अ०] अरबी आठवाँ महीना जिसकी चौदहवीं तारीख़ को मुसलमानों का शब्बरात नामक त्योहार होता है। यह रजब के बाद आता है।

शऊर-संज्ञा पुं० [अ०] किसी चीज़ की पहचान या जानकारी। (२) काम करने की योग्यता। ढंग। (३) बुद्धि। अक़्ल।

क्रि० प्र०—आना।—सीखना।

मुहा०—शऊर पकड़ना = ढंग सीखना। अक्ल सीखना। बुद्धिमान् होना।

शऊरदार-संज्ञा पुं० [अ० शऊर + फ़ा० दार (प्रत्य०)] जिसमें शऊर हो। काम करने की योग्यता रखनेवाला। हुनरमंद। समझदार।

शक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्राचीन जाति। पुराणों में इस जाति की उत्पत्ति सूर्य्यवंशी राजा नरिष्यंत से कही गई है। राजा सगर ने राजा नरिष्यंत को राज्यच्युत तथा देश से निर्वासित किया था। वर्णाश्रम आदि के नियमों का पालन न करने के कारण तथा ब्राह्मणों से अलग रहने के कारण वे म्लेच्छ हो गए थे। इन्हीं के वंशज शक कहलाए। आधुनिक विद्वानों का मत है कि मध्य एशिया पहले शकद्वीप के नाम से प्रसिद्ध था। यूनानी इस देश को सीरिया कहते थे। उसी मध्य एशिया के रहनेवाले शक कहे जाते हैं। एक समय यह जाति बड़ी प्रताप-शालिनी हो गई थी। ईसा से दो सौ वर्ष पहले इसने मथुरा और महाराष्ट्र पर अपना अधिकार कर लिया था। ये लोग अपने को देवपुत्र कहते थे। इन्होंने १९० वर्ष तक भारत पर राज्य किया था। इनमें कनिष्क और हुविष्क आदि बड़े बड़े प्रतापशाली राजा हुए हैं। (२) वह राजा या शासक जिसके नाम से कोई संवत् चले। (३) राजा शालिवाहन का चलाया हुआ संवत् जो ईसा के ७८ वर्ष पश्चात् आरंभ हुआ था। (४) शालिवाहन के अनुयायी अथवा उनके वंशज। (५) संवत्। (६) तातार देश। (७) जल। (८) मल। (९) एक प्रकार का पशु। (१०) संदेह। आशंका। (११) भय। त्रास। डर।

संज्ञा पुं० [अ०] शंका। संदेह। द्विविधा।

क्रि० प्र०—करना।—डालना। निकालना।—पड़ना।—मिटना।—मिटाना।

शककारक-संज्ञा पुं० [सं०] वह जिसने कोई नया संवत् (शक) चलाया हो। संवत् का प्रवर्त्तक।

शकट-संज्ञा पुं० [सं०] (१) छकड़ा। बैलगाड़ी। (२) भार। बोझ। (३) शकटासुर नामक दैत्य जिसे कृष्ण ने मारा था। (४) तिनिश वृक्ष। (५) धव का वृक्ष। धौ। (६) शरीर। देह। (७) दो हज़ार पल की तौल। (८) रोहिणी नक्षत्र, जिसकी आकृति शकट या छकड़े के समान है।

शकट कर्म-संज्ञा पुं० [सं०] (१) गाड़ी या और कोई सवारी हाँकने का काम। (२) गाड़ी आदि सवारियों की सामग्री बनाने और बेचने का काम।

शकटधूम-संज्ञा पुं० [सं०] (१) गोबर या उपले आदि का धूआँ। (२) एक नक्षत्र का नाम।

शकट व्यूह-संज्ञा पुं० [सं०] शकट के आकार का सेना का निवेश। सेना को इस प्रकार रखना कि उसके आगे का भाग पतला और पीछे का मोटा हो, और वह देखने में शकट के आकार का जान पड़े।

शकटहा-संज्ञा पुं० [सं०] शकटासुर नामक दैत्य के मारनेवाले, श्रीकृष्ण।

शकटाक्ष-संज्ञा पुं० [सं०] गाड़ी का धुरा।

शकटाख्य, शकटाख्यक-संज्ञा पुं० [सं०] धौ या धव का वृक्ष।

शकटार-संज्ञा पुं० [सं०] (१) राजा महानंद का प्रधान मंत्री, जिसने अपने अपमान का बदला चुकाने के लिये चाणक्य से मिलकर षड्यंत्र रचा था और इस प्रकार नंद वंश का नाश किया था। (२) एक प्रकार की शिकारी चिड़िया।

शकटारि-संज्ञा पुं० [सं०] शकट दैत्य के शत्रु, श्रीकृष्ण।

शकटाल-संज्ञा पुं० दे० "शकटार"।

शकटासुर-संज्ञा पुं० [सं०] एक दैत्य जिसे कंस ने कृष्ण को मारने के लिये भेजा था और जो स्वयं ही कृष्ण द्वारा मारा गया था।

शकटिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) छोटी बैलगाड़ी। (२) बच्चों के खेलने की गाड़ी।

शकटी-संज्ञा स्त्री० [सं०] छोटी गाड़ी।

शकठ-संज्ञा पुं० [सं० शकट] मचान। उ०—कृष्णचंद्र के समय में भी वृंदावन वन गिना जाता था, और गोप लोग उसमें शकटों पर रहते थे।—शिवप्रसाद।

शकर-संज्ञा स्त्री० [फ़ा० मि० सं० शर्करा] कच्ची चीनी। शक्कर। शकर।

यौ०—शकर सफ़ेद। शकरसुर्ख। शकरगुड़।

शकरकंद-संज्ञा पुं० [हिं० शकर + सं० कंद] एक प्रकार का प्रसिद्ध कंद जिसकी खेती प्रायः सारे भारत में होती है। यह साधारणतः सूखी ज़मीन में बोया जाता है। इसका कंद दो प्रकार का होता है—एक लाल और दूसरा सफ़ेद। लाल शकरकंद रतालू या पिंडालू कहलाता है और सफ़ेद को शकरकंद या कंदा कहते हैं। यह भूनकर या उबालकर खाया जाता है। प्रायः हिंदू लोग व्रत के दिन फलाहार रूप में इसका व्यवहार करते हैं। यह कंद बहुत मीठा होता है और इसमें से एक प्रकार की चीनी निकलती है। अनेक पाश्चात्य देशों में इससे चीनी निकाली भी जाती है; और इसी लिये इसकी बहुत अधिक खेती होती है। वनस्पति शास्त्र के आधुनिक विद्वानों का अनुमान है कि यह मूलतः अमेरिका का कंद है; और वहीं से सारे संसार में फैला है।

शकरखोरा-संज्ञा पुं० [फ़ा० शकर + खोर = खानेवाला] एक प्रकार का छोटा सुंदर पक्षी जिसकी लंबाई प्रायः एक बालिश्त से भी कम होती है और जो भारत, फारस तथा चीन में पाया जाता है। इसका रंग नीला और चोंच काली

होती है और यह पेड़ों में लटकता हुआ घोंसला बनाता है। यह प्रायः खेतों में रहता और खेती को हानि पहुँचानेवाले कीड़े मकोड़े आदि खाता है। यह सफ़ेद रंग के दो या तीन अंडे एक साथ देता है; पर इसके अंडा देने का कोई निश्चित समय नहीं है।

शकरपारा-संज्ञा पुं० [फ़ा०] (१) एक प्रकार का फल जो नीबू से कुछ बड़ा होता है। इसका वृक्ष नीबू के वृक्ष के समान होता है, पर पत्ते नीबू से कुछ बड़े होते हैं। फूल लाल रंग के होते हैं। फल सुगंधित और खट्टा मीठा होता है। (२) एक प्रकार का प्रसिद्ध पकवान जो बरफी की तरह चौकोर कटा हुआ होता है। यह मीठा भी बनता है और नमकीन भी। इसके बनाने के लिये पहले मैदे में मोयन डालकर उसे दूध या पानी से गूँधते हैं और तब उसे मोटी रोटी की तरह बेलकर छुरी आदि से छोटे छोटे चौकोर टुकड़ों में काटकर घी में तल लेते हैं। यदि नमकीन बनाना होता है तो मैदा गूँधते समय ही उसमें नमक, अजवायन आदि डाल देते हैं; और यदि मीठा बनाना होता है, तो कटी हुई टुकड़ियों को तलने के बाद चीनी के शीरे में पाग लेते हैं। (३) रूईदार कपड़े पर की एक प्रकार की सिलाई जो शकरपारे के आकार की चौकोर होती है।

शकरपाला-संज्ञा पुं० दे० "शकरपारा"।

शकरपीटन-संज्ञा पुं० [?] एक प्रकार की कँटीली झाड़ी जो हिमालय पर्वत की पथरीली और सूखी ज़मीन में कुमायूँ और उसके पश्चिम ओर पाई जाती है। यह थूहड़ का ही भेद है; पर साधारण सेंहुड़ या थूहड़ के वृक्ष से कुछ भिन्न होता है।

शकरबादाम-संज्ञा पुं० [फ़ा० शकर+बादाम] खूबानी या जर्दआलू नामक फल जो पश्चिमोत्तर सीमा प्रांत में होता है।

शकरी-संज्ञा पुं० [फ़ा० शकर] फालसा नामक फल।

शकल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) त्वच। चमड़ा। (२) छाल। छिलका। (३) दालचीनी। (४) आँवला। (५) कमल की नाल। कमल-दंड। (६) खाँड़। शक्कर। (७) खंड। टुकड़ा। (८) मनु के अनुसार एक प्राचीन देश का नाम।

संज्ञा स्त्री० [अ० शक्ल] (१) मुख की बनावट। आकृति। चेहरा। रूप। जैसे,—शकल न सूरत, गधे की मूरत।

मुहा०—शकल बिगाड़ना = मारते मारते चेहरे का रूप बिगाड़ना। बहुत मारना।

यौ०—सूरत शकल = चेहरे की बनावट। आकृति।

(२) मुख का भाव। चेष्टा। (३) किसी चीज़ की बनावट। गढ़न। ढाँचा।

मुहा०—शकल बनाना = कोई चीज़ बनाकर उसका स्वरूप तैयार करना।

(४) किसी चीज का बनाया हुआ आकार। आकृति। स्वरूप। (५) उपाय। तरकीब। ढब। जैसे,—अब इस मुकदमे से पीछा छुड़ाने की कोई शकल निकालनी चाहिए।

क्रि० प्र०—निकलना।—निकालना।

(६) मूर्ति।

शकली-संज्ञा स्त्री० [सं०] सकुची मछली।

शकव-संज्ञा पुं० [सं०] राजहंस।

शकांतक-संज्ञा पुं० [सं०] शक जाति का अंत करनेवाला, विक्रमादित्य।

शकाकुल-संज्ञा पुं० [अ०] शतावर की जाति की एक प्रकार की वनस्पति जो प्रायः मिस्र देश में अधिकता से होती है और भारत के भी कुछ स्थानों विशेषतः काश्मीर और अफ़गानिस्तान में पाई जाती है। यह प्रायः नम जमीन में वृक्षों के नीचे उगती है। यह बारहो मास रहती है। इसके डंठल डेढ़ दो हाथ ऊँचे होते हैं। इसके पत्ते प्रायः तीन अंगुल चौड़े और एक बालिश्त लंबे होते हैं। इसके पौधे की प्रत्येक गाँठ पर पत्ते होते हैं। इसमें नीले या लाल रंग के छोटे छोटे फूल गुच्छों में और काले रंग के फल लगते हैं। इसकी जड़ कंद के रूप में होती है और बाजार में प्रायः शकाकुल मिस्री के नाम से मिलती है। यह जड़ कामोद्दीपक तथा वायुओं के लिये बलकारक मानी जाती है और विविध प्रकार की पौष्टिक औषधों में डाली जाती है। कंधार में इसके बीज ओषधि के काम में आते हैं। इसकी राख का क्षार (नमक) अर्श रोग में लाभदायक समझा जाता है। यह जड़ प्रायः काबुल से आती है और वही सब से अच्छी भी होती है। धुबली। दुधली। नर्सदुस्ती।

शकाब्द-संज्ञा पुं० [सं०] राजा शालिवाहन का चलाया हुआ संवत्। शक संवत्। (ईसवी संवत् में से ७८,७९ घटाने से शकाब्द निकल आता है।)

शकार-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शक वंशीय व्यक्ति। शक वंश का। (२) संस्कृत नाटकों की परिभाषा में राजा का वह साला जो नीच जाति का हो।

विशेष—नाटक में इस पात्र को बेवकूफ़, चंचल, घमंडी, नीच तथा कठोर हृदयवाला दिखलाया जाता है। जैसे,—मृच्छकटिक में संस्थानक।

शकारि-संज्ञा पुं० [सं०] शक जाति का शत्रु, विक्रमादित्य।

शकील-वि० [फ़ा० (शक्ल से)] अच्छी शकलवाला। खूबसूरत। सुन्दर।

शकुंत-संज्ञा पुं० [सं०] (१) पक्षी। चिड़िया। (२) एक प्रकार का कीड़ा। (३) विश्वामित्र के लड़के का नाम।

शकुंतक-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की छोटी चिड़िया।

शकुंतला-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) राजा दुष्यंत की स्त्री जो

भारतवर्ष के सुप्रसिद्ध राजा भरत की माता और मेनका अप्सरा की कन्या थी।

विशेष—महाभारत में लिखा है कि शकुंतला का जन्म विश्वामित्र के वीर्य्य से मेनका अप्सरा के गर्भ से हुआ था जो इसे वन में छोड़कर चली गई थी। वन में शकुंतों (पक्षियों) आदि ने हिंसक पशुओं से इसकी रक्षा की थी; इसी से इसका नाम शकुंतला पड़ा। वन में से इसे कण्व ऋषि उठा लाए थे और अपने आश्रम में रखकर कन्या के समान पालते थे। एक बार राजा दुष्यंत अपने साथ कुछ सैनिकों को लेकर शिकार खेलने निकले और घूमते फिरते कण्व ऋषि के आश्रम में पहुँचे। ऋषि उस समय वहाँ उपस्थित नहीं थे; इससे युवती शकुंतला ने ही राजा दुष्यंत का आतिथ्य-सत्कार किया था। उसी अवसर पर दोनों में पहले प्रेम और फिर गंधर्व-विवाह हो गया। कुछ दिनों के बाद राजा दुष्यंत वहाँ से अपने राज्य को चले गए। कण्व मुनि जब लौटकर अपने आश्रम में आए, तब वे यह जानकर बहुत प्रसन्न हुए कि शकुंतला का विवाह दुष्यंत से हो गया। शकुंतला उस समय गर्भवती हो चुकी थी; अतः समय पाकर उसके गर्भ से बहुत ही बलवान् और तेजस्वी पुत्र उत्पन्न हुआ, जिसका नाम भरत रखा गया। कहते हैं कि इस देश का भारतवर्ष नाम इसी के कारण पड़ा। कुछ दिनों बाद शकुंतला अपने पुत्र को लेकर राजा दुष्यंत के दरबार में पहुँची। परंतु शकुंतला को बीच में दुर्वासा ऋषि का शाप मिल चुका था; इससे राजा ने इसे बिलकुल न पहचाना और स्पष्ट कह दिया कि न तो मैं तुम्हें जानता हूँ और न तुम्हें अपने यहाँ आश्रय दे सकता हूँ। परंतु उसी अवसर एक आकाश वाणी हुई जिससे राजा को विदित हुआ कि यह मेरी ही पत्नी है और यह पुत्र भी मेरा ही है। उसी समय उन्हें कण्व मुनि के आश्रम की भी सब बातें स्मरण हो आईं और उन्होंने शकुंतला को अपनी प्रधान रानी बनाकर अपने यहाँ रख लिया।

(२) महाकवि कालिदास का लिखा हुआ एक प्रसिद्ध नाटक जिसमें राजा दुष्यंत और शकुंतला के प्रेम, विवाह, प्रत्याख्यान और ग्रहण आदि का वर्णन है।

शकुंतिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) छोटी चिड़िया। (२) टिड्डी। मशा।

शकुंद—संज्ञा पुं० [सं०] सफ़ेद कनेर।

शकुची—संज्ञा स्त्री० दे० "सकुची"।

शकुन—संज्ञा पुं० [सं०] (१) किसी काम के समय दिखाई देनेवाले लक्षण जो उस काम के संबंध में शुभ या अशुभ माने जाते हैं। वे चिह्न आदि जो किसी काम के संबंध में शुभ या अशुभ माने जाते हैं।

विशेष—प्रायः लोग कुछ घटनाओं को देखकर उनका शुभ या अशुभ फल होना मानते हैं; और उन घटनाओं को शकुन कहते हैं। जैसे,—कहीं जाते समय रास्ते में बिल्ली का रास्ता काट जाना अशुभ शकुन समझा जाता है और जलपूर्ण कलश या मृतक आदि का मिलना शुभ शकुन माना जाता है। इसी प्रकार अंगों का फड़कना, विशिष्ट पशुओं या पक्षियों आदि का बोलना या कुछ विशिष्ट वस्तुओं का दिखाई पड़ना भी शकुन समझा जाता है। हमारे यहाँ इस विषय का एक अलग शास्त्र ही बन गया है, और उसके अनुसार दही, घी, दूध, चंदन, शीशा, शंख, मछली, देवमूर्त्ति, फल, फूल, पान, सोना, चाँदी, रत्न, वेश्या आदि का दिखाई पड़ना शुभ और साँप, चमड़ा, नमक, खाली बरतन आदि दिखाई पड़ना अशुभ माना जाता है। प्रायः लोग अशुभ शकुन देखकर काम रोक या टाल देते हैं। साधारणतः बोल चाल में लोग शकुन से प्रायः शुभ शकुन का ही अभिप्राय लेते हैं; अशुभ शकुन को असगुन कहते हैं।

मुहा०—शकुन विचारना या देखना = कोई कार्य्य करने से पहले किसी उपाय से लक्षण आदि देखकर यह निश्चय करना कि यह काम होगा या नहीं; अथवा काम अभी करना चाहिए या नहीं।

(२) शुभ मुहूर्त्त या उसमें होनेवाला कार्य्य। (३) पक्षी। चिड़िया। (४) गिद्ध नामक शिकारी पक्षी। (५) मंगल अवसरों पर गाए जानेवाले गीत।

शकुनज्ञ—संज्ञा पुं० [सं०] वह जो शकुनों का शुभाशुभ फल जानता हो।

शकुनज्ञा—संज्ञा पुं० [सं० शकुन + ज्ञा] गिरगिट। गृहगोधा।

शकुनद्वार—संज्ञा पुं० [सं०] शकुन शास्त्र के अनुसार एक साथ ही शुभ और अशुभ दोनों प्रकार के शकुन होना जो यात्रा आदि के लिये बहुत शुभ माना जाता है।

शकुनशास्त्र—संज्ञा पुं० [सं०] वह शास्त्र जिसमें शकुनों के शुभ और अशुभ फलों का विवेचन हो। शकुन बतलानेवाला शास्त्र।

शकुनाहृत—संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्रकार का चावल जिसे दाऊदखानी कहते हैं। (२) एक प्रकार की मछली। (३) एक प्रकार का बाल रोग। शकुनी ग्रह। दे० "शकुनी" (४)।

शकुनाहृता—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) चिड़ियों द्वारा लाई हुई वस्तु। (२) एक प्रकार का चावल।

शकुनि—संज्ञा पुं० [सं०] (१) पक्षी। चिड़िया। (२) गिद्ध पक्षी। (३) एक नाग का नाम। (४) एक दैत्य जो हिरण्याक्ष का

पुत्र और वृक का पिता था। (५) पुराणानुसार दुःसह के आठ पुत्रों में से एक जो निर्माष्टि के गर्भ से उत्पन्न हुआ था। (६) पुराणानुसार विकुक्षि के पाँच पुत्रों में से एक। (७) गांधारी का भाई और कौरवों का मामा जो सुबलराज का पुत्र था और इसी लिये सौबल कहलाता था। यह बहुत ही दुष्ट और पापाचारी था। दुर्योधन ने इसे अपना मंत्री बना रखा था और इसके परामर्श से उसने पांडवों के साथ अनेक कपटपूर्ण व्यवहार किए थे और उन्हें अनेक कष्ट पहुँचाए थे। कौरव कुल के नाश का मुख्य कारण यही शकुनि था। यह अपने पुत्र सहित सहदेव के हाथ से मारा गया था। (८) बड़ा भारी दुष्ट और पाजी आदमी। (९) फलित ज्योतिष के अनुसार बव आदि ग्यारह करणों में से आठवाँ करण। कहते हैं कि जो बालक इस करण में जन्म लेता है, वह बड़ा भारी धूर्त्त, ठग, क्रूर, कृतघ्न, क्रोधी और लंपट होता है।

शकुनिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] पुराणानुसार स्कंद की अनुचरी एक मातृका का नाम।

शकुनिग्रह-संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार स्कंद के एक अनुचर का नाम।

शकुनिवाद-संज्ञा पुं० [सं०] उषा काल के समय चिड़ियों का चहचहाना।

शकुनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) श्यामा पक्षी। (२) गौरैया पक्षी की मादा। (३) पुराणानुसार एक पूतना का नाम जो बहुत क्रूर और भयंकर कही गई है। (४) सुश्रुत के अनुसार एक प्रकार का बालग्रह। कहते हैं कि जिस बालक पर इसका आक्रमण होता है, उसके अंग शिथिल पड़ जाते हैं, शरीर में जलन होती है, फोड़े फुंसियाँ आदि निकल आती हैं, शरीर से पक्षियों की सी गंध आने लगती है और वह रह रहकर चौंक उठता है।

संज्ञा पुं० [सं० शकुन+ई (प्रत्य०)] वह जो शकुनों का शुभ और अशुभ फल जानता हो। शकुनज्ञ।

शकुनी मातृका-संज्ञा स्त्री० [सं०] बालकों की एक प्रकार की व्याधि जो उनके जन्म से छठे दिन, छठे मास या छठे वर्ष होती है और जिसमें उन्हें ज्वर तथा कंप होता है, दृष्टि ऊर्ध्व हो जाती है और हर दम बहुत कष्ट बना रहता है।

शकुनीश्वर-संज्ञा पुं० [सं०] पक्षियों का स्वामी, अर्थात् गरुड़।

शकुल, शकुलगंड-संज्ञा पुं० [सं०] सौरी मछली।

शकुला-संज्ञा स्त्री० [सं०] कुटकी। कटुकी।

शकुलाक्ष-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सफ़ेद दूब। श्वेत दूर्वा। (२) गाँडर दूब। गंडदूर्वा।

शकुलाक्षा-संज्ञा स्त्री० दे० "शकुलाक्ष"।

शकुलादी-संज्ञा स्त्री० [सं०] गाँडर दूब।

शकुलादनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) कुटकी। कटुकी। (२) जलपिप्पली। जलपीपल। (३) जल चौलाई। कंचट शाक। (४) कायफल। कट्फल। (५) गजपीपल। गजपिप्पली। (६) गाँडर दूब। गंडदूर्वा। (७) जटामासी। बालछड़। (८) केंचुआ। गंडूपद।

शकुलार्भक-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की मछली। गडुई मछली।

शकुलाह्नी-संज्ञा स्त्री० [सं०] जलपीपल।

शकुली-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सकुची मछली। (२) पुराणानुसार एक नदी का नाम।

शकृत-संज्ञा पुं० [सं०] (१) विष्ठा। गुह। (२) गोबर।

शकृत्करि-संज्ञा पुं० [सं०] गाय का बच्चा। बछड़ा।

शकृद्देश-संज्ञा पुं० [सं०] मलद्वार। गुदा।

शकृद्द्वार-संज्ञा पुं० [सं०] मलद्वार। गुदा।

शक्कर-संज्ञा स्त्री० [सं० शर्करा मि० फ़ा० शकर = चीनी] (१) चीनी। (२) कच्ची चीनी। खाँड़।

संज्ञा पुं० बैल। वृष।

शक्करि-संज्ञा पुं० [सं०] बैल। वृष।

शक्करी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) वर्ण वृत्त के अंतर्गत चौदह अक्षरोंवाले छंदों की संज्ञा जिनके नाम इस प्रकार हैं—वसंतिलका, असंबाधा, अपराजिता, प्रहरणकलिका, वासंती, मंजरी, कुटिल, इंदुवदना, चक्र, नांदीमुख, लाली और अनंद। इनमें से वसंततिलका सब से अधिक प्रसिद्ध है। (२) मेखला। (३) एक प्राचीन नदी का नाम।

शक्की-वि० [अ० शक+ई (प्रत्य०)] जिसे हर बात में संदेह होता हो। सदा शक करनेवाला।

शक्त-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जिसमें शक्ति हो। शक्तिसंपन्न। समर्थ। ताकतवर। (२) वह जो प्रिय बातें कहता हो। मिष्टभाषी।

शक्तु-संज्ञा पुं० [सं०] भुने हुए अनाज का आटा। सत्तू।

शक्ति-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) वह शारीरिक गुण या धर्म जिसके द्वारा अंगों का संचालन तथा दूसरे काम होते हैं। बल। पराक्रम। ताकत। जोर। जैसे,—(क) उसमें दो मन बोझ उठाने की शक्ति है। (ख) अब तो उनमें उठने बैठने की भी शक्ति नहीं रह गई। (ग) दुर्बलों पर शक्ति का प्रयोग नहीं करना चाहिए।

क्रि० प्र०—देखना।—रखना।—लगना।—लगाना।

(२) किसी प्रकार का बल या ताकत जिससे कोई काम हो। जैसे,—मानसिक शक्ति, स्मरण शक्ति, सैनिक शक्ति, शब्द शक्ति। (३) किसी पदार्थ के संयोजक अंगों या द्रव्यों आदि का प्रकट होनेवाला बल। दूसरे पदार्थों पर प्रभाव डालनेवाला बल। जैसे,—(क) इस औषध में ऐसी शक्ति है कि मृत्यु को भी कुछ देर के लिये रोक देती है। (ख) इस इंजन में बीस घोड़ों की शक्ति है। (ग) पानी के बहाव

भारतवर्ष के सुप्रसिद्ध राजा भरत की माता और मेनका अप्सरा की कन्या थी।

विशेष—महाभारत में लिखा है कि शकुंतला का जन्म विश्वामित्र के वीर्य्य से मेनका अप्सरा के गर्भ से हुआ था जो इसे वन में छोड़कर चली गई थी। वन में शकुंतों (पक्षियों) आदि ने हिंसक पशुओं से इसकी रक्षा की थी; इसी से इसका नाम शकुंतला पड़ा। वन में से इसे कण्व ऋषि उठा लाए थे और अपने आश्रम में रखकर कन्या के समान पालते थे। एक बार राजा दुष्यंत अपने साथ कुछ सैनिकों को लेकर शिकार खेलने निकले और घूमते फिरते कण्व ऋषि के आश्रम में पहुँचे। ऋषि उस समय वहाँ उपस्थित नहीं थे; इससे युवती शकुंतला ने ही राजा दुष्यंत का आतिथ्य-सत्कार किया था। उसी अवसर पर दोनों में पहले प्रेम और फिर गंधर्व-विवाह हो गया। कुछ दिनों के बाद राजा दुष्यंत वहाँ से अपने राज्य को चले गए। कण्व मुनि जब लौटकर अपने आश्रम में आए, तब वे यह जानकर बहुत प्रसन्न हुए कि शकुंतला का विवाह दुष्यंत से हो गया। शकुंतला उस समय गर्भवती हो चुकी थी; अतः समय पाकर उसके गर्भ से बहुत ही बलवान् और तेजस्वी पुत्र उत्पन्न हुआ, जिसका नाम भरत रखा गया। कहते हैं कि इस देश का भारतवर्ष नाम इसी के कारण पड़ा। कुछ दिनों बाद शकुंतला अपने पुत्र को लेकर राजा दुष्यंत के दरबार में पहुँची। परंतु शकुंतला को बीच में दुर्वासा ऋषि का शाप मिल चुका था; इससे राजा ने इसे बिलकुल न पहचाना और स्पष्ट कह दिया कि न तो मैं तुम्हें जानता हूँ और न तुम्हें अपने यहाँ आश्रय दे सकता हूँ। परंतु उसी अवसर पर एक आकाश वाणी हुई जिससे राजा को विदित हुआ कि यह मेरी ही पत्नी है और यह पुत्र भी मेरा ही है। उसी समय उन्हें कण्व मुनि के आश्रम की भी सब बातें स्मरण हो आईं और उन्होंने शकुंतला को अपनी प्रधान रानी बनाकर अपने यहाँ रख लिया।

(२) महाकवि कालिदास का लिखा हुआ एक प्रसिद्ध नाटक जिसमें राजा दुष्यंत और शकुंतला के प्रेम, विवाह, प्रत्याख्यान और ग्रहण आदि का वर्णन है।

शकुंतिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) छोटी चिड़िया। (२) टिड्डी। प्रज्ञा।

शकुंद-संज्ञा पुं० [सं०] सफ़ेद कनेर।

शकुची-संज्ञा स्त्री० दे० "सकुची"।

शकुन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) किसी काम के समय दिखाई देनेवाले लक्षण जो उस काम के संबंध में शुभ या अशुभ माने जाते हैं। वे चिह्न आदि जो किसी काम के संबंध में शुभ या अशुभ माने जाते हैं।

विशेष—प्रायः लोग कुछ घटनाओं को देखकर उनका शुभ या अशुभ फल होना मानते हैं; और उन घटनाओं को शकुन कहते हैं। जैसे,—कहीं जाते समय रास्ते में बिल्ली का रास्ता काट जाना अशुभ शकुन समझा जाता है और जलपूर्ण कलश या मृतक आदि का मिलना शुभ शकुन माना जाता है। इसी प्रकार अंगों का फड़कना, विशिष्ट पशुओं या पक्षियों आदि का बोलना या कुछ विशिष्ट वस्तुओं का दिखलाई पड़ना भी शकुन समझा जाता है। हमारे यहाँ इस विषय का एक अलग शास्त्र ही बन गया है; और उसके अनुसार दही, घी, दूध, चंदन, शीशा, शंख, मछली, देवमूर्त्ति, फल, फूल, पान, सोना, चाँदी, रत्न, वेश्या आदि का दिखाई पड़ना शुभ और साँप, चमड़ा, नमक, खाली बरतन आदि दिखाई पड़ना अशुभ माना जाता है। प्रायः लोग अशुभ शकुन देखकर काम रोक या टाल देते हैं। साधारणतः बोल चाल में लोग शकुन से प्रायः शुभ शकुन का ही अभिप्राय लेते हैं; अशुभ शकुन को असगुन कहते हैं।

मुहा०—शकुन विचारना या देखना = कोई कार्य्य करने से पहले किसी उपाय से लक्षण आदि देखकर यह निश्चय करना कि यह काम होगा या नहीं; अथवा काम अभी करना चाहिए या नहीं।

(२) शुभ मुहूर्त्त या उसमें होनेवाला कार्य्य। (३) पक्षी। चिड़िया। (४) गिद्ध नामक शिकारी पक्षी। (५) मंगल अवसरों पर गाए जानेवाले गीत।

शकुनज्ञ-संज्ञा पुं० [सं०] वह जो शकुनों का शुभाशुभ फल जानता हो।

शकुनज्ञा-संज्ञा पुं० [सं० शकुन + ज्ञा] गिरगिट। गृहगोधा।

शकुनद्वार-संज्ञा पुं० [सं०] शकुन शास्त्र के अनुसार एक साथ ही शुभ और अशुभ दोनों प्रकार के शकुन होना जो यात्रा आदि के लिये बहुत शुभ माना जाता है।

शकुनशास्त्र-संज्ञा पुं० [सं०] वह शास्त्र जिसमें शकुनों के शुभ और अशुभ फलों का विवेचन हो। शकुन बतलानेवाला शास्त्र।

शकुनाहृत-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्रकार का चावल जिसे दाऊदखानी कहते हैं। (२) एक प्रकार की मछली। (३) एक प्रकार का बाल रोग। शकुनी ग्रह। दे० "शकुनी" (४)।

शकुनाहृता-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) चिड़ियों द्वारा लाई हुई वस्तु। (२) एक प्रकार का चावल।

शकुनि-संज्ञा पुं० [सं०] (१) पक्षी। चिड़िया। (२) गिद्ध पक्षी। (३) एक नाग का नाम। (४) एक दैत्य जो हिरण्याक्ष का

पुत्र और वृक का पिता था। (५) पुराणानुसार दुःसह के आठ पुत्रों में से एक जो निर्माष्टि के गर्भ से उत्पन्न हुआ था। (६) पुराणानुसार विकुक्षि के पाँच पुत्रों में से एक। (७) गांधारी का भाई और कौरवों का मामा जो सुबलराज का पुत्र था और इसी लिये सौबल कहलाता था। यह बहुत ही दुष्ट और पापाचारी था। दुर्योधन ने इसे अपना मंत्री बना रखा था और इसके परामर्श से उसने पांडवों के साथ अनेक कपटपूर्ण व्यवहार किए थे और उन्हें अनेक कष्ट पहुँचाए थे। कौरव कुल के नाश का मुख्य कारण यही शकुनि था। यह अपने पुत्र सहित सहदेव के हाथ से मारा गया था। (८) बड़ा भारी दुष्ट और पाजी आदमी। (९) फलित ज्योतिष के अनुसार बव आदि ग्यारह करणों में से आठवाँ करण। कहते हैं कि जो बालक इस करण में जन्म लेता है, वह बड़ा भारी धूर्त, ठग, क्रूर, कृतघ्न, क्रोधी और लंपट होता है।

शकुनिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] पुराणानुसार स्कंद की अनुचरी एक मातृका का नाम।

शकुनिग्रह-संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार स्कंद के एक अनुचर का नाम।

शकुनिवाद-संज्ञा पुं० [सं०] उषा काल के समय चिड़ियों का चहचहाना।

शकुनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) श्यामा पक्षी। (२) गौरैया पक्षी की मादा। (३) पुराणानुसार एक पूतना का नाम जो बहुत क्रूर और भयंकर कही गई है। (४) सुश्रुत के अनुसार एक प्रकार का बालग्रह। कहते हैं कि जिस बालक पर इसका आक्रमण होता है, उसके अंग शिथिल पड़ जाते हैं, शरीर में जलन होती है, फोड़े फुंसियाँ आदि निकल आती हैं, शरीर से पक्षियों की सी गंध आने लगती है और वह रह रहकर चौंक उठता है।

संज्ञा पुं० [सं० शकुन+ई (प्रत्य०)] वह जो शकुनों का शुभ और अशुभ फल जानता हो। शकुनज्ञ।

शकुनी मातृका-संज्ञा स्त्री० [सं०] बालकों की एक प्रकार की व्याधि जो उनके जन्म से छठे दिन, छठे मास या छठे वर्ष होती है और जिसमें उन्हें ज्वर तथा कंप होता है, दृष्टि ऊर्ध्व हो जाती है और हर दम बहुत कष्ट बना रहता है।

शकुनीश्वर-संज्ञा पुं० [सं०] पक्षियों का स्वामी, अर्थात् गरुड़।

शकुल, शकुलगंड-संज्ञा पुं० [सं०] सौरी मछली।

शकुला-संज्ञा स्त्री० [सं०] कुटकी। कटुकी।

शकुलाक्ष-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सफ़ेद दूब। श्वेत दूर्वा। (२) गाँडर दूब। गंडदूर्वा।

शकुलाक्षा-संज्ञा स्त्री० दे० "शकुलाक्ष"।

शकुलाक्षी-संज्ञा स्त्री० [सं०] गाँडर दूब।

शकुलादनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) कुटकी। कटुकी। (२) जलपिप्पली। जलपीपल। (३) जल चौलाई। कंचट शाक। (४) कायफल। कटफल। (५) गजपीपल। गजपिप्पली। (६) गाँडर दूब। गंडदूर्वा। (७) जटामासी। बालछड़। (८) केंचुआ। गंडूपद।

शकुलार्भक-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की मछली। गडुई मछली।

शकुलाह्वनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] जलपीपल।

शकुली-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सकुची मछली। (२) पुराणानुसार एक नदी का नाम।

शकृत-संज्ञा पुं० [सं०] (१) विष्ठा। गुह। (२) गोबर।

शकृत्करि-संज्ञा पुं० [सं०] गाय का बच्चा। बछड़ा।

शकृद्देश-संज्ञा पुं० [सं०] मलद्वार। गुदा।

शकृद्द्वार-संज्ञा पुं० [सं०] मलद्वार। गुदा।

शक्कर-संज्ञा स्त्री० [सं० शर्करा मि० फ़ा० शकर = चीनी] (१) चीनी। (२) कच्ची चीनी। खाँड़।

संज्ञा पुं० बैल। वृष।

शक्करि-संज्ञा पुं० [सं०] बैल। वृष।

शक्करी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) वर्ण वृत्त के अंतर्गत चौदह अक्षरोंवाले छंदों की संज्ञा जिनके नाम इस प्रकार हैं—वसंतिलका, असंबाधा, अपराजिता, प्रहरणकलिका, वासंती, मंजरी, कुटिल, इंदुवदना, चक्र, नांदीमुख, लाली और अनंद। इनमें से वसंततिलका सब से अधिक प्रसिद्ध है। (२) मेखला। (३) एक प्राचीन नदी का नाम।

शक्की-वि० [अ० शक+ई (प्रत्य०)] जिसे हर बात में संदेह होता हो। सदा शक करनेवाला।

शक्त-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जिसमें शक्ति हो। शक्तिसंपन्न। समर्थ। ताक़तवर। (२) वह जो प्रिय बातें कहता हो। मिष्टभाषी।

शक्तु-संज्ञा पुं० [सं०] भुने हुए अनाज का आटा। सत्तू।

शक्ति-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) वह शारीरिक गुण या धर्म जिसके द्वारा अंगों का संचालन तथा दूसरे काम होते हैं। बल। पराक्रम। ताकत। ज़ोर। जैसे,—(क) उसमें दो मन बोझ उठाने की शक्ति है। (ख) अब तो उनमें उठने बैठने की भी शक्ति नहीं रह गई। (ग) दुर्बलों पर शक्ति का प्रयोग नहीं करना चाहिए।

क्रि० प्र०—देखना।—रखना।—लगना।—लगाना।

(२) किसी प्रकार का बल या ताकत जिससे कोई काम हो। जैसे,—मानसिक शक्ति, स्मरण शक्ति, सैनिक शक्ति, शब्द शक्ति। (३) किसी पदार्थ के संयोजक अंगों या द्रव्यों आदि का प्रकट होनेवाला बल। दूसरे पदार्थों पर प्रभाव डालनेवाला बल। जैसे,—(क) इस औषध में ऐसी शक्ति है कि मृत्यु को भी कुछ देर के लिये रोक देती है। (ख) इस इंजन में बीस घोड़ों की शक्ति है। (ग) पानी के बहाव

में बड़ी बड़ी चट्टानों तक को तोड़ने की शक्ति होती है। (४) वश। अधिकार। जैसे,—उसकी रक्षा करना मेरी शक्ति के बाहर है। (५) राज्य के वे साधन जिनसे शत्रुओं पर विजय प्राप्त की जाती है।

विशेष—हमारे यहाँ राजाओं की तीन प्रकार की शक्ति कही गई है—प्रभुशक्ति, मंत्रशक्ति और उत्साह शक्ति। कोश और दंड आदि के संबंध की शक्ति प्रभुशक्ति, संधि विग्रह आदि के संबंध की शक्ति मंत्र शक्ति और पराक्रम प्रकट करने तथा विजय प्राप्त करने की शक्ति उत्साह शक्ति कहलाती है।

(६) बड़ा और पराक्रमी राज्य जिसमें यथेष्ट धन और सेना आदि हो। जैसे,—इस समय युरोप में इंगलैंड, फ्रान्स, जर्मनी और रूस आदि कई बड़ी बड़ी शक्तियाँ हैं। (७) न्याय के अनुसार वह संबंध जो किसी पदार्थ और उसका बोध करानेवाले शब्द में होता है। (८) ईश्वर की वह कल्पित माया जो उसकी आज्ञा से सब काम करनेवाली और सृष्टि की रचना करनेवाली मानी जाती है। प्रकृति। माया। (९) किसी देवता का पराक्रम या बल जो कुछ विशिष्ट कार्यों का साधक माना जाता है। जैसे,—रौद्री शक्ति, वैष्णवी शक्ति।

विशेष—हमारे यहाँ पुराणों में भिन्न भिन्न देवताओं की अनेक शक्तियों की कल्पना की गई है और ये शक्तियाँ बहुधा देवी के रूप में और मूर्त्तिमती मानी गई हैं। जैसे,—विष्णु की कीर्त्ति, कांति, तुष्टि, पुष्टि, शांति, प्रीति आदि शक्तियाँ; रुद्र की गुणोदरी, गोमुखी, दीर्घजिह्वा, ज्वालामुखी, लंबोदरी, खेचरी, मंजरी आदि शक्तियाँ; देवी की इंद्राणी, वैष्णवी, ब्रह्माणी, कौमारी, नारसिंही, वाराही, माहेश्वरी और सर्वमंगला आदि शक्तियाँ।

(१०) तंत्र के अनुसार किसी पीठ की अधिष्ठात्री देवी जिसकी उपासना करनेवाले शाक्त कहे जाते हैं। ऐसी शक्ति समस्त सृष्टि की रचना करनेवाली और सब तरह की सामर्थ्य रखनेवाली मानी जाती है। (११) दुर्गा। भगवती। (१२) गौरी। (१३) लक्ष्मी। (१४) तांत्रिकों की परिभाषा में वह नटी, कापालिकी, वेश्या, धोबिन, नाइन, ब्राह्मणी, शूद्रा, ग्वालिन या मालिन जो युवती, रूपवती और सौभाग्यवती हो। ऐसी स्त्रियों का विधिपूर्वक पूजन सिद्धिप्रद और मोक्षदायक माना जाता है। (१५) स्त्री की मूत्रेंद्रिय। भग। (तांत्रिक) (१६) एक प्रकार का शस्त्र। साँग। (१७) तलवार।

संज्ञा पुं० एक प्राचीन ऋषि का नाम जो पराशर के पिता थे।

शक्तिक-संज्ञा पुं० [सं०] गंधक।

शक्तिग्रह-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शिव। महादेव। (२) कार्त्तिकेय। (३) शब्द का अर्थ बतलानेवाली शक्ति या वृत्ति का ज्ञान। (४) वह जो भाला या बरछी चलाता हो। भालाबरदार।

वि० शक्ति को ग्रहण करनेवाला।

शक्तिता-संज्ञा स्त्री० [सं०] शक्ति का भाव या धर्म। शक्तित्व।

शक्तिधर-संज्ञा पुं० [सं०] स्कंद। कार्त्तिकेय। उ०—शक्ति शक्तिधर पासहि पासी।—गर्गसंहिता।

शक्तिध्वज-संज्ञा पुं० [सं०] कार्त्तिकेय। स्कंद।

शक्तिपर्ण-संज्ञा पुं० [सं०] छतिवन। सतिवन। सप्तपर्ण वृक्ष।

शक्तिपाणि-संज्ञा पुं० [सं०] कार्त्तिकेय। स्कंद।

शक्तिपूजक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जो शक्ति की उपासना करता हो। शाक्त। (२) तांत्रिक। वाममार्गी।

शक्तिपूजा-संज्ञा स्त्री० [सं०] शक्ति का शाक्त द्वारा होनेवाला पूजन।

शक्तिपूर्व-संज्ञा पुं० [सं०] पराशर का एक नाम।

शक्तिबोध-संज्ञा पुं० [सं०] शब्द शक्ति का ज्ञान। शब्द के अर्थ का बोध।

शक्तिभृत्-संज्ञा पुं० [सं०] कार्त्तिकेय। स्कंद।

शक्तिमत्ता-संज्ञा स्त्री० [सं०] शक्तिमान् होने का भाव या धर्म।

शक्तिमत्व-संज्ञा पुं० दे० "शक्तिमत्ता"।

शक्तिमान्-वि० [सं० शक्तिमत्] [स्त्री० शक्तिमती] बलवान। बलिष्ठ। ताकतवर।

शक्तिवन-संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार एक वन का नाम जो तीर्थ कहा गया है।

शक्तिवादी-संज्ञा पुं० [सं० शक्तिवादिन्] वह जो शक्ति की उपासना करता हो। शाक्त।

शक्तिवीर-संज्ञा पुं० [सं०] वह जो शक्ति की उपासना करता हो। वाममार्गी।

शक्तिवैकल्य-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शक्ति का नाश। कमज़ोरी। (२) असमर्थता।

शक्तिशोधन-संज्ञा पुं० [सं०] शाक्तों का एक संस्कार जिसमें वे किसी स्त्री को शक्ति की प्रतिनिधि बनाने से पहले कुछ विशिष्ट क्रियाएँ करके उसे शुद्ध करते हैं।

शक्तिष्ठ-वि० [सं०] जिसमें शक्ति हो। शक्तिशाली। ताकतवर। बलवान्।

शक्तिसंपन्न-वि० [सं०] शक्ति से युक्त। बलवान्। ताकतवर। मजबूत।

शक्तिहीन-वि० [सं०] (१) जिसमें शक्ति का अभाव हो। निर्बल। बलहीन। असमर्थ। नाताकत। (२) हीजड़ा। नामर्द। नपुंसक।

शकी-संज्ञा पुं० [सं० शक्ति] एक प्रकार के मात्रिक छंद का नाम। इसके प्रत्येक चरण में १८ मात्राएँ होती हैं और इसकी रचना ३ + ३ + ४ + ३ + ५ होती है। अंत में सगण, रगण

या नगण में से कोई एक और आदि में एक लघु होना चाहिए। इसकी १, ६, ११ और १६ वीं मात्रा लघु रहती है। यह छंद भुजंगी और चंद्रिका वृत्त की चाल पर होता है। अंतर यह है कि वे गण-बद्ध होते हैं और यह स्वतंत्र है। यह छंद फ़ारसी के 'करीमा बबख़्शाय बर हाल मा। कि हस्तम् असीरे कमंदे हवा' की बहर से मिलता है। उ०—शिवा शंभु के पाँव पंकज गहौं। विनायक सहायक सदा दिन चहौं।—काव्यप्रभाकर।

संज्ञा पुं० [सं० शक्तिन्] शक्तिवाला। शक्तिशाली। बलवान्।

शक्तु-संज्ञा पुं० [सं०] भुने हुए जौ, चने आदि का आटा। सत्तू।

शक्तुक-संज्ञा पुं० [सं०] भाव प्रकाश के अनुसार एक प्रकार का बहुत तीव्र और उग्र विष जो भसींड़ के समान होता है। पीसने से यह सहज ही में पिसकर सत्तू के समान हो हो जाता है।

शक्तुफला-संज्ञा स्त्री० [सं०] शमी वृक्ष। सफ़ेद कीकर। छिकुर का पेड़।

शक्तुफलिका, शक्तुफली-संज्ञा स्त्री० [सं०] शमी का वृक्ष।

शक्ति-संज्ञा पुं० [सं०] वशिष्ठ मुनि के सब से बड़े लड़के का नाम। महाभारत में लिखा है कि एक बार रास्ते में राजा कल्माषपाद से इनकी कहा सुनी हो गई, जिस पर राजा ने इन्हें एक कोड़ा जमा दिया। इस पर इन्होंने राजा को शाप दिया कि तुम राक्षस हो जाओ। तदनुसार राजा राक्षस हो गया और पहले उसने इन्हीं को भक्षण कर लिया।

शक्य-वि० [सं०] (१) किया जाने योग्य। जो किया जा सके। संभव। क्रियात्मक। (२) जिसमें शक्ति हो।

संज्ञा पुं० शब्द शक्ति के द्वारा प्रकट होनेवाला अर्थ। जैसे,—'अग्नि' पद में अंगार रूप की शक्ति है; अतः अग्नि पद का अंगार शक्य अथवा वाच्य है। (व्याकरण)

शक्यता-संज्ञा स्त्री० [सं०] शक्य होने का भाव या धर्म। क्रियात्मकता।

शक्यप्राप्ति-संज्ञा स्त्री० [सं०] न्याय दर्शन के अनुसार प्रमाता के वे प्रमाण जिनसे प्रमेय सिद्ध होता है।

शक्र-संज्ञा पुं० [सं०] (१) दैत्यों का नाश करनेवाले, इन्द्र। उ०—भरत शोक बरन्यो नहिं जाई। मनहु शक्र द्विज हत्या पाई।—लवकुशचरित्र। (२) कुटज वृक्ष। कोरैया। (३) अर्जुन वृक्ष। कोह वृक्ष। (४) इंद्रजौ। कुटज बीज। (५) रगण के चौथे भेद अर्थात् (ऽ।।ऽ) की संज्ञा, जिसमें छः मात्राएँ होती हैं। जैसे,—लोकपती। (६) ज्येष्ठा नक्षत्र, जिसके अधिष्ठाता देवता इंद्र हैं।

वि० समर्थ। योग्य।

शक्रकार्मुक-संज्ञा पुं० [सं०] इंद्र-धनुष।

शक्रकुमारिका-संज्ञा स्त्री० दे० "शक्रमातृका"।

शक्रकेतु-संज्ञा पुं० [सं०] इंद्रध्वज।

शक्रक्रीड़ाचल-संज्ञा पुं० [सं०] इंद्र के क्रीड़ा करने का पर्वत अर्थात् सुमेरु पर्वत।

शक्रगोप-संज्ञा पुं० [सं०] इंद्रगोप नामक कीड़ा। बीर बहूटी।

शक्रचाप-संज्ञा पुं० [सं०] इंद्रधनुष।

शक्रज, शक्रजात-संज्ञा पुं० [सं०] कौआ। काक पक्षी।

शक्रजा-संज्ञा स्त्री० [सं०] इंद्रवारुणी लता। इंद्रायण। इनारुन।

शक्रजानु-संज्ञा पुं० [सं०] रामायण के अनुसार एक वानर का नाम।

शक्रजाल-संज्ञा पुं० दे० "इंद्रजाल"।

शक्रजित्-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जिसने इंद्र पर विजय प्राप्त की हो। (२) इंद्र को जीतनेवाले मेघनाद का एक नाम।

शक्रतरु-संज्ञा पुं० [सं०] भाँग का पेड़।

शक्रत्व-संज्ञा पुं० [सं०] शक्र का भाव या धर्म्म।

शक्रदारु-संज्ञा पुं० [सं०] (१) देवदारु। (२) साखू का पेड़। शाल।

शक्रदिश-संज्ञा स्त्री० [सं०] पूर्व दिशा जिसके स्वामी इंद्र माने जाते हैं।

शक्रदेव-संज्ञा पुं० [सं०] (१) इंद्र। (२) हरिवंश के अनुसार शृगाल के एक पुत्र का नाम।

शक्रदैवत-संज्ञा पुं० [सं०] ज्येष्ठा नक्षत्र जिसके स्वामी इंद्र माने जाते हैं।

शक्रद्रुम-संज्ञा पुं० [सं०] (१) देवदारु। (२) मौलसिरी। बकुल वृक्ष।

शक्रधनु, शक्रधनुष-संज्ञा पुं० [सं०] इंद्र-धनुष।

शक्रध्वज-संज्ञा पुं० दे० "इंद्रध्वज"।

शक्रनंदन-संज्ञा पुं० [सं०] इंद्र का पुत्र अर्थात् अर्जुन।

शक्रनेमी-संज्ञा पुं० [सं०] (१) देवदार का वृक्ष। (२) मेढ़ा-सिंगी। मेषशृंगी। (३) कुड़ा। कोरैया। कुटज वृक्ष।

शक्रपर्य्याय, शक्रपादप-संज्ञा पुं० [सं०] (१) कुड़ा। कुटज वृक्ष। (२) देवदार का पेड़।

शक्रपुर-संज्ञा पुं० [सं०] इंद्र के रहने की पुरी, अमरावती।

शक्रपुष्प-संज्ञा पुं० [सं०] इंद्रजौ। कुटज बीज।

शक्रपुष्पा-संज्ञा स्त्री० दे० "शक्रपुष्पिका"।

शक्रपुष्पिका, शक्रपुष्पी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) अग्निशिखा नाम का वृक्ष। (२) कलिहारी। लांगली। (३) नाग दमनी। नागदौन।

शक्रप्रस्थ-संज्ञा पुं० [सं०] एक नगर जिसे पांडवों ने खांडव-वन जलाकर बसाया था। इंद्रप्रस्थ। उ०—उठे सुनत हरि उद्धव बानी। भे पुनि शक्रप्रस्थ मग्यानी।—[illegible]।

शक्रबीज-संज्ञा पुं० [सं०] इंद्रजौ।

शक्रभवन-संज्ञा पुं० [सं०] स्वर्ग।

शक्रभिद्-संज्ञा पुं० [सं०] इंद्र को दबानेवाला, मेघनाद। इंद्रजित्।

शक्रभूभवा-संज्ञा स्त्री० [सं०] इंद्रवारुणी नाम की लता। इनारुन। इंद्रायण।

शक्रभूरुह-संज्ञा पुं० [सं०] कुटज वृक्ष। कुड़ा। कौरैया।

शक्रमाता-संज्ञा स्त्री० [सं० शक्रमातृ] इंद्र की माता अर्थात् भार्गी।

शक्रमातृका-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) इंद्रध्वज। (२) भार्गी।

शक्रमूर्द्धा-संज्ञा पुं० [सं० शक्रमूर्द्धन्] वल्मीक। बाँबी।

शक्रयव-संज्ञा पुं० [सं०] इंद्रजौ। कुटज बीज।

शक्रलोक-संज्ञा पुं० [सं०] इंद्रलोक। स्वर्ग।

शक्रवल्ली-संज्ञा स्त्री० [सं०] इंद्रवारुणी नाम की लता। इनारुन। इंद्रायण।

शक्रवापी-संज्ञा पुं० [सं० शक्रवापिन्] महाभारत के अनुसार एक नाग का नाम।

शक्रवाहन-संज्ञा पुं० [सं०] इंद्र का वाहन अर्थात् मेघ। बादल।

शक्रवृक्ष-संज्ञा पुं० [सं०] कुटज। कौरैया।

शक्रशरासन-संज्ञा पुं० [सं०] इंद्र-धनुष।

शक्रशाखी-संज्ञा पुं० [सं० शक्रशाखिन्] कुड़ा। कुटज वृक्ष।

शक्रशाला-संज्ञा स्त्री० [सं०] यज्ञ-भूमि में वह स्थान जहाँ इंद्र के उद्देश्य से बलि दी जाती हो।

शक्रशिर-संज्ञा पुं० [सं० शक्रशिरस्] बाँबी। वल्मीक।

शक्रसारथी-संज्ञा पुं० [सं०] इंद्र का सारथी अर्थात् मातलि।

शक्रसुत-संज्ञा पुं० [सं०] इंद्र का पुत्र बालि, जिसे राम ने मारा था।

शक्रसुधा-संज्ञा स्त्री० [सं०] कुँदरू। गुंदपरोसा।

शक्रसृष्टा-संज्ञा स्त्री० [सं०] हरीतकी। हर्रे।

शक्राख्य-संज्ञा पुं० [सं०] उल्लू। पेचक पक्षी।

शक्राग्नि-संज्ञा पुं० [सं०] विशाखा नक्षत्र जिसके स्वामी इंद्र और अग्नि माने जाते हैं।

शक्राणी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) इंद्र की पत्नी, शची। इंद्राणी। (२) निर्गुंडी। शेफालिका। सेंनुआर।

शक्रात्मज-संज्ञा पुं० [सं०] अर्जुन।

शक्राद्न-संज्ञा पुं० [सं०] भाँग। भंग।

शक्रानिल-संज्ञा पुं० [सं०] ज्योतिष में प्रभव आदि साठ संवत्सरों के बारह युगों में से दसवें युग के अधिपति। इनके युग में ये पाँच संवत्सर होते हैं,—परिधावी, प्रमादी, आनंद, राक्षस और अनल।

शक्रावर्त्त-संज्ञा पुं० [सं०] महाभारत के अनुसार एक प्राचीन तीर्थ का नाम।

शक्राशन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) भाँग। विजया। भंग। (२) कुड़ा। कुटज। कौरैया। (३) इंद्रजौ। कुटज बीज।

शक्रासन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) इंद्र का आसन। (२) सिंहासन।

शक्राह्व-संज्ञा पुं० [सं०] (१) इंद्रजौ। कुटज बीज। (२) कुटज वृक्ष।

शक्राह्वा-संज्ञा स्त्री० दे० "शक्राह्व"।

शक्रि-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मेघ। बादल। (२) वज्र। (३) हाथी। (४) पर्वत। पहाड़।

शक्रेंद्र-संज्ञा पुं० [सं०] बीर बहूटी या इंद्रगोप नाम का कीड़ा।

शक्रोत्थान-संज्ञा पुं० [सं०] इंद्रध्वज नाम का उत्सव। वि० दे० "इंद्रध्वज"।

शक्रोत्सव-संज्ञा पुं० दे० "शक्रोत्थान"।

शक्ल-संज्ञा स्त्री० दे० "शकल"।

शक्वर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बैल। (२) आकाश।

शक्वरी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) उँगली। (२) एक प्राचीन नदी का नाम। (३) मेखला। (४) गौ। गाय। (५) शक्वरी नामक छंद। वि० दे० "शाक्वरी"।

शक्वा-संज्ञा पुं० [सं० शक्वन्] हाथी। गज।

शखस-संज्ञा पुं० दे० "शख्स"।

शख्स-संज्ञा पुं० [अ०] व्यक्ति। जन। मनुष्य। आदमी।

शख्सियत-संज्ञा स्त्री० [अ०] शख्स का भाव या धर्म। व्यक्तिता। व्यक्तित्व।

शख्सी-वि० [अ०] शख्स का। मनुष्य का। व्यक्तिगत।

शगल-संज्ञा पुं० [अ०] (१) व्यापार। काम-धंधा। जैसे,—कहिए, आजकल क्या शगल है? (२) वह काम जो यों ही समय बिताने या मन बहलाने के लिये किया जाय। मनोविनोद।

शगुन-संज्ञा पुं० [सं० शकुन] (१) किसी काम के समय होनेवाले लक्षणों का शुभाशुभ विचार। शकुन। वि० दे० "शकुन"।

मुहा०—शगुन लेना या विचारना = कोई काम करने के पहले कुछ विशिष्ट क्रियाओं द्वारा यह जानना कि वह काम होगा कि नहीं।

(२) किसी काम के आरंभ में होनेवाले शुभ लक्षण। (३) एक प्रकार की रसम जो विवाह की बात चीत पक्की होने पर होती है। इसमें कन्या पक्ष के लोग वर पक्ष के लोगों के यहाँ कुछ मिठाई और नगद आदि भेजते हैं। तिलक। टीका।

क्रि० प्र०—देना।—भेजना।—लेना।

(४) नजराना। भेंट। (क्व०) (५) वहरी में वह स्थान जहाँ बैठ होनेवाला बैठता है।

शगुनियाँ-संज्ञा पुं० [हिं० शगुन + इयाँ (प्रत्य०)] वह जो ज्योतिष या रमल आदि के द्वारा शुभाशुभ शगुनों आदि का विचार करता हो। साधारण कोटि का ज्योतिषी। रम्माल।

शगून-संज्ञा पुं० दे० "शगुन"।

शगूनियाँ-संज्ञा पुं० दे० "शगुनियाँ"।

शगूफा-संज्ञा पुं० [फ़ा०] (१) बिना खिला हुआ फूल। कली। (२) पुष्प। फूल। (३) कोई नई और विलक्षण घटना।

मुहा०—शगूफा खिलना = कोई नई और विलक्षण घटना होना। शगूफा खिलाना = कोई ऐसी नई और विलक्षण बात कर बैठना जिससे सब लोग चकित हो जायँ।

विशेष—इस मुहावरे का प्रयोग प्रायः ऐसी बातों के संबंध में ही होता है जिनसे कोई लड़ाई झगड़ा या झंझट आदि पैदा हो।

शचि, शची-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) इंद्र की पत्नी, इंद्राणी जो दानवराज पुलोमा की कन्या थी।

पर्या०—सची। ऐंद्री। पुलोमजा। माहेंद्री। जयवाहिनी। (२) शतावर। शतावरी। शतमूली। (३) स्पृक्का। असबरग। (४) वक्तृत्व शक्ति। वाग्मिता। (५) प्रज्ञा। बुद्धि। अक्ल।

शचीतीर्थ-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन तीर्थ का नाम।

शचीपति-संज्ञा पुं० [सं०] शची के पति, इंद्र।

शचीपती-संज्ञा पुं० [सं०] अश्विनीकुमार।

शचीबल-संज्ञा पुं० [सं०] नाटक में वह पात्र जो इंद्र के समान वेश भूषा धारण करता हो।

शचीश-संज्ञा पुं० [सं०] शची के पति, इंद्र।

शजर-संज्ञा पुं० [अ०] दरख्त। वृक्ष। पेड़।

शजरा-संज्ञा पुं० [अ०] (१) वह कागज जिसमें किसी की वंशपरंपरा लिखी हो। वंशवृक्ष। पुश्तनामा। कुर्सीनामा। वंशावली। (२) वृक्ष। पौधा। (३) पटवारी का तैयार किया हुआ खेतों का नकशा।

शट-संज्ञा पुं० [सं०] (१) खटाई। अम्ल रस। (२) एक प्राचीन देश का नाम।

शटा-संज्ञा स्त्री० [सं०] जटा।

शटि, शटी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) कचूर। कर्चूर। (२) गंध पलाशी। कपूर कचरी। (३) अमिया हल्दी। आम्र हरिद्रा। (४) सुगंधबाला। नेत्रबाला।

शट्टक-संज्ञा पुं० [सं०] घी और पानी में सना हुआ चावल का आटा जिसका व्यवहार वैद्यक में होता है।

शठ-वि० [सं०] (१) धूर्त। चालाक। धोखेबाज। (२) पाजी। लुच्चा। बदमाश।

संज्ञा पुं० (१) तगर का फूल। (२) केसर। कुंकुम। जाफ़रान। (३) लोहा। (४) इस्पात। फौलाद। (५) धतूरे का वृक्ष। (६) चीता। चित्रक। चितवर। (७) ताल वृक्ष। (८) अमलतास का वृक्ष। (९) साहित्य में पाँच प्रकार के पतियों या नायकों में से एक प्रकार का पति या नायक। वह नायक जो छलपूर्वक अपना अपराध छिपाने में चतुर हो, और किसी दूसरी स्त्री के साथ प्रेम करते हुए भी अपनी स्त्री से प्रेम प्रदर्शित करने का बहाना करता हो। उ०—सहित काज मधुरै मधुर, बैननि कहै बनाय। उर अंतर घट कपटमय, सो शठ नायक आय। (१०) बेवकूफ़। जड़ बुद्धि। (११) आलसी। (१२) वह जो दो आदमियों के बीच में पड़कर उनके झगड़े का निपटारा करता हो। मध्यस्थ।

शठता-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) शठ का भाव या धर्म्म। धूर्त्तता। (२) बदमाशी। पाजीपन।

शठत्व-संज्ञा पुं० [सं०] शठ का भाव या धर्म्म। शठता।

शठांगा, शठाम्बा-संज्ञा स्त्री० [सं०] ब्राह्मणी लता। अंबष्ठा। पाढ़ा।

शठिका, शठी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) कचूर। (२) गंध पलाशी। कपूर कचरी। (३) वन अदरक। पेऊ।

शठीरूपा-संज्ञा स्त्री० [सं०] कंद गिलोय। कंद गुडूची।

शठोद्धरक-वि० [सं०] धोखेबाज। धूर्त्त।

शण-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सन नामक पौधा। वि० दे० "सन"। (२) भंग। विजया। (३) शणपुष्पी। बनसनई।

शणई-संज्ञा स्त्री० दे० "सन"।

शणकंद-संज्ञा पुं० [सं०] चर्म्मकषा नाम का सुगंधि द्रव्य।

शणकंदा-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का थूहड़ जिसे सातला कहते हैं।

शणक-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन ऋषि का नाम।

शणघंटा, शणघंटिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] शणपुष्पी नाम की लता। वि० दे० "शणपुष्पी"।

शणचूर्ण-संज्ञा पुं० [सं०] सनई का वह बचा हुआ भाग जो उसे कूटकर सन निकाल लेने के बाद रह जाता है।

शणपुष्पी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) एक प्रकार की वनस्पति जो साधारणतः बनसनई कहलाती है। यह छोटी और बड़ी दो प्रकार की होती है। छोटी शणपुष्पी प्रायः सब प्रांतों में पाई जाती है। इसका क्षुप, पत्ते, फूल इत्यादि सन के ही समान होते हैं, किंतु क्षुप सन से छोटा होता है। फूल पीले, फलियाँ मटर के समान गोल और लंबी होती हैं। यह कड़वी, वमनकारक और पारे को बाँधनेवाली कही गई है। इसके फल सूख जाने पर अंदर के बीजों के कारण झन झन शब्द करते हैं; इसी से इसे झुनझुनियाँ कहते हैं। बड़ी शणपुष्पी प्रायः वाटिकाओं में लगाते हैं। इसका क्षुप, पत्ते आदि छोटी शणपुष्पी से बड़े होते हैं। फूल सफ़ेद रंग

के होते हैं। यह कसैली, गरम और पारे को बाँधनेवाली कही गई है और मोहन, स्तंभन आदि में व्यवहार की जाती है। (२) अरहर।

शणशिफा-संज्ञा स्त्री० [सं०] सनई या सन की जड़। शणमूल।

शणसमा-संज्ञा स्त्री० [सं०] बनसनई। शणपुष्पी।

शणसूत्र-संज्ञा पुं० [सं०] कुश आदि की बनी हुई पवित्री जो श्राद्ध, तर्पण आदि कृत्यों के समय कनिष्ठिका की बगलवाली उँगली में पहनी जाती है। पवित्रक।

शणाल-संज्ञा पुं० दे० "शणालुक"।

शणालुक-संज्ञा पुं० [सं०] अमलतास का वृक्ष।

शणिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] शणपुष्पी। बन सनई।

शणीर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सोन नदी के मध्य का उपजाऊ स्थल। (२) सर्यू नदी की शाखाओं से घिरा हुआ छपरे के समीप का एक द्वीप। दर्दरी तट।

शत-वि० [सं०] दस का दस गुना। सौ।
संज्ञा पुं० सौ की संख्या। दस की दस गुनी संख्या जो इस प्रकार लिखी जाती है—१००।

शतक-संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० शतिका] (१) सौ का समूह। (२) एक ही तरह की सौ चीजों का संग्रह। जैसे,—नीति शतक, रहिमन शतक। (३) वह जिसमें सौ भाग या अवयव हों। (४) सौ वर्षों का समूह। शताब्दी। (५) विष्णु का एक नाम।

शतकपालेश-संज्ञा पुं० [सं०] शिव की एक मूर्त्ति का नाम।

शतकर्मा-संज्ञा पुं० [सं० शतकर्मन्] शनि ग्रह।

शतकिरण-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की समाधि।

शतकीर्त्ति-संज्ञा पुं० [सं०] जैन पुराणानुसार एक भावी अर्हत् का नाम।

शतकुंत, शतकुंद-संज्ञा पुं० [सं०] सफेद कनेर। करवीर।

शतकुंभ-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्राचीन पर्वत का नाम। (२) सफेद कनेर। शतकुंत। (३) सुवर्ण। सोना।

शतकुंभा-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक नदी का नाम। (महाभारत)

शतकुलीरक-संज्ञा पुं० [सं०] सुश्रुत के अनुसार एक प्रकार का कीड़ा।

शतकुसुमा-संज्ञा स्त्री० [सं०] शतपुष्पा। सौंफ।

शतकेसर-संज्ञा पुं० [सं०] भागवत के अनुसार एक वर्ष पर्वत का नाम।

शतकोटि-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सौ करोड़ की संख्या। अर्बुद। (२) इंद्र का वज्र। (३) हीरा। हीरक।

शतकौंभ, शतकौंभक-संज्ञा पुं० [सं०] स्वर्ण। सोना।

शतक्रतु-संज्ञा पुं० [सं०] (१) इंद्र। (२) वह जिसने सौ यज्ञ किए हों।

शतक्रतुद्रुम-संज्ञा पुं० [सं०] काली कुड़ा। कृष्ण कुटज।

शतक्रतुयव-संज्ञा पुं० [सं०] कुटज बीज। इंद्रजौ।

शतखंड-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सोना। स्वर्ण। (२) सोने की बनी हुई कोई चीज।

शतगु-वि० [सं०] सौ गौओं का स्वामी। सौ गायों का रखनेवाला। (मनु)

शतगुण-वि० [सं०] सौ गुना।

शतग्रंथि-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सफेद दूब। दूर्वा। (२) नीली दूब।

शतग्रीव-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की भूतयोनि।

शतघ्नी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) प्राचीन काल का एक प्रकार का शस्त्र जो किसी बड़े पत्थर या लकड़ी के कुंदे में बहुत से कील-काँटे ठोंककर बनाया जाता था और जिसका व्यवहार युद्ध के समय शत्रुओं पर फेंकने में होता था। (२) वृश्चिकाली। बिछाती। (३) एक प्रकार की घास। (४) करंज या कंजे का पेड़। (५) भावप्रकाश के अनुसार गले में होनेवाला एक प्रकार का रोग जिसमें त्रिदोष के कारण गले में बत्ती के समान लंबी और मोटी तथा कंठ को रोकनेवाली, मांस के अंकुरों से भरी हुई और बहुत पीड़ा देनेवाली सूजन हो जाती है। यह रोग प्राणनाशक कहा गया है।

शतच्छद-संज्ञा पुं० [सं०] (१) कठफोड़वा या काठ-ठोंका नामक पक्षी। (२) सौ पत्तोंवाला कमल। शतदल पद्म।

शतजटा-संज्ञा स्त्री० [सं०] सतावर। शतमूली।

शतजित्-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) विष्णु का एक नाम। (२) भागवत के अनुसार विराज के एक पुत्र का नाम। (३) एक यक्ष का नाम।

शतजिह्व-संज्ञा पुं० [सं०] शिव। महादेव।

शततारा-संज्ञा स्त्री० [सं०] शतभिषा नाम का नक्षत्र जिसमें सौ तारे हैं।

शतदंतिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] नदी नाम गंधद्रव्य। हाथी शुंडी। नागदंती।

शतदल-संज्ञा पुं० [सं०] पद्म।

शतदला-संज्ञा स्त्री० [सं०] सेवती। शतपत्री।

शतद्रु-संज्ञा स्त्री० [सं०] पंजाब की सतलज नाम की नदी जो हिमालय पर्वत के रावणह्रद से निकलकर पंजाब के दक्षिण-पश्चिमी भाग में बहती हुई व्यास या विपाशा से मिलकर मुल्तान के दक्षिण ओर सिंधु में मिलती है।

शतधन्वा-संज्ञा पुं० [सं० शतधन्वन्] (१) एक प्राचीन ऋषि का नाम। (२) एक योद्धा जिसे कृष्ण ने सत्राजित के मारने के अपराध में मारा था।

शतधा-संज्ञा स्त्री० [सं०] दूब।

शतधामा-संज्ञा पुं० [सं० शतधामन्] विष्णु का एक नाम।

शतधार-संज्ञा पुं० [सं०] वज्र।

शतधारवन-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन तीर्थ का नाम।
शतधृति-संज्ञा पुं० [सं०] (१) इंद्र। (२) ब्रह्मा। (३) स्वर्ग।
शतनेत्रिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] शतावर।
शतपति-संज्ञा पुं० [सं०] सौ मनुष्यों का मालिक या सरदार।
शतपत्र-वि० [सं०] (१) सौ दलों या पत्तोंवाला। (२) सौ पंखोंवाला।
संज्ञा पुं० (१) कमल। (२) सेवती। शतपत्री। (३) मोर नामक पक्षी। (४) कठफोड़वा नामक पक्षी। (५) सारस पक्षी। (६) मैना। सारिका। (७) बृहस्पति।
शतपत्रक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) कठफोड़वा नाम का पक्षी। (२) एक प्रकार का विषैला कीड़ा। (३) पुराणानुसार एक पर्वत का नाम।
शतपत्र-निवास-संज्ञा पुं० [सं०] ब्रह्मा।
शतपत्रभेद न्याय-संज्ञा पुं० दे० "न्याय" (४-१७)।
शतपत्र-योनि-संज्ञा पुं० [सं०] ब्रह्मा।
शतपत्रा-संज्ञा स्त्री० [सं०] दूब।
शतपत्री-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का गुलाब।
शतपत्री-केसर-संज्ञा पुं० [सं०] गुलाब का जीरा। गुलाब-केसर।
शतपथ-वि० [सं०] (१) असंख्य मार्गोंवाला। (२) बहुत सी शाखाओंवाला।
शतपथ ब्राह्मण-संज्ञा पुं० [सं०] यजुर्वेद का एक ब्राह्मण। इसके कर्त्ता महर्षि याज्ञवल्क्य माने जाते हैं। इसकी माध्यंदिन और काण्व शाखाएँ मिलती हैं। इनमें से पहली की विशेष प्रतिष्ठा है। एक प्रणाली के अनुसार इसमें ६८ प्रपाठक हैं, और दूसरी के अनुसार यह १४ कांडों और १०० अध्यायों में विभक्त है। चारो ब्राह्मणों में से यह अधिक क्रमपूर्ण और रोचक है। इसमें अग्निहोत्र से लेकर अश्वमेध पर्यंत कर्म्मकांड का बड़ा ही विशद और सुंदर वर्णन है।
शतपथिक-वि० [सं०] (१) बहुत से मतों का अनुयायी। (२) शतपथ ब्राह्मण का जानने या पढ़नेवाला।
शतपद-संज्ञा पुं० [सं०] (१) कन खजूरा। गोजर। (२) च्यूँटी।
शतपद चक्र-संज्ञा पुं० [सं०] ज्योतिष में सौ कोष्ठोंवाला एक प्रकार का चक्र। इसकी सहायता से नक्षत्रों का ज्ञान सुगमतापूर्वक हो जाता है।
शतपदी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) कनखजूरा। गोजर। (२) सतावर। शतमूली। (३) मरसे की जाति का एक पौधा जिसके ऊपर कलगी के आकार के लाल फूल लगते हैं। जटाधर। (४) नीली कोयल नाम की लता।
शतपद्म-संज्ञा पुं० [सं०] सफेद कमल।
शतपरिवार-संज्ञा पुं० [सं०] समाधि का एक भेद।

शतपर्वा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) बाँस। वंश। (२) पौंढ़ा। गन्ना। केतारा। (३) दूर्वा घास। दूब (४) बच। (५) कुटकी। (६) सुगंधि द्रव्य। (७) भार्गव की पत्नी का नाम। (८) कलंबी। करेमू का साग।
शतपर्विका-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) दूब। (२) बच। (३) यव। जौ।
शतपाद-संज्ञा पुं० दे० "शतपद"।
शतपादिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) काकोली नामक अष्टवर्गीय ओषधि। (२) कन खजूरा। गोजर।
शतपुत्री-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सतपुतिया तरोई। (२) सतावर। शतावरी।
शतपुष्प-संज्ञा पुं० [सं०] साठी धान्य।
शतपुष्पा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सोआ नाम का साग। (२) सौंफ। (३) गवेधुक।
शतपुष्पादल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सौंफ का साग। (२) शताह्वा।
शतपुष्पिका-संज्ञा स्त्री० दे० "शतपुष्पा"।
शतपोद, शतपोदक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्रकार का वातजन्य भगंदर। इसमें गुदा के समीप फोड़ा उत्पन्न होता है जिसके पकने पर बहुत से छेद हो जाते हैं और उनमें से मल, मूत्र तथा वीर्य्य निकलता है। (२) एक प्रकार का रोग जिसमें वात और रक्त के कुपित होने से लिंग पर अनेक छेद हो जाते हैं।
शतपोरक, शतपौर-संज्ञा पुं० [सं०] पौंढ़ा। गन्ना।
शतप्रसूना-संज्ञा स्त्री० दे० "शतपुष्पा"।
शतप्रास-संज्ञा पुं० [सं०] कनेर का वृक्ष। करवीर वृक्ष।
शतफल-संज्ञा पुं० [सं०] बाँस।
शतबला-संज्ञा स्त्री० [सं०] महाभारत के अनुसार एक प्राचीन नदी का नाम।
शतबलाक-संज्ञा पुं० [सं०] एक वैदिक आचार्य्य का नाम।
शतबलि-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मछली। (२) रामायण के अनुसार एक बंदर का नाम।
शतबाहु-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सुश्रुत के अनुसार एक प्रकार का कीड़ा। (२) भागवत के अनुसार एक असुर का नाम। (३) बौद्धों के अनुसार मार के पुत्र का नाम।
शतभिष-संज्ञा पुं० दे० "शतभिषा"।
शतभिषा-संज्ञा स्त्री० [सं०] अश्विनी आदि सत्ताइस नक्षत्रों में से चौबीसवाँ नक्षत्र। यह सौ तारों का समूह है और इसकी आकृति मंडलाकार है। इसके अधिष्ठाता देवता वरुण कहे गए हैं; और यह ऊर्ध्व-मुख माना गया है। कहते हैं कि जो बालक इस नक्षत्र में जन्म लेता है, वह

साहसी, निष्ठुर, चतुर और अपने वैरी का नाश करनेवाला होता है।

शतभीरु-संज्ञा पुं० [सं०] मल्लिका। चमेली।

शतमख-संज्ञा पुं० [सं०] (१) इंद्र। शतक्रतु। (२) उल्लू। कौशिक।

शतमन्यु-वि० [सं०] (१) क्रोधी। गुस्सावर। (२) उत्साही। संज्ञा पुं० (१) इंद्र। (२) उल्लू।

शतमयूख-संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा।

शतमल्ल-संज्ञा पुं० [सं०] संखिया नामक विष।

शतमान-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सुवर्ण की कोई वस्तु जो तौल में सौ मान की हो। (२) सोना या चाँदी तौलने के लिये सौ मान की तौल या बाट। (३) चाँदी का पल। (४) आढ़क नाम की प्राचीन काल की तौल जो प्रायः पौने चार सेर की होती थी। (५) रूपा-माखी या तार-माक्षिक नाम की उपधातु।

शतमार्ज-संज्ञा पुं० [सं०] वह जो अस्त्र आदि बनाता या उन्हें ठीक करता हो।

शतमूला-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) बड़ी सतावर। (२) बच। (३) नीली दूब।

शतमूलिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) आखुकर्णी नाम की लता। (२) बड़ी दंती। बँगरेड़ा।

शतमूली-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) शतावरी नाम की ओषधि। (२) तालमूली। मूसली। (३) बच।

शतयष्टिक-संज्ञा पुं० [सं०] वह हार जिसमें सौ लड़ हों।

शतयातु-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन वैदिक ऋषि का नाम।

शतरंज-संज्ञा पुं० [फ़ा० मि० सं० चतुरंग] एक प्रकार का प्रसिद्ध खेल जो चौंसठ खानों की बिसात पर खेला जाता है। यह खेल दो आदमी खेलते हैं जिनमें से प्रत्येक के पास १६-१६ मुहरे होते हैं। इन सोलह मुहरों में एक बादशाह, एक वज़ीर, दो ऊँट, दो घोड़े, दो हाथी या किश्तियाँ तथा आठ प्यादे होते हैं। इनमें से प्रत्येक मुहरे की कुछ विशिष्ट चाल होती है, अर्थात् उसके चलने के कुछ विशिष्ट नियम होते हैं। उन्हीं नियमों के अनुसार विपक्षी के मुहरे मारे जाते हैं। जब बादशाह किसी ऐसे घर में पहुँच जाता है, जहाँ से उसके चलने की जगह नहीं रहती, तब बाजी मात समझी जाती है। इसकी बिसात में आठ आठ खानों की आठ पंक्तियाँ होती हैं। वि० दे० "चतुरंग"।

शतरंजबाज-संज्ञा पुं० [फ़ा० शतरंज+फ़ा० बाज़] शतरंज का खिलाड़ी। शातिर।

शतरंजबाज़ी-संज्ञा स्त्री० [फ़ा० शतरंज+फ़ा० बाज़ी] (१) शतरंज खेलने का व्यसन। (२) शतरंज खेलने का काम या भाव।

शतरंजी-संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] (१) वह दरी जो कई प्रकार के रंग बिरंगे सूतों से बनी हो। (२) शतरंज खेलने की बिसात। (३) वह रोटी जो कई प्रकार के अनाजों को मिलाकर बनाई गई हो। मिस्सी रोटी। (४) वह जो शतरंज का अच्छा खिलाड़ी हो।

शतरथ-संज्ञा पुं० [सं०] एक राजा का नाम जिसका उल्लेख महाभारत में है।

शतरात्र-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का यज्ञ जो सौ रातों में समाप्त होता था।

शतरुद्र-संज्ञा पुं० [सं०] (१) रुद्र का एक रूप जिसके सौ मुँह माने जाते हैं। (२) शैव दर्शन के अनुसार एक शक्ति जो आत्मा की उत्पादक कही गई है।

शतरुद्रा-संज्ञा स्त्री० [सं०] हिमालय की एक नदी का नाम।

शतरुद्रिय, शतरुद्री-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) यज्ञ की हवि। (२) यजुर्वेद का एक अंश जिसमें रुद्र के स्तोत्र हैं।

शतरूप-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन ऋषि का नाम।

शतरूपा-संज्ञा स्त्री० [सं०] ब्रह्मा की मानसी कन्या तथा पत्नी का नाम। इसी के गर्भ से स्वायंभुव मनु की उत्पत्ति हुई थी। पर विष्णु पुराण में लिखा है कि शतरूपा स्वायंभुव मनु की स्त्री थी, न कि माता।

शतर्ची-संज्ञा पुं० [सं० शतर्चिन्] ऋग्वेद के प्रथम मंडल के मंत्र-द्रष्टा ऋषियों की उपाधि।

शतलोचन-वि० [सं०] सौ नेत्रोंवाला।
संज्ञा पुं० (१) स्कंद के एक गण या अनुचर का नाम। (२) पुराणानुसार एक असुर का नाम।

शतवनि-संज्ञा पुं० [सं०] एक गोत्र-प्रवर्त्तक ऋषि का नाम।

शतवल्ली-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) नीली दूब। (२) काकोली नामक अष्टवर्गीय ओषधि।

शतवादन-संज्ञा पुं० [सं०] बहुत से बाजों का एक साथ बजना।

शतवार-संज्ञा पुं० [सं०] एक कवच का नाम जो अथर्ववेद में है।

शतवार्षिक-वि० [सं०] प्रति सौ वर्ष पर होनेवाला।

शतवार्षिकी-संज्ञा स्त्री० [सं०] पानी न बरसना। अनावृष्टि।

शतवाही-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्त्री जो मैके से बहुत सा धन साथ लेकर ससुराल आई हो।

शतवीर-संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु का एक नाम।

शतवीर्या-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सफ़ेद दूब। (२) शतावर। शतमूली। (३) मुनक्का। कपिल द्राक्षा। (४) सफ़ेद मूसली। (५) किशमिश।

शतवृषभ-संज्ञा पुं० [सं०] ज्योतिष में एक मुहूर्त्त का नाम।

शतवेधिनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] चूका या चुक्रिका नामक साग।

शतवेधी-संज्ञा पुं० [सं० शतवेधिन्] (१) अमलबेत। (२) चूका या चुक्रिका नामक साग।

शतशलाका-संज्ञा स्त्री० [सं०] छत्र।

शतशीर्ष-संज्ञा पुं० [सं०] (१) विष्णु का एक नाम। (२) रामायण के अनुसार एक प्रकार का अभिमंत्रित अस्त्र।

शतशीर्षा-संज्ञा स्त्री० [सं०] वासुकी देवी का एक नाम।

शतश्रृंग संज्ञा पुं० [सं०] (१) पुराणानुसार एक पर्वत का नाम जो महाभद्र के उत्तर में अवस्थित बतलाया गया है। अनुमान है कि यह वर्त्तमान मैसूर राज्य के एक पर्वत का प्राचीन नाम है।

शतसंयग-संज्ञा पुं० [सं०] विष्णुपुराण के अनुसार दसवें मन्वंतर के एक देवता का नाम।

शतसहस्त्रक-संज्ञा पुं० [सं०] महाभारत के अनुसार एक प्राचीन तीर्थ का नाम।

शतसुता-संज्ञा स्त्री० [सं०] सतावर। शतमूली।

शतहर-संज्ञा पुं० [सं०] हरिवंश के अनुसार एक असुर का नाम।

शतह्रदा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) विद्युत्। बिजली। (२) वज्र। (३) दक्ष की एक कन्या का नाम जो बाहुपुत्र की स्त्री थी। (४) विराध राक्षस की माता का नाम।

शतांग-संज्ञा पुं० [सं०] (१) रथ। (२) तिनिश। तिरिछ वृक्ष। वि० सौ अंगों या अवयवोंवाला।

शतांगुल-संज्ञा पुं० [सं०] ताल या ताड़ का वृक्ष।

शतांश-संज्ञा पुं० [सं०] सौ भागों में से एक भाग। १००वाँ हिस्सा।

शता-संज्ञा स्त्री० [सं०] शतावर।

शताकरा-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक किन्नरी का नाम।

शताकारा-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक गंधर्व स्त्री का नाम।

शताक्ष-संज्ञा पुं० [सं०] हरिवंश के अनुसार एक दानव का नाम।

शताक्षी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) रात्रि। रात। (२) शतपुष्पा नामक वनस्पति। सौंफ़। (३) पार्व्वती। (४) दुर्गा।

शतानंद-संज्ञा पुं० [सं०] (१) ब्रह्मा। (२) विष्णु। (३) विष्णु का रथ। (४) कृष्ण। (५) गौतम मुनि। (६) राजा जनक के एक पुरोहित का नाम। उ०—शतानंद तब बंदि प्रभु बैठे गुरु पहँ जाय।—तुलसी।

शतानंदा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) कार्त्तिकेय की एक मातृका का नाम। (२) पुराणानुसार एक नदी का नाम।

शतानक-संज्ञा पुं० [सं०] वह स्थान जहाँ मुरदे जलाए जाते हों। मसान। श्मशान। मरघट।

शतानन-संज्ञा पुं० [सं०] बेल। श्रीफल।

शतानना-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक देवी का नाम।

शतानीक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वृद्ध पुरुष। बुड्ढा आदमी। (२) एक मुनि जो व्यास का शिष्य था। (३) श्वशुर। ससुर। (४) पुराणानुसार चौथे युग में चंद्रवंश का द्वितीय राजा। इसका पिता जन्मेजय और पुत्र सहस्रानीक था। (५) भागवत के अनुसार सुदास राजा का पुत्र। (६) महाभारत के अनुसार नकुल के एक पुत्र का नाम जो द्रौपदी के गर्भ से उत्पन्न हुआ था। (७) एक असुर का नाम।

शताब्द-वि० [सं०] सौ वर्षवाला। संज्ञा पुं० सौ वर्ष। शताब्दी। सदी।

शताब्दी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सौ वर्षों का समय। (२) किसी संवत् में सैकड़े के अनुसार एक से सौ वर्ष तक का समय। जैसे,—ईसवी पाँचवीं शताब्दी अर्थात् ई० सन् ४०१ से ५०० तक का समय।

शतामघ-संज्ञा पुं० [सं०] इंद्र का एक नाम।

शतायुध-संज्ञा पुं० [सं०] वह जो सौ अस्त्र धारण करता हो। सौ अस्त्रोंवाला।

शतायुधा-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक किन्नरी का नाम।

शतायु-संज्ञा पुं० [सं० शतायुस्] (१) वह जिसकी आयु सौ वर्षों की हो। (२) महाभारत के अनुसार पुरूरवा के एक पुत्र का नाम। (३) विष्णु पुराण के अनुसार उशना के एक पुत्र का नाम।

शतार-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वज्र। (२) सुदर्शन चक्र।

शतारु-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का कोढ़। इस रोग में खाल पर लाल, काली और दाहयुक्त फुंसियाँ हो जाती हैं।

शतारुषी-संज्ञा स्त्री० दे० "शतारु"।

शतावधान-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह मनुष्य जो एक साथ बहुत सी बातें सुनकर उन्हें सिलसिलेवार याद रख सकता हो और बहुत से काम एक साथ कर सकता हो। श्रुतिधर।

विशेष—कुछ मेधावी लोग ऐसे होते हैं जो एक साथ बहुत से काम करने का अभ्यास करते हैं। जैसे,—एक आदमी रह रहकर कुछ संख्या या अंकों का नाम लेता है। दूसरा आदमी रह रहकर घड़ियाल बजाता है। तीसरा आदमी किसी ऐसी भाषा के वाक्य के शब्द बोलता है जिससे शतावधान करनेवाला मनुष्य अपरिचित होता है। एक आदमी पूर्त्ति के लिये कोई समस्या देता है। एक ओर शतरंज का खेल होता रहता है। शतावधान का यह कर्त्तव्य होता है कि वह संख्याओं और अपरिचित भाषा के वाक्य के शब्द याद रखे, समस्या की पूर्त्ति करे और शतरंज खेलता चले और इसी प्रकार और जितने काम होते हों, उन सब में सम्मिलित रहे; और अंत में सब का ठीक ठीक उत्तर दे और सब काम ठीक ठीक पूरे उतारे। (२) शतावधान का काम।

शतावधानी-संज्ञा पुं० दे० "शतावधान"।
संज्ञा स्त्री० [सं० शतावधान] शतावधान का काम।
शतावर-संज्ञा पुं० [सं० शतावरी] सतावर नाम की ओषधि। सफ़ेद मूसली।
शतावरी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) शतमूली। सतावर। सफेद मूसली। (२) कचूर। शटी। (३) इंद्र की भार्या, इंद्राणी।
शतावर्त्त-संज्ञा पुं० [सं०] (१) विष्णु। (२) महादेव। (३) हरिवंश के अनुसार एक पवित्र वन का नाम।
शतावर्त्ती-संज्ञा पुं० [सं० शतावर्तिन्] विष्णु।
शताश्मि-संज्ञा पुं० [सं०] वज्र।
शताह्वया-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सौंफ। (२) सोआ। मधूरिका। (३) सतावर।
शताह्वा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सौंफ। (२) सतावर। (३) अजमोदा। (४) एक प्राचीन नदी का नाम। (५) एक तीर्थ का नाम।
शतिक-वि० [सं०] सौ संबंधी। सौ का।
शती-संज्ञा स्त्री० [सं० शतिन्] सौ का समूह। सैकड़ा। जैसे,—दुर्गा सप्तशती।
शतेर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शत्रु। (२) घाव। ज़ख्म। (३) हिंसा।
शतोदर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शिव का एक नाम। (२) शिव के एक गण का नाम। (३) रामायण के अनुसार एक अस्त्र का नाम।
शतोदरी-संज्ञा स्त्री० [सं०] कार्तिकेय की एक मातृका का नाम।
शतौदना-संज्ञा स्त्री० [सं०] यज्ञ में होनेवाला एक प्रकार का कृत्य।
शत्रि-संज्ञा पुं० [सं०] (१) गज। हाथी। (२) बल। ताकत। (३) एक राजर्षि का नाम।
शत्रुंजय-संज्ञा पुं० [सं०] (१) काठियावाड़ प्रांत का एक प्रसिद्ध पर्वत जो विमलाद्रि भी कहलाता है। यह जैनियों का एक प्रसिद्ध तीर्थ है। (२) रामायण के अनुसार एक नाग का नाम। (३) परमेश्वर।
वि० शत्रु को जीतनेवाला।
शत्रु-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जिसके साथ भारी विरोध या वैमनस्य हो। रिपु। अरि। दुश्मन। (२) एक असुर का नाम। (३) नाग-दमन या नागदौना नाम की वनस्पति।
शत्रुकंटक-संज्ञा पुं० [सं०] पुंगीफल। सुपारी।
शत्रुकंटका-संज्ञा स्त्री० [सं०] सुपारी।
शत्रुघाती-संज्ञा पुं० [सं० शत्रुघातिन्] राजा दशरथ के पुत्र शत्रुघ्न का एक पुत्र।
वि० शत्रु का नाश करनेवाला।
शत्रुघ्न-संज्ञा पुं० [सं०] (१) राम के एक भाई जो सुमित्रा के गर्भ से उत्पन्न हुए थे। इनका भरत के साथ वैसा ही प्रेम था जैसा लक्ष्मण का राम के साथ था। (२) श्वफल्क का एक पुत्र। (३) देवश्रवा के एक पुत्र का नाम।
वि० शत्रु को मारनेवाला। अरि को नष्ट करनेवाला।
शत्रुघ्नी-संज्ञा स्त्री० [सं०] हथियार।
शत्रुजित्-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शिव। (२) ऋतुध्वज या कुवलयाश्व के पिता का नाम।
वि० शत्रु को जीतनेवाला।
शत्रुतपन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शिव। (२) एक दैत्य का नाम। कहते हैं कि यह रोग फैलाता है।
शत्रुता-संज्ञा स्त्री० [सं०] शत्रु का भाव या धर्म। दुश्मनी। वैर भाव।
क्रि० प्र०—करना।—दिखलाना।—रखना।—होना।
शत्रुताई-संज्ञा स्त्री० दे० "शत्रुता"।
शत्रुत्व-संज्ञा पुं० [सं०] शत्रु का भाव या धर्म। शत्रुता। दुश्मनी।
शत्रुदमन-वि० [सं०] दुश्मनों को वश में करनेवाला।
संज्ञा पुं० दशरथ के पुत्र शत्रुघ्न का एक नाम।
शत्रुद्रुम-संज्ञा पुं० [सं०] अमलबेंत।
शत्रुभंग-संज्ञा पुं० [सं०] मूँज नामक तृण।
शत्रुभूमिश-संज्ञा पुं० [सं०] आँखों में लगाने का सुरमा।
शत्रुमर्द्दन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शत्रुघ्न का एक नाम। (२) कुवलयाश्व के पुत्र का नाम।
वि० शत्रुओं का नाश करनेवाला।
शत्रुविनाशन-संज्ञा पुं० [सं०] शिव का एक नाम।
शत्रुहंता-वि० [सं० शत्रुहंतृ] शत्रु का नाश करनेवाला।
शत्रुहा-संज्ञा पुं० [सं० शत्रुहन्] दशरथ के पुत्र शत्रुघ्न का एक नाम।
वि० शत्रु का नाश करनेवाला।
शत्वरी-संज्ञा स्त्री० [सं०] रात्रि। रात।
शद-संज्ञा पुं० [सं०] (१) फल मूलादि। (२) कर। लगान। (३) तरकारी।
शदक-संज्ञा पुं० [सं०] वह अनाज जिसकी भूसी न निकाली गई हो।
शदीद-वि० [अ०] बहुत ज्यादह। ज़ोर का। भारी। सख्त। जैसे,—उसको चोट शदीद है।
शदेवी-संज्ञा स्त्री० दे० "सहदेवा"।
शद्रि-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मेघ। बादल। (२) हाथी।
संज्ञा स्त्री० (१) खंड। टुकड़ा। (२) बिजली। दामिनी। तड़ित्।

शद्रु-वि० [सं०] गिरानेवाला। पतन करनेवाला।
संज्ञा पुं० विष्णु।
शद्रुला-संज्ञा स्त्री० [सं०] पुराणानुसार एक नदी का नाम।
शन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शांति। (२) चुप्पी। खामोशी।
संज्ञा पुं० दे० "सन" (पौधा)।
शनक-संज्ञा पुं० [सं०] शंबर के एक पुत्र का नाम।
शनकावलि-संज्ञा स्त्री० [सं०] गजपीपल।
शनपर्णी-संज्ञा स्त्री० [सं०] कटुकी नाम की ओषधि।
शनपुष्पी-संज्ञा स्त्री० [सं०] बन-सनई।
शनहुली-संज्ञा स्त्री० दे० "शनपुष्पी"।
शनि-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सौर जगत के नौ ग्रहों में से सातवाँ ग्रह। सूर्य्य से इसका अंतर ८८३०००००० मील अथवा पृथ्वी के अंतर से ९½ गुना है। इसका व्यास ७५८०० मील का है। सूर्य्य की परिक्रमा में इसको २९ वर्ष और १६७ दिन अर्थात् कुल १०७५९ दिन लगते हैं। बृहस्पति को छोड़कर यह सब से बड़ा ग्रह है। पृथ्वी से इसका व्यास ९ गुना, विस्तार ६९७ गुना और मान ९३ गुना है। इसके साथ नौ उपग्रह या चंद्रमा हैं। बृहस्पति से छोटा होने पर भी यह सब ग्रहों से अधिक चमकदार है, जिससे इसका आकार सब से बड़ा प्रतीत होता है। यह ३७८ दिन में एक बार अपनी धुरी पर घूमता है। यह ग्रह विचित्र आकार का है। इसके बाहर चारों ओर एक बहुत बड़ा वलय है; और उस बाह्य वलय से इसके पिंड की दूरी ५९०० मील है। इसके बाह्य वलय की चौड़ाई ११२०० मील है। इस वलय का व्यास १७२८०० मील और मोटाई सौ मील से कुछ कम है।

फलित ज्योतिष के अनुसार यह ग्रह काले रंग का, शूद्र वर्ण और सूर्य्यमुख है तथा इसका वाहन गृध्र है। यह सौराष्ट्र देश का स्वामी, नपुंसक और तमोगुण-युक्त है; और कषाय रस का अधिपति है। मकर और कुंभराशि तथा नीलकांत मणि का भी अधिपति है। यह चतुर्भुज है और इसके हाथों में बाण, शूल, धनुष और भल्ल है। इसके अधिपति देवता यम और प्रत्यधिदेवता प्रजापति हैं। इसका परिमाण चार अंगुल है। पद्मपुराण के अनुसार सूर्य्य की स्त्री छाया के गर्भ से इसकी उत्पत्ति हुई थी। अपनी स्त्री के शाप से इसकी दृष्टि क्रूर हो गई और पार्वती के शाप के कारण यह लंज हो गया। इसे कश्यप मुनि की संतान मानते हैं। फलित ज्योतिष के अनुसार शनि का फल इस प्रकार लिखा है—पाप ग्रह और अशुभ फल का देनेवाला है; परंतु राशि और स्थान विशेष में शुभ फल भी प्रदान करता है। शनि और मंगल दोनों ग्रह स्थान विशेष पर एक साथ होने से राजयोग-कारक होते हैं। यह भी माना जाता है कि लोगों पर जो भारी विपत्तियाँ आती हैं, वे प्रायः इसी की कुदृष्टि के कारण होती हैं। इसका फल साढ़े सात दिन, साढ़े सात मास या साढ़े सात वर्ष तक रहता है।

पर्य्या०—सौरि। शनिश्चर। नीलवासा। मंद। छायात्मज। पातंगि। ग्रहनायक। छायासुत। भास्करी। नीलांबर। आर। क्रोड़। वक्र। कोल। सप्तांशु। पंगु। काल। सूर्य्यपुत्र। असित।

(२) दुर्भाग्य। अभाग्य। बदकिस्मती। (३) दे० "शनिवार"।
शनिचक्र-संज्ञा पुं० [सं०] फलित ज्योतिष में मनुष्य के शरीर के आकार का एक प्रकार का चक्र जिसमें शनिभोग्य नक्षत्र से आरंभ करके चक्र रूपी मनुष्य के भिन्न भिन्न अंगों में २७ नक्षत्रों की स्थापना करके शुभाशुभ फल जाने जाते हैं।
शनिज-संज्ञा पुं० [सं०] काली मिर्च।
शनि प्रदोष-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का प्रदोष (पर्व) जो शनिवार के दिन किसी मास के कृष्ण पक्ष की त्रयोदशी पड़ने पर होता है। इस दिन व्रत रखा और शिव का पूजन किया जाता है।
शनिप्रसू-संज्ञा स्त्री० [सं०] शनि की माता छाया जो सूर्य्य की पत्नी कही गई है।
शनिप्रिय-संज्ञा पुं० [सं०] नीलमणि। नीलम।
शनिवह-संज्ञा स्त्री० [सं०] भैंस। महिषी।
शनिवार-संज्ञा पुं० [सं०] वह वार जो रविवार से पहले और शुक्रवार के बाद पड़ता है।
शनिश्चर-संज्ञा पुं० दे० "शनि"।
शनैः-अव्य० [सं०] धीरे। आहिस्ता। हौले।
यौ०—शनैः शनैः = धीरे धीरे। आहिस्ते आहिस्ते।
संज्ञा पुं० दे० "शनिवार"।
शनैःप्रमेह-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का प्रमेह रोग। इस प्रमेह में रोगी को धीरे धीरे, थमकर और बहुत पतली धार में थोड़ा थोड़ा पेशाब आता है।
शनैर्मेह-संज्ञा पुं० दे० "शनैःप्रमेह"।
शनैर्मेही-संज्ञा पुं० [सं०] वह रोगी जिसे शनैःप्रमेह का रोग हो।
शनैश्चर-संज्ञा पुं० दे० "शनि"।
शपथ-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) वह कथन जिसके अनुसार कहनेवाला इस बात की प्रतिज्ञा करता है कि यदि मेरा कथन असत्य हो, मैं ने अमुक काम किया हो, मैं अमुक काम करूँ या न करूँ इत्यादि, तो मुझ पर अमुक देवता का कोप पड़े अथवा मैं अमुक पाप का भागी होऊँ आदि। कसम। दिव्य। सौगंद।
क्रि० प्र०—खाना।—देना।—लेना।
मुहा०—दे० "कसम" के मुहा०।
(२) दिव्य। वि०—दे० "दिव्य" (११)। (३) प्रतिज्ञा या

दृढ़तापूर्वक कोई काम करने या न करने आदि के संबंध में कथन। कौल। वचन।

शपन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शपथ। कसम। (२) गाली। कुवाच्य।

शप्त-संज्ञा पुं० [सं०] (१) उलूक अथवा उलप नामक तृण। (२) वह व्यक्ति जिसे शाप दिया गया हो।

शफ-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वृक्ष की जड़। (२) पशुओं का खुर। (३) नखी नामक गंध द्रव्य।

शफ़क़-संज्ञा स्त्री० [अ०] प्रातःकाल या सायंकाल के समय आकाश में दिखाई पड़नेवाली ललाई; विशेषतः संध्या के समय दिखाई पड़नेवाली लालिमा जो बहुत ही मनोहर होती है।

मुहा०—शफ़क़ फूलना = प्रातःकाल या संध्या के समय आकाश में लालिमा फैलना।

शफ़क़त-संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) कृपा। दया। मेहरबानी। (२) प्यार। मुहब्बत। प्रेम।

क्रि० प्र०—दिखलाना।—रखना।

शफ़गोल-संज्ञा स्त्री० दे० "इसबगोल"।

शफ़तालू-संज्ञा पुं० [फ़ा०] एक प्रकार का बड़ा आड़ू जिसे सता-लुक या सताल्डू भी कहते हैं। वि० दे० "सताल्डू"।

शफर-संज्ञा स्त्री० [सं०] पोठी या पोठिया नाम की मछली।

शफराधिप-संज्ञा पुं० [सं०] हिलसा मछली।

शफरी-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की छोटी मछली।

शफरुक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) संदूक। बक्स। (२) पात्र। बरतन।

शफ़ा-संज्ञा स्त्री० [अ०] शरीर का स्वस्थ होना। नीरोगता। आरोग्यता। तंदुरुस्ती।

क्रि० प्र०—(किसी को) शफ़ा देना = (किसी का) रोग दूर करना। अच्छा करना। आराम देना। नीरोग करना।

शफ़ाख़ाना-संज्ञा पुं० [अ० शफ़ा + फ़ा० ख़ाना] वह स्थान जहाँ रोगियों की चिकित्सा होती हो। चिकित्सालय। अस्पताल।

शफोरु-वि० [सं०] जिसकी जाँघ गाय के खुर के समान हो। संज्ञा स्त्री० गाय के खुर के समान जंघावाली स्त्री।

शब-संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] रात। रात्रि। रजनी। निशा।

शबनम-संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] (१) ओस। तुषार। (२) एक प्रकार का सफ़ेद रंग का बहुत ही बारीक कपड़ा।

शबनमी-संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] चारपाई के ऊपर का वह ढाँचा जिस पर रात के समय ओस से बचने के लिये मसहरी टाँगी जाती है। मसहरी। छपरखट।

शबबरात-संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] मुसलमानों के आठवें मास की चौदहवीं अथवा पंद्रहवीं रात्रि। इस रात को मुसलमानों के विश्वास के अनुसार फ़रिश्ते परमात्मा की आज्ञा से भोजन बाँटते और आयु का हिसाब लगाते हैं। इस दिन मुसलमान अपने मृत पूर्वजों के उद्देश्य से प्रार्थना करते, हलुआ रोटी बाँटते, रोशनी करते और आतिशबाज़ी छोड़ते हैं।

शबर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) दक्षिण में रहनेवाली एक जंगली या पहाड़ी जाति। (२) जंगली। वहशी। (३) शूद्र तथा भील से उत्पन्न संतान। (४) लोध नामक वृक्ष। (५) शिव। वि० (१) चितकबरा। (२) रंग बिरंगा।

शबरक-संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० शबरिका] जंगली। वहशी।

शबरचंदन-संज्ञा पुं० [सं० शबर + हिं० चंदन] एक प्रकार का चंदन जो लाल और सफ़ेद दोनों मिले हुए रंगों का होता है। वैद्यक के अनुसार यह शीतल तथा कड़ुवा, और वात, पित्त, कफ, विस्फोटक, खुजली, कुष्ट, मोहादि को नष्ट करनेवाला माना जाता है।

शबरजंबु-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन नगर का नाम।

शबरलोध-संज्ञा पुं० [सं०] सफ़ेद लोध।

शबल-वि० [सं०] (१) चितकबरा। (२) रंग बिरंगा। चित्र विचित्र।

संज्ञा पुं० (१) एक नाग का नाम। (२) बौद्धों का एक प्रकार का धार्मिक कृत्य। (३) अगिया घास। गंध तृण। (४) चित्रक। चितउर वृक्ष।

शबलक-वि० [सं०] (१) चितकबरा। (२) रंगबिरंगा। चित्र विचित्र।

शबलचेतन-संज्ञा पुं० [सं०] वह जो किसी प्रकार की पीड़ा या कष्ट आदि के कारण बहुत घबराया हुआ हो। वह जो संतप्त या व्यथित होने के कारण अन्यमनस्क हो।

शबलत्व-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शबल का भाव या धर्म। (२) रंग बिरंगा पन। (३) मिलावट।

शबला-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) चितकबरी गौ। (२) कामधेनु।

शबलाक्ष-संज्ञा पुं० [सं०] महाभारत के अनुसार एक प्राचीन ऋषि का नाम।

शबलाश्व-संज्ञा पुं० [सं०] (१) महाभारत के अनुसार एक प्राचीन ऋषि का नाम। (२) दक्ष के एक पुत्र का नाम।

शबलिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का पक्षी।

शबलित-वि० [सं०] चितकबरा। रंग बिरंगा।

शबली-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) कामधेनु। (२) चितकबरी गाय।

शबाब-संज्ञा पुं० [अ०] (१) यौवन काल। जवानी। (२) किसी वस्तु की वह मध्य की अवस्था जिसमें वह बहुत अच्छा या सुंदर जान पड़े। (३) बहुत अधिक सौंदर्य।

क्रि० प्र०—आना।—उतरना।—चढ़ना।—जाना।

शबाहत-संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) समानता। अनुकरण। (२) सूरत। शक्ल। आकृति।

शबीह-संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) वह चित्र जो किसी व्यक्ति की सूरत शक्ल के ठीक अनुरूप बना हो।

क्रि० प्र०—खींचना।—बनाना।

(२) समानता। अनुरूपता।

शबोरोज़-अव्य० [फ़ा० शब=रात+रोज़=दिन] रात दिन। हर समय। हर दम।

शब्द-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वायु में होनेवाला वह कंप जो किसी पदार्थ पर आघात पड़ने के कारण अथवा स्वयं वायु पर आघात पड़ने के कारण उत्पन्न होकर कान या श्रवणेंद्रिय तक पहुँचता और उसमें एक विशेष प्रकार का क्षोभ उत्पन्न करता है। ध्वनि। आवाज़।

विशेष—प्रायः सभी पदार्थों से, उन पर आघात आदि करके या उनमें जल्दी जल्दी गति उत्पन्न करके, शब्द उत्पन्न किया जा सकता है। उदाहरणार्थ, मृदंग, ढोल, घंटा, कुरसी, किवाड़ कलम, थाली, जूता, हथौड़ी आदि। जब किसी पदार्थ पर दूसरा कोई पदार्थ आकर गिरता है अथवा किसी पदार्थ में बार बार गति उत्पन्न की जाती है, तब वायु में एक प्रकार की ठेस लगती है जो सब ओर कुछ दूर तक जाती है; और जहाँ कान या श्रवणेंद्रिय होती है, वहाँ वह उसे ग्रहण करके मस्तिष्क को उसकी सूचना देती है। वायु तो शब्द का वहन करती ही है, पर इसके अतिरिक्त और अनेक प्रकार की गैसें, जल तथा अनेक लचीले ठोस पदार्थ भी शब्द वहन करते हैं। पर इनमें से मुख्य वाहक वायु ही है। तो भी वायु की अपेक्षा जल में शब्द बहुत अधिक दूर तक जाता है। जिस स्थान में वायु बिलकुल नहीं होती, वहाँ शब्द का वहन भी किसी प्रकार नहीं हो सकता। वायु की अपेक्षा जल में शब्द की गति और भी अधिक होती है। शब्द हलका या धीमा भी होता है; और भारी या तेज भी। यदि वायु में कंप बहुत अधिक होता है, तो शब्द भी तेज या ऊँचा होता है। यदि वायु या शब्द के वाहक दूसरे साधन का घनत्व कम हो, तो भी शब्द हलका या धीमा हो जाता है। इसके अतिरिक्त दूरी भी शब्द को हलका या धीमा कर देती है। प्रकाश की भाँति शब्द का भी परावर्त्तन होता है। अर्थात् शब्द एक स्थान से उत्पन्न होकर किसी ओर जाता है; और मार्ग में अवरोध पाकर फिर पीछे की ओर लौट आता है। पहाड़ के नीचे या गुंबदों आदि में बोलने के समय शब्द की जो गूँज या प्रतिध्वनि होती है, वह इसी परावर्त्तन के कारण होती है। यदि वातावरण का तापमान ६२° हो तो शब्द की गति प्रति सेकंड ११२५ फुट या प्रति मिनट प्रायः १२ मील होती है। यदि प्रायः एक ही तरह के बहुत से शब्द लगातार रह रहकर हों, तो उनसे "शोर" पैदा होता है। शब्द के दो मुख्य भेद होते हैं—वर्णात्मक और ध्वन्यात्मक। ध्वन्यात्मक शब्द वह है जो कंठ और तालु आदि की सहायता से उत्पन्न होता है। इसके भी दो भेद हैं—व्यक्त और अव्यक्त। जो शब्द सुनने में स्पष्ट हो और जिसका कोई अर्थ हो वह व्यक्त कहलाता है। [दे० "शब्द" (२)।] और जो शब्द स्पष्ट सुनाई न दे और जिसका कोई अर्थ न हो, वह अव्यक्त कहलाता है। जैसे,—हा, ऊँ, खों। वर्णात्मक शब्द के अतिरिक्त और जितने प्रकार के शब्द होते हैं, वे ध्वन्यात्मक कहलाते हैं। जैसे, मृदंग या घंटे आदि से अथवा जोर से हवा चलने के कारण उत्पन्न होनेवाला शब्द। मीमांसाकार ने शब्द को नित्य और सांख्यकार ने उसे आकाश का गुण माना है। वि० दे० "ध्वनि"

पर्य्या०—निनाद। रव। निर्घोष। नाद। घोष। निनद। ध्वान। स्वान। निर्ह्राद। आरव। राव।

(२) वह स्वतंत्र, व्यक्त और सार्थक ध्वनि जो एक या अधिक वर्णों के संयोग से, कंठ और तालु आदि के द्वारा, उत्पन्न हो और जिससे सुननेवाले को किसी पदार्थ, कार्य्य या भाव आदि का बोध हो। लफ़्ज़। जैसे,—मैं, क्या, सोना, घोड़ा, मोटाई, काला आदि। (३) अमृतोपनिषद् के अनुसार "ओरम्" जो परमात्मा का मुख्य नाम है। (४) किसी साधु या महात्मा के बनाए हुए पद या गीत आदि। जैसे,—गुरु नानक के शब्द, कबीर के शब्द।

शब्दग्रह-संज्ञा पुं० [सं०] (१) कान, जिससे शब्द का ग्रहण होता है। (२) एक प्रकार का काल्पनिक बाण।

वि० शब्द को ग्रहण करनेवाला।

शब्द-चातुर्य्य-संज्ञा पुं० [सं०] शब्दों के प्रयोग करने की चतुरता। बोल चाल की प्रवीणता। वाग्मिता।

शब्दचालि-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का नृत्य।

शब्दचित्र-संज्ञा पुं० [सं०] अनुप्रास नामक अलंकार।

शब्दत्व-संज्ञा पुं० [सं०] शब्द का भाव या धर्म्म। शब्दता।

शब्दनृत्य-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का नृत्य।

शब्दपति-संज्ञा पुं० [सं०] नाम मात्र का नेता। वह नेता जिसके अनुयायी न हों।

शब्द-प्रमाण-संज्ञा पुं० [सं०] वह प्रमाण जो किसी के केवल शब्दों या कथन के ही आधार पर हो। आप्त या विश्वासपात्र पुरुष की बात जो प्रमाण स्वरूप मानी जाती हो। वि० दे० "प्रमाण"।

शब्दप्राश-संज्ञा पुं० [सं०] शब्द के अर्थों का अनुसंधान। शब्दार्थ की जिज्ञासा।

शब्दविरोध-संज्ञा पुं० [सं०] वह विरोध जो वास्तविक या भाव में न हो, बल्कि केवल शब्दों में जान पड़ता हो।

शब्दबोध-संज्ञा पुं० [सं०] शाब्दिक साक्षी द्वारा प्राप्त ज्ञान। वह ज्ञान जो जबानी गवाही से प्राप्त हो।

शब्दब्रह्म-संज्ञा पुं० [सं०] वेद जो अपौरुषेय और ईश्वर का कहा हुआ माना जाता है।

शब्दभेदी-संज्ञा पुं० दे० "शब्दवेधी"।

संज्ञा स्त्री० [सं०] गुदा। मलद्वार।

शब्दमहेश्वर-संज्ञा पुं० [सं०] शिव। (कहते हैं कि पाणिनि को व्याकरण का आदेश शिव ने ही किया था; इसी से इनका यह नाम पड़ा।)

शब्दमाल-संज्ञा पुं० [सं०] पोला बाँस।

शब्दयोनि-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) जड़। मूल। (२) शब्द की उत्पत्ति। (३) वह शब्द जो अपने मूल अथवा प्रारंभिक रूप में हो।

शब्दरोचन-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की घास।

शब्दविद्या-संज्ञा स्त्री० [सं०] व्याकरण। शब्दशास्त्र।

शब्दवेधी-संज्ञा पुं० [सं० शब्दवेधिन्] (१) वह मनुष्य जो आँखों से बिना देखे हुए केवल शब्द से दिशा का ज्ञान करके किसी व्यक्ति या वस्तु को बाण से मारता हो।

विशेष—हमारे यहाँ प्राचीन काल में ऐसे धनुर्धर हुआ करते थे जो आँखों पर पट्टी बाँधकर किसी व्यक्ति का शब्द सुनकर या लक्ष्य पर की हुई टंकार सुनकर ही यह समझ लेते थे कि वह व्यक्ति अथवा वस्तु अमुक ओर है; और तब ठीक उसी पर बाण चलाते थे।

(२) अर्जुन। (३) दशरथ।

शब्दशक्ति-संज्ञा स्त्री० [सं०] शब्द की वह शक्ति जिसके द्वारा उसका कोई विशेष भाव प्रदर्शित होता है।

विशेष—जब शब्द किसी वाक्य या वाक्यांश का अंग होता है, तब उसका अर्थ या तो साधारण और या वाक्य के तात्पर्य्य के अनुसार और अपने साधारण अर्थ से कुछ भिन्न होता है। उसकी जिस शक्ति के अनुसार यह साधारण या उससे कुछ भिन्न अर्थ प्रकट होता है, वह शब्द शक्ति कहलाती है। यह शब्द शक्ति तीन प्रकार की मानी गई है—अभिधा, लक्षणा और व्यंजना। (दे० ये तीनों शब्द) इन तीनों से प्रकट होनेवाले अर्थ क्रमशः वाच्य, लक्ष्य और व्यंग्य तथा इन्हें प्रकट करनेवाले शब्द वाचक, लक्षक और व्यंजक कहलाते हैं।

शब्दशास्त्र-संज्ञा पुं० [सं०] वह शास्त्र जिसमें भाषा के भिन्न भिन्न अंगों और स्वरूपों का विवेचन तथा निरूपण किया जाय। व्याकरण।

शब्दश्लेष-संज्ञा पुं० [सं०] वह शब्द जो दो या अधिक अर्थों में प्रयुक्त किया जाय।

शब्दसंभव-संज्ञा पुं० [सं०] वायु जो शब्द की उत्पत्ति का कारण है; अथवा जिससे शब्द का अस्तित्व संभव होता है।

शब्दसाधन-संज्ञा पुं० [सं०] व्याकरण का वह अंग जिसमें शब्दों की व्युत्पत्ति, भेद और रूपांतर आदि का विवेचन होता है। शब्दों के संज्ञा, क्रिया, विशेषण, क्रिया विशेषण, सर्वनाम आदि जो भेद होते हैं, वे भी इसी के अंतर्गत हैं।

शब्दसौंदर्य्य-संज्ञा पुं० [सं०] शब्दों के उच्चारण की सुगमता।

शब्दसौष्ठव-संज्ञा पुं० [सं०] किसी लेख या शैली आदि में प्रयुक्त किए हुए शब्दों की कोमलता या सुंदरता।

शब्दहीन-संज्ञा पुं० [सं०] शब्दों का वह रूप या प्रयोग जिसे आचार्यों ने न प्रयुक्त किया हो।

शब्दाकार-संज्ञा पुं० [सं०] ध्वनिपूर्वक उच्चरित 'ओ३म्' शब्द।

शब्दाख्येय-वि० [सं०] जोर से या चिल्लाकर कहा जानेवाला शब्द।

शब्दाडंबर-संज्ञा पुं० [सं०] बड़े बड़े शब्दों का ऐसा प्रयोग जिसमें भाव की बहुत ही न्यूनता हो। केवल शब्दों की सहायता से खड़ा किया जानेवाला आडंबर। शब्दजाल।

शब्दाढ्य-संज्ञा पुं० [सं०] काँसा नाम की धातु।

शब्दादिग-संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु।

शब्दातीत-संज्ञा पुं० [सं०] वह जो शब्द से परे हो, अर्थात् ईश्वर।

शब्दाधिष्ठान-संज्ञा पुं० [सं०] कर्ण। कान।

शब्दाध्याहार-संज्ञा पुं० [सं०] वाक्य को पूरा करने के लिये उसमें अपनी ओर से और शब्द जोड़ना।

शब्दानुशासन-संज्ञा पुं० [सं०] व्याकरण।

शब्दालंकार-संज्ञा पुं० [सं०] साहित्य में वह अलंकार जिसमें केवल शब्दों या वर्णों के विन्यास से भाषा में लालित्य उत्पन्न किया जाय। जैसे,—अनुप्रास आदि।

शब्देंद्रिय-संज्ञा स्त्री० [सं०] कान।

शम-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शांति। (२) मोक्ष। (३) हस्त। हाथ। (४) उपचार। (५) अंतःकरण तथा अंतर इंद्रिय को वश में करना। (६) बाह्य इंद्रियों का निग्रह। (७) निवृत्ति। (८) साहित्य में शांत रस का स्थायी भाव। (९) क्षमा। (१०) तिरस्कार।

शमठ-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्रकार का मृग या शाद्वल। (२) गंडीर नामक शाक।

शमता-संज्ञा स्त्री० [सं०] शम का भाव या धर्म। शमत्व।

शमथ-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शांति। (२) मंत्री।

शमन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) यज्ञ के लिये होनेवाला पशुओं का बलिदान। (२) यम। (३) एक प्रकार का मृग। (४) हिंसा। (५) शांति। (६) दमन। जैसे,—रोग का शमन। (७) चब। (८) भटर। (९) वह ओषधि जो वातादि दोषों को वमन, विरेचनादि द्वारा दूर करे। जैसे गिलोय। (१०) तिरस्कार। (११) आघात। चोट। (१२) वैद्यक में एक

प्रकार का धूम्रपान जिसमें इलायची, तगर, कुट्ठ, जटामासी, गंधतृण, दालचीनी, तेजपत्ता, नागकेसर, नखी, सरल, बाला, शिलारस आदि कई ओषधियों का धूआँ नली या सटक आदि के द्वारा पीते हैं। इससे वात आदि दोषों का नाश होना माना जाता है। (१३) एक प्रकार का वस्ति कर्म्म जो मोथा और रसांजन आदि मिले हुए दूध से किया जाता है। (१४) रात्रि। रात।

शमनवस्ति-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का वस्ति कर्म्म जिसमें फूल प्रियंगु, मुलेठी, नागरमोथा और रसौत को दूध में पीसकर मलद्वार से पिचकारी देते हैं।

शमनस्वसा-संज्ञा स्त्री० [सं० शमनस्वसृ] यम की भगिनी अर्थात् यमुना।

शमनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] रात। रात्रि।

शमनीय-वि० [सं०] शमन करने योग्य। दबाने या शांत करने योग्य।

शमनीषद्-संज्ञा पुं० [सं०] निशाचर। राक्षस।

शमल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) विष्ठा। गुह। (२) पाप। गुनाह।

शमशम-संज्ञा पुं० [सं०] शिव का एक नाम।

शमशेर-संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] (१) वह हथियार जो शेर की पूँछ अथवा नख के समान हो; अर्थात् तलवार, खड्ग आदि। (२) तलवार।

शमांतक-संज्ञा पुं० [सं०] कामदेव।

शमा-संज्ञा स्त्री० [अ० शमअ] (१) मोम। (२) मोम या चर्बी की बनी हुई बत्ती जो जलाने के काम में आती है। मोमबत्ती।

यौ०—शमादान।

शमादान-संज्ञा पुं० [फ़ा०] वह आधार जिसमें मोम की बत्ती लगाकर जलाते हैं। यह प्रायः धातु का बना हुआ और अनेक आकार प्रकार का होता है।

शमि-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) शिंबी धान्य (मूँग, मसूर, मोठ, उड़द, चना, अरहर, मटर, कुलथी, लोबिया इत्यादि)। (२) सफेद कीकर। वि० दे० "शमी"।

संज्ञा पुं० (१) भागवत के अनुसार उशीनर के एक पुत्र का नाम। (२) यज्ञ।

शमिक-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन ऋषि का नाम।

शमिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] शमी वृक्ष।

शमिज-संज्ञा पुं० [सं०] लाल कुलथी।

शमिजा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) लाल कुलथी। (२) शिंबी धान्य।

शमित-वि० (१) जिसका शमन किया गया हो। (२) शांत। ठहरा हुआ।

शमिपत्र-संज्ञा पुं० [सं०] पानी में होनेवाली लजालू नाम की लता।

शमिपत्रा-संज्ञा स्त्री० दे० "शमिपत्र"।

शमिर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शमी वृक्ष। (२) बकुची। सोमराजी।

शमिरोह-संज्ञा पुं० [सं०] शिव। महादेव।

शमिला-संज्ञा स्त्री० [सं०] चमेली की जाति का एक प्रकार का पौधा।

शमी-संज्ञा स्त्री० [सं० शिवा ?] एक प्रकार का बड़ा वृक्ष जो पंजाब, सिंध, राजपूताना, गुजरात और दक्षिण के प्रांतों में पाया जाता है। इसे बागों में भी लगाते हैं। इसका वृक्ष ३०-४० फुट तक ऊँचा होता है; परंतु सिंध में यह ६० फुट का भी होता है। इसकी शाखें पतली, खाकी रंग की, चित्तीदार और भूमि की ओर लटकती हुई होती हैं। इसकी जड़ कहीं कहीं ६० फुट तक भूमि के भीतर नीचे चली जाती है और चारों ओर बहुत दूर तक बढ़ती है, जिससे नए अंकुर निकलकर और पौधे उत्पन्न होते हैं। इसकी लकड़ी बहुत मजबूत होती है। इसके वृक्ष पर काँटे होते हैं। डालियों पर विषमवर्त्ती सींके रहते हैं। इन सींकों पर ७ से १२ जोड़े तक छोटे छोटे पत्ते रहते हैं। शाखों के अंत में ३-४ इंच लंबे सींकों पर नन्हे नन्हे पीले तथा गुलाबी रंग के फूल आते हैं। फलियाँ ५ से १० इंच तक लंबी और चिपटी होती हैं। प्रत्येक फली में १०-१५ बीज रहते हैं जो अंडाकार और भूरे रंग के होते हैं। इसकी छाल और फलियाँ ओषधि के काम में आती हैं। लोग इसकी फलियों का साग और अचार बनाकर खाते हैं। दुर्भिक्ष के समय इसकी छाल के आटे की रोटी बनाकर भी खाई जाती है। इसका भस्म बुद्धि, केश तथा नखों का नाश करनेवाला होता है। अतिसार में इसका काढ़ा लाभदायक होता है। गठिया पर इसकी छाल पीसकर गरम करके लगाने से लाभ होता है। लोग विजया दशमी आदि कुछ विशिष्ट अवसरों पर इसका पूजन भी करते हैं। सफेद कीकर। छिकुर। छोंकर।

पर्य्या०—शक्तुफला। शिवा। केशहंत्री। शुभदा। पवित्रा। पापनाशिनी।

वि० [सं० शमिन्] शांत।

शमीक-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रसिद्ध क्षमाशील ऋषि का नाम। कहते हैं कि परीक्षित ने इनके गले में एक बार मरा हुआ साँप डाल दिया, परंतु ये कुछ न बोले। इनके लड़के शृंगी ऋषि ने अपने पिता की दुर्दशा देखकर क्रुद्ध हो शाप दिया कि आज के सातवें दिन मेरे पिता के गले में सर्प डालनेवाले को तक्षक डसेगा। कहा जाता है कि इसी शाप के द्वारा तक्षक के काटने से राजा परीक्षित की मृत्यु हुई थी।

शमीगर्भ-संज्ञा पुं० [सं०] (१) ब्राह्मण। (२) अग्नि।

शमीधान, शमीधान्य–संज्ञा पुं० [सं०] शिंबी धान्य। मूँग, मसूर, उड़द आदि।
शमीपत्रा–संज्ञा स्त्री० [सं०] लजालू नाम की लता।
शमीर–संज्ञा पुं० [सं०] शमी वृक्ष।
शमीरकंद–संज्ञा पुं० [सं०] वाराही कंद। चमार आलू। शूकर कंद।
शम्पाक–संज्ञा पुं० [सं०] आरग्वध वृक्ष। अमलतास।
शयंड–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन जनपद का नाम। (२) इस देश का निवासी।
शयंडक–संज्ञा पुं० [सं०] गिरगिट।
शय–संज्ञा पुं० [सं०] (१) शय्या। (२) सर्प। साँप। (३) निद्रा। नींद। (४) पण। (५) हाथ।
संज्ञा स्त्री० [फा० शै] (१) वस्तु। पदार्थ। चीज। (२) भूत। प्रेत। आसेब। जैसे,—इस मकान में कोई शय है।
संज्ञा स्त्री० दे० "शह"।
शयत–संज्ञा पुं० [सं०] निद्रालु व्यक्ति। वह जिसे नींद आई हो।
शयतान–संज्ञा पुं० दे० "शैतान"।
शयतानी–संज्ञा स्त्री० दे० "शैतानी"।
शयथ–संज्ञा पुं० [सं०] (१) साँप। सर्प। (२) सूअर। शूकर। वाराह। (३) मछली। मीन। (४) गाढ़ी नींद। (५) मृत्यु। मौत। (६) यम।
शयन–संज्ञा पुं० [सं०] (१) निद्रा लेने या सोने की क्रिया। सोना। (२) शय्या। बिछौना। (३) मैथुन। स्त्रीप्रसंग। संभोग।
शयनकक्ष–संज्ञा पुं० [सं०] सोने का कमरा या घर। शयनागार।
शयन आरती–संज्ञा स्त्री० [सं० शयन + आरती] देवताओं की वह आरती जो रात को सोने के समय होती है।
शयनगृह–संज्ञा पुं० [सं०] सोने का स्थान। शयन मंदिर। शयनागार।
शयनबोधिनी–संज्ञा स्त्री० [सं०] अगहन मास के कृष्ण पक्ष की एकादशी। उ०—अगहन असित एकादशि केरा। शयन-बोधिनी नाम नियेरा।—रघुनाथ।
शयनमंदिर–संज्ञा पुं० [सं०] सोने का स्थान। सोने का कमरा। शयनगृह। शयनागार।
शयनवास–संज्ञा पुं० [सं० शयनवासस्] वे कपड़े जो सोने के समय पहने जायँ।
शयनागार–संज्ञा पुं० [सं०] सोने का स्थान। शयन मंदिर। शयनगृह।
शयनीय–वि० [सं०] सोने के योग्य।
शयनैकादशी–संज्ञा स्त्री० [सं०] आषाढ़ मास के शुक्ल पक्ष की एकादशी। विष्णु भगवान के शयन का प्रारंभ इसी दिन से माना जाता है।
शयांड–संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्राचीन देश या जनपद का नाम। (२) इस देश का निवासी।
शयांडक–संज्ञा पुं० [सं०] गिरगिट।
शयानक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) सर्प। साँप। (२) गिरगिट। कृकलास।
शयालु–संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जिसे नींद आई हो। निद्रा। (२) अजगर। (३) कुत्ता। (४) शृगाल। गीदड़। सियार।
शयित–संज्ञा पुं० [सं०] (१) अजगर। (२) सिंहोरा। श्लेष्मातक।
वि० सोया हुआ। निद्रित।
शयिता–संज्ञा पुं० [सं० शयितृ] वह जो सोया हुआ हो। सोनेवाला।
शयु–संज्ञा पुं० [सं०] (१) अजगर। (२) एक प्राचीन वैदिक ऋषि का नाम।
शयुन–संज्ञा पुं० [सं०] साँप।
शय्या–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) वह बिछी हुई वस्तु जो सोने के काम में लाई जाय। बिस्तर। बिछौना। बिछावन। (२) पलंग। खाट। खटिया।
शय्यागत–वि० [सं०] जो बीमार होने के कारण खाट पर पड़ा हो। रोगी।
शय्यापालक–संज्ञा पुं० [सं०] वह जो राजाओं के शयनागार की व्यवस्था करता हो।
शय्यामूत्र–संज्ञा पुं० [सं०] एक रोग जो प्रायः बालकों को होता है। इसमें उन्हें निद्रावस्था में ही शय्या पर पड़े पड़े पेशाब हो जाता है।
शय्याच्छादन–संज्ञा पुं० [सं०] पलंग पर बिछाने की चादर।
शय्यादान–संज्ञा पुं० [सं०] मृत्यु के अनंतर मृतक के संबंधियों का महाब्राह्मण को चारपाई, बिछावन आदि दान देना। सज्जा दान।
शरंड–संज्ञा पुं० [सं०] (१) पक्षी। विहंग। चिड़िया। (२) कमुक। (३) धूर्त। चालाक। (४) एक प्रकार का गहना। (५) छिपकली। (६) गिरगिट।
शर–संज्ञा पुं० [सं०] (१) बाण। तीर। नाराच। (२) सरकंडा। सरई। (३) सरपत। रामसर। (४) दूध की मलाई। (५) दही की मलाई। (६) सामुद्रिक के अनुसार शरीर में का एक चिह्न। (७) उशीर। खस। (८) भाले का फल। उ०—गूआ है मरि जाहुगे, बिन शर थोथे भाल।—कबीर। (९) चिता। उ०—सूही पैन्हि पी सँग सुंदरि नर है सौंजो सुख के समूहै देखि तेज पे कि शर पे।—देव। (१०) हिंसा। (११) पाँच की संख्या। (१२) पुराणानुसार एक असुर का नाम।

शरअ-संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) वह सीधा रास्ता जो ईश्वर ने भक्तों के लिये बतलाया हो। (२) कुरान में दी हुई आज्ञा। (३) दीन। मज़हब। धर्म। (४) दस्तूर। तौर। तरीका। (५) मुसलमानों का धर्मशास्त्र।

शरई-वि० [अ०] शरअ के अनुसार। मुसलमानी धर्म के अनुसार।

यौ०—शरई पैजामा=ऊँचा पैजामा। शरई दाढ़ी=बहुत लंबी दाढ़ी। (मुसल०)

संज्ञा पुं० शरअ पर चलनेवाला मनुष्य।

शरकांड-संज्ञा पुं० [सं०] सरपत। सरकंडा।

शरकार-संज्ञा पुं० [सं०] वह जो तीर बनाता हो।

शरखंगक-संज्ञा पुं० [सं०] उलूक तृण। उलप।

शरगुल्म-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सरकंडा। (२) रामायण के अनुसार एक यूथपति बंदर का नाम।

शरज-संज्ञा पुं० [सं०] मक्खन। नवनीत।

वि० सरकंडे से उत्पन्न या बना हुआ।

शरजन्म-संज्ञा पुं० [सं० शरजन्मन्] कार्तिकेय।

शरट-संज्ञा पुं० [सं०] (१) कुसुंभ नाम का साग। (२) कृकलास। गिरगिट। (३) करंज।

शरटी-संज्ञा स्त्री० [सं०] लज्जालुक। लाजवंती। लजाधुर।

शरण-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) रक्षा। आड़। आश्रय। पनाह। जैसे,—अब तो मैं आपकी ही शरण में आया हूँ। उ०—(क) वपु कृष्ण कृष्ण करुना करण जग व्यापक हम तव शरण।—गिरिधर। (ख) जिनकी शरण विश्व बुध जिनको निरभिलाष बतलाते हैं।—द्विवेदी।

क्रि० प्र०—में आना।—जाना।—पाना।—लेना।

(२) आश्रय का स्थान। बचाव की जगह। (३) घर। मकान। (४) जो शरण में आवे, उसके वैरी को मारना। (५) अधीन। मातहत। (६) शाहाबाद के उत्तर सारन नाम का जिला।

शरणद-वि० [सं०] शरण देनेवाला। रक्षा करनेवाला। रक्षक।

शरणा-संज्ञा स्त्री० [सं०] गंध-प्रसारिणी नाम की लता।

शरणागत-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शरण में आया हुआ व्यक्ति। किसी के भय से अपने पास रक्षा के लिये आया हुआ मनुष्य। (२) शिष्य। चेला।

वि० शरण में आया हुआ।

शरणापन्न-वि० [सं०] शरण में आया हुआ। शरणागत।

शरणार्थी-वि० [सं० शरणार्थिन्] शरण माँगनेवाला। अपनी रक्षा की प्रार्थना करनेवाला।

शरणि-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) रास्ता। मार्ग। पथ। (२) पृथ्वी। जमीन। (३) हिंसा।

शरणी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) गंध-प्रसारिणि नाम की लता। (२) पथ। मार्ग। रास्ता। (३) जयंती।

वि० शरण देनेवाली। उ०—असरण शरनी मद भय हरनी वेद पुरान बखानी।—सूर।

शरण्य-वि० [सं०] शरण में आए हुए की रक्षा करनेवाला। उ०—रक्षण करिहैं अवशि हमारा। प्रभु ब्रह्मण्य शरण्य उदारा।—भक्तमाल।

शरण्यता-संज्ञा स्त्री० [सं०] शरण्य का भाव।

शरण्या-संज्ञा स्त्री० [सं०] दुर्गा।

शरण्यु-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मेघ। बादल। (२) वायु। हवा।

संज्ञा स्त्री० सूर्य्य की पत्नी। वि० दे० "सरण्यु"।

शरत-संज्ञा स्त्री० दे० "शर्त"।

संज्ञा स्त्री० दे० "शरत्"।

शरतिया-क्रि० वि० दे० "शर्तिया"।

शरत्-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) वर्ष। साल। (२) एक ऋतु जो आजकल आश्विन और कार्त्तिक मास में मानी जाती है। पहले वैदिक काल में यह ऋतु भाद्रपद और आश्विन मास मास में मानी जाती थी। उ०—वर्षा विगत शरत् ऋतु आई।—तुलसी।

पर्य्या०—शारदा। कालप्रभात। मेघांत। वर्षावसान।

शरत्कामी-संज्ञा पुं० [सं० शरत्कामिन्] कुत्ता। कुक्कुर। श्वान।

शरत्काल-संज्ञा पुं० [सं०] कन्या संक्रांति से तुला संक्रांति तक का अथवा आश्विन और कार्त्तिक का समय। शरद् ऋतु।

शरत्पद्म-संज्ञा पुं० [सं०] श्वेत पद्म।

शरत्पर्व्व-संज्ञा पुं० [सं० शरत्पर्व्वन्] आश्विन मास की पूर्णिमा। कोजागर। शरद पूर्णिमा।

शरदंड-संज्ञा पुं० [सं०] (१) चाबुक। (२) सरकंडा।

शरदंडा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) एक प्राचीन नदी का नाम। (२) एक प्राचीन देश का नाम।

शरदंत-संज्ञा पुं० [सं०] शरद् ऋतु का अंत अर्थात् हेमंत ऋतु।

शरद्-संज्ञा स्त्री० दे० "शरत्"।

शरदई-संज्ञा स्त्री० दे० "सरदई"।

शरद पूर्णिमा-संज्ञा पुं० [सं०] कुआर मास की पूर्णमासी। शरद पूनो।

शरदा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) शरद् ऋतु। (२) वर्ष। साल।

शरदिज-वि० [सं०] जो शरत् ऋतु में उत्पन्न हो।

शरदुद्भव-संज्ञा पुं० [सं०] वृत्तपत्र नाम का साग।

शरदेंदु-संज्ञा पुं० [सं०] शरद् ऋतु का चंद्रमा। शरच्चंद्र।

शरद्-चंद्र-संज्ञा पुं० [सं० शरच्चंद्र] शरद् ऋतु का चंद्रमा। उ०—शरद्‌चंद्र की चाँदनी, मंद परत सी जान।—पद्माकर।

शरद्वत्-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शरद् ऋतु। (२) एक प्राचीन ऋषि का नाम।

शरद्वसु-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन ऋषि का नाम।

शरद्वीप-संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार एक द्वीप का नाम जो जम्बूद्वीप भी कहलाता है।

शरधान-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बृहत्संहिता के अनुसार एक देश का नाम। (२) इस देश का निवासी।

शरधि-संज्ञा पुं० [सं०] तीर रखने का चोंगा। तूणीर। तरकश।

शरपंख-संज्ञा पुं० [सं०] जवासा। हिंगुआ। धमासा।

शरपट्टा-संज्ञा पुं० [सं० शर+हिं० पट्टा] एक प्रकार का शस्त्र। उ०—असिदार भिंडिपाल शरपट्टा।—गिरिधर।

शरपर्णी-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का पौधा।

शरपुंख-संज्ञा पुं० [सं०] (१) नील की तरह का एक प्रकार का पौधा। सरफोंका। (२) बाण या तीर में लगा हुआ पंख। (३) सुश्रुत के अनुसार एक प्रकार का यंत्र।

शरबत-संज्ञा पुं० [अ०] (१) पीने की मीठी वस्तु। रस। (२) चीनी आदि में पका हुआ किसी ओषधि का अर्क जो दवा के काम में आता है। जैसे,—शरबत बनफशा, शरबत अनार। (४) पानी में घोली हुई शक्कर या खाँड़। (५) मुसलमानों की एक रस्म जो विवाह के पश्चात् शरबत पिला कर पूरी की जाती है और इसके बदले में वधू के पक्षवालों को कुछ धन दिया जाता है। (६) सगाई की रस्म। (मुसल०)

शरबत पिलाई-संज्ञा स्त्री० [हिं० शरबत+पिलाना] वह धन जो वर और कन्या पक्ष के लोग एक दूसरे को शरबत पिलाकर देते हैं। (मुसल०)

शरबती-संज्ञा पुं० [हिं० शरबत+ई (प्रत्य०)] (१) एक प्रकार का हलका पीला रंग जिसमें साधारण लाली भी होती है। यह प्रायः हरसिंगार के फूल और शहाब मिलाकर बनाया जाता है। (२) एक प्रकार का नगीना जो पीलापन लिए लाल रंग का होता है। (३) एक प्रकार का नीबू जिसे मीठा भी कहते हैं। ज्वर में लोग प्रायः इसका रस चूसते हैं। चकोतरा। मधुकर्कटी। (४) एक प्रकार का बढ़िया कपड़ा जो तनजेब से कुछ मोटा और अद्धी से कुछ पतला होता है। (५) एक प्रकार का फालसा जो बड़ा और मीठा होता है।

वि० रसीला। रसदार। रस भरा हुआ।

शरबती नीबू-संज्ञा पुं० [हिं० शरबत+नीबू] (१) चकोतरा। (२) गलगल। (३) जंबीरी नीबू। मीठा नीबू।

शरबाण-संज्ञा पुं० [सं० शर+बाण] भूतृण। अगिया घास।

शरबीज-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सरपत के बीज। बादक। (२) भद्रमुंज।

शरभंग-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन महर्षि जो दक्षिण में रहते थे। वनवास के समय रामचंद्र इनके दर्शन करने गए थे।

शरभ-संज्ञा पुं० [सं०] (१) राम की सेना का एक यूथपति बंदर। उ०—ऋषभ शरभ अरु नील गवाक्षहु गंधमादन हू पाँचो।—रघुराज। (२) टिड्डी। (३) हाथी का बच्चा। (४) विष्णु। (५) ऊँट। (६) एक प्रकार का पक्षी। (७) आठ पैरोंवाला एक कल्पित मृग। कहते हैं कि यह सिंह से भी अधिक बलवान् होता है। (८) एक वृत्त का नाम जिसके प्रत्येक चरण में ४ नगण और १ सगण होता है। इसे 'शशिकला' और 'मणिगुण' भी कहते हैं। (९) दोहे का एक भेद जिसमें बीस गुरु और आठ लघु मात्राएँ होती हैं। (१०) शेर। सिंह। (११) दनुज के एक पुत्र का नाम। (१२) महाभारत के अनुसार एक नाग का नाम।

शरभता-संज्ञा स्त्री० [सं०] शरभ का भाव या धर्म। शरभत्व।

शरभा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) शुष्क अवयवोंवाली और विवाह के अयोग्य कन्या। (२) लकड़ी का एक प्रकार का यंत्र।

शरभू-संज्ञा पुं० [सं०] कार्त्तिकेय।

शरभेश्वर-संज्ञा पुं० [सं०] एक शिवलिंग का नाम।

शरम-संज्ञा स्त्री० [फ़ा० शर्म] (१) लज्जा। हया। ग़ैरत।

क्रि० प्र०—आना।—करना।—रखना।—होना।

मुहा०—शरम से गड़ना = मारे लज्जा के दबे या झुके जाना। बहुत लज्जित होना। शरम से पानी पानी होना = बहुत लज्जित होना।

(२) लिहाज। संकोच। (३) प्रतिष्ठा। इज्जत।

मुहा०—शरम रखना = इज्जत रखना। लाज रखना। शरम रहना = प्रतिष्ठा रहना। आबरू रहना।

शरमल्ल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शारिका पक्षी। मैना। (२) वह जो तीर चलाने में निपुण हो। धनुर्धारी।

शरमसार-वि० [फ़ा० शर्मसार] (१) जिसे शरम हो। लज्जावाला। (२) लज्जित। शर्मिंदा।

शरम हुजूरी-संज्ञा स्त्री० [फ़ा० शर्म+अ० हुजूर] ऐसी लज्जा या मुरव्वत जो वास्तविक न हो, केवल किसी के सामने आ जाने से उत्पन्न हो। मुँह देखे की लाज।

शरमसारी-संज्ञा स्त्री० [फ़ा० शर्मसारी] लज्जा। शर्मिंदगी।

संज्ञा पुं० वह जो वास्तव में लज्जा या मुरव्वत न करता हो, केवल किसी के सामने आ जाने पर लज्जा या मुरव्वत करता हो। मुँह देखे की लज्जा करनेवाला।

शरमाऊ-वि० [हिं० शरम+आऊ (प्रत्य०)] जिसे बहुत लज्जा मालूम होती हो। शरमीला।

शरमाना-क्रि० अ० [फ़ा० शर्म+आना (प्रत्य०)] शर्मिंदा होना। लज्जित होना। लाज करना। हया करना। जैसे,—वे तुम्हारे सामने शरमाते हैं।

क्रि० स० शर्मिंदा करना। लज्जित करना। जैसे,—उन्हें ज्यादा मत शरमाओ।

शरमालू-वि० दे० "शरमाऊ"।
शरमा शरमी-क्रि० वि० [फ़ा० शर्म] लज्जा के कारण। शरमिंदा होकर। जैसे,—आप शरमा शरमी साथ हो लिए हैं।
शरमिंदगी-संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] शरमिंदा या लज्जित होने का भाव या धर्म्म। नदामत। लाज। झेंप।
मुहा०—शरमिंदगी उठाना = ऐसा काम करना जिसमें लज्जित होना पड़े।
शरमिंदा-वि० [फ़ा०] जिसे शरम या लज्जा आई हो। लज्जित।
शरमीला-वि० [फ़ा० शर्म+ईला (प्रत्य०)] [स्त्री० शरमीली] जिसे जल्दी शरम या लज्जा आवे। शरम करनेवाला। लज्जालु।
शरयू-संज्ञा स्त्री० दे० "सरयू"।
शरल-संज्ञा पुं० वि० दे० "सरल"।
शरलक-संज्ञा पुं० [सं०] जल। पानी।
शरलोमा-संज्ञा पुं० [सं० शरलोमन्] एक प्राचीन ऋषि जिन्होंने कई ऋषियों के साथ भारद्वाज जी से आयुर्वेद संहिता लाने के लिये प्रार्थना की थी।
शरवनोद्भव-संज्ञा पुं० [सं०] कार्त्तिकेय।
शरवाणि-संज्ञा स्त्री० [सं०] शर का अगला भाग। तीर का फल। संज्ञा पुं० (१) वह जो शर चलाकर जीविका निर्वाह करता हो। तीर चलानेवाला सिपाही। (२) पैदल सिपाही।
शरवारण-संज्ञा पुं० [सं०] ढाल जिससे तीरों की बौछार रोकी जाती है।
शरव्य-संज्ञा पुं० [सं०] वह जिस पर शर का संधान किया जाय। वह जो तीर का निशाना बनाया जाय। लक्ष्य।
शरस्तंब-संज्ञा पुं० [सं०] (१) महाभारत के अनुसार एक प्राचीन स्थान का नाम। (२) एक प्राचीन प्रवरकार ऋषि का नाम।
शरह-संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) वह कथन या वर्णन जो किसी बात को स्पष्ट करने के लिये किया जाय। (२) टीका। भाष्य। व्याख्या। (३) दर। भाव। (४) दे० "शरह लगान"।
शरह लगान-संज्ञा स्त्री० [अ० शरह+हिं० लगान] भूकर की दर। ज़मीन की पड़ती। बिघौती।
शरा-संज्ञा स्त्री० दे० "शरअ"।
शराकत-संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] (१) शरीक या सम्मिलित होने का भाव। (२) साझा। हिस्सेदारी।
शराटि, शराड़ि-संज्ञा स्त्री० [सं०] टिटिहरी।
शराटिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) टिटिहरी। (२) लज्जालुक। लजालू। लाजवंती।
शराध-संज्ञा पुं० दे० "श्राद्ध"।
शराप-संज्ञा पुं० दे० "शाप"।
शराफ़-संज्ञा पुं० दे० "सराफ़"।
शराफ़त-संज्ञा स्त्री० [अ०] शरीफ या सज्जन होने का भाव। भलमनसी। सज्जनता।
शराफ़ा-संज्ञा पुं० दे० "सराफ़ा"।
शराफ़ी-संज्ञा स्त्री० दे० "सराफ़ी"।
शराब-संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) मदिरा। सुरा। वारुणी। मद्य। दारू। वि० दे० "मदिरा"।
क्रि० प्र०—खींचना।—ढालना।—पिलाना।—पीना।
(२) हकीमों की परिभाषा में, शरबत। जैसे,—शराब बनफशा।
शराबख़ाना-संज्ञा पुं० [अ० शराब+फ़ा० ख़ाना] शराब बनने तथा तथा बिकने की जगह। वह स्थान जहाँ शराब मिलती हो।
शराबख़ोरी-संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] (१) शराब पीने का कृत्य। मदिरा पान। (२) शराब पीने की लत।
शराबख़्वार-संज्ञा पुं० [फ़ा०] वह जो शराब पीता हो। मदिरा पीनेवाला। मद्यप। शराबी।
शराबी-संज्ञा पुं० [हिं० शराब+ई (प्रत्य०)] वह जो शराब पीता हो। शराब पीनेवाला। मद्यप।
शराबोर-वि० [फ़ा०] जल आदि से बिल्कुल भींगा हुआ। लथपथ। तरबतर। जैसे,—रंग से शराबोर, पानी से शराबोर।
शरारत-संज्ञा स्त्री० [अ०] शरीर या पाजी होने का भाव। पाजीपन। दुष्टता। बदमाशी। नटखटी।
शरारि-संज्ञा पुं० [सं०] (१) राम की सेना का एक यूथपति बंदर। (२) दे० "शरारिमुख"।
शरारिमुख-संज्ञा पुं० [सं०] टिटिहरी नाम की छोटी चिड़िया जो जलाशयों के पास रहती है।
शरारी-संज्ञा स्त्री० सं०] टिटिहरी नाम की छोटी चिड़िया।
शरारोप-संज्ञा पुं० [सं०] धनुष जिस पर शर चढ़ाया जाता है। कमान।
शराली-संज्ञा स्त्री० [सं०] टिटिहरी नाम की छोटी चिड़िया।
शराव-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मिट्टी का एक प्रकार का पुरवा। कुल्हड़। (२) वैद्यक में एक प्रकार का परिमाण या तौल जो चौसठ तोले या एक सेर की होती है। (वैद्यक में सेर चौसठ तोले का ही माना जाता है।)
शरावती-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) एक नदी जो आज कल राम गंगा कहलाती है। (२) एक प्राचीन नगरी जो लव की राजधानी थी।
शरावर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) ढाल। (२) कवच। वर्म्म।
शरावरण-संज्ञा पुं० [सं०] ढाल जिससे तीर का वार रोकते हैं।
शरावाप-संज्ञा पुं० [सं०] धनुष। कमान।

शराविका-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) वह फुंसी जो ऊपर से ऊँची और बीच में गहरी हो। (२) एक प्रकार का कोढ़।

शरासन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) धनुष। कमान। चाप। (२) महाभारत के अनुसार धृतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम।

शरास्य-संज्ञा पुं० [सं०] धनुष। कमान।

शरिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का प्रासाद।

शरिष्ठ-वि० दे० "श्रेष्ठ"। उ०—कन्या कहइ सुनौ मतिमंता। जो शरिष्ठ सोई मम कंता।—सबल।

शरी-संज्ञा स्त्री० [सं०] एरका या मोथा नाम का तृण।

शरीअत-संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) मुसलमानों के अनुसार वह पथ जो परमात्मा ने अपने भक्तों के लिये निश्चित किया हो। (२) धर्म-शास्त्र। (मुसल०)

शरीक-वि० [अ०] शामिल। सम्मिलित। मिला हुआ।
संज्ञा पुं० (१) वह जो किसी बात में साथ रहता हो। साथी। (२) साझी। हिस्सेदार। पट्टीदार। (३) सहायक। मददगार। (४) रिश्तेदार। संबंधी। (पश्चिम)

शरीफ़- संज्ञा पुं० [अ०] (१) ऊँचे घराने का व्यक्ति। कुलीन मनुष्य। (२) सभ्य पुरुष। भला मानुस। भला आदमी। (३) मक्के के प्रधान अधिकारी की उपाधि।
वि० पाक। पवित्र। जैसे,—मिज़ाज शरीफ़। कुरान शरीफ़।
संज्ञा पुं० [अं० शेरिफ़] कलकत्ते, बंबई और मद्रास में सरकार की ओर से नियुक्त किए जानेवाले एक प्रकार के अवैतनिक अधिकारी जिनके सपुर्द शांति-रक्षा तथा इसी प्रकार के और कुछ काम होते हैं। प्रायः नगर के बड़े बड़े रईस और प्रतिष्ठित व्यक्ति कुछ निश्चित समय के लिये "शरीफ" बनाए जाते हैं। युरोप और अमेरिका आदि में भी इस प्रकार के अधिकारी नियुक्त किए जाते हैं जिन्हें कुछ शासन संबंधी कार्य्य भी सौंपे जाते हैं। इनके अधिकार प्रायः मजिस्ट्रेटों से कुछ मिलते जुलते होते हैं।

शरीफ़ा-संज्ञा पुं० [सं० श्रीफल या सीताफल] (१) मझोले आकार एक प्रकार का प्रसिद्ध वृक्ष जो प्रायः सारे भारतवर्ष में फल के लिये लगाया जाता है और मध्य तथा पश्चिमी भारत के जंगली देशों में बहुत अधिकता से पाया जाता है। कहते हैं कि यह वृक्ष वेस्ट इंडीज़ से यहाँ आया है। इस वृक्ष की छाल पतली और खाकी रंग की, और लकड़ी कुछ मटमैलापन लिए सफ़ेद रंग की होती है। इसके पत्ते अमरूद के पत्ते के सदृश, अंडाकार तथा नोकदार होते हैं। इसमें एक प्रकार के त्रिदल फूल लगते हैं जो नीचे की ओर झुके हुए होते हैं। ये फूल तरकारी बनाने के काम में आते हैं। यह वृक्ष गरमी के दिनों में फूलता है और कातिक अगहन में इसमें अमरूद के आकार के खाकी रंग के गोल फल लगते हैं। यह वृक्ष बीजों से उगता है और बहुत जल्दी बढ़कर फूलने फलने लगता है। इसके पौधे जब कुछ बड़े हो जाते हैं, तब उखाड़कर दूसरे स्थान पर रोपे जाते हैं। इसकी छाल, जड़ और पत्तियों का व्यवहार औषधों में होता है। इसकी छाल बहुत दस्तावर होती है। इसके बीज में से एक प्रकार का तेल भी निकलता है और इसमें तीन तरह के गोंद भी लगते हैं। (२) इस वृक्ष का फल जो अमरूद के सदृश गोल और खाकी रंग का होता है। इसके तल पर आँख के आकार के बड़े बड़े दाने होते हैं जिनके अंदर सफेद गूदे में लिपटे हुए काले चिकने बीज होते हैं। इसका गूदा बहुत मीठा होता है; और इसी के लिये यह फल खाया जाता है। अकाल के दिनों में गरीब लोग प्रायः जंगली शरीफे के फल खाकर निर्वाह करते हैं। वैद्यक में इसे मधुर, हृदय के लिये हितकारी, बलवर्द्धक, वातकारक, शक्तिवर्द्धक, तृप्तिकारक, मांसवर्द्धक और दाह, पित्त, रक्त-पित्त, प्यास, वमन, रुधिर-विकार आदि के लिये लाभदायक माना है। श्रीफल। सीताफल। रामसीता।

शरीर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मनुष्य या पशु आदि के समस्त अंगों की समष्टि। सिर से पैर तक के सब अंगों का समूह। देह। तन। बदन। जिस्म।
विशेष—"शरीर" शब्द से प्रायः आत्मा से भिन्न और सब अंगों या अवयवों का ही भाव ग्रहण किया जाता है। पर हमारे यहाँ शास्त्रों में शरीर के दो भेद किए गए हैं—सूक्ष्म शरीर और स्थूल शरीर। बुद्धि, अहंकार, मन, पाँचों ज्ञानेंद्रियों, पाँचों कर्मेंद्रियों और पंच तन्मात्र के समूह को सूक्ष्म या लिंग शरीर कहते हैं। और हाथ, पैर, मुँह, सिर, पेट, पीठ आदि अंगों का समूह स्थूल शरीर कहलाता है। इसी स्थूल शरीर में सूक्ष्म या लिंग शरीर का वास होता है। कहते हैं कि जब जीव मर जाता है, तब उसका सूक्ष्म शरीर या लिंग शरीर उसके स्थूल शरीर में से निकलकर परलोक को जाता है।
पर्य्या०—कलेवर। गात्र। विग्रह। काय। मूर्त्ति। तनु। क्षेत्र। पिंड। स्कंध। पंजर। करण। बंध। पुद्गल।
वि० [अ०] [संज्ञा शरारत] पाजी। दुष्ट। नटखट।

शरीरकर्त्ता-संज्ञा पुं० [सं० शरीरकर्तृ] शरीर को बनानेवाला, परमेश्वर। सृष्टिकर्त्ता।

शरीरज-संज्ञा पुं० [सं०] (१) रोग। बीमारी। (२) कामदेव। (३) पुत्र। लड़का। बेटा।
वि० शरीर से उत्पन्न।

शरीरता-संज्ञा स्त्री० [सं०] शरीर का भाव या धर्म।

शरीरत्याग-संज्ञा पुं० [सं०] मृत्यु। मौत।

शरीरत्व-संज्ञा पुं० [सं०] शरीर का भाव या धर्म। शरीरता।

शरीरपतन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शरीर का धीरे धीरे क्षीण होना। (२) मृत्यु। मौत।

शरीरपाक-संज्ञा पुं० [सं०] शरीर का धीरे धीरे क्षीण होना।

शरीरपात-संज्ञा पुं० [सं०] देह का अंत या नाश। शरीरांत। देहावसान। मृत्यु। मौत।

शरीरभृत्-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जो शरीर धारण किए हो। शरीरी। (२) विष्णु। (३) जीवात्मा।

शरीररक्ष-संज्ञा पुं० [सं०] वह जो राजा आदि के साथ उसके शरीर की रक्षा करने के लिये रहता हो। अंगरक्षक।

शरीरवान्-संज्ञा पुं० [सं० शरीरवत्] शरीरवाला। देहधारी।

शरीरवृत्त-संज्ञा पुं० [सं०] वे पदार्थ जो शरीर का सौंदर्य बढ़ाने के लिये आवश्यक हों।

शरीरवृत्ति-संज्ञा स्त्री० [सं०] जीवन निर्वाह करने की वृत्ति। जीविका।

शरीर शास्त्र-संज्ञा पुं० [सं०] वह शास्त्र जिसमें शरीर के सब अवयवों, नसों, नाड़ियों आदि का विवेचन होता है और जिससे यह जाना जाता है कि शरीर का कौन सा अंग कैसा है और क्या काम करता है। शरीर विज्ञान।

शरीरशोधन-संज्ञा पुं० [सं०] वह औषध जो कुपित मल, पित्त तथा कफ को हटाकर ऊर्ध्व अथवा अधोमार्ग से निकाल दे।

शरीर-संस्कार-संज्ञा पुं० [सं०] (१) गर्भाधान से लेकर अंत्येष्टि तक के मनुष्य के वेद-विहित सोलह संस्कार। (२) शरीर की शोभा तथा मार्जन।

शरीरस्थ-वि० [सं०] (१) शरीर में रहनेवाला। (२) जीवित। जीता हुआ।

शरीरांत-संज्ञा पुं० [सं०] देह का अंत अथवा नाश। मृत्यु। देहांत। मौत।

शरीरार्पण-संज्ञा पुं० [सं०] किसी कार्य्य के निमित्त अपने शरीर को इस प्रकार लगा देना मानो उस पर अपना कोई स्वत्व ही न हो। उ०—कियो शरीरार्पण पर काजा। संतन सेवन कियो दराजा।—रघुराज।

शरीरावरण-संज्ञा पुं० [सं०] (१) खाल। चमड़ा। (२) वर्म्म। ढाल। (३) शरीर को ढकने की कोई चीज़।

शरीरास्थि-संज्ञा पुं० [सं० शरीर + अस्थि] कंकाल। पिंजर।

शरीरी-संज्ञा पुं० [सं० शरीरिन्] (१) वह जो शरीर धारण किए हो। शरीरवाला। शरीरवान्। (२) आत्मा। जीव। (३) प्राणी। जीवधारी।

शरेष्ट-संज्ञा पुं० [सं०] आम का पेड़।

शरु-संज्ञा पुं० [सं०] (१) क्रोध। गुस्सा। (२) वज्र। (३) बाण। तीर। (४) आयुध। शस्त्र। हथियार। (५) हिंसा। हत्या। मार डालना। (६) वह जो हिंसा करता हो। हिंसक। (७) महाभारत के अनुसार एक गंधर्व का नाम।

वि० (१) बहुत पतला। (२) जिसका अगला भाग बहुत ही छोटा या नुकीला हो।

शरेज-संज्ञा पुं० [सं०] कार्त्तिकेय।

शरेष्ट-संज्ञा पुं० [सं०] आम। आम्र।

*वि० दे० "श्रेष्ठ"।

शर्कर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) कंकड़। (२) बालू का कण। (३) जल में उत्पन्न होनेवाला एक प्रकार का प्राणी। (४) पुराणानुसार एक देश का नाम। (५) इस देश का निवासी। (६) दे० "शर्करा"।

शर्करक-संज्ञा पुं० [सं०] मीठा नीबू। शरबती नीबू।

शर्करकंद-संज्ञा पुं० दे० "शकरकंद"।

शर्करजा-संज्ञा स्त्री० [सं०] चीनी।

शर्करा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) शक्कर। चीनी। खाँड़। (२) बालू का कण। (३) पथरी नामक रोग। (४) कंकड़। (५) ठीकरा। (६) पुराणानुसार एक देश का नाम जो कूर्मचक्र के पुच्छ भाग में है। (७) एक प्रकार का रोग। इसमें त्रिदोष के कारण मांस, शिरा और स्नायु में गाँठ उत्पन्न होती है। गाँठ के फूटने से शहद, घी और चर्बी के समान पीब निकलता है; और वायु के बढ़ने से अनेक गाँठें उत्पन्न होती हैं।

शर्कराक्ष-संज्ञा पुं० [सं०] चरक के अनुसार एक प्राचीन ऋषि का नाम।

शर्कराचल-संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार चीनी का वह पहाड़ जो दान करने के लिये लगाया जाता है।

शर्कराधेनु-संज्ञा स्त्री० [सं०] पुराणानुसार चीनी की वह गौ जो दान करने के लिये बनाई जाती है।

शर्कराप्रभा-संज्ञा स्त्री० [सं०] जैनों के अनुसार एक नरक का नाम।

शर्कराप्रमेह-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का प्रमेह जिसमें मूत्र का रंग मिस्री का सा हो जाता है और उसके साथ शरीर की शर्करा निकलती है।

शर्करार्बुद-संज्ञा पुं० दे० "शर्करा" (७)।

शर्करावत्-संज्ञा पुं० [सं०] शरबत (?)।

शर्करासप्तमी-संज्ञा स्त्री० [सं०] वैशाख शुक्ला सप्तमी। पुराणानुसार इस दिन सुवर्णाश्व का पूजन किया जाता है और उनके आगे घड़े में चीनी भरकर रखी जाती है।

शर्करासव-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का मद्य या शराब जो चीनी से तैयार की जाती है। चरक के अनुसार यह स्वादिष्ट सुगंधित, पाचक और वायु रोग नाशक है।

शर्करासुरभि-संज्ञा पुं० दे० "शर्करासव"।

शर्करी—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) वर्ण वृत्त के अंतर्गत चौदह अक्षरों की एक वृत्ति। इसके कुल १६३८४ भेद होते हैं जिनमें से १३ मुख्य हैं। (२) नदी। दरिया। (३) मेखला। (४) लिखने की कलम। लेखनी।

शर्करीय—वि० [सं०] शर्करा संबंधी। चीनी का।

शर्करोदक—संज्ञा पुं० [सं०] (१) चीनी घोला हुआ पानी। शरबत। (२) वह शरबत जिसमें इलायची, लौंग, कपूर और गोलमिर्च मिली हो। वैद्यक में इसे बलवर्द्धक, रुचिकारक, वायु, पित्त तथा रक्त-दोष नाशक और वमन, मूर्च्छा, दाह और तृष्णा आदि को शमन करनेवाला माना है।

शर्कोटि—संज्ञा पुं० [सं०] साँप।

शर्ट—संज्ञा स्त्री० [अं०] कमीज नाम का पहनने का कपड़ा।

शर्णचाविति—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन गोत्र-प्रवर्त्तक ऋषि का नाम।

शर्त्त—संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) दो व्यक्तियों या दलों में होनेवाली ऐसी प्रतिज्ञा कि अमुक बात होने या न होने पर हम तुमको इतना धन देंगे, अथवा तुमसे इतना धन लेंगे। बाजी जिसमें हार जीत के अनुसार कुछ लेन-देन भी हो। बाजी। दाँव। बदान।

क्रि० प्र०—जीतना।—बदना।—बाँधना।—रहना।—लगना।—लगाना।—हारना।

(२) किसी कार्य्य की सिद्धि के लिये आवश्यक या अपेक्षित होनेवाली बात या कार्य्य जिसके न होने से उस काम में बाधा उपस्थित हो। जैसे,—मैं चलने के लिये तैयार हूँ; पर शर्त्त यह है कि आप भी मेरे साथ चलें। (ख) हम इस शर्त्त पर रुपया देंगे कि आप उसके जिम्मेदार हों। (ग) उन्होंने कई ऐसी शर्तें लगाई हैं कि जिनके कारण काम होना बहुत कठिन है।

क्रि० प्र०—रखना।—लगाना।

शर्तिया—क्रि० वि० [अ०] शर्त्त बदकर। बहुत ही निश्चय या दृढ़तापूर्वक। जैसे,—मैं शर्तिया कहता हूँ कि आप का काम जरूर हो जायगा।

वि० बिलकुल ठीक। निश्चित। जैसे,—यह तो इस बीमारी की शर्तिया दवा है।

शर्ती—क्रि० वि० दे० "शर्तिया"।

शर्दि—संज्ञा पुं० [सं०] वैदिक काल के एक प्राचीन नगर का नाम।

शर्द्ध—संज्ञा पुं० [सं०] (१) तेज। (२) अपान वायु का त्याग करना। पादना।

शर्द्धन—संज्ञा पुं० [सं०] अधोवायु। पाद।

शर्पत—संज्ञा पुं० दे० "शरबत"।

शर्पती—संज्ञा पुं० दे० "शरबती"।

शर्म—संज्ञा स्त्री० दे० "शरम"।

शर्म—संज्ञा पुं० [सं०] (१) सुख। आनंद। (२) वह जो सुखी हो। (३) गृह। घर।

शर्मद—वि० [सं०] [स्त्री० शर्मदा] आनंद देनेवाला। सुखदायक। उ०—कृष्णचन्द्र को प्रिय अधिकारी। शर्मद धर्म धुरधारी।—कबीर। (ख) वीर शर्मदा नर्मदा बाढ़ भयो नृप बाढ़।

संज्ञा पुं० विष्णु का एक नाम।

शर्मन्—संज्ञा पुं० दे० "शर्म्मा"।

शर्मर—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का वस्त्र।

शर्मरा, शर्मरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दारुहल्दी।

शर्म्मा—संज्ञा पुं० [सं० शर्मन्] ब्राह्मणों की उपाधि। जैसे,—महादेव शर्म्मा।

विशेष—विधान है कि ब्राह्मण को अपने नाम के साथ अंत में "शर्म्मा" शब्द का व्यवहार करना चाहिये।

शर्म्माख्य—संज्ञा पुं० [सं०] मसूर।

शर्माना—क्रि० अ० स० दे० "शरमाना"।

शर्मिंदगी—संज्ञा स्त्री० दे० "शरमिंदगी"।

शर्मिंदा—वि० दे० "शरमिंदा"।

शर्मिष्ठा—संज्ञा स्त्री० [सं०] दैत्यों के राजा वृषपर्वा की कन्या का नाम जो शुक्राचार्य्य की कन्या देवयानी की दासी थी। वि० दे० "देवयानी"।

शर्मीला—वि० दे० "शरमीला"।

शर्य्य—संज्ञा पुं० [सं०] (१) योद्धा। (२) बाण। (३) उँगली।

शर्य्यण—संज्ञा पुं० [सं०] वैदिक काल के एक जनपद का नाम जो कुरुक्षेत्र के अंतर्गत था।

शर्य्यणावत्—संज्ञा पुं० [सं०] शर्य्यण नामक जनपद के पास का एक प्राचीन सरोवर जो तीर्थ माना जाता था।

शर्य्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] रात्रि। रात।

शर्य्यात—संज्ञा पुं० [सं०] मनुष्य। आदमी।

शर्य्याति—संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक राजा का नाम जिसकी कन्या "सुकन्या" महर्षि च्यवन को ब्याही गई थी। (२) भागवत के अनुसार वैवस्वत मनु के एक पुत्र का नाम।

शर्व—संज्ञा पुं० [सं०] (१) शिव। शंकर। महादेव। (२) विष्णु।

शर्वक—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन ऋषि का नाम।

शर्वपत्नी—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) पार्वती। (२) लक्ष्मी।

शर्वपर्वत—संज्ञा पुं० [सं०] कैलास।

शर्वर—संज्ञा पुं० [सं०] (१) अंधकार। अँधेरा। (२) कामदेव। (३) संध्या।

शर्वरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) रात। रात्रि। निशा। (२) साँझ। संध्या। शाम। (३) हलदी। हरिद्रा। (४) स्त्री। औरत।

संज्ञा पुं० [सं० शार्वरिन्] बृहस्पति के साठ संवत्सरों में से

चौंतीसवाँ संवत्सर। कहते हैं कि इस संवत्सर में दुर्भिक्ष का भय होता है।

शर्वरीक-वि० [सं०] नुकसान करनेवाला। हानिकारक।

शर्वरीकर-संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु।

शर्वरीदीपक-संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा।

शर्वरीपति-संज्ञा पुं० [सं०] (१) चंद्रमा। (२) शिव। महादेव।

शर्वरीश-संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा।

शर्वाक्ष-संज्ञा पुं० [सं०] रुद्राक्ष। शिवाक्ष।

शर्वाचल-संज्ञा पुं० [सं०] कैलास।

शर्वाणी-संज्ञा स्त्री० [सं०] पार्वती।

शर्शरीक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) हिंसक। (२) खल। दुष्ट। पाजी। (३) घोड़ा। (४) अग्नि।

शलंकर-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन ऋषि का नाम।

शलंकु-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन ऋषि का नाम।

शलंग-संज्ञा पु० [सं०] (१) लोकपाल। (२) एक प्रकार का नमक।

शलंदा-संज्ञा पुं० [देश०] पाताल गारुड़ी। जल जमुनी। छिरेंटा। छिरहटा।

शल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) कंस के एक मल्ल का नाम। उ०—और मल्ल मोर शल तो शल बहुत गए सब भाज।—सूर। (२) भाला। (३) ऊँट। (४) एक प्रकार का वृक्ष। (५) शल्यराज का एक नाम। वि० दे० "शल्यराज"। (६) भाला। (७) साही का काँटा। (८) भृंगी। (९) धृतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम। (१०) भागवत के अनुसार कंस के एक अमात्य का नाम। (११) वासुकी के वंश के एक नाग का नाम।

शलक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मकड़ी। (२) ताल। ताड़ वृक्ष। (३) साही का काँटा।

शलकर-संज्ञा पुं० [सं०] महाभारत के अनुसार एक नाग का नाम।

शलगम-संज्ञा पुं० दे० "शलजम"।

शलजम-संज्ञा पुं० [फ़ा०] गाजर की तरह का एक प्रकार का कंद जो प्रायः सारे भारत में जाड़े के दिनों में होता है। यह कंद गाजर से कुछ बड़ा और प्रायः गोल होता है और तरकारी, अचार और मुरब्बे आदि बनाने के काम में आता है। यूरोप में इससे चीनी भी निकाली जाती है। शलगम।

शलभ-संज्ञा पुं० [सं०] (१) टीड़ी। टिड्डी। शरभ। (२) एक असुर का नाम। (३) पतंगा। फतिंगा। (४) छप्पय के ३१ वें भेद का नाम। इसमें ४० गुरु और ७२ लघु, कुल ११२ वर्ण या १५२ मात्राएँ होती हैं।

शलभता-संज्ञा स्त्री० [सं०] शलभ का भाव या धर्म्म।

शलभत्व-संज्ञा पुं० [सं०] शलभ का भाव या धर्म्म। शलभता।

शलल-संज्ञा पुं० [सं०] साही का काँटा।

शलाकधूर्त्त-संज्ञा पुं० [सं०] वह जो शलाकाओं आदि की सहायता से पक्षियों को पकड़ता हो। चिड़ीमार। बहेलिया।

शलाका-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) लोहे या लकड़ी आदि की लंबी सलाई। सलाख। सीख। (२) वह सलाई जिससे घाव की गहराई आदि नापी जाती है। (३) बाण। शर। तीर। (४) अस्थि। हड्डी। (५) मदन वृक्ष। मैनफल। (६) तिनका। तृण। (७) शारिका पक्षी। मैना। (८) सलई। शल्लकी वृक्ष। (९) सुरमा लगाने की सलाई। (१०) जूआ खेलने का पासा। (११) वच। बचा। (१२) रामायण के अनुसार एक प्राचीन नगरी का नाम। (१३) नली की हड्डी।

शलाकापुरुष-संज्ञा पुं० [सं०] बौद्धों के तिरसठ देवपुरुषों में से एक देवपुरुष।

शलाख-संज्ञा स्त्री० दे० "सलाख"।

शलाट-संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक के अनुसार दो हज़ार पल का परिमाण। शकट।

शलाटु-संज्ञा पुं० [सं०] (१) कच्चा फल। (२) बेल। बिल्व।

शलातुर-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन जनपद का नाम जो पाणिनि का निवास-स्थान था।

शलाथल-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन ऋषि का नाम।

शलामोलि-संज्ञा पुं० [सं०] ऊँट।

शलालु-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का सुगंधि द्रव्य।

शली-संज्ञा स्त्री० [सं०] साही नामक जंतु जिसके सारे शरीर पर काँटे होते हैं।

शलीता-संज्ञा पुं० दे० "सलीता"।

शलूका-संज्ञा पुं० [फ़ा०] आधी बाँह की एक प्रकार की कुरती जो प्रायः स्त्रियाँ पहना करती हैं।

शल्क-संज्ञा पुं० [सं०] (१) टुकड़ा। खंड। (२) छिलका। वल्कल। (३) मछली के ऊपर का छिलका।

शल्कल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मछली का छिलका। (२) वृक्ष की छाल।

शल्कली-संज्ञा पुं० [सं० शल्कलिन्] मछली। मत्स्य। मीन।

शल्प-संज्ञा पुं० [अरा०] (१) बाढ़। (२) बौछार। भरमार। (३) धड़ाका। कड़ाका।

शल्पदा, शल्पपर्णिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] मेदा नामक अष्टवर्गीय ओषधि।

शल्मलि, शल्मली-संज्ञा पुं० [सं०] शाल्मली वृक्ष। सेमल।

शल्य-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मद्र देश के एक राजा का नाम जो द्रौपदी के स्वयंवर के समय भीमसेन के साथ मल्ल-युद्ध में हार गए थे। कुरुक्षेत्र के युद्ध में इन्होंने दुर्योधन का पक्ष ग्रहण किया था। युद्ध के १६वें और १७वें दिन महावीर कर्ण के ये सारथी हुए थे। कर्ण की मृत्यु के अनंतर १८वें दिन ये सेनापति बनाए गए थे और अर्जुन द्वारा मारे गए

थे। ये पांडु की दूसरी स्त्री माद्री के भाई थे। (२) एक प्रकार का बाण। (३) शस्त्र-चिकित्सा। (४) छप्पय के ५६वें भेद का नाम। इसमें १५ गुरु और १२२ लघु, कुल १३७ वर्ण या १५२ मात्राएँ होती हैं। (५) हड्डी। अस्थि। (६) अंजन लगाने की सलाई। शलाका। (७) मैनफल। मदन वृक्ष। (८) सफ़ेद खैर। (९) शिलिंद मछली। (१०) लोध। लोध्र वृक्ष। (११) बेल। विल्व वृक्ष। (१२) साही नामक जंतु। (१३) साँग नामक अस्त्र। (१४) दुर्वाक्य। (१५) पाप। (१६) ज़मीन में गड़ी हुई जानवरों आदि की हड्डियाँ जो मकान बनाने के समय निकालकर फेंकी जाती हैं। (१७) वे पदार्थ जिनसे शरीर में किसी प्रकार की पीड़ा या रोग आदि उत्पन्न होता है। सुश्रुत के अनुसार ये शल्य दो प्रकार के होते हैं—शारीर और आगंतु। यदि वात पित्त आदि के दोष से रोएँ, नाखून, शरीर के धातु, अन्न, मल आदि कुपित होकर पीड़ा या रोग उत्पन्न करें, तो उसे शारीर शल्य कहते हैं। और इनके अतिरिक्त जो और बाहरी पदार्थ (लोहा, लकड़ी, सींग आदि) शरीर में पीड़ा या रोग उत्पन्न करें, तो उन्हें आगंतु शल्य कहते हैं।

शल्यकंठ–संज्ञा पुं० [सं०] साही नामक जंतु।

शल्यक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) साही नामक जंतु। (२) मैनफल। मदन वृक्ष। (३) सफ़ेद खैर। (४) लाल खैर। (५) एक प्रकार की मछली। (६) लोध वृक्ष। (७) बेल। बिल्व।

शल्यकर्त्तन–संज्ञा पुं० [सं०] रामायण के अनुसार एक प्राचीन जनपद का नाम।

शल्यकर्त्ता–संज्ञा पुं० [सं० शल्यकर्तृ] वह जो शल्य चिकित्सा करता हो। चीर फाड़ का इलाज करनेवाला।

शल्यकी–संज्ञा स्त्री० [सं० शल्लकी] साही नामक जंतु। उ०—रोम रोम बेध्यो तनु बाणन। भयो शल्यकी सरिस दशानन। —रघुराज।

शल्यक्रिया–संज्ञा स्त्री० [सं०] चीर-फाड़ का इलाज। शस्त्र-चिकित्सा।

शल्यज नाड़ी व्रण–संज्ञा पुं० [सं०] नाड़ी में होनेवाला एक प्रकार का व्रण या घाव। जब किसी घाव में काँटा या कंकड़ आदि पड़कर किसी नाड़ी में पहुँच जाता और वहीं रह जाता है, तब जो व्रण होता है, वह शल्यज नाड़ी व्रण कहलाता है। इसमें घाव में से गरम खून के साथ मवाद निकलता है।

शल्यज मूत्र कृच्छ्र–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का मूत्र-कृच्छ्र। वि० दे० "मूत्रकृच्छ्र"।

शल्यतंत्र–संज्ञा पुं० [सं०] सुश्रुत के अनुसार आठ प्रकार के तंत्रों में से एक तंत्र। वह तंत्र जिसमें चीर-फाड़ के यंत्रों, शस्त्रों, क्षारों और अग्नि कर्म आदि के प्रयोगों का वर्णन होता है।

शल्यदा–संज्ञा स्त्री० [सं०] मेदा नाम की ओषधि।

शल्यपर्णिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] मेदा नाम की ओषधि।

शल्यलोम–संज्ञा पुं० [सं० शल्यलोमन्] साही नामक जंतु का काँटा।

शल्यशालक–संज्ञा पुं० [सं०] फोड़ों आदि की चीर फाड़ का काम।

शल्यशास्त्र–संज्ञा पुं० [सं०] चिकित्सा शास्त्र का वह अंग जिसमें शरीर में गड़े हुए काँटों आदि के निकालने का विचार रहता है।

शल्या–संज्ञा स्त्री० [सं०] मेदा नाम की ओषधि। (२) नागवल्ली नाम की लता। (३) विकंकत वृक्ष।

शल्यारि–संज्ञा पुं० [सं०] शल्य को मारनेवाले, युधिष्ठिर।

शल्योद्धार–संज्ञा पुं० [सं०] (१) शरीर में लगे हुए बाण या काँटे आदि निकालने की क्रिया। (२) वास्तुविद्या के अनुसार नया मकान बनवाने के समय ज़मीन को साफ़ कराना और उसमें की हड्डियाँ आदि निकलवाकर फेंकवाना।

शल्ल–संज्ञा पुं० [सं०] (१) चमड़ा। (२) वृक्ष की छाल। (३) मेंढक।

वि० [अ०] (अंग) जो दुर्बलता या थकावट आदि के कारण बिलकुल सुस्त या सुन्न हो गया हो।

शल्लक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) शोण वृक्ष। सलई। (२) साही नामक जंतु। (३) चमड़ा।

शल्लकी–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) साही नामक जंतु। (२) सलई का वृक्ष।

शल्लकीद्रव–संज्ञा पुं० [सं०] शिलारस। शिल्हक।

शल्लकीरस–संज्ञा पुं० [सं०] शिलारस। शिल्हक।

शल्लिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] नाव। नौका।

शल्ली–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) साही नामक जंतु। (२) शल्लकी का वृक्ष। सलई।

शल्य–संज्ञा पुं० दे० "शाल्व"। उ०—मिलत राम अस कीन्ह हिय, तब अंबिका कहाय। छोड़ि गई अपने भवन, शल्व भूप के पास।—रघुराज।

शव–संज्ञा पुं० [सं०] मृत शरीर। प्राणरहित देह। लाश। मुर्दा।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग केवल मनुष्य के मृत शरीर के ही लिये होता है।

(२) जल। पानी।

शवकाम्य–संज्ञा पुं० [सं०] कुक्कुर। कुत्ता।

शवदहन–संज्ञा पुं० [सं०] श्रीकृष्ण का एक नाम।

शवदाह–संज्ञा पुं० [सं०] मनुष्य के मृत शरीर को जलाने की क्रिया या भाव।

शवधान–संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार एक नरक का नाम जिसे श्वभोजन भी कहते हैं।

शवभस्म-संज्ञा पुं० [सं०] चिता का भस्म । मरघट की राख । उ०—शवभस्म विभूषित भूरि गण ।—रघुनाथ ।

शवमंदिर-संज्ञा पुं० [सं०] श्मशान । मरघट ।

शवयान-संज्ञा पुं० [सं०] अरथी जिस पर शव ले जाते हैं । टिकठी ।

शवर-संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० शवरी] (१) एक पहाड़ी जंगली जाति । इस जाति के लोग मोरपंख से अपने आपको सजाते हैं । ये लोग अब तक मध्य प्रदेश और हजारीबाग आदि जिलों में रहते और "सौर" कहलाते हैं । (२) शिव । (३) जल ।

शवरथ-संज्ञा पुं० [सं०] शवयान । अरथी । टिकठी ।

शवरलोध्र-संज्ञा पुं० [सं०] सफेद लोध ।

शवरी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) शवर जाति की श्रमणा नाम की एक तपस्विनी । सीता जी को ढूँढ़ते हुए रामचंद्र इस तपसी के आश्रम में पहुँचे थे । इसने राम की अभ्यर्थना की थी और उन्हीं की अनुमति से उनके सामने ही चिता में प्रविष्ट होकर यह स्वर्ग को सिधारी थी । (२) शवर जाति की स्त्री ।

शवल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) चीता । चित्रक । (२) जल । पानी ।

वि० चितकबरा । चित्तल । चीतल ।

शवला-संज्ञा स्त्री० [सं०] चितकबरी गाय ।

शवलित-वि० [सं०] मिश्रित । मिला हुआ ।

शवली-संज्ञा स्त्री० [सं०] चितकबरी गाय ।

शवशयन-संज्ञा पुं० [सं०] श्मशान । मरघट ।

शवसाधन-संज्ञा पुं० [सं०] तंत्र के अनुसार एक प्रकार का साधन जो श्मशान में किसी व्यक्ति के शव या मृत शरीर पर बैठकर अथवा उसे सामने रखकर किया जाता है । कहते हैं कि इस प्रकार के साधन से साधक को सिद्धि और अनंत पद प्राप्त होता है ।

शवस्नान-संज्ञा पुं० [सं०] पथिक । यात्री ।

शवान्न-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह अन्न जो बिल्कुल खराब हो गया हो और किसी काम का न रह गया हो । (२) मनुष्य के शव या मृत शरीर का मांस ।

शव्य-संज्ञा पुं० [सं०] वह कृत्य या उत्सव जो शव को अंत्येष्टि क्रिया के लिये ले जाने के समय होता है ।

शव्वाल-संज्ञा पुं० [अ०] मुसलमानों का दसवाँ महीना ।

शश-संज्ञा पुं० [सं०] (१) खरहा । खरगोश । (२) चंद्रमा का लांछन या कलंक । (३) लोध्र वृक्ष । लोध । (४) काम शास्त्र के अनुसार मनुष्य के चार भेदों में से एक भेद । जो मनुष्य मृदु वचन बोलता हो, सुशील, कोमलांग, सत्यवादी और सकल गुण निधान हो, वह शश जाति का माना जाता है । (५) बोल नामक गंधद्रव्य । गंधरस ।

शशक-संज्ञा पुं० [सं०] खरगोश । खरहा ।

शशगानी-संज्ञा पुं० [फा० शश = छः + गानी ?] चाँदी का एक प्रकार का सिक्का जो फीरोज शाह के राज्य में प्रचलित था । यह लगभग दुअन्नी के बराबर होता था ।

शशघातक, शशघाती-संज्ञा पुं० [सं०] बाज या श्येन नामक पक्षी । हरगीला ।

शशधर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) चंद्रमा । (२) कपूर । कर्पूर ।

शशबिंदु-संज्ञा पुं० [सं०] (१) विष्णु । (२) चित्ररथ के एक पुत्र का नाम ।

शशभृत्-संज्ञा पुं० [सं०] (१) चंद्रमा । (२) कपूर ।

शशमाही-वि० [फा०] हर छः महीने पर होनेवाला । छः माही । अर्द्ध वार्षिक ।

शशमुंड-संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक में एक प्रकार का रस ।

शशमौलि-संज्ञा पुं० [सं०] शिव ।

शशयान-संज्ञा पुं० [सं०] महाभारत के अनुसार एक तीर्थ का नाम ।

शशलक्षण-संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा ।

शशलांछन-संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा ।

शशशिबिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] जीवंती । डोडी ।

शशशृंग-संज्ञा पुं० [सं०] कोई असंभव और अनहोनी बात । वैसा ही असंभव कार्य्य जैसा खरगोश को सींग होना होता है । आकाश कुसुम की सी असंभव बात ।

शशस्थली-संज्ञा स्त्री० [सं०] गंगा और यमुना के मध्य का प्रदेश । दोआब ।

शशांक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) चंद्रमा । (२) कपूर ।

शशांकज-संज्ञा पुं० [सं०] बुध जो चन्द्रमा का पुत्र माना जाता है ।

शशांकमुकुट-संज्ञा पुं० [सं०] शिव । महादेव ।

शशांकशेखर-संज्ञा पुं० [सं०] महादेव । शिव ।

शशांकसुत-संज्ञा पुं० [सं०] बुध ग्रह जो शशांक या चंद्रमा का पुत्र माना जाता है ।

शशांकार्द्ध-संज्ञा पुं० [सं०] शिव ।

शशांकोपल-संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रकांत मणि ।

शशांडुलि-संज्ञा स्त्री० [सं०] कडुवी ककड़ी ।

शशा-संज्ञा पुं० दे० "शश" ।

शशाद-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बाज । श्येन पक्षी । (२) भागवत के अनुसार इक्ष्वाकु के एक पुत्र का नाम ।

शशादन-संज्ञा पुं० [सं०] बाज नाम का पक्षी ।

शशि-संज्ञा पुं० [सं० शशिन्] (१) चंद्रमा । इंदु । (२) छप्पय के ५४ वें भेद का नाम । इसमें १७ गुरु और ११८ लघु,

कुल १३५ वर्ण या १५२ मात्राएँ होती हैं। (३) रगण के दूसरे भेद (।ऽऽ) की संज्ञा। (४) मोती। (५) छः की संख्या। उ०—एहि भाँति कीन्हीं युद्ध शिव शशि मास तब हहऱ्यो हियो।—रघुनाथ।

शशिक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) महाभारत के अनुसार एक प्राचीन जनपद का नाम। (२) इस जनपद में रहनेवाली जाति।

शशिकर-संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा की रश्मि या किरण।

शशिकला-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) चंद्रमा की कला। (२) एक प्रकार का वृत्त। इसके प्रत्येक चरण में चार नगण और एक सगण होता है। इसको 'मणिगुण' और 'शरभ' भी कहते हैं।

शशिकांत-संज्ञा पुं० [सं०] (१) चंद्रकांत मणि। (२) कुमुद। कोईं। बघोला।

शशिकुल-संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रवंश। उ०—शशिकुल छत्र शिरोमणि आहीं।—गर्ग संहिता।

शशिकेतु-संज्ञा पुं० [सं०] एक बुद्ध का नाम।

शशिखंड-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शिव। महादेव। (२) चंद्रमा की कला। (३) एक विद्याधर का नाम।

शशिखंडिक-संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार एक देश का नाम।

शशिगुहा-संज्ञा स्त्री० [सं०] मुलेठी।

शशिज-संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा का पुत्र, बुध ग्रह। उ०—प्रथम शुक्र दूजे रवि शशिजहु राहु चतुर्थ गनाईं।—रघुराज।

शशितिथि-संज्ञा स्त्री० [सं०] पूर्णिमा। पूर्णमासी।

शशिदैव-संज्ञा पुं० [सं०] मृगशिरा नक्षत्र जिसके अधिष्ठाता देवता चंद्रमा माने जाते हैं।

शशिधर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शिव। (२) एक प्राचीन नगर का नाम। उ०—शशिधर नगर जाहु नृप कारी।—शं० दि०।

शशिध्वज-संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार एक असुर का नाम।

शशिपर्ण-संज्ञा पुं० [सं०] परवल। पटोल।

शशिपुत्र-संज्ञा पुं० [सं०] बुध ग्रह जो चंद्रमा का पुत्र माना है।

शशिपुष्प-संज्ञा पुं० [सं०] कमल। पद्म।

शशिपोषक-संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा का पोषण करनेवाला, शुक्ल पक्ष।

शशिप्रभ-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जिसकी प्रभा चंद्रमा के समान हो। (२) कुमुद। कोईं। (३) मुक्ता। मोती।

शशिप्रभा-संज्ञा स्त्री० [सं०] ज्योत्स्ना। चाँदनी।

शशिप्रिय-संज्ञा पुं० [सं०] (१) कुमुद। कोईं। (२) मुक्ता। मोती।

शशिप्रिया-संज्ञा स्त्री० [सं०] सत्ताइसों नक्षत्र जो चंद्रमा की पत्नियाँ माने जाते हैं।

शशिभागा-संज्ञा स्त्री० [सं०] राजा मुचकुंद की कन्या का नाम। उ०—सुनत कहेउ पति से शशिभागा।—रघुनाथ।

शशिभाल-संज्ञा पुं० [सं०] मस्तक पर चंद्रमा धारण करनेवाले, शिव। महादेव। उ०—जय सगन रिपु काल, जयति पाल शशिभाल भज।—रघुराज।

शशिभूषण-संज्ञा पुं० [सं०] शिव। महादेव।

शशिभृत्-संज्ञा पुं० [सं०] शिव। महादेव।

शशिमंडल-संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा का घेरा या मंडल। चंद्रमंडल। उ०—सब नक्षत्र को राजा कीन्हों शशिमंडल में छाप।—सूर।

शशिमणि-संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रकांत मणि।

शशिमुख-वि० [सं०] [स्त्री० शशिमुखी] (वह व्यक्ति) जिसका मुख चंद्रमा के सदृश सुंदर हो। अति सुंदर। उ०—राग सुनि भक्तन को भयो अनुराग बस शशिमुख लालजू को जाइके सुनाइये।—नाभादास।

शशिमौलि-संज्ञा पुं० [सं०] शिव। महादेव।

शशिरस-संज्ञा पुं० [सं०] अमृत।

शशिरेखा-संज्ञा स्त्री० [सं०] चंद्रमा की एक कला।

शशिलेखा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) चंद्रमा की कला। (२) बकुची। सोमराजी। (३) गिलोय। गुरुच।

शशिवदना-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक वृत्त का नाम जिसके प्रत्येक चरण में एक नगण (।।।) और एक यगण (।ऽऽ) होता है। इसे चौवंसा, चंडरसा और पादांकुलक भी कहते हैं। उ०—दिक द्विज देरे। कुपित पिरोरे। नयन-निहारे। बचन-निसारे।—गुमान।

वि० स्त्री० चंद्रमा के समान सुंदर मुखवाली। शशिमुखी।

शशिवाटिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] पुनर्नवा। गदहपूरना।

शशिशाला-संज्ञा स्त्री० [फा० शीशा + सं० शाला] वह घर जो बहुत से शीशों का बना हुआ हो या जिसमें बहुत से शीशे लगे हुए हों। शीशमहल। उ०—(क) अति सुंदर शशिशाला चाल मराशिव ओर।—रघुराज। (ख) सुंदर सरद प्रमोद मही सब शशि भूपति शशिशाला।—रघुराज। (ग) शशिशाला अंतःपुर वाला चाला सभा सदन के।—रघुराज।

शशिशेखर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शिव। महादेव। उ०—लिखा एक चित्र उसका चित्त नहीं पर शशिशेखर।—[illegible] (२) एक बुद्ध का नाम।

शशिशोषक-संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा को क्षीण करनेवाला, कृष्ण पक्ष।

शशिसुत-संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा का पुत्र, बुध ग्रह।

शशिहीरा-संज्ञा पुं० [सं० शशि+हिं० हीरा] चंद्रकांत मणि। उ०—शशिहीरा की एक बात। कलीन कीलतव लगानौं बात।—रत्नपरीक्षा।

शशी-संज्ञा पुं० दे० "शशि"।

शशीकर-संज्ञा पुं० [सं० शशिकर] चंद्रमा की किरण।

शशीश-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शिव। महादेव। (२) कार्त्तिकेय।

शश्वत-वि० दे० "शाश्वत"।

शष्कुल-संज्ञा पुं० [सं०] करंज।

शष्कुली-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) पूरी पकवान आदि। (२) कान का छेद। (३) सौरी मछली।

शष्प-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) नई घास। (२) नीली दूब।

शसन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) यज्ञ के लिये पशुओं की हत्या करना। (२) वह स्थान जहाँ पशुओं का बलिदान होता हो।

शसा*-संज्ञा पुं० [सं० शश] खरगोश। खरहा।

शसि*-संज्ञा पुं० दे० "शशि"।

शसी*-संज्ञा पुं० दे० "शशि"।

शस्त-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शरीर। बदन। जिस्म। (२) कल्याण। मंगल। भलाई।

वि० (१) जिसकी प्रशंसा की गई हो। अच्छा। उत्तम। श्रेष्ठ। (२) प्रशस्त। (३) जो मार डाला गया हो। निहत। (४) कल्याणयुक्त। मंगलयुक्त।

संज्ञा पुं० [फा०] (१) वह हड्डी या धातु का छल्ला जो तीर चलाने के समय अँगूठे में पहना जाता है। (२) वह जिस पर तीर या गोली आदि चलाई जाती है। लक्ष्य। निशाना।

मुहा०—शस्त बाँधना या लगाना = निशाना बेधने के लिये सीध या ताक लगाना।

(३) जमीन की पैमाइश करनेवालों की दूरबीन के आकार का वह यंत्र जिसकी सहायता से जमीन की सीध देखी जाती है। (४) मछली पकड़ने का काँटा।

शस्तक-संज्ञा पुं० [सं०] हाथ में पहनने का चमड़े का दस्ताना। अंगुलित्राण।

शस्ति-संज्ञा स्त्री० [सं०] स्तुति। प्रशंसा। तारीफ।

शस्त्रक-संज्ञा पुं० [सं०] लोहा।

शस्त्रकर्म-संज्ञा पुं० [सं० शस्त्रकर्मन्] घाव या फोड़े में नश्तर लगाना। फोड़ों आदि की चीर-फाड़ का काम।

शस्त्रकेतु-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का केतु जो पूर्व में उदय होता है। कहते हैं कि इसके उदय होने पर महामारी फैलती है।

शस्त्रकोशतरु-संज्ञा पुं० [सं०] बड़ा मैनफल।

शस्त्रक्रिया-संज्ञा स्त्री० [सं०] फोड़ों आदि की चीर-फाड़। नश्तर लगाने की क्रिया।

शस्त्रगृह-संज्ञा पुं० [सं०] वह स्थान जहाँ अनेक प्रकार के शस्त्र आदि रहते हों। शस्त्र-शाला। हथियार-घर। सिलहखाना।

शस्त्रचूर्ण-संज्ञा पुं० [सं०] मंडूर।

शस्त्रजीवी-संज्ञा पुं० [सं० शस्त्रजीविन्] योद्धा। सैनिक। सिपाही।

शस्त्रदेवता-संज्ञा पुं० [सं०] युद्ध का अधिष्ठाता देवता।

शस्त्रधर-संज्ञा पुं० [सं०] योद्धा। सैनिक। सिपाही।

शस्त्रधारी-वि० [सं० शस्त्रधारिन्] [स्त्री० शस्त्रधारिणी] शस्त्र धारण करनेवाला। हथियारबंद।

संज्ञा पुं० (१) योद्धा। सिपाही। सैनिक। (२) एक प्रकार का जंतु जिसे सिलहपोश भी कहते हैं। (३) एक प्राचीन देश का नाम।

शस्त्रभृत्-संज्ञा पुं० [सं०] वह जो शस्त्र धारण करता हो। शस्त्रधारी।

शस्त्रवार्त-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन देश का नाम।

शस्त्रविद्या-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) हथियार चलाने की विद्या। (२) यजुर्वेद का उपवेद, धनुर्वेद, जिसमें सब प्रकार के अस्त्र चलाने की विधियों और लड़ाई के संपूर्ण भेदों का वर्णन दिया गया है।

शस्त्रवृत्ति-संज्ञा पुं० [सं०] वह जो शस्त्र आदि चलाकर अपना निर्वाह करता हो। योद्धा। सैनिक। सिपाही।

शस्त्रशाला-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्थान जहाँ बहुत से शस्त्र आदि रखे हों। शस्त्रगृह। शस्त्रागार। सिलहखाना।

शस्त्रशास्त्र-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह शास्त्र जिसमें हथियार चलाने आदि का निरूपण हो। (२) धनुर्वेद।

शस्त्रहत-संज्ञा पुं० [सं०] वह जिसकी हत्या शस्त्र के द्वारा हुई हो।

शस्त्रहत चतुर्दशी-संज्ञा स्त्री० [सं०] गौण आश्विन कृष्ण चतुर्दशी और गौण कार्त्तिक कृष्ण चतुर्दशी। इन दोनों चतुर्दशियों को उन लोगों का श्राद्ध किया जाता है, जिनकी हत्या शस्त्रों द्वारा होती है।

शस्त्रांगा-संज्ञा स्त्री० [सं०] खट्टी लोनी या अमलोनी जिसका साग होता है। चांगेरी।

शस्त्राख्य-संज्ञा पुं० [सं०] बृहत्संहिता के अनुसार एक प्रकार का केतु।

शस्त्रागार-संज्ञा पुं० [सं०] शस्त्रों के रखने का स्थान। शस्त्रशाला। शस्त्रालय। सिलहखाना।

शस्त्रायस-संज्ञा पुं० [सं०] वह लोहा जिससे शस्त्र बनाए जाते हैं।

शस्त्री-संज्ञा पुं० [सं० शस्त्रिन्] (१) वह जो शस्त्र आदि चलाना जानता हो। (२) वह जिसके पास शस्त्र हों।

संज्ञा स्त्री० [सं० शस्त्र] छुरी। चाकू।

शस्य-संज्ञा पुं० [सं०] (१) नई घास। कोमल तृण। (२) हर्रो

का फल। (३) खेती। फसल। (४) प्रतिभा की हानि या नाश। (५) धान्य। अन्न। (६) सद्गुण।

वि० (१) उत्तम। श्रेष्ठ। अच्छा। (२) प्रशंसा के योग्य। तारीफ़ के लायक।

शस्यक-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का रत्न।

शस्यघ्नी-संज्ञा स्त्री० [सं०] चोरहुली। चोरपुष्पी।

शस्यध्वंसी-संज्ञा पुं० [सं० शस्यध्वंसिन्] तून। तूर्ण वृक्ष।

वि० जिससे शस्य का नाश हो।

शस्यसंवर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शाल वृक्ष। (२) अश्वकर्ण वृक्ष।

शस्यारु-संज्ञा पुं० [सं०] छोटी शमी।

शहंशाह-संज्ञा पुं० [फ़ा०] बादशाहों का बादशाह। महाराजाधिराज। शाहंशाह।

शहंशाही-वि० [फ़ा०] शाहों का सा। शाही। राजसी।

संज्ञा स्त्री० (१) शाहंशाह का भाव या धर्म। (२) शाहंशाह का पद। (३) लेने देने में खरापन। (बाज़ारू)

क्रि० प्र०—दिखलाना।—रखना।

शह-संज्ञा पुं० [फ़ा० शाह का संक्षिप्त रूप] (१) बहुत बड़ा राजा। बादशाह। (२) वर। दूल्हा।

यौ०—शहबाला।

वि० बड़ा चढ़ा। श्रेष्ठतर।

विशेष—इस अर्थ में इस शब्द का प्रयोग केवल यौगिक शब्द बनाने के समय उसके आरंभ में होता है। जैसे,—शहज़ोर, शहबाज़, शहसवार।

संज्ञा स्त्री० (१) शतरंज के खेल में कोई मुहरा किसी ऐसे स्थान पर रखना जहाँ से बादशाह उसकी घात में पड़ता हो। किश्त। उ०—राजा पील देइ शह माँगा। शह दै चाहि मरै रथ खागा।—जायसी।

क्रि० प्र०—खाना।—देना।—बचाना।—लगाना।

(२) गुप्त रूप से किसी के भड़काने या उभारने की क्रिया या भाव। जैसे,—ये तुम्हारी शह पाकर ही तो इतना उछलते हैं।

क्रि० प्र०—देना।—पाना।—मिलना।

(३) गुड्डी, पतंग या कनकौवे आदि को धीरे धीरे, डोर ढीली करते हुए, आगे बढ़ाने की क्रिया या भाव।

क्रि० प्र०—देना।

शहचाल-संज्ञा स्त्री० [फ़ा० शह + हिं० चाल] शतरंज में बादशाह की वह चाल जो और मोहरों के मारे जाने पर चली जाती है।

शहज़ादा-संज्ञा पुं० [फ़ा०] [स्त्री० शहज़ादी] (१) राजपुत्र। राजकुमार। (२) राज्य का उत्तराधिकारी। युवराज।

शहज़ोर-वि० [फ़ा०] बली। बलवान। ताक़तवर।

शहज़ोरी-संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] (१) बल। ताक़त। (२) ज़बरदस्ती।

शहत-संज्ञा पुं० दे० "शहद"।

शहतीर-संज्ञा पुं० [फ़ा०] लकड़ी का चीरा हुआ बहुत बड़ा और लंबा लट्ठा जो प्रायः इमारत के काम में आता है।

शहतूत-संज्ञा पुं० [फ़ा०] तूत नाम का पेड़ और उसका फल।

वि० दे० "तूत"।

शहद-संज्ञा पुं० [अ०] शीरे की तरह का एक बहुत प्रसिद्ध मीठा, गाढ़ा तरल पदार्थ जो कई प्रकार के कीड़े और विशेषतः मधुमक्खियाँ अनेक प्रकार के फूलों के मकरंद से संग्रह करके अपने छत्तों में रखती हैं। जब यह अपने शुद्ध रूप में रहता है, तब इसका रंग सफ़ेदी लिए कुछ लाल या पीला होता है। यह पानी में सहज में घुल जाता है। यह बहुत बलवर्द्धक माना जाता है और प्रायः औषधों के साथ, दूध में मिलाकर अथवा योंही खाया जाता है। इसमें फल आदि भी रक्षित रखे जाते हैं; अथवा उनका मुरब्बा डाला जाता है। कभी कभी ऐसा शहद भी मिलता है जो मादक या विष होता है। वैद्यक में यह शीतवीर्य्य, लघु, मधुर, रूखा, आँखों के लिये हितकारी, अग्निदीपक, स्वास्थ्यवर्द्धक, वर्ण प्रसादक, चित्त को प्रसन्न करनेवाला, मेधा और वीर्य्य बढ़ानेवाला, रुचिकारक और कोढ़, बवासीर, खाँसी, कफ, प्रमेह, श्वास, कै, हिचकी, अतीसार, रक्तदोष और दाह को दूर करनेवाला माना गया है। मधु।

मुहा०—शहद लगाकर चाटना = किसी निरर्थक पदार्थ को बैठे लिए रहना और उसका कुछ भी उपयोग न कर सकना। (व्यंग्य) जैसे,—उसका दिवाला हो गया, अब आप अपना तमस्सुक शहद लगाकर चाटिए। शहद लगाकर अलग होना = बखेड़ा या झगड़ा करके अलग होना। आग लगाकर दूर होना।

शहनगी-संज्ञा पुं० [अ० शहनः] (१) शस्य रक्षक का कार्य। (२) वह धन जो चौकीदार को देने के लिये असामियों से वसूल किया जाता है। चौकीदारी।

शहना-संज्ञा पुं० [अ० शहनः] (१) खेत की चौकसी करनेवाला। शस्य-रक्षक। (२) वह व्यक्ति जो ज़मींदार की ओर से असामियों को बिना चौथ दिए, खेत की उपज काटने से रोकने और उसकी रक्षा के लिये नियुक्त किया जाता है। (३) कोतवाल। नगर-रक्षक।

शहनाई-संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] (१) बाँसुरी या अलगोज़े के आकार का, पर उससे कुछ बड़ा, मुँह से फूँककर बजाया जानेवाला एक प्रकार का बाजा जो प्रायः रोशनचौकी के साथ बजाया जाता है। नफ़ीरी। (२) दे० "रोशनचौकी"।

शहबाला-संज्ञा पुं० [फ़ा०] वह छोटा बालक जो विवाह के समय दूल्हे के साथ पालकी पर अथवा उसके पीछे घोड़े

पर बैठकर जाता है। यह प्रायः वर का छोटा भाई या उसका कोई निकट संबंधी हुआ करता है।

शहबुलबुल-संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] एक प्रकार की बुलबुल। इसका सारा शरीर लाल होता है, केवल कंठ काला होता है; और सिर पर सुनहले रंग की चोटी होती है।

शहमात-संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] शतरंज के खेल में एक प्रकार की मात। इसमें बादशाह को केवल शह या किश्त देकर इस प्रकार मात किया जाता है कि बादशाह के चलने के लिये और कोई घर ही नहीं रह जाता। उ०—राजा चहै बुर्द भा, शाह चहै शहमात।—जायसी।

शहर-संज्ञा पुं० [फ़ा०] मनुष्यों की वह बड़ी बस्ती जो कस्बे से बहुत बड़ी हो, जहाँ हर पेशे के लोग रहते हों और जिसमें अधिकतर पक्के मकान हों। उ०—रघुराज गरीब नेवाज दोऊ अवलोकन काज चले शहरै।-रघुराज।

शहरपनाह-संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] नगर के चारों ओर बनी हुई पक्की दीवार। वह दीवार जो किसी नगर के चारों ओर रक्षा के लिये बनाई जाय। शहर की चार-दीवारी। प्राचीर। नगर-कोट। उ०—गमनत बरात सुहात एहि विधि निकट शहर-पनाह के।—रघुराज।

शहरी-वि० [फ़ा०] (१) शहर से संबंध रखनेवाला। शहर का। (२) शहर का रहनेवाला। नगर निवासी। नागरिक।

शहवत-संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) कामातुरता। काम का उद्रेक। क्रि० प्र०—उठना।—होना।

(२) भोग-विलास। विषय। मैथुन।

शहसवार-संज्ञा पुं० [फ़ा०] वह जो घोड़े पर अच्छी तरह सवारी कर सकता हो। अच्छा सवार। सवारी में चतुर।

शहादत-संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) गवाही। साक्ष्य।

क्रि० प्र०—गुजरना।—देना।—मिलना।—लेना।

(२) सबूत। प्रमाण। (३) धर्म के लिये लड़ाई आदि में मारा जाना। शहीद होना। (मुसल०)

शहाना-संज्ञा पुं० [देश० या फ़ा० शाह ?] संपूर्ण जाति का एक राग जिसमें सब शुद्ध स्वर लगते हैं। यह राग फरोदस्त और कान्हड़ा को मिलाकर बनाया गया है और इसका व्यवहार प्रायः उत्सवों तथा धर्म संबंधी कार्य्यों में होता है। शास्त्र के अनुसार यह मालकोश राग की रागिनी है। इसके गाने का समय ११ दंड से १५ दंड तक है।

वि० [फ़ा०] (१) शाहों या बादशाहों का सा। राजाओं के योग्य। शाही। राजसी। (२) बहुत बढ़िया। उत्तम।

संज्ञा पुं० वह जोड़ा जो विवाह के समय दूल्हे को पहनाया जाता है।

शहाना कान्हड़ा-संज्ञा पुं० [हिं० शहाना+कान्हड़ा] संपूर्ण जाति का एक प्रकार का कान्हड़ा राग जिसमें सब शुद्ध स्वर लगते हैं।

शहाब-संज्ञा पुं० [फ़ा०] एक प्रकार का गहरा लाल रंग जो कुसुम के खूब अच्छे और गहरे लाल रंग में आम या इमली की खटाई मिलाकर बनाया जाता है।

शहाबा-संज्ञा पुं० दे० "अगिया बैताल" (२)।

शहाबी-वि० [हिं० शहाब+ई (प्रत्य०)] शहाब के रंग का। गहरा लाल।

शहिजदा*-संज्ञा पुं० [स्त्री० शहिजादी] दे० "शाहजादा"। उ०—(क) पठयो कबरू नाम जेहि, शहिजादा को शाह।—रघुराज। (ख) रही शाह की एक शहिजादी। लखि सो मूरत छवि मरयादी।—रघुराज।

शहीद-संज्ञा पुं० [अ०] वह व्यक्ति जो धर्म्म या इसी प्रकार के और किसी शुभ कार्य्य के लिये युद्ध आदि में मारा गया हो। न्यौछावर या बलिदान होनेवाला व्यक्ति।

शांकर-वि० [सं०] (१) शंकर संबंधी। (२) शंकराचार्य्य का। जैसे,-शांकर भाष्य, शांकर मत।

संज्ञा पुं० (१) साँड़। (२) शंकराचार्य्य का अनुयायी। (३) आर्द्रा नक्षत्र, जिसके देवता शिव जी माने गए हैं। (४) एक छंद का नाम। (५) सोम लता का एक भेद।

शांकरि-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शिव के पुत्र, गणेश। (२) कार्त्तिकेय। (३) अग्नि। (४) एक मुनि का नाम। (५) शमी का पेड़।

शांकरी-संज्ञा स्त्री० [सं०] शिव द्वारा निर्धारित अक्षरों का क्रम। शिवसूत्र।

शांकित-संज्ञा पुं० [सं०] चोरक नामक गंध द्रव्य।

शांकुची-संज्ञा स्त्री० [सं०] शकुची मछली।

शांख-संज्ञा पुं० [सं०] शंख की ध्वनि।

वि० शंख संबंधी। शंख का बना हुआ।

शांखायन-संज्ञा पुं० [सं०] एक गृह्य और श्रौत सूत्रकार ऋषि जिनका कौशीतकी ब्राह्मण भी है।

शांखारि-संज्ञा पुं० [सं०] शंख बेचनेवाली जाति।

शांखिक-वि० [सं०] [स्त्री० शांखिकी] (१) शंख संबंधी। (२) शंख का बना हुआ।

संज्ञा पुं० शंख बनाने और बेचनेवाला। शांखारि। (२) शंख बजानेवाला व्यक्ति।

शांख्य-वि० [सं०] (१) शंख-संबंधी। (२) शंख का बना हुआ।

शांगुष्टा-संज्ञा स्त्री० दे० "सांगुष्टा"।

शांची-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का शाक।

शांडदूर्वा-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की दूब। षांड दूर्वा।

शांडाकी-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का पशु।

शांडिक-संज्ञा पुं० [सं०] माँद में रहनेवाला खोंखर नामक जंतु।

शांडिली-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक ब्राह्मणी जो अग्नि की माता मानकर पूजी जाती थी। (महाभारत)

शांडिल्य-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बेल। श्रीफल। (२) अग्नि। (३) एक मुनि जिनकी रची एक स्मृति है और जो भक्तिसूत्र के कर्त्ता माने जाते हैं। (४) शांडिल्य के कुल में उत्पन्न पुरुष। (५) सरयूपारी ब्राह्मणों के तीन प्रधान गोत्रों में से एक गोत्र।

शांत-वि० [सं०] (१) जिसमें वेग, क्षोभ या क्रिया न हो। ठहरा हुआ। रुका हुआ। बंद। जैसे,—अंधड़ शांत होना, उपद्रव शांत होना, झगड़ा शांत होना। (२) (कोई पीड़ा, रोग, मानसिक वेग आदि) जो जारी न हो। बंद। मिटा हुआ। जैसे,—क्रोध शांत होना, पीड़ा शांत होना, ताप शांत होना। (३) जिसमें क्रोध आदि का वेग न रह गया हो। जिसमें जोश न रह गया हो। स्थिर। जैसे,—जब हमने समझाया, तब वे शांत हुए। (४) जिसमें जीवन की चेष्टा न रह गई हो। मृत। मरा हुआ। (५) जो चंचल न हो। धीर। चपलता या चंचलता-रहित। सौम्य। गंभीर। जैसे,—शांत प्रकृति, शांत आदमी। (६) मौन। चुप। खामोश। (७) जिसने मन और इंद्रियों के वेग को रोका हो। मनोविकार-रहित। रागादि-शून्य। जितेंद्रिय। (८) उत्साह या तत्परतारहित। जिसमें कुछ करने की उमंग न रह गई हो। शिथिल। ढीला। (९) हारा हुआ। थका हुआ। श्रांत। (१०) जो जलता या उद्दीप्त न हो। जो दहकता न हो। बुझा हुआ। जैसे,—अग्नि शांत होना। (११) विघ्न बाधा रहित। स्थिर। (१२) जिसकी घबराहट दूर हो गई हो। जिसका जी ठिकाने हो गया हो। स्वस्थ चित्त। (१३) जिस पर असर न पड़ा हो। अप्रभावित।

संज्ञा पुं० (१) काव्य के नौ रसों में से एक रस जिसका स्थायी भाव "निर्वेद" (काम, क्रोधादि वेगों का शमन) है।

विशेष—इस रस में संसार की अनित्यता, दुःखपूर्णता, असारता आदि का ज्ञान अथवा परमात्मा का स्वरूप आलंबन होता है; तपोवन, ऋषि, आश्रम, रमणीय तीर्थादि, साधुओं का सत्संग आदि उद्दीपन, रोमांच आदि अनुभाव तथा निर्वेद, हर्ष, स्मरण, मति, दया आदि संचारी भाव होते हैं। शांत को रस कहने में यह बाधा उपस्थित की जाती है कि यदि सब मनोविकारों का शमन ही शांत है, तो विभाव, अनुभाव और संचारी द्वारा उसकी निष्पत्ति कैसे हो सकती है ? इसका उत्तर यह दिया जाता है कि शांत दशा में जो सुखादि का अभाव कहा गया है, वह विषय-जन्य सुख का है। योगियों को एक अलौकिक प्रकार का आनंद होता है जिसमें संचारी आदि भावों की स्थिति हो सकती है। नाटक में आठ ही रस माने जाते हैं, शांत रस नहीं माना जाता। कारण यह कि नाटक में अभिनय क्रिया ही मुख्य है, अतः उसमें 'शांत' का समावेश (जिसमें क्रिया, मनोविकार आदि की शांति कही जाती है) नहीं हो सकता।

(२) इंद्रिय-निग्रही योगी। विरक्त पुरुष। (३) मनु का एक पुत्र।

शांतता-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) शांति। शमन। (२) खामोशी। नीरवता। (३) रागादि का अभाव। विराग। (४) हलचल का न होना। उपद्रव आदि का अभाव।

शांतनव-संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० शांतनवी] (१) राजा शांतनु के पुत्र, भीष्म। (२) मेधातिथि का पुत्र।

शांतनु-संज्ञा पुं० [सं०] (१) द्वापर युग के इक्कीसवें चंद्रवंशी राजा।

विशेष—ये प्रतीप के पुत्र और महाभारत युद्ध के प्रसिद्ध योद्धा भीष्मपितामह के पिता थे। शांतनु की स्त्री गंगाजी के गर्भ से भीष्म (गांगेय) की उत्पत्ति हुई थी। दासराज नामक धीवर की कन्या सत्यवती के रूप पर मोहित होकर शांतनु ने उसे ब्याहने की इच्छा प्रकट की। दासराज ने सत्य[illegible] त्र को राज्य देने की प्रतिज्ञा लेकर कन्या ब्याह दी। उसके गर्भ से विचित्रवीर्य और चित्रांगद उत्पन्न हुए।

(२) कछुवा।

शांता-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) अयोध्या के राजा दशरथ की कन्या और महर्षि ऋष्यशृंग की पत्नी। दशरथ ने अपने मित्र अंग देश के राजा लोमपाद को अपनी कन्या शांता पोष्य-पुत्रिका के रूप में दी थी। (२) रेणुका। (३) दुर्वा। दूब। (४) शमी। छिकुर। (५) आँवला। (६) संगीत में एक श्रुति।

शांति-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) वेग, क्षोभ या क्रिया का अभाव। किसी प्रकार की गति, हलचल या उपद्रव का न होना। स्थिरता। (२) नीरवता। स्तब्धता। सन्नाटा। (३) चित्त का ठिकाने होना। स्वस्थता। चैन। इतमीनान। आराम। (४) रोग आदि का दूर होना। मनोवेग, पीड़ा, शारीरिक उपद्रव या विकार आदि का न रह जाना। जैसे,—रोगशांति, तापशांति, क्रोध-शांति। (५) जीवन की चेष्टा का न रह जाना। मृत्यु। मरण। (६) चंचलता का अभाव। धीरता। गंभीरता। सौम्यता। (७) रागादि की निवृत्ति। वासनाओं से छुटकारा। तृष्णा का क्षय। विराग। (८) एक छंद का नाम। (९) दुर्गा। (१०) अशुभ या अनिष्ट का निवारण। अमंगल दूर करने का उपचार। जैसे,—ग्रह शांति, उत्पात-शांति, भूत-शांति।

शांतिक-वि० [सं०] शांति संबंधी। शांति का।

संज्ञा पुं० शांतिकर्म।

शांतिकर-वि० [सं०] शांति करनेवाला।

शांतिकर्म-संज्ञा पुं० [सं०] बुरे ग्रह, प्रेतबाधा, पाप आदि द्वारा होनेवाले अमंगल के निवारण का उपचार।

शांतिगृह-संज्ञा पुं० [सं०] यज्ञ के अंत में पाप तथा अशुभ आदि की शांति के लिये स्नान करने का स्नानागार।

शांतिद-वि० [सं०] [स्त्री० शांतिदा] शांति देनेवाला।
संज्ञा पुं० विष्णु।

शांतिदाता-संज्ञा पुं० [सं० शांतिदातृ] [स्त्री० शांतिदात्री] शांति देनेवाला।

शांतिदायक-संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० शांतिदायिका] शांति देनेवाला।

शांतिदायी-वि० [सं० शांतिदायिन्] [स्त्री० शांतिदायिनी] शांति देनेवाला।

शांतिनाथ-संज्ञा पुं० [सं०] जैनों के एक तीर्थंकर या अर्हत् का नाम।

शांतिपर्व-संज्ञा पुं० [सं०] महाभारत का बारहवाँ और सब से बड़ा पर्व जिसमें युद्ध के उपरांत युधिष्ठिर की चित्त-शांति के लिये कही हुई बहुत सी कथाएँ, उपदेश और ज्ञानचर्चा है।

शांतिपात्र-संज्ञा पुं० [सं०] वह पात्र जिसमें ग्रह, पाप आदि की शांति के लिये जल रखा जाय।

शांतिप्रद-वि० [सं०] शांति देनेवाला।

शांतिमय-वि० [सं०] [स्त्री० शांतिमयी] शांति से पूर्ण। शांति से भरा हुआ।

शांतिवाचन-संज्ञा पुं० [सं०] ग्रह, प्रेतबाधा, पाप आदि से होनेवाला अमंगल को दूर करने के लिये मंत्रपाठ।

शांतिसद्म-संज्ञा पुं० दे० "शांतिगृह"।

शांत्रति-संज्ञा स्त्री० [सं०] भारंगी। बभनेटी। ब्राह्मण यष्टिका।

शांब-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक राजा का नाम। (२) दे० "सांब"।

शांबर-वि० [सं०] (१) शंबर दैत्य संबंधी। (२) साँभर मृग का।
संज्ञा पुं० लोध्र वृक्ष। लोध।

शांबरशिल्प-संज्ञा पुं० [सं०] इंद्रजाल। जादू।

शांबरिक-संज्ञा पुं० [सं०] जादूगर। मायावी।

शांबरी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) माया। इंद्रजाल।
विशेष—कहते हैं कि शंबर दैत्य ने पहले पहल इसका प्रयोग किया था, इसी कारण इसका नाम शांबरी पड़ा।
(२) जादूगरनी। मायाविनी।
संज्ञा पुं० [सं० शांबरिन्] (१) एक प्रकार का चंदन। (२) लोध। (३) मूसाकानी नाम की लता।

शांबविक-संज्ञा पुं० [सं०] शंख का व्यवसाय करनेवाला।

शांबुक-संज्ञा पुं० [सं०] घोंघा।

शांबूक-संज्ञा पुं० [सं०] घोंघा।

शांभर-संज्ञा स्त्री० [सं०] राजपूताने की एक झील जिसमें साँभर नमक होता है। साँभर झील।
संज्ञा पुं० साँभर नमक।

शांभव-वि० [सं०] शंभु संबंधी। शिव का।
संज्ञा पुं० [सं०] (१) देवदारु वृक्ष। (२) कपूर। (३) शिव मल्लिका का पौधा। वसु। (४) गुग्गुल। गुग्गुल। (५) एक प्रकार का विष। (६) शिव का पुत्र। (७) शैव। शिवोपासक।

शांभवी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) नीली दूब। (२) दुर्गा।

शाइस्तगी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) शिष्टता। सभ्यता। तहजीब। (२) भलमनसी। आदमीयत। मनुष्यत्व।

शाइस्ता-वि० [फ़ा० शाइस्तः] (१) शिष्ट। सभ्य। तहजीबवाला। (२) विनीत। नम्र। (३) जो अच्छी चाल सीखा हो। अदब कायदा जाननेवाला। शिक्षित। जैसे,—शाइस्ता घोड़ा।

शाकंट-संज्ञा पुं० [सं०] बथुआ नाम का साग।

शाकंभरी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) दुर्गा। (२) साँभर नामक नगर।

शाकंभरीय-वि० [सं०] साँभर झील से उत्पन्न।
संज्ञा पुं० साँभर नमक।

शाक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) पत्ती, फूल, फल आदि जो पकाकर खाए जायँ। भाजी। तरकारी। साग।
विशेष—शाक छः प्रकार का कहा गया है—(१) पत्र शाक—चौलाई, बथुआ, मेथी आदि; (२) पुष्प शाक—केले का फूल, अगस्त का फूल आदि; (३) फल शाक—बैंगन, करेला आदि; (४) नाल शाक—करेमू आदि; (५) कंद शाक—जमींकंद, कच्चू आदि; (६) संस्वेदज शाक—ढिंगरी, भुईं फोड़, गोबर छत्ता आदि। ये शाक अनुक्रम से एक दूसरे से भारी होते हैं। सब प्रकार के पत्र शाक विष्टंभकारक, भारी, रूखे, मलकारक, अधोगत, वातकारी तथा शरीर, हड्डी, नेत्र, रुधिर, वीर्य्य, बुद्धि, स्मरण-शक्ति और गति-शक्ति का नाश करनेवाले तथा समय से पहले बालों को सफेद करनेवाले कहे गए हैं। परंतु जीवंती, बथुआ और चौलाई हानिकारक नहीं हैं।
(२) सागौन का पेड़। (३) भोजपत्र। भूर्ज वृक्ष। (४) सिरिस का पेड़। (५) पुराणानुसार सात द्वीपों में से एक द्वीप। दे० वि० "शाकद्वीप"। (६) शक राजा शालिवाहन का संवत्। (७) शक्ति। बल। ताक़त।
वि० [सं०] (१) शक जाति संबंधी। (२) शक राजा का। जैसे,—शाक संवत्।

शाकाख्य-संज्ञा पुं० [सं०] सागौन का पेड़।

शाकाम्ल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) महादा। वृक्षाम्ल। (२) इमली।

शाकाम्ल-भेद-संज्ञा पुं० [सं०] चूक। चुक।

शाकारी-संज्ञा स्त्री० [सं०] शकों अथवा शकारों की भाषा, जो प्राकृत का एक भेद है।

शाकाष्टका-संज्ञा स्त्री० [सं०] फाल्गुन कृष्ण पक्ष की अष्टमी। (इस दिन पितरों के उद्देश्य से शाक दान किया जाता है।)

शाकाष्टमी-संज्ञा स्त्री० दे० "शाकाष्टका"।

शाकाहार-संज्ञा पुं० [सं०] अनाज अथवा फल फूल पत्ते आदि का भोजन। मांसाहार का उलटा

शाकाहारी-वि० [सं० शाकाहारिन्] [स्त्री० शाकाहारिणी] केवल अनाज या साग भाजी खानेवाला। (मांस न खानेवाला)

शाकिनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) वह भूमि जिसमें शाक बोया हुआ हो। साग की क्यारी। (२) एक पिशाची या देवी जो दुर्गा के गणों में समझी जाती है। डाइन। चुड़ैल।

शाकिर-वि० [अ०] (१) कृतज्ञता प्रकाशित करनेवाला। शुक्रगुजार। (२) संतोष रखनेवाला।

शाकी-वि० [सं०] (१) शिकायत करनेवाला। (२) नालिश करनेवाला। (३) चुगली खानेवाला।

शाकुंतलेय-संज्ञा पुं० [सं०] शकुंतला का पुत्र, भरत।

शाकुंतिक-संज्ञा पुं० [सं०] चिड़ीमार। बहेलिया।

शाकुन-वि० [सं०] (१) पक्षी संबंधी। चिड़ियों का। (२) शुभाशुभ लक्षण संबंधी। सगुनवाला।

संज्ञा पुं० (१) चिड़िया पकड़नेवाला। बहेलिया। (२) यात्रा आदि में कुछ विशेष पक्षियों जंतुओं या और पदार्थों के मिलने से शुभाशुभ का निर्णय। शकुन। सगुन।

शाकुनि-संज्ञा पुं० [सं०] बहेलिया।

शाकुनी-संज्ञा पुं० [सं० शाकुनिन्] (१) मछवाहा। मछली पकड़नेवाला। (२) एक प्रकार का प्रेत। (३) सगुन विचारनेवाला।

शाकुनेय-वि० [सं०] पक्षी-संबंधी।

संज्ञा पुं० (१) एक प्रकार का छोटा उल्लू। (२) बकासुर नामक दैत्य। (३) एक मुनि का नाम।

शाकुलिक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मछवाहा। (२) मछलियों का समूह।

शाकेक्षु-संज्ञा पुं० [सं०] ईख का एक भेद।

शाकेश्वर-संज्ञा पुं० [सं०] वह राजा जिसके नाम से संवत् चले। जैसे,—युधिष्ठिर, विक्रमादित्य शालिवाहन।

शाकोल-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की लता।

शाक्कर-संज्ञा पुं० दे० "शाक्वर"।

शाक्त-वि० [सं०] शक्ति-संबंधी।

संज्ञा पुं० शक्ति का उपासक। तंत्र पद्धति से देवी की पूजा करनेवाला।

विशेष—इनके पूजन का विधान वैदिक से भिन्न होता है। ये ईश्वर की शक्ति का शिव की पत्नी दुर्गा के रूप में उपासना करते हैं। यह उपासना-पद्धति दो प्रकार की है—दक्षिणाचार और वामाचार। वामाचारियों या वाममार्गियों की पूजा में मद्य, मांस, स्त्री आदि का व्यवहार होता है। स्त्रियों की जननेंद्रिय को शक्ति का प्रतीक मानकर ये लोग उसकी विशेष रीति से पूजा करते हैं।

शाक्तागम-संज्ञा पुं० [सं०] तंत्र शास्त्र।

शाक्तिक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शक्ति का उपासक। शाक्त। (२) भाला बाँधनेवाला।

शाक्तीक-वि० [सं०] शक्ति या भाला-संबंधी।

संज्ञा पुं० भाला चलानेवाला।

शाक्तेय, शाक्त्य-संज्ञा पुं० [सं०] शक्ति का उपासक।

शाक्य-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन क्षत्रिय जाति जो नैपाल की तराई में बसती थी और जिसमें गौतम बुद्ध उत्पन्न हुए थे।

विशेष—बौद्ध ग्रंथों में शाक्य इक्ष्वाकु-वंशी कहे गए हैं। जिस स्थान में वे रहते थे, उसमें 'शाक' या सागौन के पेड़ अधिक थे; इसी से उसका 'शाक्य' नाम पड़ा। विद्वानों का अनुमान है कि लिच्छवियों के समान शाक्य भी व्रात्य क्षत्रिय थे।

शाक्यमुनि, शाक्यसिंह-संज्ञा पुं० [सं०] गौतम बुद्ध।

शाक्र-संज्ञा पुं० [सं०] ज्येष्ठा नक्षत्र जिसके अधिपति इंद्र हैं।

शाक्री-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) दुर्गा। (२) इंद्राणी। शक्रपत्नी।

शाक्वर-वि० [सं०] शक्तिशाली। पराक्रमी। बलवान्।

संज्ञा पुं० (१) इंद्र। (२) इंद्र का वज्र। (३) साँड़। बैल। (४) प्राचीन काल की एक रीति या संस्कार।

शाख-संज्ञा पुं० [सं०] (१) कृत्तिका का पुत्र, कार्त्तिकेय। (२) भाग। (३) करंज।

शाख़-संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] (१) टहनी। डाल। डाली।

मुहा०—शाख लगाना=(१) कलम लगाना। टहनी लगाना। (२) सींग लगाना। (३) पद बढ़ाना। सम्मान करना। शाख लगना=घमंड होना। इतराना। शाख निकालना=दोष देना। कलंक लगाना। नुक्ता चीनी करना। झगड़ा खड़ा करना। शाख निकलना=ऐब निकलना। झगड़ा निकलना। बखेड़ा निकलना।

(२) सींग। (३) कटा हुआ टुकड़ा। खंड। फाँक। (४) नदी आदि की बड़ी धारा में से निकली हुई छोटी धारा।

शाख़दार-वि० [फ़ा०] (१) जिसमें बहुत सी शाखाएँ हों। टहनीदार। (२) सींगवाला। सींगदार।

शाखा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) पेड़ के धड़ से चारों ओर निकली हुई लकड़ी या छड़। टहनी। डाल। (२) शरीर का अवयव। हाथ और पैर। (३) उँगली। (४) चौखट। (५) घर

का पाद। (६) किसी मूल वस्तु से निकले हुए उसके भेद। प्रकार। (७) विभाग। हिस्सा। (८) अंग। अवयव। (९) किसी शास्त्र या विद्या के अंतर्गत उसका कोई भेद। (१०) वेद की संहिताओं के पाठ और क्रमभेद जो कई ऋषियों ने अपने गोत्र या शिष्य परंपरा में चलाए।

विशेष—शौनक ने अपने 'चरणव्यूह' में वेदों की जो शाखाएँ गिनाई हैं, उसके अनुसार ऋग्वेद की पाँच शाखाएँ हैं—शाकल्य, बाष्कल, अश्वलायन, शांखायन और मांडूक्य। वायुपुराण में यजुर्वेद की ८६ शाखाएँ कही गई हैं जिनमें ४२ के नाम चरणव्यूह में आए हैं। इन ४२ में माध्यंदिन और कण्व को लेकर १७ शाखाएँ वाजसनेयी के अंतर्गत हैं। सामवेद की सहस्र शाखाएँ कही जाती हैं जिनमें १५ गिनाई गई हैं। इसी प्रकार अथर्ववेद की भी बहुत सी शाखाओं में से पिप्पलादा, शौनकीया आदि केवल नौ गिनाई गई हैं।

शाखाकंट-संज्ञा पुं० [सं०] थूहर। स्नुही वृक्ष।

शाखा चंक्रमण-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक डाल पर से दूसरी डाल पर कूद जाना। (२) एक विषय अधूरा छोड़कर दूसरा विषय हाथ में लेना। एक विषय पर स्थिर न रहना। (३) कोई विषय पूरा अध्ययन न करके थोड़ा यह, थोड़ा वह पढ़ना।

शाखाचंद्र न्याय-संज्ञा पुं० [सं०] एक न्याय या कहावत जो ऐसी बात के संबंध में कही जाती है जो केवल देखने में जान पड़ती है, वास्तव में नहीं होती। (चंद्रमा कभी कभी देखने में ऐसा जान पड़ता है मानो पेड़ की डाल पर है।)

शाखादंड-संज्ञा पुं० दे० "शाखारंड"।

शाखाद्-संज्ञा पुं० [सं०] पेड़ों की डाल या टहनी खानेवाले पशु। जैसे,—गौ, बकरी, हाथी।

शाखापित्त-संज्ञा पुं० [सं०] एक रोग जिसमें हाथ और पैर में जलन और सूजन होती है।

शाखापुर-संज्ञा पुं० [सं०] किसी नगर के आस पास फैली हुई बस्ती।

शाखाप्रकृति-संज्ञा स्त्री० [सं०] अपने राज्य के कुछ दूर पर के आठ प्रकार के राजा जिनका विचार किसी राजा को युद्ध के समय रखना चाहिए। (मनु०)

शाखामृग-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बानर। बंदर। (२) गिलहरी।

शाखाम्ल-संज्ञा पुं० [सं०] अमलबेंत।

शाखाम्ला-संज्ञा स्त्री० [सं०] इमली।

शाखारंड-संज्ञा पुं० [सं०] वह ब्राह्मण जो अपनी शाखा को छोड़कर दूसरी शाखा का अध्ययन करे। शाखादंड।

शाखाल-संज्ञा पुं० [सं०] जलबेंत।

शाखावात-संज्ञा पुं० [सं०] हाथ पैर में होनेवाला वात रोग।

शाखाशिफा-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह डाल जो नीचे की ओर बढ़कर जड़ पकड़ ले और एक अलग पेड़ के धड़ के रूप में हो जाय। जैसे,—बट की जटा या बरोह।

शाखिमूल-संज्ञा पुं० [सं०] रंधि वृक्ष।

शाखी-वि० [सं० शाखिन्] शाखाओं से युक्त। शाखावाला।

संज्ञा पुं० (१) पेड़। वृक्ष। (२) वेद। (३) वेद की किसी शाखा का अनुयायी। (४) पीलू का पेड़। (५) तुर्किस्तान का निवासी।

शाखोच्चार-संज्ञा पुं० [सं०] विवाह के समय वंशावली का कथन।

शाखोट-संज्ञा पुं० [सं०] सिहोर का पेड़। पीत वृक्ष। वैद्यक में यह कड़ुआ, गरम, पित्तकारक और वातहारी माना गया है।

शागिर्द-संज्ञा पुं० [फ़ा०] (१) किसी से विद्या प्राप्त करने का संबंध रखनेवाला। शिष्य। चेला।

मुहा०—शागिर्द करना = किसी को कुछ सिखाने का काम अपने ऊपर लेना। चेला बनाना।

शागिर्दपेशा-संज्ञा पुं० [फ़ा०] (१) मातहत। (२) अहलकार। कर्मचारी। (३) खिदमतगार। सेवक। (४) बड़ी कोठी के पास नौकरों के लिये अलग बने हुए घर।

शागिर्दी-संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] (१) शिक्षा प्राप्त करने के निमित्त किसी गुरु के अधीन रहने का भाव। शिष्यता। (२) सेवा। टहल।

शाचि-संज्ञा पुं० [सं०] दलकर भूसी निकाला हुआ जौ।

शाट-संज्ञा पुं० [सं०] (१) कपड़े का टुकड़ा। (२) वह कपड़ा जो कमर में लपेटकर पहना जा सके। धोती। परदनी। (३) एक प्रकार की कुरती। (४) ढीला ढाला पहनावा।

शाटक-संज्ञा पुं० [सं०] वस्त्र। पट।

शाटिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) साड़ी। धोती। (२) कचूर।

शाटी-संज्ञा स्त्री० [सं०] साड़ी। धोती।

शाट्यायन-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन ऋषि का नाम।

शाट्यायनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक उपनिषद् का नाम।

शाठ्य-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शठता। दुष्टता। बदमाशी। (२) कपट। दंभ। छल।

शाड्वल-संज्ञा पुं० दे० "शाद्वल"।

शाण-संज्ञा पुं० [सं०] (१) हथियारों की धार तेज करने का पत्थर। सान। (२) कसौटी। कषपट्टिका। (३) चार माशे की एक तौल।

वि० [सं०] (१) सन के पौधे से संबंध रखनेवाला। (२) सन का बना हुआ।

संज्ञा पुं० सन के रेशे का बना हुआ कपड़ा। भँगरा।

शाणवास-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जो सन का बुना हुआ वस्त्र पहने। (२) एक अर्हत् का नाम।

शाणि-संज्ञा पुं० [सं०] पटुआ।

शाणित-वि० [सं०] (१) सान रखा हुआ। तीखा या तेज किया हुआ। (२) कसौटी पर कसा हुआ।

शाणी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सन के रेशों से बुना हुआ कपड़ा। भँगरा। (२) फटा हुआ वस्त्र। चीथड़ा। (३) वह छोटा कपड़ा जो यज्ञोपवीत के समय ब्रह्मचारी को पहनने के लिये दिया जाता है। (४) सान। (५) कसौटी। (६) छोटा खेमा या पर्दा।

शात-वि० [सं०] (१) सान रखा हुआ। तेज़ किया हुआ। (२) दुबला पतला। क्षीण।
संज्ञा पुं० धतूरा।

शातकुंभ-संज्ञा पुं० [सं०] (१) कचनार का वृक्ष। (२) धतूरा। (३) कनेर का वृक्ष। (४) सोना। स्वर्ण।

शातकौंभ-संज्ञा पुं० [सं०] सोना। सुवर्ण।

शातक्रतव-संज्ञा पुं० [सं०] इंद्रधनुष।

शातन-संज्ञा पुं० [सं०] [वि० शातनीय, शातित] (१) सान पर धार तेज करना। चोखा करना। (२) कटवाना। (पेड़ आदि) (३) नष्ट कराना। (४) काटना। तराशना। छीलना। (५) सतह बराबर करना। रंदना।

शातपत्रक-संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रिका। चाँदनी।

शातभीरु-संज्ञा पुं० [सं०] मद्रवल्ली। मदन माली।

शातला-संज्ञा स्त्री० दे० "सातला"।

शातवाहन-संज्ञा पुं० [सं०] एक राजा का नाम। वि० दे० "शालिवाहन"।

शातातप-संज्ञा पुं० [सं०] एक स्मृतिकार का नाम।

शातिर-वि० [अ०] (१) चालाक। चतुर। उस्ताद। काइयाँ। (२) निपुण। दक्ष।
संज्ञा पुं० (१) दूत। (२) शतरंज का खिलाड़ी।

शातोदर-संज्ञा पुं० [ं०] [स्त्री० शातोदरी] (१) पतली कमरवाला। (२) क्षीण। पतला।

शात्रव-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शत्रुत्व। शत्रुता। (२) शत्रु। (३) शत्रुओं का समूह।

शाद-संज्ञा पुं० [सं०] (१) पतन। गिरना। पड़ना। (२) घास। दूब। (३) कीचड़।
वि० [फ़ा०] (१) खुश। प्रसन्न। (२) परिपूर्ण। भरापूरा।

शादमान-वि० [फ़ा०] प्रसन्न। खुश।

शादमानी-संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] प्रसन्नता। खुशी।

शादा-संज्ञा स्त्री० [सं०] ईंट।

शादाब-वि० [फ़ा०] हरा भरा। सरसब्ज। तरोताजा।

शादियाना-संज्ञा पुं० [फ़ा०] (१) खुशी का बाजा। आनंद मंगल-सूचक वाद्य।
क्रि० प्र०—बजना।—बजाना।
(२) वह धन जो किसान जमींदार को ब्याह के अवसर पर देते हैं। (३) बधावा। बधाई।
क्रि० प्र०—देना।

शादी-संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] (१) खुशी। प्रसन्नता। आनंद। (२) आनंदोत्सव।
यौ०—शादी गमी।
(३) विवाह। ब्याह।

शाद्वल-वि० [सं०] हरित तृण या दूर्वा से युक्त। हरी हरी घास से ढका हुआ। हराभरा।
संज्ञा पुं० (१) हरी घास। दूब। (२) साँड़। बैल।

शाद्वलाभ-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का हरा कीड़ा।

शान-संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) तड़क भड़क। ठाठ बाट। सजावट। जैसे,—कल बड़ी शान से सवारी निकली थी।
यौ०—शान शौकत।
(२) गर्वीली चेष्टा। ठसक। जैसे,—यह घोड़ा बड़ी शान से चलता है। (३) भव्यता। विशालता। चमत्कार। (४) शक्ति। करामात। विभूति। ऐश्वर्य्य। जैसे,—खुदा की शान। (५) प्रतिष्ठा। इज्जत। मानमर्य्यादा।
मुहा०—शान जाना = अप्रतिष्ठा होना। मान भंग होना। शान घटना = इज्जत में कमी होना। बड़प्पन में कमी होना। शान मारी जाना = दे० "शान जाना"। शान में बट्टा लगना = दे० "शान घटना"। किसी की शान में = किसी बड़े के संबंध में। किसी के प्रति या किसी के विषय में। जैसे,—उनकी शान में ऐसी बात नहीं कहनी चाहिए।
संज्ञा पुं० [सं०] शाण। सान।

शानदार-वि० [अ० शान + फ़ा० दार] (१) भड़कीला। तड़क भड़कवाला। ठाट बाट का। जो बड़ी सजावट और तैयारी के साथ हो। (२) भव्य। विशाल। चमत्कारपूर्ण। (३) ऐश्वर्य्ययुक्त। वैभवपूर्ण। (४) गर्वीली चेष्टा से युक्त। ठसकवाला।

शानपाद-संज्ञा पुं० [सं०] (१) चंदन घिसने का पत्थर। (२) पारिपात्र-पर्वत।

शान शौकत-संज्ञा स्त्री० [अ०] तड़क भड़क। ठाट बाट। तैयारी। सजावट।

शाना-संज्ञा पुं० [फ़ा०] (१) कंघा। कंघी। (२) मोढ़ा। कंधा। खवा।

शानी-संज्ञा स्त्री० [सं०] इनारुन। इंद्रवारुणी।

शाप-संज्ञा पुं० [सं०] (१) अहितकामना-सूचक शब्द। 'तुम्हारा कुछ अनिष्ट हो' इस प्रकार का वचन। कोसना। बद्दुआ। जैसे,—ऋषि के शाप से वह राक्षस हो गया। (२) धिक्कार। फटकारना। भर्त्सना।
क्रि० प्र०—देना।

(२) ऐसी शपथ जिसके न पालन करने का कोई अनिष्ट परिणाम कहा जाय। बुरी कसम।
शापग्रस्त-वि० [सं०] जिसे शाप दिया गया हो। शापित।
शापज्वर-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का ज्वर जो माता, पिता, गुरु आदि बड़ों के शाप के कारण कहा गया है।
शापठिक-संज्ञा पुं० [सं०] मयूर। मोर।
शापमुक्त-वि० [सं०] जिसका शाप छूट गया हो। जिसके ऊपर से शाप का बुरा प्रभाव हट गया हो।
शापांबु-संज्ञा पुं० [सं०] वह जल जिसे हाथ में लेकर शाप दिया जाय।
शापास्त्र-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह व्यक्ति जिसके पास अस्त्रों के स्थान पर शाप ही हो। (२) एक मुनि का नाम।
शापित-वि० [सं०] जिसे शाप दिया गया हो। शाप-ग्रस्त।
शापोत्सर्ग-संज्ञा पुं० [सं०] शाप का उच्चारण। शाप छोड़ना। शाप देना।
शापोद्धार-संज्ञा पुं० [सं०] शाप या उसके प्रभाव से छुटकारा। शाप-मुक्ति।
शाफरिक-संज्ञा पुं० [सं०] मछुआ। धीवर।
शाफेय-संज्ञा पुं० [सं०] यजुर्वेद की एक शाखा।
शाबर-वि० [सं०] दुष्ट। कपटी।
संज्ञा पुं० (१) बुराई। हानि। दुःख। (२) लोध्र वृक्ष। लोध का पेड़। (३) ताँबा। (४) अंधकार। (५) एक प्रकार का चंदन।
शाबर भाष्य-संज्ञा पुं० [सं०] मीमांसा सूत्र पर प्रसिद्ध भाष्य या व्याख्या।
शाबरिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की जोंक।
शाबरी-संज्ञा पुं० [सं०] शबरों की भाषा। एक प्रकार की प्राकृत भाषा।
शाबल्य-संज्ञा पुं० [सं०] (१) कई रंगों का मेल। शबलता। कबरापन। चितकबरापन। (२) एक साथ भिन्न भिन्न कई वस्तुओं का मेल।
शाबस्त-संज्ञा पुं० [सं०] राजा युवनाश्व का एक पुत्र जिसने शावस्ती या श्रावस्ती नगरी बसाई थी। (भागवत)
शाबस्ती-संज्ञा स्त्री० दे० *"श्रावस्ती"*।
शाबाश-अव्य० [फ़ा०] एक प्रशंसा-सूचक शब्द। खुश रहो। वाह वाह। धन्य हो। क्या कहना।
शाबाशी-संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] किसी कार्य्य के करने पर प्रशंसा। वाह वाही। साधुवाद।
क्रि० प्र०—देना।—पाना।—मिलना।
शाब्द-वि० [सं०] [स्त्री० शाब्दी] (१) शब्द संबंधी। शब्द का। (२) शब्द विशेष पर निर्भर।
संज्ञा पुं० शब्दशास्त्री। वैयाकरण।
शाब्दबोध-संज्ञा पुं० [सं०] शब्दों के प्रयोग द्वारा अर्थ का ज्ञान। वाक्य के तात्पर्य्य का ज्ञान।
शाब्दिक-वि० [सं०] शब्द संबंधी। शब्द का।
संज्ञा पुं० (१) शब्द शास्त्र का जाननेवाला। (२) वैयाकरण।
शाब्दी-वि० स्त्री० [सं०] (१) शब्द-संबंधिनी। (२) केवल शब्द विशेष पर निर्भर रहनेवाली। जैसे,—शाब्दी व्यंजना।
शाब्दीव्यंजना-संज्ञा स्त्री० [सं०] साहित्य में व्यंजना के दो भेदों में से एक। वह व्यंजना जो शब्द विशेष के प्रयोग पर ही निर्भर हो; अर्थात् उसका पर्य्यायवाची शब्द रखने पर न रह जाय। आर्थी व्यंजना का उलटा।
शाम-संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] सूर्य्य अस्त होने का समय। रात्रि और दिवस के मिलने का समय। साँझ। संध्या।
मुहा०—शाम फूलना = संध्या समय पश्चिम की ललाई का प्रकट होना।
* वि० संज्ञा पुं० दे० "श्याम"।
वि० [सं०] शम संबंधी। शम का।
संज्ञा पुं० [सं० शामन्] साम गान।
संज्ञा स्त्री० [देश०] लोहे, पीतल आदि धातु का बना हुआ वह छल्ला जो हाथ में ली जानेवाली लकड़ियों या छड़ियों के निचले भाग में अथवा औज़ारों के दस्ते में लकड़ी को घिसने या छीजने से बचाने के लिये लगाया जाता है।
क्रि० प्र०—जड़ना।—लगाना।
संज्ञा पुं० एक प्रसिद्ध प्राचीन देश जो अरब के उत्तर में है। कहते हैं कि यह देश हजरत नूह के पुत्र शाम ने बसाया था। इसकी राजधानी का नाम दमिश्क है। आज-कल यह प्रदेश सीरिया कहलाता है।
शामकरण-संज्ञा पुं० [सं० श्यामकर्ण] वह घोड़ा जिसके कान श्याम रंग के हों।
शामत-संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) बदकिस्मती। दुर्भाग्य। (२) विपत्ति। आफत। (३) दुर्दशा। दुरवस्था।
क्रि० प्र०—आना।—में पड़ना या फँसना।
मुहा०—शामत का घेरा या मारा = जिसकी दुर्दशा का समय आया हुआ हो। जिसकी दुर्दशा होने को हो। शामत सवार होना या सिर पर खेलना = शामत आना। दुर्दशा का समय आना।
शामतज़दा-वि० [अ० शामत + फ़ा० ज़दा] कमबख्त। बदनसीब। अभागा।
शामती-वि० [अ० शामत + ई (प्रत्य०)] जिसकी शामत आई हो। जिसकी दुर्दशा होने को हो।
शामन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शमन। (२) शांति। (३) मारना। हत्या करना।
शामनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) दक्षिण दिशा जिसके अधिपति

यम माने गए हैं। (२) शांति। स्तब्धता। (३) अंत। समाप्ति। (४) वध। हत्या।

शामा-संज्ञा स्त्री० [?] एक प्रकार का पौधा, जिसकी पत्तियाँ और जड़ कोढ़ रोग के लिये लाभदायक मानी जाती हैं।

संज्ञा स्त्री० दे० "श्यामा"।

शामित्र-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) यज्ञ में मांस पकाने के निमित्त प्रज्वलित की हुई अग्नि। (२) वह स्थान जहाँ ऐसी अग्नि प्रज्वलित की जाय। (३) यज्ञ। (४) यज्ञपात्र। (५) यज्ञ के लिये पशु की हिंसा।

शामियाना-संज्ञा पुं० [फ़ा० शाम ?] एक प्रकार का बड़ा तंबू। इसमें प्रायः ऊपर की ओर लंबा चौड़ा कपड़ा होता है जो बाँसों पर तना रहता है। इसके नीचे चारो ओर प्रायः खुला ही रहता है; पर कभी कभी इसके चारो ओर कनात भी खड़ी की जाती है।

क्रि० प्र०—खड़ा करना।—गाड़ना।—तानना।—लगाना।

शामिल-वि० [फ़ा०] जो साथ में हो। मिला हुआ। सम्मिलित। जैसे,—(क) ये कागज मिसिल में शामिल कर दो। (ख) अब तो तुम भी उन्हीं लोगों में शामिल हो गए।

यौ०—शामिल हाल।

शामिल हाल-वि० [अ० शामिल + हाल] जो दुःख सुख आदि सब अवस्थाओं में साथ रहे। साथी। शरीक।

शामिलात-संज्ञा स्त्री० [अ० शामिल] हिस्सेदारी। साझा। शराकत। वि० दे० "शामिल"।

शामी-संज्ञा स्त्री० [देश०] लोहे या पीतल का वह छल्ला जो लकड़ियों और छड़ियों आदि के नीचे के भाग में अथवा औजारों के दस्ते के सिरे पर उसकी रक्षा के लिये लगाया जाता है। शाम।

क्रि० प्र०—जड़ना।—लगाना।

वि० [शाम (देश)] शाम देश का। शाम देश संबंधी। जैसे,—शामी कबाब।

शामी कबाब-संज्ञा पुं० [हिं० शामी + कबाब] एक प्रकार का कबाब जो मांस को मसाले के साथ भूनने के उपरांत पीसकर गोलियों या टिकियों के रूप में बनाया जाता है।

शामील-संज्ञा पुं० [सं०] भस्म। ख़ाक। राख।

शामील -संज्ञा स्त्री० [सं०] स्रक। माला।

शामुल्य-संज्ञा पुं० [सं०] गले में पहनने का कोई ऊनी कपड़ा।

शामूल-संज्ञा पुं० [सं०] ऊनी कपड़ा।

शामेय-संज्ञा पुं० [सं०] एक गोत्र-प्रवर्तक ऋषि का नाम।

शाम्य-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शम का भाव। (२) बंधुत्व। भाईचारा। (३) शांति।

शाम्यप्रास-संज्ञा पुं० [सं०] यज्ञ की बलि।

शायक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बाण। तीर। शर। (२) खड्ग। तलवार।

शायक़-वि० [अ०] (१) शौक करने या रखनेवाला। शौकीन। (२) ख़ाहिशमंद। इच्छुक। आकांक्षी।

शायद-अव्य० [फ़ा०] कदाचित्। संभव है। जैसे,—शायद वह आज आवेगा।

शायर-संज्ञा पुं० [अ०] [स्त्री० शायरा] वह जो शेर आदि बनाता हो। काव्य करनेवाला। कवि।

शायरी-संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) कविता करने का कार्य्य या भाव। (२) काव्य। कविता।

शाया-वि० [अ०] (१) प्रकट। ज़ाहिर। (२) प्रकाशित। छपा हुआ।

शायिक-संज्ञा पुं० [सं०] वह जो शय्या के द्वारा अपनी जीविका का निर्वाह करता हो।

शायित-वि० [सं०] [स्त्री० शायिता] (१) सुलाया या लेटाया हुआ। (२) गिरा हुआ। पतित।

शायिता-संज्ञा स्त्री० [सं०] शयन। सोना।

शायी-वि० [सं० शायिन्] शयन करनेवाला। सोनेवाला।

शारंग-संज्ञा पुं० दे० "सारंग"।

शारंगक-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का पक्षी।

शारंगधनुष-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शारंग नामक धनुष से सुशोभित, अर्थात् विष्णु। (२) कृष्ण।

शारंगपाणि-संज्ञा पुं० [सं०] (१) हाथ में शारंग नामक धनुष धारण करनेवाले, विष्णु। (२) कृष्ण। (३) राम।

शारंगपानी-संज्ञा पुं० दे० "शारंगपाणि"।

शारंगभृत-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शारंग नामक धनुष धारण करनेवाले, विष्णु। (२) कृष्ण।

शारंगवत-संज्ञा पुं० [सं०] कुरुवर्ष नामक देश।

शारंगष्ठा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) काकजंघा। (२) मकोय। (३) गुंजा। घोंटली। करजनी।

शारंगाष्ठा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) मकोय। (२) कठकरंज। लता करंज।

शारंगी-संज्ञा स्त्री० [सं०] सारंगी नामक बाजा। वि० दे० "सारंगी"।

शारंगेष्टा-संज्ञा स्त्री० दे० "शारंगाष्ठा"।

शारंवर-संज्ञा पुं० [सं०] राजतरंगिणी के अनुसार एक प्राचीन जनपद का नाम।

शार-वि० [सं०] (१) चितकबरा। कई रंगों का। (२) पीला। (३) नीले पीले और हरे रंग का।

संज्ञा पुं० (१) एक प्रकार का पासा। (२) वायु। हवा। (३) हिंसा।

संज्ञा स्त्री० कुश।

शारणिक-संज्ञा पुं० [सं०] वह जो शरण में आए हुए की रक्षा करता हो। रक्षक।

शारद-वि० [सं०] (१) शरद् काल संबंधी। शरद् काल का। (२) नवीन। नया। (३) लज्जावान्। शालीन।
संज्ञा पुं० (१) वर्ष। साल। (२) मेघ। बादल। (३) सफेद कमल। (४) मौलसिरी का वृक्ष। (५) कास तृण। (६) हरी मूँग। (७) एक प्रकार का रोग।

शारदांबा-संज्ञा स्त्री० [सं०] सरस्वती।

शारदा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) एक प्रकार की वीणा। (२) ब्राह्मी। (३) अनंतमूल। शारिवा। (४) सरस्वती। (५) दुर्गा। (६) प्राचीन काल की एक प्रकार की लिपि।

शारदिक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शरद् ऋतु में होनेवाला ज्वर। (२) रोग। बीमारी। (३) श्राद्ध।

शारदी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) जल पीपल। (२) छतिवन। सप्तपर्ण। (३) आश्विन मास की पूर्णिमा। कोजागर पूर्णिमा।
वि० शरद् काल का। शरद् काल संबंधी।
संज्ञा पुं० [सं० शारदिन्] (१) अपराजिता। कोयल। (२) सफेद कमल। (३) अन्न या फल आदि।

शारदीय-वि० [सं०] शरद् काल का। शरद् ऋतु संबंधी।

शारदीय महापूजा-संज्ञा स्त्री० [सं०] शरत्काल में होनेवाली दुर्गा की पूजा। नवरात्रि की दुर्गा-पूजा।

शारद्य-वि० [सं०] शरद् काल का। शरद् ऋतु संबंधी।

शारि-संज्ञा पुं० [सं०] पासा आदि खेलने की गोट।
संज्ञा स्त्री० (१) मैना। (२) कपट। छल। धोखा। (३) एक प्रकार का गीत।

शारिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) मैना नाम की चिड़िया। (२) शतरंज या चौपड़ खेलने की क्रिया। (३) सारंगी आदि बजाने की कमानी। (४) वीणा या सारंगी आदि बजाने की क्रिया। (५) दुर्गा देवी का एक नाम।

शारिका कवच-संज्ञा पुं० [सं०] दुर्गा का एक कवच जो रुद्र यामल तंत्र में है।

शारित-वि० [सं०] रंगीन। चित्र विचित्र।

शारिपट्ट-संज्ञा पुं० [सं०] शतरंज या चौसर आदि खेलने की बिसात।

शारिफल-संज्ञा पुं० दे० "शारिपट्ट"।

शारिवा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) अनंतमूल। सालसा। दुरालभा। (२) जवासा। धमासा।

शारिशृंग-संज्ञा पुं० [सं०] जुआ खेलने का एक प्रकार का पासा या गोटी।

शारी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) कुशा नाम की घास। (२) एक प्रकार का पक्षी। (३) मूँज। काँडा।
संज्ञा पुं० (१) शतरंज की गोट। (२) गेंद।

शारीर-वि० [सं०] (१) शरीर संबंधी। शरीर का। (२) शरीर उत्पन्न।
संज्ञा पुं० (१) शरीर को होनेवाला दुःख जो आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक तीन प्रकार के होते हैं। (२) वृष। साँड़।

शारीरक-वि० [सं०] शरीर से उत्पन्न।

शारीरक भाष्य-संज्ञा पुं० [सं०] शंकराचार्य का किया हुआ ब्रह्मसूत्र का भाष्य।

शारीरक सूत्र-संज्ञा पुं० [सं०] वेदव्यास का बनाया हुआ वेदांत सूत्र।

शारीरतत्व-संज्ञा पुं० [सं०] वह शास्त्र जिसमें शरीर के तत्वों और रचना आदि का विवेचन होता है।

शारीर विधान-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह शास्त्र जिसमें इस बात का विवेचन होता है कि जीव किस प्रकार उत्पन्न होते और बढ़ते हैं। (२) वह शास्त्र जिसमें जीवों के शरीर के भिन्न भिन्न अंगों और उनके कार्यों का विवेचन होता है।

शारीर व्रण-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का रोग जो वात, पित्त, कफ और रक्त से उत्पन्न होता है, परंतु रक्त के संबंध से द्विदोषज और त्रिदोषज होने के कारण आठ प्रकार का हो जाता है—(१) वात व्रण, (२) पित्तव्रण। (३) कफ व्रण, (४) रक्त व्रण। (५) वात पित्तज व्रण। (६) वात कफज व्रण, (७) कफपित्तज व्रण और (८) सन्निपातज व्रण।

शारीर शास्त्र-संज्ञा पुं० दे० "शारीर विधान"।

शारीरिक-वि० [सं०] शरीर संबंधी। कालेवरिक। कायिक। दैहिक। जिस्मानी। जैसे,—शारीरिक कष्ट।

शारुक-वि० [सं०] (१) हत्या या नाश करनेवाला। (२) कष्ट देनेवाला।

शार्क-संज्ञा पुं० [सं०] (१) चीनी। शर्करा। (२) एक प्राचीन गोत्र-प्रवर्तक ऋषि का नाम।

शार्कक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) दूध का फेन। दुग्ध फेन। (२) चीनी का ढेला। शर्करा पिंड। (३) गोश्त का टुकड़ा।

शार्कर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) दूध का फेन। (२) लोध वृक्ष। (३) कँकरीली और पथरीली जगह।
वि० (१) कँकरीला। पथरीला। (२) शक्कर या चीनी का बना हुआ।

शार्करक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह स्थान जो कंकरों और पत्थरों से भरा हो। कँकरीली या पथरीली जगह। (२) वह स्थान जहाँ चीनी बहुत होती हो।
वि० कँकरीला। पथरीला।

शार्कर मद्य-संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल का एक प्रकार का मद्य जो चीनी और घी से बनाया जाता था।

शार्करीधान-संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल का एक देश जो उत्तर दिशा में था।

शार्ङ्ग-संज्ञा पुं० [सं०] (१) धनुष। कमान। (२) विष्णु के हाथ में रहनेवाला धनुष। (३) अदरक। आदी। (४) एक प्रकार का साम।

वि० शृंग संबंधी। शृंग का।

शार्ङ्गक-संज्ञा पुं० [सं०] पक्षी। चिड़िया।

शार्ङ्गधन्वा-संज्ञा पुं० [सं० शार्ङ्गधन्वन्] (१) विष्णु। (२) श्रीकृष्ण। (३) वह जो धनुष धारण करता हो। कमनैत।

शार्ङ्गधर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) विष्णु। (२) श्रीकृष्ण।

शार्ङ्गपाणि-संज्ञा पुं० [सं०] (१) विष्णु। (२) श्रीकृष्ण। (३) वह जो धनुष धारण करता हो। कमनैत।

शार्ङ्गभृत-संज्ञा पुं० दे० "शार्ङ्गपाणि"।

शार्ङ्गवैदिक-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का स्थावर विष जो देखने में सोंठ के समान होता है।

शार्ङ्गष्टा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) काकजंघा। (२) घुँघची।

शार्ङ्गष्ठा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) महाकरंज। (२) लता करंज।

शार्ङ्गायुध-संज्ञा पुं० [सं०] (१) विष्णु। (२) श्रीकृष्ण। (३) वह जो धनुष धारण करता हो। कमनैत।

शार्ङ्गी-संज्ञा स्त्री० [सं० शार्ङ्गिन्] (१) विष्णु। (२) श्रीकृष्ण। (३) धनुर्धारी। कमनैत।

शार्दूल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) चीता। व्याघ्र। बाघ। (२) राक्षस। (३) शरभ नामक जंतु। (४) एक प्रकार का पक्षी। (५) यजुर्वेद की एक शाखा। (६) दोहे का एक भेद जिसमें छः गुरु और छत्तीस लघु मात्राएँ होती हैं। (७) चित्रक या चीता नामक वृक्ष। (८) सिंह।

वि० सर्वश्रेष्ठ। सर्वोत्तम।

विशेष—इस अर्थ में इसका प्रयोग केवल यौगिक शब्द बनाने में उनके अंत में होता है। जैसे,—नर शार्दूल।

शार्दूलकंद-संज्ञा पुं० [सं०] जंगली प्याज।

शार्दूलकर्ण-संज्ञा पुं० [सं०] त्रिशंकु के एक पुत्र का नाम।

शार्दूलज-संज्ञा पुं० [सं०] व्याघ्र-नख नामक गंध द्रव्य।

शार्दूलललित-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का वर्ण वृत्त। इसका प्रत्येक पद अठारह अक्षरों का होता है; और उनका क्रम इस प्रकार है—म + स + ज + स + त + स। इसका दूसरा नाम 'शार्दूललसित' भी है।

शार्दूललसित-संज्ञा पुं० दे० "शार्दूलललित"।

शार्दूलवाहन-संज्ञा पुं० [सं०] जैनियों के अनुसार पचीस पूर्व जिनों में से एक जिन का नाम।

शार्दूलविक्रीड़ित-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का वर्णवृत्त। इसका प्रत्येक चरण उन्नीस अक्षरों का होता है; और उनका क्रम इस प्रकार है—म + स + ज + स + त + त + एक गुरु।

शार्यात-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वैदिक काल के एक प्राचीन राजर्षि का नाम। (२) एक प्रकार का साम।

शार्वर-संज्ञा पुं० [सं०] बहुत अधिक अंधकार।

शार्वरिक-वि० [सं०] रात्रि संबंधी। रात का।

शार्वरी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) रात। (२) लोध।

संज्ञा पुं० [सं० शार्वरिन्] बृहस्पति के साठ संवत्सरों में से चौंतीसवाँ संवत्सर।

शालंकटंकट-संज्ञा पुं० [सं०] सुकेशी राक्षस का एक नाम जो वामन पुराण के अनुसार विद्युत्केशी का पुत्र था।

शालंकायन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) विश्वामित्र के एक पुत्र का नाम। (२) नंदी।

शालंकायनजा-संज्ञा स्त्री० [सं०] शालंकायन की पुत्री सत्यवती जो व्यास की माता थी।

शालंकायनि-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन गोत्र-प्रवर्त्तक ऋषि का नाम।

शालंकि-संज्ञा पुं० [सं०] पाणिनि ऋषि का एक नाम।

शालंकी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) गुड़िया। (२) कठपुतली।

शाल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्रकार का प्रसिद्ध वृक्ष जो हिमालय पर्वत पर सतलज से आसाम तक, मध्य भारत के पूर्व प्रांत में, पश्चिम बंगाल की पहाड़ियों पर और छोटा नागपुर के जंगलों में उत्पन्न होता है। इसका वृक्ष बहुत बड़ा और विशाल होता है। छोटे वृक्षों की छाल प्रायः दो इंच मोटी, खुरदरी, काले रंग की और रेशेदार होती है। कच्ची लकड़ी सफ़ेद रंग की और जल्दी बिगड़नेवाली होती है। सार भाग जब ताज़ा होता है, तब कुछ पीलापन लिए हुए भूरे रंग का होता है; परंतु सूखने पर काला हो जाता है। पत्ते चिकने, चमकीले, अंडाकार ६ से १० इंच तक लंबे और ४ से ६ इंच तक चौड़े होते हैं। डालियों के अंत में फूलों के गुच्छे लगते हैं। पुष्पदल लंबे और हलके पीले रंग के आते हैं; और किंचित् अंडाकार तथा अनीदार होते हैं। फल गोल और आध इंच लंबा होता है। वसंत में यह फूलता है और वर्षा के प्रारंभ में इसके फल पक आते हैं। इसकी लकड़ी मकान आदि बनाने में अधिकता से काम आती है। इससे एक प्रकार का लाल रंग निकलता है। इसके बीजों का तेल निकालकर जलाने के काम में लाया जाता है। दुर्भिक्ष में फलों का आटा खाने के काम में आता है। यह दो प्रकार का होता है—एक बड़ा शाल और दूसरा पीतशाल या विजयसार। वैद्यक के अनुसार यह चरपरा, कड़वा, रूखा, स्निग्ध, गरम, कसैला, कांतिजनक तथा कफ़, पित्त, वात, पसीना, कृमि रोग, योनि-रोग, प्रमेह, कुष्ठ, विस्फोटक आदि रोगों को दूर करनेवाला

संज्ञा स्त्री० कुश।

शारणिक-संज्ञा पुं० [सं०] वह जो शरण में आए हुए की रक्षा करता हो। रक्षक।

शारद-वि० [सं०] (१) शरद् काल संबंधी। शरद् काल का। (२) नवीन। नया। (३) लज्जावान्। शालीन।
संज्ञा पुं० (१) वर्ष। साल। (२) मेघ। बादल। (३) सफेद कमल। (४) मौलसिरी का वृक्ष। (५) कास तृण। (६) हरी मूँग। (७) एक प्रकार का रोग।

शारदांबा-संज्ञा स्त्री० [सं०] सरस्वती।

शारदा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) एक प्रकार की वीणा। (२) ब्राह्मी। (३) अनंतमूल। शारिवा। (४) सरस्वती। (५) दुर्गा। (६) प्राचीन काल की एक प्रकार की लिपि।

शारदिक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शरद् ऋतु में होनेवाला ज्वर। (२) रोग। बीमारी। (३) श्राद्ध।

शारदी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) जल पीपल। (२) छतिवन। सप्तपर्ण। (३) आश्विन मास की पूर्णिमा। कोजागर पूर्णिमा।
वि० शरद् काल का। शरद् काल संबंधी।
संज्ञा पुं० [सं० शारदिन्] (१) अपराजिता। कोयल। (२) सफेद कमल। (३) अन्न या फल आदि।

शारदीय-वि० [सं०] शरद् काल का। शरद् ऋतु संबंधी।

शारदीय महापूजा-संज्ञा स्त्री० [सं०] शरत्काल में होनेवाली दुर्गा की पूजा। नवरात्रि की दुर्गा-पूजा।

शारद्य-वि० [सं०] शरद् काल का। शरद् ऋतु संबंधी।

शारि-संज्ञा पुं० [सं०] पासा आदि खेलने की गोट।
संज्ञा स्त्री० (१) मैना। (२) कपट। छल। धोखा। (३) एक प्रकार का गीत।

शारिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) मैना नाम की चिड़िया। (२) शतरंज या चौपड़ खेलने की क्रिया। (३) सारंगी आदि बजाने की कमानी। (४) वीणा या सारंगी आदि बजाने की क्रिया। (५) दुर्गा देवी का एक नाम।

शारिका कवच-संज्ञा पुं० [सं०] दुर्गा का एक कवच जो रुद्र यामल तंत्र में है।

शारित-वि० [सं०] रंगीन। चित्र विचित्र।

शारिपट्ट-संज्ञा पुं० [सं०] शतरंज या चौसर आदि खेलने की बिसात।

शारिफल-संज्ञा पुं० दे० "शारिपट्ट"।

शारिवा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) अनंतमूल। सालसा। दुरालभा। (२) जवासा। धमासा।

शारिशृंग-संज्ञा पुं० [सं०] जुआ खेलने का एक प्रकार का पासा या गोटी।

शारी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) कुशा नाम की घास। (२) एक प्रकार का पक्षी। (३) मूँज। कांडा।
संज्ञा पुं० (१) शतरंज की गोट। (२) गेंद।

शारीर-वि० [सं०] (१) शरीर संबंधी। शरीर का। (२) शरीर उत्पन्न।
संज्ञा पुं० (१) शरीर को होनेवाला दुःख जो आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक तीन प्रकार के होते हैं। (२) वृष। साँड़।

शारीरक-वि० [सं०] शरीर से उत्पन्न।

शारीरक भाष्य-संज्ञा पुं० [सं०] शंकराचार्य का किया हुआ ब्रह्मसूत्र का भाष्य।

शारीरक सूत्र-संज्ञा पुं० [सं०] वेदव्यास का बनाया हुआ वेदांत सूत्र।

शारीरतत्त्व-संज्ञा पुं० [सं०] वह शास्त्र जिसमें शरीर के तत्वों और रचना आदि का विवेचन होता है।

शारीर विधान-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह शास्त्र जिसमें इस बात का विवेचन होता है कि जीव किस प्रकार उत्पन्न होते और बढ़ते हैं। (२) वह शास्त्र जिसमें जीवों के शरीर के भिन्न भिन्न अंगों और उनके कार्यों का विवेचन होता है।

शारीर व्रण-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का रोग जो वात, पित्त, कफ और रक्त से उत्पन्न होता है, परंतु रक्त के संबंध से द्विदोषज और त्रिदोषज होने के कारण आठ प्रकार का हो जाता है—(१) वात व्रण, (२) पित्तव्रण। (३) कफ व्रण, (४) रक्त व्रण। (५) वात पित्तज व्रण। (६) वात कफज व्रण, (७) कफपित्तज व्रण और (८) सन्निपातज व्रण।

शारीर शास्त्र-संज्ञा पुं० दे० "शारीर विधान"।

शारीरिक-वि० [सं०] शरीर संबंधी। कालेवरिक। कायिक। दैहिक। जिस्मानी। जैसे,—शारीरिक कष्ट।

शारुक-वि० [सं०] (१) हरण या नाश करनेवाला। (२) कष्ट देनेवाला।

शार्क-संज्ञा पुं० [सं०] (१) चीनी। शर्करा। (२) एक प्राचीन गोत्र-प्रवर्तक ऋषि का नाम।

शार्कक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) दूध का फेन। दुग्ध फेन। (२) चीनी का ढेला। शर्करा पिंड। (३) गोश्त का टुकड़ा।

शार्कर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) दूध का फेन। (२) कोच वृक्ष। (३) कँकरीली और पथरीली जगह।
वि० (१) कँकरीला। पथरीला। (२) शक्कर या चीनी का बना हुआ।

शार्करक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह स्थान जो कंकरों और पत्थरों से भरा हो। कंकरीली या पथरीली जगह। (२) वह स्थान जहाँ चीनी बहुत होती हो।
वि० कँकरीला। पथरीला।

शार्कर मद्य-संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल का एक प्रकार का मद्य जो चीनी और घी से बनाया जाता था।

शार्करीधान-संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल का एक देश जो उत्तर दिशा में था।

शार्ङ्ग-संज्ञा पुं० [सं०] (१) धनुष। कमान। (२) विष्णु के हाथ में रहनेवाला धनुष। (३) अदरक। आदी। (४) एक प्रकार का साम।

वि० शृंग संबंधी। शृंग का।

शार्ङ्गक-संज्ञा पुं० [सं०] पक्षी। चिड़िया।

शार्ङ्गधन्वा-संज्ञा पुं० [सं० शार्ङ्गधन्वन्] (१) विष्णु। (२) श्रीकृष्ण। (३) वह जो धनुष धारण करता हो। कमनैत।

शार्ङ्गधर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) विष्णु। (२) श्रीकृष्ण।

शार्ङ्गपाणि-संज्ञा पुं० [सं०] (१) विष्णु। (२) श्रीकृष्ण। (३) वह जो धनुष धारण करता हो। कमनैत।

शार्ङ्गभृत-संज्ञा पुं० दे० "शार्ङ्गपाणि"।

शार्ङ्गवैदिक-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का स्थावर विष जो देखने में सोंठ के समान होता है।

शार्ङ्गष्टा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) काकजंघा। (२) घुँघची।

शार्ङ्गष्ठा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) महाकरंज। (२) लता करंज।

शार्ङ्गायुध-संज्ञा पुं० [सं०] (१) विष्णु। (२) श्रीकृष्ण। (३) वह जो धनुष धारण करता हो। कमनैत।

शार्ङ्गी-संज्ञा स्त्री० [सं० शार्ङ्गिन्] (१) विष्णु। (२) श्रीकृष्ण। (३) धनुर्धारी। कमनैत।

शार्दूल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) चीता। व्याघ्र। बाघ। (२) राक्षस। (३) शरभ नामक जंतु। (४) एक प्रकार का पक्षी। (५) यजुर्वेद की एक शाखा। (६) दोहे का एक भेद जिसमें छः गुरु और छत्तीस लघु मात्राएँ होती हैं। (७) चित्रक या चीता नामक वृक्ष। (८) सिंह।

वि० सर्वश्रेष्ठ। सर्वोत्तम।

विशेष—इस अर्थ में इसका प्रयोग केवल यौगिक शब्द बनाने में उनके अंत में होता है। जैसे,—नर शार्दूल।

शार्दूलकंद-संज्ञा पुं० [सं०] जंगली प्याज।

शार्दूलकर्ण-संज्ञा पुं० [सं०] त्रिशंकु के एक पुत्र का नाम।

शार्दूलज-संज्ञा पुं० [सं०] व्याघ्र-नख नामक गंध द्रव्य।

शार्दूलललित-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का वर्ण वृत्त। इसका प्रत्येक पद अठारह अक्षरों का होता है; और उनका क्रम इस प्रकार है—म+स+ज+स+त+स। इसका दूसरा नाम 'शार्दूललसित' भी है।

शार्दूललसित-संज्ञा पुं० दे० "शार्दूलललित"।

शार्दूलवाहन-संज्ञा पुं० [सं०] जैनियों के अनुसार पचीस पूर्व जिनों में से एक जिन का नाम।

शार्दूलविक्रीड़ित-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का वर्णवृत्त। इसका प्रत्येक चरण उन्नीस अक्षरों का होता है; और उनका क्रम इस प्रकार है—म+स+ज+स+त+त+एक गुरु।

शार्यात-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वैदिक काल के एक प्राचीन राजर्षि का नाम। (२) एक प्रकार का साम।

शार्वर-संज्ञा पुं० [सं०] बहुत अधिक अंधकार।

शार्वरिक-वि० [सं०] रात्रि संबंधी। रात का।

शार्वरी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) रात। (२) क्रोध।

संज्ञा पुं० [सं० शार्वरिन्] बृहस्पति के साठ संवत्सरों में से चौंतीसवाँ संवत्सर।

शालंकटंकट-संज्ञा पुं० [सं०] सुकेशी राक्षस का एक नाम जो वामन पुराण के अनुसार विद्युत्केशी का पुत्र था।

शालंकायन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) विश्वामित्र के एक पुत्र का नाम। (२) नंदी।

शालंकायनजा-संज्ञा स्त्री० [सं०] शालंकायन की पुत्री सत्यवती जो व्यास की माता थी।

शालंकायनि-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन गोत्र-प्रवर्तक ऋषि का नाम।

शालंकि-संज्ञा पुं० [सं०] पाणिनि ऋषि का एक नाम।

शालंकी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) गुड़िया। (२) कठपुतली।

शाल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्रकार का प्रसिद्ध वृक्ष जो हिमालय पर्वत पर सतलज से आसाम तक, मध्य भारत के पूर्व प्रांत में, पश्चिम बंगाल की पहाड़ियों पर और छोटा नागपुर के जंगलों में उत्पन्न होता है। इसका वृक्ष बहुत बड़ा और विशाल होता है। छोटे वृक्षों की छाल प्रायः दो इंच मोटी, खुरदरी, काले रंग की और रेशेदार होती है। कच्ची लकड़ी सफ़ेद रंग की और जल्दी बिगड़नेवाली होती है। सार भाग जब ताज़ा होता है, तब कुछ पीलापन लिए हुए भूरे रंग का होता है; परंतु सूखने पर काला हो जाता है। पत्ते चिकने, चमकीले, अंडाकार ६ से १० इंच तक लंबे और ४ से ६ इंच तक चौड़े होते हैं। डालियों के अंत में फूलों के गुच्छे लगते हैं। पुष्पदल लंबे और हलके पीले रंग के आते हैं; और किंचित् अंडाकार तथा अनीदार होते हैं। फल गोल और आध इंच लंबा होता है। वसंत में यह फूलता है और वर्षा के प्रारंभ में इसके फल पक जाते हैं। इसकी लकड़ी मकान आदि बनाने में अधिकता से काम आती है। इससे एक प्रकार का लाल रंग निकलता है। इसके बीजों का तेल निकालकर जलाने के काम में लाया जाता है। दुर्भिक्ष में फलों का आटा खाने के काम में आता है। यह दो प्रकार का होता है—एक बड़ा शाल और दूसरा पीतशाल या विजयसार। वैद्यक के अनुसार यह चरपरा, कड़वा, रूखा, स्निग्ध, गरम, कांतिजनक पित्त, घाव, पसीना, रोग, आदि रोगों को

है। इसके पत्ते और गोंद प्रायः ओषधि के काम में आते हैं। साखू। सखुआ।

पर्य्या०—साल। अश्वकर्ण। शंकुवृक्ष। सततरु। यक्षधूप आदि।

(२) एक प्रकार की मछली। (३) वृक्ष। पेड़। (४) एक नदी का नाम। (५) वृक के एक पुत्र का नाम। (६) राजा शालिवाहन का एक नाम। (७) राल। धूना।

संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] एक प्रकार की ऊनी या रेशमी चादर जिसके किनारे पर प्रायः बेल बूटे आदि बने होते हैं। दुशाला।

यौ०—शालबाफ। शालदोज।

शालक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) पटुआ। नाड़ीशाक। (२) मसखरा। दिल्लगीबाज। भाँड़।

शालकंटकट-संज्ञा पुं० [सं०] महाभारत के अनुसार एक राक्षस का नाम जिसे घटोत्कच ने मार डाला था।

शालकल्याणी-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का साग जो चरक के अनुसार भारी, रूखा, मधुर, शीतवीर्य्य और पुरीष-भेदक होता है।

शालग्राम-संज्ञा पुं० [सं०] (१) विष्णु की एक प्रकार की मूर्त्ति जो पत्थर की होती है और गंडकी नदी में पाई जाती है। यह मूर्त्ति प्रायः पत्थर की गोलियों या बटियों आदि के रूप में होती है और उस पर चक्र का चिह्न बना होता है, जिसे लोग साधारण बोल चाल में चनेऊ कहते हैं। जिस शिला पर यह चिह्न नहीं होता, वह पूजन के लिये उपयुक्त नहीं मानी जाती। लोग अन्य देव-मूर्त्तियों की भाँति इसकी भी पहले प्रतिष्ठा करते हैं और तब इसका पूजन करते हैं। अनेक पुराणों में इसकी पूजा का बहुत माहात्म्य मिलता है। (२) गंडकी नदी के किनारे का एक गाँव जिसके समीप शाल के वृक्ष बहुत अधिकता से हैं। इस गाँव के पास नदी में शालग्राम शिलाएँ भी पाई जाती हैं। वैष्णव लोग इस गाँव को बहुत पवित्र मानते हैं।

शालग्रामगिरि-संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार एक पर्वत का नाम जहाँ शालग्राम की मूर्त्तियाँ मिलती हैं।

शालज-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की मछली जिसे शाल भी कहते हैं।

शालदोज-संज्ञा पुं० [फ़ा०] वह जो शाल के किनारे पर बेल बूटे आदि बनाता हो।

शालनिर्यास-संज्ञा पुं० [सं०] (१) राल। धूना। (२) साल या सर्ज नाम का वृक्ष।

शालपत्रा-संज्ञा स्त्री० दे० "शालपर्णी"।

शालपर्णिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) मुरा नामक गंध द्रव्य। (२) पृश्निपर्णी नाम की ओषधि। वि० दे० "पृश्निपर्णी" (२)।

शालपर्णी-संज्ञा स्त्री० [सं०] सरिवन नामक क्षुप। वि० "सरिवन"।

शालबाफ़-संज्ञा पुं० [फ़ा०] (१) वह जो शाल या दुशाले बुनता हो। शाल बुननेवाला। (२) एक प्रकार का रे कपड़ा जो लाल रंग का होता है।

शालबाफ़ी-संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] दुशाले बुनने का का शालबाफ़ का काम।

शालभंजिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) कठपुतली। (२) वे रंडी।

शालभंजी-संज्ञा स्त्री० [सं०] कठपुतली।

शालभ-संज्ञा पुं० [सं०] बिना सोचे विचारे उसी प्रकार अ में कूद पड़ना, जिस प्रकार पतंग आग या दीपक प पड़ता है।

वि० [सं०] पतिंगों के संबंध का। पतिंगों या टि का। शलभ संबंधी।

शालमत्स्य-संज्ञा पुं० [सं०] शिलिंद नामक मछली।

शालमर्कट, शालमर्कटक-संज्ञा पुं० [सं०] अनार का दाड़िम।

शालयुग्म-संज्ञा पुं० [सं०] दोनों प्रकार के शाल; अर्थात् वृक्ष और विजयसार।

शालरस-संज्ञा पुं० [सं०] राल। धूना। करायल

शालव-संज्ञा पुं० [सं०] लोध्र। लोध।

शालवदन-संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार एक असुर का जो कालवदन और शृगाल-वदन भी कहलाता है।

शालवानक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) विष्णुपुराण के अनुसार देश का नाम। (२) इस देश का निवासी।

शालवाहन-संज्ञा पुं० दे० "शालिवाहन"।

शालवेष्ट-संज्ञा पुं० [सं०] राल। धूना।

शाल शाक-संज्ञा पुं० [सं०] पटुआ। नाड़ी शाक।

शालशृंग-संज्ञा पुं० [सं०] दीवार का ऊपरी भाग। द की चोटी।

शालसार-संज्ञा पुं० [सं०] (१) हींग। हिंगु। (२) र धूना। करायल। (३) साखू नामक वृक्ष। शाल। वृक्ष। द्रुम। पेड़।

शालांकी-संज्ञा स्त्री० [सं०] पुतली। गुड़िया।

शालांचि-संज्ञा स्त्री० [सं०] शांति नामक साग।

शाला-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) घर। गृह। मकान। (२) स्थान। जैसे,—पाठशाला। गौशाला। (३) शाखा। डा (४) इंद्रवज्रा और उपेंद्रवज्रा के योग से बननेवाले छ प्रकार के वृत्तों में से एक वृत्त। इसका तीसरा च उपेंद्रवज्रा का और शेष तीनों चरण इंद्रवज्रा के होते हैं।

शालाक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) झाड़। झंखार। (२) वह अग्नि जो झाड़ झंखाड़ जलाकर उत्पन्न की जाय।

शालाकी-संज्ञा पुं० [सं० शालाकिन्] (१) वह जो शस्त्र चिकित्सा करता हो। शस्त्र वैद्य। जर्राह। (२) नापित। नाऊ। हज्जाम। (३) भाला-बरदार।

शालाक्य-संज्ञा पुं० [सं०] (१) आयुर्वेद के अंतर्गत आठ प्रकार के तंत्रों में से एक तंत्र जिसमें कान, आँख, नाक, जीभ, होंठ, मुँह आदि के रोगों और उनकी चिकित्सा का विवरण है। (२) वह चिकित्सक जो आँख, नाक, कान, मुँह आदि के रोगों की चिकित्सा करता हो।

शालाक्यशास्त्र-संज्ञा पुं० दे० "शालक्य" (१)।

शालाक्ष-संज्ञा पुं० [सं०] वैदिक काल के एक प्राचीन ऋषि का नाम।

शालाजिर-संज्ञा पुं० [सं०] मिट्टी की तश्तरी या प्याली आदि।

शालातुरीय-संज्ञा पुं० [सं०] पाणिनि ऋषि का एक नाम।

शालात्व-संज्ञा पुं० [सं०] शाला का भाव या धर्म।

शालानी-संज्ञा स्त्री० [सं०] सरिवन। शालपर्णी। विदारी।

शालामर्कटक-संज्ञा पुं० [सं०] बड़ी मूली। चाणक्य मूलक।

शालामुख-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्रकार का चावल। (२) घर का सामना। घर का अगला भाग।

शालामृग-संज्ञा पुं० [सं०] (१) कुत्ता। (२) सियार। शृगाल। गीदड़।

शालार-संज्ञा पुं० [सं०] (१) हाथी का नाखून। (२) सीढ़ी। सोपान। (३) पक्षियों के रहने का पिंजड़ा। (४) दीवार में लगी हुई खूँटी।

शालालुक-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का गंध द्रव्य। शलालु।

शालावती-संज्ञा स्त्री० [सं०] हरिवंश के अनुसार विश्वामित्र की कन्या का नाम।

शालावत्-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन ऋषि का नाम।

शालावृक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बंदर। वानर। कपि। (२) कुत्ता। कुक्कुर। (३) लोमड़ी। (४) बिल्ली। बिड़ाल। (५) हरिन। मृग।

शालिंच-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का साग जिसे शालंच या शांति साग भी कहते हैं। वैद्यक के अनुसार यह चरपरा, दीपन तथा प्लीहा, बवासीर और कफ पित्त का नाश करनेवाला माना गया है।

शालिंची-संज्ञा स्त्री० दे० "शालिंच"।

शालि-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वैद्यक के अनुसार पाँच प्रकार के धानों में से एक प्रकार का धान जो हेमंत ऋतु में होता है। जड़हन।

विशेष—वैद्यक में इसके रक्तशालि, कलम, पांडुक, शकुनाहृत, सुगंधक, कर्दमक, महाशालि, दूषक, पुष्पांडक, महिष-मस्तक, दीर्घशूक, कांचनक आदि अनेक भेद कहे गए हैं। यद्यपि वैद्यक के अनुसार भिन्न भिन्न देशों में उत्पन्न होनेवाले भिन्न भिन्न गुण कहे गए हैं, तथापि साधारणतः सभी शालि धान्यों के गुण इस प्रकार माने गए हैं—मधुर, कषायरस, स्निग्ध, बलकारक, स्वरप्रसादक, शुक्रवर्द्धक, कुछ कुछ वायु और कफवर्द्धक, शीतवीर्य, पित्तनाशक और मूत्रवर्द्धक।

पर्य्या०—मधुर। हव्य। व्रीहिश्रेष्ठ। नृपप्रिय। धान्योत्तम। केदार। सुकुमारक।

(२) बासमती चावल। (३) काला जीरा। (४) गन्ना। पौंडा। (५) गंध बिलाव। गंध मार्जार। (६) एक यक्ष का नाम।

शालिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) विदारी कंद। (२) मैना। शारिका। (३) शालपर्णी। (४) घर। मकान।

शालिगोप-संज्ञा पुं० [सं०] वह जो खेतों की, विशेषतः धान के खेतों की, रखवाली करता हो।

शालिधान-संज्ञा पुं० [सं० शालिधान्य] बासमती चावल।

विशेष—यह धान जेठ मास में बोया जाता है और अगहन के अंत या पूस के आरंभ में पककर तय्यार हो जाता है। इसे अगहनी या हैमंतिक शालि धान्य भी कहते हैं। इसका पौधा मिट्टी तथा देश के अनुसार दो हाथ से लेकर तीन हाथ तक ऊँचा होता है। इसके पत्ते साधारण धान के समान होते हैं, पर उनकी अपेक्षा कुछ कड़े और चिकने होते हैं। यह छोटा और बड़ा दो प्रकार का होता है। भेद इतना ही है कि छोटा पहले पकता है और बड़ा कुछ देर में। यह धान बिना कूटे हुए ही सफेद होता है और बहुत बारीक तथा सुंदर होता है। चावलों में यह सब से उत्तम माना जाता है।

शालिनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) ग्यारह अक्षरों का एक वृत्त। इसमें क्रम से एक मगण, दो तगण और अंत में दो गुरु होते हैं। (२) मसींड़। पद्मकंद। (३) मेथी।

शालिपर्णिका-संज्ञा स्त्री० दे० "पृश्निपर्णी" (१)।

शालिपर्णी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) मेदा नामक अष्टवर्गीय ओषधि। (२) पिठवन। पृश्निपर्णी। (३) वन हरदी। (४) शालपर्णी। सरिवन।

शालिपिंड-संज्ञा पुं० [सं०] महाभारत के अनुसार एक नाग का नाम।

शालिपिष्ट-संज्ञा पुं० [सं०] स्फटिक। बिल्लौर पत्थर।

शालिराट्-संज्ञा पुं० [सं०] हंसराज चावल।

शालिवाहन-संज्ञा पुं० [सं०] शक जाति का एक प्रसिद्ध राजा जिसने "शक" नामक संवत् चलाया था। टाड राजस्थान में लिखा है कि यह गजनी के राजा 'गज' का पुत्र था। पिता के मारे जाने पर यह पंजाब चला आया और उसपर अपना अधिकार जमा लिया। इसने शालिवाहनपुर

नगर भी बसाया था। इसकी राजधानी गोदावरी के किनारे प्रतिष्ठानपुर में थी। कहीं कहीं इसका नाम सातवाहन भी मिलता है। कथा-सरित्सागर में लिखा है कि इसे सात नामक गुह्यक उठाकर ले चला करता था; इसी से इसका नाम सातवाहन पड़ा।

शालिहोत्र-संज्ञा पुं० [सं०] (१) घोड़ा। (२) घोड़ों और पशुओं आदि की चिकित्सा का शास्त्र। अश्व वैद्यक। (३) पुराणानुसार एक गोत्र-प्रवर्त्तक ऋषि का नाम।

शालिहोत्री-संज्ञा पुं० [सं० शालिहोत्र + ई (प्रत्य०)] वह जो पशुओं और विशेषतः घोड़ों आदि की चिकित्सा करता हो। अश्व वैद्य।

शाली-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) काला जीरा। (२) मेथी। (३) शालपर्णी। (४) दुरालभा।

शालीकि-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन आचार्य्य का नाम।

शालीन-वि० [सं०] (१) जो धृष्ट या उद्दंड न हो। विनीत। नम्र। (२) जिसे लज्जा आती हो। सलज्ज। (३) सदृश। समान। तुल्य। (४) अच्छे आचार विचारवाला। (५) शाला संबंधी। शाला का। (६) संपत्ति-शाली। धनवान। अमीर। (७) जो व्यवहार में कुशल हो। दक्ष। चतुर।

शालीनता-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) शालीन होने का भाव या धर्म्म। (२) लज्जा। लाज। शरम। (३) नम्रता। (४) अधीनता।

शालीनत्व-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सौंफ। शतपुष्पा। (२) सोवा नामक साग।

शालीय-वि० [सं०] (१) शाला या घर संबंधी। (२) शाल वृक्ष का।
संज्ञा पुं० एक वैदिक आचार्य्य का नाम।

शालु-संज्ञा पुं० [सं०] (१) भसींड़। कमलकंद। (२) भटेउर या चोरक नामक ओषधि। (३) कषाय द्रव्य। (४) मेंढक। भेक। (५) एक प्रकार का फल।

शालुक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) भसींड़। पद्मकंद। (२) जायफल।

शालूक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मंडूक। मेंढक। (२) जायफल। जातीफल। (३) भसींड़। (४) एक प्रकार का रोग।

शालूकिनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] महाभारत के अनुसार एक तीर्थ का नाम।

शालूर-संज्ञा पुं० [सं०] भेक। मेंढक।

शालूरक-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का कीटाणु जो अँतड़ियों में पीड़ा उत्पन्न करता है।

शालेय-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सौंफ। मधुरिका। (२) शालि धान का खेत। (३) मूली।
वि० शाल संबंधी। शाल वृक्ष का।

शालेया-संज्ञा स्त्री० [सं०] मेथी। मिश्रेया।

शाल्मल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शाल्मली वृक्ष। सेमल का पेड़। (२) मोचरस। (३) दे० "शाल्मलि"।

शाल्मलि-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शाल्मली वृक्ष। सेमल का पेड़। वि० दे० "सेमल"। (२) पुराणानुसार एक द्वीप का नाम जो क्रौंच द्वीप से दूना कहा गया है। यह भी कहा गया है कि इस द्वीप में शाल्मलि या सेमल के वृक्ष बहुत अधिकता से हैं और यह चारों ओर से ऊख के रस के समुद्र से घिरा हुआ है। इसमें श्वेत, लोहित, जीमूत, हरित, वैद्युत, मानस और सुप्रभ नामक सात वर्ष हैं जिनमें कुमुद, उन्नत, बलाहक, द्रोण, कंक, महिष और ककुद् नामक सात पर्वत तथा योनी, तोया, वितृष्णा, चंद्रा, शुक्ला, विमोचनी और निवृत्ति नाम की सात नदियाँ हैं। (३) पुराणानुसार एक नरक का नाम। कहते हैं कि इसमें जीवों को शाल्मलि वृक्ष के काँटे चुभाकर कष्ट पहुँचाया जाता है।

शाल्मलिक-संज्ञा पुं० [सं०] रोहितक वृक्ष। रोहिड़ा।

शाल्मलिनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] सेमल का वृक्ष। शाल्मलि।

शाल्मलिपत्रक-संज्ञा पुं० [सं०] सतिवन। सप्तपर्ण वृक्ष।

शाल्मली-संज्ञा स्त्री० [सं०] शाल्मलि। सेमल।
संज्ञा पुं० [सं० शाल्मलिन्] गरुड़।

शाल्मलीकंद-संज्ञा पुं० [सं०] शाल्मलि की जड़, जो वैद्यक के अनुसार मधुर, शीतल, रोचक और पित्त, दाह तथा संताप-नाशक मानी जाती है।

शाल्मलीफल-संज्ञा पुं० [सं०] तेजबल या तेजफल नाम का वृक्ष।

शाल्मलीफलक-संज्ञा पुं० [सं०] सुश्रुत के अनुसार काठ की वह पट्टी जिस पर रखकर छुरे आदि की धार तेज की जाती है।

शाल्मली द्वीप-संज्ञा पुं० दे० "शाल्मलि" (२)।

शाल्मलीवेष्ट-संज्ञा पुं० [सं०] सेमल का गोंद। मोचरस।

शाल्मलीस्थल-संज्ञा पुं० दे० "शाल्मलि" (२)।

शाल्व-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सौभ राज्य के एक राजा का नाम। महाभारत में लिखा है कि काशिराज की कन्याओं के हरण के समय भीष्म के साथ इनका युद्ध हुआ था जिसमें ये हार गए थे। काशिराज की कन्या अंबा इन्हीं से विवाह करना चाहती थी; इसी लिये भीष्म ने अंबा को इनके पास भेज दिया था; पर इन्होंने अंबा को ग्रहण नहीं किया। ये शिशुपाल के बड़े मित्र थे। जब श्रीकृष्ण ने शिशुपाल को मार डाला, तब इन्होंने श्रीकृष्ण की हत्या करने के लिये द्वारका पर घेरा डाला था। इसी अवसर पर ये युद्ध में श्रीकृष्ण द्वारा मारे गए थे। (२) एक प्राचीन देश का नाम।

शाल्वकिनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] रामायण के अनुसार एक प्राचीन नदी का नाम।

शाल्वगिरि-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन पर्वत का नाम।

शाल्वण-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह लेप जो फोड़े को पकाने के लिये उस पर चढ़ाया जाता है। पुलटिस। (२) भरता। चोखा।

शाल्वसेनी-संज्ञा पुं० [सं०] (१) महाभारत के अनुसार एक प्राचीन देश का नाम। (२) इस देश का निवासी।

शाल्विक-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का पक्षी जिसे क्षुद्रचूड़ भी कहते हैं।

शाव-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बच्चा; विशेषतः पशुओं आदि का बच्चा। (२) मृतक। मुरदा। (३) भूरा रंग। (४) सूतक, जो किसी के मर जाने पर उसके संबंधियों को लगता है। (५) मरघट। श्मशान।
वि० शव संबंधी। शव का।

शावक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बच्चा; विशेषतः पशु या पक्षी का बच्चा। (२) झाऊ।

शावर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) पाप। गुनाह। (२) अपराध। कसूर। (३) लोध वृक्ष। (४) शाबरस्वामी कृत भाष्य। (५) एक तंत्र ग्रंथ जो शिव का बनाया हुआ माना जाता है।
वि० शवर संबंधी। शवर का।

शावरक-संज्ञा पुं० [सं०] पठानी लोध।

शावरचंदन-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का चंदन।

शावरभेदाख्य-संज्ञा पुं० [सं०] ताँबा।

शावरी-संज्ञा स्त्री० [सं०] कौंछ। केवाँच।

शाश्वत-वि० [सं०] जो सदा स्थायी रहे। कभी नष्ट न होनेवाला। नित्य।
संज्ञा पुं० (१) वेदव्यास। (२) शिव। (३) स्वर्ग। (४) अंतरिक्ष।

शाश्वतिक-वि० [सं०] स्थायी। नित्य। शाश्वत।

शाश्वती-संज्ञा स्त्री० [सं०] पृथ्वी।

शाष्कुल-वि० [सं०] मांस या मछली खानेवाला। मांसाहारी। गोश्तखोर।

शास-संज्ञा पुं० [सं०] (१) अनुशासन। (२) स्तुति। स्तव।

शासक-संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० शासिका] (१) वह जो शासन करता हो। (२) वह जिसके हाथ में किसी नगर, प्रांत या देश आदि की राजकीय व्यवस्था हो। हाकिम।

शासन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) आज्ञा। आदेश। हुक्म। (२) किसी को अपने अधिकार या वश में रखना। (३) लिखित प्रतिज्ञा। पट्टा। ठीका। (४) राजा की दान की हुई भूमि। मुआफ़ी। (५) वह परवाना या फरमान जिसके द्वारा किसी व्यक्ति को कोई अधिकार दिया जाय। (६) शास्त्र। (७) इंद्रिय-निग्रह। (८) किसी के कार्यों आदि का नियंत्रण करना। (९) किसी नगर, प्रांत या देश आदि की राजकीय व्यवस्था करने का काम। हुकूमत। (१०) दंड। सजा।

शासनदेवी-संज्ञा स्त्री० [सं०] जैनियों की एक देवी का नाम।

शासनधर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शासक। (२) राजदूत। एलची।

शासनपत्र-संज्ञा पुं० [सं०] वह ताम्रपत्र या शिला जिस पर कोई राजाज्ञा लिखी या खोदी हुई हो।

शासनवाहक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जो राजा की आज्ञा लोगों के पास पहुँचाता हो। (२) राजदूत। एलची।

शासनशिला-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह शिला जिस पर कोई राजाज्ञा लिखी हो।

शासनहर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) राजदूत। (२) वह जो राजा की आज्ञा लोगों तक पहुँचाता हो।

शासनहारक-संज्ञा पुं० दे० "शासनहर"।

शासनहारी-संज्ञा पुं० [सं० शासनहारिन्] राजदूत। एलची।

शासनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्त्री जो लोगों को धर्म्म का उपदेश करती हो।

शासनीय-वि० [सं०] (१) शासन करने के योग्य। (२) सुधारने के योग्य। (३) दंड देने के योग्य। सजा देने के लायक।

शासित-वि० [सं०] [स्त्री० शासिता] (१) जिसका शासन किया जाय। शासन किया हुआ। (२) जिसे दंड दिया जाय। दंडित।
संज्ञा पुं० (१) प्रजा। (२) निग्रह। संयम।

शासी-संज्ञा पुं० [सं० शासिन्] शासन करनेवाला। शासक। (इस शब्द का प्रयोग प्रायः यौगिक शब्द बनाने में, उसके अंत में, किया जाता है।)

शास्ता-संज्ञा पुं० [सं० शास्तृ] (१) शासक। (२) राजा। (३) पिता। (४) उपाध्याय। गुरु।

शास्ति-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) शासन। (२) दंड। सजा।

शास्त्र-संज्ञा पुं० [सं०] (१) हिंदुओं के अनुसार ऋषियों और मुनियों आदि के बनाए हुए वे प्राचीन ग्रंथ जिनमें लोगों के हित के लिये अनेक प्रकार के कर्त्तव्य बतलाए गए हैं और अनुचित कृत्यों का निषेध किया गया है। वे धार्मिक ग्रंथ जो लोगों के हित और अनुशासन के लिये बनाए गए हैं।

विशेष—हमारे यहाँ वे ही ग्रंथ शास्त्र माने गए हैं जो वेदमूलक हैं। इनकी संख्या १८ कही गई है और नाम इस प्रकार दिए गए हैं—शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, ज्योतिष, छंद, ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, मीमांसा, न्याय, धर्मशास्त्र, पुराण, आयुर्वेद,

गांधर्ववेद और अर्थशास्त्र। इन अठारहो शास्त्रों को अठारह विद्याएँ भी कहते हैं। इस प्रकार हिंदुओं की प्रायः सभी धार्मिक पुस्तकें शास्त्र की कोटि में आ जाती हैं। साधारणतः शास्त्र में बतलाए हुए काम विधेय माने जाते हैं; और जो बातें शास्त्रों में वर्जित हैं, वे निषिद्ध और त्याज्य समझी जाती हैं।

(२) किसी विशिष्ट विषय या पदार्थ-समूह के संबंध का वह समस्त ज्ञान जो ठीक क्रम से संग्रह करके रखा गया हो। विज्ञान। जैसे,—प्राणि-शास्त्र, अर्थ-शास्त्र, विद्युत्-शास्त्र, वनस्पति-शास्त्र।

शास्त्रकार–संज्ञा पुं० [सं०] वह जिसने शास्त्रों का प्रणयन या रचना की हो। शास्त्र बनानेवाला।

शास्त्रकृत–संज्ञा पुं० [सं०] (१) शास्त्र बनानेवाले; अर्थात् ऋषि, मुनि। (२) आचार्य्य।

शास्त्रचक्षु–संज्ञा पुं० [सं० शास्त्रचक्षुस्] (१) शास्त्र की आँख; अर्थात् व्याकरण। (२) वह जिसे शास्त्र रूपी नेत्र प्राप्त हों। ज्ञानी। पंडित।

शास्त्रचारण–संज्ञा पुं० [सं०] वह जो शास्त्रों का अच्छा ज्ञाता हो। शास्त्रदर्शी।

शास्त्रज्ञ–संज्ञा पुं० [सं०] वह व्यक्ति जो शास्त्रों का अच्छा ज्ञाता हो। शास्त्रों का जानकार। शास्त्रवेत्ता।

शास्त्रतत्वज्ञ–संज्ञा पुं० [सं०] गणक। ज्योतिषी।

शास्त्रत्व–संज्ञा पुं० [सं०] शास्त्र का भाव या धर्म।

शास्त्रदर्शी–संज्ञा पुं० [सं० शास्त्रदर्शिन्] वह जिसे शास्त्रों का अच्छा ज्ञान हो। शास्त्रज्ञ।

शास्त्रदृष्टि–संज्ञा पुं० [सं०] वह जो शास्त्रों का ज्ञाता हो। शास्त्रज्ञ।

शास्त्रवक्ता–संज्ञा पुं० [सं० शास्त्रवक्तृ] वह जो लोगों को शास्त्रों का उपदेश देता हो।

शास्त्रविद्–वि० पुं० [सं०] शास्त्रों का जाननेवाला। शास्त्रदर्शी। शास्त्रज्ञ।

शास्त्रशिल्पी–संज्ञा पुं० [सं० शास्त्रशिल्पिन्] (१) काश्मीर देश। (२) भूमि। जमीन।

शास्त्रावर्त्त लिपि–संज्ञा स्त्री० [सं०] ललितविस्तर के अनुसार प्राचीन काल की एक प्रकार की लिपि।

शास्त्री–वि० [सं० शास्त्रिन्] शास्त्र का जाननेवाला। शास्त्रज्ञ। शास्त्रविद्।

संज्ञा पुं० (१) वह जो शास्त्रों आदि का अच्छा ज्ञाता हो। शास्त्रज्ञ। (२) वह जो धर्म शास्त्र का ज्ञाता हो। (३) एक उपाधि जो कुछ विश्वविद्यालयों आदि में, इसी नाम की परीक्षा में उत्तीर्ण होने पर प्राप्त होती है।

शास्त्रीय–वि० [सं०] शास्त्र संबंधी। शास्त्र का।

शास्त्रोक्त–वि० [सं०] जो शास्त्र में लिखे या कहे के अनुसार हो। शास्त्रों में कहा हुआ।

शास्य–वि० [सं०] (१) शासन करने के योग्य। (२) दंड देने के योग्य। दंडनीय। (३) सुधारने योग्य।

शाहंशाह–संज्ञा पुं० [फ़ा०] बादशाहों का बादशाह। बहुत बड़ा बादशाह। महाराजाधिराज।

शाहंशाही–संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] (१) शाहंशाह का कार्य्य या भाव। (२) व्यवहार का खरापन। (बोलचाल)

क्रि० प्र०—जताना।—दिखलाना।—बघारना।

शाह–संज्ञा पुं० [फ़ा०] (१) बहुत बड़ा राजा या महाराज। बादशाह। वि० दे० "बादशाह"। (२) मुसलमान फ़कीरों की उपाधि।

वि० बड़ा। भारी। महान्। जैसे,—शाहराह।

विशेष—इस अर्थ में इस शब्द का प्रयोग केवल यौगिक शब्द बनाने में, उनके आदि में होता है।

शाहज़ादा–संज्ञा पुं० [फ़ा०] [स्त्री० शाहज़ादी] बादशाह का लड़का। महाराजकुमार।

शाहज़ादी–संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] (१) बादशाह की कन्या। राजकुमारी। (२) कमल के फूल के अंदर का पीला जीरा।

शाहतरा–संज्ञा पुं० [फ़ा०] पित्त पापड़ा।

शाहदरा–संज्ञा पुं० [फ़ा०] वह आबादी जो किसी महल या किले के नीचे बसी हो।

शाहबलूत–संज्ञा पुं० दे० "बलूत"।

शाहबाज–संज्ञा पुं० [फ़ा०] सफेद रंग का एक प्रकार का शिकारी पक्षी।

शाहबाला–संज्ञा पुं० दे० "शहबाला"।

शाहराह–संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] बड़ी सड़क। बड़ा रास्ता। राजमार्ग।

शाहाना–वि० [फ़ा०] बादशाहों के योग्य। राजाओं का सा। राजसी।

संज्ञा पुं० (१) विवाह का जोड़ा जो दूल्हे को पहनाया जाता है। यह प्रायः लाल रंग का होता है। जामा। (२) दे० "शहाना" (राग)।

शाहिद–संज्ञा पुं० [अ०] वह मनुष्य जो आँखों देखी घटना का न्यायाधीश के समक्ष वर्णन करे। साक्षी। गवाह।

वि० सुंदर। मनोहर। खूबसूरत।

शाही–वि० [फ़ा०] शाहों या बादशाहों का। राजसी। जैसे,—शाही दरबार, शाही महल, शाही सवारी।

शाहीन–संज्ञा पुं० [फ़ा०] (१) दे० "शाहबाज"। (२) वह सूई जो तराज़ू की डंडी के मध्य भाग में लगी होती है और जिसके बिलकुल सीधे रहने से तौल बराबर और ठीक मानी जाती है।

शिंगरफ़-संज्ञा पुं० [फ़ा० शंगर्फ़] ईंगुर । हिंगुल । वि० दे० "ईंगुर"।

शिंगरफ़ी-वि० [फ़ा०] शिंगरफ़ के रंग का । लाल । सुर्ख़ ।

शिंघण, शिंघाण-संज्ञा पुं० [सं०] (१) लौहमल । मंडूर । (२) नाक के अंदर का चेप जिससे झिल्ली तर रहती है । (३) काँच का बरतन। (४) दाढ़ी । (५) फूला हुआ अंडकोश ।

शिंघाणक-संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० शिंघाणिका] (१) नाक के अंदर का चेप । (२) कफ़ । बलगम ।

शिंघाणी-संज्ञा पुं० [सं० शिंघाणिन्] नाक ।

शिंघान-संज्ञा पुं० दे० "शिंघाण" ।

शिंघित-वि० [सं०] सूँघा हुआ । आघ्रात ।

शिंघिनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] नाक ।

शिंजंजिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] करधनी।

शिंजन-संज्ञा पुं० [सं०] [वि० शिंजित] धातुखंड का परस्पर बजना । झंकार करना । झनकारना ।

शिंजा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) करधनी, नूपुर आदि आभूषणों की झनकार । धातुखंड के बजने का शब्द । झनझनाहट । (२) धनुष की डोरी ।

शिंजित-वि० [सं०] झंकार करता हुआ । बजता हुआ ।

शिंजिनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) धनुष की डोरी । चिल्ला । पतंचिका । (२) करधनी या नूपुर के घुँघरू ।

शिंडाकी-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह काँजी जो मूली के पत्तों के रस में राई और नमक डालकर अथवा सरसों के रस में चावल का चूर्ण डालकर बनाई जाय । वैद्यक के अनुसार यह रुचिकारी, कफकारक, पित्त करनेवाली और भारी होती है ।

शिंब-संज्ञा पुं० [सं०] (१) फली । छीमी । (२) चकवँड़ । चक्रमर्द ।

शिंबा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) छीमी । फली । (२) सेम । (३) शिंबी धान्य ।

शिंबि-संज्ञा स्त्री० दे० "शिंबी" ।

शिंबिक-संज्ञा पुं० [सं०] मूँगफली ।

शिंबिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) फली । छीमी । (२) सेम ।

शिंबिजा-संज्ञा स्त्री० [सं०] द्विदल अन्न । दाल ।

शिंबिनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) श्यामा चिड़िया । कृष्ण चटक । (२) बड़ी सेम ।

शिंबिपर्णिका, शिंबिपर्णी-संज्ञा स्त्री० [सं०] वनमूँग । मुद्गपर्णी।

शिंबी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) छीमी । फली । बौंड़ी । (२) सेम । (३) कौंछ । केवाँच । कपिकच्छु । (४) वनमूँग ।

शिंबी धान्य-संज्ञा पुं० [सं०] वह अन्न जिसके दानों में दो दल हों । द्विदल अन्न । दाल । जैसे,—मूँग, मसूर, मोठ, उड़द, चना, अरहर, मटर, कुरथी, लोबिया आदि ।

शिंबीफल-संज्ञा पुं० [सं०] तरवड़ या आहुल्य नामक क्षुप ।

शिंश-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का फलदार वृक्ष ।

शिंशपा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) शीशम का पेड़ । (२) अशोक वृक्ष ।

शिंशुपाल-संज्ञा स्त्री० दे० "शिंशपा" ।

शिंशुमार-संज्ञा पुं० [सं०] सूँस नामक जल-जंतु ।

शि-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शिव । (२) सुख । सौभाग्य । (३) शांति । (४) धैर्य्य ।

शिकंजा-संज्ञा पुं० [फ़ा०] (१) दबाने, कसने या निचोड़ने का यंत्र । (२) पेच कसने का यंत्र या औजार जिससे जिल्दबंद किताबें दबाते और उसके पन्ने काटते हैं । (३) वह ताना जिससे जुलाहे घुमावदार बंद बनाते और पनिक बाँधते हैं । (जुलाहे) (४) प्राचीन काल का अपराधियों को कठोर दंड देने के लिये एक यंत्र जिसमें उनकी टाँगें कस दी जाती थीं । (५) पेरने का यंत्र । कोल्हू । (६) रूई दबाने की कल । पेंच ।

मुहा०—शिकंजे में खिंचवाना = घोर यंत्रणा दिलाना । साँसत कराना । शिकंजे में खींचना = बहुत कष्ट देना । घोर यंत्रणा पहुँचाना ।

शिकन-संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] सिकुड़ने से पड़ी हुई धारी । मुड़कर दबने से पड़ी हुई लकीर । सिलवट । बट । वलि । बल ।

क्रि० प्र०—आना ।—डालना ।—निकालना ।—रहना ।

शिकम-संज्ञा पुं० [फ़ा०] पेट । उदर ।

शिकमी-वि० [फ़ा०] पेट संबंधी । निज का । अपना ।

शिकमी काश्तकार-संज्ञा पुं० [फ़ा०] वह काश्तकार जिसे जोतने के लिये खेत दूसरे काश्तकार से मिला हो । (इसका हक़ ख़ास काश्तकार के हक़ से बहुत कम होता है ।)

शिकरा-संज्ञा पुं० [फ़ा०] एक प्रकार का बाज पक्षी । उ०—कोई शिकरा बाज उड़ाता है, कोई हाथ में रखते तुतली है ।—नज़ीर ।

शिकवा-संज्ञा पुं० [अ०] शिकायत । उलाहना ।

शिकस्त-संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] (१) हार । पराजय । मात । (२) भंग । टूटना । (३) विफलता । असिद्धि ।

मुहा०—शिकस्त देना = पराजित करना । हराना । शिकस्त खाना = पराजित होना । हारना ।

शिकस्ता-वि० [फ़ा०] टूटा हुआ । भग्न ।

संज्ञा स्त्री० उर्दू या फ़ारसी की घसीट लिखावट ।

शिकायत-संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) बुराई करना । गिला । शिकवा । चुगली । (२) किसी भूल, त्रुटि, दोष आदि की बात जो मन में हो । जैसे,—इनसे अब मुझे कोई शिकायत नहीं है । (३) उपालंभ । उलाहना ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

(४) शारीरिक अस्वस्थता। रोग। बीमारी। जैसे,—इसे दस्त की शिकायत है।

मुहा०—शिकायत रफा करना = रोग दूर करना। माँदगी हटाना।

शिकार-संज्ञा पुं० [फ़ा०] (१) जंगली पशुओं को मारने का कार्य्य या क्रीड़ा। आखेट। मृगया। अहेर। जैसे,—शेर का शिकार, हिरन का शिकार।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

(२) वह जानवर जो मारा गया हो। (३) गोश्त। मांस। (४) आहार। भक्ष्य। जैसे,—बिल्ली का शिकार चूहा। (५) कोई ऐसा आदमी जिसके फँसने या वश में होने से बहुत लाभ हो। असामी। जैसे,—बहुत दिनों पर आज एक शिकार फँसा है; कुछ मिल ही जायगा।

मुहा०—शिकार आना = (१) मारने के लिये कोई जानवर मिलना। (२) किसी ऐसे आदमी का मिलना जिससे कुछ लाभ हो। शिकार करना = (१) कोई जानवर मारना। (२) किसी से खूब लाभ उठाना। लूटना। शिकार खेलना = शिकार करना। किसी का शिकार होना = (१) किसी के द्वारा या कारण मारा जाना। जैसे,—न जाने कितने आदमी प्लेग के शिकार हुए। (२) वश में आना। फँसना। (३) किसी पर मोहित होना।

शिकार गड्ढा-संज्ञा पुं० [फ़ा० शिकार + हिं० गड्ढा] वह बड़ा गड्ढा जो शिकारी जानवरों को फँसाने के लिये खोदते हैं।

शिकारगाह-संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] शिकार खेलने का स्थान।

शिकारबंद-संज्ञा पुं० [फ़ा०] वह तसमा जो घोड़े की दुम के पास चारजामे के पीछे शिकार लटकाने या आवश्यक सामान बाँधने के लिये लगाया जाता है।

शिकारी-संज्ञा पुं० [फ़ा०] आखेट करनेवाला। शिकार करनेवाला। अहेरी।

वि० (१) शिकार करनेवाला। जंगली पशुओं को पकड़ने या मारनेवाला। जैसे,—शिकारी कुत्ता। (२) शिकार में काम आनेवाला। जैसे,—शिकारी कोट, शिकारी खेमा।

मुहा०—शिकारी ब्याह = गांधर्व विवाह जो क्षत्रियों में कब तक कहीं कहीं होता है।

शिकाल-संज्ञा पुं० [फ़ा०] वह घोड़ा जिसका अगला दाहिना पैर और पिछला बायाँ पैर सफेद हो। (यह दोषी माना जाता है।)

शिक्थ-संज्ञा पुं० [सं०] मोम। मैन। मधूच्छिष्ट।

शिक्य-संज्ञा पुं० दे० "शिक्या"।

शिक्या-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) बहँगी के दोनों छोरों पर बँधा हुआ रस्सी का जाल जिस पर बोझ रखते हैं। (२) छत में लटकता हुआ रस्सी का जालीदार संपुट जिस पर दूध, दही आदि का मटका रखते हैं। छीका। सीका। सिकहर। (३) तराजू की रस्सी।

शिक्ष-संज्ञा पुं० [सं०] गंधर्वों का एक नायक। रोहित।

शिक्षक-संज्ञा पुं० [सं०] शिक्षा देनेवाला। सिखानेवाला। गुरु। उस्ताद।

शिक्षण-संज्ञा पुं० [सं०] पढ़ाने का काम। तालीम। शिक्षा।

शिक्षा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) किसी विद्या को सीखने या सिखाने की क्रिया। पढ़ने पढ़ाने की क्रिया। सीख। तालीम।

क्रि० प्र०—देना।—पाना।—मिलना।—लेना।

(२) गुरु के निकट विद्या का अभ्यास। विद्या का ग्रहण। (३) दक्षता। निपुणता। (४) उपदेश। मंत्र। सलाह। (५) छः वेदांगों में से एक जिसमें वेदों के वर्ण, स्वर, मात्रा आदि का निरूपण रहता है। मंत्रों के ठीक उच्चारण का विषय।

विशेष—यह विषय कुछ तो ब्राह्मण भाग में आया है और कुछ प्रातिशाख्य सूत्रों में। ऋग्वेद की शिक्षा का ग्रंथ शौनक का "प्रातिशाख्य" सूत्र है। यजुर्वेद के प्रातिशाख्य के दो ग्रंथ मिलते हैं—एक तो आत्रेय, महर्षि और वररुचि संकलित 'त्रिभाष्यरत्न' जो तैत्तिरीय शाखा का है, और दूसरा कात्यायन जी का आठ अध्यायों का 'वाजसनेयी प्रातिशाख्य'।

(६) शासन। दबाव। (७) किसी अनुचित कार्य्य का बुरा परिणाम। सबक। दंड। जैसे,—अच्छी शिक्षा मिली; अब कभी ऐसा काम न करेंगे।

शिक्षाकर-संज्ञा पुं० [सं०] व्यास।

शिक्षाक्षेप-संज्ञा पुं० [सं०] काव्य में एक प्रकार का अलंकार जिसमें शिक्षा द्वारा गमन स्वरूप कार्य्य रोका जाता है। (केशव)

शिक्षागुरु-संज्ञा पुं० [सं०] विद्या पढ़ानेवाला गुरु।

शिक्षाग्राहक-संज्ञा पुं० [सं०] शिक्षा प्राप्त करनेवाला व्यक्ति। पढ़नेवाला। विद्यार्थी। छात्र।

शिक्षादंड-संज्ञा पुं० [सं०] वह दंड जो किसी चाल को छुड़ाने के लिये दिया जाय।

शिक्षापद-संज्ञा पुं० [सं०] (१) उपदेश। (२) बौद्धों के विनय पिटक का एक प्रकरण।

शिक्षा परिषद्-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) वैदिक काल की शिक्षा संस्था या विद्यालय जो एक ऋषि या आचार्य्य के अधीन रहता था और उसी के नाम से प्रसिद्ध होता था। (२) शिक्षा या पढ़ाई का प्रबंध करनेवाली सभा या समिति।

शिक्षार्थी-संज्ञा पुं० [सं० शिक्षार्थिन्] शिक्षा प्राप्त करने की इच्छा रखनेवाला व्यक्ति। विद्यार्थी। तालिब इल्म।

शिक्षालय-संज्ञा पुं० [सं०] वह स्थान जहाँ शिक्षा दी जाय। विद्यालय। पाठशाला।

शिक्षावल्ली-संज्ञा स्त्री० [सं०] तैत्तिरीय उपनिषद् का पहला अध्याय।

शिक्षा विभाग-संज्ञा पुं० [सं० शिक्षा + विभाग] वह सरकारी विभाग जिसके द्वारा शिक्षा का प्रबंध होता है। सरिश्ता तालीम।

शिक्षाव्रत-संज्ञा पुं० [सं०] जैन धर्म के अनुसार गार्हस्थ्य धर्म का एक प्रधान अंग जो चार प्रकार का होता है—(१) सामयिक, (२) देशावकाशिक, (३) पौष और (४) अतिथि संविभाग।

शिक्षाशक्ति-संज्ञा स्त्री० [सं०] ज्ञान प्राप्त करने की शक्ति। मेधा।

शिक्षाहीन-वि० [सं०] जिसे शिक्षा न मिली हो। अशिक्षित। बेपढ़ा। गँवार।

शिक्षित-वि० पुं० [सं०] [स्त्री० शिक्षिता] (१) जिसने शिक्षा पाई हो। पढ़ा लिखा। (२) विद्वान्। पंडित।

शिक्षिताक्षर-संज्ञा पुं० [सं०] वह जिसने विद्या पढ़ी हो। शिक्षित।

शिखंड-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मोर की पूँछ। मयूरपुच्छ। उ०—(क) कुटिल कच भुव तिलक रेखा शीश शिखी शिखंड।—सूर। (ख) सिरनि शिखंड सुमन दल मंडल बाल सुभाय बनाए।—तुलसी। (२) चोटी। शिखा। चुटिया। उ०—सोभित केश विचित्र भाँति दुति शिखि शिखंड हरनी।—सूर। (३) काकपक्ष। काकुल।

शिखंडक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) काकपक्ष। काकुल। (२) मयूरपुच्छ।

शिखंडिक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) कुक्कुट। मुर्गा। (२) एक प्रकार का मानिक (रत्न)।

शिखंडिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] शिखा। चोटी।

शिखंडिनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) मोरनी। मयूरी। (२) जूही। यूथिका। (३) गुंजा। करजनी। घोटली। (४) मुर्गी। (५) द्रुपदराज की एक कन्या जो पीछे पुरुष के रूप में होकर कुरुक्षेत्र के युद्ध में लड़ी थी। कहते हैं कि पूर्व जन्म में यह काशिराज की बड़ी कन्या अंबा थी जिसे भीष्म हर लाए थे। भीष्म से बदला लेने के लिये यह पुरुष रूप में हो गई और महाभारत के युद्ध में लड़ी थी। वि० दे० "शिखंडी"। (६) कश्यप की पुत्री दो अप्सराएँ जो ऋग्वेद के एक मंत्र की द्रष्टा मानी जाती हैं।

शिखंडी-संज्ञा पुं० [सं० शिखंडिन्] (१) पीली जूही। स्वर्ण यूथिका। (२) गुंजा। चिरमिटी। घुँघची। (३) मोर। मयूर पक्षी। (४) मुर्गा। (५) मोर की पूँछ। (६) बाण। (७) विष्णु। (८) कृष्ण। (९) शिव। (१०) शिखा। बालों की चोटी। उ०—शिखंडी शीश मुख मुरली बजावत बन्यो तिलक उर चंदन।—सूर। (११) द्रुपद का एक पुत्र जो पहले कन्या के रूप में उत्पन्न हुआ था, पर पीछे पुरुष के रूप में हो गया था। इसी को आगे करके महाभारत के युद्ध में अर्जुन ने युद्ध के दसवें दिन भीष्म का वध किया था। भीष्म की प्रतिज्ञा थी कि हम किसी स्त्री पर बाण न चलावेंगे। अश्वत्थामा के हाथ से इसका वध हुआ था। वि० दे० "शिखंडिनी"। (१२) राम के दल का एक बंदर। उ०—धुंधमाल गिरि पुनि गए मिले शिखंडी नाम।—विश्राम। (१३) बृहस्पति। (अनेका०)

शिखल-संज्ञा स्त्री० दे० "शिखा"। उ०—फूली फिरत रोहिणी मैया नख शिख कर सिंगार।—सूर।

शिखक-संज्ञा पुं० [सं०] लेखक। मुहर्रिर।

शिखर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सब से ऊपर का भाग। सिरा। चोटी। (२) पहाड़ की चोटी। पर्वत-शृंग। (३) अग्र भाग। (४) मंदिर या मकान के ऊपर का निकला हुआ नुकीला सिरा। कँगूरा। कलश। (५) मंडप। गुंबद। (६) जैनियों का एक तीर्थ। (७) एक अस्त्र का नाम। (८) एक रत्न जो अनार के दाने के समान सफेद और लाल होता है। उ०—श्रीफल सकुचि रहे दुरि कानन शिखर हियो बिहरान।—सूर। (९) कुंद की कली। (१०) लौंग। (११) काँख। बगल। (१२) पुलक। रोमांच। (१३) उँगलियों की एक मुद्रा जो तांत्रिक पूजन में बनाई जाती है।

शिखरणी-संज्ञा स्त्री० दे० "शिखरिणी"।

शिखरदशना-वि० स्त्री० [सं०] जिसके दाँत कुंद की कली के समान हों।

शिखरन-संज्ञा पुं० [सं० शिखरिणी] दही और चीनी का बनाया हुआ एक प्रकार का मीठा पेय पदार्थ या शरबत जिसमें केसर, कपूर तथा मेवे आदि डाले जाते हैं।

शिखरवासिनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] शिखर पर बसनेवाली, दुर्गा।

शिखरा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) मूर्वा। मरोड़फली। मुर्रा। (२) एक गदा जो विश्वामित्र ने रामचंद्र को दी थी।

शिखराद्रि-संज्ञा पुं० [सं०] एक पर्वत का नाम।

शिखरिचरण-संज्ञा पुं० [सं०] चिचड़े की जड़। अपामार्ग मूल।

शिखरिणी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) रसाल। (२) नारी-रत्न। स्त्रियों में श्रेष्ठ। (३) रोमावली। (४) मल्लिका। बेला। मोतिया। (५) नेवारी का पौधा। (६) किशमिश। लघुद्राक्षा। (७) मूर्वा। मरोड़फली। मुरहरी। (८) दही और चीनी का रस। सिखरन। (९) सत्रह अक्षरों की एक वर्ण वृत्ति जिसमें छठे और ग्यारहवें वर्ण पर यति होती है। उ०—शिला पै गेरू तें कुपित ललना तोहि लिखि कै।

शिखरी-संज्ञा पुं० [सं० शिखरिन्] (१) पर्वत। पहाड़। (२) पहाड़ी दुर्ग। (३) वृक्ष। पेड़। (४) अपामार्ग। चिचड़ा। (५) बंदाक। बाँदा। (६) कुंदुरु नामक गंध द्रव्य। (७) लोबान। (८) काकड़ासिंगी। (९) ज्वार। मक्का। (१०) एक प्रकार का मृग।

संज्ञा स्त्री० [सं० शिखरा] एक गदा जो विश्वामित्र ने रामचंद्र को दी थी। शिखरा। उ०—शिखरी कौमोदकी गदा युग दीपति भरी सदाई।—रघुराज।

शिखलोहित-संज्ञा स्त्री० [सं०] कुकुरमुत्ता।

शिखांडक-संज्ञा पुं० [सं०] काकपक्ष।

शिखा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) मुंडन के समय सिर के बीचो बीच छोड़ा हुआ बालों का गुच्छा जो फिर कटाया नहीं जाता और हिंदुओं का एक चिह्न है। चोटी। चुटैया।

यौ०—शिखासूत्र = चोटी और जनेऊ जो द्विजों के चिह्न हैं और जिनका त्याग केवल संन्यासियों के लिये विधेय है।

(२) मोर, मुर्गी आदि पक्षियों के सिर पर उठी हुई चोटी या परों का गुच्छा। चोटी। कलगी। (३) आग की लपट। ज्वाला। (४) दीपक की लौ। टेम। उ०—(क) केशौदास तामें दुरी दीप की शिखा सी दौरि दुरावति नीलवास दुति अँग अंग की।—केशव। (ख) दीप शिखा सम युवति जग मन जनि होसि पतंग।—तुलसी। (५) प्रकाश की किरन। (६) नुकीला छोर या सिरा। नोक। (७) ऊपर को उठा हुआ भाग। चोटी। शिखर। (८) वस्त्र का अंचल। दामन। (९) पैर के पंजे का सिरा। (१०) स्तन का अग्र भाग। चूचक। (११) पेड़ की जड़। (१२) शाखा। डाली। (१३) अधिपति। नायक। (१४) श्रेष्ठ पुरुष। (१५) कलियारी विष। लांगली। (१६) मूर्वा। मरोड़फली। (१७) जटामासी। बालछड़। (१८) वच। (१९) शिफा। (२०) तुलसी। (२१) कामज्वर। (२२) एक वर्णवृत्त जिसके विषम पादों में २८ लघु मात्राएँ और अंत में एक गुरु होता है और सम पादों में ३० लघु मात्राएँ और अंत में एक गुरु होता है।

शिखाकंद-संज्ञा पुं० [सं०] शलजम। शलगम।

शिखातरु-संज्ञा पुं० [सं०] दीप-वृक्ष। दीवट। दीयट।

शिखाधर-संज्ञा पुं० [सं०] मयूर। मोर।

शिखाधार-संज्ञा पुं० [सं०] मयूर। मोर।

शिखापाश-संज्ञा पुं० [सं०] चोटी। चुंदी।

शिखापित्त-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का रोग जिसमें हाथ और पैर की उँगलियों में सूजन और जलन होती है।

शिखाबंधन-संज्ञा पुं० [सं०] सिर के बालों को मिलाकर बाँधने की क्रिया। चोटी बाँधना।

शिखाभरण-संज्ञा पुं० [सं०] सिर का आभूषण, मुकुट।

शिखामणि-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह रत्न जो सिर पर पहना जाय। (२) श्रेष्ठ व्यक्ति।

शिखामूल-संज्ञा पुं० [सं०] वह कंद जिसके ऊपर पत्तियों का गुच्छा हो।

शिखावती-संज्ञा स्त्री० [सं०] मूर्वा। मरोड़फली।

शिखावर-संज्ञा पुं० [सं०] कटहल का वृक्ष। पनस।

शिखावर्त्त-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का यक्ष। (महाभारत)

शिखावल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मोर। मयूर। (२) कलंक।

शिखावान्-वि० [सं० शिखावत्] [स्त्री० शिखावती] शिखावाला। संज्ञा पुं० (१) अग्नि। (२) चित्रक वृक्ष। चीता। (३) केतु ग्रह। (४) मोर। मयूर।

शिखावृक्ष-संज्ञा पुं० [सं०] दीवट। दीयट।

शिखावृद्धि-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह ब्याज जो प्रति दिन बढ़ता जाय। सूद दर सूद।

शिखि-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मोर। मयूर। उ०—चीर करि करिहौं भगौंहीं शिखनि शिखि छवलेस।—सूर। (२) तामस मन्वंतर के इंद्र का नाम। (३) कामदेव। (४) अग्नि। (५) तीन की संख्या।

शिखिकंठ-वि० पुं० [सं०] मोर के कंठ के समान। संज्ञा पुं० तूतिया। नीला थोथा।

शिखिकुंद-संज्ञा पुं० [सं०] कुंदुरु। बिरोजा।

शिखिग्रीव-संज्ञा पुं० [सं०] (१) नीला थोथा। (२) एक प्रकार नीला पत्थर। कांत पाषाण।

शिखिध्वज-संज्ञा पुं० [सं०] (१) धूम्र। धूआँ। (२) कार्त्तिकेय। (३) वह जिस पर अग्नि या मोर का चिह्न बना हो। (४) एक प्राचीन तीर्थ का नाम। (५) मयूरध्वज नामक राजा। उ०—नृपति शिखिध्वज पोढ़शों जीतिगो संसार।—केशव।

शिखिनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) मयूरी। मोरनी। (२) मुर्गी। (३) मुर्गकेश। जटाधारी का पौधा।

शिखिप्रिय-संज्ञा पुं० [सं०] जंगली बेर।

शिखिमंडल-संज्ञा पुं० [सं०] वरुण वृक्ष। तरिया।

शिखिमोदा-संज्ञा स्त्री० [सं०] अजमोदा।

शिखियूप-संज्ञा पुं० [सं०] धीकारी नाम का मृग।

शिखिवर्द्धक-संज्ञा पुं० [सं०] गोल कद्दू। गोल घीया।

शिखिवाहन-संज्ञा पुं० [सं०] कार्त्तिकेय।

शिखिशृंग-संज्ञा पुं० [सं०] चित्र मृग। चित्तीवाला हिरन।

शिखिहिंटी-संज्ञा स्त्री० [सं०] सहदेई। महाबला।

शिखींद्र-संज्ञा पुं० [सं०] (१) तेंदू का पेड़। तिंदुक। (२) आबनूस का पेड़।

शिखी-वि० [सं० शिखिन्] [स्त्री० शिखिनी] शिखावाला। चोटीवाला।

संज्ञा पुं० (१) मोर। मयूर। उ०—कुटिल कच भ्रू तिलक रेखा सीस शिखी शिखंड।—सूर। (२) मुर्गा। (३) एक प्रकार का सारस। (४) बैल। साँड़। (५) घोड़ा। (६) चित्रक। चीते का पेड़। (७) अग्नि। उ०—आतंक और दंडधर, शिखी वरुण दिगपाल।—गुमान। (८) (अग्नि तीन प्रकार की होने के कारण) तीन की संख्या। (९) दीपक। (१०) पित्त। (११) पुच्छल तारा। केतु। (१२)

मेथी। (१३) पर्वत। (१४) वृक्ष। (१५) ब्राह्मण। (१६) सतावर (१७)। बाण। तीर। (१८) जटाधारी साधु। (१९) एक नाग का नाम। (२०) इंद्र। (२१) बगला। बक। (२२) अपामार्ग। ओंगा। चिचड़ा। (२३) एक प्रकार का विष।

शिगाफ-संज्ञा पुं० [फ़ा०] (१) चीरा। नश्तर। (२) दरार। दर्ज। (३) कलम के बीच का चिराव। (४) छेद। सूराख।

मुहा०—शिगाफ देना या लगाना = (१) कलम को चीरना। (२) चीरा लगाना। नश्तर लगना।

शिगूड़ी-संज्ञा स्त्री० [देश०] एक जंगली क्षुप या पौधा जो दवा के काम में आता है।

विशेष—यह चरपरी, गरम तथा वात और पृष्ठ शूल का नाश करनेवाली तथा दूसरी ओषधियों के योग से रसायन और शरीर को दृढ़ करनेवाली कही गई है।

शिगूफ़ा-संज्ञा पुं० [फ़ा०] (१) बिना खिला हुआ फूल। कली। (२) फूल। पुष्प। (३) किसी अनोखी बात का होना। चुटकुला।

मुहा०—शिगूफ़ा खिलाना = बात खड़ी करना। तमाशे के लिये कोई मामला पैदा कर देना। शिगूफ़ा खिलना = कोई ऐसी बात या झगड़ा खड़ा होना जिससे मनोरंजन हो। शिगूफ़ा फूलना = लना। (१) अनोखी बात निकलना। (२) मामला खड़ा होना। शिगूफ़ा छोड़ना = (१) कोई नई या अनोखी बात कहना। (२) तमाशा देखने के लिये कोई मामला खड़ा कर देना।

शिग्रु-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सहिंजन का वृक्ष। शोभांजन। (२) शाक। साग।

शिग्रुज-संज्ञा पुं० [सं०] सहिंजन का बीज।

शिच्-संज्ञा स्त्री० [सं०] [कर्त्ता० शिक्] (१) जूए की रस्सी। (२) बहँगी का छीका या जाल जिस पर बोझ रखा जाता है।

शित-वि० [सं०] (१) कृश। दुर्बल। (२) नुकीला। पतला। (३) चोखा। धारदार।

संज्ञा पुं० विश्वामित्र के गोत्र के एक ऋषि का नाम।

⊛ वि० दे० "सित"।

शितद्रु-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) शतद्रु। सतलज। (२) क्षीर मोरट। मोरट।

शितनिर्गुंडी-संज्ञा स्त्री० [सं०] शेफालिका।

शितपर्ण-संज्ञा पुं० [सं०] मोथा।

शितवर, शितवार-संज्ञा पुं० [सं०] शिरियारी नामक साग।

शितशाक-संज्ञा पुं० [सं०] शालिंच शाक। शालि शाक।

शिताद्रिकर्णी-संज्ञा स्त्री० [सं०] विष्णुक्रांता लता। अपराजिता। कोयल।

शिताफल-संज्ञा पुं० [सं०] शरीफा। सीताफल।

शिताब-क्रि० वि० [फ़ा०] सत्वर। शीघ्र।

शिताबी-संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] (१) शीघ्रता। जल्दी। (२) तेज़ी। हड़बड़ी।

शितावर-संज्ञा पुं० [सं० शतावर] (१) बकुची। सोमराजी। (२) शिरियारी। (३) सतावर।

शितावरी-संज्ञा स्त्री० दे० "शतावर"।

शिति-वि० [सं०] (१) सफेद। शुक्ल। श्वेत। (२) काला। कृष्ण। नीला।

यौ०—शितिकंठ।

संज्ञा पुं० भोजपत्र।

शितिकंठ-संज्ञा पुं० [सं०] (१) दात्यूह पक्षी। मुर्गाबी। जलकाक। (२) पपीहा। चातक। (३) मोर। मयूर। (४) नाग देवता। (५) शिव। महादेव।

शितिकुंभ-संज्ञा पुं० [सं०] कनेर का पेड़। करवीर वृक्ष।

शितिकेश-संज्ञा पुं० [सं०] स्कंद के एक अनुचर का नाम।

शितिचंदन-संज्ञा पुं० [सं०] कस्तूरी।

शितिचार-संज्ञा पुं० [सं०] शिरियारी नामक साग।

शितिच्छद-संज्ञा पुं० [सं०] हंस।

शितिपक्ष-संज्ञा पुं० [सं०] हंस।

शितिपृष्ठ-संज्ञा पुं० [सं०] एक नाग जो एक यज्ञ में मैत्रावरुण बना था।

शितिमूलक-संज्ञा पुं० [सं०] खस। उशीर।

शितिरत्न-संज्ञा पुं० [सं०] नीलमणि। नीलम।

शितिसार, शितिसारक-संज्ञा पुं० [सं०] तिंदुक वृक्ष। तेंदू।

शितीषु-संज्ञा पुं० [सं०] वैदिक देवता उशना के एक पुत्र का नाम।

शित्पुट-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बिल्ली की जाति का एक जानवर। (२) एक प्रकार का काला भौंरा।

शिथिल-वि० [सं०] (१) जो कसा या जकड़ा न हो। जो खूब बँधा न हो। ढीला। (२) सुस्त। मंद। धीमा। (३) जिसमें और शक्ति न रह गई हो। थका हुआ। हारा हुआ। श्रांत। उ०—देह शिथिल भई उठ्यो न जाई।—सूर। (४) जो कार्य्य में पूर्ण तत्पर न हो। जो पूरा मुस्तैद न हो। आलस्ययुक्त। जैसे,—कार्य्य में शिथिल पड़ना। (५) जो अपनी बात पर खूब जमा न हो। अदृढ़। (६) जिसका पालन कड़ाई के साथ न हो। जिसकी पूरी पाबंदी न हो। जैसे,—नियम शिथिल होना। (७) जो साफ़ सुनाई न दे। अस्पष्ट। (शब्द) (८) जो पूरे दबाव में न रखा गया हो। छोड़ा हुआ।

क्रि० प्र०—करना।—पड़ना।—होना।

शिथिलता-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) कसे या जकड़े न रहने का भाव। ढीलापन। ढिलाई। (२) थकावट। थकान। श्रांति। (३) मुस्तैदी का न होना। अतत्परता। आलस्य।

(४) नियम-पालन की कड़ाई का न होना। (५) शक्ति की कमी। सामर्थ्य की त्रुटि। (६) वाक्यों में शब्दों का परस्पर गठा हुआ अर्थ-संबंध न होना। (७) तर्क में किसी अवयव का अभाव।

शिथिलाई*†–संज्ञा स्त्री० दे० "शिथिलता"।

शिथिलाना*–क्रि० अ० [सं० शिथिल + आना (प्रत्य०)] (१) शिथिल होना। ढीला पड़ना। (२) थकना। श्रांत होना। उ०—करत सिंगार परस्पर दोऊ अति आलस शिथिलाने।—सूर।

शिथिलित–वि० [सं०] जो शिथिल हो गया हो। ढीला पड़ा हुआ।

शिथिलीकरण–संज्ञा पुं० [सं०] [वि० शिथिलीकृत] शिथिल करना। ढीला करना।

शिथिलीभूत–वि० [सं०] जो शिथिल हो गया हो। ढीला पड़ा हुआ।

शिद्दत–संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) तेज़ी। ज़ोर। उग्रता। प्रचंडता। (२) अधिकता। ज्यादती। जैसे,—शिद्दत की गरमी या बुख़ार।

शिना–संज्ञा पुं० [सं०] भुइँ आँवला।

शिनाख्त–संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] (१) यह निश्चय कि अमुक वस्तु या व्यक्ति यही है। पहचान। जैसे,—तुम अपने माल की शिनाख़्त कर लो। (२) स्वरूप या गुण का बोध। असल-नकल, अच्छा-बुरा जान लेने की बुद्धि। परख। तमीज़। जैसे,—तुम्हें आदमी की शिनाख़्त नहीं है।

शिनि–संज्ञा पुं० [सं०] (१) गर्ग ऋषि के पुत्र का नाम। (२) क्षत्रियों का एक भेद। (३) एक यादव वीर का नाम।

विशेष—इन्होंने वसुदेव के लिये देवकी का बलपूर्वक हरण किया था। इस कारण इन का सोमदत्त के साथ भयंकर युद्ध हुआ था। इनके पुत्र का नाम सत्यक और पौत्र का सात्यकि था जो पांडवों की ओर से महाभारत में लड़ा था।

शिनिबाहु–संज्ञा पुं० [सं०] एक नदी का नाम। (वायुपुराण)

शिपि–संज्ञा पुं० [सं०] रश्मि। किरण।

संज्ञा स्त्री० [सं०] चमड़ा। खाल।

शिपिविष्ट–संज्ञा पुं० [सं०] कुष्टी। कोढ़ी।

शिपुरगट्टी–संज्ञा स्त्री० [ता०] एक प्रकार का पौधा जिसकी छाल के रेशे बुरुश बनाने के काम में आते हैं।

शिफर‡*–संज्ञा पुं० [फ़ा० सिपर] ढाल। उ०—सतऍ शिफर सुघरघ बनाई। बान वृष्टि तिन सबै बचाई।—हनुमन्नाटक।

शिफा–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) एक वृक्ष की रेशेदार जड़ जिससे प्राचीन काल में कोड़े बनते थे। (२) कोड़े की फटकार। चाबुक की मार। (३) माता। (४) हरिद्रा। हलदी। (५) कमल की जड़। पद्मकंद। भसींड़। (६) जटा। (७) नदी। (८) एक प्राचीन नदी का नाम। (९) मांसिका। जटामासी। (१०) शिखा। चोटी।

शिफाकंद–संज्ञा पुं० [सं०] कमल की जड़। भसींड़।

शिफाक–संज्ञा पुं० [सं०] पद्ममूल। भसींड़।

शिफाधर–संज्ञा पुं० [सं०] डाल। शाखा।

शिफारुह–संज्ञा पुं० [सं०] बरगद का पेड़। वट वृक्ष।

शिमाल–संज्ञा स्त्री० [अ०] [वि० शिमाली] उत्तर दिशा।

शिम्बुड़ी–संज्ञा स्त्री० [सं०] चंगोनी या विगोनी नाम का पौधा।

शिया–संज्ञा पुं० [अ० शीआ] (१) मददगार। सहायक। (२) अनुयायी। (३) मुसलमानों के दो प्रधान और परस्पर विरोधी संप्रदायों में से एक। हज़रत अली को पैगंबर का ठीक उत्तराधिकारी माननेवाला संप्रदाय।

विशेष—उमर, अबूबक आदि जो चार ख़लीफ़ा मुहम्मद साहब के पीछे हुए हैं, उन्हें इस संप्रदाय के लोग अनधिकारी मानते हैं तथा पैगंबर के बाद अली और उनके बेटों हसन और हुसेन को ही आदर का स्थान देते हैं। मुहर्रम के महीने में ये अब तक हसन हुसैन के वीरगति को प्राप्त होने के दिनों में शोक मनाते हैं।

शिरःकपाली–संज्ञा पुं० [सं०] कापालिक संन्यासी।

शिरःखंड–संज्ञा पुं० [सं०] माथे की हड्डी। कपालास्थि।

शिरःपीड़ा–संज्ञा स्त्री० [सं०] सिर का दर्द। माथे की पीड़ा।

विशेष—आयुर्वेद में ११ प्रकार के और यूनानी में १९ प्रकार के शिरोरोग कहे गए हैं; परंतु कोई कोई २१ प्रकार के सिरदर्द बताते हैं। आयुर्वेद के अनुसार वातज, पित्तज, कफज, सन्निपातज, रक्तज, क्षयज, कृमिज, सूर्य्यावर्त्त, अनंतवात, अर्द्धाव-भेदक और शंखक ये ११ प्रकार के शिरोरोग होते हैं।

शिरःफल–संज्ञा पुं० [सं०] नारिकेल वृक्ष। नारियल।

शिरःशूल–संज्ञा पुं० [सं०] सिर की पीड़ा।

शिर–संज्ञा पुं० [सं० शिरस्] (१) सिर। कपाल। मुंड। खोपड़ा। (२) मस्तक। माथा। (३) किसी वस्तु का सब से ऊँचा भाग या अंग। सिरा। चोटी। (४) शिखर। (५) सेना का अग्र भाग। (६) पद्य के चरण का आरंभ। टीका। (७) मुखिया। प्रधान। अगुआ। (८) पिप्पली मूल। पिपरा मूल। (९) शय्या। (१०) विस्तार। (११) अजगर।

शिरकत–संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) किसी वस्तु के अधिकार में भाग। सम्मिलित अधिकार। साझा। हिस्सा। (२) किसी कार्य्य में योग। किसी काम या व्यवसाय में शामिल होना। जैसे,—उनकी शिरकत से यह काम होगा।

शिरखिस्त–संज्ञा पुं० [फ़ा० शीरख़िश्त] एक वृक्ष का गोंद जो औषध के काम में आता है और जिसे साधारणतः लोग भ्रम से बनी चीनी मानते हैं।

शिरगोला-संज्ञा पुं० [देश०] दुग्धपाषाण नामक वृक्ष।

शिरज-संज्ञा पुं० [सं०] केश। बाल।

शिरत्रान-संज्ञा पुं० दे० "शिरस्त्राण"। उ०—टूटत धुजा पताक छत्र रथ चाप चक्र शिरत्रान।—सूर।

शिरनेत-संज्ञा पुं० [देश०] (१) गढ़वाल या श्रीनगर के आस पास का प्रदेश। उ०—सुनि सिधाय शिरनेतन देशू। तहँ विवाह किया ब्रह्मनरेशू।—कबीर। (२) क्षत्रियों की एक शाखा।

शिरपेंच-संज्ञा पुं० दे० "सिरपेंच"।

शिरफूल-संज्ञा पुं० [हिं० शिर+फूल] सिर में पहनने का स्त्रियों का आभूषण। सीसफूल। उ०—माँग फूल शिरफूल सब, वेनी फूल बनाव।—केशव।

शिरमौर-संज्ञा पुं० [सं० शिरस्+सं० मुकुट, प्रा० मउड़] (१) शिरोभूषण। मुकुट। (२) श्रेष्ठ व्यक्ति। मुख्य व्यक्ति। प्रधान। (३) अधिपति। नायक।

शिरश्चंद्र-संज्ञा पुं० [सं०] महादेव। शिव।

शिरसिज-संज्ञा पुं० [सं०] केश। बाल।

शिरसिरुह-संज्ञा पुं० [सं०] केश। बाल।

शिरस्त्राण-संज्ञा पुं० [सं०] युद्ध आदि के समय सिर के बचाव के लिये पहनी जानेवाली लोहे की टोपी। कूँड़। खोद।

शिरहन*†-संज्ञा पुं० [हिं० शिर+आधान] (१) उसीसा। तकिया। (२) सिरहाना। मुड़वारी। उ०—(क) शिरहन और चरण की सोवन लगी अवधि नहिं जानी।—रघुराज। (ख) ताके हृदय गर्व नहिं थोरा। बैठेउ जाइ शिरहने ओरा।—सबल।

शिरा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) रक्त की छोटी नाड़ी। खून की छोटी नली। वि० दे० "नाड़ी"। (२) पानी का सोता या धारा। (३) जाल के समान गुथी हुई रेखाएँ। (४) पानी खींचने का डोल। (५) पृथ्वी के भीतर भीतर बहनेवाला पानी का सोता।

विशेष—आठो दिशाओं के स्वामियों के नाम से आठ शिराएँ प्रसिद्ध हैं—जैसे,—आग्नेयी, ऐंद्री, याम्या। बीच में सब से बड़ी शिरा या महाशिरा है। इनके अतिरिक्त और भी बहुत सी शिराएँ हैं।

संज्ञा पुं० [देश०] भूरे रंग का एक पक्षी जिसका सिर किरमिज़ी रंग का तथा पूँछ सफेद होती है। इसकी लंबाई १२ अंगुल के लगभग होती है। यह कुमाऊँ, काश्मीर और अफगानिस्तान में होता है और भटकटैया के बीज खाता है।

शिराकत-संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) साझा। हिस्सेदारी। (२) कार्य्य में योग।

शिराकतनामा-संज्ञा पुं० [अ०+फ़ा०] वह कागज़ जिस पर साझे की बातें लिखी हों।

शिराग्रह-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का वात रोग जिसमें वायु रुधिर के साथ मिलकर गले की नसों को काला कर देती है।

शिराज-संज्ञा स्त्री० [देश०] हिंदुओं की एक जाति जो चमड़े का काम बहुत अच्छा करती है।

शिराजाल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) छोटी रक्त नाड़ियों का समूह। (२) आँख का एक रोग जिसमें लाल डोरे मोटे और कड़े पड़ जाते हैं।

शिरापत्र-संज्ञा पुं० [सं०] (१) पीपल का पेड़। (२) एक प्रकार का खजूर। हिंताल। (३) कैथ का पेड़। कपित्थ।

शिरापिड़िका-संज्ञा स्त्री० [सं०] आँख का एक रोग जिसमें पुतली के पास एक फुंसी निकल आती है।

शिराप्रहर्ष-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का नेत्र-रोग।

शिराफल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) नारियल। (२) अंजीर।

शिरामूल-संज्ञा पुं० [सं०] नाभि।

शिरायु-संज्ञा पुं० [सं०] रीछ। भालू।

शिरालक-वि० [सं०] बहुत नसों या नाड़ियोंवाला।

संज्ञा पुं० एक प्राचीन जाति का नाम।

शिरालक-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का पौधा जिसे हाड़ा माँग कहते हैं।

शिराला-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) एक प्रकार का पौधा। (२) कमरख।

शिराविका पीड़का-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह घातक फुंसी जो बहुमूत्र के रोगियों को निकलती है। प्रमेह पीड़िका।

शिरावृत्त-संज्ञा पुं० [सं०] सीसा नामक धातु।

शिराहर्ष-संज्ञा पुं० [सं०] (१) नसों का झनझनाना। (२) आँख का एक रोग जिसमें आँख ताँबे के समान लाल हो जाती है और दिखाई नहीं पड़ता।

शिरि-संज्ञा पुं० [सं०] (१) खड्ग। तलवार। (२) शर। (३) शलभ। पतिंगा। (४) टिड्डी।

शिरियारी-संज्ञा स्त्री० [देश०] एक जंगली बूटी या शाक जो औषध के काम में आता है। सुसना। सुनिषण्णक।

विशेष—यह तर जगह में होता है। इसमें चँगेरी के समान एक साथ चार चार पत्ते होते हैं जो एक अंगुल चौड़े और नोकदार होते हैं। पत्तों के बीच में कली लगती है। फलों में दो चिपटे बीज होते हैं जो कुछ रोईंदार होते हैं। ये बीज सुज़ाक में दिए जाते हैं। शिरियारी पंजाब और सिंध में अधिक होती है। वैद्यक में यह कसैली, रूखी, शीतल, हलकी, स्वादिष्ट, शुक्रजनक, रुचिकारी, मेधाजनक और त्रिदोष-नाशक कही गई है। इसका साग भी लोग खाते हैं।

शिरीष-संज्ञा पुं० [सं०] सिरस का पेड़।

शिरीषक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सिरिस का पेड़। (२) एक नाग का नाम

शिरीपपत्रिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] सफ़ेद कटमी का पौधा।
शिरीषी-संज्ञा पुं० [सं० शिरीषिन्] विश्वामित्र के एक पुत्र का नाम।
शिरुआरी-संज्ञा स्त्री० दे० "सिरियारी"।
शिरोगुहा-संज्ञा स्त्री० [सं०] शरीर के तीन घटों या कोठों में से एक जिसमें मस्तिष्क और सुषुम्ना नाड़ी का सिरा रहता है। सिर के भीतर का भाग।
शिरोगृह-संज्ञा पुं० [सं०] अट्टालिका। कोठा।
शिरोगेह-संज्ञा पुं० [सं०] अट्टालिका। कोठा।
शिरोग्रह-संज्ञा पुं० [सं०] सिर का एक वात रोग। समल वाई।
शिरोज-संज्ञा पुं० [सं०] बाल। केश।
शिरोदाम-संज्ञा पुं० [सं० शिरोदामन्] पगड़ी। साफ़ा।
शिरोधरा-संज्ञा स्त्री० [सं०] ग्रीवा। गरदन।
शिरोधाम-संज्ञा पुं० [सं०] चारपाई का सिरहाना।
शिरोधार्य्य-वि० [सं०] (१) सिर पर धरने योग्य। आदर-पूर्वक मानने के योग्य। सादर अंगीकार करने योग्य।
मुहा०—शिरोधार्य्य करना=(१) सिर पर धारण करना। सिर माथे चढ़ाना। (२) आदरपूर्वक स्वीकार करना। आदर के साथ मानना। जैसे,—आज्ञा शिरोधार्य्य करना।
शिरोधि-संज्ञा स्त्री० [सं०] ग्रीवा। गरदन।
शिरोधिजा-संज्ञा स्त्री० [सं०] शिरा। नस। नाड़ी।
शिरोपाव-संज्ञा पुं० दे० "सिरोपाव"।
शिरोभूषण-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सिर पर पहनने का गहना। जैसे,—सीस फूल। (२) मुकुट। (३) शिरोमणि। श्रेष्ठ व्यक्ति।
शिरोभ्यंग-संज्ञा पुं० [सं०] सिर में तेल लगाने की क्रिया।
शिरोमणि-संज्ञा पुं० स्त्री० [सं०] (१) सिर पर का रत्न। चूड़ामणि। (२) श्रेष्ठ व्यक्ति। सब से उत्तम मनुष्य। सिरताज। मुखिया। प्रधान। (३) माला में सुमेरु।
शिरोमर्मा-संज्ञा पुं० [सं० शिरोमर्मन्] जंगली सूअर। शूकर।
शिरोमाली-संज्ञा पुं० [सं० शिरोमालिन्] मुंड की माला धारण करनेवाले, शिव। महादेव।
शिरोमौलि-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सिर का रत्न। (२) श्रेष्ठ व्यक्ति।
शिरोरक्षी-संज्ञा पुं० [सं० शिरोरक्षिन्] सदा राजा के साथ रहनेवाला रक्षक। बाडी गार्ड।
शिरोरत्न-संज्ञा पुं० [सं०] शिरोमणि।
शिरोरुजा-संज्ञा स्त्री० [सं०] सप्तपर्ण वृक्ष। सतिवन।
शिरोरुह-संज्ञा पुं० [सं०] सिर के ऊपर के बाल। केश।
शिरोवल्ली-संज्ञा स्त्री० [सं०] मोर या मुरगे की चोटी। कलगी।
शिरोवस्ति-संज्ञा पुं० [सं०] वातज सिर के दर्द का एक उपचार।
विशेष—दर्द के थमे हुए भारे से सिर पर बाड़ या सोलह अंगुल की बाड़ बाँधकर बीच में गरम तेल भर दे और चार घड़ी रखकर निकाल डाले। इससे वातज शिरोरोग, कर्णरोग, ग्रीवा रोग और दाढ़ के रोग ४, ५ दिन के सेवन से अच्छे हो जाते हैं।
शिरोवृत्त-संज्ञा पुं० [सं०] गोल मिर्च। काली मिर्च।
शिरोवृत्तफल-संज्ञा पुं० [सं०] लाल लौंगा। रक्त अपामार्ग। लाल चिचड़ा।
शिरोवेष्ट-संज्ञा पुं० [सं०] उष्णीष। पगड़ी। साफ़ा।
शिरोहर्त्ति-संज्ञा स्त्री० [सं०] सिर की पीड़ा। सिर का दर्द।
शिरोहर्ष-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का नेत्र रोग जो शिरोत्पात की चिकित्सा न करने से हो जाता है।
शिरोहारी-संज्ञा पुं० [सं० शिरोहारिन्] (१) सिरों की माला पहननेवाले, शिव। महादेव।
शिलंडी-संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की घास जो सिंध, बलोचिस्तान, दक्षिण, मलाबार और लंका आदि के रेतीले स्थानों में बहुतायत से पाई जाती है। भारत से बाहर यह अरब और उत्तरी तथा मध्य अमेरिका में भी होती है। यह घास जिस स्थान पर होती है, उस स्थान पर जमीन में बाजरे की तरह के एक प्रकार के दाने भी होते हैं, जो पौधों से बिलकुल स्वतंत्र और अलग होते हैं। गरीब लोग इन दानों को उबालकर अथवा इनका आटा बनाकर खाते हैं। बीद।
शिलंधिर-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन गोत्र-प्रवर्त्तक ऋषि का नाम।
शिलंब-संज्ञा पुं० [सं०] (१) जुलाहा। तंतुवाय। (२) बुद्धिमान्। समझदार।
शिल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) दे० "उंछ"। (२) पारियात्र के एक पुत्र का नाम।
संज्ञा स्त्री० (१) दे० "शिला"। (२) दे० "सिल"।
शिलक-संज्ञा पुं० [सं०] वैदिक काल के एक ऋषि का नाम।
शिलगर्भज-संज्ञा पुं० [सं०] पाषाण-भेद। पखानभेद।
शिलज-संज्ञा पुं० [सं०] शैलज। भूरि छरीला।
शिलरति-संज्ञा पुं० [सं०] वह जो उंछ वृत्ति के द्वारा जीविका निर्वाह करता हो। उंछशील।
शिलपट-संज्ञा स्त्री० दे० "सिलवट"।
शिलवाहा-संज्ञा स्त्री० दे० "सिलावहा"।
शिलांजनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] कालांजनी वृक्ष। काली कपास।
शिलांत-संज्ञा पुं० [सं०] अश्मंतक वृक्ष।
शिला-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) पाषाण। पत्थर। (२) पत्थर का बड़ा चौड़ा टुकड़ा। चट्टान। सिल। (३) मनःशिला। मैनसिल। (४) कपूर। (५) शिलाजीत। (६) गेरू। (७) नील का पौधा। (८) हरीतकी। हर्रे। (९) गोरोचन। (१०) दूब। (११) पत्थर की कंकड़ी अथवा बटिया। (१२) भूमि

में पड़ा हुआ एक एक दाना बीनने का काम। उंछवृत्ति। उ०—बीन्यो शिला क्षुधा वश छीना।—रघुराज। (१२) दे० "शिरा"।

शिलाकर्णी-संज्ञा स्त्री० [सं०] शल्लकी वृक्ष। सलई।

शिलाकुट्टक-संज्ञा पुं० [सं०] पत्थर तोड़ने की छेनी।

शिलाकुसुम-संज्ञा पुं० [सं०] शिलाजीत।

शिलाक्षार-संज्ञा पुं० [सं०] चूना।

शिलाचक्र-संज्ञा पुं० [सं०] शालग्राम की मूर्त्ति।

शिलाचय-संज्ञा पुं० [सं०] पर्वत। पहाड़।

शिलाज-संज्ञा पुं० [सं०] (१) छरीला। पत्थर का फूल। (२) लोहा। (३) शिलाजीत।

शिलाजतु-संज्ञा पुं० [सं०] शिलाजीत।

शिलाजा-संज्ञा स्त्री० [सं०] सफेद रंग का पत्थर। संगमरमर।

शिलाजीत-संज्ञा पुं० स्त्री० [सं० शिलाजतु] काले रंग की एक प्रसिद्ध ओषधि जिसे कुछ लोग मोमियाई भी कहते हैं।

विशेष—सुश्रुत के अनुसार यह ग्रीष्म ऋतु में सूर्य्य की किरणों से तपी हुई शिलाओं का रस है। निघंटु के अनुसार यह दो प्रकार का होता है—एक पर्वतों से निकलता है; और दूसरा खारी जमीन में मिट्टी और पानी के योग से बनता है। रस रत्नाकर इसकी उत्पत्ति सोने, चाँदी, लोहे और ताँबे से मानता है। परंतु यह प्रायः पहाड़ों पर या लोहे की खानवाले गड्ढे में ही मिलता है। शास्त्रों के अनुसार यह छः प्रकार का होता है। रस-रत्न के अनुसार यह दो प्रकार का होता है। एक वह जिसमें से गोमूत्र के समान गंध आती है। यह साधारणतः बहुत मिलता है। और दूसरा कपूर के समान सफेद होता है। इसमें से किसी प्रकार की गंध नहीं आती। इसका रंग कई प्रकार का होता है। विंध्याचल का शिलाजीत सब से उत्तम कहा जाता है। इसको रासायनिक रीति से शुद्ध करके ओषधि के काम में लाते हैं। यह बड़ा ही गुणकारी और शक्तिवर्धक होता है। अनुपान भेद के अनुसार नाना प्रकार के रोगों के लिये इसका प्रयोग किया जाता है। वैद्यक के अनुसार यह कड़वा, चरपरा, गरम, रसायन, छेदन, योगवाही, कफ, मेद, पथरी, शर्करा, सूजाक, क्षय, श्वास, वातरक्त, बवासीर, पांडुरोग, मृगी, उन्माद, खाँसी इत्यादि रोगों का नाश करनेवाला माना गया है।

पुराणों के अनुसार देवासुर संग्राम के समय जब अमृत निकालने के लिये देवताओं और राक्षसों ने समुद्र को, मंदराचल पर्वत को मथानी बनाकर मथा, तब शेषनाग के श्वास और मथने की गरमी से पर्वत के भीतर की धातुएँ पिघल गईं और पसीने के रूप में बहने लगीं। उसी स्राव का नाम शिलाजीत, गिरिस्वेद या शिलामल हुआ। पीछे से देवताओं ने ब्रह्मा और इंद्र का पूजन कर मनुष्यों के कल्याणार्थ मंदराचल का वही पसीना अन्य पर्वतों को दे दिया।

पर्य्या०—अगज। अद्रिज। शीतपुष्पक। अश्मलाक्षा। जत्वश्मक। गैरेय। अर्थ्य। गिरिज। अश्मज।

शिलाटक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बहुत बड़ा मकान। अट्टालिका। (२) मकान के सब से ऊपरी भाग में बना हुआ छोटा कमरा। चौबारा। (३) किसी इमारत के चारों ओर बना हुआ बड़ा घेरा। चहारदीवारी। परकोटा। (४) गड्ढा।

शिलाटिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] रक्त पुनर्नवा। लाल गदहपूरना।

शिलात्मज-संज्ञा पुं० [सं०] लोहा।

शिलात्मिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] सोना या चाँदी गलाने की घरिया।

शिलात्व-संज्ञा पुं० [सं०] शिला का भाव या धर्म्म।

शिलात्वच्-संज्ञा स्त्री० [सं०] शिला या पत्थर नाम की ओषधि।

शिलाद-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन ऋषि का नाम।

शिलादद्रु-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शैलेय नामक गंध द्रव्य। छरीला। (२) शिलाजीत।

शिलादान-संज्ञा पुं० [सं०] पुराणों के अनुसार वह दान जिसमें किसी ब्राह्मण को शालग्राम की मूर्त्ति दी जाती है।

शिलादित्य-संज्ञा पुं० दे० "हर्षवर्धन"।

शिलाद्रु-संज्ञा पुं० [सं०] शैलेय नामक गंध द्रव्य। छरीला।

शिलाधातु-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सोनगेरू। (२) खरिया मिट्टी। (३) चीनी। शक्कर।

शिलानिर्यास-संज्ञा पुं० दे० "शिलाजीत"।

शिलानीड़-संज्ञा पुं० [सं०] गरुड़।

शिलापट्ट-संज्ञा पुं० [सं०] (१) पत्थर की चट्टान। उ०—धरी तेरे ही काज यह शिलापट्ट विधि लाय।—सीताराम। (२) मसाला आदि पीसने की सिल।

शिलापुत्र-संज्ञा पुं० [सं०] बट्टा जिससे सिल पर कोई चीज पीसी जाती है।

शिलापुष्प-संज्ञा पुं० [सं०] (१) छरीला। शैलेय। पत्थर का फूल। (२) दे० "शिलाजीत"।

शिलाप्रसून-संज्ञा पुं० [सं०] शैलज या छरीला नामक गंध द्रव्य।

शिलाबंध-संज्ञा पुं० [सं०] वह प्राचीर या परकोटा जो पत्थरों के टुकड़ों से बना हो।

शिलामय-संज्ञा पुं० [सं०] छरीला। शैलज।

शिलाभिष्यंद-संज्ञा पुं० [सं०] शिलाजीत।

शिलाभेद-संज्ञा पुं० [सं०] (१) पाषाण भेदी वृक्ष। पखानभेद। (२) पत्थर तोड़ने की छेनी।

शिलामल-संज्ञा पुं० [सं०] शिलाजीत।

शिलायु-संज्ञा पुं० [सं०] गले में होनेवाला एक प्रकार का रोग। इसमें कफ और रक्त के कुपित होने से गले में आँवले की गुठली के समान गाँठ उत्पन्न होती है जिसमें बहुत पीड़ा होती है। इसके कारण खाया हुआ अन्न गले में अटकता है। इसको गिलायु भी कहते हैं।

शिलायूप-संज्ञा पुं० [सं०] महाभारत के अनुसार विश्वामित्र के एक पुत्र का नाम।

शिलारंभा-संज्ञा स्त्री० [सं०] कठ केला। काष्ठ कदली।

शिलारस-संज्ञा पुं० [सं०] लोहबान की तरह का एक प्रकार का सुगंधित गोंद।

विशेष—कुछ लोग इसे खनिज भी मानते हैं; पर वास्तव में यह एक वृक्ष का गोंद अथवा जमा हुआ दूध है। इसका वृक्ष पूरबी बंगाल, आसाम, भूटान, पेगू, चीन, मलाया, मेरगुई, जावा और यूनान में पाया जाता है। इसका वृक्ष ६० से १०० फुट तक ऊँचा होता है। इसके पत्ते ४½ इंच तक लंबे, जड़ की ओर गोलाकार, अनीदार और किंचित् बारीक कँगूरेदार होते हैं। शाखाओं के अंत में घुंडीदार फूल होते हैं। फल गोलाकार होते हैं जिनमें बीजों की अधिकता होती है। वैद्यक के अनुसार यह कड़वा, चरपरा, स्वादिष्ट, स्निग्ध, गरम, सुगंधित, वर्ण को सुंदर करनेवाला और त्रिदोष आदि को शांत करनेवाला होता है।

शिलालेख-संज्ञा पुं० [सं०] पत्थर पर लिखा या खोदा हुआ कोई प्राचीन लेख। पुराने लेख जो पत्थरों पर लिखे हुए पाए जाते हैं और जिनमें किसी प्रकार का अनुशासन या दान आदि उल्लिखित होता है।

शिलावर्षी-संज्ञा पुं० [सं० शिलावर्षिन्] पुराणानुसार एक पर्वत का नाम।

वि० पत्थर बरसानेवाला।

शिलावल्का-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की ओषधि जिसे शिलजा और श्वेता भी कहते हैं।

शिलावह-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्राचीन जनपद का नाम। (२) इस जनपद का निवासी।

शिलावहा-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्राचीन नदी का नाम।

शिलावृष्टि-संज्ञा स्त्री० [सं०] आकाश से ओले या पत्थर गिरना।

शिलावेश्म-संज्ञा पुं० [सं० शिलावेश्मन्] (१) कंदरा। गुफा। (२) पत्थर का बना हुआ मकान।

शिलाव्याधि-संज्ञा पुं० दे० "शिलाजीत"।

शिलासन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शैलेय नामक गंध द्रव्य। (२) पत्थर का बना हुआ आसन। (३) शिलाजीत।

शिलासार-संज्ञा पुं० [सं०] लोहा।

शिलास्वेद-संज्ञा पुं० [सं०] शिलाजीत।

शिलाहरि-संज्ञा पुं० [सं०] शालिग्राम की मूर्ति। उ०—मृग मुनि कहा शिलाहरि ओहू। काहु पान कछु दोष न होई।—विश्राम।

शिलाहारी-संज्ञा पुं० [सं० शिलाहारिन्] वह जो शिल या उंछ वृत्ति से अपना निर्वाह करता हो। उंछशील।

शिलाह्व, शिलाह्वय-संज्ञा पुं० [सं०] शिलाजीत।

शिलिंद-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की मछली जिसका मांस बहुत स्वादिष्ट होता है और वैद्यक के अनुसार श्लेष्मावर्द्धक, हृद्य और वात-पित्तनाशक माना जाता है।

शिलि-संज्ञा पुं० [सं०] भोजपत्र। भूर्ज वृक्ष।

संज्ञा स्त्री० चौखट के नीचे की लकड़ी। डेहरी। देहली।

शिलिन-संज्ञा पुं० [सं०] वैदिक काल के एक ऋषि का नाम।

शिलींध्र-संज्ञा पुं० [सं०] (१) केले का फूल। (२) ओला। बनौरी। (३) शिलिंद नामक मछली। (४) भुइँछत्ता। कुकुरमुत्ता। (५) कठकेला।

शिलींध्रक-संज्ञा पुं० [सं०] कुकुरमुत्ता। खुमी।

शिलींध्री-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) केंचुआ। गंडूपदी। (२) मिट्टी। (३) एक प्रकार की चिड़िया।

शिली-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) देहलीज। (२) केंचुआ। गंडूपदी। (३) भोजपत्र। (४) बाण। (५) भाला। (६) मंडूक। मेंढक।

शिलीपद-संज्ञा पुं० [सं०] फीलपाँव नामक रोग। श्लीपद।

शिलीमुख-संज्ञा पुं० [सं०] (१) भ्रमर। भौंरा। उ०—(क) कुँवरि भ्रमित श्रीखंड अहि भ्रम चरण शिलीमुख काम।—सूर। (ख) कुंचित अलक शिलीमुख मानो है मकरंद निदान।—सूर। (२) बाण। तीर। उ०—न दौंन भगे जिन जानि शिलीमुख पंच धरे रतिनायक है।—तुलसी। (३) युद्ध। समर। लड़ाई। (४) मूर्ख। बेवकूफ।

शिलु-संज्ञा पुं० [सं०] लिसोड़ा। बहुवार वृक्ष।

शिलूष-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्राचीन ऋषि जो नाट्यशास्त्र के आचार्य माने जाते हैं। (२) बेल का वृक्ष।

शिलेय-वि० [सं०] शिला संबंधी। शिला का।

संज्ञा पुं० शिलाजीत।

शिलोंछ-संज्ञा पुं० [सं०] फसल कट जाने पर खेत में गिरे पड़े दाने चुनकर जीवन निर्वाह करने की वृत्ति। शिल और उंछ वृत्ति।

शिलोंछन-संज्ञा पुं० [सं०] शिल और उंछ वृत्ति।

शिलोच्चय-संज्ञा पुं० [सं०] पर्वत। पहाड़।

शिलोत्थ-संज्ञा पुं० [सं०] (१) छरीला या शैलेय नामक गंध द्रव्य। (२) शिलाजीत।

शिलोद्भव-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शैलेय। छरीला। (२) पीला चंदन।

शिलोद्भिदा-संज्ञा स्त्री० [सं०] पाषाण-भेद। पत्थर फोड़।

शिलौका-संज्ञा पुं० [सं० शिलौकस्] (१) वह जो पर्वत पर होता हो। (२) गरुड़।

शिल्प-संज्ञा पुं० [सं०] (१) हाथ से कोई चीज बनाकर तैयार करने का काम। दस्तकारी। कारीगरी। हुनर। जैसे,—बरतन बनाना, कपड़े सीना, गहने गढ़ना आदि। (२) कला संबंधी व्यवसाय। जैसे,—अब इस नगर के कई शिल्प नष्ट हो गए हैं।

शिल्पकर-संज्ञा पुं० दे० "शिल्पकार"।

शिल्पकला-संज्ञा स्त्री० [सं०] हाथ से चीजें बनाने की कला। कारीगरी। दस्तकारी। उ०—तो सों लहि आदर्श बढ़त कर शिल्पकला सब।—श्रीधर।

शिल्पकार-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जो हाथ से अच्छी अच्छी चीजें बनाकर तैयार करता हो। शिल्पी। कारीगर। दस्तकार। (२) राज। मेमार।

शिल्पकारक-संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० शिल्पकारिका] हाथ से अच्छी अच्छी चीजें बनानेवाला कारीगर। शिल्पकार।

शिल्पकारी-संज्ञा पुं० [सं० शिल्पकारिन्] वह जो शिल्प का कार्य्य करता हो। कारीगर।

शिल्पगृह-संज्ञा पुं० [सं०] वह स्थान जहाँ बहुत से शिल्पी मिलकर चीजें बनाते हों। कारखाना।

शिल्पगेह-संज्ञा पुं० दे० "शिल्पगृह"।

शिल्पजीवी-संज्ञा पुं० [सं० शिल्पजीविन्] वह जो शिल्प के द्वारा जीविका निर्वाह करता हो। कारीगर। दस्तकार।

शिल्पज्ञ-वि० पुं० [सं०] शिल्प जाननेवाला। कारीगरी का जाननेवाला।

शिल्पता-संज्ञा स्त्री० [सं०] शिल्प का भाव या धर्म्म। शिल्पत्व।

शिल्पत्व-संज्ञा पुं० [सं०] शिल्प का भाव या धर्म्म। शिल्पता।

शिल्पप्रजापति-संज्ञा पुं० [सं०] विश्वकर्म्मा का एक नाम। (विश्वकर्म्मा ही समस्त शिल्पों के आविष्कर्त्ता और शिल्पियों के मूल पुरुष माने जाते हैं।)

शिल्पलिपि-संज्ञा स्त्री० [सं०] पत्थर या ताँबे आदि पर अक्षर खोदने की विद्या।

शिल्पविद्या-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) हाथ से अच्छी अच्छी चीजें बनाने की विद्या। (२) गृहनिर्म्माण कला। मकान आदि बनाने की विद्या।

शिल्पशाला-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्थान जहाँ बहुत से शिल्पी मिलकर तरह तरह की चीजें बनाते हों। कारखाना। शिल्पगृह।

शिल्पशास्त्र-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह शास्त्र जिसमें हाथ से चीजें बनाने का निरूपण हो। शिल्पविद्या। (२) गृह-निर्म्माण का शास्त्र। वास्तु शास्त्र।

शिल्पिक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जो शिल्प द्वारा निर्वाह करता हो। कारीगर। दस्तकार। (२) शिव का एक नाम। (३) नाटक का एक भेद। शिल्पक।

शिल्पिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का तृण जो दक्षिण में अधिकता से होता और ओषधि रूप में काम आता है। वैद्यक में यह मधुर तथा शीतल कहा गया है और इसके बीज बल तथा वीर्य्य बढ़ानेवाले माने गए हैं।

शिल्पिनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) शिल्पी का स्त्रीलिंग रूप। (२) एक प्रकार की घास।

शिल्पिशाला-संज्ञा स्त्री० [सं०] शिल्पगृह। कारखाना।

शिल्पी-संज्ञा पुं० [सं० शिल्पिन्] (१) शिल्पकार। कारीगर। (२) राज। थवई। (३) चितेरा। चित्रकार। (४) नखी नामक गंध द्रव्य।

शिल्ह-संज्ञा पुं० दे० "शिलारस"।

शिल्हक-संज्ञा पुं० दे० "शिलारस"।

शिवंकर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मंगल करनेवाले, शिव। (२) तलवार। (३) शिव का एक गण। (४) रोग फैलानेवाले एक असुर का नाम। (५) एक प्रकार का बाल-ग्रह।

शिवंतिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] गुल दाउदी।

शिवंसा†-संज्ञा पुं० [सं० शिव + अंश] शस्य का वह अंश जो शैव साधुओं के लिये अनाज काटने के समय पृथक कर दिया जाता है।

शिव-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मंगल। कल्याण। क्षेम। (२) जल। पानी। (३) सेंधा नमक। (४) शृगाल। सियार। गीदड़। (५) खूँटा। (६) पारा। (७) गुग्गुल। (८) पुंडरीक वृक्ष। (९) मोक्ष। (१०) काला धतूरा। (११) वेद। (१२) देव। (१३) कीलक ग्रह। शुभ ग्रह। (१४) रुद्र। काल। (१५) वसु। (१६) एक प्रकार का मृग। (१७) एक प्रकार की गुड़ की शराब। (१८) प्लक्ष द्वीप तथा जंबू द्वीप के एक वर्ष का नाम। (१९) लिंग। (२०) एक प्रकार का गुग्ग। (२१) एक छंद का नाम। इसके प्रत्येक चरण में ५,६ के विश्राम से ११ मात्राएँ और अंत में सगण, रगण, नगण में से कोई एक होता है। इसकी तीसरी, छठी और नवीं मात्राएँ लघु रहती हैं। (२२) परमेश्वर। भगवान। (२३) विष्कंभ आदि सत्ताइस योगों के अंतर्गत एक योग। (२४) समुद्र लवण। (२५) सुहागा। (२६) आँवला। (२७) कदंब। कदम। (२८) फिटकरी। (२९) सिंदूर। (३०) मिर्च। (३१) तिल का फूल। (३२) चंदन। (३३) लोहा। (३४) बालू। (३५) नीलकंठ पक्षी। (३६) कौआ। (३७) मौल-सिरी का पेड़। (३८) हिन्दुओं के एक प्रसिद्ध देवता जो सृष्टि का संहार करनेवाले और पौराणिक त्रिमूर्ति के अंतिम देवता कहे गए हैं। वैदिक काल में यही रुद्र के रूप में पूजे

जाते थे; पर पौराणिक काल में ये शंकर, महादेव और शिव आदि नामों से प्रसिद्ध हुए। पुराणानुसार इनका रूप इस प्रकार है—इनके सिर पर गंगा, माथे पर चंद्रमा तथा एक और तीसरा नेत्र, गले में साँप तथा नर-मुंड की माला, सारे शरीर में भस्म, व्याघ्र-चर्म ओढ़े हुए और बाएँ अंग में अपनी स्त्री पार्वती को लिए हुए। इनके पुत्र गणेश तथा कार्तिकेय; गण भूत और प्रेत; प्रधान अस्त्र त्रिशूल; और वाहन बैल है जो नंदी कहलाता है। इनके धनुष का नाम पिनाक है, जिसे धारण करने के कारण ये पिनाकी कहे जाते हैं। इनके पास पाशुपत नामक एक प्रसिद्ध अस्त्र था जो इन्होंने अर्जुन को, उनकी तपस्या से प्रसन्न होकर, दे दिया था। पुराणों में इनके संबंध में बहुत सी कथाएँ हैं। ये कामदेव का दहन करनेवाले और दक्ष का यज्ञ नष्ट करनेवाले माने जाते हैं। कहते हैं कि समुद्र-मंथन के समय जो विष निकला था, वह इन्होंने पान किया था। वह विष इन्होंने अपने गले में ही रखा और नीचे पेट में नहीं उतारा; इसलिये इनका गला नीला हो गया और ये नीलकंठ कहलाने लगे। परशुराम ने अस्त्र-विद्या की शिक्षा इन्हीं से पाई थी। संगीत और नृत्य के भी ये प्रधान आचार्य्य और परम तपस्वी तथा योगी माने जाते हैं। इनके नाम से एक पुराण भी है जो शिव-पुराण कहलाता है। इनके उपासक "शैव" कहलाते हैं। इनका निवास-स्थान कैलास माना जाता है और लोक में इनके लिंग का पूजन होता है।

पर्य्या०—शंभु। महादेव। ईश्वर। ईश। विश्वनाथ। गिरीश। मृत्युंजय। त्रिलोचन। हर। उमापति। भैरव। भूतनाथ। काशीनाथ। नंदीश्वर। रुद्र। महाकाल। वासुदेव। जटाधर। पशुपति।

वि० कल्याण करनेवाला। मंगल करनेवाला।

शिवक—संज्ञा पुं० [सं०] (१) खँटा। कील। (२) खूँटा।

शिवकर—संज्ञा पुं० [सं०] जैनों के चौबीस जिनों में से एक जिन का नाम।

शिवकर्णी—संज्ञा स्त्री० [सं०] कार्तिकेय की एक मातृका का नाम।

शिवकांची—संज्ञा स्त्री० [सं०] दक्षिण भारत का एक प्रसिद्ध नगर।

विशेष—कृष्णा और पोलर नदी के बीच में स्थित कारोमंडल के एक भाग की राजधानी कांची थी। इसके दो हिस्से हैं—एक विष्णुकांची और दूसरा शिवकांची। शिवकांची उत्तर की ओर है। दक्षिण भारत के शैवों का यह एक प्रधान तीर्थ और सप्तपुरियों में से एक है।

शिवकांता—संज्ञा स्त्री० [सं०] शिव की पत्नी, दुर्गा।

शिवकारिणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दुर्गा का एक नाम।

शिवकारी—वि० [सं० शिवकारिन्] मंगल करनेवाला। कल्याण करनेवाला।

शिवकिंकर—संज्ञा पुं० [सं०] शिव का गण या दूत।

शिवकीर्त्तन—संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जो शिव का कीर्तन करता हो। शैव। (२) विष्णु। (३) शिव के द्वारपाल।

शिवकेसर—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का गुल्म।

शिवक्षेत्र—संज्ञा पुं० [सं०] कैलास।

शिवगंग—संज्ञा पुं० [सं० शिव+गंगा] मैसूर राज्य के एक पर्वत का नाम।

शिवगंगा—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह नदी या जलाशय जो शिव जी के मंदिर के समीप हो।

शिवगति—संज्ञा पुं० [सं०] जैनों के अनुसार एक अर्हत् का नाम।

शिवगिरि—संज्ञा पुं० [सं०] कैलास पर्वत।

शिवगुरु—संज्ञा पुं० [सं०] शंकराचार्य्य के पिता का नाम जो विद्याधिराज के पुत्र थे।

शिवधर्मज—संज्ञा पुं० [सं०] मंगल ग्रह।

शिवचतुर्दशी—संज्ञा स्त्री० दे० "शिवरात्रि"।

शिवजा—संज्ञा स्त्री० [सं०] शिवलिंगी लता। पचगुरिया।

शिवता—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) शिव का भाव या धर्म। उ०—शिव शिवता इनहीं सों लही।—सूर। (२) मनुष्य के शिव में लीन होने की अवस्था। मोक्ष।

शिवतीर्थ—संज्ञा पुं० [सं०] काशी नामक स्थान जो शिव का प्रधान तीर्थ माना जाता है।

शिवतेज—संज्ञा पुं० [सं० शिवतेजस्] पारा। पारद।

शिवदत्त—संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु का चक्र। सुदर्शन चक्र।

शिवदारु—संज्ञा पुं० [सं०] देवदार वृक्ष।

शिवदिशा—संज्ञा स्त्री० [सं०] ईशान कोण जिसके स्वामी शिव माने गए हैं।

शिवदूतिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] कार्तिकेय की एक मातृका का नाम।

शिवदूती—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) दुर्गा। (२) आठ योगिनियों में से अंतिम योगिनी का नाम।

शिवदैव—संज्ञा पुं० [सं०] आर्द्रा नक्षत्र जिसके अधिष्ठाता देवता शिव माने जाते हैं।

शिवद्रुम—संज्ञा पुं० [सं०] बिल्व वृक्ष। बेल का पेड़।

शिवद्विष्टा—संज्ञा स्त्री० [सं०] केतकी। केवड़ा।

विशेष—केतकी का फूल शिवजी पर चढ़ाने का निषेध है; इसी से इसका यह नाम पड़ा है।

शिवधातु—संज्ञा पुं० [सं०] (१) पारद। पारा। (२) गोदंती नामक मणि।

शिवनंदन—संज्ञा पुं० [सं०] शिवजी के पुत्र गणेश जी। उ०

विघ्नहरण गणनाथ, शिवनंदन कंदन कुमति। तुव पद नाऊँ माथ, करहु पूर संतन सुयश।—रघुराज।

शिवनाथ-संज्ञा पुं० [सं०] शिव। महादेव।

शिवनाभि-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का शिव-लिंग जो और सब शिव-लिंगों में श्रेष्ठ माना जाता है।

शिवनारायणी-संज्ञा पुं० [सं०] हिंदुओं का एक संप्रदाय।

शिवनिर्माल्य-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह पदार्थ जो शिव जी को अर्पित किया गया हो। शिव पर चढ़ा हुआ नैवेद्य आदि। (पुराणों में ऐसी चीजों के ग्रहण करने का निषेध है।) (२) वह चीज जो किसी प्रकार ग्रहण न की जा सकती हो। परम त्याज्य वस्तु। जैसे,—हमारे लिये तुम्हारी यह संपत्ति शिवनिर्माल्य है।

शिवनृत्य-संज्ञा पुं० [सं०] गति भेद के अनुसार एक प्रकार का नृत्य।

शिवपत्र-संज्ञा पुं० [सं०] लाल कमल।

शिवपुत्र-संज्ञा पुं० [सं०] पारा। पारद।

शिवपुर-संज्ञा पुं० [सं०] जैनियों का स्वर्ग जहाँ वे जैनसिद्धांतानुसार मुक्ति का सुख भोगते हैं। मोक्ष शिला।

शिवपुराण-संज्ञा पुं० [सं०] अठारह पुराणों में से एक पुराण जो शैवपुराण भी कहा जाता है। यह शिव-प्रोक्त माना जाता है और इसमें शिव का माहात्म्य वर्णित है। अन्य पुराणों के अनुसार इसमें बारह संहिताएँ और २४००० श्लोक हैं। पर आज कल जो शिव पुराण मिलता है, उसमें केवल चार संहिताएँ और ७००० श्लोक पाए जाते हैं। इसी लिये कुछ लोगों का मत है कि शिवपुराण और वायु पुराण दोनों एक ही हैं। विष्णु, पद्म, मार्कंडेय, कूर्म्म, वराह, लिंग, ब्रह्मवैवर्त्त, भागवत और स्कंद पुराण में तो शिवपुराण का नाम है; पर मत्स्य, नारद और देवी भागवत में शिवपुराण के स्थान पर वायुपुराण का नाम मिलता है। कहते हैं कि शैव धर्म्म का प्रकाश करने के लिये शिव जी ने यह पुराण रचा था। इसमें निम्न लिखित बारह संहिताएँ हैं—विद्येश्वर, रौद्र, विनायक, भौम, मातृका, रुद्रैकादश, कैलास, शतरुद्र, कोटिरुद्र, सहस्र कोटिरुद्र, वायवीय और धर्म्म संहिता। इसके रचयिता भगवान वेदव्यास जी कहे जाते हैं। पर आज कल जो शिव पुराण मिलता है, उसमें केवल ज्ञान, विद्येश्वर, कैलास, वायवीय और धर्म्म आदि संहिताएँ ही पाई जाती हैं। किसी किसी शिवपुराण में सनत्कुमार संहिता और गया माहात्म्य भी मिलता है।

शिवपुरी-संज्ञा स्त्री० [सं०] शिव जी की पुरी, वाराणसी। काशी।

शिवपुष्पक-संज्ञा पुं० [सं०] आक का वृक्ष। मदार।

शिवप्रिय-संज्ञा पुं० [सं०] (१) रुद्राक्ष। (२) अगस्त। बक वृक्ष। (३) धतूरा। (४) भाँग। (५) स्फटिक। बिल्लौर।

शिवप्रिया-संज्ञा स्त्री० [सं०] दुर्गा।

शिवप्रीति-संज्ञा स्त्री० [सं०] बेल का वृक्ष। बिल्व।

शिवबीज-संज्ञा पुं० [सं०] पारा जो शिव जी का वीर्य्य माना जाता है।

शिवब्राह्मी-संज्ञा स्त्री० [सं०] संखाहुली। शंखपुष्पी।

शिवभक्त-संज्ञा पुं० [सं०] वह जो शिव का उपासक हो। शैव।

शिवमल्लक-संज्ञा पुं० [सं०] अर्जुन वृक्ष।

शिवमल्लिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) वसु नामक पुष्प वृक्ष। (२) मदार। आक। (३) अगस्त वृक्ष। (४) शिवलिंगी। (५) श्रीवल्ली नामक कँटीला पेड़।

शिवमल्ली-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) पाशुपति। मौलसिरी। (२) मदार। आक। (३) वक नामक वृक्ष। (४) लिंगिनी नाम की लता।

शिवमात्र-संज्ञा पुं० [सं०] बौद्धों के अनुसार एक बहुत बड़ी संख्या का नाम।

शिवराजी-संज्ञा पुं० [हिं० शिव + राज] एक प्रकार का बहुत बड़ा कबूतर।

शिवरात-संज्ञा स्त्री० दे० "शिवरात्रि"।

शिवरात्रि-संज्ञा स्त्री०[सं०] फाल्गुन बदी चतुर्दशी। शिव चतुर्दशी। (इस दिन लोग शिव जी का पूजन करते और उनके उद्देश्य से व्रत रखते हैं।)

शिवरानी-संज्ञा स्त्री० [सं० शिव + हिं० रानी] शिवजी की पत्नी, पार्वती। उ०—शिवरानी यों रति समुझाई। तब तनु धर शंबर घर आई।—लल्लू।

शिवलिंग-संज्ञा पुं० [सं०] महादेव का लिंग या पिंडी जिसका पूजन होता है।

शिवलिंगी-संज्ञा स्त्री० [सं० लिंगिनी] एक प्रकार की प्रसिद्ध लता जो चौमासे में जंगलों और झाड़ियों में बहुत अधिकता से मिलती है। इसकी डंडियाँ बहुत पतली और पत्ते करेले के पत्तों के समान ३ से ५ इंच के घेरे में गोलाकार, गहरे, कटे किनारेवाले और ५-७ भागों में विभक्त रहते हैं। पत्र-दंड की जड़ में ५-६ फूलों के छोटे छोटे गुच्छे लगते हैं। ये फूल पीले होते हैं। इसका व्यवहार ओषधि के रूप में होता है। वैद्यक के अनुसार यह चरपरी, गरम, दुर्गंधयुक्त, पौष्टिक, शोधक, गर्भ धारण करानेवाली और कुष्ठ आदि का नाश करनेवाली होती है। इसके फलने पर इसका सर्वांग ओषधि के निमित्त संग्रह किया जाता है। बिजगुरिया। पचगुरिया।

पर्य्या०—लिंगिनी। ईश्वरलिंगी। चित्रफला। बहुपत्रा। शिववल्लिका।

शिवलोक-संज्ञा पुं० [सं०] शिवजी का

सोने मंदिर सँवारई और चंदन सब लीप। दिया जो मन शिवलोक महँ उपना सिंहलद्वीप।—जायसी।

शिवप्रिया-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) दुर्गा। (२) सेवती। शतपत्री।

शिवमल्लिका-संज्ञा स्त्री० दे० "शिवलिंगी"।

शिवमल्ली-संज्ञा स्त्री० दे० "शिवलिंगी"।

शिववाहन-संज्ञा पुं० [सं०] शिव का वाहन, बैल। नंदी।

शिववीर्य्य-संज्ञा पुं० [सं०] पारा जो शिवजी का वीर्य्य माना जाता है।

शिववृषभ-संज्ञा पुं० [सं०] शिवजी की सवारी का बैल। उ०—विराजैगो जो तू धमदरन ताकी शिखर पै। दिपैगो ज्यों गोरे शिववृषभ खोदी कलित है।—लक्ष्मणसिंह।

शिवशंकरी-संज्ञा स्त्री० [सं० शिवशंकरा] देवी की एक मूर्त्ति का नाम।

शिवशेखर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बक वृक्ष। (२) धतूरा। (३) शिव का मस्तक। (४) सफेद मदार।

शिवशैल-संज्ञा पुं० [सं०] कैलास पर्वत।

शिवसायुज्य-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शैवों के अनुसार वह मोक्ष जिसमें मनुष्य शिव में लीन हो जाता है। (२) मृत्यु। मौत।

शिवसुंदरी-संज्ञा स्त्री० [सं०] दुर्गा।

शिवांक-संज्ञा पुं० [सं०] अगस्त का वृक्ष। बक वृक्ष।

शिवा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) दुर्गा। (२) पार्वती। गिरिजा। उ०—जेहि रस शिव सनकादि मगन भए शंभु रहत दिन साधा। सो रस दियो सूर प्रभु तोको शिवा न लहति अराधा।—सूर। (३) मुक्ति। मोक्ष। (४) शृगाली। सियारिन। उ०—शिवा यज्ञशाला में बोली। रहे मगन धरणी जब डोली।—सबल। (५) हड़। हर्रें। हरीतकी। (६) सोआ नामक साग। (७) शमी। सफेद कीकर। (८) आँवला। (९) हल्दी। (१०) दूब। (११) गोरोचन। (१२) श्यामा नाम की लता। (१३) एक बुद्धिशक्ति का नाम। (१४) जौ। यव। (१५) अनंतमूल।

शिवाक्ष-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन योग-प्रवर्त्तक ऋषि का नाम।

शिवाक्ष-संज्ञा पुं० [सं०] रुद्राक्ष।

शिवाख्या-संज्ञा स्त्री० [सं०] सफेद दूब।

शिवाघृत-संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक में एक प्रकार का तैयार किया हुआ घृत। इसके प्रस्तुत करने के लिये गीदड़ का मांस, बकरी का दूध, मुलेठी, मजीठ, कुड़ा, लाल चंदन, पद्मकाठ, हर्रें, बहेड़ा, आँवला, विडंग, देवदारु, दंतीमूल, श्यामा लता काकोली, हल्दी, दारुहल्दी, अनंतमूल, इलायची आदि पदार्थों को घी में डालकर शास्त्रोक्त विधि से पकाते हैं। यह घृत पागलपन के लिये बहुत उपकारी माना जाता है। इसके अतिरिक्त पाक, मसाला, मेद आदि में भी इसका व्यवहार होता है।

शिवाची-संज्ञा स्त्री० [सं०] वंशपत्री।

शिवाटिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) वंशपत्री नामक तृण। (२) सफेद पुनर्नवा। (३) लाल पुनर्नवा। गदहपूरना। (४) हिंगुपत्री। (५) कठूमर।

शिवात्मक-संज्ञा पुं० [सं०] सेंधा नमक।

शिवाधृत-संज्ञा स्त्री० दे० "शतद्रु"।

शिवानी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) दुर्गा। (२) जयंती वृक्ष।

शिवापीड़-संज्ञा पुं० [सं०] अगस्त या बक नामक वृक्ष।

शिवाप्रिय-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शिवा के पति, शिव। (२) बकरा, जिसके बलिदान से दुर्गा का प्रसन्न होना माना जाता है।

शिवाफला-संज्ञा स्त्री० [सं०] शमी वृक्ष। सफेद कीकर।

शिवाबलि-संज्ञा पुं० [सं०] तांत्रिकों के अनुसार वह नैवेद्य जो रात के समय देवी के सामने रखा जाता है और जिसमें मांस की प्रधानता होती है।

शिवायतन-संज्ञा पुं० दे० "शिवालय"।

शिवाराति-संज्ञा पुं० [सं०] कुत्ता, जो गीदड़ (शिवा) का शत्रु होता है।

शिवारुत-संज्ञा पुं० [सं०] गीदड़ के बोलने का शब्द, जिससे यात्रा आदि के समय शुभाशुभ शकुन का विचार किया जाता है।

शिवालय-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह मंदिर जिसमें शिव जी की मूर्त्ति या लिंग स्थापित हो। शिव जी का मंदिर। (२) कोई देव-मंदिर। (क०) (३) लाल तुलसी। (४) श्मशान। मसान। मरघट।

शिवाला-संज्ञा पुं० [सं० शिवालय] (१) शिव जी का मंदिर। शिवालय। (२) देव-मंदिर। (क०) (३) कोयला जलाने की भट्ठी। (बाजारू)

शिवालु-संज्ञा पुं० [सं०] शृगाल। सियार। गीदड़।

शिवास्मृति-संज्ञा स्त्री० [सं०] जयंती वृक्ष।

शिवाह्लाद-संज्ञा पुं० [सं०] अगस्त या बक नामक वृक्ष।

शिवाह्वय-संज्ञा पुं० [सं०] (१) पारद। पारा। (२) बाणर। वट वृक्ष। (३) मदार। आक।

शिवाह्वा-संज्ञा स्त्री० [सं०] रुद्रजटा। शंकरजटा।

शिवि-संज्ञा पुं० [सं०] (१) हिंसक पशु। शिकारी जानवर। (२) भोजपत्र। (३) राजा उशीनर के पुत्र तथा ययाति के दौहित्र एक राजा का नाम जो अपनी दयालुता और दानशीलता के लिये बहुत प्रसिद्ध हैं। कहते हैं कि एक बार देवताओं ने इनकी परीक्षा लेने का विचार किया।

अग्नि ने कबूतर का रूप धारण किया और इंद्र ने बाज पक्षी का। कबूतर उड़ता उड़ता राजा शिवि की गोद में जा छिपा और कहने लगा कि यह बाज मेरे प्राण लेना चाहता है। आप इससे मेरी रक्षा करें। इतने में बाज भी वहाँ आ पहुँचा और कहने लगा कि यह कबूतर मेरा भक्ष्य है; आप यह मुझे दे दीजिए। शिवि ने और कुछ भोजन देकर बाज को संतुष्ट करना चाहा; पर बाज किसी प्रकार नहीं मानता था। अंत में राजा ने अपनी जाँघ में से मांस काटकर और कबूतर के बराबर तौलकर बाज को देना चाहा। पर ज्यों ज्यों राजा अपने शरीर से मांस काटकर तराजू पर रखते जाते थे, त्यों त्यों कबूतर भारी होता जाता था। अंत में राजा विवश होकर स्वयं तराजू के पलड़े पर बैठ गए। इस पर बाज ने संतुष्ट होकर कबूतर को भी छोड़ दिया और राजा का मांस भी नहीं लिया। तब से ये बहुत दानी और धर्मात्मा प्रसिद्ध हैं। उ०—अब बरनौं शिवि भूप की कथा परम रमणीय। शरणागत पालन कियो दै निज तनु कमनीय।—रघुराज।

शिविका-संज्ञा स्त्री० [सं०] पालकी या डोली नाम की सवारी। उ०—देखि पुष्ट पकर्‌यो तिनकाहीं। त्याय लगायो शिविका माहीं।—रघुराज।

शिविविष्ट-संज्ञा पुं० [सं०] महादेव।

शिविर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) डेरा। खेमा। निवेश। (२) फौज के ठहरने की जगह। पड़ाव। छावनी। (३) क़िला। कोट। उ०—राम शिविर अंगरेज नृप तहँ आए जिहि बार। तब हौंहू हाजिर रह्यो आदर सहित उदार।—मतिराम। (४) चरक के अनुसार एक प्रकार का तृण धान्य।

शिविरगिरि-संज्ञा पुं० [सं०] एक पर्वत का नाम।

शिवीरथ-संज्ञा पुं० [सं०] पालकी। शिविका।

शिवेरु-संज्ञा पुं० [सं०] शृगाल। गीदड़। सियार।

शिवेष्ट-संज्ञा पुं० [सं०] (१) अगस्त वृक्ष। (२) बेल। श्रीफल।

शिवेष्टा-संज्ञा स्त्री० [सं०] दूब।

शिवोद्भव-संज्ञा पुं० [सं०] महाभारत के अनुसार एक प्राचीन तीर्थ का नाम।

शिवोपनिषद्-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक उपनिषद् का नाम।

शिशन-संज्ञा पुं० (१) दे० "सेशन"। (२) दे० "शिश्न"।

शिशिर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक ऋतु जो माघ और फाल्गुन मास में होती है। उ०—गोपी गाइ ग्वाल गो सुत वै मलिन बदन कृष गात। परम दीन जनु शिशिर हिमी हत अंबुज गन बिन पात।—सूर। (२) जाड़ा। शीत काल। (३) हिम। (४) विष्णु। (५) एक प्रकार का अस्त्र। (६) सूर्य का एक नाम। (७) लाल चंदन।

वि० शीतल। ठंढा। (इस अर्थ में इस शब्द का प्रयोग यौगिक शब्दों के बनाने में उनके आरंभ में होता है। जैसे,—शिशिरकर।)

शिशिरकर-संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा, जिसकी किरणें शीतल होती हैं।

शिशिरगु-संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा।

शिशिरता-संज्ञा स्त्री० [सं०] शिशिर का भाव या धर्म।

शिशिरमयूख-संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा।

शिशिरांत-संज्ञा पुं० [सं०] शिशिर ऋतु के अंत में होनेवाली ऋतु, वसंत। उ०—शिशिरांत की लक्ष्मी का दिया हुआ कलियों का गुच्छा पलास में शोभायमान हुआ।—लक्ष्मणसिंह।

शिशिरांशु-संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा।

शिशिराद्रि-संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार एक पर्वत का नाम जो सुमेरु के पश्चिम ओर बतलाया गया है।

शिशु-संज्ञा पुं० [सं०] (१) छोटा बच्चा; विशेषतः आठ वर्ष तक की अवस्था का बच्चा। छोटा लड़का। उ०—माथे मुकुट सुभग पीतांबर उर सोभित भृगु रेखा हो। शंख चक्र भुज चारि विराजत अति प्रताप शिशु भेषा हो।—सूर। (२) पशुओं आदि का बच्चा। (३) कार्त्तिकेय का एक नाम।

शिशुक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शिशुमार या सूस नामक जलजंतु। (२) शिशु। बच्चा। बालक। (३) एक प्रकार का वृक्ष। (४) सुश्रुत के अनुसार एक प्रकार का साँप।

शिशुकृच्छ्र-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का चांद्रायण व्रत जिसे शिशु चांद्रायण या स्वल्प चांद्रायण भी कहते हैं।

शिशुगंधा-संज्ञा स्त्री० [सं०] मल्लिका। मोतिया।

शिशुचांद्रायण-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का चांद्रायण व्रत जिसे स्वल्प चांद्रायण या कृच्छ्र चांद्रायण भी कहते हैं। इस व्रत में प्रातःकाल चार ग्रास और सायंकाल चार ग्रास भोजन करके निर्वाह किया जाता है।

शिशुता-संज्ञा स्त्री० [सं०] शिशु का भाव या धर्म। बचपन। शिशुत्व।

शिशुताई-संज्ञा स्त्री० दे० "शिशुता"। उ०—यशुमति भाग सुहागिनी हरि को सुत जानैं। मुख मुख जोरि बतावई शिशुताई ठानैं।—सूर।

शिशुत्व-संज्ञा पुं० [सं०] शिशु का भाव या धर्म। शिशुता। शैशव।

शिशुनाग-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक राक्षस का नाम। (२) भागवत के अनुसार एक राजा का नाम। (३) दे० "शैशुनाग"।

शिशुनामा-संज्ञा पुं० [सं० शिशुनामन्] ऊँट।

शिशुपन*-संज्ञा पुं० दे० "शिशुता"।

शिशुपाल–संज्ञा पुं० [सं०] चेदि देश का एक प्रसिद्ध राजा जिसे श्रीकृष्ण ने मारा था। उ०—देश देश के नृपति जुरे सब भीष्म नृपति के धाम। रुक्म कह्यो शिशुपालहिं देहौं नहीं कृष्ण सों काम।—सूर।

विशेष—महाभारत में लिखा है कि दमघोष के घर एक पुत्र उत्पन्न हुआ था जिसके तीन आँखें और चार हाथ थे और जो जनमते ही गधे की तरह रेंकने लगा था। इससे डर कर माता-पिता ने इसका त्याग करना चाहा था; पर इतने में आकाशवाणी हुई कि यह शिशु बहुत ही बलवान् और वीर होगा; तुम लोग इस शिशु का पालन करो। (इसी लिये इसका नाम शिशुपाल रखा गया था।) इसका मारने-वाला भी पृथ्वी पर उत्पन्न हो चुका है। आकाशवाणी सुनकर शिशुपाल की माता ने आकाश की ओर देखकर पूछा कि इसका नाश कौन करेगा? फिर आकाशवाणी हुई कि जिस आदमी की गोद में जाते ही इसकी तीसरी आँख और अतिरिक्त दोनों बाँहें जाती रहेंगी, वही इसके प्राण लेगा। दमघोष ने बहुत से राजाओं आदि को बुलाकर उनकी गोद में अपना पुत्र दिया; पर उसकी तीसरी आँख और दोनों अतिरिक्त भुजाएँ ज्यों की त्यों बनी रहीं। अंत में जब श्रीकृष्ण ने उसे गोद में लिया, तब उसके दो हाथ भी गिर गए और तीसरा नेत्र भी अदृश्य हो गया। इसपर शिशुपाल की माता ने श्रीकृष्ण से कहा कि तुम इसके सब अपराध क्षमा करना। श्रीकृष्ण ने प्रतिज्ञा की कि मैं इसके सौ अपराध तक क्षमा करूँगा।

बड़ा होने पर शिशुपाल बहुत पराक्रमी हुआ और अकारण ही श्रीकृष्ण से बहुत अधिक द्वेष रखने लगा। जब युधिष्ठिर ने अपने राजसूय यज्ञ के समय लोगों से पूछा कि यज्ञ का अर्घ्य किसे दिया जाय, और भीष्म ने उत्तर दिया—"श्रीकृष्ण को" तब शिशुपाल बहुत बिगड़ा और सब राजाओं को संबोधन करके श्रीकृष्ण की निंदा करने और उन्हें कुवाक्य कहने लगा। श्रीकृष्ण उसके कुवाक्य गिनते जाते थे। जब तक उसने सौ गालियाँ दीं, तब तक तो श्रीकृष्ण बिलकुल चुप थे; क्योंकि वे उसकी माता के सामने उसके सौ अपराध क्षमा करने की प्रतिज्ञा कर चुके थे। पर जब वह इतने पर भी शांत न हुआ और उसने एक और कुवाक्य कहा, तब श्रीकृष्ण ने तुरंत उसका सिर काट डाला।

शिशुपालक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) दमघोष का पुत्र शिशुपाल। (२) केलि कदंब। नीम।

शिशुपालवध–संज्ञा पुं० [सं०] महाकवि माघ कृत एक प्राचीन काव्य जिसमें श्रीकृष्ण द्वारा शिशुपाल के मारे जाने की कथा वर्णित है।

शिशुपालहा–संज्ञा पुं० [सं० शिशुपालहन्] शिशुपाल को मारने-वाले, श्रीकृष्ण।

शिशुमार–संज्ञा पुं० [सं०] (१) सूँस नामक जलजंतु। (२) मगर की आकृतिवाला, नक्षत्र मंडल। (३) दे० "शिशुमार चक्र"। उ०—(क) मेरो रूप चक्र शिशुमारा। जामें सब बँध्यो संसारा।—रघुराज। (ख) बहुत काल में सुरति करि, जब डोल्यो शिशुमार। तब संध्या में भानु किय अस्ताचल संचार।—रघुराज। (४) कृष्ण। (५) विष्णु।

शिशुमार चक्र–संज्ञा पुं० [सं०] सब ग्रहों सहित सूर्य। सौर जगत्। उ०—अवध अनंद निहारी गगन पथ रुके भानु गति भूली। रच्यो चक्र शिशुमार बार तेहि राम जन्म सुख फूली।—रघुराज।

शिशुमारमुखी–संज्ञा स्त्री० [सं०] कार्तिकेय की एक मातृका का नाम।

शिशुवाहक–संज्ञा पुं० [सं०] जंगली बकरा।

शिशुवाह्यक–संज्ञा पुं० [सं०] शिशुवाहक। जंगली बकरा।

शिशूल–संज्ञा पुं० दे० शिशु"।

शिश्न–संज्ञा पुं० [सं०] पुरुष की उपस्थेंद्रिय। लिंग।

शिषउ-संज्ञा पुं० दे० "शिष्य"। उ०—रामानुज के शिष्य भयऊ। यह यश त्रिभुवन महँ भरि गयऊ।—रघुराज।

संज्ञा स्त्री० [सं० शिक्षा] सीख। शिक्षा। सिखावन। उ०—कहेउ सुभग शिष धर्म कुमारा। कीन्ह सवन निज अंगी-कारा।—सबलसिंह।

संज्ञा स्त्री० [सं० शिखंड या शिखा] बाल जो मुंडन के उपरांत सिर पर छोड़े जाते हैं। उ०—कटि पट पीत पिछौरी बाँधे काकपच्छ शिर सोत। खर क्रीड़ा दिन देखत आवत नारद सुर तैंतीस।—सूर।

शिषरीछ–संज्ञा पुं० [सं०] ओंगा। अपामार्ग। चिचड़ा।

वि० [सं० शिखर + ई (प्रत्य०)] शिखर से युक्त। शिखर वाला। उ०—कोपि शिषरी गदा तब उन हन्यो ताके उर मैं। मोहि कविरनि गिर्यो धीरन यथा कुसुमित धर मैं।—श्यामबिहारी मिश्र।

शिषाछ–संज्ञा स्त्री० दे० "शिखा"। उ०—श्रुति बेद शिखा गुरु केरी। एकादश मम हेतु निवेरी।—रघुराज।

शिषिछ–संज्ञा पुं० दे० "शिष्य"। उ०—(क) भई शिषि सबै गुरु पर्यंता। प्रगटे पश्चिम पंथ अनंता।—रघुराज। (ख) अस बिचारि शिषि करौं न तोही। बाट न रोक जान दे मोही।—विश्राम।

शिषी-संज्ञा पुं० दे० "शिखी"। उ०—यह कौन आय है सखी मच चंद्र अंकित अंग। शिर केश कुंचित मन हाथ शिषी शिखंड सुरंग।—केशव।

शिष्ट-वि० पुं० [सं०] (१) जो अच्छी तरह धर्म का आचरण करता हो। धर्मशील। (२) शांत। धीर। (३) अच्छे स्वभाव और आचरणवाला। सुशील। (४) बुद्धिमान्। (५) सभ्य। सज्जन। भला आदमी। (६) भला। उत्तम। श्रेष्ठ। (७) आचार व्यवहार में निपुण। शालीन। (८) आज्ञाकारी। (९) प्रसिद्ध। मशहूर।
संज्ञा पुं० (१) मंत्री। वज़ीर। (२) सभ्य। सभासद।

शिष्टता-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) शिष्ट होने का भाव या धर्म। (२) सभ्यता। सज्जनता। भद्रता। (३) उत्तमता। श्रेष्ठता। (४) अधीनता।

शिष्टत्व-संज्ञा पुं० दे० "शिष्टता"।

शिष्टसभा-संज्ञा स्त्री० [सं०] राज-सभा। राज्य परिषद्।

शिष्ट समाज-संज्ञा पुं० [सं०] वह समाज जिसमें पढ़े लिखे तथा सदाचारी व्यक्ति हों। भले आदमियों का समाज। सभ्य समाज।

शिष्टाचार-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सभ्य पुरुषों के योग्य आचरण। भले आदमियों का सा बरताव। साधु व्यवहार। (२) आदर। सम्मान। खातिरदारी। (३) विनय। नम्रता। (४) वह अच्छा बरताव जो केवल दिखलाने के लिये किया जाय। दिखावटी सभ्य व्यवहार। जैसे,—शिष्टाचार की बात छोड़कर अपने आने का अभिप्राय कहो। (५) आव भगत। जैसे,—शिष्टाचार के अनंतर उन्होंने वार्तालाप प्रारंभ किया।

शिष्टि-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) आज्ञा। अनुशासन। हुकुम। (२) शासन। हुकूमत। (३) दंड। सज़ा। (४) सुधार। (५) सहायता। मदद।

शिष्ण-संज्ञा पुं० दे० "शिश्न"।

शिष्य-संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० शिष्या] (१) वह जो शिक्षा या उपदेश देने के योग्य हो। (२) वह जो विद्या पढ़ने के उद्देश्य से किसी गुरु या आचार्य आदि के पास रहता हो। विद्यार्थी। अन्तेवासी। चेला। उ०—तीर चलावत शिष्य सिखावत धर निशान देखरावत। कबहुँक सखे अथ चढ़ि आपुन नाना भाँति नचावत।—सूर। (३) (शिक्षक या गुरु के संबंध से) वह जिसने किसी से शिक्षा प्राप्त की हो। शागिर्द। चेला (४) (गुरु के संबंध से) वह जिसने किसी धार्मिक आचार्य से दीक्षा या मंत्र आदि ग्रहण किया हो। मुरीद। चेला। (५) वह जो हाल में श्रावक बना हो। (जैन)

शिष्यता-संज्ञा स्त्री० [सं०] शिष्य होने का भाव या धर्म। शिष्यत्व।

शिष्यत्व-संज्ञा पुं० [सं०] शिष्य होने का भाव या धर्म। शिष्यता।

शिष्या-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक वृत्त का नाम जिसके प्रत्येक चरण में सात गुरु अक्षर होते हैं। इसका दूसरा नाम "शीर्षरूपक" भी है।

शिस्त-संज्ञा स्त्री० [फा०] (१) मछली पकड़ने का काँटा। (२) निशाना। लक्ष्य।
मुहा०—शिस्त बाँधना = ताक लगाना। निशाना बाँधना।
(३) दूरबीन की तरह का एक प्रकार का यंत्र जिससे ज़मीन नापने के समय सीध आदि देखी जाती है। (४) अँगूठा।

शिस्तबाज़-संज्ञा पुं० [फा०] (१) निशाना लगानेवाला। निशानेबाज। (२) शिस्त लगाकर मछली पकड़नेवाला।

शिह्लक-संज्ञा पुं० [सं०] शिलारस नाम का गंध द्रव्य।

शी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) शांति। (२) शयन। सोना। (३) भक्ति।

शीकर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) गंधा बिरोजा। (२) तुषार। ओस। शबनम। (३) हवा। वायु। (४) जल कण। पानी की बूँद। (५) शीत। जाड़ा। (६) वर्षा की छोटी छोटी बूँदें। फुहार। (७) धूप। (जलाने का)

शीघ्र-क्रि० वि० [सं०] बिना विलंब। बिना देर के। चटपट। तुरंत। जल्द।
संज्ञा पुं० (१) लामज्जक या लामज नामक तृण। (२) भागवत के अनुसार कुरुवंशीय अग्निवर्ण के पुत्र का नाम। (३) वायु। हवा। (४) वह अंतर जो पृथ्वी के दो भिन्न भिन्न स्थानों से ग्रहों के देखने में होता है। (५) चक्रांग।

शीघ्रकारी-वि० [सं० शीघ्रकारिन्] (१) जल्दी से काम करनेवाला। शीघ्र कार्य्य करनेवाला। (२) शीघ्र प्रभाव उत्पन्न करनेवाला। (३) तीव्र। कड़ा। (पीड़ा आदि के लिये)
संज्ञा पुं० एक प्रकार का सन्निपात ज्वर जिसमें मूर्च्छा, तंद्रा, प्यास, श्वास और पार्श्व में पीड़ा होती है। यह असाध्य और मृत्यु का पूर्व रूप माना जाता है।

शीघ्रकोपी-वि० [सं०] (१) जल्दी गुस्सा होनेवाला व्यक्ति। (२) चिड़चिड़ा।

शीघ्रग-वि० [सं०] शीघ्र चलनेवाला। द्रुतगामी।
संज्ञा पुं० (१) सूर्य्य। (२) वायु। (३) खरगोश। (४) अग्निवर्ण के पुत्र का नाम।

शीघ्रगामी-वि० [सं० शीघ्रगामिन्] शीघ्र चलनेवाला। जल्दी या तेज़ चलनेवाला।

शीघ्रचेतन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जो किसी बात को बहुत शीघ्र समझे। जल्दी बात समझनेवाला। चतुर। (२) कुत्ता। कुक्कुर।

शीघ्रजन्मा-संज्ञा पुं० [सं० शीघ्रजन्मन्] कंज करंज।

शीघ्रजीर्ण-संज्ञा पुं० [सं०] चौलाई का साग।
शीघ्रता-संज्ञा स्त्री० [सं०] शीघ्र का भाव या धर्म। जल्दी। तेजी। फुरती।
शीघ्रत्व-संज्ञा पुं० [सं०] शीघ्र का भाव या धर्म। जल्दी। तेजी। फुरती।
शीघ्रपतन-संज्ञा पुं० [सं०] स्त्री-सहवास के समय वीर्य का शीघ्र स्खलित हो जाना। स्तंभन शक्ति का अभाव। (वैद्यक से इसकी गणना एक प्रकार के नपुंसकत्व में की जाती है।)
शीघ्रपाणि-संज्ञा पुं० [सं०] वायु।
शीघ्रपुष्प-संज्ञा पुं० [सं०] अगस्त्य वृक्ष।
शीघ्रवेधी-संज्ञा पुं० [सं० शीघ्रवेधिन्] शीघ्रता से बाण चलानेवाला। लघुहस्त।
शीघ्रा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) एक नदी का नाम। (२) दंती वृक्ष। उदुंबरपर्णी।
शीघ्रिय-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शिव। (२) विष्णु। (३) बिल्लियों का लड़ना।
शीत-वि० [सं०] (१) ठंढा। सर्द। शीतल। (२) शिथिल। सुस्त।
संज्ञा पुं० (१) जाड़ा। सर्दी। ठंढ। (२) दालचीनी। (३) बेंत। (४) लिसोढ़ा। (५) नीम। (६) कपूर। (७) एक प्रकार का चंदन। (८) ओस। तुषार। (९) पित्त पापड़ा। (१०) शीत काल। जाड़े का मौसिम। अगहन, पूस और माघ के महीने। (११) जुकाम। सरदी। प्रतिश्याय। (१२) जल। पानी।
शीतक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शीत काल। जाड़े का मौसिम। (२) बिच्छू। (३) सन सनई। (४) वह जो हर काम में बहुत देर लगाता हो। दीर्घसूत्री। (५) बृहत्संहिता के अनुसार एक देश का नाम। (६) एक प्रकार का चंदन। (७) आलसी। सुस्त। काहिल। (८) संतोषी पुरुष।
शीत कटिबंध-संज्ञा पुं० [सं०] पृथ्वी के उत्तर और दक्षिण के भूमि खंड के वे कल्पित विभाग जो भूमध्य रेखा से २३½ अंश उत्तर के बाद और २३½ अंश दक्षिण के बाद माने गए हैं। इन विभागों में जाड़ा बहुत अधिक पड़ता है। ये दोनों विभाग उष्ण कटिबंध के उत्तर और दक्षिण में कर्क और मकर रेखा के बाद पड़ते हैं।
शीतकण-संज्ञा पुं० [सं०] जीरा।
शीतकर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) ठंढी किरणोंवाला, चंद्रमा। [illegible] कपूर।
वि० शीतल करनेवाला। ठंढा करनेवाला।
शीतकषाय-संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक [illegible] का वह कषाय या रस जो [illegible] में [illegible] भिगो रखने से तैयार होता [illegible]
शीतकाल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) हेमंत ऋतु। अगहन और पूस के महीने। (२) जाड़े का मौसिम। हेमंत और शिशिर।
शीतकिरण-संज्ञा पुं० [सं०] शीत किरणोंवाला, चंद्रमा।
शीतकुंभ-संज्ञा पुं० [सं०] कनेर। कनैल।
शीतकुंभिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] कुंभीरिका नाम की लता। जलकुंभी। कुंभी।
शीतकुंभी-संज्ञा स्त्री० [सं०] जल में उत्पन्न होनेवाली एक प्रकार की लता जिसे शीतली जटा भी कहते हैं।
शीतकुंचिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] धरियारा। बक्का। झिरैटी।
शीतकृच्छ्र-संज्ञा पुं० [सं०] मिताक्षरा के अनुसार एक प्रकार का व्रत जिसमें तीन दिन तक ठंढा जल, तीन दिन तक ठंढा दूध और तीन दिन तक ठंढा घी पीकर और तीन दिन तक बिना कुछ खाए पीए रहना पड़ता है।
शीतक्षार-संज्ञा पुं० [सं०] शुद्ध सोहागा।
शीतगंध-संज्ञा पुं० [सं०] चंदन। संदल।
शीतगात्र-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का सन्निपात ज्वर जिसमें रोगी का शरीर बहुत ठंढा रहता है; उसे दमा, खाँसी, हिचकी, मोह, कंप, अंतर्दाह और कै होती है; उसके शरीर में बहुत पीड़ा रहती है; उसका स्वर बिलकुल बदल जाता जाता है और वह बकता झकता है।
शीतगु-संज्ञा पुं० [सं०] (१) चंद्रमा। (२) कपूर।
शीतचंपक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) दर्पण। शीशा। आइना। (२) प्रदीप। दीया।
शीतच्छाया-संज्ञा पुं० [सं०] वट वृक्ष या बरगद, जिसकी छाया बहुत शीतल होती है।
वि० शीतल छायावाला।
शीतज्वर-संज्ञा पुं० [सं०] जाड़ा देकर आनेवाला बुखार। जूड़ी। जड़ैया।
शीतता-संज्ञा स्त्री० [सं०] शीत का भाव या धर्म। शीतत्व। ठंढक।
शीतत्व-संज्ञा पुं० [सं०] शीत का भाव या धर्म। शीतता। ठंढापन।
शीतदंत-संज्ञा पुं० [सं०] ठंढी वायु या ठंढे जल का दाँतों में लगना या एक प्रकार की वेदना उत्पन्न करना जो वैद्यक के अनुसार दाँ[illegible] माना गया है।
[illegible]तदंतिका-संज्ञा [illegible]। हाथीसुंडी।
[illegible]धिति-संज्ञा [illegible] जिसकी किरणें शीतल होती हैं।
[illegible]-संज्ञा पुं० [illegible] सीस। [illegible]
[illegible]-संज्ञा स्त्री० [illegible] दूध [illegible]
[illegible]-संज्ञा पुं० [illegible]
पुं० दे०

शीतपत्रा-संज्ञा स्त्री० [सं०] सफ़ेद लजालू। सफेद लाजवंती।
शीतपर्णी-संज्ञा स्त्री० [सं०] अर्कपुष्पी। अंधाहुली।
शीतपल्लवा-संज्ञा स्त्री० [सं०] छोटा जामुन। भूमि जंबु।
शीतपाकिनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) काकोली नामक अष्टवर्गीय ओषधि। (२) ककही। महासमंगा।
शीतपाकी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) काकोली नामक अष्टवर्गीय ओषधि। (२) गुंजा। घोंटली। घुँघची। (३) ककही। अतिबला।
शीतपित्त-संज्ञा पुं० [सं०] जुड़-पित्ती नामक रोग। इसमें वात की अधिकता से सारे शरीर की त्वचा में चकत्ते पड़ जाते हैं और उनमें सूई चुभने की सी पीड़ा होती है। इसमें वमन, ज्वर और दाह भी होता है।
शीतपुष्प-संज्ञा पुं० [सं०] (१) छरीला। शैलेय। (२) केवटी मोथा। (३) सिरिस। शिरीष वृक्ष।
शीतपुष्पक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) आक। अर्क। मदार। (२) केवटी मोथा। (३) छरीला। शैलेय।
शीतपुष्पा-संज्ञा स्त्री० [सं०] अतिबला। ककही। महासमंगा।
शीतपुष्पी-संज्ञा स्त्री० [सं०] अतिबला। ककही। कंघी।
शीतपूतना-संज्ञा स्त्री० [सं०] भावप्रकाश के अनुसार एक प्रकार का बालग्रह या बालरोग। इस रोग में बालक काँपता और खाँसता है, उसकी आँखें दुखती हैं और शरीर दुबला पड़ जाता है; शरीर से दुर्गंध आती है और उसे वमन तथा अतिसार होता है।
शीतप्रभ-संज्ञा पुं० [सं०] कपूर।
शीतप्रिय-संज्ञा पुं० [सं०] पित्त पापड़ा। पर्पटक।
शीतफल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) गूलर। (२) पीलू। (३) अखरोट। (४) आँवला। (५) लिसोड़ा।
शीतबला संज्ञा स्त्री० [सं०] ककही। महासमंगा।
शीतभानु-संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा।
शीतभीरु-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) मल्लिका। मोतिया। (२) दे० "निर्गुंडी"।
शीतभीरुक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मल्लिका। (२) एक प्रकार का शालिधान्य। (३) काली निर्गुंडी।
शीतमंजरी-संज्ञा स्त्री० [सं०] शेफालिका। निर्गुंडी।
शीतमयूख-संज्ञा पुं० [सं०] (१) चंद्रमा। (२) कपूर।
शीतमरीचि-संज्ञा पुं० [सं०] (१) चंद्रमा। (२) कपूर।
शीतमूलक-संज्ञा पुं० [सं०] खस। उशीर।
शीतमेह-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का प्रमेह रोग।
शीतमेही-संज्ञा पुं० [सं० शीतमेहिन्] वह जिसे शीतप्रमेह रोग हो।
शीतरम्य-संज्ञा पुं० [सं०] प्रदीप। दीपक।
शीतरश्मि-संज्ञा पुं० [सं०] (१) चंद्रमा। (२) कपूर।
शीतरस-संज्ञा पुं० [सं०] ईख के कच्चे रस की बनी हुई एक प्रकार की मदिरा।
शीतरुच-संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा।
शीतरुह-संज्ञा पुं० [सं०] सफेद कमल।
शीतल-वि० [सं०] (१) ठंढा। सर्द। गरम का उल्टा। (२) क्षोभ या उद्वेग-रहित। जिसमें आवेश का अभाव हो। शांत। (३) प्रसन्न। संतुष्ट। तृप्त।
संज्ञा पुं० (१) कसीस। (२) छरीला। शैलेय। पत्थरफूल। (३) चंदन। (४) मोती। मुक्ता। (५) उशीर। खस। (६) बन सनई। (७) लिसोड़ा। (८) चंपा। (९) राल। (१०) पदुमकाठ। (११) पीतचंदन। (१२) भीमसेनी कपूर। (१३) शाल वृक्ष। (१४) बर्फ़। हिम। (१५) केराव। मटर। (१६) चंद्रमा। (१७) जैनों का एक प्रकार का मत।
शीतलक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मरुआ। मरुवक। (२) कुमुद।
शीतलचीनी-संज्ञा स्त्री० [हिं० शीतल + चीन देश] कबाब चीनी।
शीतलच्छद-संज्ञा पुं० [सं०] चंपा। चंपक।
शीतलता-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) ठंढापन। सर्दी। (२) अमृतवल्ली। (३) जड़ता।
शीतलताई ॐ-संज्ञा स्त्री० दे० "शीतलता"।
शीतलप्रद-संज्ञा पुं० [सं०] चंदन।
शीतलवातक-संज्ञा पुं० [सं०] अपराजिता। कोयल लता। विष्णुक्रांता।
शीतला-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) विस्फोटक रोग। चेचक। (२) एक देवी विस्फोटक की अधिष्ठात्री मानी जाती हैं। (३) आराम शीतला। (४) नीली दूब। (५) अर्कपुष्पी।
शीतलाषष्ठी-संज्ञा स्त्री० [सं०] माघ शुक्ल पक्ष की छठी तिथि।
शीतलाष्टमी-संज्ञा स्त्री० [सं०] चैत्र कृष्ण पक्ष की अष्टमी। इस दिन शीतला देवी की पूजा होती है।
शीतली-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) जल में होनेवाला एक पौधा। शीतली जटा। पतदी। (२) श्रीवल्ली। (३) चेचक। विस्फोटक।
शीतवर-संज्ञा पुं० [सं०] सिरियारी। सुसना।
शीतवरा-संज्ञा स्त्री० [सं०] ककही। कंघी। (पौधा)
शीतवल्क-संज्ञा पुं० [सं०] गूलर। उदुंबर।
शीतवल्लभ-संज्ञा पुं० [सं०] पित्तपापड़ा। शाहतरा।
शीतवल्ली-संज्ञा स्त्री० [सं०] नीली दूब।
शीतवासा-संज्ञा स्त्री० [सं०] जूही। यूथिका।
शीतवीर्य्य-संज्ञा पुं० [सं०] (१) पदुम काठ। (२) पाषानभेद। पखानभेद। (३) पित्तपापड़ा। (४) पाकड़। पकड़ी। (५) नीली दूब। (६) बच। बचा।

वि० खाने में जिसका प्रभाव ठंढा हो। जिसकी तासीर सर्द हो।

शीतवीर्य्यक-संज्ञा पुं० [सं०] पाकर। प्लक्ष वृक्ष।

शीतवृंता-संज्ञा स्त्री० [सं०] हुरहुर का पेड़।

शीतशिव-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सेंधा नमक। (२) छरीला। पथरफूल। (३) सोआ। (४) शमी का पेड़। सफेद कीकर। (५) कपूर।

शीतशिवा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सफेद कीकर। शमी। (२) सौंफ।

शीतशूक-संज्ञा पुं० [सं०] जौ। यव।

शीतसंवासा-संज्ञा स्त्री० [सं०] जूही। शीतवासा।

शीत सन्निपात-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का सन्निपात जिसमें शरीर सुन्न और ठंढा हो जाता है। पक्षाघात। अर्द्धांग।

शीतसह-संज्ञा पुं० [सं०] पीलू। झल वृक्ष।

शीतसहा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (२) निर्गुंडी। शेफालिका। (२) नेवारी। वासंती का पौधा। (३) मोतिया बेला। मल्लिका का एक भेद। (४) चमेली। (५) झलक वृक्ष। पीलू।

शीतांग-संज्ञा पुं० [सं०] शीत सन्निपात।

शीतांगी-संज्ञा स्त्री० [सं०] हंसपदी लता।

शीतांशु-संज्ञा स्त्री० [सं०] तुल्ली नाम की घास।

शीतांशु-संज्ञा पुं० [सं०] (१) कपूर। कपूर। (२) चंद्रमा।

शीता-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सरदी। ठंढ। (२) एक प्रकार की दूब। (३) शिलिपिका घास। (४) सरवर की डाल। (५) अमलतास।

शीताद-संज्ञा पुं० [सं०] दाँत के मसूड़ों का एक रोग जिसमें मसूड़े जगह जगह पक जाते हैं और उनमें से दुर्गंध निकलने लगती है।

शीताद्रि-संज्ञा पुं० [सं०] हिमालय पर्वत।

शीताघ-संज्ञा पुं० [सं०] शीतज्वर। जूड़ी।

शीतावरा-संज्ञा स्त्री० [सं०] कबरी। महासमंगा।

शीताभ्र-संज्ञा पुं० [सं०] (१) कपूर। (२) चंद्रमा।

शीतार्त्त-वि० [सं०] शीत से पीड़ित। शीतालु।

शीताल-संज्ञा पुं० [सं०] हिंताल वृक्ष।

शीताश्म-संज्ञा पुं० [सं० शीताश्मन्] चंद्रकांत मणि।

शीतीभाव-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शीतलता। (२) मनोविकारों के वेग का न रह जाना। शांति। शम। (३) मोक्ष। मुक्ति।

शीतोदक-संज्ञा पुं० [सं०] एक नरक का नाम।

शीत्कार-संज्ञा पुं० दे० "सीत्कार"।

शीधु-संज्ञा पुं० [सं०] पकी हुई ईख के रस से बनी हुई मदिरा। सीधु।

शीधुगंध-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मद्य गंध। (२) बकुल वृक्ष। मौलसिरी।

शीन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मूर्ख। (२) अजगर।
 वि० जमा हुआ।

शीफालिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] निर्गुंडी। शेफालिका।

शीभर-संज्ञा पुं० [सं०] मेंह की झड़ी।

शीभ्य-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शिव। (२) वृष। बैल।

शीर-वि० [सं०] नुकीला। तेज़।
 संज्ञा पुं० अजगर।
 संज्ञा पुं० [फ़ा० मि० सं० क्षीर] क्षीर। दूध।

शीरख़िश्त-संज्ञा पुं० [फ़ा०] हकीमी में एक रेचक ओषधि।
 विशेष—कहते हैं कि यह ओषधि खुरासान में पेड़ों और पत्तों पर ओस की बूँदों की तरह जमी हुई मिलती है।

शीरख़ोरा-संज्ञा पुं० [फ़ा० शीरख़्वार] (१) दूध पीता बच्चा। (२) अनजान बालक।

शीरमाल-संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] एक प्रकार की ख़मीरी रोटी जिस पर पकाते समय दूध का छींटा दिया जाता है।

शीरा-संज्ञा पुं० [फ़ा०] (१) चीनी मिला हुआ पानी। शर्बत। (२) चीनी या गुड़ को पकाकर शहद के समान गाढ़ा किया हुआ रस। चाशनी।

शीराज़ा-संज्ञा पुं० [फ़ा०] (१) वह बुना हुआ रंगीन या सफ़ेद फीता जो किताबों की सिलाई की छोर पर शोभा और मज़बूती के लिये लगाया जाता है। (२) प्रबंध। इंतज़ाम। (३) सिलसिला।
 मुहा०—शीराज़ा खुलना या टूटना = (१) टाँका टूटना। सिलाई खुल जाना। (२) प्रबंध का बिगड़ जाना। इंतज़ाम ख़राब होना।

शीरि-संज्ञा स्त्री० [सं०] रक्तनाड़ी। शिरा।

शीरिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] वंशपत्री नामक तृण।

शीरीं-वि० [फ़ा०] (१) मीठा। मधुर। (२) प्रिय। प्यारा।

शीरी-संज्ञा पुं० [सं०] (१) कुश। कुशा। हरिदर्भ। (२) मूँज। (३) कलिहारी। लांगली।

शीरीनी-संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] (१) मिठास। मीठापन। (२) खाने की वस्तु जिसमें गुड़ चीनी या मीठा पड़ा हो। मिठाई। मिष्टान्न। (३) बताशा। तिन्नी।
 क्रि० प्र०—चढ़ाना।

शीर्ण-वि० [सं०] (१) कुम्हलाया हुआ। टूटा फूटा हुआ। खंड खंड। (२) गिरा हुआ। च्युत। (३) क्षीण। पतला दुबला। (४) मुरझाया हुआ। सूखकर सिकुड़ा हुआ। (५) सड़ा हुआ। (६) कृश। दुबला पतला।
 संज्ञा पुं० एक गंध द्रव्य। स्थौणेयक। थुनेर।

शीर्णदल-संज्ञा पुं० [सं०] नीम।

शीर्णपत्र-संज्ञा पुं० [सं०] (१) कर्णिकार । कनियारी । (२) पठानी लोध । (३) नीम ।
शीर्णपर्ण-संज्ञा पुं० [सं०] निंब । नीम ।
शीर्णपाद-संज्ञा पुं० [सं०] यमराज ।
विशेष—पुराणों में कथा है कि माता के शाप से यमराज के पैर क्षीण हो गए थे ।
शीर्णपुष्पिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सौंफ । मधुरिका । (२) सोआ ।
शीर्णपुष्पी-संज्ञा स्त्री० [सं०] सौंफ ।
शीर्णमाला-संज्ञा स्त्री० [सं०] पिठवन । पृश्निपर्णी ।
शीर्णरोमक-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का गठिवन ।
शीर्णवृंत-संज्ञा पुं० [सं०] तरबूज ।
शीर्णांघ्रि-संज्ञा पुं० [सं०] यम । वि० दे० "शीर्णपाद" ।
शीर्ति-संज्ञा पुं० [सं०] तोड़ने फोड़ने की क्रिया । खंडन ।
शीर्य-वि० [सं०] (१) टूटने फूटने योग्य । भंगुर । नाशवान् ।
संज्ञा पुं० एक प्रकार की दूब या घास जिसका प्रयोजन यज्ञों में पड़ता था ।
शीर्वि-वि० [सं०] (१) अपकारक । (२) हिंसक । (३) बर्बर । जंगली ।
शीर्ष-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सिर । मुंड । कपाल । (२) माथा । (३) सब से ऊपर का भाग । सिरा । चोटी । (४) सामना । अग्र भाग । (५) कालागुरु । काला अगर । (६) एक पर्वत का नाम । (७) एक प्रकार की घास ।
शीर्षक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सिर । मुंड । (२) माथा । (३) चोटी । सिरा । (४) राहु ग्रह । (५) सिर में लपेटने की माला । (६) अगर । (७ नारियल । नारिकेल वृक्ष । (८) टोप । शिरस्त्राण । कूँड़ । (९) व्यवहार या अभियोग का निर्णय । फैसला । (१०) वह शब्द या वाक्य जो विषय के परिचय के लिये किसी लेख या प्रबंध के ऊपर लिखा जाय ।
शीर्षण्य-संज्ञा पुं० [सं०] (१) टोप । कूँड़ । (२) सुलझे हुए साफ़ बाल । (३) चारपाई का सिरहाना ।
शीर्षपट्टक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सिर में लपेटने का कपड़ा । (२) पगड़ी । मुरेठा । साफा ।
शीर्षबिंदु-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सिर के ऊपर और ऊँचाई में सब से ऊपर का स्थान । (२) मोतिया बिंद ।
शीर्षवर्त्तन-संज्ञा पुं० [सं०] अभियोग चलानेवाले का उस दशा में दंड सहने के लिये तैयार होना जब कि अभियुक्त ने दिव्य परीक्षा देकर अपने को निर्दोष प्रमाणित कर दिया हो । शिरोपस्थायी ।
शील-संज्ञा पुं० [सं०] (१) चाल व्यवहार । आचरण । वृत्ति । चरित्र । (२) स्वभाव । प्रवृत्ति । आदत । मिज़ाज । (३) अच्छा चाल-चलन । उत्तम आचरण । सद्वृत्ति ।
विशेष—बौद्ध शास्त्रों में दस शील कहे गए हैं—हिंसा, स्तेय, व्यभिचार, मिथ्याभाषण, प्रमाद, अपराह्न भोजन, नृत्य गीतादि, मालागंधादि, उच्चासन-शय्या, और द्रव्यसंग्रह इन सब का त्याग । कहीं कहीं पंचशील ही कहे गए हैं । यह शील छः या दस पारमिताओं में से एक है और तीन प्रकार का कहा गया है—संभार, कुशलसंग्राह और सत्वार्थ क्रिया ।
(४) उत्तम स्वभाव । अच्छी प्रकृति । अच्छा मिज़ाज । (५) दूसरे का जी न दुखे, यह भाव । कोमल हृदय । (६) संकोच का स्वभाव । मुरौवत ।
मुहा०—शील तोड़ना = दूसरे के जी दुखने न दुखने का ध्यान न रखना । मुरौवत न रखना । आँखों में शील न होना = दे० "आँख" । के मुहा०
(७) अजगर ।
वि० प्रवृत्त । तत्पर । प्रवृत्तिवाला । स्वभावयुक्त । जैसे,—दानशील, पुण्यशील ।
शीलवान्-वि० [सं० शीलवत्] [स्त्री० शीलवती] (१) अच्छे आचरण का । सात्विक वृत्ति का । (२) अच्छे या कोमल स्वभाव का । मुरौवतवाला । सुशील ।
शीला-संज्ञा स्त्री० [सं०] कौंडिन्य मुनी की पत्नी का नाम ।
शीवल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) छरीला । शैलेय । पथरफूल । (२) सेवार ।
शीवा-संज्ञा पुं० [सं०] अजगर ।
शीशफूल†-संज्ञा पुं० दे० "शीर्ष" ।
शीशम-संज्ञा पुं० [फ़ा०] एक प्रकार का पेड़ जिसका तना भारी, सुंदर और मज़बूत होता है ।
विशेष—यह पेड़ बहुत ऊँचा और सीधा जाता है । इसकी पत्तियाँ छोटी और गोल होती हैं । लकड़ी लाल रंग की होती है और मज़बूती तथा सुंदरता के लिये प्रसिद्ध है । इससे पलंग, कुरसी, मेज़ आदि सजावट के सामान बहुत बढ़िया बनते हैं ।
शीशमहल-संज्ञा पुं० [फ़ा० शीशा + अ० महल] (१) वह कमरा या कोठरी जिसकी दीवारों में सर्वत्र शीशे जड़े हों । (२) काँच का मकान ।
मुहा०—शीश महल का कुत्ता = पागल कुत्ते की तरह बकने या उछलनेकूदनेवाला । (शीशे में अपना ही प्रतिबिंब देख देखकर कुत्ता घबराता और भूँकता है ।)
शीशा-संज्ञा पुं० [फ़ा०] (१) एक मिश्र धातु, जो बालू या रेह या खारी मिट्टी को आग में गलाने से बनती है । यह पारदर्शक होती है तथा खरी होने के कारण थोड़े आघात से टूट जाती

है। काँच। (२) काँच का वह खंड जिसमें सामने की वस्तुओं का ठीक प्रतिबिंब दिखाई पड़ता है और जिसका व्यवहार चेहरा देखने के लिये किया जाता है। दर्पण। आइना। (३) झाड़ फ़ानूस आदि काँच के बने सजावट के सामान।

मुहा०—शीशा खाना = बहुत नाजुक चीज। शीशे में उतारना = (१) भूत उतारना। प्रेत बाधा शांत करना। (२) मस्त करना। मोहित करना।

शीशी-संज्ञा स्त्री० [फ़ा० शीशा] शीशे का छोटा पात्र जो तेल, इत्र, दवा आदि रखने के काम में आता है। काँच की लंबी कुप्पी।

मुहा०—शीशी सुँघाना = क्लोरोफ़ार्म सुँघाना। दवा सुँघाकर बेहोश करना। (शस्त्र चिकित्सा आदि के समय रोगी इस प्रकार क्लोरोफ़ार्म सुँघाकर बेहोश किए जाते हैं।)

शुंग-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बटवृक्ष। (२) आँवला। (३) पाकड़। पकड़ी। (४) नव पल्लव। (५) फूल के नीचे का आधार या कटोरी। (६) एक क्षत्रिय वंश जो मौर्यों के पीछे मगध के सिंहासन पर बैठा था।

विशेष—इस वंश का स्थापक मौर्यों का सेनापति पुष्यमित्र था जिसने मौर्य वंश के अंतिम राजा बृहद्रथ को मार कर ईसा से १८५ वर्ष पूर्व उसके साम्राज्य पर अपना अधिकार जमा लिया था।

शुंगी-संज्ञा पुं० [सं० शुंगिन्] (१) पाकड़ का पेड़। पाकर। (२) बट वृक्ष।

शुंठि, शुंठी-संज्ञा स्त्री० [सं०] सोंठ।

शुंड-संज्ञा पुं० [सं०] (१) हाथी की सूँड़। (२) हाथी का मद जो उसकी कनपटी से बहता है।

शुंडक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्रकार का रणवाद्य। भेरी। (२) मद्य उतारने या बेचनेवाला।

शुंडरोह-संज्ञा पुं० [सं०] कलिया घास। भूतृण।

शुंडा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सूँड़। (२) मद्यपान करने का स्थान। हौली। (३) शराब। (४) वेश्या। (५) कुटनी।

शुंडादंड-संज्ञा पुं० [सं०] हाथी की सूँड़।

शुंडार-संज्ञा पुं० [सं०] (१) हाथी की सूँड़। (२) साठ वर्ष का हाथी। (३) मद्य उतारने या बेचनेवाला।

शुंडाल-संज्ञा पुं० [सं०] हाथी।

शुंडिक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मद्य बिकने का स्थान। कलवरिया। (२) एक प्राचीन जाति का नाम जिसका व्यवसाय मद्य उतारना और बेचना था।

शुंडिमूषिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] छछूँदर।

शुंडी-संज्ञा पुं० [सं० शुंडिन्] (१) (सूँड़वाला) हाथी। (२) मद्य बनानेवाला। कलवार।

संज्ञा स्त्री० (१) हाथीसूँड़ी का पौधा। (२) गजे का कौआ। घाँटी।

शुंभ-संज्ञा पुं० [सं०] एक असुर जिसे दुर्गा ने मारा था।

विशेष—यह प्रह्लाद का पौत्र और गवेष्टी का पुत्र था। इसके भाई का नाम निशुंभ था।

शुंभघातिनी, शुंभमर्दिनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] दुर्गा।

शुंभपुरी-संज्ञा स्त्री० [सं०] शुंभ राक्षस की पुरी। एकचक्रा पुरी। हरिगृह।

विशेष—विद्वानों का अनुमान है कि मध्य प्रदेश में गोंडवाना के अंतर्गत संभलपुर ही प्राचीन शुंभपुरी है।

शुक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) तोता। सुग्गा। (२) एक प्रकार की गठिवन। (३) सिरिस का पेड़। (४) सोना पाठा। (५) [illegible] लोध का वृक्ष। (६) तालीशपत्र। (७) भटकटैया। मरसा। (८) रावण के एक दूत का नाम। (९) शुकदेव। (१०) वस्त्र। कपड़ा। (११) कपड़े का आँचल। (१२) पगड़ी। साफ़ा।

शुककर्णी-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का पौधा।

शुककीट-संज्ञा पुं० [सं०] हरे रंग का एक फतिंगा जो खेतों में दिखाई पड़ता है।

शुककूट-संज्ञा पुं० [सं०] दो खंभों के बीच में शोभा के लिये टँगी हुई माला।

शुकच्छद-संज्ञा पुं० [सं०] (१) तोते का पर। (२) ग्रंथिपर्ण। गठिवन। (३) तेजपत्ता।

शुकजिह्वा-संज्ञा स्त्री० [सं०] सुआठोंठी नामक पौधा।

शुकतरु-संज्ञा पुं० [सं०] शिरीष वृक्ष।

शुकतुंड-संज्ञा पुं० [सं०] (१) तोते की चोंच। (२) हाथ की एक मुद्रा जो तांत्रिक पूजन में बनाई जाती है।

शुकतुंडी-संज्ञा स्त्री० [सं०] शुकजिह्वा या सुआ ठोंठी नाम पौधा।

शुकदेव-संज्ञा पुं० [सं०] कृष्णद्वैपायन व्यास के पुत्र जो पुराणों के भारी वक्ता और ज्ञानी थे।

विशेष—इन्होंने राजा परीक्षित को उनके मरने के पहले धर्म का उपदेश दिया था। कहा जाता है कि यही उपदेश भागवत पुराण है।

शुकद्रुम-संज्ञा पुं० [सं०] शिरीष वृक्ष।

शुक-नलिका-न्याय-संज्ञा पुं० [सं०] तोता जिस प्रकार बहेलिए की नली (नलनी) में लोभ के कारण फँस जाता है, वैसे ही फँसने की रीति।

विशेष—सूर, तुलसी आदि हिंदी के कवियों ने भी "नलनी के सुअटा" पद का व्यवहार किया है।

शुकनामा-संज्ञा स्त्री० [सं०] शुकजिह्वा या सुआ ठोंठी नामक पौधा।

शुकनासन-संज्ञा पुं० [सं०] पदबेर। चकमर्द।

शुकनास-संज्ञा पुं० [सं०] (१) कपिकच्छु । केवाँच । कौंछ । (२) शुकजिह्वा । सुआ ठोंठी । (३) गंभारी । (४) नलिका । (५) श्योनाक वृक्ष । छोंकर । (६) सोनापाठा । (७) अगस्त का पेड़ ।

शुकनासा-संज्ञा स्त्री० दे० "शुकनास" ।

शुकपुच्छ-संज्ञा पुं० [सं०] गंधक ।

शुकपुच्छक-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की गठिवन । थुनेर ।

शुकपुष्प-संज्ञा पुं० [सं०] (१) थुनेर । (२) सिरिस का पेड़ । (३) गंधक । (४) अगस्त का पेड़ ।

शुकप्रिय-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सिरिस का पेड़ । (२) कमरख ।

शुकप्रिया-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) नीम । (२) जामुन ।

शुकफल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) आक । मदार । (२) सेमर ।

शुकबर्ह-संज्ञा पुं० [सं०] गठिवन ।

शुकरान-संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का वृक्ष जिसके फल कडुए होते हैं ।

शुकराना-संज्ञा पुं० [अ० शुक्र] (१) शुक्रिया । कृतज्ञता । (२) वह धन जो कार्य्य हो जाने के पश्चात् धन्यवाद के रूप में किसी को दिया जाय । जैसे,—वकीलों का शुकराना, जमींदारों का शुकराना इत्यादि ।

शुकवल्लभ-संज्ञा पुं० [सं०] अनार । दाड़िम ।

शुकवाह-संज्ञा पुं० [सं०] कामदेव, जिसका वाहन शुक या तोता माना गया है ।

शुकशालक-संज्ञा पुं० [सं०] बकायन ।

शुकशिंबा, शुकशिंबि-संज्ञा स्त्री० [सं०] कपिकच्छु । किवाँच ।

शुकशीर्षा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) थुनेर । स्थौणेयक । (२) तालीस । (३) तेजपत्ता ।

शुकाख्या-संज्ञा स्त्री० [सं०] शुकजिह्वा नामक पौधा ।

शुकादन-संज्ञा पुं० [सं०] अनार ।

शुकानना-संज्ञा स्त्री० [सं०] शुकाख्या नामक पौधा ।

शुकायन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बुद्ध । (२) अर्हत ।

शुकाह्व, शुकाह्वय-संज्ञा स्त्री०[सं०] एक प्रकार का मोथा ।

शुकी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) मादा तोता । सुग्गी । (२) कश्यप की पत्नी का नाम ।

शुकेष्ट-संज्ञा पुं० [सं०] शिरीष वृक्ष । सिरिस ।

शुकोदर-संज्ञा पुं० [सं०] तालीश वृक्ष ।

शुक्त-वि० [सं०] (१) सड़ा कर खट्टा किया हुआ । खमीर उठाया हुआ । (२) खट्टा । अम्ल । (३) कड़ा । कठोर । (४) अप्रिय । नापसंद । (५) निर्जन । सुनसान । उजाड़ । (६) विलष्ट । मिला हुआ ।

संज्ञा पुं० (१) अम्लता । खटाई । (२) वसिष्ठ के एक पुत्र का नाम । (३) सड़ा कर खट्टी की हुई कोई वस्तु । (४) काँजी । (५) सिरका । (६) चुक । (७) मांस । (८) कठोर वचन ।

शुक्ता-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) चुक्रिका का पौधा । चूका । (२) काँजी ।

शुक्ताम्ल-संज्ञा पुं० [सं०] चुक्रिका शाक । चुक का साग ।

शुक्ति-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सीप । सीपी । (२) ताल की सीपी । सुतुही । (३) शंख । (४) दो कर्ष या चार तोले की एक तौल । (५) बेर । (६) नखी नामक गंध द्रव्य । (७) अर्श । बवासीर । (८) आँख का एक रोग जिसमें सफेद डेले के ऊपर मांस की एक बिंदी सी निकल आती है । (९) कपाल जो काली या कापालिकों के हाथ में रहता है । (१०) हड्डी । (११) घोड़े की गरदन की एक भौंरी ।

शुक्तिक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्रकार का नेत्र रोग । (२) गंधक ।

शुक्तिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सीप । सीपी । (२) चुक्रिका शाक । चुक नाम का साग । (३) आँख का शुक्ति नामक रोग ।

शुक्तिज-संज्ञा पुं० [सं०] मुक्ता । मोती ।

शुक्तिपत्र, शुक्तिपर्ण-संज्ञा पुं० [सं०] छतिवन । सप्तपर्ण वृक्ष ।

शुक्तिबीज, शुक्तिमणि-संज्ञा पुं० [सं०] मोती ।

शुक्तिमती-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) एक नदी का नाम । (२) चेदि की राजधानी ।

शुक्तिमान्-संज्ञा पुं० [सं० शुक्तिमत्] एक पर्वत जो आठ कुल-पर्वतों में से है ।

शुक्तिवधू-संज्ञा स्त्री० [सं०] सीप । सीपी ।

शुक्त्यंगी-संज्ञा पुं० [सं०] संभालू । सिंदुवार । मेउड़ी ।

शुक्र-वि० [सं०] (१) देदीप्यमान । चमकीला । (२) स्वच्छ । उज्वल ।

संज्ञा पुं० (१) अग्नि । (२) एक बहुत चमकीला ग्रह या तारा जो पुराणानुसार दैत्यों का गुरु कहा गया है ।

विशेष—आधुनिक ज्योतिर्विज्ञान के अनुसार इसका व्यास ७०० मील है । यह पृथ्वी से सब से अधिक निकट है, एक करोड़ कोस से कुछ ही अधिक दूर है । सूर्य्य से इसकी दूरी तीन करोड़ पैंतीस लाख कोस है । इसका अक्ष भ्रमण काल २२५ दिनों का है; अर्थात् इसका एक दिन रात हमारे २२५ दिनों के बराबर होता है । बुध के समान यह ग्रह भी प्रधान युति के पीछे पश्चिम में निकलता है और पूर्व की ओर बढ़ता हुआ लघु युति के समय लुप्त हो जाता है । इसमें वायु और जल दोनों का होना अनुमान किया गया है । इसका पृष्ठ सदा घने बादलों से ढका रहता है । फलित ज्योतिष में इसका वर्ण जल के समान श्यामल कहा गया है और यह भाग्य का स्वामी, जलभूमिचारी

और स्निग्धदर्शियाला माना गया है। पुराणों में शुक्र दैत्यों के गुरु और भृगु के पुत्र कहे गए हैं। ऐसी कथा है कि दैत्यराज बलि जब वामन को पृथ्वी दान करने लगे, तब ये उन्हें रोकने के विचार से उस जलपात्र की टोंटी में जा बैठे जिसमें संकल्प करने का जल था। उस समय सींक से खोदने पर इनकी एक आँख फूट गई। इसी कारण काने आदमी को लोग हँसी में शुक्राचार्य्य कह दिया करते हैं। वि० दे० "शुक्राचार्य्य"।

पर्य्या०—दैत्यगुरु। काव्य। उशना। भार्गव। कवि। सित। भृगु। षोडशार्चि। श्वेताश्व।

(३) ज्येष्ठ मास। जेठ। (यह कुबेर का भंडारी कहा गया है।) (४) स्वच्छ और शुद्ध सोम। (५) चित्रक वृक्ष। चीता। (६) सार। रस। सत। (७) नर जीवों के शरीर की वह धातु जिसमें मादा के अंड को गर्भित करनेवाले घटक या अणु रहते हैं। वीर्य्य। मनी। (८) बल। सामर्थ्य। पौरुष। शक्ति। (९) सप्ताह का छठा दिन जो बृहस्पतिवार के बाद और शनिवार से पहले पड़ता है। (१०) आँख की पुतली का एक रोग। फूला। फूली। (११) एरंड वृक्ष। अंडी का पेड़। रेंड। (१२) स्वर्ण। सोना। (१३) धन। दौलत। संपत्ति।

संज्ञा पुं० [अ०] धन्यवाद। कृतज्ञता-प्रकाश। जैसे,—खुदा का शुक्र है।

शुक्रकर-संज्ञा पुं० [सं०] मज्जा, जिससे शुक्र या वीर्य्य का बनना कहा गया है।

शुक्रकृच्छ्र-संज्ञा पुं० [सं०] मूत्रकृच्छ्र रोग। सूजाक।

शुक्रगुज़ार-वि० [अ० शुक्र + फ़ा० गुज़ार] एहसान माननेवाला। धन्यवाद देनेवाला। आभारी। कृतज्ञ।

शुक्रगुज़ारी-संज्ञा स्त्री० [अ० + फ़ा०] एहसानमंदी। किए हुए उपकार को मानना। कृतज्ञता।

शुक्रज-संज्ञा पुं० [सं०] (१) पुत्र। बेटा। (२) देवताओं का एक भेद। (जैन)

शुक्रद-संज्ञा पुं० [सं०] गेहूँ। गोधूम।

शुक्रदोष-संज्ञा पुं० [सं०] क्लीवत्व। नपुंसकता।

शुक्रपुष्प-संज्ञा पुं० [सं०] (१) कटसरैया। (२) सफेद अपराजिता।

शुक्रप्रमेह-संज्ञा पुं० [सं०] धातुस्रीणता। धात का गिरना जो एक रोग है।

शुक्रभुज-संज्ञा पुं० [सं०] मयूर। मोर।

शुक्रभू-संज्ञा पुं० [सं०] मज्जा।

शुक्रमाता-संज्ञा स्त्री० [सं०] बकोरी। भारंगी।

शुक्रमेह-संज्ञा पुं० दे० "शुक्रप्रमेह"।

शुक्रल-वि० [सं०] (१) जिसमें शुक्र या वीर्य्य हो। (२) वीर्य्य उत्पन्न करनेवाला।

शुक्रला-संज्ञा स्त्री० [सं०] उटंगन के बीज। उचटा। ओकड़ा।

शुक्रवार-संज्ञा पुं० [सं०] सप्ताह का छठा दिन जो बृहस्पतिवार के बाद और शनिवार के पहले पड़ता है।

शुक्रशिष्य-संज्ञा पुं० [सं०] दैत्य। असुर।

शुक्रस्तंभ-संज्ञा पुं० [सं०] ध्वजभंग या नपुंसकता का एक भेद जो बहुत दिनों तक ब्रह्मचर्य्य पालन करने से होता है।

शुक्रांग-संज्ञा पुं० [सं०] मयूर। मोर।

शुक्रा-संज्ञा स्त्री० [सं०] वंशलोचन।

शुक्राचार्य्य-संज्ञा पुं० [सं०] एक ऋषि जो दैत्यों के गुरु और महर्षि भृगु के पुत्र थे। इनकी कन्या का नाम देवयानी था और पुत्रों का नाम षंड तथा अमर्क था। देवगुरु बृहस्पति के पुत्र कच ने इनसे संजीवनी विद्या सीखी थी।

शुक्राश्मरी-संज्ञा स्त्री० [सं०] अश्मरी रोग का एक भेद। वह पथरी जो स्खलित होते समय वीर्य्य को रोकने से उत्पन्न होती है।

शुक्रिय-वि० [सं०] (१) शुक्र संबंधी। शुक्र का। (२) जिसमें शुद्ध रस हो।

शुक्रिया-संज्ञा पुं० [फ़ा०] धन्यवाद। कृतज्ञता-प्रकाश।

क्रि० प्र०—अदा करना।

शुक्ल-वि० [सं०] सफेद। उजला। धवल। श्वेत। स्वच्छ।

संज्ञा पुं० (१) ब्राह्मणों की एक पदवी। (२) शुक्ल पक्ष। (३) सफेद रेंड़ का वृक्ष। (४) आँखों का एक प्रकार का रोग जो उसके सफेद तल या ढेले पर होता है। (५) कुंद नामक पुष्प वृक्ष। (६) सफेद लोध। (७) नवनीत। मक्खन। (८) चाँदी। रजत। (९) धव वृक्ष। धौ। (१०) योग। (११) विष्णु का एक नाम।

शुक्लकंठ, शुक्लकंठक-संज्ञा पुं० [सं०] मुर्गाबी। जल काक।

शुक्लकंद-संज्ञा पुं० [सं०] (१) भैंसाकंद। (२) रतालू। (३) अतीस।

शुक्लकंदा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सफेद अतीस। (२) विदारी कंद।

शुक्लक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शुक्ल पक्ष। (२) खिरनी का वृक्ष।

शुक्लकर्कट-संज्ञा पुं० [सं०] सफेद रंग का केकड़ा।

शुक्लकुष्ठ-संज्ञा पुं० [सं०] वह कोढ़ जिसमें शरीर पर सफेद चकत्ते पड़ जाते हैं।

शुक्लक्षीरा-संज्ञा स्त्री० [सं०] काकोली।

शुक्लतीर्थ-संज्ञा पुं० [सं०] पवित्र स्थान। तीर्थ स्थान।

शुक्लता-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) शुक्ल का भाव या धर्म। (२) सफेदी। श्वेतता।

शुक्लतीर्थ-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन तीर्थ का नाम जिसे विष्णुतीर्थ भी कहते हैं।

शुक्लत्व-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शुक्ल का भाव या धर्म। शुक्लता। (२) सफेदी। श्वेतता।

शुक्लदुग्ध-संज्ञा पुं० [सं०] सिंघाड़ा।

शुक्लधातु-संज्ञा पुं० [सं०] खरिया नाम की मिट्टी।

शुक्ल पक्ष-संज्ञा पुं० [सं०] अमावास्या के उपरांत प्रतिपदा से लेकर पूर्णिमा तक का पक्ष, जिसमें चंद्रमा की कला प्रति दिन बढ़ती जाती है जिससे रात उजेली होती है। चांद्र-मास में कृष्ण पक्ष से भिन्न दूसरा पक्ष।

शुक्लपुष्प-संज्ञा पुं० [सं०] (१) छत्रक वृक्ष। (२) कुंद नामक फूल का पौधा। (३) मरुआ। (४) सफेद ताल मखाना। (५) पिंडार। (६) मैनफल।

शुक्लपुष्पा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) हाथीसुंडी नामक क्षुप। (२) शीतकुंभी। शीतली लता। (३) कुंद।

शुक्लपुष्पी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) नागदंती। (२) कुंद नामक फूल का पौधा।

शुक्लपृष्ठक-संज्ञा पुं० [सं०] मेंढ़की। सँभालू। सिंधुवार।

शुक्लफल-संज्ञा पुं० [सं०] मदार। आक।

शुक्लफला-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) शमी। छीकुर। (२) मदार।

शुक्लफेन-संज्ञा पुं० [सं०] समुद्रफेन।

शुक्लबल-संज्ञा पुं० [सं०] जैनियों के अनुसार एक जिन देव का नाम।

शुक्लमंजरी-संज्ञा स्त्री० [सं०] सफेद निर्गुंडी।

शुक्लमंडल-संज्ञा पुं० [सं०] आँखों का सफेद भाग जो पुतली से भिन्न होता है।

शुक्लमेह-संज्ञा पुं० [सं०] चरक के अनुसार एक प्रकार का प्रमेह रोग।

शुक्लवायस-संज्ञा पुं० [सं०] बक। बगुला।

शुक्लवृक्ष-संज्ञा पुं० [सं०] धौ या धव का वृक्ष।

शुक्लशाल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) गिरिनिंब। (२) सफेद शाल का वृक्ष।

शुक्लांग-संज्ञा पुं० [सं०] चोवचीनी।

शुक्लांगा-संज्ञा स्त्री० [सं०] निर्गुंडी। शेफालिका।

शुक्लांगी-संज्ञा स्त्री० [सं०] निर्गुंडी। शेफालिका।

शुक्ला-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सरस्वती। (२) शर्करा। शक्कर। चीनी। (३) काकोली। (४) विदारी। (५) सूकर कंद। (६) निर्गुंडी। शेफालिका।

शुक्लाख्य-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का पक्षी।

शुक्लापांग-संज्ञा पुं० [सं०] मयूर पक्षी। मोर।

शुक्लाम्ल-संज्ञा पुं० [सं०] चूका या चुक्रिका नामक साग।

शुक्लायन-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन ऋषि का नाम।

शुक्लार्क-संज्ञा पुं० [सं०] सफेद मदार।

शुक्लार्म-संज्ञा पुं० [सं० शुक्लार्मन्] आँखों का एक प्रकार का रोग। इसमें आँखों के सफेद भाग में एक प्रकार का सफेद मस्सा हो जाता है जो धीरे धीरे बढ़ता रहता है।

शुक्लाहिफेन-संज्ञा पुं० [सं०] पोस्ते का पेड़।

शुक्लोदन-संज्ञा पुं० [सं०] ललित विस्तर के अनुसार महाराज शुद्धोदन के भाई का नाम।

शुक्लोपला-संज्ञा स्त्री० [सं०] चीनी। शर्करा।

शुक्लौदन-संज्ञा पुं० [सं०] अरवा चावल। भुजिया का उलटा।

शुचि-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वायु। हवा। (२) तेज। (३) चित्र। तसवीर।

शुचा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) शोक। दुःख। रंज। (२) दे० "शुचि"।

शुचि-संज्ञा पुं० [सं०] (१) अग्नि। आग। (२) चित्रक या चीता नामक वृक्ष। (३) ग्रीष्म। गरमी। (४) ज्येष्ठ मास। (५) आषाढ़ मास। (६) चंद्रमा। (७) शुक्र। (८) ब्राह्मण। (९) भागवत के अनुसार अंधक के एक पुत्र का नाम। (१०) कार्त्तिकेय।

संज्ञा स्त्री० (१) पवित्रता। सफाई। स्वच्छता। शुद्धता। (२) पुराणानुसार कश्यप की पत्नी ताम्रा के गर्भ से उत्पन्न एक कन्या का नाम।

वि० (१) शुद्ध। पवित्र। (२) स्वच्छ। साफ। (३) निरपराध। निर्दोष। (४) जिसका अंतःकरण शुद्ध हो। स्वच्छ हृदयवाला।

शुचिकर्मा-वि० [सं० शुचिकर्मन्] पवित्र कार्य करनेवाला। सदाचारी। कर्मनिष्ठ। उ०—चलेउ सुभेस नरेस छत्रधरमा सुचिकरमा। बिलुहरमा कृत सुरथ बैठि रथ कंचन बरमा। —गिरिधर।

शुचिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] महाभारत के अनुसार एक अप्सरा का नाम।

शुचिकापुष्प-संज्ञा पुं० [सं०] केवड़ा। केतकी।

शुचिता-संज्ञा स्त्री० [सं०] शुचि का भाव या धर्म।

शुचिद्रुम-संज्ञा पुं० [सं०] पीपल। अश्वत्थ वृक्ष।

शुचिप्रणी-संज्ञा पुं० [सं०] आचमन।

शुचिमल्लिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] नेवारी। नव मल्लिका।

शुचिरोचि-संज्ञा पुं० [सं० शुचिरोचिस्] चंद्रमा।

शुचिवाक्-संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार एक पर्वत का नाम।

शुचिवृक्ष-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन मंत्रकार ऋषि का नाम।

शुचिश्रवा-संज्ञा पुं० [सं० शुचिश्रवस्] विष्णु का एक नाम।

शुची-वि० [सं० शुचिन्] (१) शुद्ध। पवित्र। (२) स्वच्छ। साफ।

शुचीरता-संज्ञा स्त्री० पुं० [सं०] वीर्य्य।

शुचीर्य्य-संज्ञा पुं० [सं०] वीर्य्य।

शुजा-वि० [अ०] बहादुर। शूरवीर। दिलेर।

शुजाअत-संज्ञा स्त्री० [अ०] बहादुरी। वीरता। शूरता।

शुद्धीर्य्य-संज्ञा पुं० [सं०] शुक्र। वीर्य्य।

शुतुद्रि, शुतुद्रु-संज्ञा स्त्री० [सं०] शतद्रु नदी । सतलज ।

शुतुरगाव-संज्ञा पुं० [फा०] जिराफा नामक जंतु । वि० दे० "जिराफा" ।

शुतुरमुर्ग-संज्ञा पुं० [फा०] अमेरिका, अफ्रीका और अरब के रेगिस्तान में होनेवाला एक प्रकार का बहुत बड़ा पक्षी जो प्रायः तीन गज तक ऊँचा होता है। इसकी गरदन ऊँट की तरह बहुत लंबी होती है। यह उड़ तो नहीं सकता, पर रेगिस्तान में घोड़े से भी अधिक तेज दौड़ सकता है। यह घास और अनाज खाता है। कभी कभी कंकड़ पत्थर भी खा जाता है। इसके पर बहुत दाम पर बिकते हैं। यह एक बार में तीस से कम अंडे नहीं देता।

शुदनी-संज्ञा स्त्री० [फा०] वह बात जिसका होना पहले से ही किसी दैवी शक्ति से निश्चित हो। भावी। होनी। होनहार। नियति।

शुद-संज्ञा स्त्री० दे० "सुदी"।

शुद्ध-वि० [सं०] (१) जिसमें किसी प्रकार की मैल या खोट आदि न हो। पवित्र। साफ। स्वच्छ। (इस अर्थ में इस शब्द का प्रयोग प्रायः यौगिक शब्द बनाने में शब्दों के आरंभ में होता है। जैसे,—शुद्धबुद्धि, शुद्धमति।) (२) सफेद। उज्वल। (३) जिसमें किसी प्रकार की अशुद्धि न हो। जो गलत न हो। ठीक। सही। (४) दोष-रहित। निर्दोष। बेऐब। (५) जिसमें किसी तरह की मिलावट न हो। खालिस।

संज्ञा पुं० (१) सेंधा नमक। (२) काली मिर्च। (३) चाँदी। रूपा। (४) शुंठा नाम की घास। (५) संगीत में राग के तीन भेदों में से एक भेद। वह राग जिसमें और किसी राग का मेल न हो। जैसे,—भैरव, मेघ। (६) शिव का एक नाम। (७) चौदहवें मन्वंतर के सप्तर्षियों में से एक।

शुद्धगंध-संज्ञा पुं० [सं०] गर्दभ। गदहा।

शुद्धता-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) शुद्ध होने का भाव या धर्म। पवित्रता। (२) निर्दोषता।

शुद्धत्व-संज्ञा पुं० [सं०] शुद्ध होने का भाव या धर्म। शुद्धता। पवित्रता।

शुद्ध पक्ष-संज्ञा पुं० [सं०] अमावस्या के उपरांत की प्रतिपदा से पूर्णिमा तक का पक्ष। शुक्ल पक्ष।

शुद्धपुरी-संज्ञा स्त्री० [सं०] दक्षिण भारत के एक पवित्र तीर्थ का नाम।

शुद्धमांस-संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक के अनुसार वह पकाया हुआ मांस जिसके साथ में हड्डी आदि न लगी हो।

शुद्धवल्लिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] गिलोय। गुडुच।

शुद्धांत-संज्ञा पुं० [सं०] अंतःपुर। रनिवास। जनानखाना।

शुद्धांतपालक-संज्ञा पुं० [सं०] वह जो अंतःपुर के द्वार पर पहरा देता हो। दौवारिक।

शुद्धांता-संज्ञा स्त्री० [सं०] रानी। राज्ञी।

शुद्धा-संज्ञा स्त्री० [सं०] इंद्रजव। कुटज बीज।

शुद्धात्मा-संज्ञा पुं० [सं० शुद्धात्मन्] शिव का एक नाम।

शुद्धापह्नुति-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का अलंकार जिसमें प्रकृति अर्थात् उपमेय को झूठ ठहराकर या उसका निषेध करके उपमान की सत्यता स्थापित की जाती है। जैसे, उ०—शुद्धापह्नुति झूठ कहि, साँची बात दुराहि। नैन नहीं ये मीन युग, छवि सागर के माहि।—भानु।

शुद्धारुद्रीय-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का साम।

शुद्धि-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) शुद्ध होने का कार्य। (२) सफाई। स्वच्छता। (३) वैदिक धर्म के अनुसार वह कृत्य या संस्कार जो किसी अशुद्ध या अशुचि व्यक्ति के शुद्ध होने के समय होता है। जैसे,—अशौच की समाप्ति पर शुद्ध होने के समय का कृत्य या किसी धर्म-भ्रष्ट व्यक्ति के शुद्ध होकर पुनः अपने धर्म में आने के समय होनेवाला कृत्य या संस्कार। (४) दुर्गा का एक नाम।

शुद्धिकंद-संज्ञा पुं० [सं०] लहसुन।

शुद्धिपत्र-संज्ञा पुं० [सं०] वह पत्र जिसमें छपने के समय पुस्तक में रही हुई अशुद्धियाँ बतलाई गई हों। वह पत्र जिससे सूचित हो कि कहाँ क्या अशुद्धि है।

शुद्धोद-संज्ञा पुं० [सं०] समुद्र। सागर।

शुद्धोदन-संज्ञा पुं० [सं०] एक सुप्रसिद्ध शाक्य राजा जो भगवान् बुद्धदेव के पिता थे और जिनकी राजधानी कपिलवस्तु में थी।

विशेष—इस शब्द के साथ पुत्र या उसका वाचक कोई शब्द लगाने से "बुद्धदेव" अर्थ होता है।

शुद्धोदनि-संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु का एक नाम।

शुनःशेफ-संज्ञा पुं० [सं०] वैदिक काल के एक प्रसिद्ध ऋषि जो महर्षि ऋचीक के पुत्र थे। ये महाराज अंबरीष के यज्ञ में बलि के लिये लाए गए थे। विश्वामित्र ने इनको अग्नि की स्तुति बतलाई थी। अग्निदेव इनकी स्तुति से इतने प्रसन्न हुए थे कि जब ये यज्ञ कुंड में डाले गए, तब उसमें से अक्षत बाहर निकल आए। इसके उपरांत ये महर्षि विश्वामित्र के यहाँ उनके पुत्र रूप होकर रहने लगे। देवी भागवत आदि कुछ पुराणों में इनके संबंध में कई कथाएँ आई हैं।

शुनःसख-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन ऋषि का नाम जिसका उल्लेख महाभारत में है।

शुनःकर्ण-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन ऋषि का नाम।

शुन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) कुत्ता। (२) वायु। (३) सुख। आराम।

शुनक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) कुत्ता। कुक्कुर। श्वान। (२) महाभारत के अनुसार एक गोत्र-प्रवर्त्तक ऋषि का नाम।
शुनकचंचुका–संज्ञा स्त्री० [सं०] चेंच नाम का साग।
शुनकचिल्ली–संज्ञा स्त्री० [सं०] बथुआ।
शुनहोत्र–संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्राचीन ऋषि का नाम। (२) भरद्वाज ऋषि के पुत्र का नाम जो ऋग्वेद के कई मंत्रों के द्रष्टा हैं।
शुनामुख–संज्ञा पुं० [सं०] हिमालय के उत्तर ओर के एक प्रदेश का प्राचीन नाम। अनुमान है कि यह नेपाल के उत्तर का प्रदेश है।
शुनाशीर, शुनासीर–संज्ञा पुं० [सं०] (१) इंद्र। (२) वायु और सूर्य्य। (३) इंद्र और वायु।
शुनासीरी–संज्ञा पुं० [सं० शुनासीरिन्] इंद्र।
शुनासीरीय–वि० [सं०] (१) इंद्र संबंधी। इंद्र का। (२) वायु देवता के संबंध का। (३) सूर्य्य देवता के संबंध का।
शुनि–संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० शुनी] कुत्ता।
शुनोलांगूल–संज्ञा पुं० [सं०] देवी भागवत के अनुसार शुनःशेफ के छोटे भाई का नाम।
शुबहा–संज्ञा पुं० [अ०] (१) संदेह। शक। (२) धोखा। वहम। भ्रम।
क्रि० प्र०—करना।—निकालना।—मिटना।—मिटाना।—होना।
शुभंकर–वि० [सं०] शुभ या मंगल करनेवाला। मंगल-कारक। शुभकारी।
शुभंकरी–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) कल्याण करनेवाली, पार्वती। (२) शमी वृक्ष।
शुभ–वि० [सं०] (१) अच्छा। भला। उत्तम। जैसे,—शुभ शकुन, शुभ समाचार, शुभ कार्य्य। (२) कल्याणकारी। मंगलप्रद।
संज्ञा पुं० (१) मंगल। कल्याण। भलाई। (२) विष्कंभादि सत्ताइस योगों के अंतर्गत एक योग। फलित ज्योतिष के अनुसार जो बालक इस योग में जन्म लेता है, वह सब लोगों का कल्याण करनेवाला, अच्छे कर्म करनेवाला, पंडितों का सत्संग करनेवाला और बुद्धिमान होता है। (३) पदुमाख। पदमकाठ। (४) चाँदी। (५) बकरा।
शुभकर–वि० [सं०] शुभ या मंगल करनेवाला।
शुभकरी–संज्ञा स्त्री० [सं०] पार्वती।
शुभकूट–संज्ञा पुं० [सं०] सिंहल द्वीप या लंका का एक प्रसिद्ध पर्वत जिस पर चरण-चिह्न बने हुए हैं। ईसाई इन्हें हजरत आदम के चरण चिह्न और बौद्ध महात्मा बुद्ध के चरण-चिह्न मानते हैं।
शुभकृत्स्न–संज्ञा पुं० [सं०] बौद्ध देवताओं का एक वर्ग।

शुभगंधक–संज्ञा पुं० [सं०] बोल नामक गंधद्रव्य। गंधबाला।
शुभग्रह–संज्ञा पुं० [सं०] फलित ज्योतिष के अनुसार बृहस्पति और शुक्र ये दोनों ग्रह जो सौम्य और शुभ माने जाते हैं। इनके अतिरिक्त बुध ग्रह भी, यदि पापयुक्त न हो तो, शुभ माना जाता है।
शुभचिंतक–वि० [सं०] शुभ या भला चाहनेवाला। भलाई की इच्छा रखनेवाला। कल्याण चाहनेवाला। हितैषी। खैरख्वाह।
शुभदंता–संज्ञा स्त्री० [सं०] पुराणानुसार पुष्पदंत नामक हाथी की हथनी का नाम।
शुभद–संज्ञा पुं० [सं०] अश्वत्थ वृक्ष। पीपल का पेड़।
वि० शुभ प्रद। शुभदायक।
शुभदर्शन–वि० [सं०] (१) जिसका मुँह देखने से कोई शुभ या मंगल बात हो। (२) सुंदर। खूबसूरत।
शुभदायी–वि० [सं० शुभदायिन्] शुभ या मंगल करनेवाला। शुभ-प्रद। शुभद।
शुभनामा–संज्ञा स्त्री० [सं०] किसी मास के शुक्ल पक्ष की पंचमी, दशमी या पूर्णिमा तिथि।
शुभपत्रिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] सरिवन। शालपर्णी।
शुभप्रद–वि० [सं०] शुभ या मंगल करनेवाला। शुभद। मंगलकारी।
शुभवक्त्रा–संज्ञा स्त्री० [सं०] कार्त्तिकेय की एक मातृका का नाम।
शुभविमलगर्भ–संज्ञा पुं० [सं०] एक बोधिसत्व का नाम।
शुभव्रत–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का व्रत जो कार्त्तिक शुक्ला पंचमी को किया जाता है।
शुभशैल–संज्ञा पुं० [सं०] तंत्र के अनुसार एक कल्पित पर्वत का नाम।
शुभसूचनी–संज्ञा स्त्री० [सं०] एक देवी का नाम जिनकी पूजा का संकल्प किसी शुभ काम के होने की आशा से किया जाता है, और वह शुभ काम हो जाने पर जिनकी पूजा की जाती है। इनकी पूजा प्रायः स्त्रियाँ ही करती हैं।
शुभस्थली–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) मंगल भूमि। पवित्र स्थान। (२) यज्ञ भूमि।
शुभस्रवा–संज्ञा स्त्री० [सं०] पुराणानुसार एक नदी का नाम।
शुभांगी–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) कुबेर की पत्नी का नाम। (२) कामदेव की पत्नी, रति। (३) महाभारत के अनुसार राजा कुरु की पत्नी का नाम।
शुभांजन–संज्ञा पुं० दे० "शोभांजन"।
शुभा–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) शोभा। कांति। (२) इच्छा। (३) वंशलोचन। (४) गोरोचन। (५) सफेद कीकर। (६) प्रियंगु। वनिता। (७) सफेद दूब। (८) बरी। (९) आरारोट। (१०) पुरइन की पत्ती। (११) शोभा।

(१२) सफेद यव। (१३) मलयगिरि। (१४) पार्वती की एक सखी का नाम। (१५) देवताओं की सभा। (१६) पुराणानुसार एक नदी का नाम।

शुभाकिनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] भुईं आँवला।

शुभाचल-संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार एक कल्पित पर्वत का नाम।

शुभाचारा-संज्ञा स्त्री० [सं०] पुराणानुसार पार्वती की एक सखी का नाम।

शुभ्र-संज्ञा पुं० [सं०] (१) अभ्रक। (२) साँभर नमक। (३) चाँदी। रूपा। (४) कसीस। (५) पद्माख। (६) खस। उशीर। (७) चरबी। (८) रूपामक्खी। (९) सेंधा नमक। (१०) वंशलोचन। (११) फिटकिरी। (१२) चीनी। (१३) सफेद विधारा।

शुभ्रतरु-संज्ञा पुं० [सं०] सिरिस का वृक्ष।

शुभ्रता-संज्ञा स्त्री० [सं०] शुभ्र का भाव या धर्म। सफेदी। श्वेतता।

शुभ्रदंती-संज्ञा स्त्री० [सं०] पुराणानुसार पुष्पदंत नामक दिग्गज की हथिनी का नाम।

शुभ्रपर्ण-संज्ञा पुं० [सं०] सफेद पान।

शुभ्रपुष्प-संज्ञा पुं० [सं०] खस। उशीर।

शुभ्रभानु-संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा।

शुभ्ररश्मि-संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा।

शुभ्रवेष्ट-संज्ञा पुं० [सं०] शालवृक्ष। सेमल।

शुभ्रांशु-संज्ञा पुं० [सं०] (१) चंद्रमा। (२) कपूर।

शुभ्रा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) वंशलोचन। (२) फिटकरी।

शुभ्रालु-संज्ञा पुं० [सं०] (१) भैंसाकंद। (२) शंखालु।

शुभ्रि-संज्ञा पुं० [सं०] ब्रह्मा।

शुभ्रिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] शहद से तैयार की हुई चीनी। मधुशर्करा।

शुरपा-संज्ञा पुं० दे० "शोरबा"।

शुरू-संज्ञा पुं० [अ० शुरूअ] (१) किसी कार्य्य की प्रथमावस्था का संपादन। आरंभ। प्रारंभ। जैसे,—अब तुम यह काम जल्दी शुरू कर डालो। (२) वह स्थान जहाँ से किसी वस्तु का आरंभ हो। उत्थान। जैसे,—शुरू से आखिर तक।

शुल्क-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह महसूल जो घाटों और रास्तों आदि पर राज्य की ओर से वसूल किया जाता है। (२) वह धन जो कन्या का विवाह करने के बदले में उसका पिता वर के पिता से लेता है।

विशेष—शास्त्र में इस प्रकार धन या शुल्क लेने का बहुत अधिक निषेध किया गया है।

(३) विवाह के समय दिया जानेवाला दहेज। दायजा। (४) बाजी। शर्त्त। (५) किराया। भाड़ा। (६) मूल्य। दाम। (७) वह धन जो किसी कार्य्य के बदले में लिया या दिया जाय। फीस। जैसे,—प्रवेश शुल्क।

शुल्कता-संज्ञा स्त्री० [सं०] शुल्क का भाव या धर्म।

शुल्कशाला-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) वह स्थान जहाँ पर घाट या मार्ग आदि का महसूल चुकाया जाता हो। (२) वह स्थान जहाँ किसी प्रकार का शुल्क चुकाया जाता हो। महसूल अदा करने की जगह।

शुल्कस्थान-संज्ञा पुं० [सं०] वह स्थान जहाँ आने जानेवालों को शुल्क देना पड़ता हो।

शुल्ल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) रस्सी। (२) ताँबा।

शुल्व-संज्ञा पुं० [सं०] (१) ताँबा। (२) रज्जु। रस्सी। (३) यज्ञकर्म। (४) आचार।

शुल्वारि-संज्ञा पुं० [सं०] गंधक।

शुश्रू-संज्ञा स्त्री० [सं०] बालक की सेवा शुश्रूषा करनेवाली, माता। माँ। जननी।

शुश्रूषक-संज्ञा पुं० [सं०] वह जो शुश्रूषा करता हो। सेवा करनेवाला। खिदमत करनेवाला। जैसे,—शिष्य, दास, अधीनस्थ कर्मचारी आदि।

शुश्रूषण-संज्ञा पुं० [सं०] शुश्रूषा करने का कार्य्य। सेवा करना। खिदमत-गुजारी।

शुश्रूषा-संज्ञा स्त्री० [सं०] [वि० शुश्रूष्य] (१) सेवा। टहल। परिचर्य्या। (२) खुशामद। (३) कथन। (४) किसी कुछ सुनने की इच्छा।

शुषिर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) छेद। (२) अग्नि। (३) चूहा। (४) बिल। गड्ढा। विवर। (५) आकाश। (६) वह बाजा जो मुँह से फूँककर बजाया जाता हो। जैसे, बंसी, अलगोजा, शहनाई आदि।

शुषिरा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) नदी। दरिया। (२) धरा (३) नलिका या नली नाम का गंध द्रव्य।

शुषेण-संज्ञा पुं० दे० "सुषेण"।

शुष्क-वि० [सं०] (१) जिसमें किसी प्रकार की नमी या गीलापन न रह गया हो। जो किसी प्रकार सुखा लिया गया हो। आर्द्रता-रहित। सूखा। खुश्क। जैसे,—शुष्क काष्ठ। (२) जिसमें जल या और किसी तरल पदार्थ का व्यवहार न किया गया हो। (३) जिसमें रस का अभाव हो। नीरस। रसहीन। (४) जिससे मनोरंजन न होता हो। जिसमें मन न लगता हो। जैसे,—शुष्क विषय। (५) जिसका कुछ परिणाम न निकलता हो। निरर्थक। व्यर्थ। जैसे,—शुष्क वाद-विवाद। (६) जिसमें सौहार्द्र आदि कोमल मनोवृत्तियाँ न हों। स्नेह आदि से रहित। निर्दय। (७) जो बिलकुल पुराना और बेकाम हो गया हो। जीर्ण शीर्ण।

संज्ञा पुं० काला अगर।

शुष्कक्षेत्र-संज्ञा पुं० [सं०] वितस्ता नदी के किनारे के एक पर्वत का नाम।

शुष्कगर्भ-संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक के अनुसार स्त्रियों का एक रोग जिसमें वायु के प्रकोप से स्त्रियों का गर्भ सूख जाता है।

शुष्कता-संज्ञा स्त्री० [सं०] शुष्क होने का भाव या धर्म। सूखापन।

शुष्करेवती-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) पुराणानुसार एक मातृका का नाम। (२) एक प्रकार का बालग्रह जिसके प्रकोप से बालकों के अंग सूखने या क्षीण होने लगते हैं।

शुष्कल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मांस। गोश्त। (२) वह जो मांस खाता हो। मांसभक्षी।

शुष्कली-संज्ञा स्त्री० [सं०] मांस। गोश्त।

शुष्कवृक्ष-संज्ञा पुं० [सं०] धव का वृक्ष। धौ।

शुष्कव्रण-संज्ञा पुं० [सं०] स्त्रियों का योनिकंद नामक रोग। वि० दे० "योनिकंद"।

शुष्कांग-संज्ञा पुं० [सं०] धव का वृक्ष। धौ।

शुष्कांगी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) क्रुञ्च जाति का एक प्रकार का पक्षी। (२) गोह। गोधिका।

शुष्का-संज्ञा स्त्री० [सं०] स्त्रियों का योनिकंद नामक रोग।

शुष्काक्षिपाक-संज्ञा पुं० [सं०] आँखों का एक प्रकार का रोग। इसमें आँखों की पलकें कठोर और रूखी हो जाती हैं और उनके खोलने बंद करने में पीड़ा होती है; आँखों में जलन होती है और साफ देख नहीं पड़ता।

शुष्कार्द्र-संज्ञा पुं० [सं०] सूखा अदरक। सोंठ।

शुष्कार्श-संज्ञा पुं० [सं० शुष्कार्शस्] आँखों का एक प्रकार का रोग जिसमें आँख की पलकों के भीतर खरखरी और कठिन फुंसियाँ उत्पन्न हो जाती हैं।

शुष्काशुष्क-संज्ञा पुं० [सं०] समुद्रफेन।

शुष्ण-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सूर्य्य। (२) अग्नि। (३) बल। शक्ति। ताकत।

शुष्म-संज्ञा पुं० [सं०] (१) तेज। पराक्रम। (२) अग्नि। (३) सूर्य्य। (४) वायु। (५) पक्षी। चिड़िया।

शुष्मा-संज्ञा पुं० [सं० शुष्मन्] (१) अग्नि। (२) चीता। चित्रक। (३) तेज। पराक्रम।

शूंडल-संज्ञा पुं० [देश०] मझोले आकार का एक प्रकार का वृक्ष जिसके हीर की लकड़ी मजबूत, कड़ी और लाली लिए होती है और अच्छे दामों पर बिकती है। यह इमारतों और पुलों के बनाने के काम में आती है। इसकी छाल बहुत पतली होती है और उतारने से बारीक कागज के वरकों की तरह उतरती है। बंगाल के सुंदर वन में यह पेड़ बहुत होता है।

शूक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) अन्न की बाल या सींका जिसमें दाने लगते हैं। (२) यव। जौ। (३) एक प्रकार का कीड़ा। (४) एक प्रकार का तृण जिसे शूकड़ी कहते हैं और जो दुर्बल पशुओं के लिये बहुत बलकारक माना जाता है। (५) एक प्रकार का रोग जो लिंग-वर्द्धक औषधों के लेप के कारण होता है। इसमें लिंग पर कई प्रकार की फुंसियाँ और घाव आदि हो जाते हैं। यह रोग १८ प्रकार का माना गया है। यथा—सर्पपिका, अष्ठीलिका, ग्रथित, कुंभिका, अलजी, मृदित, सम्मूढ़पीड़का, अधिमंथ, पुष्करिका, स्पर्श-हानि, उत्तमा, शतपोनक, त्वक्पाक, शोणितार्बुद, मांसार्बुद, मांसपाक, विद्रधि और तिलकालक।

शूकक-संज्ञा पुं० [सं०] शरीर का रस नामक धातु।

शूककीट-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का रोएँदार कीड़ा।

शूकज-संज्ञा पुं० [सं०] जवाखार। यवक्षार।

शूकतृण-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की घास जो दुर्बल पशुओं के लिये बहुत बलकारक मानी जाती है। इसे शूकड़ी या चोरहुली भी कहते हैं।

शूकदोष-संज्ञा पुं० [सं०] शूक नामक रोग। वि० दे० "शूक" (५)।

शूकधान्य-संज्ञा पुं० [सं०] वह अन्न जिसके दाने बालों या सींकों में लगते हैं। जैसे,—गेहूँ, जौ आदि।

शूकपत्र-संज्ञा पुं० [सं०] वह साँप जिसमें विष न होता हो। जैसे,—पानी का साँप या डेड़हा।

शूकपाक्य-संज्ञा पुं० [सं०] जवाखार। शूकज।

शूकपिंडि, शूकपिंडी-संज्ञा स्त्री० [सं०] कपिकच्छु। केंवाछ। कौंछ।

शूकर-संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० शूकरी] (१) सूअर। बाराह। उ०—भजन बिनु कूकर शूकर जैसो।—सूर। (२) विष्णु का तीसरा अवतार। बाराह अवतार। वि० दे० "बाराह"।

शूकरकंद-संज्ञा पुं० [सं०] बाराही कंद।

शूकरक्षेत्र-संज्ञा पुं० [सं०] एक तीर्थ जो नैमिषारण्य के पास है। कहते हैं कि भगवान् विष्णु ने बाराह अवतार धारण करने पर हिरण्यकेशी को यहीं मारा था। आज कल यह स्थान सोरों नाम से प्रसिद्ध है। उ०—मैं पुनि निज गुरु सन सुनी कथा सु सूकरखेत। समुझी नहिं तस बालपन तब अति रहेउँ अचेत।—तुलसी।

शूकरदंष्ट्र-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का क्षुद्र रोग जिसे सूअर-डाढ़ कहते हैं। यह रोग प्रायः बालकों को होता है। इसमें दाह सहित सूजन हो जाती है, जो पकती, पीड़ा करती और खुजलाती है; और इसके विकार से ज्वर उत्पन्न होता है।

शूकरपादिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] कोलशिंबी। सेम की फली।

शूकरशिंबी-संज्ञा स्त्री० [सं०] सेम की फली।

शूकराक्रांता-संज्ञा स्त्री० [सं०] वाराहक्रांता। गैंठी साग।

शूकरी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सूअर की मादा। सूअरी। वाराही। (२) गैंठी साग। वाराहक्रांता। (३) वाराही कंद। गैंठी। (४) सुइँस या सूँस नामक जलजंतु। (५) विधारा।

शूकरेष्ट-संज्ञा पुं० [सं०] कसेरू।

शूकरोग-संज्ञा पुं० [सं०] शूक नामक रोग। वि० दे० "शूक" (५)।

शूकल-संज्ञा पुं० [सं०] वह घोड़ा जो जल्दी चौंक या भड़क जाता हो।

शूकवती-संज्ञा स्त्री० [सं०] कपिकच्छु। किवाँच। कौंछ।

शूकशिंबा-संज्ञा स्त्री० [सं०] कपिकच्छु। किवाँच। कौंछ।

शूकशिंबिका, शूकशिंबी-संज्ञा स्त्री० [सं०] कौंछ। केवाँच।

शूका-संज्ञा स्त्री० [सं०] कपिकच्छु। केवाँच। कौंछ।

शूकाख्य-संज्ञा पुं० [सं०] सिरिस। शिरीष।

शूकाढ्य-संज्ञा पुं० [सं०] शूक या शूकड़ी नामक तृण।

शूकापट्ट-संज्ञा पुं० [सं०] कहरवा नामक गोंद जो बरमा की खानों से निकलता और औषध के काम आता है। तृणमणि। वि० दे० "कहरवा" (१)।

शूकामय-संज्ञा पुं० [सं०] शूक नामक रोग। वि० दे० "शूक" (५)।

शूकुल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्रकार की मछली। (२) एक प्रकार की सुगंधित घास।

शूक्त-संज्ञा पुं० [सं० शुक्त] सिरका।

शूक्ष्म-वि० दे० "सूक्ष्म"।

शूची-संज्ञा स्त्री० [सं० सूची] सूई। उ०—भनि सार सब करत सो, सीस सों परिहास। शूची छिद्र समानया, देहु नाथ कैलास।—रघुराज।

शूटिंग स्टिक-संज्ञा स्त्री० [अं०] छापेखाने में काम आनेवाली एक लकड़ी जो प्रायः एक बालिश्त लंबी होती है। इसके मुँह पर एक नहुँडेदार पीतल की साम होती है। इसी में गुंठली बढ़ाकर ठोंकते हैं जिससे वह गुजें पर चढ़कर टाइप को कस देती है। किसी किसी में पीतल साम नहीं भी होती।

शूतिपर्ण-संज्ञा पुं० [सं०] अमलतास। आरग्वध वृक्ष। धनबहेड़ा।

शूद्र-संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० शूद्रा, शूद्री] (१) प्राचीन आर्यों के लोकविभाग के अनुसार चार वर्णों में से चौथा और अंतिम वर्ण। इसका कार्य अन्य तीनों वर्णों की सेवा करना और शिल्प-कला के काम करना माना गया है। यजुर्वेद में शूद्रों की उत्पत्ति प्रजापति के पैरों से ही कही गई है, इसी लिये कुछ लोग इसकी उत्पत्ति ब्रह्मा के पैरों से मानते हैं। इनके लिये गृहस्थाश्रम के अतिरिक्त और किसी आश्रम में जाने का अधिकार नहीं है और वेद आदि पढ़ने का निषेध है। आज कल इनमें से कुछ लोग अछूत और अंत्यज समझे जाते हैं। साधारणतः कोई इस वर्ण के लोगों का जल ग्रहण नहीं करता।

पर्य्या०—अवरवर्ण। वृषल। दास। पादज। अंत्यजन्मा। जघन्य। द्विजसेवक। अंत्यवर्ण। द्विजदास। [illegible] जघन्यज।

(२) शूद्र जाति का पुरुष। (३) नैर्ऋत्य कोण में स्थित एक देश का नाम। (४) बहुत ही खराब। निकृष्ट। (५) सेवक। दास।

शूद्रक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) विदिशा नगरी का एक राजा और 'मृच्छकटिक' का रचयिता महाकवि। (२) शूद्र। (३) शूद्र जाति का एक व्यक्ति जिसका नाम शंबूक था। कहते हैं कि यह रामचंद्र के राज्य काल में था और तप किया करता था। एक बार एक ब्राह्मण का पुत्र मर गया। उसने आकर रामचंद्र जी के यहाँ प्रार्थना की। नारद आदि ऋषियों ने कहा कि इस राज्य में कोई शूद्र तपस्या कर रहा है, उसी के फल-स्वरूप इस ब्राह्मण का पुत्र इसके सामने मरा है। इस पर रामचंद्रजी ने इसका पता लगाया और तब इसका सिर काट डाला।

शूद्रकेश्वर-संज्ञा पुं० [सं०] एक शिव-लिंग का नाम।

शूद्रक्षेत्र-संज्ञा पुं० [सं०] वह भूमि जिसका रंग काला हो और जिसमें अनेक प्रकार की घास, तृण, खजूर के वृक्ष तथा नाना प्रकार के धान उत्पन्न हों।

शूद्रता-संज्ञा स्त्री० [सं०] शूद्र का भाव या धर्म। शूद्रत्व। शूद्र-पन।

शूद्रत्व-संज्ञा पुं० [सं०] शूद्र होने का भाव या धर्म। शूद्रता। शूद्रपन।

शूद्रद्युति-संज्ञा पुं० [सं०] नीला रंग जो रंगों में शूद्र वर्ण का माना जाता है। उ०—विप्र श्वेत मिलि पीत होय द्विज वल्ल रुचिर अति। हरित श्याम मिलि होइ शूद्रद्युति सम [illegible] प्रति।—गुरदास।

शूद्रपति-संज्ञा पुं० [सं०] शूद्रों का सरदार। उ०—आपु दीन्हेउ शूद्रपति ओई। कायेउ करम शूद्रपति सोई।—सबलसिंह।

शूद्रप्रिय-संज्ञा पुं० [सं०] पलांडु। प्याज।

शूद्रप्रेष्य-संज्ञा पुं० [सं०] वह ब्राह्मण, क्षत्रिय या वैश्य जो किसी शूद्र की नौकरी या सेवा करता हो।

शूद्रा-संज्ञा स्त्री० [सं०] शूद्र जाति की स्त्री। शूद्राणी।

शूद्राणी-संज्ञा स्त्री० [सं०] शूद्र की स्त्री। शूद्रा।

शूद्रावर्ती-संज्ञा स्त्री० [सं०] त्रिवेणु वृत्त। बनिया।

शूद्रावेदी-संज्ञा स्त्री० [सं० शूद्रावेदिन्] वह ब्राह्मण व्यक्ति जिसने

शूद्र जाति की किसी स्त्री के साथ विवाह कर लिया हो। ऐसा व्यक्ति पतित माना जाता है।

शूद्रासुत-संज्ञा पुं० [सं०] वह व्यक्ति जो किसी उच्च वर्ण के व्यक्ति के वीर्य्य से शूद्रा माता के गर्भ से उत्पन्न हुआ हो।

शूद्री-संज्ञा स्त्री० [सं०] शूद्र की स्त्री। शूद्रा। उ०—सो शूद्री पुनि जन्यो कुमारा। नाम तासु कनि कृष्ण उचारा।—रघुराज।

शून-वि० दे० "शून्य"।

शूनकचंचु-संज्ञा पुं० [सं०] क्षुद्र चंचु या छोटा चेंच नाम का साग।

शूना-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) गृहस्थ के घर के वे स्थान जहाँ नित्य अनजान में अनेक जीवों की हत्या हुआ करती है। जैसे,—चूल्हा, चक्की, पानी का बरतन आदि। इन स्थानों में जीवों की जो हत्या होती है, उसी के दोष के परिहार के लिये ब्रह्मयज्ञ, देवयज्ञ और पितृयज्ञ करने की आवश्यकता होती है। (२) तालू के ऊपर की छोटी जीभ। छोटी जीभ। गलशुंडी। (३) थूहर। स्नुही।

शून्य-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह स्थान जिसमें कुछ भी न हो। खाली स्थान। (२) आकाश। (३) एकांत स्थान। निर्जन स्थान। (४) बिंदु। बिंदी। सिफर। (५) अभाव। राहित्य। कुछ न होना। जैसे,—तुम्हारे हिस्से में शून्य है। (६) स्वर्ग। (७) विष्णु। (८) ईश्वर। उ०—कहूँ एक तासों मिवे शून्य एकै। कहूँ काल एकै महा विष्णु एकै। कहूँ अर्थ एकै परब्रह्म जानो। प्रभा पूर्ण एकै सदा शून्य मानो।—केशव।

वि० (१) जिसके अंदर कुछ न हो। खाली। (२) निराकार। उ०—रूप रेख कछु जाके नाहीं। तौ का करब शून्य के माहीं।—विश्राम। (३) जो कुछ न हो। असत्। (४) विहीन। रहित। जैसे,—संज्ञाशून्य।

विशेष—इस अर्थ में इस शब्द का प्रयोग यौगिक शब्द बनाने में अंत में होता है। जैसे,—विवेकशून्य।

शून्यगर्भ-संज्ञा पुं० [सं०] पपीता नामक फल।

वि० (१) जिसके अंदर कुछ न हो। (२) जिसमें कुछ भी सार या तत्व न हो। (३) बेवकूफ। मूर्ख।

शून्यता-संज्ञा स्त्री० [सं०] शून्य का भाव या धर्म। शून्यत्व।

शून्यत्व-संज्ञा पुं० [सं०] शून्य का भाव या धर्म। शून्यता।

शून्यपदवी-संज्ञा स्त्री० [सं०] ब्रह्मरंध्र।

शून्यपाल-संज्ञा पुं० [सं०] वह जो किसी के रिक्त स्थान पर अस्थायी रूप से काम करता हो। एवजी।

शून्यबहरी-संज्ञा स्त्री० [सं० शून्य+बहरी ?] पाँव का सुन्न हो जाना या उसमें झुनझुनी चढ़ना।

शून्यमध्य-संज्ञा पुं० [सं०] वह पदार्थ जिसके बीच का भाग खाली हो। जैसे,—नल, नरसल, नरकट।

शून्यमूल-संज्ञा पुं० [सं०] सेना की एक प्रकार की सजावट।

शून्यवाद-संज्ञा पुं० [सं०] बौद्धों का एक सिद्धांत जिसमें ईश्वर या जीव किसी को कुछ भी नहीं माना जाता।

शून्यवादी-संज्ञा पुं० [सं० शून्यवादिन्] (१) शून्यवाद का माननेवाला; अर्थात् वह व्यक्ति जो ईश्वर और जीव के अस्तित्व में विश्वास न करता हो। (२) बौद्ध। (३) नास्तिक।

शून्यहृद-संज्ञा पुं० [सं०] (१) प्रकाश। उजाला। (२) सोना। स्वर्ण।

शून्या-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) नलिका या नली नाम का गंधद्रव्य। (२) बंध्या स्त्री। बाँझ औरत, जिसे कोई संतान न होती हो। (३) थूहर या स्नुही का वृक्ष।

शून्यालय-संज्ञा पुं० [सं०] वह स्थान जहाँ कोई न हो। एकांत स्थान।

शून्याशून्य-संज्ञा पुं० [सं०] जीवन्मुक्ति।

शूप-संज्ञा पुं० [सं० शूर्प] बेंत, सींक या बाँस आदि का बना हुआ एक प्रकार का लंबा-चौड़ा पात्र जिसमें रखकर अन्न आदि पछोड़ा जाता है। इसकी लंबाई के बल में एक सिरे पर कुछ ऊँची लंबी बाढ़ होती है; और दूसरा सिरा बिलकुल खाली रहता है। चौड़ाई के बल में दोनों ओर कुछ ऊँची ढालुआँ बाढ़ होती है जो बिलकुल आगे के सिरे पर पहुँचकर खतम हो जाती है। सूप। फटकनी। उ०—तेहि बन शूप बनावनहारे। बेत लेन इक समय सिधारे।—रघुराज।

शूपकार-संज्ञा पुं० दे० "सूपकार"।

शूम-संज्ञा पुं० दे० "सूम"।

शूर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वीर। बहादुर। सूरमा। (२) योद्धा। भट। सिपाही। (३) सूर्य्य। (४) सिंह। (५) सूअर। शूकर। (६) चीता। (७) शाल। साखू। (८) बड़हर। लकुच। (९) मसूर। मांगल्य। (१०) चित्रक या चीता नामक वृक्ष। (११) आक। मदार। (१२) कृष्ण के पितामह का नाम। (१३) विष्णु का एक नाम। (१४) जैन हरिवंश के अनुसार उत्तर दिशा के एक देश का नाम।

शूरण-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सूरन। ओल। जमींकंद। वि० दे० "सूरन"। (२) श्योनाक वृक्ष।

शूरणोद्भुज-संज्ञा पुं० [सं०] हरियल या हारिल नाम का पक्षी।

शूरता-संज्ञा स्त्री० [सं०] शूर होने का भाव या धर्म। शौर्य। बहादुरी। वीरता।

शूरताई-संज्ञा स्त्री० दे० "शूरता"।

रत्व-संज्ञा पुं० [सं०] शूर होने का भाव या धर्म। शूरता। वीरता। बहादुरी।

रदेव-संज्ञा पुं० [सं०] जैनियों के अनुसार भविष्य में होनेवाले चौबीस अर्हतों में से एक अर्हत का नाम।

रन-संज्ञा पुं० दे० "सूरन"।

रपुत्रा-संज्ञा स्त्री० [सं०] अदिति का एक नाम।

रबल-संज्ञा पुं० [सं०] बौद्धों के अनुसार एक देवपुत्र का नाम।

रभू-संज्ञा स्त्री० दे० "शूरभूमि"।

रभूमि-संज्ञा स्त्री० [सं०] भागवत के अनुसार उग्रसेन की एक कन्या का नाम। लिखा है कि वसुदेव के छोटे भाई श्यामक ने इसके साथ विवाह किया था, और उनके वीर्य से इसके गर्भ से हरिकेश और हिरण्याक्ष नामक दो पुत्र उत्पन्न हुए थे।

रमानी-संज्ञा पुं० [सं० शूरमानिन्] वह जिसे अपनी शूरता का बहुत अभिमान हो। अपनी बहादुरी पर बहुत भरोसा रखनेवाला।

रयाणेश्वर-संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु का एक नाम।

रविद्या-संज्ञा स्त्री० [सं०] युद्ध आदि करने की विद्या।

रवीर-संज्ञा पुं० [सं०] वह जो अच्छा वीर और योद्धा हो। सरमा।

रवीरता-संज्ञा स्त्री० [सं०] शौर्य्य। बहादुरी।

रश्लोक-संज्ञा पुं० [सं०] वीरों के वीरतापूर्ण कृत्यों की कहानी। वीरगाथा।

रसेन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मथुरा के एक प्रसिद्ध राजा जो कृष्ण के पितामह और वसुदेव के पिता थे। (२) मथुरा और उसके आस पास के प्रदेश का प्राचीन नाम जहाँ राजा शूरसेन का राज्य था।

रसेनप-संज्ञा पुं० [सं०] शूर वीरों की सेना का पालन करनेवाले, कार्त्तिकेय।

रा-संज्ञा स्त्री० [सं०] क्षीरकाकोली नामक अष्टवर्गीय ओषधि।

रा† संज्ञा पुं० [सं० शूर] सामंत। वीर। उ०—पैठि गुफा में सब जग देखा, बाहर कछु न सूझै। उलटा बान पारधिहि लागै, सूरा होय सो बूझै।—कबीर।

संज्ञा पुं० [सं० सूर्य] सूर्य्य। उ०—जहाँ चंद न सूरा, तारा नाहिं जहाँ अँधियारा।—कबीर।

रिमृग-संज्ञा पुं० [सं०] वाराह आदि जंगली पशु।

र्प-संज्ञा पुं० [सं०] (१) गेहूँ, चावल आदि अन्न पछोड़ने के लिये बना हुआ बाँस या सींक का पात्र। सूप। (२) एक प्राचीन तौल जो १०२४ तोले या ३२ सेर की होती थी।

र्पक-संज्ञा पुं० [सं०] एक असुर जो किसी किसी के मत से कामदेव का शत्रु और किसी किसी के मत से उसका पुत्र था।

शूर्पकर्ण-संज्ञा पुं० [सं०] (१) हाथी, जिसके कान सूप के समान होते हैं। (२) गणेश। (३) एक प्राचीन देश का नाम। (४) इस देश का निवासी। (५) पुराणानुसार एक पर्वत का नाम।

शूर्पकाराति-संज्ञा पुं० [सं०] शूर्पक नामक राक्षस का शत्रु, कामदेव।

शूर्पकारि-संज्ञा पुं० [सं०] शूर्पक नामक राक्षस का शत्रु, कामदेव।

शूर्पणखा-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रसिद्ध राक्षसी जो रावण की बहिन थी। कहते हैं कि इसके नख सूप के समान थे। राम के वनवास के समय काम से पीड़ित होकर यह राम के पास उनके साथ विवाह करने की इच्छा से गई थी। वहाँ राम के इशारे से लक्ष्मण ने इसकी नाक और कान काट लिए थे। इसी का बदला लेने के लिये रावण सीता को हर ले गया था।

शूर्पणखी-संज्ञा स्त्री० दे० "शूर्पणखा"।

शूर्पणाय-संज्ञा पुं० [सं०] वैदिक काल के एक ऋषि का नाम।

शूर्पनखा-संज्ञा स्त्री० दे० "शूर्पणखा"।

शूर्पपर्णी-संज्ञा स्त्री० [सं०] वन मूँग। वन उर्द।

शूर्पश्रुति-संज्ञा पुं० [सं०] हस्ती। हाथी।

शूर्पी-संज्ञा स्त्री० [?] बच्चों के खेलने का एक प्रकार का खिलौना।

शूर्पाद्रि-संज्ञा पुं० [सं०] दक्षिणी भारत के एक पर्वत का नाम। इसे कुछ लोग सूर्य्याद्रि भी कहते हैं।

शूर्पारक-संज्ञा पुं० [सं०] बंबई प्रांत के थाना जिले के सोपारा नामक स्थान का प्राचीन नाम।

शूर्म-संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० शूर्मि] (१) लोहे की बनी हुई मूर्ति। (२) निहाई।

शूल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) प्राचीन काल का एक प्रकार का अस्त्र जो प्रायः बरछे के आकार का होता था। (२) सूली जिसपर प्राचीन काल में लोगों को प्राण-दंड दिया जाता था। (३) दे० "त्रिशूल"। (४) कोई बड़ा, लंबा और नुकीला काँटा। (५) वायु के प्रकोप से होनेवाला एक प्रकार का बहुत तेज दर्द। यह दर्द प्रायः पेट, पसली, कलेजे या पेड़ू आदि में होता है। वैद्यक के अनुसार बहुत अधिक व्यायाम या मैथुन करने, घोड़े पर चढ़ने, रात के समय जागने, बहुत अधिक ठंढा जल पीने, रूखे द्रव्यों का सेवन करने, सूखा मांस खाने, विरुद्ध भोजन करने, शारीरिक वेगों को रोकने, बहुत अधिक शोक या उपवास करने अथवा बहुत अधिक हँसने के कारण वायु का प्रकोप होता है जिससे पेट में या उसके आस पास बहुत तीव्र पीड़ा होती है। इस पीड़ा में ऐसा अनुभव होता है कि कोई अंदर

से बहुत नुकीला काँटा या शूल गड़ा रहा है; इसी से इसे शूल कहते हैं। यह रोग आठ प्रकार का—वातज, पित्तज, कफज, सन्निपातज, आमज, वातश्लैष्मिक, पित्तश्लैष्मिक और वातपैत्तिक—कहा गया है; और इसे शांत करने के लिये स्वेद, अभ्यंग, मर्दन और स्निग्ध तथा उष्ण द्रव्यों के सेवन का विधान है। (६) किसी नुकीली वस्तु के चुभने के समान होनेवाली पीड़ा। कोंच। टीस। (७) पीड़ा। क्लेश। दुःख। दर्द। उ०—(क) तुम लछिमन निज पुरहि सिधारो। बिछुरन भेंट देहु लघु बंधू जियत न जैहै शूल तुम्हारो।—सूर। (ख) मन तोसों कोटिक बार कही। समुझ न चरण गहत गोविंद के उर अघ शूल सही।—सूर। (८) ज्योतिष में विष्कंभ आदि सत्ताइस योगों के अंतर्गत नवाँ योग। कहते हैं कि जो बालक इस योग में जन्म लेता है, वह डरपोक, दरिद्र, मूर्ख, विद्याहीन, शूल रोगी, दूसरों का अनिष्ट करनेवाला और अपने बंधु बांधव को शूल के समान खटकनेवाला होता है। इस योग में किसी प्रकार का शुभ काम करने का निषेध है। (९) छड़। सलाख। सीख। उ०—खाने को बहुधा शूल पर भुना हुआ मांस मिलता है, सो भी कुसमय।—लक्ष्मणसिंह। (१०) मृत्यु। मौत। (११) झंडा। पताका। (१२) पोस्ते की पत्तियों की वह तह जो अफीम की चक्की जमाने के समय उसके चारों ओर और ऊपर नीचे लगाई जाती है। (बंगाल)

वि० काँटे की तरह नोकवाला। नुकीला।

शूलक—संज्ञा पुं० [सं०] (१) पुराणानुसार एक ऋषि का नाम। (२) दुष्ट या पाजी घोड़ा।

शूलकार—संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार एक नीच जाति का नाम।

शूलगजकेसरी रस—संज्ञा पुं० [सं०] (१) वैद्यक में एक प्रकार का रस जो शुद्ध गंधक, पारे, कंटकवेधी, ताँबे के पत्र आदि के योग से तैयार किया जाता है और शूल रोग के लिये गुणकारी माना जाता है। (२) वैद्यक में एक प्रकार की वटी या गोली। इसके लिये कौड़ियों की राख, शुद्ध सिंगी मुहरा, सेंधा नमक, काली मिर्च, पिप्पली इन सब का चूर्ण कर पान के रस में एक रत्ती के बराबर गोलियाँ बनाई जाती हैं। ये गोलियाँ शूल का नाश करती हैं।

शूलगव—संज्ञा पुं० [सं०] शिव का एक नाम।

शूलगिरि—संज्ञा पुं० [सं०] मदरास प्रांत के एक पर्वत का नाम।

शूलगंधि—संज्ञा स्त्री० [सं०] माला दूब।

शूलग्रह—संज्ञा पुं० [सं०] हाथ में त्रिशूल धारण करनेवाले, शिव।

शूलग्राही—संज्ञा पुं० [सं० शूलग्राहिन्] शिव। महादेव।

शूलघातन—संज्ञा पुं० [सं०] मंडूर। लौहकिट्ट।

शूलघ्न—संज्ञा पुं० [सं०] तुंबुरु वृक्ष।

शूलघ्नी—संज्ञा स्त्री० [सं०] सज्जी मिट्टी। सर्जिक्षार।

शूलदावानल रस—संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक में एक प्रकार का रस जो दो तरह से बनता है—(१) शुद्ध पारा, शुद्ध सिंगी मुहरा, काली मिर्च, पिप्पली, सोंठ, भूनी हींग, पाँचो नमक, इमली का खार, जंभीरी का खार, शंख-भस्म और नीबू के रस के योग से बनता है और शूल रोग को तत्काल दूर करता है। (२) शुद्ध पारा, शुद्ध गंधक, सिंगी-मुहरा, पिप्पली, भूनी हींग, पाँचो नमक, इमली के खार और नीबू के रस में बुझे हुए शंख की राख तथा नीबू के रस से बनता है और शूल, अजीर्ण, उदर रोग और मंदाग्नि को दूर करता है।

शूलद्विट्—संज्ञा पुं० [सं०] हींग। हिंगु।

शूलधन्वा—संज्ञा पुं० [सं० शूलधन्वन्] शिव। महादेव।

शूलधर—संज्ञा पुं० [सं०] शिव। शंकर। उ०—गंगाधर हर शूलधर, ससिधर शंकर बाम। सर्वेश्वर भव शंभु शिव, रुद्र कामरिपु नाम।—नंद।

शूलधरा—संज्ञा स्त्री० [सं०] दुर्गा।

शूलधारिणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दुर्गा। शूलधरा।

शूलधारी—संज्ञा पुं० [सं० शूलधारिन्] त्रिशूल धारण करनेवाले, शिव। महादेव। उ०—संध्यावलि पूजन सब होइ शूलधारी की, दुंदुभी की ठौर दीजो गरज सुनाइ कै।—लक्ष्मणसिंह।

शूलना—क्रि० अ० [हिं० शूल+ना (प्रत्य०)] (१) शूल के समान गड़ना। (२) दुःख देना। पीड़ा देना। कष्ट देना। उ०—(क) सो सुधि यदुनंदन नहिं भूलत। सुमिरि सुमिरि अजहूँ उर शूलत।—सबल। (ख) छै है पिय को नाम ठाँव हमरो नहिं छोड़ै। कठिन तुम्हारो बोल आइ हिरदै में शूलै।—गिरधर।

शूलनाशन—संज्ञा पुं० [सं०] (१) सौवर्चल लवण। (२) हींग। (३) पुष्कर मूल। (४) वैद्यक में शंख भस्म, करंजमूल, भूनी हींग, सोंठ, काली मिर्च, पीपल और सेंधा नमक के योग से बनाया हुआ एक प्रकार का चूर्ण जिसका व्यवहार प्रायः शूल रोग में किया जाता है।

शूलनाशिनी वटी—संज्ञा स्त्री० [सं०] वैद्यक में एक प्रकार की वटी या गोली। इसके लिये हड़ का छिलका, सोंठ, काली मिर्च, पीपल, शुद्ध कुचला, शुद्ध गंधक, भूनी हींग, सेंधा नमक जल से खरल

शृंखलता-संज्ञा स्त्री० [सं०] सिलसिलेवार या क्रमबद्ध होने का भाव।

शृंखला-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) क्रम। सिलसिला। (२) जंजीर। साँकल। (३) कटि वस्त्र। मेखला। (४) चाँदी का एक आभूषण जिसे स्त्रियाँ कमर में पहनती हैं। करधनी। तागड़ी। (५) श्रेणी। कतार। (६) एक प्रकार का अलंकार जिसमें कथित पदार्थों का वर्णन शृंखला के रूप में सिलसिलेवार किया जाता है।

शृंखलाबद्ध-वि० [सं०] (१) जो क्रम से हो। सिलसिलेवार। (२) जो शृंखला से बाँधा हुआ हो।

शृंखलि-संज्ञा पुं० [सं०] कोकिलाक्ष। ताल मखाना।

शृंखलित-वि० [सं०] (१) क्रमबद्ध। श्रेणीबद्ध। सिलसिलेवार। (२) पिरोया हुआ।

शृंग-संज्ञा पुं० [सं०] (१) पर्वत का ऊपरी भाग। शिखर। चोटी। (२) गौ, भैंस, बकरी आदि के सिर के सींग। उ०—भक्ति बिन बैल बिराने ह्वैहो। पाँउ चारि शिर शृंग गुंग मुख तब कैसे गुण गैहो।—सूर। (३) कँगूरा। उ०—जो कांचनीय रथ शृंग मयूर माली। जाके उदार उर षण्मुख शक्तिशाली।—केशव। (४) प्राचीन काल का एक प्रकार का बाजा जो मुँह से फूँक कर बजाया जाता है। सिंगी बाजा। उ०—कंस ताल करताल बजावत शृंग मधुर मुहचंग। मधुर खंजरी पटह प्रणव मिल सुख पावत रसभंग।—सूर। (५) कमल। पद्म। (६) जीवक नामक अष्टवर्गीय ओषधि। (७) सोंठ। (८) अदरक। आदी। (९) अगर। (१०) प्रभुत्व। प्रधानता। (११) काम की उत्तेजना। (१२) चिह्न। निशान। (१३) स्तन। छाती। (१४) एक प्राचीन ऋषि का नाम। वि० दे० "ऋष्यशृंग"। (१५) पानी का फौवारा।

वि० तीक्ष्ण। तेज।

शृंगकंद-संज्ञा पुं० [सं०] सिंघाड़ा।

शृंगक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) जीवक वृक्ष। (२) सिंगिया नामक विष।

शृंगकूट-संज्ञा पुं० [सं०] एक पर्वत का नाम।

शृंगगिरि-संज्ञा पुं० दे० "शृंगकूट"।

शृंगग्राहिका न्याय-संज्ञा पुं० [सं०] एक न्याय जिसका उपयोग उस समय होता है, जब किसी कठिन काम का एक अंश हो जाने पर शेष अंश का संपादन उसी प्रकार सहज हो जाता है, जिस प्रकार सींग मारनेवाले बैल का एक सींग पकड़ लेने पर दूसरा सींग भी पकड़ लेना सहज हो जाता है।

शृंगज-संज्ञा पुं० [सं०] (१) अगर। अगरु। (२) बाण। तीर।

शृंगनाम-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का विष।

शृंगनाम्नी-संज्ञा स्त्री० [सं०] काकड़ासिंगी। कर्कटशृंगी।

शृंगपुर-संज्ञा पुं० दे० "शृंगवेरपुर"।

शृंगभेदी-संज्ञा पुं० [सं० शृंगभेदिन्] गुंदा नामक तृण।

शृंगमूल-संज्ञा पुं० [सं०] सिंघाड़ा।

शृंगमोही-संज्ञा पुं० [सं० शृंगमोहिन्] चंपक वृक्ष। चंपा।

शृंगरुह-संज्ञा पुं० [सं०] सिंघाड़ा।

शृंगला-संज्ञा स्त्री० [सं०] मेढ़ासिंगी।

शृंगवत्-संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार कुरुवर्ष की सीमा पर के एक पर्वत का नाम।

शृंगवृष-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन ऋषि का नाम।

शृंगवेर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) आदी। अदरक। (२) सोंठ। (३) महाभारत के अनुसार एक नाग का नाम। (४) दे० "शृंगवेरपुर"।

शृंगवेरक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) अदरक। आदी। (२) सोंठ।

शृंगवेरपुर-संज्ञा पुं० [सं०] रामायण के अनुसार एक प्राचीन नगर का नाम जहाँ रामचंद्र के समय में निषाद राजा गुह की राजधानी थी। संभवतः प्रतापगढ़ ज़िले का सिंगरौरा नामक गाँव ही प्राचीन शृंगवेरपुर है। उ०—(क) ता दिन शृंगवेरपुर आए। राम सखा ते समाचार सुनि वारि बिलोचन छाए।—तुलसी। (ख) छलि पुरवासिन को आए शृंगवेरपुर खबरि निषाद राजै कोऊ कही जाइकै।—रघुराज।

शृंगवेराभमूल-संज्ञा पुं० [सं०] गुंदा नामक तृण।

शृंगवेरिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] गोभी।

शृंगसुख-संज्ञा पुं० [सं०] सिंगी या सिंघा नामक बाजा।

शृंगाट-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सिंघाड़ा। (२) गोखरू। (३) कँटाई। विकंकत। (४) कामरूप देश के एक पर्वत का नाम। (५) चौराहा। चौमुहानी।

शृंगाटक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) प्राचीन काल का एक प्रकार का खाद्य-पदार्थ जो मांस से बनाया जाता था। (२) एक मर्मस्थान जो मस्तक में उस स्थान पर माना जाता है, जहाँ नाक, कान, आँख और जीभ से संबंध रखनेवाली चारों शिराएँ मिलती हैं। कहते हैं कि यह मर्मस्थान चार अंगुल का होता है और इसके चारों ओर से चारों शिराएँ निकलती हैं; इसी से इसे शृंगाटक कहते हैं। यह भी माना जाता है कि इस स्थान पर चोट लगने से तुरंत मृत्यु हो जाती है। (३) दे० "शृंगाट"।

शृंगाटी-संज्ञा स्त्री० [सं०] जीवंती।

शृंगार-संज्ञा पुं० [सं०] (१) साहित्य के अनुसार नौ रसों में से एक रस जो सब से अधिक प्रसिद्ध है और प्रधान माना जाता है। इसमें नायक नायिका के परस्पर मिलन के कारण होनेवाले सुख की परिपुष्टता दिखलाई जाती है। इसका स्थायी भाव रति है। आलंबन विभाव नायक और नायिका हैं। उद्दीपन विभाव सखा, सखी, वन, बाग आदि, विहार, चंद्र, चंदन, भ्रमर, झंकार, हाव भाव, सुखस्थान तथा

शृंगिक-संज्ञा पुं० [सं०] सिंगिया विष।
शृंगिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) बहुत प्राचीन काल का एक प्रकार का बाजा जो मुँह से फूँक कर बजाया जाता था। सिंगी। (२) अतीस। अतिविषा। (३) काकड़ासिंगी। (४) मेढ़ासिंगी। (५) पिप्पली। पीपल।
शृंगिणी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) गाय। गौ। (२) मल्लिका। मोतिया। (३) मालकंगनी। ज्योतिष्मती लता। (४) अतीस। अतिविषा।
शृंगी-संज्ञा पुं० [सं० शृंगिन्] (१) हाथी। हस्ती। (२) वृक्ष। पेड़। (३) पर्वत। पहाड़। (४) एक ऋषि जो शमीक के पुत्र थे। इन्हीं के शाप से अभिमन्यु के पुत्र परीक्षित को तक्षक ने डसा था। उ०—शृंगी ऋषि तब कियो विचार। प्रजा दुःख कर नृपत गुहार।—सूर। (५) बरगद। (६) पाकड़। (७) अमड़ा। (८) ऋषभक नामक अष्टवर्गीय ओषधि। (९) सींगवाला पशु। जैसे,—गौ, बैल, बकरी आदि। (१०) जीवक नामक ओषधि। (११) सिंगिया नामक विष। (१२) सींग का बना हुआ एक प्रकार का बाजा, जिसे कनफटे बजाते हैं। उ०—शृंगी शब्द धंधरी करा। जरे सो ठाट जहाँ पग धरा।—जायसी। (१३) महादेव। शिव। उ०—शृंगी शूली धूरजटी, कुंडलीश त्रिपुरारि। वृषा कपर्दी मानहर, मृत्युंजय कामारि।—सबल (१४) एक प्राचीन देश का नाम। उ०—शृंगी सिंधु कच्छ के राई। आए सकल समेत सहाई।—सबल।
संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) अतीस। (२) काकड़ासिंगी। (३) सिंगी मछली। (४) मजीठ। मंजिष्ठा। (५) आँवला। (६) पोई का साग। (७) ऋषभक नामक ओषधि। (८) पाकर। (९) वट। बड़। (१०) विष। जहर। (११) वह सोना जिससे गहने बनाए जाते हैं।
शृंगीक-संज्ञा पुं० [सं०] काकड़ा सिंगी।
शृंगीकनक-संज्ञा पुं० [सं०] वह सोना जिससे गहने बनाए जाते हैं।
शृंगीगिरि-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन पर्वत का नाम जिस पर शृंगी ऋषि तप किया करते थे। उ०—पूरण काम स्नान गन राजा। शृंगी गिरि गवने यति राजा। जहँ शृंगी ऋषि वर तप करहीं। धर्म नयन सो देखि न परहीं।—राधाकृष्ण।
शृंगेरी-संज्ञा पुं० [सं०] शंकराचार्य्य के मतानुयायी संन्यासियों का एक प्रसिद्ध मठ जो दक्षिण भारत में है। इसके प्रधान अधीश्वर शंकराचार्य्य कहलाते हैं।
शृंगोन्नति-संज्ञा स्त्री० [सं०] ग्रहों और नक्षत्रों आदि की एक प्रकार की गति।
शृकाल-संज्ञा पुं० दे० "शृगाल"।
शृग*-संज्ञा पुं० दे० "शृगाल"। उ०—बहुतन कंक काक खग स्वाना। भक्षत करत कटकटी नाना।—विश्राम।
शृगाल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) गीदड़ नामक जंगली जंतु। सियार। जंबुक। वि० दे० "गीदड़"। उ०—व्याघ्र कुरंग शृगाल शशादी। कानन नर वानर चित्तादी।—सबल। (२) एक दैत्य का नाम। (३) वासुदेव।
वि० (१) भीरु। डरपोक। (२) निष्ठुर। निर्दय। (३) खल। दुष्ट।
शृगाल कंटक-संज्ञा पुं० [सं०] भरभाँड़ या सत्यानासी नाम का कँटीला क्षुप।
शृगालकोलि-संज्ञा पुं० [सं०] उन्नाव। कर्कंधु।
शृगाल घंटी-संज्ञा स्त्री० [सं०] तालमखाना। कोकिलाक्ष।
शृगाल जंबु-संज्ञा पुं० [सं०] (१) गोहुँआ। गोमा ककड़ी। (२) कर्कंधु। उन्नाव। (३) तरबूज।
शृगालविन्ना-संज्ञा स्त्री० [सं०] पिठवन। पृश्निपर्णी।
शृगालिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) विदारी कंद। (२) पृश्निपर्णी। (३) सियारिन। गीदड़ी। (४) लोमड़ी।
शृगाली-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) तालमखाना। (२) विदारीकंद। (३) गीदड़ की मादा। गीदड़ी।
शृणि-संज्ञा स्त्री० [सं०] अंकुश। आँकुस।
शृत-संज्ञा पुं० [सं०] (१) क्वाथ। काढ़ा। (२) औटा हुआ दूध।
शृतशीत-संज्ञा पुं० [सं०] औटाया हुआ पानी जो प्रायः ज्वर के रोगियों को दिया जाता है और वैद्यक के अनुसार रक्तविकार, वमन, ज्वर और सन्निपात आदि रोगों का नाशक माना जाता है।
शृधु-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मलद्वार। गुदा। (२) बुद्धि।
शृधू-संज्ञा पुं० [सं०] गुदा। मलद्वार।
वि० कुत्सित। बुरा। खराब।
शृष्टि-संज्ञा पुं० [सं०] कंस के आठ भाइयों में से एक। उ०—शृष्टि सुनामा कंक सुहु राष्ट्रपाल न्यग्रोध। शंकु सुष्टि ए दाश-धर योधा पूरित क्रोध।—गोपाल।
शेख़-संज्ञा पुं० [अ०] [स्त्री० शेख़ानी] (१) पैग़ंबर मुहम्मद के वंशजों की उपाधि। (२) मुसलमानों के चार वर्गों में सब से पहला वर्ग। (३) मुसलमान उपदेशक। इसलाम धर्म का आचार्य्य। (४) पीर। बड़ा बूढ़ा।
शेखल-संज्ञा पुं० दे० "शेष"।
शेख़ चिल्ली-संज्ञा पुं० [अ० + हिं०] (१) एक कल्पित मूर्ख व्यक्ति जिसके संबंध में बहुत सी विलक्षण और हँसानेवाली कहानियाँ कही जाती हैं। (२) बैठे बैठे बड़े बड़े मंसूबे बाँधनेवाला। झूठमूठ बड़ी बड़ी बातें हाँकनेवाला। (३) मूर्ख मसखरा।
शेखर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शीर्ष। सिर। माथा।

का आभूषण। मुकुट। किरीट। (३) सिर पर धारण की जानेवाली माला। (४) सिरा। चोटी। शिखर। (पर्वत आदि का) (५) श्रेष्ठतावाचक शब्द। सब से श्रेष्ठ या उत्तम व्यक्ति या वस्तु। (६) टगण के पाँचवें भेद की संज्ञा (ऽऽ।) यथा, प्रमलाप। (७) संगीत में ध्रुव या स्थायी पद का एक भेद।

शेखरापीड़ योजन-संज्ञा पुं० [सं०] चौंसठ कलाओं में से एक कला का नाम। सिर पर या केशों में फूलों से अनेक प्रकार की रचना करना।

शेखरी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) बंदा। बंदाक। (२) लौंग। (३) सहिजन की जड़।

शेख सद्दो-संज्ञा पुं० [अ० शेख+देश० सद्दो] मुसलमान स्त्रियों के उपास्य एक पीर जो कभी कभी भूत की तरह उनके सिर पर आते हैं।

शेखावत-संज्ञा स्त्री० [अ० शेख] क्षत्रियों की एक जाति। कछवाहे राजपूतों की एक शाखा। उ०—शेखावत राजा रह्यो, रह्यो पुरोहित साथ। करमैती दुहिता रही, ताही की इतिहास।—रघुराज।

विशेष—कहते हैं कि किसी मुसलमान शेख या फ़कीर की दुआ से इस वंश के प्रवर्तक उत्पन्न हुए थे जिनका नाम इसी कारण शेखा जी पड़ा। जयपुर राज्य के अंतर्गत शेखावाटी नामक स्थान में इस शाखा के राजपूत बसते हैं।

शेख़ी-संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] (१) गर्व। अहंकार। घमंड। (२) शान। ऐंठ। अकड़। (३) अभिमान भरी बात। डींग।

मुहा०—शेख़ी बघारना, हाँकना या मारना = बढ़ बढ़ कर बातें करना। अभिमान से भरी बातें कहना। डींग मारना। शेख़ी झड़ना या निकलना = गर्व चूर्ण होना। मान भंग होना। ऐसा दंड पाना या हानि सहना कि अभिमान दूर हो जाय।

शेख़ीबाज़-वि० [फ़ा० शेख़ी+फ़ा० बाज़] (१) अभिमानी। घमंडी। (२) डींग मारनेवाला व्यक्ति।

शेणघंटा-संज्ञा स्त्री० [सं०] दंती। वज्रदंती।

शेप-संज्ञा पुं० [सं०] पुरुष की इंद्रिय। लिंग। शिश्न।

शेपाल-संज्ञा पुं० [सं०] सेवार। शैवाल।

शेफ-संज्ञा पुं० [सं०] लिंग। शिश्न।

शेफालि, शेफालिका, शेफाली-संज्ञा स्त्री० [सं०] निर्गुंडी। नील सिंधुवार का पौधा।

शेयर-संज्ञा पुं० [अं०] (१) हिस्सा। भाग। खंड। बाँट। (२) किसी कार बार में लगी हुई पूँजी का अलग हिस्सा जो उसमें शामिल होनेवाला हर एक आदमी लगावे।

शेर-संज्ञा पुं० [फ़ा०] [स्त्री० शेरनी] (१) बिल्ली की जाति का बाघ से बड़ा प्रसिद्ध हिंसक पशु। बाघ। व्याघ्र। नाहर। वि० दे० "बाघ"।

यौ०—शेर बबर, शेरबच्चा, शेरमर्द।

मुहा०—शेर का काम = भारी साहस का काम। (अप्र०) (विलक्षण) शेर करना = बड़ी बड़ा कर होंसले तेज करना। शेर होना = निर्भय और धृष्ट होना। डर या भय से न रहना। बेधड़क और उद्दंड होना।

(२) अत्यंत वीर और साहसी पुरुष। बड़ा बहादुर आदमी। (लाक्षणिक)

संज्ञा पुं० [अ०] फ़ारसी, उर्दू आदि की कविता के दो चरण।

शेर गुलाबी-संज्ञा पुं० [फ़ा०] गहरा गुलाबी रंग।

शेर-दहाँ-वि० [फ़ा०] (१) जिसका मुँह शेर का सा हो। (२) जिसके छोरों पर शेर का मुँह बना हो।

संज्ञा पुं० (१) वह जिसकी मुंडी शेर के मुँह के आकार की बनी हो। (२) वह मकान जो आगे की ओर चौड़ा और पीछे की ओर पतला या सँकरा हो। (३) पुराने ढंग की एक प्रकार की बंदूक।

शेरपंजा-संज्ञा पुं० [फ़ा० शेर+हिं० पंजा] शेर के पंजे के आकार का एक अस्त्र। बघनहा।

शेरबच्चा-संज्ञा पुं० [फ़ा०+हिं०] (१) शेर का बच्चा। (२) वीर पुत्र। पराक्रमी पुरुष। बहादुर आदमी। (३) एक प्रकार की छोटी बंदूक।

शेरबबर-संज्ञा पुं० [फ़ा०] सिंह। केसरी।

शेरमर्द-वि० [फ़ा०] बहादुर। वीर।

शेरमर्दी-संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] बहादुरी। वीरता।

शेरवानी-संज्ञा स्त्री० [देश०] अंगरेजी ढंग की काट का एक प्रकार का अंगा।

विशेष—यह घुटनों तक लंबा होता है। इसमें कलियाँ, बगलें और चौबगले काट कर नहीं लगाए जाते। आगे जिस ओर बटन लगाया जाता है, उसके नीचे का भाग कुछ अधिक चौड़ा होता है जिसमें बंद या बटन लगा कर दूसरे भाग के नीचे करके बाँधते या बंद करते हैं। मुसलमानों में इसका रवाज अधिक है।

शेल-संज्ञा पुं० दे० "सेल"।

शेलक-संज्ञा पुं० [सं०] लिसोढ़ा। श्लेष्मांतक। बहुवार वृक्ष।

शेलगुच्छ-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सीकच। लिसोड़ा वृक्ष। (२) एक प्रकार का फल।

शेलु-संज्ञा पुं० [सं०] (१) लिसोढ़ा। श्लेष्मा। (२) दनदैवी नामक शाक।

शेलुक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) लिसोढ़ा। (२) सेहुँड़। (३) थूहर वृक्ष।

शेलुका-संज्ञा पुं० [सं०] दनदैवी।

शेलुष-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का लिसोढ़ा।

शेलिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] मुक्तालता।

शेव-संज्ञा पुं० [सं०] (१) उन्नति। (२) ऊँचाई। (३) धन संपत्ति। (४) शिश्न। लिंग। (५) मछली। (६) सर्प। (७) अग्नि का एक नाम।

संज्ञा पुं० [अं०] हजामत बनाने का काम। क्षौर कर्म।

क्रि० प्र०—करना।—कराना।—होना।

शेवधि-संज्ञा पुं० [सं०] निधि। खज़ाना।

शेवल-संज्ञा पुं० [सं०] सेवार। शैवाल।

शेवलिनि-संज्ञा स्त्री० [सं०] (जिसमें सेवार हो) नदी।

शेवाल-संज्ञा पुं० [सं०] सेवार। सेवाल।

शेवाली-संज्ञा स्त्री० [सं०] आकाश मांसी। जटा मासी का एक भेद।

शेष-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जो कुछ भाग निकल जाने पर रह गया हो। बची हुई वस्तु। बाक़ी। (२) वह शब्द जो किसी वाक्य का अर्थ करने के लिये ऊपर से लगाया जाय। अध्याहार। (३) बड़ी संख्या में से छोटी संख्या घटाने से बची हुई संख्या। बाक़ी। (४) समाप्ति। अंत। ख़ातमा। (५) परिणाम। फल। (६) स्मारक वस्तु। यादगार की चीज़। (७) मरण। नाश। (८) पुराणानुसार सहस्र फनों के सर्पराज जो पाताल में हैं और जिनके फनों पर पृथ्वी ठहरी है।

विशेष—ये 'अनंत' कहे गए हैं और विष्णु भगवान क्षीर सागर में इन्हीं के ऊपर शयन करते हैं। विष्णु पुराण में शेष, वासुकि और तक्षक तीनों कद्रु के पुत्र माने गए हैं। पाताल के राजा कहीं वासुकी कहे गए हैं और कहीं शेष। कुछ पुराणों के अनुसार गर्ग ऋषि ने ज्योतिष विद्या इन्हीं से पाई थी। लक्ष्मण और बलराम शेष के अवतार कहे गए हैं।

(९) लक्ष्मण। उ०—सोहत शेष सहित रामचंद्र कुश लव जीति कै समर सिंधु साँचेहु सुधार्‌यो है।—केशव। (१०) बलराम। (११) एक प्रजापति का नाम। (१२) दिग्गजों में से एक। (१३) अनंत। परमेश्वर। (१४) पिंगल में टगण के पाँचवें भेद का नाम। (१५) छप्पय छंद के पचीसवें भेद का नाम जिसमें ४६ गुरु, ६० लघु, कुल १०६ वर्ण या १५२ मात्राएँ होती हैं। (१६) हाथी। (१७) जमाल गोटा।

वि० (१) जो कुछ भाग निकल जाने पर रह गया हो। बचा हुआ। बाक़ी। (२) अंत को पहुँचा हुआ। समाप्त। ख़तम। जैसे,—कार्य्य शेष होना। उ०—बातैं करत शेष निसि आई ऊधो गए असनान।—सूर। (३) अतिरिक्त। और। दूसरे।

शेषजाति-संज्ञा स्त्री० [सं०] गणित में बचे हुए अंक को लेने की क्रिया।

शेषधर-संज्ञा पुं० [सं०] (शेष अर्थात् सर्प को धारण करनेवाले) शिवजी। उ०—शेषधर नाग मुख महा विष्णु इनको कलेवर तौ काल को कवर है—केशव।

शेषनाग-संज्ञा पुं० [सं०] सर्पराज शेष। वि० दे० "शेष" (८)।

शेषरक्ष†-संज्ञा पुं० दे० "शेखर"।

शेषराज-संज्ञा पुं० [सं०] एक वर्ण वृत्त का नाम जिसके प्रत्येक चरण में दो मगण होते हैं। विद्युल्लेखा।

शेषरात्रि-संज्ञा स्त्री० [सं०] रात का पिछला पहर। रात्रि का अंतिम याम।

शेषवत्-संज्ञा पुं० [सं०] न्याय में अनुमान का एक भेद। कार्य्य को देखकर कारण का निश्चय। जैसे,—नदी की बाढ़ देखकर ऊपर हुई वर्षा का अनुमान।

शेषशायी-संज्ञा पुं० [सं० शेषशायिन्] शेष नाग पर शयन करनेवाले, विष्णु।

विशेष—पुराणों के अनुसार प्रलय काल में विष्णु भगवान तीनों लोकों को अपने पेट में धारण कर क्षीर सागर में शेषनाग की शय्या बनाकर उस पर शयन करते हैं। कुछ काल के उपरांत उनकी नाभि से एक कमल निकलता है जिस पर ब्रह्मा की उत्पत्ति होती है और सृष्टि का क्रम फिर से चलता है।

शेषांश-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बचा हुआ अंश। अवशिष्ट भाग। (२) अंतिम अंश। आख़िरी भाग।

शेषा-संज्ञा स्त्री० [सं०] देवता को चढ़ी हुई वस्तु जो दर्शकों या उपासकों को बाँटी जाय। प्रसाद।

शेषाचल-संज्ञा पुं० [सं०] दक्षिण का एक पर्वत। उ०—मुनि मुनीश शेषाचल माहीं। बैठे आगे धरि पटवाहीं।—रघुराज।

शेषोक्त-वि० [सं०] अंत में कहा हुआ।

शैक्य-संज्ञा पुं० [सं०] छीका। सिकहर। छीका।

शैक्यायस-संज्ञा पुं० [सं०] इसपात लोहा।

शैक्ष-संज्ञा पुं० [सं०] आचार्य्य के निकट रहकर शिक्षा प्राप्त करनेवाला शिष्य।

शैक्षिक-संज्ञा पुं० [सं०] शिक्षा विषय का जाननेवाला। "शिक्षा" का ज्ञाता।

शैख-संज्ञा पुं० [सं०] पतित ब्राह्मण की संतान। (स्मृति)

शैखरिक, शैखरेय-संज्ञा पुं० [सं०] औंगा। अपामार्ग। चिचड़ा। लटजीरा।

शैग्रव-संज्ञा पुं० [सं०] सहिजन के बीज। शिग्रुबीज।

शैघ्र, शैघ्र्य-संज्ञा पुं० [सं०] शीघ्रता। जल्दी।

वि० ज्योतिष के योग से संबंध रखनेवाला।

शैतान-संज्ञा पुं० [अ०] (१) ईश्वर के सन्मार्ग का विरोध करनेवाली शक्ति का देवता। तमोगुण-मय देवता जो मनुष्यों

शैलपत्र-संज्ञा पुं० [सं०] बेल। बिल्व वृक्ष।
शैलपुत्री-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) पार्वती। (२) नौ दुर्गाओं में से एक दुर्गा का नाम। (३) गंगा नदी।
शैलपुष्प-संज्ञा पुं० [सं०] शिलाजतु। शिलाजीत।
शैलबीज-संज्ञा पुं० [सं०] भिलावाँ। भेला।
शैलभेद-संज्ञा पुं० [सं०] पखान भेद।
शैलमल्ली-संज्ञा स्त्री० [सं०] कुटज। कोरैया।
शैलरंध्र-संज्ञा पुं० [सं०] गुफा।
शैलराज-संज्ञा पुं० [सं०] हिमालय पर्वत।
शैलरोही-संज्ञा पुं० [सं०] मोगरा चावल।
शैलवल्कला-संज्ञा पुं० [सं०] पाषाण भेद। श्वेत पाषाण।
शैलशिविर-संज्ञा पुं० [सं०] समुद्र। सागर।
विशेष—कहते हैं कि जब इंद्र ने पर्वतों पर चढ़ाई की थी, तब कुछ पर्वत समुद्र में जा छिपे थे। इसी से समुद्र का यह नाम पड़ा है।
शैलसंभव-संज्ञा पुं० [सं०] शिलाजीत।
शैलसंभूत-संज्ञा पुं० [सं०] गेरू।
शैलसुता-संज्ञा स्त्री० [सं०] पार्वती।
शैलाख्य-संज्ञा पुं० [सं०] पथर फूल। छरीला।
शैलाट-संज्ञा पुं० [सं० [(१) पहाड़ी आदमी। परबतिया। (२) किरात। (३) सिंह। (४) स्फटिक। बिल्लौर।
शैलादि-संज्ञा पुं० [सं०] शिव के गण, नंदी।
शैलाभ-संज्ञा पुं० [सं०] विश्वेदेवा में से एक।
शैलाली-संज्ञा पुं० [सं०] शिलाली। नट।
शैलाह्व-संज्ञा पुं० [सं०] शिलाजीत।
शैलिक-संज्ञा पुं० [सं०] शिलाजीत।
शैलिक्य-संज्ञा पुं० [सं०] सर्वलिंगी।
शैली-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) चाल। ढब। ढंग। (२) परिपाटी। प्रणाली। तर्ज़। तरीका। (३) रीति। प्रथा। रस्म रवाज। (४) लिखने का ढंग। वाक्य रचना का प्रकार। उ०—शैली श्रेष्ठ कबीर की, गुरु को गुरु है जौन। ताको चरित बखानि कै, दहै दोष मति तौन।—रघुराज। (५) कठोरता। कड़ाई। सख्ती।
शैलु-संज्ञा पुं० [देश०] लिसोढ़ा। लभेरा।
संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की चटाई जिसका व्यवहार दक्षिण और गुजरात में होता है।
शैलुक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बहुवार वृक्ष। लिसोढ़ा। लभेरा। (२) कमलकंद। भसींड़।
शैलूकी-संज्ञा स्त्री० [सं०] कमलकंद। भसींड़।
शैलूष-संज्ञा पुं० [सं०] (१) अभिनय करनेवाला। नाटक खेलनेवाला। नट। (२) गंधर्वों का स्वामी, रोहितण। (रामायण) (३) धूर्त। (४) बिल्व वृक्ष। बेल।
शैलूषभूषण-संज्ञा पुं० [सं०] हरताल।
शैलूषिक-संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० शैलूषिकी] नट वृत्ति से जीवन निर्वाह करनेवाली एक जाति। शिलाली। नट।
शैलेंद्र-संज्ञा पुं० [सं०] हिमालय।
शैलेंद्रस्थ-संज्ञा पुं० [सं०] भोज-पत्र।
शैलेय-वि० [सं०] (१) पत्थर का। पथरीला। (२) पहाड़ी। (३) पत्थर से उत्पन्न।
संज्ञा पुं० (१) दे० "छरीला"। (२) शिलाजीत। (३) मूसली। तालपर्णी। (४) सेंधा नमक। (५) सिंह। (६) भ्रमर।
शैलेयक-संज्ञा पुं० दे० "शैलेय"।
शैलेयी-संज्ञा स्त्री० [सं०] पार्व्वती।
शैलेश्वर-संज्ञा पुं० [सं०] शिव। महादेव।
शैलोदा-संज्ञा स्त्री० [सं०] उत्तर दिशा की एक नदी। (वाल्मीकि रामा०; महाभारत।)
शैलोद्भवा-संज्ञा स्त्री० [सं०] पाषाण भेद। क्षुद्र पाषाण।
शैल्य-वि० [सं०] (१) पत्थर का। (२) पथरीला। (३) कड़ा। कठोर।
शैव-वि० [सं०] शिव संबंधी। शिव का। जैसे,—शैव दर्शन।
संज्ञा पुं० (१) शिव का अनन्य उपासक। महादेव का भक्त।
विशेष—उपासना-भेद से आधुनिक हिंदू धर्म्म में तीन मुख्य संप्रदाय प्रचलित हैं—शैव, शाक्त और वैष्णव। शैव लोग परमेश्वर को शिव-रूप ही मानते हैं। उनके अनुसार शिव ही सृष्टि की उत्पत्ति, पालन और संहार तीनों करते हैं। पूजा के लिये शिव की प्रतिमा नहीं बनाई जाती; लिंग ही उनका प्रतीक माना जाता है। विशेष दे० "लिंग"। शैव लोग शरीर में भस्म लगाते, गले में रुद्राक्ष की माला पहनते और माथे पर त्रिपुंड (तीन आड़ी रेखाएँ) लगाते हैं। शैवों के अनेक भेद हैं जो अधिकतर दक्षिण में पाए जाते हैं। काश्मीर में भी शैव मत का विशेष रूप से प्रचार था। शंकराचार्य्य के अनुयायी अद्वैतवादी भी उपासना-क्षेत्र में शैव ही होते हैं। शिव की उपासना भारत तथा उसके निकटवर्ती देशों में बहुत प्राचीन काल में भी प्रचलित थी। नैपाल, तिब्बत आदि में बौद्ध धर्म के साथ उसमें मिली हुई शिव की उपासना बहुत दिनों से प्रचलित चली आती है। ईसा के पूर्व के सिक्कों में भी त्रिशूल, नंदी आदि पाए जाते हैं। ऐसे सिक्के खुरासान तक में पाए गए हैं। शकों और हूणों में भी शैव धर्म प्रचलित था।
(२) पाशुपत अस्त्र। (३) धतूरा। (४) वासक। अडूसा। (५) पाँचवें कृष्ण। वासुदेव। (जैन)
शैवपत्र-संज्ञा पुं० [सं०] बिल्व वृक्ष, जिसकी पत्तियाँ शिव पर चढ़ती हैं। बेल।

शैवपुराण-संज्ञा पुं० [सं०] शिव पुराण।

शैवमल्लिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] शिवलिंगी लता। पँचगुरिया।

शैवल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) पद्माक। पदमाख। पद्मकाष्ठ। (२) सेवार। (३) एक पर्वत। (४) एक नाग का नाम। (बौद्ध)

शैवलिनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] नदी।

शैवाल-संज्ञा पुं० [सं०] सिवार। सेवार।

शैवी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) पार्वती। (२) मनसा नाम की देवी। (३) कल्याण। मंगल।

शैव्य-वि० [सं०] शिव या शिवी संबंधी।
संज्ञा पुं० (१) पांडवों का एक सेनापति। (२) श्रीकृष्ण का एक घोड़ा।

शैव्या-संज्ञा स्त्री० [सं०] चंडकौशिक के अनुसार अयोध्या के सत्यव्रती राजा हरिश्चंद्र की रानी का नाम।

शैशव-वि० [सं०] (१) शिशु संबंधी। बच्चों का। (२) बाल्यावस्था संबंधी।
संज्ञा पुं० (१) अनजान बालक की अवस्था। बचपन। (२) बच्चों का सा व्यवहार। लड़कपन।

शैशिर-वि० [सं०] (१) शिशिर संबंधी। (२) शिशिर में उत्पन्न।
संज्ञा पुं० (१) ऋग्वेद की एक शाखा के प्रवर्तक एक ऋषि का नाम। (२) कृष्ण चातक पक्षी। काले रंग का पपीहा।

शैशिरीय (शाखा)-संज्ञा स्त्री० [सं०] ऋग्वेद की शाकल शाखाओं में से एक।

शैशुनाग-संज्ञा पुं० [सं०] मगध के प्राचीन राजा शिशुनाग का वंशज।

शैलूष-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन ऋषि का नाम।

शोक-संज्ञा पुं० [सं०] इष्ट के नाश और अनिष्ट की प्राप्ति से उत्पन्न मनोविकार। किसी प्रिय व्यक्ति के अभाव या पीड़ा आदि से अथवा दुःखदायी घटना से उत्पन्न क्षोभ। रंज। गम।
विशेष—साहित्य में 'शोक' को स्थायी भावों में से एक है और करुण रस का मूल है। पुराणों में 'शोक' मृत्यु का पुत्र कहा गया है।

शोककारक-वि० [सं०] शोक उत्पन्न करनेवाला।

शोकघ्न-संज्ञा पुं० [सं०] अशोक वृक्ष।

शोकनाशक-संज्ञा पुं० [सं०] अशोक वृक्ष।

शोकहर-संज्ञा पुं० [सं०] एक छंद का नाम। इसके प्रत्येक पद में ८, ८, ८, ६ के विराम से (अंत गुरु सहित) तीस मात्राएँ होती हैं। प्रत्येक पद के दूसरे, चौथे और छठे चौकल में जगण न पड़े। इसको शुभंगी भी कहते हैं।

शोकहारी-संज्ञा स्त्री० [सं०] वन बर्बरी। बनतुलसी।

शोकाकुल-वि० [सं०] शोक से व्याकुल।

शोकातुर-वि० [सं०] शोक से व्याकुल।

शोकारि-संज्ञा पुं० [सं०] कदम। कदंब वृक्ष।

शोकार्त्त-वि० [सं०] शोक से विकल।

शोकी-संज्ञा स्त्री० [सं०] रात्रि। रात।

शोकोपहत-वि० [सं०] शोक से विकल।

शोख़-वि० [फ़ा०] (१) ढीठ। धृष्ट। प्रगल्भ। (२) नटखट। नटखट। (३) चंचल। चपल। (४) जो रंग का चटकीला हो। गहरा और चमकदार। चटकीला। जैसे,—शोख़ रंग।

शोख़ी-संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] (१) धृष्टता। ढिठाई। (२) चंचलता। चपलता। (३) तेज़ी। चटकीलापन। जैसे,—रंग की शोख़ी।

शोच-संज्ञा पुं० [सं० शोचन] (१) दुःख। रंज। अफ़सोस। (२) चिंता। फ़िक्र। खटका।

शोचन-संज्ञा पुं० [सं०] [वि० शोचनीय, शोचित, शोच्य] (१) शोक करना। रंज करना। (२) चिंता करना। (३) शोक। रंज।

शोचनीय-वि० [सं०] (१) शोक करने योग्य। जिसकी दशा देखकर दुःख हो। (२) जिससे दुःख उत्पन्न हो। बहुत हीन या बुरा।

शोचि-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) लौ। लपट। (२) दीप्ति। चमक। (३) वर्ण। रंग।

शोचिष्केश-संज्ञा पुं० [सं०] (१) अग्नि। (२) सूर्य। (३) चित्रक वृक्ष। चीता।

शौटीर्य-संज्ञा पुं० [सं०] बल वीर्य। पराक्रम।

शोठ-वि० [सं०] (१) मूर्ख। बेवकूफ़। (२) नीच। अधम। (३) आलसी।

शोण-संज्ञा पुं० [सं०] (१) लाल रंग। (२) लाली। ललाई। (३) अग्नि। आग। (४) सिंदूर। सेंदुर। (५) रक्त। लोहू। खून। (६) पद्मराग मणि। माणिक। (७) रक्त पुनर्नवा। लाल गदहपूरना। (८) सोना पाठा। (९) लाल गन्ना। (१०) एक नद का नाम। वि० दे० "सोन"।

शोणक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सोना पाठा। (२) लाल गदहपूरना। (३) लाल गन्ना।

शोणगिरि-संज्ञा पुं० [सं०] एक पहाड़ी का नाम जिस पर आसाम देश की पुरानी राजधानी 'शोणपुर' थी।

शोणझिंटिका, शोणझिंटी-संज्ञा स्त्री० [सं०] लाल कटसरैया।

शोणपत्र-संज्ञा पुं० [सं०] रक्त पुनर्नवा। लाल गदहपूरना।

शोणपद्म-संज्ञा पुं० [सं०] लाल कमल।

शोणपुष्प-संज्ञा पुं० [सं०] कचनार। कोविदार वृक्ष।

शोणपुष्पी-संज्ञा स्त्री० [सं०] सिंदूरपुष्पी। सेंदुरिया।

शोणभद्र-संज्ञा पुं० [सं०] सोन नदी।

शोणाश्म-संज्ञा पुं० [सं०] माणिक। लाल।

शोणसंभव-संज्ञा पुं० [सं०] पिपला मूल। पिप्पली मूल।
शोणांबु-संज्ञा पुं० [सं०] प्रलय काल के मेघों में से एक मेघ।
शोणा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सोन नदी। (२) लाल कटसरैया।
शोणित-वि० [सं०] लाल। रक्त वर्ण का।
संज्ञा पुं० (१) रक्त। रुधिर। खून। (२) पौधों का रस। (३) केसर। जाफरान। (४) ईंगुर। सिंगरफ। (५) ताम्र धातु। ताँबा। (६) तृणकेसर।
शोणितचंदन-संज्ञा पुं० [सं०] लाल चंदन।
शोणितपुर-संज्ञा पुं० [सं०] बाणासुर की राजधानी।
शोणितमेह-संज्ञा पुं० [सं०] लाल प्रमेह।
शोणित-शर्करा-संज्ञा स्त्री० [सं०] शहद की चीनी।
शोणितार्बुद-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का शूक रोग जिसमें लिंग पर फुंसियाँ निकलती हैं।
शोणितार्श-संज्ञा पुं० [सं०] आँख की पलक एक रोग जिसमें पलकों की कोर पर कोमल और लाल रंग का मांस का अंकुर उत्पन्न होता है।
शोणिताह्वय-संज्ञा पुं० [सं०] केसर। कुंकुम।
शोणितोपल-संज्ञा पुं० [सं०] मानिक। लाल।
शोणोपल-संज्ञा पुं० [सं०] मानिक। लाल।
शोथ-संज्ञा पुं० [सं०] (१) किसी अंग का फूलना। सूजन। वरम। (२) अंग में सूजन होने का रोग। वरम।
विशेष—जब दूषित रक्त, पित्त या कफ कुपित वायु से नसों में बद्ध हो जाता है, तब सूजन होती है। शोथ तीन प्रकार का कहा गया है-वातज, पित्तज और कफज। आमाशय में दोष होने से छाती के ऊपर, पक्वाशय में होने से छाती के नीचे और मलाशय में होने से कमर से पैर तक सारे शरीर में शोथ होता है। शरीर के मध्य भाग या सर्वांग का शोथ कष्टसाध्य कहा गया है। जो शोथ केवल अधोंग में उत्पन्न होकर ऊपर की ओर बढ़ता हो, वह प्रायः घातक होता है। पर पांडु आदि रोगों में पैर से ऊपर की ओर बढ़नेवाला शोथ घातक नहीं होता। स्त्रियों की कुक्षि, उदर, गर्भस्थान या गले का शोथ असाध्य होता है। जो शोथ बहुत भारी और कड़ा हो और जिसमें श्वास, प्यास, दुर्बलता, अरुचि आदि उपद्रव भी उत्पन्न हों, वह भी असाध्य कहा गया है।
शोथक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) दे० "शोथ"। (२) मुरदा संग।
शोथघ्नी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) गदहपूरना। पुनर्नवा। (२) शालपर्णी। सरिवन।
शोथजित-संज्ञा पुं० [सं०] (१) भिलावाँ। महातक। (२) पुनर्नवा।
शोथहित-संज्ञा पुं० [सं०] पुनर्नवा।
शोथहन्-संज्ञा पुं० [सं०] भिलावाँ।
शोथारि-संज्ञा पुं० [सं०] पुनर्नवा। गदहपूरना।

शोद्धव्य-वि० [सं०] जिसे शुद्ध करना हो। शोधने योग्य।
शोध-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शुद्धि संस्कार। सफाई। (२) ठीक किया जाना। दुरुस्ती। (३) चुकता होना। अदा होना। बेबाक होना। जैसे,—ऋण का शोध होना। (४) जाँच। परीक्षा। (५) खोज। ढूँढ़। तलाश। अनुसंधान। अन्वेषण।
शोधक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शोधनेवाला। उ०—संसार को बहुधा विरोध कुचित्त शोधक जानि। ठाढ़ी भई तब शांति सों करुणा सखी सुख मानि।—केशव। (२) सुधार करनेवाला। सुधारक। (३) ढूँढ़नेवाला। खोजनेवाला। (४) वह संख्या जिसे घटाने से ठीक वर्गमूल निकले। (गणित)।
शोधन-संज्ञा पुं० [सं०] [वि० शोधित, शोधनीय, शोध्य, शोद्धव्य] (१) शुद्ध करना। साफ करना। (२) दुरुस्त करना। ठीक करना। सुधारना। (३) धातुओं का औषध रूप में व्यवहार करने के लिये संस्कार। जैसे,—पारद का शोधन। (४) छान बीन। जाँच। (५) खोजना। ढूँढ़ना। तलाश करना। अनुसंधान करना। (६) ऋण चुकाना। अदा करना। बेबाक करना। (७) किसी पाप से शुद्ध होने का संस्कार। प्रायश्चित्त। (८) चाल सुधारने के लिये दंड। सज़ा। (९) हटाकर साफ करना। सफाई के लिये दूर करना। साफ करना। (१०) दस्त लाकर कोठा साफ करना। विरेचन। (११) मुरदा संग। कंकुष्ठ। (१२) मल। विष्ठा। (१३) घटाना। निकालना। (गणित) (१४) नीबू। (१५) हीरा कसीस।
शोधनक-संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल के न्यायालय या धर्मसभा का स्थान साफ और ठीक करनेवाला कर्मचारी।
शोधना-क्रि० स० [सं० शोधन] (१) शुद्ध करना। साफ करना। मैला आदि निकाल कर स्वच्छ करना। (२) दुरुस्त करना। ठीक करना। त्रुटि या दोष दूर करना। सुधारना। जैसे,—लेख शोधना। (३) औषध के लिये धातु का संस्कार करना। जैसे,—पारा शोधना। (४) ढूँढ़ना। खोजना। तलाश करना। उ०—ग्रहगण, लग्न, नक्षत्र शोधि कीनी वेदध्वनि।—सूर।
शोधनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) मार्जनी। झाड़ू। बुहारी। (२) ताम्रवल्ली। (३) नील। (४) ऋद्धि नामक अष्टवर्गीय ओषधि।
शोधनीबीज-संज्ञा पुं० [सं०] जमाल गोटे का बीज।
शोधनीय-वि० [सं०] (१) शुद्ध करने योग्य। (२) चुकाने योग्य। (३)। ढूँढ़ने योग्य।
शोधवाना-क्रि० स० [सं० शोधना का प्रे०] (१) शोधने का काम कराना। शुद्ध कराना। दुरुस्त कराना। (२) ढुँढ़वाना। तलाश कराना।
शोधैया-संज्ञा पुं० [हिं० शोधना + ऐया (प्रत्य०)]. शोधनेवाला।

सुधारक। उ०—मंगल सदा ही करैं राम युगलेश कहैं राम रसिकावली शोधैया औ बोधैया को।—रघुराज।

शोफ–संज्ञा पुं० [सं०] शोथ। सूजन।

शोफघ्नी–संज्ञा स्त्री० [सं०] शोथघ्नी। रक्त पुनर्नवा।

शोफनाशन–संज्ञा पुं० [सं०] शोथनाशन। नील का वृक्ष।

शोफहारी–संज्ञा पुं० [सं०] जंगली बघँरी का पौधा।

शोफहृत–संज्ञा पुं० [सं०] भिलावाँ। भल्लातक वृक्ष।

शोफारि–संज्ञा पुं० [सं०] हाथीकंद। हस्तिकंद।

शोबदा–संज्ञा पुं० [अ०] जादू। इंद्रजाल। माया। नज़रबंदी।

शोभ–वि० [सं०] शोभायुक्त। सुंदर। सजीला।

संज्ञा पुं० (१) एक प्रकार के देवता। (२) एक प्रकार के नास्तिक।

ꙮ संज्ञा स्त्री० दे० "शोभा"।

शोभक–वि० [सं०] सुंदर। सजीला।

शोभन–वि० [सं०] (१) शोभायुक्त। सुंदर। सजीला। (२) सुहावना। रमणीय। (३) उत्तम। अच्छा। भला। श्रेष्ठ। (४) उचित। उपयुक्त। सुहाता हुआ। (५) शुभ। मंगल-दायक।

संज्ञा पुं० (१) अग्नि का नाम। (२) शिव का नाम। (३) इष्टि योग। (४) ज्योतिष में विष्कंभक आदि सत्ताइस योगों में से पाँचवाँ योग। (५) ग्रह। (६) बृहस्पति का ग्यारहवाँ संवत्सर। (७) २४ मात्राओं का एक छंद जिसमें १४ और १० मात्रा पर यति होती है और अंत में जगण होता है। इसका दूसरा नाम 'सिंहिका' है। (८) मालकोस राग का पुत्र एक राग। (९) कमल। (१०) राँगा। (११) आभूषण। गहना। (१२) मंगल। कल्याण। शुभ। (१३) धर्म। पुण्य। (१४) दीप्ति। सौंदर्य। (१५) सिंदूर। सेंदुर। (१६) कंकुष्ठ।

शोभनक–संज्ञा पुं० [सं०] सहिंजन या शोभांजन का वृक्ष।

शोभना–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सुंदरी स्त्री। (२) हलदी। हरिद्रा। (३) गोरोचन। (४) स्कंद की अनुचरी एक मातृका।

ꙮ क्रि० अ० [सं० शोभन] शोभित होना। सोहना।

शोभनिक–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का नट या अभिनयकर्त्ता

शोभनी–संज्ञा स्त्री० [सं०] एक रागनी जो मालकोश राग की स्त्री कही जाती है।

शोभनीया–संज्ञा स्त्री० [सं०] गोरखमुंडी।

शोभांजन–संज्ञा पुं० [सं०] सहिंजन का पेड़।

शोभा–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) दीप्ति। कांति। चमक। (२) छवि। सुंदरता। छटा। सजीलापन। रुचिरता।

मुहा०—शोभा देना = अच्छा लगना। सुंदर लगना।

(३) सजावट। (४) उत्तम गुण। (५) वर्ण। रंग। (६) बीस अक्षरों का एक वर्णवृत्त जिसमें क्रम से यगण, मगण, दो नगण, दो तगण और दो गुरु होते हैं तथा ६, ७ और ७ पर यति होती है। (७) हल्दी। हरिद्रा। (८) गोरोचन। (९) फारसी संगीत में मुकाम की स्त्रियाँ जो चौबीस होती हैं।

शोभानक–संज्ञा पुं० [सं०] शोभांजन वृक्ष। सहिंजन।

शोभान्वित–वि० [सं०] शोभा से युक्त। सुंदर। सजीला।

शोभायमान–वि० [सं०] सोहता हुआ। सुंदर।

शोभित–वि० [सं०] (१) शोभा से युक्त। सुंदर। सजीला। (२) अच्छा लगता हुआ। सजा हुआ। (३) विद्यमान। उपस्थित। विराजता हुआ। जैसे,—सिंहासन पर शोभित होना।

शोर–संज्ञा पुं० [फ़ा०] (१) जोर की आवाज़। हल्ला। गुल गपाड़ा। कोलाहल। उ०—(क) जहाँ तहाँ शोर भारी भीर नर नारिन की सबही की छूटि गई लाज यहि भाइ कै।—केशव। (ख) घननि की घोर सुनि मोरनि के शोर सुनि सुनि केशव अलाप आली जन को।—केशव। (२) धूम। प्रसिद्धि। जैसे,—उसके बड़प्पन का शोर हो गया। उ०—आप द्वारका शोर कियो उन हरि हस्तिनापुर जाँ प्रद्युम्न करे सत दश दो दिन रंच हार नहिं माने।—सूर

क्रि० प्र०—करना।—मचना।—मचाना।

यौ०—शोरगुल।

शोरबा–संज्ञा पुं० [फ़ा०] (१) किसी उबाली हुई वस्तु का पानी झोल। जूस। रसा। (२) पके हुए मांस का पानी।

शोरा–संज्ञा पुं० [फ़ा० शोर] एक प्रकार का क्षार जो मिट्टी में निकलता है।

विशेष—यह बहुत ठंढा होता है और इसी लिये पानी ठंढा करने के काम में आता है। बारूद में भी इसका योग रहता और सुनार इससे गहने भी साफ़ करते हैं। खारी मिट्टी क्यारियाँ बनाकर इसे जमाते हैं। साफ़ किए हुए बढ़िया शोरे को कलमी शोरा कहते हैं।

मुहा०—शोरे की पुतली = बहुत गोरी स्त्री।

शोरा आलू–संज्ञा पुं० [हिं० शोरा + आलू] बन आलू।

शोरापुश्त–वि० [फ़ा०] एकाका। लगड़ालू। फसादी।

शोरिश–संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] (१) खलबली। हलचल। (२) बलवा। बगावत। उपद्रव। दंगा।

शोरी–संज्ञा पुं० [फ़ा० शोर] (१) फारसी संगीत में एक मुकाम का पुत्र। (२) एक पंजाबी प्रसिद्ध गवैया जिसने टप्पा नाम का गीत निकाला था।

शोला–संज्ञा पुं० [देश०] एक छोटा पेड़ जिसकी लकड़ी बहुत हलकी होती है।

विशेष—पानी पर तैरनेवाले जाल में इसकी लकड़ी लगाई

जाती है। लकड़ी का सफेद हीर फूल, खिलौने तथा विवाह के मुकुट बनाने के काम में आता है।

संज्ञा पुं० [अ०] आग की लपट। ज्वाला।

शोली-संज्ञा स्त्री० [सं०] बन हलदी। वन हरिद्रा।

शोलेप-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का अस्त्र। (वाल्मीकि रा०)

शोशा-संज्ञा पुं० [फ़ा०] (१) निकली हुई नोक। (२) अद्भुत या अनोखी बात। चुटकुला। (३) झगड़ा खड़ा करनेवाली बात। (४) लगती बात। व्यंग्य।

क्रि० प्र०—छोड़ना।

शोष-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सूखने का भाव। खुश्क होना। रस या गीलापन दूर होने का भाव। (२) छीजने का भाव। क्षय। (३) शरीर का घुलना या क्षीण होना। (४) एक रोग जिसमें शरीर सूखता या क्षीण होता जाता है। राजयक्ष्मा का भेद। क्षयी।

विशेष—वैद्यक में शोष रोग के छः कारण बताए गए हैं—अधिक शोक, जरावस्था, अधिक मार्ग चलना, अधिक व्यायाम, अधिक स्त्रीप्रसंग, और हृदय में चोट लगना। इस रोग में शरीर क्षीण होता जाता है, मंद ज्वर और खाँसी रहती है, पसली, छाती और कमर में पीड़ा रहती है तथा अतिसार भी हो जाता है।

(४) बच्चों का सुखंडी रोग। (५) खुश्की। सूखापन।

शोषक-संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० शोषिका] (१) जल, रस या तरी खींचनेवाला। सोखनेवाला। (२) सुखानेवाला। खुश्क करनेवाला। (३) घुलानेवाला। क्षीण करनेवाला। (४) नाश करनेवाला। (५) दूर करनेवाला।

शोषकर्म-संज्ञा पुं० [सं०] बावली या तालाब आदि से पानी निकलवाना और उससे खेत सिंचवाना। (जैन)

शोषघ्न-संज्ञा पुं० [सं०] वन प्याज।

शोषण-संज्ञा पुं० [सं०] [वि० शोषी, शोषित, शोषणीय] (१) जल या रस खींचना। सोखना। (२) सुखाना। खुश्क करना। तरी या गीलापन दूर करना। (३) हरापन या ताजापन दूर करना। (४) घुलाना। क्षीण करना। क्षय करना। (५) नाश करना। दूर करना। न रहने देना। (६) कामदेव के एक बाण का नाम। (७) सोंठ। शुंठि। (८) श्योनाक वृक्ष। सोनापाठा। (९) पिप्पली। पीपल।

शोषणीय-वि० [सं०] सोखने योग्य।

शोषयितव्य-वि० [सं०] (१) जो सोखा जानेवाला हो। (२) जिसे सुखाना हो।

शोषसंभव-संज्ञा पुं० [सं०] पिपला मूल।

शोषहा-संज्ञा पुं० [सं०] (शोष रोग का नाश करनेवाला) मोंगा। अपामार्ग। चिचड़ा।

शोषापहा-संज्ञा स्त्री० [सं०] मुलेठी।

शोषित-वि० [सं०] (१) सोखा हुआ। (२) सुखाया हुआ।

शोषी-संज्ञा पुं० [सं० शोषिन्] [स्त्री० शोषिणी] (१) सोखनेवाला। (२) सुखानेवाला।

शोहदा-संज्ञा पुं० [अ० मि० सं० + शुभद्र] (१) व्यभिचारी। लंपट। (२) गुंडा। बदमाश। लुच्चा। (३) छैल चिकनिया। बहुत बनाव सिंगार करनेवाला।

शोहदापन-संज्ञा पुं० [हिं० शोहदा + पन (प्रत्य०)] (१) गुंडापन। लुच्चापन। (२) छैलापन।

शोहरत-संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) नामवरी। ख्याति। प्रसिद्धि। (२) खूब फैली हुई खबर। धूम। जनरव। जैसे,—शहर में शोहरत तो ऐसी ही है।

शोहरा-संज्ञा पुं० [अ० शोहरत] (१) ख्याति। प्रसिद्धि। (२) धूम से फैली हुई खबर। जनरव। उ०—भनै रघुराज दूत लागत अचर्ज मोंहि, तोरियो पिनाकी को पिनाक सुने शोहरा।—रघुराज।

शौंग-संज्ञा पुं० [सं०] भरद्वाज ऋषि का एक नाम जो शुंग के अपत्य थे।

शौंगिपुत्र-संज्ञा पुं० [सं०] एक वैदिक आचार्य का नाम।

शौंगेय-संज्ञा पुं० [सं०] (१) गरुड़। (२) श्येन पक्षी। बाज।

शौंड-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मुर्गा। कुक्कुट पक्षी। (२) पुनेरा। देवधान्य। (३) वह जो मद्य पीकर मतवाला हुआ हो। मस्त। मत्त।

शौंडता-संज्ञा स्त्री० [सं०] मत्तता। मद-मस्ती।

शौंडायन-संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल की एक योद्धा जाति का नाम।

शौंडिक-संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० शौंडिकी] (१) प्राचीन काल की एक प्रसिद्ध जाति जिसका व्यवसाय मद्य बनाना और बेचना था। पराशर पद्धति में इस जाति की उत्पत्ति कैवर्त्त पिता और गांधिक माता से लिखी है; और मनु ने कहा है कि इस जाति के आदमी के घर भोजन नहीं करना चाहिए। (२) पिप्पली मूल।

शौंडिकप्रिय-संज्ञा पुं० [सं०] आम।

शौंडिकागार-संज्ञा पुं० [सं०] शराब की दूकान। शराब खाना। हौली। कलवरिया।

शौंडी-संज्ञा पुं० [सं० शौंडिन्] प्राचीन काल की शौंडिक नामक जाति।

संज्ञा स्त्री० [सं०] पीपल। पिप्पली। (२) चव्य। चविका। कटभी वृक्ष। (३) मिर्च।

शौंडीर-वि० [सं०] बहुत घमंड करनेवाला। अहंकारी। अभिमानी।

शौक़-संज्ञा पुं० [अ०] (१) किसी वस्तु की प्राप्ति या निरंतर भोग के लिये अथवा कोई कार्य्य करते रहने के लिये होने-

वाली तीव्र अभिलाषा या कामना। प्रबल लालसा। जैसे,—मोटर का शौक, सफर का शौक, खाने पीने का शौक, जूए का शौक, किताबों का शौक।

क्रि० प्र०—करना।—रखना।—होना।

मुहा०—शौक करना = किसी वस्तु या पदार्थ का भोग करना। जैसे,—तंबाकू आ गया, शौक कीजिए। शौक चर्राना या पैदा होना = मन में प्रबल कामना होना। (व्यंग्य) जैसे,—अब आपको भी घोड़े पर चढ़ने का शौक चर्राया है। शौक पूरा करना या मिटाना = किसी बात की प्रबल इच्छा की पूर्ति करना। जैसे,—आइए, आप भी शतरंज का शौक पूरा कर (मिटा) लीजिए। शौक फरमाना = दे० "शौक करना"। शौक से = प्रसन्नता-पूर्वक। आनंद से। जैसे,—हाँ हाँ, आप भी शौक से चखिए।

(२) आकांक्षा। लालसा। हौसिला। जैसे,—मुझे आज तक इस बात का शौक ही रहा कि लोग तुम्हारी तारीफ करते। (३) व्यसन। चसका। चाट। जैसे,—(क) आज कल उसे शराब का शौक हो गया है। (ख) आपको गंगा स्नान का शौक कब से हुआ ?

क्रि० प्र०—लगना।—लगाना।—होना।

(४) प्रवृत्ति। झुकाव। जैसे,—जरा आपका शौक तो देखिए, पेड़ पर चढ़ने चले हैं।

शौक-संज्ञा पुं० [सं०] शुक-समूह। तोतों का झुंड।

शौकत-संज्ञा स्त्री० [अ०] ठाठ बाट। शान। वि० दे० "शान"।

यौ०—शान शौकत।

शौकर-संज्ञा पुं० दे० "शूकरक्षेत्र"।

शौकरव-संज्ञा पुं० दे० "शूकरक्षेत्र"।

शौकरी-संज्ञा स्त्री० [सं०] वाराहीकंद। गेंठी।

शौकि-संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल के एक गोत्र-प्रवर्त्तक ऋषि का नाम।

शौकिया-क्रि० वि० [अ०] शौक के कारण। शौक पूरा करने के लिये। प्रवृत्ति के वश होकर। जैसे,—(क) मुझे तंबाकू पीने की आदत तो नहीं है; पर हाँ कभी कभी शौकिया पी लिया करता हूँ। (ख) उन्हें कोई जरूरत तो न थी; सिर्फ शौकिया फारसी सीख ली थी।

वि० शौक से भरा हुआ। जैसे,—शौकिया सलाम।

शौक़ीन-संज्ञा पुं० [अ० शौक + ईन (प्रत्य०)] (१) वह जिसे किसी बात का बहुत शौक हो। ... करनेवाला। ... रखनेवाला। जैसे,—आप ... शौकीन हैं। (२) वह जो सदा छैला ... रहनेवाला। (३) रंडीबाज।

शौकीनी-संज्ञा स्त्री० [हिं० शौकीन + ...] ... होने का भाव। ...

क्रि० प्र०—करना।—छाँटना।—दिखाना।—बघारना।

(२) तमाशबीनी। रंडीबाजी। ऐयाशी।

शौकेय-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन ऋषि का नाम।

शौक्ष-संज्ञा पुं० [सं०] एक साम का नाम।

शौक्तिक, शौक्तिकेय-संज्ञा पुं० [सं०] शुक्तिका या सीपी से उत्पन्न, मोती। मुक्ता।

शौक्तिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] सीप।

शौक्तेय-संज्ञा पुं० [सं०] मोती जो शुक्ति या सीपी से उत्पन्न होता है।

शौक्र-वि० [सं०] शुक्र संबंधी। शुक्र का।

शौक्ल-वि० [सं०] शुक्ल संबंधी। शुक्ल का।

संज्ञा पुं० दे० "शौक्ल"।

शौग्र-संज्ञा पुं० [सं०] सहिंजन का बीज।

शौच-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शुचि होने का भाव। शुद्धता। पवित्रता। पाकीजगी। (२) शास्त्रीय परिभाषा में, पवित्रता-पूर्वक धर्माचरण करना, अपना शरीर और मन शुद्ध रखना, सत्य बोलना और निषिद्ध पदार्थों तथा कार्यों आदि का त्याग करना। सब प्रकार से शुद्धता-पूर्वक जीवन व्यतीत करना।

विशेष—मनु के अनुसार यह धर्म के दस लक्षणों में से पाँचवाँ लक्षण है; और योगशास्त्र के पाँच नियमों में से पहला नियम है। कुछ लोगों ने इसके बाह्य और आभ्यंतर ये दो भेद माने हैं। शरीर का बाह्य शौच मिट्टी और जल आदि से होता है; और अपने चित्त का भाव सब प्रकार से शुद्ध रखने से आभ्यंतर शौच होता है। जैनों के अनुसार संयम वृत्ति को निष्कलंक रखना शौच कहलाता है।

(३) वे कृत्य जो प्रातःकाल उठकर सब से पहले किए जाते हैं। जैसे,—पाखाने जाना, मुँह हाथ धोना, नहाना, संध्या वंदन करना आदि। (४) पाखाने जाना। झाड़े जाना। टट्टी जाना। (५) दे० "अशौच"।

शौचविधि-संज्ञा स्त्री० [सं०] मल-मूत्र आदि का त्याग करना। शौच आदि से निवृत्त होना। निपटना।

शौचाद्रिेय-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन ऋषि का नाम।

... संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल की एक वर्णसंकर जाति ... उत्पत्ति शौंडिक पिता और कैवर्त्त माता से कही ... है।

... [सं० शौचिन्] विशुद्ध। पवित्र।

... पुं० ... । धोबी।

... पुं० ... वीर। बहादुर। (३) त्यागी।

...) शौटीर का भाव या धर्म।

(२) वीरता। बहादुरी। (३) त्याग। (४) अभिमान। अहंकार। गर्व।

शौटीर्य-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वीर्य्य। शुक्र। (२) गर्व। अभिमान। (३) वीरता। बहादुरी।

शौत-संज्ञा स्त्री० दे० "सौत"। उ०—मेरे आगे की यह गद्दी। अब भइ शौत बदन पर चढ़ी।—लल्लूलाल।

शौद्धोदनि-संज्ञा पुं० [सं०] बुद्धदेव, जो शुद्धोदन के पुत्र थे।

शौद्र-संज्ञा पुं० [सं०] ब्राह्मण, क्षत्रिय या वैश्य के वीर्य्य से शूद्रा से उत्पन्न पुत्र जो बारह प्रकार के पुत्रों में से एक प्रकार का पुत्र माना जाता है। ऐसा पुत्र अपने पिता के गोत्र का नहीं होता और न उसकी संपत्ति का अधिकारी ही हो सकता है।

शौधल-वि० [सं० शुद्ध] निर्मल। पवित्र। (क्व०) उ०—कटि कांती पगवंतिका नाभि द्वारिका शौध। हृदमाया कंठ मधुपुरी काशि प्राण शिर औध।—विश्राम।

शौधिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] रक्तकंगु। लाल कँगनी।

शौन-संज्ञा पुं० [सं०] वह मांस जो बिक्री के लिये रखा हो।
वि० श्वान संबंधी। कुत्ते का।

शौनक-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन वैदिक आचार्य्य और ऋषि जो शुनक ऋषि के पुत्र थे। ये नैमिषारण्य में तपस्या करते थे और इन्होंने एक बार एक बहुत बड़ा यज्ञ किया था जो बारह वर्षों तक होता रहा था। इनके नाम से कई ग्रंथ प्रसिद्ध हैं।

शौनकायन-संज्ञा पुं० [सं०] वह जो शुनक के गोत्र में उत्पन्न हुआ हो।

शौनहोत्र-संज्ञा पुं० [सं०] वैदिक काल के एक प्राचीन आचार्य्य का नाम।

शौनायन्य-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन गोत्रप्रवर्तक ऋषि का नाम।

शौनिक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मांस बेचनेवाला। कसाई। (२) शिकार। आखेट। मृगया।

शौनिकशास्त्र-संज्ञा पुं० [सं०] वह शास्त्र जिसमें शिकार खेलने, घोड़ों आदि पर चढ़ने और पशुओं आदि को लड़ाने की विद्या का वर्णन हो।

शौभ-संज्ञा पुं० [सं०] (१) चिकनी सुपारी। (२) देवता। (३) राजा हरिश्चंद्र की वह कल्पित नगरी जो आकाश में मानी जाती है।

शौभांजन-संज्ञा पुं० [सं०] सहिंजन नामक वृक्ष। शोभांजन। वि० दे० "सहिंजन"।

शौभायन-संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल की एक योद्धा जाति का नाम।

शौभिक-संज्ञा पुं० [सं०] इंद्रजाल का तमाशा करनेवाला। ऐंद्रजालिक। जादूगर।

शौभ्रायण-संज्ञा पुं० [सं०] (१) प्राचीन काल के एक देश का नाम। (२) इस देश का निवासी।

शौरसेन-संज्ञा पुं० [सं०] आधुनिक व्रजमंडल का प्राचीन नाम जहाँ पहले राजा शूरसेन का राज्य था।
वि० शूरसेन संबंधी। शूरसेन का।

शौरसेनिका-संज्ञा स्त्री० दे० "शौरसेनी"।

शौरसेनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) प्राचीन काल की एक प्रसिद्ध प्राकृत भाषा जो शौरसेन (वर्त्तमान व्रज मंडल) प्रदेश में बोली जाती थी।

विशेष—यह मध्य देश की प्राकृत थी और शूरसेन देश में इसका प्रचार होने के कारण यह शौरसेनी कहलाई। मध्यदेश में ही साहित्यिक संस्कृत का अभ्युदय हुआ था और यहीं की बोलचाल की भाषा से साहित्य की शौरसेनी प्राकृत का जन्म हुआ। इस पर संस्कृत का बहुत अधिक प्रभाव पड़ा था और इसी लिये इसमें तथा संस्कृत में बहुत समानता है। यह अपेक्षाकृत अधिक पुरानी, विकसित और शिष्ट समाज की भाषा थी। वर्त्तमान हिंदी का जन्म शौरसेनी और अर्धमागधी प्राकृतों तथा शौरसेनी और अर्धमागधी अपभ्रंशों से हुआ है।

(२) प्राचीन काल की एक प्रसिद्ध अपभ्रंश भाषा जिसका प्रचार मध्य देश के लोगों और साहित्य में था। यह नागर भी कहलाती थी।

शौरि-संज्ञा पुं० [सं०] (१) विष्णु। (२) कृष्ण। (३) बलदेव। (४) वसुदेव। (५) शनैश्चर ग्रह।

शौरिप्रिय-संज्ञा पुं० [सं०] हीरा।

शौरिरत्न-संज्ञा पुं० [सं०] नीलम।

शौर्पारक-संज्ञा पुं० [सं०] काले रंग का एक प्रकार का हीरा जो प्राचीन काल में शूर्पारक प्रदेश में पाया जाता था।

शौर्य्य-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शूर का भाव। शूरता। पराक्रम। वीरता। बहादुरी। (२) शूर का धर्म्म। (३) नाटक में आरभटी नाम की वृत्ति। वि० दे० "आरभटी" (२)।

शौलायन-संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल के एक गोत्र-प्रवर्त्तक ऋषि का नाम जो कौलायन भी कहलाते थे।

शौलिक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) प्राचीन काल के एक देश का नाम जो शूलिक भी कहलाता था। (२) इस देश का निवासी।

शौलिकि-संज्ञा पुं० [सं०] योगशास्त्र के अनुसार धौति, नेति आदि छः प्रकार के कर्म्मों में से एक कर्म्म। इसमें दाहिने नथने से धीरे धीरे साँस खींचते हुए बाएँ नथने से छोड़ते हैं; और फिर बाएँ नथने से खींचते हुए दाहिने नथने से छोड़ते हैं। कहते हैं कि इस क्रिया के द्वारा कफ के दोष का शमन होता है।

शौल्क-वि० [सं०] शुल्क संबंधी। शुल्क का।

संज्ञा पुं० एक साम का नाम।

शौल्कायनि-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन ऋषि का नाम जो वेददर्श के शिष्य थे और जिनका उल्लेख भागवत में आया है।

शौल्किक-संज्ञा पुं० [सं०] वह अधिकारी जो लोगों से शुल्क लेता हो। कर या महसूल आदि वसूल करनेवाला अफसर। शुल्काध्यक्ष।

शौल्किकेय-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का विष।

शौल्फ-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सौंफ। शतपुष्पा। (२) सुलफा नाम का साग।

शौल्विक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) प्राचीन काल की एक वर्णसंकर जाति का नाम। (२) ठठेरा। कसेरा।

शौवन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) कुत्ते का मांस। (२) कुत्तों का झुंड।
वि० श्वान संबंधी। कुत्ते का।

शौवस्तिक-संज्ञा पुं० [सं०] वह पदार्थ जो भविष्य में व्यवहार करने के विचार से संग्रह करके रखा गया हो।

शौहर-संज्ञा पुं० [फा०] स्त्री का पति। स्वामी। खाविंद। मालिक।
वि० दे० "पति" (२)।

श्नाम-संज्ञा पुं० [सं०] एक साम का नाम।

श्नुष्टि-संज्ञा स्त्री० [सं०] वैदिक काल का 'समय' का एक परिमाण।

श्नौष्ट-संज्ञा पुं० [सं०] एक साम का नाम।

श्मशान-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह स्थान जहाँ मुरदे जलाए जाते हों। शव दाह करने का स्थान। मसान। मरघट।
पर्य्या०—पितृवन। शतानक। रुद्राक्रीड़। दाहसर। अंतशय्या। पितृकानन।

श्मशान कालिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] तांत्रिकों के अनुसार एक प्रकार की काली जिनका पूजन मांस, मछली खाकर, मद्य पीकर और नंगे होकर श्मशान में किया जाता है।

श्मशाननिलय-संज्ञा पुं० [सं०] श्मशान में रहनेवाले, महादेव। शिव।

श्मशानपति-संज्ञा पुं० [सं०] (१) श्मशान के स्वामी, शिव। (२) एक प्रकार के ऐंद्रजालिक।

श्मशानपाल-संज्ञा पुं० [सं०] श्मशान का रक्षक, चांडाल।

श्मशानभैरवी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) तांत्रिकों के अनुसार वे देवियाँ जो श्मशान में रहती हैं। (२) दुर्गा का एक नाम।

श्मशानवासिनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] काली।

श्मशानवासी-संज्ञा पुं० [सं० श्मशानवासिन्] (१) महादेव। शिव। (२) चांडाल।

श्मशानवेताल-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की भूतयोनि।

श्मशानवेश्म-संज्ञा पुं० [सं० श्मशानवेश्मन्] महादेव। शिव।

श्मश्रु-संज्ञा पुं० [सं०] होठों, गालों और ठोड़ी आदि पर होनेवाले बाल। मुँह पर के बाल। दाढ़ी मूछ।

श्मश्रुकर-संज्ञा पुं० [सं०] दाढ़ी की सफाई करनेवाला, हज्जाम। नापित।

श्मश्रुकर्म-संज्ञा पुं० [सं० श्मश्रुकर्मन्] दाढ़ी बनवाना। हजामत बनवाना। क्षौर कर्म।

श्मश्रुमुखी-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्त्री जिसके गालों और ऊपरी होंठ पर दाढ़ी और मोछ के बाल हों। ऐसी स्त्री क्रूर, कुलक्षणी और पुंश्चली समझी जाती है।

श्मश्रुवर्द्धक-संज्ञा पुं० [सं०] हज्जाम।

श्मश्रुशेखर-संज्ञा पुं० [सं०] नारियल का वृक्ष।

श्यापर्ण-संज्ञा पुं० [सं०] एक वैदिक शाखा का नाम।

श्याम-संज्ञा पुं० [सं०] (१) श्रीकृष्ण का एक नाम, जो उनके शरीर के श्याम वर्ण होने के कारण पड़ा था। उ०—एक बार हरि निज पुर छाये। हलधर जी वृंदावन गये। यह देखत लोग सुख पाये। जान्यो राम श्याम दोउ आये।—सूर। (२) प्रयाग के अक्षयवट का नाम। (३) साँवाँ नामक धान्य (डिं०) (४) एक राग जो श्रीराग का पुत्र माना जाता है यह राग उत्सवों आदि के समय गाया जाता है, और हास्य रस के लिये भी उपयुक्त होता है। इसके गाने के समय संध्या के समय १ दंड से ५ दंड तक है। इसे श्याम कल्याण भी कहते हैं। उ०—नित मलार गु मदा सुनाई। श्याम गूजरी पुनि भल गाई।—जायसी। (५) सेंधा नमक। (६) धतूरा। (७) विधारा। (८) मेघ, बादल। (९) दौना का क्षुप। दमनक। (१०) एक प्रकार का तृण। गंध तृण। (११) गोल मिर्च। छोटी या काली मिर्च। (१२) पीलू वृक्ष। (१३) कोयल। कोकिल। (१४) प्राचीन काल का एक देश जो कन्नौज के पश्चिम और था। (१५) श्याम नामक देश। वि० दे० "स्याम"।
वि० (१) काला और नीला मिला हुआ (रंग)। (२) काला। साँवला। उ०— (क) अमी हलाहल मद भरे, श्वेत श्याम रतनार। जियत मरत झुकि झुकि परत, जेहि चितवत एक बार। (ख) कीन्हेसि बरन श्वेत औ श्यामा।—जायसी।

श्यामकंठ-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मोर। मयूर। (२) नीलकंठ नामक पक्षी। (३) शिव का एक नाम।

श्यामकंदा-संज्ञा स्त्री० [सं०] अतीस। अतिविषा।

श्यामक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) साँवाँ का चावल। (२) गंध तृण नामक तृण। रामकपूर। (३) श्याम नामक देश। (४) भागवत के अनुसार शूर के एक पुत्र और वसुदेव के भाई का नाम।

श्यामकर्ण-संज्ञा पुं० [सं०] वह घोड़ा जिसका सारा शरीर सफेद

और एक कान काला होता है। उ०—श्यामकर्ण हय चालत भावैं। चमर छत्र तापर छबि छावैं।—सबलसिंह।

श्यामकांडा, श्यामकांता–संज्ञा स्त्री० [सं०] गाँडर दूब।

श्याम थि–संज्ञा स्त्री० [सं०] गाडर। दूब।

श्यामचटक–संज्ञा पुं० [सं०] श्यामा नामक पक्षी।

श्यामचूड़ा–संज्ञा स्त्री० [सं०] कृष्ण चटक या श्यामा नामक पक्षी।

श्याम जीरा–संज्ञा पुं० [सं० श्याम+जीरक] (१) एक प्रकार का धान जो अगहन में तैयार होता है और जिसका चावल बहुत दिनों तक रखा जा सकता है। (२) काला जीरा। कृष्ण जीरक।

श्याम टीका–संज्ञा पुं० [सं० श्याम+हिं० टीका] वह काला टीका जो बच्चों को नजर से बचाने के लिये लगाया जाता है। दिठौना। उ०—पठइहिं मातु भूप दरबारे टीको श्याम लगाई।—रघुराम।

श्यामता–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) श्याम का भाव या धर्म। (२) कालापन। साँवलापन। कृष्णता। (३) मलिनता। उदासी। जैसे,—यह बात सुनते ही उसके मुँह पर श्यामता छा गई। (४) एक प्रकार का रोग जिसमें शरीर का रंग काला होने लगता है।

श्याम तीतर–संज्ञा पुं० [सं० श्याम+हिं०तीतर] प्रायः डेढ़ बालिश्त लंबा एक प्रकार का पक्षी जो अकेला रहता है और पाला भी जा सकता है। यह काश्मीर, भूटान और दक्षिण हिमालय में पाया जाता है। ऋतु भेदानुसार यह स्थान परिवर्तन करता रहता है। इसकी चोंच लंबी होती है और यह बहुत तेज उड़ता है। इसका शब्द धीमा पर विचित्र होता है। इसका मांस स्वादिष्ट होता है; इसलिये इसका शिकार भी किया जाता है।

श्यामपत्र–संज्ञा पुं० [सं०] तमाल वृक्ष।

श्यामपत्रा–संज्ञा स्त्री० [सं०] जामुन का वृक्ष।

श्यामपर्ण–संज्ञा पुं० [सं०] सिरिस का पेड़। शिरीष का वृक्ष।

श्यामपर्णी–संज्ञा स्त्री० दे० "चाय"।

श्याम पूरबी–संज्ञा पुं० [सं० श्याम+हिं० पूरबी] एक प्रकार का संकर राग। इसमें और सब तो शुद्ध स्वर लगते हैं, केवल मध्यम तीव्र लगता है।

श्यामभूषण–संज्ञा पुं० [सं०] मिर्च।

श्याम मंजरी–संज्ञा स्त्री० [सं० श्याम+मंजरी] काले रंग की एक प्रकार की मिट्टी जिससे वैष्णव लोग माथे पर तिलक लगाते हैं। यह मिट्टी प्रायः जगन्नाथ जी के आसपास की भूमि में पाई जाती है।

श्यामल–संज्ञा पुं० [सं०] पीपल। अश्वत्थ वृक्ष। (२) सिरिस का पेड़। शिरिष। (३) सुश्रुत के अनुसार एक प्रकार का बहुत जहरीला बिच्छू।

वि० जिसका वर्ण कृष्ण हो। काला। साँवला।

श्यामलचूड़ा–संज्ञा स्त्री० [सं०] गुंजा। घुँघची।

श्यामलता–संज्ञा स्त्री० [सं०] श्यामल या काले रंग के होने का भाव। साँवलापन। कालापन।

श्यामला–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) अश्वगंध। असगंध। (२) कटभी। (३) जामुन। (४) कस्तूरी। मृगमद। (५) पार्वती का एक नाम।

श्यामलिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] नीली।

श्यामली–संज्ञा स्त्री० दे० "श्यामला"।

श्यामलेक्षु–संज्ञा पुं० [सं०] काले रंग की ईख।

श्यामवर्त्म–संज्ञा [सं०] एक प्रकार का नेत्र रोग जिसमें आँख की पलकें बाहर तथा भीतर से काली होकर फूल जाती हैं और उनमें पीड़ा होती है।

श्याम-शबल–संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार यम के अनुचर दो कुत्ते जो उनके द्वार पर पहरा देने का काम करते हैं। इन्हें संतुष्ट करने के लिये एक प्रकार का व्रत करने का भी विधान है।

श्यामशर–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की ईख जो बहुत अच्छी और गुणवाली मानी जाती है।

श्यामशालि–संज्ञा पुं० [सं०] काला शालिधान्य।

श्यामसार–संज्ञा पुं० [सं०] कृष्ण खदिर का वृक्ष।

श्यामसुंदर–संज्ञा पुं० [सं०] (१) श्रीकृष्ण का एक नाम। उ०—लिये उठाय श्यामसुंदर को धन गहि कै मुख दीन्हों।—सूर। (२) एक प्रकार का वृक्ष जो कद में बहुत ऊँचा होता है। इसकी छाल प्रारंभ में उज्ज्वल होती है; परंतु ज्यों ज्यों यह पुराना होता जाता है, त्यों त्यों छाल काली होती जाती है। इसके हीर की लकड़ी चमकदार होती है। पहाड़ों पर यह चार हजार फुट की ऊँचाई तक पाया जाता है। इसकी लकड़ी प्रायः बढ़िया चीजों के बनाने में काम आती है। इससे खेती के औजार भी बनाए जाते हैं।

श्यामांग–संज्ञा पुं० [सं०] बुध ग्रह, जिसका वर्ण दूर्वा-श्याम माना गया है।

वि० जिसका शरीर कृष्ण वर्ण का हो। काले या साँवले रंगवाला।

श्यामांगी–संज्ञा स्त्री० [सं०] नीली दूब।

श्यामा–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) राधा या राधिका का एक नाम, जो श्याम या श्रीकृष्ण के साथ उनका प्रेम होने के कारण पड़ा था। उ०—मदनमोहन मान जान्यो गगन मेघ छिपाइ। श्याम श्यामा गुप्त लीला......।—सूर। (२) एक गोपी का नाम। उ०—श्यामा कामा चतुरा नवला प्रमुदा सुमदा नारि।—सूर। (३) प्रायः सवा या डेढ़ बालिश्त लंबा एक प्रकार का पक्षी जिसका रंग काला और पेट पीछे

होते हैं। यह पंजाब के अतिरिक्त सारे भारत में मिलता है। यह एक ही स्थान पर स्थिर रूप से रहता है और पहाड़ पर नहीं जाता। यह प्रायः घने जंगलों में रहता है। इसका स्वर बहुत ही मधुर और कोमल होता है। यह पत्ती और घास से घोंसला बनाता है और एक बार में चार अंडे देता है। (४) सोलह वर्ष की तरुणी। (५) काले रंग की गाय। (६) कबूतरी। मादा कबूतर। (७) काला अनंतमूल। श्यामा लता। (८) काली निसोथ। (९) प्रियंगु। वनिता। (१०) बकुची। सोम राजी। (११) नील। (१२) गुग्गुल। (१३) सोम लता। सोमवल्ली। (१४) भद्रमोथा। (१५) गुडुच। गिलोय। (१६) बंदा। बंदाक। (१७) कस्तूरी। मुश्क। (१८) वट पत्री। पाषाणभेदी। (१९) पीपल। पिप्पली। (२०) हल्दी। हरिद्रा। (२१) हरी दूब। (२२) तुलसी। सुरसा क्षुप। (२३) कमलगट्टा। (२४) विधारा। (२५) शिंशपा वृक्ष। शीशम। (२६) साँवाँ नामक अन्न। (२७) काली गदहपूरना। (२८) गोलोचन। गोरोचन। (२९) पुरका या गुंदा नामक घास। (३०) लता कस्तूरी। मुश्क दाना। (३१) मेढ़ा सिंगी। (३२) हरीतकी। हर्रें। (३३) कोयल नामक पक्षी। (३४) यमुना। (३५) रात। रात्रि। (३६) स्त्री। औरत। (३७) छाया। (३८) कालिका देवी का एक नाम।
वि० (१) तपाए हुए सोने के समान वर्णवाली। (२) श्याम रंगवाली। काली।

श्यामाक–संज्ञा पुं० [सं०] साँवाँ नामक अन्न।

श्यामाढकी–संज्ञा स्त्री० [सं०] काले फूल की अरहर जो वैद्यक के अनुसार दीपन और पित्त तथा दाह की नाशक मानी जाती है।

श्यामायन–संज्ञा पुं० [सं०] विश्वामित्र के एक पुत्र का नाम जो गोत्र-प्रवर्तक ऋषि थे।

श्यामायनि–संज्ञा पुं० [सं०] एक वैदिक आचार्य का नाम।

श्यामायनी–संज्ञा पुं० [सं०] (१) वैशंपायन के शिष्यों का संप्रदाय। (२) वह जो इस संप्रदाय में हो।

श्यामा लता–संज्ञा स्त्री० [सं०] काला अनंतमूल। कृष्ण सारिवा।

श्यामाह्वा–संज्ञा स्त्री० [सं०] पिप्पली। पीपल।

श्यामिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) काला रंग। कृष्ण वर्ण। (२) कालापन। श्यामता। (३) मलिनता। उदासी।

श्यामेक्षु–संज्ञा पुं० [सं०] काला ईख। कजली ईख।

श्याल–संज्ञा पुं० [सं०] (१) पत्नी का भाई। साला। उ०—बार बार सत्कार करि, कीन्हो श्याल विदाह।—रघुराज। (२) बहन का पति। बहनोई।
संज्ञा पुं० [सं० शृगाल] गीदड़। सियार। उ०—रोम वृषभ तुरंग अरु नाग। श्याल दिवस निसि बोलें काग।—सूर।

श्यालक–संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० श्यालिका] पत्नी का भाई। साला।

श्यालकाँटा–संज्ञा पुं० [श्याल + हिं० काँटा] स्वर्णक्षीरी। सत्यानासी। भरभाँड़।

श्यालकी–संज्ञा स्त्री० [सं०] पत्नी की बहन। साली।

श्याव–वि० [सं०] कृष्ण और पीत मिश्रित (वर्ण)। काला और पीला मिला हुआ (रंग)। कपिश।
संज्ञा पुं० (१) काला और पीला मिला हुआ रंग। कपिश वर्ण। (२) सुश्रुत के अनुसार एक प्रकार का बिच्छू जिसका विष बहुत तेज नहीं होता।

श्यावक–संज्ञा पुं० [सं०] वैदिक काल के एक प्राचीन राजर्षि का नाम।

श्यावता–संज्ञा स्त्री० [सं०] श्याव (वर्ण) का भाव या धर्म। कपिशता।

श्यावतैल–संज्ञा पुं० [सं०] आम का पेड़।

श्यावदंत–संज्ञा पुं० [सं०] (१) दाँतों का एक प्रकार का रोग जिसमें रक्त मिश्रित पित्त से दाँत जलकर काले, पीले या नीले हो जाते हैं। (२) वह जिसके दाँत स्वभावतः काले रंग के हों।

श्यावनाय–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन ऋषि का नाम।

श्यावरथ–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन ऋषि का नाम।

श्याववर्त्म–संज्ञा पुं० [सं० श्याववर्त्मन्] आँखों का श्यामवर्त्म नामक रोग। वि० दे० "श्यामवर्त्म"।

श्यावाश्व–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन ऋषि का नाम।

श्येत–वि० [सं०] श्वेत। सफेद। शुक्ल। (वर्ण)
संज्ञा पुं० सफेद रंग।

श्येतकोलक–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की मछली।

श्येन–संज्ञा पुं० [सं०] (१) शिकरा या बाज नामक प्रसिद्ध पक्षी जो प्रायः छोटे छोटे पक्षियों का शिकार किया करता है।
पर्य्या०—शशादन। कपोतारि। क्रूरवेगी। खगांतक। कामी। लंबकर्ण। भीमपिच्छ। रणप्रिय। रणरसी। भयंकर। स्थूलनीलि।
(२) दोहे के चौथे भेद का नाम। इसमें १९ गुरु और १० लघु मात्राएँ होती हैं। (३) पीला रंग।

श्येनकरण–संज्ञा पुं० [सं०] किसी काम को उतनी ही तेजी और दृढ़ता से करना जितनी तेजी और दृढ़ता से बाज झपटकर अपने शिकार को पकड़ता है।

श्येनगामी–संज्ञा पुं० [सं० श्येनगामिन्] रामायण के अनुसार एक राक्षस का नाम।

श्येनघंटा–संज्ञा स्त्री० [सं०] दंती वृक्ष। उदुंबर पर्णी। वि० दे० "दंती"।

श्येनचित्–संज्ञा पुं० [सं०] यज्ञ आदि में अग्नि स्थापित करने की वह वेदी जिसका आकार श्येन या बाज पक्षी के समान होता है।

श्येनजीवी-संज्ञा पुं० [सं० श्येनजीविन्] वह जो श्येन या बाज पकड़ और बेच कर जीविका निर्वाह करता हो। मनु ने ऐसे आदमी के साथ एक पंक्ति में बैठ कर खाने पीने का निषेध किया है।

श्येनाहृत-संज्ञा पुं० [सं०] सोम लता।

श्येनिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का वृत्त जिसके प्रत्येक चरण में ११ अक्षर होते हैं; और मात्रा के अनुसार उनका क्रम इस प्रकार होता है—र ज र ल ग (ऽ।ऽ, ।ऽ।, ऽ।ऽ, ।, ऽ)। इसका दूसरा नाम 'श्येनी' भी है।

संज्ञा स्त्री० बाज पक्षी की मादा।

श्येनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) दे० "श्येनिका"। (२) मार्कंडेय पुराण के अनुसार कश्यप की एक कन्या का नाम, जो दक्ष की पुत्री ताम्रा के गर्भ से उत्पन्न हुई थी। कहते हैं कि बाज, तोते, कबूतर आदि पक्षी इसी के गर्भ से उत्पन्न हुए थे।

श्यैनिक-संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल का एक प्रकार का याग, जो एक दिन में होता था।

श्यैनेय-संज्ञा पुं० [सं०] जटायु का एक नाम।

श्योनाक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सोनापाढ़ा वृक्ष। (२) लोध। लोध।

श्योरा-संज्ञा पुं० [फ़ा०] बड़ी मेख।

क्रि० प्र०—ठोंकना।—मारना।

श्रंग-संज्ञा पुं० [सं०] गमन। जाना।

संज्ञा पुं० [सं० शृंग] शृंग। (डिं०)

श्रंथ-संज्ञा पुं० [सं०] (१) संसार के बंधन से छुड़ानेवाले, विष्णु। (२) बंधन। (३) मोक्ष।

श्रंथित-वि० [सं०] (१) बँधा हुआ। (२) मुक्त। (३) प्रसन्न। हर्षित। खुश।

श्रंसन-संज्ञा पुं० [सं०] वह औषधि जो पेट में जमे हुए मल या गोटे को बाहर निकालती हो। जैसे, अमलतास का गूदा।

श्रथन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मार डालना। वध। हत्या। (२) अलग करना। बंधन से मुक्त करना। खोलना। (३) यत्न। कोशिश।

श्रद्धा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) एक प्रकार की मनोवृत्ति, जिसमें किसी बड़े या पूज्य व्यक्ति के प्रति भक्तिपूर्वक विश्वास के साथ उच्च और पूज्य भाव उत्पन्न होता है। बड़े के प्रति मन में होनेवाला आदर और पूज्य भाव। उ०—(क) महिमा वेद पुराण सबै बहु भाँति बखानत। यथा सहित सब करत सहित श्रद्धा गुण गानत।—केशव। (ख) पूजत श्रद्धा भक्ति सो कोई। ताके वश्य जगत हम दोई।—सबलसिंह। (२) बौद्ध धर्म के अनुसार बुद्ध, धर्म और संघ में विश्वास। (३) वेदादि शास्त्रों और आप्त पुरुषों के वचनों पर विश्वास। भक्ति। आस्था। विश्वास। (४) शुद्धि। (५) चित्त की प्रसन्नता।

(६) कर्दम मुनि की कन्या का नाम, जो उनकी पत्नी देवहूति के गर्भ से उत्पन्न हुई थीं और जो अत्रि ऋषि की पत्नी थीं।

श्रद्धातव्य-वि० [सं०] जिस पर श्रद्धा की जा सके। श्रद्धा करने के योग्य।

श्रद्धान-संज्ञा पुं० [सं०] श्रद्धा।

श्रद्धालु-वि० [सं०] (१) जिसके मन में श्रद्धा हो। श्रद्धा रखनेवाला। श्रद्धायुक्त। श्रद्धावान्। (२) (स्त्री) जिसके मन में, गर्भावस्था के कारण, अनेक प्रकार की अभिलाषाएँ हों। दोहदवती।

श्रद्धावान्-संज्ञा पुं० [सं० श्रद्धावत्] (१) वह जिसके मन में श्रद्धा हो। श्रद्धायुक्त। श्रद्धालु पुरुष। (२) जिसके मन में धर्म के प्रति निष्ठा हो। धर्मनिष्ठ।

श्रद्धास्पद-वि० [सं०] जिसके प्रति श्रद्धा की जा सके। श्रद्धापात्र। श्रद्धेय। पूजनीय।

श्रद्धी-संज्ञा पुं० [सं० श्रद्धिन्] जिसके मन में श्रद्धा हो। श्रद्धावान्।

श्रद्धेय-वि० [सं०] [संज्ञा श्रद्धेयत्व] जिस पर श्रद्धा की जाय। श्रद्धा करने के योग्य। श्रद्धा-पात्र। श्रद्धास्पद।

श्रपण-संज्ञा पुं० [सं०] गार्हपत्य अग्नि के द्वारा चरु पकाने की क्रिया।

श्रपित-वि० [सं०] पका हुआ। पक्व।

श्रपिता-संज्ञा स्त्री० [सं०] काँजी। कांजिक।

श्रम-संज्ञा पुं० [सं०] (१) किसी कार्य्य के संपादन में होनेवाला शारीरिक अभ्यास। शरीर के द्वारा होनेवाला उद्यम। परिश्रम। मेहनत। मशक्कत। उ०—दूरि तीर्थन श्रम करि जाहिं। जहाँ रहैं तहँ लख्यौं न ताहिं।—सूर।

क्रि० प्र०—उठाना।—करना।—पड़ना।—होना।

(२) थकावट। क्लांति।

मुहा०—श्रम पाना = परिश्रम करना। मेहनत करके थकना। उ०—आसु कहा उद्यम करि आए। कहँ वृथा भ्रमि भ्रमि श्रम पाए।—सूर।

(३) साहित्य में संचारी भावों के अंतर्गत एक भाव। कोई कार्य्य करते करते संतुष्ट और शिथिल हो जाना। (४) क्लेश। दुःख। तकलीफ। (५) दौड़ धूप। परेशानी। (६) पसीना। स्वेद। (७) व्यायाम। कसरत। (८) शस्त्रों का अभ्यास। (९) चिकित्सा। इलाज। (१०) खेद। (११) तप। (१२) प्रयास। (१३) अभ्यास।

श्रमकण-संज्ञा पुं० [सं०] पसीने की बूँदें, जो परिश्रम करने पर शरीर से निकलती हैं। स्वेदबिंदु। उ०—श्यामल तन श्रमकन राजत ज्यों नव घन सुधा सरोवर तोरे।—तुलसी।

श्रमघ्न-वि० [सं०] जिससे श्रम दूर हो। थकावट दूर करनेवाला।

श्रमजल-संज्ञा पुं० [सं०] पसीना। स्वेद। प्रस्वेद। उ०—(क) श्रमजल बिंदु इंदु आनन पर राजत अति सुकुमार। मानो

विविध भाव मिल विलसत मगन सिंधु रस सार।—सूर। (ख) कुमकुम आइ श्रवत श्रमजल मिलि मधु पीवत छवि छीट चली री।—सूर।

श्रमजित–वि० [सं० श्रम + सं० जित् या हिं० जीतना] जो मनमाना परिश्रम करने पर भी न थके। श्रम को जीत लेनेवाला। उ०—स्वामि भक्त श्रमजित सुधी, सेनापति सु अभीत। अनालसी जन प्रिय जसी, सुख संग्राम अजीत।—केशव।

श्रमजीवी–वि० [सं० श्रमजीविन्] शारीरिक परिश्रम करके जीविका निर्वाह करनेवाला। मेहनत करके पेट पालनेवाला।

संज्ञा पुं० मज़दूर। कुली।

श्रमण–संज्ञा पुं० [सं०] (१) बौद्ध मतावलंबी संन्यासी। (२) यति। मुनि। (३) वह जो नीच कर्म करके जीविका निर्वाह करता हो। नीच। घृणित। (४) श्रमजीवी। मजदूर।

श्रमणा–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सुदर्शना नामक ओषधि। (२) जटामांसी। बालछड़। (३) मुंडी। घुंडी। श्रावणिका। (४) शबर जाति की एक स्त्री का नाम। (५) संन्यासिनी।

श्रमबिंदु–संज्ञा पुं० [सं०] पसीने की बूँदें, जो परिश्रम करने पर करने पर शरीर से निकलती हैं। श्रमकण। स्वेद।

श्रमभंजिनी–संज्ञा स्त्री० [सं०] नागवल्ली लता, जो थकावट दूर करनेवाली मानी जाती है। पान। नागवल्ली।

श्रमवारि–संज्ञा पुं० [सं०] परिश्रम के कारण शरीर से निकलनेवाला पसीना। श्रमकण।

श्रमविभाग–संज्ञा पुं० [सं०] किसी कार्य्य के भिन्न भिन्न अंगों के संपादन के लिये, अलग अलग व्यक्तियों की नियुक्ति। परिश्रम या काम का विभाग। जैसे,—किसी का रूई ओटना, किसी का सूत कातना, किसी का कपड़ा बुनना, किसी का अनाज पीसना, किसी का रोटी पकाना।

श्रम-शीकर–संज्ञा पुं० [सं०] श्रम से होनेवाला पसीना। श्रमकण।

श्रम-सहिष्णु–वि० [सं०] जो यथेष्ट श्रम कर सकता हो। मेहनती। परिश्रमी।

श्रमसाध्य–वि० [सं०] जिसके संपादन में श्रम करना पड़े। जो सहज में या बिना परिश्रम न सध सके।

श्रमसीकर–संज्ञा पुं० [सं०] पसीना। श्रमबिंदु। उ०—कुंडल मकर कपोलनि झलकत श्रमसीकर के दाग।—सूर।

श्रमित–वि० [सं० श्रम] जो श्रम से शिथिल हो गया हो। श्रांत। थका हुआ। उ०—चारों भ्रातन श्रमित जानि कै जननी तब पौढ़ाये। चापत चरण जननि अप अपनी कछुक मधुर स्वर गाये।—सूर।

श्रमी–संज्ञा पुं० [सं० श्रमिन्] (१) मेहनती। परिश्रमी। (२) श्रमजीवी।

श्रयण–संज्ञा पुं० [सं०] आश्रय।

श्रयंतिनी–संज्ञा स्त्री० [सं०] नदी।

श्रव–संज्ञा पुं० [सं०] (१) कान। (डिं०) (२) शब्द।

श्रवण–संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह इंद्रिय जिससे शब्द का ज्ञान होता है। कान। कर्ण। श्रुति। (२) वह ज्ञान जो श्रवणेंद्रिय द्वारा होता है। (३) शास्त्रीय परिभाषा में शास्त्रों में लिखी हुई बातें सुनना और उनके अनुसार कार्य्य करना अथवा देवताओं आदि के चरित्र सुनना। उ०—श्रवण कीर्त्तन सुमिरन करैं। पद सेवन अर्चन उर धरैं।—सूर। (४) नौ प्रकार की भक्तियों में से एक प्रकार की भक्ति। उ०—श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पद रत, अरचन, वंदन, दास। सख्य और आत्मानिवेदन प्रेम लक्षण जास।—सूर। (५) वैश्य तपस्वी अंधक मुनि के पुत्र का नाम। (६) राजा मेघध्वज के पुत्र का नाम। उ०—ता संगति नव सुत नित जाए। श्रवणादिक मिलि हरि गुण गाये।—सूर। (७) अश्विनी आदि सत्ताइस नक्षत्रों में से बाइसवाँ नक्षत्र, जिसका आकार शर या तीर का सा माना गया है। इसमें तीन तारे हैं, और इसके अधिपति देवता हरि कहे गए हैं। फलित ज्योतिष के अनुसार जो बालक इस नक्षत्र में जन्म लेता है, वह शास्त्रों से प्रेम रखनेवाला, बहुत से लोगों से मित्रता रखनेवाला, शत्रुओं पर विजय प्राप्त करनेवाला और अच्छी संतानवाला होता है।

श्रवण द्वादशी–संज्ञा स्त्री० [सं०] भादों मास के शुक्ल पक्ष की वह द्वादशी जो श्रवण नक्षत्र से युक्त हो। यह बहुत पुण्य तिथि मानी जाती है। इसे वामनद्वादशी भी कहते हैं। कहते हैं कि वामनावतार इसी दिन हुआ था। उ०—अस कहि शुभ दिन शोधि महा ऋषि तुरत सुमंत बोलायो। भादौं मास श्रवण द्वादशि को सुदिवस सुखद सुनायो।—रघुराज।

श्रवणपथ–संज्ञा पुं० [सं०] श्रवणेंद्रिय। कान।

श्रवणविद्या–संज्ञा स्त्री० [सं०] वह विद्या जो श्रवण इंद्रिय के संपर्क से मानसिक तृप्ति प्रदान करती है। जैसे, संगीत-शास्त्र।

श्रवणशीर्षिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] श्रावणी बूटी। गोरखमुंडी। बड़ी मुंडी।

श्रवणहारी–संज्ञा पुं० [सं० श्रवणहारिन्] वह जो कानों को भला लगे। सुनने में अच्छा जान पड़नेवाला। कर्णमधुर।

श्रवणा–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) बड़ी मुंडी। (२) मुंडेरी। (३) अश्विनी आदि सत्ताइस नक्षत्रों के अंतर्गत बाईसवाँ नक्षत्र। वि० दे० "श्रवण" (७)।

श्रवणाह्वया–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) निर्विषी नामक तृण। (२) जल चौलाई।

श्रवणी–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) मुंडेरी। (२) गोरखमुंडी। महामुंडी।

श्रवणीय–वि० [सं०] सुनने लायक। श्रवण करने योग्य।

श्रवन–संज्ञा पुं० [सं० श्रवण] श्रवण। कान। उ०—नयन बैन

श्री स्रवन से सवही तोर प्रसाद। सेवा मोर यही नित बोलौं आसिरवाद।—जायसी।

श्रवना-क्रि० स० [सं० स्राव] बहना। चूना। रसना। उ०—राति दिवस रस श्रवत सुधा में कामधेनु दरसाई। लूट लूट दधि खात सखन सँग तैसो स्वाद न पाई।—सूर।
क्रि० स० गिराना। बहाना। उ०—खर भर लंक, सशंक, दशानन गर्भ श्रवहिं अरि नारि।—तुलसी।

श्रवित-वि० [सं० स्राव] बहा हुआ। रसा या चूआ हुआ।

श्रविष्ठ-संज्ञा पुं० [सं०] वैदिक काल के एक ऋषि का नाम।

श्रविष्ठा-संज्ञा स्त्री० [सं०] धनिष्ठा नक्षत्र।

श्रविष्ठाज-संज्ञा पुं० [सं०] बुध ग्रह।

श्रविष्ठाभू-संज्ञा पुं० [सं०] बुध ग्रह।

श्रविष्ठारमण-संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा।

श्रव्य-वि० [सं०] जो सुना जा सके। सुनने योग्य। जैसे,—संगीत।
यौ०—श्रव्य काव्य = वह काव्य जो केवल सुना जा सके। वह काव्य जो अभिनय आदि के रूप में देखा जा न सके। इसके तीन भेद हैं—(१) गद्य, (२) पद्य और (३) गद्य पद्य। वि० दे० "काव्य"।

श्रांत-वि० [सं०] (१) जितेंद्रिय। (२) शांत। (३) जो अधिक श्रम करने के कारण थक गया हो। परिश्रम से थका हुआ। (४) दुःखी। खिन्न। रंजीदा। (५) निवृत्त। (६) जो सुख भोगकर तृप्त हो चुका हो।

श्रांति-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) श्रम। परिश्रम। मेहनत। (२) थकावट। उ०—संध्या पर्यंत मार्ग में चलती रहीं; इससे अत्यंत श्रांति मालूम हुई।—प्रतापनारायण। (३) खेद। दुःख। (४) विश्राम। आराम।

श्राण-वि० [सं०] घी, दूध या जल में पका हुआ। सिद्ध। पक्व।

श्राणा-संज्ञा स्त्री० [सं०] माँड़ की काँजी जिसका व्यवहार पथ्य रूप में होता है। यवागू। वि० दे० "यवागू"।

श्राद्ध-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह कार्य्य जो श्रद्धापूर्वक किया जाय। श्रद्धा से किया जानेवाला काम। (२) वह कृत्य जो शास्त्र के विधान के अनुसार पितरों के उद्देश्य से किया जाता है। जैसे,—पितरों के उद्देश्य से तर्पण और पिंडदान करना तथा ब्राह्मणों को भोजन कराना। कुछ लोगों के मत से श्राद्ध पाँच प्रकार का है—नित्य, नैमित्तिक, काम्य, वृद्धि और पार्वण। और कुछ लोग इन पाँच प्रकार के श्राद्धों के अतिरिक्त नीचे लिखे सात प्रकार के और भी (कुल बारह प्रकार के) श्राद्ध मानते हैं—सपिंडन, गोष्ठी, शुद्ध्यर्थ, कर्म्मांग, दैविक, यात्रार्थ और पुष्ट्यर्थ। उ०—कतहूँ श्राद्ध करत पितरन को तर्पण करि बहु भाँति। कहुँ विप्रन को देत दक्षिणा कहुँ भोजन की पाँति।—सूर। (३) आश्विन कृष्ण पक्ष जिसमें पितरों के उद्देश्य से विशेष रूप से पिंडदान किया और ब्राह्मण भोजन कराया जाता है। पितृ-पक्ष। (४) विश्वास। (५) प्रीति।

श्राद्धकर्ता-संज्ञा पुं० [सं० श्राद्धकर्तृ] श्राद्ध करनेवाला व्यक्ति। श्राद्धकारक।

श्राद्धत्व-संज्ञा पुं० [सं०] श्राद्ध का भाव या धर्म्म।

श्राद्धदेव-संज्ञा पुं० [सं०] (१) धर्मराज। (२) यमराज। (३) श्राद्ध में निमंत्रित ब्राह्मण। (४) मार्कंडेय पुराण के अनुसार वैवस्वत मनु का एक नाम। (५) वह लोक जहाँ मरने पर पितर लोग जाते हैं। पितृलोक।

श्राद्धपक्ष-संज्ञा पुं० [सं०] तर्पण, पिंडदान आदि के लिये निश्चित आश्विन मास का कृष्ण पक्ष। पितृ-पक्ष।

श्राद्धशाक-संज्ञा पुं० [सं०] नाड़ी शाक। काल शाक।

श्राद्धसूतक-संज्ञा पुं० [सं०] श्राद्ध के उद्देश्य से बनाया हुआ भोजन। पितरों के उद्देश्य से ब्राह्मणों को खिलाने के लिये बनाया हुआ भोजन।

श्राद्धिक-वि० [सं०] श्राद्ध संबंधी। श्राद्ध का।
संज्ञा पुं० वह जो श्राद्ध के अवसर पर पितरों के उद्देश्य से भोजन कराता हो।

श्राद्धी-संज्ञा पुं० [सं०] श्राद्ध में भोजन करनेवाला। श्राद्धिक।

श्राद्धीय-वि० [सं०] श्राद्ध संबंधी। श्राद्ध का।

श्राप-संज्ञा पुं० दे० "शाप"। उ०—राक्षसन मारि विश्वामित्र सों करायो यज्ञ तारी रिषि नारी सिला श्राप सों भई रही।—रघुनाथ बंदीजन।

श्रापी-संज्ञा पुं० [सं० श्रापिन्] वह जो भोजन बनाता हो। रसोइया।

श्राम-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मास। महीना। (२) मंडप। घर। (३) काल। समय।

श्राय-संज्ञा पुं० [सं०] आश्रय।

श्राव-संज्ञा पुं० [सं०] (१) श्रवण। कान। (२) गंधा बिरोजा। (३) दे० "श्रवण"।

श्रावक-संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० श्राविका] (१) बौद्ध धर्म्म को माननेवाला संन्यासी। (२) जैन धर्म्म को माननेवाला संन्यासी। (३) वह जो जैन धर्म्म का अनुयायी हो। (४) नास्तिक। उ०—यह नरक को खेउ और है जिनि याहि देरि डेराहि। निज जानियै यह श्रावका अति दूर ते तजि ताहि।—केशव। (५) दूर की आवाज। दूर का शब्द। (६) कौआ। काक। (७) छात्र। शिष्य।
वि० श्रवण करनेवाला। सुननेवाला।

श्रावग-संज्ञा पुं० दे० "श्रावक"। उ०—अजहूँ धारग पेयो कै। साही को मारग अनुसरै।—सूर।

श्रावगी-संज्ञा पुं० [सं० श्रावक] जैन धर्म्म को माननेवाला। जैनी।

श्रावण-संज्ञा पुं० [सं०] (१) चैत आदि महीनों में से एक

का नाम जो पाँचवाँ महीना होता और वर्षा ऋतु में पड़ता है। असाढ़ के बाद और भादों के पहले का महीना। इस मास की पूर्णमासी श्रवण नक्षत्र से युक्त होती है, इसी लिये इसे श्रावण कहते हैं। सावन। (२) एक प्रकार का वर्ष। यदि श्रवण अथवा धनिष्ठा नक्षत्र में बृहस्पति उदय हो, तो उस दिन से एक वर्ष तक का समय श्रावण कहलाता है। कहते हैं कि इस वर्ष में धान्य खूब पकते हैं, सब लोग बहुत सुखी होते हैं, पर पाखंडी मनुष्य तथा उनके अनुयायी पीड़ित होते हैं। (३) श्रावण मास की पूर्णिमा। (४) शब्द, जिसका ग्रहण श्रवणेंद्रिय द्वारा होता है। आवाज। (५) पाखंड।

वि० श्रवण नक्षत्र संबंधी। श्रवण नक्षत्र का।

श्रावणा–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) भुँइ कदंब। (२) सुदर्शना नामक वृक्ष।

श्रावणिक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) श्रावण मास। सावन। (२) एक प्रकार की अग्नि।

वि० श्रावण संबंधी। श्रावण का।

श्रावणिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] मुंडी।

श्रावणी–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) श्रवण नक्षत्र से युक्त पूर्णिमा। सावन मास की पूर्णमासी। इस दिन ब्राह्मणों का प्रसिद्ध त्योहार 'रक्षा बंधन' या 'सलोनो' तथा कुछ और कृत्य या पूजन आदि होते हैं। इस दिन लोग यज्ञोपवीत का पूजन करते और नवीन यज्ञोपवीत भी धारण करते हैं। (२) मुंडी। घुंडी। (३) भुँइ कदंब। (४) वृद्धि नामक अष्टवर्गीय ओषधि। (५) ऋद्धि नामक अष्टवर्गीय ओषधि।

श्रावनꕯ–क्रि० स० [हिं० स्रवना] गिराना। बहाना। उ०—रुचि दुस प्रीति रीति नैनन जल सींचि ध्यान झर लागी। ताके प्रेम सुफल मुनि श्रावन स्याम सुरँग अनुरागी।—सूर।

श्रावस्त–संज्ञा पुं० [सं०] हरिवंश के अनुसार राजा श्राव के पुत्र का नाम, जिन्होंने श्रावस्ती नगरी बसाई थी।

श्रावस्ती–संज्ञा स्त्री० [सं०] उत्तर कोशल में गंगा के तट पर बसी हुई एक बहुत प्राचीन नगरी, जो अब एक छोटे से गाँव के रूप में रह गई है और सहेत महेत कहलाती है। आजकल यह स्थान बलरामपुर राज्य के अंतर्गत है। यहाँ श्री रामचंद्र के पुत्र लव की राजधानी थी। जैनी इसे 'सावत्थी' कहते और अपने नवें तीर्थंकर सुबुद्धनाथ का कल्याणक बतलाते हैं। यह राजा प्रसेनजित की राजधानी भी कही जाती है। यहाँ एक बार कुछ दिनों तक भगवान् बुद्ध ने भी निवास किया था; इसलिये बौद्धों की दृष्टि में यह एक बहुत पुण्य-स्थल है। बुद्ध के समय में और उनसे पहले यह नगरी बहुत श्री-संपन्न थी।

श्रावा–संज्ञा स्त्री० [सं०] माँड़। पसावन। पीच।

श्रावी–संज्ञा पुं० [सं० श्राविन्] सज्जी। स्वर्जिका क्षार।

श्राव्य–वि० [सं०] सुनने के योग्य। सुनने लायक। श्रोतव्य।

श्रिय–संज्ञा स्त्री० [सं० श्रिया] मंगल। कल्याण। उ०—स्वर्ग जोति जो वाम्हन लोगा। तिनके वचन न संसय जोगा। इनकी वानि संग श्रिय रहहीं। ये नहिं कबहुँ मृषा कछु कहहीं।—सीताराम।

संज्ञा स्त्री० [सं० श्री] शोभा। प्रभा। उ०—कुहुन बीच संकेत राधिका नंदकुँवर की। सो श्रिय को कहि सकै भेटु पिय प्यारी घर की।—सूदन।

श्रिया–संज्ञा स्त्री० [सं०] विष्णु की पत्नी, लक्ष्मी।

श्रियावास–संज्ञा पुं० [सं०] वह जिसके पास यथेष्ट लक्ष्मी हो। धनवान्। अमीर।

श्रियावासी–संज्ञा पुं० [सं० श्रियावासिन्] महादेव। शिव।

श्री–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) विष्णु की पत्नी, लक्ष्मी। कमला। उ०—तजि वैकुंठ गरुड़ तजि श्री तजि निकट दास के आयो।—सूर। (२) सरस्वती। (३) धूप सरल वृक्ष। (४) लवंग। लौंग। (५) कमल। पद्म। (६) बेल। बिल्व वृक्ष। (७) ऋद्धि नामक अष्टवर्गीय ओषधि। (८) सफेद चंदन। संदल। (९) धर्म्म, अर्थ और काम। त्रिवर्ग। (१०) संपत्ति। धन। दौलत। (११) विभूति। ऐश्वर्य। (१२) उपकरण। (१३) अधिकार। (१४) कीर्ति। यश। (१५) प्रभा। शोभा। (१६) कांति। चमक। (१७) वृद्धि। (१८) सिद्धि। (१९) एक प्रकार का पद-चिह्न। उ०—स्वस्तिक अष्टकोण श्री फेरा। हल मूसल पन्नग शर हेरा।—विश्राम। (२०) स्त्रियों का बेंदी नामक आभूषण। उ०—श्री जो रतन माँग बैठारा। जानहु गगन टूट निस तारा।—जायसी। (२१) ऊर्ध्व पुंड्र के बीच की लंबी नोकदार लाल रंग की रेखा। (२२) आदर-सूचक शब्द जो नाम के आदि में रखा जाता है। संन्यासी, महात्माओं के नाम के आगे श्री १०८ लिखा जाता है। माता, पिता तथा गुरु के लिये श्री के साथ ६, स्वामी के लिये ५, शत्रु के लिये ४, मित्र के लिये ३, नौकर के लिये २ और शिष्य, सुत तथा स्त्री के लिये श्री के साथ १ लिखने की प्राचीन प्रणाली है।

संज्ञा पुं० (१) कुबेर। (डिं०) (२) ब्रह्मा। (३) विष्णु। (४) वैष्णवों का एक संप्रदाय। (५) एक वृत्त का नाम। यह एकाक्षरा वृत्ति है। इसके प्रत्येक पद में एक गुरु होता है। यथा—गो। श्री। धी। ह्री। (६) संपूर्ण जाति का एक राग, जो हनुमत् के मत से छः रागों के अंतर्गत पाँचवाँ राग है। यह धैवत स्वर की संतान और पृथ्वी की नाभि से उत्पन्न माना गया है। इसकी ऋतु शरद् और वार गुरु है। कहते हैं कि इस राग को शुद्धतापूर्वक गाने से सूखा वृक्ष भी हरा हो जाता है। शास्त्र के अनुसार इस राग की रागिनियाँ

यह हैं—गौरी, पूरवी, मालवा, मुलतान और जयती। इसका सहचर मंगल-राग और सहचरी चंद्रावती रागिनी है। श्याम, कल्याण, मारू, एमन, मौनध्यान और गौड़ इसके पुत्र हैं। भीम पलाश्री, धनाश्री, मालश्री, वारवा, चित्रा-चकोरी इसकी पुत्र-वधुएँ हैं। हनुमत् के अनुसार मारवा, पूरवा, श्याम, हेम, क्षेम, हंविरिक, भूपाल, जेतरा, कल्याण, ध्यान-कल्याण इसके पुत्र हैं। इसकी स्त्रियाँ मालवी, त्रिवेणी, गौरी, गौरा और पूरवी हैं; तथा इसकी प्रियाएँ एमनि, टंकी, माली, गौरा, नागध्वनि और चेतकी हैं।

वि० (१) योग्य। (२) सुंदर। (३) श्रेष्ठ। (४) शुभ।

श्रीकंठ—संज्ञा पुं० [सं०] (१) शिव। महादेव। उ०—श्रीकंठ उर वासुकि लसत सर्वमंगला मार।—केशव। (२) हस्तिनापुर के उत्तर पश्चिम का कुरु जांगल देश।

श्रीकंठसखा—संज्ञा पुं० [सं०] कुबेर का एक नाम।

श्रीकंदा—संज्ञा स्त्री० [सं०] बंध्या कर्कोटकी। खेखसा। वनपरवल।

श्रीकर—संज्ञा पुं० [सं०] (१) विष्णु। (२) लाल कमल। (३) नौ उपनदों में से एक।

वि० शोभा बढ़ानेवाला। सौंदर्य्य बढ़ानेवाला।

श्रीकरण—संज्ञा पुं० [सं०] (१) कलम। लेखनी। (२) कायस्थों की एक शाखा या उपजाति का नाम।

श्रीकर्ण—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का पक्षी। (वृहत्संहिता)

श्रीकांत—संज्ञा पुं० [सं०] लक्ष्मी के पति, विष्णु।

श्रीकारी—संज्ञा पुं० [सं० श्रीकारिन्] एक प्रकार का मृग। कुरंग।

पर्य्या०—महायव। शिखिपुष्प। यवन। जंघाल।

श्रीकीर्त्ति—संज्ञा पुं० [सं०] ताल के साठ मुख्य भेदों में से एक भेद। इसमें दो गुरु और दो लघु मात्राएँ होती हैं। (संगीत दामोदर)

श्रीकुंज—संज्ञा पुं० [सं०] महाभारत के अनुसार एक प्राचीन तीर्थ का नाम, जो सरस्वती नदी के तट पर था।

श्रीकुंड—संज्ञा पुं० [सं०] महाभारत के अनुसार एक प्राचीन तीर्थ का नाम।

श्रीकृष्ण—संज्ञा पुं० दे० "कृष्ण" (१)।

श्रीक्षेत्र—संज्ञा पुं० [सं०] जगन्नाथ पुरी तथा उसके आसपास के प्रदेश का नाम, जो पुण्य क्षेत्र माना जाता है।

श्रीखंड—संज्ञा पुं० [सं०] (१) वैद्यक के अनुसार एक प्रकार का चंदन जो हरि-चंदन भी कहलाता है। मलयागिरी चंदन। उ०—मुक्ता माल नंद नंदन उर अर्ध सुधा घट कांति। तनु श्रीखंड मेघ उज्वल अति देखि महाबल भाँति।—सूर। (२) दे० "शिखरण"। उ०—कलिया अरु पयाग भर स्वादू। तिमि श्रीखंड करत अहलादू।—रघुराज। (३) वैश्यों की एक जाति।

श्रीखंड शैल—संज्ञा पुं० [सं०] मलय पर्वत, जहाँ श्रीखंड (चंदन) होता है।

श्रीखंडा—संज्ञा पुं० दे० "श्रीखंड" (४)।

श्रीगंध—संज्ञा पुं० [सं०] सफेद चंदन। संदल।

श्रीगदित—संज्ञा पुं० [सं०] उपरूपक के अठारह भेदों में से एक भेद। इसकी रचना प्रायः किसी पौराणिक घटना के आधार पर होती है। इसका दूसरा नाम श्रीरासिका भी है।

श्रीगर्भ—संज्ञा पुं० [सं०] (१) विष्णु। (२) खड्ग। तलवार।

श्रीगुरु—संज्ञा पुं० [सं०] वैश्यों की एक जाति विशेष।

श्रीगेह—संज्ञा पुं० [सं०] कमल। पद्म।

श्रीगौड—संज्ञा पुं० [?] वैश्यों की एक जाति विशेष।

श्रीग्रह—संज्ञा पुं० [सं०] वह स्थान जहाँ चिड़ियों के पानी पीने का प्रबंध हो।

श्रीघन—संज्ञा पुं० [सं०] (१) दही। दधि। (२) बुद्धदेव का एक नाम। (३) बौद्ध यति या संन्यासी।

श्रीचंदन—संज्ञा पुं० [सं०] सफेद चंदन। संदल।

श्रीचक्र—संज्ञा पुं० [सं०] तांत्रिकों के अनुसार एक प्रकार का चक्र या यंत्र जिसका व्यवहार देवी के पूजन में, विशेषतः त्रिपुरा-सुंदरी देवी के पूजन में होता है।

श्रीचमरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का हिरन।

श्रीज—संज्ञा पुं० [सं०] (१) कामदेव। मदन। (२) शांब का एक नाम।

श्रीटंक—संज्ञा पुं० [सं०] संगीत में एक प्रकार का राग, जिसमें सब कोमल स्वर लगते हैं।

श्रीणा—संज्ञा स्त्री० [सं०] रात। रात्रि।

श्रीतरु—संज्ञा पुं० [सं०] सर्ज्ज वृक्ष। साल का पेड़। शाल।

श्रीतल—संज्ञा पुं० [सं०] विष्णुपुराण के अनुसार एक नरक का नाम।

श्रीताल—संज्ञा पुं० [सं०] ताड़ या ताल के वृक्ष से मिलता जुलता एक प्रकार का वृक्ष जिसे हिंताल भी कहते हैं। यह मलाया देश में उत्पन्न होता है। वैद्यक के अनुसार यह मधुर, कुछ कुछ खट्टा, कफकारक, किंचित् वायु को कुपित करनेवाला तथा पित्त का नाश करनेवाला माना गया है।

पर्य्या०—मृदुताल। लक्ष्मीताल। मृदुच्छद। विशालपत्र। मसीलिप्तदल। लिखनोपयोग[illegible]।

श्रीतीर्थ—संज्ञा पुं० [सं०] महाभारत के अनुसार एक प्राचीन तीर्थ का नाम।

श्रीतेज—संज्ञा पुं० [सं० श्रीतेजस्] ललितविस्तर के अनुसार एक बुद्ध का नाम।

श्रीद—संज्ञा पुं० [सं०] धन देनेवाले, कुबेर।

वि० श्री बढ़ानेवाला। शोभा बढ़ानेवाला।

श्रीदयित—संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु का एक नाम।

श्रीदाम—संज्ञा पुं० [सं० श्रीदामन्] श्रीकृष्ण के एक सखा का नाम, जिन्हें [illegible] कहते हैं। उ०—कैसि

देत सखा सब भए श्रीदामा चोर । सूरदास हँसि कहति यशोदा जीत्यो है सुत मोर ।—सूर ।
श्रीदेवा–संज्ञा स्त्री० [सं०] वसुदेव की पत्नी सुदेवा का एक नाम ।
श्रीधन्वी–संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्राचीन तीर्थ का नाम ।
श्रीधर–संज्ञा पुं० [सं०] (१) विष्णु का एक नाम । उ०—धनि धनि नंद धन्य निशिवासर धनि यशुमति जिन श्रीधर जाए ।—सूर । (२) जैनियों के चौबीस तीर्थंकरों में से सातवें तीर्थंकर का नाम ।
वि० तेजस्वी । तेजवान् ।
श्रीधाम–संज्ञा पुं० [सं०] (१) लक्ष्मी का निवास-स्थान । (२) पद्म ।
श्रीनंदन–संज्ञा पुं० [सं०] कामदेव ।
श्रीनाथ–संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु का एक नाम ।
श्रीनिकेत–संज्ञा पुं० [सं०] (१) लक्ष्मी का निवास-स्थान, वैकुंठ । उ०—श्रीनिकेत समेत सब सुख रूप प्रगट निधान । अधर सुधा पिआइ बिछुरे पठे दीनो ज्ञान ।—सूर । (२) गंधा बिरोजा । सरल-निर्यास । (३) लाल कमल । (४) स्वर्ण । सोना ।
श्रीनिकेतन–संज्ञा पुं० [सं०] (१) विष्णु । (२) लक्ष्मी का निवासस्थान, वैकुंठ । (३) गंधा बिरोजा । सरल निर्यास ।
श्रीनितंबा–संज्ञा स्त्री० [सं० श्रीनितम्बा] राधा का एक नाम ।
श्रीनिधि–संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु का एक नाम ।
श्रीनिवास–संज्ञा पुं० [सं०] (१) विष्णु का एक नाम । (२) श्री या लक्ष्मी का निवासस्थान, वैकुंठ ।
श्रीनिवासक–संज्ञा पुं० [सं०] कटसरैया ।
श्रीपंचमी–संज्ञा स्त्री० [सं०] माघ शुक्ल पंचमी । वसंत पंचमी । उ०—दई दई कर सुरति गँवाई । सिरीपंचमी पूजी आई ।—जायसी ।
श्रीपत–संज्ञा पुं० [सं० श्रीपति] विष्णु । (डिं०)
श्रीपति–संज्ञा पुं० [सं०] (१) विष्णु । नारायण । हरि । उ०—जाके सखा श्याम सुंदर से श्रीपति सकल सुखन के दाता ।—सूर । (२) रामचंद्र । उ०—बार बार श्रीपति कहैं केवट नहिं मानै ।—सूर । (३) कृष्ण । उ०—सो हम कबहु न बसारैं पार्थ जो श्रीपति तोहि जिनावैं ।—(४) कुबेर । (५) पृथ्वीपति । नृप । राजा ।
श्रीपथ–संज्ञा पुं० [सं०] बड़ी और चौड़ी सड़क । राजमार्ग । राजपथ ।
श्रीपदी–संज्ञा स्त्री० [सं०] वार्षिकी पुष्प-वृक्ष । मल्लिका । बेला ।
श्रीपद्म–संज्ञा पुं० [सं०] श्रीकृष्ण का एक नाम ।
श्रीपर्ण–संज्ञा पुं० [सं०] (१) कमल । पद्म । (२) अग्निमंथ वृक्ष । अरनी । गनियारी ।
श्रीपर्णिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) कटफल । कायफल । (२) गंभारी । (३) गनियारी । अरनी । (४) पृश्निपर्णी । पिठवन । (५) सेमल का पेड़ । शाल्मलि ।
श्रीपर्णी–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) कायफर । कायफल । (२) गंभारी । (३) गनियारी । अरनी । (४) पृश्निपर्णी । पिठवन । (५) सेमल का पेड़ । शाल्मलि ।
श्रीपाद–संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जो चरण पूजने योग्य हो । पूज्य । श्रेष्ठ । (२) धनवान् । संपन्न ।
श्रीपिष्ट–संज्ञा पुं० [सं०] सरल वृक्ष का रस । गंधा बिरोजा ।
श्रीपुत्र–संज्ञा पुं० [सं०] (१) अश्व । घोड़ा । (२) कामदेव ।
श्रीपुर–संज्ञा पुं० [सं०] दक्षिण का मणिद्वीप नामक स्थान, जो वाममार्गी शाक्तों का प्रधान स्थान है । यहीं ये लोग मुक्ति का सुख अनुभव करते हैं ।
श्रीपुष्प–संज्ञा पुं० [सं०] (१) लौंग । लवंग । (२) पद्मकाठ । पदुमाख । (३) पुंडेरी । (४) सफेद कमल ।
श्रीप्रद–संज्ञा पुं० [सं०] वह जो श्री या सौभाग्य प्रदान करता हो ।
श्रीप्रदा–संज्ञा स्त्री० [सं०] राधा का एक नाम ।
श्रीप्रसून–संज्ञा स्त्री० [सं०] लौंग । लवंग ।
श्रीप्रिय–संज्ञा पुं० [सं०] हरताल ।
श्रीफल–संज्ञा पुं० [सं०] (१) बेल । (२) नारियल । उ०—(क) श्रीफल मधुर चिरौंजी आनी । सफरी चिरभा अरु नव वाणी ।—सूर । (ख) हिया थार कुच कनक कचूरा । जानहुँ दोउ श्रीफल जूरा ।—जायसी । (३) खिरनी । राजादनी वृक्ष । (४) आँवला । (५) कच्ची चिकनी सुपारी ।
श्रीफला–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) नीली । नील का पौधा । (२) करेली । क्षुद्र कारवेली । (३) आँवला ।
श्रीफलिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) क्षुद्र कारवेली । करेली । (२) महानीली का पौधा ।
श्रीफली–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) आँवला । (२) नील । (३) बड़ी मालकँगनी । महा ज्योतिष्मती लता ।
श्रीबंधु–संज्ञा पुं० [सं०] अमृत ।
श्रीबीज–संज्ञा पुं० [सं०] ताड़ । ताल-वृक्ष ।
श्रीमत्स–संज्ञा पुं० [सं०] मधुपर्क जो देवताओं के सामने रखा जाता या दान किया जाता है । वि० दे० "मधुपर्क" (१) ।
श्रीभद्र–संज्ञा पुं० [सं०] मुस्तक । मोथा ।
श्रीभद्रा–संज्ञा स्त्री० [सं०] भद्रमोथा । भद्रमुस्तक ।
श्रीमान–संज्ञा पुं० [सं०] भागवत के अनुसार श्रीकृष्ण के एक पुत्र का नाम, जिनका जन्म सत्यभामा के गर्भ से हुआ था ।
श्रीभ्राता–संज्ञा पुं० [सं० श्रीभ्रातृ] अश्व, चंद्र, अमृत आदि चौदह रत्न जो समुद्र से उत्पन्न होने के कारण लक्ष्मी या श्री के भाई कहे जाते हैं ।
श्रीमंगल–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन तीर्थ का नाम ।
श्रीमंजरी–संज्ञा स्त्री० [सं०] तुलसी । सुरसा ।

श्रीमंजु–संज्ञा पुं० [सं०] एक पर्वत का नाम ।

श्रीमंडप–संज्ञा पुं० [सं०] एक पर्वत का नाम ।

श्रीमंत–संज्ञा पुं० [सं० सीमंत] (१) एक प्रकार का शिरोभूषण । उ०—शीश सचिक्कन केश हो बिच श्रीमंत सँवारि ।—सूर । (२) स्त्रियों के सिर के बीच की माँग ।
वि० श्रीमान् । धनवान् । धनाढ्य । धनी ।

श्रीमत्–संज्ञा पुं० [सं०] (१) तिल पुष्प । (२) पीपल । अश्वत्थ वृक्ष । (३) विष्णु का एक नाम । (४) शिव का एक नाम । (५) कुबेर । (६) ऋषभक नामक अष्टवर्गीय ओषधि । (७) हल्दी का पौधा ।
वि० (१) जिसके पास बहुत अधिक धन हो । धनवान् । अमीर । (२) जिसमें श्री या शोभा हो । (३) सुंदर । खूबसूरत ।

श्रीमती–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) "श्रीमान्" का स्त्री लिंग वाचक शब्द । स्त्रियों के लिये आदरसूचक शब्द । जैसे,—श्रीमती सुभद्रा देवी । (२) लक्ष्मी । (३) राधा का एक नाम । (४) मुंडिका । मुंडी ।

श्रीमत्कुंभ– संज्ञा पुं० [सं०] सोना ।

श्रीमत्ता–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) "श्रीमत्" या "श्रीमान्" होने का भाव या धर्म्म । (२) संपन्नता । अमीरी ।

श्रीमय–संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु ।

श्रीमलापहा–संज्ञा स्त्री० [सं०] तमाखू । तमाकू ।

श्रीमस्तक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) लहसुन । (२) लाल आलू ।

श्रीमहिमा–संज्ञा पुं० [सं० श्रीमहिमन्] शिव । महादेव ।

श्रीमान्–संज्ञा पुं० [सं० श्रीमत्] (१) आदरसूचक शब्द जो नाम के आदि में रखा जाता है । श्रीयुत । शोभावान् । उ०—जय जय जय श्रीमान महाप्रभु जय जय जगत अधार ।—सूर । (२) लक्ष्मीवान् । धनवान् । अमीर । (३) सुंदर ।
संज्ञा पुं० (१) तिल पुष्पी । (२) पीपल । अश्वत्थ वृक्ष । (३) हल्दी । हरिद्रा । (४) ऋषभक नामक अष्टवर्गीय ओषधि । (५) विष्णु । (६) शिव । (७) कुबेर ।

श्रीमाल–संज्ञा पुं० [देश०] वैश्यों की एक जाति ।
संज्ञा स्त्री० [सं० श्री + माला] गले में पहनने का एक आभूषण । कंठ श्री । उ०—चिबुक तर कंठ श्रीमाल मोतीन छवि कुच उचनि हेम गिरि अतिहि लाजै ।—सूर ।

श्रीमुख–संज्ञा पुं० [सं०] (१) शोभित या सुंदर मुख । उ०—आगम कल्प रमण तुव ह्वै है श्रीमुख कही बखान ।—सूर । (२) बृहस्पति के साठ संवत्सरों में से सातवाँ संवत्सर । (३) विष्णु का मुख, वेद ।

श्रीमूर्त्ति–संज्ञा स्त्री० [सं०] विष्णु की मूर्त्ति ।

श्रीयुक्त–वि० [सं०] (१) जिसमें श्री या शोभा हो । (२) एक आदरसूचक विशेषण, जो बड़े आदमियों के नाम के साथ लगाया जाता है । जैसे,—श्रीयुक्त केशवचंद्र सेन ।

श्रीयुत–वि० दे० "श्रीयुक्त" ।

श्रीरंग–संज्ञा पुं० [सं०] (१) विष्णु । लक्ष्मीपति । उ०—काके होहिं जो नहिं गोकुल के सूरज प्रभु श्रीरंग ।—सूर । (२) ताल के साठ मुख्य भेदों में से एक भेद ।—संगीत दामोदर ।

श्रीरंगपट्टन–संज्ञा पुं० [सं०] दक्षिण में मैसूर राज्य के अंतर्गत एक प्रसिद्ध तीर्थ का नाम । पहले मैसूर राज्य की यहीं राजधानी थी । यहाँ "श्रीरंग स्वामी" नाम की एक प्रसिद्ध विष्णुमूर्त्ति है, जिसके कारण इसका यह नाम पड़ा है ।

श्रीरमण–संज्ञा पु० [सं०] (१) एक संकर राग जो शंकराभरण और मालश्री को मिलाकर बनाया गया है । (संगीत) (२) विष्णु ।

श्रीरवनॐ–संज्ञा संज्ञा [सं० श्रीरमण] लक्ष्मी में रमण करनेवाले, विष्णु ।

श्रीरस–संज्ञा पु० [सं०] गंधा बिरोजा । श्रीवेष्ट ।

श्रीराग–संज्ञा पुं० [सं०] संगीत में छः रागों में से तीसरा राग, जो संपूर्ण जाति का है और पृथ्वी की नाभि से उत्पन्न माना गया है । हनुमत के मत से यह पाँचवाँ राग है और इसका स्वर ग्राम इस प्रकार है—सा रे ग म प ध नि सा अथवा नि ग म प ध नि सा रे । यह हेमंत ऋतु में तीसरे पहर या संध्या समय गाया जाता है । सोमेश्वर के मत से मालवी, त्रिवेणी, गौरी, केदारा, मधुमाधवी और पहाड़ी ये छः इसकी भार्य्याएँ या रागिनियाँ हैं; और संगीत दामोदर में गांधारी, देवगांधारी, मालवश्री, सावी और रामकीरी ये पाँच रागिनियाँ कही गई हैं । सिंधु, मालव, गौड़, गुणसार, कुंभ, गंभीर, बिहाग और कल्याण ये आठ इसके पुत्र कहे गए हैं । उ०—पँचयें सिरीराग भल कियो । छठये दीपक उठा बर दियो ।—जायसी ।

श्रीरूपा–संज्ञा स्त्री० [सं०] राधा ।

श्रीलता–संज्ञा स्त्री० [सं०] बड़ी मालकँगनी । ज्योतिष्मती लता ।

श्रीवंत–वि० [सं० श्रीमत] ऐश्वर्य्यवान । संपत्तिशाली ।

श्रीवत्स–संज्ञा पुं० [सं०] (१) विष्णु । (२) विष्णु के वक्षस्थल पर अंगुष्ठ प्रमाण श्वेत बालों का दक्षिणावर्त्त भौंरी का सा चिह्न, जो भृगु के चरण-प्रहार का चिह्न माना जाता है । उ०—घन के धातु चित्र तनु किए । श्रीवत्स चिह्न राजत भंगि दिए ।—सूर । (२) जैनों के अनुसार अर्हतों का एक चिह्न ।

श्रीवराह–संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु का वराह अवतार ।

श्रीवर्द्धन–संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक राग का नाम । (२) शिव का एक नाम ।

श्रीवल्ली–संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की कँटीली लता या फैलनेवाली झाड़ी, जिसका व्यवहार औषध में होता है ।

विशेष—यह लता कुछ दिनों तक यों ही खड़ी रहती है, पीछे बढ़ने पर किसी वृक्ष आदि का आश्रय लेती है। इसके डंठल और टहनियाँ भूरे रंग की होती हैं तथा उन पर टेढ़े काँटे होते हैं। यह फागुन मे फूलने लगती है और आषाढ़ तक फलती है। इसमें छोटी छोटी फलियाँ लगती हैं। वैद्यक में ये फलियाँ हलकी, रेचक और वमनकारक कही गई हैं। इस पौधे की फली, पत्ती और छाल तीनों औषधोपयोगी हैं।

पर्या०—शिववल्ली। कंटवल्ली। अम्ला। कटुफला। दुरारोहा।

श्रीवह–संज्ञा पुं० [सं०] एक नाग का नाम।

श्रीवाटी–संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का पान। नागवल्ली भेद।

श्रीवारक–संज्ञा पुं० [सं०] सितावर शाक। शिरियारी।

श्रीवास, श्रीवासक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) गंधाविरोजा। सरल-निर्यास। (२) तारपीन का तेल। (३) गूगल। (४) देवदारु। (५) राल। धूप। करायल। (६) चंदन। संदल। (७) कमल। (८) विष्णु। (९) शिव।

श्रीवासच्छद–संज्ञा पुं० [सं०] (१) धूप का पेड़। सरल वृक्ष। (२) चंदन। (३) पदुमाख। पद्मकाष्ठ।

श्रीवाससार–संज्ञा पुं० [सं०] (१) गंधाविरोजा। (२) तारपीन का तेल।

श्रीवासा–संज्ञा पुं० [सं० श्रीवास] गंधाविरोजा। सरल द्रव।

श्रीवृक्ष–संज्ञा पुं० [सं०] (१) अश्वत्थ वृक्ष। पीपल। (२) बिल्व वृक्ष।

श्रीवृक्षक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) घोड़े की छाती पर की एक भँवरी जो शुभ मानी जाती है। (२) एक व्रत का नाम।

श्रीवृद्धि–संज्ञा स्त्री० [सं०] बोधिद्रुम पर की एक देवी। (ललित-विस्तर)

श्रीवेष्ट, श्रीवेष्टक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) सरल द्रव। गंधाविरोजा। (२) तारपीन का तेल। सरल वृक्ष।

श्रीवैष्णव–संज्ञा पुं० [सं०] रामानुज का अनुयायी वैष्णव। वैष्णवों का एक संप्रदाय।

श्रीश–संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु।

श्रीसंज्ञ–संज्ञा पुं० [सं०] लौंग। लवंग।

श्रीसंपदा–संज्ञा स्त्री० [सं०] ऋद्धि नामक अष्टवर्गीय ओषधि।

श्रीसंभूता–संज्ञा स्त्री० [सं०] ज्योतिष में कर्म मास की छठी रात्रि।

श्रीसदा–संज्ञा स्त्री० [सं०] रजनी। निशि। रात्रि। उ०—निसि श्रीसदा विभावरी, रात्रि त्रियामा सोय।—अनेकार्थ।

विशेष—इस अर्थ में यह शब्द संस्कृत कोशों में नहीं मिलता।

श्रीसमाध–संज्ञा पुं० [सं०] एक राग जो श्री, शुद्ध, मालश्री, भीम पलाश्री और टंक को मिलाकर बनाया गया है।

श्रीसहोदर–संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा। (चंद्रमा और लक्ष्मी दोनों समुद्र से उत्पन्न हैं।)

श्रीहट्ट–संज्ञा पुं० [सं०] एक नगर का नाम। सिलहट।

श्रीहत–वि० [सं०] (१) शोभा-रहित। (२) निस्तेज। निष्प्रभ। प्रभाहीन। उ०—नमित सीस सोचहिं सलज्ज सब श्रीहत भए सरीर।—तुलसी।

श्रीहर्ष–संज्ञा पुं० [सं०] (१) नैषध काव्य के रचयिता संस्कृत के प्रसिद्ध पंडित और कवि जो कान्यकुब्ज के गहरवार राजा के आश्रित थे। (२) रत्नावली, नागानंद और प्रियदर्शिका नाटकों के रचयिता जो संभवतः कान्यकुब्ज के प्रसिद्ध सम्राट् हर्षवर्द्धन थे।

श्रीहस्तिनी–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) हस्तिशुंडी। ना[illegible]। (२) सूर्यमुखी का पौधा।

श्रुग्घ्न–संज्ञा पुं० [सं०] विकंकत। कंटाई। कंज वृक्ष।

श्रुघ्निका–संज्ञा स्त्री० [सं०] सज्जीखार।

श्रुतंधर–संज्ञा पुं० [सं०] वास्तुविद्या में एक प्रकार का मंडप।

श्रुत–वि० [सं०] (१) सुना हुआ। जो श्रवण-गोचर हुआ हो। (२) जिसे परंपरा से सुनते आते हों। (३) ज्ञात। प्रसिद्ध। ख्यात।

श्रुतकीर्ति–वि० [सं०] जिसकी कीर्ति प्रसिद्ध हो।

संज्ञा पुं० अर्जुन के एक पुत्र का नाम।

संज्ञा स्त्री० राजा जनक के भाई कुशध्वज की कन्या, जो शत्रुघ्न को ब्याही थी।

श्रुतकेवली–संज्ञा पुं० [सं० श्रुतकेवलिन्] एक प्रकार के अर्हत जो छः कहे गए हैं। (जैन)

श्रुतदेवी–संज्ञा स्त्री० [सं०] सरस्वती।

श्रुतधर–संज्ञा पुं० [सं०] (१) कान। (२) शाल्मलि द्वीप के ब्राह्मणों की संज्ञा। (पुराण)

श्रुतनिगदी–वि० [सं० श्रुतनिगदिन्] जो एक बार सुने हुए पद्य आदि को ज्यों का त्यों कह सके।

श्रुतपूर्व–वि० [सं०] जो पहले सुना गया हो। जाना बूझा।

श्रुतशील–वि० [सं०] विद्वान् और सदाचारी।

संज्ञा पुं० विद्या और सदाचार। (मनु०)

श्रुतान्वित–वि० [सं०] शास्त्रज्ञ। शास्त्रवेत्ता।

श्रुतायु–संज्ञा पुं० [सं०] राम के पुत्र कुश के वंशज एक सूर्यवंशी राजा।

श्रु[illegible]–संज्ञा पुं० [सं०] एक राजा, जिसके पिता वरुण ने उसे [illegible]ऐसी गदा प्रदान की थी कि जो युद्धकर्ता पर फेंकने से उसका अवश्य नाश कर देती थी, पर युद्ध न करनेवाले के ऊपर चलाने से यह लौटकर चलानेवाले ही के प्राण ले लेती थी।

श्रुति–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१)। श्रवण करने की क्रिया या भाव। सुनना (२) सुनने की इंद्रिय। श्रवण। कान। (३) वह जो सुना जाय। सुनी हुई बात। (४) शब्द। ध्वनि। आवाज़। (५) खबर। शुहरत। किंवदंती। (६) कथन। बात। (७) वह पवित्र ज्ञान जो सृष्टि के आदि में ब्रह्मा या

कुछ महर्षियों द्वारा सुना गया और जिसे परंपरा से ऋषि सुनते आए। वेद। निगम।

विशेष—'श्रुति' के अंतर्गत पहले मंत्र और ब्राह्मण-भाग ही लिये जाते थे, पर पीछे उपनिषद् भी मानी गईं।

(८) चार की संख्या (वेद चार होने से)। (९) संगीत में किसी सप्तक के बाईस भागों में से एक भाग अथवा किसी स्वर का एक अंश। स्वर का आरंभ और अंत इसी से होता है। षड्ज में चार, ऋषभ में तीन, गांधार में दो, मध्यम में चार, पंचम में चार, धैवत में तीन और निषाद में दो श्रुतियाँ होती हैं। (१०) अनुप्रास का एक भेद। (११) त्रिभुज के समकोण के सामने की भुजा। (१२) नाम। अभिधान। (१३) विद्वत्ता। (१४) विद्या। (१५) अत्रि ऋषि की कन्या, जो कर्दम की पत्नी थीं।

श्रुतिकट-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सर्प। साँप। (२) तप।

श्रुतिकटु-संज्ञा पुं० [सं०] काव्य-रचना में एक दोष। कठोर और कर्कश वर्णों का व्यवहार। दुःश्रवत्व।

विशेष—द्वित्व वर्ण, टवर्ग, मूर्द्धन्य वर्ण कठोर माने गए हैं। श्रुतिकटु नित्य दोष नहीं है, अनित्य दोष है क्योंकि यह सर्वत्र दोष नहीं होता, केवल शृंगार, करुण आदि कोमल रसों में कठोर वर्ण दोषाध्यायक होते हैं, वीर, रौद्र आदि में नहीं।

श्रुतिकीर्त्ति-संज्ञा स्त्री० दे० "श्रुतकीर्त्ति"।

श्रुतिजीविका-संज्ञा स्त्री० [सं०] स्मृति। धर्म्मशास्त्र।

श्रुतिदुष्ट-संज्ञा पुं० [सं०] श्रुतिकटु दोष। दुःश्रवत्व।

श्रुतिपथ-संज्ञा पुं० [सं०] (१) श्रवण मार्ग। श्रवणेंद्रिय।

मुहा०—श्रुतिपथ में आना = सुनाई पड़ना।

(२) वेदविहित मार्ग। सन्मार्ग।

श्रुतिमाल-संज्ञा पुं० [सं०] (चार सिरवाले) ब्रह्मा।

श्रुतिमुख-संज्ञा पुं० [सं०] (चार मुखवाले) ब्रह्मा।

वि० वेद ही जिसका मुख है।

श्रुतिवर्जित-वि० [सं०] (१) बधिर। बहिरा। (२) वेद के अभ्यास से रहित।

श्रुतिविंद-संज्ञा स्त्री० [सं०] कुश द्वीप की एक नदी। [illegible]

श्रुतिवेध-संज्ञा पुं० [सं०] कनछेदन। कर्णवेध संस्कार।

श्रुतिस्फोटा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) कनफोड़ा। (२) कर्णस्फोटा लता।

श्रुतिहारी-वि० [सं० श्रुतिहारिन्] कानों को अच्छा लगनेवाला। सुनने में मधुर।

श्रुत्य-वि० [सं०] (१) सुना जाने योग्य। (२) प्रसिद्ध। (३) प्रशस्त।

श्रुत्यनुप्रास-संज्ञा पुं० [सं०] अनुप्रास के पाँच भेदों में से एक। वह अनुप्रास जिसमें एक ही स्थान से उच्चरित होनेवाले व्यंजन दो या अधिक बार आवें।

विशेष—कंठ, तालु, मूर्द्धा, दंत आदि उच्चारण के स्थान हैं। अतः भिन्न वर्ण होने पर भी यदि कई वर्ण एक ही उच्चारण-स्थान के हैं, तो यह अनुप्रास होगा।

श्रुव-संज्ञा पुं० दे० "स्रुव"।

श्रुषा-संज्ञा स्त्री० [सं०] कासमर्द। कसौंदा।

श्रेटी-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का पहाड़ा। मेढ़ी।

श्रेणि-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) बहुत सी वस्तुओं का ऐसा समूह जो उत्तरोत्तर रेखा के रूप में कुछ दूर तक चला गया हो। पंक्ति। पाँती। क़तार (२) एक के उपरांत दूसरा ऐसा लगातार क्रम। शृंखला। परंपरा। सिलसिला।

यौ०—श्रेणीबद्ध।

(३) दल। समूह। (४) सेना। फौज। (५) समान व्यवसायियों का दल। एक ही कारबार करनेवालों की मंडली। कंपनी। (६) पानी भरने का डोल। (७) सिकड़ी। जंजीर। (८) सीढ़ी। ज़ीना। (९) किसी वस्तु का अगला या ऊपरी भाग।

श्रेणिक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) अगला दाँत। राजदंत। (२) मगध देश के राजा बिंबसार का एक नाम।

श्रेणिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) डेरा। खेमा। तंबू। (२) एक छंद का नाम। (३) एक तृण।

श्रेणी-संज्ञा स्त्री० दे० "श्रेणि"।

श्रेणीधर्म्म-संज्ञा पुं० [सं०] व्यवसायियों की मंडली या पंचायत की रीति या नियम।

श्रेणीबद्ध-वि० [सं०] पंक्ति के रूप में स्थित। क़तार बाँधे हुए।

श्रेय-वि० [सं० श्रेयस्] [स्त्री० श्रेयसी] (१) अधिक अच्छा। बेहतर। (२) श्रेष्ठ। उत्तम। बहुत अच्छा। प्रशस्त। (३) मंगलदायक। शुभ। कल्याणकारी। (४) यश देनेवाला। कीर्त्तिकर।

संज्ञा पुं० (१) अच्छापन। (२) भलाई। बेहतरी। कल्याण। मंगल। (३) धर्म। पुण्य। सदाचार। (४) एक साम का नाम। (५) ज्योतिष में दूसरा मुहूर्त। (६) वर्तमान अवसर्पिणी के ग्यारहवें अर्हत्। (जैन)

श्रेयसी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) हरीतकी। हड़ें। (२) पाढ़ा। पाठी। (३) गज पीपल। (४) रास्ना। (५) प्रियंगु।

श्रेयस्कर-वि० [सं०] कल्याण करनेवाला। शुभदायक।

श्रेयांसनाथ-संज्ञा पुं० [सं०] वर्तमान अवसर्पिणी के ग्यारहवें अर्हत् या तीर्थंकर। (जैन)

श्रेष्ठ-वि० [सं०] [स्त्री० श्रेष्ठा] (१) सर्वोत्तम। बढ़कर। बहुत अच्छा। (२) मुख्य। प्रधान। प्रथम। (३) पूज्य। बड़ा। (४) वृद्ध। ज्येष्ठ। ([illegible] ।

संज्ञा पुं० (१) कुबेर। (२) विष्णु। (३) द्विज। ब्राह्मण।

श्रेष्ठकाष्ठ–संज्ञा पुं० [सं०] (१) सागौन। सागवन का पेड़। (२) घर में लगा प्रधान स्तंभ।

श्रेष्ठता–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) उत्तमता। (२) प्रधानता। गुरुता। बड़ाई। बड़प्पन।

श्रेष्ठा–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) बहुत उत्तम स्त्री। (२) स्थल कमल। (३) मेदा नामक अष्टवर्गीय ओषधि। (४) त्रिफला।

श्रेष्ठी–संज्ञा पुं० [सं०] व्यापारियों या वणिकों का मुखिया। प्रतिष्ठित व्यवसायी। महाजन। सेठ।

श्रोण–वि० [सं०] पंगु। खंज।

‡ संज्ञा पुं० दे० "शोण"। उ०—श्रोण की सरिता दुरंत अनंत रूप सुनंत।—केशव।

श्रोणा–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) काँजी। भात का माँड़। (२) श्रवण नक्षत्र।

श्रोणि–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) कटि। कमर। (२) नितंब। चूतड़। (३) यज्ञ की वेदी का किनारा। (४) पथ। मार्ग।

श्रोणिका–संज्ञा स्त्री० दे० "श्रोणि"।

श्रोणित‡–संज्ञा पुं० दे० "शोणित"।

श्रोणिसूत्र–संज्ञा पुं० [सं०] करधनी। मेखला।

श्रोणी–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) कटि। कमर। (२) चूतड़। नितंब। (३) मध्य भाग। कटि प्रदेश।

श्रोतः आपत्ति–संज्ञा स्त्री० [सं०] बौद्ध शास्त्र के अनुसार मुक्ति या निर्वाणसाधना की प्रथम अवस्था जिसमें बंधन ढीले होने लगते हैं।

विशेष—बौद्ध-शास्त्र में पाँच प्रतिबंध माने गए हैं—आलस्य, हिंसा, काम, विचिकित्सा और मोह। श्रोतःआपन्न को ये पाँचों बंधन छोड़ते तो नहीं पर क्रमशः ढीले होते जाते हैं। इस अवस्था को प्राप्त साधक को केवल सात बार और जन्म लेना पड़ता है। इस अवस्था के उपरांत 'सकृदागामी' की अवस्था है जिसमें प्रथम तीन बंधन सर्वथा छूट जाते हैं और एक ही जन्म और लेना रह जाता है।

श्रोतःआपन्न–वि० [सं०] बौद्ध-शास्त्र के अनुसार मुक्ति या निर्वाण की साधना में प्रथम अवस्था को प्राप्त जिसमें क्रमशः बंधन ढीले होने लगते हैं।

श्रोत–संज्ञा पुं० [सं० श्रोतस्] श्रवणेंद्रिय। कान।

श्रोतव्य–वि० [सं०] (१) सुनने योग्य। श्रवणीय। (२) जिसे सुनना हो।

श्रोता–संज्ञा पुं० [सं० श्रोतृ] (१) सुननेवाला। श्रवणकर्त्ता। (२) कथा या उपदेश सुननेवाला।

श्रोत्र–संज्ञा पुं० [सं०] (१) श्रवणेंद्रिय। कान। (२) वेदज्ञान।

श्रोत्रपर्णी–संज्ञा स्त्री० [सं०] एक पौधा जो औषध के काम में आता है।

श्रोत्रिय–संज्ञा पुं० [सं०] (१) वेद वेदांग में पारंगत। वेदज्ञ। (२) ब्राह्मणों का एक वर्त्तमान भेद।

श्रोत्री–संज्ञा पुं० दे० "श्रोत्रिय"।

श्रोन‡–संज्ञा पुं० दे० "शोण"। उ०—छिप् नृकपाल नृदेह कराल। फरे नर मुंडनि की उर माल। पिये जर श्रोन मिल्यो मदिरा सों। कपालि कु देखिये भीम प्रभा सों।—केशव।

श्रोनित‡–संज्ञा पुं० दे० "शोणित"। उ०—श्रोनित स्रवत लसै तनु कैसे। परम प्रफुलित किंसुक जैसे।—मधुसूदनदास।

श्रौत–वि० [सं०] (१) श्रवण संबंधी। (२) श्रुति संबंधी। (३) श्रुतिविहित। वेद-प्रतिपादित। जो वेद के अनुसार हो। (४) यज्ञ संबंधी। जैसे,—श्रौत-कर्म, श्रौत-सूत्र। (५) तीनों प्रकार की अग्नि।

श्रौतश्रव–संज्ञा पुं० [सं०] शिशुपाल का एक नाम।

श्रौतसूत्र–संज्ञा पुं० [सं०] यज्ञादि के विधानवाले सूत्र। कल्प ग्रंथ का वह अंश जिसमें पौर्णमास्येष्टि से लेकर अश्वमेध पर्यंत यज्ञों का विधान है।

विशेष—दो प्रकार के वैदिक सूत्रग्रंथ मिलते हैं—श्रौतसूत्र और गृह्यसूत्र। श्रौत-सूत्रों में यज्ञों का विधान है। सूत्रकार कई हैं। जैसे,—आश्वलायन, आपस्तंब, कात्यायन, द्राह्यायण।

श्रौतहोम–संज्ञा पुं० [सं०] सामवेद का एक परिशिष्ट।

श्रौत्रकर्म–संज्ञा पुं० [सं०] वेद-विहित यागादि कर्म। यज्ञ।

श्रौत्रजन्म–संज्ञा पुं० [सं० श्रौत्रजन्मन्] द्विजों का उपनय संस्कार जिसमें वे वेद के अधिकारी होकर द्वितीय जन्म प्राप्त करते हैं।

श्रौन‡–संज्ञा पुं० दे० "श्रवण"। उ०—पीतम श्रौन समीर सरा बजी यों कहिकै पहिले पहिरायो।—मतिराम।

श्याह्न–संज्ञा पुं० [सं०] (१) कमल। पद्म। (२) गंधाविरोजा। सरल द्रव्य।

श्लथ–वि० [सं०] (१) शिथिल। ढीला। (२) मंद। धीमा। (३) दुर्बल। अशक्त। (४) न बँधा हुआ। छूटा हुआ।

श्लथबंधन–वि० [सं०] जिसके बंधन ढीले हो गए हों।

श्लाघन–संज्ञा पुं० [सं०] [वि० श्लाघित, श्लाघी, श्लाघनीय, श्लाघ्य] अपनी प्रशंसा करना। डींग हाँकना।

वि० अपनी प्रशंसा करनेवाला।

श्लाघनीय–वि० [सं०] (१) प्रशंसा के योग्य। प्रशंसनीय। तारीफ़ के लायक। (२) उत्तम। श्रेष्ठ।

श्लाघा–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) प्रशंसा। तारीफ़। (२) स्तुति। बड़ाई। (३) खुशामद। चापलूसी। (४) इच्छा। चाह। उ०—अच्छा तो ज्ञात हुआ कि कदाचित् तुम्हारी श्लाघा है कि मैं तुमको इनसे भी नीचतर समझूँ।—अयोध्यासिंह।

(५) आज्ञा पालन।

श्लाघित–वि० [सं०] (१) जिसकी तारीफ़ हुई हो। प्रशंसित। (२) अच्छा। उत्तम। श्रेष्ठ।

श्लाघ्य–वि० [सं०] (१) सराहने योग्य। प्रशंसनीय। तारीफ़ के लायक। (२) श्रेष्ठ। अच्छा।

श्लिषा–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) मिलना। जुड़ना। संयुक्त होना। (२) परिरंभण। आलिंगन।

श्लिष्ट–वि० [सं०] (१) मिला हुआ। एक में जुड़ा हुआ। सटा हुआ। लगा हुआ। (२) अच्छी तरह जमा हुआ। चिपका हुआ। खूब बैठा हुआ। (वस्त्र आदि) (३) आलिंगित। भेंटा हुआ। (४) (साहित्य में) श्लेषयुक्त। जिसके दोहरे अर्थ हों।

श्लिष्टि–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) जोड़। मिलान। लगाव। (२) आलिंगन। परिरंभण।

संज्ञा पुं० ध्रुव के एक पुत्र का नाम।

श्लीपद–संज्ञा पुं० [सं०] टाँग फूलने का रोग। फ़ीलपाव।

विशेष—इस रोग के प्रथम पेड़ू, अंडकोष और जंघा की संधियों में पीड़ा-सहित और ज्वरयुक्त सूजन होकर पाँव में उतर आती है और पैर हाथी के पैर के समान मोटा हो जाता है। वैद्यक के अनुसार यह रोग हाथ, नाक, कान, आँख, लिंग और होंठ में भी होता है। यह चार प्रकार का होता है; अर्थात् वातज, पित्तज, श्लेष्मज और सन्निपातज। एक वर्ष के बाद यह रोग असाध्य हो जाता है।

यह रोग तालाब आदि का पुराना जल पीने, शीत देश में अधिक निवास करने तथा जिन स्थानों में सदा पुराना पानी बना रहता है, वहाँ रहने से उत्पन्न होता है।

श्लीपदापह–संज्ञा पुं० [सं०] पुत्रंजीव वृक्ष।

श्लीपदी–वि० [सं०] जिसे श्लीपद रोग हो गया हो।

श्लील–वि० [सं०] (१) उत्तम। नफीस। जो भद्दा न हो। (२) मंगलदायक। शुभ।

श्लेष–संज्ञा पुं० [सं०] (१) मिलना। जुड़ना। एक में सटने या लगने का भाव। (२) संयोग। जोड़। मिलान। (३) आलिंगन। परिरंभण। भेंटना। (४) साहित्य में एक अलंकार जिसमें एक शब्द के दो या अधिक अर्थ लिये जाते हैं। दो अर्थवाले शब्दों का प्रयोग।

श्लेषक–वि० [सं०] मिलानेवाला। जोड़नेवाला।

संज्ञा पुं० दे० "श्लेष"। उ०—केशव दशम प्रभाव में, श्लेषक कवित विलास। वर्णन के मिसु प्रगटहीं, बरषा शरद प्रकास।—केशव।

श्लेषण–संज्ञा पुं० [सं०] [वि० श्लेषणीय, श्लेषित, श्लेषी, श्लिष्ट] (१) मिलाना। जोड़ना। एक में सटाना। संयुक्त करना। (२) परिरंभण। आलिंगन।

श्लेषा–संज्ञा स्त्री० [सं०] आलिंगन। भेंटना।

श्लेषोपमा–संज्ञा स्त्री० [सं०] एक अलंकार जिसमें ऐसे श्लिष्ट शब्दों का प्रयोग होता है जिनके अर्थ उपमेय और उपमान दोनों में लग जाते हैं। उ०—सगुन, सरस, सब अंग राग-रंजित है सुनहु सुभाग ! बड़े भाग बाग पाइए। चातुरी की शाला मानि आतुर ह्वै, नंदलाल ! चंपे की माला बाला उर उरझाइए।—केशव। यहाँ सगुन (गुणयुक्त, सूत्रयुक्त), सरस आदि शब्द बाला और चंपक माला दोनों में लग जाते हैं।

श्लेष्म, श्लेष्मक–संज्ञा पुं० [सं०] श्लेष्मा।

श्लेष्मघन–संज्ञा पुं० [सं०] (१) केतकी। (२) चमेली या जूही।

श्लेष्मघ्ना–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) त्रिपुर मल्लिका। (२) मल्लिका। मोतिया का एक भेद। (३) केतकी। केवड़ा। (४) महाज्योतिष्मती लता। (५) तीन कड़वे मसाले। त्रिकटु।

श्लेष्मघ्नी–संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० "श्लेष्मघ्ना"।

श्लेष्मण–वि० [सं०] कफवाला। कफ प्रकृतिवाला।

श्लेष्मणा–संज्ञा स्त्री० [सं०] एक पौधा।

श्लेष्मल–संज्ञा पुं० [सं०] लिसोड़ा। बहुवार वृक्ष।

वि० कफयुक्त। श्लेष्मयुक्त।

श्लेष्महृद–संज्ञा पुं० [सं०] (श्लेष्मा को हरनेवाला) कायफल। कटफल।

श्लेष्मांतक–संज्ञा पुं० [सं०] लिसोड़ा। लभेरा। बहुवार वृक्ष।

श्लेष्मा–संज्ञा पुं० [सं० श्लेष्मन्] (१) वैद्यक के अनुसार शरीर की तीन धातुओं या विकारों में से एक। कफ। बलगम। (२) रस्सी। बंधन। बाँधने की रस्सी। (३) लिसोड़े का फल। लभेरा।

श्लेष्मातक–संज्ञा पुं० [सं०] लिसोड़ा। लभेरा।

श्लेष्मातक वन–संज्ञा पुं० [सं०] गोकर्णतीर्थ के पास का जंगल जिसमें शिव एक बारहसिंघे के रूप में छिपे थे। (पुराण)

श्लेष्मी–संज्ञा पुं० [सं०] (१) गंधा बिरोजा। (२) लोबान।

श्लैष्मिक–वि० [सं०] श्लेष्म संबंधी। कफवाला।

श्लोक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) शब्द। ध्वनि। आवाज। (२) पुकार। आह्वान। (३) स्तुति। प्रशंसा। (४) नाम। कीर्ति। यश। जैसे,—पुण्यश्लोक। (५) संस्कृत का सबसे अधिक व्यवहृत छंद। अनुष्टुम् छंद। (६) संस्कृत का कोई पद्य।

श्वः–अव्य० [सं० श्वस्] आनेवाले दूसरे दिन। कल।

श्वकंटक–संज्ञा पुं० [सं०] मात्य और शूद्रा के गर्भ से उत्पन्न पुरुष। (स्मृति)

श्वक–संज्ञा पुं० [सं०] भेड़िया। वृक।

श्वग्रह–संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक बालग्रह या रोग। (२) बच्चों को कष्ट देनेवाला एक प्रेत।

श्वचिल्ली–संज्ञा पुं० [सं०] कुकुरबंदा।

श्वदंष्ट्रक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) कुत्ते का दाँत। (२) गोखरू।

श्वधूर्त–संज्ञा पुं० [सं०] शृगाल। गीदड़।

श्वन्–संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० शुनी] कुत्ता। कुक्कुर।

विशेष—समास में पूर्वपद होकर 'श्व' रह जाता है। जैसे,—श्वकर्ण, श्वपच।

श्वपच–संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० श्वपचा, श्वपची] (१) कुत्ते का मांस पकाकर खानेवाला। (२) एक प्रकार का चांडाल। डोम।

विशेष—भिन्न भिन्न स्मृतियों में इसकी उत्पत्ति भिन्न भिन्न कही गई है। जैसे,—कहीं चंडाल और ब्राह्मणी से, कहीं निष्ट्य और किराती से, कहीं क्षत्रिय और उग्र जाति की स्त्री से, कहीं अंबष्ट और ब्राह्मणी से इत्यादि।

श्वपाक–संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० श्वपाकी] श्वपच। चांडाल।

श्वपामत–संज्ञा पुं० [सं०] पपरी नाम का पौधा जिसकी कड़वी जड़ रेचक होती है और औषध के काम में आती है। काकच्छदि।

श्वपुच्छ–संज्ञा पुं० [सं०] वृश्चिक। बिच्छू।

श्वपुच्छा–संज्ञा स्त्री० [सं०] पृष्णपर्णी। पिठवन।

श्वफल–संज्ञा पुं० [सं० बिजौरा नीबू। बीजपूर वृक्ष।

श्वफल्क–संज्ञा पुं० [सं०] यादव वृष्णि के पुत्र और अक्रूर के पिता।

श्वभीरु–संज्ञा पुं० [सं०] शृगाल। गीदड़।

श्वभ्र–संज्ञा पुं० [सं०] (१) दरार। छेद। गड्ढा। (२) एक नरक। (३) वसुदेव के एक पुत्र का नाम।

श्वमुख–संज्ञा पुं० [सं०] एक जंगली जाति।

श्वय–संज्ञा पुं० [सं०] शोथ। सूजन।

श्वयथु–संज्ञा पुं० [सं०] शोथ। सूजन।

श्ववृत्ति–संज्ञा स्त्री० [सं०] नीच सेवा की वृत्ति। निकृष्ट नौकरी द्वारा निर्वाह।

श्वशुर–संज्ञा पुं० [सं०] पति या पत्नी का पिता। ससुर।

श्वशुर्य्य–संज्ञा पुं० [सं०] पति या पत्नी का भाई। देवर या साला।

श्वश्रु–संज्ञा स्त्री० [सं०] पति या पत्नी की माता। सास।

श्वसन–संज्ञा पुं० [सं०] [वि० श्वसनीय, श्वसित] (१) साँस लेना। दम लेना। (२) हाँफना। (३) फूँकना। मुँह से हवा छोड़ना। (४) फुत्कार करना। फुफकारना। (५) लंबी साँस खींचना। आह भरना। (६) वायु देवता। पवन। (७) एक वसु का नाम। (८) मैनफल। मदनफल।

श्वसनाशन–संज्ञा पुं० [सं०] (वायु भक्षण करनेवाला) सर्प। साँप।

श्वसनेश्वर–संज्ञा पुं० [सं०] अर्जुन वृक्ष।

श्वसनोत्सुक–संज्ञा पुं० [सं०] साँप। सर्प।

श्वसुन–संज्ञा पुं० [सं०] कुकुंदर। कुकरौंधा नामक पौधा।

श्वस्तन–वि० [सं०] आनेवाले दिन का। कल का।

संज्ञा पुं० कल का दिन। आनेवाला दूसरा दिन।

श्वस्तनी–संज्ञा स्त्री० [सं०] कल का दिन। आनेवाला दूसरा दिन।

श्वांश्मि–संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का रत्न या बहुमूल्य पत्थर जो काँसे, रूपे, शंख, कुमुद आदि के रंग का कहा गया है। (रत्नपरीक्षा)

श्वान–संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० श्वानी] (१) कुत्ता। कुक्कुर।

उ०—गोकुल चले प्रेम आतुर ह्वै खुलि गए कपाट कपाट। सोये श्वान, पहरुआ सोये, सबै मुक भई बाट।—सूर।

(२) दोहे का इक्कीसवाँ भेद। इसमें २ गुरु और ४४ लघु होते हैं। (३) छप्पय का पंद्रहवाँ भेद। इसमें ५६ गुरु, ४०, लघु कुल ९६ वर्ण १५२ मात्राएँ होती हैं।

श्वानचिल्लिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] बथुआ नामक शाक।

श्वाननिद्रा–संज्ञा स्त्री० [सं०] ऐसी नींद जो थोड़े खटके में भी चट खुल जाय। हलकी नींद। झपकी।

श्वापति–संज्ञा स्त्री० [सं०] भारंगी। ब्रह्मनेटी। ब्राह्मण यष्टिका।

श्वापद–संज्ञा पुं० [सं०] हिंसक पशु। व्याघ्र आदि।

श्वाविध–संज्ञा पुं० [सं०] साही नामक जंतु। शल्य।

श्वास–संज्ञा पुं० [सं०] (१) नासिका के मार्ग से प्राणवायु के भीतर जाने और बाहर निकलने की क्रिया। प्राणियों का नाक से हवा खींचने और बाहर निकालने का व्यापार। साँस। दम।

क्रि० प्र०—लेना।—छोड़ना।—निकलना।—खींचना।—रोकना।

मुहा०—श्वास रहते = प्राण रहते। जीते जी। श्वास खींचना या चढ़ाना = साँस रोके रहना। श्वास छूटना = मृत्यु होना।

(२) व्यंजनों के उच्चारण के प्रयत्न में मुँह से हवा छूटना। (३) जल्दी जल्दी साँस लेना। हाँफना। (४) एक रोग जिसमें साँस अधिक वेग से और जल्दी जल्दी चलता है। दम फूलने का रोग। दमा।

यौ०—श्वास कास।

विशेष—आयुर्वेद में श्वास रोग पाँच प्रकार का कहा गया है—महाश्वास, ऊर्ध्व श्वास, छिन्न श्वास, तमक श्वास और क्षुद्र श्वास। इनमें से प्रथम तीन असाध्य, चौथा कष्ट साध्य और पाँचवाँ साध्य कहा गया है।

श्वासकास–संज्ञा पुं० [सं०] (१) दमा और खाँसी। (२) दमे की खाँसी। दमा।

श्वासकुठार–संज्ञा पुं० [सं०] श्वास रोग में उपकारी एक रसौषध।

विशेष—इसे बनाने के लिये शुद्ध पारा, शुद्ध गंधक की कजली, सिंगी मुहरा, चूना, सोहागा, मैनसिल, काली मिर्च, सोंठ और पिप्पली के चूर्ण को अदरक के रस की एक पुट देकर सिद्ध करते हैं।

श्वासधारण–संज्ञा पुं० [सं०] श्वास को रोक रखना। साँस रोकने की क्रिया। (कात्या० श्रौतसूत्र)

श्वासरोध–संज्ञा पुं० [सं०] (१) साँस रोकना। साँस को बाहर निकलने से रोके रहना। (२) दम घुटना। साँस भीतर न समाना।

श्वासहेति–संज्ञा स्त्री० [सं०] (दमे को हटानेवाली) निद्रा। नींद।

श्वासा–संज्ञा स्त्री० [सं० श्वास] (१) साँस। दम। जैसे,—जब तक श्वासा तब तक आशा। उ०—श्वासा आँसु भये श्रुति चार। करि सो स्तुति या परकार।—सूर। (२) प्राण। प्राणवायु।

श्वासारि–संज्ञा पुं० [सं०] (१) पुष्कर मूल। (२) कुष्ठ नामक पौधा। कूट।

श्वासोच्छ्वास–संज्ञा पुं० [सं०] वेग से साँस खींचना और निकालना।

क्रि० प्र०—लेना।

श्वित्र–वि० [सं०] (१) सफेद। श्वेत। (२) सफेद कोढ़वाला। संज्ञा पुं० श्वेत कुष्ट। सफेद कोढ़। सफेद दागवाला कोढ़।

विशेष—इस रोग में शरीर के चमड़े के ऊपर सफेद दाग पड़ जाते हैं। यह रुधिर, मांस और मेद में रहता है। अन्य प्रकार के कुष्टों की तरह यह पकता, बहता और पीड़ा नहीं करता। जिसमें केश सफेद न हुए हों तथा जिसमें दाग परस्पर मिलकर एक न हो गए हों, वह साध्य है।

श्वित्रघ्नी–संज्ञा स्त्री० [सं०] वृश्चिकाली। पीतपर्णी। बिछाली का पौधा।

श्वित्रारि–संज्ञा स्त्री० [सं०] बकुची। सोमराजी।

श्वित्री–वि० [सं० श्वित्रिन्] [स्त्री० श्वित्रिणी] श्वित्र रोगी। सफेद कोढ़वाला।

श्वेत–वि० [सं०] (१) जिसमें कोई रंग न मालूम हो। बिना रंग का। सफेद। धौला। चिट्टा।

विशेष—विज्ञान से सिद्ध है कि श्वेत रंग में सातों रंगों का अभाव नहीं है बल्कि उनका गूढ़ मेल है। सूर्य्य की किरनें देखने में सफेद जान पड़ती हैं, पर रश्मि-विश्लेषण क्रिया से सातों रंगों की किरनें अलग अलग हो जाती हैं।

(२) शुभ्र। उज्ज्वल। साफ़। निर्मल। (३) निर्दोष। निष्कलंक। (४) जो साँवला न हो। गोरा।

संज्ञा पुं० (१) सफेद रंग। श्वेत वर्ण। (२) चाँदी। रजत। (३) कौड़ी। कपर्दक। (४) पुराणानुसार एक द्वीप। (५) आयुर्वेद में तीसरी त्वचा की संज्ञा। शरीर के चमड़े की तीसरी तह। (६) एक पर्वत। (७) स्कंद के एक अनुचर का नाम। (८) शोभांजन वृक्ष। सहिंजन। (९) जीवक नामक अष्टवर्गीय ओषधि। (१०) शंख। (११) शुक्र ग्रह। (१२) सफेद घोड़ा। (१३) सफेद बादल। (१४) एक केतु या पुच्छल तारा। (१५) सफेद जीरा। श्वेत जीरक। (१६) शिव का एक अवतार। (१७) वराह मूर्त्ति भेद। श्वेत वराह। (१८) हिरण्मय वर्ष और रम्यक वर्ष के बीच का एक पर्वत। (पुराण)

श्वेतकंद–संज्ञा पुं० [सं०] प्याज़।

श्वेतकंदा–संज्ञा स्त्री० [सं०] अति विषा। अतीस नामक ओषधि।

श्वेतक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) चाँदी। रजत। रौप्य। (२) कौड़ी। कपर्दक। (३) काँसा। (४) एक नाग का नाम।

श्वेतकपोत–संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्रकार का चूहा। (२) एक प्रकार का साँप।

श्वेतकांडा–संज्ञा स्त्री० [सं०] सफेद दूब। श्वेत दूर्वा।

श्वेत काक–संज्ञा पुं० [सं०] सफेद कौआ अर्थात् असंभव बात।

श्वेतकि–संज्ञा पुं० [सं०] एक धर्मपरायण राजा। (महाभारत)

श्वेतकुक्षि–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की मछली।

श्वेतकुष्ठ–संज्ञा पुं० [सं०] सफेद दागवाला कोढ़। श्वित्र।

श्वेतकृष्ण–संज्ञा पुं० [सं०] (१) सफेद और काला। (२) यह पक्ष और वह पक्ष। एक बात और दूसरी बात। जैसे,—हम श्वेत कृष्ण कुछ न कहेंगे। (३) एक प्रकार का विषैला कीड़ा। (सुश्रुत)

श्वेतकेतु–संज्ञा पुं० [सं०] (१) महर्षि उद्दालक के पुत्र का नाम। (२) बोधिसत्त्व की अवस्था में गौतम बुद्ध का नाम। (३) केतु ग्रह विशेष।

श्वेतकेश–संज्ञा पुं० [सं०] लाल फूल का सहिंजन पेड़।

श्वेतगज–संज्ञा पुं० [सं०] ऐरावत हाथी। उ०—अप्सरा पारजातक धनुष अश्व गज श्वेत ए पाँच सुरपतिहि दीने।—सूर।

श्वेतघंटा–संज्ञा स्त्री० [सं०] नागदंती।

श्वेतच्छद–संज्ञा पुं० [सं०] (१) गंधपत्र। बन तुलसी। (२) हंस।

श्वेतजीरक–संज्ञा पुं० [सं०] सफ़ेद ज़ीरा।

श्वेत टंकण–संज्ञा पुं० [सं०] सोहागा।

श्वेतता–संज्ञा स्त्री० [सं०] सफेदी। उज्ज्वलता। शुक्लता।

श्वेतद्युति–संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा।

श्वेतद्रुम–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का वरुण वृक्ष।

श्वेतद्विप–संज्ञा पुं० [सं०] ऐरावत हाथी।

श्वेतद्वीप–संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार क्षीरसागर के पास एक अत्यंत उज्ज्वल द्वीप जहाँ विष्णु भगवान् निवास करते हैं।

श्वेतधामा–संज्ञा पुं० [सं० श्वेतधामन्] (१) चंद्रमा। (२) कपूर। (३) समुद्रफेन। (४) अपामार्ग। चिचड़ा। (५) अपराजिता।

श्वेतनील–संज्ञा पुं० [सं०] मेघ। बादल।

श्वेतपटल–संज्ञा पुं० [सं०] अभ्रक नामक धातु।

श्वेतपत्र–संज्ञा पुं० [सं०] हंस।

श्वेतपर्णा–संज्ञा स्त्री० [सं०] जलकुंभी। वारिपर्णी।

श्वेतपाद–संज्ञा पुं० [सं०] शिव के एक गण का नाम।

श्वेतपिंगल–संज्ञा पुं० [सं०] (१) सिंह। (२) महादेव। शिव।

श्वेतपुष्प–संज्ञा पुं० [सं०] सिंदुवार। निर्गुंडी।

श्वेतपुष्पा–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) नाग पुष्पी। (२) कलँई।

(३) सन। (४) सँधुआर। संभालु। (५) नागदंती। (६) सफेद अपराजिता।

श्वेतपुष्पिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) पुत्रदात्री लता। (२) बड़ी सन पुष्पी।

श्वेतप्रदर–संज्ञा पुं० [सं०] वह प्रदर रोग जिसमें स्त्रियों को सफेद रंग की धातु गिरती है।

श्वेतबर्बर–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का चंदन।

श्वेतबुह्ना–संज्ञा स्त्री० [सं०] वनतिक्ता।

श्वेतभानु–संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा

श्वेतभुजंग–संज्ञा पुं० [सं०] ब्रह्मा का एक अवतार।

श्वेतमंडल–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का सर्प। (सुश्रुत)

श्वेतमध्य–संज्ञा पुं० [सं०] मुस्तक। मोथा।

श्वेतमयूख–संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा।

श्वेतमरिच–संज्ञा पुं० [सं०] (१) शोभांजन बीज। सहिंजन के बीज। (२) सफेद मिर्च।

श्वेतमाल–संज्ञा पुं० [सं०] (१) मेघ। बादल। (२) धूम्र। धुआँ।

श्वेतमूला–संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की गदहपूरना। पुनर्नवा-भेद।

श्वेतयावरी–संज्ञा स्त्री० [सं०] (श्वेत बहनेवाली) एक नदी जिसका नाम ऋग्वेद में आया है।

श्वेतरंजन–संज्ञा पुं० [सं०] सीसा धातु।

श्वेतरथ–संज्ञा पुं० [सं०] शुक्र ग्रह।

श्वेतराजी–संज्ञा स्त्री० [सं०] चिचिंडा (जिसकी तरकारी होती है)।

श्वेतरावक–संज्ञा पुं० [सं०] निर्गुंडी।

श्वेतरोचिस्–संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा।

श्वेतरोहित–संज्ञा पुं० [सं०] (१) गरुड़ का एक नाम। (२) एक प्रकार का पौधा।

श्वेतलोध्र–संज्ञा पुं० [सं०] पठानी लोध।

श्वेतवक्तृ–संज्ञा पुं० [सं०] स्कंद के एक अनुचर का नाम।

श्वेतवचा–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सफेद बच। (२) अतिविषा। अतीस।

श्वेतवल्कल–संज्ञा पुं० [सं०] गूलर। उदुंबर वृक्ष।

श्वेतवह–संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० श्वेतौही] इंद्र।

श्वेतवाजी–संज्ञा पुं० [सं० श्वेतवाजिन्] (१) सफेद घोड़ा। (२) चंद्रमा। (३) अर्जुन।

श्वेतवाराह–संज्ञा पुं० [सं०] (१) वराह भगवान् की एक मूर्ति। (२) एक कल्प का नाम जो ब्रह्मा के मास का प्रथम दिन माना गया है। (३) एक तीर्थ।

श्वेतवाह–संज्ञा पुं० [सं०] (१) (सफेद घोड़ेवाले) इंद्र। (२) अर्जुन।

श्वेतवाहन–संज्ञा पुं० [सं०] (१) चंद्रमा। (२) अर्जुन का एक नाम। (३) समुद्र का मकर। (४) शिव का एक रूप या मूर्त्ति।

श्वेतशुंग–संज्ञा पुं० [सं०] जौ। यव।

श्वेतसर्प–संज्ञा पुं० [सं०] (१) वरुण वृक्ष। (२) सफेद साँप।

श्वेतसर्षप–संज्ञा स्त्री० [सं०] पीली सरसों।

श्वेतसार–संज्ञा पुं० [सं०] खैर। कत्था। खदिर।

श्वेतसिंही–संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का शाक।

श्वेतसिद्ध–संज्ञा पुं० [सं०] स्कंद के एक अनुचर का नाम।

श्वेतसुरसा–संज्ञा स्त्री० [सं०] सफेद फूल की निर्गुंडी।

श्वेतहनु–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का साँप। (सुश्रुत)

श्वेतहय–संज्ञा पुं० [सं०] (१) इंद्र का घोड़ा। उच्चैःश्रवा। (२) अर्जुन।

श्वेतहस्ती–संज्ञा पुं० [सं०] ऐरावत।

श्वेतांबर–संज्ञा पुं० [सं०] (१) सफेद वस्त्र धारण करनेवाला। (२) जैनों के दो प्रधान संप्रदायों में से एक।

विशेष—ये लोग चँवरी रखते, बाल उखड़वाले, श्वेत वस्त्र पहनते, क्षमायुक्त रहते और भिक्षा माँगकर अपना निर्वाह करते हैं। ये स्त्रियों का भी अपवर्ग मानते हैं।

(३) शिव का एक रूप।

श्वेतांशु–संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा।

श्वेता–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) अग्नि की सात जिह्वाओं में से एक। (२) कौड़ी। (३) भोजपत्र का पेड़। (४) श्वेत पाटला। काष्ठ पाटला। (५) श्वेत या शंख नामक हस्ती की माता। शंखिनी। (६) अतीस। अतिविषा। (७) अपराजिता लता। (८) सफेद वन-भंटा। (९) श्वेत कंटकारी। भटकटैया। (१०) पाषाण-भेद। पखान-भेद। (११) वंशलोचन। (१२) श्वेत पुनर्नवा। सफेद गदहपूरना। (१३) शिलावल्क। (१४) फिटकरी। (१५) चीनी। शक्कर। (१६) मिस्री। (१७) सफेद बच। (१८) क्षुरपत्री। पर्णमूला।

विशेष—यह तृण बरसात में उगता है और जाड़े में नष्ट हो जाता है। यह एक या डेढ़ बालिश्त ऊँचा और छतनार होता है। पत्तियाँ छोटी, फूल पीले या बैंगनी रंग के और बीज छोटे छोटे दानों की तरह के होते हैं। क्षुरपत्री मधुर, शीतल और घी का दूध बढ़ानेवाली कही गई है।

(१९) स्कंद की अनुचरी एक मातृका। (२०) कश्यप की क्रोधवशा नाम्नी पत्नी से उत्पन्न एक कन्या जो दिग्गजों की माता है।

श्वेताद्य–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की सोमलता।

श्वेताम्लि–संज्ञा स्त्री० [सं०] इमली।

श्वेतारण्य–संज्ञा पुं० [सं०] कावेरी नदी के किनारे का एक वन जो तीर्थ माना गया है।

श्वेतार्चि–संज्ञा पुं० [सं० श्वेतार्चिस्] चंद्रमा।

श्वेतालु–संज्ञा पुं० [सं०] महिष कंद। भैंसा कंद।

श्वेतावर–संज्ञा पुं० [सं०] सितावर शाक।

श्वेताश्वतर–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) कृष्ण यजुर्वेद की एक शाखा। (२) उपनिषद् विशेष।

विशेष—कृष्ण यजुर्वेद की यह उपनिषद् छः अध्यायों की है। इसमें वेदांत के प्रायः सब सिद्धांतों के मूल पाए जाते हैं। भगवद्गीता के बहुत से प्रसंग इससे लिये हुए जान पड़ते हैं। इसकी संस्कृत बड़ी ही सरल और स्पष्ट है। वेदांत के प्रसंगों के अतिरिक्त इसमें योग और सांख्य के सिद्धांतों के मूल भी मिलते हैं। वेदांत, सांख्य और योग तीनों शास्त्रों के कर्त्ताओं ने मानो इसी के मूल वाक्यों को लेकर ब्रह्म के स्वरूप तथा पुरुष प्रकृति भेद आदि का विस्तार किया है।

श्वेताह्वा–संज्ञा स्त्री० [सं०] श्वेत पाटला।

श्वेतिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] सौंफ।

श्वेतोदर–संज्ञा पुं० [सं०] (१) कुबेर। (२) एक प्रकार का साँप। (सुश्रुत) (३) एक पर्वत। (मार्क० पुराण)

श्वेतौही–संज्ञा स्त्री० [सं०] इंद्राणी।

श्वैत्र–संज्ञा पुं० [सं०] सफेद कोढ़।

ष

ष–संस्कृत या हिंदी वर्णमाला के व्यंजन वर्णों में ३१ वाँ वर्ण या अक्षर। इसका उच्चारण स्थान मूर्द्धा है, इससे यह मूर्द्धन्य वर्णों में कहा गया है। इसका प्रयोग केवल संस्कृत के शब्दों में होता है और उच्चारण दो प्रकार से होता है। कुछ लोग 'श' के समान इसका उच्चारण करते हैं और कुछ लोग 'ख' के समान। इसी से हिंदी की पुरानी लिखावट में इस अक्षर का व्यवहार कवर्गीय 'ख' के स्थान पर होता था। जैसे,—देषि, लषन इत्यादि।

संज्ञा पुं० (१) विद्वान् पुरुष। आचार्य्य। (२) कुच। चूचुक। (३) नाश। (४) शेष। बाकी। (५) प्राप्त ज्ञान का क्षय। (६) मुक्ति। मोक्ष। (७) स्वर्ग। (८) अंत। समाप्ति। अवधि। (९) गर्भ। (१०) धैर्य्य। सहिष्णुता।

वि० बहुत अच्छा। उत्तम। श्रेष्ठ।

षंजन–संज्ञा पुं० [सं०] (१) आलिंगन। (२) मिलना। समागम।

षंड–संज्ञा पुं० [सं०] (१) राशि। समूह। (२) झाड़ी। (३) साँड़। (४) हीजड़ा। नपुंसक। नामर्द। (५) कमलों का समूह। (६) शिव का एक नाम। (७) धृतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम।

षंडत्व–संज्ञा पुं० [सं०] नामर्दी। हीजड़ापन। पुंसत्व का अभाव।

षंडयोनि–संज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्त्री जिसे मासिक धर्म्म न होता हो और जिसके स्तन न हों अर्थात् जो पुरुष-समागम के अयोग्य हो।

षंडामर्क–संज्ञा पुं० [सं०] शुक्राचार्य्य के पुत्र का नाम। उ०—कविसुत असुर वंश गुरु आमा। षंडामर्क रह्यो अस नामा।—रघुराज।

षंडाली–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) तेल नापने की एक छोटी धरिया जिसमें एक छटाँक वस्तु आ सकती हो। (२) दुश्चरित्रा स्त्री। व्यभिचारिणी। (३) ताल। तलैया।

षंढी–संज्ञा स्त्री० [सं० षंड] वह स्त्री जिसे मासिक धर्म्म न होता हो, स्तन छोटे हों, और जो पुरुष-समागम के अयोग्य हो।

षंढ–संज्ञा पुं० दे० "षंड"।

षंढा–संज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्त्री जिसकी चेष्टा पुरुषों की सी हो।

षट्–वि० [सं०] गिनती में ६। छः।

संज्ञा पुं० (१) छः की संख्या। (२) षाड़व जाति का एक राग जो दीपक का पुत्र माना गया है। इसके गाने का समय प्रातः १ दंड से ५ दंड तक है। इसमें सब कोमल स्वर लगते हैं। कोई कोई इसे आसावरी, ललित, टोड़ी और भैरवी आदि रागनियों से उत्पन्न संकर राग मानते हैं।

षट्क–संज्ञा पुं० [सं०] (१) ६ की संख्या। (२) छः वस्तुओं का समूह।

विशेष—इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, सुख, दुःख और ज्ञान के समूह को प्रायः षट्क कहते हैं।

वि० छः संबंधी। छः का। छः वाला।

षट्कर्ण–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की वीणा या सितार जिसमें छः कान होते हैं।

षट्कर्म–संज्ञा पुं० [सं० षट्कर्म्मन्] (१) ब्राह्मणों के छः कर्म–यजन, याजन, अध्ययन, अध्यापन, दान देना और दान लेना। (२) स्मृतियों के अनुसार छः काम जिनके द्वारा आपत्काल में ब्राह्मण अपनी जीविका कर सकता है।—उंछ वृत्ति (कटे हुए खेतों में दाने बिनना), दान लेना, याचना करना, कृषि, वाणिज्य और गोरक्षा (अथवा किसी किसी के मत से सूद पर रुपया देना)। (३) तांत्रिकों के वध आदि छः कर्म।

षट्कर्म्मा–संज्ञा पुं० [सं०] (१) यजन याजन आदि नियत कर्म्मों को करनेवाला ब्राह्मण। कर्म्मनिष्ठ ब्राह्मण। (२) तांत्रिक।

षट्कला–संज्ञा पुं० [सं०] संगीत में मध्यताल के चार भेदों में से एक भेद।

षट्कसंपत्ति–संज्ञा पुं० [सं०] छः प्रकार के कर्म—(१) शम (२) दम (३) उपरति (४) तितिक्षा (५) श्रद्धा और (६) समाधान।

षट्कोण–वि० [सं०] छः कोनोंवाला। छः कोना। छः पहल्ल।
षट्कोप–संज्ञा पुं० [सं०] एक पुराने आचार्य का नाम।
षट्चक्र–संज्ञा पुं० [सं०] (१) हठ योग में माने हुए कुंडलिनी के ऊपर पड़नेवाले छः चक्र। (२) किसी के विरुद्ध आयोजन। भीतरी चाल। षड्यंत्र।
क्रि० प्र०—चलाना।—खड़ा करना।—रचना।
षट्चरण–संज्ञा पुं० [सं०] भ्रमर। भौंरा।
षट्तकतैल–संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक का एक तेल जिसमें तेल से छः गुना तक्र (मट्ठा) मिलाया जाता है।
षट्ताल–संज्ञा पुं० [सं०] (१) मृदंग का एक ताल जो आठ मात्राओं का होता है।
विशेष—इसमें पहले २ आघात, १ खाली, फिर ४ आघात और अंत में एक खाली होता है।
(२) एक प्रकार का ख्याल जो एक ताला ताल पर बजाया जाता है।
षट्तिला–संज्ञा स्त्री० [सं०] माघ महीने के कृष्ण पक्ष की एकादशी का नाम। इसमें तिल के व्यवहार और दान का बहुत फल कहा गया है। उ०—यहिकर नाम षट्तिला अहई। करि व्रत नेम निकर अघ दहई।—विश्राम सागर।
षट्पद–वि० [सं०] [स्त्री० षट्पदी] छः पैरवाला।
संज्ञा पुं० (१) भ्रमर। भौंरा। (२) किलनी।
षट्पदप्रिय–संज्ञा पुं० [सं०] (१) कमल। (२) नागकेसर का वृक्ष।
षट्पदातिथि–संज्ञा पुं० [सं०] (१) (जहाँ भ्रमर अतिथि रूप में हो अर्थात्) आम का वृक्ष। (२) चंपक। चंपा।
षट्पदानंदवर्द्धन–संज्ञा पुं० [सं०] (भ्रमर के आनंद को बढ़ानेवाला) किंकिरात का वृक्ष।
षट्पदी–वि० स्त्री० [सं०] छः पैरवाली।
संज्ञा स्त्री० (१) भ्रमरी। भौंरी। (२) एक छंद जिसमें छः पद या चरण होते हैं। छप्पय।
षट्पितापुत्रक–संज्ञा पुं० [सं०] संगीत में ताल का एक भेद जिसमें १२ मात्राएँ होती हैं। एक प्लुत, एक लघु, दो गुरु, एक लघु, एक प्लुत यह इसका प्रमाण है।
षट्प्रज्ञ–संज्ञा पुं० [सं०] (१) धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष, लोकार्थ और तत्वार्थ का ज्ञाता। (२) उच्छृंखल। (३) कामुक।
षट्रस–संज्ञा पुं० [सं०] छः प्रकार के रस या स्वाद। वि० दे० "षड्रस"।
यौ०—षट्रस भोजन।
षट्राग–संज्ञा पुं० [सं० षट्+राग] (१) संगीत के ६ राग—भैरव, मल्लार, श्रीराग, हिंडोल, मालकोस और दीपक। (२) बखेड़ा। जंजाल। आडंबर। जैसे,—इसमें बड़ा षट्राग है, हमसे न होगा। (३) संकट।
षट्रिपु–संज्ञा पुं० दे० "षड्रिपु"।
षट्शास्त्र–संज्ञा पुं० [सं०] हिंदुओं के ६ दर्शन।
षट्शास्त्री–संज्ञा पुं० [सं०] छः दर्शनों का जाननेवाला।
षट्वांग–संज्ञा पुं० [सं०] खट्वांग नामक राजर्षि जिन्हें केवल दो घड़ी की साधना से मुक्ति प्राप्त हुई थी। उ०—एक षट्वांग राजऋषि भयऊ। असुर-विजय हित सो दिवि गयऊ।—रघुराज।
षडंग–संज्ञा पुं० [सं०] (१) वेद के छः अंग—शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छंद और ज्योतिष। (२) शरीर के छः अवयव—दो पैर, दो हाथ, सिर और धड़।
वि० जिसके छः अंग या अवयव हों।
षडंगजित्–संज्ञा पुं० [सं०] (सब अंगों को वश में करनेवाले) विष्णु।
षडंघ्रि–संज्ञा पुं० [सं०] भ्रमर। भौंरा।
षड्क्षरी–संज्ञा स्त्री० [सं०] वैष्णवों के रामानुज संप्रदायवालों का मुख्य मंत्र।
षडक्षीण–संज्ञा पुं० [सं०] मछली जिसे छः आँखें कही जाती हैं।
षडग्नि–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) कर्मकांड के अनुसार छः प्रकार की अग्नि—गार्हपत्य, आहवनीय, दक्षिणाग्नि, सभ्याग्नि, आवसथ्य और औपासनाग्नि। इनमें से प्रथम तीन प्रधान हैं।
विशेष—कुछ लोगों ने अग्नि के ये ६ भेद किए हैं—धूमाग्नि, मंदाग्नि, दीप्ताग्नि, मध्यमाग्नि, खराग्नि और भयाग्नि।
षडभिज्ञ–संज्ञा पुं० [सं०] बुद्ध या बोधिसत्व।
षडानन–वि० [सं०] जिसे छः मुँह हों।
संज्ञा पुं० (१) कार्त्तिकेय। (२) संगीत में स्वर साधन की एक प्रणाली जो इस प्रकार होती है—आरोही—सा रे ग म प ध, रे ग म प ध नि, ग म प ध नि सा। अवरोही—सा नि ध प म ग, नि ध प म ग रे, ध प म ग रे सा।
षड्ऊषण–संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक में ये छः गरम मसाले—पीपल, पिपलामूल, चव्य, चीता, सोंठ और काली मिर्च।
षड्गुण–संज्ञा पुं० [सं०] (१) छः गुणों का समूह। (२) राजनीति की छः बातें—संधि, विग्रह, यान (चढ़ाई), आसन (विराम) द्वैधी भाव और संश्रय।
षड्ग्रंथ–संज्ञा पुं० [सं०] मीठी बच वि० दे० "बच"।
षड्ग्रंथा–संज्ञा स्त्री० [सं०] इरसा की जड़ जो काश्मीर और काबुल से आती है।
षड्ग्रंथिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] पीपलामूल। पिपरामूल।
षड्ज–संज्ञा पुं० [सं०] संगीत के सात स्वरों में से चौथा स्वर।
विशेष—यह मयूर के स्वर से मिलता हुआ माना गया है। इसके उत्पत्ति-स्थान छः कहे गए हैं—नासा, कंठ, उर, तालु, जिह्वा और दंत; इसी से इसका नाम षड्ज पड़ा। मूल स्थान दंत और अंत स्थान कंठ है। देवता इसके अग्नि

है। वर्ण रक्त, आकृति ब्रह्मा की, ऋतु, हिमवार, रविवार, छंद अनुष्टुभ और संतति इसकी भैरव राग है।

षड्दर्शन–संज्ञा पुं० [सं०] न्याय, मीमांसा आदि हिन्दुओं के छः दर्शन।

षड्दर्शनी–संज्ञा पुं० [सं० षड्दर्शन + ई (प्रत्य०)] दर्शनों का जाननेवाला। ज्ञानी। उ०—षड्दरशनी अभाव सर्वथा घट करि मानै।

षड्भुजा–संज्ञा स्त्री० [सं०] खरबूजा।

षड्यंत्र–संज्ञा पुं० [सं०] (१) किसी मनुष्य के विरुद्ध गुप्त रीति से की गई कार्रवाई। भीतरी चाल। (२) जाल। कपटपूर्ण आयोजन।

क्रि० प्र०—चलाना।—रचना।

षड्योनि–संज्ञा पुं० [सं०] शिलाजीत। शिलाजतु। राँगा, सीसा, ताँबा, रूपा, सुवर्ण और लोहा इन छः धातुओं में से किसी एक की सुगंध शिलाजीत में अवश्य आती है, इसी से इसे षड्योनि कहते हैं। कारण यह है कि ऊपर कही हुई धातुओं में से किसी एक धातु का अंश जिसमें होगा उसी पर्वत से शिलाजीत की उत्पत्ति होगी।

षड्रस–संज्ञा पुं० [सं०] छः प्रकार के रस या स्वाद—मधुर, लवण, तिक्त, कटु, कषाय और अम्ल अर्थात् मीठा, नमकीन, तीता, कडुवा, कसैला और खट्टा।

यौ०—षड्रस भोजन = अनेक प्रकार के व्यंजन या खाद्य पदार्थ।

षड्रिपु–संज्ञा पुं० [सं०] काम क्रोध आदि मनुष्य के छः विकार।

षड्रेखा–संज्ञा स्त्री० [सं०] खरबूजा।

षड्वक्त्र–संज्ञा पुं० [सं०] कार्त्तिकेय। षडानन।

षड्वदन–संज्ञा पुं० [सं०] षडानन। कार्त्तिकेय।

षड्वर्ग–संज्ञा पुं० [सं०] छः वस्तुओं का समूह या वर्ग। (१) क्षेत्र, होरा, द्रेष्काण, नवमांश द्वादशांश और त्रिंशांश षड्वर्ग कहलाते हैं। (ज्योतिष) (२) काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मत्सर का समूह।

षड्विंदु–संज्ञा पुं० [सं०] (१) विष्णु। (२) गुबरीले की जाति का एक कीड़ा जिसकी पीठ पर छः गोल बिंदियाँ होती हैं। इसे पूरब में 'छवुँदवा' कहते हैं।

षड्विंदुतैल–संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक का एक तैल जिसकी छः बूँद नास लेने से सिर का दर्द दूर होता और आँख तथा दाँत को लाभ पहुँचता है।

विशेष—रेंड की जड़, तगर, सौंफ, सेंधा नमक, पुत्रजीवा, रास्ना, जलभँगरा, वायविडंग, मुलेठी, सोंठ इन सब का चौगुना जल, भँगरे का रस और चौगुना बकरी का दूध और आठ गुना तेल इन सबको कड़ाही में मंद मंद पकावे। जब रसादिक जलकर तेल मात्र रह जाय, तो छान ले।

षड्विंश–संज्ञा पुं० [सं०] सामवेद का एक ब्राह्मण।

षड्विकार–संज्ञा पुं० [सं०] (१) प्राणी के छः विकार या परिणाम अर्थात् (१) उत्पत्ति (२) शरीरवृद्धि (३) बालपन (४) प्रौढ़ता (५) वृद्धता और (६) मृत्यु। (२) काम क्रोध आदि छः विकार।

षण्मुख–वि० [सं०] छः मुँहवाला।

संज्ञा पुं० षडानन। कार्तिकेय।

षर्पपी–संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की छोटी चिड़िया।

षष्ठ्यंशक–संज्ञा पुं० [सं०] एक यंत्र जिससे जहाज पर नक्षत्रों की स्थिति देखकर यह स्थिर करते हैं कि जहाज पृथ्वी के किस भाग में है।

षष्टि–वि० [सं०] जो गिनती में पचास से दस अधिक हो। साठ।

षष्टिक–वि० [सं०] (१) साठवाला। (२) जो साठ पर खरीदा जाय।

संज्ञा पुं० एक प्रकार का धान जो बहुत जल्दी तैयार होता है। साठी धान।

षष्ठ–वि० [सं०] जिसका स्थान पाँचवें के उपरांत हो। छठा।

षष्ठान्न–संज्ञा पुं० [सं०] वह भोजन जो तीन दिनों के बीच में केवल एक बार किया जाय। (व्रत की विधि के अनुसार)

षष्ठान्नकाल–संज्ञा पुं० [सं०] एक व्रत जिसमें तीन दिन में केवल एक बार भोजन किया जाता है।

षष्ठिमत्त–संज्ञा पुं० [सं०] हाथी।

षष्ठिहायन–संज्ञा पुं० (१) हाथी। (२) साठी धान।

षष्ठी–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) किसी पक्ष का छठा दिन। शुक्ल या कृष्ण पक्ष की छठी तिथि। (२) षोडश मातृकाओं में से एक। (३) कात्यायनी। दुर्गा। (४) संबंध कारक। (व्याकरण) (५) बालक उत्पन्न होने से छठा दिन तथा उस दिन का उत्सव।

षांड–संज्ञा पुं० [सं०] दिन का एक नाम। षंढ।

षांड्य–संज्ञा पुं० [सं०] हीजड़ापन। नपुंसकता।

षाड़व–संज्ञा पुं० [सं०] (१) राग की एक जाति जिसमें केवल छः स्वर (स, रे, ग, म, प और ध) लगते हैं निषाद वर्जित है। जैसे,—दीपक और मेघ। षाड़व दो प्रकार का होता है—(१) शुद्ध षाड़व। (२) मान षाड़व। (२) मिठाई। (३) हलवाई का काम। (४) मनोराग। मनोविकार।

षाड्गुण्य–संज्ञा पुं० [सं०] (१) छः उत्तम गुणों का समूह। (२) नीति के छः अंग। दि० दे० "षड्गुण"। (३) किसी वस्तु को छः से गुणा करने से प्राप्त गुणनफल।

षाड्रसिक–संज्ञा पुं० [सं०] वह जिसे छओं रसों का ज्ञान हो।

षाण्मातुर–संज्ञा पुं० [सं०] कार्तिकेय (जिनका पालन छः कृत्तिकाओं ने किया था)।

षाण्मासिक–वि० [सं०] छः महीने का। छः महीने में होनेवाला। छठे महीने में पड़नेवाला।

संज्ञा पुं० मृतक संबंधी एक कृत्य जो किसी की मृत्यु के छः महीने पीछे किया जाता है। छमासी।

षाड्तर–संज्ञा पुं० [सं०] संगीत में एक बनावटी सप्तक जो मंद से भी नीचा होता है। यह सप्तक केवल बजाने के काम में आता है।

षिंग–संज्ञा पुं० [सं० षिङ्ग] (१) व्यभिचारी। स्त्रैण। कामुक। (२) शूर वीर।

षोड़न्–संज्ञा पुं० [सं०] छः दाँत का बैल। जवान बैल।

षोड़श–वि० [सं०] सोलहवाँ।

वि० [सं० षोड़शन्] जो गिनती में दस से छः अधिक हो। सोलह।

संज्ञा पुं० सोलह की संख्या।

षोड़श कला–संज्ञा स्त्री० [सं०] चंद्रमा के सोलह भाग जो क्रम से एक एक करके निकलते और क्षीण होते हैं। वि० दे० "कला"।

षोड़श गण–संज्ञा पुं० [सं०] पाँच ज्ञानेंद्रिय, पाँच कर्मेंद्रिय, पाँच भूत और एक मन इन सब का समूह।

षोड़शदान–संज्ञा पुं० [सं०] सोलह प्रकार के दान जो ये हैं—(१) भूमि (२) आसन (३) पानी (४) कपड़ा (५) दीपक (६) अन्न (७) पान (८) छत्र (९) सुगंधि (१०) फूलमाला (११) फल (१२) सेज (१३) खड़ाऊँ (१४) गाय (१५) सोना और (१६) चाँदी।

षोड़श पूजन–संज्ञा पुं० [सं०] सोलहो सामग्री के साथ पूजन। वि० दे० "षोड़शोपचार"।

षोड़श मातृका–संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की देवियाँ जो सोलह हैं—(१) गौरी (२) पद्मा (३) शची (४) मेधा (५) सावित्री (६) विजया (७) जया (८) देवसेना (९) स्वधा (१०) स्वाहा (११) शांति (१२) पुष्टि (१३) धृति (१४) तुष्टि (१५) मातरः और (१६) आत्म देवता।

षोड़श शृंगार–संज्ञा पुं० [सं०] पूर्ण शृंगार जिसके अंतर्गत सोलह बातें हैं। पूरा सिंगार। वि० दे० "शृंगार"।

षोड़शांग चूर्ण–संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक में एक चूर्ण जो विषम ज्वर में दिया जाता है।

विशेष—चिरायता, नीम की छाल, कुटकी, गिलोय, हड़ का छिलका, नागर मोथा, धनिया, अड़ूसा, त्रायमाणा, कटियाली, काकड़ासिंगी, सोंठ, पित्तपापड़ा, प्रियंगु पुष्प, पेमल, पी... कचूर सब समान लेकर पीस डाले और ११ टंक प्रति ठंढे जल से आठ दिन तक सेवन करे।

षोड़शांघ्रि–संज्ञा पुं० [सं०] केकड़ा।

षोड़शांशु–संज्ञा पुं० [सं०] शुक्र ग्रह (जिसमें सोलह किरनें मानी गई हैं)।

षोड़शावर्त्त–संज्ञा पुं० [सं०] शंख।

षोड़शाश्रि–संज्ञा पुं० [सं०] वह घर या मंदिर जो सोलह ... का हो। ऐसे घर में सदा अँधेरा रहता है। (बृहत्संहिता)

षोड़शिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्राचीन तौल जो मागधी ... से १६ माशे और व्यावहारिक मान से एक तोले के ... होती थी।

षोड़शी–वि० स्त्री० [सं०] (१) सोलहवीं। (२) सोलह वर्ष ... (लड़की या स्त्री)। जैसे,—षोडशी बाला।

संज्ञा स्त्री० (१) सोलह वर्ष की स्त्री। नव यौवना स्त्री। ... दस महाविद्याओं में से एक। (३) एक यज्ञपात्र। (४) ... प्राचीन तौल। पल का एक भेद जो मागधी मान से ५ ... और व्यावहारिक मान से ४ तोले के बराबर होता था। ... इन सोलह पदार्थों का समूह—ईक्षण, प्राण, श्रद्धा, आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी, इंद्रिय, मन, अन्न, वीर्य, तप, कर्म और नाम। (६) मृतक संबंधी एक कर्म जो मृत्यु ... दसवें या ग्यारहवें दिन होता है।

यौ०—षोड़शी सपिंडी।

षोड़शोपचार–संज्ञा पुं० [सं०] पूजन के पूर्ण अंग जो सोलह माने ... हैं—(१) आवाहन (२) आसन (३) अर्घ्यपाद्य (४) आच... (५) मधुपर्क (६) स्नान (७) वस्त्राभरण (८) यज्ञोप... (९) गंध (चंदन) (१०) पुष्प (११) धूप (१२) दीप (१... नैवेद्य (१४) तांबूल (१५) परिक्रमा और (१६) वंदना।

षोड़श संस्कार–संज्ञा पुं० [सं०] वैदिक रीति के अनुसार ग... धान से लेकर मृतक कर्म तक के १६ संस्कार जो द्विजाति... के लिये कहे गए हैं। वि० दे० "संस्कार"।

ष्ठीवन–संज्ञा पुं० [सं०] [वि० ष्ठीवित, ष्ठ्यूत] थूकना।

ष्ठ्युत–वि० [सं०] थूका हुआ।

स

स–हिंदी वर्णमाला का बत्तीसवाँ व्यंजन। इसका उच्चारण स्थान दंत है, इसलिये यह दंती स कहा जाता है।

सं–अव्य० [सं० सम्] (१) एक अव्यय जिसका व्यवहार शोभा, समानता, संगति, उत्कृष्टता, निरंतरता, औचित्य आदि सूचित करने के लिये शब्द के आरंभ में होता है। जैसे,—संयोग, संयोग, संगार, संतुष्ट आदि। कभी कभी ... जोड़ने पर भी मूल शब्द का अर्थ ज्यों का त्यों बना रहता है, उसमें कोई परिवर्तन नहीं होता। (२) से।

संइतना–क्रि० स० [सं० संचय] (१) सीतना। ... लगाना। (२) संचय करना। (३)

जैसा चाहिए, उतना और वैसा है या नहीं। सहेजना।

सँउपना‡–क्रि० स० दे० "सौंपना"।

संक–‡–संज्ञा स्त्री० दे० "शंका"। उ०—जलधि पार मानस अगम रावण पालित लंक। सोच विकल कपि भालु सब दुहु दिस संकट संक।—तुलसी।

संकट–वि० [सं० सम+कृत, प्रा० संकट] (१) एकत्र किया हुआ। (२) घनीभूत। (३) तंग। (४) दुर्लंघ्य। (५) भयानक। कष्टप्रद। दुःखदायी। (६) संकीर्ण। सँकरा। तंग।

संज्ञा पुं० (१) विपत्ति। आफत। मुसीबत। उ०—लालन गे जब तें तब तें बिरहानल जालन ते मन डाढ़े। पालत हे ब्रजगायन ग्वाल हुतो जब आवत संकट गाढ़े।—दीनदयाल। (२) दुःख। कष्ट। तकलीफ। (३) भीड़। समूह। (४) वह तंग पहाड़ी रास्ता जो दो बड़े और ऊँचे पहाड़ों के बीच से होकर गया हो।

संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का बत्तख।

संकट चौथ–संज्ञा स्त्री० [हिं० संकट+चौथ] माघ मास के कृष्ण पक्ष की चतुर्थी। इस दिन संकट दूर करनेवाले गणेश देवता के उद्देश्य से व्रत आदि रखा जाता है।

संकटस्थ–वि० [सं०] (१) संकट में पड़ा हुआ। विपद् ग्रस्त। (२) दुःखी।

संकटा–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) एक प्रसिद्ध देवी जो संकट या विपत्ति का निवारण करनेवाली मानी जाती हैं। (२) ज्योतिष के अनुसार आठ योगियों में से एक योगिनी। बाकी सात योगिनियाँ ये हैं—मंगला, पिंगला, धन्या, भ्रमरी, भद्रिका, उल्का और सिद्धि।

संकटाख्य–संज्ञा पुं० [सं०] धौ का पेड़। धव।

संकत‡–संज्ञा पुं० दे० "संकेत"।

संकना‡०†–क्रि० अ० [सं० शंका] (१) शंका करना। संदेह करना। (२) डरना। भयभीत होना। उ०—पौढ़ि परे पलिका पै परी जिय संकति सौतिन होति न सौंही।—देव।

संकर–संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह धूल जो झाड़ू देने के कारण उड़ती है। (२) आग के जलने का शब्द। (३) दो पदार्थों का परस्पर मिश्रण। दो चीजों का आपस में मिलना। (४) न्याय के अनुसार किसी एक ही स्थान या पदार्थ में अत्यंताभाव और समानाधिकरण का एक ही में होना। जैसे,—मन में मूर्त्तत्व तो है, पर भूतत्व नहीं है; और आकाश में भूतत्व है, पर मूर्त्तत्व नहीं है। परंतु पृथ्वी में भूतत्व भी है और मूर्त्तत्व भी है। (५) वह जिसकी उत्पत्ति भिन्न वर्ण या जाति के पिता और माता से हुई हो। दोगला।

संज्ञा पुं० दे० "शंकर"।

संकर घरनी‡–संज्ञा स्त्री० [सं० शंकर+गृहणी] शंकर की पत्नी,

संकरता–संज्ञा स्त्री० [सं०] संकर होने का भाव या धर्म्म। सांकर्य्य। मिलावट। घाल मेल।

सँकरा†–वि० [सं० संकीर्ण] [स्त्री० सँकरी] जो अधिक चौड़ा या विस्तृत न हो। पतला और तंग। जैसे,—सँकरा रास्ता।

संज्ञा पुं० कष्ट। दुःख। विपत्ति।

मुहा०—सँकरे में पड़ना=दुःख में पड़ना। कष्ट में पड़ना।

‡–संज्ञा स्त्री० [सं० शृंखला] शृंखला। साँकल। सीकड़। जंजीर। उ०—घूँघर वार अलकैं विष भरे। संकरे प्रेम चहुँ गये परे।—जायसी।

संज्ञा पुं० दे० "शंकराभरण"।

सँकराना–क्रि० स० [हिं० सँकरा+आना (प्रत्य०)] (१) संकुचित करना। तंग करना। (२) बंद करना।

संकराश्व–संज्ञा पुं० [सं०] खच्चर।

संकरित–वि० [सं०] जिसमें मिलावट हो। मिला हुआ।

संकरिया–संज्ञा पुं० [सं० संकर ?] एक प्रकार का हाथी जो कमरिया और मिरगी के बीच की श्रेणी का होता है। इसका मूल्य कमरिया से कम होता है।

संकरी–संज्ञा पुं० [सं० संकरिन्] वह जो भिन्न वर्ण या जाति के पिता और माता से उत्पन्न हो। संकर। दोगला।

संज्ञा स्त्री० दे० "शांकरी"।

संकरीकरण–संज्ञा पुं० [सं०] (१) नौ प्रकार के पापों में से एक प्रकार का पाप जो गधे, घोड़े, ऊँट, मृग, हाथी, बकरी, भेड़, मीन, साँप या भैंसे का वध करने से होता है। इसके प्रायश्चित्त के लिये कृच्छ्र या अतिकृच्छ्र व्रत करने का विधान है। (२) दो पदार्थों को एक में मिलाने की क्रिया। वर्णसंकरता करना।

संकर्षण–संज्ञा पुं० [सं०] (१) खींचने की क्रिया। (२) हल से जोतने की क्रिया। (३) कृष्ण के भाई बलराम का एक नाम। (४) एकादश रुद्रों में से एक रुद्र का नाम। (५) वैष्णवों का एक संप्रदाय जिसके प्रवर्तक निम्बार्क जी थे।

संकल†–संज्ञा स्त्री० [सं० शृंखला] (१) दरवाजे में लगाने की सिकड़ी या जंजीर। (२) पशुओं को बाँधने का सिक्कड़। (३) सोने या चाँदी की जंजीर जो गले में पहनी जाती है। जंजीर।

संज्ञा पुं० [सं०] (१) बहुत सी चीजों को एक स्थान पर एकत्र करना। संकलन। एकत्री करण। (२) योग। मिलाना। (३) गणित की एक क्रिया जिसे जोड़ कहते हैं। वि० दे० "संकलन"।

संकलन–संज्ञा पुं० [सं०] [वि० संकलित] (१) एकत्र करने की क्रिया। संग्रह करना। जमा करना। (२) संग्रह। ढेर। (३) गणित की योग नाम की क्रिया। जोड़। (४) अनेक ग्रंथों से अच्छे अच्छे विषय चुनने की क्रिया। (५) वह ग्रंथ जिसमें ऐसे चुने हुए विषय हों।

संकलप–संज्ञा पुं० दे० "संकल्प"।

संकलपना ⊛†–क्रि० स० [सं० संकल्प+ना (प्रत्य०)] (१) किसी बात का दृढ़ निश्चय करना। उ०—जैसो पति तेरे लिये मैं संकलप्यो आप। तैसो तैं पायो सुता अपने पुन्न प्रताप।—लक्ष्मणसिंह। (२) किसी धार्मिक कार्य्य के निमित्त कुछ दान देना। संकल्प करना।

क्रि० अ० विचार करना। इच्छा करना। इरादा करना।

संकला–संज्ञा पुं० [सं० शाक] शाक द्वीप।

संकलित–वि० [सं०] (१) चुना हुआ। संगृहीत। (२) जोड़ लगाया हुआ। योजित। (३) इकट्ठा किया हुआ। एकत्र किया हुआ।

संकल्प–संज्ञा पुं० [सं०] (१) कार्य्य करने की वह इच्छा जो मन में उत्पन्न हो। विचार। इरादा। (२) दान, पुण्य या और कोई देवकार्य आरंभ करने से पहले एक निश्चित मंत्र का उच्चारण करते हुए अपना दृढ़ निश्चय या विचार प्रकट करना। (३) वह मंत्र जिसका उच्चारण करके इस प्रकार का निश्चय या विचार प्रकट किया जाता है।

विशेष—इस मंत्र में प्रायः संवत्, मास, तिथि, वार, स्थान, दाता या कर्त्ता का नाम, उपलक्ष और दान या कृत्य आदि का उल्लेख होता है।

(४) दृढ़ निश्चय। पक्का विचार। जैसे,—मैंने तो अब यह संकल्प कर लिया है कि कभी उसके साथ कोई व्यवहार न करूँगा।

संकल्पना–क्रि० स०, अ० दे० "संकलपना"।

संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) संकल्प करने की क्रिया। (२) वासना। इच्छा। अभिलाषा।

संकल्पभव–संज्ञा पुं० [सं०] कामदेव।

संकल्पयोनि–संज्ञा पुं० [सं०] कामदेव।

संकल्पा–संज्ञा स्त्री० [सं०] दक्ष की एक कन्या जो धर्म्म की भार्य्या थी।

सँकाना ⊛†–क्रि० अ० [सं० शंक] शंकित होना। भीत होना। डरना। उ०—मुँह मिठास दृग चीकने, भौंहैं सरल सुभाय। तऊ खरे आदर खरौ, छिन छिन हियो सँकाय।—बिहारी।

संकार–संज्ञा पुं० [सं०] (१) कूड़ा करकट या धूल जो झाड़ू देने से उड़े। (२) आग के जलने का शब्द।

† संज्ञा स्त्री० [सं० संकेत] इशारा। संकेत।

संकारना † क्रि० स० [हिं० संकार+ना (प्रत्य०)] संकेत करना। इशारा करना।

संकाश–अव्य० [सं०] (१) समान। सदृश। मिलते जुलते। उ०—देव दिग्न वर्मपट विकट सुभट उत्कट समर मेरु संकाश रिपु त्रासकारी। बद्ध पाथोधि सुर निकर मोचन सकुल दलन दस सीस भुज बीस भारी।—तुलसी। (२) समीप। निकट। पास।

संकिस्त–† वि० [सं० संकृष्ट] जो अधिक चौड़ा न हो। सँकरा। तंग।

संकीर्ण–वि० [सं०] (१) जो अधिक चौड़ा या विस्तृत न हो। संकुचित। तंग। सँकरा। (२) मिश्रित। मिला हुआ। (३) क्षुद्र। छोटा। (४) नीच। तुच्छ। (५) वर्ण संकर।

संज्ञा पुं० (१) वह राग या रागिनी जो दो अन्य रागों या रागिनियों को मिलाकर बने। इसके १६ भेद कहे गए हैं—चैत्र, मंगलक, नगनिका, चर्च्चा, अतिनाठ, उवर्वा, दोहा, बहुला, गुरवला, गीता, गोपि, हेम्ना, कोपी, कारिका, त्रिपदिका और आभा। (२) संकट। विपत्ति।

संज्ञा पुं० [सं०] साहित्य में एक प्रकार का गद्य जिसमें कुछ वृत्तगंधि और कुछ अवृत्तिगंधि का मेल होता है।

संकीर्णता–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) संकीर्ण होने का भाव। (२) तंगी। सँकरापन। (३) नीचता। (४) क्षुद्रता। ओछापन।

संकीर्त्तन–संज्ञा पुं० [सं०] (१) भली भाँति किसी की कीर्त्ति का वर्णन करना। (२) किसी देवता की सम्यक् रूप से की हुई वंदना या भजन आदि।

संकील–संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार एक प्राचीन ऋषि का नाम।

संकुचन–संज्ञा पुं० [सं०] (१) संकुचित होने की क्रिया। सिकुड़ना। (२) बालकों का एक प्रकार का रोग जिसकी गणना बाल-ग्रह में होती है।

सँकुचना–क्रि० अ० दे० "सकुचना"।

सँकुचाना–क्रि० अ० दे० "सकुचाना"।

संकुचित–वि० [सं०] (१) संकोच युक्त। लज्जित। जैसे,—संकुचित दृष्टि। (२) सिकुड़ा हुआ। सिमटा हुआ। (३) तंग। सँकरा। संकीर्ण। (४) उदार का उलटा। अनुदार। क्षुद्र।

संकुल–वि० [सं०] (१) संकुलित। संकीर्ण। घना। (२) भरा हुआ। परिपूर्ण।

संज्ञा पुं० (१) युद्ध। समर। लड़ाई। (२) समूह। झुंड। (३) भीड़। (४) जनता। (५) परस्पर विरोधी वाक्य। (६) ऐसे वाक्य जिनमें परस्पर किसी प्रकार की संगति न हो। असंगत वाक्य।

संकुलित–वि० [सं०] (१) जो संकुल हो। भरा हुआ। (२) एकत्र। (३) घना।

संकुश–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की मछली जिसे शंकु भी कहते हैं।

संकेत–संज्ञा पुं० [सं०] (१) अपना भाव प्रकट करने के लिये किया हुआ कायिक परिचालन या चेष्टा। इशारा। इंगित।

(२) प्रेमी प्रेमिका के मिलने का पूर्व निर्दिष्ट स्थान। वह स्थान जहाँ प्रेमी और प्रेमिका मिलना निश्चित करें। सहेट। (३) कामशास्त्र संबंधी इंगित। शृंगार चेष्टा। (४) चिह्न। निशान। (५) पते की बातें। उ०—सरुप जानकी जानि कपि कहे सकल संकेत। दीन्हि मुद्रिका लीन्हि सिय प्रीति प्रतीति समेत।—तुलसी।

सँकेत †-वि० दे० "सँकरा"।

सँकेतना-क्रि० स० [सं० संकीर्ण] संकट में डालना। कष्ट में डालना। आपत्ति में डालना। उ०—भएउ चेत, चेतन चित चेता। नैन झरोखे जीव सँकेता।—जायसी।

सँकेलना †-क्रि० स० [सं० संकृष्ट] खींच कर एकत्र करना। समेटना।

संकोच-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सिकुड़ने की क्रिया। खिंचाव। तनाव। (२) लज्जा। शर्म। (३) भय। (४) आगा पीछा। पसो पेश। हिचकिचाहट। (५) कमी। (६) एक प्रकार की मछली। (७) केसर। कुमकुम। (८) एक अलंकार जिसमें 'विकास अलंकार' से विरुद्ध वर्णन होता है या किसी वस्तु का अतिशय संकोच वर्णन किया जाता है। (९) बहुत सी बातों को थोड़े में कहना।

संकोचन-संज्ञा पुं० [सं०] सिकुड़ने की क्रिया।

सँकोचना-क्रि० स० [सं० संकोच] संकुचित करना। संकोच करना। उ०—नींद न परति राति प्रेम पनु एक भाँति सोचत सँकोचत विरंचि हरि हर की।—तुलसी।

संकोचनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] लजालू नाम की लता।

संकोचपत्रक-संज्ञा पुं० [सं०] वृक्षों का एक प्रकार का रोग जिसमें उनके पत्तों में ऊपर कुछ दाने से निकल आते हैं और पत्ते सिकुड़ जाते हैं।

संकोचपिशुन-संज्ञा पुं० [सं०] कुंकुम। केसर।

संकोचित-वि० [सं०] (१) संकोच युक्त। जिसमें संकोच हो। (२) जो विकसित या प्रफुल्लित न हो। अप्रफुल्लित। (३) लज्जित। शरमिंदा।

संज्ञा पुं० तलवार के बत्तीस हाथों में से एक हाथ। तलवार चलाने का एक ढंग या प्रकार।

संकोची-संज्ञा पुं० [सं० संकोचिन्] (१) संकोच करनेवाला। (२) सिकुड़नेवाला। (३) जिसे संकोच या लज्जा हो। शर्म करनेवाला।

संकोपनाॐ-क्रि० अ० [सं० संकोप + ना (प्रत्य०)] क्रोध करना। क्रुद्ध होना। गुस्सा करना।

संक्रंदन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शक्र। इंद्र। सुरपति। उ०—संक्रंदन कृपाल सुरत्राता। यज्ञ भुक्ति मुक्ति के दाता।—गिरिधर। (२) पुराणानुसार भौत्य मनु के एक पुत्र का नाम। (३) दे० "क्रंदन"।

संक्रम-संज्ञा पुं० [सं०] (१) कष्ट या कठिनतापूर्वक चलने की क्रिया। संप्रवेश। (२) पुल आदि बनाकर किसी स्थान में प्रवेश करना। (३) पुल। सेतु। (४) प्राप्ति। (५) संक्रमण। संक्रांति।

संक्रमण-संज्ञा पुं० [सं०] (१) गमन। चलना। (२) अतिक्रमण। (३) सूर्य्य का एक राशि से निकलकर दूसरी राशि में प्रवेश करना। (४) घूमना। फिरना। पर्य्यटन।

संक्रांत-संज्ञा पुं० [सं०] (१) दायभाग के अनुसार वह धन जो कई पीढ़ियों से चला आया हो। (२) सूर्य्य का एक राशि से दूसरी राशि में जाना। वि० दे० "संक्रांति"।

वि० (१) मिला हुआ। प्राप्त। (२) बीता हुआ। गत।

संक्रांति-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) एक राशि से दूसरी राशि में गमन। (२) सूर्य्य का एक राशि से दूसरी राशि में प्रवेश करने का समय।

विशेष—प्रायः सूर्य्य एक राशि में ३० दिन तक रहता है। और जब वह एक राशि से निकलकर दूसरी राशि में जाता है, तब उसे संक्रांति कहते हैं। वास्तव में संक्रांति काल वही होता है, जब सूर्य्य दो राशियों की ठीक सीमा पर या बीच में होता है। यह संक्रांति काल बहुत थोड़ा होता है। पुराणानुसार यह काल बहुत पुनीत माना जाता है और इस समय लोग स्नान, दान, पूजन इत्यादि करते हैं। इस समय का किया हुआ शुभ कार्य्य बहुत पुण्यजनक माना जाता है।

(३) वह दिन जिसमें सूर्य्य एक राशि से दूसरी राशि में जाता है।

संक्रांतिचक्र-संज्ञा पुं० [सं०] फलित ज्योतिष के अनुसार मनुष्यों के शुभ अशुभ जानने के हेतु बनाया हुआ मनुष्य के आकार का नक्षत्रों से अंकित एक प्रकार का चक्र जिससे यह जाना जाता है कि मनुष्य के लिये किस संक्रांति का फल शुभ और किसका अशुभ होगा।

संक्रामक-वि० [सं०] जो संसर्ग या छूत आदि के कारण एक से औरों में फैलता हो। जैसे,—चेचक, प्लेग, महामारी, क्षयी आदि रोग संक्रामक होते हैं।

संक्रामी-संज्ञा पुं० [सं० संक्रामिन्] वह जो लोगों में रोगों का संक्रमण कराता हो। रोग फैलानेवाला।

संक्रीड़-संज्ञा पुं० [सं०] (१) परिहास। हँसी ठट्ठा। (२) एक साम का नाम।

संक्रोनॐ†-संज्ञा स्त्री० [सं० संक्रमण] संक्रमण। संक्रांति। वि० दे० "संक्रांति"। उ०—तिय तिथि तरनि किसोर वय, पुन्य काल सम दोन। काहू पुन्यनि पाइयत, बैस संधि संक्रोन।—बिहारी।

संक्रोश-संज्ञा पुं० [सं०] (१) जोर से शब्द करना। चिल्लाना। (२) एक साम का नाम।

संक्षय–संज्ञा पुं० [सं०] (१) सम्यक् प्रकार से नाश। विनाश। ध्वंस। बरबादी। (२) प्रलय।

संक्षार–संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह स्थान जहाँ दो नदियाँ आदि मिलती हों। संगम। (२) एक साम का नाम।

संक्षिप्त–वि० [सं०] (१) जो संक्षेप में कहा या लिखा गया हो। जो संक्षेप में किया गया हो। खुलासा। (२) थोड़ा। अल्प। (३) छोड़ा या फेंका हुआ।

संक्षिप्त लिपि–संज्ञा स्त्री० [सं०] एक लेखन प्रणाली जिसमें ध्वनियों के लिये ऐसे संक्षिप्त चिह्न या रेखाएँ नियत रहती हैं जिनके द्वारा लिखने से थोड़े काल और स्थान में बहुत सी बातें लिखी जा सकती हैं। व्याख्यान आदि के लिखने में यह अधिक सहायक होती है। व्यापारिक कार्य्यालयों में भी इसका प्रयोग होता है।

संक्षिप्ता–संज्ञा स्त्री० [सं०] ज्योतिष में बुध ग्रह की सात प्रकार की गतियों में से एक प्रकार की गति। बुध जिस समय पुष्य, पुनर्वसु, पूर्व फल्गुनी और उत्तर फल्गुनी नक्षत्र में होता है, उस समय उसकी गति संक्षिप्ता होती है। यह गति २२ दिन तक रहती है।

संक्षिप्ति–संज्ञा स्त्री० [सं०] नाटक में चार प्रकार की आरभटियों में से एक प्रकार की आरभटी। जहाँ क्रोध आदि उग्र भावों की निवृत्ति होती है (जैसे,—रामचंद्र जी की बातों से परशुराम के क्रोध की निवृत्ति होना) वहाँ यह वृत्ति मानी जाती है। वि० दे० "आरभटी"।

संक्षेप–संज्ञा पुं० [सं०] (१) थोड़े में कोई बात कहना। (२) संकोचन। घटाना। कम करना। (३) समाहार। संग्रह। समास। (४) क्षेपक।

संक्षेपण–संज्ञा पुं० [सं०] (१) कम करना। संक्षेप कराना। (२) काट छाँट करने की क्रिया।

संक्षेपतः–अव्य० [सं०] संक्षेप में। थोड़े में। सारांशतः।

संक्षेपतया–अव्य० [सं०] थोड़े में। संक्षेप में।

संक्षेपदोष–संज्ञा पुं० [सं०] साहित्य में एक प्रकार का दोष। जिस बात को जितने विस्तार से कहने या लिखने की आवश्यकता हो, उसे उतने विस्तार में न कह या लिखकर कम विस्तार से कहना या लिखना, जिससे प्रायः सुनने या पढ़नेवाले की समझ में ठीक ठीक अभिप्राय न आवे।

संक्षोभ–संज्ञा पुं० [सं०] (१) चंचलता। (२) कंपन। काँपना। (३) विप्लव। (४) उलट पुलट। (५) गर्व। घमंड। अभिमान। शेखी।

संख–संज्ञा पुं० दे० "शंख"।

संखनारी–संज्ञा स्त्री० [सं० शंखनारी] एक प्रकार का छंद जिसके प्रत्येक पद में दो यगण (य,य) होते हैं। इसे सोमराजी वृत्त भी कहते हैं।

संखहुली–संज्ञा स्त्री० दे० "शंखपुष्पी"।

संखा–संज्ञा पुं० [सं० शंकु] चरखी के ऊपरी पाट में लगी हुई लकड़ी की खूँटी जिसमें एक और छोटी लकड़ी जड़ी रहती है। हथवड़। हत्था।

संखार–संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का पक्षी जिसका रंग भूरा-लक होता है और जिसकी चोंच चिपटी होती है।

संखिया–संज्ञा पुं० [सं० शृंगिक या शृंग विष] (१) एक प्रकार की बहुत जहरीली प्रसिद्ध उपधातु या पत्थर जो कुमाऊँ, चित्राल स्वात, काशगर, उत्तरी बरमा और चीन आदि में पाया जाता है। प्रायः इसका रंग सफेद या मटमैला होता है और यह चिकना तथा चमकीला होता है। जिस समय यह खान से निकलता है, उस समय बहुत कड़ा होता है और बहुत कठिनता से गलता है। पाश्चात्य वैज्ञानिक हरताल और मैनसिल को भी इसी के अंतर्गत मानते हैं। भारतवासी प्रायः यही समझते हैं कि यह पत्थर पर बहुत जहरीले बिच्छू के डंक मारने से संखिया बनता है। (२) उक्त धातु का तैयार किया हुआ भस्म जो देशी भी होता है और विलायती भी। यह बाजारों में सफेद, पीले, लाल, काले आदि कई रंगों का मिलता है और प्रायः औषधों में काम आता है। कुछ लोग कृत्रिम रूप से भी संखिया बनाते हैं। यह बहुत विकट विष होता है और प्रायः हत्या आदि के लिये काम में आता है। वैद्यक के अनुसार यह वीर्य्य तथा बलवर्द्धक, कांतिजनक, लोहभेदक, दाहजनक, वमनकारक, रेचक, त्रिदोषघ्न तथा सब प्रकार के दोषों का नाश करनेवाला माना जाता है। वैद्यक के अतिरिक्त हिकमत और डाक्टरी में भी इसका व्यवहार होता है और उनमें भी इसे बहुत बलवर्द्धक माना गया है। सोमल। संखुल। सम्मुलफार।

पर्य्या०—आखुपाषाण। शंखविष। शृंगिक। गौरीपाषाण।

संख्य–संज्ञा पुं० [सं०] युद्ध। समर। लड़ाई।

संख्यक–वि० [सं०] जिसमें संख्या हो। संख्या वाला। जैसे,—बहु-संख्यक।

संख्यता–संज्ञा स्त्री० [सं०] संख्या का भाव या गुण। संख्यत्व।

संख्या–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) वस्तुओं का वह परिमाण जो गिनकर जाना जाय। एक, दो, तीन, चार आदि की गिनती। तादाद। शुमार। (२) गणित में वह अंक जो किसी वस्तु का, गिनती में, परिमाण बतलावे। अदद। (३) वैद्यक में संप्राप्ति के पाँच भेदों में से एक भेद। अन्य चार भेद विकल्प, प्राधान्य, बल और काल हैं। (४) बुद्धि। (५) विचार।

संख्यान–संज्ञा पुं० [सं०] (१) संख्या। गिनती। (२) गिनने की क्रिया। शुमार। (३) ध्यान। (४) प्रमाण।

संख्यालिपि–संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की लेखन प्रणाली जिसमें वर्णों के स्थान पर संख्या-सूचक चिह्न या अंक लिखे जाते हैं।

संग–संज्ञा पुं० [सं० सङ्ग] (१) मिलने की क्रिया। मिलन। (२) संसर्ग। सहवास। सोहबत। जैसे,—बुरे आदमियों के संग में अच्छे आदमी भी बिगड़ जाते हैं।

क्रि० प्र०—करना।—छोड़ना।—टूटना।—रखना।

मुहा०—संग सोना = सहवास करना। समागम करना। उ०—संग सोई तो फिर लाज क्या! (कहा०) (किसी के) संग लगना = साथ हो लेना। पीछे लगना। (किसी को) संग लेना = अपने साथ लेना या ले चलना। जैसे,—जब चलने लगना, तब हमें भी संग ले लेना।

(३) विषयों के प्रति होनेवाला अनुराग। (४) वासना। आसक्ति। (५) वह स्थान जहाँ दो नदियाँ मिलती हों। नदियों का संगम।

क्रि० वि० साथ। हमराह। सहित। जैसे,—(क) उनके संग चार आदमी आए हैं। (ख) मरने पर क्या कोई हमारे संग जायगा? (ग) हम भी तुम्हारे संग चलेंगे।

संज्ञा पुं० [फा०] पत्थर। पाषाण। जैसे,—संगमूसा, संगमरमर, संग असवद।

वि० पत्थर की तरह कठोर। बहुत कड़ा।

विशेष—इस अर्थ में इस शब्द का प्रयोग प्रायः यौगिक शब्द बनाने में उनके आरंभ में होता है। जैसे,—संगदिल = पाषाण हृदय। कठोर हृदय।

संग अंगूर–संज्ञा पुं० [संग ? हिं० अंगूर] एक प्रकार की वनस्पति जो हिमालय पर पाई जाती है। यह ओषधि के काम में आती है। इसे अंगूर शेफा, गिरी बूटी या पेवराज भी कहते हैं।

संग असवद–संज्ञा पुं० [फा० संग + अ० असवद] काले रंग का एक बहुत प्रसिद्ध पत्थर जो काबे की एक दीवार में लगा हुआ है और जिसे हज करने के लिये जानेवाले मुसलमान बहुत पवित्र समझते तथा चूमते हैं। मुसलमानों का यह विश्वास है कि यह पत्थर स्वर्ग से लाया गया है; और इसे चूमने से पापों का नष्ट होना माना जाता है।

संग कूपी–संज्ञा स्त्री० [?] एक प्रकार की वनस्पति जो ओषधि के काम में आती है।

संग खारा–संज्ञा पुं० [फा० संग + खार] एक प्रकार का पत्थर जो कुछ नीलापन लिए भूरे रंग का और बहुत कड़ा होता है। चकमक पत्थर।

संग जराहत–संज्ञा पुं० [फा० संग + अ० जराहत] एक प्रकार का सफेद चिकना पत्थर जो घाव भरने के लिये बहुत उपयोगी होता है। इसे पीसकर बारीक चूर्ण बनाते हैं जिसे "गच" कहते हैं और जो साँचा बनाने के काम में भी आता है। इसका गुण यह है कि पानी के साथ मिलने पर यह फूलता है और सूखने पर कड़ा हो जाता है। इसलिये इससे मूर्त्तियाँ आदि भी बनाते हैं। इसे कुलगार, कारसी, सफेद सुरमा या सिलखड़ी भी कहते हैं।

संगठन–संज्ञा पुं० [सं० सं० + हिं० गठना] (१) बिखरी हुई शक्तियों, लोगों, या अंगों आदि को इस प्रकार मिलाकर एक करना कि उनमें नवीन जीवन या बल आ जाय। किसी विशिष्ट उद्देश्य या कार्य्य सिद्धि के लिये बिखरे हुए अवयवों को मिलाकर एक और व्यवस्थित करना। एक में मिलाने और उपयोगी बनाने के लिये की हुई व्यवस्था।

विशेष—वास्तव में यह शब्द शुद्ध संस्कृत नहीं है, गलत गढ़ा हुआ है; पर आजकल यह बहुत प्रचलित हो रहा है। कुछ लोग इससे, संस्कृत व्याकरण के नियमों के अनुसार "संगठित" "संगठनात्मक" आदि शब्द भी बनाते हैं, जो अशुद्ध हैं। कुछ लोगों ने इसके स्थान पर "संघटन" शब्द का व्यवहार करना आरंभ किया है, जो शुद्ध संस्कृत है।

(२) वह संस्था या संघ आदि जो इस प्रकार की व्यवस्था से तैयार हो।

संगठित–वि० [हिं० संगठन] जो भली भाँति व्यवस्था करके एक में मिलाया हुआ हो। जो व्यवस्थित रूप में और काम करने के योग्य मिलाकर बनाया गया हो।

संगत–संज्ञा स्त्री० [सं० संगति] (१) संग रहने या होने का भाव। साथ रहना। सोहबत। संगति। (२) संग रहनेवाला। साथी। (३) वेश्याओं या भाँड़ों आदि के साथ रहकर सारंगी, तबला, मँजीरा आदि बजाने का काम।

क्रि० प्र०—बजाना।—में रहना।

मुहा०—संगत करना = गानेवाले के साथ साथ ठीक तरह से तबला, सारंगी सितार आदि बजाना।

(४) वह जो इस प्रकार किसी गाने या नाचनेवाले के साथ रहकर साज बजाता हो। (५) वह मठ जहाँ उदासी या निर्म्मले आदि साधु रहते हैं। (६) संबंध। संसर्ग। (७) प्रसंग। मैथुन। (८) दे० "संगति"।

संगतरा–संज्ञा पुं० [पुर्त०] एक प्रकार की बड़ी और मीठी नारंगी। संतरा।

संगतराश–संज्ञा पुं० [फा०] (१) पत्थर काटने या गढ़नेवाला मजदूर। पत्थर-कट। (२) एक औजार जो पत्थर काटने के काम में आता है।

संगति–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) मिलने की क्रिया। मेल। मिलाप। (२) संग। साथ। सोहबत। संगत। (३) प्रसंग। मैथुन। (४) संबंध। तान्लुक। (५) ज्ञान। (६) किसी विषय का ज्ञान प्राप्त करने के लिये बार बार प्रश्न करने की क्रिया। (७) पुष्टि। (८) पहले कही या लिखी हुई बात के साथ बाद में कही या लिखी हुई बात का मेल। आगे पीछे कहे जानेवाले वाक्यों आदि का मिलान।

क्रि० प्र०—बैठना।—मिलना।—लगना।—लगाना।
(९) दे० "संगत"।

संगतिया—संज्ञा पुं० [हिं० संगत + इया (प्रत्य०)] वह जो किसी गाने या नाचनेवाले के साथ रहकर सारंगी, तबला या और कोई साज बजाता हो। साजिंदा।

संगती—संज्ञा पुं० [हिं० संगत + ई (प्रत्य०)] (१) वह जो साथ में रहता हो। संग रहनेवाला। (२) दे० "संगतिया"।

संगथ—संज्ञा पुं० [सं०] संग्राम। युद्ध।

संगदिल—वि० [फा०] जिसका हृदय पत्थर की तरह कठोर हो। कठोर हृदय। निर्दय। दयाहीन।

संगदिली—संज्ञा स्त्री० [फा०] संगदिल होने का भाव। कठोर-हृदयता। निर्दयता।

संगपुश्त—संज्ञा पुं० [फा०] पत्थर की तरह कड़ी पीठवाला, कच्छप। कछुआ। कमठ।

संगबसरी—संज्ञा पुं० [फा०] एक प्रकार की मिट्टी जिसमें लोहे का अंश अधिक होता है और जो इसी कारण दवा के काम में आती है। यह फारस में होती है और वहीं से आती है।

संगम—संज्ञा पुं० [सं०] (१) दो वस्तुओं के मिलने की क्रिया। मिलाप। सम्मेलन। संयोग। समागम। मेल। उ०—आपुहिं ते उठि जौं चले तिय पिय के संकेत। निसि दिन तिमिर प्रकास कछु गनै न संगम हेत।—देव। (२) दो नदियों के मिलने का स्थान। जैसे,—*गंगा यमुना का संगम प्रयाग में होता है*। उ०—ज्योति जगै यमुनासी लगै जग लाल विलोचन पाप विपोहै। सूर सुता शुभ संगम तुंग तरंग तरंगिणि गंग सी सोहै।—केशव। (३) साथ। संग। सोहबत। उ०—पद्मावति सौं कह्यो विहंगम। कंत लुभाय रहे जेहि संगम।—जायसी। (४) स्त्री और पुरुष का संयोग। मैथुन। प्रसंग। (५) ज्योतिष में ग्रहों का योग। कई ग्रहों आदि का एक स्थान पर मिलना या एकत्र होना।

संगमन—संज्ञा पुं० [सं०] संयोग। मेल।

संगमर—संज्ञा पुं० [देश०] पैदलों की एक जाति।

संगमर्मर—संज्ञा पुं० [फा० संग + अ० मर्मर] एक प्रकार का बहुत चिकना, मुलायम और सफेद प्रसिद्ध पत्थर जो बहुत कीमती होता है। यह मूर्ति, मंदिर तथा महल इत्यादि बनाने में काम आता है। आगरे का ताज महल इसी पत्थर का बना है। भारत में यह जयपुर में अधिक पाया जाता है। इसके अतिरिक्त अजमेर, किशनगढ़ और जोधपुर आदि में भी इसकी कुछ खानें हैं।

संगमूसा—संज्ञा पुं० [फा०] एक प्रकार का काला, चिकना, कीमती पत्थर जो मूर्ति आदि बनाने के काम में आता है।

संगयशब—संज्ञा पुं० [फा०] एक प्रकार का कीमती पत्थर जिसका रंग कुछ हरापन लिये हुए होता है। इसे धो या घिसकर पीने से दिल का धड़कना कम हो जाता है। इसकी ताबीज बनाकर भी लोग पहनते हैं। हौल-दिली।

संगर—संज्ञा पुं० [सं०] (१) युद्ध। समर। संग्राम। (२) आपद्। विपत्ति। (३) अंगीकार। स्वीकार। (४) प्रतिज्ञा। (५) प्रश्न। सवाल। (६) नियम। (७) विष। जहर। (८) शमी वृक्ष का फल।

संज्ञा पुं० [फा०] (१) वह धुस या दीवार जो ऐसे स्थान में बनाई जाती है जहाँ सेना ठहरती है। रक्षा करने के लिये सेना के चारों ओर बनाई हुई खाई, धुस या दीवार। (२) मोरचा।

संगरण—संज्ञा पुं० [सं०] किसी के पीछे चलना। पीछा करना।

सँगरा—संज्ञा पुं० [फा० संग ?] (१) कूओं के तख्ते पर बना हुआ वह छेद जिसमें पानी खींचने का पंप बैठाया हुआ होता है। (२) मोटे बाँस का वह छोटा टुकड़ा जिसकी सहायता से पेशराज लोग पत्थर उठाते हैं। सँगरा।

संगराम*—संज्ञा पुं० दे० "संग्राम"।

संगरासिख—संज्ञा पुं० [?] ताँबे की मैल जो खिजाब बनाने के काम में आती है।

संगरेजा—संज्ञा पुं० [फा०] पत्थर के छोटे छोटे टुकड़े। कंकड़। बजरी।

संगल—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का रेशम जो अमृतसर से आता है। *यह दो तरह का होता है—चरदग़ानी और बनौती।* यह बारीक और मजबूत होता है; इसलिये गोटा, किनारी आदि बनाने के काम में बहुत आता है।

संगव—संज्ञा पुं० [हिं० संग + गौ] वह समय जब चरवाह बछड़ों को दूध पिलाकर और गौओं को दुहकर चराने के लिये ले जाता है।

संगसार—संज्ञा पुं० [फा०] प्राचीन काल का एक प्रकार का प्राण-दंड जो प्रायः अरब, फारस आदि देशों में प्रचलित था। इस दंड में अपराधी भूमि में आधा गाड़ दिया जाता था और *लोग पत्थर मार मारकर उसकी हत्या कर डालते थे।*

वि० नष्ट। चौपट। ध्वस्त।

संगसाल—संज्ञा पुं० [फा०] अफगानिस्तान की उत्तरी सीमा पर एक पहाड़ी में कटी हुई पत्थर की बहुत बड़ी मूर्ति का नाम।

विशेष—अफगानिस्तान की उत्तरीय सीमा पर तुर्किस्तान के मार्ग में समुद्र से आठ हजार फुट की ऊँचाई पर हिंदूकुश की घाटी में बहुत सी पुरानी इमारतों के चिह्न हैं। वहीं पहाड़ में बनी हुई दो बड़ी मूर्तियाँ भी हैं जिनमें से एक १८० और दूसरी ११७ फुट ऊँची है। वहाँवाले इन्हें संगसाल और शाहमम्मा कहते हैं।

संगसी—संज्ञा स्त्री० दे० "सँड़सी"।

संगसुरमा—संज्ञा पुं० [फा०] काले रंग की वह धातु जिसे

पीसकर आँखों में लगाने का सुरमा बनाया जाता है। वि० दे० "सुरमा"।

संग सुलेमानी—संज्ञा पुं० [फ़ा० संग + अ० सुलैमानी] एक प्रकार के रंगीन पत्थर के नग जिनकी मालाएँ आदि बनाकर मुसलमान फकीर पहना करते हैं।

संगाती—संज्ञा पुं० [हिं० संग + आती (प्रत्य०)] (१) वह जो संग रहता हो। साथी। संगी। (२) दोस्त। मित्र।

संगिनी—संज्ञा स्त्री० [हिं० संगी का स्त्री० रूप] (१) साथ रहनेवाली स्त्री। सहचरी। (२) पत्नी। भार्य्या। जोरू।

संगी—संज्ञा पुं० [हिं० संग + ई (प्रत्य०)] (१) वह जो सदा संग रहता हो। साथी। (२) मित्र। बंधु।

संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का कपड़ा जो विवाह आदि में वर का पाजामा तथा स्त्रियों के लहँगे इत्यादि के बनाने के काम में आता है।

वि० [फ़ा० संग = पत्थर] पत्थर का। संगीन। जैसे,—संगी मकान।

संगीत—संज्ञा पुं० [सं०] नृत्य गीत और वाद्य का समाहार। वह कार्य्य जिसमें नाचना गाना और बजाना तीनों हों।

विशेष—संगीत का मुख्य उद्देश्य मनोरंजन है; और भिन्न भिन्न देशों में भिन्न भिन्न प्रकार से मनोरंजन के लिये गाना बजाना हुआ करता है। संभवतः भारतवर्ष में ही सब से पहले संगीत की ओर लोगों का ध्यान गया था। वैदिक काल में ही यहाँ के लोग मंत्रों का गान करते और उसके साथ साथ हस्तक्षेप आदि करते और बाजा बजाते थे। धीरे धीरे इस कला ने इतनी उन्नति की कि "सामवेद" की रचना हुई। इस प्रकार मानो सामवेद भारतीय संगीत का सब से प्राचीन और पूर्व रूप है। पीछे संगीत का बड़ा प्रचार हुआ। नर, नर सभी इससे प्रेम करने लगे। रामायण और महाभारत के समय में इस देश में इसका बड़ा आदर था। नाचने, गाने और बजाने का अभ्यास सभी सभ्य लोग करते थे। संगीत-शास्त्र के प्रथम आचार्य 'भरत' माने जाते हैं। इनके पश्चात् कश्यप, मतंग, पार्ष्टि, नारद, हनुमत् आदि ने संगीत-शास्त्र की आलोचना की। कहते हैं कि प्राचीन यूनान, अरब और फ़ारसवालों ने भारतवासियों से ही संगीत-शास्त्र की शिक्षा ग्रहण की थी।

कुछ लोगों का मत है कि स्वर, राग, ताल, नृत्य, भाव, कोक और हस्त इन सातों के समाहार को संगीत कहते हैं; पर अधिकांश लोग गान, वाद्य और नृत्य को ही संगीत मानते हैं; और यदि वास्तविक दृष्टि से देखा जाय तो शेष चारों का भी समावेश इन्हीं तीनों में हो जाता है। इनमें से गीत और वाद्य को ग्राम्य संगीत तथा नृत्य को संगीत कहते हैं। संगीत के और भी दो भेद किए गए हैं—मार्ग और देशी। कहते हैं कि किसी समय महादेव के सामने भरत ने अपनी संगीत-विद्या का परिचय दिया था। उस संगीत के पथ-प्रदर्शक ब्रह्मा थे और वह संगीत मुक्तिदाता था। वही संगीत-मार्ग कहलाता था। इसके अतिरिक्त भिन्न भिन्न देशों में लोग अपने अपने ढंग पर जो गाते बजाते और नाचते हैं, उसे देशी कहते हैं। कुछ लोग केवल गाने और बजाने को ही और कुछ लोग केवल गाने को ही, भ्रम से, संगीत कहते हैं।

संगीतविद्या—संज्ञा स्त्री० दे० "संगीत-शास्त्र"।

संगीतशास्त्र—संज्ञा पुं० [सं०] वह शास्त्र जिसमें गाने, बजाने, नाचने और हाव भाव आदि दिखलाने की कला का विवेचन हो।

संगीति—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) वार्त्तालाप। बातचीत। (२) दे० "संगीत"।

संगीन—संज्ञा पुं० [फ़ा०] एक प्रकार का अस्त्र जो लोहे का बना हुआ तिफला और नुकीला होता है। यह बंदूक के सिरे पर लगाया जाता है। इससे शत्रु को भोंककर मारते हैं।

वि० (१) पत्थर का बना हुआ। जैसे,—संगीन इमारत। (२) मोटा। जैसे,—संगीन कपड़ा। (३) टिकाऊ। पायदार। मज़बूत। जैसे,—कलावत्तू का काम संगीन होता है। (४) विकट। असाधारण। जैसे,—संगीन जुर्म। संगीन मामला। (५) पेचीदा।

संगुप्त—संज्ञा पुं० [सं० सञ्च] एक बुद्ध का नाम।

संगूढ़—संज्ञा पुं० [सं० संगूढ़] रेखा या लकीर आदि खींचकर निशान की हुई राशि या ढेर।

विशेष—प्रायः लोग अन्न या और किसी प्रकार की राशि लगाकर उसे रेखाओं से घेर या अंकित कर देते हैं, जिसमें यदि कोई उस राशि में से कुछ चुरावे, तो पता लग जाय। इसी प्रकार अंकित की हुई राशि को संगूढ़ कहते हैं।

संगृहीत—वि० [सं०] संग्रह किया हुआ। एकत्र किया हुआ। जमा किया हुआ। संकलित।

संगृहीता—संज्ञा पुं० [सं० संगृहीतृ] वह जो संग्रह करता हो। एकत्र करनेवाला। जमा करनेवाला।

संगोतरा—संज्ञा पुं० [हिं० संगतरा] एक प्रकार की नारंगी। संगतरा। संतरा।

संगोपन—संज्ञा पुं० [सं०] छिपाने की क्रिया। पोशीदा रखना। छिपाना।

संगोपनीय—वि० [सं०] छिपाने के योग्य। पोशीदा रखने के लायक।

संग्रसन—संज्ञा पुं० [सं०] बहुत अधिक भोजन करना।

संग्रह—संज्ञा पुं० [सं०] (१) एकत्र करने की क्रिया। जमा करना। संकलन। संचय। (२) वह ग्रंथ जिसमें अनेक विषयों की बातें एकत्र की गई हों। (३) भोजन, पान, औषध इत्यादि

लाने की क्रिया। (४) मंत्र बल से अपने फेंके हुए अस्त्र को अपने पास लौटाने की क्रिया। (५) सोमयाग। (६) सूची। फेहरिस्त। (७) निग्रह। संयम। (८) रक्षा। हिफाजत। (९) कब्ज। कोष्ठबद्धता। (१०) शिव का एक नाम। (११) पाणिग्रहण। विवाह। (१२) जमघट। जमाव। (१३) सभा। गोष्ठी। (१४) मैथुन। स्त्री-प्रसंग। (१५) ग्रहण करने की क्रिया। (१६) स्वीकार। मंजूरी।

संग्रहग्रहणी—संज्ञा स्त्री० दे० "संग्रहणी"।

संग्रहण—संज्ञा पुं० [सं०] (१) स्त्री को हर ले जाने की क्रिया। (२) ग्रहण। (३) प्राप्ति। (४) नगों को जड़ने की क्रिया। (५) मैथुन। सहवास। (६) व्यभिचार।

संग्रहणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का रोग जिसमें भोजन किया हुआ पदार्थ पचता नहीं, बराबर पाखाने के रास्ते निकल जाता है। इसमें पेट में पीड़ा होती है और दस्त दुर्गंधयुक्त, कभी पतला कभी गाढ़ा, होता है। शरीर दुर्बल और निस्तेज हो जाता है। यह रोग चार प्रकार का होता है—वातज, कफज, पित्तज और सन्निपातज। रात की अपेक्षा दिन के समय यह रोग अधिक कष्ट देता है। यह रोग प्रायः अधिक दिनों तक रहता और कठिनता से अच्छा होता है। ग्रहणी।

संग्रहना‡—क्रि० स० [सं० संग्रहण] संग्रह करना। संचय करना। जमा करना। उ०—संग्रहै सनेह बस अधम असाधु को। गिद्ध सेवरी को कहो करिहै सराध को।—तुलसी।

संग्रही—संज्ञा पुं० [सं० संग्रहिन्] (१) संग्रह करनेवाला। जो एकत्र या जमा करता हो। (२) महसूल या लगान आदि उगाहनेवाला कर्मचारी। कर एकत्र करनेवाला।

संग्रहीता—संज्ञा पुं० [सं० संग्रहीतृ] वह जो संग्रह करता हो। जमा करनेवाला। एकत्र करनेवाला।

संग्राम—संज्ञा पुं० [सं०] युद्ध। लड़ाई। समर।

संग्रामजित्—संज्ञा पुं० [सं०] सुभद्रा के उदर से उत्पन्न श्रीकृष्ण के एक पुत्र का नाम।

संग्राम पटह—संज्ञा पुं० [सं०] रण में बजनेवाला एक प्रकार का बाजा। रण भेरी। रण डिमडिम।

संग्राम भूमि—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्थान जहाँ संग्राम होता हो। लड़ाई का मैदान। युद्ध-क्षेत्र।

संग्राह—संज्ञा पुं० [सं०] (१) ढाल या मूठ पकड़ना। (२) हाथ की बँधी हुई मुट्ठी। मुक्का।

संग्राहक—संज्ञा पुं० [सं०] वह जो संग्रह करता हो। एकत्र या जमा करनेवाला। संग्रहकर्ता।

संग्राही—संज्ञा पुं० [सं० संग्राहिन्] (१) [illegible] सोंठ, धनिया, [illegible] पदार्थों की औषधियों को। (२) वह पदार्थ जो मल के पेट से निकलने में बाधक होता है। कब्जियत करनेवाली चीज। (३) कुटज वृक्ष।

संग्राह्य—वि० [सं०] संग्रह करने योग्य। जमा करने लायक।

संघ—संज्ञा पुं० [सं०] (१) समूह। समुदाय। गोल। गण। (२) मनुष्यों का वह समुदाय जो किसी विशेष उद्देश से एकत्र हुआ हो। समिति। सभा। समाज। (३) प्राचीन भारत का एक प्रकार का प्रजातंत्र राज्य जिसमें शासनाधिकार प्रजा द्वारा चुने हुए प्रतिनिधियों के हाथ में होता था। (४) इसी संस्था के ढंग पर बना हुआ बौद्ध श्रमणों आदि का धार्मिक समाज जिसकी स्थापना महात्मा बुद्ध ने की थी। पीछे से यह बौद्ध-धर्म के त्रिरत्नों में से एक रत्न माना जाता था। शेष दो त्रिरत्न बुद्ध और धर्म थे। (५) साधुओं आदि के रहने का मठ। संगत।

संघगुप्त—संज्ञा पुं० [सं०] वाग्भट के पिता का नाम।

संघचारी—संज्ञा पुं० [सं० संघचारिन्] (१) जो अधिकतर लोगों का साथ दे। बहुपक्ष का अनुसरण करनेवाला। बहुमत के अनुसार आचरण करनेवाला। (२) वे जो झुंड या समुदाय में चलते हों। जैसे,—वृक, मृग, हाथी इत्यादि। (३) मछली।

संघट—संज्ञा पुं० [सं० संघट्ट] (१) संघटन। मिलन। संयोग। (२) परस्पर संघर्ष। युद्ध। लड़ाई। झगड़ा।

संघटन—संज्ञा पुं० [सं०] (१) मेल। संयोग। (२) संघर्ष। संघर्षण। (३) साहित्य में नायक नायिका का संयोग। मिलाप। (४) उपकरणों के द्वारा किसी पदार्थ का निर्माण। रचना। (५) बनावट। (६) दे० "संगठन"।

संघट्ट—संज्ञा पुं० [सं०] (१) रचना। बनावट। गठन। (२) संघर्ष।

संघट्ट चक्र—संज्ञा पुं० [सं०] फलित ज्योतिष में युद्ध-फल विचारने का नक्षत्रों का एक चक्र।

विशेष—इस चक्र के द्वारा यह जाना जाता है कि युद्ध में जीत होगी या हार। यदि युद्धार्थ प्रस्थान करनेवाले का जन्म नक्षत्र इस चक्र में शुभ होता है, तो वह युद्ध में विजय प्राप्त करता है; और यदि अशुभ होता है, तो पराजय। स्वरोदय में इस चक्र का विवरण इस प्रकार दिया है। एक त्रिकोण चक्र बनाकर उस चक्र में टेढ़ी रेखाएँ खींचकर उनमें अश्विनी आदि २७ नक्षत्र अंकित करने चाहिएँ। तीन नक्षत्रों का एक साथ वेध होता है। वेध क्रम इस प्रकार होता है। अश्विनी का रेवती के साथ, चित्रा नक्षत्र का श्लेषा और पूर्व के साथ, और ज्येष्ठा का मूल के साथ वेध होता है। यदि राजा का जन्म नक्षत्र इस चक्र वेध में न हो, या सौम्य ग्रह सहित वेध हो, तो उस समय युद्ध नहीं होता। यदि क्रूर नक्षत्र के साथ वेध हो, तो उस समय अवश्य युद्ध होगा। सौम्य, स्वामी, मित्रामित्र आदि नक्षत्रों के पूर्व

तथा अतिचार प्रभृति गति द्वारा भी शुभाशुभ का निर्णय होता है।

संघट्टन—संज्ञा पुं० [सं०] (१) बनावट। रचना। गठन। (२) मिलन। संयोग। (३) घटना। (४) दे० "संघटन"।

संघट्टा—संज्ञा स्त्री० [सं०] लता। वल्ली। बेल।

संघट्टित—वि० [सं०] (१) एकत्र किया हुआ। (२) गठित। निर्मित। बना हुआ। रचित। (३) चलाया हुआ। चालित। (४) घर्षित।

संघपति—संज्ञा पुं० [सं०] वह जो किसी संघ या समूह का प्रधान हो। दलपति। नायक।

संघपुष्पी—संज्ञा स्त्री० [सं०] धातकी। धव। धौ।

सँघराना‡—क्रि० स० [हिं० संग ?] दुखी या उदासीन गौ को, उसका दूध दूहने के लिये, परचाना और फुसलाना।

विशेष—जब बच्चा देने के उपरांत गौ उस बच्चे को नहीं चाटती या दूध नहीं पिलाती, तब उस बच्चे के शरीर पर शीरा आदि लगा देते हैं जिसकी मिठास के कारण वह उसे चाटने और दूध पिलाने लगती है। इसी प्रकार जब बच्चा मर जाता है और गौ दूध नहीं देती, तब कुछ लोग उसके बछड़े की खाल में भूसा भरकर उसे गौ के सामने खड़ा कर देते हैं, जिसे देखकर वह दूध दूहने देती है। गौ के साथ इसी प्रकार की क्रियाएँ करने को "सँघराना" कहते हैं।

संघर्ष—संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक चीज का दूसरी चीज के साथ रगड़ खाना। संघर्षण। रगड़। घिस्सा। (२) दो विरोधी व्यक्तियों या दलों आदि में स्वार्थ के विरोध के कारण होनेवाली प्रतियोगिता या स्पर्धा। (३) वह अहंकार-सूचक वाक्य जो अपने प्रतिपक्षी के सामने अपना बड़प्पन जतलाने के लिये कहा जाय। (४) किसी चीज को घोटने या रगड़ने की क्रिया। रगड़ना। घिसना। (५) धीरे धीरे चलना। टहलना। (६) शर्त्त लगाना। बाजी लगाना।

संघर्षण—संज्ञा पुं० दे० "संघर्ष"।

संघर्षी—संज्ञा पुं० [सं० संघर्षिन्] (१) वह जो किसी प्रकार का संघर्ष करता हो। (२) वह जो किसी के साथ प्रतियोगिता करता हो। प्रतिस्पर्धा करनेवाला। (३) रगड़ने या घिसनेवाला।

संघवृत्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] साथ कार्य्य करने के निमित्त एकत्र होने या सम्मिलित होने की क्रिया। सहयोग।

संघाट—संज्ञा पुं० [सं०] दल, समूह या संघ आदि में रहनेवाला। वह जो दल बाँधकर रहता हो।

संघाटिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) स्त्रियों का प्राचीन काल का एक प्रकार का पहनावा। (२) वह स्त्री जो प्रेमी प्रेमिका को मिलावे। दूती। कुट्टिनी। कुटनी। (३) युग्म। जोड़ा। (४) सिंघाड़ा। (५) कुंभी।

संघाटी—संज्ञा स्त्री० [सं०] बौद्ध भिक्षुओं के पहनने का एक प्रकार का वस्त्र।

संघाणक—संज्ञा पुं० [सं०] श्लेष्मा। कफ।

संघात—संज्ञा पुं० [सं०] (१) जमाव। समूह। समष्टि। (२) आघात। चोट। (३) हत्या। वध। (४) इक्कीस नरकों में से एक नरक का नाम। (५) कफ। (६) नाटक में एक प्रकार की गति। (७) शरीर। उ०—सो लोचन गोचर सुखदाता। देखन चरण तजउँ संघाता।—स्वामी रामकृष्ण। (८) निवास-स्थान। संघात। उ०—हो मुख रानें मत्य के थाना। जहाँ मत्य तहँ धर्म संघाता।—जायसी।

वि० सघन। निविड़। घना।

संघातक—संज्ञा पुं० [सं०] (१) घात करनेवाला। प्राण लेनेवाला। (२) वह जो बरबाद करता हो। नष्ट करनेवाला।

संघातचारी—संज्ञा पुं० [सं० संघातचारिन्] वह जो अपने वर्ग के और प्राणियों या लोगों के साथ मिलकर, या उनका संघ बनाकर रहता हो।

संघातपत्रिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) शतपुष्पा। सोआ। (२) सौंफ। मिश्रेया।

संघातबलप्रवृत्त—संज्ञा पुं० [सं०] सुश्रुत के अनुसार एक प्रकार का आधिभौतिक और आगंतुक रोग।

संघाती—संज्ञा पुं० [सं० संग, हिं० संग+घाती (प्रत्य०)] (१) साथी। सहचर। (२) मित्र।

संज्ञा पुं० [सं० संघात] संघातक। प्राणनाशक।

संघार‡—संज्ञा पुं० दे० "संहार"।

संघारना‡—क्रि० स० [सं० संहार] (१) संहार करना। नाश करना। (२) मार डालना। हत्या करना। उ०—तहँ निषाद इक क्रौंच सँघार्यो। किय बिलाप ताकी तिय भार्यो।—पद्माकर।

संघाराम—संज्ञा पुं० [सं०] बौद्ध भिक्षुओं तथा श्रमणों आदि के रहने का मठ। विहार।

संघावशेष—संज्ञा पुं० [सं०] बौद्ध मत के अनुसार एक प्रकार का पाप।

सँघेरना‡—क्रि० स० [हिं० सँघेरा या संग+घेरना] रस्सी से दो गौओं में से एक का दाहिना और दूसरी का बायाँ पैर एक में, इसलिये बाँधना कि जिसमें वे चरने के समय जंगल में बहुत दूर न निकल जायँ।

सँघेरा‡—संज्ञा पुं० [हिं० संग+घेरना] वह रस्सी जिससे दो गौओं का एक एक पैर इसलिये एक साथ बाँध दिया जाता है जिसमें वे जंगल में चरती चरती बहुत दूर न निकल जायँ।

सँघेला‡—संज्ञा पुं० [सं० संग] (१) साथी। सहचर। संगी। (२) मित्र। दोस्त।

संघोष—संज्ञा पुं० [सं०] जोर का शब्द। घोष।

संच ⊛†–संज्ञा पुं० [सं० संचय] (१) संग्रह करने की क्रिया । संचय । एकत्रीकरण । (२) रक्षा । देखभाल । उ०—जननि जनक ते अधिक गाधि सुत करिहैं संच तिहारो । कौशिक शासन सकल शीश धरि सिगरो काज सिधारो ।—रघुराज । संज्ञा पुं० [सं०] लिखने की स्याही ।

संचकर ⊛–संज्ञा पुं० [सं० संचय + कर] (१) संचय करनेवाला । (२) कृपण । कंजूस ।

संचना ⊛†–क्रि० स० [सं० संचयन] (१) एकत्र करना । संग्रह करना । संचय करना । उ०—निरधन के धन अहैं स्याम अरु स्यामा दोऊ । सुकवि तिनहिं हम गह्यो और को संचहु कोऊ ।—अंबिकादत्त । (२) रक्षा करना । देख भाल करना ।

संचय–संज्ञा पुं० [सं०] (१) राशि । समूह । ढेर । (२) एकत्र या संग्रह करने की क्रिया । एकत्रीकरण । संकलन । जमा करना । (३) अधिकता । ज्यादती । बहुतायत ।

संचयन–संज्ञा पुं० [सं०] संचय करने की क्रिया । एकत्र या संग्रह करने की क्रिया । जमा करना ।

संचयिक–संज्ञा पुं० [सं०] वह जो संचय करता हो । एकत्र करनेवाला । जमा करनेवाला ।

संचयी–संज्ञा पुं० [सं० संचयिन्] (१) संचय करनेवाला । जमा करनेवाला । (२) कृपण । कंजूस ।

संचर–संज्ञा पुं० [सं०] (१) गमन । चलना । (२) सेतु । पुल । (३) जल के निकलने का मार्ग । (४) मार्ग । पथ । रास्ता । (५) स्थान । जगह । (६) देह । शरीर । (७) साथी । सहायक ।

संचरण–संज्ञा पुं० [सं०] (१) संचार करने की क्रिया । चलना । गमन । (२) प्रसारण । फैलाना । (३) काँपना ।

संचरना ⊛†–क्रि० अ० [सं० संचरण] (१) घूमना । फिरना । चलना । उ०—ठावहिं ठाँव लीन्ह सब बाँटी । रहा न बीच जो सँचरै चाँटी ।—जायसी । (२) फैलना । प्रसारित होना । उ०—सरद चाँदनी संचरत चहुँ दिसि आनि । बिधुहि जोरि कर बिनवति कुल गुरु जानि ।—तुलसी । (३) चल निकलना । व्यवहृत होना । प्रचलित होना ।

संचल–संज्ञा पुं० [सं०] सौवर्चल लवण । साँचर नमक ।

संचलन–संज्ञा पुं० [सं०] (१) हिलना डोलना । (२) चलना फिरना । (३) काँपना ।

संचलनाड़ी–संज्ञा स्त्री० [सं०] धमनी । रग । नस ।

संचान–संज्ञा पुं० [सं०] श्येन नामक पक्षी । बाज़ । शिकरा ।

संचाय्य–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का यज्ञ ।

संचार–संज्ञा पुं० [सं०] (१) गमन । चलना । (२) फैलने या विस्तृत होने की क्रिया । (३) कष्ट । विपत्ति । (४) मार्ग प्रदर्शन । रास्ता दिखलाने की क्रिया । (५) चलाने की क्रिया । (६) साँप की मणि । (७) देश । (८) ग्रहों या नक्षत्रों का एक राशि से दूसरी राशि में जाना ।

विशेष—ज्योतिष के अनुसार संचार समय में चंद्र जिस रूप का होता है, उसी प्रकार का फल भी होता है । यदि चंद्र शुद्ध होता है, तो साथ में जिस ग्रह का शुभ भाव होता है, उस ग्रह के शुभ फल की वृद्धि होती है । यदि संचार काल में विधु शुद्ध नहीं होता, तो शुभ भाववाले शुभ ग्रह के शुभ फल में न्यूनता होती है । यदि कोई अशुभ ग्रह शुद्ध चंद्र के साथ होता है, तो अशुभ फल की कमी होती है । फलित ज्योतिष में संचार के संबंध में इसी प्रकार की और भी बहुत सी बातें दी हुई हैं ।

(९) उत्तेजन । (१०) रतिमंदिर की अवधि ।

संचारक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) संचार करनेवाला । फैलानेवाला । (२) चलानेवाला । (३) दलपति । नायक । नेता ।

संचारना ⊛†–क्रि० स० [सं० संचारण] (१) संचार का सकर्मक रूप । किसी वस्तु का संचार करना । (२) प्रचार करना । व्यवहार में प्रयुक्त करना । फैलाना ।

संचारिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) दूती । कुटनी । कुटनी । (२) नाक । नासिका । (३) युग्म । जोड़ा ।

संचारिणी–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) हंसपदी नाम की लता । (२) लाल लज्जालू ।

संचारित–वि० [सं०] जिसका संचार किया गया हो । चलाया या फैलाया हुआ ।

संचारी–संज्ञा पुं० [सं० संचारिन्] (१) धूप नामक गंध द्रव्य । (२) वायु । हवा । (३) साहित्य में वे भाव जो रस के उपयोगी होकर, जल की तरंगों की भाँति, उनमें संचरण करते हैं । ऐसे भाव मुख्य भाव की पुष्टि करते हैं और समय समय पर मुख्य भाव का रूप धारण कर लेते हैं । स्थायी भावों की भाँति ये रस-सिद्धि तक स्थिर नहीं रहते, बल्कि अत्यंत चंचलतापूर्वक सब रसों में संचरित होते रहते हैं । इन्हीं को व्यभिचारी भाव भी कहते हैं । साहित्य में नीचे लिखे ३३ संचारी भाव गिनाए गए हैं—निर्वेद, ग्लानि, शंका, असूया, श्रम, मद, धृति, आलस्य, विषाद, मति, चिंता, मोह, स्वप्न, विबोध, स्मृति, आमर्ष, गर्व, उत्सुकता, अवहित्थ, दीनता, हर्ष, व्रीड़ा, उग्रता, निद्रा, व्याधि, मरण, अपस्मार, आवेग, त्रास, उन्माद, जड़ता, चपलता और वितर्क । (४) संगीत शास्त्र के अनुसार किसी गीत के चार चरणों में से तीसरा चरण । (५) आगन्तुक ।

वि० संचरण करनेवाला । गतिशील ।

संचाल–संज्ञा पुं० [सं० संचलन] (१) कंपन । काँपना । (२) चलना । चलाना ।

संचालक-संज्ञा पुं० [सं०] वह जो संचालन करता हो। चलाने या गति देनेवाला। परिचालक।

संचालन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) चलाने की क्रिया। परिचालन। (२) काम जारी रखना या चलाना। प्रतिपादन। (३) नियंत्रण। (४) देख रेख।

संचाली-संज्ञा स्त्री० [सं०] गुंजा। घुँघची।

संचित-वि० [सं०] (१) संचय किया हुआ। जमा किया हुआ। एकत्र किया हुआ। (२) ढेर लगाया हुआ।

संचिता-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की वनस्पति।

संचिति-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक पर एक रखना। तही लगाना।

संचित्रा-संज्ञा स्त्री० [सं०] मूषाकर्णी। मूसाकानी।

संचोदक-संज्ञा पुं० [सं०] ललित विस्तार के अनुसार एक देवपुत्र का नाम।

संछर्दन-संज्ञा पुं० [सं०] ग्रहण में एक प्रकार का मोक्ष। राहु यदि ग्राह्य मंडल में पूर्व भाग से ग्रसना आरंभ करके फिर पूर्व दिशा को ही चला जावे, तो उसको संछर्दन मोक्ष कहते हैं। फलित ज्योतिष के अनुसार इससे संसार का मंगल और धान्य की वृद्धि होती है।

संज-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शिव का एक नाम। (२) ब्रह्मा का एक नाम।

संजन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बाँधने की क्रिया। (२) बंधन। (३) बिखरे हुए अंगों आदि को मिलाकर एक करना। संघट्टन।

संजनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] वैदिक काल का एक प्रकार का अस्त्र जिससे वध या हत्या की जाती थी।

संजम*-संज्ञा पुं० दे० "संयम"।

संजमनी-संज्ञा स्त्री० [सं० संयमनी] यमराज की नगरी। (डिं०)

संजमनीपति-संज्ञा पुं० [सं० यमनीपति] यमराज। यमदेव। (डिं०)

संजमी-संज्ञा पुं० [सं० संयमी] (१) नियम से रहनेवाला। संयमी। (२) व्रती। (३) जितेंद्रिय।

संजय-संज्ञा पुं० [सं०] (१) धृतराष्ट्र का मंत्री जो महाभारत के युद्ध के समय धृतराष्ट्र को उस युद्ध का विवरण सुनाता था। कहते हैं कि इसे दिव्य दृष्टि प्राप्त थी; अतः यह हस्तिनापुर में बैठा हुआ कुरुक्षेत्र में होनेवाली सारी घटनाएँ देखता था और उनका वर्णन अंधे धृतराष्ट्र को सुनाता था। (२) सुपार्श्व का पुत्र। (३) राजन्य के पुत्र का नाम। (४) ब्रह्मा। (५) शिव।

संजा-संज्ञा स्त्री० [सं०] बकरी।

संजात-वि० [सं०] (१) उत्पन्न। (२) प्राप्त।

संज्ञा पुं० पुराणानुसार एक जाति का नाम।

संजाफ-संज्ञा स्त्री० [फा० संजफ़ या संजाफ़] (१) झालर। किनारा। कोर। (२) चौड़ी और आड़ी गोट जो प्रायः रजाइयों और लिहाफ़ों आदि के किनारे किनारे लगाई जाती है। गोट। मगजी।

क्रि० प्र०—लगाना।—लगाना।

संज्ञा पुं० एक प्रकार का घोड़ा जिसका रंग या तो आधा लाल, आधा सफेद होता है या आधा लाल, आधा हरा।

संजाफी-वि० [हिं० संजाफ] जिसमें संजाफ लगी हो। किनारेदार। झालरदार।

संज्ञा पुं० वह घोड़ा जिसका रंग संजाफी हो। आधा लाल आधा हरा घोड़ा।

संजाब-संज्ञा पुं० [फा० संजाब] (१) एक प्रकार का घोड़ा। वि० दे० "संजाफ"। उ०—पच कल्यान सँजाब बखानी। महि सायर सब चुन चुन आनी।—जायसी। (२) एक प्रकार का चमड़ा।

संज्ञा पुं० [फा०] चूहे के आकार का एक जंतु जो प्रायः तुर्किस्तान में होता है। इसका मांस वक्षस्थल की पीड़ा, कास और व्रण के लिये उपकारक माना जाता है। इसकी खाल पर बहुत मुलायम रोएँ होते हैं, और उससे पोस्तीन बनाते हैं।

संजीदगी-संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] विचार या व्यवहार आदि की गंभीरता।

संजीदा-वि० [फ़ा०] (१) जिसके व्यवहार या विचारों में गंभीरता हो। गंभीर। शांत। (२) समझदार। बुद्धिमान्।

संजीव-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मरे हुए को फिर से जिलाना। पुनः जीवन देना। (२) वह जो मरे हुए को जिलावे। फिर से जीवन-दान करनेवाला। (३) बौद्धों के अनुसार एक नरक का नाम।

संजीवक-संज्ञा पुं० [सं०] वह जो मरे हुए को जीवन दान देता हो। मुर्दे को जिलानेवाला।

संजीवकरणी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) एक प्रकार की विद्या जिसके प्रभाव से मृत मनुष्य जीवित हो जाता है। महाभारत में लिखा है कि शुक्राचार्य्य यह विद्या जानते थे। (२) एक प्रकार की कल्पित ओषधि जिसके सेवन से मृत व्यक्ति जीवित होना माना जाता है।

संजीवन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) भली भाँति जीवन व्यतीत करने की क्रिया। (२) जीवन देनेवाला। जिलानेवाला। (३) मनु के अनुसार इक्कीस नरकों में से एक नरक का नाम।

संजीवनी-वि० स्त्री० [सं०] जीवन-प्रदायनी। जीवन देनेवाली।

संज्ञा स्त्री० (१) एक प्रकार की कल्पित ओषधि। कहते हैं कि इसके सेवन से मरा हुआ मनुष्य जी उठता है। (२) वैद्यक के अनुसार एक औषध का नाम। इसके लिये पहले वायविडंग, सोंठ, [illegible] छिलका, आँवला, बहेड़ा, [illegible] सिंगी मोहरा इन

को एक दिन गोमूत्र में खरल करके एक रत्ती की गोलियाँ बनाते हैं। कहते हैं कि इसकी एक गोली अदरक के रस के साथ खिलाने से अजीर्ण, दो गोलियाँ खिलाने से विसूचिका, तीन गोलियाँ खिलाने से सर्पविष और चार गोलियाँ खिलाने से सन्निपात नष्ट होता है।

संजीवनी विद्या–संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की कल्पित विद्या। कहते हैं कि इस विद्या के द्वारा मरे हुए व्यक्ति को जिलाया जा सकता है। महाभारत में लिखा है कि दैत्यों के गुरु शुक्राचार्य्य यह विद्या जानते थे; और इसी के द्वारा वे उन दैत्यों को फिर से जिला देते थे जो देवताओं के साथ युद्ध करने में मारे जाते थे। देवताओं के कहने से बृहस्पति के पुत्र कच यह विद्या सीखने के लिये शुक्राचार्य्य के पास जाकर रहने लगे; और अनेक कठिनाइयाँ सहने के उपरांत अंत में उनसे यह विद्या सीखकर आए।

संजीवी–संज्ञा पुं० [सं० संजीविन्] वह जो मृतकों को जीवनदान देता हो। मुरदों को जिलानेवाला।

संजुक्त–वि० दे० "संयुक्त"।

संजुग–संज्ञा पुं० [सं० संयुग] संग्राम। युद्ध। लड़ाई।

संजुता–संज्ञा स्त्री० [सं० संयुता] एक प्रकार का छंद जिसके प्रत्येक चरण में स, ज, ज, ग होते हैं। इसे "संयुत" या "संयुता" भी कहते हैं।

सँजोइ–क्रि० वि० [सं० संयोग] साथ में। संग में। उ०—वरी तीसरी दूसरे पहर गहर जनि होइ। मानिनि भोजन करत की भैयनति सखी सँजोइ।—देव।

सँजोइल–वि० [सं० सज्जित, हिं० सँजोना] (१) अच्छी तरह सजाया हुआ। सुसज्जित। उ०—सूर सँजोइल साजि सुबाजि, सुसेल धरे बगमेल चले हैं। भारी भुजा भरी, भारी सरीर, बली बिजयी सब भाँति भले हैं।—तुलसी। (२) एक स्थान पर जमा किया हुआ। एकत्र।

सँजोग–संज्ञा पुं० दे० "संयोग"। उ०—वर सँजोग मोहि मेरवहु कलस जाति हौं मानि। जा दिन इच्छा पूजै बेगि चढ़ाउँ आनि।—जायसी।

संजोगिनी–संज्ञा स्त्री० [सं० संयोगिनी] वह स्त्री जो अपने पति या प्रेमी के पास अथवा साथ हो। संयोगिनी। वियोगिनी से विपरीत।

संजोगी–संज्ञा पुं० [सं० संयोगिन्] (१) संयुक्त। मिले हुए। (२) भार्या सहित। स्त्री सहित। वि० दे० "संयोगी"। (३) दो जुड़े हुए पिंजड़े जो बहुधा तीतर पालनेवाले रखते हैं।

सँजोना–क्रि० स० [सं० सज्जा] सज्जित करना। अलंकृत करना। सजाना। उ०—(क) कुंज हमारे में होइ चाखो चाउँ हेत जो। विविधि कुसुम सँजोइ निज हाँ सेज करि।—लक्ष्मणसिंह। (ख) हे दिगंबरा, तू आ पैरों पर पड़कर दीप बने हुए मना रहा सब तक मैं अर्घ जल सँजोती हूँ।—लक्ष्मणसिंह।

सँजोवन–संज्ञा पुं० [हिं० सँजोना] सज्जित करने की क्रिया सजाने का व्यापार।

सँजोवल–वि० [हिं० सँजोना] (१) सुसज्जित। (२) सेना सहित। उ०—होहि सँजोवल कुँवर जो भोगी। सब दर छेंकि धरहिं अरु योगी।—जायसी। (३) सावधान। होशियार।

सँजोवा–संज्ञा पुं० [हिं० सँजोना] (१) सजावट। शृंगार। (२) जमाव। जमघट।

सँजोह–संज्ञा पुं० [सं० संयोग] लकड़ी का वह बेलन जो जुलाहे कपड़ा बुनते समय छत से लटका देते हैं और जिसमें रस्सी या कंघी लगी रहती है। ढरकी फेंकते समय इसे आगे बढ़ा देते हैं और उसके पश्चात् इसे खींचकर बाने को कसते हैं। इसे 'हत्था' भी कहते हैं।

संज्ञ–संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जो सब बातें अच्छी तरह जानता हो। वह जो सब विषयों का अच्छा जानकार हो। (२) पीतकाष्ठ। हलदी।

संज्ञक–वि० [सं०] संज्ञावाला। जिसकी संज्ञा हो। (इस शब्द का प्रयोग प्रायः यौगिक बनाने में शब्द के अंत में होता है।)

संज्ञपन–संज्ञा पुं० [सं०] (१) मार डालने की क्रिया। हत्या। (२) कोई बात लोगों पर प्रकट करने की क्रिया। विज्ञापन।

संज्ञप्ति–संज्ञा स्त्री० दे० "संज्ञपन"।

संज्ञा–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) चेतना। होश। (२) बुद्धि। अक्ल। (३) ज्ञान। (४) किसी पदार्थ आदि का बोधक शब्द। नाम। आख्या। (५) व्याकरण में वह विकारी शब्द जिससे किसी यथार्थ या कल्पित वस्तु का बोध होता है। जैसे,—मकान, नदी, घोड़ा, राम कृष्ण, खेल, नाटक आदि। (६) हाथ, आँख या सिर आदि हिलाकर कोई भाव प्रकट करना। संकेत। इशारा। (७) गायत्री। (८) सूर्य की पत्नी का नाम जो विश्वकर्मा की कन्या थी। मार्कंडेय पुराण के अनुसार यम और यमुना का जन्म इसी के गर्भ से हुआ था। वि० दे० "छाया" (७)।

संज्ञाकरण रस–संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक के अनुसार चेतना लानेवाली एक औषध का नाम।

विशेष—इस औषध में शुद्ध शिंगरफ, सेंधा नमक, काली मिर्च, रुद्राक्ष, कटभी, कायफल, महुआ और समुद्रफल आदि पड़ते हैं। इनकी मात्रा बराबर होती है। कहते हैं कि इसके सेवन से मनुष्य का सन्निपात नष्ट होता है।

संज्ञान–संज्ञा पुं० [सं०] संकेत। इशारा।

संज्ञापन–संज्ञा पुं० [सं०] (१) दूसरों पर कोई बात प्रकट करना। विज्ञापन। (२) वध।

संज्ञापुत्री–संज्ञा स्त्री० [सं०] सूर्य की पुत्री यमुना का एक नाम।

उ०—संझामुखी फुरत्याग चंद्रातलि चंदलेखा। मार कानी नयनी चंद्रकीतिरा स्गना।—गिरिधरदास।

संझासुत-संज्ञा पुं० [सं०] शनि का एक नाम।

संझाहीन-वि० [सं०] जिसे संज्ञा या चेतना न हो। चेतना-रहित। बेहोश। बेसुध।

संज्वर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बहुत तीव्र ज्वर। बहुत तेज बुखार। (२) किसी प्रकार का बहुत अधिक ताप। बहुत तेज गरमी। (३) क्रोध आदि का बहुत अधिक आवेग।

संझला†-वि० [सं० संध्या, प्रा० संझा+ला (प्रत्य०)] संध्या संबंधी। संध्या का। उ०—पदीना दिन भरि विलान सौ सँझली भूल मरिगा।—सरस्वती।

संझवाती-संज्ञा स्त्री० [सं० संध्या+वर्ती] (१) संध्या के समय जलाया जानेवाला दीपक। शाम का चिराग। उ०—चंद देख चढ़ई मिलन मर फूले ऐसे विपरीत चाल हैं सुदेह कहियत है। बाली सँझवाती धनसार मीर चंदन सों वारि सींचियत न अनल बहियत है।—हृदयराम। (२) वह गीत जो संध्या समय गाया जाता है। प्रायः यह विवाह के अवसर पर होता है।

वि० संध्या संबंधी। संध्या का।

संझा†-संज्ञा स्त्री० [सं० संध्या] सूर्यास्त का समय। संध्या। शाम। उ०—संग के सकल अंग अपार उछाह अंग ओज बिन मुसत सरोज बन संझा सी।—देव।

सँझिया, सँझैया†-संज्ञा पुं० [सं० संध्या] वह भोजन जो संध्या समय किया जाता है। रात्रि का भोजन।

सँझोखे‡-संज्ञा स्त्री० [सं० संध्या] संध्या का समय। शाम का वक्त। उ०—गोरि भयाइनि ते उठे गोरज छाई गैल। चलि बलि अलि अभिसारिके भली सँझोखे सैल।—बिहारी।

संठ-संज्ञा पुं० [सं० शांत] शांति। निस्तब्धता। खामोशी।

मुहा०—संठ मारना = चुप्पी साधना। चुप रहना। कुछ न बोलना। न बोलना।

संज्ञा पुं० [सं० शठ] (१) शठ। धूर्त। (२) नीच। वाहियात।

संड-संज्ञा पुं० [सं० शंड] साँड़।

यौ०—संडमुसंड।

संड मुसंड-वि० [सं० शंड, हिं० संड + मुसंड अनु०] हट्टा कट्टा। मोटा ताजा। बहुत मोटा।

सँड़सा-संज्ञा पुं० [सं० संदंश] [स्त्री० अल्पा० सँड़सी] लोहे का एक औजार जो दो छड़ों से बनता है। इनके एक सिरे पर थोड़ा सा छोड़कर दोनों छड़ों को आपस में कील से जड़ देते हैं। प्रायः इसे लोहार गरम लोहा आदि पकड़ने के लिये रखते हैं। गहुआ। जँबूरा।

सँड़सी-संज्ञा स्त्री० [सं० संदंश] पतले छड़ों का एक प्रकार का सँड़सा जिसके दोनों छड़ों का अगला भाग अर्द्ध वृत्ताकार मुड़ा हुआ होता है। इससे पकड़कर प्रायः चूल्हे पर से गरम पतीली आदि गोल मुँहवाले बरतन उतारते हैं। जँबूरी।

संडा-वि० [सं० शंड] मोटा ताजा। हृष्ट पुष्ट।

संज्ञा पुं० मोटा और बलवान् मनुष्य।

यौ०—संडा मुसंडा।

संड़ाई†-संज्ञा स्त्री० [हिं० साँड़] मशक की तरह बना हुआ भैंस आदि का वह हवा भरा हुआ चमड़ा जिसे नदी आदि पार करने के लिये नाव के स्थान पर काम में लाते हैं।

संडास-संज्ञा पुं० [?] (१) कूएँ की तरह का एक प्रकार का गहरा पाखाना। शौच-कूप।

विशेष—यह जमीन के नीचे खोदा हुआ एक प्रकार का गहरा गड्ढा होता है जिसका ऊपरी भाग ढँका रहता है। केवल एक छिद्र बना रहता है जिस पर बैठकर मल त्याग करते हैं। मल उसी में जमा होता जाता है। अधिक दुर्गंध होने पर उसमें खारी नमक आदि कुछ ऐसी चीजें छोड़ते हैं जिनमें मल गलकर मिट्टी हो जाता है। इसका प्रचार अधिकतर ऐसे नगरों में है, जिनमें नल नहीं होता और नित्य मल बाहर फेंकने में कठिनता होती है। पर जब से नल का प्रचार हुआ, तब से इस प्रकार के पाखाने बंद होने लगे हैं।

(२) इसी से मिलता जुलता वह पाखाना जिसका आकार ऊँचे खड़े नल का सा होता है और जिसका नीचे का भाग पृथ्वी तल पर होता है। इसमें मकान से बाहर की ओर एक खिड़की रहती है जिसमें से मेहतर बराबर मल उठा ले जाता है।

संत-संज्ञा पुं० [सं० सत्] (१) साधु, संन्यासी, विरक्त या त्यागी पुरुष। महात्मा। उ०—या जग जीवन को है यहै फल जौ छाँडि भजै रघुराई। शोधि के संत महंतनहूँ पदमाकर बात यहै ठहराई।—पद्माकर। (२) हरिभक्त। ईश्वर का भक्त। धार्मिक पुरुष। (३) एक प्रकार का छंद जिसके प्रत्येक चरण में २१ मात्राएँ होती हैं।

संतत-अव्य० [सं०] सदा। निरंतर। बराबर। लगातार।

‡ संज्ञा स्त्री० दे० "संतति"।

संतत ज्वर-संज्ञा पुं० [सं०] वह ज्वर जो आठों पहर रहे। सदा बना रहनेवाला ज्वर।

विशेष—वैद्यक के अनुसार यदि ऐसा ज्वर वायु की प्रबलता के कारण होता है तो लगातार सात दिनों तक, यदि पित्त की प्रबलता के कारण हो तो दस दिनों तक रहता है। इसकी गणना विषम ज्वर में की जाती है।

संतति-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) बाल बच्चे। संतान। औलाद। (२) प्रजा। रिआया। (३) गोत्र। (४) विस्तार। प्रसार। फैलाव। समूह। (५) दल। झुंड। (६) किसी बात का

लगातार होता रहना। (७) मार्कंडेयपुराण के अनुसार ऋतु की पत्नी का नाम जो दक्ष की कन्या थी।

संततिपथ–संज्ञा पुं० [सं०] योनि जिसके मार्ग से संतान उत्पन्न होती है। स्त्री की जननेंद्रिय। भंग।

संततिहोम–संज्ञा पुं० [सं०] वैदिक काल का एक प्रकार का यज्ञ जो संतान की कामना से किया जाता था।

संततेयु–संज्ञा पुं० [सं०] भागवत के अनुसार रौद्राश्व के एक पुत्र का नाम।

संतनु–संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार राधा के साथ रहनेवाले एक बालक का नाम।

संतपन–संज्ञा पुं० [सं०] (१) अच्छी तरह तपने की क्रिया। (२) बहुत अधिक संताप या दुःख देना।

संतप्त–वि० [सं०] (१) बहुत अधिक तपा हुआ। जला हुआ। दग्ध। (२) जिसे बहुत अधिक संताप हो। दुःखी। पीड़ित। (३) विमनस। मलीन मन। (४) बहुत थका हुआ। श्रांत।

संतमस्–संज्ञा पुं० [सं०] (१) अंधकार। तम। अँधेरा। (२) मोह।

संतरण–संज्ञा पुं० [सं०] (१) अच्छी तरह से तरने या पार होने की क्रिया। (२) तारनेवाला। तारक। (३) नष्ट करनेवाला। नाशक।

संतरा–संज्ञा पुं० [पुर्त्त० संगतरा] एक प्रकार का बड़ा और मीठा नीबू। बड़ी नारंगी। वि० दे० "संगतरा"।

संतरी–संज्ञा पुं० [अं० सेंटरी] (१) किसी स्थान पर पहरा देनेवाला सिपाही। पहरेदार। उ०—जब पहरा तिनके ह्वै गयो। द्वितिय संतरी आवत भयो।—रघुराज। (२) द्वार पर खड़ा होकर पहरा देनेवाला। द्वारपाल। दौवारिक।

संतर्जन–संज्ञा पुं० [सं०] (१) डाँट डपट करना। डराना धमकाना। (२) कार्त्तिकेय के एक अनुचर का नाम।

संतर्दन–संज्ञा पुं० [सं०] भागवत के अनुसार राजा धृष्टकेतु के एक पुत्र का नाम।

संतर्पण–संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जो भली भाँति तृप्ति करता हो। (२) अच्छी तरह तृप्त करना। (३) एक प्रकार का चूर्ण जिसमें दाख, अनार, खजूर, केला, शक्कर, लाजा (लाई) का चूर्ण, मधु और घृत पड़ता है।

संतस्थान–संज्ञा पुं० [सं०] संतों के रहने का स्थान। साधुओं का निवासस्थान। मठ।

संतान–संज्ञा पुं० [सं०] (१) बालबच्चे। लड़के वाले। संतति। औलाद। (२) कल्प वृक्ष। देवतरु। (३) वंश। कुल। (४) विस्तार। फैलाव। (५) वह प्रवाह जो अविच्छिन्न रूप से चलता हो। धारा। (६) प्रबंध। इंतजाम। (७) महाभारत के अनुसार प्राचीन काल के एक प्रकार के अस्त्र का नाम।

संतानक–वि० [सं०] जो दूर तक व्याप्त हो। फैला हुआ। विस्तृत।

संज्ञा पुं० (१) कल्प वृक्ष। देवतरु। (२) पुराणानुसार एक लोक जो ब्रह्मलोक से परे कहा गया है।

संतान गणपति–संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार एक प्रकार के गणपति का नाम।

संतानिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) क्षीर सागर। (२) चाकू का फल। (३) फेन। (४) साढ़ी। मलाई। (५) मर्कटजाल नाम की घास।

संताप–संज्ञा पुं० [सं०] (१) अग्नि या धूप आदि का ताप। जलन। आँच। (२) दुःख। कष्ट। व्यथा। ग्लानि। (३) मानसिक कष्ट। मनोव्यथा। (४) ज्वर। (५) शत्रु। दुश्मन। (६) दाह नाम का रोग। वि० दे० "दाह"।

संतापन–संज्ञा पुं० [सं०] (१) संताप देने की क्रिया। जलाना। (२) बहुत अधिक दुःख या कष्ट देना। (३) कामदेव के पाँच बाणों में से एक बाण का नाम। (४) पुराणानुसार एक प्रकार का अस्त्र जिसके प्रयोग से शत्रु को संताप होना माना जाता है।

वि० (१) ताप पहुँचानेवाला। जलानेवाला। (२) दुःख देनेवाला। कष्ट पहुँचानेवाला।

संतापना॥–क्रि० स० [सं० संतापन] संताप देना। दुःख देना। कष्ट पहुँचाना। सताना। उ०—जाको काम क्रोध नित ब्यापै। अरु पुनि लोभ सदा संतापै। ताहि असाधु कहत कवि सोई। साधु भेष धरि साधु न होई।—सूर।

संतापित–वि० [सं०] जिसे बहुत संताप पहुँचाया गया हो। पीड़ित। संतप्त।

संतापी–संज्ञा पुं० [सं० संतापिन्] वह जो संतप्त करता हो। संताप देनेवाला। दुःखदायी।

संताप्य–वि० [सं०] (१) जलाने के योग्य। तपाने के योग्य। (२) कष्ट या दुःख देने के योग्य। तकलीफ देने के लायक।

संति–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) दान। (२) अवसान। अंत।

संती‡–अव्य० [सं० संति ?] बदले में। एवज में। स्थान में। उ०— उसने उसकी पसलियों में से एक पसली निकाली और उसकी संती मांस भर दिया।—दयानंद।

संतुषित–संज्ञा पुं० [सं०] ललित विस्तर के अनुसार एक देवपुत्र का नाम।

संतुष्ट–वि० [सं०] (१) जिसका संतोष हो गया हो। जिसकी तृप्ति हो गई हो। तृप्त। (२) जो मान गया हो। जो राजी हो गया हो। जैसे,—इन्हें किसी तरह समझा बुझाकर संतुष्ट कर लो; फिर सब काम हो जायगा।

संतोख–संज्ञा पुं० दे० "संतोष"।

संतोष–संज्ञा पुं० [सं०] (१) मन की वह वृत्ति या अवस्था

जिसमें मनुष्य अपनी वर्तमान दशा में ही पूर्ण सुख का अनुभव करता है, न तो किसी बात की कामना करता है और न किसी बात की शिकायत। हर हालत में प्रसन्न रहना। संतुष्टि। सब्र। कनायत। उ०—गो-धन, गज-धन, बाजि-धन और रतन धन खान। जब आवत संतोष-धन सब धन धूरि समान।—तुलसी।

विशेष—हमारे यहाँ पातंजल दर्शन के अनुसार "संतोष" योग का एक अंग और उसके नियम के अंतर्गत है। इसकी उत्पत्ति सात्विक वृत्ति से मानी गई है, और कहा गया है कि इसके पैदा हो जाने पर मनुष्य को अनंत और अखंड सुख मिलता है। पुराणानुसार धर्मानुष्ठान से सदा प्रसन्न रहना और दुःख में भी आतुर न होना संतोष कहलाता है।

क्रि० प्र०—करना।—मानना।—रखना।—होना।

(२) मन की वह अवस्था जो किसी कामना या आवश्यकता की भली भाँति पूर्ति होने पर होती है। तृप्ति। शांति। इतमीनान। जैसे,—पहले मेरा संतोष करा दीजिए, तब मैं आपके साथ चलूँगा। (३) प्रसन्नता। सुख। हर्ष। आनंद। जैसे,—हमें यह जानकर बहुत संतोष हुआ कि अब आप किसी से वैमनस्य न करेंगे।

संतोषण-संज्ञा पुं० दे० "संतोष"।

संतोषणीय-वि० [सं०] संतोष करने के योग्य।

संतोषना†-क्रि० स० [सं० संतोष + ना (प्रत्य०)] संतोष दिलाना। संतुष्ट करना। तबीयत भरना। उ०—मेघनाद ब्रह्मा वर पायो। आहुति अगिनि जिवाइ सँतोषो निकस्यो रथ बहु रतन बनायो। आयुध धरे समेत कवच सजि गरजि चढ़ो रण भूमिहि आयो। मनो मेघनायक ऋतु पावस बाण वृष्टि करि सैन रुपायो।—सूर।

क्रि० अ० संतुष्ट होना। प्रसन्न होना।

संतोषित-वि० [हिं० संतोष, सं० संतुष्ट] जिसका संतोष हो गया हो। संतुष्ट। उ०—नामदेव यह इतनहि लेहीं। इतने महँ संतोषित रहीं।—रघुराज।

विशेष—यह रूप अशुद्ध है; शुद्ध रूप संतुष्ट है। पर 'संतोषित' शब्द का भी प्रयोग कहीं कहीं हिंदी कविता में पाया जाता है।

संतोषी-संज्ञा पुं० [सं० संतोषिन्] वह जो सदा संतोष रखता हो। जिसे बहुत लालसा न हो। सब्र करनेवाला। संतुष्ट रहनेवाला।

संतोष्य-वि० [सं०] संतोष करने के योग्य।

संत्य-संज्ञा पुं० [सं०] अग्निदेव का एक नाम जो सब प्रकार के फल देनेवाले माने जाते हैं।

संत्री-संज्ञा पुं० दे० "संतरी"।

संथा-संज्ञा पुं० [सं० संहिता ?] एक बार में पढ़ाया हुआ अंश। पाठ। सबक। उ०—किसने कहा कि हम लोग धर्म के भंडेरिये हैं ? हम लोग गाते बजाते नहीं थे, संथा घोखते थे।—दुर्गाप्रसाद मिश्र।

क्रि० प्र०—देना।—पाना।—मिलना।—लेना।

संदंश-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सँड़सी नाम का लोहे का औजार। (२) न्याय या तर्क के अनुसार अपने प्रतिपक्षी को दोनों ओर से उसी प्रकार पकड़ या बाँध देना जिस प्रकार सँड़सी से कोई बरतन पकड़ते हैं। (३) सुश्रुत के अनुसार सँड़सी के आकार का, प्राचीन काल का एक प्रकार का औजार जिसकी सहायता से शरीर में गड़ा हुआ काँटा आदि निकालते थे। कंकमुख।

संदंशिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सँड़सी। (२) चिमटी। (३) कैंची।

संद†-संज्ञा पुं० [सं० संधि] दरार। छेद। बिल।

संज्ञा पुं० [सं० चंद्र] चंद्रमा। चंद्र। (डिं०)

संज्ञा पुं० [?] दमान। उ०—बोलि लिए यशुमति यदुनंदहि। पीत झँगुलिया की छवि छाजति बिज्जुलता सोहति मनो कंदहि। बाजापति अग्रज अँचाते अरनायास सुत माला गंदहि। मनो सुरगुरु ते सुररिपु कन्या सौंपे आवलि दूरि संदहि।—सूर।

संदर्भ-संज्ञा पुं० [सं०] (१) रचना। बनावट। (२) प्रबंध। निबंध। लेख। (३) वह ग्रंथ जिसमें किसी और ग्रंथ के गूढ़ वाक्यों आदि का अर्थ या स्पष्टीकरण आदि हो। (४) कोई छोटी पुस्तक। (५) वह पुस्तक जिसमें अनेक प्रकार की बातों का संग्रह हो। (६) विस्तार। फैलाव।

संदर्शन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) अच्छी तरह देखने की क्रिया। अवलोकन। (२) परीक्षा। इम्तहान। जाँच। (३) ज्ञान। (४) आकृति। सूरत। शक्ल। (५) रामायण के अनुसार एक द्वीप का नाम।

संदल-संज्ञा पुं० [फ़ा०] श्रीखंड। चंदन। वि० दे० "चंदन"।

संदली-वि० [फ़ा० संदल] (१) संदल के रंग का। हलका पीला (रंग)। (२) संदल का। चंदन का। जैसे,—संदली कलमदान।

संज्ञा पुं० (१) एक प्रकार का हलका पीला रंग जो कपड़े को चंदन के बुरादे के साथ उबालने से आता है। इससे कपड़े में सुगंधि भी आ जाती है। आजकल कई तरह की बुकनियों से भी यह रंग तैयार किया जाता है। (२) एक प्रकार का हाथी जिसे दाँत नहीं होते। (३) घोड़े की एक जाति।

संदान-संज्ञा पुं० [फ़ा०] (१) एक प्रकार की निहाई जिसका एक कोना नुकीला और दूसरा चौड़ा होता है। अहरन। घन। (२) रस्सी। डोरी। (३) बाँधने की सिकड़ी आदि। (४)

बाँधने की क्रिया। (५) हाथी का गंडस्थल जहाँ से उसका मद बहता है।

संदानिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] दुर्गंध खैर। विट खदिर। वकुरी।

संदानिनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] गौओं के रहने का स्थान। गोशाला।

संदाव-संज्ञा पुं० [सं०] भागने की क्रिया। पलायन।

संदास-संज्ञा पुं० [?] सफेद डामर धूप। मरहम। धहरवा।

विशेष—इसका वृक्ष प्रायः पच्छिमी घाट में पाया जाता है। यह सदा हरा रहता है।

संदाह-संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक के अनुसार मुख, तालू और होठों की जलन।

संदि-संज्ञा स्त्री० [सं० संधि] मेल। संधि। उ०—रूप सँवर संदि सों यहु आपुयो अगयास। पाइ पूरण रूप को रमि भूमि केशवदास।—केशव।

संदिग्ध-वि० [सं०] जिसमें किसी प्रकार का संदेह हो। संदेहपूर्ण। संशयजनक। मुश्तबह।

संज्ञा पुं० (१) उत्तराभास। मिथ्या उत्तर का एक लक्षण। (२) एक प्रकार का व्यंग्य जिसमें यह नहीं प्रकट होता कि वाचक या व्यंजक में व्यंग्य है।

संदिग्धत्व-संज्ञा पुं० [सं०] (१) संदिग्ध होने का भाव या धर्म। संदिग्धता। (२) अलंकार शास्त्रानुसार एक प्रकार का दोष जो उस समय माना जाता है जब कि किसी उक्ति का ठीक ठीक अर्थ प्रकट नहीं होता, अर्थ के संबंध में कुछ संदेह बना रहता है।

संदिष्ट-वि० [सं०] कथित। कहा हुआ। बताया हुआ।

संज्ञा पुं० (१) वार्ता। बातचीत। (२) समाचार। खबर।

संदिष्टार्थ-संज्ञा पुं० [सं०] वह जो एक का समाचार दूसरे तक पहुँचाता हो। सँदेसा ले जानेवाला दूत। कासिद।

संदी-संज्ञा स्त्री० [सं०] शय्या। पलंग। खाट।

संदीपक-वि० [सं०] उद्दीपन करनेवाला। उद्दीपक।

संदीपन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) उद्दीप्त करने की क्रिया। उद्दीपन। (२) कृष्ण के गुरु का नाम। (३) कामदेव के पाँच बाणों में से एक बाण का नाम।

वि० उद्दीपन करनेवाला। उत्तेजन करनेवाला।

संदीपनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] संगीत में पंचम स्वर की चार श्रुतियों में से तीसरी श्रुति।

वि० संदीपन करनेवाली। उद्दीप्त करनेवाली।

संदीपित-वि० [सं० संदीप्त] (१) जिसका संदीपन किया गया हो। संदीप्त। उद्दीप्त। (२) जलाया हुआ। प्रज्वलित।

संदीप्य-संज्ञा पुं० [सं०] मयूरशिखा नामक वृक्ष।

वि० संदीपन करने के योग्य। संदीपनीय।

संदूक-संज्ञा पुं० [अ० संदूक] [अल्पा० संदूकचा] लकड़ी, लोहे, चमड़े आदि का बना हुआ चौकोर पिटारा जिसमें प्रायः कपड़े, गहने आदि चीज़ें रखते हैं। पेटी। बकस।

संदूकचा-संज्ञा पुं० [अ० संदूक + चः (प्रत्य०)] छोटा संदूक। छोटा बकस। छोटी पेटी।

संदूकड़ी-संज्ञा स्त्री० [अ० संदूक + डी (प्रत्य०)] छोटा संदूक। छोटा बकस।

संदूख-संज्ञा पुं० दे० "संदूक"।

संदूर-संज्ञा पुं० दे० "सिंदूर"। उ०—नवल सिंगार बनाइत कीन्हा। सीस पसारहिं संदुर दीन्हा।—जायसी।

संदेव-संज्ञा पुं० [सं०] हरिवंश के अनुसार देवक के एक पुत्र का नाम।

संदेवा-संज्ञा स्त्री० [सं०] वसुदेव की स्त्री और देवक की कन्या का नाम। इनका दूसरा नाम श्रीदेवा या सुदेवा भी है।

संदेश-संज्ञा पुं० [सं०] (१) समाचार। हाल। खबर। संवाद। (२) एक प्रकार की बँगला मिठाई जो छेने और चीनी के योग से बनती है। (३) दे० "संदेस"।

संदेशहर-संज्ञा पुं० [सं०] सँदेसा या समाचार ले जानेवाला। वार्त्तावह। दूत। कासिद।

संदेशा-संज्ञा पुं० दे० "संदेश"।

संदेशी-संज्ञा पुं० [सं० संदेशिन्] संदेश लानेवाला। समाचारवाहक। बसीठ। दूत।

सँदेसा-संज्ञा पुं० [सं० संदेश] किसी के द्वारा जबानी कहलाया हुआ समाचार आदि। खबर। हाल।

क्रि० प्र०—आना।—जाना।—पाना।—भेजना।—मिलना।

संदेह-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह ज्ञान जो किसी पदार्थ की वास्तविकता के विषय में स्थिर न हो। किसी विषय में ठीक या निश्चित न होनेवाला मत या विश्वास। मन की वह अवस्था जिसमें यह निश्चय नहीं होता कि यह चीज ऐसी ही है या और किसी प्रकार की। अनिश्चयात्मक ज्ञान। संशय। शंका। शक।

क्रि० प्र०—करना।—डालना।—मिटना।—मिटाना।—होना।

(२) एक प्रकार का अर्थालंकार। यह उस समय माना जाता है जब किसी चीज को देखकर संदेह बना रहता है, कुछ निश्चय नहीं होता। "भ्रांति" में और इसमें यह अंतर है कि भ्रांति में तो भ्रमवश किसी एक वस्तु का निश्चय हो भी जाता है, पर इसमें कुछ भी निश्चय नहीं होता। कविता में इस अलंकार के सूचक प्रायः धौं, किधौं आदि संदेह-वाचक शब्द आते हैं। उ०—(क) की तुम हरिदासन महँ कोई। मोरे हृदय प्रीति अति होई। की तुम राम दीन अनुरागी। आए मोहिं करन बड़भागी।—तुलसी। (ख)

सारी बीच नारी है कि नारी बीच सारी है कि सारी ही की नारी है कि नारी ही की सारी है। कुछ आचार्यों ने इसके निश्चय गर्भ, निश्चयांत और शुद्ध ये तीन भेद भी माने हैं।

संढोल–संज्ञा पुं० [सं०] कान में पहनने का कर्णफूल नाम का गहना।

संदोह–संज्ञा पुं० [सं०] समूह। झुंड। उ०—जयति निर्भरानंद संदोह कपि केसरी सुअन भुवनैक भर्ता।—तुलसी।

संद्रभ–संज्ञा पुं० [सं०] गूँथने की क्रिया। गुंथन।

संद्राव–संज्ञा पुं० [सं०] युद्ध क्षेत्र से भागने की क्रिया। पलायन।

संधइ|–संज्ञा स्त्री० दे० "संधि"।

संधा–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) स्थिति। (२) प्रतिज्ञा। करार। (३) संधान। संधि। मिलन। (४) संध्या काल। साँझ। (५) अनुसंधान। तलाश।

संधाता–संज्ञा पुं० [सं० सं ।।] (१) शिव। (२) विष्णु।

संधान–संज्ञा पुं० [सं०] (१) धनुष पर बाण चढ़ाने की क्रिया। लक्ष्य करने का व्यापार। निशाना लगाना। (२) शराब बनाने का काम। (३) मदिरा। शराब। (४) संघट्टन। योजन। मिलाना। (५) अन्वेषण। खोज। (६) मुरदे को जिलाने की क्रिया। संजीवन। (७) सौराष्ट्र या काठियावाड़ का एक नाम। (८) संधि। (९) अच्छे स्वाद की चीज। (१०) काँजी।

संधानना|–क्रि० स० [सं० संधान+ना (प्रत्य०)] (१) धनुष चढ़ाना। धनुष पर बाण चढ़ाकर लक्ष्य करना। निशाना लगाना। (२) बाण छोड़ना। तीर चलाना। (३) किसी अस्त्र को प्रयोग करने के लिये ठीक करना।

संधाना–संज्ञा पुं० [सं० संधानिका] अचार। खटाई।

संधानिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] प्राचीन काल का एक प्रकार का आम का अचार।

संधानिनी–संज्ञा स्त्री० [सं०] गौओं के रहने का स्थान। गोशाला।

संधानी–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) एक में मिलने या मिश्रित होने की क्रिया। मिलन। (२) प्राप्ति। (३) बंधन। (४) अन्वेषण। तलाश। (५) पालन। (६) काँजी। (७) अचार। खटाई। (८) वह स्थान जहाँ ढलाई की जाती है। (९) वह स्थान जहाँ मदिरा बनाई जाती है। (१०) दे० "संधान"।

संधि–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) दो चीजों का एक में मिलना। मेल। संयोग। (२) वह स्थान जहाँ दो चीजें एक में मिलती हों। मिलने की जगह। जोड़। (३) राजाओं या राज्यों आदि में होनेवाली वह प्रतिज्ञा जिसके अनुसार युद्ध बंद किया जाता है, मित्रता या व्यापार संबंध स्थापित किया जाता है, अथवा इसी प्रकार का और कोई काम होता है।

विशेष—पहले केवल दो योद्धा राज्यों में ही संधि हुआ करती थी; पर अब बिना युद्ध के ही मित्रता का बंधन दृढ़ करने, पारस्परिक व्यवसाय-वाणिज्य में सहायता देने और सुगमता उत्पन्न करने अथवा किसी दूसरे राज्य में राजनीतिक कार्यों की प्राप्ति अथवा रक्षा के लिये भी संधि हुआ है। आजकल साधारणतः राज-प्रतिनिधि एक स्थान पर मिलकर संधि का मसौदा तैयार करते हैं; और तब वह मसौदा अपने अपने राज्य के प्रधान शासक अथवा राजा आदि के पास स्वीकृति के लिये भेजते हैं; और जब प्रधान शासक अथवा राजा उस पर स्वीकृति की छाप लगा देता है, तब वह संधि पूरी समझी जाती है और उसके अनुसार कार्य्य होता है। जिस पत्र पर संधि की शर्तें लिखी जाती हैं, उसे संधिपत्र कहते हैं। मनु भगवान् ने संधि को राजा के छः गुणों में से एक गुण बतलाया है। (शेष पाँच गुण ये हैं—विग्रह, दान, आसन, द्वैध और आश्रय।) हमारे यहाँ प्राचीन काल में किसी शत्रु राज्य पर आक्रमण करने के लिये भी दो राजा परस्पर मिलकर संधि किया करते थे। हितोपदेश में संधि सोलह प्रकार की कही गई है—कपाल, उपहार, संतान, संगत, उपन्यास, प्रतीकार, संयोग, पुरुषांतर, अदृष्टनर, आदिष्ट, आत्मादिष्ट, उपग्रह, परिक्रय, उच्छिन्न, परभूषण और स्कंधोपनेय। जब संधि करनेवालों में से कोई पक्ष उस संधि की शर्तों को तोड़ता या उनके विरुद्ध कार्य करता है, तो उसे संधि का भंग होना कहते हैं।

(४) सुलह। मित्रता। मैत्री। (५) शरीर में कोई वह स्थान जहाँ दो या अधिक हड्डियाँ आपस में मिलती हों। जोड़। गाँठ। जैसे,—कुहनी, घुटना, पोर आदि।

विशेष—वैद्यक के अनुसार ये संधियाँ दो प्रकार की हैं—चेष्टावान् और निश्चल। सुश्रुत के अनुसार सारे शरीर में सब मिलाकर २१० संधियाँ हैं।

(६) व्याकरण में वह विकार जो दो अक्षरों के पास पास आने के कारण उनके मेल से होता है।

विशेष—संधि हिंदी में नहीं होती, संस्कृत के जो सामासिक शब्द आते हैं, उन्हीं के निरूपण के लिये हिंदी में संधि की आवश्यकता होती है। संस्कृत में संधि तीन प्रकार की होती है—(१) स्वर-संधि (जैसे,—राम+अवतार= रामावतार); (२) व्यंजन-संधि (जैसे,—जगत्+नाथ= जगन्नाथ); और (३) विसर्ग-संधि (जैसे,—निः+अंतर= निरंतर)।

(७) नाटक में किसी प्रधान प्रयोजन के साधक कथांशों का किसी एक मध्यवर्ती प्रयोजन के साथ होनेवाला संबंध। ये संधियाँ पाँच प्रकार की कही गई हैं—मुख संधि, प्रतिमुख संधि, गर्भ संधि, अवमर्श या विमर्श संधि और निर्वहण संधि। (८) चोरी आदि करने के लिये दीवार में किया हुआ छेद। सेंध। (९) एक युग की समाप्ति और दूसरे युग के आरंभ के बीच का समय। युग-संधि। (१०)

किसी एक अवस्था के अंत और दूसरी अवस्था के आरंभ के बीच का समय। वयःसंधि। जैसे,—शैशव और बाल्य-अवस्था की संधि। (११) स्त्री की जननेंद्रिय। भग। (१२) संघट्टन। (१३) दो चीज़ों के बीच की खाली जगह। अवकाश। (१४) भेद। (१५) साधन।

संधिक—संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक के अनुसार सन्निपात रोग का एक भेद। इस रोग में शरीर की संधियों में वायु के कारण अधिक पीड़ा होती है और कफ़, संताप, शक्तिहीनता, निद्रा, नाश आदि उपद्रव होते हैं। इसका वेग एक सप्ताह तक रहता है।

संधिकुसुमा—संज्ञा स्त्री० [सं०] त्रिसंधि नामक फूलदार पौधा।

संधिग—संज्ञा पुं० दे० "संधिक"।

संधिगुप्त—संज्ञा पुं० [सं०] वह स्थान जहाँ शत्रु की आनेवाली सेना पर छापा मारने के लिये सैनिक लोग छिपकर बैठते हैं।

संधिचौर—संज्ञा पुं० [सं०] सेंध लगाकर चोरी करनेवाला। सेंधिया चोर।

संधिच्छेद—संज्ञा पुं० [सं०] वह (पक्ष) जो संधि के नियमों का भंग करता हो। अहदनामे की शर्तें तोड़नेवाला।

संधिज—संज्ञा पुं० [सं०] (१) (सुआकर तैयार किया हुआ) मद्य, आसव आदि। (२) वह फोड़ा जो शरीर की किसी संधि या गाँठ पर हो।

संधिजीवक—संज्ञा पुं० [सं०] वह जो स्त्रियों को पुरुषों से मिलाकर जीविका चलाता हो। कुटना। दलाल।

संधित—वि० [सं०] जिसमें संधि हो। संधियुक्त।

संज्ञा पुं० आसव। अर्क।

संधिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) गाभिन गौ। (२) वह गौ जो गाभिन होने पर भी दूध दे। (३) वह गौ जो बिना बछड़े के दूध दे। (४) वह गौ जो दिन रात में केवल एक बार दूध दे।

संधिप्रच्छादन—संज्ञा पुं० [सं०] संगीत में स्वर साधन की एक प्रणाली जो इस प्रकार होती है। आरोही—सा रे ग, रे ग म, ग म प, म प ध, प ध नि, ध नि सा। अवरोही—सा नि ध, नि ध प, ध प म, प म ग, म ग रे, ग रे सा।

संधिबंध—संज्ञा पुं० [सं०] सुई चंपा।

संधिबंधन—संज्ञा पुं० [सं०] शिरा। नाड़ी। नस।

संधिभंग—संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक के अनुसार हाथ या पैर आदि के किसी जोड़ का टूटना।

संधिला—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) मदिरा। शराब।

संधिविद्ध—संज्ञा पुं० [सं०] एक ... के जोड़ों में सूजन और पी...

संधिवेला—संज्ञा स्त्री० [सं०] सं...

संधिसितासित—संज्ञा पुं० [सं० ...

संधिहारक—संज्ञा पुं० [सं०] वह ... हो। सेंधिया चोर।

संधेय—वि० [सं०] जो संधि कर... संधि की जा सके।

संध्य—वि० [सं०] संधि संबंधी...

संध्यर्क्ष—संज्ञा पुं० [सं०] वह नक्ष... राशिओं के बीच का नक्षत्र। ... पहले पाद में मेष राशि और...

संध्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) दि... समय। संधिकाल।

विशेष—दिन और रात के मि... और सायंकाल। शास्त्रों में का... और दिन का पहला एक दंड... काल होते हैं; और दिन का ... पहला एक दंड ये दोनों मिल... इसके अतिरिक्त कुछ लोग ठी... संध्या मानते हैं, जिसे मध्या...

(२) दिन का अंतिम भाग। ... शाम। सायंकाल। (३) आ... जो प्रति दिन प्रातः काल, ... होती है। इसमें स्नान और ... का पाठ, अंगन्यास और गाय... द्विजातियों के लिये यह उपा... है। (४) एक युग की समाप्ति... समय। दो युगों के मिलने ... एक प्राचीन नदी का नाम। (... (८) एक प्रकार का फूल।

संध्यानाटी—संज्ञा पुं० [सं० संध्यानाटि...

संध्यावधू—संज्ञा स्त्री० [सं०] रात्रि।...

संध्याबल—संज्ञा पुं० [सं०] निशाच...

संध्याराग—संज्ञा पुं० [सं०] (१) ... शास्त्र के अनुसार इसका वर्ण ...

विशेष—प्राचीन भारतीय आर्यों ने जीवन के चार विभाग किए थे, जो आश्रम कहलाते हैं। (दे० "आश्रम") इनमें से अन्तिम आश्रम संन्यास कहलाता है। पचीस वर्ष तक वानप्रस्थ आश्रम में रहने के उपरान्त ७५ वें वर्ष के अंत में इस आश्रम में प्रवेश करने का विधान है। इस आश्रम में काम्य और नित्य आदि सब कर्म किए तो जाते हैं, पर बिलकुल निष्काम भाव से किए जाते हैं; किसी प्रकार के फल की आशा रखकर नहीं किए जाते। वि० दे० "संन्यासी"। (२) भाव प्रकाश के अनुसार मूर्छा रोग का एक भेद जो बहुत ही भयानक कहा गया है। यह रोग प्रायः निर्बल मनुष्यों को हुआ करता है और इसमें रोगी के मर जाने की भी आशंका रहती है। साधारण मूर्छा से इसमें यह अंतर है कि मूर्छा में तो रोगी थोड़ी देर में आप से आप होश में आ जाता है, पर इसमें बिना औषध और चिकित्सा के होश नहीं होता। (३) जटामासी।

संन्यासी–संज्ञा पुं० [सं० संन्यासिन्] वह जो संन्यास आश्रम में हो। संन्यास आश्रम में रहने और उसके नियमों का पालन करनेवाला।

विशेष—संन्यासियों के लिये शास्त्रों में अनेक प्रकार के विधान हैं जिनमें से कुछ इस प्रकार हैं—संन्यासी को सब प्रकार की तृष्णाओं का परित्याग करके घर बार छोड़कर जंगल में रहना चाहिए; सदा एक स्थान से दूसरे स्थान पर भ्रमण करना चाहिए, कहीं एक जगह जमकर न रहना चाहिए; गैरिक कौपीन पहनना चाहिए; दंड और कमंडलु अपने पास रखना चाहिए; सिर मुँड़ाए रहना चाहिए; शिखा और सूत्र का परित्याग कर देना चाहिए; भिक्षा के द्वारा जीवन निर्वाह करना चाहिए; एकांत स्थान में निवास करना चाहिए; सब पदार्थों और सब कार्यों में समदर्शी होना चाहिए; और सदुपदेश आदि के द्वारा लोगों का कल्याण करना चाहिए। आज कल संन्यासियों के गिरि, पुरी, भारती आदि अनेक भेद पाए जाते हैं। एक प्रकार के कौल या वाममार्गी संन्यासी भी होते हैं जो मद्य-मांस आदि का भी सेवन करते हैं। इनके अतिरिक्त नागे, दंगली, अघोरी, आकाशमुखी, मौनी आदि भी संन्यासियों के ही अंतर्गत माने जाते हैं।

संपत्–संज्ञा स्त्री० दे० "संपद्"

संपत्कुमार–संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु का एक रूप।

संपत्ति–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) ऐश्वर्य्य। वैभव। (२) धन। दौलत। जायदाद। मिलकियत। (३) सफलता। पूर्णता। सिद्धि। (४) प्राप्ति। लाभ। (५) अधिकता। बहुतायत।

संपत्तीय–संज्ञा पुं० [सं०] पितरों को जल देने का एक भेद।

संपद्–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सिद्धि। पूर्णता। (२) ऐश्वर्य्य। वैभव। गौरव। (३) सौभाग्य। अच्छे दिन। भले दिन। सुख की स्थिति।

यौ०—संपद् विपद्।

(४) प्राप्ति। लाभ। फायदा। (५) अधिकता। बहुतायत। (६) मोतियों का हार। (७) वृद्धि नाम की ओषधि।

संपदा–संज्ञा स्त्री० [सं० संपद्] (१) धन। दौलत। (२) ऐश्वर्य्य। वैभव।

संपदी–संज्ञा पुं० [सं० संपदिन्] अशोक के एक पौत्र का नाम।

संपन्न–वि० [सं०] (१) पूर्ण किया हुआ। पूर्ण। सिद्ध। साधित। मुकम्मल। (२) सहित। युक्त। भरा पूरा। उ०—ससि-संपन्न सोह महि कैसी।—तुलसी। (३) जिसे कुछ कमी न हो। धन धान्य से पूर्ण। खुशहाल। (४) धनी। दौलतमंद।

संज्ञा पुं० सुस्वादु भोजन। व्यंजन।

संपन्नक्रम–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की समाधि। (बौद्ध)

संपराय–संज्ञा पुं० [सं०] (१) मृत्यु। मौत। (२) अनादि काल से स्थिति। (३) युद्ध। लड़ाई। झगड़ा। (४) आपत्ति। दुर्दिन। (५) भविष्य।

संपर्क–संज्ञा पुं० [सं०] [वि० संपृक्त] (१) मिश्रण। मिलावट। (२) मेल। मिलाप। संयोग। (३) लगाव। संसर्ग। वास्ता। (४) स्पर्श। सटना। (५) योग। जोड़। (गणित)

संपा–संज्ञा स्त्री० [सं०] विद्युत्। बिजली। उ०—चौंधते चकोर चहूँ ओर जानि चंद मुख जौ न होती डरनि दसन-दुति संपा की।—पूरबी।

संपाक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) अच्छी तरह पकना। (२) आरग्वध वृक्ष। अमलतास। (३) तर्क करनेवाला।

वि० (१) लंपट। (२) धूर्त। (३) अल्प। कम।

संपाट–संज्ञा पुं० [सं०] (१) किसी त्रिभुज की बढ़ी हुई भुजा पर लंब का गिरना। (२) तकला।

संपात–संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक साथ गिरना या पड़ना। (२) संसर्ग। मेल। मिलान। (३) संगम। समागम। (४) संगम स्थान। मिलने की जगह। (५) वह स्थान जहाँ एक रेखा दूसरी पर पड़े या मिले। (६) कुदान। उड़ान। टूट पड़ना। झपट। (७) युद्ध का एक भेद। (८) प्रवेश। पहुँच। पैठ। (९) घटित होना। होना। (१०) द्रव पदार्थ के नीचे बैठी हुई वस्तु। तलछट। (११) अवशिष्ट अंश। व्यवहार से बचा हुआ भाग।

संपाति–संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक गीध जो गरुड़ का ज्येष्ठ पुत्र और जटायु का भाई था। (२) माली नाम राक्षस का उसकी वसुदा नामक भार्य्या से उत्पन्न चार पुत्रों में से एक पुत्र। यह विभीषण का मंत्री था। (३) राम की सेना का एक बंदर।

संपाती-वि० [सं० संपातिन्] [स्त्री० संपातिनी] एक साथ कूदने या झपटनेवाला।
संज्ञा पुं० दे० "संपाति"।

संपादक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) संपन्न करनेवाला। कोई काम पूरा करनेवाला। काम अंजाम देनेवाला। (२) प्रस्तुत करनेवाला। तैयार करनेवाला। (३) प्रदान करनेवाला। लाभ करनेवाला। (४) किसी समाचारपत्र या पुस्तक को क्रम आदि लगाकर निकालनेवाला। एडिटर।

संपादकत्व-संज्ञा पुं० [सं०] संपादन करने का भाव या अवस्था।

संपादकीय-वि० [सं०] संपादक संबंधी। संपादक का।

संपादन-संज्ञा पुं० [सं०] [वि० संपादनीय, संपादी, संपाद्य] (१) किसी काम को पूरा करना। अंजाम देना। (२) प्रस्तुत करना। प्रदान करना। (३) ठीक करना। दुरुस्त करना। तैयार करना। (४) किसी पुस्तक या संवादपत्र आदि को क्रम, पाठ आदि लगाकर प्रकाशित करना।

संपादयिता-संज्ञा पुं० [सं० संपादयितृ] [स्त्री० संपादयित्री] संपादन करनेवाला।

संपादित-वि० [सं०] (१) पूर्ण किया हुआ। अंजाम दिया हुआ। (२) तैयार। प्रस्तुत। (३) क्रम, पाठ आदि लगाकर ठीक किया हुआ। (पत्र, पुस्तक आदि)

संपादी-वि० [सं० संपादिन्] [स्त्री० संपादिनी] संपादन करनेवाला।

संपित-संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का बाँस जिसका टोकरा बनता है। यह खसिया की पहाड़ियों में होता है।

संपीड़न-संज्ञा पुं० [सं०] (१) खूब दबाना या निचोड़ना। खूब मलना। (२) खूब पीड़ा देना। (३) अतिशय पीड़ा। (४) शब्दोच्चारण का एक दोष।

संपुट-संज्ञा पुं० [सं०] (१) पात्र के आकार की वस्तु। कटोरे या दोने की तरह चीज जिसमें कुछ भरने के लिये खाली जगह हो। (२) खप्पर। ठीकरा। कपाल। (३) दोना। (४) ढक्कनदार पिटारी या डिबिया। डिब्बा। (५) अँजली। (६) फूल के दलों का ऐसा समूह जिसके बीच खाली जगह हो। कोश। (७) कपड़े और गीली मिट्टी से लपेटा हुआ वह बरतन जिसके भीतर कोई रस या ओषधि फूँकते हैं। (८) कटसरैया का फूल। कुरवक। (९) हिसाब में बाकी या उधार।

संपुटी-संज्ञा स्त्री० [सं० संपुट] छोटी कटोरी या तश्तरी जिसमें पूजन के लिये घिसा हुआ चंदन अक्षत आदि रखते हैं।

संपूर्ण-वि० [सं०] (१) खूब भरा हुआ। (२) सब। बिलकुल। समस्त। पूरा। (३) समाप्त। खतम।
यौ०—संपूर्णकाम = जिसकी सब कामना पूरी हुई हो।
(४) पूर्ण रूप से युक्त।
संज्ञा पुं० (१) वह राग जिसमें सातों स्वर लगते हों। (२) आकाश भूत।

संपूर्णतः-क्रि० वि० [सं०] पूरी तरह से। पूर्ण रूप से।

संपूर्णतया-क्रि० वि० [सं०] पूरी तरह से। भली भाँति। अच्छी तरह।

संपूर्णता-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) संपूर्ण होने का भाव। पूरापन। (२) समाप्ति।

संपूर्णा-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक बहरी विशेष।

संपृक्त-वि० [सं०] (१) संसर्ग में आया हुआ। छूआ हुआ। (२) मिला हुआ। मिश्रित। (३) मेल में आया हुआ।

सँपेरा-संज्ञा पुं० [हिं० साँप + एरा (हिं० प्रत्य०)] [स्त्री० सँपेरिन] साँप पालनेवाला मदारी। साँप का तमाशा दिखानेवाला।

सँपोला-संज्ञा पुं० [हिं० साँप + ओला (अल्पा० प्रत्य०)] साँप का बच्चा।

सँपोलिया-संज्ञा पुं० [हिं० साँप + वाला] साँप पकड़नेवाला। सँपेरा।

संप्रक्षाल-संज्ञा पुं० [सं०] (१) पूर्ण विधि से स्नान करनेवाला। (२) एक प्रकार के यति या साधु। (३) प्रजापति के पैर धोए हुए जल से उत्पन्न एक ऋषि।

संप्रक्षालन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) अच्छी तरह धोना। खूब धोना। (२) पूर्ण स्नान। (३) जल-प्रलय।

संप्रक्षालनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की जीविका या वृत्ति। (बौद्ध)

संप्रज्ञात-संज्ञा पुं० [सं०] योग में समाधि के दो प्रधान भेदों में से एक। वह समाधि जिसमें आत्मा विषयों के बोध से सर्वथा निवृत्त न होने के कारण अपने स्वरूप के बोध तक न पहुँची हो।
विशेष—ध्यान या समाधि की पूर्व दशा में चार प्रकार की समापत्तियाँ कही गई हैं जिनमें शब्द, अर्थ, विषय आदि में से किसी न किसी का बोध अवश्य बना रहता है। इन चारों में से किसी समापत्ति के रहने से समाधि संप्रज्ञात कहलाती है। संप्रज्ञात समाधि या समापत्ति के चार भेद हैं—सवितर्क, निर्वितर्क, सविचार और निर्विचार।

संप्रति-अव्य० [सं०] (१) इस समय। अभी। आजकल। (२) मुकाबले में। (३) ठीक तौर से।
संज्ञा पुं० (१) पूर्व अवसर्पिणी के २४ वें अर्हत का नाम। (जैन) (२) अशोक का पोता। कुनाल एक पुत्र।

संप्रतिपत्ति-संज्ञा पुं० [सं०] (१) पहुँच। गुजर। (२) प्राप्ति। लाभ। (३) सम्यक् बोध। ठीक ठीक समझ में आना। (४) समझ। बुद्धि। (५) मतैक्य। एकमत होना। एक राय होना। (६) स्वीकृति। मंजूरी। (७) अभियुक्त का न्यायालय में सत्य बात स्वीकार करना। (स्मृति) (८) संपादन। सिद्धि। कार्य्य की पूर्णता।

संप्रतिपन्न-वि० [सं०] (१) पहुँचा हुआ। गया हुआ। उपस्थित। (२) स्वीकृत। मंजूर। (३) उपस्थित बुद्धि का। तेज समझवाला।

संप्रत्यय–संज्ञा पुं० [सं०] (१) स्वीकृति। मंजूरी। मानने की क्रिया या भाव। (२) दृढ़ विश्वास। पूरा यकीन। (३) ठीक ठीक समझ। सम्यक् बोध। (४) भावना। विचार।

संप्रदाई–संज्ञा पुं० दे० "संप्रदाय"।

संप्रदातन–संज्ञा पुं० [सं०] इक्कीस नरकों में से एक।

संप्रदान–संज्ञा पुं० [सं०] (१) दान देने की क्रिया या भाव। (२) दीक्षा। मंत्रोपदेश। शिष्य को मंत्र देना। (३) भेंट। नज़र। (४) व्याकरण में एक कारक जिसमें शब्द 'देना' क्रिया का लक्ष्य होता है।

विशेष—हिंदी में इस कारक के चिह्न 'को' और "के लिये" हैं। जैसे,—राम को दो। उसके लिये लाया गया।

संप्रदाय–संज्ञा पुं० [सं०] [वि० साम्प्रदायिक] (१) देनेवाला। दाता। (२) गुरु परंपरागत उपदेश। गुरुमंत्र। (३) कोई विशेष धर्मसंबंधी मत। (४) किसी मत के अनुयायियों की मंडली। फिरका। (५) मार्ग। पथ। (६) परिपाटी। रीति। चाल।

संप्रदायी–संज्ञा पुं० [सं० संप्रदायिन्] [स्त्री० संप्रदायिनी] (१) देनेवाला। (२) करनेवाला। सिद्ध करनेवाला। (३) किसी संप्रदाय से संबंध रखनेवाला। मत का माननेवाला। मतावलंबी।

संप्रयुक्त–वि० [सं०] (१) जोड़ा हुआ। एक साथ किया हुआ। (२) जोता हुआ। नधा हुआ। (३) संबद्ध। मिला हुआ। (४) भिड़ा हुआ। (५) व्यवहार में लाया हुआ। बर्ता हुआ।

संप्रयोग–संज्ञा पुं० [सं०] (१) जोड़ने की क्रिया या भाव। एक साथ करना। (२) मेल। मिलाप। संयोग। समागम। (३) रति। रमण। (४) धनादि का विनियोग। (५) नक्षत्र में चंद्रमा का योग। (६) इंद्रजाल। (७) वशीकरण प्रभृति कार्य।

संप्रयोगी–संज्ञा पुं० [सं० संप्रयोगिन्] [स्त्री० संप्रयोगिनी] (१) कामुक। लंपट। (२) ऐंद्रजालिक। इंद्रजाल दिखानेवाला।

संप्रयोजन–संज्ञा पुं० [सं०] [वि० संप्रयोजनीय, संप्रयोज्य, संप्रयोजित, संप्रयुक्त, संप्रयोक्तव्य] अच्छी तरह जोड़ना या मिलाना।

संप्रवर्त्तक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) चलानेवाला। (२) जारी करनेवाला।

संप्रवर्त्तन–संज्ञा पुं० [सं०] [वि० संप्रवर्तित, संप्रवृत्त] (१) चलाना। गति देना। (२) घुमाना। (३) जारी करना। आरंभ करना।

संप्रवृत्त–वि० [सं०] (१) आगे गया हुआ। बढ़ा हुआ। अग्रसर। (२) उपस्थित। मौजूद। प्रस्तुत। (३) जारी किया हुआ। आरंभ किया हुआ।

संप्रवृत्ति–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) आसक्ति। (२) अनुकरण करने की इच्छा। (३) उपस्थिति। मौजूदगी। (४) संघटन। मेल।

संप्राप्त–वि० [सं०] (१) पहुँचा हुआ। उपस्थित। (२) पाया हुआ। (३) घटित। जो हुआ हो।

संप्राप्ति–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) प्राप्ति। लाभ। (२) पहुँचना। उपस्थिति। (३) घटित होना। होना। (४) रोग का सन्निकृष्ट कारण। यह पाँच प्रकार का होता है। (१) संख्या (२) विकल्प (३) प्राधान्य (४) बल और (५) काल।

संप्रेक्षक–संज्ञा पुं० [सं०] दर्शक। देखनेवाला।

संप्रेक्षण–संज्ञा पुं० [सं०] [वि० संप्रेक्षित, संप्रेक्ष्य] (१) अच्छी तरह देखना। (२) खूब देखभाल करना। जाँच करना। निरीक्षण करना।

संप्रेष–संज्ञा पुं० दे० "संप्रैष"

संप्रेषण–संज्ञा पुं० [सं०] [वि० संप्रेषित, संप्रेष्य] (१) अच्छी तरह भेजना। (२) छुड़ाना। बरखास्त करना। काम से हटाना।

संप्रेषणी–संज्ञा स्त्री० [सं०] मृतक का एक कृत्य जो द्वादशाह को होता है।

संप्रैष–संज्ञा पुं० [सं०] (१) यज्ञादि में ऋत्विजों को लगाना। नियुक्ति। (२) आमंत्रण। आह्वान।

संप्रोक्षण–संज्ञा पुं० [सं०] [वि० संप्रोक्षित, संप्रोक्ष्य] (१) खूब पानी छिड़कना। (२) खूब पानी छिड़क कर (मंदिर आदि) साफ़ करना। धोना।

संप्लव–संज्ञा पुं० [सं०] [वि० संप्लुत] (१) जल से तराबोर होना। जल की बाढ़। बढ़िया। (२) भारी समूह। घनी राशि। (३) हलचल। शोरगुल। हल्ला।

संप्लुत–वि० [सं०] जल से तराबोर। डूबा हुआ।

संफाल–संज्ञा पुं० [सं०] मेष। भेड़।

संफेट–संज्ञा पुं० [सं०] (१) क्रोध से परस्पर भिड़ना। भिड़ंत। लड़ाई। (२) झगड़ा। कहासुनी। तकरार।

विशेष—नाट्यशास्त्र में विमर्श के तेरह भेदों में से एक संफेट भी है। जैसे,—राजसभा में शकुंतला और दुष्यंत की कहासुनी। आरभटी के चार भेदों में से भी एक संफेट है जिसमें दो पात्र परस्पर भिड़ते और एक दूसरे को दबाने का प्रयत्न करते हैं। जैसे,—मालती माधव नाटक में माधव और अघोरघंट की मुठभेड़।

संबंध–संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक साथ बँधना, जुड़ना या मिलना। (२) लगाव। संपर्क। वास्ता।

विशेष—दर्शन में संबंध तीन प्रकार के कहे गए हैं—समवाय, संयोग और स्वरूप।

(३) एक कुल में होने के कारण अथवा विवाह, दत्तक आदि संस्कारों के कारण परस्पर लगाव। नाता। रिश्ता। (४) गहरी मित्रता। बहुत मेल जोल। (५) संयोग। मेल। (६) विवाह। सगाई। (७) ग्रंथ। पोथी। (८) एक प्रकार की ईति या उपद्रव। (९) किसी सिद्धांत का व्याख्या।

(१०) व्याकरण में एक कारक जिससे एक शब्द के साथ दूसरे शब्द का संबंध या लगाव सूचित होता है। जैसे,—राम का घोड़ा।

विशेष—बहुत से वैयाकरण 'संबंध' को शुद्ध कारक नहीं मानते। हिंदी में संबंध के चिह्न 'का' 'की' 'के' हैं।

संबंधातिशयोक्ति–संज्ञा स्त्री० [सं०] अतिशयोक्ति अलंकार का एक भेद जिसमें असंबंध में संबंध दिखाया जाता है।

विशेष—दे० "अतिशयोक्ति"।

संबंधी–वि० [सं० संबंधिन्] [स्त्री० संबंधिनी] (१) संबंध रखनेवाला। लगाव रखनेवाला। (२) विषयक। सिलसिले या प्रसंग का।

संज्ञा पुं० (१) रिश्तेदार। (२) जिसके पुत्र या पुत्री से अपनी पुत्री या पुत्र का विवाह हुआ हो। समधी।

संबंधु–संज्ञा पुं० [सं०] (१) आत्मीय। भाई बिरादर। (२) नातेदार। रिश्तेदार।

संब–संज्ञा पुं० दे० "शंब"।

संबत्–संज्ञा पुं० दे० "संवत्"।

संबद्ध–वि० [सं०] (१) बँधा हुआ। जुड़ा हुआ। लगा हुआ। (२) संबंध-युक्त। मिला हुआ। (३) बंद। (४) संयुक्त। सहित।

संबर–संज्ञा पुं० दे० "शंबर"।

संबरण–संज्ञा पुं० दे० "संवरण"।

संबल–संज्ञा पुं० [सं०] (१) शाल्मली। सेमल का वृक्ष। (२) रास्ते का भोजन। सफ़र खर्च। (३) गेहूँ की फसल का एक रोग जो पूरब की हवा अधिक चलने से होता है। (४) संखिया। आखु पाषाण। सोमल क्षार। वि० दे० "शंबल"।

संबाद–संज्ञा पुं० दे० "संवाद"।

संबाध–संज्ञा पुं० [सं०] (१) बाधा। अड़चन। कठिनता। (२) भीड़। संघर्ष। (३) भग। योनि। (४) कष्ट। पीड़ा। (५) नरक का पथ।

वि० (१) संकीर्ण। तंग। (२) जनपूर्ण। भीड़ से भरा। (३) भरा। पूर्ण। संकुल।

संबाधक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) दबानेवाला। सतानेवाला। तंग करनेवाला। (२) बाधा पहुँचानेवाला।

संबाधन–संज्ञा पुं० [सं०] (१) दबाव। रेलपेल। (२) रोकना। बाधा देना। (३) रोक। फाटक। (४) योनि। भग। (५) शूलाग्र। (६) द्वारपाल।

संबी–संज्ञा स्त्री० [सं० शिबी] फली।

संबुक–संज्ञा पुं० दे० "शंबुक", "शंबूक"।

संबुद्ध–संज्ञा पुं० [सं०] (१) आप्त। ज्ञानप्राप्त। (२) ज्ञानी। ज्ञानवान्। (३) पूर्ण रूप से जाना हुआ। ज्ञात। (४) बुद्ध। (५) जिन।

संबुद्धि–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) पूर्ण ज्ञान। सम्यक् बोध। (२) बुद्धिमानी। होशियारी। (३) दूर से पुकार। आह्वान।

संबुल खताई–संज्ञा पुं० [फा०] तुर्किस्तान का एक पौधा जो औषध के काम में आता है और जिसकी पत्तियाँ की नसें मिठाई में पड़ती हैं।

संबेसर–संज्ञा पुं० [सं० सं० + हि० बसेरा] निद्रा। नींद। (डिंगल)

संबोध–संज्ञा पुं० [सं०] (१) सम्यक् ज्ञान। पूरा बोध। (२) पूर्ण तत्त्वबोध। पूरी जानकारी। (३) धीरज। सांत्वना। ढारस।

संबोधन–संज्ञा पुं० [सं०] [वि० संबोधित, संबोध्य] (१) जगाना। नींद से उठाना। (२) पुकारना। आह्वान करना। (३) व्याकरण में वह कारक जिससे शब्द का किसी को पुकारने या बुलाने के लिये प्रयोग सूचित होता है। जैसे,—हे राम! (४) जताना। ज्ञान कराना। विदित कराना। (५) नाटक में आकाश-भाषित। (६) समझाना बुझाना। समाधान करना।

संबोधना*–क्रि० स० [सं०] समझाना। प्रबोध देना। उ०—ज्यों ज्यों ऐसी बातन मंदोदरी सँबोधै त्यों त्यों देव दुख पावे कहँ कैसे समुझाइये। यांको बात माने सिय हैके जाइ मिले यह औरन बिसारि वाको सौगुन बढ़ाइये।—हृदयराम।

संबोध्य–संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जिसको संबोधन किया जाय। (२) जिसे समझाया या जताया जाय।

संबौधिया–संज्ञा पुं० [देश०] वैश्यों की एक जाति।

संभग्न–वि० [सं०] (१) बहुत टूटा हुआ। बिलकुल खंडित। (२) हारा हुआ। (३) विफल।

संज्ञा पुं० शिव का एक नाम।

संभर–संज्ञा पुं० [सं०] (१) भरण करनेवाला। पोषण करनेवाला। (२) साँभर झील।

संभरण–संज्ञा पुं० [सं०] [वि० संभरणीय, संभृत] (१) पालन पोषण। (२) एकत्र करना। संचय। जुटाना। (३) योजना। विधान। (४) तैयारी। सामान। (५) एक प्रकार की ईंट जो यज्ञ की वेदी में लगती थी।

संभरणी–संज्ञा स्त्री० [सं०] सोमरस रखने का एक यज्ञपात्र।

सँभरना*†–वि० अ० दे० "सँभलना"।

संभल–संज्ञा पुं० [सं०] (१) कन्यार्थी पुरुष। किसी लड़की से विवाह की इच्छा रखनेवाला व्यक्ति। (२) घटक। दलाल। (३) एक स्थान जहाँ विष्णुयश नामक ब्राह्मण के घर विष्णु दसवाँ कल्कि अवतार होनेवाला है। इसे कुछ लोग मुरादाबाद जिले का संभल नाम का कसबा बतलाते हैं।

सँभलना–क्रि० अ० [हि० सँभालना] (१) किसी बोझ आदि का ऊपर ठहरा रह सकना। पकड़ में रहना। थामा जा सकना।

जैसे,—यह बोझ तुमसे नहीं सँभलेगा। (२) किसी सहारे पर रुका रह सकना। आधार पर ठहरा रहना। जैसे,—इस खंभे पर यह पत्थर नहीं सँभलेगा। (३) होशियार होना। सचेत होना। सावधान होना। जैसे,—इन दुष्टों के बीच सँभल कर रहना। (४) चोट या हानि से बचाव करना। गिरने पड़ने से रुकना। जैसे,—वह गिरते गिरते सँभल गया। (५) बुरी दशा को फिर सुधार लेना। जैसे,—इस रोज़गार में इतना घाटा उठाओगे कि सँभलना कठिन होगा। (६) कार्य्य का भार उठाया जाना। निर्वाह संभव होना। जैसे,—इससे इतना खर्च नहीं सँभलेगा। (७) स्वस्थता प्राप्त करना। आरोग्य लाभ करना। चंगा होना। जैसे,—बीमारी तो बहुत कड़ी थी, पर अब सँभल रहे हैं।

संभला-संज्ञा पुं० [हिं० सँभलना] एक बार बिगड़ कर फिर सुधरी हुई फसल।

संभली-संज्ञा स्त्री० [सं० संभली] कुटनी। दूती।

संभव-संज्ञा पुं० [सं० संभव] (१) उत्पत्ति। जन्म। पैदाइश। जैसे,—कुमार-संभव। (२) एक साथ होना। मेल। संयोग। समागम। (३) सहवास। प्रसंग। (४) अँटना। आ सकना। समाई। (५) हेतु। कारण। (६) होना। घटित होना। (७) हो सकने के योग्य होना। मुमकिन होना। जैसे,—उसका सुधरना संभव नहीं। (८) परिमाण का एक होना। एक ही बात होना। जैसे, एक रुपया कहें या सोलह आने। (दर्शन) (९) उपयुक्तता। समीचीनता। मुनासिबत। (१०) वर्तमान अवसर्पिणी के तीसरे अर्हत्। (जैन) (११) एक लोक का नाम। (बौद्ध) (१२) नाश। ध्वंस। (१३) युक्ति। उपाय।

संभवतः-अव्य० [सं०] हो सकता है। मुमकिन है। ग़ालिबन्।

संभवन-संज्ञा पुं० [सं० सम्भवन] [वि० संभवनीय, संभव्य, संभूत] (१) उत्पन्न होना। पैदा होना। (२) हो सकना। मुमकिन होना। (३) होना। घटित होना।

संभवना॥-क्रि० स० [सं० सम्भव + ना (प्रत्य०)] उत्पन्न करना। पैदा करना।

क्रि० अ० (१) उत्पन्न होना। पैदा होना। (२) संभव होना। हो सकना। उ०—धर्म्म स्थापन हेतु पुनि धारयो नर अवतार। ताको पुत्र कलत्र सों नहिं संभवत पियार।—सूर।

संभवनाथ-संज्ञा पुं० [सं०] वर्तमान अवसर्पिणी के तीसरे तीर्थंकर। (जैन)

संभवनीय-वि० [सं०] जो हो सकता हो। मुमकिन।

संभव्य-संज्ञा पुं० [सं०] कपित्थ। कैथ।

वि० जो हो सकता हो। संभवनीय। मुमकिन।

संभार-संज्ञा पुं० [सं०] (१) संचय। एकत्र करना। इकट्ठा करना। (२) तैयारी। सामान। साज। सामग्री। रसद वगैरह। (३) धन। संपत्ति। वित्त। (४) पूर्णता। अधिकता। (५) समूह। दल। राशि। ढेर। (६) पालन। पोषण।

सँभार॥-संज्ञा पुं० [हिं० सँभालना सं० संभार] (१) देख रेख। खबरदारी। निगरानी। (२) पालन पोषण। उ०—करिय सँभार कोसलराइ।—तुलसी।

यौ०—सार सँभार = पालन पोषण और निरीक्षण का भार। उ०—सब कर सार सँभार गोसाईं।—तुलसी।

(३) वश में रखने का भाव। रोक। निरोध। उ०—रे नृप बालक कालबस बोलत तोहि न सँभार।—तुलसी। (४) तन बदन की सुध। होश हवास।

सँभारना॥-क्रि० स० [सं० संभार] (१) दे० "सँभालना"। (२) याद करना। स्मरण करना। मन में इच्छा करके लाना। उ०—जदि पितर सब सुकृत सँभारे। जो कछु पुन्य प्रभाव हमारे। तो सिव-धनुष मृनाल की नाईं। तोरहिं राम, गनेस गोसाईं।—तुलसी।

संभारी-वि० [सं० सम्भारिन्] [स्त्री० संभारिणी] भरा हुआ। पूर्ण।

सँभाल-संज्ञा स्त्री० [सं० सम्भार] (१) रक्षा। हिफ़ाज़त। (२) पोषण का भार। (३) देख रेख। निगरानी। (४) प्रबंध। इंतज़ाम। जैसे,—घर की सँभाल वही करता है। (५) तन बदन की सुध। होश हवास। चेत। आपा। जैसे,—वह इतना विकल हुआ कि शरीर की सँभाल न रही।

सँभालना-क्रि० स० [सं० सम्भार] (१) भार को ऊपर ठहराना। बोझ ऊपर रखे रहना। भार ऊपर ले सकना। जैसे,—इतना भारी बोझ कैसे सँभालोगे? (२) रोक या पकड़ में रखना। इस प्रकार थामे रहना कि छूटने या भागने न पावे। रोके रहना। काबू में रखना। जैसे,—सँभालो, नहीं तो छूटकर भाग जायगा। (३) किसी वस्तु को अपनी जगह से हटने, गिरने पड़ने, खिसकने आदि से रोकना। यथा स्थान रखना। च्युत न होने देना। थामना। जैसे,—टोपी सँभालना, धोती सँभालना। (४) गिरने पड़ने से रोकने के लिये सहारा देना। गिरने से बचाना। जैसे,—मैंने सँभाल लिया, नहीं तो वह गिर पड़ता। (५) रक्षा करना। हिफ़ाज़त करना। नष्ट होने या खो जाने से बचाना। जैसे,—इस पुस्तक को बहुत सँभाल कर रखना। (६) बुरी दशा को प्राप्त होने से बचाना। बिगड़ी दशा में सहायता करना। ख़राबी से बचाना। उद्धार करना। जैसे,—उसने बड़े बुरे दिनों में सँभाला है। (७) पालन पोषण करना। परवरिश करना। (८) देख रेख करना। निगरानी करना। (९) प्रबंध करना। इंतज़ाम करना। व्यवस्था करना। जैसे,—घर सँभालना। (१०) निर्वाह करना। किसी कार्य्य का भार अपने ऊपर लेना। चलाना।

जैसे,—उसका खर्च हम नहीं सँभाल सकते। (११) दशा बिगड़ने से बचाना। रोग, व्याधि, आपत्ति इत्यादि को रोक करना। जैसे,—बीमारी बढ़ जाने पर सँभालना कठिन होता है। (१२) कोई वस्तु ठीक ठीक है, इसका इतमीनान कर लेना। सहेजना। जैसे,—देखो १००) हैं, इन्हें सँभालो। (१३) किसी मनोवेग को रोकना। जोश थामना। जैसे,—उसकी कड़ी बातें सुनकर मैं अपने को सँभाल न सका।

संयो० क्रि०—देना।—लेना।

सँभाला–संज्ञा पुं० [हिं० सँभालना] जीवन की ज्योति का बुझने के पूर्व टिमटिमा उठना। मरने के पहले कुछ चेतनता सी आ जाना। चैतन्य याई होना। जैसे,—कल सँभाला लिया था, आज मर गया।

क्रि० प्र०—लेना।

सँभालू–संज्ञा पुं० [हिं० सिंधुवार] श्वेत सिंधुवार वृक्ष। मेवड़ी।

संभावन–संज्ञा पुं० [सं० सम्भावन] [वि० संभावनीय, संभावित संभावितव्य, संभाव्य] (१) कल्पना। भावना। अनुमान। (२) जुटाना। एकत्र करना। योग करना। (३) उपस्थित करना। संपादन। (४) आदर। सम्मान। पूजा। (५) पूज्यबुद्धि। प्रतिष्ठा का भाव। (६) योग्यता। पात्रता। अधिकार। काबिलीयत। (७) ख्याति। प्रसिद्धि। नाम। (८) स्वीकार।

संभावना–संज्ञा स्त्री० [सं० सम्भावना] (१) कल्पना। भावना। अनुमान। फ़र्ज़। (२) पूजा। आदर। सत्कार। (३) किसी बात के हो सकने का भाव। हो सकना। मुमकिन होना। (४) योग्यता। पात्रता। क़ाबिलीयत। (५) ख्याति। प्रसिद्धि। नामवरी। (६) प्रतिष्ठा। मान। इज्जत। (७) एक अलंकार जिसमें किसी एक बात के होने पर दूसरी बात का होना निर्भर कहा जाता है। उ०—(क) एहि विधि उपजै लच्छि जब होइ सीय समतूल। (ख) सहस जीभ जौं होय, तौ बरनै जस आप को।

संभावनीय–वि० [सं० सम्भावनीय] (१) जो हो सकता हो। मुमकिन। (२) कल्पना के योग्य। ध्यान में आने लायक़। (३) आदर के योग्य। सत्कार के योग्य।

संभावयितव्य–वि० दे० "संभावितव्य"।

संभावित–वि० [सं० सम्भावित] (१) कल्पित। विचारा हुआ। मन में माना हुआ। (२) जुटाया हुआ। उपस्थित किया हुआ। (३) पूजित। आदृत। (४) विख्यात। प्रसिद्ध। (५) योग्य। उपयुक्त। क़ाबिल। (६) संभव। मुमकिन।

संभावितव्य–वि० [सं० सम्भावितव्य] (१) कल्पना या अनुमान के योग्य। (२) सत्कार के योग्य। (३) जिसका सत्कार होनेवाला हो। (४) संभव। मुमकिन।

संभाव्य–वि० [सं० सम्भाव्य] (१) जो हो सकता हो। मुमकिन। (२) प्रशंसनीय। श्लाघ्य। (३) पूजा या सत्कार के योग्य; अथवा जिसका सत्कार होनेवाला हो। (४) कल्पना या अनुमान के योग्य। ध्यान में आने लायक़।

संभाष–संज्ञा पुं० [सं० सम्भाष] (१) कथन। संभाषण। बातचीत। (२) वादा। क़रार।

संभाषण–संज्ञा पुं० [सं० सम्भाषण] [वि० संभाषणीय, संभाषित, संभाष्य] कथोपकथन। बातचीत।

संभाषणीय–वि० [सं०] जो बातचीत करने योग्य हो। जिससे भाषण करना उचित हो।

संभाषित–वि० [सं० सम्भाषित] (१) अच्छी तरह कहा हुआ। (२) जिससे बातचीत हुई हो।

संभाषी–वि० [सं० सम्भाषिन्] [स्त्री० संभाषिणी] कहनेवाला। बातचीत करनेवाला।

संभाष्य–वि० [सं० सम्भाष्य] भाषण करने योग्य। जिससे बातचीत करना उचित हो।

संभिन्न–वि० [सं०] (१) भली भाँति अलग। (२) पूर्ण भग्न। बिलकुल टूटा हुआ। (३) संक्षोभित। चालित। (४) गठा हुआ। ठोस। (५) प्रस्फुटित। खिला हुआ।

संभिन्न प्रलाप–संज्ञा पुं० [सं०] व्यर्थ की बातचीत (बौद्ध मत में एक पाप)।

संभु–संज्ञा पुं० दे० "शंभु"।

संभूत–वि० [सं० सम्भूत] (१) एक साथ उत्पन्न। (२) उत्पन्न। उद्भूत। जात। पैदा। (३) युक्त। सहित। (४) कुछ से कुछ हो गया हुआ। (५) उपयुक्त। योग्य।

संभूति–संज्ञा स्त्री० [सं० सम्भूति] (१) उत्पत्ति। उद्भव। (२) बढ़ती। विभूति। बरकत। (३) योग की विभूति। करामात। (४) क्षमता। शक्ति। (५) उपयुक्तता। योग्यता। (६) दक्ष प्रजापति की एक कन्या जो मरीचि की पत्नी थी।

संभूय–अव्य० [सं०] एक में। एक साथ। साझे में।

संभूय समुत्थान–संज्ञा पुं० [सं०] (१) मिलकर किया हुआ व्यापार। साझे का कारबार। (२) वह विवाद या मुक़दमा जो साझेदारों में हो।

संभृत–वि० [सं० सम्भृत] (१) एकत्र। इकट्ठा। जमा किया हुआ। बटोरा हुआ। (२) पूर्ण। भरा हुआ। लदा हुआ। (३) युक्त। सहित। (४) पाला पोसा हुआ। (५) सम्मानित। सम्मानित। जिसकी इज्जत की गई हो। (६) प्रस्तुत। तैयार। (७) निर्मित। बना हुआ।

संज्ञा पुं० उच्च स्वर। चीत्‍र।

संभृति–संज्ञा स्त्री० [सं० सम्भृति] (१) एकत्र करने की क्रिया या भाव। (२) सामान। सामग्री। (३) समूह। भीड़। जमावड़ा। (४) राशि। ढेर। (५) अधिकता। बहुतायत। (६) भरण पोषण। खूब पालना पोसना।

संभृष्ट–वि० [सं० सम्भृष्ट] (१) खूब भुना या तला हुआ। (२) कुरकुरा। करारा।

संभेद–संज्ञा पुं० [सं० सम्भेद] (१) खूब छिदना या भिदना। (२) शिथिल होना। ढीला होकर खिसकना। (३) वियोग। जुदाई। अलग होना। (४) मिले हुए शत्रुओं में परस्पर विरोध उत्पन्न करना। भेदनीति। (५) किस्म। प्रकार। (६) मिलना। जुटना। मिलना। (७) नदियों का संगम।

संभेदन–संज्ञा पुं० [सं०] [वि० संभेदनीय, संभिन्न, संभित] (१) खूब छेदना या आर पार घुसना। धँसना। (२) जुटाना। मिलाना। भिड़ाना।

संभोग–संज्ञा पुं० [सं०] (१) किसी वस्तु का भली भाँति उपयोग। सुखपूर्वक व्यवहार। (२) सुरत। रतिक्रीड़ा। मैथुन। (३) शृंगार रस के तीन भेदों में से एक। संयोग शृंगार। मिलाप की दशा। (४) हाथी के कुंभ या मस्तक का एक भाग।

संभोगी–वि० [सं० सम्भोगिन्] [स्त्री० संभोगिनी] संभोग करनेवाला। व्यवहार कर आनंद लेनेवाला।

संभोग्य–वि० [सं०] (१) जिसका व्यवहार होनेवाला हो। जो काम में लाया जानेवाला हो। (२) व्यवहार योग्य। बरतने लायक।

संभोज–संज्ञा पुं० [सं०] भोजन। खाना।

संभोजक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) भोजन करनेवाला। भक्षक। खानेवाला। (२) भोजन परसनेवाला।

संभोजन–संज्ञा पुं० [सं०] [वि० संभोजनीय, संभोज्य, संभुक्त] (१) भोज। दावत। (२) खाने की वस्तु। खाना।

संभोजनीय–वि० [सं०] (१) जो खाया जानेवाला हो। (२) खाने योग्य। भक्षणीय।

संभोज्य–वि० [सं०] (१) जो खाया जानेवाला हो। (२) खाने योग्य। भक्षणीय।

संभ्रम–संज्ञा पुं० [सं० सम्भ्रम] (१) घूमना। चक्कर। फेरा। (२) उतावली। हड़बड़ी। आतुरता। (३) घबराहट। व्याकुलता। चकपकाहट। (४) हलचल। धूम। (५) सहम। सिटपिटाना। (६) उत्कंठा। गहरी चाह। शौक़। हौसला। (७) पूज्य भाव। आदर। मान। गौरव। (८) भूल। चूक। गलती। (९) श्री। शोभा। छवि। सौंदर्य। (१०) शिव के एक प्रकार के गण।

संभ्रांत–वि० [सं० सम्भ्रान्त] (१) घुमाया हुआ। चक्कर दिया हुआ। (२) घबराया हुआ। उद्विग्न। चकपकाया हुआ। (३) स्फूर्तियुक्त। तेजस्वी। (४) सम्मानित। प्रतिष्ठित।

संभ्रांति–संज्ञा स्त्री० [सं० सम्भ्रान्ति] (१) घबराहट। उद्वेग। (२) आतुरता। हड़बड़ी। (३) चकपकाहट।

संभ्राजना–क्रि० अ० [सं० संभ्राज्] पूर्णतः सुशोभित होना। उ०—राम संभ्राज सेवा सहित सर्वदा, तुलसि मानस राम पुर विहारी।—तुलसी।

संमत–वि० दे० "सम्मत"।

संमित–संज्ञा स्त्री० दे० "सम्मित"।

संमान–संज्ञा पुं० दे० "सम्मान"।

संमित–वि० दे० "सम्मित"।

संमेलन–संज्ञा पुं० दे० "सम्मेलन"।

संयंता–संज्ञा पुं० [सं० संयंतृ] (१) संयम करनेवाला। रोकनेवाला। निग्रही। (२) शासक। अधिकारी। नेता।

संयंत्रित–वि० [सं०] (१) बँधा हुआ। जकड़ा हुआ। बद्ध। (२) बंद। (३) रोका हुआ। दबाया हुआ।

संय–संज्ञा पुं० [सं०] कंकाल। पंजर।

संयत्–वि० [सं०] (१) संबद्ध। लगा हुआ। (२) अखंडित। लगातार।

संज्ञा पुं० (१) नियत स्थान। बँधी हुई जगह। (२) वादा। करार। (३) झगड़ा। लड़ाई। (४) एक प्रकार की ईंट जो यज्ञ की वेदी बनाने में काम आती थी।

संयत–वि० [सं०] (१) बद्ध। बँधा हुआ। जकड़ा हुआ। (२) पकड़ में रखा हुआ। दबाव में रखा हुआ। (३) रोका हुआ। दमन किया हुआ। काबू में लाया हुआ। वशीभूत। (४) बंद किया हुआ। क़ैद। (५) क्रमबद्ध। व्यवस्थित। नियमबद्ध। क़ायदे का पाबंद। (६) उद्यत। तैयार। सन्नद्ध। (७) जिसने इंद्रियों और मन को वश में किया हो। चित्तवृत्ति का निरोध करनेवाला। निग्रही। (८) हद के भीतर रखा हुआ। उचित सीमा के भीतर रोका हुआ। जैसे,—संयत आहार।

संज्ञा पुं० (१) शिव का एक नाम। (२) योगी।

संयतप्राण–वि० [सं०] जिसने प्राणवायु या श्वास को वश में किया हो। प्राणायाम करनेवाला।

संयतात्मा–वि० [सं० संयतात्मन्] जिसने मन को वश में किया हो। चित्तवृत्ति का निरोध करनेवाला।

संयति–संज्ञा स्त्री० [सं०] वश में रखना। निरोध। रोक।

संयद्वसु–वि० [सं०] बहुत धनवाला। धनवान।

संज्ञा पुं० सूर्य की सात किरणों में से एक।

संयम–संज्ञा पुं० [सं०] [वि० संयमी, संयमित, संयत] (१) रोक। दाब। वश में रखने की क्रिया या भाव। (२) इंद्रियनिग्रह। मन और इंद्रियों को वश में रखने की क्रिया। चित्तवृत्ति का निरोध। (३) हानिकारक या बुरी वस्तुओं से बचने की क्रिया। परहेज़। जैसे,—संयम से रहो तो जल्दी अच्छे हो जाओगे। (४) बाँधना। बंधन। जैसे,—केश संयम। (५) बंद करना। मूँदना। (६) योग में ध्यान, धारणा और

जैसे,—उसका खर्च हम नहीं सँभाल सकते। (११) दशा बिगड़ने से बचाना। रोग, व्याधि, आपत्ति इत्यादि की रोक करना। जैसे,—बीमारी बढ़ जाने पर सँभालना कठिन होता है। (१२) कोई वस्तु ठीक ठीक है, इसका इतमीनान कर लेना। सहेजना। जैसे,—देखो १००) हैं, इन्हें सँभालो। (१३) किसी मनोवेग को रोकना। जोश थामना। जैसे,—उसकी कड़ी बातें सुनकर मैं अपने को सँभाल न सका।

संयो० क्रि०—देना।—लेना।

सँभाला-संज्ञा पुं० [हिं० सँभालना] जीवन की ज्योति का बुझने के पूर्व टिमटिमा उठना। मरने के पहले कुछ चेतनता सी आ जाना। चैतन्य वाई होना। जैसे,—कल सँभाला लिया था, आज मर गया।

क्रि० प्र०—लेना।

सँभालू-संज्ञा पुं० [हिं० सिंधुवार] श्वेत सिंधुवार वृक्ष। मेवड़ी।

संभावन-संज्ञा पुं० [सं० सम्भावन] [वि० संभावनीय, संभावित संभावितव्य, संभाव्य] (१) कल्पना। भावना। अनुमान। (२) जुटाना। एकत्र करना। योग करना। (३) उपस्थित करना। संपादन। (४) आदर। सम्मान। पूजा। (५) पूज्यबुद्धि। प्रतिष्ठा का भाव। (६) योग्यता। पात्रता। अधिकार। काबिलीयत। (७) ख्याति। प्रसिद्धि। नाम। (८) स्वीकार

संभावना-संज्ञा स्त्री० [सं० सम्भावना] (१) कल्पना। भावना। अनुमान। फ़र्ज़। (२) पूजा। आदर। सत्कार। (३) किसी बात के हो सकने का भाव। हो सकना। मुमकिन होना। (४) योग्यता। पात्रता। क़ाबिलीयत। (५) ख्याति। प्रसिद्धि। नामवरी। (६) प्रतिष्ठा। मान। इज्जत। (७) एक अलंकार जिसमें किसी एक बात के होने पर दूसरी बात का होना निर्भर कहा जाता है। उ०—(क) एहि विधि उपजै लच्छि जब होइ सीय समतूल। (ख) सहस जीभ जौ होय, तौ बरनै जस आप को।

संभावनीय-वि० [सं० सम्भावनीय] (१) जो हो सकता हो। मुमकिन। (२) कल्पना के योग्य। ध्यान में आने लायक़। (३) आदर के योग्य। सत्कार के योग्य।

संभावयितव्य-वि० दे० "संभावितव्य"।

संभावित-वि० [सं० सम्भावित] (१) कल्पित। विचारा हुआ। मन में माना हुआ। (२) जुटाया हुआ। उपस्थित किया हुआ। (३) पूजित। आदृत। (४) विख्यात। प्रसिद्ध। (५) योग्य। उपयुक्त। क़ाबिल. (६) संभव। मुमकिन।

संभावितव्य-वि० [सं० सम्भावितव्य] (१) कल्पना या अनुमान के योग्य। (२) सत्कार के योग्य। (३) जिसका सत्कार होनेवाला हो। (४) संभव। मुमकिन।

संभाव्य-वि० [सं० सम्भाव्य] (१) जो हो सकता हो। मुमकिन। (२) प्रशंसनीय। श्लाघ्य। (३) पूजा या सत्कार के योग्य; अथवा जिसका सत्कार होनेवाला हो। (४) कल्पना या अनुमान के योग्य। ध्यान में आने लायक़।

संभाष-संज्ञा पुं० [सं० सम्भाष] (१) कथन। संभाषण। बातचीत। (२) वादा। क़रार।

संभाषण-संज्ञा पुं० [सं० सम्भाषण] [वि० संभाषणीय, संभाषित, संभाष्य] कथोपकथन। बातचीत।

संभाषणीय-वि० [सं०] जो बातचीत करने योग्य हो। जिससे भाषण करना उचित हो।

संभषित-वि० [सं० सम्भाषित] (१) अच्छी तरह कहा हुआ। (२) जिससे बातचीत हुई हो।

संभाषी-वि० [सं० सम्भाषिन्] [स्त्री० संभाषिणी] कहनेवाला। बातचीत करनेवाला।

संभाष्य-वि० [सं० सम्भाष्य] भाषण करने योग्य। जिससे बातचीत करना उचित हो।

संभिन्न-वि० [सं०] (१) भली भाँति अलग। (२) पूर्ण भग्न। बिलकुल टूटा हुआ। (३) संक्षोभित। चालित। (४) गठा हुआ। ठोस। (५) प्रस्फुटित। खिला हुआ।

संभिन्न प्रलाप-संज्ञा पुं० [सं०] व्यर्थ की बातचीत (बौद्ध शास्त्र में एक पाप)।

संभु-संज्ञा पुं० दे० "शंभु"।

संभूत-वि० [सं० सम्भूत] (१) एक साथ उत्पन्न। (२) उत्पन्न। उद्भूत। जात। पैदा। (३) युक्त। सहित। (४) कुछ से कुछ हो गया हुआ। (५) उपयुक्त। योग्य।

संभूति-संज्ञा स्त्री० [सं० सम्भूति] (१) उत्पत्ति। उद्भव। (२) बढ़ती। विभूति। बरकत। (३) योग की विभूति। करामात। (४) क्षमता। शक्ति। (५) उपयुक्तता। योग्यता। (६) दक्ष प्रजापति की एक कन्या जो मरीचि की पत्नी थी।

संभूय-अव्य० [सं०] एक में। एक साथ। साझे में।

संभूय समुत्थान-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मिलकर किया हुआ व्यापार। साझे का कारबार। (२) वह विवाद या मुकदमा जो साझेदारों में हो।

संभृत-वि० [सं० सम्भृत] (१) एकत्र। इकट्ठा। जमा किया हुआ। बटोरा हुआ। (२) पूर्ण। भरा हुआ। लदा हुआ। (३) युक्त। सहित। (४) पाला पोसा हुआ। (५) समादृत। सम्मानित। जिसकी इज्जत की गई हो। (६) प्रस्तुत। तैयार। (७) निर्मित। बना हुआ।

संज्ञा पुं० उच्च स्वर। चीत्र।

संभृति-संज्ञा स्त्री० [सं० सम्भृति] (१) एकत्र करने की क्रिया या भाव। (२) सामान। सामग्री। (३) समूह। भीड़। जमावड़ा। (४) राशि। ढेर। (५) अधिकता। बहुतायत। (६) सम्यक् भरण पोषण। खूब पालना पोसना।

संभृष्ट-वि० [सं० सम्भृष्ट] (१) खूब भुना या तला हुआ। (२) कुरकुरा। करारा।

संभेद-संज्ञा पुं० [सं० सम्भेद] (१) खूब छिदना या भिदना। (२) शिथिल होना। ढीला होकर खिसकना। (३) वियोग। जुदाई। अलग होना। (४) मिले हुए शत्रुओं में परस्पर विरोध उत्पन्न करना। भेदनीति। (५) किस्म। प्रकार। (६) मिलना। जुटना। मिलना। (७) नदियों का संगम।

संभेदन-संज्ञा पुं० [सं०] [वि० संभेदनीय, संभेद्य, संभिन्न] (१) खूब छेदना या आर पार घुसना। धँसना। (२) जुदाना। मिलाना। भिड़ाना।

संभोग-संज्ञा पुं० [सं०] (१) किसी वस्तु का भली भाँति उपयोग। सुखपूर्वक व्यवहार। (२) सुरत। रतिक्रीड़ा। मैथुन। (३) शृंगार रस के दोनों भेदों में से एक। संयोग शृंगार। मिलाप की दशा। (४) हाथी के कुंभ या मस्तक का एक भाग।

संभोगी-वि० [सं० सम्भोगिन्] [स्त्री० संभोगिनी] संभोग करनेवाला। व्यवहार कर आनंद लेनेवाला।

संभोग्य-वि० [सं०] (१) जिसका व्यवहार होनेवाला हो। जो काम में लाया जानेवाला हो। (२) व्यवहार योग्य। बरतने लायक।

संभोज-संज्ञा पुं० [सं०] भोजन। खाना।

संभोजक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) भोजन करनेवाला। भक्षक। खानेवाला। (२) भोजन परसनेवाला।

संभोजन-संज्ञा पुं० [सं०] [वि० संभोजनीय, संभोज्य, संभुक्त] (१) भोज। दावत। (२) खाने की वस्तु। खाना।

संभोजनीय-वि० [सं०] (१) जो खाया जानेवाला हो। (२) खाने योग्य। भक्षणीय।

संभोज्य-वि० [सं०] (१) जो खाया जानेवाला हो। (२) खाने योग्य। भक्षणीय।

संभ्रम-संज्ञा पुं० [सं० सम्भ्रम] (१) घूमना। चक्कर। फेरा। (२) उतावली। हड़बड़ी। आतुरता। (३) घबराहट। व्याकुलता। चकपकाहट। (४) हलचल। धूम। (५) सहम। सिटपिटाना। (६) उत्कंठा। गहरी चाह। शौक़। हौसला। (७) पूज्य भाव। आदर। मान। गौरव। (८) भूल। चूक। गलती। (९) श्री। शोभा। छवि। सौंदर्य। (१०) शिव के एक प्रकार के गण।

संभ्रांत-वि० [सं० सम्भ्रान्त] (१) घुमाया हुआ। चक्कर दिया हुआ। (२) घबराया हुआ। उद्विग्न। चकपकाया हुआ। (३) स्फूर्तियुक्त। तेजस्वी। (४) सम्मानित। प्रतिष्ठित।

संभ्रांति-संज्ञा स्त्री० [सं० सम्भ्रान्ति] (१) घबराहट। उद्वेग। (२) आतुरता। हड़बड़ी। (३) चकपकाहट।

संभ्राजना-क्रि० अ० [सं० संभ्राज्] पूर्णतः सुशोभित होना।
उ०—राम संभ्राज सेवा सहित सर्वदा, तुलसि मानस राम पुर विहारी।—तुलसी।

संमत-वि० दे० "सम्मत"।

संमिति-संज्ञा स्त्री० दे० "सम्मिति"।

संमान-संज्ञा पुं० दे० "सम्मान"।

संमित-वि० दे० "सम्मित"।

संमेलन-संज्ञा पुं० दे० "सम्मेलन"।

संयंता-संज्ञा पुं० [सं० संयंतृ] (१) संयम करनेवाला। रोकनेवाला। निग्रही। (२) शासक। अधिकारी। नेता।

संयंत्रित-वि० [सं०] (१) बँधा हुआ। जकड़ा हुआ। बद्ध। (२) बंद। (३) रोका हुआ। दबाया हुआ।

संय-संज्ञा पुं० [सं०] कंकाल। पंजर।

संयत्-वि० [सं०] (१) संबद्ध। लगा हुआ। (२) अखंडित। लगातार।
संज्ञा पुं० (१) नियत स्थान। बदी हुई जगह। (२) वादा। करार। (३) झगड़ा। लड़ाई। (४) एक प्रकार की ईंट जो यज्ञ की वेदी बनाने में काम आती थी।

संयत-वि० [सं०] (१) बद्ध। बँधा हुआ। जकड़ा हुआ। (२) पकड़ में रखा हुआ। दबाव में रखा हुआ। (३) रोका हुआ। दमन किया हुआ। काबू में लाया हुआ। वशीभूत। (४) बंद किया हुआ। क़ैद। (५) क्रमबद्ध। व्यवस्थित। नियमबद्ध। क़ायदे का पाबंद। (६) उद्यत। तैयार। सन्नद्ध। (७) जिसने इंद्रियों और मन को वश में किया हो। चित्तवृत्ति का निरोध करनेवाला। निग्रही। (८) हद के भीतर रखा हुआ। उचित सीमा के भीतर रोका हुआ। जैसे,—संयत आहार।
संज्ञा पुं० (१) शिव का एक नाम। (२) योगी।

संयतप्राण-वि० [सं०] जिसने प्राणवायु या श्वास को वश में किया हो। प्रणायाम करनेवाला।

संयतात्मा-वि० [सं० संयतात्मन्] जिसने मन को वश में किया हो। चित्तवृत्ति का निरोध करनेवाला।

संयति-संज्ञा स्त्री० [सं०] वश में रखना। निरोध। रोक।

संयद्वसु-वि० [सं०] बहुत धनवाला। धनवान।
संज्ञा पुं० सूर्य्य की सात किरणों में से एक।

संयम-संज्ञा पुं० [सं०] [वि० संयमी, संयमित, संयत] (१) रोक। दाब। वश में रखने की क्रिया या भाव। (२) इंद्रियनिग्रह। मन और इंद्रियों को वश में रखने की क्रिया। चित्तवृत्ति का निरोध। (३) हानिकारक या बुरी वस्तुओं से बचने की क्रिया। परहेज़। जैसे,—संयम से रहो तो जल्दी अच्छे हो जाओगे। (४) बाँधना। बंधन। जैसे,—केश संयम। (५) बंद करना। मूँदना। (५) योग में ध्यान, धारणा और

समाधि का साधन। (६) प्रयत्न। उद्योग। कोशिश। (७) धूम्राक्ष के एक पुत्र का नाम। (८) प्रलय।

संयमन–संज्ञा पुं० [सं०] (१) रोक। (२) दमन। दबाव। निग्रह। (३) आत्मनिग्रह। मन को वश में रखना। (४) बंद रखना। क़ैद रखना। (५) बंधन में बाँधना। जकड़ना। कसना। (६) खींचना। तानना। (लगाम आदि) (७) यमपुर।

संयमनी–संज्ञा स्त्री० [सं०] यमराज की नगरी। यमपुरी। (यह मेरु पर्वत पर मानी गई है।) उ०—इतनी बात के सुनते ही अर्जुन धनुष बाण ले वहाँ से उठा और चला चला संयमनी पुरी में धर्मराज के पास गया।—लल्लू।

संयमित–वि० [सं०] (१) रोक में रखा हुआ। क़ाबू में लाया हुआ। (२) दमन किया हुआ। (३) बँधा हुआ। कसा हुआ। (४) पकड़ में लाया हुआ। कसकर पकड़ा हुआ। (५) जो मन को रोके हो। इंद्रियनिग्रही।

संयमी–वि० [सं० संयमिन्] (१) रोक या दबाव में रखनेवाला। क़ाबू में रखनेवाला। (२) मन और इंद्रियों को वश में रखनेवाला। आत्मनिग्रही। योगी। (३) बुरी या हानिकारक वस्तुओं से बचनेवाला। परहेज़गार।

संज्ञा पुं० शासक। राजा।

संयात–वि० [सं०] (१) एक साथ गया हुआ। साथ साथ लगा हुआ। (२) पहुँचा हुआ। प्राप्त। दाख़िल।

संयाति–संज्ञा पुं० [सं०] (१) नहुष के एक पुत्र का नाम। (२) बहुगव या प्रचिन्वान् के पुत्र का नाम।

संयान–संज्ञा पुं० [सं०] [वि० संयात, संयायी] (१) सहगमन। साथ जाना। (२) यात्रा। सफ़र।

यौ०—उत्तम संयान=मुर्दे को ले चलना।

(३) प्रस्थान। रवानगी। (४) गाड़ी। शकट।

संयाव–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का पकवान या मिठाई। पिराक। गोझिया।

संयुक्त–वि० [सं०] (१) जुड़ा हुआ। लगा हुआ। (२) मिला हुआ। जैसे,—संयुक्त अक्षर। (३) संबद्ध। लगाव रखता हुआ। (४) सहित। साथ। (५) पूर्ण। लिए हुए। समन्वित।

संयुक्ता–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) भगवतवद्दी। आवर्तकी लता। (२) एक छंद का नाम।

संयुग–संज्ञा पुं० [सं०] (१) मेल। मिलाप। संयोग। समागम। (२) भिड़ना। भिड़ंत। (३) युद्ध। लड़ाई। उ०—रोप्यो रन रावन, बोलाए बीर बानइत जानत जे रीति सब संयुग समाज की। चली चतुरंग चमू, चपरि हने निसान, सेना सराहन जोग रातिचर राज की।—तुलसी।

संयुत–वि० [सं०] (१) जुड़ा हुआ। मिला हुआ। बँधा हुआ। (२) संबद्ध। एक साथ लगा हुआ। (३) सहित। साथ। (४) समन्वित।

संज्ञा पुं० एक छंद जिसके प्रत्येक चरण में एक सगण, दो जगण और एक गुरु होता है।

संयोग–संज्ञा पुं० [सं०] (१) दो वस्तुओं का एक में या एक साथ होना। मेल। मिलान। मिलावट। मिश्रण। (२) समागम। मिलाप।

विशेष—यह शृंगार रस के दो भेदों में से एक है। इसी को संभोग शृंगार भी कहते हैं।

(३) लगाव। संबंध। (४) सहवास। स्त्री पुरुष का प्रसंग। (५) विवाह संबंध। (६) दो राजाओं की किसी बात के लिये संधि। (७) किसी विषय पर भिन्न व्यक्तियों का एक मत होना। मतैक्य। 'भेद' का उलटा। (८) दो या अधिक व्यंजनों का मेल। (९) जोड़। योग। मीज़ान। (१०) दो या कई बातों का इकट्ठा होना। इत्तफ़ाक़। जैसे,—(क) जब जैसा संयोग होता है, तब वैसा होता है। (ख) यह तो एक संयोग की बात है।

मुहा०—संयोग से=बिना पहले से निश्चित हुए। इत्तफ़ाक़ से। दैववशात्। जैसे,—यदि संयोग से वे आ जाते, तो झगड़ा हो जाता।

संयोगपृथक्त्व–संज्ञा पुं० [सं०] ऐसा पृथक् या अलगाव जो नित्य न हो। (न्याय)

संयोगमंत्र–संज्ञा पुं० [सं०] विवाह के समय पढ़ा जानेवाला वेदमंत्र।

संयोगविरुद्ध–संज्ञा पुं० [सं०] वे पदार्थ जो परस्पर मिलकर खाने योग्य नहीं रहते; और यदि खाए जायँ तो रोग उत्पन्न करते हैं। जैसे,—घी और मधु। मछली और दूध।

संयोगी–संज्ञा पुं० [सं० संयोगिन्] [स्त्री० संयोगिनी] (१) मेल का। मिला हुआ। (२) संयोग करनेवाला। मिलनेवाला। (३) वह पुरुष जो अपनी प्रिया के साथ हो। (४) ब्याहा हुआ। विवाहित।

संयोजक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) मिलानेवाला। जोड़नेवाला। (२) व्याकरण में वह शब्द जो दो शब्दों या वाक्यों के बीच केवल जोड़ने के लिये आता है।

संयोजन–संज्ञा पुं० [सं०] [वि० संयोगी, संयोजनीय, संयोज्य, संयोजित] (१) जोड़ने या मिलाने की क्रिया। (२) सहवास। स्त्री पुरुष का प्रसंग। (३) संसार के बंधन में डालनेवाला। भवबंधन का कारण। (बौद्ध) (४) आयोजन। व्यवस्था। प्रबंध। इंतज़ाम।

संयोजना–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) आयोजन। व्यवस्था। इंतज़ाम। तैयारी। (२) मेल। मिलान। (३) सहवास। स्त्री पुरुष की

प्रसंग। (४) भवबंधन का कारण। जन्म मरण के चक्र में बद्ध रखनेवाली बातें। (बौद्ध)

विशेष—कामराग, रूपराग, अरूपराग, परिघ, मानस, दृष्टि, शीलव्रतपरामर्श, विचिकित्सा, औद्धत्य और अविद्या इन सब की गणना संयोजना में होती है।

संयोजित-वि० [सं०] मिलाया हुआ। जोड़ा हुआ।

संयोज्य-वि० [सं०] (१) संयोजन के योग्य। मिलाने योग्य। (२) जो मिलाया या जोड़ा जानेवाला हो।

संयोधकंटक-संज्ञा पुं० [सं०] एक यक्ष का नाम।

सँयोना‡-क्रि० स० दे० "सँजोना"।

संरंभ-संज्ञा पुं० [सं०] (१) ग्रहण करना। पकड़ना। (२) आतुरता। आवेग। क्षोभ। उद्विग्नता। (३) घबराहट। बेकली। (४) उत्कंठा। लालसा। शौक़। उत्साह। (५) क्रोध। कोप। (६) शोक। (७) ऐंठ। ठसक। गर्व। (८) फोड़े या घाव का सूजना या लाल होना। (सुश्रुत) (९) घनत्व। अधिकता। अतिरेक। बहुतायत। (१०) आरंभ। शुरू। (११) एक अस्त्र का नाम।

संरक्त-वि० [सं०] (१) अनुरक्त। आसक्त। प्रेममग्न। (२) सुंदर। मनोहर। (३) कुपित। क्रोध से लाल।

संरक्षक-संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० संरक्षिका] (१) रक्षा करनेवाला। रक्षक। (२) देख रेख और पालन पोषण करनेवाला। (३) सहायक। (४) आश्रय देनेवाला।

संरक्षण-संज्ञा पुं० [सं०] [वि० संरक्षी, संरक्षित, संरक्ष्य, संरक्षणीय] (१) हानि या नाश आदि से बचाने का काम। हिफ़ाज़त। (२) देखरेख। निगरानी। जैसे,—बालक उनके संरक्षण में है। (३) अधिकार। कब्ज़ा। (४) रोक। प्रतिबंध। (५) रख छोड़ना।

संरक्षणीय-वि० [सं०] (१) रक्षा करने योग्य। हिफ़ाज़त के लायक। (२) रख छोड़ने लायक।

संरक्षित-वि० [सं०] (१) भली भाँति रक्षित। हिफ़ाज़त से रखा हुआ। (२) अच्छी तरह बचाया हुआ।

संरक्षितव्य-वि० [सं०] (१) जिसका संरक्षण करना हो। (२) जिसका संरक्षण उचित हो।

संरक्षी-वि० [सं० संरक्षिन्] [स्त्री० संरक्षिणी] (१) संरक्षण करनेवाला। (२) देख भाल करनेवाला।

संरक्ष्य-वि० [सं०] (१) जिसका संरक्षण करना हो। (२) जिसका संरक्षण उचित हो।

संरब्ध-वि० [सं०] (१) खूब मिला हुआ। खूब जुड़ा हुआ। आश्लिष्ट। (२) जो एक दूसरे को खूब पकड़े हुए हो। (३) हाथ में हाथ मिलाए हुए। (४) क्षुब्ध। उद्विग्न। (५) जोश में आया हुआ। उत्तेजित। (६) क्रोध से भरा हुआ। कोपपूर्ण। जैसे,—संरब्ध वचन। (७) क्रुद्ध। नाराज़। (८) सूजा हुआ। फूला हुआ।

संराधक-संज्ञा पुं० [सं०] ध्यान करनेवाला। आराधना करनेवाला। पूजा करनेवाला।

संराधन-संज्ञा पुं० [सं०] [वि० संराधनीय, संराधित, संराध्य] (१) तुष्टीकरण। प्रसन्न करना। (२) पूजा करना। (३) ध्यान। (४) जयजयकार।

संराधनीय-वि० [सं०] पूजा के योग्य।

संराव-संज्ञा पुं० [सं०] (१) कोलाहल। शोर। (२) हलचल। धूम।

संरुग्ण-वि० [सं०] खंडित। चूर चूर।

संरुद्ध-वि० [सं०] (१) अच्छी तरह रोका हुआ। (२) घेरा हुआ। (३) अच्छी तरह बंद। (४) आच्छादित। ढँका हुआ। (५) ठसाठस भरा हुआ। (६) मना किया हुआ। वर्जित।

संरूढ़-वि० [सं०] (१) अच्छी तरह चढ़ा हुआ। (२) खूब जमा हुआ। अच्छी तरह लगा हुआ। जिसने खूब जड़ पकड़ी हो। (३) अंकुरित। जमा हुआ। (४) अंगूर फेंकता हुआ। पूजता हुआ। सूखता या अच्छा होता हुआ। (घाव) (५) प्रकट। आविर्भूत। निकल पड़ा हुआ। (६) धृष्ट। प्रगल्भ। (७) प्रौढ़। दृढ़।

संरोचन-संज्ञा पुं० [सं०] एक पर्वत का नाम। (रामायण)

संरोध-संज्ञा पुं० [सं०] (१) रोक। छेंक। रुकावट। (२) गढ़ आदि को चारों ओर से घेरना। घेरा। (३) परिमिति। हदबंदी। (४) बंद करने या मूँदने की क्रिया। (५) अड़चन। बाधा। (६) हिंसा। नाश। (७) क्षेप। फेंकना।

संरोधन-संज्ञा पुं० [सं०] [वि० संरोधनीय, संरोध्य, संरुद्ध] (१) रोकना। छेंकना। रुकावट डालना। (२) घेरना। (३) हद बाँधना। (४) बंद करना। मूँदना। (५) बाधा डालना। कार्य्य में हानि पहुँचाना। (६) बंदी करना। क़ैद करना।

संरोधनीय-वि० [सं०] रोकने, छेंकने या घेरने योग्य।

संरोध्य-वि० [सं०] (१) जो रोका, छेंका या घेरा जानेवाला हो। (२) जिसे रोकना या घेरना उचित हो।

संरोपण-संज्ञा पुं० [सं०] [वि० संरोपणीय, संरोपित, संरोप्य] (१) पेड़ पौधा लगाना। जमाना। बैठाना। (२) घाव सुखाना। घाव अच्छा करना।

संरोपित-वि० [सं०] जमाया या लगाया हुआ।

संरोप्य-वि० [सं०] (१) जो जमाया या लगाया जानेवाला हो। (२) जिसे जमाना या लगाना उचित हो।

संरोषित-वि० [सं०] ऊपर लगाया हुआ। छोपा हुआ। लेप किया हुआ। पोता हुआ। (सुश्रुत)

संरोह-संज्ञा पुं० [सं०] (१) जमना। ऊपर छाना या बैठना। (२) घाव पर पपड़ी जमना। घाव सूखना। अंगूर फेंकना।

(३) अंकुरित होना। जमना। (४) प्रकट होना। आविर्भूत होना।

संरोहण–संज्ञा पुं० [सं०] [वि० संरोहणीय, संरोही] (१) जमना। ऊपर छाना। (२) घाव पर पपड़ी जमना। घाव सूखना। (३) (पेड़ पौधा) जमाना। लगाना।

संलक्षण–संज्ञा पुं० [सं०] [वि० संलक्षणीय, संलक्षित, संलक्ष्य] रूप निश्चित करना। लखना। पहचानना। ताड़ना। तमीज़ करना।

संलक्षित–वि० [सं०] (१) लखा हुआ। पहचाना हुआ। ताड़ा हुआ। (२) रूप निश्चित किया हुआ। लक्षणों से जाना हुआ।

संलक्ष्य–वि० [सं०] जो लखा जाय। जो पहचाना जाय। जो देखने में आ सके।

संलक्ष्य-क्रम व्यंग्य–संज्ञा पुं० [सं०] व्यंग्य के दो भेदों में से एक। वह व्यंजना जिसमें वाच्यार्थ से व्यंग्यार्थ की प्राप्ति का क्रम लक्षित हो। (साहित्य)

विशेष—इसके द्वारा वस्तु और अलंकार की व्यंजना होती है। जैसे,—"*पेड़ का पत्ता नहीं हिलता*" इसका व्यंग्यार्थ हुआ कि "हवा नहीं चलती"। इसमें वाच्यार्थ के उपरांत व्यंग्यार्थ की प्राप्ति लक्षित होती है। रस व्यंजना या भावव्यंजना में क्रम लक्षित नहीं होता, इसी से उसे असंलक्ष्य क्रम कहते हैं।

संलग्न–वि० [सं०] (१) बिल्कुल लगा हुआ। सटा हुआ। मिला हुआ। (२) भिड़ा हुआ। लड़ाई में गुथा हुआ। (३) संबद्ध। जुड़ा हुआ।

संलपन–संज्ञा पुं० [सं०] इधर उधर की बातचीत। प्रलाप। गपशप।

संलय–संज्ञा पुं० [सं०] (१) पक्षियों का उतरना या नीचे बैठना। (२) लीन होने की क्रिया। प्रलय। (३) निद्रा। नींद।

संलयन–संज्ञा पुं० [सं०] [वि० संलीन] (१) पक्षियों का नीचे उतरना या बैठना। (२) लय को प्राप्त होना। लीन होना। (३) नष्ट होना। व्यक्त न रहना।

संलाप–संज्ञा पुं० [सं०] (१) परस्पर वार्तालाप। आपस की बातचीत। (२) नाटक में एक प्रकार का संवाद जिसमें क्षोभ या आवेग नहीं होता, पर धीरता होती है।

संलापक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) नाटक में एक प्रकार का संवाद। संलाप। (२) एक प्रकार का उपरूपक या छोटा अभिनय।

संलिप्त–वि० [सं०] (१) लीन। भली भाँति लिप्त। (२) खूब लगा हुआ।

संलीन–वि० [सं०] (१) खूब लीन। अच्छी तरह लगा हुआ। (२) आच्छादित। ढका हुआ। (३) संकुचित। सिकुड़ा हुआ।

संलेख–संज्ञा पुं० [सं०] पूर्ण संयम। (बौद्ध)

संलोड़न–संज्ञा पुं० [सं०] [वि० संलोडित] (१) (जल आदि को) खूब हिलाना या चलाना। क्षुब्ध करना। मथना। (२) खूब हिलाना डुलाना। झकझोरना। (३) उलट पुलट करना। उथल-पुथल करना।

संवत्–संज्ञा पुं० [सं०] (१) वर्ष। संवत्सर। साल। (२) वर्ष विशेष जो किसी संख्या द्वारा सूचित किया जाता है। चली आती हुई वर्ष गणना का कोई वर्ष। सन्। जैसे,—यह कौन संवत है? (३) महाराज विक्रमादित्य के काल से चली हुई मानी जानेवाली वर्ष-गणना।

संवत्सर–संज्ञा पुं० [सं०] (१) वर्ष। साल। (२) पाँच पाँच वर्ष के युगों का प्रथम वर्ष।

विशेष—प्रभवादि साठ संवत्सर १२ युगों में विभक्त हैं जिनमें से प्रत्येक युग पाँच पाँच वर्ष का होता है। प्रत्येक युग के प्रथम वर्ष का नाम संवत्सर है। इसका देवता अग्नि कहा गया है।

(३) शिव का एक नाम।

संवदन–संज्ञा पुं० [सं०] (१) परस्पर कथन। बातचीत। (२) संवाद। सँदेसा। *पैगाम*। (३) विचार। आलोचना। (४) जाँच।

संवदना–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) वश में करने की क्रिया। वशीकरण। (२) मंत्र, ओषधि आदि से किसी को वश में करने की क्रिया।

संवनन–संज्ञा पुं० दे० "संवदन"।

संवनना–संज्ञा स्त्री० दे० "संवदना"।

संवर–संज्ञा पुं० [सं०] (१) रोक। परिहार। दूर करना। जैसे,—कालसंवर। (२) इंद्रिय निग्रह। मन को दबाना या वश में करना। (३) बौद्ध मतानुसार एक प्रकार का व्रत। (४) बाँध। बंद। (५) पुल। सेतु। (६) चुनना। पसंद करना। (७) कन्या का वर चुनना।

संवरण–संज्ञा पुं० [सं०] [वि० संवरणीय, संवृत] (१) हटाना। दूर रखना। रोकना। (२) बंद करना। ढाँकना। (३) आच्छादित करना। छोपना। (४) छिपाना। गोपन करना। (५) छिपाव। दुराव। (६) ढक्कन या परदा। (७) घेरा जिसके भीतर सब लोग न जा सकें। (८) बाँध। बंद। (९) सेतु। पुल। (१०) किसी चित्तवृत्ति को दबाने या रोकने की क्रिया। निग्रह। जैसे,—क्रोध संवरण करना। (११) गुदा के चमड़े की तीन परतों में से एक। (१२) कुरु के पिता का नाम। (१३) लेने के लिये पसंद करना। चुनना। (१४) कन्या का विवाह के लिये वर या पति चुनना।

संवरणीय–वि० [सं०] (१) निवारण करने योग्य। रोकने लायक। (२) संगोपनीय। (३) विवाह के योग्य। वरने योग्य।

सँवरना-क्रि० अ० [सं० संवर्णन] (१) बनना। दुरुस्त होना। (२) सजना। अलंकृत होना।

ॐ क्रि० स० [सं० स्मरण, हिं० सुमिरना] याद करना। स्मरण करना। उ०—सँवरौं आदि एक करतारू।—जायसी।

सँवरा‡-वि० दे० "साँवला"।

सँवरिया-वि० दे० "साँवला"। उ०—सिरिरस सँवरिया दहिने बोला।—जायसी।

संवर्ग-संज्ञा पुं० [सं०] (१) अपनी ओर समेटना। अपने लिये बटोरना। (२) भक्षण। भोजन। चट कर जाना। (३) लपट। लग जाना। (४) एक वस्तु का दूसरी में समा जाना या लीन हो जाना। (५) गुणनफल।

संवर्जन-संज्ञा पुं० [सं०] [वि० संवर्जनीय, संवर्जित, संवृक्त] (१) छीनना। खसोटना। ले लेना। हरण करना। (२) खा जाना। उड़ा जाना।

संवर्त्त-संज्ञा पुं० [सं०] (१) जुटना। भिड़ना। (शत्रु से) (२) लपेटने की क्रिया या भाव। लपेट। (३) फेरा। घुमाव। चक्कर। (४) प्रलय। कल्पांत। (५) एक कल्प का नाम। (६) लपेटी या बटोरी हुई वस्तु। (७) पिंडी। गोला। (८) बट्टी। टिकिया। (९) घना समूह। घनी राशि। (१०) प्रलय काल के सात मेघों में से एक। (११) इंद्र का अनुचर एक मेघ जिससे बहुत जल बरसता है।

विशेष—मेघों के द्रोण, आवर्त्त, पुष्कलावर्त्त आदि कई नाम कहे गए हैं। जिस प्रकार आवर्त्त बिना जल का माना गया है, उसी प्रकार संवर्त्त अत्यंत अधिक जलवाला कहा गया है।

(१२) मेघ। बादल। (१३) संवत्सर। वर्ष। (१४) एक दिव्यास्त्र। (१५) एक केतु का नाम। (१६) ग्रहों का एक योग। (१७) विभीतक। बहेड़ा।

संवर्त्तक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) लपेटनेवाला। (२) लय या नाश करनेवाला। (३) कृष्ण के भाई बलराम। (४) बलराम का अस्त्र लांगल। हल। (५) बड़वानल। (६) विभीतक वृक्ष। बहेड़ा। (७) प्रलय नामक मेघ। (८) प्रलय मेघ की अग्नि। (९) एक नाग। (१०) एक ऋषि।

संवर्त्तकल्प-संज्ञा पुं० [सं०] प्रलय का एक भेद। (बौद्ध)

संवर्त्तकी-संज्ञा पुं० [सं० संवर्त्तकिन्] कृष्ण के भाई बलराम।

संवर्त्तकेतु-संज्ञा पुं० [सं०] एक केतु का नाम।

विशेष—यह संध्या समय पश्चिम दिशा में उदय होता है और आकाश के तृतीयांश तक फैला रहता है। इसकी चोटी धूमिल रंग लिए ताम्र वर्ण की होती है। इसके उदय का फल राजाओं का नाश कहा गया है।

संवर्त्तन-संज्ञा पुं० [सं०] [वि० संवर्त्तनीय, संवर्त्तित, संवृत्त] (१) लपेटना। (२) फेरा या चक्कर देना। (३) किसी ओर फिरना। प्रवृत्त होना। (४) पहुँचना। प्राप्त होना। (५) हल नामक अस्त्र।

संवर्त्तनी-संज्ञा स्त्री० [सं०] सृष्टि का लय। प्रलय।

संवर्त्तनीय-वि० [सं०] लपेटने योग्य। फेरने योग्य।

संवर्त्ति-संज्ञा स्त्री० दे० "संवर्त्तिका"।

संवर्त्तिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) लपेटी हुई वस्तु। (२) बत्ती। (३) कमल का बँधा पत्ता। (४) कोई बँधा हुआ पत्ता। (५) बलराम का अस्त्र, हल। लांगल।

संवर्त्तित-वि० [सं०] (१) लपेटा हुआ। (२) फेरा या घुमाया हुआ।

संवर्द्धक-संज्ञा पुं० [सं०] बढ़ानेवाला।

संवर्द्धन-संज्ञा पुं० [सं०] [वि० संवर्द्धनीय, संवर्द्धित, संवृद्ध] (१) वृद्धि को प्राप्त होना। बढ़ना। (२) पालना। पोसना। (३) बढ़ाना। उन्नत करना।

संवर्द्धनीय-वि० [सं०] (१) बढ़ने या बढ़ाने योग्य। (२) पालने पोसने योग्य।

संवर्द्धित-वि० [सं०] (१) बढ़ा हुआ। (२) बढ़ाया हुआ। (३) पाला पोसा हुआ।

संवल-संज्ञा पुं० दे० "संबल"।

संवलन-संज्ञा पुं० [सं०] [वि० संवलनीय, संवलित] (१) भिड़ना। जुटना। (शत्रु से) (२) मेल। मिलान। संयोग। (३) मिलावट। मिश्रण।

संवलित-वि० [सं०] (१) भिड़ा हुआ। जुटा हुआ। (शत्रु से) (२) मिला हुआ। (३) युक्त। सहित। (४) घिरा हुआ।

संवसथ-संज्ञा पुं० [सं०] बस्ती। गाँव या कस्बा।

संवह-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वहन करनेवाला। ले जानेवाला। (२) एक वायु जो आकाश के सात मार्गों में से तीसरे मार्ग में रहती है। (३) अग्नि की सात जिह्वाओं में से एक।

संवहन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वहन करना। ले जाना। ढोना। (२) दिखाना। प्रदर्शित करना।

संवाच्य-संज्ञा पुं० [सं०] बातचीत करने या कथा कहने का ढंग। (यह ६४ कलाओं में से एक है।)

संवाटिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] सिंघाड़ा। शृंगाटक।

संवाद-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बातचीत। कथोपकथन। (२) खबर। हाल। समाचार। वृत्तांत। (३) प्रसंग। कथा। चर्चा। (४) नियति। नियुक्ति। (५) मामला। मुकदमा। व्यवहार। (६) सहमति। एक राय। (७) स्वीकार। रजामंदी।

संवादक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) भाषण करनेवाला। बातचीत करनेवाला। (२) सहमत होनेवाला। एक-राय होनेवाला। (३) स्वीकार करनेवाला। माननेवाला। राजी होनेवाला। (४) बजानेवाला।

संवादन–संज्ञा पुं० [सं०] [वि० संवादनीय, संवादित, संवादी, संवाद्य] (१) भाषण। बातचीत करना। (२) सहमत होना। एकमत होना। (३) राज़ी होना। मानना। (४) बजाना।

संवादिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) कीट। कीड़ा। (२) पिपीलिका। च्यूँटी।

संवादित–वि० [सं०] (१) बोलने में प्रवृत्त किया हुआ। बातचीत में लगाया हुआ। (२) राज़ी किया हुआ। मनाया हुआ।

संवादिता–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सादृश्य। समानता। (२) एक मेल का होना।

संवादी–वि० [सं० संवादिन्] [स्त्री० संवादिनी] (१) संवाद करनेवाला। बातचीत करनेवाला। (२) सहमत होनेवाला। राज़ी होनेवाला। (३) अनुकूल होनेवाला। (४) बजानेवाला।

संज्ञा पुं० संगीत में वह स्वर जो वादी के साथ सब स्वरों के साथ मिलता और सहायक होता है। जैसे,—पंचम से षड्ज तक जाने में बीच के तीन स्वर संवादी होंगे।

संवार–संज्ञा पुं० [सं०] (१) आच्छादन। ढँकना। छिपाना। (२) शब्दों के उच्चारण में कंठ का आकुंचन या दबाव। (३) उच्चारण के बाह्य प्रयत्नों में से एक जिसमें कंठ का आकुंचन होता है। 'विवार' का उलटा। (४) बाधा। अड़चन।

संवारण–संज्ञा पुं० [सं०] [वि० संवारणीय, संवारित, संवार्य] (१) हटाना। दूर करना। निवारण करना। (२) रोकना। न आने देना। (३) निषेध करना। मना करना। (४) छिपाना। ढँकना।

संवारणीय–वि० [सं०] (१) हटाने या दूर करने योग्य। (२) रोकने योग्य। (३) छिपाने या ढँकने योग्य।

सँवारना–क्रि० स० [सं० संवर्णन] (१) सजाना। अलंकृत करना। (२) दुरुस्त करना। ठीक करना। (३) क्रम से रखना। ठीक ठीक लगाना। (४) कार्य्य सुचारु रूप से संपन्न करना। काम ठीक करना।

मुहा०—बिगड़ी सँवारना = बिगड़ी बात बनाना।

संवारित–वि० [सं०] (१) रोका हुआ। हटाया हुआ। (२) मना किया हुआ। (३) ढँका हुआ।

संवार्य्य–वि० [सं०] (१) हटाने योग्य। दूर करने योग्य। (२) मना करने योग्य। रोकने योग्य। (३) ढँकने या छिपाने योग्य।

संवास–संज्ञा पुं० [सं०] (१) साथ बसना या रहना। (२) परस्पर संबंध। (३) सहवास। प्रसंग। मैथुन। (४) वह खुला हुआ स्थान जहाँ लोग विनोद या मन बहलाव के निमित्त एकत्र हों। (५) सभा। समाज। (६) मकान। घर। रहने का स्थान। (७) सार्वजनिक स्थान।

संवाह–संज्ञा पुं० [सं०] (१) ले जाना। ढोना। (२) पैर दबाना। (३) खुला उपवन जहाँ लोग एकत्र हों। (४) बाजार। मंडी। (५) पीड़न। सताना। ज़ुल्म।

संवाहक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) ले जानेवाला। पहुँचानेवाला। (२) ढोनेवाला। (३) बदन मलनेवाला। पैर दबानेवाला। पाँव पलोटनेवाला।

संवाहन–संज्ञा पुं० [सं०] [वि० संवाहनीय, संवाहित, संवाही, संवाह्य] (१) उठाकर ले चलना। ढोना। (२) ले जाना। पहुँचाना। (३) चलाना। परिचालन। (४) शरीर की मालिश। हाथ पैर दबाना या मलना।

संवाहित–वि० [सं०] (१) ले गया हुआ। ढोया हुआ। (२) पहुँचाया हुआ। (३) चलाया हुआ। परिचालित। (४) जिसका शरीर-मर्दन हुआ हो। जिसके हाथ पाँव दबाए गए हों।

संवाही–वि० [सं० संवाहिन्] [स्त्री० संवाहिनी] (१) ले जानेवाला। पहुँचानेवाला। (२) ढोनेवाला। (३) चलानेवाला। (४) अंग मर्दन करनेवाला। हाथ पैर दबानेवाला।

संवाह्य–वि० [सं०] (१) वहन करने योग्य। (२) मलने योग्य। दबाने योग्य।

संविग्न–वि० [सं०] (१) क्षुब्ध। उद्विग्न। घबराया हुआ। (२) भीत। आतुर। डरा हुआ।

संविज्ञ–वि० [सं०] अच्छी तरह जानकार।

संविज्ञान–संज्ञा पुं० [सं०] (१) सम्यक् बोध। पूर्ण ज्ञान। (२) सहमति। एक मत। (३) स्वीकृति। मंजूरी।

संवितिका फल–संज्ञा पुं० [सं०] सेब। सेवीफल।

संवित्ति–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) प्रतिपत्ति। (२) अविवाद। ऐकमत्य। एक राय। (३) चेतना। संज्ञा। (४) अनुभव। (५) बुद्धि।

संविद्–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) चेतना। चैतन्य। ज्ञान शक्ति। (२) बोध। ज्ञान। समझ। (३) बुद्धि। महत्तत्व। (सांख्य) (४) संवेदन। अनुभूति। (५) योग की एक भूमि जिसकी प्राप्ति प्राणायाम से होती है। (६) समझौता। करार। वादा। (७) मिलने का स्थान जो पहले से ठहराया हो। (८) युक्ति। उपाय। तदबीर। (९) वृत्तांत। हाल। संवाद। (१०) चली हुई परंपरा। रीति। प्रथा। (११) नाम। (१२) तोषण। तुष्टि। (१३) भाँग। (१४) युद्ध। लड़ाई। (१५) युद्ध की ललकार। (१६) संकेत। इशारा। निशान। (१७) प्राप्ति। लाभ। (१८) संपत्ति। जायदाद।

संविद्–वि० [सं०] चेतन। चेतनायुक्त।

संज्ञा पुं० वादा। समझौता। इकरार।

संविदामंजरी–संज्ञा स्त्री० [सं०] गाँजा।

संविदित–वि० [सं०] (१) पूर्णतया ज्ञात। जाना बूझा। (२) ढूँढ़ा हुआ। खोजा हुआ। (३) मैं पाया हुआ। सब की राय

से ठहराया हुआ। (४) मारा किया हुआ। जिसका कगार हुआ हो। (५) समझाया बुझाया हुआ। उपदिष्ट।

संविज्ञाद-संज्ञा पुं० [सं०] यूरोपीय दर्शन का एक सिद्धांत जिसमें वेदांत के समान चैतन्य के अतिरिक्त और किसी वस्तु की पारमार्थिक सत्ता नहीं स्वीकार की गई है। चैतन्य वाद।

संविधा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) रहन सहन। आचार व्यवहार। (२) व्यवस्था। आयोजन। प्रबंध। डौल।

संविधान-संज्ञा पुं० [सं०] (१) व्यवस्था। आयोजन। प्रबंध। (२) विधि। रीति। दस्तूर। (३) रचना। सजना। (४) विचित्रता। अनूठापन।

संविधानक-संज्ञा पुं० [सं०] विचित्र क्रिया या व्यापार। अलौकिक घटना।

संविधि-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) विधान। रीति। दस्तूर। (२) व्यवस्था। प्रबंध। डौल।

संविधेय-वि० [सं०] (१) जिसका डौल या प्रबंध करना हो। (२) जिसे करना हो। (३) जिसका प्रबंध उचित हो।

संविभक्त-वि० [सं०] (१) अच्छी तरह बँटा हुआ। (२) जिसके सब अंग ठीक हिसाब से हों। सुडौल। (३) प्रदत्त। दिया हुआ।

संविभजन-संज्ञा पुं० [सं०] [वि० संविभजनीय] (१) बाँट। बँटाई। (२) साझा।

संविभाग-संज्ञा पुं० [सं०] (१) पूर्णतया भाग करना। हिस्सा करना। बाँट। बँटाई। (२) प्रदान।

संविषा-संज्ञा स्त्री० [सं०] अतीस। अतिविषा।

संविष्ट-वि० [सं०] (१) आगत। प्राप्त। पहुँचा हुआ। (२) विश्राम करता हुआ। लेटा हुआ। सोया हुआ। (३) निविष्ट। बैठा हुआ।

संवीक्षण-संज्ञा पुं० [सं० संवीक्षणीय, संवीक्षित, संवीक्ष्य] (१) इधर उधर देखने की क्रिया। अवलोकन। (२) अन्वेषण। खोज। तलाश।

संवीत-वि० [सं०] (१) आवृत। ढका हुआ। छिपा हुआ। (२) कवच धारण किए हुए। (३) पहने हुए। (४) रुद्ध। रुका हुआ। (५) न दिखाई देता हुआ। नजर से गायब। अदृश्य। (६) अनदेखा किया हुआ। जिसे देख कर भी टाल गए हों।

संज्ञा पुं० (१) पहनावा। वस्त्र। आच्छादन। (२) सफेद कटमी।

संवीती-वि० [सं० संवीतिन्] जो यज्ञोपवीत पहने हो।

संवृक्त-वि० [सं०] (१) छीना हुआ। हरण किया हुआ। (२) उड़ाया हुआ। खरचा खाया हुआ।

संवृत-वि० [सं०] (१) आच्छादित। ढका हुआ। बंद किया हुआ। (२) घिरा हुआ। (३) लपेटा हुआ। (४) युक्त। सहित। पूर्ण। (५) रक्षित। (६) दबाया हुआ। दमन किया हुआ। (७) जो किनारे या अलग हो गया हो। (८) रुँधा हुआ। (गला) (९) धीमा किया हुआ।

संज्ञा पुं० (१) वरुण देवता। (२) गुप्त स्थान। (३) एक प्रकार का जलवेतस्। एक प्रकार का बेंत।

संवृतकोष्ठ-संज्ञा पुं० [सं०] कोष्ठबद्धता। कब्ज़ियत।

संवृत मंत्र-संज्ञा पुं० [सं०] गुप्त मंत्रणा। भेद की बातचीत।

संवृति-संज्ञा स्त्री० [सं०] ढकने या छिपाने की क्रिया।

संवृत्त-वि० [सं०] (१) पहुँचा हुआ। समागत। प्राप्त। (२) घटित। जो हुआ हो। (३) जो पूरा हुआ हो। (कामना, इच्छा आदि।) (४) उत्पन्न। पैदा। (५) उपस्थित। मौजूद।

संज्ञा पुं० (१) वरुण देवता। (२) एक नाग का नाम।

संवृत्ति-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) निष्पत्ति। सिद्धि। (२) एक देवी का नाम।

संवृद्ध-वि० [सं०] (१) बढ़ा हुआ। (२) उन्नत।

संवृद्धि-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) बढ़ने की क्रिया या भाव। बढ़ती। अधिकता। (२) धन आदि की अधिकता। समृद्धि।

संवेग-संज्ञा पुं० [सं०] (१) पूर्ण वेग या तेजी। (२) आवेग। घबराहट। उद्विग्नता। खलबली। (३) भय। सहम। (४) ज़ोर। अतिरेक।

संवेजन-संज्ञा पुं० [सं०] [वि० संवेजनीय, संवेजित, संविग्न] (१) उद्विग्न करना। घबराना। खलबली डालना। (२) सहमाना। डराना। (३) भड़काना। उत्तेजित करना।

यौ०—रोम-संवेजन = रोंगटे खड़े होना। पुलक होना। नेत्र संवेजन = जर्राह या पिच्कारी लगाना।

संवेद-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सुख दुख आदि का ज्ञान पड़ना। अनुभव। वेदना। (२) ज्ञान। बोध।

संवेदन-संज्ञा पुं० [सं०] [वि० संवेदनीय, संवेदित, संवेद्य] (१) अनुभव करना। सुख दुःख आदि की प्रतीति करना। क्लेश, आनंद, शीत, ताप आदि को मन में मालूम करना। (२) जताना। प्रकट करना। बोध कराना। (३) नकछिकनी नाम की घास।

संवेदनीय-वि० [सं०] (१) अनुभव योग्य। प्रतीति योग्य। (२) जताने लायक। बोध कराने योग्य।

संवेदित-वि० [सं०] (१) अनुभव किया हुआ। प्रतीत किया हुआ। (२) जताया हुआ। बोध कराया हुआ। बताया हुआ।

संवेद्य-वि० [सं०] (१) अनुभव करने योग्य। प्रतीत करने योग्य। मन में मालूम करने लायक। (२) दूसरे को अनुभव कराने योग्य। जताने योग्य। बताने लायक।

यौ०—स्वसंवेद्य = अपने ही अनुभव करने योग्य। जो दूसरे को बताया न जा सके, आप ही आप मालूम किया जा सके।

संवेश-संज्ञा पुं० [सं०] (१) पास जाना। पहुँचना। (२) प्रवेश। घुसना। (३) बैठना। आसन जमाना। (४) लेटना। सोना।

पड़ रहना। (५) कामशास्त्रानुसार एक प्रकार का रतिबंध। (६) काष्ठासन। पीढ़ा। पाटा। (७) अग्नि देवता, जो रति के अधिष्ठाता माने गए हैं।

संवेशक–संज्ञा पुं० [सं०] ठीक ठिकाने से रखनेवाला। तरतीब देनेवाला।

संवेशन–संज्ञा पुं० [सं०] [संवेशनीय, संवेशित, संवेश्य] (१) बैठना। (२) लेटना। पड़ रहना। सोना। (३) घुसना। प्रवेश करना। (४) रति। रमण। समागम।

संवेश्य–वि० [सं०] (१) लेटने योग्य। (२) घुसने योग्य।

संवेष्ट–संज्ञा पुं० [सं०] लपेटने का कपड़ा इत्यादि। बेठन। आच्छादन।

संवेष्टन–संज्ञा पुं० [सं०] [वि० संवेष्टित, संवेष्टनीय] (१) लपेटना। ढाँकना। बंद करना। (२) घेरना।

संव्यवहार–संज्ञा पुं० [सं०] (१) अच्छी तरह का व्यवहार। अच्छा सलूक। एक दूसरे के प्रति उत्तम आचरण। (२) मामला। प्रसंग। (३) संसर्ग। लगाव। (४) पूरा सेवन। व्यवहार। उपयोग। इस्तेमाल। (५) लेन देन करनेवाला। व्यवसायी। दूकानदार। (६) प्रचलित शब्द। आम फ़हम लफ़्ज़।

संव्यान–संज्ञा पुं० [सं०] (१) उत्तरीय वस्त्र। चादर। दुपट्टा। (२) वस्त्र। आच्छादन। कपड़ा।

संव्यार–संज्ञा पुं० [सं०] (१) आच्छादन। वस्त्र। (२) ओढ़ना।

संशप्त–वि० [सं०] (१) जो शापग्रस्त हो। (२) जिसने किसी के साथ प्रतिज्ञा की या शपथ खाई हो। शपथबद्ध।

संशप्तक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह योद्धा जिसने बिना सफल हुए लड़ाई आदि से न हटने की शपथ खाई हो। (२) वह जिसने यह शपथ खाई हो कि बिना मारे न लौटेंगे। (३) कुरुक्षेत्र के युद्ध में एक दल जिसने अर्जुन के वध की प्रतिज्ञा की थी, पर स्वयं मारा गया था।

संशब्द–संज्ञा पुं० [सं०] (१) ललकार। (२) निर्वचन। कथन। (३) स्तुति। प्रशंसा।

संशम–संज्ञा पुं० [सं०] पूर्ण शांति। पूर्ण तुष्टि। कामना की पूर्ण निवृत्ति।

संशमन–संज्ञा पुं० [सं०] (१) शांत करना। निवृत्त करना। (२) नष्ट करना। न रहने देना। (३) वह औषध जो दोषों को बिना घटाए बढ़ाए शोधन करे।

संशमनवर्ग–संज्ञा पुं० [सं०] वे ओषधियाँ जो संशमन करें। जैसे,—देवदारु, कूट, हल्दी आदि।

संशय–संज्ञा पुं० [सं०] (१) लेट रहना। पड़ रहना। (२) दो या कई बातों में से किसी एक का भी मन में न बैठना। अनिश्चयात्मक ज्ञान। अनिश्चय। संदेह। शक। दुबहा। दुबधा।

विशेष—यह न्याय के सोलह पदार्थों में से एक है।

(३) आशंका। खतरा। डर। जैसे,—प्राण का संशय में पड़ना। (४) संदेह नामक काव्यालंकार।

संशयसम–संज्ञा पुं० [सं०] न्याय दर्शन में २४ जातियों अर्थात् खंडन की असंगत युक्तियों में से एक। वादी के दृष्टांत को लेकर उसमें साध्य और असाध्य दोनों धर्मों का आरोप करके वादी के साध्य विषय को संदिग्ध सिद्ध करने का प्रयत्न।

विशेष—वादी कहता है—"शब्द अनित्य है, उत्पत्ति धर्मवाला होने से, घड़े के समान"। इस पर यदि प्रतिवादी कहे—"शब्द नित्य और अनित्य दोनों हुआ, मूर्त होने के कारण, घट और घटत्व के समान" तो उसका यह असंगत उत्तर 'संशयसम' होगा।

संशयच्छेद–संज्ञा पुं० [सं०] (१) संशय का दूर होना। (२) एक प्रकार का काव्यालंकार।

संशयात्मक–वि० [सं०] जिसमें संदेह हो। संदिग्ध। दुबधे का। अनिश्चित।

संशयात्मा–संज्ञा पुं० [सं० संशयात्मन्] जिसका मन किसी बात पर विश्वास न करे। विश्वासहीन। संदेहवादी।

संशयापन्न–संज्ञा पुं० [सं०] संशययुक्त। अनिश्चित।

संशयालु–वि० [सं०] विश्वास न करनेवाला। बात बात में संदेह करनेवाला।

संशयित–वि० [सं०] (१) संशययुक्त। दुबधा में पड़ा हुआ। (२) संदिग्ध। अनिश्चित।

संशयिता–संज्ञा पुं० [सं० संशयितृ] संशयकर्ता। संशय करनेवाला।

संशयी–वि० [सं० संशयिन्] (१) संशय करनेवाला। संदेह करनेवाला। (२) शक्की।

संशयोपमा–संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का उपमा अलंकार जिसमें कई वस्तुओं के साथ समानता संशय के रूप में कही जाती है।

संशयोपेत–वि० [सं०] संशययुक्त। संदिग्ध। अनिश्चित।

संशरण–संज्ञा पुं० [सं०] (१) दलित करना। चूर्ण करना। (२) भंग करना। तोड़ना। (३) युद्ध का आरंभ। दे० "संमरण"। (४) शरण में जाना। पनाह लेना।

संशारुक–वि० [सं०] (१) तोड़नेवाला। भंग करनेवाला। (२) दलन या मर्दन करनेवाला।

संशासन–संज्ञा पुं० [सं०] (१) अच्छा शासन। उत्तम राज्य-प्रबंध। (२) आदेश मंत्र।

संशित–वि० [सं०] (१) सान पर चढ़ाया हुआ। तेज़ किया हुआ। चोखा या तीखा किया हुआ। पैना हुआ। (२) उद्यत। उतारू। तत्पर। आमादा। (३) दक्ष। निपुण। पटु। (४) कर्कश। कटु। अप्रिय। कठोर। जैसे,—संशित वचन।

संशितव्रत–संज्ञा पुं० [सं०] वह जो नियम व्रत के पालन में

पका हो। कठोरता से नियम या व्रत आदि का पालन करनेवाला।

संशिति-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) संशय। संदेह। शक। (२) खूब तेज़ या तेज़ करना। खूब सान पर चढ़ाना।

संशिष्ट-वि० [सं०] बचा हुआ। बाकी रहा हुआ।

संशीत-वि० [सं०] (१) जो ठंढा हुआ हो। (२) ठंढ से जमा हुआ।

संशुद्ध-वि० [सं०] (१) यथेष्ट शुद्ध। विशुद्ध। (२) साफ़ किया हुआ। शुद्ध किया हुआ। (३) चुकाया हुआ। पूरा किया हुआ। बेबाक। (ऋण आदि) (४) जाँचा हुआ। परीक्षित। (५) अपराध से मुक्त किया हुआ। जैसे,—संशुद्ध-पातक।

संशुद्धि-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) पूरी सफाई। पूरी पवित्रता। (२) शरीर की सफाई।

संशुष्क-वि० [सं०] (१) बिलकुल सूखा हुआ। शुष्क। (२) नीरस। (३) जो सहृदय न हो। अरसिक।

संशोधक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शोधन करनेवाला। सुधारनेवाला। दुरुस्त या ठीक करनेवाला। (२) संस्कार करनेवाला। बुरी से अच्छी दशा में लानेवाला। (३) अदा करनेवाला। चुकानेवाला।

संशोधन-संज्ञा पुं० [सं०] [वि० संशोधनीय, संशोधित, संशुद्ध, संशोध्य] (१) शुद्ध करना। साफ़ करना। (२) दुरुस्त करना। ठीक करना। सुधारना। त्रुटि या दोष दूर करना। कसर या ऐब निकालना। (३) चुकता करना। अदा करना। बेबाक करना। (ऋण आदि)

संशोधनीय-वि० [सं०] (१) साफ़ करने योग्य। (२) सुधारने या ठीक करने योग्य।

संशोधित-वि० [सं०] (१) खूब शुद्ध किया हुआ। (२) सुधारा हुआ। ठीक किया हुआ। दुरुस्त किया हुआ।

संशोधी-वि० [सं० संशोधिन्] [स्त्री० संशोधिनी] (१) सुधारनेवाला। दुरुस्त करनेवाला। (२) साफ़ करनेवाला।

संशोध्य-वि० [सं०] (१) साफ़ करने योग्य। (२) सुधारने या ठीक करने योग्य। (३) जिसका सुधार करना हो। (४) जिसे साफ़ करना हो।

संशोषण-संज्ञा पुं० [सं०] [वि० संशोषणीय, संशोषित, संशोष्य] (१) बिलकुल सोखना। जज़्ब करना। (२) सुखाना।

संशोषणीय-वि० [सं०] सोखने योग्य।

संशोषित-वि० [सं०] सोखा हुआ।

संशोष्य-वि० [सं०] सोखने योग्य। जिसे सोखना या सुखाना हो।

संश्यान-संज्ञा पुं० [सं०] (१) (शीत से) ठिठुरा हुआ। सिकुड़ा हुआ। (२) जमा हुआ।

संश्रय-संज्ञा पुं० [सं०] (१) संयोग। मेल। (२) संबंध। समागम। लगाव। संपर्क। (३) आश्रय। शरण। पनाह। (४) सहारा। अवलंब। (५) राजाओं का परस्पर रक्षा के लिये मेल। अभिसंधि।

विशेष—स्मृतियों में यह राजा के छः गुणों में कहा गया है और दो प्रकार का माना गया है—(१) शत्रु से पीड़ित हो कर दूसरे राजा की सहायता लेना; और (२) शत्रु से पहुँचनेवाली हानि की आशंका से किसी दूसरे बलवान् राजा का आश्रय लेना।

(६) पनाह की जगह। शरण-स्थान। (७) रहने या ठहरने की जगह। घर। (८) उद्देश्य। लक्ष्य। मतलब। (९) किसी वस्तु का अंश। हिस्सा।

संश्रयण-संज्ञा पुं० [सं०] [वि० संश्रयणीय, संश्रयी, संश्रित] (१) सहारा लेना। अवलंब पकड़ना। (२) शरण लेना। पनाह लेना।

संश्रयणीय-वि० [सं०] (१) सहारा लेने योग्य। (२) शरण लेने योग्य।

संश्रयी-वि० [सं० संश्रयिन्] (१) सहारा लेनेवाला। (२) शरण लेनेवाला।

संज्ञा पुं० भृत्य। नौकर।

संश्रव-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सुनना। कान देना। (२) अंगीकार। स्वीकार। मानना। रज़ामंदी। (३) वादा। प्रतिज्ञा। क़रार।

वि० जो सुना जा सके। सुनाई पड़नेवाला।

संश्रवण-संज्ञा पुं० [सं०] [वि० संश्रवणीय, संश्रुत] (१) सुनना। खूब कान देना। (२) अंगीकार करना। स्वीकार करना। (३) वादा करना। क़रार करना।

संश्रांत-वि० [सं०] बिलकुल थका हुआ। शिथिल। पस्तमाँदा।

संश्राव-संज्ञा पुं० [सं०] [वि० संश्रावणीय, संश्राविन्, संश्राव्य] (१) कान देना। सुनना। (२) अंगीकार। स्वीकार।

संश्रावक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सुननेवाला। श्रोता। (२) चेला। शिष्य।

संश्रावित-वि० [सं०] (१) सुनाया हुआ। (२) ज़ोर से पढ़ कर सुनाया हुआ।

संश्राव्य-वि० [सं०] (१) सुनाने योग्य। (२) सुनाई पड़नेवाला।

संश्रित-वि० [सं०] (१) जुड़ा या मिला हुआ। संयुक्त। (२) लगा हुआ। संलग्न। अँटका हुआ। (३) टँगा हुआ। टिका या ठहरा हुआ। (४) आलिंगित। संश्लिष्ट। गले या छाती से लगाया हुआ। (५) भाग कर शरण में गया हुआ। जिसने जाकर पनाह ली हो। (६) जिसने आश्रय ग्रहण किया हो। जो निर्वाह के लिये किसी के पास गया हो।

(७) जिसने सेवा स्वीकार की हो। (८) जो किसी बात के लिये दूसरे पर निर्भर हो। आसरे या भरोसे पर रहनेवाला। पराधीन।
संज्ञा पुं० सेवक। भृत्य।

संश्रुत-संज्ञा पुं० [सं०] (१) खूब सुना हुआ। (२) खूब पढ़कर सुनाया हुआ। (३) स्वीकृत। माना हुआ। मंजूर।

संश्लिष्ट-वि० [सं०] (१) खूब मिला हुआ। जड़ा हुआ। सटा हुआ। (२) एक साथ किया हुआ। (३) सम्मिलित। मिश्रित। (४) एक में मिलाया हुआ। गड्डमड्ड। (५) आलिंगित। परिरंभित। भेंटा हुआ।
संज्ञा पुं० (१) राशि। ढेर। समूह। (२) एक प्रकार का चँदोवा या मंडप। (वास्तु)

संश्लेष-संज्ञा पुं० [सं०] (१) मेल। मिलाप। संयोग। (२) मिलान। सटाव। (३) आलिंगन। परिरंभण। भेंटना।

संश्लेषण संज्ञा पुं० [सं०] [वि० संश्लेषणीय, संश्लेषित, संश्लिष्ट] (१) एक में मिलाना। जुटाना। सटाना। (२) लगाना। अँटकाना। टाँगना। (३) बाँधने या जोड़नेवाली वस्तु।

संश्लेषित-वि० [सं०] (१) मिलाया हुआ। जोड़ा हुआ। सटाया हुआ। (२) लगाया हुआ। अटकाया हुआ। (३) आलिंगन किया हुआ।

संश्लेषी-वि० [सं० संश्लेषिन्] [स्त्री० संश्लेषिणी] (१) मिलानेवाला। जोड़नेवाला। (२) आलिंगन करनेवाला। भेंटनेवाला।

संस*-संज्ञा पुं० [सं० संशय] संशय। आशंका। उ०—करुणा करी छाँड़ि पशु दीनो जानि सुरन मन संस। सूरदास प्रभु असुर निकंदन दुष्टन के उर गंस।—सूर।

संसइ*†-संज्ञा पुं० दे० "संशय"।

संसक्त-वि० [सं०] (१) लगा हुआ। सटा हुआ। मिला हुआ। (२) भिड़ा हुआ। (शत्रु से) (३) संबद्ध। जुड़ा हुआ। (४) प्रवृत्त। लगा हुआ। मशगूल। लिप्त। लीन। (५) आसक्त। लुभाया हुआ। लुब्ध। प्रेम में फँसा हुआ। (६) विषय वासना में लीन। (७) युक्त। सहित। पूर्ण। (८) सघन। घना।

संसक्ति-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) लगाव। मिलान। (२) जोड़। बंध। (३) संबंध। (४) आसक्ति। लगन। (५) लीनता। (६) प्रवृत्ति।

संसगरा†-वि० [सं० शस्य = अन्न, फसल + आगार] (१) उपजाऊ। जिसमें पैदावार अधिक हो। (२) लाभदायक। फायदेमंद।

संसद, संसत-संज्ञा पुं० [सं०] (१) समाज। सभा। मंडली। (२) राजसभा। दरबार। (३) धर्मसभा। न्यायसभा। न्यायालय। अदालत। (४) चौबीस दिनों का एक यज्ञ।

संसनाना-क्रि० अ० दे० "सनसनाना"।

संसय-संज्ञा पुं० दे० "संशय"।

संसरण-संज्ञा पुं० [सं०] [वि० संसरणीय, संसरित संसृत] (१) चलना। सरकना। गमन करना। (२) सेना की अबाध यात्रा। (३) एक जन्म से दूसरे जन्म में जाने की परंपरा। भवचक्र। (४) संसार। जगत्। (५) राजपथ। सड़क। रास्ता। (६) नगर के तोरण के पास यात्रियों के लिये विश्राम स्थान। शहर के फाटक के पास मुसाफिरों के ठहरने का स्थान। धर्मशाला। सराय। (७) युद्ध का आरंभ। लड़ाई का छिड़ना।

संसर्ग-संज्ञा पुं० [सं०] (१) संबंध। लगाव। संपर्क। (२) मेल। मिलाप। संयोग। (३) सहवास। समागम। संग। साथ। (४) स्त्री पुरुष का सहवास। (५) घालमेल। मिश्रण। (६) वात, पित्तादि में से दो का एक साथ प्रकोप। (सुश्रुत) (७) जायदाद का एक में होना। इजमाल। (८) वह विंदु जहाँ एक रेखा दूसरी को काटती हो। (शुल्वसूत्र) (९) रब्त जब्त। परिचय। घनिष्ठता।

संसर्ग दोष-संज्ञा पुं० [सं०] वह बुराई जो किसी के साथ रहने से आवे। संगत का दोष।

संसर्ग विद्या-संज्ञा स्त्री० [सं०] लोगों से मिलने जुलने का हुनर। व्यवहार-कुशलता।

संसर्गाभाव-संज्ञा पुं० [सं०] (१) संसर्ग का अभाव। संबंध का न होना। (२) न्याय में अभाव का एक भेद। किसी वस्तु के संबंध में दूसरी वस्तु का अभाव। जैसे,—घर में घड़ा नहीं है। वि० दे० "अभाव"।

संसर्गी-वि० [सं० संसर्गिन] [स्त्री० संसर्गिणी] संसर्ग या लगाव रखनेवाला।
संज्ञा पुं० (१) मित्र। सहचर। (२) वह जो पैतृक संपत्ति का विभाग हो जाने पर भी अपने भाइयों या कुटुंबियों आदि के साथ रहता हो।
संज्ञा स्त्री० शुद्धि। सफ़ाई।

संसर्जन-संज्ञा पुं० [सं०] [वि० संसर्जनीय, संसर्जित, संसृष्ट] (१) संयोग होना। मिलना। (२) जुड़ना। संबद्ध होना। (३) अपनी ओर मिलाना। राजी करना। (४) हटाना। दूर करना। त्याग करना। छोड़ना।

संसर्प-संज्ञा पुं० [सं०] (१) रेंगना। सरकना। (२) खिसकना। धीरे धीरे चलना। (३) वह अधिक मास जो क्षय मासवाले वर्ष में होता है।

संसर्पण-संज्ञा पुं० [सं०] [वि० संसर्पणीय, संसर्पित, संसर्पी] (१) रेंगना। सरकना। (२) खिसकना। धीरे धीरे चलना। (३) चढ़ना। (४) सहसा आक्रमण। अचानक हमला।

संसर्पी-वि० [सं० संसर्पिन्] [स्त्री० संसर्पिणी] (१) रेंगनेवाला। सरकनेवाला। (२) फैलनेवाला। संचार करनेवाला। (३) पानी के ऊपर तैरनेवाला। उतरानेवाला। (सुश्रुत)

संसाई-संज्ञा पुं० दे० "संताप"। उ०—सम जोजन पर पठयो कंसा। भो अमान सम याही संसा।—गोपाल।

संज्ञा पुं० दे० "सँड़सा"।

संसद्-संज्ञा पुं० [सं०] (१) समावड़ा। गोष्ठी। (२) सभा। समाज। मंडली।

संसादन-संज्ञा पुं० [सं०] [वि० संसादनीय, संसादित, संसाद्य] (१) जुटाना। एकत्र। करना। (२) तरतीब से लगाना। क्रमबद्ध करना।

संसादित-वि० [सं०] (१) एकत्र किया हुआ। जुटाया हुआ। (२) तरतीब दिया हुआ। लगाया हुआ। सजाया हुआ।

संसाधक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) पूर्णतया साधन करनेवाला। संपन्न करनेवाला। अंजाम देनेवाला। (२) जीतनेवाला। वश में करनेवाला।

संसाधन-संज्ञा पुं० [सं०] [वि० संसाधनीय, संसाधित, संसाध्य] (१) अच्छी तरह करना। पूरा करना। अंजाम देना। (२) तैयारी। आयोजन। (३) जीतना। दमन करना। वश में करना।

संसाधनीय-वि० [सं०] (१) साधन के योग्य। पूरा करने योग्य। (२) जीतने योग्य। वश में लाने योग्य।

संसाध्य-वि० [सं०] (१) पूरा करने योग्य। (२) जीतने योग्य। दमन करने योग्य। (३) जिसे करना हो। करने योग्य। (४) जिसे जीतना या वश में करना हो।

संसार-संज्ञा पुं० [सं०] (१) लगातार एक अवस्था से दूसरी अवस्था में जाता रहना। (२) बार बार जन्म लेने की परंपरा। आवागमन। भवचक्र। (३) जगत्। दुनिया। विश्व। सृष्टि। (४) इहलोक। मर्त्यलोक। (५) माया जाल। माया का प्रपंच। जीवन का जंजाल। (६) गृहस्थी। (७) दुर्गंध खदिर। विट् खदिर।

संसारगुरु-संज्ञा पुं० [सं०] (१) संसार को उपदेश देनेवाला। जगद्गुरु। (२) कामदेव। स्मर।

संसारचक्र-संज्ञा पुं० [सं०] (१) जन्म पर जन्म लेने की परंपरा। नाना योनियों में भ्रमण। (२) माया का जाल। दुनिया का चक्कर। प्रपंच। (३) जगत् की दशा का उलट फेर।

संसारण-संज्ञा पुं० [सं०] चलाना। सरकाना। गति देना।

संसारतिलक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्रकार का उत्तम चावल। उ०—कोरहन, बड़हन, जड़हन, मिला। औ संसारतिलक खँड़विला।—जायसी।

संसारपथ-संज्ञा पुं० [सं०] (१) संसार में आने का मार्ग। (२) स्त्रियों की जननेंद्रिय।

संसारभावन-संज्ञा पुं० [सं०] संसार को दुःखमय जानना।

विशेष—यह गति चार प्रकार का है—नरक गति, तिर्यग्गति, मनुष्य गति और देवगति।

संसारमार्ग-संज्ञा पुं० [सं०] स्त्रियों की जननेंद्रिय।

संसारसारथि-संज्ञा पुं० [सं०] (१) संसार पथ को पार करनेवाला। (२) शिव का एक नाम।

संसारी-वि० [सं० संसारिन्] [स्त्री० संसारिणी] (१) संसार-संबंधी। लौकिक। जैसे,—संसारी बातें। (२) संसार में रहनेवाला। संसार की माया में फँसा हुआ। दुनिया के जंजाल में घिरा हुआ। जैसे,—संसारी जीवों के कल्याण के लिये यह कथा है। (३) लोकव्यवहार में कुशल। दुनियादार। (४) बार बार जन्म लेनेवाला। भवचक्र में बँधा हुआ। जैसे,—संसारी आत्मा।

संसिक्त-वि० [सं०] खूब सींचा हुआ। जिस पर खूब पानी छिड़का गया हो।

संसिद्ध-वि० [सं०] (१) पूर्णतया संपन्न। अच्छी तरह किया हुआ। (२) प्राप्त। लब्ध। (३) अच्छी तरह सीझा या पका हुआ। (भोजन) (४) जो नीरोग हो गया हो। चंगा। स्वस्थ। (५) तैयार। उद्यत। प्रस्तुत। (६) किसी बात में पक्का। कुशल। निपुण। (७) जिसका योग सिद्ध हो गया हो। मुक्त।

संसिद्धि-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सम्यक् पूर्ति। किसी कार्य का अच्छी तरह पूरा होना। (२) कृतकार्यता। सफलता। कामयाबी। (३) स्वस्थता। (४) पक्वता। सीझना। (५) पूर्णता। (६) मुक्ति। मोक्ष। (७) परिणाम। आखिरी नतीजा। (८) पक्की बात। निश्चित बात। न टलनेवाला वचन। (९) निसर्ग। प्रकृति। (१०) स्वभाव। आदत। (११) मदमस्त स्त्री। मदोन्मत्त।

संसी†-संज्ञा स्त्री० दे० "सँड़सी"।

संसुप्त-वि० [सं०] खूब सोया हुआ।

संसूचक-संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० संसूचिका] (१) प्रकट करनेवाला। जतानेवाला। (२) भेद खोलनेवाला। (३) समझाने बुझानेवाला। कहने सुननेवाला। (४) डाँटने डपटनेवाला।

संसूचन-संज्ञा पुं० [सं०] [वि० संसूचनीय, संसूचित, संसूच्य] (१) प्रकट करना। जताना। जाहिर करना। (२) बात खोलना। (३) कहना सुनना। (४) डाँटना डपटना। भला बुरा कहना। भर्त्सना करना। फटकारना।

संसूचित-वि० [सं०] (१) प्रकट किया हुआ। जताया हुआ। जाहिर किया हुआ। (२) डाँटा डपटा हुआ। जिसे कुछ कहा सुना गया हो।

संसूची-वि० [सं० संसूचिन्] [स्त्री० संसूचिनी] (१) प्रकट करनेवाला। (२) जतानेवाला। (३) भला बुरा कहनेवाला। फटकारनेवाला।

संसूच्य-वि० [सं०] (१) प्रकट करने योग्य। (२) जताने लायक। (३) जिसे जताना या प्रकट करना हो। (४) भला बुरा कहने योग्य। जिसे भला बुरा कहना हो, या जिसके लिये भला बुरा कहना हो।

संसृति-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) जन्म पर जन्म लेने की परंपरा। आवागमन। भवचक्र। (२) संसार। जगत्। उ०—दैव पाप संताप घन घोर, संसृति दीन, भ्रमत जग जोनि नहिं कोपि त्राता।—तुलसी।

संसृष्ट—वि० [सं०] (१) एक साथ उत्पन्न या आविर्भूत। (२) एक में मिला जुला। संश्लिष्ट। मिश्रित। (३) संबद्ध। परस्पर लगा हुआ। (४) अंतर्भूत। अंतर्गत। शामिल। (५) जो जायदाद का बँटवारा हो जाने पर भी सम्मिलित हो गया हो। (भाई आदि) (६) हिला मिला हुआ। बहुत मेल किए हुए। बहुत परिचित। (७) संपन्न किया हुआ। अंजाम दिया हुआ। किया हुआ। बनाया हुआ। (८) वमनादि द्वारा शुद्ध किया हुआ। कोठा साफ़ किया हुआ। (९) जुटाया हुआ। इकट्ठा किया हुआ। संगृहीत।

संज्ञा पुं० (१) घनिष्ठता। हेलमेल। (२) पुराणानुसार एक पर्वत का नाम।

संसृष्टत्व-संज्ञा पुं० [सं०] (१) संसृष्ट होने का भाव। (२) जायदाद का बँटवारा हो जाने के पीछे फिर एक में होना या रहना। (स्मृति)

संसृष्टहोम-संज्ञा पुं० [सं०] अग्नि और सूर्य्य की एक ही में मिली हुई आहुति।

संसृष्टि-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) एक साथ उत्पत्ति या आविर्भाव। (२) एक में मेल या मिलावट। मिश्रण। (३) परस्पर संबंध। लगाव। (४) हेलमेल। घनिष्ठता। मेल मुलाकात। (५) बनाने की क्रिया या भाव। संयोजन। रचना। (६) एकत्र करना। इकट्ठा करना। जुटाना। संग्रह। (७) दो या अधिक काव्यालंकारों का ऐसा मेल जिसमें सब परस्पर निरपेक्ष हों; अर्थात् एक दूसरे के आश्रित, अंतर्भूत आदि न हों।

संसेक-संज्ञा पुं० [सं०] अच्छी तरह पानी आदि का छिड़काव।

संसेवन-संज्ञा पुं० [सं०] [वि० संसेवित, संसेवनीय, संसेव्य] (१) पूर्णतया सेवन। हाज़िरी में रहना। नौकरी बजाना। (२) ख़ूब इस्तेमाल करना। व्यवहार करना। उपयोग में लाना। बरतना।

संस्करण-संज्ञा पुं० [सं०] (१) ठीक करना। दुरुस्त करना। सजाना (२) शुद्ध करना। सुधार करना। (३) परिष्कृत करना। सुंदर या अच्छे रूप में लाना। (४) द्विजातियों के लिये विहित संस्कार करना। (५) पुस्तकों की एक बार की छपाई। आवृत्ति। (आधुनिक)

संस्कर्ता-संज्ञा पुं० [सं०] संस्कार करनेवाला।

संस्कार-संज्ञा पुं० [सं०] (१) ठीक करना। दुरुस्ती। सुधार। (२) दोष या त्रुटि का निकाला जाना। शुद्धि। (३) सजाना। अच्छे या सुंदर रूप में लाना। (४) धो माँज कर साफ़ करना। परिष्कार। (५) बदन की सफ़ाई। शौच। (६) मनोवृत्ति या स्वभाव का शोधन। मानसिक शिक्षा। मन में अच्छी बातों का जमाना। (७) शिक्षा, उपदेश, संगत आदि का मन पर पड़ा हुआ प्रभाव। दिल पर जमा हुआ असर। जैसे,—जैसा लड़कपन का संस्कार होता है, वैसा ही मनुष्य का चरित्र होता है। (८) पूर्व जन्म की वासना। पिछले जन्म की बातों का असर जो आत्मा के साथ लगा रहता है। जैसे,—बिना पूर्व जन्म के संस्कार के विद्या नहीं आती। यह वैशेषिक के २४ गुणों में से एक है। (९) पवित्र करना। धर्म की दृष्टि से शुद्ध करना। (१०) वे कृत्य जो जन्म से लेकर मरण काल तक द्विजातियों के संबंध में आवश्यक होते हैं। वर्णधर्मानुसार किसी व्यक्ति के संबंध में होनेवाला विधान, रीति या रस्म।

विशेष—द्विजातियों के लिये षोडश या द्वादश संस्कार कहे गए हैं। मनु के अनुसार उनके नाम ये हैं—गर्भाधान, पुंसवन, सीमंतोन्नयन, जातकर्म, नामकर्म, निष्क्रमण, अन्नप्राशन, चूड़ाकर्म, उपनयन, केशांत, समावर्तन और विवाह।

(११) मृतक की क्रिया। (११) इंद्रियों के विषयों के ग्रहण से उत्पन्न मन पर जमा हुआ प्रभाव। (१२) मन द्वारा कल्पित या आरोपित विषय। भ्रांतिजन्य प्रतीति। प्रपंच। (जैसी जगत् की, जो वास्तविक नहीं है।)

विशेष—पंच स्कंधों में चौथा स्कंध 'संस्कार' है जो भव-बंधन का कारण कहा गया है।

(१३) साफ़ करने या माँजने का सामान, पत्थर आदि। हैंगा।

संस्कारक—संज्ञा पुं० [सं०] (१) संस्कार करनेवाला। (२) शुद्ध करनेवाला।

संस्कारवर्जित-वि० [सं०] वह व्यक्ति जिसका संस्कार न हुआ हो। व्रात्य।

संस्कारहीन-वि० [सं०] जिसका संस्कार न हुआ हो। व्रात्य।

संस्कारी-वि० [सं० संस्कारिन्] (१) संस्कारवाला। (२) सोलह मात्राओं का एक छंद।

संस्कार्य्य-वि० [सं०] (१) संस्कार करने योग्य। (२) जिसकी सफ़ाई या सुधार करना हो।

संस्कृत-वि० [सं०] (१) संस्कार किया हुआ। शुद्ध किया हुआ। (२) परिमार्जित। परिष्कृत। (३) धो माँज कर साफ़ किया हुआ। निखारा हुआ। (४) बनाया हुआ। सिंगारा हुआ। (५) सुधारा हुआ। ठीक किया हुआ। दुरुस्त किया हुआ।

(६) अच्छे रूप में लाया हुआ। सँवारा हुआ। सजाया हुआ। आरास्ता। (७) जिसका उपनयन आदि संस्कार हुआ हो।
संज्ञा स्त्री० भारतीय आर्यों की प्राचीन साहित्यिक भाषा। पुराने आर्यों की लिखने पढ़ने की उच्च भाषा। देववाणी।
विशेष—विद्वानों की राय है कि वेदों (संहिताओं) की भाषा अत्यंत प्राचीन, पर बोल चाल की आर्य्य भाषा है। जब उस भाषा में परिवर्तन होने लगा और धीरे धीरे उसके समझनेवाले कम होने लगे, तब यास्क ने निघंटु आदि बनाकर उस मंत्र भाग की भाषा को विद्वानों में सुरक्षित रखा। पीछे जो आर्य्य भाषा प्रचलित होती गई, उस पर क्रमशः द्रविड़ आदि अनार्य्य भाषाओं का प्रभाव पड़ता गया। अतः इस प्रचलित या लौकिक आर्य्य भाषा को शुद्ध, व्यवस्थित और सुरक्षित रखने का इंद्र, शाकटायन, पाणिनि आदि वैयाकरणों ने प्रयत्न किया। पाणिनि आदि वैयाकरणों ने दूर दूर तक फैले हुए यथा संभव सब प्रयोगों और रूपों को इकट्ठा करके एक बड़ी प्रकांड भाषा का स्वरूप खड़ा किया। यही 'भाषा' या लौकिक संस्कृत कहलाई जो रूप स्थिर हो जाने के कारण साहित्य की सर्वमान्य भाषा हुई और बराबर रही। लोगों की बोल चाल की भाषा में अंतर पड़ता रहा, पर यह संस्कृत ज्यों की त्यों रही और विद्वानों तथा शिष्टों द्वारा काम में लाई जाती रही। बोलचाल की भाषाएँ प्राकृत कहलाईं और यह संस्कार की हुई प्राचीन भाषा संस्कृत या देववाणी कहलाई।

संस्कृति-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) शुद्धि। सफ़ाई। (२) संस्कार। सुधार। परिष्कार। (३) सजावट। आराइश। (४) रहन सहन आदि की रुचि। सभ्यता। शाइस्तगी। (५) २४ वर्ण के वृत्तों की संज्ञा।

संस्क्रिया-संज्ञा स्त्री० [सं०] संस्कार। संस्कृति।

संस्खलन-संज्ञा पुं० [सं०] [वि० संस्खलित] (१) च्युत होना। गिरना। (२) भूल करना। चूकना।

संस्खलित-वि० [सं०] (१) च्युत। गिरा हुआ। (२) भूला हुआ। चूका हुआ।
संज्ञा पुं० भूल। चूक।

संस्तंभ-संज्ञा पुं० [सं०] (१) गति का सहसा रोध। एकबारगी रुकावट। (२) चेष्टा का अभाव। निश्चेष्टता। टक हो जाना। हाथ पैर रुक जाना। (३) शरीर की गति का मारा जाना। लकवा। (४) दृढ़ता। धीरता। (५) हठ। टेक। जिद। (६) आधार। टेक। सहारा।

संस्तंभन-संज्ञा पुं० [सं० संस्तम्भन][वि० संस्तंभनीय, संस्तंभित, संस्तब्ध] (१) गति का सहसा रुकना या रोकना। एक बारगी ठहर जाना। (२) निश्चेष्ट करना या होना। टक कर देना या हो जाना। (३) मंद करना। (४) सहारा देना। टेकना।

संस्तब्ध-वि० [सं०] (१) एकबारगी रुका या ठहरा हुआ। (२) निश्चेष्ट। टक। भौचक्का। (३) सहारा दिया हुआ। जिसे टेक या सहारा दिया हो।

संस्तर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) तह। पहल। (२) घास फूस से बनाया हुआ आच्छादन। (३) घास फूस फैला कर बनाया हुआ बिस्तर। तृण-शय्या। (४) बिस्तर। शय्या।
वि० छितराया हुआ।

संस्तरण-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बिछाना। फैलाना। पसारना। (२) छितराना। बिखेरना। (३) तह चढ़ाना। परत फैलाना। (४) बिस्तर। शय्या।

संस्तव-संज्ञा पुं० [सं०] (१) प्रशंसा। स्तुति तारीफ़। (२) ज़िक्र। कथन। उल्लेख। (३) परिचय। जान पहचान।

संस्तवन-संज्ञा पुं० [सं०] [वि० संस्तवनीय, संस्तुत] (१) स्तुति करना। प्रशंसा करना। (२) यश गाना। कीर्त्ति बखानना।

संस्तार-संज्ञा पुं० [सं०] तह। पहल। (२) बिस्तर। शैय्या। (३) एक यज्ञ का नाम।

संस्ताव-संज्ञा पुं० [सं०] (१) यज्ञ में स्तुति करनेवाले ब्राह्मणों की अवस्थान भूमि। (२) स्तुति। प्रशंसा। (३) परिचय। जान पहचान।

संस्तीर्ण-वि० [सं०] (१) फैलाया हुआ। पसारा हुआ। बिछाया हुआ। (२) बिखेरा हुआ। फैलाया हुआ। छितराया हुआ।

संस्तुत-वि० [सं०] (१) जिसकी खूब स्तुति या प्रशंसा की गई हो। (२) परिचित। ज्ञात। (३) एक साथ गिना हुआ। गिनती में शामिल किया हुआ।

संस्तुति-संज्ञा स्त्री० [सं०] सम्यक् स्तुति। खूब प्रशंसा। गहरी तारीफ़।

संस्त्याय-संज्ञा पुं० [सं०] (१) संघात। समूह। (२) प्रसार। फैलाव। बिछाने या फैलाने की क्रिया। (४) निवासस्थान। (५) घर। मकान।

संस्थ-संज्ञा पुं० [सं०] (१) निज देशवासी। स्वदेशवासी। अपने देश का। (२) चर। दूत।

संस्था-संज्ञा पुं० [सं०] (१) ठहरने की क्रिया या भाव। ठहराव। स्थिति। (२) व्यवस्था। बँधा नियम। विधि। मर्य्यादा। रूढ़ि। (३) प्रकट होने की क्रिया या भाव। अभिव्यक्ति। प्रकाश। (४) रूप। आकार। आकृति। (५) गुण। सिफ़त। (६) ठिकाने लगाना। (७) समाप्ति। अंत। ख़ातमा। (८) जीवन का अंत। मृत्यु। (९) नाश। (१०) प्रलय। (११) यज्ञ का मुख्य अंग। (१२) वध। हिंसा। (१३) गुप्तचरों या भेदियों का वर्ग।
विशेष—इसके अंतर्गत पाँच प्रकार के दूत कहे गए हैं—वणिक्, भिक्षु, छात्र, लिंगी [illegible] और कृषक।

(१४) व्यवसाय। पेशा। (१५) जत्था। गरोह। (१६) समाज। मंडल। सभा। (१७) राजाज्ञा। फरमान। (१८) सादृश्य। समानता।

संस्थान–संज्ञा पुं० [सं०] (१) ठहरने की क्रिया या भाव। ठहराव। स्थिति। (२) खड़ा रहना। डटा रहना। जमा रहना। (३) सन्निवेश। बैठाना। स्थापन। विन्यास। (४) अस्तित्व। जीवन। (५) सम्यक् पालन। पूरा अनुसरण। पूरी पैरवी। (६) ठहरने या रहने की जगह। डेरा। घर। (७) बस्ती। जनपद। (८) सार्वजनिक स्थान। सर्वसाधारण के इकट्ठे होने की जगह। (९) रूप। आकृति। शकल। (१०) कांति। सौंदर्य। (११) प्रकृति। स्वभाव। (१२) रोग का लक्षण। (१३) अवस्था। दशा। हालत। (१४) समष्टि। योग। जोड़। (१५) ठिकाने लगाना। समाप्ति। अंत। खातमा। (१६) नाश। मृत्यु। (१७) रचना। बनावट। निर्माण। (१८) पड़ोस। सामीप्य। निकटता। (१९) चौमुहानी। चौरास्ता। चौराहा। (२०) आयोजन। प्रबंध। व्यवस्था। डौल। (२१) ढाँचा। चौखटा। (२२) साँचा। ढाँचा। डौल। खाका।

संस्थापक–संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० संस्थापिका] (१) खड़ा करनेवाला। स्थापित करनेवाला। उठानेवाला। (भवन आदि) (३) कोई नई बात चलानेवाला। जारी करनेवाला। प्रवर्त्तक। (४) कोई सभा, समाज या सर्वसाधारण के उपयोगी कार्य्य खोलनेवाला। (५) चित्र, खिलौने आदि बनानेवाला। (६) रूप या आकार देनेवाला।

संस्थापन–संज्ञा पुं० [सं०] [वि० संस्थापनीय, संस्थापित, संस्थाप्य] (१) खड़ा करना। उठाना। निर्मित करना। (भवन आदि) (२) स्थित करना। जमाना। बैठाना। (३) कोई नई बात चलाना। नया काम जारी करना। नया काम खोलना। (४) रूप या आकार देना।

संस्थापनीय–वि० [सं०] संस्थापन के योग्य।

संस्थापित–वि० [सं०] (१) उठाया हुआ। खड़ा किया हुआ। निर्मित। (२) जमाया हुआ। बैठाया हुआ। स्थित किया हुआ। प्रतिष्ठित। (३) जारी किया हुआ। चलाया हुआ। (४) संचित। बटोरा हुआ। (५) ढेर लगाया हुआ।

संस्थाप्य–वि० [सं०] (१) संस्थापन के योग्य। (२) जिसका संस्थापन करना हो।

संस्थित–वि० [सं०] (१) खड़ा। उठाया हुआ। (२) ठहरा हुआ। टिका हुआ। (३) बैठा हुआ। जमा हुआ। रूप से खड़ा हुआ। (४) रूप में लाया हुआ। निर्मित। (५) ठिकाने लगाया हुआ। समाप्त। खतम। (७) मृत। मरा हुआ। (८) ढेर लगाया हुआ। बटोरा हुआ।

संस्थिति–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) खड़े होने की क्रिया या भाव। (२) ठहराव। जमाव। (३) बैठने की क्रिया या भाव। (४) एक अवस्था में रहने का भाव। (२) ज्यों का त्यों रहने का भाव। (५) दृढ़ता। धीरता। (६) अस्तित्व। हस्ती। (७) रूप। आकृति। सूरत। (८) व्यवस्था। तरतीब। (९) गुण। सिफ़त। (१०) प्रकृति। स्वभाव। (११) समाप्ति। खातमा। (विशेषतः यज्ञादि के लिये) (१२) मृत्यु। मरण। (१३) कोष्ठबद्धता। कब्ज़ियत। (१४) राशि। ढेर। अटाला।

संस्पर्द्धा–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) किसी के बराबर होने की प्रबल इच्छा। बराबरी की चाह। (२) ईर्ष्या। डाह।

संस्पर्द्धी–वि० [सं० संस्पर्द्धिन्] [स्त्री० संस्पर्द्धिनी] (१) बराबरी की इच्छा करनेवाला। (२) ईर्ष्यालु।

संस्पर्श–संज्ञा पुं० [सं०] (१) अच्छी तरह छू जाने का भाव। एक के अंग का दूसरे से लगना।

विशेष—धर्मशास्त्रों में कुछ लोगों का संस्पर्श होने पर द्विजातियों के लिये प्रायश्चित्त का विधान है। यह संसर्ग दोष शरीर के छू जाने, आलाप, निधन, सहभोजन तथा एक शय्या पर बैठने या सोने से कहा गया है।

(२) घनिष्ट संबंध। गहरा लगाव। (३) मिलाप। मेल। (४) मिलावट। मिश्रण। (५) इंद्रियों का विषय-ग्रहण। (६) थोड़ा सा आविर्भाव। कुछ प्रभाव।

संस्पर्शन–संज्ञा पुं० [सं०] [वि० संस्पर्शनीय, संस्पृष्ट] (१) छूना। अंग से अंग लगाना। (२) मिलना। सटना।

संस्पर्शा–संज्ञा स्त्री० [सं०] जनी नामक गंध द्रव्य।

संस्पर्शी–वि० [सं० संस्पर्शिन्] स्पर्श करनेवाला। छूनेवाला।

संस्पृष्ट–वि० [सं०] (१) छूआ हुआ। (२) सटा हुआ। लगा हुआ। मिला हुआ। (३) जुड़ा हुआ। परस्पर संबद्ध। (४) पास ही पड़ता हुआ। जो निकट ही हो। (५) लेश मात्र प्रभावित। जिस पर बहुत कम असर पड़ा हो।

संस्फाल–संज्ञा पुं० [सं०] भेड़। मेष।

संस्फुट–वि० [सं०] (१) खूब फूला या खुल पड़ा हुआ। (२) खूब खिला हुआ। विकसित।

संस्फेट–संज्ञा पुं० [सं०] युद्ध। लड़ाई।

संस्फोट–संज्ञा पुं० [सं०] युद्ध। लड़ाई

संस्मरण–संज्ञा पुं० [सं०] [वि० संस्मरणीय, संस्मृत] (१) पूर्ण स्मरण। खूब याद। (२) अच्छी तरह सुमिरना या नाम लेना। (३) संस्कार-जन्य ज्ञान।

संस्मरणीय–वि० [सं०] (१) पूर्ण स्मरण करने योग्य। (२) नाम जपने योग्य। (३) महत्व का। न भूलनेवाला। जिसकी याद बराबर बनी रहे। (४) जिसका स्मरण मात्र रह गया हो। अतीत।

संस्मारक–संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० संस्मारिका] स्मरण करानेवाला। याद दिलानेवाला।

संस्मारण–संज्ञा पुं० [सं०][वि० संस्मारित] (१) स्मरण कराना। याद दिलाना। (२) गिनती करना। गिनना। (चौपायों के विषय में)

संस्मारित–वि० [सं०] (१) याद दिलाया हुआ। स्मरण कराया हुआ। (२) ध्यान में लाया हुआ। याद किया हुआ।

संस्मृत–वि० [सं०] स्मरण किया हुआ। याद किया हुआ।

संस्मृति–संज्ञा स्त्री० [सं०] पूर्ण स्मृति। पूरी याद।

संस्रव–संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० संस्रवा] (१) एक साथ बहना। (२) पूरा बहाव। (३) बहती हुई वस्तु। (४) बहता हुआ जल। (५) एक प्रकार का पिंडदान। (६) किसी वस्तु का नीचा हुआ अंश। उतरा हुआ पिण्ड। (७) चूना। गिरना। झरना। रसना।

संस्रवण–संज्ञा पुं० [सं०] (१) बहना। प्रवाहित होना। (२) चूना। झरना। गिरना।

यौ०—गर्भसंस्रवण = गर्भपात।

संस्रष्टा–संज्ञा पुं० [सं० संस्रष्टृ] [स्त्री० संस्रष्ट्री] (१) आयोजन करनेवाला। (२) मिलाने जुलानेवाला। (३) रचनेवाला। बनानेवाला। (४) भिड़नेवाला। लड़ाई में जुटनेवाला।

संस्राव–संज्ञा पुं० [सं०] (१) बहाव। प्रवाह। (२) प्रवाह का इकट्ठा होना। (सुश्रुत) (३) किसी द्रव पदार्थ के नीचे जमा हुआ पदार्थ। तलछट।

संस्रावण–संज्ञा पुं० [सं०] [वि० संस्रावित, संस्राव्य] (१) बहाना। प्रवाहित करना। (२) बहना। प्रवाहित होना। (३) झरना। चूना। टपकना।

संस्रावित–वि० [सं०] (१) बहाया हुआ। (२) बहा हुआ। (३) झरा हुआ। (४) टपका हुआ।

संस्राव्य–वि० [सं०] (१) बहाने या टपकाने योग्य। (२) जिसे बहाना या टपकाना हो।

संस्वेद–संज्ञा पुं० [सं०] स्वेद। पसीना।

संस्वेदज–वि० [सं०] पसीने से उत्पन्न। (कृमि आदि)

संहंता–संज्ञा पुं० [सं० संहंतृ] [स्त्री० संहंत्री] वध करनेवाला। मारनेवाला।

संहत–वि० [सं०] (१) खूब मिला हुआ। जुड़ा या सटा हुआ। बिल्कुल लगा हुआ। पूर्ण संबद्ध। (२) एक हुआ। एक में मिला हुआ। (३) संयुक्त। सहित। (४) जो मिलकर ठोस हो गया हो। मिलकर खूब बैठा हुआ। कड़ा। सख्त। (५) जो विरल या झीना न हो। गठा हुआ। घना। (६) दृढ़ांग। मज़बूत। (७) एकत्र। इकट्ठा। (८) मिश्रित। मिला हुआ। (९) चोट खाया हुआ। आहत। घायल।

संज्ञा पुं० नृत्य में एक प्रकार की मुद्रा।

संहतकुलीन–वि० [सं०] सम्मिलित परिवार का।

संहतजानु–संज्ञा पुं० [सं०] घुटने मिलाए हुए। जिसने दोनों घुटने सटाए हों। (बैठने की एक मुद्रा)

संहतपत्रिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] सोआ। शतपुष्पा।

संहतांग–वि० [सं०] दृढ़ांग। हृष्ट-पुष्ट। मज़बूत।

संहतांजलि–वि० [सं०] जो हाथ जोड़े हो। कर-बद्ध।

संहताश्व–संज्ञा पुं० [सं०] पवमान नामक अग्नि।

संहति–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) मिलाव। मेल। (२) जुटाव। बटोर। इकट्ठा होने का भाव। (३) राशि। ढेर। अटाला। (४) समूह। झुंड। (५) परस्पर मिल कर ठोस होने का भाव। निविड़ संयोग। गठन। ठोसपन। घनत्व। (६) संधि। जोड़। (७) परमाणुओं का परस्पर मेल।

संहतिपुष्पिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] सोआ। शतपुष्पा।

संहनन–संज्ञा पुं० [सं०] (१) संहत करना। एक में मिलाना। जोड़ना। (२) खूब मिलाकर घना या ठोस करना। (३) वध। मार डालना। (४) संयोग। मेल। मिलावट। (५) कड़ाई। दृढ़ता। (६) पुष्टता। मज़बूती। बलिष्ठता। (७) मेल। मुआफ़िक़त। सामंजस्य। अनुकूलता। (८) शरीर। देह। (९) कवच। बक्तर। (१०) शरीर का मर्दन। मालिश।

संहरण–संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक साथ करना। बटोरना। एकत्र करना। संग्रह करना। (२) एक साथ बाँधना। गूँथना। (केशों का) (३) ज़बरदस्ती ले लेना। छीनना। (४) संहार करना। नाश करना। ध्वंस करना। (५) प्रलय।

संहर्त्ता–संज्ञा पुं० [सं० संहर्तृ] [स्त्री० संहर्त्री] (१) इकट्ठा करनेवाला। बटोरने या समेटनेवाला। (२) नाश करनेवाला। (३) वध करनेवाला। मारनेवाला।

संहर्ष–संज्ञा पुं० [सं०] (१) उमंग से रोओं का खड़ा होना। पुलक। उमंग। (२) भय से रोंगटे खड़े होना। (३) बढ़ा ऊपरी। एक दूसरे से बढ़ने की चाह। स्पर्द्धा। लाग डाँट। होड़। (४) ईर्ष्या। डाह। (५) संघर्ष। रगड़। (६) मर्दन। शरीर की मालिश।

संहर्षण–संज्ञा पुं० [सं०] [वि० संहर्षित, संहृष्ट] पुलकित होना। (२) स्पर्द्धा। लाग डाँट। बढ़ा ऊपरी।

वि० [स्त्री० संहर्षिणी] पुलकित करनेवाला। आनंद से प्रफुल्लित करनेवाला।

संहर्षा–संज्ञा स्त्री० [सं०] पित्तपापड़ा। पर्पटक। शाहतरा।

संहर्षित–वि० [सं०] पुलकित।

संहर्षी–वि० [सं० संहर्षिन्] [स्त्री० संहर्षिणी] (१) पुलकित होनेवाला। (२) पुलकित करनेवाला। (३) स्पर्द्धा या ईर्ष्या करनेवाला।

संहात–संज्ञा पुं० [सं०] (१) संघात। [illegible] वि०

दे० "संवान"। (२) एक नरक का नाम। (३) शिव के एक गण का नाम।

संहार–संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक साथ करना। इकट्ठा करना। बटोरना। समेटना। (२) संग्रह। संचय। (३) संकोच। आकुंचन। सिकुड़ना। (४) समेट कर बाँधना। गूँथना। (केशों का) (५) छोड़े हुए बाण को फिर वापस लेना। (६) खुलासा। सार। संक्षेप-कथन। (७) नाश। ध्वंस। (८) समाप्ति। अंत। खातमा। (९) कल्पांत। प्रलय। (१०) एक नरक का नाम। (११) कौशल। निपुणता। (१२) व्यर्थ करने की क्रिया। निवारण। परिहार। रोक। जैसे,—किसी अस्त्र का संहार।

संहारक–संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० संहारिका] (१) संहार करनेवाला। संहर्ता। नाशक। (२) संग्रहकर्ता। एकत्र करनेवाला।

संहारकारी–वि० [सं० संहारकारिन्] [स्त्री० संहारकारिणी] संहार या नाश करनेवाला।

संहार काल–संज्ञा पुं० [सं०] विश्व के नाश का समय। प्रलय काल। उ०—दैटा बलिष्ट खर को मकराक्ष आयो। संहार काल जनु काल कराल धायो।—केशव।

संहारना–क्रि० स० [सं० संहरण] (१) मार डालना। उ०—(क) ओहि धनुष रावन संहारा। ओहि धनुष कंसासुर मारा।—जायसी। (२) नाश करना। ध्वंस करना। (ख) उहाँ तो खड्ग नरेंदहि मारों। इहाँ तो बिरह तुम्हार संहारों।—जायसी।

संहार भैरव–संज्ञा पुं० [सं०] भैरव के आठ रूपों या मूर्तियों में से एक। काल भैरव।

संहार मुद्रा–संज्ञा स्त्री० [सं०] तांत्रिक पूजन में अंगों की एक प्रकार की स्थिति, जिसे विसर्जन मुद्रा भी कहते हैं।

संहारिक–वि० [सं०] संहार करनेवाला।

संहार्य्य–वि० [सं०] (१) समेटने या बटोरने योग्य। संग्रह करने योग्य। इकट्ठा करने लायक। (२) एक स्थान से हटाकर दूसरे स्थान पर करने योग्य। हटाने लायक। ले जाने लायक। (३) जिसे ले जाना हो। (४) रोकने योग्य। निवारण या परिहार के योग्य। (५) जिसे रोकना हो। जिसका निवारण या परिहार करना हो।

संहित–वि० [सं०] (१) एक साथ किया हुआ। एकत्र किया हुआ। बटोरा हुआ। समेटा हुआ। (२) सम्मिलित। मिलाया हुआ। (३) जुड़ा हुआ। लगा हुआ। संबद्ध। (४) संयुक्त। सहित। अन्वित। पूर्ण। (५) मेल में आया हुआ। हेल मेलवाला। मेली।

संहितपुष्पिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सोआ नाम का साग। (२) धनिया।

संहिता–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) मेल। मिलावट। संयोग। (२) व्याकरण या शब्दशास्त्र के अनुसार दो अक्षरों का परस्पर मिलकर एक होना। संधि। (३) वह ग्रंथ जिसमें पद पाठ आदि का क्रम नियमानुसार चला आता हो। कोई ग्रंथ जिसका पाठ प्राचीन काल से गृहीत चला आता हो। जैसे,—मनु, अत्रि आदि की धर्म-संहिताएँ या स्मृतियाँ।

विशेष—स्मृति या धर्मशास्त्र संबंधी १९ संहिताएँ कही जाती हैं जिनमें मनु, अत्रि, विष्णु, हारीत, कात्यायन, बृहस्पति, नारद, पराशर, व्यास, दक्ष, गौतम आदि प्रसिद्ध हैं। रामायण को भी कभी कभी संहिता कह देते हैं। वेदव्यास कृत एक "पुराण संहिता" का भी उल्लेख मिलता है। (दे० "पुराण") इसके अतिरिक्त और विषयों के ग्रंथ भी संहिता कहे जाते हैं। जैसे,—भृगुसंहिता (फलित ज्योतिष) गर्गसंहिता। (कृष्ण की कथा)

(४) वेदों का मंत्र भाग। मुख्य वेद। वि० दे० "वेद"।

संहृत–वि० [सं०] (१) एकत्र किया हुआ। समेटा हुआ। (२) संगृहीत। जुटाया हुआ। (३) नष्ट। ध्वस्त। (४) समाप्त। खतम। (५) निवारित। रोका हुआ।

संहृति–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) बटोरने या समेटने की क्रिया। (२) संग्रह। जुटाव। (३) नाश। ध्वंस। (४) प्रलय। (५) अंत। समाप्ति। (६) रोक। परिहार। (७) संक्षेप। खुलासा। (८) हरण। छीनना। लूट खसोट।

संहृष्ट–वि० [सं०] (१) खड़ा। (रोम) (२) जिसके रोएँ उमंग से खड़े हों। पुलकित। प्रफुल्ल। (३) जिसके रोंगटे डर से खड़े हों। डरा हुआ। भीत।

संहाद–संज्ञा पुं० [सं०] (१) ऊँचा स्वर। शोर। कोलाहल। चीख। (२) एक असुर जो हिरण्यकशिपु का पुत्र था।

संहादन–संज्ञा पुं० [सं०] चिल्लाना। कोलाहल करना। शोर मचना। चीखना।

स–संज्ञा पुं० [सं०] (१) ईश्वर। (२) शिव। महादेव। (३) साँप। (४) पक्षी। चिड़िया। (५) वायु। हवा। (६) जीवात्मा। (७) चंद्रमा। (८) भृगु। (९) दीप्ति। कांति। चमक। (१०) ज्ञान। (११) चिंता। (१२) गाड़ी का रास्ता। सड़क। (१३) संगीत में षड्ज स्वर का सूचक अक्षर। जैसे,—रे, ग, म, ध, नि, स। (१४) छंदःशास्त्र में "सगण" शब्द का सूचक अक्षर या संक्षिप्त रूप। वि० दे० "सगण"।

उप० एक उपसर्ग जिसका प्रयोग शब्दों के आरंभ में, कुछ विशिष्ट अर्थ उत्पन्न करने के लिये होता है। जैसे,—(क) बहुव्रीहि समास में "सह" के अर्थ में। जैसे,—सजीव = सह + जीव। सपरिवार = सह + परिवार। (ख) "स्व" या "एक ही" के अर्थ में। जैसे,—सगोत्र। (ग) "सु" के स्थान में। जैसे,—सपूत।

सइ–⊛–अव्य० [सं० सह] से । साथ ।

⊛ अव्य० [प्रा० सुंतो] एक विभक्ति जो करण और अपादान कारक का चिह्न है ।

सइअन†–संज्ञा पुं० दे० "सहिजन" ।

सइन†–संज्ञा स्त्री० [सं० संधि] नाड़ी का मग । नासूर ।

सइनाक–संज्ञा स्त्री० दे० "सेना" ।

सइयो⊛†–संज्ञा स्त्री० [सं० सखी] सखी । सहेली ।

सइल‡–संज्ञा स्त्री० [सं० शल्य] लकड़ी की वह खूँटी या गुल्ली जो गाड़ी के कँधावर में लगाई जाती है । इसके लगाने से बैल की गरदन दो सैलों के बीच रहरी में टहरी रहती है और वह इधर उधर नहीं हो सकता । कभी कभी यह लोहे की भी होती है । समतूल । सैला । घुला ।

सइवर†–संज्ञा पुं० [सं० शैवल] सेवार । शैवाल ।

सई–संज्ञा स्त्री० [अ० सई] मल्लाहों की परिभाषा में नाव खींचने की गून को कड़ा करना ।

संज्ञा स्त्री० [अ०] प्रयत्न । कोशिश ।

सईकंटा–संज्ञा पुं० [?] एक प्रकार का पेड़ ।

सईल–संज्ञा स्त्री० दे० "सहल" ।

सईस–संज्ञा पुं० दे० "साईस" ।

सउँ ⊛–अव्य० दे० "सौं" ।

सउख ‡–संज्ञा पुं० दे० "शौक" ।

सउजा†–संज्ञा पुं० [सं० शावक] आखेट करने योग्य जंतु । शिकार । साउज ।

सउत †–संज्ञा स्त्री० दे० "सौत" ।

सउतेला†–वि० दे० "सौतेला" ।

सऊर–संज्ञा पुं० दे० "शऊर" ।

सकंकूर–संज्ञा पुं० [रूमी सक़न्कूर] गोह की तरह का एक जंतु जिसका रंग लाल या पीला होता है । इसका मांस खारा और फीका होता है, पर बहुत बलवर्द्धक माना जाता है । इसे रेत की मछली या रेग माही भी कहते हैं ।

सकंटक–संज्ञा पुं० [सं० सकण्टक] (१) करंज वृक्ष । कंजा । पूतिकरंज । दुर्गंध करंज । (२) सिवार । शैवाल । सेवार ।

सक†–संज्ञा पुं० दे० "शक" ।

संज्ञा स्त्री० दे० "शक्ति" या "सकत" ।

सकट–संज्ञा पुं० [सं० शकट] शकट । गाड़ी । छकड़ा । सग्गड़ । उ०—कोटि भार सकटनि महँ भरि कै । भए पठावत आनँद करि कै ।—गिरिधरदास ।

संज्ञा पुं० [सं०] शाखोट वृक्ष । सिहोर ।

सकटान्न–संज्ञा पुं० [सं०] जिसे किसी प्रकार का अशौच हो, उसका अन्न । अशौचान्न । अशुद्ध अन्न ।

विशेष—शास्त्रों में इस प्रकार का अन्न खाने का निषेध है; और कहा गया है कि जो ऐसा अन्न खाता है, उसे भी अशौच हो जाता है ।

सकटी–संज्ञा स्त्री० [सं० शकट] (१) गाड़ी । (२) छोटा सग्गड़ । (डिं०)

सकड़ी–संज्ञा स्त्री० दे० "सिकड़ी" ।

सकत†–संज्ञा स्त्री० [सं० शक्ति] (१) बल । शक्ति । सामर्थ्य । ताकत । (२) वैभव । संपत्ति ।

सकता–संज्ञा स्त्री० [सं० शक्ति] (१) शक्ति । ताकत । बल । (२) सामर्थ्य । उ०—मिट्टी के बासन को इतनी सकता कहाँ जो अपने कुम्हार के करतब कुछ ताड़ सके । सच है जो बना हो सो अपने बनानेवाले को क्या सराहे ।—इंशाअल्लाह खाँ ।

संज्ञा पुं० [अ० सक्तः] (१) एक प्रकार का मानसिक रोग जिसमें रोगी बेहोश हो जाता है । बेहोशी की बीमारी । (२) विराम । यति ।

मुहा०—सकता पड़ना = छंद में यति भंग दोष होना ।

सकती–संज्ञा स्त्री० [सं० शक्ति] (१) शक्ति । बल । ताकत । (२) शक्ति नामक अस्त्र । वि० दे० "शक्ति" ।

सकन–संज्ञा पुं० [देश०] लता कस्तूरी । मुश्कदाना ।

सकना–क्रि० अ० [सं० शक या शक्य] कोई काम करने में समर्थ होना । करने योग्य होना । जैसे,—खा सकना, पढ़ सकना, बोल सकना, रोक सकना, कह सकना ।

विशेष—इस क्रिया का व्यवहार सदा किसी दूसरी क्रिया के साथ संयोज्य क्रिया के रूप में ही होता है, अलग नहीं होता । परंतु बंगाल में कुछ लोग भूल से, या बँगला के प्रभाववश, कभी कभी अकेले भी इस क्रिया का व्यवहार कर बैठते हैं । जैसे,—हमसे नहीं सकेगा ।

सकपकाना–क्रि० अ० [अनु० सक पक] (१) चकपकाना । आश्चर्ययुक्त होना । (२) हिचकना । आगा पीछा करना । (३) लज्जित होना । शरमाना । (४) प्रेम, लज्जा या शंका के कारण उद्भूत एक प्रकार की चेष्टा । उ०—प्रथम समागम में एहो कवि रघुनाथ कहा कहौं रावरो सों एतनी सकाई है । मिलिबे की चरचा सुनत ही सकपकाई स्वेद भरे तन पर सुखिया पियराई है ।—रघुनाथ ।

सकरकंदी–संज्ञा स्त्री० दे० "शकरकंद" ।

सकरकन–संज्ञा पुं० दे० "शकरकंद" ।

सकरखंडी†–संज्ञा स्त्री० [फा० शकर + खंड] लाल और बिना साफ की हुई चीनी । खाँड़ । शकर ।

सकरना–क्रि० अ० [सं० स्वीकरण] (१) सकारा जाना । स्वीकृत या अंगीकृत होना । मंजूर होना । जैसे,—हुंडी सकरना, दाम सकरना । (२) कबूला जाना । माना जाना ।

संयो० क्रि०—जाना ।

सकरपाला–संज्ञा पुं० [फा० शकरपारः] (१) **शकरपारा**

मिठाई। वि० दे० "शकरपाला"। (२) एक प्रकार का काबुली नीबू। (३) कपड़े पर की एक प्रकार की सिलाई जो शकरपारे की आकृति की होती है। वि० दे० "शकरपारा"।

सकरा–वि० दे० "सँकरा"।

सकरिया–संज्ञा स्त्री० [फ़ा० शकर] लाल शकरकंद। रतालू।

सकरुंद–संज्ञा पुं० [गुज०] सकुरुंड या साकुण्ड नाम का वृक्ष जिसकी पत्तियों आदि का व्यवहार ओषधि के रूप में होता है। वैद्यक के अनुसार यह कषाय, रुचिकर, दीपन और वातनाशक माना जाता है।

सकरुण–वि० [सं०] जिसे करुणा हो। दयाशील।

सकर्ण–संज्ञा पुं० [सं०] वह जो सुनता या सुन सकता हो।

वि० कानवाला। जिसे कान हों।

सकर्णक–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन ऋषि का नाम।

सकर्मक क्रिया–संज्ञा स्त्री० [सं०] व्याकरण में दो प्रकार की क्रियाओं में से एक। वह क्रिया जिसका कार्य्य उसके कर्म पर समाप्त हो। जैसे,—"खाना"। खाने का कार्य्य उस वस्तु पर समाप्त होता है, जो खाई जाती है; इसलिये यह सकर्मक क्रिया हुई। इसी प्रकार देना, लेना, मारना, उठाना आदि सकर्मक क्रियाएँ हैं।

सकल–वि० [सं०] सब। सर्व। समस्त। कुल।

संज्ञा पुं० (१) रोहित तृण। गंधतृण। रोहिस घास। (२) निर्गुण ब्रह्म और सगुण प्रकृति। (३) दर्शन शास्त्र के अनुसार तीन प्रकार के जीवों में से एक प्रकार के जीव। पशु।

विशेष—जीव तीन प्रकार के माने गए हैं—विज्ञानाकल, प्रलयाकल और सकल। सकल जीव मल, माया और कर्म से युक्त होता है। इसके भी दो भेद कहे गए हैं—पक्व कलुष और अपक्व कलुष।

सकलकल–वि० [सं०] सोलहो कलाओं से युक्त। (चंद्रमा)

सकलखोरा–संज्ञा पुं० दे० "शकरखोरा" (पक्षी)।

सकलजननी–संज्ञा स्त्री० [सं०] प्रकृति।

सकलप्रिय–संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जो सब को प्रिय हो। सब को अच्छा लगनेवाला। (२) चना। चणक।

सकललद्रवण–संज्ञा पुं० [सं०] शाल निर्य्यास। धूना। राल।

सकलसिद्धि–संज्ञा पुं० [सं०] वह जिसे सब सिद्धियाँ प्राप्त हों।

सकलसिद्धिदा–संज्ञा पुं० [सं०] तांत्रिकों के अनुसार एक भैरवी का नाम।

सकलात–संज्ञा पुं० [?] (१) ओढ़ने की रजाई। दुलाई। उ०—(क) लग्यो शीत गात सुनो बात प्रभु काँपि उठे दई सकलात आनि प्रीति हिये भोई है। (ख) शीत लगत सकलात विदित पुरुषोत्तम दीनी। खौंच गये हरि संग कृत्य सेवक की कीनी।—भक्तमाल। (२) भेंट। सौगात। उपहार। उ०—सौ गाड़ी सकलात सलौनी। पातसाह कौ जात पठौनी।—लाल कवि।

सकलाधार–संज्ञा पुं० [सं०] शिव का एक नाम।

सकली–संज्ञा स्त्री० [हिं०] मत्स्य। मछली।

सकलेंदु–संज्ञा पुं० [सं०] पूर्णिमा का चंद्रमा। पूरा चाँद।

सकलेश्वर–संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु का एक नाम।

सकवा†–संज्ञा पुं० [हिं० साखू] शाल। अश्वकर्ण।

सकस†–संज्ञा पुं० दे० "शख्स"।

सकसकाना†–क्रि० अ० [अनु०] बहुत डरना। डर के कारण काँपना। उ०—सकसकात तनु भीजि पसीना उलटि उलटि तन तोरि जँभाई।—सूर।

सकसानाꕤ†–क्रि० अ० [अनु०] डर मानना। भयभीत होना। उ०—दस्तेवाज यारन के द्वार ठाढ़े रस्ते पर छिति के अधीस दस्तबस्त सकसात हैं।—नकछेदी।

सका†–संज्ञा पुं० [अ० सका] (१) पानी भरनेवाला, भिश्ती। (२) वह जो घूम घूमकर लोगों को पानी पिलाता हो, विशेषतः मशक से (मुसलमानों को) पानी पिलानेवाला।

सकाकुल–संज्ञा पुं० [?] (१) एक प्रकार का कंद जिसे अंबरकंद कहते हैं। (२) एक प्रकार का शतावर। (३) शाकाकुल मिस्री। सुधामूली।

सकाकुल मिस्री–संज्ञा स्त्री० [?] (१) सुधामूली। (२) अंबरकंद।

सकाकोल–संज्ञा पुं० [सं०] मनु के अनुसार एक नरक का नाम।

सकानाꕤ†–क्रि० अ० [सं० शंका] (१) शंका करना। संदेह करना। उ०—(क) जोरि कटक पुनि राजा घर कहँ कीन पयान। दिवसहिं भानु अलोप भा बासुक इंद्र सकान।—जायसी। (ख) देखि सैन ब्रज लोग सकात। यह आयो कीन्हें कछु घात।—सूर। (२) भय के कारण संकोच करना। हिचकना। (३) दुःखी होना। रंज होना।

क्रि० स० "सकना" का प्रेरणार्थक रूप। (क्व० हास्य)

सकाम–संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह व्यक्ति जिसे कोई कामना या इच्छा हो। (२) वह व्यक्ति जिसकी कामना पूर्ण हुई हो। लब्धकाम। (३) कामवासना युक्त व्यक्ति। मैथुन की इच्छा रखनेवाला व्यक्ति। कामी। (४) वह व्यक्ति जो कोई कार्य भविष्य में फल मिलने की इच्छा से करे। जो निःस्वार्थ होकर कोई कार्य्य न करे, बल्कि स्वार्थ के विचार से करे। (५) प्रेम करनेवाला।

सकामनिर्जरा–संज्ञा स्त्री० [सं०] जैनियों के अनुसार चित्त की वह वृत्ति जिसमें बहुत अधिक शक्ति पाने पर भी शत्रु या पीड़ा देनेवाले को परम शांतिपूर्वक क्षमा कर दिया जाता है। यह वृत्ति उपशांत चित्तवाले साधुओं में होती है।

सकामा—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्त्री जो मैथुन की इच्छा रखती हो। काम-पीड़िता। कामवती।

सकामी—संज्ञा पुं० [सं० सकामिन्] (१) वह जिसे किसी प्रकार की कामना हो। कामनायुक्त। वासनायुक्त। (२) कामी। विषयी।

सकार—संज्ञा पुं० [सं०] (१) 'स' अक्षर। (२) 'स' वर्ण की सी ध्वनि। जैसे,—उसके मुँह से सकार भी न निकला।

सकारना—क्रि० स० [सं० स्वीकरण] (१) स्वीकार करना। मंजूर करना। (२) महाजनों का हुंडी की मिती पूरी होने के एक दिन पहले हुंडी देखकर उस पर हस्ताक्षर करना।

विशेष—जो लोग किसी महाजन को हुंडी पर रुपए देते हैं, वे मिती पूरी होने से एक दिन पहले अपनी हुंडी उस महाजन के पास उसे दिखलाने और उससे हस्ताक्षर कराने के लिये ले जाते हैं। इससे महाजन को दूसरे दिन के दातव्य धन की सूचना भी मिल जाती है और रुपए पानेवाले को यह निश्चय भी हो जाता है कि कल मुझे रुपए मिल जायँगे।

सकारा—संज्ञा पुं० [सं० स्वीकरण] महाजनों में वह धन जो हुंडी सकारने और उसका समय फिर से बढ़ाने के लिये लिया जाता है।

सकारे†—क्रि० वि० [सं० सकाल] (१) प्रातःकाल। सवेरे। तड़के। उ०—(क) अवधेश के द्वारे सकारे गई, सुत गोद कै भूपति लै निकसे। अवलोकिहौं सोच विमोचन को ठगि सी रही, जे न ठगे धिक से।—तुलसी। (ख) गए मयूर तमचूर जो हारे। उन्हहिं पुकारे साँझ सकारे।—जायसी। (२) नियत समय पर। ठीक वक्त पर। (क्व०)

सकारो†—क्रि० वि० दे० "सकारे"।

सक़ालत—संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) सक़ील या गरिष्ठ होने का भाव। (२) गुरुता। भारीपन।

सकाश—अव्य० [सं०] पास। निकट। समीप।

सकिलना†—क्रि० अ० [हिं० सिमटना का अनु०] (१) खिसकना। सरकना। (२) सिमटना। सिकुड़ना। उ०—उन्नत वार सकिल गई नासा। भयो तहाँ ते रुधिर प्रकासा।—रघुराज। (३) हो सकना। पूरा होना। जैसे,—तुम से यह काम नहीं सँकिल सकता।

सकीन—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का जंतु।

सक़ील—वि० [अ०] (१) जो जल्दी हजम न हो। गरिष्ठ। गुरुपाक। (२) भारी। वजनी।

सकुच‡—संज्ञा पुं० स्त्री० [सं० संकोच] संकोच। लाज। शर्म। उ०—(क) सुनु मैया तेरी सौं करौं याको टेव लरन की, सकुच बेंचि सी खाई।—तुलसी। (ख) सकुच सुरत आरंभ ही, बिछुरी लाज लजाय। ढरकि ढार ढुरि ढिग भई, ढीठ ढिठाई आय।—बिहारी। (ग) हम सों उन सों कौन सगाई। हम अहीर अबला ब्रजबासी वै जदुपति जदुराई। कहा भयो जु भए नँदनंदन अब इह पदवी पाई। सकुच न आवत घोष बसत की तजि ब्रज गए पराई।—सूर।

सकुचना—क्रि० अ० [सं० संकोच, हिं० सकुच + ना (प्रत्य०)] (१) संकोच करना। लज्जा करना। शरमाना। उ०—(क) सकुची, डरी, मुरी मन वारी। गहु न बाँह रे जोगि भिखारी।—जायसी। (ख) सुनि पग-धुनि चितई इतै, न्हाति दिए ही पीठि। चकी, झुकी, सकुची, डरी, हँसी लजीली डीठि।—बिहारी। (२) (फूलों का) संपुटित होना। बंद होना। जैसे,—कमल संकुचित हो गए। उ०—(क) रात को तो ऐसी बात कंज पात गात जाके सामने सरोज नाहि देख सकुचाइहै।—हृदयराम। (ख) गिरिधरदास कहै सकुची कुमोदिनी यों देखि परसुराम लखन जैसे पंडिता।—गिरधर।

सकुचाई‡—संज्ञा स्त्री० [सं० संकोच, हिं० सकुच + आई (प्रत्य०)] (१) संकुचित होने का भाव। (२) संकोच। शर्म। लज्जा। हया।

सकुची—संज्ञा स्त्री० [सं० शकुल मत्स्य] एक प्रकार की मछली जो साधारण मछलियों से भिन्न और प्रायः कछुए के आकार की होती है। इसके छोटे छोटे चार पैर होते हैं और एक लंबी पूँछ होती है। इसी पूँछ से यह शत्रु को मारती है। जहाँ पर इसकी चोट लगती है, वहाँ घाव हो जाता है और चमड़ा सड़ने लगता है। कहते हैं कि यह मछली ताड़ के वृक्ष पर चढ़ जाती है। पानी में और जमीन पर दोनों जगह यह रह सकती है।

सकुचीला—वि० [हिं० सकुच + ईला (प्रत्य०)] जिसे अधिक संकोच हो। संकोच करनेवाला। शरमीला।

सकुचौली—संज्ञा स्त्री० [हिं० सकुचना] लाजवंती। लज्जावती लता।

सकुड़ना—क्रि० अ० दे० "सिकुड़ना"।

सकुन‡—संज्ञा पुं० [सं० शकुन] पक्षी। चिड़िया।

संज्ञा पुं० दे० "शकुन"।

सकुनी‡†—संज्ञा स्त्री० [सं० शकुनि] पखेरू। चिड़िया। पक्षी।

सकुपना ‡—क्रि० अ० दे० "सकोपना"।

सकुरुंड—संज्ञा पुं० [देश०] साकुरुंड वृक्ष।

सकुल—संज्ञा पुं० [सं०] अच्छा कुल। उत्तम कुल। ऊँचा खानदान।

संज्ञा पुं० दे० "सकुची"।

सकुलज—वि० [सं०] एक ही कुल में उत्पन्न।

सकुला—संज्ञा पुं० [सं० कुल] बौद्ध भिक्षुओं का नेता या सरदार।

सकुलादनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) गरेठी। महाराष्ट्री लता। (२) कुटकी।

सकुली—संज्ञा स्त्री० दे० "सकुची"।

सक्थी-संज्ञा पुं० [सं० सक्थिन्] (१) हड्डी। अस्थि। हाड़। (२) उरु। जंघा। जाँघ। (३) छकड़े या बैलगाड़ी का एक अंग या अंश।

सक्र-संज्ञा पुं० [सं० शक्र] देवताओं का राजा, इंद्र। वि० दे० "शक्र"।

सक्रधनु-संज्ञा पुं० [सं० शक्रधनु] इंद्र का धनुष, वज्र। (डिं०)

सक्रतु-वि० [सं०] समान कर्म या प्रज्ञावाला।

सक्रपति-संज्ञा पुं० [सं० शक्रपति] विष्णु। (डिं०)

सक्रसन-संज्ञा पुं० [सं० शक्रासन] कुटज वृक्ष।

सक्र सरोवर-संज्ञा पुं० [सं० शक्रसरोवर] इंद्रकुंड नामक स्थान जो व्रज में है।

सक्रारि-संज्ञा पुं० [सं० शक्रारि] इंद्र का शत्रु, मेघनाद।

सक्ष-वि० [सं०] (१) अतिक्रमण करने के योग्य। (२) हारा हुआ। पराजित।

सक्षण-वि० [सं०] हारा हुआ। पराभूत।

सक्षणि-वि० [सं०] सेवा करने के योग्य। सेव्य।

सक्षम-वि० [सं०] (१) जिसमें क्षमता हो। क्षमताशाली। (२) काम करने के योग्य। समर्थ।

सख-संज्ञा पुं० [सं० सखि] (१) सखा। मित्र। साथी। (२) एक प्रकार का वृक्ष।

सखत†-वि० दे० "सख्त"।

सखती†-संज्ञा स्त्री० दे० "सख्ती"।

सखाय-संज्ञा पुं० [सं०] सखा होने का भाव। सखापन। मित्रता। दोस्ती।

सखर-संज्ञा पुं० [सं०] एक राक्षस का नाम।

†वि० दे० "सखरा"।

सखरण†-संज्ञा पुं० दे० "शिखरन"।

सखरस-संज्ञा पुं० [सर ?+हिं० रस] मक्खन। नैनू।

सखरा-संज्ञा पुं० [सं० सक्षार] (१) खारा। क्षारयुक्त। (२) निखरा का उलटा। वि० दे० "सखरी"।

संज्ञा पुं० [हिं० निखरी] वह भोजन जो घी में न पकाया गया हो। कच्ची रसोई। वि० दे० "सखरी"।

सखरी-संज्ञा स्त्री० [हिं० निखरा या निखरी] कच्ची रसोई। कच्चा भोजन। जैसे,—दाल, भात, रोटी आदि जो हिंदू लोग चौके के बाहर या किसी अन्य जाति के आदमी के हाथ की नहीं खाते और जिसमें छूत मानते हैं। वि० दे० "निखरी"।

संज्ञा स्त्री० [सं० शिखर] छोटा पहाड़। पहाड़ी। (डिं०)

सखस-†-संज्ञा पुं० दे० "शख्स"।

सखसाधन†-संज्ञा पुं० [फ़ा० शख्स ?] (१) पालकी। पीनस। (२) आराम कुरसी। (३) पलंग।

सखा-संज्ञा पुं० [सं० सखिन्] (१) वह जो सदा साथ रहता हो। साथी। संगी। (२) मित्र। दोस्त। (३) सहयोगी। सहचर। (४) साहित्य में वह व्यक्ति जो 'नायक' का सहचर हो और जो सुख दुःख में उसके समान सुख दुःख को प्राप्त हो। ये चार प्रकार के होते हैं—पीठमर्द, विट, चेट और विदूषक।

सखावत-संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) सखी या दाता होने का भाव। दानशीलता। (२) उदारता। फ़ैयाज़ी।

सखिता-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सखी होने का भाव। (२) बंधुता। मैत्री। दोस्ती।

सखित्व-संज्ञा पुं० [सं०] बंधुता। मित्रता। दोस्ती।

सखिपूर्व-संज्ञा पुं० [सं०] बंधुता। मित्रता।

सखी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सहेली। सहचरी। संगिनी। (२) साहित्य ग्रंथों के अनुसार वह स्त्री जो नायिका के साथ रहती हो और जिससे वह अपनी कोई बात न छिपावे। सखी का चार प्रकार का कार्य होता है—मंडन, शिक्षा, उपालंभ और परिहास। (३) एक प्रकार का छंद जिसके प्रत्येक चरण में १४ मात्राएँ और अंत में १ मगण या १ यगण होता है। इसकी रचना में आदि से अंत तक दो दो कलें होती हैं—२ + २ + २ + २ + २ + २ और कभी कभी २ + ३ + ३ + २ + २ + २ भी होता है और विराम ८ और ६ पर होता है। विराम भेद के अनुसार कवियों ने इसके दो भेद किए हैं—(१) विजात और (२) मनोरम।

वि० [अ० सख़ी] दाता। दानी। दानशील। जैसे,—सखी से सूम भला जो तुरत दे जवाब। (कहावत)

सखीभाव-संज्ञा पुं० [सं०] वैष्णवों के अनुसार भक्ति का एक प्रकार जिसमें भक्त अपने आपको इष्ट देवता की पत्नी या सखी मानकर उपासना करते हैं।

सखुआ-संज्ञा पुं० [सं० शाल] शाल वृक्ष। साखू। वि० दे० "शाल"।

सखुन-संज्ञा पुं० [फा० सख़ुन] (१) बातचीत। वार्तालाप। (२) कविता। काव्य। (३) कौल। वचन। जैसे,—मरदों का सखुन एक होता है।

मुहा०—सखुन देना=वचन हारना। वादा करना। सखुन डालना=(१) कोई बात कहना। कुछ चाहना या माँगना। उ०—सखुन उन्हीं पर डाले जो हँस हँस रखें मान। (२) प्रश्न करना। पूछना। सवाल करना।

(४) कथन। उक्ति।

सखुनचीन-संज्ञा पुं० [फा०] चुगुलखोर। चवाई। इधर उधर बातें लगानेवाला।

सखुनचीनी-संज्ञा स्त्री० [फा०] सखुनचीन का भाव। चुगुलखोरी। चवाव।

सखुन तकिया-संज्ञा पुं० [फा०] वह शब्द या वाक्यांश जो कुछ लोगों की ज़बान पर ऐसा चढ़ जाता है कि बातचीत करने में प्रायः मुँह से निकला करता है। तकिया कलाम।

सकुल्य–संज्ञा पुं० [सं०] एक ही कुल का। सगोत्र।

सकूतरा–संज्ञा पुं० एक द्वीप जो अरब सागर में अफ्रीका के पूर्वी तट के समीप है। यहाँ मोती और प्रवाल अधिक मिलते हैं।

सकूनत–संज्ञा स्त्री० [अ०] रहने का स्थान। निवास स्थान। पता। जैसे,—अदालत में गवाहों की वल्दियत और सकूनत भी लिखी जाती है।

सकृत्–अव्य० [सं०] (१) एक बार। एक मरतबा। (२) सदा। (३) साथ। सह।

संज्ञा पुं० (१) पशुओं का मल। विष्ठा। गुह। (२) कौआ। काक।

सकृत्फल–संज्ञा पुं० [सं०] वह चीज जो केवल एक ही बार फलती हो।

सकृत्प्रज–संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जिसके एक ही बच्चा हो। (२) काक। कौआ।

सकृत्प्रजा–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) वंध्यारोग। बाँझपन। (२) शेरनी। सिंहनी।

सकृत्फला–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) वह जो एक ही बार फले। (२) कदली। केला।

सकृत्सू–संज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्त्री जिसने अभी बालक प्रसव किया हो।

सकृदागामी मार्ग–संज्ञा पुं० [सं०] बौद्ध मतानुसार एक प्रकार का धार्मिक मार्ग जिसमें जीव केवल एक बार जन्म लेकर मोक्ष प्राप्त करता है।

सकृद्गर्भ–संज्ञा पुं० [सं०] खच्चर। अश्वतर।

सकृद्ग्रह–संज्ञा पुं० [सं०] (१) महाभारत के अनुसार एक प्राचीन देश का नाम। (२) इस देश का निवासी।

सकृद्वीर–संज्ञा पुं० [सं०] एकवीर या अकलवीर नामक वृक्ष।

सकृन्नंदा–संज्ञा स्त्री० [सं०] महाभारत के अनुसार एक प्राचीन नदी का नाम।

सकेत⊛†–संज्ञा पुं० [सं० संकेत] (१) संकेत। इशारा। (२) प्रेमी और प्रेमिका के मिलने का निर्दिष्ट स्थान।

वि० [सं० संकीर्ण] तंग। संकुचित। संकीर्ण।

संज्ञा पुं० विपत्ति। दुःख। कष्ट। उ०—खिनहिं उठै, खिन बाड़ै अस हिय कँवल सकेत। हीरामनहिं बुलावहि, सखी! गहन जिउ लेत।—जायसी।

सकेतना⊛†–क्रि० अ० [हिं० संकेत] संकुचित होना। सिकुड़ना। उ०—कँवल सकेता कुमुदिनि फूली। चकवा बिछुरा चकई भूली।—जायसी।

सकेती–†संज्ञा स्त्री० [हिं० सकेत] विपत्ति। कष्ट। आपत्ति।

सकेलंग–संज्ञा पुं० [अं० सक्लिंग] एक प्रकार का वृक्ष जो बहुत ऊँचा होता है। इसकी लकड़ी नरम और सफेद होती है जो इमारत और संदूक आदि बनाने के काम में आती है। यह अधिकतर हिमालय के पूर्वी भाग में पाया जाता है।

सकेलना†–क्रि० स० [सं० सकल?] एकत्र करना। इकट्ठा करना। जमा करना। उ०—(क) अब हम जाना हो हरि बाजी को खेल। डंक बजाय देखाय तमाशा बहुरि सो लेत सकेल।—कबीर। (ख) कहुँ हरि कथा कहूँ हरि पूजा कहुँ संतन को डेरो। जो बनिता सुत यूथ सकेले ह्वैगो रथनि पनेरो।—सूर।

सकेला–संज्ञा स्त्री० [अ० सैकल] एक प्रकार की तलवार जो कड़े और नरम लोहे के मेल से बनाई जाती है।

संज्ञा पुं० एक प्रकार का लोहा।

सकोच–संज्ञा पुं० दे० "संकोच"।

सकोड़ना–क्रि० स० दे० "सिकोड़ना"।

सकोतरा–संज्ञा पुं० दे० "चकोतरा"।

सकोपना⊛†–क्रि० अ० [सं० कोप + ना (प्रत्य०)] कोप करना। क्रोध करना। गुस्सा करना। उ०—पुनि पुनि मुनि विपरीत सकोपा। और प्रकार कीन्ह ब्यक्षेपा।—शंकर दिग्विजय।

सकोपित–वि० [सं० स + कुपित] कुपित। क्रुद्ध। नाराज।

सकोरा–संज्ञा पुं० [हिं० कसोरा] [स्त्री० सकोरी] मिट्टी की एक प्रकार की छोटी कटोरी। कसोरा।

सक्करी–संज्ञा स्त्री० [सं० शर्करी] एक प्रकार का छंद। वि० दे० "शर्करी"।

सक्का–संज्ञा पुं० [अ०] (१) भिश्ती। माशकी। उ०—उझी झड़का से परत पुनि छका से सड़का से भजत नेकु चाबुक गड़का से। सका से सवारे देत जीवन समर सदा अनुराग बाजी पर प्रान के उचक्का से।—गोपालचंद। (२) वह जो मशक में पानी भरकर लोगों को पिलाता फिरता हो।

सक्त–वि० [सं०] (१) दे० "आसक्त"। (२) मिला हुआ। सटा हुआ। संलग्न।

सक्तमूत्र–संज्ञा पुं० [सं०] चरक के अनुसार वह व्यक्ति जो थोड़ा थोड़ा करके पेशाब करे।

सक्ति–संज्ञा स्त्री० दे० "शक्ति"। उ०—पंक कर चर्म वर धर्म भर रुचिर कटि तून सर सक्ति सारंगधारी।—तुलसी।

सक्तु–संज्ञा पुं० [सं० शक्तु] भुने हुए अनाज को पीसकर तैयार किया हुआ आटा। सत्तू।

सक्तुक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) सत्तू। (२) एक प्रकार का विष जिसकी गाँठ में सत्तू के समान चूरा भरा रहता है।

सक्तुकार–संज्ञा पुं० [सं०] वह जो सत्तू बनाता और बेचता हो।

सक्तुपिंडी–संज्ञा स्त्री० [सं०] सत्तू का बना हुआ लड्डू।

सक्तुफला–संज्ञा स्त्री० [सं०] शमी वृक्ष। सफ़ेद कीकर।

सक्तुफली–संज्ञा स्त्री० [सं०] शमी वृक्ष। सफ़ेद कीकर।

सक्थि–संज्ञा पुं० [सं०] सुश्रुत के अनुसार एक प्रकार का मर्म (स्थान) जो शरीर के ग्यारह मर्म-स्थानों में माना गया है।

सक्थी-संज्ञा पुं० [सं० सक्थिन्] (१) हड्डी । अस्थि । हाड़ । (२) ऊरु । जंघा । जाँघ । (३) छकड़े या बैलगाड़ी का एक अंग या अंश ।

सक्र-संज्ञा पुं० [सं० शक्र] देवताओं का राजा, इंद्र । वि० दे० "शक्र" ।

सक्रधनु-संज्ञा पुं० [सं० शक्रधनु] इंद्र का अस्त्र, वज्र । (डिं०)

सक्रतु-वि० [सं०] समान धर्म या प्रज्ञावाला ।

सक्रपति-संज्ञा पुं० [सं० शक्रपति] विष्णु । (डिं०)

सक्रसन-संज्ञा पुं० [सं० शक्रसन] कुटज वृक्ष ।

सक्र सरोवर-संज्ञा पुं० [सं० शक्रसरोवर] इंद्रकुंड नामक स्थान जो ब्रज में है ।

सक्रारि-संज्ञा पुं० [सं० शक्रारि] इंद्र का शत्रु, मेघनाद ।

सक्य-वि० [सं०] (१) अतिक्रमण करने के योग्य । (२) हारा हुआ । पराजित ।

सक्षत-वि० [सं०] हारा हुआ । पराभूत ।

सक्षणि-वि० [सं०] सेवा करने के योग्य । सेव्य ।

सक्षम-वि० [सं०] (१) जिसमें क्षमता हो । क्षमताशाली । (२) काम करने के योग्य । समर्थ ।

सख-संज्ञा पुं० [सं० सखि] (१) सखा । मित्र । साथी । (२) एक प्रकार का वृक्ष ।

सखत†-वि० दे० "सख्त" ।

सखती†-संज्ञा स्त्री० दे० "सख्ती" ।

सखाव-संज्ञा पुं० [सं०] सखा होने का भाव । सखापन । मित्रता । दोस्ती ।

सखर-संज्ञा पुं० [सं०] एक राक्षस का नाम ।
†वि० दे० "सखरा" ।

सखरण†-संज्ञा पुं० दे० "शिखरन" ।

सखरस-संज्ञा पुं० [सख ?+हिं० रस] मक्खन । नैनू ।

सखरा-संज्ञा पुं० [सं० सक्षार] (१) खारा । क्षारयुक्त । (२) निखरा का उलटा । वि० दे० "सखरी" ।
संज्ञा पुं० [हिं० निखरी] वह भोजन जो घी में न पकाया गया हो । कच्ची रसोई । वि० दे० "सखरी" ।

सखरी-संज्ञा स्त्री० [हिं० निखरा या निखरी] कच्ची रसोई । कच्चा भोजन । जैसे,—दाल, भात, रोटी आदि जो हिंदू लोग चौके के बाहर या किसी अन्य जाति के आदमी के हाथ की नहीं खाते और जिसमें छूत मानते हैं । वि० दे० "निखरी" ।
संज्ञा स्त्री० [सं० शिखर] छोटा पहाड़ । पहाड़ी । (डिं०)

सखस-†-संज्ञा पुं० दे० "शख्स" ।

सखसाधन†-संज्ञा पुं० [फ़ा० शख्स ?] (१) पालकी । पीनस । (२) आराम कुरसी । (३) पलंग ।

सखा-संज्ञा पुं० [सं० सखिन्] (१) वह जो सदा साथ रहता हो । साथी । संगी । (२) मित्र । दोस्त । (३) सहयोगी । सहचर । (४) साहित्य में वह व्यक्ति जो 'नायक' का सहचर हो और जो सुख दुःख में उसके समान सुख दुःख को प्राप्त हो । ये चार प्रकार के होते हैं—पीठमर्द, विट, चेट और विदूषक ।

सखावत-संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) सखी या दाता होने का भाव । दानशीलता । (२) उदारता । फैयाज़ी ।

सखिता-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सखी होने का भाव । (२) बंधुता । मैत्री । दोस्ती ।

सखित्व-संज्ञा पुं० [सं०] बंधुता । मित्रता । दोस्ती ।

सखिपूर्व-संज्ञा पुं० [सं०] बंधुता । मित्रता ।

सखी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सहेली । सहचरी । संगिनी । (२) साहित्य ग्रंथों के अनुसार वह स्त्री जो नायिका के साथ रहती हो और जिससे वह अपनी कोई बात न छिपावे । सखी का चार प्रकार का कार्य होता है—मंडन, शिक्षा, उपालंभ और परिहास । (३) एक प्रकार का छंद जिसके प्रत्येक चरण में १४ मात्राएँ और अंत में १ मगण या १ यगण होता है । इसकी रचना में आदि से अंत तक दो दो कलें होती हैं—२ + २ + २ + २ + २ + २ और कभी कभी ३ + ३ + ३ + २ + २ + २ भी होता है और विराम ८ और ६ पर होना है । विराम भेद के अनुसार कवियों ने इसके दो भेद किए हैं—(१) विज्ञात और (२) मनोरम ।
वि० [अ० सख़ी] दाता । दानी । दानशील । जैसे,—सखी से सूम भला जो तुरत दे जवाब । (कहावत)

सखीभाव-संज्ञा पुं० [सं०] वैष्णवों के अनुसार भक्ति का एक प्रकार जिसमें भक्त अपने आपको इष्ट देवता की पत्नी या सखी मानकर उपासना करते हैं ।

सखुआ-संज्ञा पुं० [सं० शाल] शाल वृक्ष । साखू । वि० दे० "शाल" ।

सखुन-संज्ञा पुं० [फ़ा० सखुन] (१) बातचीत । वार्तालाप । (२) कविता । काव्य । (३) कौल । वचन । जैसे,—मरदों का सखुन एक होता है ।
मुहा०—सखुन देना=वचन हारना । वादा करना । सखुन डालना=(१) कोई बात कहना । कुछ चाहना या माँगना । उ०—सखुन उन्हीं पर डाले जो हँस हँस रखें मान । (२) प्रश्न करना । पूछना । सवाल करना ।
(४) कथन । उक्ति ।

सखुनचीन-संज्ञा पुं० [फ़ा०] चुगुलखोर । चवाई । इधर उधर बातें लगानेवाला ।

सखुनचीनी-संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] सखुनचीन का भाव । चुगुलखोरी । चवाव ।

सखुन तकिया-संज्ञा पुं० [फ़ा०] वह शब्द या वाक्यांश जो कुछ लोगों की ज़बान पर ऐसा चढ़ जाता है कि बातचीत करने में प्रायः मुँह से निकला करता है । तकिया कलाम ।

विशेष—बहुत से लोग ऐसे होते हैं जो बातचीत करने में बार बार "जो है सो" "क्या नाम" "समझ लीजिए कि" आदि कहा करते हैं। ऐसे ही शब्दों या वाक्यांशों को सखुन तकिया कहते हैं।

सखुनदाँ–संज्ञा पुं० [फा०] (१) वह जो सखुन या काव्य अच्छी तरह समझता हो। काव्य का रसिक। (२) वह जो बातचीत का मर्म्म अच्छी तरह समझता हो।

सखुनदानी–संज्ञा स्त्री० [फा०] (१) बातचीत की समझदारी। (२) काव्य-मर्म्मज्ञता। काव्य-रसिकता।

सखुनपरवर–संज्ञा पुं० [फा०] (१) वह जो अपनी कही हुई बात का सदा पालन करता हो। जबान या बात का धनी। (२) वह जो अपनी कही हुई अनुचित या गलत बात का भी बराबर समर्थन करता हो। हठी। जिद्दी।

सखुनशनास–संज्ञा पुं० [फा०] (१) वह जो सखुन या काव्य भली भाँति समझता हो। काव्य का मर्मज्ञ। (२) वह जो बातचीत का मर्म्म बहुत अच्छी तरह समझता हो।

सखुनसंज–संज्ञा पुं० [फा०] (१) वह जो बात समझता हो। (२) वह जो काव्य समझता हो।

सखुनसंजी–संज्ञा स्त्री० [सं०] सखुनसंज का भाव।

सखुनसाज़–संज्ञा पुं० [फा०] (१) वह जो सखुन कहता हो। काव्य-रचना करनेवाला। कवि। शायर। (२) वह जो सदा झूठी बातें गढ़ता हो। अपने मन से झूठी बातें बनाकर कहनेवाला।

सखुनसाज़ी–संज्ञा पुं० [फा०] (१) सखुनसाज का भाव या काम। (२) कवि होने का भाव या काम। (३) झूठी बातें गढ़ने का गुण या भाव।

सखोल–संज्ञा पुं० [सं०] राजतरंगिणी के अनुसार एक प्राचीन नगर का नाम।

सख्य–संज्ञा पुं० [सं०] (१) सखा का भाव। सखत्व। सखापन। (२) मित्रता। दोस्ती। (३) वैष्णव मतानुसार ईश्वर के प्रति वह भाव जिसमें ईश्वरावतार को भक्त अपना सखा मानता है। जैसे,—महात्मा सूरदास का श्रीकृष्ण के प्रति सख्य भाव था।

सख्यता–संज्ञा स्त्री० दे० "सख्य"।

सगंध–वि० [सं०] (१) जिसमें गंध हो। गंधयुक्त। महकदार। (२) जिसे अभिमान हो। अभिमानी।

संज्ञा पुं० जाति।

सगंधा–संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का चावल। सुगंधशालि। बासमती चावल।

वि० दे० "सगा"।

सगंधी–वि० पु० [सं० सगंधिन्] जिसमें गंध हो। महकदार।

वि० दे० "सगा"।

सग–संज्ञा पुं० [फा०] कुत्ता। कुक्कुर। श्वान।

सगज़बान–संज्ञा पुं० [फा०] वह घोड़ा जिसकी जीभ कुत्ते के समान पतली और लंबी हो। ऐसा घोड़ा प्रायः ऐबी समझा जाता है।

सगड़ी–संज्ञा स्त्री० [हिं० सगड़] छोटा सगड़।

सगण–संज्ञा पुं० [सं०] छंदःशास्त्र में एक गण जिसमें दो लघु और एक गुरु अक्षर होते हैं। इस गण का प्रयोग छंद के आदि में अशुभ है। इसका रूप ॥ऽ है।

सगत†–संज्ञा स्त्री० [सं० शक्ति] (१) शिव की भार्या, पार्वती। (डिं०) (२) शक्ति। ताकत। बल। सामर्थ्य।

सगती†–संज्ञा स्त्री० [सं० शक्ति] (१) पार्वती। (डिं०) (२) शक्ति। ताकत। बल।

सगदा–संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का मादक द्रव्य जो अनाज से बनाया जाता है।

सगन–संज्ञा पुं० (१) दे० "सगण"। (२) दे० "शकुन"।

सगनौती–संज्ञा स्त्री० दे० "शकुनौती"।

सगपन–संज्ञा पुं० दे० "सगापन"।

सगपहता†–संज्ञा पुं० दे० "सगपहती"।

सगपहती–संज्ञा स्त्री० [हिं० साग + पहिती = दाल] एक प्रकार की दाल जो साग मिलाकर बनाई जाती है।

विशेष—प्रायः लोग सगपहती बनाने के लिये उड़द की दाल में सोआ पालक या बथुए का साग मिलाते हैं। कभी कभी अरहर की दाल भी मिलाकर बनाई जाती है।

सगपिस्ताँ–संज्ञा पुं० [फा०] लिसोड़ा। बहुवार।

सगपु–संज्ञा पुं० [सं०] अमरली।

सगबग–वि० [अनु०] (१) सराबोर। लथपथ। उ० (क)—बरसावत बहु सुमन को सौरभ मद धारि। सगबग बिंदु मरंद सों, व्रज की चलत बयारि।—अंबिकादत्त। (ख) पिय चूम्यो मुँह चूमि होत रोमांचन सगबग। (२) द्रवित। उ०—मुरली नलिका सों अमी नाय रहे बगराय। सगबग होत पषान जिहिं सूखे तरु हरियाय। (३) परिपूर्ण। उ०—कित सूच्यो रतिराज साज सब सजि सुख पागे। किहिं सुहाग सगबगे भाग काके पुनि जागे।

क्रि० वि० तेजी से। जल्दी से। चटपट। उ०—उतरि पलँग ते न दियो है धरा पै पग तेऊ सगबग निसि दिन चली जाती हैं।—भूषण।

सगबगाना–क्रि० अ० [अनु० सग बग] (१) लथपथ होना। किसी वस्तु से भीगना या सराबोर होना। उ०—तन पुलकित किहिं हेतु कपोलन परि गई पीरी। रोम सेद सगबगे चाल हू भई अधीरी।—अंबिकादत्त। (२) सकपकाना। शंकित होना। भयभीत होना।

सगभत्ता†–संज्ञा पुं० [हिं० साग + भात] एक प्रकार [illegible] साग मिलाकर बनाया जाता है। इ[illegible] में साग मिला देते हैं।

सगर-संज्ञा पुं० [हिं० तगर] तगर का फूल या उसका पौधा।
संज्ञा पुं० [सं०] अयोध्या के एक प्रसिद्ध सूर्यवंशी राजा जो बड़े धर्म्मात्मा तथा प्रजा-रंजक थे। इनका विवाह विदर्भ-राजकन्या केशिनी से हुआ था। इनकी दूसरी स्त्री का नाम सुमति था। इन स्त्रियों सहित सगर ने हिमालय पर कठोर तपस्या की। इससे संतुष्ट होकर महर्षि भृगु ने इन्हें वर दिया कि तुम्हारी पहली स्त्री से तुम्हारा वंश चलानेवाला पुत्र होगा; और दूसरी स्त्री से ६० हजार पुत्र होंगे। सगर की पहली स्त्री से असमंजस नामक पुत्र उत्पन्न हुआ जो बड़ा उद्धत था। उसे सगर ने अपने राज्य से निकाल दिया। इसके पुत्र का नाम अंशुमान था। सगर की दूसरी स्त्री से ६० हजार पुत्र हुए। एक बार सगर ने अश्वमेध यज्ञ करना चाहा। अश्वमेध का घोड़ा इंद्र ने चुरा लिया और उसे पाताल में जा छिपाया। सगर के पुत्र उसे ढूँढ़ते ढूँढ़ते पाताल में पहुँचे। वहाँ महर्षि कपिल के समीप अश्व को बँधा पाकर उन्होंने उनका अपमान किया। मुनि ने क्रुद्ध होकर उन्हें शाप देकर भस्म कर डाला। सगर ने अपने पुत्रों के न आने पर अंशुमान को उन्हें ढूँढ़ने के लिये भेजा। अंशुमान ने पाताल में पहुँचकर मुनि को प्रसन्न किया और वहाँ से घोड़ा लेकर अयोध्या पहुँचा। अश्वमेध यज्ञ समाप्त करके सगर ने तीस सहस्र वर्ष राज्य किया। राजा भगीरथ इन्हीं के वंश के थे।

सगरा†-वि० [सं० सकल] [स्त्री० सगरी] सब। तमाम। सकल। कुल।
संज्ञा पुं० [सं० सागर] (१) तालाब। (२) झील।

सगरी-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्राचीन नगरी का नाम।

सगर्भ-वि० [सं०] एक ही गर्भ से उत्पन्न। सहोदर। सगा। (भाई, बहन आदि)

सगर्भा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) वह स्त्री जिसे गर्भ हो। गर्भवती स्त्री। (२) सहोदरा। सगी बहन।

सगर्भ्य-वि० [सं०] एक ही गर्भ से उत्पन्न। सहोदर।

सगल‡†-वि० दे० "सकल"।

सगलगी†-संज्ञा स्त्री० [हिं० सगा+लगना] (१) किसी से बहुत सगापन दिखाने की क्रिया। बहुत आपसदारी दिखलाना।
क्रि० प्र०—करना। दिखाना।
(२) खुशामद। चापलूसी। व्यर्थ की प्रशंसा।

सगला‡-वि० [सं० सकल] सब। समस्त। कुल।

सगवती-संज्ञा स्त्री० [?] खाने का मांस। गोश्त। कलिया।

सगधा-संज्ञा पुं० [देश०] सहिंजन। शोभांजन। मुनगा।

सगवारा†-संज्ञा पुं० [सं० स्वक्, हिं० सगा] गाँव के आस पास की और उससे संबंध रखती हुई भूमि।

सगा-वि० [सं० स्वक्] [स्त्री० सगी] (१) एक माता से उत्पन्न, सहोदर। जैसे,—सगा भाई। (२) जो संबंध में अपने ही कुल का हो। बहुत ही निकट के संबंध का। जैसे,—सगा चाचा, सगा भतीजा।

सगाई-संज्ञा स्त्री० [हिं० सगा+आई (प्रत्य०)] (१) यह निश्चय कि अमुक कन्या के साथ अमुक वर का विवाह होगा। विवाह संबंधी निश्चय। मँगनी। (२) स्त्री पुरुष का वह संबंध जो छोटी जातियों में विवाह ही के तुल्य माना जाता है। प्रायः ऐसा संबंध विधवा या पति-परित्यक्ता स्त्री के साथ होता है। उ०—बल करो जो तुम मन ऐसी आइ। सौ तुम क्यों कीन्हीं न सगाइ।—सूर। (३) संबंध। नाता। रिश्ता। उ०—(क) घोष ग्वाल पशुपाल अधम कुल ईश एके को कौन सगाई। सूरश्याम ब्रजवास बिसारे बाबा-नंद यशोदा माई।—सूर। (ख) मातु पिता प्रिय लोग सबै सनमानि सुभाय सनेह सगाई। संग सुभामिनि भाइ भलो दिन द्वै जनु औधहुते पहुनाई।—तुलसी।

सगाना-संज्ञा पुं० [फ़ा०] ममोला। खंजन पक्षी।

सगापन-संज्ञा पुं० [हिं० सगा+पन] सगा होने का भाव। संबंध की आत्मीयता।

सगाबी-संज्ञा स्त्री० [फ़ा० सग+आबी] (१) एक प्रकार का नेवला। (२) ऊदबिलाव नामक जंतु जो पानी में रहता है।

सगारत-संज्ञा स्त्री० [हिं० सगा+आरत (प्रत्य०)] सगा होने का भाव। संबंध की आत्मीयता। सगापन।

सगुण-संज्ञा पुं० [सं०] (१) परमात्मा का वह रूप जो सत्व, रज और तम तीनों गुणों से युक्त है। साकार ब्रह्म। (२) वह संप्रदाय जिसमें ईश्वर का सगुण रूप मान कर अव-तारों की पूजा होती है। मध्य काल से उत्तरीय भारत में भक्ति मार्ग के दो भिन्न संप्रदाय हो गये थे। एक ईश्वर के निर्गुण, निराकार रूप का ध्यान करता हुआ मोक्ष की प्राप्ति की आशा रखता था; और दूसरा ईश्वर का सगुण रूप राम, कृष्ण आदि अवतारों में मान कर उनकी पूजा कर मोक्ष की इच्छा रखता था। पहले मत के कबीर, नानक आदि मुख्य प्रचारक थे और दूसरे के तुलसी, सूर आदि।

सगुणता-संज्ञा स्त्री० [सं०] सगुण होने का भाव। सगुण-पन।

सगुणी-वि० दे० "सगुण"।

सगुन-संज्ञा पुं० (१) दे० "शकुन"। (२) दे० "सगुण"।

सगुनाना-क्रि० स० [सं० शकुन+आना (प्रत्य०)] (१) शकुन बतलाना। उ०—आजु कोउ नीकी बात सुनावै। कै मधुबन ते नंद लाडिले कै च दूत कोउ आवै। भौंरा इक चहुँ दिसि ते उड़ि उड़ि कान लागि कछु गावै। उत्तम भाषा ऊँचे चढ़ि चढ़ि अंग अंग सगुनावै। सूरदास कोऊ ब्रज ऐसो जो ब्रज-नाथ मिलावै।—सूर। (२) शकुन निकालना या देखना।

सगुनिया–संज्ञा पुं० [सं० शकुन, हिं० सगुन+इया (प्रत्य०)] वह मनुष्य जो लोगों को शकुन बतलाता हो। शकुन विचारने और बतलानेवाला। उ०—आगे सगुन सगुनिये ताका। दहिने माछ रूप के हाँका।—जायसी।

सगुनौती–संज्ञा स्त्री० [सं० शकुन, हिं० सगुन+औती (प्रत्य०)] प्रचलित विश्वास के अनुसार वह क्रिया जिससे भावी शुभाशुभ का निर्णय किया जाता है। शकुन विचारने की क्रिया। उ०—बैठी जननि करति सगुनौती। लछमन राम मिलैं अब मोकों दोउ अमोलक मोती। इतनी कहत सुकाग उहाँ ते हरी डाल उड़ि बैठ्यो। अंचल गाँठ दई दुख भाज्यो सुख जो आनि उर पैठ्यो।—सूर।

सगृह–संज्ञा पुं० [सं०] वह जिसकी स्त्री वर्त्तमान हो। घर गृहस्थीवाला। सपत्नीक।

सगोती–संज्ञा पुं० [सं० सगोत्र] (१) एक गोत्र के लोग। सगोत्र। (२) आपसदारी के या रिश्ते नाते के लोग। भाई बंधु।

सगोत्र–संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक गोत्र के लोग। सजातीय। (२) कुल। जाति।

सगोनीमर–संज्ञा पुं० [हिं० सागौन] सागौन। शाल वृक्ष।

सगौती–संज्ञा स्त्री० [देश०] खाने का मांस। गोश्त। कलिया।

सग्धि–संज्ञा स्त्री० [सं०] सहभोजन। एकत्र भोजन।

सग्म–संज्ञा पुं० [सं०] यजमान।

सघन–वि० [सं०] (१) घना। गझिन। अविरल। गुंजान। जैसे,—सघन जंगल। उ०—सघन कुंज छाया सुखद शीतल मंद समीर।—बिहारी। (२) ठोस। ठस।

सघनता–संज्ञा स्त्री० [सं०] सघन होने का भाव। निबिड़ता। अविरलता। गुंजानी।

सच–वि० [सं० सत्य] जो यथार्थ हो। सत्य। वास्तविक। ठीक। दे० "सत्य"।

सचक्री–संज्ञा पुं० [सं० सचक्रिन्] वह जो रथ चलाता हो। सारथी।

सचन–संज्ञा पुं० [सं०] सेवा करने की क्रिया या भाव। सेवन।

सचना⊛†–क्रि० स० [सं० संचयन] (१) संचय करना। एकत्र करना। जमा करना। बटोरना। उ०—दान करन है दुइ जग तरा। रावन सचा अगिन महँ जरा।—जायसी।
क्रि० अ०, स० दे० "सजना"। उ०—जो कछु सकल लोक की शोभा लै द्वारिका सची री।—सूर।

सचनावत्–संज्ञा पुं० [सं०] परमेश्वर, जिसका भजन सब लोग करते हैं।

सचमुच–अव्य० [हिं० सच+मुच (अनु०)] (१) यथार्थतः ठीक ठीक। वास्तव में। वस्तुतः। (२) अवश्य। निश्चय। निस्संदेह।

सचर–संज्ञा पुं० [सं०] श्वेत खिरंटी। सफेद कटसरैया।

सचरना⊛–क्रि० अ० [सं० संचरण] (१) किसी बात का विख्यात होना। संचरित होना। फैलना। (२) किसी वस्तु या प्रथा का अधिक व्यवहार में आना। बहुत प्रचलित होना। (३) संचार करना। प्रवेश करना। उ०—कुटिल अलक भ्रुव चारु नैन मिलि सचरे श्रवण समीप सुप्रीति। वक्र बिलोकनि भेद भेदिआ जोइ कहत सोइ करत प्रतीति।—सूर।

सचराचर–संज्ञा पुं० [सं०] संसार की सब चर और अचर वस्तुएँ। स्थावर और जंगम सभी वस्तुएँ।

सचल–संज्ञा पुं० [सं०] वह वस्तु जिसमें गति की सामर्थ्य हो। सचर। चर। जंगम।
वि० चलायमान। चर। चलनेवाला।

सचल लवण–संज्ञा पुं० [सं०] सौवर्च्चल लवण। साँचर नमक।

सचा–संज्ञा पुं० दे० "सखा"।

सचाई–संज्ञा स्त्री० [सं० सत्य, प्रा० सच+आई (प्रत्य०)] (१) सच्चा होने का भाव। सत्यता। सच्चापन। (२) वास्तविकता। यथार्थता।

सचान–संज्ञा पुं० [सं० संचान = श्येन] श्येन पक्षी। बाज़।

सचारना⊛†–क्रि० स० [सं० संचारण] सचरना का सकर्मक रूप। संचारित करना। फैलाना।

सचावट†–संज्ञा स्त्री० [हिं० सच+आवट (प्रत्य०)] सचापन। सचाई। सत्यता। (क्व०)

सचिंक–वि० [सं०] चेतनायुक्त।

सचिंत–वि० [सं०] जिसे चिंता हो। फिक्रमंद।

सचिक्कण–वि० [सं०] अत्यंत चिकना। बहुत अधिक चिकना। जैसे,—सचिक्कण केश।

सचिक्कन–वि० [सं० सचिक्कण] अत्यंत चिकना। अत्यंत स्निग्ध। उ०—सहज सचिक्कन स्याम रुचि, सुचि सुगंध सुकुमार। गनत न मन पथ अपथ लखि बिथुरे सुथरे बार।—बिहारी।

सचित्–वि० [सं०] चित् युक्त। जिसे ज्ञान या चेतना हो।

सचित्त–संज्ञा पुं० [सं०] वह जिसका ध्यान एक ही ओर लगा हो।

सचिन्नक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) छिन्नचक्षु। (२) जिसकी दृष्टि खराब हो।

सचिव–संज्ञा पुं० [सं०] (१) मित्र। दोस्त। (२) मंत्री। वज़ीर। (३) सहायक। मददगार। (४) धतूरे का वृक्ष।

सचिवता–संज्ञा स्त्री० [सं०] सचिव होने का भाव या धर्म।

सचिवामय–संज्ञा पुं० [सं०] (१) पांडु रोग। पीलिया। (२) विसर्प रोग।

सची–संज्ञा स्त्री० [सं० शची] (१) इंद्र की स्त्री का नाम। इंद्राणी। दे० "शची"। (२) अगर। अगुरु।

सचीसुत–संज्ञा पुं० [सं०] (१) शची का पुत्र, जयंत। (२) श्रीचैतन्यदेव

सचु⊛†–संज्ञा पुं० [?] (१) सुख। आनंद। उ०—(क)

मुक्तामाल बाल बग पंगति करत कुलाहल कूल। सारस हंस मध्य शुक सैना, बैजयंति सम तूल। पुरइनि कपिश निचोल विविध रँग बिहँसत सचु उपजावै। सूर स्याम आनंद कंद की शोभा कहत न आवै।—सूर। (ख) सँगिनिन ऐसी घरनि धरी। नंद-नँदन देखे सचुपावै या सौं रहनि डरी। —सूर। (२) प्रसन्नता। खुशी।

सचेत–वि० [सं० सचेतन] (१) चेतनायुक्त। वि० दे० "सचेतन"। (२) सज्ञान। समझदार। (३) सजग। सावधान। होशियार। जैसे,—जब यह आया करे, तब तुम सचेत रहा करो।

सचेतन–संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह प्राणी जिसे चेतना हो। विवेकयुक्त प्राणी। (२) वह वस्तु जो जड़ न हो। चेतन। वि० (१) चैतन्य। चेतनायुक्त। (२) सावधान। होशियार। (३) समझदार। चतुर।

सचेती–संज्ञा स्त्री० [हिं० सचेत + ई (प्रत्य०)] (१) सचेत होने का भाव। (२) सावधानी। होशियारी।

सचेष्ट–वि० [सं०] (१) जिसमें चेष्टा हो। (२) जो चेष्टा करे। संज्ञा पुं० [सं०] आम्र वृक्ष। आम या पेड़।

सचैयता–संज्ञा स्त्री० [हिं० सच + ऐयत (प्रत्य०)] सचाई। सत्यता। सचापन।

सचोर–संज्ञा पुं० [देश०] गुजराती ब्राह्मणों की एक जाति।

सच्चरित–वि० [सं०] जिसका चरित अच्छा हो। सच्चरित्र।

सच्चर्य्या–संज्ञा स्त्री० [सं०] उत्तम आचरण। अच्छा चालचलन।

सच्चा–वि० [सं० सत्य] [स्त्री० सच्ची] (१) सच बोलनेवाला। जो कभी झूठ न बोलता हो। सत्यवादी। (२) जिसमें झूठ न हो। यथार्थ। ठीक। वास्तविक। जैसे,—सच्चा मामला। (३) असली। विशुद्ध। जैसे,—सच्चा सोना। सच्चा घी। (४) बिलकुल ठीक और पूरा। जितना या जैसा चाहिए, उतना या वैसा। जैसे,—(क) तुमने भी उस पर खूब सच्चा हाथ मारा। (ख) यह तसवीर बहुत सच्ची उतरी गई है।

सच्चाई–संज्ञा स्त्री० [हिं० सच्चा + आई (प्रत्य०)] सच्चा होने का भाव। सच्चापन। सत्यता।

सच्चापन–संज्ञा पुं० [हिं० सच्चा + पन (प्रत्य०)] सत्य होने का भाव। सत्यता। सच्चाई।

सच्चार–संज्ञा पुं० [सं०] वह जो संपत्ति की रक्षा करता हो।

सच्चारा–संज्ञा स्त्री० [सं०] हलदी। हरिद्रा।

सच्चाहट–संज्ञा स्त्री० [हिं० सच्चा + हट (प्रत्य०)] सच्चा होने का भाव। सच्चापन। सत्यता।

सच्चिक्कनॐ–वि० दे० "सचिक्कण"।

सच्चित्–संज्ञा पुं० [सं०] सत् और चित् से युक्त, ब्रह्म।

सच्चिदानंद–संज्ञा पुं० [सं०] (सत्, चित् और आनंद से युक्त होने के कारण) परमात्मा का एक नाम। ईश्वर। परमेश्वर।

सच्चिन्मय–वि० [सं०] सत् और चैतन्य से युक्त। सत् और चैतन्य का स्वरूप।

सच्छंदॐ–वि० दे० "स्वच्छंद"।

सच्छीॐ–संज्ञा पुं० दे० "साक्षी"।
संज्ञा स्त्री० दे० "साक्षी"।

सच्युति–संज्ञा स्त्री० [सं०] दल बल सहित चलना।

सज–संज्ञा स्त्री० [सं० सज्जा, हिं० सजावट] (१) सजने की क्रिया या भाव।

यौ०—सजधज।

(२) रूप। बनाव। डौल। शकल। (३) शोभा। सौंदर्य। सजावट। शृंगार।

संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का बहुत लंबा वृक्ष जिसके पत्ते शिशिर में झड़ जाते हैं। यह हिमालय, बंगाल और दक्षिण भारत में अधिकता से पाया जाता है। इसके हीर की लकड़ी बहुत कड़ी और मजबूत होती है। इसकी लकड़ी का रंग स्याही लिए हुए भूरा होता है। लकड़ी जहाज, नाव आदि बनाने में काम आती है। इसे कहीं कहीं असीन भी कहते हैं।

सजग–वि० [सं० जागरण] सावधान। सचेत। सतर्क। होशियार। उ०—(क) तब आपुइ बस होइहै जिमि बनिया कर भूत। तदपि सजग रहिए सदा रिपु सम जानि कपूत। (ख) जौ राजा अस सजग न होई। काकर राज कहाँ कर होई। —जायसी।

सजड़ा–संज्ञा पुं० दे० "सहिंजन"। (वृक्ष)

सजदार–वि० [हिं० सज + फ़ा० दार (प्रत्य०)] जिसकी आकृति अच्छी हो। सुंदर।

सजधज–संज्ञा स्त्री० [हिं० सज + धज अनु०] बनाव सिंगार। सजावट। जैसे,—उनकी बरात बहुत सजधज से निकली थी।

सजन–संज्ञा पुं० [सं० सत् + जन = सज्जन] [स्त्री० सजनी] (१) भला आदमी। सज्जन। शरीफ। (२) पति। भर्ता। उ०—बहुत नारि सुभाग सुंदरि और घोष कुमारि। सजन प्रीतम नाउँ लै लै देहिं परस्पर गारि।—सूर। (३) प्रियतम। आशना। यार।

वि० [सं०] जन सहित। जिसमें लोग हों।

सजना–क्रि० अ० [सं० सज्जा] (१) भूषण वस्त्र आदि से अपने को सज्जित करना। अलंकृत करना। शृंगार करना। उ०—तीज परब सौतिन सजे, भूषन बसन सरीर। सबै मरगजे मुँह करी, वहै मरगजे चीर।—बिहारी। (२) शोभा देना। शोभित होना। भला जान पड़ना। जैसे,—यह गुलदस्ता भी यहाँ खूब सजता है।

क्रि० स० वस्तुओं को उचित स्थान में रखना जिसमें वे सुंदर जान पड़ें। सजाना। सुसज्जित करना। साजना। जैसे,—मकान सजना, थाली सजना।

संज्ञा पुं० दे० "सहिंजन"।

सजनीय–वि० [सं०] प्रसिद्ध। विख्यात। मशहूर।

सजधज–संज्ञा स्त्री० दे० "सजधज"।

सजल–वि० [सं०] (१) जल से युक्त या पूर्ण। जिसमें पानी हो। (२) अश्रुपूर्ण (नेत्र)। आँसुओं से पूर्ण (आँख)। उ०—लोचन सजल मकरंद भरे अरविंद खुली खुले वृंदपति मधुप किशोर की।—काव्य कलाधर।

सजला–वि० [हिं० मँझला का अनु०] [हिं० सजली] चार सहोदरों में से तीसरा। मँझले से छोटा, पर सब से छोटे से बड़ा।

संज्ञा स्त्री० [सं०] जल से भरी हुई। जलयुक्त।

सजवाई–संज्ञा स्त्री० [हिं० सजना + वाई (प्रत्य०)] (१) सजवाने की क्रिया। (२) सुसज्जित करवाने का भाव। (३) सजाने की मजदूरी। जैसे,—इस टोपी की सजवाई दो रुपए लगे हैं।

सजवाना–क्रि० स० [हिं० सजाना का प्रे० रूप] किसी के द्वारा किसी वस्तु को सुसज्जित कराना। सुसज्जित करवाना। जैसे,—आज कल महाराज अपनी कोठी सजवा रहे हैं।

सज़ा–संज्ञा स्त्री० [फा०] (१) अपराध आदि के कारण होनेवाला दंड। (२) कारागार का दंड। जेल में रखने का दंड।

क्रि० प्र०—करना।—देना।—पाना।—भुगतना।—मिलना।—होना।

यौ०—सज़ा-याफ़्ता। सज़ायाब।

सजाइ‡–संज्ञा स्त्री० [फा० सजा] सज़ा। दंड। उ०—पैहहि सजाय, नतु कहत बजाय तोहि, बावरी न होहि बानि जानि कपिनाह की। आन हनुमान की दोहाई बलवान की, सपथ महावीर की जो रहै पीर बाँह की।—तुलसी।

सजाई–संज्ञा स्त्री० [सं० सजाना + आई (प्रत्य०)] (१) सजाने की क्रिया। सजाने का काम। (२) सजाने का भाव। (३) सजाने की मजदूरी।

सजागर–वि० [सं०] (१) जागता हुआ। (२) सजग। होशियार।

सजाति–वि० [सं० सजातीय] एक जाति का। समान जाति का। जैसे,—(क) ये तो हमारे सजाति ही हैं। (ख) ये दोनों वृक्ष सजाति हैं।

सजातीय–वि० [सं०] एक जाति या गोत्र का।

सजात्य–वि० दे० "सजातीय"।

सजान‡–संज्ञा पुं० [सं० सज्ञान] (१) जानकार। जाननेवाला। (२) चतुर। होशियार।

सजाना–क्रि० स० [सं० सज्जा] (१) वस्तुओं को यथास्थान रखना। यथाक्रम रखना। तरतीब लगाना। (२) अलंकृत करना। सँवारना। शृंगार करना।

सजाय–संज्ञा स्त्री० [सं०] वह जो अपनी स्त्री के सहित वर्तमान हो।

‡ संज्ञा स्त्री० दे० "सजा"।

सज़ायाफ़्ता–संज्ञा पुं० [फा० सज़ायाफ़्तः] वह जिसने दंड विधान के अनुसार दंड पाया हो। वह जो सजा भोग चुका हो। व जो कैदखाने हो आया हो।

सज़ायाब–वि० [फा०] (१) जो दंड पाने के योग्य हो। दंडनीय। (२) जो कानून के अनुसार सजा पा चुका हो। जिसे कारागार का दंड मिल चुका हो।

सजारु, सजारू–संज्ञा पुं० [सं० शल्यक] साहिल। शल्यक।

सजाव–संज्ञा पुं० [हिं० सजाना ?] एक प्रकार का दही।

विशेष—इसे बनाने के लिये दूध को पहले खूब गरम करते हैं और तब उसमें जामन छोड़ते हैं। इस प्रकार जमा हुआ दही बहुत उत्तम होता है; उसकी साढ़ी या मलाई बहुत मोटी और चिकनी होती है।

संज्ञा स्त्री० दे० "सजावट"।

सजावट–संज्ञा स्त्री० [हिं० सजाना + आवट (प्रत्य०)] (१) सज्जित होने का भाव या धर्म। जैसे,—उनके मकान की सजावट भी देखने ही योग्य है। (२) शोभा। (३) तैयारी।

सजावन‡–संज्ञा पुं० [हिं० सजाना] (१) सजाने की क्रिया। अलंकृतकरण। मंडन। (२) तैयार करने की क्रिया। सुसज्जित करना। उ०—अब तो नाथ विलंब न कीजै। सैन सजावन शासन दीजै।—रघुराज।

सजावल–संज्ञा पुं० [तु० सज़ावुल] (१) सरकारी कर उगाहनेवाला कर्मचारी। तहसीलदार। (२) राज कर्मचारी। (३) सिपाही। जमादार।

सज़ावार–वि० [फा०] जो दंड का भागी हो। जो सजा पाने के योग्य हो। दंडनीय।

सजिना–संज्ञा पुं० दे० "सहिंजन"।

सजीउ‡–वि० दे० "सजीव"।

सजीला–वि० [हिं० सजना + ईला (प्रत्य०)] [स्त्री० सजीली] (१) सजधज के साथ रहनेवाला। छैला। छबीला। जैसे,—यह बहुत अच्छा और सजीला जवान है। (२) सुंदर। सुडौल। मनोहर।

सजीव–वि० [सं०] (१) जीव युक्त। जिसमें प्राण हों। उ०—हस्ति सिंघली बाँधे बारा। जनु सजीव सब ठाढ़ पहारा।—जायसी। (२) फुरतीला। तेज। (३) ओजयुक्त। ओजस्वी। जैसे,—उनकी कविता बड़ी सजीव है।

संज्ञा पुं० प्राणी। जीवधारी।

सजीवता–संज्ञा स्त्री० [सं०] सजीव होने का भाव। सजीवपन।

सजीवन–संज्ञा पुं० [सं० संजीवन] संजीवनी नामक बूटी। वि० दे० "संजीवनी"।

सजीवन बूटी–संज्ञा स्त्री० [सं० संजीवनी+हिं० बूटी] रुद्रवंती। रुद्रवंती। वि० दे० "संजीवनी"।

सजीवनमूर, सजीवनमूल–संज्ञा पुं० [सं० संजीवनी] संजीवनी बूटी। वि० दे० "संजीवनी"।

सजीवनी मंत्र–संज्ञा पुं० [सं० संजीवन+मंत्र] (१) वह कल्पित मंत्र जिसके संबंध में लोगों का विश्वास है कि मरे हुए मनुष्य या प्राणी को जिलाने की शक्ति रखता है। (२) वह मंत्र जिससे किसी कार्य्य में सुभीता हो। उपकारी मंत्रणा।

सजुग–वि० [हिं० सजग] सजग। सचेत। होशियार। उ०—लोभी चोर दूत ठग छोरा रहहिं यह पाँच। जो यह हाट सजुग भा गँठ ताकर पै बाँच।—जायसी।

सजुता–संज्ञा स्त्री० [सं० संयुता] एक प्रकार का छंद जिसके प्रत्येक चरण में एक सगण, दो जगण और एक गुरु होता है। (स ज ज ग) वि० दे० "संयुत"।

सजूरी–संज्ञा स्त्री० [?] एक प्रकार की मिठाई। उ०—(क) कमल नयन कछु करो बियारी। घेवर मालपुवा मुरि-लाडू सधर सजूरी सरस सवारी। लुचुई लपसी सौंध जलेबी सोइ जेंवहु जो लगै पियारी।—सूर। (ख) माधुरि अति सरस सजूरी। सद परसि धरी घृत पूरी।—सूर।

सजोना–क्रि० स० [हिं० सजाना] (१) सज्जित करना। शृंगार करना। (२) सामान इकट्ठा करना। किसी कार्य्य के निमित्त आवश्यक वस्तुएँ एकत्र करना। सामान करना। सरंजाम करना।

सजोष–वि० [सं०] (वे) जिनमें समान प्रीति हो।

सजोषण–संज्ञा पुं० [सं०] बहुत दिनों से चली आई हुई समान प्रीति।

सज्ज–संज्ञा पुं० "साज"।

सज्जक–संज्ञा पु० [सं०] सज्जा। सजावट।

सज्जण–संज्ञा पुं० [सं० सज्जा] (१) फौज की तैयारी। (डिं०) (२) दे० "सज्जन"।

सज्जता–संज्ञा स्त्री० [सं०] सज्जा का भाव। सजावट।

सज्जन–संज्ञा पु० [सं० सत्+जन] (१) भला आदमी। सत्पुरुष। शरीफ। (२) अच्छे कुल का मनुष्य। (३) प्रिय मनुष्य। प्रियतम। (४) चौकीदार। संतरी। (५) घाट। (६) सजाने की क्रिया या भाव। सज्जा।

सज्जनता–संज्ञा स्त्री० [सं०] सज्जन होने का भाव। सत्पुरुषता। भलमंसाहत। भलमंसी। सौजन्य। साधुता।

सज्जनताई–संज्ञा स्त्री० दे० "सज्जनता"।

सज्जना–संज्ञा स्त्री० [सं०] वह हाथी जिस पर नायक या सरदार चढ़ता हो।

सज्जा–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सजाने की क्रिया या भाव। सजावट। (२) वेषभूषा।

संज्ञा स्त्री० [सं० शय्या] (१) सोने की चारपाई। शय्या। (२) चारपाई, तोशक, चादर आदि वे सामान जो किसी के मरने पर उसके उद्देश्य से महापात्र को दिए जाते हैं। वि० दे० "शय्यादान"।

वि० [सं० सव्य] दाहिना। (पश्चिम)

सज्जादा–संज्ञा पुं० [अ० सज्जादः] (१) बिछाने का वह कपड़ा जिस पर मुसलमान नमाज पढ़ते हैं। मुसल्ला। जानमाज़। (२) आसन। (३) फकीरों या पीरों आदि की गद्दी।

सज्जादानशीन–संज्ञा पुं० [अ० सज्जादः+फा० नशीन] (१) वह जो गद्दी और तकिया लगाकर बैठता हो। (२) मुसलमान पीर या बड़ा फकीर।

सज्जित–वि० [सं०] (१) जिसकी खूब सजावट हुई हो। सजा हुआ। सुशोभित। अलंकृत। आरास्ता। (२) आवश्यक वस्तुओं से युक्त। तैयार। जैसे,—युद्ध के निमित्त सज्जित सैन्य।

सज्जी–संज्ञा स्त्री० [सं० सर्जि, सर्जिका] एक प्रकार का प्रसिद्ध क्षार जो सफेदी लिए हुए भूरे रंग का होता है।

विशेष—सज्जी दो प्रकार की होती है। एक वह जो मालाबार की ओर बनाई जाती है। इसमें बड़ी बड़ी खाइयाँ खोदकर उनमें वृक्षों की शाखाएँ और पत्ते आदि भर कर आग लगा देते हैं। जब वे जल कर जम जाते हैं, तब उनकी राख को खारी कहते हैं। इसी खारी से भूमि में सज्जी बनाते हैं। दूसरे प्रकार की सज्जी खारवाली ज़मीन में होती है। खार के कारण भूमि फूल जाती है; और उसी फूली हुई मिट्टी को सज्जी कहते हैं। वैद्यक के अनुसार सज्जी गरम, तीक्ष्ण और वायुगोला, शूल, वात, कफ, कृमि रोग आदि को शान्त करनेवाली मानी जाती है।

सज्जीखार–संज्ञा पुं० दे० "सज्जी"।

सज्जी बूटी–संज्ञा स्त्री० [सं० संजीवनी] क्षुप जाति की एक वनस्पति जो प्रति वर्ष उत्पन्न होती है। यह ६ से १८ इंच तक ऊँची होती है। इसकी शाखाएँ कोमल और पत्ते बहुत छोटे और तिकोने होते हैं। पुष्प छोटे और एक से तीन तक साथ लगते हैं। बीज-कोष ¼ इंच तक के घेरे में गोलाकार होता है। इसका रंग प्रायः चमकीला गुलाबी होता है। इसमें बहुत ही छोटे छोटे बीज होते हैं। प्रायः इसी के डंठलों और पत्तियों से सज्जीखार तैयार होता है। यह क्षुप तीन प्रकार का पाया जाता है।

सज्जुई†–संज्ञा स्त्री० "सजाव"।

सज्जुता–संज्ञा स्त्री० [सं० संयुता] संयुता नामक छंद। वि० दे० "संयुता"।

सज्जुष्ट–वि० [सं०] आनंददायक। सुखकारी।

सज्जो†–सर्व० [सं० सर्व] सब। बिलकुल। संपूर्ण। अव्य० तमाम। सर्वतः। संपूर्णतः।

सज्ञान–संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जिसे ज्ञान हो। ज्ञानवाला मनुष्य। (२) बुद्धिमान या चतुर पुरुष। सयाना। (३) उस अवस्था को पहुँचा हुआ पुरुष जिसमें वह विवेक-युक्त हो जाता है। प्रौढ़। बालिग।
वि० (१) ज्ञान-युक्त। (२) चतुर। बुद्धिमान। (३) सचेत। सावधान। होशियार।

सज्या†–संज्ञा स्त्री० दे० "शय्या"।

सझ–संज्ञा स्त्री० [सं० सज्जा] (१) सजावट। (२) तैयारी। (डिं०)

सझण–संज्ञा पुं० [सं० सज्जा] सेना को सज्जित करने की क्रिया। फौज तैयार करना। (डिं०)

सझनी–संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का छोटा पक्षी जिसकी पीठ काली, छाती सफेद और चोंच लंबी होती है।

सझिदार†–संज्ञा पुं० [हिं० साँझीदार] [स्त्री० सझिदारिन] हिस्सेदार। साँझीदार। शरीक।

सझिदारी†–संज्ञा स्त्री० [हिं० सझिदार + ई (प्रत्य०)] साझेदार होने का भाव। साझा। शिरकत।

सट–संज्ञा पुं० [सं०] जटा।

सटई‡–संज्ञा स्त्री० [देश०] अनाज रखने का एक प्रकार का पात्र।

सटक–संज्ञा स्त्री० [अनु० सट से] (१) सटकने की क्रिया। धीरे से चंपत होने या खिसकने का व्यापार। (२) तंबाकू पीने का लंबा लचीला नैचा जो भीतर छल्लेदार तार देकर बनाया जाता है। यह रबर की नली की भाँति लचीला और लपेटने योग्य होता है। अधिक लंबे बाँस की निगाली रखने में अड़चन होती है; अतः लोग सटक का व्यवहार करते हैं। (३) पतली लचनेवाली छड़ी। उ०—चिलक चिकनई चटक सों लफति सटक लों आय। नारि सलोनी साँवरी नागिन लों डसि जाय।—बिहारी।

सटकना–क्रि० अ० [अनु० सट से] धीरे से खिसक जाना। रफू-चक्कर होना। चल देना। चंपत होना। उ०—असुर यह घाव तकि गयो रण ते सटकि विपति ज्वर दियो तब शिव पठाई।—सूर।
क्रि० स० बालों में से अनाज निकालने के लिये उसे कूटने की क्रिया। कूटना। पीटना।

सटकाना–क्रि० स० [अनु० सट से] (१) किसी को छड़ी, कोड़े आदि से मारना जिसमें "सट" शब्द हो। जैसे,—दो कोड़े सटकाऊँगा, ठीक हो जाओगे। (२) सड़ सड़ या सट सट शब्द करते हुए हुक्का पीना। जैसे,—क्या बैठे सटका रहे हो।

सटकार–संज्ञा स्त्री० [अनु० सट] (१) सटकाने की क्रिया या भाव। (२) फटकारने या झटकारने की क्रिया। (३) गौ आदि को हाँकने की क्रिया। हटकार। उ०—सारथी पाय रत्न दये सटकार हय द्वारकापुरी जब निकट आई।—सूर।

सटकारना–क्रि० स० [अनु० सट से] (१) पतली लचीली छड़ी या कोड़े आदि से किसी को सट से मारना। सट सट मारना। (२) झटकारना। फटकारना।

सटकारा–वि० [अनु०] चिकना और लंबा। (बाल) उ०—छुटे छुटावैं जगत तें सटकारे सुकुमार। मन बाँधत बेनी बँधे नील छबीले बार।

सटकारी–संज्ञा स्त्री० [अनु०] लचनेवाली पतली छड़ी। साँटी।

सटका–संज्ञा पुं० [अनु० सट से] (१) दे० "सटक"। (२) दौड़। झपट। जैसे,—एक सटके में तो तुम घर पहुँच जाओगे।
मुहा०—सटका मारना = एक साँस में दौड़कर या बहुत जल्दी जल्दी जाना।

सटना–क्रि० अ० [सं० स + स्था] (१) दो चीजों का इस प्रकार एक में मिलना जिसमें दोनों के पार्श्व एक दूसरे से लग जायँ। जैसे,—दीवार से अलमारी सटना। (२) चिपकना। जैसे,—दफ्ती पर कागज सटना। (३) संभोग होना। (बजारू) (४) लाठी या डंडे आदि से मार पीट होना। लाठी सोटा चलना। मार पीट होना। (बदमाश) (५) साथ होना। मिलना।
संयो० क्रि०—जाना।

सटपट–संज्ञा स्त्री० [अनु०] (१) सिटपिटाने की क्रिया। चकपकाहट। उ०—अरी खरी सट पट परी, बिधु आधे मग हेरि। संग लगे मधुपन लई भागन गली अँधेरि।—बिहारी। (२) शील। संकोच। (३) संकट। दुविधा। असमंजस।
क्रि० प्र०—में पड़ना।—में डालना।

सटपटाना–क्रि० अ० [अनु०] (१) सटपट की ध्वनि होना। (२) दे० "सिटपिटाना। उ०—छुटै न लाज न लालची प्यौ लखि नैहर गेह। सटपटात लोचन खरे, भरे संकोच सनेह।—बिहारी।
क्रि० स० सटपट शब्द उत्पन्न करना।

सटर पटर–वि० [अनु०] (१) छोटा मोटा। तुच्छ। जैसे,—सटर पटर काम करने से न चलेगा। (२) बहुत साधारण। बिलकुल मामूली।
संज्ञा स्त्री० (१) उलझन का काम। बखेड़े का काम। (२) व्यर्थ का या तुच्छ काम। जैसे,—इसी सटर पटर में दिन बीत जाता है।
क्रि० प्र०—करना।—लगाना।

सट सट–क्रि० वि० [अनु०] (१) सट शब्द के साथ। सटासट। (२) शीघ्र। बहुत जल्दी। तुरंत। जैसे,—वह सब काम सट सट निपटा डालता है।

सटांक–संज्ञा पुं० [सं०] सिंह। शेर।

सटा–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) शिखा। (२) जटा। (३) घोड़े या शेर के कंधे पर के बाल। अयाल। केसर।

सटाक–संज्ञा पुं० [अनु०] सट शब्द।

सटाकी–संज्ञा स्त्री० [अनु०] चमड़े की वह रस्सी या पट्टी जो पैना के सिरे पर बाँधी जाती है।

विशेष—पैना बाँस का एक पतला छोटा डंडा होता है जिससे हल जोतनेवाला या गाड़ी हाँकनेवाला बैल हाँकता है। इस पैना को कोड़े का आकार देने के लिये इसमें चमड़े की पतली पतली पट्टियाँ बाँधते हैं। इन्हीं पट्टियों को सटाकी कहते हैं। सटाकी और डंडा दोनों मिलकर 'पैना' होता है।

सटान–संज्ञा स्त्री० [हिं० सटना + आन (प्रत्य०)] (१) सटने की क्रिया या भाव। मिलान। (२) दो वस्तुओं के सटने या मिलने का स्थान। जोड़।

सटाना–क्रि० स० [सं० स + स्था या स + लिष्ट] (१) दो चीजों को एक में संयुक्त करना। दो चीजों के पार्श्वों को आपस में मिलाना। मिलाना। जोड़ना। (३) लाठी डंडे आदि से लड़ाई करना। मार पीट करना। (बदमाश) (४) स्त्री और पुरुष का संयोग कराना। संभोग कराना। (बाजारू)

सटाय–वि० [देश०] (१) दलालों की परिभाषा में, कम। न्यून। (२) हलका। घटिया। खराब।

सटाल–संज्ञा पुं० [सं०] सिंह। केसरी। शेर बबर।

सटि–संज्ञा स्त्री० [सं०] कचूर। शटी।

सटिका–संज्ञा स्त्री० [सं०] वन आदी। जंगली कचूर।

सटिया–संज्ञा स्त्री० [हिं० सटना] (१) सोने या चाँदी की एक प्रकार की चूड़ी। (२) चाँदी की एक प्रकार की कलम जिससे स्त्रियाँ माँग में सिंदूर देती हैं। (३) दे० "सारी"।

सटी–संज्ञा स्त्री० [सं०] वन आदी। जंगली कचूर।

सटीक–वि० [सं०] जिसमें मूल के साथ टीका भी हो। टीका सहित। व्याख्या सहित। जैसे,—सटीक रामायण।

वि० [हिं० ठीक या सं० सठीक] बिलकुल ठीक। जैसा चाहिए, ठीक वैसा ही। जैसे,—यह तसवीर बन तो रही है; सटीक उतर जाय, तो बात है।

संयो० क्रि०—पड़ना।—बैठना।

सटैला–संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का पक्षी।

सट्ट–संज्ञा पुं० [सं०] दरवाजे के चौखटे में दोनों ओर की लकड़ियाँ। बाजू।

संज्ञा पुं० दे० "सट्टा"।

सट्टक–संज्ञा पुं० [सं०] (१) प्राकृत भाषा में प्रणीत छोटा रूपक। जैसे,—राजशेखर कृत कर्पूरमंजरी है। (२) जीरा मिला हुआ मट्ठा।

सट्टा–संज्ञा पुं० [देश०] (१) वह इकरारनामा जो काश्तकारों में खेत के साझे आदि के संबंध में होता है। बटाई। (२) वह इकरारनामा जो दो पक्षों में कोई निश्चित काम करने या कुछ शर्तें पूरी करने के लिये होता है। इकरारनामा। जैसे,—बाजेवालों को पेशगी रुपया दे दिया, पर उनसे सट्टा नहीं लिखाया।

संज्ञा पुं० [हिं० हाट या हट्टी] वह स्थान जहाँ लोग वस्तुएँ खरीदने बेचने के लिये एकत्र होते हैं। हाट। बाज़ार।

संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) एक प्रकार का पक्षी। (२) बाजा।

सट्टा बट्टा–संज्ञा पुं० [हिं० सटना + अनु० बट्टा] (१) मेल मिलाप। हेल मेल। (२) उद्देश्य सिद्धि के लिये की हुई धूर्त्ततापूर्ण युक्ति। चालबाजी।

मुहा०—सट्टा बट्टा लड़ाना = अपना कार्य सिद्ध करने के लिये किसी प्रकार की युक्ति करना।

सट्टी–संज्ञा स्त्री० [हिं० हाट या हट्टी] वह बाजार जिसमें एक ही मेल की बहुत सी चीज़ें लोग दूर दूर से लाकर बेचते हों। हाट। जैसे,—तरकारी की सट्टी, पान की सट्टी।

मुहा०—सट्टी मचाना = ऐसा शोर करना जैसा सट्टी में होता है। बहुत से लोगों का मिलकर जोर जोर से बोलना। जैसे,—पंडित जी के दरजे में तो लड़कों ने सट्टी मचा रखी है। सट्टी लगाना = बहुत सी चीजें इधर उधर फैला देना। जैसे,—तुमने यहाँ किताबों की सट्टी लगा रखी है।

सट्टा–संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्रकार का पक्षी। (२) प्राचीन काल का एक प्रकार का बाजा।

सठ–संज्ञा पुं० दे० "शठ"।

सठई†–संज्ञा स्त्री० [हिं० सठ + ई (प्रत्य०)] शठ होने का भाव। शठता। वि० दे० "शठता"।

सठता–संज्ञा स्त्री० [सं० शठ, हिं० सठ + ता (प्रत्य०)]. (१) शठ होने का भाव। शठ का धर्म। शठता। (२) मूर्खता। बेवकूफी। उ०—जानी राम न कहि सके भरत लखन सिय प्रीति। सो सुनि समुझि तुलसि कहत हठ सठता की रीति।—तुलसी।

सठियाना–क्रि० अ० [हिं० साठ + इयाना (प्रत्य०)] (१) साठ वर्ष की अवस्था को प्राप्त होना। साठ बरस का होना। जैसे,—साठा सो पाठा। (कहा०) (२) वृद्धावस्था को प्राप्त होना। बुड्ढा होना। (३) वृद्धावस्था के कारण बुद्धि तथा विवेक शक्ति का कम हो जाना।

विशेष—इस अर्थ में इस शब्द का प्रयोग व्यक्ति और बुद्धि दोनों के लिये होता है। जैसे,—(क) उनकी बात छोड़ दो; वे तो सठिया गए हैं। (ख) तुम्हारी तो अक्ल सठिया गई है।

संयो॰ क्रि॰—जाना।

सट्ठरी‡-संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ साँठी या साँठी] गेहूँ या जौ आदि के डंठलों का वह गँठीला अंश जिसका भूसा नहीं होता और जो ओसाकर अलग कर दिया जाता है। गठुरी। कूँटा। कूँटी।

सठेरा-संज्ञा पुं॰ [हिं॰ साँठा] सन का वह डंठल जो सन निकल जाने पर बच रहता है। संठा। सरई। सलई।

सठोरा-संज्ञा पुं॰ दे॰ "सांठौरा"।

सड्ढो-संज्ञा पुं॰ [दि॰] ऊँट। क्रमेलक।

सड़क-संज्ञा स्त्री॰ [अ॰ शरक] (१) आने जाने का चौड़ा रास्ता। राजमार्ग। राजपथ। (२) रास्ता। मार्ग।

सड़का-संज्ञा पुं॰ दे॰ "सटका"।

सड़न-संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ सड़ना] सड़ने की क्रिया या भाव। गलन।

सड़ना-क्रि॰ अ॰ [सं॰ सरण] (१) किसी पदार्थ में ऐसा विकार होना जिससे उसके संयोजक तत्व या अंग बिलकुल अलग अलग हो जायँ, उसमें से दुर्गंध आने लगे और वह काम के योग्य न रह जाय। जैसे,—उँगली सड़ना, फल सड़ना। (२) किसी पदार्थ में खमीर उठना या आना।

संयो॰ क्रि॰—जाना।

(३) दुर्दशा में पड़ा रहना। बहुत बुरी हालत में रहना। जैसे,—देशी रियासतों में लोग बरसों तक जेलखाने में यों ही सड़ते हैं।

सड़सठ-संज्ञा पुं॰ [हिं॰ सड़, (सात का रूप)+साठ] साठ और सात की संख्या जो इस प्रकार लिखी जाती है—६७।

वि॰ जो गिनती में साठ से सात अधिक हो।

सड़सठवाँ-वि॰ [हिं॰ सड़सठ+वाँ (प्रत्य॰)] गिनती में सड़सठ के स्थान पर पड़नेवाला।

सड़सी-संज्ञा स्त्री॰ दे॰ "सँड़सी"।

सड़ा-संज्ञा पुं॰ [हिं॰ सड़ना] वह औषध जो गौओं को बच्चा होने के समय पिलाते हैं। प्रायः यह औषध सड़ाकर बनाते हैं, इसी से इसे सड़ा कहते हैं।

सड़ाइंद-संज्ञा स्त्री॰ दे॰ "सड़ायँध"।

सड़ाक-संज्ञा पुं॰ स्त्री॰ [अनु॰ सड़ से] (१) कोड़े आदि की फटकार की आवाज जो प्रायः सड़ के समान होती है। (२) शीघ्रता। जल्दी। जैसे,—सड़ाक से चले आओ और चले आओ।

सड़ान-संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ सड़ना] सड़ने का व्यापार या क्रिया। सड़ना।

सड़ाना-क्रि॰ स॰ [हिं॰ सड़ना का स॰ रूप] सड़ना का सकर्मक रूप। किसी वस्तु को सड़ने में प्रवृत्त करना। किसी पदार्थ में ऐसा विकार उत्पन्न करना कि उसके अवयव गलने लगें और उसमें से दुर्गंध आने लगे। जैसे,—(क) सब आम तुमने रखे रखे सड़ा डाले। (ख) महुए को सड़ाकर शराब बनाई जाती है।

संयो॰ क्रि॰—डालना।—देना।

सड़ायँध-संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ सड़ना+गंध] सड़ी हुई चीज की गंध।

सड़ाव-संज्ञा पुं॰ [हिं॰ सड़ना+आव (प्रत्य॰)] सड़ने की क्रिया या भाव। सड़ना।

सड़ासड़-अव्य॰ [अनु॰ सड़ से] सड़ शब्द के साथ। जिसमें सड़ शब्द हो। जैसे,—चोर पर सड़ासड़ कोड़े पड़ने लगे।

सड़ियल-वि॰ [हिं॰ सड़ना+इयल (प्रत्य॰)] (१) सड़ा हुआ। गला हुआ। (२) निकम्मा। रद्दी। खराब। (३) नीच। तुच्छ। जैसे,—सड़ियल आदमी। सड़ियल घोड़ा। सड़ियल तसवीर।

सढ़-संज्ञा पुं॰ [देश॰] वैश्यों की एक जाति।

सण†-संज्ञा पुं॰ दे॰ "सन"।

सणगार-संज्ञा पुं॰ [सं॰ शृंगार] शृंगार। सजावट। (डिं॰)

सणसूत्र-संज्ञा पुं॰ दे॰ "शणसूत्र"।

सत्-संज्ञा पुं॰ [सं॰] ब्रह्म।

वि॰ (१) सत्य। (२) साधु। सज्जन। (३) धीर। (४) नित्य। स्थायी। (५) विद्वान्। पंडित। (६) मान्य। पूज्य। (७) प्रशस्त। (८) शुद्ध। पवित्र। (९) श्रेष्ठ। उत्तम। अच्छा। भला।

सत-वि॰ दे॰ "सत्"।

संज्ञा पुं॰ [सं॰ सत्] सत्यतापूर्ण धर्म्म।

मुहा॰—सत पर चढ़ना=पति के मृत शरीर के साथ सती होना। सत पर रहना=पतिव्रता रहना। सती रहना।

वि॰ दे॰ "शत"।

संज्ञा पुं॰ [सं॰ सत्व] (१) किसी पदार्थ का मूल तत्व। सार भाग। जैसे,—मुलेठी का सत। (२) जीवनी शक्ति। ताकत। जैसे,—चार दिन के बुखार में शरीर का सारा सत निकल गया।

वि॰ (१) "सात" (संख्या) का संक्षिप्त रूप जिसका व्यवहार यौगिक शब्द बनाने में होता है। जैसे,—सतमंजिला।

सतकार-संज्ञा पुं॰ दे॰ "सत्कार"।

सतकारना‡-क्रि॰ स॰ [सं॰ सत्कार+ना (प्रत्य॰)] सत्कार करना। आदर करना। सम्मान करना। इज्जत करना। उ॰—(क) गुरु को जैसे बंधु विचारयो। करि प्रणाम अतिशय सत्कारयो। (ख) राजा कियो ताहि परनामा। सादर सतकारयो मतिधामा।—रघुराज।

सतकोन-वि॰ [हिं॰ सात+कोना] जिसमें सात कोने हों। सात कोनोंवाला।

सतगँठिया-संज्ञा स्त्री॰ [हिं॰ सात+गाँठ] एक प्रकार की वनस्पति जिसकी तरकारी बनाई जाती है।

सतगुरु-संज्ञा पुं० [हिं० सत = सचा + गुरु] (१) अच्छा गुरु। (२) परमात्मा। परमेश्वर।

सतजीत-संज्ञा पुं० दे० "सत्यजित्"।

सतजुग-संज्ञा पुं० दे० "सत्ययुग"।

सतत-अव्य० [सं०] निरंतर। सदा। सर्वदा। हमेशा। बराबर।

सततग-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जो सदा चलता रहता हो। (२) वायु। हवा।

सततगति-संज्ञा पुं० [सं०] वायु। हवा।

सतत ज्वर-संज्ञा पुं० [सं०] वह ज्वर जो दिन में दो बार आवे; या कभी दिन में एक बार और फिर रात को भी एक बार आवे। द्विकालिक विषम ज्वर।

सततसमिताभियुक्त-संज्ञा पुं० [सं०] एक बोधिसत्व का नाम।

सतति-वि० स्त्री० [सं०] जो सदा चला करे।

सतत्व-संज्ञा पुं० [सं०] स्वभाव। प्रकृति।

सतदंत-संज्ञा पुं० [हिं० सात + दाँत] वह पशु जिसके सात दाँत हो गए हों।

विशेष—प्रायः पशुओं को पूरे दाँत निकल आने के पूर्व उनके दाँतों की संख्या के अनुसार पुकारते हैं। जैसे,—दुदंता, चौदंता, सतदंता आदि शब्द क्रमशः दो, चार और सात दाँतोंवाले बछड़ों के लिये प्रयुक्त होते हैं।

सतदल-संज्ञा पुं० [सं० शतदल] (१) कमल। (२) सौ दलोंवाला कमल।

सतधृत-संज्ञा पुं० [सं० शतधृत] ब्रह्मा। (डिं०)

यौ०—सतधृत-सुत = नारद मुनि।

सतनजा-संज्ञा पुं० [हिं० सात + अनाज] सात भिन्न प्रकार के अन्नों का मेल। वह मिश्रण जिसमें सात भिन्न भिन्न प्रकार के अनाज हों।

सतनी†-संज्ञा स्त्री० [सं० सप्तपर्णी] (१) सप्तपर्ण वृक्ष। सतियन। छतिवन। (२) एक प्रकार का बहुत ऊँचा वृक्ष जिसकी छाल का रंग कालापन लिए होता है। इसकी लकड़ी संदूक आदि बनाने के काम में आती है। यह बंगाल, दक्षिण भारत और हिमालय में अधिकता से पाया जाता है।

सततु-वि० [सं०] जिसे तन हो। शरीरवाला।

सतपतिया-संज्ञा स्त्री० दे० "सतपुतिया"।

संज्ञा स्त्री० [हिं० सात + पति] (१) वह स्त्री जिसने सात पति किए हों। (२) पुंश्चली। छिनाल।

सतपदी-संज्ञा स्त्री० दे० "सप्तपदी"।

सतपरवा†-संज्ञा पुं० [सं० शतपर्वा] (१) शतपर्वा। बाँस। (२) ऊख। गन्ना।

सतपात†-संज्ञा पुं० [सं० शतपत्र] शतपत्र। कमल।

सतपुतिया-संज्ञा स्त्री० [सं० सप्तपुत्रिका] एक प्रकार की तरोई जो प्रायः सब प्रांतों में होती है। इसके बोने का समय वर्षा ऋतु है। इसकी लता भूमि पर फैलती है या मँड़े पर चढ़ाई जाती है। इसके फल साधारण तरोई से कुछ छोटे होते हैं और पाँच, सात या कभी कभी इससे भी अधिक संख्या में एक साथ गुच्छों में लगते हैं।

सतपुरिया-संज्ञा स्त्री० [?] एक प्रकार की जंगली मधुमक्खी।

सतफेरा-संज्ञा पुं० [हिं० सात + फेरा] विवाह के समय होनेवाला सप्तपदी नामक कर्म। वि० दे० "सप्तपदी"। उ०—फिरहिं दोउ सतफेर घुमे के। सातहिं फेर गाँठि सो एके।—जायसी।

सतबरवा-संज्ञा पुं० [सं० शतपर्व = बाँस] एक प्रकार का वृक्ष जो नैपाल में होता है और जिससे नैपाली कागज बनाया जाता है।

सतभइया†-संज्ञा स्त्री० [हिं० सात + भाई] एक प्रकार की मैना (पक्षी) जिसे पेंगिया मैना भी कहते हैं।

विशेष—इसकी लंबाई प्रायः एक बालिश्त होती है। इसका रंग पीलापन लिए भूरा होता है। इसके पैर और पंजा पीला होता है। ऋतु भेदानुसार यह रंग बदलती है। यह झुंड में रहती है और छोटे, घने वृक्षों या झाड़ियों में घोंसला बनाती है। यह एक बार में प्रायः तीन अंडे देती है। यह बहुत शोर करती है। कहते हैं कि कोयल प्रायः अपने अंडे इसी के घोंसले में रखती है।

सतभाव-संज्ञा पुं० [सं० सद्भाव] (१) सद्भाव। अच्छा भाव। (२) सीधापन। (३) सच्चापन। सचाई।

सतभौंरी-संज्ञा स्त्री० [सं० सप्तभ्रमण] हिंदुओं में विवाह के समय की एक रीति। इसमें वर और वधू को अग्नि की सात बार प्रदक्षिणा करनी पड़ती है। इसे भौंरी पड़ना भी कहते हैं।

सतमख-संज्ञा पुं० [सं० शतमख] (जिसने १०० यज्ञ किए हों) इंद्र। (डिं०)

सतमला-संज्ञा स्त्री० [सं०] मार्कंडेय पुराण के अनुसार एक नदी का नाम।

सतमासा-संज्ञा पुं० [हिं० सात + मास] (१) सात मास पर उत्पन्न शिशु। वह बच्चा जो गर्भ से सातवें महीने उत्पन्न हुआ हो। (ऐसा बच्चा प्रायः बहुत रोगी और दुबला होता है और जल्दी जीता नहीं।) (२) वह रसम जो शिशु के गर्भ में आते पर सातवें महीने की जाती है।

सतमूली-संज्ञा स्त्री० [सं० शतमूली] सतावर। शतावरी।

सतयुग-संज्ञा पुं० दे० "सत्ययुग"।

सतरंग-वि० दे० "सतरंगा"।

सतरंगा-वि० [हिं० सात + रंग] जिसमें सात रंग हों। सात रंगोंवाला। जैसे,—सतरंगा साफा। सतरंगी साड़ी।

सतरंज-संज्ञा स्त्री० दे० "शतरंज"। उ०—सतरंज को सो राज

काठ की सब समाज महाराज बाजी रची प्रथमन हति।—तुलसी।

सतरंजी-संज्ञा स्त्री० दे० "शतरंजी"।

सतर-संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) लकीर। रेखा।

क्रि० प्र०—खींचना।

(२) पंक्ति। अवली। कतार।

वि० (१) टेढ़ा। वक्र। उ०—रमन कह्यौ हँसी रमनि सौं रति विपरीत विलास। चितई करि लोचन सतर सगरब सलज सहास।—विहारी।

(२) कुपित। क्रुद्ध। उ०—सुनहु स्याम तुमहूँ सरि नाहीं ऐसे गये बिलाइ। हम सौं सतर होत सूरज प्रभु कमल देहु अब जाइ।—सूर।

संज्ञा स्त्री० पुं० [अ०] (१) मनुष्य का वह अंग जो ढका रखा जाता है और जिसके न ढके रहने पर उसे लज्जा आती है। गुह्य इंद्री।

मुहा०—बेसतर करना = (१) नंगा करना। (२) बेइज्जत करना।

(२) ओट। आड़। परदा।

सतरखी‡-संज्ञा स्त्री० [हिं० सत्रह] वह क्रिया जो किसी की मृत्यु के पश्चात् सत्रहवें दिन की जाती है। सत्रहीं।

सतरह-वि० दे० "सत्तरह"।

सतराना-क्रि० अ० [हिं० सतर या सं० संतर्जन] (१) क्रोध करना। कोप करना। उ०—हम ही पर सतरात कन्हाई।—सूर।

(२) कुढ़ना। चिढ़ना। बिगड़ना। उ०—(क) जु ज्यौं उझकि झाँपति बदन, झुकति बिहँसि सतराइ। तु त्यौं गुलाल मुठी झुठी झझकावतु पिय जाइ।—विहारी। (ख) चंद दुति मंद भई, फंद में फँसी हौं आय, द्वंद नंद ठानैगी रे, जोरे जुग पानि है। सासु सतरैहै, जेठ-पतिनी रिसैहै, बंक बचन सुनैहै, छाँड़ि गर की भुजानि है।—देव। (ग) लेहु अब लेहु, तब कोऊ न सिखायो मान्यो, सोई सतराइ जाइ जाहि जाहि रोकिए।—तुलसी।

क्रि० प्र०—जाना।

सतराहट‡-संज्ञा स्त्री० [हिं० सतराना + हट (प्रत्य०)] कोप। गुस्सा। नाराज़गी।

सतरी-संज्ञा स्त्री० [सं० सर्पदंष्ट्रा] सर्पदंष्ट्रा नामक ओषधि।

सतरौहाँ‡-वि० [हिं० सतराना] [स्त्री० सतरौहीं] (१) कुपित। क्रोधयुक्त। (२) कोपसूचक। रिसाया हुआ सा। उ०—सकुचि न रहिए स्याम सुनि ये सतरौहैं बैन। देत रचौंहैं चित कहे नेह नचौंहैं नैन।—विहारी।

सतर्क-वि० [सं०] (१) तर्कयुक्त। युक्ति से पुष्ट। दलील के साथ। (२) सावधान। होशियार। सचेत। खबरदार।

सतर्कता-संज्ञा स्त्री० [सं०] सतर्क होने का भाव। सावधानी। होशियारी।

सतर्ष-वि० [सं०] तृषित। प्यासा।

सतलज-संज्ञा स्त्री० [सं० शतद्रु] पंजाब की पाँच नदियों में से एक। शतद्रु नदी।

सतलड़ा-वि० [हिं० सात + लड़] [स्त्री० सतलड़ी] जिसमें सात लड़ें हों। जैसे,—सतलड़ा हार।

सतलड़ी-संज्ञा स्त्री० [हिं० सात + लड़ी] गले में पहनने की सात लड़ियों की माला या हार।

सतवंती-वि० स्त्री० [हिं० सत्य + वंती (प्रत्य०)] सतवाली। सती। पतिव्रता।

सतवर्ग-संज्ञा पुं० दे० "सदवर्ग"।

सतसंग-संज्ञा पुं० दे० "सत्संग"।

सतसंगति-संज्ञा स्त्री० दे० "सत्संग"।

सतसंगी-वि० दे० "सत्संगी"।

सतसई-संज्ञा स्त्री० [सं० सप्तशती] (१) वह ग्रंथ जिसमें सातसौ पद्य हों। सातसौ पद्यों का समूह या संग्रह। सप्तशती।

विशेष—हिंदी साहित्य में 'सतसई' शब्द से प्रायः सात सौ दोहे ही समझे जाते हैं। जैसे,—विहारी की सतसई।

सतसठ‡-वि० दे० "सड़सठ"।

सतसल-संज्ञा पुं० [देश०] शीशम का पेड़।

सतह-संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) किसी वस्तु का ऊपरी भाग। बाहर या ऊपर का फैलाव। तल। जैसे,—मेज की सतह। समुंदर की सतह।

मुहा०—सतह चौरस या बराबर करना = समतल करना। उभार और गड्ढे अथवा खुरदुरापन निकालना।

(२) रेखा गणित के अनुसार वह विस्तार जिसमें लंबाई और चौड़ाई हो, पर मोटाई न हो।

सतहत्तर-वि० [सं० सप्तसप्तति, पा० सत्तसत्तति, प्रा० सत्तहत्तरि] सत्तर और सात। जो गिनती में तीन कम अस्सी हो।

संज्ञा पुं० सत्तर से सात अधिक की संख्या या अंक जो इस प्रकार लिखा जाता है—७७।

सतहत्तरवाँ-वि० [हिं० सतहत्तर + वाँ (प्रत्य०)] जिसका स्थान सतहत्तर पर हो। जो क्रम में सतहत्तर के स्थान पर पड़ता हो।

सतांग-संज्ञा पुं० [सं० शतांग] रथ। यान। उ०—कोउ तुरंग चढ़ि कोउ मतंग चढ़ि कोउ सतांग चढ़ि आये। भनि उछाह नर-नाह भरे सब संपति विपुल लुटाये।—रघुराज।

सतानंद-संज्ञा पुं० [सं०] गौतम ऋषि के पुत्र, जो राजा जनक के पुरोहित थे।

सताना-क्रि० स० [सं० संतापन, प्रा० संतावन] (१) संताप देना। कष्ट पहुँचाना। दुःख देना। पीड़ित करना। उ०—(क) कह्यो सुरन्ह तुम ऋषिहि सतायो। तातें कर गहि गर्भ उचायो।—सूर। (ख) गइ कालिंदी बिरह-सताई। चलि

पराग भरइल बिष आई।—जायसी। (२) तंग करना। हैरान करना। (३) किसी के पीछे पड़ना।

सतारक-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का कुष्ट या कोढ़ जिसमें शरीर पर लाल और काली फुंसियाँ निकलती हैं।

सतारू-संज्ञा पुं० दे० "सतारक"।

सतालू-संज्ञा पुं० [सं० सप्तालुक मि० फ़ा० शफ़्तालू] एक पेड़ जिसके गोल फल खाए जाते हैं। शफ़तालू। आड़ू।

विशेष—यह पेड़ मझोले कद का होता है और भारत के ठंढे प्रदेशों में पाया जाता है। पत्ते लंबे, नुकीले और कुछ श्यामता लिए गहरे रंग के होते हैं। पतझड़ के पीछे नए पत्ते निकलने के पहले इसमें लाल रंग के फूल लगते हैं। फल गूलर की तरह गोल और पकने पर हरे और लाल रंग के होते हैं जिनके ऊपर बहुत महीन सफेद रोइँयाँ होती हैं। ये खाने में बड़े मीठे होते हैं। बीज कड़े छिलके के और बादाम की तरह के होते हैं। इसकी लकड़ी मज़बूत और ललाई लिए होती है तथा उसमें से एक प्रकार की हलकी सुगंध निकलती है।

सतावना‡-क्रि० स० दे० "सताना"।

सतावर-संज्ञा स्त्री० [सं० शतावरी] एक झाड़दार बेल जिसकी जड़ और बीज औषध के काम में आते हैं। शतमूली। नारायणी।

विशेष—यह बेल भारत के प्रायः सब प्रांतों में होती है। इसकी टहनियों पर छोटे छोटे महीन काँटे होते हैं। पत्तियाँ सोए की पत्तियों की सी होती हैं और उनमें एक प्रकार की क्षारयुक्त गंध होती है। फूल सफेद होते और गुच्छों में लगते हैं। फल जंगली बेर के समान होते हैं और पकने पर लाल रंग के हो जाते हैं। प्रत्येक फल में एक या दो बीज होते हैं। इसकी जड़ बहुत पुष्टिकारक और वीर्यवर्द्धक मानी जाती है। स्त्रियों का दूध बढ़ाने के लिये भी यह दी जाती है। वैद्यक में इसका गुण शीतल, मधुर, अग्निदीपक, बलकारक और वीर्यवर्द्धक माना गया है। ग्रहणी और अतिसार में भी इसका क्वाथ देते हैं।

सतासी-वि० [सं० सप्ताशीति, प्रा० सत्तासी] अस्सी और सात। जो गिनती में अस्सी से सात अधिक हो।

संज्ञा पुं० सात ऊपर अस्सी की संख्या या अंक जो इस प्रकार लिखा जाता है—८७।

सतासीवाँ-वि० [हिं० सतासी + वाँ (प्रत्य०)] जिसका स्थान अस्सी से सात अधिक की संख्या पर हो। जो क्रम में सतासी पर पड़ता हो।

सतिल-संज्ञा पुं० दे० "सत्य" या "सत्"।

सतिवन-संज्ञा पुं० [सं० सप्तपर्ण, प्रा० सत्तवन्न] एक सदाबहार बड़ा पेड़ जिसकी छाल आदि दवा के काम में आती है। सप्तपर्णी। छतिवन।

विशेष—इसका पेड़ ४०-५० हाथ ऊँचा होता है और भारत के प्रायः सब तर स्थानों में पाया जाता है। भारतवर्ष के बाहर आस्ट्रेलिया और अमेरिका के कुछ स्थानों में भी यह मिलता है। यह बहुत जल्दी बढ़ता है। पत्ते सेमर के पत्तों के समान और एक सींके में सात सात लगते हैं। इसकी लकड़ी मुला॰यम और सफेद होती है और सजावट के सामान बनाने के काम में आती है। फूल हरापन लिए सफेद होता है। फूलों के झड़ जाने पर हाथ भर के लगभग लंबी पतली रोइँदार फलियाँ लगती हैं। यह वसंत ऋतु में फूलता और वैशाख जेठ में फलता है। फूलों में एक प्रकार की मदायन गंध होती है; इसी से कवियों ने कहीं कहीं इस गंध की उपमा गजमद से दी है। आयुर्वेद के अनुसार इसकी छाल त्रिदोषनाशक, अग्निदीपक, ज्वरघ्न और बलकारक होती है। ज्वर दूर करने में इसकी छाल का काढ़ा कुनैन के समान ही होता है। ज्वर के पीछे की कमजोरी भी इससे दूर होती है।

सती-वि० स्त्री० [सं०] अपने पति को छोड़ और किसी पुरुष का ध्यान मन में न लानेवाली। साध्वी। पतिव्रता।

संज्ञा स्त्री० (१) दक्ष प्रजापति की कन्या जो भव या शिव को ब्याही थी। (२) पतिव्रता स्त्री। (३) वह स्त्री जो अपने पति के शव के साथ चिता में जले। सहगामिनी स्त्री।

मुहा०—सती होना=(१) मरे हुए पति के शरीर के साथ चिता में जल मरना। सहगमन करना। (२) किसी के पीछे मर मिटना।

(४) मादा। स्त्री पशु। (५) गंधयुक्त मृत्तिका। सोंधी मिट्टी। (६) एक छंद जिसके प्रत्येक चरण में एक नगण और एक गुरु होता है। (७) विश्वामित्र की स्त्री का नाम। (८) अंगिरा की स्त्री का नाम।

सतीचौरा-संज्ञा पुं० [सं० सती + हिं० चौरा] वह वेदी या छोटा चबूतरा जो किसी स्त्री के सती होने के स्थान पर उसके स्मारक में बनाया जाता है।

सतीत्व-संज्ञा पुं० [सं०] सती होने का भाव। पातिव्रत्य।

मुहा०—सतीत्व बिगाड़ना या नष्ट करना=किसी स्त्री से बलात्कार करना।

सतीत्वहरण-संज्ञा पुं० [सं०] पर स्त्री के साथ बलात्कार। सतीत्व बिगाड़ना।

सतीदोषोन्माद-संज्ञा पुं० [सं०] स्त्रियों का वह उन्माद रोग जिसका प्रकोप किसी सतीचौरे को अपवित्र आदि करने के कारण होना माना जाता है।

सतीन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक प्रकार का मटर। (२) अपराजिता।

सतीपन-संज्ञा पुं० [सं० सती + पन (हिं० प्रत्य०)] सती रहने का भाव। पातिव्रत्य। सतीत्व।

सतीर्थ–संज्ञा पुं० [सं०] एक ही आचार्य्य से पढ़नेवाला । सहपाठी ब्रह्मचारी ।

सतील–संज्ञा पुं० [सं०] (१) बाँस । वंश । तृणराज । (२) अपराजिता । (३) वायु ।

सतीला–संज्ञा स्त्री० [सं०] अपराजिता । विष्णुकांता । कोयल लता ।

सतुआ†–संज्ञा पुं० [सं० सक्तुक, प्रा० सत्तुअ] भ्रष्ट यवादि चूर्ण । भुने हुए जौ और चने का चूर्ण जो पानी डालकर खाया जाता है । सत्तू ।

सतुआन–संज्ञा स्त्री० [हिं० सतुआ] सतुआ संक्रांति ।

सतुआ संक्रांति–संज्ञा स्त्री० [हिं० सतुआ+संक्रांति] मेष की संक्रांति जो प्रायः वैशाख में पड़ती है । इस दिन लोग सत्तू दान करते और खाते हैं ।

सतुआ सोंठ–संज्ञा स्त्री० [हिं० सतुआ+सोंठ] सोंठ की एक जाति ।

सतून–संज्ञा पुं० [फ़ा० मि० सं० स्थूण] स्तंभ । खंभा ।

सतूना–संज्ञा पुं० [फ़ा० सतून=खंभा] बाज़ की एक झपट जिसमें वह पहले शिकार के ठीक ऊपर उड़ जाता है; और फिर एक बारगी नीचे की ओर उस पर टूट पड़ता है । उ०—काग आपनी चतुरई तब तक लेहु चलाइ । जब लगि सिर पर देइ नहिं लगर सतूना आइ ।—रसनिधि ।

सतेर–संज्ञा पुं० [सं०] भूसी । भुस । तुष ।

सतेरक–संज्ञा पुं० [सं०] ऋतु । मौसिम ।

सतेरी–संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की मधुमक्खी ।

सतोखना‡–क्रि० स० [सं० संतोषण] (१) संतुष्ट करना । प्रसन्न करना । (२) संतोष दिलाना । समझाना । ढारस देना ।

सतोगुण–संज्ञा पुं० दे० "सत्व गुण" ।

सतोगुणी–संज्ञा पुं० [हिं० सतोगुण+ई (प्रत्य०)] सत्वगुणवाला । उत्तम प्रकृति का । सात्विक ।

सतोदर–संज्ञा पुं० दे० "शतोदर" ।

सतौला–संज्ञा पुं० [हिं० सात+औला (प्रत्य०)] प्रसूता स्त्री का वह विधिपूर्वक स्नान जो प्रसव के सातवें दिन होता है ।

सतौसर–संज्ञा पुं० [सं० सप्तसर] सात लड़ का । सतलड़ा ।

सत्कदंब–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का कदंब ।

सत्करण–संज्ञा पुं० [सं०] [वि० सत्करणीय, सत्कृत] (१) सत्कार करना । आदर करना । (२) मृतक की अन्तिम क्रिया करना । क्रिया कर्म करना ।

सत्करणीय–वि० [सं०] सत्कार करने के योग्य । आदरणीय । पूज्य ।

सत्कर्त्तव्य–वि० [सं०] (१) सत्कार के योग्य । (२) जिसका सत्कार करना हो ।

सत्कर्त्ता–संज्ञा पुं० [सं० सत्कर्तृ] [स्त्री० सत्कर्त्री] (१) अच्छा काम करनेवाला । सत्कर्म करनेवाला । (२) आदर सत्कार करनेवाला ।

सत्कर्म–संज्ञा पुं० [सं० सत्कर्मन्] (१) अच्छा कर्म । अच्छा काम । (२) धर्म या उपकार का काम । पुण्य । (३) अच्छा संस्कार ।

सत्कांड–संज्ञा पुं० [सं०] चील ।

सत्काय दृष्टि–संज्ञा स्त्री० [सं०] मृत्यु के उपरांत आत्मा, लिंग, शरीर आदि के बने रहने का मिथ्या सिद्धांत । (बौद्ध)

सत्कार–संज्ञा पुं० [सं०] (१) आए हुए के प्रति उत्तम व्यवहार । आदर । सम्मान । खातिरदारी । (२) आतिथ्य । मेहमानदारी । (३) पर्व । उत्सव ।

सत्कार्य्य–वि० [सं०] (१) सत्कार करने योग्य । (२) जिसका सत्कार करना हो । (३) जिस (मृतक) का क्रिया कर्म करना हो ।

संज्ञा पुं० उत्तम कार्य्य । अच्छा काम ।

सत्कार्य्यवाद–संज्ञा पुं० [सं०] सांख्य का यह दार्शनिक सिद्धांत कि बिना कारण के कार्य्य की उत्पत्ति नहीं हो सकती; अर्थात् इस जगत् की उत्पत्ति शून्य से नहीं है, किसी मूल सत्ता से है । किसी कारण में कार्य्य की सत्ता का सिद्धांत । यह सिद्धांत बौद्धों के शून्यवाद का विरोधी है ।

सत्किष्कु–संज्ञा पुं० [सं०] लंबाई की एक प्राचीन नाप जो सवा गज के लगभग होती थी ।

सत्कीर्त्ति–संज्ञा स्त्री० [सं०] उत्तम कीर्त्ति । यश । नेकनामी ।

सत्कुल–संज्ञा पुं० [सं०] उत्तम कुल । अच्छा या बड़ा खानदान ।

वि० अच्छे कुल का । खानदानी ।

सत्कृत–वि० [सं०] (१) अच्छी तरह किया हुआ । (२) जिसका आदर सत्कार किया गया हो । आदृत । (३) अलंकृत । सजाया हुआ । बनाया हुआ ।

संज्ञा पुं० (१) सत्कार । आदर । (२) सत्कर्म । अच्छा काम । पुण्य ।

सत्क्रिया–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सत्कर्म । पुण्य । धर्म का काम । (२) सत्कार । आदर । अच्छा व्यवहार । खातिरदारी । (३) आयोजन । तैयारी ।

सत्त–संज्ञा पुं० [सं० सत्व] (१) किसी पदार्थ का सार भाग । असली जुज़ । रस । जैसे,—गेहूँ का सत्त । (२) सार । काम की वस्तु । जैसे,—अब तो उसमें कुछ भी सत्त बाकी नहीं रह गया ।

†संज्ञा पुं० [सं० सत्य] (१) सत्य । सच बात । (२) सतीत्व । पातिव्रत्य ।

सत्तर–वि० [सं० सप्तति, प्रा० सत्तरि] साठ और दस । जो गिनती में साठ से दस अधिक हो ।

संज्ञा पुं० साठ से दस अधिक की संख्या या अंक जो इस प्रकार लिखा जाता है—७० ।

सत्तरवाँ-वि० [हिं० सत्तर+वाँ (प्रत्य०)] [स्त्री० सत्तरवीं] जो क्रम में सत्तर के स्थान पर हो ।

सत्तरह-वि० [सं० सप्तदश, प्रा० सत्तरह] दस और सात । जो गिनती में दस से सात अधिक हो ।

संज्ञा पुं० (१) दस से सात अधिक की संख्या या अंक जो इस प्रकार लिखा जाता है—१७ । (२) पाँसे के खेल में एक दाँव जिसमें दो छक्के और एक पंजा तीनों एक साथ पड़ते हैं। उ०—डारि पासा साधु-संगति फेरि रसना सारि । दाँव अब के परयो पूरो कुमति पिछली हारि । राखि सत्रह सुनि अठारह चोर पाँचो मारि ।—सूर ।

सत्तरहवाँ-वि० [हिं० सत्तरह+वाँ (प्रत्य०)] [स्त्री० सत्तरहवीं] जो क्रम में सत्तरह के स्थान पर पड़े ।

सत्ता-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) होने का भाव । अस्तित्व । हस्ती । होना । भाव । (२) शक्ति । दम । (३) अधिकार । प्रभुत्व । हुकूमत । (मराठी से गृहीत)

मुहा०—सत्ता चलाना=अधिकार चलाना । हुकूमत करना । उ०—जो लोग असभ्य हैं, जंगली हैं, उन पर सत्ता चलाने (हुकूमत करने) में अनियंत्र शासन अच्छा होता है ।—महावीरप्रसाद द्विवेदी ।

संज्ञा पुं० [हिं० सात] ताश या गंजीफे का वह पत्ता जिसमें सात बूटियाँ हों ।

सत्ताईस-वि० [सं० सप्तविंशति, प्रा० सत्तावीसा] सात और बीस । जो गिनती में बीस से सात अधिक हो ।

संज्ञा पुं० बीस से सात अधिक की संख्या या अंक जो इस प्रकार लिखा जाता है—२७ ।

सत्ताईसवाँ-वि० [हिं० सत्ताईस+वाँ (प्रत्य०)] जो क्रम में सत्ताईस के स्थान पर पड़ता हो ।

सत्ताधारी-संज्ञा पुं० [सं० सत्ताधारिन्] अधिकारी । अफसर । हाकिम ।

सत्तानबे-वि० [सं० सप्तनवति, प्रा० सत्तानवइ] नब्बे और सात । जो गिनती में सौ से तीन कम हो ।

संज्ञा पुं० सौ से तीन कम की संख्या या अंक जो इस प्रकार लिखा जाता है—९७ ।

सत्तानबेवाँ-वि० [हिं० सत्तानबे+वाँ (प्रत्य०)] जो क्रम में सत्तानबे के स्थान पर पड़ता हो ।

सत्तावन-वि० [सं० सप्तपंचाशत्, प्रा० सत्तावण्ण] पचास और सात । जो गिनती में तीन कम साठ हो ।

संज्ञा पुं० तीन कम साठ की संख्या या अंक जो इस प्रकार लिखा जाता है—५७ ।

सत्तावनवाँ-वि० [हिं० सत्तावन+वाँ (प्रत्य०)] जो क्रम में सत्तावन के स्थान पर पड़ा हो ।

सत्ताशास्त्र-संज्ञा पुं० [सं०] पाश्चात्य दर्शन की वह शाखा जिसमें मूल या पारमार्थिक सत्ता का विवेचन हो ।

सत्तासामान्यत्व-संज्ञा पुं० [सं०] अनेक रूपों के भीतर एक सामान्य द्रव्य का अस्तित्व । जैसे,—कुंडल, कंकण आदि अनेक गहनों में 'सोना' नामक द्रव्य सामान्य रूप से पाया जाता है ।

विशेष—इस तथ्य का उपयोग वेदांती या दार्शनिक अनेक नाम रूपात्मक जगत् की तह में किसी एक अनिर्वचनीय और अव्यक्त सत्ता का प्रतिपादन करने में करते हैं ।

सत्तासी-वि० [सं० सप्ताशीति, प्रा० सत्तासी] अस्सी और सात । जो गिनती में तीन कम नब्बे हो ।

संज्ञा पुं० तीन कम नब्बे की संख्या या अंक जो इस प्रकार लिखा जाता है—८७ ।

सत्तासीवाँ-वि० [हिं० सत्तासी+वाँ (प्रत्य०)] जो क्रम में तीन कम नब्बे के स्थान पर पड़े ।

सत्तू-संज्ञा पुं० [सं० सक्तुक, प्रा० सत्तुअ] भुने हुए जौ और चने या और किसी अन्न का चूर्ण या आटा जो पानी घोलकर खाया जाता है ।

मुहा०—सत्तू बाँधकर पीछे पड़ना=(१) पूरी तैयारी के साथ किसी को तंग करने में लगना । सब काम धंधा छोड़कर किसी के विरुद्ध प्रयत्न करना । (२) पूरी तैयारी के साथ किसी काम में लगना । सब काम धाम छोड़कर प्रवृत्त होना ।

सत्पथ-संज्ञा पुं० [सं०] (१) उत्तम मार्ग । (२) सदाचार । अच्छी चाल । (३) उत्तम संप्रदाय या सिद्धांत । अच्छा पंथ ।

सत्पशु-संज्ञा पुं० [सं०] देवताओं के बलि योग्य अच्छा पशु ।

सत्पात्र-संज्ञा पुं० [सं०] (१) दान आदि देने के योग्य उत्तम व्यक्ति । (२) श्रेष्ठ और सदाचारी । योग्य मनुष्य । (३) कन्या देने के योग्य उत्तम पुरुष । अच्छा वर ।

सत्पुरुष-संज्ञा पुं० [सं०] भला आदमी । सदाचारी पुरुष ।

सत्प्रतिपक्ष-वि० [सं०] जिसका उचित खंडन हो सके । जिसके विपक्ष में बहुत कुछ कहा जा सके ।

सत्फल-संज्ञा पुं० [सं०] दाड़िम । अनार ।

सत्यंकार-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वचन को सत्य करना । वादा पूरा करना । (२) वादा पूरा करने की अमानत के तौर पर कुछ पेशगी देना ।

सत्य-वि० [सं०] (१) जो बात जैसी है, उसके संबंध में वैसा ही (कथन) । यथार्थ । ठीक । वास्तविक । सही । यथातथ्य । [illegible], सत्य वचन । (२) असल ।

संज्ञा पुं० (१) वास्तविक बात । ठीक बात । यथार्थ तत्त्व । जैसे,—सत्य को कोई छिपा नहीं सकता ।

विशेष—बौद्ध धर्म्म में चार 'आर्य्य सत्य' कहे गए हैं—दुःख सत्य (संसार दुःख रूप है, यह सत्य बात), दुःख समुदय (दुःख के कारण), दुःख निरोध (दुःख रोका जाता है) और मार्ग (निर्वाण का मार्ग)। बौद्ध दार्शनिक दो प्रकार का सत्य मानते हैं—संवृति सत्य (जो बहुमत से माना गया हो) और परमार्थ सत्य (जो स्वतः सत्य हो)।

(२) उचित पक्ष । न्याय्य पक्ष । धर्म्म की बात । ईमान की बात । जैसे,—हम सत्य पर दृढ़ रहेंगे । (३) पारमार्थिक सत्ता । वह वस्तु जो सदा ज्यों की त्यों रहे, जिसमें किसी प्रकार का विकार या परिवर्त्तन न हो । (वेदांत) जैसे,—ब्रह्म सत्य है और जगत् मिथ्या है । (४) ऊपर के सात लोकों में से सब से ऊपर का लोक जहाँ ब्रह्मा अवस्थान करते हैं । (५) नवें कल्प का नाम । (६) अश्वत्थ वृक्ष । पीपल का पेड़ । (७) विष्णु का एक नाम । (८) रामचंद्र का एक नाम । (९) नांदीमुख श्राद्ध के अधिष्ठाता देवता । (१०) विश्वेदेवा में से एक । (११) शपथ । कसम । (१२) प्रतिज्ञा । कौल । (१३) चार युगों में से पहला युग । कृतयुग । (१४) एक दिव्यास्त्र ।

सत्यकाम–वि० [सं०] सत्य का प्रेमी ।

सत्यकीर्त्ति–संज्ञा पुं० [सं०] एक अस्त्र जो मंत्रबल से चलाया जाता था ।

सत्यकेतु–संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक बुद्ध का नाम । (२) केकय देश के एक राजा का नाम । (३) अक्रूर के पुत्र का नाम ।

सत्यजित्–संज्ञा पुं० [सं०] (१) वसुदेव का एक भतीजा । (२) एक दानव । (३) एक यक्ष । (४) तीसवें मन्वंतर के इंद्र का नाम ।

सत्यतः–अव्य० [सं०] ठीक ठीक । वास्तव में । सचमुच ।

सत्यता–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सत्य होने का भाव । वास्तविकता । सचाई । (२) नित्यता ।

सत्यधन–वि० [सं०] जिसका सर्वस्व सत्य हो । जिसे सत्य सब से प्रिय हो ।

सत्यनारायण–संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु भगवान का एक नाम जिसके संबंध एक कथा रची गई है । इस कथा का प्रचार आज कल बहुत अधिक है ।

विशेष—ऐसा पता लगता है कि अकबर के समय में बंग देश में अकबर के नए मत 'दीन इलाही' के प्रचार के लिये पहले पहल यह कथा किसी पंडित से लिखाई गई थी और उसका रूप कुछ दूसरा ही था । जैसे,—नारद और विष्णु का संवाद उसमें न था, और 'हरी' के स्थान पर शाह या पीर नाम था । पीछे पंडितों ने उस कथा में आवश्यक परिवर्त्तन करके पौराणिक हिंदू-धर्म के अनुकूल कर लिया और वह उसी परिवर्त्तित रूप में प्रचलित हुई । बंग भाषा में भी "सत्यपीर" की कथा के नाम से यह कथा पाई गई है ।

सत्यपर–वि० [सं०] सत्य में प्रवृत्त । ईमानदार ।

सत्यपुरुष–संज्ञा पुं० [सं०] ईश्वर । परमात्मा ।

सत्यप्रतिज्ञ–वि० [सं०] प्रतिज्ञा को सत्य करनेवाला । वचन का सच्चा ।

सत्यफल–संज्ञा पुं० [सं०] बिल्व । श्रीफल । बेल ।

सत्यभामा–संज्ञा स्त्री० [सं०] श्रीकृष्ण की आठ पट रानियों में से एक जो सत्राजित की कन्या थीं । इन्हीं के लिये कृष्ण पारिजात लाने गए थे और इंद्र से लड़े थे ।

सत्ययुग–संज्ञा पुं० [सं०] पौराणिक काल गणना के अनुसार चार युगों में से पहला युग । कृत युग ।

विशेष—यह युग सब से उत्तम माना जाता है । इस युग में पुण्य और सत्यता की अधिकता रहती है । यह १७२८००० वर्ष का कहा गया है । इसका आरंभ वैशाख शुक्ल तृतीया से माना गया है ।

सत्ययुगाद्या–संज्ञा स्त्री० [सं०] वैशाख शुक्ल तृतीया जिस दिन से सत्ययुग का आरंभ माना गया है ।

सत्ययुगी–वि० [सं० सत्ययुग] (१) सत्ययुग का । सत्ययुग संबंधी । (२) बहुत प्राचीन । (३) बहुत सीधा और सज्जन । सच्चरित्र । धर्मात्मा । कलियुगी का उलटा ।

सत्य लोक–संज्ञा पुं० [सं०] ऊपर के सात लोकों में से सब से ऊपर का लोक जहाँ ब्रह्मा रहते हैं ।

सत्य वचन–संज्ञा पुं० [सं०] (१) सच कहना । यथार्थ कथन । (२) प्रतिज्ञा । कौल । वादा ।

सत्यवती–वि० स्त्री० [सं०] (१) सच बोलनेवाली । (२) सत्य या धर्म का पालन करनेवाली ।

संज्ञा स्त्री० (१) मत्स्यगंधा नामक धीवर-कन्या जिसके गर्भ से कुमारी अवस्था में ही पराशर के संयोग से कृष्ण द्वैपायन या व्यास की उत्पत्ति हुई थी । (२) शमी वृक्ष । (३) गाधि की पुत्री और ऋचीक की पत्नी जिसके कौशिकी नदी हो जाने की कथा प्रसिद्ध है ।

सत्यवती-सुत–संज्ञा पुं० [सं०] सत्यवती के पुत्र वेदव्यास ।

सत्यवसु–संज्ञा पुं० [सं०] विश्वेदेवा में से एक ।

सत्यवाच्–संज्ञा पुं० [सं०] (१) सत्य वचन । (२) वादा । करार । प्रतिज्ञा । (३) एक प्रकार का मंत्रास्त्र । (४) काक । कौआ ।

सत्यवाद–संज्ञा पुं० [सं०] [वि० सत्यवादी] (१) सच बोलना । सच कहना । (२) धर्म्म पर दृढ़ रहना । ईमान पर रहना ।

सत्यवादिनी–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) दाक्षायिणी का एक नाम । (२) बोधिद्रुम की एक देवी ।

सत्यवादी-वि० [सं० सत्यवादिन्] [स्त्री० सत्यवादिनी] (१) सत्य कहनेवाला। सच बोलनेवाला। (२) प्रतिज्ञा पर दृढ़ रहनेवाला। वचन को पूरा करनेवाला। (३) धर्म पर दृढ़ रहनेवाला। धर्म्म कभी न छोड़नेवाला। जैसे,—राजा हरिश्चंद्र बड़े सत्यवादी थे।

सत्यवान्-वि० [सं० सत्यवत्] [स्त्री० सत्यवती] (१) सच बोलनेवाला। (२) प्रतिज्ञा पर दृढ़ रहनेवाला।

संज्ञा पुं० शाल्व देश के राजा द्युमत्सेन के पुत्र का नाम जिसकी पत्नी सावित्री के पातिव्रत्य के अलौकिक प्रभाव की कथा पुराणों में प्रसिद्ध है।

विशेष—इनके पिता अंधे हो गए थे और गद्दी से उतार दिए गए थे। वे उदास होकर पुत्र और पत्नी सहित वन में रहते थे। मद्र देश के राजा घूमते घूमते उस वन में आए और उन्होंने अपनी पुत्री का विवाह सत्यवान् के साथ कर दिया। पर सत्यवान् अल्पायु थे, इस से वे शीघ्र मर गए। सावित्री ने अपने पातिव्रत्य के बल से अपने पति को जिला दिया।

सत्यव्रत-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सत्य बोलने की प्रतिज्ञा या नियम। (२) धृतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम।

वि० जिसने सत्य बोलने की प्रतिज्ञा की हो। सत्य का नियम पालन करनेवाला।

सत्यशील-वि० [सं०] [स्त्री० सत्यशीला] सत्य का पालन करनेवाला। सच्चा।

सत्यसंकल्प-वि० [सं०] जो विचारे हुए कार्य्य को पूरा करे। दृढ़ संकल्प।

सत्यसंध-वि० [सं०] [स्त्री० सत्यसंधा] सत्य प्रतिज्ञ। वचन को पूरा करनेवाला। उ०—सत्यसंध दृढ़व्रत रघुराई।—तुलसी।

संज्ञा पुं० (१) रामचंद्र का एक नाम। (२) भरत का एक नाम। (३) जनमेजय का एक नाम। (४) स्कंद का एक अनुचर। (५) धृतराष्ट्र का एक पुत्र।

सत्यसंधा-संज्ञा स्त्री० [सं०] द्रौपदी का एक नाम।

सत्या-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सचाई। सत्यता। (२) दुर्गा का एक नाम। (३) सीता का एक नाम। (४) व्यास की माता सरस्वती।

सत्यानास-संज्ञा पुं० [सं० सत्ता + नाश] सर्वनाश। मटियामेट। ध्वंस। बरबादी।

सत्यानासी-वि० [हिं० सत्यानास + ई (प्रत्य०)], स्त्री० सत्यानासिन] (१) सत्यानास करनेवाला। चौपट करनेवाला। (२) अभागा। बदकिस्मत।

संज्ञा स्त्री० एक कँटीला पौधा जो प्रायः खँड़हरों और उजाड़ स्थानों पर जमता है। घमोई। भड़भाँड़। स्वर्णक्षीरी। पीतपुष्पा।

विशेष—इसके बीच में गोभी के पौधे की तरह एक कांड ऊपर को गया होता है और चारों ओर नीलापन लिए हरे कटावदार पत्ते निकलते हैं जिन पर चारों ओर विषैले काँटे होते हैं। इस पौधे को काटने या दबाने से एक प्रकार का पीला दूध या रस निकलता है। फूल पीला, कटोरे के आकार का और देखने में सुंदर, पर गंधहीन होता है। फूल झड़ जाने पर गुच्छों में फल या बीजकोश लगते हैं जिनमें राई के से काले काले बीज भरे रहते हैं। इन बीजों से एक प्रकार का बहुत तीक्ष्ण तेल निकलता है जो खुजली पर लगाया जाता है। वैद्यक में सत्यानासी कड़वी, दस्तावर, शीतल तथा कृमि रोग, खुजली और विष को दूर करनेवाली मानी गई है।

सत्यानृत-संज्ञा पुं० [सं०] (१) झूठ सच का मेल। (२) वाणिज्य। व्यापार। दूकानदारी।

सत्यापन-संज्ञा पुं० [सं०] असलियत की जाँच। सत्य होने का निश्चय।

सत्यापना-संज्ञा स्त्री० [सं०] किसी सौदे या इक़रार का पूरा होना।

सत्याषाढ़ी-संज्ञा स्त्री० [सं०] कृष्ण यजुर्वेद की एक शाखा का नाम।

सत्योत्तर-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सत्य बात का स्वीकार। अपराध आदि का स्वीकार। इक़बाल। (स्मृति)

सत्योपपावन-संज्ञा पुं० [सं०] शरदंडा नदी के पश्चिम तट पर स्थित एक पवित्र फलप्रद वृक्ष। (पुराण)

सत्रंग-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का पौधा।

सत्र-संज्ञा पुं० [सं०] (१) यज्ञ। (२) एक सोमयाग जो १३ या १०० दिनों में पूरा होता था। (३) परिवेषण। गोपन। (४) वह स्थान जहाँ मनुष्य छिप सकता हो। (५) कोठरी। घर। मकान। (६) धोखा। भ्रांति। (७) धन। (८) तालाब। (९) जंगल। (१०) वह स्थान जहाँ असहायों को भोजन बाँटा जाता है। छेत्र। सदावर्त्त। जैसे,—अन्न सत्र।

सत्रह-वि० दे० "सत्तरह"।

सत्राजित-संज्ञा पुं० [सं०] एक यादव जिसकी कन्या सत्यभामा श्रीकृष्ण को ब्याही थी।

विशेष—इसने सूर्य्य की तपस्या करके दिव्य स्यमंतक मणि प्राप्त की थी। उसके खो जाने पर इसने श्रीकृष्ण को चोरी लगाई। जब श्रीकृष्ण ने वह मणि ढूँढ़कर ला दी, तब सत्राजित बहुत लज्जित हुआ और उसने श्रीकृष्ण को अपनी कन्या सत्यभामा ब्याह दी।

सत्राजिती-संज्ञा स्त्री० [सं०] सत्राजित की कन्या सत्यभामा का एक ना"

सत्रि-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बहुत यज्ञ करनेवाला। (२) हाथी। (३) मेघ। बादल।

सत्री-संज्ञा पुं० [सं० सत्रिन्] (१) यज्ञ करनेवाला। (२) किसी दूसरे राजा के राज्य में अपने राजा या राज्य की ओर से रहनेवाला राजदूत। एलची।

सत्रुक्ष-संज्ञा पुं० दे० "शत्रु"।

सत्रुघन, सत्रुहन‡-संज्ञा पुं० दे० "शत्रुघ्न"।

सत्व-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सत्ता। होने का भाव। अस्तित्व। हस्ती। (२) सार। तत्व। मूल वस्तु। असलियत। (३) अंतः प्रकृति। ख्वासियत। विशेषता। (४) चित्त की प्रवृत्ति। (५) आत्म तत्व। चैतन्य। चित्तत्व। (६) प्राण। जीव तत्व। (७) सांख्य के अनुसार प्रकृति के तीन गुणों में से एक जो सब में उत्तम है और जिसके लक्षण ज्ञान, शांति, शुद्धता आदि हैं।

विशेष—इस गुण के कारण अच्छे कर्म्म में प्रवृत्ति, विवेक आदि का होना माना गया है।

(८) प्राणी। जीवधारी। (९) गर्भ। हमल। (१०) भूत। प्रेत। (११) धृतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम। (१२) दृढ़ता। धीरता। साहस। शक्ति। दम।

सत्वक-संज्ञा पुं० [सं०] मृत मनुष्य की जीवात्मा। प्रेत।

सत्वगुण-संज्ञा पुं० [सं०] अच्छे कर्म्मों की ओर प्रवृत्त करनेवाला गुण। साधु और विवेकशील प्रकृति। वि० दे० "सत्व"।

सत्वगुणी-वि० [सं० सत्वगुणिन्] साधु और विवेकी। उत्तम प्रकृति का।

सत्वधाम-संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु का एक नाम।

सत्वप्रधान-वि० [सं०] जिसकी प्रकृति में सत्वगुण की अधिकता या प्रधानता हो।

सत्वभारत-संज्ञा पुं० [सं०] व्यास का एक नाम।

सत्वर-अव्य० [सं०] शीघ्र। जल्द। तुरंत। झटपट।

सत्वलक्षणा-वि० स्त्री० [सं०] जिसमें गर्भ के लक्षण हों। गर्भवती। हामिला।

सत्ववती-वि० [सं०] (१) गर्भवती। (२) सत्वगुणवाली।

संज्ञा स्त्री० एक तांत्रिक देवी। (बौद्ध)

सत्ववान्-वि० [सं० सत्ववत्] [स्त्री० सत्ववती] (१) प्राण-युक्त। (२) दृढ़तायुक्त। दृढ़। (३) धीर। साहसी।

सत्वशाली-वि० [सं० सत्वशालिन्] [स्त्री० सत्वशालिनी] दृढ़तायुक्त। साहसी। धीर। दमवाला।

सत्वशील-वि० [सं०] सात्विक प्रकृति का। अच्छी प्रकृति का। सदाचारी। धर्मात्मा।

सत्वस्थ-वि० [सं०] (१) अपनी प्रकृति में स्थित। (२) दृढ़। अविचलित। धीर। (३) सशक्त। (४) प्राणयुक्त।

सत्वोद्रेक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) उत्तम प्रकृति की अधिकता या उमंग। (२) साहस। उमंग। उत्साह।

सत्संग-संज्ञा पुं० [सं०] साधुओं या सज्जनों के साथ उठना बैठना। अच्छा साथ। भली संगत। अच्छी सोहबत।

सत्संगति-संज्ञा स्त्री० दे० "सत्संग"। उ०—सत्संगति-महिमा नहिं गोई।—तुलसी।

सत्संगी-वि० [सं० सत्संगिन्] [स्त्री० सत्संगिनी] (१) सत्संग करनेवाला। अच्छी सोहबत में रहनेवाला। (२) मेल जोल रखनेवाला। लोगों के साथ बात चीत आदि का व्यवहार रखनेवाला। जैसे,—वे बड़े सत्संगी आदमी हैं।

सत्समागम-संज्ञा पुं० [सं०] भले आदमियों का संसर्ग।

सत्सार-संज्ञा पुं० [सं०] (१) चित्रकार। चितेरा। (२) कवि। (३) एक प्रकार का पौधा।

सथरक्ष-संज्ञा स्त्री० [सं० स्थल] पृथ्वी। भूमि।

सथरी‡-संज्ञा स्त्री० दे० "साथरी"।

सथिया-संज्ञा पुं० [सं० स्वस्तिक, प्रा० सत्थिअ] (१) एक प्रकार का मंगल-सूचक या सिद्धिदायक चिह्न जो कलश, दीवार आदि पर बनाते हैं और जो समकोण पर काटती हुई दो रेखाओं के रूप में होता है। स्वस्तिक चिह्न। 卐 उ०—द्वार बुहारत अष्ट सिद्धि, कौरेन सथिया चीतत नवनिधि।—सूर। (२) देवता आदि के पदतल का एक चिह्न। (३) फोड़े आदि की चीरफाड़ करनेवाला। जर्राह।

सदंजन-संज्ञा पुं० [सं०] पीतल से निकलनेवाला एक प्रकार का अंजन।

सदंशक-संज्ञा पुं० [सं०] केकड़ा।

सद-अव्य० [सं० सद्यः] तत्क्षण। तुरंत। तत्काल।

वि० (१) ताजा। (२) नया। नवीन। हाल का।

संज्ञा स्त्री० [सं० सत्व] प्रकृति। आदत। टेव। उ०—सदन सदन के फिरन की सद न छुटै हरि राय। रुचै तितै विहरत फिरौ, कत विहरत उर आय।—बिहारी।

संज्ञा पुं० [सं० सदस्] (१) सभा। समिति। मंडली। (२) एक छोटा मंडप जो यज्ञशाला में प्राचीन वंश के पूर्व बनाया जाता था।

[अ० सदा=आवाज] गड़रियों का एक प्रकार का गीत। (पंजाब)

सदक-संज्ञा पुं० [सं०] भूसी सहित अनाज।

संज्ञा पुं० दे० "सिदक"।

सद्का-संज्ञा पुं० [अ० सद्कः] (१) वह वस्तु जो ईश्वर के नाम पर दी जाय। दान। (२) वह वस्तु जो किसी के सिर पर से उतार कर रास्ते में रखी जाय। उतारा। ढतारा।

क्रि० प्र०—उतारना।—करना।

(३) निछावर।

मुहा०—सदके जाऊँ = बलि जाऊँ। (मुसल०)

सदन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) रहने का स्थान। घर। मकान। (२) विराम। स्थिरता। (३) शैथिल्य। थकावट। (४) एक प्रसिद्ध कसाई का नाम जो बड़ा भगवद्भक्त हो गया है।

सदना†-क्रि० अ० [सं० सदन = गिराना] (१) छेद में से रसना। चूना। (२) नाव के छेदों में से पानी आना।

सदबर्ग-संज्ञा पुं० [फा०] हजारा गेंदा।

सदमा-संज्ञा पुं० [अ० सद्मः] (१) आघात। धक्का। चोट। (२) मानसिक आघात। रंज। दुःख।

क्रि० प्र०—पहुँचना।—लगना।—उठाना।

(३) बड़ी हानि। भारी नुकसान।

क्रि० प्र०—उठाना।

सदय-वि० [सं०] दयायुक्त। दयालु।

सदर-वि० [अ०] खास। प्रधान। मुख्य। जैसे,—सदर अमीन। सदर दरवाज़ा।

संज्ञा पुं० वह स्थान जहाँ कोई बड़ी कचहरी हो या बड़ा हाकिम रहता हो। केंद्रस्थल।

वि० [सं०] भय युक्त। डरा हुआ।

सदर आला-संज्ञा पुं० [अ०] अदालत का वह हाकिम जो जज के नीचे हो। छोटा जज।

सदर दरवाज़ा-संज्ञा पुं० [अ०+फा०] खास दरवाजा। सामने का द्वार। फाटक।

सदरनशीन-संज्ञा पुं० [अ० + फा०] किसी सभा का सभापति। मीर मजलिस।

सदर बाजार-संज्ञा पुं० [अ० + फा०] (१) बड़ा बाजार। खास बाजार। (२) छावनी का बाजार।

सदर बोर्ड-संज्ञा पुं० [अ० सदर + अं० बोर्ड] माल की सब से बड़ी अदालत।

सदरी-संज्ञा स्त्री० [अ०] बिना आस्तीन की एक प्रकार की कुरती या बंडी जो और कपड़ों के ऊपर पहनी जाती है। सीनाबंद।

विशेष—इसका चलन अरब में बहुत अधिक है। मुसलमानी मत के साथ इसका प्रचार अफ़गानिस्तान, तुर्किस्तान और हिंदुस्तान में भी हुआ।

सदर्थ-संज्ञा पुं० [सं०] (१) असल बात। मुख्य विषय। साध्य विषय। (२) धनाढ्य पुरुष।

सदर्थना‡-क्रि० स० [सं० सदर्थ या समर्थन] समर्थन करना। पुष्टि करना। तसदीक़ करना।

सदश-वि० [सं०] जिसमें पाड़ या किनारा हो। किनारेदार। हाशियेदार।

सदस्-संज्ञा पुं० [सं०] (१) रहने का स्थान। मकान। घर। (२) सभा। समाज। मंडली। (३) यज्ञशाला में एक छोटा मंडप जो प्राचीन वंश के पूर्व बनाया जाता था।

सदसत्-वि० [सं०] (१) सच और झूठ। (२) किसी वस्तु के होने और न होने का भाव। (३) बुरा और भला। अच्छा और खराब।

सदसद्विवेक-संज्ञा पुं० [सं०] अच्छे और बुरे की पहचान। भले बुरे का ज्ञान।

सदसि-संज्ञा पुं० दे० "सदस्"।

सदस्य-संज्ञा पुं० [सं०] (१) यज्ञ करनेवाला। याजक। (२) किसी सभा या समाज में सम्मिलित व्यक्ति। सभासद। मेंबर।

सदहा-संज्ञा पुं० [सं०] (१) यज्ञ करनेवाला। याजक। (२) सभासद। किसी सभा या समाज में सम्मिलित व्यक्ति। मेंबर।

वि० [फा०] सैकड़ों।

संज्ञा पुं० [देश०] अनाज लादने की बड़ी बैल गाड़ी।

सदा-अव्य० [सं०] नित्य। हमेशा। सर्वदा। (२) निरंतर। लगातार। बराबर।

संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) गूँज। प्रतिध्वनि। (२) ध्वनि। आवाज़। शब्द। (३) पुकार।

मुहा०—सदा देना या लगाना = फ़कीर का भीख पाने के लिये पुकारना।

सदाक़त-संज्ञा स्त्री० [अ०] सचाई। सत्यता।

सदाकुसुम-संज्ञा पुं० [सं०] धव। धातकी।

सदागति-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वायु। पवन। (२) वात। (आयुर्वेद) (३) सूर्य्य। (४) विभु। ब्रह्म।

सदागतिशत्रु-संज्ञा पुं० [सं०] एरंड। अंडी का पेड़।

सदागम-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सज्जन का आगमन। (२) सत् शास्त्र। अच्छा सिद्धांत।

सदाचरण-संज्ञा पुं० [सं०] अच्छा चाल चलन। सात्विक व्यवहार।

सदाचार-संज्ञा पुं० [सं०] (१) अच्छा आचरण। सात्विक व्यवहार। सद्वृत्ति। (२) शिष्ट व्यवहार। भलमनसाहत। (३) रीति। रवाज।

सदाचारी-संज्ञा पुं० [सं० सदाचारिन्] [स्त्री० सदाचारिणी] (१) अच्छे आचरणवाला पुरुष। अच्छे चाल चलन का आदमी। सद्वृत्तिशील। (२) धर्मात्मा। पुण्यात्मा।

सदातन-संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु।

सदादान-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह हाथी जिसे सदा मद बहता हो। (२) ऐरावत। (३) गणेश।

सदानंद-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जो सदा आनंद में रहे। (२) शिव। (३) परमेश्वर। (४) विष्णु।

सदानर्त्त-वि० [सं०] जो बराबर नाचता हो।

संज्ञा पुं० ममोला। खंजन।
सदानीरा-संज्ञा स्त्री० [सं०] करतोया नदी।
सदानोपा-संज्ञा स्त्री० [सं०] पुलानी। पूलापर्णी।
सदापुर-संज्ञा पुं० [सं०] केवटी मोथा। कैवर्त्त मुस्तक।
सदापुष्प-संज्ञा पुं० [सं०] (१) नारिकेल। नारियल। (२) आक। सफ़ेद मदार। (३) कुंद का फूल।
सदापुष्पी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) आक। (२) लाल आक। (३) कपास। (४) मल्लिका। एक प्रकार की चमेली।
सदाप्रसून-संज्ञा पुं० [सं०] (१) रोहितक वृक्ष। (२) आक। मदार। (३) कुंद का पौधा।
सदाफरा-वि० दे० "सदाफल"।
सदाफल-वि० [सं०] जो सब दिन फले। सदा फलता रहनेवाला।
संज्ञा पुं० (१) गूलर। उमर। (२) श्रीफल। बेल। (३) नारियल। (४) कटहल। (५) एक प्रकार का नींबू। उ०—फरे सदाफर अउर जँभीरी।—जायसी।
सदाफला, सदाफली-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) जपा पुष्प। गुड़हर। देवीफूल। (२) एक प्रकार का बैंगन।
सदाबरत-संज्ञा पुं० दे० "सदाव्रत"।
सदावर्त-संज्ञा पुं० [सं० सदाव्रत] (१) नित्य भूखों और दीनों को भोजन बाँटने की क्रिया या नियम। रोज़ की ख़ैरात।
क्रि० प्र०—चलना।—बँटना।
(२) वह अन्न या भोजन जो नियम से नित्य ग़रीबों को बाँटा जाय। ख़ैरात।
क्रि० प्र०—बँटना।—बाँटना।
(३) नित्य होनेवाला दान।
सदावर्ती-संज्ञा पुं० [हिं० सदावर्त] (१) सदावर्त बाँटनेवाला। भूखों को नित्य अन्न बाँटनेवाला। (२) बड़ा दानी। बहुत उदार।
सदाबहार-वि० [हिं० सदा + फ़ा० बहार = फूल पत्ती का समय] (१) जो सदा फूले। (२) जो सदा हरा रहे। जिसका पतझड़ न हो। जिसमें बराबर नए पत्ते निकलते और पुराने झड़ते रहें।
विशेष—वृक्ष दो प्रकार के होते हैं। एक तो पतझड़वाले, अर्थात् जिनकी सब पत्तियाँ शिशिर ऋतु में झड़ जाती और वसंत में सब पत्तियाँ नई निकलती हैं। दूसरे सदाबहार अर्थात् वे जिनके पत्ते झड़ने की नियत ऋतु नहीं होती और जिनमें सदा हरी पत्तियाँ रहती हैं।
संज्ञा पुं० एक प्रकार के फूल का नाम।
सदाभद्रा-संज्ञा स्त्री० [सं०] गँभारी का पेड़।
सदामंडलपत्रक-संज्ञा पुं० [सं०] सफ़ेद गदहपूरना। श्वेत पुनर्नवा।
सदामत्त-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार के क्षप।
सदामांसी-संज्ञा स्त्री० [सं०] मांस रोहिणी।
सदायोगी-संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु।
सदारुह-संज्ञा पुं० [सं०] बेल। बिल्व वृक्ष।
सदाशय-वि० [सं०] जिसका भाव उदार और श्रेष्ठ हो। उच्च विचार का। अच्छी नीयत का। सज्जन। भलामानस।
सदाशिव-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सदा कल्याणकारी। सदा कृपालु। (२) सदा शुभ और मंगल। (३) महादेव का एक नाम।
सदासुहागिन-वि० स्त्री० [हिं० सदा + सुहागिन] जो सदा सौभाग्यवती रहे। जो कभी पतिहीन न हो।
संज्ञा स्त्री० (१) वेश्या। रंडी। (विनोद) (२) सिंदूरपुष्पी का पौधा। (३) एक प्रकार की छोटी चिड़िया। (४) एक प्रकार के मुसलमान फकीर जो स्त्रियों के वेश में घूमते हैं।
सदिया-संज्ञा स्त्री० [फ़ा० सादः = कोरा] लाल पक्षी का एक भेद जिसका शरीर भूरे रंग का होता है। बिना चित्ती की मुनियाँ।
सदी-संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) सौ वर्षों का समूह। शताब्दी। (२) किसी विशेष सौ वर्ष के बीच का काल। जैसे, १९ वीं सदी। (३) सैकड़ा। जैसे,—५) फ़ी सदी सूद।
सदुपदेश-संज्ञा पुं० [सं०] (१) अच्छा उपदेश। उत्तम शिक्षा। (२) अच्छी सलाह।
सदृक-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की मिठाई। (सुश्रुत)
सदृश-वि० [सं०] (१) जो देखने में एक ही सा हो। एक रूप रंग का। समान। अनुरूप। (२) तुल्य। बराबर। (३) उपयुक्त। मुनासिब। योग्य।
सदृशता-संज्ञा स्त्री० [सं०] अनुरूपता। समानता। तुल्यता।
सदेह-क्रि० वि० [सं०] इसी शरीर से। बिना शरीर त्याग किए। जैसे, त्रिशंकु सदेह स्वर्ग जाना चाहते थे।
सदैव-अव्य० [सं०] सदा ही। सर्वदा। हमेशा।
सदोष-वि० [सं०] (१) दोषयुक्त। जिसमें ऐब हो। (२) अपराधी। दोषी।
सद्गति-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) उत्तम गति। अच्छी अवस्था। भली हालत। (२) मरण के उपरांत उत्तम लोक की प्राप्ति। (३) अच्छा चाल चलन।
सद्गुण-संज्ञा पुं० [सं०] अच्छा गुण। अच्छी सिफ़त। उ०—जिमि सद्गुण सज्जन पहँ आवा।—तुलसी।
सद्गुणी-संज्ञा पुं० [सं० सद्गुणिन्] अच्छे गुणवाला।
सद्गुरु-संज्ञा पुं० [सं०] (१) अच्छा गुरु। उत्तम शिक्षक या आचार्य। (२) वह धर्म शिक्षक या मंत्रदाता जिसके उपदेश से संसार के बंधनों से छुटकारा और ईश्वर की प्राप्ति हो।
सद्ग्रंथ-संज्ञा पुं० [सं० सत् + ग्रंथ] अच्छा ग्रंथ। सत्शास्त्र...

वाली पुलक। उ०—जिमि पाखंड-विवाद तें लुप्त होहिं सद्ग्रंथ।—तुलसी।

सद्दा†-संज्ञा पुं० [सं० शब्द, प्रा० सद्द] (१) शब्द। ध्वनि।

अव्य० [सं० सद्य] तुरंत। फौरन। तत्काल।

सद्भाव-संज्ञा पुं० [सं०] (१) अच्छा भाव। प्रेम और हित का भाव। शुभचिंतना की वृत्ति। (२) मेलजोल। मैत्री। (३) निष्कपट भाव। सच्चा भाव। अच्छी नीयत। (४) होने का भाव। अस्तित्व। हस्ती।

सद्म-संज्ञा पुं० [सं० सद्मन्] (१) घर। मकान। रहने का स्थान। (२) बैठनेवाला। (३) दर्शक। (४) संग्राम। युद्ध। (५) पृथ्वी और आकाश।

सद्मिनी-संज्ञा स्त्री० [सं० सद्म] (१) हवेली। बड़ा मकान। (२) प्रासाद। महल।

सद्य-अव्य० [सं०] (१) आज ही। (२) इसी समय। अभी। (३) तुरंत। शीघ्र। झट। तत्काल।

संज्ञा पुं० शिव का एक नाम। सद्योजात।

सद्यः-अव्य० दे० "सद्य"।

सद्यःपाक-वि० [सं०] जिसका फल तुरंत मिले। जिसके परिणाम में विलंब न हो।

संज्ञा पुं० रात के चौथे पहर का स्वप्न (जो लोगों के विश्वास के अनुसार ठीक घटा करता है)।

सद्यःप्रसूत-वि० [सं०] तुरंत का उत्पन्न।

सद्यःप्रसूता-वि० स्त्री० [सं०] जिसे अभी बच्चा हुआ हो।

सद्यःशोथा-संज्ञा स्त्री० [सं०] कपिकच्छु। केवाँच। (केवाँच छू जाने से तुरंत खुजली और सूजन होती है।)

सद्योजात-वि० [सं०] [स्त्री० सद्योजाता] तुरंत का उत्पन्न।

संज्ञा पुं० (१) शिव का एक स्वरूप या मूर्त्ति। (२) तुरंत का उत्पन्न बछड़ा।

सद्वती-संज्ञा स्त्री० [सं०] पुलस्त्य की कन्या और अग्नि की स्त्री।

सद्वृत्ति-संज्ञा स्त्री० [सं०] अच्छा चालचलन। उत्तम व्यवहार।

सधना-क्रि० अ० [हिं० साधना] (१) सिद्ध होना। पूरा होना। सरना। काम होना। जैसे,—काम सधना। (२) काम चलना। मतलब निकलना। (३) अभ्यस्त होना। हाथ बैठना। मँजना। मश्क होना। जैसे,—अभी हाथ सधा नहीं है, इसी से देर लगती है। (४) प्रयोजन-सिद्धि के अनुकूल होना। गौं पर चढ़ना। जैसे,—बिना कुछ रुपया दिए वह आदमी नहीं सधेगा। (५) लक्ष्य ठीक होना। निशाना ठीक होना। (६) घोड़े आदि का शिक्षित होना। निकलना। (७) ठीक नपना। नापा जाना। जैसे,—अँगरखा सधना।

सधर-संज्ञा पुं० [सं०] ऊपर का ओंठ।

सधर्म-वि० [सं०] (१) समान गुण या क्रियावाला। एक ही प्रकार का। (२) तुल्य। समान।

सधवा-संज्ञा स्त्री० [हिं० विधवा] वह स्त्री जिसका पति जीवित हो। जो विधवा न हो। सुहागिन। सौभाग्यवती।

सधाना-क्रि० स० [हिं० सधना का प्रे०] साधने का काम दूसरे से कराना। दूसरे को साधने में प्रवृत्त करना।

सधावर-संज्ञा पुं० [हिं० सधवा] वह उपहार जो गर्भवती स्त्री को गर्भ के सातवें महीने दिया जाता है।

सधूमवर्णा-संज्ञा स्त्री० [सं०] अग्नि की सात जिह्वाओं में से एक जिह्वा।

सधोर†-संज्ञा पुं० दे० "सधावर"।

सध्रीची-संज्ञा स्त्री० [सं० सध्रीचीन = समान उद्देश्यवाला] सखी। (डिं०)

सनंका†-संज्ञा पुं० [अनु० सन् सन्] सन्नाटा। स्तब्धता। नीरवता।

सनंदन-संज्ञा पुं० [सं०] ब्रह्मा के चार मानस पुत्रों में से एक मानसपुत्र।

विशेष—ये कपिल के भी पूर्व सांख्य मत के प्रवर्त्तक कहे गए हैं।

यौ०—सनक सनंदन।

सन्-संज्ञा पुं० [अ०] (१) वर्ष। साल। संवत्सर। (२) कोई विशेष वर्ष। संवत्। जैसे,—सन् ईसवी, सन् हिजरी।

सन-संज्ञा पुं० [सं० शण] बोया जानेवाला एक प्रसिद्ध पौधा जिसकी छाल के रेशे से मजबूत रस्सियाँ आदि बनती हैं।

विशेष—यह तीन साढ़े तीन हाथ ऊँचा होता है और इसका कांड सीधी छड़ी की तरह दूर तक ऊपर जाता है। फूल पीले रंग के होते हैं। कुवारी फसल के साथ यह खेतों में बोया जाता है और भादों कुआर में तैयार हो जाता है। रेशेदार छिलका अलग करने के लिये इसके डंठल पानी में डालकर सड़ाए जाते हैं।

‡ प्रत्य० [सं० संग] अवधी में करण-कारक का चिह्न से। साथ।

संज्ञा स्त्री० [अनु०] वेग से निकल जाने का शब्द। जैसे,—तीर सन से निकल गया।

संज्ञा पुं० [सं०] ब्रह्मा के चार मानस पुत्रों में से एक मानसपुत्र।

वि० [अनु० सुन मन] (१) सन्नाटे में आया हुआ। स्तब्ध। ठक। (२) मौन। चुप।

मुहा०—जी सन होना = चित्त स्तब्ध होना। घबरा जाना।

सनई-संज्ञा स्त्री० [हिं० सन] छोटी जाति का सन।

सनक-संज्ञा स्त्री० [सं० शंक = खटका] (१) किसी बात की धुन। मन की झोंक। वेग के साथ मन की प्रवृत्ति।

मुहा०—सनक चढ़ना या सवार होना = धुन होना।

(२) उन्माद की सी वृत्ति। खब्त। जुनून।

संज्ञा पुं० [सं०] ब्रह्मा के चार मानस पुत्रों में से एक।

विशेष—ये परम ज्ञानी और विष्णु के सभासद माने गए हैं। शेष के नाम हैं—सन, सनत्कुमार और सनंदन।
यौ०—सनकसनंदन।

सनकना–क्रि० अ० [हिं० सनक] पागल हो जाना। पगलाना। झक्की हो जाना।
क्रि० अ० [अनु० सनसन] वेग से हवा में जाना या फेंका जाना। जैसे,—तीर सनकना, गोले सनकना।

सनकाना–क्रि० स० [हिं० सनकना का प्रे०] किसी को सनकने में प्रवृत्त करना।

सनकारना॥–क्रि० स० [हिं० सैन+करना] (१) संकेत करना। इशारा करना। (२) इशारे से बुलाना। (३) किसी काम के लिये इशारा करना। उ०—तुलसी सभीत-पाल सुमिरे कृपालु राम समय सुकरुना सराहि सनकार दी।—तुलसी।
संयो० क्रि०—देना।

सनकियाना–क्रि० स० [सं० संकेतन, हिं० सैन] इशारा करना। संकेत करना।
क्रि० अ० दे० "सनकना"।
क्रि० स० दे० "सनकाना"।

सनकुरंगी–संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का बड़ा पेड़।
विशेष—इस के हीर की लकड़ी बहुत मज़बूत और स्याही लिए लाल होती है। इसकी कुर्सियाँ आदि बनती हैं। यह वृक्ष तिनेवली और ट्रावनकोर में अधिक पाया जाता है।

सनत्–संज्ञा पुं० [सं०] ब्रह्मा।

सनत्कुमार–संज्ञा पुं० [सं०] (१) ब्रह्मा के चार मानस पुत्रों में से एक। वैधात्र।
विशेष—ये सब से पहले प्रजापति कहे गए हैं।
(२) बारह सार्वभौमों या चक्रवर्त्तियों में से एक। (जैन)

सनत्सुजात–संज्ञा पुं० [सं०] ब्रह्मा के सात मानस पुत्रों में से एक मानसपुत्र।

सनद्रा–संज्ञा पुं० [हिं० सन] वह वृक्ष जिस पर रेशम के कीड़े पाले जाते हैं। जैसे,—शहतूत, बेर।

सनद्–संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) तकिया गाह। (२) भरोसा करने की वस्तु। (३) प्रमाण। सबूत। दलील। (४) प्रमाणपत्र। सर्टिफ़िकेट।

सनदयाफ़्ता–वि० [अ० सनद+फ़ा० याफ़्तः] (१) जिसे किसी बात की सनद मिली हो। प्रमाणपत्र-प्राप्त। (२) किसी परीक्षा में उत्तीर्ण।

सनना–क्रि० अ० [सं० संनत् = झिम कर मिलना] (१) जल के योग से किसी चूर्ण के कणों का एक में मिलना या लगना। गीला होकर लेई के रूप में मिलना। जैसे,—आटा सनना। (२) गीली वस्तु के साथ मिलना। आप्लावित होना। ओत प्रोत होना। जैसे,—कपड़ा कीचड़ में सन गया। (३) लिप्त होना। पगना। एक में मिलना। लीन होना। उ०—बोलत बैन सनेह सने।—सूर।
संयो० क्रि०—जाना।

सननी–संज्ञा स्त्री० [हिं० सनना] पानी में भिगाया हुआ भूसा या सूखा चारा जो चौपायों को दिया जाता है। सानी।

सनम–संज्ञा पुं० [अ०] प्रिय। प्रियतम। प्यारा।

सनमान–संज्ञा पुं० दे० "सम्मान"।

सनमानना–॥ क्रि० स० [सं० सम्मान+ना (प्रत्य०)] ख़ातिर करना। आदर करना। सत्कार करना। उ०—नृप मुनि आगे आइ पूजि सनमानेउ।—तुलसी।

सनमुख–॥ अव्य० दे० "सम्मुख"।

सनसनाना–क्रि० अ० [अनु० सन सन] (१) हवा में झोंके से निकलने या जाने का शब्द होना। (२) खौलते हुए पानी का शब्द होना। (३) हवा बहने का शब्द होना।

सनसनाहट–संज्ञा पुं० [हिं० सनसनाना] (१) हवा बहने का शब्द। (२) हवा में किसी वस्तु के वेग से निकलने का शब्द। (३) खौलते हुए पानी का शब्द। (४) सनसनी।

सनसनी–संज्ञा स्त्री० [अनु० सन सन] (१) संवेदन सूत्रों में एक प्रकार का स्पंदन। झनझनाहट। झुनझुनी। जैसे,—दवा पीते ही शरीर में सनसनी सी मालूम हुई। (२) अत्यंत भय, आश्चर्य आदि के कारण उत्पन्न स्तब्धता। ठक रह जाने का भाव। (३) उद्वेग। घबराहट। खलबली। क्षोभ।
क्रि० प्र०—फैलना।
(४) सन्नाटा। नीरवता।

सनहकी–संज्ञा स्त्री० [अ० सहनक] मिट्टी का एक बरतन जो बहुधा मुसल्मान काम में लाते हैं।

सनहाना–संज्ञा पुं० [देश०] वह नाँद या बड़ा बरतन जिसमें भरे हुए खटाई मिले जल में धोने के पूर्व बरतन छूटने के लिये डाले जाते हैं।

सना–संज्ञा स्त्री० दे० "सनाय"।

सनाढ्य–संज्ञा पुं० [सं० सन = दक्षिणा + आढ्य = संपन्न] ब्राह्मणों की एक शाखा जो गौड़ों के अंतर्गत कही जाती है।

सनातन–संज्ञा पुं० [सं०] (१) प्राचीन काल। अत्यंत पुराना समय। अनादि काल। जैसे,—यह बात सनातन से चली आती है। (२) प्राचीन परंपरा बहुत दिनों से चला आता हुआ क्रम। (३) ब्रह्मा। (४) विष्णु। (५) वह जिसे सब श्राद्धों में भोजन कराना कर्त्तव्य हो। (६) ब्रह्मा के एक मानसपुत्र।
वि० (१) अत्यंत प्राचीन। बहुत पुराना। जिसके आदि का पता न हो। अनादि काल का। (२) जो बहुत दिनों से चला आता हो। परंपरागत। जैसे,—सनातन रीति, सनातन धर्म। (३) नित्य। सदा रहनेवाला। शाश्वत।

सनातन धर्म–संज्ञा पुं० [सं०] (१) प्राचीन धर्म। (२) परंपरागत धर्म। (३) वर्त्तमान हिंदू धर्म का वह स्वरूप जो परंपरा से चला आता हुआ माना जाता है और जिसमें पुराण,

तंत्र, बहुदेवोपासना, प्रतिमापूजन, तीर्थ माहात्म्य आदि सब समान रूप से माननीय हैं। साधारण जनता के बीच प्रच-लित हिंदू धर्म।

सनातन पुरुष–संज्ञा [सं०] विष्णु भगवान्। उ०— पुरुष सनातन की बधू क्यों न चंचला होय।—रहीम।

सनातनी–संज्ञा पुं० [सं० सनातन + ई (प्रत्य०)] (१) जो बहुत दिनों से चला आता हो। जिसकी परंपरा बहुत पुरानी हो। (२) सनातन धर्म का अनुयायी।

सनाथ–वि० [सं०] [स्त्री० सनाथा] जिसकी रक्षा करनेवाला कोई स्वामी हो। जिसके ऊपर कोई मददगार या सरपरस्त हो। उ०—हौं सनाथ ह्वैहौं सही जौ लघुतहि न भितैहौ।—तुलसी।

मुहा०—सनाथ करना = शरण में लेना। आश्रय देना। सहायक होना।

सनाभि–संज्ञा पुं० [सं०] (१) सहोदर भाई। (२) एक ही पूर्वज से उत्पन्न पुरुष। सपिंड।

सनाभ्य–संज्ञा पुं० [सं०] एक ही कुल का पुरुष। सात पीढ़ियों के भीतर एक ही वंश का मनुष्य। सपिंड।

सनाय–संज्ञा स्त्री० [अ० सनाऽ] एक पौधा जिसकी पत्तियाँ दस्ता-वर होती हैं। स्वर्णपत्री। सोनामुखी।

विशेष—इस पौधे की अधिकतर जातियाँ अरब, मिस्र, यूनान, इटली आदि पश्चिम के देशों में होती हैं। केवल एक जाति का पौधा भारतवर्ष के सिंध, पंजाब, मदरास आदि प्रांतों में थोड़ा बहुत होती है। इसकी पत्तियाँ इमली की तरह एक सींके के दोनों ओर लगती हैं। एक सींके में ५ से ८ जोड़े तक पत्तियाँ लगती हैं जो देखने में पीलापन लिए हरे रंग की होती हैं। इसमें चिपटी लंबी फलियाँ लगती हैं जो सिरे पर गोल होती हैं। इसकी पत्तियों का जुलाब हकीम और वैद्य दोनों साधारणतः दिया करते हैं। फलियों में भी रेचन गुण होता है, पर पत्तियों से कम। वैद्यक में सनाय रेचक तथा मंदाग्नि, विषम ज्वर, अजीर्ण, प्लीहा, यकृत, पांडु रोग आदि को दूर करनेवाली कही गई है।

सनासन–संज्ञा पुं० दे० "सनसन"।

सनाह–संज्ञा पुं० [सं० सेनाह] कवच। बकतर। उ०—उठि उठि पहिरि सनाह अभागे। जहँ तहँ गाल बजावन लागे।—तुलसी।

सनिꕤ–संज्ञा पुं० दे० "शनि"।

सनीचर–संज्ञा पुं० दे० "शनैश्चर"।

सनीचरी–संज्ञा पुं० [हिं० सनीचर] शनि की दशा, जिसमें दुःख, व्याधि आदि की अधिकता होती है।

मुहा०—मीन की सनीचरी = मीन राशि पर शनि की स्थिति की दशा जिसका फल राजा और प्रजा दोनों का नाश माना जाता है। उ०—एक तौ कराल कलिकाल सूल मूल ता में कोढ़ में की खाज सी सनीचरी है मीन की।—तुलसी।

सनीड़–अव्य० [सं०] (१) पड़ोस में। बगल में। (२) समीप। निकट।

वि० (१) पड़ोसी। बगल का। (२) पास का। समीप का।

सनेहꕤ†–संज्ञा पुं० दे० "स्नेह"।

सनेहियाꕤ†–संज्ञा पुं० दे० "सनेही"।

सनेही–वि० [सं० स्नेही, स्नेहिन्] स्नेह या प्रेम करनेवाला। प्रेमी। संज्ञा पुं० चाहनेवाला। प्रियतम। प्यारा।

सनै सनैꕤ–अव्य० दे० "शनैः शनैः"।

सनोबर–संज्ञा पुं० [अ०] चीड़ का पेड़।

सन्न–संज्ञा पुं० [सं०] चिरौंजी का पेड़। पियाल वृक्ष।

वि० [सं० शून्य, हिं० सुन्न] (१) संज्ञा शून्य। संवेदन-रहित। बिना चेतना का सा। स्तब्ध। जड़। जैसे,—यह भीषण संवाद सुनते ही वह सन्न रह गया। (२) भौचक। ठक। स्तंभित। (३) एक बारगी खामोश। सहसा मौन। एक दम चुप। (४) डर से चुप। भय से नीरव। जैसे,—उसके डाँटते ही वह सन्न हो गया।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

मुहा०—सन्न मारना = सन्नाटा खींचना। एक बारगी चुप हो जाना।

सन्नत–वि० [सं०] (१) झुका हुआ। (२) नीचे गया हुआ। संज्ञा पुं० राम की सेना का एक बंदर।

सन्नति–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) झुकाव। (२) नम्रता। विनय। (३) किसी ओर प्रवृत्ति। मन का झुकाव। (४) कृपा दृष्टि। मेहरबानी। (५) दक्ष की पुत्री और क्रतु की स्त्री का नाम। (६) ध्वनि। आवाज़।

सन्नद्ध–वि० [सं०] (१) बँधा हुआ। कसा या जकड़ा हुआ। (२) कवच आदि बाँध कर तैयार। (३) तैयार। आमादः। उद्यत। (४) लगा हुआ। जुड़ा हुआ। मिला हुआ। (५) पास का। समीप का।

सन्नय–संज्ञा पुं० [सं०] समूह। झुंड।

सन्नाटा–संज्ञा पुं० [सं० शून्य, हिं० सुन्न + आट (प्रत्य०)] (१) चारो ओर किसी प्रकार का शब्द न सुनाई पड़ने की अवस्था। निःशब्दता। नीरवता। निस्तब्धता। जैसे,—मेला उठ जाने पर वहाँ सन्नाटा हो गया।

क्रि० प्र०—करना।—छाना।—फैलना।—होना।

(२) किसी प्राणी के न होने का भाव। निर्जनता। निराला-पन। एकांतता। जैसे,—वहाँ सन्नाटे में पुकारने से भी कोई न सुनेगा। (३) अत्यंत भय या आश्चर्य के कारण उत्पन्न मौन और निश्चेष्टता। ठक रह जाने का भाव। स्तब्धता।

मुहा०—सन्नाटे में आना = ठक रह जाना। स्तंभित हो जाना। कुछ कहते सुनते न बनना।

(४) सहसा मौन। एक दम खामोशी। चुप्पी।

मुहा०—सन्नाटा खींचना या मारना = एक बारगी चुप हो जाना। एक दम मौन हो जाना।

(५) चहल पहल का अभाव। विनोद या मनोरंजन का न होना। उदासी।

मुहा०—सन्नाटा बीतना = उदासी में समय कटना।

(६) काम धंधे से गुलज़ार न रहना। जैसे,—अब तो कारखाने में सन्नाटा रहता है।

वि० (१) जहाँ किसी प्रकार का शब्द आदि न सुनाई पड़ता हो। नीरव। स्तब्ध। (२) निर्जन। निराला। जैसे,—सन्नाटा मैदान।

संज्ञा पुं० [अनु० सन सन] (१) हवा के जोर से चलने की आवाज। वायु के बहने का शब्द। जैसे,—आज तो बड़े सन्नाटे की हवा है।

मुहा०—सन्नाटे का = सन सन शब्द के साथ बहता हुआ।

(२) हवा चीरते हुए तेजी से निकल जाने का शब्द। वेग से वायु में गमन करने का शब्द।

मुहा०—सन्नाटे के साथ या सन्नाटे से = वेग से। झोंके से। बड़ी तेजी से। जैसे,—तीर सन्नाटे से निकल गया।

सन्नाद्न–संज्ञा पुं० [सं०] राम की सेना का एक यूथप बंदर।

सन्नाह–संज्ञा पुं० [सं०] (१) कवच। बकतर। (२) उद्योग। प्रयत्न।

सन्नाह्य–संज्ञा पुं० [सं०] युद्ध के योग्य एक विशेष प्रकार का हाथी।

सन्निकट–अव्य० [सं०] समीप। पास। निकट।

सन्निकर्ष–संज्ञा पुं० [सं०] [वि० सन्निकृष्ट] (१) संबंध। लगाव। (२) नाता। रिश्ता। (३) सामीप्य। समीपता। (४) इंद्रियों का विषयों के साथ संबंध। (न्याय)

विशेष—यही ज्ञान का कारण है और लौकिक तथा अलौकिक दो प्रकार का कहा गया है।

(५) पात्र। आधार। आश्रय।

सन्निकाश–वि० [सं०] उसी रूप रंग का। सदृश। समान।

सन्निध–संज्ञा पुं० [सं०] (१) सामीप्य। (२) आमने सामने की स्थिति।

सन्निधान–संज्ञा पुं० [सं०] (१) आमने सामने की स्थिति। निकटता। समीपता। (३) रखना। धरना। (४) स्थापित करना। (५) किसी वस्तु के रखने का स्थान। (६) वह स्थान जहाँ धन एकत्र किया जाय। निधि।

सन्निधि–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) समीपता। निकटता। (२) आमने सामने की स्थिति। (३) पड़ोस।

सन्निपात–संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक साथ गिरना या पड़ना। (२) जुटना। भिड़ना। टकराना। (३) संयोग। मेल। मिश्रण। (४) इकट्ठा होना। एक साथ जुटना। (५) कफ, वात और पित्त तीनों का एक साथ बिगड़ना। त्रिदोष। सरसाम।

विशेष—यह वास्तव में कोई अलग रोग नहीं है, बल्कि एक विशेष अवस्था है जो ज्वर या और किसी व्याधि के बिगड़ने पर होती है। यह कई प्रकार का होता है। सब से साधारण रूप वह है जिसमें रोगी का चित्त भ्रांत हो जाता है, वह अंडबंड बकने लगता है तथा उछलता कूदता है। आयुर्वेद में १३ प्रकार के सन्निपात कहे गए हैं—संधिग, अंतक, रुग्दाह, चित्तभ्रम, शीतांग, तंद्रिक, कंठकुब्ज, कर्णक, भग्ननेत्र, रक्तष्ठीव, प्रलाप, जिह्वक और अभिन्यास।

(६) एक साथ कई बातों का घटना या ठीक उतरना। (७) समाहार। समूह।

सन्निबंध–संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक में बाँधना। जकड़ना। (२) लगाव। संबंध। (३) प्रभाव। तासीर। (४) फल। परिणाम।

सन्निबद्ध–वि० [सं०] (१) एक में बँधा हुआ। जकड़ा हुआ। (२) लगा हुआ। अड़ा हुआ। फँसा हुआ। (३) सहारे पर टिका हुआ। आश्रित।

सन्निभ–वि० [सं०] सदृश। समान। मिलता जुलता।

सन्निभृत–वि० [सं०] (१) अच्छी तरह छिपाया हुआ। गुप्त। (२) समझ बूझकर बोलनेवाला।

सन्निमग्न–वि० [सं०] (१) खूब डूबा हुआ। (२) सोया हुआ।

सन्निरुद्ध–वि० [सं०] (१) रोका हुआ। ठहराया हुआ। अटकाया हुआ। (२) दबाया हुआ। दमन किया हुआ। (३) ठसाठस भरा हुआ। कसा हुआ।

सन्निरोध–संज्ञा पुं० [सं०] (१) रोक। रुकावट। बाधा। (२) दमन। निवारण। (३) तंगी। संकोच। (४) तंग रास्ता। सँकरी गली।

सन्निविष्ट–वि० [सं०] (१) एक साथ बैठा हुआ। जमा हुआ। (२) रखा हुआ। धरा हुआ। (३) स्थापित। प्रतिष्ठित। (४) लगा हुआ। जड़ा हुआ। (५) घुसा हुआ। आया हुआ। समाया हुआ। (६) पास का। समीप का। लगा हुआ।

सन्निवेश–संज्ञा पुं० [सं०] (१) एक साथ बैठना। (२) जमकर स्थित होना। बैठना। (३) रखना। धरना। ठहराना। (४) लगाना। जड़ना। बैठाना। (५) घुसना। भीतर जाना। समाना। (६) स्थिति। आधार। रखने की जगह। (७) आसन। बैठकी। (८) रहने की जगह। निवास। घर। (९) पुर या ग्राम के लोगों के एकत्र होने का स्थान। अथाई। चौपाल। (१०) एकत्र होना। जुटना। (११)

समूह। समाज। (१२) योजना। व्यवस्था। (१३) रचना। (१४) गढ़न। गठन। बनावट। आकृति। (१५) स्तंभ, मूर्त्ति आदि की स्थापना।

सन्निवेशन–संज्ञा पुं० [सं०] [वि० सन्निवेशित, सन्निवेशी, सन्निवेश्य, सन्निविष्ट] (१) एक साथ बैठना। (२) बैठना। जमना। (३) रखना। धरना। (४) बैठाना। लगाना। जड़ना। (५) टिकाना ठहराना। अड़ाना। (६) स्थापित करना। प्रतिष्ठित करना। खड़ा करना। जैसे,—प्रतिमा या स्तंभ का सन्निवेशन। (७) विधान। व्यवस्था।

सन्निवेशित–वि० [सं०] (१) बैठाया हुआ। जमाया हुआ। (२) ठहराया हुआ। रखा हुआ। (३) स्थापित। प्रतिष्ठित। (४) अँटाया हुआ। भीतर डाला हुआ।

सन्निहित–वि० [सं०] (१) एक साथ या पास रखा हुआ। (२) समीपस्थ। निकटस्थ। (३) रखा हुआ। धरा हुआ। (४) ठहराया हुआ। टिकाया हुआ। अड़ाया हुआ। (५) जो कुछ करने पर हो। उद्यत। तैयार।

सन्नोदन–संज्ञा पुं० [सं०] (१) पशु आदि को चलाना। हाँकना। (२) प्रेरित करना। उभारना। उसकना।

सन्मान–संज्ञा पुं० दे० "सम्मान"।

सन्मानना–क्रि० स० दे० "सनमानना"।

सन्मुख–अव्य० दे० "सम्मुख"।

सन्यसन–संज्ञा पुं० [सं० संन्यसन] [वि० संन्यस्त] (१) फेंकना। छोड़ना। अलग करना। हटाना। दूर करना। (२) सांसारिक विषयों का त्याग। दुनिया का जंजाल छोड़ना। (३) रखना। धरना। (४) बैठाना। जमाना। स्थापित करना। (५) खड़ा करना।

सन्यस्त–वि० [सं० संन्यस्त] (१) फेंका हुआ। छोड़ा हुआ। हटाया हुआ। अलग किया हुआ। (२) रखा हुआ। धरा हुआ। (३) बैठाया हुआ। जमाया हुआ। (४) खड़ा किया हुआ।

सन्यास–संज्ञा पुं० [सं० संन्यास] (१) छोड़ना। दूर करना। त्याग। (२) सांसारिक प्रपंचों के त्याग की वृत्ति। दुनिया के जंजाल से अलग होने की अवस्था। वैराग्य। (३) चतुर्थ आश्रम। यति धर्म।

विशेष—यह प्राचीन भारतीय आर्यों या हिंदुओं के जीवन की चार अवस्थाओं में से अंतिम है जो पुत्र आदि के सयाने हो जाने पर ग्रहण की जाती थी। इसमें मनुष्य गृहस्थी छोड़कर जंगल या एकांत स्थान में ब्रह्मचिंतन या परलोक-साधन में प्रवृत्त रहते थे और भिक्षा द्वारा निर्वाह करते थे। इसमें किसी आचार्य से दीक्षा लेकर सिर मुँड़ाते और दंड ग्रहण करते थे। सन्यास दो प्रकार का कहा गया है—एक सक्रम अर्थात् जो ब्रह्मचर्य्य, गार्हस्थ्य और वानप्रस्थ आश्रम के उपरांत ग्रहण किया जाय; दूसरा अक्रम जो बीच में ही वैराग्य उत्पन्न होने पर धारण किया जाय। बहुत दिनों तक 'संन्यास' कलिवर्ज्य माना जाता था; पर शंकराचार्य्य ने बौद्ध भिक्षुओं और जैन यतियों को अपने अपने धर्म का प्रचार बढ़ाते देख कलिकाल में फिर सन्यास चलाया और गिरि, पुरी, भारती आदि दस प्रकार के सन्यासियों की प्रतिष्ठा की जो दसनामी कहे जाते हैं।

क्रि० प्र०—ग्रहण करना।—लेना।

(४) सहसा शरीर त्याग। एक बारगी मरण। (५) एक दम थक जाना। चरम शैथिल्य। (६) धरोहर। थाती। (७) वादा। इकरार। (८) बाज़ी। होड़। (९) जटामासी।

सन्यासी–संज्ञा पुं० [सं० संन्यासिन्] [स्त्री० संन्यासिनी, संन्यासिन] (१) वह पुरुष जिसने सन्यास धारण किया हो। चतुर्थ आश्रमी। (२) विरागी। त्यागी। यति।

सपई†–संज्ञा स्त्री० [हिं० साँप] (१) एक प्रकार का लंबा कीड़ा जो मनुष्यों और पशुओं की आँतों में उत्पन्न होता है। पेट का केंचुआ। (२) बेला नामक फूल।

सपक्ष–संज्ञा पुं० [सं०] अनुकूल पक्ष। मुवाफ़िक राय।

वि० (१) जो अपने पक्ष में हो। तरफ़दार। (२) समर्थक। पोषक।

संज्ञा पुं० (१) तरफ़दार। मित्र। सहायक। (२) न्याय में वह बात या दृष्टांत जिसमें साध्य अवश्य हो। जैसे,—जहाँ धूआँ होता है, वहाँ आग रहती है। जैसे,—रसोईघर का दृष्टांत सपक्ष है।

सपक्षी–वि० दे० "सपक्ष"।

सपटा–संज्ञा पुं० [देश०] (१) सफेद कचनार। (२) एक प्रकार का टाट।

सपट्टी–संज्ञा स्त्री० [सं०] द्वार के चौखट की दोनों खड़ी लकड़ियाँ। बाजू।

सपड़ना†–क्रि० अ० दे० "सपरना"।

सपड़ाना†–क्रि० स० दे० "सपराना"।

सपत्न–संज्ञा पुं० [सं०] बैरी। शत्रु। विरोधी।

सपत्नजित्–संज्ञा पुं० [सं०] (१) शत्रु को जीतनेवाला। (२) सुदत्ता के गर्भ से उत्पन्न कृष्ण के एक पुत्र का नाम।

सपत्नता–संज्ञा स्त्री० [सं०] बैर। शत्रुता।

सपत्नारि–संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का ठोस बाँस जिसके डंडे या छड़ियाँ बनती हैं।

सपत्नी–संज्ञा स्त्री० [सं०] एक ही पति की दूसरी स्त्री। जो अपने ही पति की दूसरी स्त्री हो। सौत। सौतिन।

सपत्नीक–वि० [सं०] स्त्री के सहित। जोरू के साथ। जैसे,—आप सपत्नीक तीर्थ करने जायँगे।

सपथ–संज्ञा पुं० दे० "शपथ"।

सपदि–अव्य० [सं०] उसी समय। तुरंत। शीघ्र। जल्द।

सपन–†संज्ञा पुं० दे० "सपना"।

सपना-संज्ञा पुं० [सं० स्वप्न] (१) वह दृश्य जो निद्रा की दशा में दिखाई पड़े। नींद में अनुभव होनेवाली बात। (२) निद्रा की दशा में दृश्य देखना।

मुहा०—सपना होना = देखने को भी न मिलना। दुर्लभ हो जाना।

सपरदाई-संज्ञा पुं० [सं० संप्रदायी] गानेवाली तवायफ़ के साथ (तबला, सारंगी आदि) बजानेवाला। भँड़ुआ। समाजी। साजिन्दा।

सपरना-क्रि० अ० [सं० संपादन, प्रा० संपाडन] (१) किसी काम का पूरा होना। समाप्त होना। निबटना। (२) काम का किया जा सकना। हो सकना। जैसे,—यह काम हमसे नहीं सपरेगा।

मुहा०—सपर जाना = मर जाना।

(३) तैयारी करना। तैयार होना।

सपराना-क्रि० स० [हिं० सपरना] (१) काम पूरा करना। निबटाना। खतम करना। (२) पूरा कर सकना। कर सकना।

सपरिकर-वि० [सं०] अनुचर वर्ग के साथ। ठाट बाट के साथ।

सपरिच्छद-वि० [सं०] तैयारी के साथ। ठाठ बाट के साथ। जुलूस के साथ।

सपर्या-संज्ञा स्त्री० [सं०] पूजा। आराधना। उपासना।

सपाट-वि० [सं० स + पट्ट, हिं० पाट = पीढ़ा] (१) बराबर। हमवार। समतल। (२) जिसकी सतह पर कोई उभरी या जमी हुई वस्तु न हो। चिकना।

सपाटा-संज्ञा पुं० [सं० सर्पण = सरकना] (१) चलने, दौड़ने या उड़ने का वेग। झोंक। तेज़ी। जैसे,—सपाटे के साथ दौड़ना। (२) तीव्र गति। दौड़। झपट। झपटा।

क्रि० प्र०—भरना।—मारना।—लगाना।

यौ०—सैर सपाटा = घूमना फिरना।

सपाद-वि० [सं०] (१) चरण सहित। (२) चतुर्थांश और अधिक के साथ। जिसमें एक का चौथाई और मिला हो। जैसे, सवा दो, सवा तीन, सवा चार।

यौ०—सपाद लक्ष = सवा लाख। एक लाख पचीस हजार।

सपिंड-संज्ञा पुं० [सं०] एक ही कुल का पुरुष जो एक ही पितरों को पिंडदान करता हो। एक ही खानदान का।

विशेष—छः पीढ़ी ऊपर और छः पीढ़ी नीचे तक के लोग सपिंड की गणना में आते हैं। इनके अतिरिक्त माता, नाना और परनाना आदि, कन्या, कन्या का पुत्र और पौत्र आदि तथा पिता माता के भाई बहिन आदि बहुत से आते हैं।

सपिंडी-संज्ञा स्त्री० [सं०] मृतक के निमित्त वह कर्म जिसमें वह और पितरों या परिवार के मृत प्राणियों के साथ पिंडदान द्वारा मिलाया जाता है।

सपीतक-संज्ञा पुं० [सं०] पीया तुरई। घेतुवा।

सपीतिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] लंबी पीया या कद्दू।

सपुलक-वि० [सं०] पुलक या हर्ष के साथ।

सपूत-संज्ञा पुं० [सं० सत्पुत्र, प्रा० सपुत्त, सउत्त] वह पुत्र जो अपने कर्त्तव्य का पालन करे। अच्छा पुत्र। उ०—सूर सुजान सपूत सुलच्छन गनियत गुन गरुआई।—तुलसी।

सपूती-संज्ञा स्त्री० [हिं० सपूत + ई (प्रत्य०)] (१) सपूत होने का भाव। लायकी। (२) योग्य पुत्र उत्पन्न करनेवाली माता।

सपेत, सपेद†⊛-वि० [फ़ा० सफ़ेद, मि० सं० श्वेत] सफ़ेद।

सपेती†⊛-संज्ञा स्त्री० दे० "सफ़ेदी"।

सपेरा-संज्ञा पुं० दे० "सँपेरा"।

सपेला-संज्ञा पुं० [हिं० साँप + एला (प्रत्य०)] साँप का छोटा बच्चा।

सपोला-संज्ञा पुं० [हिं० साँप + ओला (प्रत्य०)] साँप का छोटा बच्चा।

सप्त-वि० [सं०] गिनती में सात।

सप्तऋषि-संज्ञा पुं० दे० "सप्तर्षि"।

सप्तक-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सात वस्तुओं का समूह। (२) संगीत में सात स्वरों का समूह।

सप्तकी-संज्ञा स्त्री० [सं०] स्त्रियों का कमरबंद।

सप्तकृत-संज्ञा पुं० [सं०] विश्वेदेवा में से एक।

सप्तगुण-वि० [सं०] सात बार और। सतगुना।

सप्तग्रही-संज्ञा स्त्री० [सं०] एक ही राशि में सात ग्रहों का एकत्र होना।

सप्तचत्वारिंश-वि० [सं०] सैंतालीसवाँ।

सप्तचत्वारिंशत्-वि० [सं०] सैंतालीस।

सप्तच्छद-संज्ञा पुं० [सं०] सप्तपर्ण वृक्ष। छतिवन।

सप्तजिह्व-संज्ञा पुं० [सं०] अग्नि, जिसकी सात जिह्वाएँ मानी गई हैं।

सप्तति-वि० [सं०] सत्तर।

सप्ततितम-वि० [सं०] सत्तरवाँ।

सप्तत्रिंश-वि० [सं०] सैंतीसवाँ।

सप्तत्रिंशत्-वि० [सं०] सैंतीस।

सप्तदश-वि० [सं०] सत्तरहवाँ।

वि० [सं० सप्तदशन्] सत्तरह।

सप्तदशम-वि० [सं०] सत्तरहवाँ।

सप्तद्वीप-संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार पृथ्वी के सात बड़े और मुख्य विभाग।

विशेष—सात द्वीप ये हैं—जम्बू द्वीप, कुश द्वीप, प्लक्ष द्वीप, शाल्मलि द्वीप, क्रौंच द्वीप, शाक द्वीप और पुष्कर द्वीप।

सप्तधातु-संज्ञा पुं० [सं०] आयुर्वेद के अनुसार शरीर के सात

संयोजक द्रव्य अर्थात् रक्त, पित्त, मांस, वसा, मज्जा, अस्थि और शुक्र।

वि० सात धातुओं से बना हुआ। जैसे,—शरीर।

संज्ञा पुं० चंद्रमा के घोड़ों में से एक।

सप्तधान्य-संज्ञा पुं० [सं०] जौ, धान, उरद आदि सात अन्नों का मेल जो पूजा में काम आता है।

सप्तनाड़िका-संज्ञा स्त्री० [सं०] सिंघाड़ा।

सप्तनाड़ी चक्र-संज्ञा पुं० [सं०] फलित ज्योतिष में सात टेढ़ी रेखाओं का एक चक्र जिसमें सब नक्षत्रों के नाम भरे रहते हैं और जिसके द्वारा वर्षा का आगम बताया जाता है।

सप्तनामा-संज्ञा स्त्री० [सं०] आदित्यभक्ता। हुलहुल नाम का पौधा।

सप्तपंचाश-वि० [सं०] सत्तावनवाँ।

सप्तपंचाशत्-वि० [सं०] सत्तावन।

सप्तपत्र-वि० [सं०] (१) जिसमें सात पत्ते या दल हों। (२) जिसके वाहन सात घोड़े हों।

संज्ञा पुं० (१) मोतिया। मोगरा बेला। (२) सप्तपर्ण वृक्ष। छतिवन। (३) सूर्य।

सप्तपदी-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) विवाह की एक रीति जिसमें वर और वधू अग्नि के चारों ओर सात परिक्रमाएँ करते हैं और जिससे विवाह पक्का हो जाता है। भाँवर। भँवरी। (२) किसी बात को अग्नि की साक्षी देकर पक्का करना।

सप्तपदी पूजा-संज्ञा स्त्री० [सं०] विवाह के अवसर पर होनेवाला एक पूजन।

विशेष—इसमें एक लोढ़ा वर और वधू के आगे रखकर वर को उसे पूजने को कहा जाता है, पर वह उसे पैर से हटा देता है।

सप्तपराक-संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का तप।

सप्तपर्ण-संज्ञा पुं० [सं०] (१) छतिवन का पेड़। (२) एक प्रकार की मिठाई।

सप्तपर्णी-संज्ञा स्त्री० [सं०] लज्जालु। लज्जावंती लता।

सप्तपलाश-संज्ञा पुं० दे० "सप्तपर्ण"।

सप्तपाताल-संज्ञा पुं० [सं०] पृथ्वी के नीचे के सात लोक जिनके नाम ये हैं—अतल, वितल, सुतल, रसातल, तलातल, महातल और पाताल।

सप्तपुत्री-संज्ञा स्त्री० [सं०] तुरई की तरह की सतपुतिया नाम की तरकारी।

सप्तपुरी-संज्ञा स्त्री० [सं०] सात पवित्र नगर या तीर्थ जो मोक्ष-दायक कहे गए हैं।

विशेष—अयोध्या, मथुरा, माया (हरिद्वार), काशी, कांची, अवंतिका (उज्जयिनी) और द्वारका ये सात पवित्र पुरियाँ हैं।

सप्तप्रकृति-संज्ञा स्त्री० [सं०] राज्य के सात अंग जो ये हैं—राजा, मंत्री, सामंत, देश, कोश, गढ़ और सेना।

सप्तबाह्य-संज्ञा पुं० [सं०] वाह्लीक देश। बलख।

सप्तभंगी-संज्ञा स्त्री० [सं०] जैन न्याय या तर्क के सात अवयव जिन पर स्याद्वाद की प्रतिष्ठा है।

विशेष—ये सातों अवयव या सूत्र स्यात् शब्द से आरंभ होते हैं। यथा—स्यादस्ति, स्यान्नास्ति, स्यादस्तिचनास्ति, स्यादवक्तव्य, स्यादस्तिचावक्तव्य, स्यान्नास्तिचावक्तव्य, स्यादस्तिचनास्तिचावक्तव्य।

सप्तभद्र-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सिरिस। शिरीष वृक्ष। (२) नेवारी। नवमल्लिका। (३) गुंजा। चिरमटी।

सप्तभुवन-संज्ञा पुं० [सं०] ऊपर के सात लोक। दे० "लोक"।

सप्तभूम-संज्ञा पुं० [सं०] मकान के सात खंड या मरातिब।

वि० सात खंडों का। सतमंज़िला।

सप्तम-वि० [सं०] [स्त्री० सप्तमी] सातवाँ।

सप्तमातृका-संज्ञा स्त्री० [सं०] सात माताएँ या शक्तियाँ जिनका पूजन विवाह आदि शुभ अवसरों के पहले होता है।

विशेष—इनके नाम ये हैं—ब्राह्मी या ब्रह्माणी, माहेश्वरी, कौमारी, वैष्णवी, वाराही, ऐंद्री या इंद्राणी और चामुंडा।

सप्तमी-वि० स्त्री० [सं०] सातवीं।

संज्ञा स्त्री० (१) किसी पक्ष की सातवीं तिथि। किसी पक्ष का सातवाँ दिन। (२) अधिकरण कारक की विभक्ति का नाम। (व्याकरण)

सप्तमुष्टिक-संज्ञा पुं० [सं०] ज्वर की एक औषधि जो कई द्रव्यों के योग से बनती है।

सप्तमृत्तिका-संज्ञा स्त्री० [सं०] शांति पूजन में काम आनेवाली सात स्थानों की मिट्टी।

विशेष—राजद्वार की, गजशाला की तथा इसी प्रकार और स्थानों की मट्टी मँगाई जाती है।

सप्तरक्त-संज्ञा पुं० [सं०] शरीर के सात अवयव जिनका रंग लाल होता है। यथा—हथेली, तलवा, जीभ, आँख या पलक का निचला भाग, तालू और ओंठ।

सप्तराव-संज्ञा पुं० [सं०] गरुड़ के एक पुत्र का नाम।

सप्तराशिक-संज्ञा पुं० [सं०] गणित की एक क्रिया जिसमें सात राशियाँ होती हैं।

सप्तरुचि-संज्ञा पुं० [सं०] अग्नि का एक नाम।

सप्तर्षि संज्ञा पुं० [सं०] (१) सात ऋषियों का समूह या मंडल।

विशेष—शतपथ ब्राह्मण के अनुसार सात ऋषियों के नाम ये हैं—गौतम, भरद्वाज, विश्वामित्र, यमदग्नि, वसिष्ठ, कश्यप और अत्रि। महाभारत के अनुसार—मरीचि, अत्रि, अंगिरा, पुलह, क्रतु, पुलस्त्य और वसिष्ठ।

(२) उत्तर दिशा में स्थित सात तारों का समूह जो ध्रुव के चारों ओर फिरता दिखाई पड़ता है।

सप्तर्पिंज–संज्ञा पुं० [सं०] बृहस्पति।

सप्तला–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सातला। (२) नवमल्लिका। चमेली। (३) रीठा। (४) गुंजा। घुँघची। चिरमटी।

सप्तवादी–संज्ञा पुं० [सं० सप्तवादिन्] सप्तभंगी न्याय का अनुयायी। जैन।

सप्तविंश–वि० [सं०] सत्ताईसवाँ।

सप्तविंशति–वि० [सं०] सत्ताइस।
संज्ञा स्त्री० सत्ताइस की संख्या या अंक।

सप्तविंशतिम–वि० [सं०] सत्ताइसवाँ।

सप्तशत–वि० [सं०] सात सौ।

सप्तशती–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सात सौ का समूह। (२) सात सौ पद्यों का समूह। सतसई। जैसे,—दुर्गासप्तशती, आर्य्या सप्तशती।
संज्ञा पुं० बंगाल में ब्राह्मणों की एक जाति।

सप्तशिरा–संज्ञा स्त्री० [सं०] नागवल्ली।

सप्तशीर्ष–संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु का एक नाम।

सप्तषष्ठ–वि० [सं०] सड़सठवाँ।

सप्तषष्ठि–वि० [सं०] सड़सठ।

सप्तसप्त–वि० [सं०] सतहत्तरवाँ।

सप्तसप्तति–वि० [सं०] सतहत्तर।

सप्तसप्ति–वि० [सं०] जिसके रथ में सात घोड़े हों।
संज्ञा पुं० सूर्य्य।

सप्तसागर दान–संज्ञा पुं० [सं०] एक दान जिसमें सात पात्रों में घी, दूध, मधु, दही आदि रखकर ब्राह्मण को देते हैं।

सप्तसिरा–संज्ञा स्त्री० [सं०] तांबूल। पान।

सप्तस्पर्द्धा–संज्ञा स्त्री० [सं०] एक नदी का नाम। (रामायण)

सप्त स्वर–संज्ञा पुं० [सं०] संगीत के सात स्वर–स, ऋ, ग, म, प, ध, नि।

सप्तांशु–संज्ञा पुं० [सं०] शनि ग्रह।

सप्तार्चि–संज्ञा पुं० [सं०] (१) अग्नि। (२) शनि। (३) चित्रक वृक्ष। चीता।

सप्तालु–संज्ञा पुं० [सं०] सतालू। सफतालू।

सप्ताशीति–वि० [सं०] सत्तासी।

सप्ताश्व–संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य्य (जिनके रथ में सात घोड़े हैं।)

सप्ताह–संज्ञा पुं० [सं०] (१) सात दिनों का काल। हफ़्ता। (२) कोई यज्ञ या पुण्य कर्म जो सात दिनों में समाप्त हो। (३) भागवत की कथा जो सात ही दिनों में सब पढ़ी या सुनी जाय। (इसका बहुत शुभ फल माना जाता है।)
क्रि० प्र०—बाँचना।—सुनना।

सप्पम–संज्ञा पुं० [देश०] बक्कम का पेड़।

सप्रमाण–वि० [सं०] (१) प्रमाण सहित। सबूत के साथ। (२) प्रामाणिक। ठीक।

सफ–संज्ञा पुं० दे० "शफ"।

सफ़–संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) पंक्ति। क़तार।
क्रि० प्र०—बाँधना।
(२) लंबी चटाई। सीतल पाटी। (३) बिछावन। फ़र्श। बिस्तर।

सफगोल–संज्ञा पुं० दे० "इसबगोल"।

सफ़तालू–संज्ञा पुं० [सं० सप्तालु, फ़ा० शफ़्तालू] एक पेड़ जिसके गोल फल खाए जाते हैं। सतालू। आड़ू।
विशेष—यह हिंदुस्तान में ठंढी जगहों में होता है। पेड़ मझोले आकार का और लकड़ी लाल मज़बूत और सुगंधित होती है। पत्ते लंबे नोकदार तथा कालापन लिये गहरे हरे रंग के होते हैं। पतझड़ के पीछे पत्तियाँ निकलने के पहले ही इसमें फूल लग जाते हैं जो गुलाबी रंग के होते हैं। फल पकने पर कुछ लाल और कुछ हरे होते हैं और उनके ऊपर महीन महीन रोइयाँ सी होती हैं। बीजों में बादाम की तरह का कड़ा छिलका होता है।

सफ़र–संज्ञा पुं० [अ०] (१) प्रस्थान। यात्रा। रास्ते में चलना। (२) रास्ते में चलने का समय या दशा। जैसे,—सफ़र में बहुत सामान नहीं रखना चाहिए।
क्रि० प्र०—करना।—होना।

सफरदाई–संज्ञा पुं० दे० "सपरदाई"।

सफर मैना–संज्ञा स्त्री० [अं० सैपर माइनर] सेना के वे सिपाही जो सुरंग लगाने तथा खाईं आदि खोदने को आगे चलते हैं।

सफ़रा–संज्ञा पुं० [अ०] पित्त।

सफ़री–वि० [अ० सफ़र] सफर में का। सफर में काम आनेवाला। यात्रा के समय का। जैसे,—सफरी बिस्तर।
संज्ञा पुं० (१) राह खर्च। रास्ते का सामान। (२) अमरूद। उ०—श्रीफल मधुर चिरौंजी आनि। सफरी चिरुआ अरु नव पानी।—सूर।

सफ़री–संज्ञा स्त्री० [सं० शफरी] एक प्रकार की मछली। सौरी मछली।

सफरोल–संज्ञा पुं० [?] कपूर के काले तेल से तैयार होनेवाली एक दवा या मसाला।

सफल–वि० [सं०] (१) जिसमें फल लगा हो। फल से युक्त। (२) जिसका कुछ परिणाम हो। जो व्यर्थ न जाय। सार्थक। जैसे,—तुम्हारा परिश्रम सफल हो गया। (३) पूरा होना। जैसे,—मनोरथ सफल होना। (४) कृतकार्य्य। कामयाब। जिसका प्रयोजन सिद्ध हुआ हो।
क्रि० प्र०—करना।—होना।
(२) अंडकोश युक्त। जो बधिया न हो।

सफलक–वि० [सं०] जिसके पास ढाल हो।

सफलता-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सफल होने का भाव। कामयाबी। सिद्धि। (२) पूर्णता।

सफला-संज्ञा स्त्री० [सं०] पौष मास के कृष्ण पक्ष की एकादशी जो विशेष रूप से व्रत का दिन है।

सफलीकरण-संज्ञा पुं० [सं०] (१) सफल करना। (२) सिद्ध करना। पूर्ण करना।

सफलीभूत-वि० [सं०] जो सफल हुआ हो। जो सिद्ध या पूरा हुआ हो।

सफहा-संज्ञा पुं० [अ०] (१) रूप। तल। (२) वरक़। पृष्ठ। पन्ना।

सफ़ा-वि० [अ०] (१) साफ़। स्वच्छ। निर्मल। (२) पाक। पवित्र। उ०—कोई सफा न देखा दिल का।—काष्ठजिह्वा। (३) जो खुरदुरा न हो। चिकना। बराबर।

सफाई-संज्ञा स्त्री० [अ० सफा + ई (प्रत्य०)] (१) साफ होने का भाव। स्वच्छता। निर्मलता। (२) मैल, कूड़ा करकट आदि हटाने की क्रिया। जैसे,—मकान की सफाई। (३) अर्थ या अभिप्राय प्रकट होने का गुण। (४) स्पष्टता। चित्त से दुर्भाव आदि का निकलना। मन में मैल न रहना। जैसे,—सामने बात चीत कर लो; दिलों की सफाई हो जाय। (५) कपट या कुटिलता का अभाव। दुराव का न होना। जैसे,—आज उन्होंने बड़ी सफाई से बात की। (६) दोषारोप का हटना। इल्जाम का दूर होना। निर्दोषिता। जैसे,—उसने अपनी सफाई के लिये बहुत कुछ कहा।

मुहा०—सफाई देना = निर्दोषिता प्रमाणित करना। कसूरवार न होने का सबूत देना।

(७) ऋण का परिशोध। कर्ज़ या हिसाब का चुकता होना। बेबाक़ी। (८) मामले का निबटेरा। निर्णय।

सफ़ाचट-वि० [हिं० सफा] (१) एक दम स्वच्छ। बिलकुल साफ। (२) जिस पर कुछ जमा या लगा न रह गया हो। जो बिल्कुल चिकना हो। जैसे,—मैदान सफाचट होना। खोपड़ी सफाचट होना। (३) जो जमा या लगा न रहने दिया जाय। जो निकाल, उखाड़ या दूर कर दिया जाय। जैसे,—बाल सफाचट होना।

सफ़ीना-संज्ञा पुं० [अ० सफ़ीनः, अं० सबपेना] (१) बही। किताब। नोट बुक। (२) अदालती परवाना। इत्तलानामा। समन।

सफीर-संज्ञा स्त्री० [?] (१) चिड़ियों की आवाज़। (२) वह सीटी जो पक्षियों को बुलाने के लिये दी जाती है।

संज्ञा पुं० [अ० सफ़ीर] एलची। राजदूत।

सफील-संज्ञा स्त्री० [अ० फ़सील] पक्की चहार दीवारी। शहरपनाह। परकोटा।

सफ़ूफ़-संज्ञा पुं० [अ०] चूर्ण। बुकनी। फंकी।

सफेद-वि० [फ़ा० सुफ़ेद, सं० श्वेत] (१) जो चूने के रंग का हो। जिस पर कोई रंग न हो। धौला। श्वेत। चिट्टा। जैसे,—सफेद घोड़ा। (२) जिस पर कुछ लिखा या चिह्न न हो। कोरा। सादा। जैसे,—सफेद कागज।

मुहा०—किसी का रंग सफेद पड़ जाना = विवर्णता होना। भय आदि से चेहरे का रंग फीका पड़ जाना। स्याह सफेद = भला बुरा। इष्ट अनिष्ट। जैसे,—स्याह सफेद सब उसी के हाथ है।

सफेद धाची-संज्ञा स्त्री० [हिं० सफेद + धव] एक प्रकार का बड़ा पेड़। चकड़ी।

विशेष—यह वृक्ष हिमालय पर पाया जाता है। इसकी लकड़ी की कंघियाँ बनाई जाती हैं। इसके फूलों में सुगंध होती है। इसके पत्ते खाद के काम में आते हैं।

सफेद पलका-संज्ञा पुं० [फ़ा० सुफेद + हिं० फलक] वह कबूतर जिसके पर कुछ सफ़ेद और कुछ काले हों।

सफेदपोश-संज्ञा पुं० [फ़ा०] (१) साफ़ कपड़े पहननेवाला। (२) शिक्षित और कुलीन। भलामानस। शिष्ट।

सफेदा-संज्ञा पुं० [फ़ा० सुफ़ैदा] (१) जस्ते का चूर्ण या भस्म जो दवा तथा लोहे लकड़ी आदि पर रँगाई के काम में आता है। (२) सफेद चमड़ा जो जूते आदि बनाने के काम में आता है। (३) आम का एक भेद जो लखनऊ के आसपास होता है। (४) खरबूज़े का एक भेद। (५) पंजाब और काश्मीर में होनेवाला एक बहुत ऊँचा और खंभे की तरह सीधा जानेवाला पेड़ जिसकी छाल का रंग सफेद होता है। इसकी लकड़ी सजावट के सामान बनाने के काम में आती है।

सफेदार-संज्ञा पुं० [देश०] सीसम का पेड़।

सफ़ेदी-संज्ञा स्त्री० [फ़ा० सुफ़ैदी] (१) सफेद होने का भाव। श्वेतता। धवलता।

मुहा०—सफेदी आना = बाल सफेद होना। बुढ़ापा आना।

(२) दीवार आदि पर सफेद रंग या चूने की पोताई। चूनाकारी।

क्रि० प्र०—करना।—फेरना।

(३) सूर्य्य निकलने के पहले का उज्वल प्रकाश जो पूर्व दिशा में दिखाई पड़ता है।

सफ़ालू-संज्ञा पुं० दे० "सफतालू"।

सब-वि० [सं० सर्व, प्रा० सव्व] (१) जितने हों, वे कुल। समस्त। जैसे,—(क) इतना सुनते ही सब लोग वहाँ से चले गए। (ख) सब किताबें अलमारी में रख दो।

मुहा०—सब मिलाकर = जितना हो, उतना। सब। कुल।

(२) पूरा। सारा। समस्त।

वि० [अं०] छोटा। गौण। अप्रधान।

विशेष—इस अर्थ में इस शब्द का प्रयोग प्रायः यौगिक शब्दों

के आरंभ में होता है। जैसे,—सब इंसपेक्टर, सब ओवरसियर, सब आफ़िस।

सबक़–संज्ञा पुं० [फ़ा०] (१) उतना अंश जितना एक बार में पढ़ाया जाय। पाठ।

क्रि० प्र०—देना।—पढ़ना।—पढ़ाना।—लेना।

(२) शिक्षा। नसीहत।

क्रि० प्र०—देना।—पाना।—मिलना।—लेना।

सबक़त–संज्ञा स्त्री० [अ०] किसी विषय में औरों की अपेक्षा आगे बढ़ जाना। विशेषता प्राप्त करना।

क्रि० प्र०—करना।—ले जाना।

सबज–वि० दे० "सब्ज़"।

सबब–संज्ञा पुं० [अ०] (१) कारण। वजह। हेतु। जैसे,—उनके नाराज होने का मुझे तो कोई सबब नहीं मालूम। (२) द्वार। साधन। जैसे,—बिना किसी सबब के वहाँ तक पहुँचना कठिन है।

सबर–संज्ञा पुं० दे० "सब्र"।

सबल–वि० [सं०] (१) जिसमें बहुत बल हो। बलवान्। बलशाली। ताकतवर। जैसे—जो सबल होगा, वह निर्बलों पर शासन करेगा। (२) जिसके साथ सेना हो। फौजवाला।

सबा–संज्ञा स्त्री० [अ०] वह हवा जो प्रभात और प्रातःकाल के समय पूर्व की ओर से चलती है।

सबील–संज्ञा स्त्री० [अ०] (१) रास्ता। मार्ग। सड़क। (२) उपाय। तरकीब। यत्न। जैसे,—वहाँ पहुँचने की कोई सबील निकालनी चाहिए। (३) वह स्थान जहाँ पर पथिकों आदि को धर्मार्थ जल या शरबत पिलाया जाता है।

क्रि० प्र०—पिलाना।—रखना।—लगाना।

सबू–संज्ञा पुं० [फ़ा० सुबू] मिट्टी का घड़ा। मटका। गगरी।

सबूरा–संज्ञा पुं० [अ० सब्र] काठ या चमड़े आदि का बना हुआ एक प्रकार का लंबा खंड जिससे विधवा या पतिहीना स्त्रियाँ अपनी काम-वासना तृप्त करती हैं। (मुसल० स्त्रि०)

सब्ज़–वि० [फ़ा०] (१) कच्चा और ताज़ा (फल फूल आदि)।

मुहा०—सब्ज़ बाग़ दिखलाना = अपना काम निकालने या फँसाने के लिये बड़ी बड़ी आशाएँ दिलाना।

(२) हरा। हरित। (रंग) (३) शुभ। उत्तम। जैसे,—सब्ज़-बख़्त = भाग्यशाली।

सब्ज़क़दम–वि० [फ़ा० सब्ज़ + अ० क़दम] जिसके कहीं पहुँचते ही कोई अशुभ घटना हो। जिसके चरण अशुभ हों।

विशेष—इस शब्द में "सब्ज़" का प्रयोग व्यंग्य रूप से होता है।

सब्ज़ा–संज्ञा पुं० [फ़ा० सब्ज़ः] (१) हरी घास और वनस्पति आदि। हरियाली।

क्रि० प्र०—लहलहाना।

(२) भंग। भाँग। विजया। (३) पन्ना नामक रत्न। (४) स्त्रियों का कान में पहनने का एक प्रकार का गहना। (५) घोड़े का एक रंग जिसमें सफेदी के साथ कुछ कालापन भी मिला होता है। (६) वह घोड़ा जो इस रंग का हो।

सब्ज़ी–संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] (१) हरी घास और वनस्पति आदि। हरियाली। (२) हरी तरकारी। (३) भंग। भाँग। विजया।

सब्र–संज्ञा पुं० [अ०] संतोष। धैर्य।

क्रि० प्र०—आना।—करना।—रखना।

मुहा०—किसी का सब्र पड़ना = किसी के धैर्यपूर्वक सहन किए हुए कष्ट का प्रतिफल होना। जैसे,—तुमने उस गरीब का मकान ले लिया; तुम पर उसका सब्र पड़ा है जिससे तुम्हारा लड़का मर गया। सब्र कर बैठना या लेना = कोई हानि या अनिष्ट होने पर चुप चाप उसे सह लेना। सब्र समेटना = किसी का शाप लेना। ऐसा काम करना जिससे किसी का शाप पड़े।

सब्रह्मचारी–संज्ञा पुं० [सं० सब्रह्मचारिन्] परस्पर वे ब्रह्मचारी जिन्होंने एक साथ ही एक गुरु के यहाँ रह कर शिक्षा प्राप्त की हो।

सभर्तृका–संज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्त्री जिसका पति जीवित हो। सधवा।

सभा–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) वह स्थान जहाँ बहुत से लोग मिलकर बैठे हों। परिषद्। गोष्ठी। समिति। मजलिस। जैसे,—विद्वानों की सभा में बैठा करो। (२) वह स्थान जहाँ किसी एक विषय पर विचार करने के लिये बहुत से लोग एकत्र हों। (३) वह संस्था या समूह जो किसी विषय पर विचार करने अथवा कोई कार्य्य सिद्ध करने के लिये संघटित हुआ हो। (४) सामाजिक। सभासद। (५) जूआ। द्यूत। (६) घर। मकान। (७) समूह। झुंड। (८) प्राचीन वैदिक काल की एक संस्था जिसमें कुछ लोग एकत्र होकर सामाजिक और राजनीतिक विषयों पर विचार करते थे।

सभाकार–संज्ञा पुं० [सं०] वह जो सभा करता हो। सभा करनेवाला।

सभागृह–संज्ञा पुं० [सं०] वह स्थान जहाँ किसी सभा या समिति का अधिवेशन होता हो। बहुत से लोगों के एक साथ बैठने का स्थान। मजलिस की जगह।

सभाजन–संज्ञा पुं० [सं०] अपने मित्रों या संबंधियों आदि के आने पर उनसे गले मिलना, उनका कुशल मंगल पूछना और स्वागत करना।

सभानर–संज्ञा पुं० [सं०] (१) हरिवंश के अनुसार कक्ष के एक पुत्र का नाम। (२) भागवत के अनुसार अनु के एक पुत्र का नाम।

सभापति–संज्ञा पुं० [सं०] वह जो सभा का प्रधान हो और

बनकर उसका कार्य चलाता हो। सभा का मुखिया। मीर मजलिस।

सभापरिषद्–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) बहुत से लोगों का एकत्र होकर साहित्य या राजनीति आदि से संबंध रखनेवाले किसी विषय पर विचार करना। (२) वह स्थान जहाँ इस प्रकार के कार्य के लिये लोग एकत्र होते हैं। सभागृह। सभाभवन।

सभावी–संज्ञा पुं० [सं० सभाविन्] वह जो द्यूत-गृह का प्रधान हो। जूएखाने का मालिक।

सभासद–संज्ञा पुं० [सं०] वह जो किसी सभा में सम्मिलित हो और उसमें उपस्थित होनेवाले विषयों पर सम्मति देने का अधिकार रखता हो। सदस्य। सामाजिक। पार्षद।

सभास्तार–संज्ञा पुं० [सं०] सभासद। सदस्य।

सभिक–संज्ञा पुं० [सं०] वह जो लोगों को जूआ खेलाता हो। जूएखाने का मालिक।

सभीक–संज्ञा पुं० दे० "सभिक"।

सभेद–संज्ञा पुं० [सं०] सभा का सदस्य। सभासद। सभ्य।

सभोचित–संज्ञा पुं० [सं०] पंडित। विद्वान्।

सभ्य–संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जो किसी सभा में सम्मिलित हो और उसके विचारणीय विषयों पर सम्मति दे सकता हो। सभासद। सदस्य। (२) वह जिसका व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन श्रेष्ठ हो। वह जिसका आचार-व्यवहार और रहन सहन उत्तम हो। जिसमें तहजीब हो। भला आदमी।

सभ्यता–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) सभ्य होने का भाव। (२) सदस्यता। (२) व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन की वह अवस्था जिसमें लोगों का आचार व्यवहार बहुत सुधर कर अच्छा हो चुका हो। सुशिक्षित और सज्जन होने की अवस्था। (४) भलमनसाहत। शराफत। जैसे,—ज़रा सभ्यता का व्यवहार करना सीखो।

समंगा–संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) मजीठ। (२) लाजवंती। लज्जालु। (३) वाराहक्रांता। गेंठी। (४) बाला।

समंगिनी–संज्ञा स्त्री० [सं०] बौद्धों की एक देवी।

समंजस–वि० [सं०] (१) उचित। ठीक। वाजिब। (२) जिसे किसी बात का अभ्यास हो। अभ्यस्त।

समंठ–संज्ञा पुं० [सं०] वे फल जिनकी तरकारी बनती हो। तरकारी के काम आनेवाले फल। जैसे,—पपीता, ककड़ी आदि।

समंत–संज्ञा पुं० [सं०] सीमा। प्रांत। किनारा। सिरा।
वि० समस्त। सब। कुल।

समंतकुसुम–संज्ञा पुं० [सं०] ललितविस्तर के अनुसार एक देवपुत्र का नाम।

समंतगंध–संज्ञा पुं० [सं०] बौद्धों के अनुसार एक देवपुत्र का नाम।

समंतदर्शी–वि० [सं० समन्तदर्शिन्] जिसे सब कुछ दिखाई देता हो। सर्वदर्शी।
संज्ञा पुं० गौतम बुद्ध का एक नाम।

समंतदुग्धा–संज्ञा स्त्री० [सं०] स्नूही। थूहर।

समंतनेत्र–संज्ञा पुं० [सं०] एक बोधिसत्व का नाम।

समंतपंचक–संज्ञा पुं० [सं०] कुरुक्षेत्र का एक नाम। (कहते हैं कि एक बार परशुराम ने समस्त क्षत्रियों को मारकर उनके लहू से यहीं पाँच तालाब बनाए थे; और उन्हीं में लहू से उन्होंने अपने पिता का तर्पण किया था। तभी से इस स्थान का नाम समंतपंचक पड़ा।)

समंतप्रभ–संज्ञा पुं० [सं०] एक बोधिसत्व का नाम।

समंतप्रभास–संज्ञा पुं० [सं०] गौतम बुद्ध का एक नाम।

समंतप्रसादिक–संज्ञा पुं० [सं०] एक बोधिसत्व का नाम।

समंतभद्र–संज्ञा पुं० [सं०] गौतम बुद्ध का एक नाम।

समंतभुज–संज्ञा पुं० [सं०] अग्नि।

समंतर–संज्ञा पुं० [सं०] (१) महाभारत के अनुसार एक प्राचीन देश का नाम। (२) इस देश के निवासी।

समंतरश्मि–संज्ञा पुं० [सं०] एक बोधिसत्व का नाम।

समंतालोक–संज्ञा पुं० [सं०] ध्यान करने का एक प्रकार।

समंतावलोकित–संज्ञा पुं० [सं०] एक बोधिसत्व का नाम।

सम–वि० [सं०] (१) समान। तुल्य। बराबर। (२) सब। कुल। तमाम। (३) जिसका तल ऊबड़ खाबड़ न हो। चौरस। (४) (संख्या) जिसे दो से भाग देने पर शेष कुछ न बचे। जूस।
संज्ञा पुं० (१) वह राशि जो सम संख्या पर पड़े। दूसरी, चौथी, छठी आदि राशियाँ। वृष, कर्क, कन्या, वृश्चिक, मकर और मीन ये छः राशियाँ। (२) गणित में वह सीधी रेखा जो उस अंक के ऊपर दी जाती है जिसका वर्ग मूल निकालना होता है। (३) संगीत में वह स्थान जहाँ गाने बजानेवालों का सिर या हाथ आप से आप हिल जाता है। यह स्थान ताल के अनुसार निश्चित होता है। जैसे तिताले में दूसरे ताल पर और चौताल में पहले ताल पर सम होता है। इसी प्रकार भिन्न भिन्न तालों में भिन्न भिन्न स्थानों पर सम होता है। वाद्यों का आरंभ और गीतों तथा वाद्यों का अंत इसी सम पर होता है। परंतु गाने बजाने के बीच बीच में भी सम बराबर आता रहता है। (४) साहित्य में एक प्रकार का अर्थालंकार जिसमें योग्य वस्तुओं के संयोग या संबंध का वर्णन होता है। यह विषमालंकार का बिलकुल उलटा है। उ०—(क) जस दूलह तस बनी बराता। कौतुक विविध होहिं मग जाता। (ख) चिरजीवौ जोरी जुरै क्यों न सनेह गँभीर। को घटिये वृषभानुजा वे हलधर के बीर।

संज्ञा पुं० [अ०] विष । जहर । उ०—सम खायँगे पर तेरी कसम हम न खायँगे ।

समकक्ष-वि० [सं०] बराबरी का । समान । तुल्य । जैसे,—दर्शन-शास्त्र में वे तुम्हारे समकक्ष हैं ।

समकन्या-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह कन्या जो विवाह के योग्य हो गई हो । ब्याहने लायक लड़की ।

समकर्ण-संज्ञा पुं० [सं०] (१) शिव का एक नाम । (२) गौतम बुद्ध का एक नाम । (३) ज्यामिति में किसी चतुर्भुज के आमने सामनेवाले कोणों के ऊपर की रेखाएँ ।

समकालीन-वि० [सं०] जो (दो या कई) एक ही समय में हों । एक ही समय में होनेवाले । जैसे,—तुलसीदासजी जहाँगीर के समकालीन थे ।

समकृत्-संज्ञा पुं० [सं०] कफ । श्लेष्मा ।

समकोण-वि० [सं०] (त्रिभुज या चतुर्भुज) जिसके आमने सामने के दो कोण समान हों ।

समकोल-संज्ञा पुं० [सं०] साँप ।

समकोश-संज्ञा पुं० [सं०] महाभारत के अनुसार एक प्राचीन देश का नाम ।

समक्राथ-संज्ञा पुं० [सं०] वह क्वाथ या काढ़ा जिसका पानी आदि जल कर आठवाँ भाग रह जाय ।

समक्ष-अव्य० [सं०] आँखों के सामने । सामने । जैसे,—अब वह कभी आपके समक्ष न आवेगा ।

समगंधक-संज्ञा पुं० [सं०] नकली धूप ।

समगंधिक-संज्ञा पुं० [सं०] उशीर । खस ।

समग्र-वि० [सं०] समस्त । कुल । पूरा । सब । जैसे,—उसे समग्र लघुकौमुदी कंठ है ।

समचतुर्भुज-संज्ञा पुं० [सं०] वह चतुर्भुज जिसके चारो भुज समान हों ।

समचित्त-संज्ञा पुं० [सं०] वह जिसके चित्त की अवस्था सब जगह समान रहती हो । वह जिसका चित्त कहीं दुःखी या क्षुब्ध न होता हो । समचेता ।

समचेता-संज्ञा पुं० [सं० समचेतस्] वह जिसके चित्त की वृत्ति सब जगह समान रहती हो । समचित्त ।

समज-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वन । जंगल । (२) पशुओं का झुंड ।

समज्या-संज्ञा स्त्री० [सं०] कीर्ति । यश ।

समतट-संज्ञा पुं० [सं०] (१) समुद्र के किनारे पर का देश । (२) एक प्राचीन प्रदेश का नाम जो आधुनिक बंगाल के पूर्व में था ।

समतल-वि० [सं०] जिसका तल सम हो, ऊबड़ खाबड़ न हो । जिसकी सतह बराबर हो । हमवार । जैसे,—इस पहाड़ के ऊपर बहुत दूर तक समतल भूमि चली गई है ।

समता-संज्ञा स्त्री० [सं०] सम या समान होने का भाव । बराबरी । तुल्यता । जैसे,—इस तरह के कामों में कोई आपकी समता नहीं कर सकता ।

समत्रय-संज्ञा पुं० [सं०] हड़, नागरमोथा और गुड़ इन तीनों के समान भागों का समूह ।

समत्रिभुज-संज्ञा पुं० [सं०] वह त्रिभुज जिसके तीनों भुज समान हों ।

समत्व-संज्ञा पुं० [सं०] सम या समान होने का भाव । समता । तुल्यता । बराबरी ।

समदन-संज्ञा पुं० [सं०] युद्ध । लड़ाई ।

समदर्शन-संज्ञा पुं० [सं०] वह जो सब मनुष्यों, स्थानों और पदार्थों को समान दृष्टि से देखता हो । सब को एक सा देखनेवाला । समदर्शी ।

समदर्शी-संज्ञा पुं० [सं० समदर्शिन्] वह जो सब मनुष्यों, स्थानों और पदार्थों आदि को समान दृष्टि से देखता हो । जो देखने में किसी प्रकार का भेद-भाव न रखता हो । सब को एक सा देखनेवाला ।

समदृश-संज्ञा पुं० दे० "समदर्शी" ।

समदृष्टि-संज्ञा स्त्री० [सं०] वह दृष्टि जो सब अवस्थाओं में और सब पदार्थों को देखने के समय समान रहे । समदर्शी की दृष्टि ।

समद्वादशास्त्र-संज्ञा पुं० [सं०] वह क्षेत्र आदि जिसके बारह समान भुज हों । बारह बराबर भुजोंवाला क्षेत्र ।

समद्विद्विभुज-संज्ञा पुं० [सं०] वह चतुर्भुज जिसका प्रत्येक भुज अपने सामनेवाले भुज के समान हो । वह चतुर्भुज जिसके आमने सामने के भुज बराबर हों ।

समधिक-वि० [सं०] अधिक । ज्यादा । बहुत ।

समनंतर-वि० [सं०] ठीक बगलवाला । बिलकुल सटा हुआ । बराबरी का ।

समनगा-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) बिजली । विद्युत् । (२) सूर्य की किरण ।

समनीक-संज्ञा पुं० [सं०] युद्ध । लड़ाई ।

समन्यु-संज्ञा पुं० [सं०] शिव का एक नाम ।

समन्वय-संज्ञा पुं० [सं०] (१) संयोग । मिलन । मिलाप । (२) विरोध का अभाव । विरोध का न होना । (३) कार्य्य कारण का प्रवाह या निर्वाह ।

समन्वित-वि० [सं०] (१) मिला हुआ । संयुक्त । (२) जिसमें कोई रुकावट न हो ।

समपद-संज्ञा पुं० [सं०] (१) धनुष चलानेवालों का एक प्रकार का खड़े होने का ढंग जिसमें वे अपने दोनों पैर बराबर रखते हैं । (२) काम शास्त्र के अनुसार एक प्रकार का रति-बंध या आसन ।

समपाद-संज्ञा पुं० [सं०] (१) दे० "समपद"। (२) वह छंद या कविता जिसके चारों चरण समान या बराबर हों।

समबुद्धि-संज्ञा पुं० [सं०] वह जिसकी बुद्धि सुख और दुःख, हानि और लाभ सब में समान रहती हो।

समभिहार-संज्ञा पुं० [सं०] (१) बार बार होने का भाव। (२) अधिकता। ज्यादती।

सममति-संज्ञा पुं० दे० "समबुद्धि"।

समयज्ञ-संज्ञा पुं० [सं०] (१) वह जो समय का ज्ञान रखता हो। समय के अनुसार चलनेवाला। (२) विष्णु का एक नाम।

...संज्ञा पुं० [सं०]...र्म।

समयाध्युषित-संज्ञा पुं० [सं०] वह समय जब कि न सूर्य ही दिखाई देता हो और न ...त्र ही दृष्टिगोचर होते हों। ठीक संध्या का समय।

समयानंद-संज्ञा पुं० [सं०] तांत्रिक के एक भैरव का नाम जिनका पूजन काली-पूजा के समय होता है।

समर-संज्ञा पुं० [सं०] युद्ध। संग्राम लड़ाई। उ०—सरवस खाइ भोग करि नाना। समर-भूमि...र दुरलभ प्राना।—तुलसी।

समरक्षिति-संज्ञा स्त्री० [सं०] युद्ध क्षेत्र, लड़ाई का मैदान।

समरज्जु-संज्ञा स्त्री० [सं०] बीज गणित... वह रेखा जिससे दूरी या गहराई जानी जाती है।

समरत-संज्ञा पुं० [सं०] काम शास्त्र के अनुसार एक प्रकार का रतिबंध या आसन।

समरपोत-संज्ञा पुं० [सं०] लड़ाई का ...ज। सैनिक जहाज।

समरभूमि-संज्ञा स्त्री० [सं०] युद्ध-क्षेत्र, लड़ाई का मैदान। उ०—सरवस खाइ भोग करि ना...। समरभूमि भा दुर्लभ प्राना।—तुलसी।

समरवसुधा-संज्ञा स्त्री० [सं०] लड़ा... का मैदान। युद्ध-क्षेत्र।

समरमूर्द्धा-संज्ञा पुं० [सं० समरमूर्द्धन्] लड़नेवाली सेना का अगला भाग।

समरशायी-संज्ञा पुं० [सं० समरशायिन्] ...ह जो युद्ध में मारा गया हो। वीरगति को प्राप्त।

...-संज्ञा पुं० [सं०] लड़ाई का ...दान। युद्ध-क्षेत्र।

...-संज्ञा पुं० [सं०] ...ाई का मैदान। युद्ध-क्षेत्र।

...० [सं०] कम दाम का। सस्ता। महर्घ या महँगा का ...टा।

...संज्ञा पुं० [सं०] अच्छी तरह अर्च्चन या पूजन करने ...काम।

समर्थ-वि० [सं०] (१) जिसमें कोई काम करने की सामर्थ्य हो। कोई काम करने की योग्यता या ताकत रखनेवाले। उपयुक्त। योग्य। जैसे,—आप सब कुछ करने में समर्थ हैं। (२) लंबा चौड़ा। प्रशस्त। (३) जो अभिलषित हो। (४) युक्ति के अनुकूल। ठीक।

संज्ञा पुं० हित। भलाई।

समर्थक-वि० [सं०] जो समर्थन करता हो। समर्थन ...

संज्ञा पुं० चंदन की लकड़ी।

समर्थता-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) समर्थ होने का भाव या सामर्थ्य। शक्ति। ताकत।

समर्थन-संज्ञा पुं० [सं०] (१) यह निश्चय करना कि अमुक उचित है या अनुचित। वाजिब और गैर-वाजिब का ... करना। (२) यह कहना कि अमुक बात ठीक है। ... विषय में सहमत होना। किसी के मत का पोषण ...। जैसे,—मैं आपके इस कथन का समर्थन करता हूँ। (... विवेचन। मीमांसा। (५) निषेध। वर्जन। मनाही। (... संभावना। (६) उत्साह। (७) सामर्थ्य। शक्ति। ता... (८) विवाद की समाप्ति या अंत करना।

समर्थना-संज्ञा स्त्री० [सं०] (१) किसी ऐसे काम के लिये ... करना जो असंभव हो। न होने योग्य काम के लिये ... (२) दे० "समर्थन"।

समर्थनीय-वि० [सं०] समर्थन करने के योग्य। जिसका ...र्थन किया जा सके।

समर्थित-वि० [सं०] (१) जिसका समर्थन किया गया ... समर्थन किया हुआ। (२) जिसकी विवेचना हो चुकी ... जिस पर अच्छी तरह विचार हो चुका हो। (३) जो नि... हो चुका हो। स्थिर किया हुआ। (४) जो हो सकता ... जो संभव हो। संभावित।

समर्थ्य-वि० [सं०] जिसका समर्थन किया जा सके। ... करने के योग्य।

समर्द्धक-संज्ञा पुं० [सं०] वरदान देनेवाले, देवता आदि।

समर्पक-वि० [सं०] जो समर्पण करता हो। समर्पण ...

समर्पण-संज्ञा पुं० [सं०] (१) किसी को कोई चीज ... भेंट करना। प्रतिष्ठापूर्वक देना। जैसे,—वे यह पुस्तक ... राजा या रईस को समर्पण करना चाहते हैं। (२) ... देना। जैसे,—आत्म-समर्पण करना। (३) स्थापित ... स्थापना।

समर्पित-वि० [सं०] (१) जो समर्पण किया गया हो। ... किया हुआ। (२) जिसकी स्थापना की गई हो। ...

समर्प्य-वि० [सं०] जो समर्पण किया जा सके। समर्पण के योग्य।

समर्याद-वि० [सं०] (१) निकट। पास। करीब। (२) ... चाल चलन अच्छा हो। अच्छे चरित्रवाला।

समल-संज्ञा पुं० [सं०] मल। विष्ठा। पुरीष। गू।

वि० मलीन। मैला। गंदा।